वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 291

भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव
के समापन अवसर पर प्रकाशित

भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ

प्रेरणास्रोत

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

मार्गदर्शन

पूज्य चारित्रश्रमणी आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी

प्रधान संपादिका

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

निर्देशन

पीठाधीश क्षुल्लकरत्न
श्री मोतीसागर जी महाराज

सम्पादक

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन
(अध्यक्ष-जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर)

सहसम्पादिका

ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ) ब्र. कु.इन्दू जैन (संघस्थ) ब्र. कु. आस्था जैन (संघस्थ)

प्रबंध सम्पादक

जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

– प्रकाशक –

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र. फोन नं.- (01233) 280184, 280236

Website : www.jambudweep.org E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशन :-

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

-: सम्पादक :-

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : *प्रथम*
प्रकाशन तिथि : *भगवान पार्श्वनाथ 2884वीं जन्मजयंती*
पौष कृष्णा एकादशी, दिनाँक 3 जनवरी 2008
मूल्य : *500/-रुपये*
अक्षरांकन : *ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.*

मुद्रण : पारस प्रिंटर्स, C/o विजय कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

उत्सव-महोत्सव मनाने की परम्परा प्राचीन काल से भारत की धरा पर चली आई है। वर्तमान काल में पाश्चात्य संस्कृति की ओर भागती पीढ़ी को धर्म की ओर आकर्षित करने हेतु इस परम्परा का महत्त्व और भी वृद्धिंगत हो गया है। सन् 1974 में भगवान महावीर का 2500वाँ निर्वाण महोत्सव, सन् 2000 में भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव, सन् 2001 में भगवान महावीर 2600वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं। उसी श्रृंखला में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने पुनः शंखनाद किया-भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का।

23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जहाँ समता, क्षमा, सहिष्णुता, धैर्य जैसे महान गुणों के प्रबल दीप्तिमान सूर्य के रूप में जिनशासन के विस्तृत व्योम पर आलोकित हैं, वहीं इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवन ऋषभदेव से चली आई ''पंचमहाव्रत'' एवं ''पंचअणुव्रत'' रूप निवृत्ति एवं प्रवृत्ति रूप जिनधर्म की परम्परा प्रवाह के आधार-स्तम्भ भी हैं, उन्हीं से प्राप्त तीर्थंकर परम्परा को 24 वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने समस्त जगत को प्रदान किया। परन्तु आधुनिक समाज की अन्वेषी बुद्धि ने भगवान महावीर को ''जैनधर्म का संस्थापक'' घोषित कर दिया। कहीं भगवान पार्श्वनाथ को चातुर्याम धर्म का प्रवर्तक बता दिया गया तो कहीं महावीर स्वामी को विवाहित घोषित कर दिया गया, और भी कितनी ही भ्रामक बातें यदा-कदा सुनने में आती रहीं हैं।

परन्तु जिस प्रकार प्रकाश की एक किरण मात्र भी विस्तृत अंधकार का विनाश कर देती है, छोटी सी चिंगारी भी फूस के बहुत बड़े ढ़ेर को जला डालती है, उसी प्रकार समुचित नेतृत्व में जैन समाज द्वारा किया गया संगठित अल्प प्रयास भी दिगम्बर परम्परा को सदैव सुरक्षित रख सकता है। शायद इसीलिए पूज्य माताजी ने भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि राजगृही (नालंदा) में मगशिर सुदी द्वादशी, 5 दिसम्बर 2003 के दिन समस्त दिगम्बर जैन समाज को एकजुट होकर ''भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव'' मनाने की विशेष प्रेरणा प्रदान की।

ज्ञातव्य है कि भगवान पार्श्वनाथ को जन्म लिए लगभग 3 हजार वर्ष पूर्ण होने वाले हैं अर्थात् भगवान के जन्म की तृतीय सहस्राब्दि समापन की ओर है। 19 दिसम्बर 2003, पौष कृष्णा एकादशी को भगवान पार्श्वनाथ का 2880वाँ जन्मकल्याणक दिवस मनाया गया, जिसके अंतर्गत भगवान की जन्मभूमि-वाराणसी (भेलूपुर) में ''पार्श्वनाथ महोत्सव संकल्प ज्योति'' रूप अखंड दीप प्रज्वलित करके 6 जनवरी 2005 (भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक दिवस) से प्रारंभ किए जाने वाले ''भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव'' की राष्ट्रस्तरीय व्यापक तैयारियों का सूत्रपात्र किया गया।

इस वर्ष की सार्थकता को सिद्ध करने वाले बहुआयामी उद्देश्य पूज्य माताजी द्वारा समस्त दिगम्बर जैन समाज के लिए निर्दिष्ट किए गए ताकि अपने-अपने स्तर पर उनके अनुरूप कार्यशील होने के साथ-साथ हमारी समाज देशव्यापी केन्द्रीय कार्यक्रम के साथ ही यथासंभव संयुक्त होकर स्वयं भी पार्श्वनाथमय हो एवं समस्त राष्ट्र व विश्व को भी पार्श्वनाथमय बना सके।

भगवान पार्श्वनाथ जन्मभूमि वाराणसी में पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से उन्हीं के संघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन वीर नि. सं. 2531, पौष कृष्णा एकादशी, 6 जनवरी 2005 को भव्यता के साथ विशाल जनसमूह के बीच सानंद सम्पन्न हुआ। समारोह के झण्डारोहण के साथ ही 2 कि.मी. लम्बी ऐतिहासिक रथयात्रा (शोभायात्रा) निकाली गई। उसके पश्चात् भगवान पार्श्वनाथ का जन्माभिषेक किया गया। समारोह की मुख्य सभा में उ.प्र. सरकार के लोकनिर्माण एवं कृषि विदेश व्यापार मंत्री श्री शिवपालसिंह यादव, श्री माताप्रसाद पाण्डे (विधानसभा अध्यक्ष), विधानसभा

उपाध्यक्ष श्री राजेश अग्रवाल, बी.एच.यू. के कुलपति महोदय एवं श्री दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष श्री एन.के. सेठी आदि पधारे। इस अवसर पर माननीय कुलपति महोदय ने 'भगवान महावीर जैन शब्दकोश' (हिन्दी-अंग्रेजी) का विमोचन किया। माननीय मुख्य अतिथि महोदय ने भगवान पार्श्वनाथ के 9 मंजिले धातु के महल का अनावरण किया, साथ ही पार्श्वनाथ महोत्सव की ऑडियो कैसेट का विमोचन भी किया गया।

महोत्सव के दूसरे दिन 7 जनवरी को दिगम्बर जैन मंदिर-भेलूपुर वाराणसी में विराजमान भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा का 1008 कलशों से मस्तकाभिषेक किया गया तथा मध्यान्ह में तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वत् महासंघ का अधिवेशन आयोजित किया गया, जिसमें बनारस हिंदू विश्वविद्यालय एवं संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय आदि कई स्थानों से पधारे 25 विद्वानों एवं विद्वत् महासंघ के 25 विद्वानों को भगवान पार्श्वनाथ के प्रतीक चिन्ह से सम्मानित किया गया एवं कुण्डलपुर अभिनंदन ग्रंथ आदि साहित्य प्रदान किया गया। सायंकाल भगवान की 1008 दीपकों से मंगल आरती की गई।

इसी श्रृंखला में 19 जनवरी 2005 को वाराणसी के निकट स्थित मुगलसराय में श्री दिगम्बर जैन मंदिर में पूज्य माताजी के शुभाशीर्वाद से नवनिर्मित वेदी में 108 फणों के युक्त भगवान पार्श्वनाथ की अत्यंत मनोहारी कृष्णवर्णी पद्मासन प्रतिमा विराजमान की गईं।

12 फरवरी 2005 को माननीय मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव पूज्य माताजी की पावन जन्मभूमि टिकैतनगर (बाराबंकी-उ.प्र.) में पधारे एवं वहाँ चल रही श्री 1008 चौबीस तीर्थंकर, सहस्रकूट एवं भगवान महावीर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह के मंच पर विराजमान पूज्य माताजी का मंगल आशीर्वाद प्राप्त किया। उस समय पूज्य माताजी की प्रेरणा से माननीय मुख्यमंत्री जी ने भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्वलित करके इस वर्ष को ''पार्श्वनाथ वर्ष'' घोषित किया।

पार्श्वनाथ वर्ष का प्रारम्भीकरण होते ही जिस विद्यालय में बचपन में धार्मिक एवं लौकिक अध्ययन करके पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने 20 वीं सदी में त्याग-तपस्या की शाश्वत संस्कृति का चहुँ ओर शंखनाद किया, उसी विद्यालय के नवनिर्मित भवन-पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन इण्टर कालेज के प्रांगण में 18 फरवरी 2005 को माताजी के ही संघ सानिध्य में भगवान पार्श्वनाथ की 3 फुट उत्तुंग श्यामवर्णी पद्मासन प्रतिमा ऊँचे चबूतरे पर विराजमान की गई। इसके साथ ही माताजी की प्रेरणा प्राप्त कर अनेक स्थानों पर भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित अनेकों आयोजन होने लगे जिसके समाचार हमें समय-समय पर प्राप्त होते रहे। अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा दैनिक अखबारों में भगवान पार्श्वनाथ के जीवन एवं उनके अतिशय क्षेत्रों से संबंधित आलेख, भजन, पूजन आदि भी प्रकाशित होने लगे। साधना चैनल व आस्था चैनल पर भी भगवान पार्श्वनाथ के दश भवों के प्रवचनों को आम जनता ने देखा और उनके जीवन को जाना।

कार्यक्रम की इसी श्रृंखला में पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा एवं संघ सानिध्य में अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ महामस्तकाभिषेक महोत्सव एवं भगवान पार्श्वनाथ रथयात्रा का आयोजन 15 मई 2005 को हजारों श्रद्धालुओं की भारी भीड़ के मध्य हर्षोल्लासपूर्वक भक्तिभाव के साथ सम्पन्न हुआ। सायंकाल भगवान पार्श्वनाथ की 1008 दीपकों से मंगल आरती की गई। अहिच्छत्र प्रवास के मध्य माताजी की प्रेरणा एवं संघ सानिध्य में 10 मई से ''भगवान पार्श्वनाथ समवसरण विधान'', ''अहिच्छत्र पार्श्वनाथ विधान'', ''कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान'', ''तीस चौबीसी विधान'' आदि अनेक विधान सम्पन्न किए गए तथा माता पद्मावती की 1008 मंत्रों से महाआराधना भी की गई। अहिच्छत्र से पूर्व सीतापुर, शाहजहाँपुर, बरेली इत्यादि स्थानों पर भी 'पार्श्वनाथ महोत्सव वर्ष'' के अंतर्गत पार्श्वनाथ विधान एवं रत्नवृष्टि इत्यादि कार्यक्रम आयोजित किए गए।

इसी महोत्सव वर्ष के अंतर्गत गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोधपीठ इंदौर में डॉ. अनुपम जैन के द्वारा आचार्य श्री सुकुमालनंदी जी एवं मुनि श्री पुण्यनंदी जी महाराज के सानिध्य में भगवान पार्श्वनाथ संगोष्ठी आयोजित की गई जिसमें अनेक विद्वानों ने अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए। इधर यह सब कार्यक्रम चल ही रहे थे,

उधर पूज्य माताजी ने इसी तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव के अंतर्गत भगवान पार्श्वनाथ मोक्षकल्याणक के शुभ अवसर पर (12 अगस्त 2005) भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण लाडू सम्मेदशिखर जी में मनाने की प्रेरणा प्रदान की तथा जो लोग सम्मेदशिखर न जा सकें वे अपने-अपने ग्राम, नगर के मंदिरों में पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर की कृत्रिम रचना बनाकर भगवान के श्रीचरणों में निर्वाण लाडू चढ़ाने का सुन्दर कार्यक्रम आयोजित कर भगवान पार्श्वनाथ के द्वारा प्रतिपादित क्षमा, धैर्य, सहिष्णुता, विश्वमैत्री, सहनशीलता जैसे महान सिद्धांतों को जन-जन में प्रसारित करें। साथ ही साथ स्थानीय स्कूल, कालेज अथवा संस्थानों में भी भगवान पार्श्वनाथ के जीवन दर्शन पर आधारित संगोष्ठी, प्रश्नमंच, भाषण, वादविवाद प्रतियोगिता अथवा पार्श्वनाथ रैली को सामाजिक रूप में आयोजित कर भगवान महावीर से पूर्व अन्य 23 तीर्थंकरों के अस्तित्व को एवं उनके जीवन से संबंधित सही बातों को भी जैनेतर समाज के समक्ष उजागर करें, ऐसी प्रेरणा दी। उस समय हजारों की संख्या में लोगों ने सम्मेदशिखर पहुँचकर निर्वाण लाडू चढ़ाया। दशलक्षण महापर्व के अंतर्गत विद्वानों एवं समाज के श्रेष्ठियों को उनकी विशेष प्रेरणा रही कि उन 10 दिनों में भगवान पार्श्वनाथ के दस भवों से संबंधित नाटिका, झाँकियाँ, प्रश्नमंच अथवा उनके जीवन पर आधारित अन्य कार्यक्रमों को आयोजित करें। पूज्य माताजी की प्रेरणा प्राप्त कर अनेक आचार्यों, मुनियों, आर्यिकाओं, विद्वानों एवं श्रेष्ठियों ने अनेक कार्यक्रम आयोजित किए।

भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से संबंधित अनेक कार्यक्रम अ.भा.दि. जैन महिला संगठन, भरतसेना, अ.भा.दि. जैन युवा परिषद आदि अनेकानेक संस्थाओं द्वारा ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में आयोजित किए गए। पार्श्वनाथ भगवान के अतिशय क्षेत्रों पर भी अनेकों साधुओं की प्रेरणा से एवं समाज के मूर्धन्य कार्यकर्ताओं द्वारा विविध कार्यक्रम भी आयोजित किए गए। राजधानी दिल्ली में अनेकों आचार्यों, मुनियों एवं आर्यिकाओं ने भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में सम्मेदशिखर की भव्य प्रतिकृति बनवाकर उसके समक्ष 23-23 किलो के लड्डू चढ़वाए और सामूहिक रूप में भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाणोत्सव धूमधाम से मनाया। पार्श्वनाथ जन्मभूमि वाराणसी, राजधानी दिल्ली आदि शहरों में तो विशेषरूप में धर्मप्रभावना की गई। साथ ही इसमें छोटे-छोटे ग्राम-नगर भी अछूते नहीं रहे हैं। सभी ने अपने-अपने ग्रामों, शहरों में भगवान पार्श्वनाथ का सामूहिक निर्वाणलाडू चढ़ाकर हर्षोल्लासपूर्वक इसे मनाया।

जम्बूद्वीप महामहोत्सव-2005 के अवसर पर भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के अंतर्गत संस्थान द्वारा भी भगवान पार्श्वनाथ प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें हजारों की संख्या में प्रश्नावली फार्म भरे गए, सही उत्तर भेजने वाले प्रतियोगी 108 थे जिन्हें लक्की ड्रॉ के माध्यम से पुरस्कृत किया गया। इसी अवसर पर भगवान पार्श्वनाथ वर्ष के उद्घाटन दिवस पर विद्वत् महासंघ द्वारा घोषित ''भगवान पार्श्वनाथ शोध आलेख प्रतियोगिता'' में प्राप्त आलेखों के प्रतियोगियों को पुरस्कृत किया गया। इस प्रकार यह वर्ष विविध कार्यक्रमों के माध्यम से सानंद पूर्ण हुआ।

सदाकाल से सुना जाता है कि सोना जितना तपता है उतना निखरता है, चंदन जितना अधिक घिसा जाता है उतनी अधिक सुगंधि देता है, गन्ना जितना-जितना पेला जाता है उतना-उतना मीठा रस प्रदान करता है; उसी प्रकार महापुरूषों पर जितने-जितने कष्ट आते हैं वे उनकी उन्नति का सोपान बन जाते हैं। भगवान पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकर भगवन्तों की गौरवगाथा से आज की पीढ़ी किस स्तर तक परिचित है, यह विशेष रूप से चिंतन का विषय है। कम्प्यूटर, इण्टरनेट, मोबाइल के इस युग में जहाँ युवावर्ग फिल्म, क्रिकेट और न जाने किन-किन आधुनिकताओं से प्रभावित है, वहाँ उत्सवों-महोत्सवों-समारोहों के माध्यम से अपनी शाश्वत संस्कृति के उच्च आदर्शों की ओर कम से कम एक बार दृष्टिपात करने का अवसर जनसाधारण को प्राप्त हो, भगवान पार्श्वनाथ जैसे महापुरुषों के व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य से जन-जन परिचित हो, यह ध्येय रहता है पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी का।

मैं बात कर रहा था ''भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष की''। ऐसे अछूते विषयों को जब माताजी समाज के सामने लाकर प्रस्तुत करती हैं तो कुछ प्रश्नचिन्ह भी उभरने लगते हैं कि भला इस समय इसका क्या औचित्य था? परन्तु जब कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन से सुन्दर परिणाम सामने आते हैं तो वही सबको समय की आवश्यकता के रूप में महत्वपूर्ण लगने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब समाज को प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं तो आबाल-गोपाल सभी पर कहीं न कहीं प्रभाव पड़ता है, नई पीढ़ी में भी आकर्षण होता है किन्हीं अंशों में सभी लोग शाश्वत जिनसंस्कृति से जुड़ते हैं।

पूज्य माताजी कार्यक्रमों की कभी 'इति' नहीं करतीं यह उनकी विशेषता है, पार्श्वनाथ वर्ष पूर्ण होने के साथ ही इसी सहस्राब्दि महोत्सव को त्रिवर्षीय घोषित करते हुए उन्होंने 27 दिसम्बर 2005 को पौष कृष्णा ग्यारस, भगवान पार्श्वनाथ के जन्मकल्याणक से ''सम्मेदशिखर वर्ष'' के रूप में घोषित कर दिया ताकि महोत्सव की 'इति' न समझकर और भी अधिक उत्साह से भगवान पार्श्वनाथ की निर्वाण भूमि पारसनाथ हिल अर्थात् शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखर जी के प्रति सभी लोग तन-मन-धन से कटिबद्ध हो जाएँ और इसी प्रकार तीर्थंकरों की भक्ति एवं यशोगाथा को गुंजायमान करते हुए अपना जीवन सफल करें।

इस महोत्सव वर्ष के अंतर्गत जहाँ अनेक उल्लेखनीय कार्यक्रम आयोजित होते रहे वहीं सर्वश्रेष्ठ कार्य हुआ शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर पर भगवान ऋषभदेव जिनमंदिर का निर्माण। इस वर्ष के अंतर्गत भगवान बाहुबली चौबीसी मंदिर प्रांगण में नवनिर्मित भगवान ऋषभदेव जिनमंदिर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं कलशारोहण 2 दिसम्बर से 7 दिसम्बर 2005 में सम्पन्न हुआ। इससे पूर्व मार्च 2003 में स्वयं माताजी ने इस पावन तीर्थ पर संघ सहित पधारकर अनेकों वंदना करते हुए इसकी पदरज अपने मस्तक पर लगाकर स्वयं को धन्य माना था। उस समय भी अनेकों विधान, शिविर, संगोष्ठी आदि के आयोजन वहाँ सम्पन्न हुए थे।

वर्ष 2007-2008 भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ के नाम से प्रचारित किया गया वहाँ दिसम्बर 2007 में तिखाल वाले बाबा का सहस्राब्दि महोत्सव एवं महामहामस्तकाभिषेक सम्पन्न हो रहा है। यह महोत्सव 7 दिसम्बर 2007 से प्रारंभ होकर 4 जनवरी 2008 पौष कृष्णा एकादशी (पार्श्वनाथ जयंती) तक आयोजित किया गया है। पूज्य माताजी की प्रेरणा से इसका संकल्प दीप 16 दिसम्बर 2006, पौष कृ. एकादशी के दिन पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर महाराज एवं क्षुल्लक श्री समर्पणसागर महाराज के सानिध्य में जलाया गया था।

वस्तुतः भगवान पार्श्वनाथ महोत्सव मनाने का उद्देश्य यह है कि जो लोग भगवान महावीर को जैनधर्म का संस्थापक कहने लगते हैं उनको यह भलीभाँति ज्ञात हो सके कि भगवान पार्श्वनाथ जैनधर्म के 23 वें तीर्थंकर हैं अतः भगवान महावीर के पहले 23 और तीर्थंकर हो चुके हैं, तो भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक कैसे हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते हैं। इसके साथ-साथ जैन शासन की प्रभावना और अनेक धार्मिक कार्यक्रमों के माध्यम से विश्व में शांति व क्षेम हो, तीर्थंकर भगवन्तों की कीर्ति पताका विश्व में फहराए, जन-जन उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को समुन्नत बनाएँ।

इस प्रकार पूज्य माताजी के कार्यकलापों को अगर विस्तार से लिखा जाए तो बहुत बड़ा ग्रंथ तैयार हो जाएगा। यहाँ तो मैं मात्र इतना कहना चाहूँगा कि पूज्य माताजी का हर कदम किसी न किसी नए लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ता है, उनके ये कदम हमेशा-हमेशा इसी तरह आगे बढ़ते रहें यही पार्श्व प्रभु से मंगल प्रार्थना है।

मैं स्वयं को गौरवशाली अनुभव करता हूँ कि जिस तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का त्रिवर्षीय आयोजन विविध कार्यक्रमों के माध्यम से हुआ है उसके ग्रंथ को प्रकाशित करने का सौभाग्य हमारी ग्रंथमाला को प्राप्त हो रहा है। यूँ तो भगवान पार्श्वनाथ के बारे में जितना कहा जाए, जितना लिखा जाए उतना कम है, लेकिन जैसा कि मैंने पहले भी कहा महापुरुषों का जीवन वृत्त तो इतिहास है उसे लिखने के लिए, अथवा उसके संकलन, संयोजन, संपादन के लिए हमारा यह छोटा सा जीवन कम है इसलिए जितने भी पत्र, पुष्प इस ग्रंथ में समर्पित किये गये हैं वे प्रत्येक जिज्ञासु पाठक की ज्ञानपिपासा को शांत कर सकें यह इस ग्रंथ के प्रकाशन की सार्थकता होगी।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में सम्यग्दर्शन के आठवें अंग 'प्रभावना' का लक्षण बताते हुए कहा है-

अज्ञानतिमिरव्याप्ति-मपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना।।

अर्थात् अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करके जैसे बने वैसे जिनेन्द्र भगवान के शासन का प्रचार-प्रसार करना प्रभावना अंग कहलाता है।

जिनशासन की प्रभावना के अन्तर्गत ही पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, रथयात्रा, जिनेन्द्रपूजा-विधान आदि के कार्य गर्भित रहते हैं। प्राचीनकाल से इन प्रभावनात्मक कार्यों की प्रेरणा जैनाचार्य प्रदान करते रहे हैं, वही परम्परा वर्तमान में भी साधुगण निर्वाह कर रहे हैं। भगवान महावीर के पश्चात्वर्ती आचार्यों में जैसे श्री कुन्दकुन्दाचार्य के द्वारा गिरनार यात्रा एवं साहित्यरचना के माध्यम से जिनधर्म की व्यापक प्रभावना का वर्णन आता है। आचार्य उमास्वामी, समंतभद्रस्वामी आदि ने महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना करके साहित्य जगत में कीर्तिमान स्थापित किया है, उसी प्रकार बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज ने जिनशासन के आद्यग्रंथ षट्खण्डागम धवला टीका (आचार्य श्री धरसेन स्वामी द्वारा प्राप्त सिद्धांतज्ञान के आधार पर श्री पुष्पदंत-भूतबली आचार्यद्वय द्वारा रचित षट्खण्डागम सूत्र एवं श्री वीरसेनाचार्य द्वारा उन सूत्रों पर लिखी गई धवला टीका समन्वित) का विद्वानों द्वारा हिन्दी अनुवाद करवाकर प्रकाशित करने की अविस्मरणीय प्रेरणा दी, उन्हें ताम्रपट्टों पर उत्कीर्ण करवाकर परम स्थायित्व प्रदान किया तथा कुंथलगिरि तीर्थ पर देशभूषण, कुलभूषण केवली भगवन्तों की प्रतिमा विराजमान करने की प्रेरणा देकर वहाँ के 9 लाख वर्ष पूर्व का इतिहास जीवन्त किया, कुंभोज बाहुबली तीर्थ पर मुनि समन्तभद्र जी को भगवान बाहुबली की प्रतिमा विराजमान करने हेतु प्रेरणा प्रदान की तथा संघसहित सम्मेदशिखर की यात्रा करके जैनधर्म की भारी प्रभावना का इतिहास बनाया है। इसी शृँखला में शांतिसागर महाराज के प्रमुख शिष्यों में से आचार्य श्री नमिसागर महाराज की प्रेरणा से अनेक विद्यालय, महाविद्यालय एवं औषधालय आदि के निर्माण उत्तर भारत में हुए, आचार्य श्री नेमिसागर महाराज की प्रेरणा से बम्बई महानगरी में पोदनपुर तीर्थ बनाकर विशाल त्रिमूर्ति विराजमान की गईं, आचार्य श्री कुंथुसागर महाराज एवं आचार्यश्री सुधर्मसागर महाराज ने संस्कृत एवं हिन्दी में ग्रंथ लिखे। उन्हीं प्रथमाचार्यश्री के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर महाराज ने चतुर्थकाल के समान विशाल चतुर्विध संघ का कुशल संचालन किया। द्वितीय पट्टाचार्य श्री शिवसागर महाराज की प्रेरणा से श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर ''शान्तिवीर नगर'' तीर्थ का निर्माण हुआ। तृतीय पट्टाचार्य श्री धर्मसागर महाराज ने राजस्थान में यत्र-तत्र प्राचीन पद्धति के गुरुकुल खोलने की प्रेरणा दी तथा सन् 1974 में ससंघ राजधानी दिल्ली पधारकर भगवान महावीर के 2500वें निर्वाणमहोत्सव में सानिध्य प्रदानकर जैनधर्म की अभूतपूर्व धर्मप्रभावना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी प्रकार पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज की प्रेरणा से मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र का जीर्णोद्धार-विकास हुआ है तथा वर्तमान में भी अनेक आचार्यों-मुनियों आदि के द्वारा तीर्थ निर्माण, साहित्यसृजन आदि धर्मप्रभावना के महान कार्य सम्पन्न हो रहे है। परमपूज्य आचार्य श्री देशभूषण महाराज, आचार्य श्री विमलसागर महाराज की भी अनेक निर्माणात्मक कृतियाँ समाज को प्राप्त हुई हैं जिन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त विभूतियों का उल्लेख यहाँ मात्र इसलिए किया गया है कि चतुर्थकाल के समान पंचमकाल में भी आत्म साधना के साथ-साथ धर्मप्रभावना के विविध आयाम सन्तों की प्रेरणा से संचालित हो रहे हैं। इनमें

बीसवीं सदी की प्रथम बालब्रह्मचारिणी आर्यिका पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का बहुश्रुत नाम भी अनेकानेक उपलब्धियों का प्रदाता है। चाहे शिष्य-शिष्याओं को मोक्षमार्ग में लगाने का कार्य हो या उच्चकोटि से लेकर जनसामान्य के लिए उपयोगी साहित्य का निर्माण हो, प्राचीन तीर्थों के जीर्णोद्धार-विकास की प्रेरणा हो या राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय महोत्सवों के माध्यम से जैनधर्म की राष्ट्रव्यापी प्रभावना के प्रसंग हों, रथों के प्रवर्तन हों अथवा तीर्थयात्रा के प्रसंग हों, सभी कार्यों में उन्होंने सदैव आत्म साधना को प्रमुखता देकर आगम एवं गुरु परम्परा में दृढ़ रहकर निर्दोष आदर्श प्रस्तुत किया है। उसी प्रेरणा के प्रतिफल में प्रस्तुत ''भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ'' उनके पवित्र मस्तिष्क की सूझ-बूझ का परिणाम है।

सन् 2003-2004 में पूज्य ज्ञानमती माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ का महोत्सव मनाने की योजना बनाई पुनः 6 जनवरी 2005, पौष कृ. एकादशी को पार्श्वनाथ जन्मभूमि वाराणसी से महोत्सव का उद्घाटन उन्हीं के संघ सानिध्य में हुआ। इस महोत्सव का प्रमुख लक्ष्य पार्श्वनाथ की कल्याणक भूमियों, अतिशय क्षेत्रों के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ जनमानस को जैनधर्म की अनादिनिधनता एवं सार्वभौमिकता से परिचित कराने का रहा है, इसके लिए समय-समय पर वाराणसी, अहिच्छत्र, सम्मेदशिखर पर सम्पन्न किये जाने वाले समारोह के पोस्टर-विज्ञापन आदि भी समिति द्वारा प्रकाशित कर देशभर की जैन समाजों को भेजे गये हैं। ''भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव'' के त्रिवर्षीय कार्यक्रमों का समापन पूज्य माताजी की भावनानुसार 3 जनवरी 2008 को पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तिथि पर उनकी केवलज्ञानकल्याणक भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर हो रहा है। इसी पावन प्रसंग के साथ जुड़ गया है अहिच्छत्र के तिखाल वाले बाबा पार्श्वनाथ का सहस्राब्दि महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक। प्रस्तुत ग्रंथ के लोकार्पण में ये दोनों अवसर सोने में सुगंध जैसा उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस ''भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ'' नामक वृहत्काय कृति में पूज्य माताजी की बनाई हुई सम्पूर्ण योजना को साकार किया गया है। उन्होंने 4-5 माह पूर्व इसके सभी खण्डों की रूपरेखा बनाकर प्रदान किया, तदनुसार सामग्री का संकलन प्रारंभ हुआ और यथासंभव इसके सम्पादन में सफलता प्राप्त हो सकी है। इसमें समय की अल्पता के कारण हमने अधिकाधिक विद्वानों के लेखों का समावेश न करके पार्श्वनाथ के जीवन एवं विविध दिगम्बर जैन साहित्य संबंधी आलेख हमें जिनके प्राप्त हो सके, उनको ही संपादित करके ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है।

इस ग्रंथ की सामग्री संकलन में प्रमुखरूप से निम्न ग्रंथों का आधार लिया गया है-

1. भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ-भाग 1, 2, 3, 4 (पं. श्री बालभद्र जैन द्वारा संपादिक एवं भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा संपादित)
2. तीर्थक्षेत्र निर्देशिका (डॉ. अनुपम जैन द्वारा संपादित एवं दि. जैन महासमिति मध्यांचल द्वारा प्रकाशित)
3. तीर्थंकर पार्श्वनाथ–ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में (प्राच्य श्रमणभारती-मुजफ्फरनगर द्वारा प्रकाशित)
4. जैनेन्द्र व्रत कथा संग्रह-मराठी (दक्षिण भारत से प्राप्त)
5. जैन 40 व्रत कथा संग्रह (सूरत से प्रकाशित)
6. व्रत तिथि निर्णय (डॉ. नेमिचंद्र जैन ज्योतिषाचार्य द्वारा संपादित)
7. भारती वाङ्मय में पार्श्वनाथ विषयक साहित्य (डॉ. जयकुमार जैन-मुजफ्फरनगर द्वारा लिखित)
8. प्रवचन निर्देशिका (पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी लिखित)
9. जिनस्तोत्र संग्रह (पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी लिखित)
10. भगवान पार्श्वनाथ (पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी लिखित)

11. व्रत विधि एवं पूजा (पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी लिखित)
12. भगवान पार्श्वनाथ दशावतार नाटक (पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर महाराज द्वारा प्रस्तुत)
13. भगवान पार्श्वनाथ प्रश्नोत्तरी (पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर महाराज द्वारा प्रस्तुत)
14. जम्बूद्वीप पूजांजलि (जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से प्रकाशित)
15. ऋषभदेशना मासिक पत्रिका (अ.भा.दि. जैन महिला संगठन-इंदौर से प्रकाशित)

इसमें विशेष ज्ञातव्य है कि पूज्य माताजी के आदेशानुसार उपर्युक्त पुस्तकों से लिया गया मैटर यहाँ मात्र ज्यों की त्यों उद्धृत न करके उन्हें यथायोग्य संपादित करके प्रस्तुत किया गया है क्योंकि ग्रंथ की सामग्री दिगम्बर जैन मान्यतानुसार ही देने का भरकस प्रयत्न रहा है। ताकि तीर्थंकर पार्श्वनाथ के संबंध में विभिन्न परम्पराओं द्वारा लिखित भ्रांतियों से भी लोग परिचित हो सकें। जैसे-दिगम्बर मतानुसार भगवान पार्श्वनाथ चातुर्याम धर्म के प्रवर्तक नहीं थे, प्रत्युत् उन्होंने अनादिकालीन तीर्थंकर परम्परानुसार पंचमहाव्रतों का ही उपदेश दिया था.....आदि।

भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित कल्याणक तीर्थ एवं अनेक अतिशय क्षेत्रों का परिचय मंगाने हेतु उन-उन तीर्थों से काफी पत्राचार करने के बाद जहाँ-जहाँ से सामग्री प्राप्त हुई, उसे इसमें समाविष्ट किया गया है। सन् 1974 से पूर्व तक का प्रचुर मात्रा में किया गया सर्वेक्षण पूर्ण लेखन तो पं. बलभद्र जैन द्वारा प्राप्त हुआ ही, किन्तु उसके बाद प्रायः समस्त तीर्थों पर अनेक प्रकार के विकासकार्य सम्पन्न हुए हैं, उनका कुछ विवरण डॉ. अनुपम जैन-इंदौर द्वारा सम्पादिक तीर्थक्षेत्र निर्देशिका में था अतः आवश्यकतानुसार उसमें से लिया है और कुछ क्षेत्रों के कार्यकर्ताओं ने स्वयं लिखकर भेजा है उन्हें उनके नाम से ही प्रकाशित किया गया है।

इस ग्रंथ में पाँच खण्डों में विभक्त सामग्री के ''पार्श्वनाथ भक्ति वंदना'' नामक प्रथम खण्ड का प्रारंभीकरण पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित पार्श्वनाथ मंगल पाठ से हुआ हैं पुनश्च उन्हीं के द्वारा रचित संस्कृत-हिन्दी स्तुतियाँ हैं। आचार्यश्री कुमुद्रचन्द्र स्वामी विरचित पार्श्वनाथ विषयक कल्याणमंदिर स्तोत्र' तथा अन्य काव्यकृतियाँ भजन आदि हैं।

द्वितीय खण्ड में पार्श्वनाथ जीवन दर्शन हिन्दी-अंग्रेजी में है तथा कतिपय लेखकों के महत्वपूर्ण पार्श्वनाथ संबंधी आलेख हैं। इसे पढ़कर जनमानस में पार्श्वनाथ के सर्वोदयी व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

तृतीय खण्ड में भगवान पार्श्वनाथ के पंचकल्याणक तीर्थों, प्रमुख अतिशय क्षेत्रों एवं कतिपय सातिशय प्रतिमाओं का व्यवस्थित उल्लेख किया गया है। इसे पढ़कर निश्चितरूप से भक्तों को उन तीर्थों के दर्शन करने की इच्छा जागृत होगी और उन तीर्थों का प्रचार-प्रसार भी व्यापक स्तर पर होगा।

''व्रत विधि संग्रह'' नाम चतुर्थखण्ड में पूज्य माताजी ने अत्यंत महत्वपूर्ण सामग्री हमें प्रदान की है। पूर्व भवों में जिन तमाम व्रतों का पालन करके तीर्थंकर भगवान अपनी आत्मा को भगवान परमात्मा बनाने में अग्रसर होते हैं उन व्रतों को हम लोग भी यथाशक्ति ग्रहण करें और परम्परा से आत्मा को बलिष्ठ बनाकर हम भी भगवान बन सकें। इस खण्ड में वर्णित व्रतों को पढ़कर श्रद्धालु नर-नारी अपनी शक्ति अनुसार व्रतों को ग्रहण करें, यही सार्थकता होगी। इन व्रत विधियों एवं मंत्र के पश्चात् इसी खण्ड में उन-उन व्रतों में करने वाली पूजाएं भी दी गई हैं। इसमें अनेक व्रतों के मंत्र पूज्य माताजी ने स्वयं रचकर प्रदान किये हैं। जैसे-जम्बूद्वीप व्रत, तेरहद्वीप व्रत, श्रावक की त्रेपन क्रिया व्रत आदि।

पुनः ''जैनधर्म विवेचन'' नामक पंचम खण्ड में गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के कतिपय विशेष लेख दिये गये हैं। जिनके द्वारा पाठकों को जैनधर्म की शाश्वत सत्ता एवं उनके प्रमुख सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होगा। इन लेखों के पश्चात् इसी खण्ड में बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज, आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज (सम्प्रेरिका के दीक्षागुरु) एवं ग्रंथ की प्रेरणास्रोत श्री ज्ञानमती माताजी के परिचय का आलेख है। इन महान आत्माओं के व्यक्तित्व से आप सभी को दृढ़ता एवं सामाजिक कार्य करने

की अपूर्व क्षमता अपने अन्दर जागृत करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

इन खण्डों की सारगर्भित सामग्री के साथ-साथ ग्रंथ में भगवान पार्श्वनाथ के तीर्थों एवं प्रतिमाओं के अनेकानेक चित्र संकलित किये गये हैं जिन्हे देखकर मूर्तियों की प्राचीनता, सौम्यता, सुन्दरता, शिल्पकला आदि का दिग्दर्शन होता है।

ग्रंथ की यह सम्पूर्ण सामग्री संकलित करने में संघ की समस्त ब्रह्मचारिणी कु. बीना, कु. आस्था, कु. सारिका, कु. चन्द्रिका, कु. इन्दू, कु. स्वाति, कु. अलका एवं कु. प्रीति जैन आदि बहनों ने यथायोग्य सहयोग प्रदान किया है तथा प्रमुखरूप से मैटर का संग्रह और प्रूफ संशोधन में कु. बीना, कु. आस्था और कु. इन्दू बहिन जी का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। इन सभी संघस्थ कुमारिकाओं के लिए ज्ञान-चारित्र की वृद्धि हेतु मंगल आशीर्वाद है।

समस्त साहित्यिक कार्यों की सम्पन्नता में सदैव की भांति अपना निर्देशन एवं कुशल नेतृत्व प्रदान करने वाले पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जी के सहयोग के बिना तो मैं कार्य की पूर्णता स्वीकार नहीं कर सकती हूँ अतः उनकी सतत प्रयत्नशीलता के लिए मंगलकामनापूर्वक आशीर्वाद है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा प्रेरित त्रिवर्षीय भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव समापन के साथ तिखाल वाले बाबा का सहस्राब्दि महोत्सव जुड़वाने वाले उदीयमान कर्मठ व्यक्तित्व क्षुल्लक श्री समर्पणसागर महाराज के लिए भी उनके उज्ज्वल भविष्य की भावना के साथ शुभाशीर्वाद है।

ग्रंथ के प्रबंध सम्पादक युवारत्न जीवन प्रकाश जैन के लिए वात्सल्यपूर्ण आशीर्वाद है कि वे अपनी युवाशक्ति का सदुपयोग इसी प्रकार गुरुआज्ञापालन के साथ धर्मप्रभावना के कार्यों में करते रहें।

अन्त में समता-धैर्य, सहिष्णुता एवं क्षमा की मूर्ति 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के श्रीचरणों में कोटि-कोटि वंदन करते हुए अपनी आत्मा को पवित्र बनाने हेतु शक्ति प्रदान करने की याचना है तथा मुझे बाल्यकाल से अपनी विराट छत्रछाया प्रदान करने वाली समीचीन ज्ञान एवं वैराग्य अमृत से अभिसिंचित करने वाली गुरु पूज्य गणिनीप्रमुख चारित्रचन्द्रिका, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के पावन चरण युगल में शतशः वन्दामिपूर्वक उनके द्वारा बनाई गई योजनानुसार इस ग्रंथ की सामग्री को सम्पादिक करके पाठकों तक पहुँचाने में सफलता प्राप्ति हेतु मंगल आशीर्वाद की अभिलाषा करती हूँ।

10-12-2007 **अहिच्छत्र तीर्थ**

ग्रंथ के प्रति दो शब्द

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

जैनधर्म में तीर्थंकर परम्परा अनादिकालीन है। प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के छह कालचक्रों के चतुर्थकाल में चौबीस तीर्थंकर होते रहे हैं। वर्तमान में भगवान ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। भविष्य में भी अनंतकाल तक यह चौबीस तीर्थंकर परम्परा चलती रहेगी।

तीर्थंकरों से ही धर्म की परम्परा चलती है। उनकी दिव्यध्वनि से ही धर्मतत्वों का बोध भव्य प्राणियों को प्राप्त होता है। तीर्थंकरों की वाणी को गणधर ग्रहण करते हैं। गणधरों से ज्ञान प्राप्त कर आचार्य-मुनिगण उसे चिरकाल तक जनमानस में पहुँचाते हैं। इस प्रकार मोक्षमार्ग प्रवाहित होता रहता है।

वर्तमान में चौबीस तीर्थंकरों की पावन शृँखला में अब से 2884 वर्ष पूर्व इस भारत देश की वाराणसी नगरी में तेईसवें तीर्थंकर के रूप में भगवान पार्श्वनाथ ने जन्म लिया था। प्रत्येक तीर्थंकरों के पूर्व भवों में विभिन्न प्रकार की घटनाएँ घटित हुई हैं। भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व भवों में क्रोध तथा क्षमा का संघर्ष चलता रहा। कमठ का जीव क्रोध करके दुर्गतियों को प्राप्त करता रहा। क्रोध की प्रतिमूर्ति के रूप में भगवान पार्श्वनाथ को 10 भवों तक दुख देता रहा। उसके विपरीत भगवान पार्श्वनाथ ने मरुभूति आदि की पर्यायों में सदैव क्षमा धारण कर अभूतपूर्व आदर्श उपस्थित किया।

भगवान पार्श्वनाथ की जन्मनगरी वाराणसी, केवलज्ञान कल्याणक भूमि अहिच्छत्र तथा निर्वाण भूमि सम्मेदशिखर की महिमा अचिन्त्य है। इन्द्रों तथा असंख्य देव-देवियों ने इन पावन भूमियों पर आकर महोत्सव मनाये। ये कल्याणक भूमियाँ परम पावन हैं। इनके दर्शन, वंदन, पूजन से अनंत कर्मों का क्षय होता है। इनसे सहिष्णुता का, वीतरागता का दिव्य बोध प्राप्त होता है।

विगत लगभग 15 वर्षों से जब पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का ध्यान स्कूलों में पढ़ाई जा रही इतिहास की पुस्तकों पर गया जिसमें कई वर्षों से पढ़ाया जा रहा था कि ''भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक हैं, तेईस तीर्थंकरों के नाम जैनियों ने मन से गढ़ लिये हैं'' इन पंक्तियों को पढ़कर माताजी का मन आंदोलित हो उठा। रात-दिन उधेड़बुन में लग गईं कि कैसे इतिहास में इसका संशोधन कराया जावे। शिक्षा जगत में उन्होंने हलचल मचा दी, भारत सरकार का, उच्च शिक्षाविदों का, इतिहासकारों का, ध्यान आकर्षित कराया। सभी को बाध्य कर दिया इन पंक्तियों को हटाकर सत्य बात लिखने के लिए अतः संशोधन हुआ।

जैनधर्म की प्राचीनता को संसार के सामने प्रस्तुत करने के लिए भगवान ऋषभदेव की जन्मजयंती, ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव मनाने की प्रेरणा देश-विदेश में रहने वाले जैनियों को प्रदान की। भगवान ऋषभदेव की बड़ी-बड़ी प्रतिमाएँ कई तीर्थों पर विराजमान कराईं। भगवान ऋषभदेव की सर्वाधिक उत्तुंग 108 फुट की मूर्ति का निर्माण कार्य मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र (जिला-नासिक, महा.) में द्रुतगति से चल रहा है।

इसी कड़ी में तीन वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ का तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की। देशभर में भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित अनेक प्रकार के आयोजन सम्पन्न हुए। हजारों नगरों में भगवान पार्श्वनाथ की जन्मजयंती पार्श्वनाथ निर्वाणोत्सव मनाने की परम्परा चल पड़ी है। पूज्य माताजी तो हजारों भक्तों को सभी तीर्थंकरों के पांचों कल्याणकों को मनाने की सतत प्रेरणा प्रदान कर रही हैं।

भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव को युगानुयुग तक याद दिलाने के लिए इस अद्वितीय ग्रंथ का निर्माण करने की न केवल प्रेरणा प्रदान की अपितु पूरा प्रारूप तैयार करके दिया। पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के कुशल मार्गदर्शन में एवं सम्पादकत्व में यह सांगोपांग ग्रंथ तैयार हुआ है। सामग्री संकलन में अथक परिश्रम किया गया है। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें देशभर के विभिन्न तीर्थक्षेत्रों पर अतिशयकारी भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित तीर्थों का परिचय तथा प्रतिमाओं के चित्र प्रकाशित किये हैं। सभी श्रमकर्ताओं के लिए साधुवाद।

इस ग्रंथ का अच्छी तरह स्वाध्याय कर प्रत्येक श्रावक खूब पुण्योपार्जन करें, यही हमारी मंगलभावना है। अद्वितीय सूझबूझ की धनी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरणों में शत-शत वंदन।

10 दिसम्बर 2007

शुभेच्छा

–क्षुल्लक समर्पणसागर महाराज

जैनधर्म में चौबीस तीर्थंकरों में तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ क्षमा, सहिष्णुता, दया और धैर्य जैसे महान गुणों के देदीप्यमान सूर्य के रूप में जिनशासन के विस्तृत व्योम पर आलोकित हैं। यूँ तो चौबीसों तीर्थंकर इन सभी गुणों से विभूषित हैं लेकिन भगवान पार्श्वनाथ के दश भवों तक अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि उनके जीवन में कुछ अलग ही विशेषता है। क्षमा और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति भगवान पार्श्वनाथ इसीलिए कहीं अंतरिक्ष पार्श्वनाथ, कही 'नागफणी पार्श्वनाथ', कहीं चंवलेश्वर पार्श्वनाथ आदि अनेक नामों से लोक में सर्वाधिक प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए उन्हें चिंतामणि, विघ्नहर, संकटमोचन आदि नामों से जाना जाता है। वंदनीय हैं वे तीर्थ जहाँ-जहाँ उनके पंचकल्याणक हुए हैं। धन्य है वाराणसी नगरी जहाँ भगवान के गर्भ, जन्म एवं तप कल्याणक हुए, धन्य है उनकी उपसर्ग एवं केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ, जहाँ संबर देव के घोरोपसर्ग को सहनकर वे घातिया कर्मों का नाश कर अरिहंत बने और धन्य है वह सम्मेदशिखर तीर्थ, जहाँ से उन्होंने सिद्ध अवस्था प्राप्त की।

मुझे आज याद आ रहा है मुझे मई 2007 का वह दिवस, जब हरदोई में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के शिष्य कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र जी से चर्चा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पताचला कि पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से ''भगवान पार्श्वनाथ का जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव'' 3 वर्ष तक विविध आयोजनों के माध्यम से मनाया जा रहा है जिसमें प्रथमतः 2005-2006 तक 1 वर्ष जन्मकल्याणक के रूप में मनाकर उनकी जन्मभूमि बनारस का व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया, पुनः 2006-2007 तक का वर्ष निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर वर्ष के रूप में पूरे प्रदेश की जैन समाज द्वारा मनाया जा रहा है और आगामी 2007-2008 का वर्ष भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ के नाम से प्रचारित किया जायेगा। मैंने भाई जी से अपने भाव व्यक्त किए कि तिखाल वाले बाबा का एक हजार वर्ष पूरा होने को है इनका सहस्राब्दि महोत्सव मनाया जाये। भाई जी ने माताजीसे जाकर चर्चा की, तब माताजी के यहाँ से ब्र. बहन जी का फोन आया कि माताजी ने मुझे यहाँ बुलाया है और इस आशय से मुझे माताजी के प्रथम दर्शन का सौभाग्य जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में प्राप्त हुआ, जम्बूद्वीप की अद्वितीय रचना व दर्शन कर एक क्षण को तो मुझे लगा कि मैं स्वर्ग में आ गया, पुनः माताजी के दर्शन कर मैंने पाया कि जितना भीमैंने माताजी के व्यक्तित्व के बारे में सुना था, उससे कहीं ज्यादा महान हैं माताजी। उनका वात्सल्य, उनकी आगमचर्या, उनकी दृढ़ता, उनकी दूरदर्शिता, उनका अपरिमित ज्ञान देखकर मैं अभिभूत हुए बिना नहीं रह सका। अब तक मुझे बहुत सेसाधुओं के दर्शन और सानिध्य का लाभ मिला लेकिन जो बात मैंने माताजी में पाई वैसी किसी में नहीं पाई।

पूज्य माताजी से सहस्राब्दि महोत्सव की जब चर्चा चली तब उन्होंने इसकी रूपरेखाको और वृहद् रूप प्रदान किया और कहा कि तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव की पूर्णता के साथ ही तिखाल वाले बाबाका सहस्राब्दि महोत्सव और मस्तकाभिषेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक भव्यस्तर पर सम्पन्न होगा। पंचकल्याणक की तिथि कीघोषणा होते ही यह महोत्सव 7 दिसम्बर 2007 से 4 जनवरी 2008 तक लगभग 1 माह का बन गया। माताजी की तीव्र इच्छा थी कि तिखाल वाले बाबा के चरण सानिध्य में मैं संघ सहित जाकर इस महोत्सव की सम्पूर्णता प्रदान करूँ, फिर वय था कमजोर शरीर किन्तु मजबूत इरादे और दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ कड़ी सर्दी में भी माताजी के कदम बढ़ चले तिखालवाले बाबा के चरणों में नमन करने के लिए और मात्र 15 दिन के विहार के पश्चात् 30 नवम्बर 2007 को पूज्य माताजी ने संघ सहित तीर्थ पर मंगल पदार्पण किया। अब तो कहीं कोई संशय ही नहीं रह गया कि इस कार्यक्रम की सुगंधि भी पूज्यमाताजी द्वारा कराए गए अन्य कार्यक्रमों की भांति देश-विदेश में फैलेगी और यह तीर्थ भी विश्व के मानस पटल पर छा जाएगा।

मुझे पूज्य माताजी के अहिच्छत्र पदार्पण से जितना आल्हाद हुआ उसका वर्णन मैं शब्दों में करने में असमर्थ हूँ। उनके सानिध्य में मुझे भी अनुभवज्ञान प्राप्त हो रहा है और उनकी प्रत्येक चर्या व दूरदर्शिता को और नजदीकी से साक्षात्कार का अवसर प्राप्त हो रहा है। इस तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव को चिरस्थायी बनाने हेतु पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से ''भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव ग्रंथ'' का भी प्रकाशन किया जा रहा है जो वास्तव में प्रशंसीनय है। माताजी की दृष्टि दूरगामी है वह जो भी करती हैं आगम के आधार से जैनधर्म की यशकीर्ति को विस्तृत करते हुए करती हैं, उनके बारे में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने के सदृश है अतः उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्तकर मैं भी जिनधर्म की महिमा को वृद्धिंगत करते हुए अपनी आत्मा को समुन्नत बनाऊँ, यही शुभेच्छा है।

30-11-2007 **अहिच्छत्र तीर्थ**

प्रबंध सम्पादक की कलम से

–जीवन प्रकाश जैन

भगवान पार्श्वनाथ का संघर्षमयी जीवन भक्तों को अत्यन्त प्रभावित करता है। यदि अध्ययन किया जाये तो यही परिणाम सामने आयेंगे कि भगवान पार्श्वनाथ के जिनमंदिर, उनकी जिनप्रतिमाएँ अन्य तीर्थंकर भगवन्तों की तुलना में कहीं अधिक पायी जाती हैं। भगवान महावीर वर्तमान कालीन शासनपति तीर्थंकर हैं लेकिन जहाँ भगवान महावीर के जियो और जीने दो, अहिंसा परमोधर्मः आदि के अहिंसामयी सिद्धान्त आज जन-जन में पूर्णतः व्याप्त हैं वहीं भगवान पार्श्वनाथ के क्षमा, दया, करुणा, सहिष्णुता, बंधुत्व, मैत्री आदि जैसे सिद्धान्तों की भी समूचे विश्व में अत्यन्त प्रासंगिकता है। भगवान ऋषभदेव से महावीर पर्यंत एक दृष्टि डालें तो जहाँ तक हमें ज्ञात है उस अनुसार भगवान पार्श्वनाथ को केवलज्ञान प्राप्त होने में घोर उपसर्गों का सामना करना पड़ा। यद्यपि हम यह जानते हैं कि भगवान पार्श्वनाथ तो अपनी अंतरात्मा में पूर्ण ध्यानमग्न थे फिर भी यदि व्यवहारिक दृष्टि से देखें तो उन्होंने अपने तप के माध्यम से कमठ द्वारा किये गये अनेक उपसर्गों पर विजय प्राप्त की। इतने अधिक उपसर्गों को सहन के उपरान्त किसी तीर्थंकर आत्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ हो, ऐसा अभी तक मुझे तो किसी अध्ययन के दौरान पढ़ने-जानने को नहीं मिला। 24 तीर्थंकरों में भगवान पार्श्वनाथ ही ऐसे हैं जिन्होंने न सिर्फ अंतिम भव में बैर का सामना किया, बल्कि पूर्व के दस भवों से लगातार अनेक प्रकार के बैर का सामना करके संसार के समक्ष क्षमा का आदर्श रूप प्रस्तुत किया।

भगवान पार्श्वनाथ ने प्रारंभ से लेकर अंत तक अपने द्वारा किये कर्मों के आधार पर अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने का पुरुषार्थ किया। तीर्थंकर प्रकृति का बंध होना कोई सहज बात नहीं है। जब भगवान पार्श्वनाथ मरुभूति आदि अन्य पूर्व की पर्याय में होंगे तब निश्चित ही उनकी स्थिति भी आज के सामान्य नागरिक की तरह रही होगी। लेकिन एक सामान्य नागरिक से लेकर मात्र क्षमाभाव को धारण करते हुए एक दिन मरुभूति जैसा जीव भगवान पार्श्वनाथ भी बन जायेगा, तीर्थंकर पद को प्राप्त कर लेगा, ऐसा कौन सोच सकता था। प्रारंभिक चिंतन में जायें तो हमें भगवान पार्श्वनाथ के दश भवों का अध्ययन करने पर यही ज्ञात होता है कि मरुभूति भी आखिरकार एक साधारण श्रावक की तरह घर-गृहस्थी के आडम्बर और मोह से पूर्ण लिप्त था। प्रथम भव में मरुभूति धर्मनिष्ठ अवश्य होगा लेकिन कितना धर्मनिष्ठ था, धर्म के क्या-क्या, कैसे-कैसे कार्य करता था, इस बात की जानकारी हमें कम मिलती है। बल्कि इसके विपरीत हमें सामान्य जन की तरह मरुभूति के जीवन में मोह के परिणामों की अधिकता अवश्य देखने-जाननेको मिलती है क्योंकि अपने भाई कमठ के साथ उनके मोह के कारण ही जहाँ क्रोधी कमठ को सर्प की योनि में जन्म लेना पड़ा, वहीं मरुभूति को भी हाथी के रूप में तिर्यंच गति प्राप्त हुई। जबकि मरुभूति ने प्रेम और सदाचार तथा कमठ ने क्रोध और दुराचार को अपने जीवन में अंगीकार किया था, उसके बावजूद भी दोनों को तिर्यंचगति मिली। इस सबके बावजूद विशेषता यह देखने को मिलती है मरुभूति का जीव किसी भी भव में क्षमा के भाव से विचलित नहीं हुआ और दशभवों तक लगातार किसी न किसी उपसर्ग को सहन कर अपनी आत्मोन्नति करता गया।

भगवान पार्श्वनाथ के नाम के आगे आज संकटमोचन, विघ्नहरण आदि अनेक विशेषण इसीलिए लगाये जाते हैं कि उन्होंने अनेक संकटों और विघ्नों पर सर्वप्रथम स्वयं विजय प्राप्त की और सिद्धशिला तक जा पहुँचे। यही कारण है कि भगवान पार्श्वनाथ की उपासना करने वाले भक्तों की समस्याएं संकट और कष्टों का निवारण शीघ्र होता है, ऐसी मान्यता आज जन-जन के मन में व्याप्त है।

कष्ट किसके पास नहीं होता हैं? और कष्टों से मुक्ति कौन नहीं पाना चाहता है? वर्तमान स्थिति पंचमकाल की ऐसी ही है कि प्रत्येक प्राणी अपनी भिन्न-भिन्न समस्याओं से परेशान है, ऐसी स्थिति में यदि भगवान पार्श्वनाथ की विघ्नहरण शक्ति की प्रभावना राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर की जाये तो जैनधर्म और

तीर्थंकर भगवन्तों की महिमा से समूचा राष्ट्र परिचित हो सकता है तथा लाभान्वित हो सकता है क्योंकि आज चमत्कार को हर कोई नमस्कार करता है। जहाँ इंसान को अपने भविष्य के बारे में जानने की संभावनाएं दिखती हैं, जहाँ उसे अपने दुःखों के समाधान की संभावनाएं दिखती हैं वहाँ हर कोई मजबूरी अथवा इच्छा से जाना पसंद करता है फिर भले ही वह मिथ्यामार्ग क्यों न हो। ऐसी स्थिति में भगवान पार्श्वनाथ के अतिशय और उनकी विघ्नहरण महिमा को, उनके प्राचीन तीर्थों एवं वहाँ विराजमान अतिशयकारी प्रतिमाओं के महत्व को, उनके गर्भ-जन्म आदि कल्याणक तीर्थों की विशेष महत्ता एवं उन पवित्र भूमियों के उद्धार एवं विकास के प्रति लोगों में चेतना को जागृत करने की आज महती आवश्यकता है। मैं समझता हूँ कि बीसवीं सदी में तीर्थंकर भगवन्तों की प्रभावना करने में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का योगदान अविस्मरणीय एवं आगामी कई पीढ़ियों के लिए महान प्रेरणास्पद रहेगा। तीर्थंकर भगवन्तों के प्रति पूज्य माताजी की भक्ति एक आदर्शरूप में आज हम सबको देखने को मिलती है। पूज्य माताजी ने जैनधर्म की अनादिनिधनता को जन-जन में उजागर करने के लिए, सिद्ध करने के लिए दस वर्षों तक लगातार भगवान ऋषभदेव का राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय स्तर पर प्रचार-प्रसार किया। भगवान ऋषभदेव के द्वारा बतलाये गये षट्कर्मों से देश के सामान्य नागरिक से लेकर देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति आदि सभी शीर्ष नेता एवं उच्च शिक्षाविदों को परिचित कराया। जैनधर्म की प्राचीनता और उसकी अनादिनिधन संस्कृति की बात को हर वर्ग तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। भगवान ऋषभदेव जन्मभूमि अयोध्या का उद्धार एवं विकास करवाया। नूतन जिनमंदिरों एवं धर्मशालाओं का निर्माण कार्य ऐतिहासिक रूप में सम्पन्न हुआ। भगवान ऋषभदेव का राष्ट्रीय स्तर पर महामस्तकाभिषेक करवाया। हजारों साहित्य का प्रकाशन किया गया, जिनसे जैनधर्म की प्राचीनता एवं प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से जन-जन को परिचित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार बहुआयामी उपायों से पूज्य माताजी ने भगवान ऋषभदेव की जोरदार प्रभावना करके समाज में व्याप्त उन भ्रान्त धारणाओं का भी पूर्ण निवारण किया, जिनके द्वारा भगवान महावीर को जैनधर्म का संस्थापक कहा जा रहा था। जैनधर्म के 24 तीर्थंकर होते हैं और उनमें प्रथम भगवान ऋषभदेव हैं इस बात का हजारों वर्षों के लिए स्थाई प्रमाण रहे और कोई भी हमारी जैन संस्कृति की अनादिनिधनता पर कभी प्रश्नचिन्ह न लगा सके, इस उद्देश्य को लेकर सर्वप्रथम पूज्य माताजी ने भगवान ऋषभदेव दीक्षाकल्याणक भूमि अति प्राचीन तीर्थ प्रयाग (इलाहाबाद) में विशाल तीर्थ का निर्माण करवाकर जैन समाज को अपनी प्राचीन धरोहर का संरक्षण करने में अनमोल उपहार दिया है। इसी के साथ पूज्य माताजी की ही प्रेरणा से वर्तमान में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र के पहाड़ पर 108 फुट ऊँची भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा का निर्माण कार्य चल रहा है।

ऐसे ही समुद्र के समान विस्तार चिन्तन रखने वाली पूज्य माताजी ने समय-समय पर अनेक तीर्थंकर भगवन्तों का प्रचार-प्रसार किया, उनकी जन्मभूमियों एवं कल्याणकभूमियों का विकास करवाया। भगवान शांति-कुंथु-अरहनाथ की जन्मभूमि हस्तिनापुर का निर्माण आज देश ही नहीं विदेश में भी अपनी अद्वितीय आध्यात्मिक आभा से जन-मानस को आकर्षित करता है। वहाँ निर्मित जम्बूद्वीप रचना, तेरहद्वीप रचना, कमलमंदिर, ध्यान मंदिर, ॐ मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर आदि अनेक कृतियाँ विश्व की पहली और अनूठी कृतियाँ हैं, जिनके दर्शन करने से भगवान शांतिनाथ के समय में हस्तिनापुर का जो वैभव हुआ था, उस दृश्य की एक झलक तो अवश्य ही भक्तों को एहसास करने को मिल ही जाती है। इसी प्रकार वर्तमानकालीन शासनपति भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) का विकास और वहाँ भी पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित विश्व की प्रथम कृति के रूप में भगवान का जन्म महल 'नंद्यावर्त महल' भक्तों को अत्यन्त मोहित करता है। आज हम इस योग्य नहीं कि भगवान का जन्म जिस महल में हुआ होगा अथवा जिस स्थान पर हुआ होगा उसके वैभव, उसकी रौनक और उसकी चमक को जान सकें, लेकिन पूज्य माताजी

का चिंतन कुछ इतना अद्वितीय है कि जिसके आधार पर ऐसी-ऐसी नूतन कृतियों का निर्माण हुआ है, जिनका निर्माण होना शायद ही कभी कोई सोच सकता था। महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में निर्मित उस नंद्यावर्त महल को देखकर जैन समाज ही नहीं अपितु नालंदा विश्वविद्यालय के अवशेषों को देखने के लिए आने वाले विदेशों के पर्यटकगण भी आज जैनधर्म से, भगवान महावीर की देशना से, उनके हिंसामयी सिद्धान्तों से एवं उनके जीवन दर्शन से परिचित होने का एक अवसर अवश्य प्राप्त करते हैं। इस प्रकार समय-समय पर पूज्य माताजी ने तीर्थंकर भगवन्तों का एवं उनके उपदेशों का देशव्यापी प्रचार-प्रसार किया है, उसकी तुलना हम इस सदी में किये गये सर्वोत्तम प्रयासों में कर सकते हैं। वर्तमान में पूज्य माताजी की प्रेरणा से नवमें तीर्थंकर भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी (देवरिया, निकट-गोरखपुर) उ.प्र. का विकास कार्य तेजी के साथ चल रहा है, जहाँ शीघ्र ही नूतन जिनमंदिर का निर्माण होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न होगी। तीर्थ पर सुन्दर भावभंगिमा से युक्त 9 फुट उत्तुंग भगवान पुष्पदंतनाथ की विशाल पद्मासन प्रतिमा विराजमान हो चुकी है।

भगवन्तों की महिमा और उनके सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार करने की श्रृँखला में सन् 2004 में ही पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ के क्षमा, सहिष्णुता, दया, मैत्री जैसे सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने की मन में ठानी और भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में दिसम्बर 2004 में आयोजित होने वाले भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का संकल्प दीप प्रज्ज्वलन कराकर भगवान पार्श्वनाथ का जयघोष कर दिया। पुनः वह दिन भी आ गया, जब पूज्य माताजी भगवान पार्श्वनाथ की गर्भ, जन्म एवं दीक्षाकल्याणक भूमि भेलूपुर (वाराणसी) में संघ सहित पधार गईं और 6 जनवरी 2005 को भगवान पार्श्वनाथ के 2881वें जन्मजयंती महोत्सव पर भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का देश व्यापी उद्घाटन हुआ। चूँकि भगवान पार्श्वनाथ के जीवन को, उनके सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाने का उद्देश्य पूज्य माताजी के मन में बसा हुआ था, अतः जैन समाज के भक्तजनों को समूचे देश से आमंत्रित किया ही गया साथ में प्रदेश के राजनेतागणों में उत्तरप्रदेश सरकार के लोक निर्माण मंत्री श्री शिवपाल सिंह यादव तथा उच्च शिक्षाविदों में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति को आमंत्रित कर भगवान पार्श्वनाथ का शंखनाद किया गया। हजारों हजार भक्तों की उपस्थिति में सम्पन्न महोत्सव के उद्घाटन के बाद पुनः आगामी कार्यक्रम में टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र. में माननीय श्री मुलायम सिंह जी यादव (तत्कालीन मुख्यमंत्री-उत्तरप्रदेश), तत्कालीन विधानसभा अध्यक्ष-माननीय श्री माताप्रसाद पाण्डे जी आदि अनेक नेताओं ने पधारकर भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलन किया। जैन श्रद्धालु भक्तों के साथ देश के शीर्ष राजनीतिज्ञों को आमंत्रित करने का उद्देश्य पूज्य माताजी के मन में यही रहता है कि जैनधर्म एवं तीर्थंकर भगवन्तों की प्रभावना न सिर्फ जैन समाज के श्रद्धालु भक्तों तक सीमित रहे अपितु देश के कर्णधारों तक अवश्य पहुँचे, जिससे कि वक्त पर जैनधर्म की प्राचीनता, उसकी अनादिनिधन तीर्थंकर परम्परा एवं तीर्थंकर भगवन्तों के उपदेश उन्हें एवं उनके माध्यम से देश की प्रजा को भी लाभान्वित कर सकें।

इस प्रकार भगवान पार्श्वनाथ का जयघोष पिछले 3 वर्षों से लगातार देश के विभिन्न प्रान्तों में अनेकानेक उत्सव-महोत्सवों के माध्यम से होता रहा। इन 3 वर्षों में भगवान पार्श्वनाथ की निर्वाणभूमि शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर का भी वर्ष घोषित किया गया और उस महान तीर्थ के संरक्षण, संवर्धन और विकास के प्रति जनमानस में जागरूकता लाने का प्रयास किया गया। इस प्रकार 3 वर्षों के पश्चात् पुनः पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र में हमें ऐसा अवसर प्राप्त हुआ, जब तीर्थ पर विराजमान तिखाल वाले बाबा भगवान पार्श्वनाथ का 1008 कलशों से महामस्तकाभिषेक महोत्सव करके उपरोक्त जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का समापन किया जा रहा है। संयोग से यह अवसर भी

ऐसा अद्वितीय मिला है, जब तिखाल वाले बाबा भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के 1000 वर्षों की पूर्णता का कार्यक्रम आयोजित किया गया है। यह महोत्सव दिनाँक 7 दिसम्बर 2007 से 4 जनवरी 2008 तक वृहत् रूप में आयोजित किया गया है, जिसमें 16 दिसम्बर 2007 को भगवान पार्श्वनाथ का प्रथम सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हो रहा है और भगवान पार्श्वनाथ के 2884वें जन्मजयंती – 3 जनवरी 2008 को जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का समापन होगा।

महोत्सव समापन के इन क्षणों को भी पूज्य माताजी ने अपनी अद्वितीय प्रेरणा से अविस्मरणीय बना दिया है। क्योंकि भगवान पार्श्वनाथ के श्रीचरणों में अपनी विनयांजलि अर्पित करने हेतु पूज्य माताजी ने इस महान ग्रंथ के निर्माण की योजना बीज रूप में हमें प्रदान की। उनकी अद्भुत ज्ञानगरिमा के आधार पर इस ग्रंथ का निर्माण विभिन्न आयामों में विभिन्न विषयों से समन्वित पाँच खण्ड में किया गया। इस ग्रंथ में दी गई सम्पूर्ण जानकारी को प्राचीन जैन आगम के आधार पर एवं विभिन्न साहित्यिक स्रोतों से विश्वसनीय रूप में प्रकाशित करने का पूरा-पूरा प्रयास किया गया है। हम पूज्य माताजी के अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने जैन संस्कृति के संरक्षण में जैन समाज को यह ग्रंथ अमूल्य निधि के रूप में भेंट किया है। यद्यपि इस ग्रंथ के माध्यम से पूज्य माताजी ने तो भगवान पार्श्वनाथ के प्रति अपनी भावनाओं को भगवान के श्रीचरणों में समर्पित किया लेकिन परोक्षरूप में समाज के लिए यह एक बहुत बड़ा योगदान है, जो आने वाली अनेक पीढ़ियों को इस सहस्राब्दि महामहोत्सव की वर्षों तक याद दिलाता रहेगा और समाज को ऐसे महान आयोजन करने की प्रेरणा भी प्रदान करता रहेगा। भगवान पार्श्वनाथ के श्रीचरणों में सादर शीश नमाते हुए हम पूज्य माताजी एवं ग्रंथ की प्रधान सम्पादिका पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के चरणों में नमन करते हैं और ऐसा विश्वास करते हैं कि यह ग्रंथ सम्पूर्ण श्रावक भक्त जैन समाज को नई-नई जानकारी प्रदान करेगा और धर्म विज्ञान की अनूठी बातों से अत्यन्त लाभान्वित करेगा। इस महान ग्रंथ के प्रकाशन हेतु मुझे कार्य प्रबंधन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिसके लिए मैं ग्रंथ निर्माण की रूपरेखा प्रदात्री एवं सम्प्रेरिका पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी एवं प्रधान सम्पादिका पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का अत्यन्त आभारी हूँ।

जिनसंस्कृति सदा अमर रहे, इन्हीं भावनाओं के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।



एक अद्वितीय जैन केन्द्र

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

-कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन (अध्यक्ष)

संक्षिप्त परिचय :

पिछले तीन दशकों में राजधानी दिल्ली की उत्तर दिशा में उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ **हस्तिनापुर** में एक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आकर्षण का केन्द्र उभर कर आया है। 200 फुट के व्यास में सफेद और रंगीन पत्थरों से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय वृत्ताकार रचना **'जम्बूद्वीप'** द्वारा अपने आधार पर वेष्टित हल्के गुलाबी संगमरमर से निर्मित 101 फुट ऊँचे **सुमेरु पर्वत** की शोभा आज किसके मन को आकर्षित नहीं करती है?

प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिकों के लिए शोध केन्द्र, आध्यात्मिक उन्नयन के लिए पवित्र स्थान, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन-भक्ति के सम्पूर्ण साधनों तथा समस्त आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सहित इस अनुपम तीर्थ की जनक संस्था का नाम है-**दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (रजि.)।** जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से 1972 में इस संस्थान का सूत्रपात किया गया। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कास्मोग्राफिक रिसर्च **(Digambar Jain Institute of Cosmographic Research)** के नाम से प्रसिद्ध इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य था-जम्बूद्वीप का निर्माण और यह जम्बूद्वीप ही अंततः संस्थान का मुख्य कार्यालय बन गया।

जंबूद्वीप की 30 एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं/रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

1. जंबूद्वीप रचना-जिनेन्द्र भगवान की 207 प्रतिमाओं से पावन भारतीय शिल्प और जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण, आधुनिक आकर्षणों-बिजली के फौव्वारे, नौका-विहार इत्यादि सहित।

2. कमल मंदिर-भगवान महावीर की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान हैं।

3. ध्यान मंदिर-24 तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं सहित **'ह्रीं'** रचना इस मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' (Meditation) करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।

4. त्रिमूर्ति मंदिर-भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली की खड्गासन प्रतिमाओं से इस मंदिर का नाम सार्थक है। कमल पर विराजमान भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ से इस मंदिर की शोभा द्विगुणित हो गयी है।

5. वासुपूज्य मंदिर-इस मंदिर में 12वें तीर्थंकर-वासुपूज्य स्वामी की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं

6. शांति-कुंथु-अरहनाथ मंदिर-जिन भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकों से हस्तिनापुर की भूमि परम-पावन हुई है, उन शांति-कुंथु और अरहनाथ भगवंतों की खड्गासन प्रतिमाएं इस मंदिर में विराजमान हैं।

7. ॐ मंदिर-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित **ॐ** (ओम) रचना इस मंदिर में विराजित है।

8. विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर-इस मंदिर में विदेह क्षेत्र के विद्यमान 20 तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।

9. सहस्रकूट मंदिर-जिनेन्द्र भगवान की 1008 प्रतिमाओं सहित।

10. भगवान ऋषभदेव मंदिर-धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य जिन प्रतिमाओं सहित।

11. भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ-'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' में निर्मित, भगवान के जीवन चरित्र को प्रदर्शित करने वाला, 8 प्रतिमाओं से समन्वित 31 फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ।

12. तेरहद्वीप जिनालय-इस मंदिर के अंदर मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरु पर्वतों के साथ-साथ कुल 2127 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

13. अष्टापद दिगम्बर जैन मंदिर-इस मंदिर के अंदर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद-कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है। कैलाशपर्वत का ही दूसरा नाम अष्टापद है। 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा इस प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर इसका उद्घाटन किया गया।

14. जम्बूद्वीप पुस्तकालय-प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग 15000 ग्रंथों एवं पुस्तकों के संग्रह सहित।

15. जम्बूद्वीप औषधालय

16. ज्ञानमती कला मंदिरम्-हस्तिनापुर के पौराणिक इतिहास को प्रदर्शित करने वाली झांकियों सहित।

17. वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला-1972 में संस्थापित इस ग्रंथमाला द्वारा अब तक लाखों की संख्या में 200 से अधिक ग्रंथों एवं पुस्तकों के संस्करणों का प्रकाशन हो चुका है।

18. सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका-यह पत्रिका सन् 1974 से लगातार प्रकाशित हो रही है, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन एक स्थान पर प्राप्त होता है।

19. राजा श्रेयांस भोजनशाला-आने वाले दर्शनार्थियों को प्रतिदिन शुद्ध (जैनचर्या के अनुरूप) भोजन उपलब्ध कराने वाला यह दिगम्बर जैन समाज का प्रथम भोजनालय है, जहाँ एक साथ 500 लोग बैठकर भोजन कर सकते हैं।

20. धर्मशालाएं-200 से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि, जिनमें ठहरने संबंधी सभी आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध हैं।

21. मनोरंजन के साधन-तरह-तरह के झूले, बच्चों की रेल, नौका विहार, फौव्वारे, हरे-भरे लॉन, पूरे कैम्पस में घूमने के लिए ऐरावत हाथी (मोटर से संचालित), बिजली की आकर्षक व्यवस्था, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य इत्यादि बरबस ही दर्शनार्थियों को इस भव्य रचना की तुलना 'स्वर्ग' से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

अक्टूबर 1981-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार'**।

31 अक्टूबर 1982-फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में **'जम्बूद्वीप सेमिनार'** जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

अप्रैल 1985-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान'** विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, जिसका उद्घाटन उ.प्र. के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जून 1982 से अप्रैल 1985-लालकिला मैदान, दिल्ली से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा 4 जून, 1982 को पूरे देश में भ्रमण करने हेतु **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति'** रथ का उद्घाटन किया गया। जनसाधारण में अहिंसा, चारित्र-निर्माण तथा विश्व बन्धुत्व के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए 1045 दिन तक देश भर में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति तत्कालीन रक्षामंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव (भूतपूर्व प्रधानमंत्री) द्वारा जम्बूद्वीप के मुख्य द्वार के समक्ष सदैव के लिए स्थापित कर दी गई।

1992-'अंतर्राज्यीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी' का जंबूद्वीप स्थल पर श्री नेमीचंद जैन, विधायक (मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया।

'जैन गणित' एवं **'चारित्र निर्माण'** आदि विषयों पर हुई संगोष्ठियाँ **मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में** आयोजित की गईं।

1993-अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में **'भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव'** विषय पर संगोष्ठी।

अक्टूबर 1995-मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में पंचदिवसीय **'गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी-95'**।

मार्च-अप्रैल 1998-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 9 अप्रैल 1998 को तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से देश भर में भ्रमण करने हेतु **'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ'** का उद्घाटन। 3 वर्ष तक देशभर में तीर्थंकर भगवन्तों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् यह समवसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद) में स्थापित कर दिया गया।

अक्टूबर 1998-जम्बूद्वीप स्थल पर **'राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन'**, जिसका उद्घाटन किया गया-स्वर्गीय श्री राजेश पायलट (तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा)।

फरवरी 2000-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 4 फरवरी 2000 को लाल क़िला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले **'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष'** का उद्घाटन किया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर 1008 संगोष्ठियों की शृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये ।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि विदेश की भूमियों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम से 4 फरवरी 2000 को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

जून 2000-जम्बूद्वीप स्थल पर 11 जून 2000 को **'जैनधर्म की प्राचीनता'** विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया।

फरवरी 2001-भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में **'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ'** का नवनिर्माण। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी-कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप 51 फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की भव्य रचना पर भगवान ऋषभदेव की 14 फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप 72 जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित है। 4 से 8 फरवरी 2001 तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं 1008 महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम।

सन् 2003-2004-भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में **'नंद्यावर्त महल तीर्थ'** का निर्माण। भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंद्यावर्त महल (भगवान महावीर का जन्म महल) एवं उसमें स्थापित भगवान शांतिनाथ जिनालय इस तीर्थ के मुख्य आकर्षण हैं। महावीर की जन्मभूमि के प्रचार-प्रसार हेतु **भगवान महावीर ज्योति रथ** सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तन कर चुका है।

भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव-6 जनवरी 2005 को जन्मभूमि वाराणसी से इसका भव्य उद्घाटन होकर पूरे एक वर्ष तक (27 दिसम्बर 2005 तक) इसे विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

पुनः सन् 2006 में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि ''सम्मेदशिखर वर्ष'' घोषित किया तथा आगामी दिसम्बर 2007 में केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित हो रहा है।

इस संस्थान के द्वारा समय-समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के अद्भुत कार्यकलाप की श्रेणी में है-**णमोकार महामंत्र बैंक,** जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालु भक्तों द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं, तुमकूर (कर्नाटक) से एक करोड़ मंत्र एवं उदयपुर (राज.) से एक करोड़ मंत्र सन् 2006 में इस बैंक में जमा हुए अतः उन्हें विशेष रूप से सम्मानित किया गया। करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार-सन् 1995 से प्रत्येक पाँच वर्ष में यह पुरस्कार जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग हेतु किसी भी जैन विद्वान या समर्पित कार्यकर्ता को 1,00,000/-(एक लाख) रुपये की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता है। अप्रैल 2006 में ''गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'' के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया है।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार-सन् 1999 में स्थापित 11,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप पुरस्कार-सन् 2000 में स्थापित 25,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार-सन् 2003 में स्थापित 11,000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

कुण्डलपुर पुरस्कार-सन् 2004 में स्थापित 25,000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

नंद्यावर्त पुरस्कार-सन् 2004 से प्रारंभ 25000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष' के अवसर पर घोषित 2,50,000/- रुपये की नगद राशि का **'भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड'** एवं 11,000/-रुपये की नगद राशि का **'ब्राह्मी पुरस्कार'** भी संस्थान द्वारा प्रदान किया गया। भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड सन् 2003 में 'कुण्डलपुर महोत्सव' के अवसर पर तत्कालीन सांसद एवं पूर्व वित्त राज्य मंत्री श्री वी.धनंजय कुमार जैन को भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में प्रदान किया गया।

इलाहाबाद-उ.प्र. में
तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ का निर्माण

सन् 2001 में संस्थान के अन्तर्गत भगवान ऋषभदेव दीक्षा एवं केवलज्ञानकल्याणक भूमि प्रयाग (उ.प्र.) में इस तीर्थ का निर्माण इलाहाबाद-बनारस हाइवे पर किया गया है। इस तीर्थ परिसर में ''ऋषभदेव दीक्षाकल्याणक तपोवन'' एवं समवसरण रचना मंदिर के साथ-साथ भगवान की निर्वाणभूमि के प्रतीक में विशाल कैलाशपर्वत का भी निर्माण हुआ। इसमें 72 चैत्यालय हैं तथा पर्वत के नीचे गुफा मंदिर में भगवान ऋषभदेव की अतिशयकारी धातु प्रतिमा (सवा तीन फुट पद्मासन) विराजमान है। पर्वत के ईशान कोण में

निर्मित 31 फुट ऊँचे कीर्तिस्तंभ में ऋषभदेव-महावीर स्वामी की 8 प्रतिमाएँ हैं। क्षेत्र पर यात्रियों के आवास-भोजन आदि की सम्पूर्ण आधुनिक व्यवस्था उपलब्ध है। इस तीर्थ का संचालन संस्थान के अंतर्गत गठित उपसमिति के द्वारा किया जा रहा है।

महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर तीर्थ का विकास

भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) का विकास करने हेतु संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर दिगम्बर जैन समिति नाम से एक उपसमिति बनाई गई, जिसके माध्यम से वहाँ 'नंद्यावर्त महल' तीर्थ परिसर का निर्माण किया गया। वहाँ नंद्यावर्त महल तीर्थ परिसर में भगवान शांतिनाथ चैत्यालय के अतिरिक्त विश्वशांति महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति मंदिर तथा तीन मंजिल का त्रिकाल चौबीसी मंदिर है। वहाँ यात्रियों के लिए आधुनिक सुविधायुक्त आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था है।

उपरोक्त सभी निर्माण योजनाएं, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक कार्यक्रम **पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी** की पावन प्रेरणा से उनके ससंघ सानिध्य में इस संस्थान द्वारा आयोजित किये गये हैं। संघस्थ **प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी** का मार्गदर्शन एवं **पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज** का निर्देशन इन समस्त कार्यों में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी विभिन्न समर्पित कार्य योजनाओं द्वारा समाज की सेवा में प्रतिक्षण संलग्न है।

मानसिक शांति, आध्यात्मिक विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अन्य अनेक लाभ एक साथ प्राप्त करने हेतु यह संस्थान जंबूद्वीप दर्शन के लिए आपको सादर आमंत्रित करता है।



आभार

भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव के समापन अवसर पर प्रकाशित इस ग्रंथ के प्रकाशन में **श्री प्रेमसुखदास रमेश कुमार जैन सरावगी परिवार, हावड़ा (प. बंगाल)** ने अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग करते हुए ज्ञानदानस्वरूप सहयोग प्रदान किया, एतदर्थ संस्थान की ओर से हम उनके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

वे आगे भी इसी प्रकार धर्मकार्य में अपने तन-मन-धन का सदुपयोग करते हुए अपने मनुष्य जीवन को सफल करें, यही जिनेन्द्र प्रभु से मंगल कामना है।

—सम्पादक

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् 1974 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर आपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारीबावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी 19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली

परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

संरक्षक

1. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द्र गाँधी केसुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
8. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द, मेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका, देहरादून (उ.प्र.)।
28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।

40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना, रांची (बिहार)।
47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ला
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट्जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।

80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी)राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)



भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव समिति-2005

संरक्षक

वीरेन्द्र हेगड़े, कर्नाटक
जे.के. जैन, दिल्ली (पूर्व सांसद)
साहू इंदू जैन, नई दिल्ली
एन.के. सेठी, जयपुर
निर्मल कुमार जी सेठी, नई दिल्ली
प्रदीप कासलीवाल, इंदौर
अशोक बड़जात्या, इंदौर
आर.के. जैन, मुम्बई
डी.ए. पाटिल, जयसिंहपुर (महा.)
डॉ. महेन्द्र कुमार पांड्या, मुम्बई
अशोक पाटनी, मदनगंज-किशनगढ़

गौरव अध्यक्ष

वी. धनंजय कुमार जैन, बैंगलोर
(पूर्व वित्तराज्य मंत्री-भारत सरकार)

अध्यक्ष

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन, हस्तिनापुर

परामर्श अध्यक्ष

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन,फिरोजाबाद

मुख्य संयोजक

कैलाशचंद जैन सर्राफ, लखनऊ

स्वागताध्यक्ष

रिसबदास जैन, वाराणसी

उपाध्यक्ष

महावीर प्रसाद जैन, संघपति, दिल्ली
कमलचंद जैन, खारीबावली, दिल्ली
अजय कुमार जैन, आरा
डॉ. शेखरचंद जैन, अहमदाबाद

महामंत्री

दीपक जैन, वाराणसी
कैलाशचंद जैन, करोलबाग, दिल्ली
अनिल कुमार जैन, प्रीतविहार, दिल्ली
डॉ. अनुपम जैन, इंदौर

कोषाध्यक्ष

प्रेमचंद जैन, खारीबावली, दिल्ली

शासन संपर्क मंत्री

कैलाशचंद जैन चौधरी, सनावद

उद्घाटन समारोह मंत्री

अरुण जैन, वाराणसी

प्रचार मंत्री

ब्र. (कु.) स्वाति जैन (संघस्थ)

दिल्ली

जिनेन्द्र प्रसाद जैन ठेकेदार
राजकुमार जैन, वीरा बिल्डर्स
सतेन्द्र कुमार जैन, प्रीतविहार
श्रीपाल जैन (मोटर वाले)
आशा जैन, दरीबाकलाँ
पवन जैन आनंद जैन
एम.के. जैन (महासमिति)
कलीराम जैन, मॉडल टाउन
विजेन्द्र जैन, भोलानाथ नगर
विजय जैन, दरियागंज
प्रो. टीकमचंद जैन, नवीन शाहदरा
श्रीपाल जैन, शालीमार बाग
आनन्द प्रकाश जैन, गाँधी नगर
इंजी गुणसागर जैन, गांधीनगर
सुशील कुमार जैन, अशोक विहार
हंसराज जैन, प्रियदर्शनी विहार
मुकेश कुमार जैन, बंगाली मार्केट

पश्चिमी उत्तरप्रदेश

प्रेमचंद जैन (तेल वाले), मेरठ
जवाहरलाल जैन, सिकन्दराबाद
राजेश जैन, मुजफ्फरनगर
मनोज कुमार जैन, मेरठ
राकेश कुमार जैन, मेरठ
सुनील कुमार जैन सर्राफ, सदर मेरठ
पं. धनराज जैन, अमीनगरसराय

आगरा मण्डल (उ.प्र.)

स्वरूपचंद जी जैन मार्शन्स, आगरा
पं. शिवचरणलाल जैन, मैनपुरी
शिखरचंद जैन, आगरा
सुरेशचंद जैन बारोलिया, आगरा
महेन्द्र कुमार रतरिया, करहल

बिहार प्रदेश

कन्हैयालाल सेठी, औरंगाबाद
ज्ञानचंद जैन, आरा
कमल कुमार जैन, आरा
चिरंजीलाल कासलीवाल, पटना

पूर्वी उत्तरप्रदेश

डा. प्रेमचंद जैन, इलाहाबाद
नेमकुमार जैन, गणेशपुर
प्रदीप कुमार जैन, वाराणसी
जयकिशन जैन, वाराणसी
चंद्रभान जैन, वाराणसी
सरोज कुमार जैन, तह. फतेहपुर
इंजी. आर.के. जैन, इलाहाबाद
साधना जैन, इलाहाबाद
डॉ. सुदर्शन लाल जैन, वाराणसी
विजय कुमार जैन, कानपुर
प्रदीप कुमार जैन, लखनऊ
सिद्धार्थ जैन, लखनऊ

झारखंड प्रदेश

महावीर प्रसाद सेठी, सरिया
सुरेशचंद झांझरी, झुमरीतलैया

पं. बंगाल

राजकुमार सेठी, कलकत्ता
भागचंद पहाड़िया, कलकत्ता
अजित पाटनी, कलकत्ता
अजित कुमार जैन अजमेरा, धुलियान

पूर्वांचल

हुकमीचंद पांड्या, गोहाटी
पन्नालाल सेठी, डीमापुर

गुजरात

सौभाग्यमल कटारिया, अहमदाबाद
ओमप्रकाश जैन, सूरत
बाबूलाल गांधी, तलोद वाले, सूरत
विनोद हर्ष, अहमदाबाद

राजस्थान

ज्ञानचंद झांझरी, जयपुर
महावीर मिण्डा, उदयपुर
ब्र. कमलाबाई जी, श्री महावीर जी
उत्तमचंद निर्खी, कोटा
उदयभान जैन, भरतपुर
दिलीप जैन, जयपुर
शांतीलाल पारलिया, सलुम्बर

महाराष्ट्र

डा. पन्नालाल पापड़ीवाल, पैठण
सी.आर.पाटिल, पुणे (महा.)
कस्तूरचंद बड़जाते, औरंगाबाद
डॉ. आर.एल. पहाड़े
भूषण कासलीवाल, चांदवड़
राजाभाऊ पाटनी, नासिक
प्रमोद कुमार कासलीवाल, औरंगाबाद
ब्र. विद्युल्लता जी शहा, सोलापुर

मध्यप्रदेश-बुंदेलखण्ड

डालचंद जैन, सागर
सुरेश जैन मारोरा, शिवपुरी

मध्यप्रदेश-मालवा

माणिकचंद पाटनी, इंदौर
सुमन जैन, इंदौर
प्रकाशचंद जैन सर्राफ, सनावद
डा. देवेन्द्र कुमार शाह, भोपाल

आंध्रप्रदेश

बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद
प्रदीप जयचंद जी लोहाड़े, हैदराबाद

मुम्बई

शिखरचंद पहाड़िया, मुम्बई
अरविंद आर. दोशी, मुम्बई
ज्ञानचंद जैन मिंडा, मुम्बई
सरदार चंदूलाल शहा, मुम्बई
भरतकुमार काला, मुम्बई
लक्ष्मी देवी जैन, मुम्बई

हरियाणा

सतेन्द्र जैन, जगाधरी
देवेन्द्र कुमार जैन, गुड़गाँवा

तमिलनाडु

कंवरीलाल बड़जात्या, मद्रास

कर्नाटक

सुरेन्द्र हेगड़े, बेंगलोर

श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव कार्यकारिणी समिति-2007

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड–भगवान पार्श्वनाथ भक्ति वंदना

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	श्री पार्श्वनाथ मंगल पाठ	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	1
2.	उपसर्गविजयि श्रीपार्श्वनाथ जिनस्तुतिः	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	2
3.	भजन (धरती का तुम्हें नमन है.....)	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	4
4.	भगवान पार्श्वनाथ वंदना	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	5
5.	श्री पार्श्व जिन स्तुति	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	6
6.	भजन (जिनवरों में जिनवर हैं प्यारे.....)		7
7.	कल्याण मंदिर स्तोत्र (पार्श्वनाथ जिन स्तोत्र)	–आचार्य श्री कुमुदचंद स्वामी	8
8.	भजन (नाम तिहारा तारन हारा)		27
9.	श्री पार्श्वनाथ चालीसा	–कवि चन्द्र जैन	28
10.	भजन (आया है आया पार्श्वनाथ का महोत्सव)	– प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	29
11.	भगवान पार्श्वनाथ दशभव की काव्यकथा	– प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	30
12.	क्षमा के अवतार भगवान पार्श्वनाथ	–ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)	41
13.	श्री सम्मेदशिखर वंदना	– गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	45
14.	भजन (प्रभु पार्श्वनाथ के सुमिरन से....)	–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)	49
15.	भजन (चलो वाराणसी चलना है.....)		50
16.	विघनहरण भगवान पार्श्वनाथ	–लेखक-श्री प्रदीप कुमार जैन (बहराइच) उ.प्र.	51
17.	भजन (अहिच्छत्र की धरती....)		55
18.	भजन (भारत के जैनी वीरो....)		56
19.	भजन (शाश्वत है तीरथ मेरा....)		56
20.	श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ चरित्र	–पं. लालचंद्र जैन 'राकेश', गंजबासौदा	57
21.	सम्मेदशिखर टोंक वन्दना	–आर्यिका चन्दनामती	61
22.	भजन (बार-बार तोहे शीश नवाऊँ....)	–ब्र.कु.आस्था जैन (संघस्थ)	62
23.	तीर्थंकर जन्मभूमि वंदना (मंगलचतुर्विंशतिका)	– गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	63
24.	णमोकार चालीसा	– प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	64
25.	सम्मेदशिखर चालीसा	– प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	66
26.	कालसर्प योग निवारक चिन्तामणि भगवान श्री पार्श्वनाथ पूजा	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	68
27.	भगवान पार्श्वनाथ जन्मभूमि वाराणसी तीर्थ पूजा	– प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	73
28.	श्री पार्श्व प्रभु निर्वाण दिवस	–डॉ. विमला जैन 'विमल', फिरोजाबाद	77
29.	श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ पूजन	– आशुकवि कल्याण कुमार जैन 'शशि'	78
30.	भजन (अहिच्छत्र जी तीरथ का.....)		82

31. केतुग्रहारिष्ट निवारक श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र पूजा	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	83
32. सम्मेदशिखर पूजन विधान	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	87
33. श्री पद्मावती पूजा		97
34. तीर्थंकर जन्मभूमि यात्रा भजन	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	100
35. मोक्षसप्तमी पर्व (नृत्य नाटिका)		101
36. भजन (अहिच्छत्र के पार्श्वनाथ का..)		102
37. आरति श्री पार्श्वनाथ भगवान की	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	103
38. आरति श्री पार्श्वनाथ भगवान की	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	104
39. भजन (श्री पार्श्व स्वामी जी प्रभुवर..)	–श्रीमती प्रीति जैन, वाराणसी	104
40. अहिच्छत्र पार्श्वनाथ की आरती	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	105
41. आरति श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	106
42. श्री पार्श्वनाथ स्तुति	–प्रदीप कुमार जैन, बहराइच	107
43. भजन (चलो महोत्सव आया है....)		108
44. भजन (श्री पार्श्वनाथ प्रभु का....)		108

द्वितीय खंड-भगवान पार्श्वनाथ का जीवन दर्शन

1.	भगवान पार्श्वनाथ के दशभव	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	1
2.	भगवान पार्श्वनाथ का सचित्र जीवन (हिन्दी-अंग्रेजी भाषा में)	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी	26
3.	भगवान पार्श्वनाथ प्रश्नोत्तरी	–क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज	38
4.	भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानकल्याणक भूमि	–पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी	59
5.	भारतीय वाङ्मय में पार्श्वनाथ विषयक साहित्य	–डॉ. जयकुमार जैन, मुज्जफ्फरनगर	61
6.	भट्टारक सकलकीर्ति और उनका पार्श्वनाथचरितम्	–डॉ. कमलेशकुमार जैन	79
7.	आचार्य जिनसेन (द्वितीय) और उनका 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य	–विद्यावाचस्पति डॉ. श्रीरंजनसूरि देव, पटना	84
8.	'फणामण्डलमण्डित तीर्थंकर पार्श्वनाथ'	–डॉ.विमला जैन 'विमल', फिरोजाबाद (उ.प्र.)	90
9.	जैन स्तोत्र और भगवान पार्श्वनाथ	–डॉ. कपूरचंद जैन	93
10.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भगवान पार्श्वनाथ की जीवनपद्धति एवं उपदेशों की प्रासंगिकता	–डॉ. कु. मालती जैन-मैनपुरी	97
11.	'पर्यावरण-संरक्षण और तीर्थंकर पार्श्वनाथ'	–प्राचार्य निहालचंद जैन	102
12.	'भगवान पार्श्वनाथ एवं उनका अतिशय'	–श्रीमती आशा जैन, दिल्ली	105
13.	चिन्तामणि 1008 भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से हमें क्या शिक्षा ग्रहण करना चाहिए?	–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)	107
14.	भगवान पार्श्वनाथ दशावतार नाटक	–पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज	109
15.	भगवान पार्श्वनाथ	–कु. अर्चिता जैन, इलाहाबाद	151
16.	तीर्थंकर पार्श्वनाथ	–सौ. सुरेखा राजगौंडा पाटिल, लेखानगर	155
17.	तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन दर्शन	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	158
18.	भजन (यह शांत छवि तेरी....)		159
19.	भजन (निज ध्यान करने....)		160

तृतीय खंड–भगवान पार्श्वनाथ पंचकल्याणक तीर्थक्षेत्र एवं अतिशय क्षेत्र

1. भगवान पार्श्वनाथ की गर्भ, जन्म एवं दीक्षाकल्याणक भूमि वाराणसी तीर्थ का परिचय	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	1
2. भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान कल्याणक भूमि अहिच्छत्र तीर्थ का परिचय	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	8
3. भगवान पार्श्वनाथ की निर्वाणभूमि श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र का परिचय		14
4. श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कचनेर	–जीवन प्रकाश जैन	28
5. चंवलेश्वर पार्श्वनाथ	–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)	29
6. अन्देश्वर पार्श्वनाथ	–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर जी महाराज	31
7. नागफणी पार्श्वनाथ	–धनपाल रतनलाल जैन, बीडीवाड़ा	33
8. महुवा (विघ्नहर पार्श्वनाथ)	–ब्र. कु. आस्था जैन (संघस्थ)	35
9. अतिशय क्षेत्र कुण्डल (कलिकुण्ड पार्श्वनाथ)	–ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)	38
10. श्री 1008 सहस्रफणी अतिशय क्षेत्र (बीजापुर)		39
11. मक्सी पार्श्वनाथ	–पदम कुमार पाटोदी, मक्सी	40
12. अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ	–भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ पुस्तक एवं मोहन जैन, धरणगाँव द्वारा प्रेषित लेख से प्रस्तुत	46
13. श्री संकटहरण गंधर्वपुरी पार्श्वनाथ तीर्थ	–सुरेन्द्र कुमार जैन	60
14. श्री अतिशय क्षेत्र वागोल पार्श्वनाथ	–हसमुखलाल शांतिलाल सेठ (मंत्री), कुशलगढ़	62
15. गिरि पार्श्वनाथ		62
16. श्री अणिन्दा पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र	–प्रभुलाल मानावत (सचिव), उदयपुर	63
17. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र आहू	–पवन जैन गंगवाल (संयोजक)	64
18. श्री पार्श्वनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र पटेरिया जी	–बालचंद्र जैन (मंत्री)	65
19. करगुवाँ अतिशय क्षेत्र	–ब्र. कु. चन्द्रिका जैन (संघस्थ)	66
20. झरी पार्श्वनाथ		67
21. तेर अतिशय क्षेत्र	–ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ)	68
22. सावरगाँव अतिशय क्षेत्र	–महावीर मेहता (मंत्री)	71
23. आष्टा अतिशय क्षेत्र	–बी.आर.भस्मे (मंत्री)	72
24. जिंतूर अतिशय क्षेत्र में पार्श्वनाथ की अद्भुत प्रतिमा	–जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर	74
25. अरटाल अतिशय क्षेत्र	–ऋषभदेशना पत्रिका से साभार	77
26. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पनागर	–ऋषभदेशना पत्रिका से साभार	78
27. श्री विघ्नहरणेश्वर पार्श्वनाथ दि.जैन अतिशय क्षेत्र कुलचारम	–राजेश पहाड़े, हैदराबाद	79
28. चन्द्रवाड़ अतिशय क्षेत्र	–चंद्रप्रकाश जैन (अध्यक्ष)	80
29. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बहलना	–वीरेन्द्र कुमार जैन, सलावा	81
30. बालाबेहट		82
31. बड़ागाँव	–ब्र. कु. अलका जैन (संघस्थ)	83
32. भगवान पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र संकटहरण पार्श्वनाथ,कुशलगढ़	–जयंतीलाल नथमल सेठ (अध्यक्ष)	85

33 .श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पटनागंज, रहली	–ब्र. कु. प्रीति जैन (संघस्थ)	87
34 .कनकगिरी के विजयी पार्श्वनाथ	–सुरेश जैन (आई.ए.एस.), भोपाल	88
35 .सातिशय श्री संकटहर पार्श्वनाथ भगवान जैनगिरी, जटवाडा	–डॉ. सी.के. पाटनी	89
36 .श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र 'पुण्योदय तीर्थ' हाँसी	–मुकेश जैन (सह सचिव)	92
37 . श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पार्श्वनाथ चूलगिरि, जयपुर	–महेन्द्र कुमार जैन (व्यवस्थापक)	93
38 .कोठाला स्थित चिंतामणि पार्श्वनाथ	–श्रीमती त्रिशला कासलीवाल, इन्दौर	95
39 .श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (पहाड़) एलोरा अतिशय क्षेत्र जिला-औरंगाबाद	–अंबरकर राव	96
40 .आसेगाँव		98
41 .दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र-खड़ौआ, जिला-एटा	–डॉ. कु.मालती जैन, मैनपुरी	99
42 .दिगम्बर जैन देवपुरी अतिशय क्षेत्र (देरोल-वाघेला)	–ब्र. कू. इन्दू जैन (संघस्थ)	100
43 .हुँमचा (हुंबुज पद्मावती) दि.जैन अतिशय क्षेत्र	–ब्र. कू. इन्दू जैन (संघस्थ)	101
44 .श्री पार्श्वनाथ दि.जैन कमठाण अतिशय क्षेत्र	–ब्र. कू. इन्दू जैन (संघस्थ)	101
45 .श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र स्तवनिधी	–ब्र. कू. इन्दू जैन (संघस्थ)	102
46 .णमोकार महामंत्र साधना केन्द्र, बही पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र	–ब्र. कू. सारिका जैन (संघस्थ)	102
47 .श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बरेला	–ब्र. कू. चन्द्रिका जैन (संघस्थ)	103
48 .श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कैथूली		103
49 .श्री दिगम्बर जैन पार्श्वगिरि (बड़वानी)		103
50 .श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पिड़रुवा	–ब्र. कू. इन्दू जैन (संघस्थ)	104
51 .श्री चिन्सुरा पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र	–ब्र. कू. इन्दू जैन (संघस्थ)	104
52 .श्री देबारी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र	–ब्र. कू. सारिका जैन (संघस्थ)	105
53 .श्री दिगम्बर जैन अतिशय चमत्कारी क्षेत्र टोड़ी-फतेहपुर		105
54 .थूवौन जी के अतिशयकारी भगवान पार्श्वनाथ	–आर्यिका श्री अभयमती माताजी	106
55 .श्री नाइचाकुर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र	–फूलचंद चन्द्रकांत जैन	108
56 .श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, भौंरासा	–ब्र. कू. इन्दू जैन (संघस्थ)	108
57 .धाराशिव की गुफाओं में पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ	–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन	109
58 .पिसनहारी मढ़िया के अतिशयकारी पार्श्वनाथ मंदिर	–ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ)	114
59 .बिजौलिया के पार्श्वनाथ	–जीवन प्रकाश जैन	116
60 .रेशन्दीगिरि (नैनागिरि) सिद्धक्षेत्र	(भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ पुस्तक एवं सुरेश जैन, भोपाल द्वारा प्रेषित लेख के आधार पर प्रस्तुत)	118
61 .श्रीनगर में पार्श्वनाथ का अतिशय	–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)	125
62 .कटक में पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमाएँ	–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)	126
63 .खजुराहो का सुन्दर पार्श्वनाथ जिनालय	–ब्र. कू. इन्दू जैन (संघस्थ)	128
64 . ग्वालियर में है पार्श्वनाथ की सबसे बड़ी पद्मासन प्रतिमा	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	129

65 .द्रोणगिरि के पार्श्वनाथ मंदिर –जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर 136
66 .सूरत का चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर –पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज 139
67 .अंकलेश्वर की अतिशय सम्पन्न पार्श्वनाथ प्रतिमा –ब्र. कु. आस्था जैन (संघस्थ) 141
68 .मुक्तागिरि (मेंढागिरि) के अतिशायी पार्श्वनाथ जिनालय –आर्यिका श्री अभयमती माताजी 143
69 .पारसनाथ का किला –ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ) 146
70 .श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन –ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ) 148
स्वर्ण मंदिर, ग्वालियर
71 .श्री भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, टिकैतनगर–ब्र. कू. मंजू जैन (संघस्थ) 149
72 .गुलाबवाड़ी मुम्बई का अतिशयकारी
पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर –श्रीमती लक्ष्मी जैन, मुम्बई 150
73 .भोगाँव का अतिशयपूर्ण पार्श्वनाथ जिनालय –मनोज कुमार जैन, भोगाँव 151
75. कालसर्पयोग निवारक भगवान पार्श्वनाथ, –संजय जैन 'कानपुर वाले' 152
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र
76. वरुर के केतुग्रहारिष्ट निवारक भगवान पार्श्वनाथ 153
77 .भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र-एक दृष्टि में 154

चतुर्थ खण्ड–व्रत विधि संग्रह

1. रविव्रत की विधि एवं कथा 1
2. सुखचिन्तामणि व्रत का स्वरूप 3
3. श्रुतस्कंध व्रत 4
4. मेघमाला और षोडशकारण व्रतों की विधि 5
5. जिनमुखावलोकन व्रत की विधि 9
6. दशलक्षण व्रत की विधि 10
7. अनन्त चौदश व्रत विधि 14
8. सुगंधदशमी व्रत 17
9. रत्नत्रय व्रत विधि 18
10. मुकुटसप्तमी व्रत और निर्दोषसप्तमी व्रतों का स्वरूप 21
11. श्री आकाशपंचमी व्रत कथा 24
12. सप्तपरमस्थान व्रत विधि 25
13. मंगल त्रयोदशी (धनतेरस) व्रत एवं एवं कथा 27
14. वृहत्पल्य व्रत विधि 28
15. चक्रवाल व्रत विधि 29
16. द्वादशकल्प व्रत (मुष्टि तंदुल व्रत) 31
17. नंदीश्वर पंक्ति व्रत विधि 33
18. मेरु पंक्ति व्रत विधि 34
19. जिनगुणसंपत्ति व्रत विधि एवं कथा 35
20. रोहिणी व्रत विधि एवं कथा 39
21. चारित्रशुद्धि व्रत विधि 42
22. कर्मदहन व्रत विधि 92

23. णमोकार व्रत विधि 98
24. श्रावक त्रेपनक्रिया व्रत विधि 98
25. श्री जिनसहस्रनाम व्रत विधि (लघु) 102
26. श्री जिनसहस्रनाम व्रतविधि (वृहत्) 102
27. ज्ञान पचीसी व्रत विधि 113
28. श्रुतज्ञान व्रत 115
29. चौंसठ ऋद्धि व्रत विधि 118
30. पंचपरमेष्ठी व्रत विधि 120
31. अरिहंत परमेष्ठी व्रत विधि 124
32. सिद्धपरमेष्ठी व्रत विधि 126
33. आचार्य परमेष्ठी व्रत विधि 126
34. उपाध्याय परमेष्ठी व्रत विधि 128
35. साधु परमेष्ठी व्रत विधि 129
36. सम्यक्त्व पचीसी व्रत विधि 130
37. तीर्थंकर पंचकल्याणक तिथि व्रत विधि 131
38. नवरात्रि व्रत 135
39. नवदेवता व्रत (रूपार्थवल्लरी व्रत) 137
40 .कर्मनिर्जरा व्रत विधि एवं कथा 138
41 .नवग्रह शांतिव्रत 141
42 .तत्त्वार्थसूत्र व्रत विधि 141
43 .सर्वदोषप्रायश्चित्त व्रत विधि 142
44 .तीस चौबीसी व्रत विधि 144
45 .तीन चौबीसी व्रत विधि 155
46 .विद्यमान बीस तीर्थंकर व्रत विधि 157
47 .कल्याण मंदिर व्रत विधि 158
48 .सम्मेदशिखर व्रतविधि 159
49 .विषापहार व्रतविधि 161
50 .भक्तामर व्रत विधि 162
51 .श्रुतपञ्चमी व्रत (श्रुतावतार व्रत) 164
52. श्री अक्षयतृतीया व्रत कथा 165
53 .कालसर्पयोग निवारक श्री पार्श्वनाथ व्रत 168
54 .त्रैलोक्य जिनालय व्रत 172
55 .मनोकामना सिद्धि महावीर व्रत एवं मंत्र 176
56 .तीर्थंकर पंचकल्याणक तीर्थ व्रत विधि 180
57 .जम्बूद्वीप व्रत विधि 182
58 .चौबीस तीर्थंकर गणधर व्रत 185
59. अट्ठाईस मूलगुण व्रत 187
60 .चारित्रलब्धिव्रत 188

61 .तेरहद्वीप जिनालय व्रत (मध्यलोक जिनालय व्रत) 193
62 .गणधरवलय व्रत विधि 208
63. षट्खण्डागम व्रत विधि 209
64 .पुण्यास्रव व्रत विधि 215
65 .समवसरण व्रत विधि (लघु) 218
66. समवसरण व्रत विधि (वृहत्) 219
67. श्री संपत-शुक्रवार व्रत विधि एवं कथा 224
68 .कवलचान्द्रायण व्रत विधि एवं पूजा 229
69. नवदेवता पूजा 232
70. पंचपरमेष्ठी पूजा 234
71 .अर्हन्त परमेष्ठी पूजा 236
72 .सिद्ध परमेष्ठी पूजा 238
73 .आचार्य परमेष्ठी पूजा 240
74 .श्री उपाध्याय परमेष्ठी पूजा 242
75 .सर्वसाधु परमेष्ठी पूजा 244
76 .सप्तपरमस्थान पूजा 246
77 .विमलनाथ जिनपूजा (मंगल त्रयोदशी पूजा) 248
78 .जिनगुण संपत्ति पूजा 251
79 .रोहिणी व्रत पूजा (वासुपूज्य जिनपूजा) 253
80 .चारित्रशुद्धिव्रत पूजा 255
81 .श्री कर्मदहन व्रत पूजा 257
82 .जिनसहस्रनाम पूजा 259
83 .रत्नत्रय पूजा (सम्यक्त्व पचीसी व्रत एवं पूजा) 262
84 .तीर्थंकर पंचकल्याणक पूजा (पंचकल्याणक पूजा) 265
85 .नवग्रह शांति पूजा 267
86 .तीस चौबीसी पूजा 269
87 .बीस तीर्थंकर पूजा 271
88 .त्रैलोक्य जिनालय पूजा 273
89 .समवसरण पूजा 275
90 .तीर्थंकर पंचकल्याणक तीर्थ पूजा 278
91 .जम्बूद्वीप पूजा 283
92 .तेरहद्वीप जिनालय पूजा (मध्यलोक जिनालय पूजा) 285
93 .गणधरवलय पूजा 287
94 .षट्खण्डागम पूजा 290
95 .पुण्यास्रव पूजा 293
96 .चौंसठ ऋद्धि पूजा 296
97 .साधु परमेष्ठी पूजा (अड्ढाइस मूलगुण व्रत पूजा) 299
98 .नन्दीश्वर द्वीप पूजा 301

पंचम खण्ड–जैनधर्म विवेचन

1.	जैनधर्म एवं भगवान ऋषभदेव	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	1
2.	अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	10
3.	Cyclic arrangement of The Universe	–Ganini Gyanmati Mataji	14
4.	सम्यग्दर्शन की महिमा	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	33
5.	पंचमकाल में मुनियों का अस्तित्व	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	47
6.	ग्रंथों के अध्ययन-अध्यापन का क्रम	–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी	64
7.	बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का जीवन परिचय	–गणिनीप्रमुख ज्ञानमती माताजी	77
8.	प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज का परिचय	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती	89
9.	राष्ट्रगौरव परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय	–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी	101
10.	जम्बूद्वीप तीर्थ दर्शन	–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन	106
11.	पात्रकेसरी स्तोत्र (श्री विद्यानंदि स्वामि-विरचित)		112
12.	श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र (संस्कृत)	–गणिनीप्रमुख ज्ञानमती माताजी	118
13.	Prayer of Tirthankaras' Birthplaces	– Aryika Chandnamati	119
14.	Barah Bhavna (Twelve Anuprekshas)	– Aryika Chandnamati	120



श्री पार्श्वनाथ मंगल पाठ

-गणिनी ज्ञानमती

मंगलं भगवान्नर्हन्,
मंगलं वृषभेश्वरः।
मंगलं पार्श्वनाथोऽस्तु
त्रयोविंशो जिनेश्वरः।।१।।

जन्मभूर्मंगलं कुर्यात्
वाराणसी सुरैर्नुता।
पिताश्वसेनराजापि
वामा माता च मंगलम्।।२।।

मंगलं बालयोगीशः,
कमठेनोपसर्गजित्।
मंगलं केवलज्ञान-
महिच्छत्रं च मंगलम्।।३।।

श्री स्वयंभूगणाधीशो,
मंगलं कुर्यात् सदा।
आर्यिका मंगलं कुर्यात्,
गणिनी श्री सुलोचना।।४।।

कूटं सुवर्णभद्राख्यं,
सम्मेदाद्रिः सुमंगलं।
मंगलं पंचकल्याणं
ज्ञानमत्यै च वः श्रियै।।५।।

उपसर्गविजयि श्रीपार्श्वनाथ जिनस्तुतिः

लेखिका– गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

-उपजातिछंदः-

कल्याणकल्पद्रुमसारभूतं,
चिंतामणिं चिंतितदानदक्षम्।
श्रीपार्श्वनाथस्य सुपादपद्मं,
नमामि भक्त्या परया मुदा च।।1।।

जो कल्याण कल्पतरु सार-भूत चिंतामणि चिंतितदा।
श्रीपारस प्रभु पादकमल को, भक्तिभाव से नमूँ मुदा।।

ध्याने स्थितो यो बहिरंतरंगं,
त्यक्त्वोपधिं तत्र तदा जिनस्य।
मातामहः स्यात् कमठासुरोऽसौ,
अभूत् कुदेवः कुतपोऽभिरेव।।2।।

अंतर्बहिः परिग्रह तजकर, ध्यान लीन जब खड़े प्रभो!।
कमठासुर कूतप से मरकर, तब मातामह हुआ प्रभो!।।

रुद्धं विमानं पथि गच्छतोहा!
ध्यानस्थपार्श्वं प्रविलोक्यरुष्ट्वा।
शत्रुं च मत्वा कृतभीमरूपो,
धाराप्रपातैः स चकार वृष्टिं।।3।।

पथ में जाता रुका विमान, हा! ध्यानस्थ पार्श्व को लख।
क्रुधित शत्रु गिन भीमरूप धर, मूसलधार वृष्टि को कर।।

चकास्ति विद्युत् दशदिक्षु पिंगा,
वात्या महद्ध्वांतमयं च कालं।
घनाघनोगर्जति घोररावैः,
प्रचंडवातैः परिमूलयन् द्रून्।।4।।

विद्युत चमके दश दिश में, आंधी अँधियारी काल समान।
गरजे मेघ भयंकर वायू, वृक्ष उखाड़े शैल समान।।

परीषहैर्वातकृतैस्तदासौ,
महामना धीरगभीरपार्श्वः।
अकम्पचित्तः कनकाचलो वै,
तं पार्श्वनाथं त्रिविधं प्रवंदे।।5।।

वायु भयंकर उपसर्गों से, महामना पारस प्रभु धीर।
अचलितमना मेरु सम पारस, त्रयविधि वंदूं महागभीर।।

पुण्यप्रभावाद् विचलासनाच्च,
यातः फणीन्द्रश्चकितः सभार्यः।
फणातपत्रैरुपसर्गकाले,
भक्तिं व्यधात् यस्य नमोऽस्तु तस्मै।।6।।

पुण्योदय से फणपति आसन, कंपा पद्मावति के साथ।
आकर फण का छत्र किया प्रभु, शिर पर वंदूं पारसनाथ।।

श्री पार्श्वनाथः स्वपरात्मविज्ञः,
श्रेणीं श्रितः स्वात्मजशुक्लयोगैः।
घातीनिहत्वा जगदेकसूर्यः,
कैवल्यमाप्नोत् तमहं स्तवीमि।।7।।

स्वपरभेदवित् पारस स्वात्मज, ध्यानशुक्ल श्रेणी पर चढ़।
घात घातिया केवल पायो, त्रिभुवनसूर्य नमूँ शुचि कर।।

माणिक्यगारुत्मणिरत्नगर्भः,
वैडूर्यमुक्तामणिहीरकाद्यैः।
शक्राज्ञया वृत्तसभां जिनस्य,
आकाशमध्ये व्यतनोद् धनेशः।।8।।

माणिकरत्न गरुत्मणि मुक्ता, हीरकमणि वैडूर्यों से।
इन्द्राज्ञा से धनपति रचियो, समवशरण गगनांगण में।।

स्तंभांतमानादिविशालकायाः,
सरांसि पुष्पस्य सुवाटिका स्युः।
प्राकारतुंगास्त्रयसालशोभाः,
वाप्यादयः स्वच्छजलाः सुरम्याः।।9।।
अतिऊँचे मानस्तंभों से, पुष्पवाटिका सरवर से।
परकोटे सालत्रय शोभें, वापी रम्य स्वच्छ जल से।।

क्षिपंति धूपस्य घटेषु देवाः,
सौगंध्यधूपं सुरभिः समंतात्।
सुतोरणाद्या ध्वजपंक्तयश्च,
मयूरहंसादिकचिन्हयुक्ताः।।10।।
धूपघटों में सुरगण खेते, धूप सुगंधित चउदिश में।
तोरण ध्वजपंक्ती बहु शोभें, हंस मयूर चिन्ह युत हैं।।

भामंडले सप्तभवान् सुभव्याः,
वापीजलेऽपि प्रविलोकयंति।
सर्वाः सुसंपत्निधियोऽपि विश्वे,
रत्नानि सर्वाणि बभुश्च तत्र।।11।।
देखें सप्तभवों को भविजन, भामंडल वापी जल में।
नवनिधि चौदहरत्न सभी, संपत्ति वहाँ बहुविध शोभें।।

द्वारेषु देवाः किलरक्षकाः स्युः,
सद्दृष्टिमद्भिः सह रज्यमानाः।
मध्ये त्रिसालस्य हि गंधकुट्यां,
सिंहासनस्योपरि देवदेवः।।12।।
रक्षकदेव खड़े द्वारों पर, सम्यग्दृष्टी के प्रिय हैं।
तीनसाल के मध्य गंधकुटि, सिंहासन पर प्रभु शोभें।।

विराजते रत्नमणिप्ररोचिः,
कंजासने या चतुरंगुलास्पृक्।
छत्रत्रयं चंद्रनिभं प्रवक्ति,
''त्रैलोक्यनाथोऽय'' मिति स्तुवे तं।।13।।
रत्नमणीमय कमलासन पर, चतुरंगुल ऊपर राजें।
तीनछत्र "त्रिभुवनपति" सूचक, उन प्रभु को हम नित वंदे।।

देवा व्यधुर्दुंदुभिनादमुच्चैः,
त्रैलोक्यजंतुं प्रति सूचयंतं।
जयारवं कल्पतरोश्च वृष्टिं,
गंधोदकैश्च प्रणमाम्यहं तं।।14।।
दुंदुभि बजती त्रिभुवन जन को, सूचित करती तव जयकार।
कल्पतरू से पुष्पवृष्टि, गंधोदक वर्षा हो सुखकार।।

अशोकवृक्षो जनशोकहारी,
वियोगरोगार्तिविनाशकारी।
सुवीज्यमानाश्चमरीरुहाश्च,
भांतीव ते निर्झरवारिधाराः।।15।।
तरुअशोक जन शोकहरे, रोगार्ति वियोग विनाश करें।
चौंसठ चमर ढुरे निर्झरजल-सम प्रभु पर हम उन्हें नमें।।

भाश्चक्रकांतिः प्रभुदेहदीप्त्या,
विडंबयत्कोटिरविप्रभासौ।
सर्वार्थभाषामयदिव्यवाक् ते,
त्रिकालमाविर्भवति स्तुवे त्वां।।16।।
प्रभुतनु कांति से भामंडल, दिपे कोटि रवि शशि लज्जें।
सब भाषामय दिव्यध्वनि तव, त्रिसमय प्रगटे नमूँ तुम्हें।।

देवा मनुष्याः पशु-पक्षिवृंदं,
श्रीपार्श्वमानम्य मिथश्च सर्वे।
विरोधभावं परिहृत्य नित्यं,
तिष्ठंति प्रीत्या शुभभावनातः।।17।।
देव असुर नर पशु पक्षीगण, मिल पारस का कर वंदन।
वैरभाव को छोड़ परस्पर, परमप्रीति धारें सब जन।।

दिशोऽमलाः स्वच्छसरांसि भांति,
षडर्तुजातास्तरवो लताद्याः।
शाल्यादिसस्यान्यभवन् स्वतश्च,
जीवस्य हिंसा न तदा कदाचित्।।18।।
निर्मल दिश सब स्वच्छ सरोवर, शाली आदिक खेत फलें।
प्राणी हिंसा कभी न होती, षट् ऋतु के फल फूल खिलें।।

केशाः नखाः वृद्धिमगुः प्रभोर्न,
दृग्निर्निमेषे चतुरास्यता च।
तनुश्च ते दर्पणवत् चकास्ति,
वंदे तमेतेऽतिशयाश्च यस्य।।19।।
नख अरु केश बढ़े नहिं प्रभु के, दृग टिमकार रहित शोभें।
दिखें चतुर्मुख तनु दर्पणवत्, इन अतिशय युत को वंदे।।

सेन्द्रा नरेन्द्राश्च तथा फणीन्द्राः,
नत्वा जिनेन्द्रं गणिनं च भक्त्या।

तत्र स्थिता धर्मसुधां पिबंतः,
संतर्पितास्तानुपदिश्य पार्श्वः।।20।।

इन्द्र नरेन्द्र फणीन्द्र नमनकर, प्रभु को गणधर को भजकर।
बैठे सभा में धर्मपिपासु, प्रभु उपदेश दिया सुखकर।।

विहारकाले शुभमग्रगामी,
श्रीधर्मचक्रं विबभौ विभोस्ते।
सुहेमपद्मेषु विभुश्च पादौ,
धृत्वांतरिक्षे व्यहरत् स्तुवे तं।।21।।

प्रभु बिहार में आगे चलता, धर्मचक्र राजे सुखकर।
कनक कमल पर प्रभु पग धरते, गगन गमन करते मनहर।।

नष्टोपसर्गे रविकेवलोत्थे,
जातं त्वहिक्षेत्रमिदं सुतीर्थं।
क्षेत्रं पवित्रं जगति प्रसिद्धं,
भक्त्या सदा भव्यजनाः स्तुवंति।।22।।

दूर हुआ उपसर्ग तुरत, कैवल्यज्ञान रवि उदित हुआ।
तीर्थ पवित्र "अहिच्छत्रं" भविजन, संस्तुत जग सिद्ध हुआ।।

श्रीपार्श्वनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यं।
दुःखार्तिनाशाय नमोऽस्तु तुभ्यं।।
अभीप्सितार्थाय नमोऽस्तु तुभ्यं।
त्रैलोक्यनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यं।।।23।।

नमोऽस्तु पारसनाथ! तुम्हें, दुःखार्ति विनाशि नमोऽस्तु तुम्हें।
नमोऽस्तु ईप्सित हेतु तुम्हें, हे त्रिभुवननाथ! नमोऽस्तु तुम्हें।।

–शार्दूलविक्रीडित छन्द –

यो लोकांतर्भूतवस्तुसकलं नक्षत्रवत् लोकते।
यो जित्वा ह्युपसर्गकं "जिन" इति प्रख्यश्च कर्माण्यपि।।
वामानंदन एष एव भगवान् लोकैककल्पद्रुमः।
भूयात् मे त्वरमश्वसेननृपजः श्री "ज्ञानमत्यै" श्रियै।।24।।

जो सब त्रिभुवन की वस्तू को, इक नक्षत्र सदृश देखें।
जो उपसर्ग रु कर्मशत्रु को, जीता "जिन" इस विधि से हैं।।
अश्वसेन सुत वामानंदन, वे लोकैककल्पतरु हैं।
उन पारस प्रभु के प्रसाद से, "ज्ञानमती" श्री मम होवे।।

भजन

धरती का तुम्हें नमन है, आकाश का तुम्हें नमन है।
तीन लोक के सौ इन्द्रों ने, किया तुम्हें वंदन है।।
सौ-सौ बार नमन है-2
पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में, सौ-सौ बार नमन है।।टेक.।।
तीन तीर्थ माने हैं जिनके, पंचकल्याण से पावन,
वाराणसि, अहिच्छत्र और सम्मेदशिखर मनभावन।
इनके दर्शन से भक्तों के, पावन होते मन हैं,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।1।।
वर्तमान में पार्श्वनाथ का, अतिशय खूब बखाना,
अंतरिक्ष, शिरपुर, चंवलेश्वर, मक्सी, अडिन्दा जाना।
अतिशायी कचनेर में जाकर, करो प्रभू दर्शन है,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।2।।
कर्नाटक के बीजापुर में, सहस्रफणा पारस हैं,
जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में, चिन्तामणि पारस हैं।
भारत के अनेक नगरों में, पारस प्रभु मंदिर हैं,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।3।।
गणिनी ज्ञानमती माता, कहती हैं सब भक्तों को,
पारस प्रभु के अतिशय से, परिचित करवाओ सब को।
सभी "चन्दनामती" प्रभू का, उत्सव करो सफल है,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।4।।

भगवान पार्श्वनाथ वंदना

लेखिका– गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

–शंभु छंद–

भवसंकट हर्ता पार्श्वनाथ! विघ्नों के संहारक तुम हो।
हे महामना हे क्षमाशील! मुझमें भी पूर्ण क्षमा भर दो।।
यद्यपि मैंने शिव पथ पाया, पर यह विघ्नों से भरा हुआ।
इन विघ्नों को अब दूर करो, सब सिद्धि लहूँ निर्विघ्नतया।।1।।

वाराणसि नगरी धन्य हुई, धन धन्य हुए सब नर नारी।
हे अश्वसेन[1]नंदन! तुम से, वामा[2] माँ भी मंगलकारी।।
वैसाख वदी वह दूज भली, माता उर आप पधारे थे।
श्री आदि देवियों ने आकर, माता से प्रश्न विचारे थे।।2।।

शुभ पौष वदी ग्यारस तिथि थी, जब आए प्रभु साक्षात् यहाँ।
मित्रों संग वन में घूम रहे, अहियुग[3] को दीना मंत्र महा।।
तब नागयुगल धरणेन्द्र तथा, पद्मावति होकर भक्त बने।
शुभ पौष वदी ग्यारस के दिन, प्रभु दीक्षा ले मुनि श्रेष्ठ बने।।3।।

तत्क्षण मनपर्ययज्ञानी हो, सब ऋद्धी से परिपूर्ण हुए।
इक समय सघन वन के भीतर, प्रभु निश्चल ध्यानारूढ़ हुए।।
कमठासुर ने उपसर्ग किया, अग्नी ज्वाला को उगल-उगल।
पत्थर फेंके मूसलधारा, वर्षायी आँधी उछल-उछल।।4।।

निष्कारण ही कमठासुर ने, दश भव तक वैर निकाला था।
प्रभु को दुख दे देकर उसने, खुद को दुर्गति में डाला था।।
प्रभु महासहिष्णू क्षमासिंधु, भव-भव से सहते आये हैं।
तन से ममता को छोड़ दिया, नहिं किंचित् भी घबराये हैं।।5।।

उस ही क्षण धरणीपति पद्मावती, आ करके बहु भक्ति किया।।
प्रभु को मस्तक पर धारणकर, ऊपर से फण का छत्र किया।
प्रभु क्षपक श्रेणि में चढ़ करके, मोहनी कर्म का नाश किया।
सम्पूर्ण घातिया को विनाश,कैवल्यश्री को वरण किया।।6।।

पृथ्वी से बीस हजार हाथ, ऊपर पहुँचे अर्हन्त बने।
इन्द्रों के आसन कांप उठे, प्रभु समवसरण गगनांगण में।।
वदि चैत्र चतुर्थी[4] तिथि उत्तम, जब प्रभु में ज्ञान प्रकाश हुआ।
उस स्थल का उस ही क्षण से, 'अहिच्छत्र' तीर्थ यह नाम हुआ।।7।।

नव हाथ देह सौ वर्ष आयु, मरकतमणि सम आभाधारी।
अहि चिन्ह सहित वे पार्श्वप्रभो! मुझको हों नित मंगलकारी।।
श्रावण सुदि सप्तमि तिथि के दिन, सिद्धीकांता से प्रीति लगी।
मैं नमूँ तुम्हें पल-पल क्षण-क्षण, मेरी हो केवल"ज्ञानमती"।।8।।

1. अपरनाम विश्वसेन। 2. अपरनाम ब्राह्मी। 3. सर्प-सर्पिणी। 4. उत्तरपुराण में चतुर्दशी है।

श्री पार्श्व जिन स्तुति

लेखिका– गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

(पृथ्वी छंद)

सुरासुर - खगेन्द्रवंद्य - चरणाब्जयुग्मं प्रभुं।
महामहिम - मोहमल्ल - गजराज - कंठीरवं।।
महामहिम - रागभूमिरुह - मूलमुत्पाटनं।
स्तवीमि कमठोपसर्गजयि-पार्श्वनाथं जिनं।।1।।

देव असुर विद्याधर वन्दित, चरण सरोरुह पार्श्व प्रभो।
महा प्रभावी मोहमल्ल, हस्ती के लिए सिंह सम हो॥
महिमाशाली राग वृक्ष को, जड़ से कीना उन्मूलन।
कमठोपसर्गजयि पारस का, करूँ संस्तवन शुचिकर मन।।1।।

अहंकृतिधिया जिनेन्द्र! ममकारबुद्ध्या भुवि।
मया स्वपरभेदबोध-मुग्धात्मना हे प्रभो!
उपेक्षितजनं महाकटुकवृत्तिकं निंदकं।
अवैमि स्वजनं हहा! नहि विवेकलेशो मयि।।2।।

अहंकार ममकार बुद्धि को, परवस्तू में कर भगवन्।
स्वपर भेद विज्ञान शून्य मैं, बहिरात्मा मूरख हो जिन।।
महा कटुक वृत्तिकधारी, निंदक विपरीत उपेक्षित को।
मोह भाव से अपना समझा, हा! धिक् नहिं विवेक मुझको।।2।।

दुरंतघनमोह - कुंभिमद - सिंहपार्श्वो जयी।
मुनीन्द्र गणसेवितस्त्रिभुवनैकसूर्यो महान्।।
कठोरकमठारिणा भवभवे कृतं संकटं।
महार्णवमनः! क्षमाधर! विभो! त्वयासह्यत।।3।।

पापरूप घनमोह हस्तिमद, नाश करन को सिंहजयी।
हे पारस! सुर मुनिगणसेवित! त्रिभुवन के इक सूर्य तुम्हीं।।
क्रूर कमठ शत्रू ने तुमको, दश भव तक बहु कष्ट दिये।
क्षमाशील! हे महासमुद्रमनः! प्रभु तुमने सभी सहे।।3।।

पुरुश्रिय-मशिश्रियत् सकललोकचूड़ामणिः।
स्वजन्ममरणार्तिहा सकललोक-भाषापतिः।।
प्रवृद्धविभवैर्जनै - र्गणधरै - र्यतीशैः सुरैः।
जिनेन्द्र! विनुतस्त्वमेव सततं स्तुतो वंदितः।।4।।

उत्तमशिवलक्ष्मी के आश्रय, सकल लोक चूड़ामणि हो।
अपने जन्म मरण दुखनाशक, सकल जगत भाषापति हो।।
वैभवशाली जन से गणधर, यतिगण से सुरनर गण से।
वंदित संस्तुत नमित सदा प्रभु, तुम ही पूजित सबा जग।।4।।

भवंतमधिगम्य नाथ! नहि कोऽपि मोहं व्रजेत्।
विशोकमुपसद्य नाथ! किमु कोपि शोकं भजेत्।।
विरागमुपलभ्य नाथ! नहि रागभावो भवेत्।
वितन्द्रमुपपद्य नाथ! सुभवे-दतंद्रालुता।।5।।

नाथ! आपको पाकर नहिं, कोई मोही होता जग में।
नाथ! शोक से रहित तुम्हें लख, नहिं जन शोक करे मन में।।
राग रहित पा नाथ! तुम्हें, नहिं रागभाव धारे कोई।
तंद्रा रहित नाथ! को पा, तंद्रा निद्रा खोते सब ही।।5।।

अपापमुपलभ्य भो जिन! भवे-दपापो जनः।
विकोपमुपलभ्य नाथ! किमु कोऽपि कोपं भजेत्।।
अदोषमुपलभ्य भो! सकलदोष-शून्योजनः।
अतो हि भगवंस्त्वमेव सकलैः श्रितः सर्वदा।।6।।

पापशून्य हे प्रभो! तुम्हें पा, पाप रहित होते सब जन।
कोप शून्य हे नाथ! तुम्हें लख, नहिं क्रोधी हों जग में जन।।
दोषशून्य प्रभु को पाकर सब, दोष रहित हो जाते हैं।
हे भगवन्! अतएव सदा सब, जन तब आश्रय लेते हैं।।6।।

स्वदोषरजसां क्षयाय शुचिशांतभावं श्रितः।
अनंतभव - संगताष्टविध - कर्मवृक्षांतकः।।
स्वमोहविजयी जितेन्द्रियमना मदेर्ष्याविजित्।
ममापि जिनपार्श्वनाथ! कुरु मोहनाशं त्वरं।।7।।

निज के दोष नाश करने को, निर्मल शांत भाव धरकर।
भव अनंत के अष्टकर्म तरु, को निर्मूल किया प्रभुवर।।
मोह द्वेष विजयी इन्द्रिय मन-विजयी ईर्ष्या मानजयी।
हे प्रभु पार्श्वनाथ! मेरा भी, मोह नाश झट करो सही।।7।।

नमोऽस्तु गतजन्मने भवसमुद्रसंशोषिणे।
नमोऽस्तु गतमृत्यवे सकलसौख्यसंपोषिणे।।
नमोऽस्तु गतकर्मणे सकलभव्यसंतोषिणे।
नमोऽस्तु जिनपार्श्व! ते सकलमोहसंहारिणे।।8।।

नमोऽस्तु तुमको जन्मरहित, भवसागर के शोषणकारी।
नमोऽस्तु तुमको मृत्युरहित, सबको सुखमयपोषणकारी।।
नमोऽस्तु तुमको कर्मरहित सब, जन को सन्तोषित करते।
नमोऽस्तु तुमको हे पारसजिन! सब जन मोह नाश करते।।8।।

हिनस्तु विधिभूभृतां मम समस्तसंतापहृत्।
पिनष्टु ममसंकटं विविधकर्मपाकोदितं।।
लुनातु भवबीजतः विविधरागदुःखांकुरान्।
पुनातु भवपंकतःजिनप! मां पवित्रः पुमान्।।9।।

जग संतापहरन मेरे सब, कर्माचल को चूर करो।
विविधकर्म के उदय जनित मम, भव संकट को चूर्ण करो।।
जन्म बीज से विविध रागमय, दुःखांकुर उन्मूल करो।
जिन! पवित्र! प्रभु भव कीचड़ से, मुझे निकाल पवित्र करो।।9।।

त्वदीयगुणरत्नराशि-जलधेर्गृहीत्वा गुणान्।
अनन्तजनता त्वदीयसदृशं पदं प्राप्नुयात्।।
तथापि गुणलेशमात्रमपि न व्ययं प्राप्तवान्।
ततो हि गुणसागर! त्रिभुवनैकनाथो महान्।।10।।

तव गुणरत्नसिंधु से भगवन्! अनंतगुण को लेकर के।
हे प्रभु! अनंतभविजन तुम, सदृश शिवपद को पा जाते।।
फिर भी गुण का लेश मात्र भी, नहिं कम होता तव गुण में।
हे त्रिभुवनपति! आप अतः, अनुपम अनंत गुण सागर हैं।।10।।

जिनेन्द्र! तवभक्तिभारवशतः फणी धारयन्।
फणातपनिवारणं महति कष्टकाले त्वयि।।
सुमेरुहृदयो जिनस्त्वदुपकारि नो तस्य तत्।
सुखाय भुवनैकबोधशुचिकेवलं त्वं श्रितः।।11।।

हे जिन! तेरी भक्ति भारवश, से धरणेन्द्र झटिति आकर।
तव उपसर्ग काल में शिर पर, फण को छत्र किया सुखकर।।
मेरुहृदय प्रभु! तव उपकारी, नहिं उनही को है सुखकर।
प्रभु को त्रिभुवन सूर्य ज्ञानकैवल्य प्राप्त हो गया प्रखर।।11।।

नमोऽस्तु जिनसूर्य! विश्वनुत! विश्वतत्त्वज्ञ! ते।
नमोऽस्तु जिनपार्श्वचंद्र! कुमुदैकबंधो! प्रभो।।
विधेहि करुणांबुधे! मयि कृपां भवात् पाहि च।
पुनीहि भगवंस्त्वमेव शरणागतं मां त्वरं।।12।।

नमोऽस्तु तुमको हे जिन भास्कर! जगनुत! विश्वतत्त्वज्ञानी।
नमोऽस्तु तुमको हे जिन पारसचंद्र! कुमुदबंधो स्वामी।।
करुणाह्रद! मुझ पर करुणा, करिये भव से रक्षा करिये।
हे भगवन्! शरणागत मुझको, आप हि झट पवित्र करिये।।12।

(अनुष्टुप् छंद)

पार्श्वनाथ! स्तवीमि त्वां, भक्त्या सिद्ध्यै त्रिशुद्धितः।
चतुर्ज्ञानमतिक्रांत - पंचमज्ञानलब्धये।।13।।

हे जिन पार्श्वप्रभो! भक्ती से, मन वच तन की शुद्धी से।
सकलसिद्धि अरु मुक्ति के लिए, करूँ तुम्हारी संस्तुति मैं।
चार ज्ञान से रहित पाँचवें, ज्ञान प्राप्ति के लिए नमूँ।
केवल ज्ञानमती दे दीजे, पंचमगति को शीघ्र गमूं।।13।।

।। इति पार्श्व जिनस्तुति।।

भजन

तर्ज –दीदी तेरा देवर दीवाना.....

जिनवरों में जिनवर हैं प्यारे, पारसनाथ वामा माता के दुलारे।
तेइसवें तीर्थंकर हमारे, पारसनाथ वामा माता के दुलारे।।टेक.।।
जय जय हो, जय जय पारसनाथ जी।।

वाराणसी में जनम जब हुआ, अश्वसेन महल जगमगाने लगा था।
जिनवर रवी का उदय जब हुआ, तो मिथ्यात्व का अंधकार भगा था।।
सांवरिया के गूँजे जयकारे, पारसनाथ वामा माता के दुलारे।।1।।

है यह तृतीय सहस्राब्दि प्रभु की, महोत्सव सभी मिल के उनका मनाओ।
मिली प्रेरणा ज्ञानमति माताजी की, बनारस नगर को पुनः अब सजाओ।।
गाएँ गीत नर-नारी सारे, पारसनाथ वामा माता के दुलारे।।2।।

हम सबका जीवन भी मंगलमयी हो, यही पार्श्वप्रभु से निवेदन है मेरा।
मिले "चन्दनामती" यह शक्ती सभी को, करें सर्वदा नाथ उत्सव ही तेरा।।
घर-घर गूंजे तेरे जयकारे, पारसनाथ वामा माता के दुलारे।।3।।

कल्याण मंदिर स्तोत्र (पार्श्वनाथ जिनस्तोत्र)

स्तोत्र रचयिता–**आचार्य श्री कुमुदचंद्र स्वामी**
हिन्दी पद्यानुवाद–**आर्यिका श्री चंदनामती माताजी**
अंग्रेजी अनुवाद–**प्रो. हीरालाल रसिकदास कापड़िया, सूरत**

कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि-भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम्।
संसारसागर-निमज्जदशेषजन्तु-पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य।।1।।
यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः,स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतो-स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये।।2।। (युग्मम्)

–कुसुमलता छंद–

पारस प्रभु कल्याण के मंदिर, निज-पर पाप विनाशक हैं।
अति उदार हैं भयाकुलित, मानव के लिए अभयप्रद हैं।।
भवसमुद्र में पतितजनों के, लिए एक अवलम्बन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।1।।
सागर सम गंभीर गुणों से, अनुपम हैं जो तीर्थंकर।
सुरगुरु भी जिनकी महिमा को, कह न सके वे क्षेमंकर।।
महाप्रतापी कमठासुर का, मान किया प्रभु खण्डन है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।2।।

श्लोकार्थ–हे विश्वगुणभूषण! कल्याणों के मंदिर, अत्यन्त उदार, अपने और औरों के पापों के नाशक, संसार के दुःखों से डरने वालों के अभयप्रद, अतिश्रेष्ठ, संसार-सागर में डूबते हुए प्राणियों के उद्धारक, श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के चरण-कमलों को नमस्कार करके गम्भीरता के समुद्र, जिसकी स्तुति करने के लिए विशालबुद्धि वाला देवताओं का गुरु स्वयं वृहस्पति भी समर्थ नहीं है, तथा जो प्रतापी कमठ के अभिमान को भस्मीभूत करने के लिए धूमकेतु अर्थात् सपुच्छग्रह (पुच्छलतारा) रूप में हैं, उन तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान का मुझ जैसा अल्पज्ञ स्तवन करता है यह आश्चर्य है!।।1।।2।।

ॐ ह्रीं भवसमुद्रतरणे पोतायमानकल्याणमंदिरस्वरूपाय श्री जिनाय नमः।।1।।
ॐ ह्रीं कमठस्य धूमकेतूपमाय श्रीजिनाय नमः।।2।।

The poet declares his intention of praising Lord Parshvanatha

Having bowed to the lotus feet of that Jinesvara (Tirthankar Lord Parshvanatha), who is the ocean of greatness. whom (even) the preceptor of Gops (Brihaspati) himself in spite of his supremely wide knowledge is unable to praise and who is a comet (or fire) in destroying the arrogance of Kamatha-the feet which are, the temple of bliss' which are sublime, which can desiroy sins and give safety to the terrified, which are faultless and (i.e. serva the purpose of) a life-boat for all beings sinking in the ocean of existence. I will indeed compose a hymn (in honour) of Him (1-2)

जलभय-निवारक

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप- मस्मादृशाः कथमधीश! भवन्त्यधीशाः।
धृष्टोऽपि कौशिकशिशुर्यदि या दिवान्धो, रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः?।।3।।

दिवाअन्ध ज्यों कौशिक शिशु नहिं सूर्य का वर्णन कर सकता।
वैसे ही मुझ सम अज्ञानी, कैसे प्रभु गुण कह सकता।।

सूर्य बिम्ब सम जगमग-जगमग, जिनवर का मुखमंडल है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।3।।

श्लोकार्थ–हे सप्तभयविनाशक देव! आपके गुणों का सामान्यरूप से भी वर्णन करने के लिए हम सरीखे मन्दबुद्धि वाले पुरूष कैसे समर्थ हो सकते है? अर्थात् नहीं हो सकते। जैसे जिसे दिन में स्वयं नहीं सूझता ऐसा उलूक (उल्लू) पक्षी का बच्चा धीट होकर भी क्या सूर्य के जगमगाते बिम्ब का वर्णन कर सकता है? अर्थात् कदापि नहीं कर सकता।।3।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्याधीशाय नमः।

He points out hts incompetency to under take such a work.

Oh Lord ! how can persons like us succeed in giving even a general outline of Thy nature? Is indeed a young-one of an owl blind by day capable of describing the orb of the hot-rayed one (sun). however presumptuous it may be? (3)

असमय निधन निवारक

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ! मर्त्यो, नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मा-न्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः?।।4।।

प्रलय अनंतर स्वच्छ सिन्धु में, भी ज्यों रत्न न गिन सकते।
वैसे ही तव क्षीणमोह के, गुण अनंत नहिं गिन सकते।।
उनके क्षायिक गुण कहने में, पुद्गल शब्द न सक्षम हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।4।।

श्लोकार्थ–हे अनंतगुणनिध! जैसे प्रलयकाल के समय सब पानी निकल जाने पर भी साफ दिखने वाले समुद्र के रत्नों की गणना नहीं हो सकती, वैसे ही मोहाभाव से प्रतिभा समान आपके गुणों की गिनती भी किसी भी मनुष्य द्वारा नहीं हो सकती; क्योंकि आपके गुण अनंतानंत हैं।।4।।

ॐ ह्रीं सर्वपीड़ानिवारकाय श्री जिनाय नमः।

He suggests that even the omniscien cannot enumerate Thy virtues

Oh Lord ! a mortal is surely incapable of counting Thy merits, in spite of his realizing them, owing to the annihilation of his infatution, (for) who can measure the heap of jewels, though obvious, in the ocean emptied of waters at the time of the destruction of the universe? (4)

प्रच्छन्नधन प्रदर्शक

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि, कर्तु स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य, विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः?।।5।।

शिशु निज कर फैलाकर जैसे, बतलाता सागर का माप।
वैसे ही हम शक्तिहीन नर, कर लेते हैं व्यर्थ प्रलाप।।
सच तो प्रभु गुणरत्नखान अरु, अतिशायी सुन्दर तन है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।5।।

श्लोकार्थ–हे गुणगणाधिप! जैसे शक्तिहीन अबोध बालक सहज स्वभाव से अपनी पतली छोटी-2 दोनों भुजाओं को पसारकर विशाल समुद्र के विस्तार (फैलाव) को बतलाने का असफल प्रयत्न करता है; ठीक वैसे

ही हे भगवन्! मैं महामूर्ख तथा जड़बुद्धि वाला होकर भी अपूर्व अपरिमित गुणों से सुशोभित आपके सच्चिदानंद स्वरूप की अमर्यादित महिमा का वर्णन करने के लिए उद्यत हो गया हूँ।।5।।

ॐ ह्रीं सुखविधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

He mentions one by one reasons of Commencing the hymn.

Oh Lord! I, though dull-witted, have started to sing a song of Thine, the mine of innumerable resplendent virtures. (For) does not even a child describe according to its own intellect the vastness of the ocean by stretching its arms? (5)

सन्तान सम्पत्ति प्रसाधक

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश! वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः।
जाता तदेव-मसमीक्षित-कारितेयं, जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि।।6।।

बड़े-बड़े योगी भी जिनके, गुणवर्णन में नहिं सक्षम।
तब अबोध बालक सम मैं, कैसे कर सकता भला कथन।।
फिर भी पक्षीसम वाणी से, करूँ पुण्य का अर्जन मैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।6।।

श्लोकार्थ–हे गुणगणालंकृतदेव! आपके जिन अपरिमित गुणों का वर्णन करने में बड़े-बड़े योगी और धुरन्धर विद्वान् तक अपने आपको असमर्थ मानते हैं; उन गुणों का वर्णन मुझ जैसा अल्पज्ञ मानव कैसे कर सकता है? अतः स्तवन प्रारंभ करने के पूर्व अपनी शक्ति को न तौल कर मैंने आपकी जो स्तुति प्रारंभ की है, वास्तव में मेरा यह प्रयत्न बिना विचारे ही हुआ, फिर भी मानवजाति की वाणी बोलने में असमर्थ पशु पक्षी अपनी ही बोली में बोला करते हैं, वैसे ही मैं भी अपनी बोली में आपकी प्रभावशालिनी, पुण्यदायिनी स्तुति करने के लिए प्रवृत्त होता हूँ।।6।।

ॐ ह्रीं अव्यक्तगुणाय श्रीजिनाय नमः।

Oh Lord! whene can it be within my scop to describe Thy merits, when even the masterly saints fail to do so? Therefore, this attempt of mine is a thoughtless act; or why, even birds do speak in their own tongue (6)

अभीप्सित जनाकर्षक

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन! संस्तवस्ते, नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोपहतपान्थजनान् निदाघे, प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि।।7।।

जलाशयों की जलकणयुत, वायू भी जैसे सुखकारी।
ग्रीष्मवायु से थके पथिक के, लिए वही है श्रमहारी।।
वैसे ही प्रभुनाम मंत्र भी, मात्र हमारा संबल है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।7।।

श्लोकार्थ–हे सातिशयनामन्! जैसे गीष्मकाल में असह्य प्रचण्ड धूप से व्याकुल राहगीरों को केवल कमलों से युक्त सरोवर ही सुखदायक नहीं होते; अपितु उन जलाशयों की जल-कण-मिश्रित ठंडी-ठंडी झकोरे भी सुखकर प्रतीत होती हैं। वैसे ही प्रभो! आपका स्तवन ही प्रभावशाली नहीं है, वरन आपके पवित्र 'नाम' का स्मरण भी जगत के जीवों को संसार के दारुण दुःखों से बचा लेता है। वास्तव में प्रभु के गुणगान और उनके नाम की महिमा अचिन्त्य है।।7।।

ॐ ह्रीं भवाटवीनिवारकाय श्रीजिनाय नमः।

God's name brings to an end the cycle of briths and deaths-

Oh Jina! Let Thy hymn whose sublimity is inconceivable he out of considaration; (For) even Thy name saves the (living beings of ihe) three worlds from (this) worldly existence. Even the cool breeze of a lotus-lake gives delight in summer to the travellers tormented by the immense heat (of the sun). (7)

कुपितोपदंशविनाशक

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिलीभवन्ति, जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्य-भाग, मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य।।8।।

जो नर मनमंदिर में अपने, प्रभु का वास कराते हैं।
उनके कर्मों के दृढ़तर, बंधन ढीले पड़ जाते हैं।।
चंदन तरु लिपटे भुजंग के, लिए मयूर वचन सम हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।8।।

श्लोकार्थ–हे कर्मबन्धनविमुक्त! जिनेश! जैसे जंगली मयूरों के आते ही मलयागिरि के सुगन्धित चन्दन के सघन वृक्षों में कोंडराकार लिपटे हुए भयंकर भुजङ्गों की दृढ़ कुण्डलियाँ तत्काल ढीली पड़ जाती हैं; वैसे ही संसारी जीवों के मन-मंदिरों के उच्च सिंहासनों पर आपके विराजमान होने पर-आपका 'नाम-मंत्र' स्मरण करने पर उनके ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों के कठोरतम बन्धन क्षणमात्र में अनायास ही ढीले पड़ जाते हैं।।8।।

ॐ ह्रीं कर्माहिबन्धमोचनाय श्रीजिनाय नमः।

He mentions the result of contemplating God.

Oh Lord! when Thou art enshrined in the heart by a living being, his firm fetters of Karmans, however tight they may become certainly loose within a moment like the serpent-bands of a sandal tree, immediately when a wild peacock arrives at its centre. (8)

सर्पवृश्चिकविष विनाशक

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र! रौद्रैरूपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि।
गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे, चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः।।9।।

ग्वाले के दिखते ही जैसे, चोर पशूधन तज जाते।
वैसे ही तव मुद्रा लखकर, पाप शीघ्र ही भग जाते।।
कैसा हो संकट समक्ष प्रभु, ही हरने में सक्षम हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।9।।

श्लोकार्थ–हे संकटमोचन! जिस तरह प्रचण्ड सूर्य, पराक्रमी भूपाल तथ बलिष्ठ गो-पालकों (ग्वालों) के दिखते ही भय से शीघ्र भागते हुए चोरों के पंजे से पशु-धन छूट जाता है, उसी तरह हे कृपालुदेव! आपकी वीतराग मुद्रा को देखते ही मानव महा-भयंकर सैकड़ों संकटों से तत्काल छुटकारा पाते हैं।

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवहरणाय श्रीजिनाय नमः।

He Points out advantage of seeing God.

Oh Lord of the Jinas! No sooner art Thou merely seen by persons, than they are indeed spontaneously released from hundreds of horrible adversities, like the beasts from the thieves that are fleeing away at the mere sight of (1) the sun resplendent with lustre, (2) the king or (3) the cowherd shining with vaiour. (9)

तस्कर भय विनाशक

त्वं तारको जिन! कथ भविनां त एव, त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून-मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः।।10।।

भवपयोधितारक हे जिनवर! तुम्हें हृदय में धारण कर।
तिर सकते हैं जैसे पवन, सहित तिरती है चर्ममसक।।
इसीलिए भवसागर तिरने, में कारण प्रभु चिन्तन है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।10।।

श्लोकार्थ–हे भवपयोधितारक! जिस तरह अपने भीतर भरी हुई पवन के प्रभाव से चर्म-मसक पानी के ऊपर तैरती हुई किनारे लग जाती है, उसी तरह मन-वचन-काय से आपको अपने मनमंदिर में विराजमान कर आपका ही रात दिन चिन्तवन करने वाले भव्यजन संसार सागर से वेखटके (बिना बाधा के) पार लग जाते हैं।

ॐ ह्रीं भवोदधितारकाय श्रीजिनाय नमः।

He suggests the advantage of consiant contemplation about God.

Oh Jina! How art Thou the saviour of mundane beings when (on the contrary) they themselves carry Thee in their hearts while crosing (the ocean of existence)? Or indeed, that a leatner bag (for holding water) floats in water, is certainly the effect of the air inside it. (10)

जलाग्नि भयविनाशक

यस्मिन् हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः, सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाऽथ येन, पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन?।।11।।

हे अनङ्गविजयिन्! हरिहर, आदिक भी जिससे हार गये।
कामदेव के वे प्रहार भी, तुम सम्मुख आ हार गये।।
दावानल शांती में जल सम, प्रभु इन्द्रियजित् सक्षम हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।11।।

श्लोकार्थ–हे अनङ्गविजयिन्। जिस काम ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि प्रख्यात पुरूषों को पराजित कर जनसाधारण की दृष्टि में प्रभावहीन बना दिया है। ये जितेन्द्रिय जिनेन्द्र! उसी काम (विषय वासनाओं) को आपने क्षण भर में नष्ट कर दिया, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि जो प्रचण्ड अग्नि को बुझाने की सामर्थ्य रखता है, वह जल जब समुद्र में पहुँचकर एकत्र हो जाता है तब क्या वह अपने ही उदर में उत्पन्न हुए बडवानल (सामुद्रिक अग्नि) द्वारा नहीं सोख लिया जाता? अर्थात् नहीं जला दिया जाता?।।11।।

ॐ ह्रीं हुतभुग्भयनिवारकाय श्रीजिनाय नमः।

He establishes the pre-eminence of Lord Parsva in virtue of his dispassion.

Even that Cupid (the husband of Rati) who baffled even Harr (Siva) and others was destroyed within a moment by Thee. (For), is not even that water which extinguishes (earthly) conflagrations swallowed up by the irresistible submarine fire? (11)

अग्निभयविनाशक

स्वा[1]मिन्नल्पगरिमाणमपि प्रपन्ना-स्त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन, चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः।।12।।

1. स्वाभिन्नतुल्यगरिमाणमपि इत्यपि पाठः।

है त्रैलोक्यतिलक! जिसकी, तुलना न किसी से हो सकती।
उन अनंत गुणभार को मन में, धर जनता कैसे तिरती।।
किन्तु यही आश्चर्य हुआ, तिरते जिनवर भाक्तिकजन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।12।।

श्लोकार्थ–हे त्रैलोक्यतिलक! जिसकी तुलना किसी दूसरे से नहीं की जा सकती, अथवा विश्व में जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, ऐसे अतिगौरव को प्राप्त (अनन्त गुणों के बोझीले भार से युक्त) आपको हृदय में धारण कर यह जीव संसार-सागर से अतिशीघ्र कैसे तर जाता है? अथवा आश्चर्य की बात है; कि महापुरूषों की महिमा चिन्तवन में नहीं आ सकती।।12।।

Power of the great is unimaginable.

Oh Master! How do the beings who resort to Thee soon cross the ocean of births (and deaths) with the greatest ease, when they carry in their heart, Thee, that excessively heavy (dignified)? Or why, prowess of the great is incomprehensible.(12)

जलमिष्टताकारक

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो, ध्वस्तास्तदा [1]वद कथं किल कर्मचौराः?
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिराऽपि लोके, नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी?।।13।।

प्रभो! क्रोध को प्रथम जीतकर, कर्मचोर कैसे जीता।
प्रश्न उठा मन में बस केवल, इसीलिए तुमसे पूछा।।
उत्तर आया हिम तुषार ज्यों, जला सके वन-उपवन है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।13।।

श्लोकार्थ–हे कोपदमन! यदि आपने अपने क्रोध को पहिले ही नष्ट कर दिया तो फिर आप ही बतलाइये कि आपने क्रोध के बिना कर्मरूपी चोरों का कैसे नाश किया? अथवा इस लोक में बर्फ (तुषार) एकदम ठंडा होने पर भी क्या हरे-हरे वृक्षों वाले वन-उपवनों को नहीं जला देता है? अर्थात् जला ही देता है।।13।।

ॐ ह्रीं कर्मचौरविध्वंसकाय श्री जिनाय नमः।

How couldst Thou indeed (manage to) destroy Karman-thieves, when Thou, oh Omnipresent one! hadst at the very outset annihilated anger? Or why, does not the mass of snow though cold burn forests having dark-blue (or fig) trees? (13)

शत्रुस्नेह जनक

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप, मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोषदेशे।
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य-दक्षस्य[2] सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः।।14।।

हे जिनवर! योगीजन तुमको, हृदयकोष के मध्य रखें।
वैसे ही ज्यों कमल कर्णिका, कमलबीज को संग रखे।।
शुद्धात्मा के अन्वेषण में, हृदय कमल ही माध्यम है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।14।।

श्लोकार्थ–हे तरण-तारण! महर्षिजन परमात्मस्वरूप आपको सदा अपने हृदयाम्बुज के मध्यभाग में अपने ज्ञानरूपी नेत्र द्वारा खोजते हैं, ठीक ही है कि जिस प्रकार पवित्र, निर्मल कान्तियुक्त कमल के बीज का उत्पत्तिस्थान

1. वत-इत्यपि पाठः। 2. सम्भवि इत्यपि पाठः।

कमल की कर्णिका ही है, उसी प्रकार शुद्धात्मा के अन्वेषण का स्थान हृदय-कमल का मध्यभाग ही है।।14।।

ॐ ह्रीं हृदयाम्बुजान्वेषिताय श्रीजिनाय नमः।

Oh Jina! theYogins always search after Thee, the supreme soul in the interior of their heart-lotus-bud. Or why, is there any other abode for the pure and the unsulliedly splendid lotusseed than the pericarp? (14)

चोरिकागतद्रव्य दायक

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन्, देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपल-भावमपास्य लोके, चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः।।15।।

हे जिनेश! तव ध्यानमात्र से, परमातम पद पाते जीव।
अग्निनिमित पा करके जैसे, सोना बनता शुद्ध सदैव।।
ऐसी शक्ती देने में निज, ज्ञानपुञ्ज ही सक्षम है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।15।।

श्लोकार्थ–हे अलौकिकज्ञानपुंज! जैसे संसार के जिन धातुओं से सोना बनता है, वे नाना प्रकार की धातुएँ तेज अग्नि के ताव से अपने पूर्व पाषाणरूप पर्याय को छोड़कर शीघ्र स्वर्ण हो जाती हैं, वैसे ही आपके ध्यान से संसारी जीव क्षणमात्र में शरीर छोड़कर परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं जन्ममरणरोगहराय श्रीजिनाय नमः।

Meditation of Jina leads to equality witw. Him.

Oh Lord of the Jina! by mediting upon Thee, mundane beings attain in a moment the supreme status leaving aside their body, as is the case in this world with pieces of ore which soon cease to be stones and become gold by the application of severe heat. (15)

गहन वन-पर्वत भय विनाशक

अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वं, भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्?।
एतत् स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि, यद् विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः।।16।।

जिस काया के मध्य भव्यजन, सदा आपका ध्यान करें।
उस काया का ही विनाश, क्यों करते हो भगवान्! अरे।।
अथवा उचित यही जो विग्रह-तन तजते बन भगवन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।16।।

श्लोकार्थ–हे देवाधिदेव! जिस शरीर के मध्य में स्थित करके भव्यजन सदैव आपका ध्यान करते हैं, उस शरीर को ही आप क्यों नाश करा देते हो? जिस शरीर में आपका ध्यान किया जाता है, आपको उसकी रक्षा करना चाहिए, परन्तु आप इससे विपरीत करते हैं। अथवा ठीक ही है, कि मध्यस्थ महानुभाव विग्रह (शरीर और कलह) को शांत कर देते हैं। अतः आप भी ध्यान के समय ध्याता के शरीर के मध्य में स्थित होकर विग्रह अर्थात् शरीर को नष्ट कर देते हो अर्थात् आपके ध्यान से शरीर छूट जाता है और आत्मा मुक्त हो जाती है।।16।।

ॐ ह्रीं विग्रहनिवारकाय श्रीजिनाय नमः।

Oh Jina! How is it that Thou destroyest that very body of the, Bhavyas in the interior of which they enshrine Thee? Or why, this is the nature of an arbitrator (one who remains impartial) : for, great personages bring the discord (the body) to an end (or this is the nature; for, great persons who are impartial, remove the quarrel). (16)

युद्धग्रह विनाशक

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या, ध्यातो जिनेन्द्र भवतीह भवत्प्रभावः।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं, किं नाम नो विषविकारमपाकरोति।।17।।

हे जिनेन्द्र! मंत्रादिक से, जैसे जल अमृत बन जाता।
विषविकार हरने में सक्षम, वह परमौषधि कहलाता।।
इसी तरह तुमको ध्याकर, तुम सम बनते योगीजन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।17।।

श्लोकार्थ–हे जिनेन्द्रदेव! जैसे पानी में ''यह अमृत है'' ऐसा विश्वास करने से मंत्रादि के संयोग से वह पानी भी विषविकारजन्य पीड़ा को नष्ट कर देता है। वैसे ही इस संसार में योगीजन अभेदबुद्धि से जब आपका ध्यान करते हैं तब वे अपनी आत्मा को आपके समान चिन्तवन करने से आप ही के समान हो जाते हैं।।17।।

ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपध्येयाय श्रीजिनाय नमः।

Efficacy of meditation is extra-ordinary.

Oh Lord of the Jinas! this soul, when meditated upon by the talented as non-distinct from Thee attains to Thy prowess in this world. Does not even water when looked upon as nectar verily, destroy the effect of poison? (17)

सर्पविष विनाशक

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि, नूनं विभो! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।
किं काचकामलिभिरीश! सितोऽपि शङ्खो, नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण?।।18।।

जैसे कामलरोगी को, दिखती पीली वस्तू सब हैं।
वैसे ही अज्ञानी को, प्रभुवर दिखते हरिहर सम हैं।।
हे त्रिभुवनपति! फिर भी वे, करते तुमको ही प्रणमन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।18।।

श्लोकार्थ–हे त्रिलोकाग्रशिखामणे! जिस तरह पीलिया रोग वाला व्यक्ति सफेद वर्ण वाले भी शंख को पीला और नीला आदि अनेक रंग वाला मानता है उसी प्रकार अन्य मतावलम्बी पुरूष रागद्वेषादि अन्धकार से रहित आपको ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि मान कर पूजते हैं।।18।।

ॐ ह्रीं परवादिदेवस्वरूपध्येयाय नमः।

Oh omnipotent Being? even the followers of the other (non Jaina) schools philosophy certainly resort to Thee alone, mistaking Thee for Hari, Hara-and others-Thee from whom ignorance has departed. For, Oh God! is not even a white conch mistaken for one having various colours by those who suffer form Kacha-kamali (eyediseases like colour-blindness)? (18)

नेत्ररोग विनाशक

धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा-दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ स महीरुहोऽपि, किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः।।19।।

हे प्रभु पुण्य गुणों के आकर! तव महिमा का क्या कहना।
तरु भी शोकरहित तुम ढिग हों, फिर मानव का क्या कहना।।
रवि प्रगटित होते ही जैसे, कमल आदि खिलते सब हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।19।।

श्लोकार्थ–हे पुण्यगुणोत्कीर्ते! धर्मोपदेश के समय आपकी समीपता के प्रभाव से मनुष्य की तो बात क्या, वृक्ष भी अशोक (शोकरहित) हो जाता है अथवा ठीक ही है कि सूर्य का उदय होने पर केवल मनुष्य ही विवोध (जागरण) को प्राप्त नहीं होते किन्तु कमल, पवार, तोरई आदि वनस्पति भी अपने संकोचरूप निद्रा को छोड़कर विकसित हो जाती हैं।

ॐ ह्रीं अशोकप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नमः।

Jina's viciniy averts Sorrow.

Leave aside the case of a human being (for) even a tree becomes free from sorrow (Asoka) on account of its being in Thy proximity at the time Thou preachest religion Aye, does not the world of living beings including even trees awake at the rise of the sun? (19)

उच्चाटनकारक

चित्रं विभो! कथमवाङ् मुखवृन्तमेव, विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश!, गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि।।20।।

हे मुनीश! सुरपुष्पवृष्टि, जो तेरे ऊपर होती है।
उनकी डंठल नीचे अरु, ऊपर पंखुरियाँ होती हैं।।
यही सूचना है कि भव्य के, प्रभु ढिग खुलते बन्धन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।20।।

श्लोकार्थ–हे धर्मसाम्राज्यनायक! देवों के द्वारा आपके ऊपर जो सघन पुष्पों की वृष्टि की जाती है, उनके डंठल नीचे की ओर और पांखुड़ी ऊपर की ओर रहती है, मानो वे डंठल इसी बात को सूचित करते हैं कि आप की निकटता से भव्यजनों के कर्मबंध नीचे हो जाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं।।20।।

ॐ ह्रीं पुष्पवृष्टिप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नमः।

Jina's presenee is miraculous.

Oh pervader of the universe! it is a matter of surprise that uninterrupted shower of celestial blossoms falls all around with their stalks turned down-wards; or why, (it is natural that) in Thy presence, oh master of saints? fetters (stalks) of the good-minded (flowers) (ought to) certainly fall down. (20)

शुष्कवनोपवनविकाशक

स्थाने गंभीरहृदयोदधिसम्भवायाः, पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परमसम्मदसङ्गभाजो, भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम्।।21।।

तव गंभीर हृदय उदधी से, समुत्पन्न जो दिव्यध्वनी।
अमृततुल्य समझकर भविजन, पीकर बनते अतुलगुणी।।

सबकी भव बाधा हरने में, जिनवर गुण ही साधन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।21।।

श्लोकार्थ–हे त्रिभुवनपते! आपके अति उदार अगाध हृदयरूपी समुद्र से उत्पन्न हुई दिव्य-वाणी(दिव्यध्वनि) को संसारी जीव सुधा समान बतलाते हैं, सो यह बात सोलह आना सच है क्योंकि धर्मानुरागी भव्यजन आपकी उस अमृततुल्यवाणी का पान करके निराकुल अक्षय अनंत सुख को प्राप्त करते हुअजर अमर पद को प्राप्त करते हैं।।21।।

ॐ ह्रीं अजरामरदिव्यध्वनिप्रातिहार्योप-शोभिताय श्रीजिनाय नमः।

Jina's sermon leads to immortality.

It is proper that Thy speech which springs up from the ocean of thy grave heart is spoken of as ambrosia; for, by drinking it, the Bhavyas who (hence) participate in the supreme joy, quickly attain the status of permanent youth and immortality. (21)

मधुर फलप्रदायक

स्वामिन् सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो, मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय, ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः।।22।।

देवों द्वारा ढुरते चामर, जब नीचे-ऊपर जाते।
विनयभाव वे भव्यजनों को, मानो करना सिखलाते।।
प्रातिहार्य यह प्रगटित कर, बन गये नाथ अब भगवन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।22।।

श्लोकार्थ–हे समवसरणलक्ष्मीसुशोभितदेव! जब देवगण आपके ऊपर चंवर ढोरते हैं तब वे पहिले नीचे की ओर झुकते हैं और बाद में ऊपर की ओर जाते हैं मानों वे जनता को यह ही सूचित करते हैं कि जिनेन्द्रदेव को झुक-झुक कर नमस्कार करने वाले व्यक्ति हमारे समान ही ऊपर को जाते हैं अर्थात् स्वर्ग या मोक्ष पाते हैं।।22।।

ॐ ह्रीं चामरप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नमः।

The poet describes the fourth Pratiharya.

Oh Lord! I think, the clusers of the sacred (or bright) celestial chowries (Chamaras) which first bend very low and then rise up proclaim that those pure-hearted persons who bow to (Thee) this master of the sages are sure to the highest grade. (22)

राज्यसन्मानदायक

श्यामं गभीरगिरिमुज्ज्वलहेमरत्न-सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चै, श्यामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम्।।23।

स्वर्ण-रत्नमय सिंहासन पर, श्यामवर्ण प्रभु जब राजें।
स्वर्ण मेरु पर कृष्ण मेघ लख, मानों मोर स्वयं नाचें।।
इसी तरह जिनवर सम्मुख, आल्हादित होते भविजन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।23।।

श्लोकार्थ–हे भगवन्! स्वर्णनिर्मित और रतनजड़ित सिंहासन पर विराजमान और दिव्यध्वनि को प्रकट करता हुआ आपका सांवला शरीर ऐसा जान पड़ता है जैसे स्वर्णमय सुमेरुपर्वत पर वर्षाकालीन नवीन काले मेघ गर्जना कर रहे हों। उन मेघों को जैसे मूयर बड़ी उत्सुकता से देखते हैं उसी प्रकार भव्य जीव आपको भी बड़ी उत्सुकता से देखते हैं।।23।।

ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्योपशोभिताय श्री जिनाय नमः।

The poet describes the fifth Pratiharya.

The Bhavyas here ardently look at Thee who art dark (in complexion), whose speech is grave and who art seated on a glitterirg golden lion-throne studded with jewels, as is the case with the Peacocks who eagerly look at the mightily thundering, dark and fresh cloud which has arisen to the summit of the golden mountain (Meru). (23)

शत्रुविजित राज्यप्रदायक

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन, लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग! नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि?।।24।

तव भामण्डल प्रभ से जब, तरुवर अशोक भी कान्तिविहीन।
हो जाता है तब बोलो क्यों?, भव्यराग नहिं होगा क्षीण।।
वीतरागता के इस अतिशय, से लाभान्वित भविजन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।24।।

श्लोकार्थ–हे वीतराग देव! जबकि आपके दैदीप्यमान भामण्डल की प्रभा से अशोक वृक्ष के पत्तों की लालिमा भी लुप्त हो जाती है अर्थात् आपकी समीपता से वृक्षों का राग (लालिमा) भी जाता रहता है तब ऐसा कौन सचेतन पुरूष है जो आपके ध्यान द्वारा या आपकी समीपता से वीतरागता को प्राप्त न होगा?।।24।।

ॐ ह्रीं भामण्डलप्रातिहार्यप्रभास्वतेश्री जिनाय नमः।

Even God's presence destroys passions.

The colour of leaves of Asoka Tree is obscured by the dark halo of the orb of Thy light (Bhamandala) whicn is spreading above Or why, oh passionless one! which animate being is not set free from attachment (and aversion) by the influence of Thy mere presence? (24)

असाध्य रोगशामक

भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन-मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन्निवेदयति देव! जगत्त्रयाय, मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते।।25।।

हे प्रभु! देवदुन्दुभी बाजे, जब त्रिलोक में बजते हैं।
तब असंख्य देवों-मनुजों को, वे आमंत्रित करते हैं।।
तज प्रमाद शिवपुर यात्रा, करना चाहें तब भविजन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।25।।

श्लोकार्थ–हे मुक्तिसार्थकवाहक! आकाश में जो देवों के द्वारा नगाड़ा बज रहा है वह मानो चिल्ला-चिल्लाकर तीनों लोकों के जीवों को सचेत ही कर रहा है कि जो मोक्षनगरी की यात्रा को जाना चाहते हैं वे प्रसाद छोड़कर भगवान पार्श्वनाथ की सेवा करें।।25।।

ॐ ह्रीं दुन्दुभिप्रातिहार्याय श्रीजिनाय नमः।

The seventh Pratiharya viz, the celestial drum like the previous objects is suggestive.

Oh God! I believe that the celestial drum which is resounding in the Sky announces to the three worlds:- Haloo, Haloo, shake off idleness, approach (this god) and resort to him the leader of the caravan leading to (proceeding towards) the city of the final emancipation. (25)

वचनसिद्धिप्रतिष्ठापक

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!, तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः[1]।
मुक्ताकलापकलितो[2] रुसितातपत्र-व्याजात्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः।।26।।

तीन छत्र हे नाथ! चन्द्रमा, मानो स्वयं बना आकर।
निज अधिकार पुनः लेने को, सेवा में वह है तत्पर।।
छत्रों के मोती बन मानो, ग्रह भी करते वंदन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।26।।

श्लोकार्थः–हे अपूर्वतेजपुञ्ज! आपने तीनों लोकों को प्रकाशित कर दिया, अब चन्द्रमा किसे प्रकाशित करे? इसीलिए वह तीन छत्र का वेष धारण कर अपना अधिकार वापिस लेने की इच्छा से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ है। छत्रों में जो मोती लगे हैं तो मानों चन्द्रमा के परिवार स्वरूप तारागण ही हैं।।26।।

ॐ ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यविराजिताय श्रीजिनाय नमः।

The poet delineates the eighth or the final Pratiharya .

Oh Lord! as the worlds have been (already) illuminated by thee, this moon accompanied by stars, (being thus) deprived of her authority has certainly approached Thee by assuming the three bodies in the disguise of the (three) canopies which are shining on account of their being adorned by a cluster of pearls. (26)

वैरविरोध विनाशक

स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन, कान्ति-प्रताप-यशसामिव सञ्चयेन।
माणिक्य-हेम-रजतप्रविनिर्मितेन, [3]सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि।।27।।

समवसरण में माणिक-सोने-चांदी के त्रय कोट बने।
माना नाथ! तुम्हारी कांती-कीर्ती और प्रताप इन्हें।।
जन्मजात वैरी के भी, हो जाते मैत्रीयुत मन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।27।।

श्लोकार्थ–हे प्रतापपुंज! समवसरण भूमि में आपके चारों ओर माणिक्य, स्वर्ण और चाँदी के बने तीन कोट हैं, वे मानो आपकी कान्ति, प्रताप और कीर्ति के वर्तुलाकार समूह ही हैं।।27।।

ॐ ह्रीं वप्रत्रयविराजिताय श्रीजिनाय नमः।

The poet depicts the triad of ramparts.

Oh (all) knowing being! Thou shinest in all directions on account of the triad of the ramparts beautifully made of rubies, gold and silver-the triad which is as it were the store of Thy lustre, prowess and glory, that fill up the three worlds and are amassed together. (27)

यशःकीर्तिप्रसारक

दिव्य-स्रजो जिन! नमत्त्रिदशाधिपाना-मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र[4],त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव।।28।।

प्रभु! इन्द्रों के नत मुकुटों की, पुष्पमालिका कहती हैं।
तव पद का सामीप्य प्राप्त कर, प्रगट हुई जो भक्ती है।।

1. विहिताधिकारः इत्यपि पाठः। 2. कलितोच्छ्वसितात इत्यपि पाठः। 3. शाल इत्यपि पाठः। 4. वाडपरत्र इत्यपि संभवति।

इसका अर्थ समझिये प्रभु से, जुड़े सभी अन्तर्मन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।28।।

श्लोकार्थ–हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार करते समय इन्द्रों के मुकुटों में लगी हुई दिव्य पुष्पमालायें आपके श्रीचरणों में गिर जाती हैं मानो वे पुष्पमालायें आपसे इतना प्रेम करती हैं कि उसके पीछे इन्द्रों के रत्ननिर्मित मुकुटों को भी वे छोड़ देती हैं। अर्थात् आपके लिए बड़े-बड़े इन्द्र भी नमस्कार करते हैं।

ॐ ह्रीं पुष्पमालानिषेवितचरणाम्बुजाय श्रीजिनाय नमः।

The poet praises God by resorting to a rhetorical inconsistency.

Oh Jina! celestial garlands of the bowing lords of heavens leave aside their diadems, (even) though (they are) studded with jewels and resort to Thy feet. Or indeed the good-minded (flowers) do not find pleasure any where else when there is Thy company. (28)

आकर्षणकारक

त्वं नाथ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि, यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्[1]।
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव, चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः।।29।।

हे कृपालु! जिस तरह अधोमुखि, पका घड़ा करता नदि पार।
कर्मपाक से रहित प्रभो! त्यों ही तुम करते भवि भवपार।।
इस उपकारमयी प्रकृति का, जिनमें अति आकर्षण है।।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।29।।

श्लोकार्थ–हे कृपालु देव! जिस तरह जल में अधोमुख (उलटा) पक्का घड़ा अपनी पीठ पर आरूढ़ मनुष्यों को जलाशय से पार कर देता है, उसी तरह भव-समुद्र से परान्मुख हुए आप अपने अनुयायी भव्यजनों को तार देते हो सो यह उचित ही है, परन्तु घड़ा तो जलाशय से वही पार कर सकता है जो विपाकसहित (पकाया हुआ) है; परन्तु आप तो विपाक (कर्मफलानुभव) रहित होकर तारते हैं। यह आपकी अचिन्त्य महिमा है।

ॐ ह्रीं संसारसागरतारकाय श्रीजिनाय नमः।

Even one who indirectly follows Jina i. e. directly follows Jainism gets liberated.

Oh Lord! though Thou hast turned away Thy face from the ocean of births (and deaths), yet Thou enablest the living beings clinging to Thy back to cross it Nevertheless, this is justifiable in the case of Thine that art the good governor of the world (Parthiva-nipa) this is also seen in the case of an earthen pot (Parthiva-nipa). But, this is strange that Thou art not subject to the effects of Karmans (Karma-vipaka-sunya) whereas that earthen pot is not so. (There is another interpretation possible. viz, it is strange that Thou enablest the beings to cross Samsara even when Thou art Karma-vipaka-sunya, but such is not the case with an earthen pot which is not annealed. (29)

असंभवकार्यसाधक

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वं, किं वाऽक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश!।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव, ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतुः[2]।।30।।

हे जगपालक! तुम त्रिलोकपति, हो फिर भी निर्धन दिखते।
अक्षरयुत हो लेखरहित, अज्ञानी हो ज्ञानी दिखते।।

1. पृष्ठिलग्नान् इत्यपि पाठः। 2. काशहेतुः इत्यपि पाठः।

शब्द विरोधी अलंकार हैं, प्रभु तो गुण के उपवन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।30।।

श्लोकार्थ–हे जगपालक! आप तीन लोक के स्वामी होकर भी निर्धन हैं। अक्षरस्वभाव होकर भी लेखनक्रियाारहित हैं; इसी प्रकार से अज्ञानी होकर भी त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती पदार्थों के जानने वाले ज्ञान से विभूषित हैं।

जिस प्रकार अलंकार में शब्द से विरोध प्रतीत होने पर भी वस्तुतः विरोध नहीं होता उसे विरोधाभास अलंकार कहते हैं। इस श्लोक में इसी अलंकार का आश्रय लेकर वर्णन किया गया है, उपर्युक्त अर्थ में दिखने वाले विरोध का परिहार इस प्रकार है–

हे भगवन्! आप त्रिलोकीनाथ हैं और कठिनाई से जाने जा सकते हैं। अविनश्वरस्वभाव वाले होकर भी आकार रहित (निराकार) हैं। अज्ञानी मनुष्यों की रक्षा करने वाले हैं। आप में सदा केवलज्ञान प्रकाशित रहता है।

ॐ ह्रीं अद्भुतगुणविराजितरूपाय श्रीजिनाय नमः।

Oh saviour of mankind (Jarapalaka)! though Thou art the master of the universe, yet Thou art poor (Durgata) Oh God! although Thy very nature is a letter (Akshara), yet Thou art not forming an alphabet (Thou art Alipi) Moreover, how is it that knowledge the acause ot the illumination of the universe permanently shines in Thee, even when Thou art ignorant (Ajnanavoti)?

These apparent contradictions can by removed be rendering the verse as follows:-

Oh saviour of mankind! as Thou art the master of the universe, Thou art realized with great difficulty (Durgata). Or, Oh saviour of mankind: (Janapa)! though Thou art the master of the universe. Thou art bald-headed (Alakadurgata). Or Though are the protector from the mundane existence (Durga) as Thy very nature is imperishable (Akshara). Thou art not enshrouded with karamans (Alipi). And there is no wonder if knowledge, the cause of the illumination of the universe, always shines in Thee, even when Thou redeemest the ignorant (Ajnan avati). (30)

शुभाशुभ प्रश्नदर्शक

प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषा-दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ! हता हताशो, ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा।।31।।

हे जितशत्रु! कमठ वैरी ने, तुम पर बहु उपसर्ग किया।
किन्तु विफल हो कर्म रजों से, कमठ स्वयं ही जकड़ गया।।
कर न सका कुछ अहित चूँकि, ध्यानस्थ हुए जब भगवन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।31।।

श्लोकार्थ–हे जितशत्रो! आपके पूर्वभव के बैरी 'कमठ' ने आप पर भारी धूल उड़ा कर उपसर्ग किया परन्तु वह धूलि आपके शरीर की छाया भी नष्ट नहीं कर सकी, प्रत्युत तिरस्कार की दृष्टि से किया गया उसका यह कार्य तो दूर रहे किन्तु विफल मनोरथ हताश वह दुष्ट कमठ का जीव ही रज-कणों (पापकर्मों) से कस कर जकड़ा गया।।31।।

ॐ ह्रीं रजोवृष्ट्यक्षोभ्याय श्रीजिनाय नमः।

Those who try to harass God are caught in their own trap.

Masses of dust which entirely filled up the sky and which were thrown up in rage by malevolent Kamatha failed to mar, oh Lord, even Thy loveliness. On the contrary, that very wretch whose hopes were shattered, was caught in this trap (of masses of dust). (31)

दुष्टता प्रतिरोधी

यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमं, भ्रश्यत्तडिन्मुस'ल मांसलघोरधारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे, तैनेव तस्य जिन! दुस्तरवारिकृत्यम्।।32।।

हे बलशाली! तुम पर मूसल-धारा दैत्य ने बरसाई।
भीम भयंकर बिजली की, गर्जना उसी ने करवाई।।
खोटे कर्म बंधे उसके पर, जिनवर तो निश्चल तन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।32।।

श्लोकार्थ–हे महाबल! आप पर मूसलाधार पानी वर्षा कर कमठ ने जो महान उपसर्ग किया था उससे आपका क्या बिगड़ा? परन्तु उसी ने स्वयं अपने लिए तलवार का घाव कर लिया। अर्थात् ऐसा खोटा कृत्य करने के कारण स्वयं उसने घोर पापकर्मों का बन्ध कर लिया।।32।।

ॐ ह्रीं कमठदैत्यमुक्तवारिधाराक्षोभ्याय श्रीजिनाय नमः।

Oh Jina! that very shower which was let loose (upon Thee) by the demon (kamatha)-the shower which was unfordable and excessively horrible and which was accompanied by a range of thundering mighty clouds. flashes of lightnings horribly emanating (from the sky) and terrible drops of water thick like a club served in his own (kamatha's) case the purpose of a bad sword. (32)

उल्कापातातिवृष्टयनावृष्टि निरोधक

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृति-मर्त्यमुण्ड-प्रालम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः, सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः।।33।।

केशविकृत मृतमुंडमाल धर, कंठ रूप विकराल किया।
अग्नीज्वाला फेंक-फेंककर, विषधर सम मुख लाल किया।।
क्रूर दैत्यकृत इन कष्टों से, भी नहिं प्रभु विचलित मन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।33।।

श्लोकार्थः–हे उपसर्गविजयिन्! कमठ के जीव ने आपको कठोर तपस्या से चलायमान करने की खोटी नीयत से जो विकराल पिशाचों का समूह आप की तरफ उपद्रव करने के लिए दौड़ाया था, उससे आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ हुआ परन्तु उस क्रूर कमठ के ही अनेक खोटे कर्मों का बन्ध हुआ, जिससे उसे भव-भव में असह्य यातनाएँ झेलनी पड़ीं।।33।।

ॐ ह्रीं कमठदैत्यप्रेषितभूतपिशाचाद्यक्षोभ्याय श्रीजिनाय नमः।

Even that very troop of the ghosts that was sent against Thee by him (kamatha)-the ghosts who were (round their necks) garlands (reaching their chests) of skulls of human beings, with dishavelled and erect hair and distorted features, and who were belching fire from their dreadful mouths became the cause of mundane sufferings in every birth in his (kamathas) case. (33)

भूतपिशाच पीड़ा तथा शत्रुभय नाशक

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य-माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः।
भक्त्योल्ल-सत्पुलकपक्ष्मल-देह-देशाः, पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः।।34।।

हे प्रभु! अन्यकार्य तज जो जन, तव पद आराधन करते।
भक्ति भरित पुलकित मन से, त्रय संध्या में तुमको यजते।।

धन्य-धन्य वे ही इस जग में, धन्य तुम्हारा दर्शन है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।34।।

श्लोकार्थ–हे त्रिलोकीनाथ! जो प्राणी भक्ति से उत्पन्न रोमांचों से पुलकित होकर सांसारिक अन्य कार्यों को छोड़कर तीनों सन्ध्याओं में विधिपूर्वक आपके चरणों की आराधना करते हैं संसार में वे ही धन्य हैं।।34।।

ॐ ह्रीं त्रिकालपूजनीयाय श्रीजिनाय नमः।

Those who devote their time in worshipping God are fortunate.

Oh Lord of the universe! blessed are those persons alone who, by leaving aside their other activities worship here the pair of Thy feet. Oh mighty one, thrice a day (dawn, noon and sunset) according to the prescribed rules, with the different parts of their bodies covered up with bristling horripliation of devotion. (34)

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश! मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मंत्र, किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति?।।35।।

इस भव सागर में प्रभु! तेरा, पुण्यनाम नहिं सुन पाये।
इसीलिए संसार जलधि में, बहुत दुःख हमने पाये।।
जिनका नाम मंत्र जपने से, खुल जाते भवबंधन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।35।।

श्लोकार्थ–हे संकटमोचन! इस अपार संसार-सागर में मैंने आपका नाम नहीं सुना अर्थात् आपकी उत्तम कीर्ति मेरे कानों द्वारा नहीं सुनी गई; क्योंकि निश्चय से यदि आपका नामरूपी पवित्र मन्त्र मैंने सुना होता तो क्या विपत्तिरूपी नागिन मेरे समीप आती? अर्थात् कभी न आती।।35।।

ॐ ह्रीं आपन्निवारकाय श्रीजिनाय नमः।

The poet commences self-examination and resorts to repeniance.

Oh Lord of the saints! I do not believe that Thou hast (Thy name has) ever come within the range of my ears, in this endless ocean of existence; otherwise, can the venemons reptile of disasters approach (me), after the pure incantation (in the form) of Thy appellation has been listened to (by me)? (35)

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव! मन्ये मया महित-मीहित-दान-दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां, जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम्।।36।।

हे जिन! पूर्व भवों में शायद, चरणयुगल तव नहिं अर्चे।
तभी आज पर के निन्दायुत, वचनों से मन दुखित हुए।।
अब देकर आधार मुझे, कर दो मेरा मन पावन है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।36।।

श्लोकार्थ–हे वरद! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले के अनेक जन्मों में मैंने मनोवांछित फलों के देने में पूर्ण समर्थ आपके पवित्र चरणों की पूजा नहीं की, इसी से इस जन्म में मैं मर्मभेदी तिरस्कारों का आगार (घर) बना हुआ हूँ।।36।।

ॐ ह्रीं सर्वपराभवहरणाय श्रीजिनाय नमः।

A worshipper of God can never suffer from humitiations and disappointments.

Oh God! I believe that Thy (pair of) feet capable of granting desired gifts has not been worshipped by me even in the previous births. That is why I have (now) become in the birth an object of humiliations and an abode of frustrated hopes. (36)

भूतग्रहादि बाधानाशक

नूनं न मोहतिमिरावृत-लोचनेन, पूर्वं विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः, प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते!।।37।।

मोहतिमिरयुत नैनों ने, प्रभु का अवलोकन नहीं किया।
इसीलिए क्षायिक सम्यग्दर्शन आत्मा में नहीं हुआ।।
जिनके दर्शन से भूतादिक, के कट जाते संकट हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।37।।

श्लोकार्थ–हे कष्टनिवारकदेव! मोहरूपी सघन अन्धकार से आच्छादित नेत्र सहित मैंने पूर्वजन्मों में कभी एक बार भी निश्चयपूर्वक आपको अच्छी तरह नहीं देखा, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है! यदि मैंने कभी आपका दर्शन किया होता तो उत्कट संसारपरम्परा के वर्द्धक मर्मभेदी अनर्थ मुझे क्यों दुखी करते? क्योंकि आपके दर्शन करने वालों को कभी कोई भी अनर्थ दुःख नहीं पहुँचा सकता।।37।।

ॐ ह्रीं सर्वानर्थमथनाय श्रीजिनाय नमः।

The sight of God averts adversities.

It is certain, Oh Omnipotent one! that Thou hast not been formerly seen even once by me whose eyes are blinded by the darkness of infatuation. For, otherwise, how can these misfortunes which pierce the vital parts of the heart and which are quickly appearing in a continuous succession, make me miserable? (37)

असह्यकष्ट निवारक

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि, नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं, यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।।38।।

देखा सुना और पूजा भी, पर न प्रभो! तव ध्यान दिया।
भक्तिभाव से हृदय कमल में, नहिं उनको स्थान दिया।।
इसीलिए दुखपात्र बना, अब मिला भक्ति का साधन है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में मेरा शत शत वन्दन है।।38।।

श्लोकार्थ–हे जनबान्धव! पहिले किन्हीं जन्मों में मैंने आपका नाम भी सुना हो, आपकी पूजा भी की हो तथा आपका दर्शन भी किया हो तो भी यह निश्चय है कि मैंने भक्तिभाव से आपको अपने हृदय में कभी भी धारण नहीं किया, इसीलिए तो अब तक इस संसार में मैं दुःखों का पात्र ही बना रहा,क्योंकि भावरहित क्रियाएँ फलदायक नहीं होतीं।।38।।

ॐ ह्रीं सर्वदुःखहराय श्रीजिनाय नमः।

Prayers eic, void of sincerity are fruittess.

Oh philanthrophist! though I have even heard, worshipped and seen Thee, yet I Have not reverentallw enshrined Thee in my heart. Hence I have become an object of miseries; for, actions. (such as hearing worshipping and seeing The) performed without sincerity (Bhava) do not yield fruits. (38)

सर्वज्वरशामक

त्वं नाथ! दुःखिजनवत्सल! हे शरण्य! कारुण्यपुण्यवसते! वशिनां वरेण्य।
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय, दुखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि।।39।।

हे दयालु! शरणागत रक्षक, तुम दुःखितजनवत्सल हो।
पुण्यप्रभाकर इन्द्रियजेता, मुझ पर भी अब दया करो।।
जग के दुःखांकुर क्षय में, जिनकी भक्ती ही माध्यम है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।39।।

श्लोकार्थ–हे दयालुदेव! आप दीनदयाल, शरणागतप्रतिपाल, दयानिधान, इन्द्रियविजेता, योगीन्द्र और महेश्वर हैं, अतः सच्ची भक्ति से नम्रीभूत मुझ पर दया करके मेरे दुखांकुरों के नाश करने में तत्परता कीजिये।।39।।

ॐ ह्रीं जगज्जीवदयालवे श्रीजिनाय नमः।

The poet prays to God to the gracious.

Oh Lord, the cherisher of affection for the miserable! the protector! the hoty abode of compassion (or residence of mercy and merit) ! the best amongst those who have controlled their senses! great God! have pity on me who devotedly bow to Thee; and show readiness to destroy sprouts of my sufferings. (39)

विषमज्वर विघातक

निःसख्यसारशरणं शरणं शरण्य-मासाद्य सादितरिपु[1]प्रथितावदानम्।
त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानवन्ध्यो, बन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन! हा हतोऽस्मि।।40।।

हे त्रिभुवन पावन जिनवर! अशरण के भी तुम शरण कहे।
कर न सकें यदि भक्ति तुम्हारी, समझो पुण्यहीन हम हैं।
जिनका पुण्य नाम जपने से, होता नष्ट विषम ज्वर है।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।40।।

श्लोकार्थ–हे भुवनपावन! आपके अशरणशरण, शरणागतप्रतिपालक, कर्मविजेता और प्रसिद्ध प्रभावशाली चरण-कमलों को प्राप्त करके भी यदि मैंने उनका ध्यान नहीं किया तो मुझ सरीखा अभागा कोई नहीं।।40।।

ॐ ह्रीं सर्वशांतिकराय श्रीजिनचरणाम्बुजाय नमः।

Even after having attained as a refuge Thy lotus-feet, which are the resting place of innumerable exellences, which are an object fit to be resorted to and the which has destroyed the famous prowess of foes (like attachment or which has destroyed enemies and which is well-known for purity). If I am lacking in the profound religious meditation, oh purifier of the univeres (or pure in the worlds)! I am fit to be killed and hence alas, I am undone. (40)

अस्त्र-शस्त्र विघातक

देवेन्द्रवन्द्य! विदिताखिलवस्तु-सार! संसारतारक! विभो! भुवनाधिनाथ!।
त्रायस्व देव! करूणाह्रद! माँ पुनीहि, सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः।।41।।

हे देवेन्द्रवंद्य! सब जग का, सार तुम्हीं ने समझ लिया।
हे भुवनाधिप नाथ! तुम्हीं ने, जग को सच्चा मार्ग दिया।।
जनमानस की रक्षा करते, दयासरोवर भगवन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।41।।

1. 'सादितरिपु' इति भिन्नं पदं वा।

श्लोकार्थ–हे देवेन्द्रवन्द्य सर्वज्ञ, जगततारक, त्रिलोकीनाथ, दयासागर, जिनेन्द्रदेव! आज मुझ दुखिया की रक्षा करो तथा अतिभयानक दुःख सागर से बचाओ।

ॐ ह्रीं जगन्नायकाय श्रीजिनाय नमः।

Oh object of worship for the lords of gods! Conversant with the essence of every object! Saviour from this worldly existence (the ferryman that enables to cross the ocean of existence)! Pervader of the Universe! Ruler of the world! save me, oh God! oh reservoir of compassion! purify me who am now-a-days sinking in the terrifying sea of sufferings. (41)

स्त्रीसंबंधि समस्त रोगशामक

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां, भक्तेः फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य! भूयाः, स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि।।42।।

नाथ! तुम्हारे चरणों की, स्तुति में यह अभिलाषा है।
भव-भव में तुम मेरे स्वामी, रहो यही आकांक्षा है।।
जिन पद के आराधन से, मिटते सब रोग विघन घन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।42।।

श्लोकार्थ–हे नाथ! आपकी स्तुति कर मैं आपसे अन्य किसी फल की चाह नहीं रखता, केवल यही चाहता हूँ कि भव-भवान्तरों में सदा आप ही मेरे स्वामी रहें, जिससे कि मैं आपको अपना आदर्श बनाकर अपने को आपके समान बना सकूँ।।42।।

ॐ ह्रीं अशरणशरणाय श्रीजिनाय नमः।

Oh Lord! if there can be any reward whatsoever for my having been devoted to Thy lotus-feet for a series of births, mayest Thou yield protection to me who have Thee as the only refuge (or Thee alon as the refuge) and mayest Thou alone be my master in this world and even in my future life (incarnations). (42)

बन्धनमोचक एवं वैभववर्धक

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र! सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः, ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्याः।।43।।

(आर्याछंद)

जननयनकुमुदचन्द्र-प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा।
ते विगलितमलनिचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते।।44।।

हे जिनेन्द्र! तव रूप एकटक, देख-देख नहिं मन भरता।
रोम-रोम पुलकित हो जाता, जो विधिवत् सुमिरन करता।।
दिव्य विभव को देने वाले, रहते सदा अकिंचन हैं।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वन्दन है।।43।।
जो जन नेत्र 'कुमुद' शशि की, किरणों का दिव्य प्रकाश भरें।
स्वर्गों के सुख भोग-भोग, कर्मों का शीघ्र विनाश करें।।
मोक्षधाम का द्वार खोलकर, सिद्धिप्रिया का वरण करें।
ऐसे पारस प्रभु के पद में, मेरा शत शत वंदन है।।44।।

भावार्थः–हे जितेन्द्रिय जिनेश्वर! जो भव्यजन उपरोक्त प्रकार से प्रमादरहित होकर आपके देदीप्यमान मुखारबिन्द की ओर टकटकी लगाकर और सघन तथा उठे हुए रोमांचरूपी वस्त्र पहिन कर विधिपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं, वे भव्य देवलोक की सुखकर विविध सम्पत्तियों को भोग कर अष्टकर्मरूपी मल को आत्मा से दूर कर अविलम्ब अविनाशी मोक्ष सुख पाते हैं।।43।।44।।

ॐ ह्रीं चित्तसमाधिसुसेविताय श्रीजिनाय नमः।।43।।

ॐ ह्रीं परमशांतिविधायकाय श्रीजिनाय नमः।।44।।

The poet sume up the paneggric and suggests his name.

Oh Lord of the Jinas! Oh Omni-potent Being! the Bhavyas who compose Thy hymn in accordance with the prescribed rules, with their mind thus concentrated, with portions of their body thickly covered up with hair standing, erect and with their eyes (attention) fixed upon the pure face-lotus of Thy image, and whose heap of dirt is destroyed, attein in no time. Oh Moon (in opening) the night-lotuses (Kamuda-Chandra) (in the from) of eyes of human beings! salvation after enjoying the exceedingly brilliant prosperities of heaven. (43-44)

।। इति श्री कल्याणमंदिर स्तोत्रं समाप्तम्।।

भजन

नाम तिहारा तारनहारा कब तेरा दर्शन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर तू कितना सुन्दर होगा।।

जाने कितनी माताओं ने कितने सुत जन्में हैं।
पर इस वसुधा पर तेरे सम कोई नहीं बने हैं।।
पूर्व दिशा में सूर्य देव सम सदा तेरा सुमिरन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।1।।

पृथ्वी के सुन्दर परमाणु, सब तुझमें ही समा गए।
केवल उतने ही अणु मिलकर, तेरी रचना बना गए।।
इसीलिए तुम सम सुन्दर नहिं, कोई नर सुन्दर होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।2।।

मन में तव सुमिरन करने से पाप सभी नश जाते हैं।
यदि प्रत्यक्ष करें तव दर्शन, मनवांछित फल पाते हैं।।
आज ''चंदनामती'' प्रभू का अनुपम गुण कीर्तन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर तू कितना सुन्दर होगा।।3।।

श्री पार्श्वनाथ चालीसा

रचयिता–कवि चन्द्र जैन

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करूँ प्रणाम।
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम।।
सर्व साधु और सरस्वती, जिन मंदिर सुखकार।
अहिच्छत्र और पार्श्व को, मन मंदिर में धार।।

पारसनाथ जगत हितकारी, हो स्वामी तुम व्रत के धारी।
सुर नर असुर करें तुम सेवा, तुम ही सब देवन के देवा।।
तुमसे करम शत्रु भी हारा, तुम कीना जग का निस्तारा।
अश्वसेन के राजदुलारे, वामा की आँखों के तारे।
काशी जी के स्वामि कहाये, सारी परजा मौज उड़ाये।
इक दिन सब मित्रों को लेके, सैर करन को वन में पहुँचे।
हाथी पर कसकर अम्बारी, इक जंगल में गई सवारी।
एक तपस्वी देख वहाँ पर, उससे बोले वचन सुनाकर।
तपसी! तुम क्यों पाप कमाते, इस लक्कड़ में जीव जलाते।
तपसी तभी कुदाल उठाया, उस लक्कड़ को चीर गिराया।
निकले नाग-नागनी कारे, मरने के थे निकट बिचारे।
रहम प्रभू के दिल में आया, तभी मंत्र नवकार सुनाया।
मरकर वो पाताल सिधाये, पद्मावति धरणेन्द्र कहाये।
तपसी मरकर देव कहाया, नाम कमठ ग्रंथों में गाया।
एक समय श्री पारस स्वामी, राज छोड़कर वन की ठानी।
तप करते थे ध्यान लगाए, इक दिन कमठ वहाँ पर आये।
फौरन ही प्रभु को पहिचाना, बदला लेना दिल में ठाना।
बहुत अधिक बारिश बरसाई, बादल गरजे बिजली गिराई।
बहुत अधिक पत्थर बरसाये, स्वामी तन को नहीं हिलाये।
पद्मावति धरणेन्द्र भी आये, प्रभु की सेवा में चित लाये।
पद्मावति ने फन फैलाया, उस पर स्वामी को बैठाया।
धरणेन्द्र ने फन फैलाया, प्रभु के सर पर छत्र बनाया।
कर्मनाश प्रभु ज्ञान उपाया, समोशरण देवेन्द्र रचाया।
यही जगह अहिच्छत्र कहाये, पात्रकेशरी जहाँ पर आये।
शिष्य पाँच सौ संग विद्वाना, जिनको जाने सकल जहाना।
पार्श्वनाथ का दर्शन पाया, सबने जैन धरम अपनाया।
अहिच्छत्र श्री सुन्दर नगरी, जहाँ सुखी थी परजा सगरी।
राजा श्री वसुपाल कहाये, वो इक दिन जिनमंदिर बनवाये।
प्रतिमा पर पालिश करवाया, फौरन इक मिस्त्री बुलवाया।
वह मिस्तरी मांस खाता था, इससे पालिश गिर जाता था।

मुनि ने उसे उपाय बताया, पारस दर्शन व्रत दिलवाया।
मिस्त्री ने व्रत पालन कीना, फौरन ही रंग चढ़ा नवीना।
गदर सतावन का किस्सा है, इक माली को यों लिक्खा है।
माली इक प्रतिमा को लेकर, झट छुप गया कुँए के अंदर।
उस पानी का अतिशय भारी, दूर होय सारी बीमारी।
जो अहिच्छत्र हृदय से ध्यावे, सो नर उत्तम पदवी पावे।
पुत्र संपदा की बढ़ती हो, पापों की इक दम घटती हो।
है तहसील आंवला भारी, स्टेशन पर मिले सवारी।।
रामनगर एक ग्राम बराबर, जिसको जाने सब नारी नर।
चालीसे को 'चन्द्र' बनाये, हाथ जोड़कर शीश नवाये।

।।सोरठा।।

नित चालीसहिं बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेय सुगंध अपार, अहिच्छत्र में आय के।।
होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो।
जिसके नहिं संतान, नाम वंश जग में चले।।

भजन

तर्ज-कांची हो कांची रे.....

आया है आया पार्श्वनाथ का महोत्सव, करना है काम दिल खोल के।
आया तृतीय सहस्राब्दी महोत्सव, पारस प्रभू की जय बोल के।।टेक.।।
तेइसवें तीर्थंकर पारसनाथ प्रभो,
अश्वसेन वामा माँ के लाल प्रभो।
माता-पिता धन्य हुए, जिनवर के जन्म से,
बैठे थे भण्डार खोल के।। आया है.....।।1।।
चिन्तामणि संकटमोचन कहते सभी,
पारस प्रभु की भक्ति मन से करते सभी।
जिसको जब कष्ट हुआ, भक्ती से नष्ट हुआ,
पारस की जय-जय बोल के।।आया है.....।।2।।
अपने-अपने नगरों में भी उत्सव करो,
पारसनाथ प्रभू का महोत्सव करो।
तीर्थ बनारस के बाद, अहिच्छत्र पार्श्वनाथ,
सम्मेदगिरि की जय बोल के।।आया है.....।।3।।
गणिनीप्रमुख ज्ञानमती माताजी हैं,
ऐसी प्रेरणाएं सदा देती हैं वे।
''चन्दना'' तभी हमें, ज्ञान प्राप्त होता है,
बढ़ते कदम सबको जोड़ के।।आया है.....।।4।।

भगवान पार्श्वनाथ दशभव की काव्यकथा

प्रस्तुति–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

प्रिय पाठकों! जैनधर्म के 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के संघर्षशील जीवन से आप सभी को परिचित कराने हेतु यहाँ पर उनके दश भवों का कथानक काव्य में प्रस्तुत किया जा रहा है। मरुभूति की पर्याय से उन्होंने किस प्रकार अपने भाई कमठ के द्वारा किये गये उपसर्गों को सहन कर-करके स्वयं को तीर्थंकर पार्श्वनाथ बनाया, यह बात इस काव्यनाटिका के द्वारा दर्शायी गयी है। पार्श्वनाथ के जन्मकल्याणक, मोक्षकल्याणक आदि अवसरों पर इस नाटिका का मंचन कराने से इसका प्रभाव साक्षात्रूप में सामने आएगा। दश पात्रों के द्वारा एक-एक भवों की मोनो ऐक्टिंग भी प्रस्तुत कराई जा सकती है।

(1)

तर्ज–चाँद मेरे आ जा रे.....

सुनो इक कथा सुनाते हैं-2,
पारस प्रभू के दस-दस भवों की गाथा गाते हैं।।सुनो.।।
मरुभूति-कमठ दो भाई, इक राजा के मंत्री थे।
दिन और रात के सदृश, दोनों ही भिन्न मती थे।।
पुण्य और पाप कमाते हैं,
दोनों ही अपने-अपने करम के फल को पाते हैं।।सुनो.।।1।।
मरुभूति के संग इक दिन, राजा चले रणभूमि में।
तब मंत्री कमठ को सौंपा, था राज्यभार सब नृप ने।।
मौज तब कमठ उड़ाते हैं,
अरविंद राजा के राज्य में अन्याय चलाते हैं।।सुनो.।।2।।
इक दिन जब कमठ ने देखा, मरुभूति की सुन्दर भार्या।
अतिकामुक हो तब उसने, षड्यंत्र से पास बुलाया।।
प्यार से गले लगाते हैं,
अपने दुराचारों से सती को भ्रष्ट बनाते हैं।।सुनो.।।3।।
राजा जब आये वापस, यह बात पड़ी कानों में।
तब कमठ का सिर मुंडवाकर, मुँह काला किया उन्होंने।।
पाप का फल वे पाते हैं,
पापी कमठ को राजा राज्य से बाहर भगाते हैं।।सुनो.।।4।।
हो दुखी कमठ इक तापस, के आश्रम में जा पहुँचा।
''चन्दनामती'' तब उसको, मरुभूति मनाने पहुँचा।।
क्रोध उस पर दिखलाते हैं,
पत्थर शिला से मरुभूति को वे मार गिराते हैं।।सुनो.।।5।।

एक तपस्वी के द्वारा हिंसा का यह कुकृत्य देखकर वहाँ के तापसियों ने कमठ को आश्रम से निकाल दिया। तब वह जाकर एक जंगल में भीलों के साथ मिलकर चोरी, डकैती करने लगा फिर तो कमठ का जीवन

पूर्णरूप से व्यसन समन्वित हो गया।

पुनः अगले भव में दोनों भाई कहाँ-कहाँ जन्म लेते हैं, सो देखें–अर्थात् मरुभूति मरकर हाथी हुआ और कमठ का जीव कुक्कुट सर्प हो गया।

(2)

तर्ज –झुमका गिरा रे.....

हाथी आया रे,
जंगल में हा हाकार मचाता हाथी आया रे।।टेक.।।
सल्लकि वन में एक बार, अरविंद मुनि का संघ आया।
वज्रघोष हाथी ने वहाँ, हिंसा का ताण्डव दिखलाया।।
कुछ मन में आया रे,
वह हाथी फिर आचार्य के सम्मुख शान्ती पाया रे।।1।।
श्री अरविंद सूरि ने अपने, अवधिज्ञान से जान लिया।
मरुभूति मंत्री ही हाथी रूप में है पहचान लिया।।
उसको समझाया रे,
मुनि ने उसको समझाकर अणुव्रत ग्रहण कराया रे।।2।।
नदी में पानी पीते इक दिन, हाथी फंस गया कीचड़ में।
हाथी को डस लिया वहाँ, इक कुक्कुट सर्प कमठचर ने।।
स्वर्ग को पाया रे,
तब हाथी मरकर स्वर्ग में देव की योनि पाया रे।।3।।

इस प्रकार शांत और वैराग्यमयी परिणामों से हाथी ने मुनिराज के उपदेश को सुना और उसे अपने पूर्व जन्म का जातिस्मरण हो गया। वह सोचने लगा कि अरे! मैं तो अपने भाई कमठ से क्षमा मांगकर उसे वापस बुलाने गया था और उस भाई ने ही मेरी हत्या कर दी। मैं उसके मोह में मरकर इस पशु योनि में आ गया। ओह! अब मुझे इस पर्याय से छूटना है। मुनि ने उससे कहा–अरे गजराज! पिछले जन्म में तुम मेरे अत्यन्त प्रिय मंत्री थे, तुम्हारे वियोग में बहुत दिन तक मैं दुःखी रहा, फिर एक दिन मैं महल की छत पर बैठा आकाश की ओर देख रहा था कि उसमें मुझे बादलों से बना एक सुन्दर सा मंदिर दिखा। मैंने उसी तरह का मंदिर बनवाने की भावना से ज्यों ही कागज-कलम उठाया कि इसका चित्र बना लूँ, तुरंत वह मंदिर का दृश्य नष्ट हो गया। ऐसी बादलों की क्षणिक स्थिति देखकर मैंने विचार किया कि इसी प्रकार यह मेरा जीवन भी क्षण भंगुर है, न जाने कब नष्ट हो जावे, अतः मैंने दीक्षा धारण कर ली।

यह सुनकर हाथी ने अणुव्रत धारण कर समता भाव से मरण कर बारहवें स्वर्ग में देव पद प्राप्त कर लिया और कुक्कुट सर्प हिंसक परिणामों से मरकर नरक में चला गया। वह देव स्वर्ग में कैसे जीवन व्यतीत करता है पुनः कहाँ जाकर जन्म धारण करता है, यह जानना है–

(3)

तर्ज –कभी तू.....

कभी मंदिर में जाते हैं, कभी पूजा रचाते हैं,
कभी देवों के संग में स्वर्गों में आनन्द मनाते हैं।
जय जय जिनवर स्वामी, जय हो अन्तर्यामी-2।।टेक.।।

मेरु सुदर्शन के सोलह, चैत्यालय का वंदन करते।
नन्दीश्वर में जा बावन, चैत्यालय का अर्चन करते।।चैत्यालय का.....
प्रभु पंचकल्याणक में, जा भक्ति भाव करते।
चारण ऋद्धिधारी मुनि का, उपदेश श्रवण करते।।कभी.।।1।।
शशिप्रभ देव स्वर्ग के नन्दन, वन में क्रीड़ा करते हैं।
अपनी सुन्दरियों के संग, वैभव में रमते हैं।।वैभव में रमते हैं.....
सब देव वहाँ उसका, आदर भी करते हैं।
उसके सम्यक्त्व तथा तप का, अनुमोदन करते हैं।।कभी.।।2।।
पुण्य-पाप की महिमा देखो, देव यहाँ सुख भोग रहा।
साँप बेचारा पाप के कारण, नरक में जा दुख भोग रहा।।नरक में.....
दो भाई का किस्सा, कैसा रोमांचक है।
पारस प्रभु के भव-भव का, यह सत्य कथानक है।।कभी.।।3।।

इस प्रकार स्वर्ग में सोलह सागर की आयु भोगकर वह शशिप्रभ देव अपने पुण्य प्रभाव से जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में स्थित विजयार्ध पर्वत पर लोकोत्तम नामक नगर के विद्याधर राजा की रानी के गर्भ में आ गया। वहाँ जन्म लेकर वह अग्निवेग नाम का विद्याधर राजा हुआ। राज्य सम्पदा को भोगते हुए सहसा भरी जवानी में ही एक दिन समाधिगुप्त मुनिराज के पास वह दर्शन करने गया। धर्म का उपदेश सुनकर अग्निवेग विद्याधर क्या करता है यह देखें–

इधर कमठचर नारकी नरक से निकलकर हिमगिरि पर्वत की गुफा में अजगर सर्प हो गया फिर आगे क्या होता है? देखें–

(4)

सब छोड़ कुटुम्ब परिवार, राज दरबार, बने मुनिराजा,
जोड़ा शिवपथ से नाता।।
मुनि का उपदेश श्रवण करके।
वैराग्य भाव धारण करके।।
गुरु से मांगी दीक्षा भवजलधि जिहाजा,
जोड़ा शिवपथ से नाता।।1।।
लौकिक विद्या सब छोड़ दिया।
शिवपथ से नाता जोड़ लिया।।
आध्यात्मिक विद्या पाकर हुए महाराजा,
जोड़ा शिवपथ से नाता।।2।।
घोरातिघोर तप करना है।
उपसर्ग परीषह सहना है।।
हिमगिरि पर्वत की गुफा में ध्यान लगा था,
जोड़ा शिवपथ से नाता।।3।।
वहाँ अजगर सर्प ने आकर के।
मुनिवर को निगल लिया उसने।।
फिर भी मुनिराज के तप में हुई न बाधा,
जोड़ा शिवपथ से नाता।।4।।

मुनिवर ने मरण समाधि किया।
स्वर्गों का वैभव प्राप्त किया।।
मन में अजगर प्रति शत्रुभाव नहिं आता,
जोड़ा शिवपथ से नाता।।5।।

समताभाव से सल्लेखनापूर्वक मरण करके मुनिराज तो सोलहवें स्वर्ग में देव हो गये और अजगर कुटिल भावों से मर कर छठे नरक में उत्पन्न हुआ। सुख और दुःख का यह खेल अनादिकाल से प्रत्येक प्राणी खेल रहा है। देखो! अब मुनिराज स्वर्ग के देवता बनकर वहाँ कैसे जीवन बिताते हैं तथा बेचारा अजगर सर्प का जीव नरक में कैसा दुःख भोग रहा है।

स्वर्ग के सभी देवता उस नये देव को देखकर प्रसन्नतापूर्वक बोलते हैं–

(5)

तर्ज –माई रे माई.....

देखो इक मुनिराज मरणकर, स्वर्ग हमारे आये।
चलो इन्हें हम नये-नये, मंदिर के दर्श करायें।।
जय हो सिद्धप्रभू की जय, जय हो सिद्धप्रभू की जय.।।

पूर्व जन्म में कष्ट इन्होंने, बहुत सहे हैं भाई।
लेकिन इनके धैर्य के आगे, शक्ति न कुछ टिक पाई।।
मरुभूति से लेकर अब तक, इनके भव बतलाएं।
चलो इन्हें हम नये-नये, मन्दिर के दर्श करायें।।
जय हो सिद्धप्रभू की जय, जय हो सिद्धप्रभू की जय.।।1।।

हे पुण्यात्मन् देवराज! तुम, भावी तीर्थंकर हो।
तुम जन्मोगे मध्यलोक में, युग के क्षेमंकर हो।।
आज स्वर्ग में भी तुमसे, कुछ शिक्षा लेने आये।
चलो इन्हें हम नये-नये, मंदिर के दर्श करायें।।
जय हो सिद्धप्रभू की जय, जय हो सिद्धप्रभू की जय.।।2।।

अच्युत स्वर्ग की असीम विभूति में सुखपूर्वक निवास करते हुए बाईस सागर की आयु कैसे बीत गई उस देव को पता ही नहीं चला, पुनः वहाँ से निकलकर मनुष्य गति में चक्रवर्ती का वैभवपूर्ण पद प्राप्त कर लिया–

(6)

इस मध्यलोक में जम्बूद्वीप के अन्दर क्षेत्र विदेह कहा।
वहाँ वज्रवीर्य राजा की पटरानी विजया का महल बना।।
इक दिन रात्री में पांच सुखद सपनों को रानी ने देखा।
मेरु पर्वत, रवि, शशि के संग नभ में इक देव भवन देखा।।1।।

जल से परिपूर्ण सरोवर लख, रानी की निद्रा भंग हुई।
इन स्वप्नों का फल क्या होगा, इसमें ही वह चिरमग्न हुई।।
फिर सोचा इन सपनों का फल, मैं अपने पति से पूछूँगी।
फल उनका शुभ होवे या अशुभ, आगे उनके प्रति सोचूँगी।।2।।

राजा की राजसभा में जा, अर्धासन पर वह बैठ गई।
अपने सपनों को बतलाकर, उत्तर सुनने को बैठ गई।।
राजा ने अतिशय खुश होकर, बतलाया तुम सुत जन्मोगी।
छह खण्ड धरा पति चक्रवर्ति की माँ, बनकर तुम चमकोगी।।3।।

नव माह प्रतीक्षा के नन्तर इक राजपुत्र का जन्म हुआ।
उसके पुण्योदय के बल पर वह पद्मदेश भी धन्य हुआ।।
शिशु वज्रनाभि स्वर्गों का वैभव छोड़ धरा पर आया है।
मानो वह वैभव ही फिर से उसके चरणों में आया है।।4।।

शैशव से बाल्यावस्था में वह वज्रनाभि जब पहुँच गया।
अपनी आकर्षक क्रीड़ाओं से सबके मन को मोह लिया।।
वह दूज चन्द्रमा के समान वृद्धिंगत हुआ गुणों में भी।
तब चक्ररत्न उत्पन्न हुआ उनकी आयुधशाला में ही।।5।।

नृप वज्रनाभि ने श्री जिनेन्द्र की पूजन कर प्रस्थान किया।
कुछ समय में ही छह खण्ड धरा को जीत पूर्ण सम्मान लिया।।
इस अतुलनीय वैभव में भी नृप चक्रवर्ति नहिं फूल गया।
नश्वर कंचन अरु कीर्ति कामिनी में भी धर्म न भूल गया।।6।।

सुखपूर्वक राजा वज्रनाभि निज राजसुखों को भोग रहे।
धर्मार्थ काम पुरुषार्थों को क्रमशः जीवन से जोड़ रहे।।
वे देवशास्त्रगुरु की सेवा कर जनता पर शासन करते।
निज कर्तव्यों का पालन कर वसुधा का संचालन करते।।7।।

इक बार राज उपवन में ही, निर्ग्रन्थ मुनी का संघ आया।
परिजन पुरजन के संग राजा, उनके दर्शन को खुद आया।।
राजा के नम्र निवेदन पर, गुरु ने उपदेश सुनाया है।
उपदेश श्रवण कर वज्रनाभि के, मन वैराग्य समाया है।।8।।

वे चिन्तन करते हैं मैंने भोगों का अनुभव बहुत किया।
पर तृप्ति न मन की हुई अतः मैंने इनसे मुख मोड़ लिया।।
अविनश्वर सुख की प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ मुझे अब करना है।
नश्वर धन वैभव महल आदि का त्याग मुझे अब करना है।।9।।

यह सोच चक्रवर्ती नृप ने छह खंड राज्य को त्याग दिया।
क्षण भर विराग की संगति से वैरागी पद स्वीकार लिया।।
राजा बन गये दिगम्बर मुनि तो उनकी जय जयकार हुई।
गुरु वज्रनाभि के अन्दर सच्ची तप शक्ती साकार हुई।।10।।

वे शत्रु-मित्र सुख-दुख, स्तुति-निंदा में समता रखते हैं।
आतम सुख की प्राप्ती हेतु वे घोर तपस्या करते हैं।।

वे यत्र-तत्र कर पदविहार पुनरपि वन में ध्यानस्थ हुए।
आतापन योगों के द्वारा कर्मों के बंधन ध्वस्त किए।।11।।

थे ध्यानलीन इक दिन मुनिवर नहिं बाह्य विकल्प उन्हें कुछ था।
तब वही कमठ का जीव भील बनकर हो गया उपस्थित था।।
मुनि को लखकर उस क्रूर भील ने और क्रूरता दिखलाई।
हो कुपित तीक्ष्ण बाणों से उसने मुनि को पीड़ा पहुँचाई।।12।।

था असहनीय उपसर्ग किन्तु वे वज्रनाभि मुनि ध्यानमगन।
सह लिया देह से निस्पृह हो बारहभावन का कर चिन्तन।।
उपयोग में स्थिरता लाकर चेतन आत्मा में रमण किया।
फिर धर्मध्यान में एक तान हो नश्वर तन से गमन किया।।13।।

(7)

मानव के तन से निकल मुनी की आत्मा ग्रैवेयक पहुँची।
अहमिन्द्र बना मध्यम ग्रैवेयक में जन्मा हो गया सुखी।।
सत्ताइस सागर की आयू तक दिव्य सुखों को भोग लिया।
फिर मध्यलोक में आकर राजा बनकर सुख उपभोग किया।।14।।

देखो! इक ओर सुखामृत है जो मरुभूति को प्राप्त हुआ।
इक ओर दुखों का सागर है जो भ्रात कमठ को प्राप्त हुआ।।
समतापूर्वक दुख सहने से आगे सुख ही सुख मिलता है।
निष्कारण दुख देने वालों को उसका फल दुख मिलता है।।15।।

वह भीलराज भी रौद्रध्यान से मरकर सप्तम नरक गया।
लाखों बिच्छू के डंक सदृश भारी कष्टों में तड़प गया।।
अत्यन्त दुखी हो हाय-हाय कहकर विलाप वह करता है।
फिर ज्ञान विभंगावधि द्वारा पूरब भव सुमिरन करता है।।16।।

पश्चात्तापों की अग्नी में वह झुलस रहा अज्ञानी है।
कैसे दुःखों को सहन करूँ रो रो कहता वह प्राणी है।।
उस नरक क्षेत्र में क्षणभर भी नहिं शांति उसे मिलने पाती।
कोटी जिह्वा मिलकर उस दुख का वर्णन भी नहिं कर पाती।।17।।

पूरबकृत पापकर्म को वह, स्मृत कर दुःख को पाता है।
इच्छा है जग भर अन्न मिले, लेकिन कण एक न पाता है।।
सागर भर पानी पी जाऊँ, ऐसी लगती है प्यास वहाँ।
लेकिन इक बूँद न जल मिलता, ऐसा नरकों का दुःख महा।।18।।

ऐसे भीषण दुःखों को उसने, पूरी आयू सहन किया।
सत्ताइस सागर की आयू, रोते-रोते ही बिता दिया।।

सागर की परिभाषा सुनकर, रोमांच हृदय में होता है।
कैसे बीता होगा यह काल, जो अनन्तकाल सम होता है।।19।।

इस प्रकार वह पापी कमठ का जीव सप्तम नरक की सत्ताइस सागर प्रमाण मध्यम आयु को भोग रहा है, वहाँ अन्य नारकी जीव पूर्व वैर के कारण उसके शरीर के तिल-तिल खण्ड कर देते हैं परन्तु वहाँ असमय में मृत्यु नहीं होने से वह शरीर पुनः पारे के समान एकमेक हो जाता है। नरकों के ऐसे असह्य दुःखों को जानने के बाद मनुष्य को हमेशा अच्छे-अच्छे कार्य करना चाहिए ताकि उसे नरक जैसी दुर्गति में न जाना पड़े।

हाँ! ये तो हुई कमठ के जीव की बात, अब आपको जानना है कि मरुभूति का जीव मध्यम ग्रैवेयक की सत्ताइस सागर प्रमाण आयु को पूर्ण करके कहाँ गया–

(8)

शेरछंद – **अब आगे सुनो तुम कथा साकेतपुरी की।**
राजा थे वज्रबाहु रानी प्रभाकरी थी।।
मरुभूति का वह जीव इनका पुत्र हो गया।
'आनन्द' कुमार नाम से प्रसिद्ध हो गया।।1।।

बीता समय वह पुत्र महाराजा बन गया।
गुणयुक्त महामण्डलीक राजा बन गया।।
इक बार नंदीश्वर परब में आठ दिनों तक।
राजा ने किया पाठ नन्दीश्वर का भक्तियुत।।2।।

अगणित जनों ने पाठ देख कर्मक्षय किया।
मुनिराज विपुलमती ने भी दर्श था किया।।
राजा ने मुनीराज चरण में नमन किया।
उनके मुखारविन्द से प्रवचन श्रवण किया।।3।।

पूछा मुनी से राजा ने जो उनको शंका थी।
प्रतिमाएँ अचेतन हैं कैसे पुण्य फल देतीं?
मुनि बोले–'इनकी वीतरागता में है शक्ती।
औषधि है अचेतन परन्तु रोग को हरती।।4।।

फिर मुनि ने नृप को सूर्य की महिमा भी बताई।
उसके विमान की कही लम्बाई-चौड़ाई।।
उस सूर्य के विमान में जिनभवन बने हैं।
वे भवन चमर, छत्र, भामण्डल से सजे हैं।।5।।

हैं इक सौ आठ मूर्तियाँ उनमें विराजतीं।
औ यक्ष-यक्षियों की मूर्तियाँ भी राजतीं।।
जो भव्यजीव मूर्तियों की वंदना करें।
वे क्रम से सुख को भोग मुक्तिकन्या वश करें।।6।।

मुनिराज का उपदेश सुन के राजा खुश हुए।
वे सूर्यबिम्ब के प्रती श्रद्धावनत हुए।।

नृप ने सुवर्ण सूर्य का विमान बनवाया।
उसको रतन की मूर्तियों से खूब सजाया।।7।।

श्रद्धा व भक्ति से वे सूर्य बिम्ब पूजते।
जिसके प्रसाद से वे कर्म दूर कर लेते।।
आचार्य कहते हैं जगत में उसी समय से।
सूरज को पूजने की प्रथा शुरू हुई है।।8।।

इक दिन सभा में बैठे थे दर्पण में मुख दिखा।
अपने ही सिर में एक धवल केश लख लिया।।
तत्काल वे भव-भोग से विरक्त हो गए।
संसार की असारता को वे समझ गए।।9।।

निज पुत्र को साम्राज्य सौंप मुनि निकट गए।
जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर वे भी मुनि भए।।
अट्ठाईस मूलगुण को अब वे पालने लगे।
तप-त्याग से वे कर्मों को प्रक्षालने लगे।।10।।

गुरु के निकट में बैठ के श्रुत अध्ययन किया।
फिर सोलह भावनाओं का भी चिंतवन किया।।
जिनके निमित्त उन्हें मिली तीर्थंकर प्रकृती।
फिर और भी अनेक ऋद्धियाँ उनमें प्रकटीं।।11।।

इक बार वे मुनिराज ध्यानलीन खड़े थे।
प्रतिमा का योग लेके अचल शान्त खड़े थे।।
आया तभी इक सिंह वहाँ गर्जना करता।
पापी कमठ का जीव वह नरकों से आया था।।12।।

उसने मुनी को देखा क्रोध से भड़क उठा।
टुकड़े किए शरीर के फिर खाने लग गया।।
उपसर्ग समझ वे मुनी सब सहन कर रहे।
तन से न राग शत्रु सिंह से न बैर है।।13।।

वे धीर-वीर तपोधनी ज्ञानपुञ्ज हैं।
करुणा-क्षमा की मूर्ति को मैं करूँ नमन है।।
है प्रार्थना मुझे भी ऐसी शक्ति प्राप्त हो।
ऐसी क्षमा करूँ कि सब विघ्नों का नाश हो।।14।।

वास्तव में क्षमाभाव की कितनी महिमा है! यह क्षमा जिसके हृदय में स्थापित हो जाती है उसमें न जाने कितनी सहनशक्ति आ जाती है कि वह अपने ऊपर किए जा रहे अकारणिक उपसर्ग को भी आसानी से सहन कर लेता है।

मरुभूति के उस क्षमाशील जीव ने मुनि की पर्याय में कमठ के जीव सिंह द्वारा किए गए घोर उपसर्ग को सहन करते हुए शुभ परिणामों से मरणकर दिव्य वैक्रियिक देह धारण कर लिया अर्थात् आनत नामक तेरहवें स्वर्ग के प्राणत नामक विमान में इन्द्र हो गए। अब आगे की कथा इस प्रकार है–

(9)

तर्ज –आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ.....

आओ भक्तों! तुम्हें सुनाएँ, कथा एक इन्सान की।
क्षमा-धैर्य के द्वारा बनने, वाले प्रभू महान की।।
जय जय जिनवरं-4।।

आनन्द मुनिवर मध्यलोक से, ऊर्ध्वलोक में पहुँच गए।
आनत नामक स्वर्ग में जाकर, वे तो बहुत प्रसन्न हुए।।
वहाँ की धरती रत्न और मणियों से ज्योतिर्मान थी।
क्षमा-धैर्य के द्वारा बनने, वाले प्रभू महान की।।
जय जय जिनवरं-4।।1।।

स्वर्गपुरी में उनको सुन्दर, नवयौवन तन प्राप्त हुआ।
दिव्य अवधि चक्षू के द्वारा, सब बातों का ज्ञान हुआ।।
पहुँचे मंदिर सबसे पहले, पूजा की भगवान की।
क्षमा-धैर्य के द्वारा बनने, वाले प्रभू महान की।।
जय जय जिनवरं-4।।2।।

कभी मेरु पर्वत पर जाकर दर्शन-वंदन करते हैं।
द्वीप नन्दीश्वर में जाते अरु समवसरण में जाते हैं।।
दिव्यध्वनी सुन किया उन्होंने, जीवन का उत्थान भी।
क्षमा-धैर्य के द्वारा बनने वाले, प्रभू महान की।।
जय जय जिनवरं-4।।3।।

कभी देव-देवी के संग में, मनोविनोद किया करते।
वैभव अतुल भोगते फिर भी, उसमें रमा नहीं करते।।
भावी तीर्थंकर हैं वे तो, करते समरस पान ही।
क्षमा-धैर्य के द्वारा बनने, वाले प्रभू महान की।।
जय जय जिनवरं-4।।4।।

ये तो आप समझ ही गए हैं कि उस पुण्यशाली जीव ने स्वर्ग में किस-किस प्रकार के दिव्यसुखों का उपभोग किया, अब आप उनके दशवें भव अर्थात् भगवान पार्श्वनाथ के जीवन के बारे में जानेंगे–

(10)

वाराणसि नगरी पुण्यभूमि, जहाँ अश्वसेन महाराजा थे।
उनकी रानी वामा देवी, सब गाते उनकी गाथा थे।।
उनके आँगन में धनकुबेर, रत्नों की वर्षा करते थे।
तीर्थंकर जन्मेंगे यहाँ पर, वे ऐसा सूचित करते थे।।1।।

इक रात्री में वामा देवी ने, सुन्दर स्वप्ने देखे थे।
नहिं एक नहीं दो नहीं उन्होंने, सोलह सपने देखे थे।।
प्रातः रानी वामा देवी, अपने पति देव के निकट गईं।
पति की आज्ञा पा करके वह, अर्धासन पर थीं बैठ गई।।2।।

स्वप्नों का वर्णन रानी के फिर क्रम-क्रम से बतलाया था।
सुनकर के राजा अश्वसेन का, रोम-रोम हरषाया था।।
'तुम तीर्थंकर जननी होंगी', स्वप्नों का यह फल बतलाया।
सुनकर वामा देवी ने सोचा, सफल हुई मेरी काया।।3।।

नव महिने बीत गए सुख से, माता को नहिं संक्लेश हुआ।
आई जब पौष वदी ग्यारस, रवि सदृश पुत्र उत्पन्न हुआ।।
माँ-पिता सहित तीनों लोकों की, जनता अतिशय पुलकित थी।
सौधर्म इन्द्र आए सह परिकर, आई शचि इन्द्राणी भी।।4।।

सौधर्म इन्द्र बालक को लेकर, गए सुमेरु पर्वत पर।
वहाँ पाण्डुकशिला बनी सुन्दर, अभिषेक किया सबने मिलकर।।
जन्माभिषेक के बाद इन्द्र ने, प्रभु का 'पार्श्व' नाम रक्खा।
दश अतिशय सहित पार्श्व प्रभु के, चरणों में मस्तक है झुकता।।5।।

पारस कुमार हो गए युवा, उनका शरीर अतिशय सुन्दर।
पितु अश्वसेन बोले-अब जल्दी ब्याह करो हे राजकुँवर!
पर पार्श्वकुंवर ने पितु के इस, प्रस्ताव को नहिं स्वीकार किया।
असिधारा व्रत जो महापूज्य, उसको ही अंगीकार किया।।6।।

इक बार पार्श्वप्रभु मित्रों संग, वनक्रीड़ा करने निकले थे।
वहाँ देखा एक तापसी को, जो पंचाग्नी तप करते थे।।
वे तपसी और नहीं कोई, प्रभु पार्श्वनाथ के नाना थे।
उनको नहिं ज्ञान रंच भी था, वे करते तप मनमाना थे।।7।।

वे पार्श्वप्रभू निज मित्रों संग, तपसी के निकट थे पहुँच गए।
मैं हूँ इसका नाना नहिं इसने, नमस्कार है किया मुझे।।
यह सोच तापसी ने गुस्से में, लकड़ी पर था वार किया।
पारस प्रभु समझाते ही रहे, उसने लकड़ी को फाड़ दिया।।8।।

उस लकड़ी में था नागयुगल, उसके दो टुकड़े हुए तभी।
प्रभु बोले तपसी से तुम अपना, गर्व त्याग कर दो अब ही।।
तपसी बोले मैं नाना हूँ, तूने नहिं मुझको नमन किया।
मैं घोर तपस्या करता हूँ, तूने नहिं मेरी विनय किया।।9।।

प्रभुवर बोले-जिस तप में हिंसा, वह तप नहीं कुतप ही है।
तुम सम्यक् तप धारण कर लो, कल्याण तुम्हारा निश्चित है।।
उपदेश श्रवण कर नागयुगल ने, निज शरीर का त्याग किया।
धरणेन्द्र और पद्मावती बनकर, जीवन का कल्याण किया।।10।।

वह तपसी जीव कमठ का था, यह याद सभी को रखना है।
किस्सा पढ़कर यह तुम्हें किसी से, बैर कभी नहिं करना है।।
अब आगे सुनो पार्श्वप्रभु निज दरबार में इक दिन बैठे थे।
साकेतपुरी से एक दूत, आया कुछ दिव्य वस्तुएँ ले।।11।।

राजा ने कुछ क्षण बाद दूत से, पूछा हाल अयोध्या का।
उस कुशल दूत ने सुन्दर वर्णन, करना शुरू किया वहाँ का।।
वर्णन सुनते-सुनते पारसप्रभु, के मन में वैराग्य हुआ।
तत्क्षण लौकान्तिक सुर आए, जय-जय का स्वर भी गूँज उठा।।12।।

पालकि में बैठ पार्श्वप्रभु पहुँचे, अश्वनाम के उपवन में।
थी पौष वदी ग्यारस शुभतिथि, जिस दिन दीक्षा ली प्रभुवर ने।।
थे गुल्मखेटपुर के राजा, था ब्रह्मदत्त जिन नाम भला।
आहार प्रथम प्रभु को देने का, उनको ही सौभाग्य मिला।।13।।

इक बार पार्श्वप्रभु ने अपनी, आत्मा को ध्यान में लीन किया।
शंबर ज्योतिष के रूप में कमठासुर ने बहु उपसर्ग किया।।
कभी पत्थर बरसाए कभी अग्नी, आँधी कभी चलाई थी।
लेकिन प्रभु मेरु सदृश अविचल, नहिं उनको कुछ कठिनाई थी।।14।।

उपसर्ग समय सहसा धरणेन्द्र, देव का आसन काँप उठा।
निज भार्या संग प्रभु के मस्तक पर, छत्र उन्होंने तान दिया।।
धरणेन्द्र युगल को देखा ज्यों ही, त्यों ही वह पापी भागा।
प्रभु ने श्रेणी आरोहण कर, कैवल्य परम पद को पाया।।15।।

इन्द्राज्ञा से धनपति ने अद्भुत, समवसरण रचना कर दी।
जिस स्थल पर उपसर्ग हुआ, वह 'अहिच्छत्र' हो गया तभी।।
शंबर नामक वह ज्योतिषि भी, पा काललब्धि कुछ शांत हुआ।
प्रभु चरणों में कर नमस्कार सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया।।16।।

यह देख सात सौ तपसी भी, सम्यग्दृष्टी बन गए अहो!
तुम भी अपने जीवन में कभी, मिथ्यात्व को ना आश्रय देवो।।
कुछ कम सत्तर वर्षों तक प्रभुवर, समवसरण में राज रहे।
जब एक माह की आयु बची, सम्मेदाचल पर पहुँच गए।।17।।

वहाँ छत्तिस मुनियों सहित प्रभू ने प्रतिमायोग लगाया था।
फिर श्रावण शुक्ला सप्तमि के दिन, मोक्षधाम को पाया था।।
प्रभु पार्श्व के बाद नहीं कोई, तीर्थंकर मोक्ष गए यहाँ से।
अतएव इसे ''पारसहिल'' नाम से, जाना जाता है तब से।।18।।

पारस सम मेरा भी जीवन, बन जावे यही प्रार्थना है।
मैं क्षमा, धैर्य गुण को धारूँ, बस केवल यही कामना है।।
अपकार करे कोई कितना, दुर्भाव नहीं मन में आवे।
जब तक नहिं मोक्ष मिले तब तक, 'चन्दनामती' तव गुण गावे।।19।।

इस प्रकार भगवान पार्श्वनाथ के विस्तृत जीवन चरित्र को संक्षिप्तरूप से इस काव्यकथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है आप सभी भक्तगण इसको पढ़कर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से परिचित होवें तथा उनके जीवन से कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य प्राप्त करें, यही मंगल भावना है।

क्षमा के अवतार-भगवान पार्श्वनाथ

रचयित्री–ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

सुनो बंधुओं आज तुम्हें मैं इक इतिहास सुनाती हूँ।
क्षमा क्रोध के द्वन्द की मैं रोमांचक कथा बताती हूँ।।
है नगरि अयोध्या अवधपुरी में शाश्वत जन्मभूमि मानी।
इतिहास पुराणों में इसकी गौरव गाथा वर्णित जानी।।1।।

पर वर्तमान में काल अभी हुण्डावसर्पिणी आया है।
अघटित घटनाएँ हों इसमें, आचार्यों ने बतलाया है।।
है काल प्रभाव जो वर्तमान में केवल पाँच प्रभू जन्में।
उन्नीस शेष तीर्थंकर जिन हैं, अलग-अलग भू पर जन्में।।2।।

उनमें तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जिनवर जाने।
वह जन्में नगरि बनारस में, उस भू को परम पूज्य मानें।।
पितु अश्वसेन वामा माता उस नगर के राजा-रानी थे।
रत्नों से खचित महल उनका, जिनभक्त परम चहुँ नामी थे।।3।।

यह वही बनारस नगरी थी, जहाँ पहले प्रभू सुपार्श्व हुए।
उस निकट चन्द्रपुरि नगरी में, श्री चन्द्रप्रभू जिनराज हुए।।
हैं सिंहपुरी अब सारनाथ, श्रेयांसनाथ प्रभु जन्में थे।
उस वाराणसि के कण-कण में, इतिहास अनेकों पनपे थे।।3।।

अब सुनो! इक दिवस वामा माँ, गहरी निद्रा में सोई थीं।
सोलह सपने सुन्दर दीखे, आश्चर्यचकित उठ बैठी थीं।।
उन ब्रह्ममुहूर्त के सपनों का फल निज स्वामी से जब पूछा।
पतिदेव कहें हे देवि सुनो! तव गर्भ में तीर्थंकर प्रकटा।।4।।

ऐसा सुन रोमांचित माता, पति को प्रणाम कर हर्षमुद्रा।
वाराणसि में छाईं खुशियाँ, महलों में आनंद उत्सव था।।
सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से, आ धनद रत्न बरसाता था।
15 महिनों तक वृष्टि हुई, धरती अम्बर हरषाता था।।5।।

शुभ पौष वदी एकादशि की शुभ घड़ी धन्य धन हो आई।
जब प्रभुवर ने था जन्म लिया, स्वर्गों में भी खुशियाँ छाईं।।
सब इन्द्र सपरिकर उमड़ पड़े, प्रभु का जन्मोत्सव खूब किया।
मेरू की पांडुशिला पर जा, तीर्थंकर शिशु का न्हवन किया।।6।।

स्वर्गों से लाए दिव्य वस्त्र से, शचि ने किया अलंकृत जब।
प्रभुवर की शोभा न्यारी थी, लिखने में नहिं लेखनि सक्षम।।

जन्मोत्सव कर प्रभु को सौंपा, सुर आज्ञा ले निज द्वार चले।
प्रभु झूल रहे हैं रत्न पालना, उनकी उपमा कौन धरे।।7।।

अब शैशव से बचपन आया, फिर तरूणाई ने घेर लिया।
पितु-मात ने सोचा हुआ युवा, परिणय का तुरत विचार किया।।
पर तभी एक अनहोनी सी, घटना उनके समक्ष आई।
इक दूत अयोध्या नगरी से, लाया कई भेंट सुनो भाई।।8।।

युवराज पार्श्व ने पूछा सुन रे दूत! कहाँ से आया है।
ऐसी अनुपम और दिव्य वस्तु, किस हेतु, कहाँ से लाया है।।
सुन दूत अयोध्या नगरी का, ज्यों-ज्यों वर्णन करता जाता।
युवराज पार्श्व का मन विरक्त, त्यों-त्यों प्रतिपल होता जाता।।9।।

निज अवधिज्ञान से जान लिया, ऋषभेश्वर का स्मरण किया।
वैराग्य प्रकट ज्यों हुआ तभी, लौकान्तिक सुर आ नमन किया।।
चल पड़े प्रभू पालकि पर चढ़, सुन मात-पिता घबराए थे।
पर नहीं रोक पाए किंचित्, प्रभु ने ज्यों कदम बढ़ाए थे।।10।।

कर सिद्ध प्रभू को नमन लिया, दीक्षा प्रभुवर मुनि श्रेष्ठ बने।
मनपर्यय ज्ञान प्रकट होने से, ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण हुए।।
इक समय सघन वन में जाकर, प्रभुवर थे ध्यानारूढ़ हुए।
पापी कमठासुर आ पहुँचा, नीचे देखा तो पार्श्व खड़े।।11।।

रुकते विमान को देख उसे, दश भव का वैर याद आया।
बस उसी समय उस पापी के, मन में कुत्सित विचार आया।।
देखो! यह दश भव का वैरी, मरुभूती मेरा भाई था।
राजा से दण्डित करवाया, अरु घोर किया अपमानित था।।12।।

इसकी रानी को चाहा था बस यही जरा सी गलती थी।
इस दुष्ट ने जो-जो पीड़ा दी, उसका बदला लेता हूँ अभी।।
संवर नामक उस ज्योतिष ने, उपसर्ग तुरंत प्रारंभ किया।
पत्थर फेंके, मूसल धारा, आंधी से जग आक्रान्त किया।।13।।

कैसा उपसर्ग भयानक था, पत्थर को पिघलाने वाला।
पर क्षमासहिष्णू पारस को, नहिं डिगा सका वह मतवाला।।
चढ़ क्षपक श्रेणि पर प्रभुवर ने, घाती कर्मों का नाश किया।
अरु उस पापी ने कर्मबंध कर, दुर्गति का था द्वार लिया।।14।।

देखा धरणेन्द्र व पद्मावति, आकर के फण का छत्र किया।
देवी ने बनाया सिंहासन, प्रभुवर को उस पर बिठा लिया।।
ध्यानस्थ प्रभू को राग नहीं, नहिं द्वेष किसी पर आया था।
केवलि जिनवर का समवसरण, इन्द्रों ने आन रचाया था।।15।।

यह वही नाग और नागिन थे जिनकी रोमांचक घटना है।
प्रभुवर के शैशव की उस घटना से भी परिचित होना है।।
इक बार पार्श्वप्रभु सखा संग क्रीड़ा हेतू वन ओर चले।
उस वन में नाना महीपाल पंचाग्नी तप तप रहे अरे।।16।।

नाना को लख जब नहीं झुके, तब क्रोध भयानक आया था।
सोचा दो दिन के छोरे ने, अपमान मेरा कर डाला था।।
क्रोधित महिपाल उठा फरसा, जलता लक्कड़ चीरने लगा।
प्रभु पार्श्व कहें हे तात सुनो! इसमें हैं नागयुगल रहता।।17।।

भीषण क्रोधाग्नी में जलकर, ज्यों ही लकड़ी को था चीरा।
निकले थे नागयुगल उसमें, हो रही असह्य उनको पीड़ा।।
उस जली हुई लकड़ी में दोनों, बेचारे अधजले हुए।
उनकी पीड़ा को देख प्रभो!, लगे थे णमोकार मंत्र कहने।।18।।

सम्बोधन प्रभु का पाकर के, शुभ गती उन्हें बंध गई अरे।
धरणेन्द्र और पद्मावती बन, उपकारी को वह नमन करें।।
उन नागयुगल ने ही आकर, उपकार का बदला चुका दिया।
नाना महिपाल कषाय-भाववश मरा और ज्योतिष्क हुआ।।19।।

यह वही कमठ का जीव जो नाना, महीपाल के रूप में था।
मिथ्यात्व भाव से मरने से, वह ही मिथ्यात्वी देव हुआ।।
जब मरूभूति थे पार्श्व प्रभू, यह कमठ रूप में भाई था।
था दुराचार में लिप्त और अन्यायी, अत्याचारी था।।20।।

भाई के मोह में मरूभूति जब लेने इसके पास गया।
क्रोधित हो पटकी शिला तभी, वह मरकर हाथी बन जन्मा।।
हाथी को सांप बन मारा था, मुनि को अजगर बन निगल गया।
ऐसे करते-करते उसने, दस भव तक उनको कष्ट दिया।।21।।

पर क्षमा के सागर मरुभूति ने, सदा उन्हें था क्षमा किया।
इस क्षमा के बल पर ही उनने, तीर्थंकर प्रकृति बंध किया।।
जब स्वर्ग के सुख भोगे इनने, वह पापी नरकों में घूमा।
फिर भी नहिं क्रोध कभी छोड़ा, हरदम पापों में रहा रमा।।22।।

अब जब प्रभु पार्श्व बने वह उनका, नाना बनकर जन्मा था।
पर मिथ्यात्वी था, तापसि था, अतएव वह संवर देव बना।।
अब शायद काललब्धि आई, जो सुमति उसे आ उपजी थी।
उपसर्ग भयानक करने पर भी, प्रभु की क्षमा ही लक्ष्मी थी।।23।।

प्रभु समवसरण में चतुरंगुल थे, अधर दिव्यध्वनी वहाँ खिरी।
बारहों सभा में बैठ सभी, जीवों ने निज भाषा में सुनी।।

वह संवर भी आकर प्रभु के, चरणों में कैसे पड़ा हुआ।
प्रभु क्षमा करो, प्रभु क्षमा करो, बस एक यही विनती करता।।24।।

भव-भव से जिनने क्षमा किया, वह आज भला क्यों नहिं करते।
जब पश्चाताप की अग्नि जली, संवर शुभ गति का बंध करे।।
जिस स्थल पर उपसर्ग हुआ, धरणेन्द्र व पद्मावति आये।
फण का जो छत्र बनाया था, वह तीर्थ 'अहिच्छत्र' कहलाए।।25।।

हैं आज भी देवी पद्मावति, धरणेन्द्र सदा राजित वहाँ पर।
जो भक्त सदा मन से ध्याते, आते हैं प्रभु के द्वारे पर।।
प्रभु रक्षक देव सदा भक्तों की, मनवाञ्छा पूरी करते।
देवी पद्मावति की भक्ती, कितनों की ही पीड़ा हर ले।।26।।

उन केवलज्ञानी प्रभु जी ने फिर मुक्ति कहाँ से पाई है।
यह भी इतिहास का पन्ना है, उसकी भी कथा सुनाई है।।
उन केवलज्ञानी जिनवर का, शुभ समवसरण चहुँ ओर रचा।
कितने ही भव्य सुनें वाणी, कितनों का मार्ग प्रशस्त हुआ।।27।।

शाश्वत तीरथ सम्मेदशिखर, निर्वाणथली मानी जाती।
हुए सिद्ध अनन्तानन्त जहाँ, सुर नर वंदित वह कहलाती। ।
पर कालदोषवश बीस तीर्थंकर, उस स्थल से मोक्ष गए।
अरु चार तीर्थंकर अलग-अलग, स्थानों से हैं मुक्त हुए।।28।।

प्रभु पार्श्वनाथ ने भी उस स्थल, से शिवरमणी वरण किया।
लोकाग्र शिखर पर राजे जा, है शाश्वत सुख सर्वदा जहाँ।।
सम्मेदशिखर में स्वर्णभद्र है, कूट जहाँ से प्रभुवर ने।
मुक्तिश्री का साम्राज्य लिया, श्रावण सुदि सप्तमि शुभ तिथि मे।29।।

वह तीरथ 'पार्श्वनाथ हिल' नाम से, सारे जग में ख्यात हुआ।
है विश्ववंद्य वह तीर्थराज, जिसका कण-कण है पूज्य महा।।
उन ही प्रभुवर श्री पार्श्वनाथ का, तृतिय सहस्राब्दी उत्सव।
भारत के कोन-कोने में, इस वर्ष के अन्तर्गत उत्सव।।30।।

श्री गणिनीप्रमुख ज्ञानमती, माताजी की सम्प्रेरणा मिली।
जिनधर्म की शाश्वत सत्ता की, कीर्ती भूमण्डल पर फैली।।
उन पार्श्वप्रभू को 'इन्दु' नमें, अरु नमे ज्ञानमती माताश्री।
भारत माता की गोदी इस, माता से कभी न हो सूनी।।31।।



श्री सम्मेदशिखर वंदना

–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

(अनुष्टुप् छंद)

सिद्धान् सर्वान् नमस्कृत्य, सिद्धस्थानं जिनेशिनाम्।
पूज्यं सम्मेदशैलेन्द्रं, भक्त्या संस्तौमि सिद्धये।।1।।
विंशतितीर्थकर्तारः, कूटेषु विंशतौ शिवम्।
असंख्ययोगिनश्चापि, जग्मुः सर्वान्नमाम्यहम्।।2।।

सिद्धों को कर नमस्कार, सम्मेदगिरीन्द्र स्तवन करूँ।
सिद्धिभूमि के वंदन से कटु, कर्मकाष्ठ को दहन करूँ।।
बीस कूट पर बीस जिनेश्वर, और असंख्य महामुनिगण।
शुक्लध्यान से कर्म नाशकर, सिद्धवधू को किया वरण।।

(अनुष्टुप् छन्दः)

कूटे सिद्धवराभिख्येऽजितनाथः शिवं ययौ।
सहस्रमुनिभिः सार्धं, वन्दे भक्त्या शिवाप्तये।।3।।

(आर्यास्कन्ध छन्द)

तत्कूटे चैकार्बुद – चतुरशीतिकोटिपंचचत्वारिंशत्।
लक्षप्रमिता मुनयो, दग्ध्वा कर्माणि मुक्तिमापुर्योगात्।।4।।

(अनुष्टुप्)

मनसा वपुसा वाचा, संततं भक्तिभावतः।
तान् सुसिद्धान् नमस्यामि, स्वकर्ममलहानये।।5।।

कूटसिद्धवर से श्री अजितप्रभु, सहस्र मुनियों के साथ।
भवसमुद्र से पार हुये हैं, वंदन करूँ नमाकर माथ।।
मुनिगण एक अरब चौरासी, कोटि तथा पैंतालीस लक्ष।
इसी कूट पर कर्मनाश कर, मोक्ष गये वंदूँ मैं नित।।

(अनुष्टुप्)

धवलदत्तकूटे श्री – संभवो कर्महानितः।
सहस्रमुनियुङ् मोक्ष – राज्यं प्रापन्नमाम्यहम्।।6।।

(आर्यास्कन्ध)

तत्र नवकोटिकोट्यो, द्विसप्ततिलक्ष–सप्तसहस्रमिताश्च।
द्विचत्वारिंशदधिकैः, पंचशतीति मुनयः शिवपुरं जग्मुः।।7।।

(अनुष्टुप्)

तान् मुनीन्द्रान्नमस्कुर्वे, स्वसंवेदनसिद्धये।
यतः कर्मरिपून् हत्वा, प्राप्नुयाम् तत्पदं त्वरम्।।8।।

धवलदत्त कूट से संभव, नाथ हजार साधुगण साथ।
मोह शत्रु को जीत मुक्तिपद, पाये वंदूं बनूं कृतार्थ।।
उसही से नव कोटाकोटि, लक्ष बहत्तर सात हजार।
ब्यालीस अधिक पाँच सौ मुनिगण, मुक्ति गये वंदूं भवतार।।

आनन्दकूटतः श्रीम – दभिनंदनतीर्थकृत।
सहस्रमुनियुङ् मुक्ति, ययौ सर्वान् नमाम्यहम्।।9।।
तस्मात्त्रिसप्ततिकोटि–कोट्यश्च सप्ततिकोटि–सप्ततिलक्षाः।
सप्तसहस्राणि द्विचत्वा–रिंशदधिकपंचशतानि प्रमिताः।।10।।
शुक्लध्यानाग्निना दग्ध्वा, कर्मेधनानि संयताः।
सिद्धिं प्रापुर्नमस्तेभ्यः, शुक्लध्यानस्य सिद्धये।।11।।

आनन्दकूट से अभिनंदन जिन, सहस्रमुनि सह सिद्ध हुये।
भवसागर से पार करो मुझे, नमूँ सदा बहु भक्ति लिये।।
तदनु तिहत्तर कोटाकोटि, सत्तरकोटि सत्तर लक्ष।
सात हजार पाँच सौ ब्यालीस, मुनिगण नमूँ मुक्ति के कांत।।

कूटेऽविचलनाम्नि श्री - सुमतिः सुमतिप्रदः।
सहस्रयोगियुक्सिद्धिं, ययौ सर्वान् नमाम्यहम्।।12।।
तस्मिन्नेकार्बुदचतु - रशीतिकोटिचतुर्दशलक्षप्रमिताः।
सप्तशतैकाशीति-युता मुनीन्द्राः शाश्वतसौख्यमवापः।।13।।
संसाराम्बुधिमुत्तीर्यो - त्तारयितुं परान् क्षमाः।
नमस्करोमि भक्त्या तान्, सिद्धान् स्वात्मोपलब्धये।।14।।

सुतिनाथ जिन सहस्रमुनि सह, अविचल नाम कूट पर से।
कामदर्प हर मुक्तिधाम पर, पहुँचे वंदूं प्रीति से।।
उसी कूट से एक अरब, चौरासी कोटि चतुर्दश लक्ष।
सात शतक इक्यासी यतिगण, मुक्त हुये मैं नमूँ सतत।।

मोहनकूटतः पद्म - प्रभो मोहद्विषो जयी।
सहस्रमुनियुङ्मोक्षं - ययौ सर्वांस्स्तवीमि तान्।।15।।
तदनु नवकोटिकोट्यः, सप्ताशीतिलक्षकाः सहस्राणि स्युः।
त्रिचत्वारिंशच्च तथा, सप्तशतसप्तविंशतिमिताः सिद्धाः।।16।।
घात्यघातिविघाताय, कर्मविजयिनश्च तान्।
सर्वान्सिद्धान्नमस्कुर्वे, तत्कूटं च बुधैर्नुतम्।।17।।

मोहनकूट से श्री पद्मप्रभु, सहस्रमुनि सह शिव पाये।
जन्म मरण दुख नाश हेतु हम, नमन करें शिवपुर जायें।
कोटि निन्यानवे लक्ष सत्यासी, सहस तेतालिस सात शतक।
सत्ताइस मुनिगण उससे ही, शिवपुर पहुँचे नमूँ सतत।।

कूटे प्रभासतः श्रीमान्, सुपार्श्वः स्मरपाशभित्।
मुनिसहस्रयुङ्मुक्ति - श्रियं लेभे प्रणौमि तं।।18।।

तस्मादूनपंचाशत्-कोटिकोट्यश्च चतुरशीतिकोट्यः स्युः।
द्विसप्ततिलक्षसप्त-सहस्राणि सप्तशतद्विचत्वारिंशत्।।19।।
एतत्संख्यामिताः भव्या, शिवधाम प्रपेदिरे।
तान् तत्कूटं च वंदेऽहं, भवभ्रमणहानये।।20।।
प्रभासकूटपर सुपार्श्व देव, सहस्रमुनि सह मुक्ति गये।
उन सिद्धों अरु सिद्धभूमि को, हम नितप्रति ही नमन किये।।
तदनु उनंचास कोटाकोटि, चौरासी कोटि बहत्तर लक्ष।
सात सहस सात सै ब्यालीस, मुनि शिव पहुँचे वंदूँ नित।।
ललितघटकूटे श्री-चन्द्रप्रभो महर्षिभिः।
सहस्रैः सह निर्वाण-राज्यं प्रापत् स्तवीमि तम्।।21।।
चतुरशीतिकोट्यर्बुद-द्विसप्ततिकोट्यशीति-लक्षप्रमिताः।
चतुरशीतिसहस्राणि, पंचपंचाशच्च पंचशतमिता मुनयः।।22।।
कर्माटवीं विदंदह्य, परमध्यानवन्हिना।
अनंतास्पदमापुस्तान्, नमस्यामि विशुद्धये।।23।।
कूट ललित घट से चंद्रप्रभ, सहस्रमुनि सह शाश्वत धाम।
मोहपाश को छेदन कर पहुंचे, मैं उनको करूँ प्रणाम।।
वहीं चौरासी कोटि अरब अरु, कोटि बहत्तर अस्सी लक्ष।
सहस चौरासी पाँच सै पचपन, मुनि शिव पायें नमूँ सतत।।
सुप्रभकूटतः पुष्प-दन्तनाथो यतीशिनाम्।
सहस्रैः सह कर्मारीन्, हत्वा मुक्तिं ययौ स्तुवे।।24।।
तत्कूटे नवनवतिकोटि-नवतिलक्ष-सप्तसहस्राणि च।
अशीत्युत्तरचतुःशत-कलिता यतयः शिवं गता जितमोहाः।।25।।
मोहपाशाद्विनिर्गन्तुं, ययासुः शाश्वतास्पदम्।
तान् तत्क्षेत्रं च वंदेऽहं, भक्त्या कल्मषशांतये।।26।।
सुप्रभ कूट से पुष्पदंत जिन, सहस्रयति सह कर्म विनाश।
परमसुखास्पद धाम प्राप्त किये, नमूँ उन्हें हो स्वात्म विकास।।
उसी कूट से कोटि निन्यानवे, नव्वे लक्ष सात हजार।
चार शतक अस्सी मुनि शिवपुर, गये नमूँ मैं बारम्बार।।
कूटे विद्युद्वरे देवः, शीतलः सिद्धिमाश्रितः।
सहस्रयतियुक् सर्वां-स्तौमि दुर्ध्यानहानये।।27।।
अष्टदशकोटिकोट्यः, कोट्यः सिद्धा अतो द्विचत्वारिंशत्।
द्वात्रिंशल्लक्षा द्वि-चत्वारिंशत्सहस्रनवशती पंच।।28।।
एतान् सर्वान् नमस्यामि, तत्कूटं च मुदा सदा।
यमपाशविपाशाय, स्वात्मनः सौख्यसिद्धये।।29।।
विद्युद्वर कूटपर शीतल, जिन हजार मुनि सह आये।
मृत्युपाश छेदकर त्रिभुवन, पूज्य हुये हम गुण गायें।।
वहीं अठारह कोटाकोटि, ब्यालीस कोटि लक्ष बत्तीस।
ब्यालीसहजार नव सै पाँच, साधु शिव गये नमूँ नत शीश।।
संकुलकूटतः श्रेया-ञ्जिनः सहस्रसाधुयुक्।
लेभे मुक्तिश्रियं तं तत्, कूटं च संस्तुवे श्रियै।।30।।
षण्णवतिकोटिकोट्यः, सुषण्णवतिकोटिषण्णवतिलक्षाः स्यु।
नवतिससहस्रपंचशती-द्विचत्वारिंशदिति प्रमुक्ताः ऋषयः।।31।।
कालचक्राद्विनिर्गन्तुं, त्रिकालं नौमि निष्कलान्।
कालकलाव्यतीतांश्च, पुष्यन्तु नः समीहितम्।।32।।
संकूल कूट से श्रेयांसप्रभु, सहस्रमुनि सह मोक्ष गये।
कालचक्र के नाश हेतु, त्रयकाल नमूँ शुभ भाव लिये।।
वहीं छ्यानवे कोटाकोटी, छ्यानवे कोटि छ्यानवे लक्ष।
नब्बे सहस पाँच सौ ब्यालीस, साधु मोक्ष गये नमूं सतत।।
सुवीरकूटतः श्रीमान्, निष्कलो विमलप्रभुः।
सहस्रयोगियुग् लेभे-ऽनंतसौख्यं नमामि तं।।33।।
तस्मात्सप्तति कोट्यः, षष्टिलक्षषट्सहस्रसप्तशतानि च।
द्विचत्वारिंशद्युता, मुनीश्वराः परमसौख्यमापुर्यत्नात्।।34।।
अंतकांतकनाशाय, विमलाशयवृत्तितः।
सर्वान् सिद्धांस्तुवे नित्यं, ध्यानामृतपिपासया।।35।।
विमलनाथ भगवान् सुवीर, कूट से, सहस्रऋषिगणयुत।
चिच्चैतन्य सुधारसमय, शिव पाये वंदूँ मैं शिरनत।।
इसी से सत्तरकोटि साठ-लक्ष छहसहस सातशतक।
ब्यालीस मुनिगण अविनश्वर सुख, पाये वंदूं त्रिकरणयुत।।
स्वयंभूकूटतोऽनंत - नाथोऽनंतास्पदं ययौ।
षट्सहस्रमुनीन्द्रैर्युक्, तं तांश्च नौमि सिद्धये।।36।।
तदनु षण्णवतिकोटि-कोट्यश्च सप्तकोटिसप्ततिलक्षाः।
सप्ततिसहस्रसप्त-शतमितमुनयोंऽतकं सुयौगैर्जिग्युः।।37।।
नमस्करोमि तान् सिद्धान्, परमानंदतृप्तकान्।
नृदेवमुनिवंद्यांश्च, चैतन्यानंद - लिप्सया।।38।।
कूट स्वयंभू से अनंत जिन, अतकहर अनंतमय धाम।
पाया षट्सहस्रमुनियुत, उनको अनंत सुखहेतु प्रणाम।।
नंतर छ्यानवे कोटाकोटि, सत्तरकोटि सत्तरलक्ष।
सत्तर सहस सातसौ ऋषिगण, मुक्त हुये मैं नमूँ सतत।।
सुदत्तवरकूटाच्छ्री-धर्मो धर्मैकचक्रभृत्।
सहस्रयोगियुक्सिद्धि-वधूं लेभे नमामि तम्।।39।।
तत्रोनविंशतिकोटि-कोट्यू नविंशतिकोटिनवलक्षा स्युः।
नवसहस्रसप्तशती-पंचनवतिसंचिताः प्रमुक्ताः ऋषयः।।40।।
क्षान्त्यादिदशधर्मस्य, प्राप्तये कर्महानये।
सिद्धिकान्तापतीन् वन्दे, तत्कूटं च विशुद्धये।।41।।
सुदत्तकूट से धर्मतीर्थकर, सहस्रसाधुगण संयुत।
कर्ममर्महर शिव पहुँचे, दश धर्म के लिये नमूँ सतत।।

वहीं उन्नीस कोटाकोटि-उन्नीस कोटि नवलक्ष प्रणाम।
नवसहस सातसैपंचानवे-मुनिगण शिव गये उन्हें प्रणाम।।

प्रभासकूटतः शांति-र्भगवान् सिद्धिमाश्रितः।
सहस्रयतियुक्सर्वांस्स्तौमि भवाग्निशान्तये।।42।।
तत्कूटान्नवकोटि-कोट्यो नवकोटिलक्षनवयुतमुनयः।
नवसहस्रनवशतानि च, ध्यानसुधाभिर्भवं प्रशाम्य सुशांता।।43।।
शांत्यैषी संस्तुवे नित्यं, शांतिमात्यंतिकीं गतान्।
जन्मरोगप्रशान्त्यै मे, मनःशान्तिर्विधीयताम्।।44।।
प्रभासकूट से, शांतिनाथमुनि, हजारयुत यम शांत किया।
भव आताप शांति हेतु मैं, उन सबको झट नमन किया।।
उसी कूट से नव कोटाकोटि नवकोटि नव लक्ष।
नवहजार नवसौ ऋषिगण, शिवनारि वरी मैं नमूँ सतत।।

कूटे ज्ञानधरे पूज्यो, कुंथुदेवो सुरैर्नुतः।
सहस्रमुनियुक् प्रापत्, सिद्धिं सर्वान् नमामि तान्।।45।।
पण्णवतिकोटिकोट्यः, सुषण्णवतिकोटिलक्षकद्वात्रिंशत्।
तत्र सिद्धाः षण्णवति-सहस्रसप्तशतद्विचत्वारिंशत्।।46।।
अक्षयानंदबोधस्य, स्वामिनः स्युः स्तवीमि तान्।
तत्कूटं च सदा मोदात्, यतो लप्स्येऽक्षयं सुखम्।।47।।
कूट ज्ञानधर से कुंथु प्रभु, सहस्रमुनि युत मृत्युजये।
आत्यंतिक सुख शांति हेतु मैं, करूँ वंदना भाव लिये।।
उससे छ्यानवे कोटाकोटि, छ्यानवे-कोटि लक्ष बत्तीस।
छ्यानवेसहस, सात सौ ब्यालीस, मुनि शिव गये नमूं धर प्रीत।।

नाटककूटतः श्रीमा-नरनाथो महर्षिणाम्।
सहस्रैः सह निर्वाण-सौख्यं लेभे प्रणौम्यहं।।48।।
तदनु नवनवतिकोट्यो, नवनवतिलक्षनवनवतिसहस्रमिताः।
मुनयः संसाराम्बुधि-मुत्तीर्य निजालयं विविशुर्यत्नात्।।49।।
मया सर्वे प्रणूयंते, सिद्धा क्लेशापहारिणः।
यानासाद्य विलोयिन्ते, रागद्वेषादिशत्रवः।।50।।
नाटककूट से अरहनाथऋषि-सहस्रयुत निर्वाण गये।
जन्ममरण दुख नाश हेतु मैं, नमूँ सदा धर हर्ष हिये।।
उसी कूट से निन्यानवे कोटि, निन्यानवे लक्ष प्रमाण।
तथा निन्यानवे सहस महामुनि, मुक्ति गये वंदूं धर ध्यान।।

कूटसंबलतो मल्लि-प्रभुः सहस्रयोगियुक्।
प्राप्तवान् परमाह्लादा - स्पदं सर्वान् प्रणौम्यहं।।51।।
तत्पश्चात् षण्णवति-कोट्यः ऋषयोऽक्षयास्पदं प्रतिपसन्नाः।
मोहमल्लस्य जयिनो, निर्गतशल्या नमामि तान् सद्भक्त्या।।52
शल्यान्युद्धर्तुकामोऽहं, मल्लेः संवलकूटकं।
उत्फुल्लमनसा वन्दे, सिद्धांश्च करकुड्मलः।।53।।
संबल कूट से मल्लि जिनेन्द्र, सहस्रमुनि युत परमाह्लाद।
पद पाया हतमोहमल्ल को, वंदूं कर्ममल्ल नाशार्थ।।
उसी कूट से छ्यानवे कोटि, ऋषिगण मृत्युमल्ल जीते।
शल्योद्धरण हेतु मैं वंदूँ, करकुड्मल कर भक्ती से।।

कूटनिर्जरतः श्रीमान्, मुनिसुव्रत ईश्वरः।
सहस्रमुनियुक् सिद्धिं, ययौ सर्वान् प्रणौम्यहम्।।54।।
तस्मान्नवकोटिचतु-र्लक्षास्त्रिंशत्सहस्रसंचितयतयः।
रत्नत्रयशस्त्रेण हि, घात्यघातिविद्विषं निजघ्नुर्यत्नात्।।55।।
कर्मभस्मीकृतान् सिद्धान्, तत्कूटं च नमाम्यहम्।
शक्तिः कर्मौघहन्त्री मे, यत्प्रसादाद् भवेद् त्वरम्।।56।।
निर्जरकूट पर मुनिसुव्रतप्रभु, सहस्र महाव्रतिक गणयुत।
ध्यानानल से कर्मदग्धकर, पहुँचे मोक्ष नमूँ मैं नित।।
वहीं नवकोटि चार लक्ष, तीस सहस संकलित प्रमाण।
मुनिगण परम सौख्य निर्वाण-राज्य को पाये उन्हें प्रणाम।।

कूटे मित्रधरे देवो, नमिनाथः शिवं गतः।
सहस्रयतियुक् सर्वान्, वंदे मोहजिगीषया।।57।।
नवशतकोटिकोट्यै-कार्बुदाश्च लक्षपंचचत्वारिंशत्।
सप्तसहस्राणि तथा द्विचत्वारिंशदधिकनवशतसहिताः।।58।।
एतत्कूटे गताः सिद्धिं, गुणरत्नाकराश्च ये।
तान् तत्कूटं च संस्तौमि, दुर्गतिच्छित्तये सदा।।59।।
कूट मित्रधर पर नमि जिनवर, सहस्रयतिगणयुत आये।
कर्माटवी भस्मकर मोक्ष, गये उन वंदत शिव पाये।।
उस पर नवशत कोटाकोटि-एक, अरब पैंतालिस लक्ष।
सात सहस नवसै ब्यालिस मुनि, शिव पहुँचे मैं वंदूँ नित।।

स्वर्णभद्राभिधे कूटे, पार्श्वनाथो बुधैर्नुतः।
त्रिशतमुनियुङ्मुक्ति-श्रियं प्रापत् प्रणौमि तम्।।60।।
तदनु द्व यशीतिकोट्यश्चतुरधिकाशीतिलक्षसंकलिताःस्युः।
पंचचत्वारिंशत्सहस्राणि सप्तशतद्विचत्वारिंशत् ।।61।।
नृदेवमुनिभिर्वंद्या, एते सर्वे शिवं ययुः।
भवपाशच्छिदेऽहं तान्, तत्कूटं च स्तुवे मुदा।।62।।
स्वर्णभद्रकूट से पार्श्वनाथ, जिन तीन शतक मुनियुत।
मुक्तिरमा को वरण किये मैं, उन्हें नमूँ पाऊँ शिवसुख।।
वही बियासी कोटि चौरासी, लक्ष सु पैंतालीस हजार।
सातशतक ब्यालीस साधुगण, सिद्ध हुये वंदूँ सुखकार।।

(अनुष्टुप् छंद)

कैलाशशैलराजे श्री–वृषभो वृषलाञ्छनः।
सहस्रमुनियुक्सिद्धिं, भेजे सर्वांस्तुवे मुदा।।63।।

भरतदोर्बलीत्याद्या, नवसहस्रमुनीश्वराः।
तत्रकालद्विषं जिग्यु-स्तेभ्यो भक्त्या नमोऽस्तु मे।।64।।
कैलाशशैल से वृषभ सहस-मुनियुत निर्वाण गये प्रणमूँ।
वहीं बाहुबलि भरतादिक नव-सहस्र मुनि शिव गये नमूँ।।

मंदारगिरितः स्वामी, वासुपूज्यः शिवं गतः।
सहस्रयतियुक् सर्वा-नेतान् वंदे शिवाप्तये।।65।।
चंपापुरि से वासुपूज्य मुनि, सहस्र युत कर्मारि हने।
अव्ययपद के हेतु नमूँ मैं, मम सब वांछित कार्य बने।।

ऊर्जयन्ते प्रभुर्नेमिः, कोट्यो द्विसप्तप्रमाः।
सप्तशतमुनीन्द्राश्च, मृत्युं जिग्युः स्तवीमि तान्।।66।।
ऊर्जयन्तगिरि पर नेमीश्वर, प्रद्युम्न-शंभु-अनिरुद्धादिक।
कोटिबहत्तर सातसौ यतिगण, शिवकांता वरी वंदूं नित।।

पावापुर्याः सरोमध्ये, वर्धमानः शिवं गतः।
षड्विंशति-यतीन्द्राश्च, सर्वान् वन्दे पुनः पुनः।।67।।
पावापुरी सरोवर मध्ये, वर्धमानप्रभु सिद्ध हुये।
छब्बीस साधु वहीं भव नाशे, सबको नमूँ अंजली किए।।

भरतेऽस्मिन्नयं मुक्त्यै-तीर्थेशां शाश्वतो गिरिः।
कालदोषाच्चतुस्तीर्थं-कराः सिद्धाः पृथक् पृथक् ।।68।।
इस भरत क्षेत्र में चौबीस, तीर्थंकर का मुक्त क्षेत्र शाश्वत।
गिरि सम्मेद शिखर ही काल-दोष से ये शिव गये पृथक्।।

एतस्यामवसर्पिण्या - मस्मिन् शैले शिवं ययुः।
यावन्तोऽपि जनास्तेषां, जिनैः संख्या उदीरिताः।।69।।
इस अवसर्पिणी युग में श्री-सम्मेदशिखर शुभ पर्वत से।
सिद्ध हुये उनकी गणना हो, गयी वीर प्रभु की ध्वनि से।।

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योऽनंतातीतासु येऽत्र वै।
तीर्थंकरा मुनींद्राश्चा-नंता मुक्ता नमामि तान्।।70।।
अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणि में अनंत तीर्थंकर मुक्त।
इस पर्वत से हुये अनंत मुनि-गण भी उनको नमूँ सतत।।

भाविकाले तथानन्तास्तीर्थंकराश्च योगिनः।
अस्मात्सिद्धिं प्रयास्यंति, तान् सर्वान्नौम्यहं मुदा।।71।।
तथा भविष्यत् में अनंत, तीर्थंकर-हो शिव जायेंगे।
अनंत भविजन इस पावन, पर्वत पर कर्म जलायेंगे।
उन सब भूत भविष्यत् संप्रति, सिद्धों की वंदना करूँ।
परम समाधि ध्यानहेतु नित-प्रति चिंतन संस्तवन करूँ।।

अनाद्यनिधनस्यास्य, माहात्म्यं केन वर्ण्यते।
भव्या एव प्रवंदंते, नाभव्यैर्वंद्यते कदा।।72।
सिद्धशैल इस अनादि-अनिधन, की महिमा नहिं कह सकते।
भव्य जीव ही दर्शन पाते, नहिं अभव्य को मिलसकते।।

कुरुते वन्दनां भक्त्या, बारमेकं जनोऽस्य यः।
तिर्यङ्-नरकगत्योश्च, गमनं तस्य नो भवेत्।।73।।
तथा चैकोनपंचाशत्, भवस्याभ्यंतरे स हि।
नियमाल्लप्स्यते मुक्ति-मेतदुक्तं जिनेश्वरैः।।74।।
एक बार वंदना करे जो, गती नरक तिर्यंच टले।
उनंचास भव के अंदर, मुक्तिश्री निश्चित उसे मिले।।

एकेन्द्रियादयो जीवा, उत्पद्यंतेऽत्र येऽपि ते।
सर्वे भव्या जिनैः प्रोक्तं, कदापि नान्यथा भवेत्।।75।।
यहाँ पर एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव जितने।
जन्म धारते हैं जिनवर ने, भव्यराशि में कहा उन्हें।।

व्यंतरदशलक्षेशो, महायक्षोऽत्र भूतकः।
शैलं रक्षति पापिभ्यो, भाक्तिकांश्चापि संततं।।76।।
व्यंतर दशलक्षों का अधिपति, भूतकयक्ष यहाँ रक्षक।
नरक तिर्यग्गामी अरु अभव्य, की वंदना में है बाधक।।
वस्तु स्वभाव अनादि अनिधन, नहिं अन्तर पड़ता उसमें।
दुःसाहसी अनधिकारी के, रोध में अन्य निमित्त बने।।

अस्य वन्दनयासंख्यो-पवासानां फलं भवेत्।
किमन्यैजल्पनैर्यद्धि, निर्वाणसौख्यमश्नुते।।77।।
असंख्य उपवासों का फल, इस पर्वत वंदन से मिलता।
अधिक और क्या जब त्रिभुवन, साम्राज्य सौख्य निश्चित मिलता।।

चतुर्विंशतितीर्थेशां, सिद्धा गणभृतः पृथक्।
चतुर्दश-शतीति द्वि-पंचाशत्तानपि स्तुवे।।78।।
चौबीस तीर्थंकरों के गणधर, चौदहसौ बावन परिणाम।
जहाँ जहाँ से मुक्ति गये हैं, मनवचतन से करूँ प्रणाम।।

श्रुतभृतो मुनीन्द्राश्च, सिद्धा अगणितोन्यतः।
भूशैलाब्ध्यादिक्षेत्रेभ्यः, सिद्धान् क्षेत्राणि च स्तुवे।।79।।
श्रुतधर मुनिगण अगणित अन्यत-भू-पर्वत नद्यादिक से।
मुक्तधाम को प्राप्त हुये हैं, मुक्ति हेतु वंदूँ रुचि से।।

द्वीपे सार्धद्वये यत्रा-र्हद् गणभृद् यतीश्वराः।
सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंति, तान् तत्क्षेत्राणि च स्तुवे।।80।।
ढाई द्वीप में जहाँ जहाँ से, तीर्थंकर गणधर मुनिगण।
सिद्ध हुये, होते हैं, होंगे, उन्हें उन क्षेत्रों को भी नमन।।

पंचकल्याणमेदिन्यः सातिशयस्थलानि च।
वंदे कृताकृतांश्चापि, जिनचैत्यजिनालयान्।।81।।
तथा पंचकल्याणक क्षेत्रों, को अतिशययुत क्षेत्रों को।
नमूँ सदा कृत्रिम अकृत्रिम, जिनचैत्यालय चैत्यों को।।

पंचमहागुरून् वागी-श्वरीं प्राक्सूरियोगिनः।
अन्वायातान् मुनींद्रांश्च, स्तौमि स्वात्मोपलब्धये।।82।।

पंचपरमगुरु श्री श्रुतदेवी, पूर्वाचार्य साधुगण को।
स्वात्मसिद्धि के लिये नमूँ मैं, अन्वायात सभी मुनि को।।

श्रीवीरसागराचार्यं, महाव्रतप्रदायिनं।
तमनुसूरिसाधूंश्च वन्दे समाधिसिद्धये।।83।।

वीरसिंधु आचार्य प्रवर, महाव्रतदायक गुरुवर को।
नमूँ सदा गुरु परंपरागत, सूरि तथा साधूगण को।।

क्षेत्रस्य वन्दास्तोत्रै-र्दग्ध्वा पापानि शुद्धधीः।
सम्यग् ''ज्ञानमति'' ध्यान-संपत्त्या सिद्धिमाप्नुयाम्।।84।।

सिद्धक्षेत्र के वंदन स्तवन से, भवभव के पाप हरूँ।
सम्यग् "ज्ञानमती" समाधि के, बल से शिवसुख प्राप्त करूँ।।

।। इति श्री सम्मेदशिखरवंदना।।

भजन

-ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

तर्ज–जहाँ डाल-डाल पर.....

प्रभु पार्श्वनाथ के सुमिरन से मिटता अज्ञान अंधेरा।
है वंदन उनको मेरा

प्रभु पार्श्वनाथ की भक्ति से अज्ञान तिमिर नश जाता।
भव-भव के कल्मष धुल करके सम्यक्त्व उजाला आता।
सम्यक्त्व का उजाला आता
प्रभु पूज्य भक्ति करने से सब संकट दूर हो मेरा।
है वंदन उनको मेरा.....।।1।।

अश्वसेन पितु वामादेवी के तुम राजदुलारे।
वाराणसी नगरी में जन्में तुम जग के चाँद सितारे।
जग के चाँद सितारे
तेरा प्रभु नाम स्मरण से है मिले मुक्ति का डेरा।
है वंदन उनको मेरा.....।।2।।

अहिच्छत्र में पार्श्वनाथ को केवलज्ञान हुआ है।
धनकुबेर ने समवसरण की रचना तुरत किया है।
रचना तुरत किया है
केवलज्ञान प्राप्त मुझे हो मिले न भव-भव फेरा
है वंदन उनको मेरा.....।।3।।

सम्मेदाचल से प्रभु ने शिव, पद को प्राप्त किया है।
अष्टकर्म को शांत किया औ मुक्ति साम्राज्य लिया है।
मुक्ति साम्राज्य लिया है
मुझको भी शिवपद प्राप्त शीघ्र हो मिटे कर्म का डेरा
है वंदन उनको मेरा.....।।4।।

गणिनी माता श्री ज्ञानमती का तत्त्वज्ञान है भारी।
प्रभु पार्श्वनाथ का महामहोत्सव किया जगत में भारी।
किया जगत में भारी
करे प्रार्थना ''बीना'' यह मिल जावे ज्ञान का डेरा
है वंदन उनको मेरा.....।।5।।

पार्श्वनाथ जन्मजयंती ६ जनवरी २००५
के शुभ अवसर पर प्रस्तुत
भजन

तर्ज-कभी तू.....

चलो वाराणसि चलना है, वहाँ पर उत्सव करना है।
प्रभु पारस के चरणों में, सभी को वन्दन करना है।।
जय पारसनाथ प्रभो, जय पारसनाथ प्रभो-2।।टेक.।।
नागयुगल को एक बार, प्रभु ने महामंत्र सुनाया।
दोनों ने धरणेन्द्र और पद्मावति का पद पाया।।
पद्मावती का पद पाया.....

प्रभु पार्श्व बालयति को, शत वन्दन सब कर लो।
उनकी यादों में वाराणसि में, उत्सव भी कर लो।।
चलो वाराणसि.।।1।।

एक बार वाराणसि में, युवराज पार्श्वप्रभु जी ने।
एक दूत से नगरि अयोध्या, का वर्णन सुन करके।।
हाँ वर्णन सुन करके.....

वृषभेश्वर तीर्थंकर, का वैभव सुन करके।
तत्क्षण वैरागी बनकर, दीक्षा ली जा करके।।
चलो वाराणसि.।।2।।

उन्हीं पार्श्वप्रभू का तृतीय, सहस्राब्दि महोत्सव आया।
गणिनी ज्ञानमती जी का, आशीर्वाद जब पाया।।
आशीर्वाद जब पाया.....

"चन्दनामती" प्रभु से, कुछ सीख ग्रहण कर लें।
जीवन में समता और धैर्य का, पाठ स्वयं पढ़ लें।।
चलो वाराणसि.।।3।।

विघ्नहरण भगवान पार्श्वनाथ

लेखक-श्री प्रदीप कुमार जैन,बहराइच (उ.प्र.)

(1)
जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, नगर बनारस अति सुन्दर।
राज्य करें नृप अश्वसेन, जिनके यहाँ जन्में तीर्थंकर।।

(2)
महल था नौ मंजिल का उनका, रानी थी वामा देवी।
धन्य भाग्य थे उन दोनों के, जग में उनसा नहिं कोई।।

(3)
धनकुबेर प्रतिदिन रत्नों की, वर्षा करके थे हरषे।
तीर्थंकर के जन्म से पहले, पन्द्रह महिने तक बरसे।।

(4)
प्रतिदिन कई करोड़ रतन, राजा के महल में बरसे थे।
नृप अश्वसेन थे रतन लुटाते, नर नारी सब हरषे थे।।

(5)
एक रात वामा देवी, जब महल में अपने सोई थी।
देखा सोलह सपने, ऐरावत हाथी, सिंह, बैल आदी।।

(6)
आँख खुली प्रातः स्नान किया, जिनवर पूजा करके।
पति के पास गई पूछा फल, अपने स्वप्न बता करके।।

(7)
अवधिज्ञान से महाराज ने, बतलाया फल क्या होगा।
हे देवी तेरे गर्भ से, तीर्थंकर का जन्म यहाँ होगा।।

(8)
देव देवियाँ सभी मात की, सेवा में लग जाते हैं।
इन्द्र भी आकर गर्भकल्याणक, उत्सव वहाँ मनाते हैं।।

(9)
नृप अश्वसेन का वैभव तो, स्वर्गों से भी बढ़ चढ़कर था।
लगता था जैसे धरती पर, मानो इक स्वर्ग उतर आया।।

(10)
नव महिने पूरे होने पर, तिथि पौष कृष्ण एकादशि को।
जन्म दिया वामा देवी ने, पार्श्वनाथ तीर्थंकर को।।

(11)
स्वर्ग में भी सौधर्म इन्द्र का, आसन डोल गया उस क्षण।
तीर्थंकर का जन्म जानकर, आया स्वर्ग से धरती पर।।

(12)
इन्द्राणी ने माँ को फिर, गहरी निद्रा में सुला दिया।
माया से इक दूजा बालक, वहाँ पास में लिटा दिया।।

(13)
पर्वत सुमेरु की पाण्डुशिला पर, प्रभुवर को ले गये सभी।
एक हजार आठ कलशों से, अभिषेक प्रभू का किया तभी।।

(14)
दिव्य वस्त्र आभूषण पहनाये, फिर खूब शृंगार किया।
सौधर्म इन्द्र ने बालप्रभू को, 'पार्श्वनाथ' यह नाम दिया।।

(15)
बालक प्रभु को फिर ले जाकर, माता की गोद में दे दीना।
प्रभु रूप देख नहिं तृप्त हुआ, तब नेत्र हजार इन्द्र कीना।।

(16)
स्वर्ग के देव बने बालक, धरती पर प्रभु संग रहते थे।
क्रीड़ा करते वे मन हरते, धन्य अपना भाग्य समझते थे।।

(17)
जन्म से थे प्रभुवर अति सुन्दर, तन में दिव्य सुगंधी थी।
मल मूत्र नहीं उनके तन में, वाणी हितकर व कर्ण प्रिय थी।।

(18)
था रहित पसीने से तन प्रभु का, अद्भुत बल के धारी थे।
वे लक्षण एक हजार आठ, और रुधिर श्वेत तन धारी थे।।

(19)
बज्रवृषभ-नाराच संहनन, समचतुष्क संठान सहित।
ऐसे प्रभुवर के चरणों में, शीश नवाऊँ भक्ति सहित।।

(20)
पार्श्वनाथ प्रभु मरकत मणि के, सदृश हरित वर्ण के थे।
मति, श्रुत, अवधी, तीन ज्ञान के, धारी प्रभू जनम से थे।।

(21)
सोलह वर्षों बाद प्रभू, जब नवयौवन से युक्त हुए।
एक बार वे भ्रमण हेतु, मित्रो के संग उद्यान गये।।

(22)
उस उद्यान में महीपाल, राजा मिथ्या तप में रत था।
निकल नरक से जीव कमठ का, बना महीपाल नृप था।।

(23)
महीपाल थे नाना प्रभु के, अपनी रानी के वियोग में।
पंचाग्नि तप में थे लीन, मिथ्या तापसियों के संग में।।

(24)
पार्श्वनाथ प्रभु पास में पहुँचे, नमस्कार नहिं किया उन्हें।
महीपाल ने जब यह देखा, क्रोध आ गया तुरत उन्हें।।

(25)

बोले हे कुमार मैं नाना, तेरा महा तपस्वी हूँ।
तूने मेरा अपमान किया, मैं तो कुछ भी कर सकता हूँ।।

(26)

बोले तब पार्श्व कुमार तभी, क्यों तुम मिथ्या तप करते हो?
इससे नहिं होता पुण्य कभी, क्यों तुम पापास्रव करते हो?

(27)

अज्ञानी जब तप करते, इस लोक में दुख उन्हें मिलता।
भव वन में ही वह भ्रमण करें, परलोक में भी सुख नहिं मिलता।।

(28)

जो आप्त और आगम को तजकर, मिथ्या तप में रत रहते।
उनको निर्वाण नहीं होता, केवल निज को ठगते रहते।।

(29)

सम्यक्त्व प्राप्त करके ही जो, जग में तप को धारण करते।
उनका ही तप मंगलकारी, वे ही तो मोक्षधाम लहते।।

(30)

उपदेश सुना प्रभु का क्रोधित हो, अपना क्रोध जताने को।
उठा कुल्हाड़ी लगा चीरने, लकड़ी एक जलाने को।।

(31)

बोले तब पार्श्वकुमार सुनो, इस लकड़ी में हैं नाग युगल।
मत काटो इसे कुल्हाड़ी से, जायेंगे इनके प्राण निकल।।

(32)

यह सुनकर क्रोधित और अधिक, हो गया उसी क्षण वह तपसी।
बात नहीं माना प्रभु की, और काट लिया लकड़ी फिर भी।।

(33)

लकड़ी के टुकड़े होते ही, नाग-नागिनी निकल पड़े।
हो गये थे तन के दो टुकड़े, पीड़ा से दोनों तड़फ रहे।।

(34)

प्रभु ने उपदेश दिया उनको, धर्मामृत पान कराया था।
शांत भाव से मरकर के, दोनों ने देव पद पाया था।।

(35)

वे नागयुगल धरणेन्द्र तथा, पद्मावति बनकर जन्मे थे।
यक्ष जाति के देव और, देवी बने प्रभू कृपा से थे।।

(36)

पार्श्व प्रभू ने इसी तरह, कई जीवों का कल्याण किया।
समय बड़ी तेजी से चलता, तीस वर्ष था बीत गया।।

(37)

मात-पिता ने जब शादी, करने को कहा पार्श्वप्रभु से।
बोले थे पार्श्वकुमार तभी, शादी है बंधन इस जग में।।

(38)

शादी करके मुझको यूँ अपना, जीवन व्यर्थ नहीं करना।
नेमिनाथ प्रभु के समान, मुझको भी आतम हित करना।।

(39)

सुख वैभव से सम्पन्न प्रभू, इक दिवस महल में बैठे थे।
उस समय अयोध्या के नरेश, जयसेन ने भेंट उन्हें भेजे।।

(40)

भेंट समर्पित कर सेवक ने, प्रभु के चरण प्रणाम किया।
हर्षित होकर तब पार्श्वनाथ, प्रभु ने उसका सम्मान किया।।

(41)

पूछा कुशल क्षेम नृपवर का, हाल अयोध्या का पूछा।
बोला दूत प्रभो आपकी, कृपा मिले तब कष्ट कहाँ?

(42)

सर्वप्रथम प्रभु ऋषभदेव के, दश भव का वर्णन करके।
बतलाया साकेत का वैभव, दूत ने फिर मृदुता धर के।।

(43)

वचन दूत के सुनकर के, प्रभु पार्श्व सोचने लगे तभी।
हैं धन्य धन्य प्रभु ऋषभदेव, उनका अनुसरण करें हम भी।।

(44)

उस ही क्षण उनको अपने, उन पूर्व भवों का ज्ञान हुआ।
हो गया जातिस्मरण उन्हें, मन में अपूर्व वैराग्य हुआ।।

(45)

संसार असार समझ करके, शिवपथ पर चलने को ठाना।
उसी समय लौकान्ति-देव, आ गये किया स्तुति नाना।।

(46)

इन्द्रादिक देवों ने आकर, प्रभुवर का अभिषेक किया।
मनाके दीक्षा कल्याणक, फिर उत्सव और अनेक किया।।

(47)

सबको सम्बोधित कर प्रभुवर, विमला नाम पालकि पर।
होकर के आरूढ़ चल दिये, निज सुख हेतु मोक्ष पथ पर।।

(48)

पहुँच अश्ववन में भगवन, बेला का नियम लिया उस क्षण।
हुए विराजमान पर्यंकासन से, एक शिलातल पर।।

(49)

पौष कृष्ण एकादशि के दिन, प्रातःकाल की बेला में।
सिद्धप्रभू को नमस्कार कर, दीक्षा धारण की प्रभु ने।।

(50)

पंच मुष्टियों के द्वारा, प्रभुवर ने केशलोंच कीना।
इन्द्र ने क्षीर समुद्र में उन, केशों का क्षेपण कर दीना।।

(51)

दीक्षा लेते ही प्रभु ने, मनःपर्ययज्ञान को प्राप्त किया।
ऐसे प्रभुवर के चरण कमल में, नमन है बारम्बार मेरा।

(52)

एक बार मुनि पार्श्वनाथ, आहार हेतु थे निकल पड़े।
था शुभ दिन वह गुल्मखेट, नामक नगरी में पहुँच गये।।

(53)

धन्य नामके राजा ने, मुनिवर का पड़गाहन करके।
आहार दिया नवधा भक्ती से, अपना जन्म सफल करके।

(54)

आहार दान के फलस्वरूप, पंचाश्चर्य प्राप्त किया नृप ने।
तीर्थंकर ले आहार जहाँ, उस नृप के भाग्य के क्या कहने?

(55)

चार माह छद्मस्थ अवस्था, के प्रभुवर ने बिता दिये।
वन में जाकर देवदारू, नामक इक वृक्ष तले तिष्ठे।।

(56)

सात दिनों का योग लिया, मन में विशुद्धता लिये हुए।
धर्मध्यान से भी बढ़कर, शुद्धात्म ध्यान में लीन हुए।।

(57)

वह महीपाल मिथ्या तपसी, सो पार्श्वनाथ का नाना था।
था जीव कमठ का पूर्वभवों में, वैर प्रभू से ठाना था।।

(58)

मिथ्या तप के फल से मरकर, वह 'शम्बर' ज्योतिषी देव हुआ।
आकाश मार्ग से एक दिवस, उसने विमान से गमन किया।।

(59)

प्रभुवर थे ध्यान लीन उनके, ऊपर से जब विमान गुजरा।
रुक गया अचानक वह विमान, नहिं थोड़ा सा भी खिसक रहा।।

(60)

उसको विभंग अवधि ज्ञान, के द्वारा सब कुछ ज्ञात हुआ।
पूर्व भवों के वैर के बारे में, उसने सब जान लिया।।

(61)

उसने फिर क्रोधित होकर, उपसर्ग भयंकर शुरू किया।
और भयानक रूप बना, अग्नी वर्षा प्रारंभ किया।।

(62)

मूसलाधार वर्षा करके, जोरों से आँधी चलवाया।
फिर भी अचलित धीर वीर, प्रभुवर को नहीं डिगा पाया।।

(63)

सात दिनों तक लगातार, उसने उपसर्ग अनेक किये।
बड़े बड़े पत्थर लाकर, पास प्रभू के पटक दिये।।

(64)

जब प्रभुवर पर उपसर्ग हुआ, धरणेन्द्र का आसन काँप उठा।
अवधिज्ञान से जान सभी, भार्या पद्मावति संग चला।।

(65)

पाताल लोक से चलकर के, दोनों प्रभु पार्श्व के पास गये।
शम्बर के द्वारा किये गये, उपसर्ग सभी थे दूर किये।।

(66)

पद्मावति ने प्रभुवर को उठा, अपने मस्तक पर बिठा लिया।
धरणेन्द्र ने मणियों से निर्मित, तब कई फणों का छत्र किया।।

(67)

धरणेन्द्र तथा पद्मावती, प्रभुवर के उपकार नहीं भूले।
हम भी जीवन में उपकारी के, उपकारों को याद रखें।

(68)

धरणेन्द्र तथा पद्मावति ने, प्रभुवर की बहुविध भक्ति किया।
उपसर्ग निवारण करके उनने, अपना जीवन सफल किया।।

(69)

ध्यान के बल से प्रभुवर ने, मोहनीय कर्म का नाश किया।
कमठ ने जो उपसर्ग किया था, उसी समय सब दूर हुआ।।

(70)

जिस भूमी पर प्रभुवर ने, उपसर्ग था सारा सहन किया।
'अहिच्छत्र' नाम से वह तीरथ, है आज भी जग में शोभ रहा।

(71)

प्रभु पार्श्वनाथ ने चार घातिया, कर्म का नाश किया क्षण में।
लोकालोक प्रकाशी केवलज्ञान, को प्राप्त किया प्रभु ने।।

(72)

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने, समवसरण की रचना की।
इन्द्र ने भक्ती से प्रभुवर के, केवलज्ञान की पूजा की।।

(73)

जैसी विभूति तीर्थंकर प्रभु के, समवसरण में दिखती है।
वैसी विभूति मिथ्यादेवों को, कभी नहीं मिल सकती है।।

(74)

भगवान की महिमा देख, ज्योतिषी देव ने भी तब वैर तजा।
सम्यग्दर्शन को धारण कर, आखिर में प्रभु के चरण झुका।।

(75)

वहाँ सात सौ तापसियों ने, सम्यग्दर्शन ग्रहण किया।
प्रभु पार्श्वनाथ की बार-बार, भक्ती कर संयम ग्रहण किया।।

(76)

जब केवलज्ञान प्रभू को होता, ये दश अतिशय होते है।
सौ सौ योजन तक प्रभुवर के, चहुँ ओर सुभिक्ष ही होते हैं।

(77)

आकाश गमन होता प्रभु का, इक मुख होकर भी चार दिखे।
हिंसा, उपसर्ग नहीं होता, आहार नहीं भगवन लेते।।

(78)

सब प्रकार की विद्यायें, प्रभुवर के पास सदा रहती।
नख, केश नहीं बढ़ते प्रभु के, नेत्रों की पलकें नहिं लगती।।

(79)

अरिहंत प्रभू का तन, छाया से रहित सदा ही है होता।
ऐसा अतिशय अरिहंत प्रभू के, सिवा अन्य को नहिं होता।

(80)

अठ प्रातिहार्य एवं चौदह, अतिशय देवों द्वारा होते।
अठारह दोषों से भी रहित, केवल अरिहंत प्रभू होते।।

(81)

सोलह हजार मुनिराज, प्रभू के समवसरण में थे ज्ञानी।
थे दस गणधर उनमें से प्रमुख, 'स्वयंभू' गणधर अतिज्ञानी।।

(82)

वहाँ एक लाख श्रावक एवं, तीन लाख श्राविका सहित।
छत्तीस हजार आर्यिकाएँ, आर्यिका सुलोचना प्रमुख कथित।

(83)

प्रभु पार्श्वनाथ ने समवसरण में, सबको धर्म उपदेश दिया।
पाँच माह कम सत्तर वर्षों तक, प्रभुवर ने विहार किया।।

(84)

केवलज्ञानी पार्श्वनाथ प्रभु, जब जब थे विहार करते।
स्वर्ण कमल की रचना, उनके चरणों तले देव करते।।

(85)

अंत में जब प्रभुवर की आयू, एक माह की शेष रही।
सम्मेदशिखर पर पहुँच गये, संग में थे छत्तिस मुनि भी।।

(86)

किया बंद विहार तथा फिर, प्रतिमायोग किया धारण प्रभु ने।
शुक्लध्यान से अष्ट कर्म, सब नष्ट किया क्षण में प्रभु ने।।

(87)

श्रावण शुक्ला सप्तमि के दिन, तब मुक्ति रमा ने वरण किया।
अविनाशी अक्षय सुख पाकर, निर्वाण धाम को प्राप्त किया।।

(88)

इन्द्रों ने भी तब पार्श्वनाथ, प्रभु की पूजा भक्ती करके।
निर्वाण कल्याणक उत्सव खूब, मनाया हर्षित हो करके।।

(89)

प्रतिवर्ष भक्तगण भक्ती से, सम्मेदशिखर पर जाते हैं।
मोक्षकल्याणक के शुभ दिन, वहाँ लाडू खूब चढ़ाते हैं।

(90)

पार्श्वनाथ प्रभु के जीवन से, हमको यह शिक्षा मिलती।
वैर, क्रोध, तुम करो कभी ना, यह भव-भव में दुख देती।।

(91)

क्षमा आत्मा का गुण है, जिसे पार्श्वप्रभू ने धारा था।
कमठ ने वैर ठान करके, नरकों में जा दुख पाया था।।

(92)

सौ वर्ष आयु थी प्रभुवर की, नौ हाथ प्रमाण शरीर कहा।
थे बाल ब्रह्मचारी भगवन ने, उग्र वंश में जन्म लिया।।

(93)

क्षमावान प्रभु पार्श्वनाथ, मेरे पापों को क्षमा करो।
करता 'प्रदीप' विनती भगवन, मेरे दुखों को दूर करो।।

(94)

प्रज्ञाश्रमणी चंदनामती, माताजी जो अति विदुषी हैं।
जिनकी वाणी वीणा जैसी, निकले सबका मन हरती हैं।।

(95)

पार्श्वनाथ प्रभु का जीवन, है लिखा उन्होंने अति सुन्दर।
उसका ही आश्रय ले करके, मैंने यह काव्य लिखा रुचिकर।।

(96)

मुझको नहिं काव्य का ज्ञान जरा, यह तो बस मात्र प्रयास मेरा।
इसमें जो भी त्रुटियाँ होवें, कर ले विद्वान सुधार जरा।।

(97)

माँ ज्ञानमती, चंदनामती, का मिले मुझे आशीष सदा।
ऐसी गुरु माँ के चरणों में, करता 'प्रदीप' है नमन सदा।।

भजन

आ.....
अहिच्छत्र की धरती महक उठी है, पार्श्वनाथ उत्सव की धूम मची है।
सजा है तीरथ सदियों पुराना, महोत्सव की शुभ यह घड़ी आ गई है।।
आ.....
आ.....
पारस प्रभु का महाकुंभ अभिषेक करो-2
तिखाल वाले बाबा का अभिषेक करो-2
देखो सहस्राब्दी का उत्सव आया है-2
अहिच्छत्र की धरा ने अवसर पाया है-2
पारस प्रभु का.....।।1।।

पारस प्रभु जन्में जहाँ, वाराणसी पावन
सम्मेदगिरि से मुक्ति पाई, धाम मनभावन
अहिच्छत्र केवलज्ञान भूमी है प्रभो तेरी
मनभावनी, सुखदायिनी, है शान्त छवि तेरी
पारस प्रभु का सुमिरन कर, दुख शोक हरो।
तिखाल वाले बाबा....पारस प्रभु का.....।।1।।

है तीर्थ यह प्राचीन, कण-कण पूज्य है इसका-2
जिनधर्म की कीर्ती की ये, जग में कथा कहता-2
हर भक्त श्रद्धा भक्ति से आता तेरे द्वारे-2
मन की मुरादें पूरी कर गुण गान उच्चारे-2
जिनसंस्कृति उद्घोषक, तीरथ को प्रणमो
तिखाल वाले बाबा.....पारस प्रभु का.....।।2।।

भजन

तर्ज- ऐ मेरे वतन के लोगों.....

भारत के जैनी वीरों,
तुम सुन लो कथा पुरानी।
सम्मेदशिखर पर्वत है,
सिद्धों की अमिट निशानी।।टेक.।।

इक नहीं अनन्तों जिनवर, साकेतपुरी में जन्मे।
सम्मेदशिखर से शिवपद, पा सिद्धशिला पर पहुँचे।।
उस रज को सिर पर धर लो, जो कहती अमर कहानी।
सम्मेदशिखर पर्वत है, सिद्धों की अमिट निशानी।।1।।

बन करके दिगम्बर मुनिवर, इस गिरि पर ध्यान किया है।
कितनों ने तपस्या करके, कर्मों का नाश किया है।।
उन सब सिद्धों को नम लो, जो बने आत्म श्रद्धानी।
सम्मेदशिखर पर्वत है, सिद्धों की अमिट निशानी।।2।।

यह सिद्धक्षेत्र जिनवर का, जैनी इसके अधिकारी।
इसका दर्शन वन्दन है, हर मानव को हितकारी।।
पर्वत को वन्दन कर लो, सब जिनमत के श्रद्धानी।।
सम्मेदशिखर पर्वत है, सिद्धों की अमिट निशानी।।3।।
यह तीर्थ अहिंसा का शुभ, सन्देश सुनाता जग को।
भावों को शुद्ध बनाकर, तिरना सिखलाता सबको।
''चन्दना'' तभी हम सबमें, सार्थक होगी प्रभुवाणी।
सम्मेदशिखर पर्वत है, सिद्धों की अमिट निशानी।।4।।

ये धर्मतीर्थ न कभी भी, बेचे व खरीदे जाते।
हर मानव की श्रद्धा के, ये केन्द्रबिन्दु कहलाते।।
निजमत जिनमत में बदलो, बनकर सच्चे श्रद्धानी।
सम्मेदशिखर पर्वत है, सिद्धों की अमिट निशानी।।5।।



भजन

तर्ज-फूलों सा चेहरा तेरा.....

शाश्वत है तीरथ मेरा,
सम्मेदगिरि नाम है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है,
आदि सिद्धक्षेत्र है,
मधुवन परम धाम है।।टेक.।।
कहते हैं इस गिरि की वन्दना से,
तिर्यंच नरकायु मिलती नहीं है।
श्रद्धा सहित इसकी अर्चना से,
भव्यत्व कलिका खिलती रही है।।
रात अंधेरी हो, भक्ति सहेली हो,
लगता न डर पर्वत पर कभी।
अतिशय से गूँजे यहाँ,
सांवरिया का नाम है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है,
मधुवन परम धाम है।।1।।
इस युग के चौबीस तीर्थंकरों में,
मोक्ष गए बीस जिनवर यहाँ से।
कितने करोड़ों मुनियों ने भी,
तप करके शिवालय पाया यहाँ से।।
तीर्थ पुराना है, श्रेष्ठ खजाना है,
सबको तिराता है संसार से।
तीरथ की कीरत अमर,
कर सकता इंसान है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है,
मधुवन परम धाम है।।2।।
जिनधर्म निधि को पाकर के उसका,
सच्चा सदुपयोग करना है हमको।
आपस में मैत्री, दीनों पे करुणा,
का भाव जग में सिखाना है सबको।।
स्वार्थ त्याग करके, शीघ्र जाग करके,
जैनत्व की सब रक्षा करो।
तीरथ की रज ''चन्दना'',
मस्तक का परिधान है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है,
मधुवन परम धाम है।।3।।

श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ चरित्र

-पं. लालचंद्र जैन 'राकेश', गंजबासौदा

मंगलाचरण

दुर्जयमोहमहारिपुनाशक, आर्हन्त्यपद के धारी।
केवलज्ञानलक्ष्मीमंडित, गुण अचिन्त्य-अतिशयकारी।।
रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग के, परम प्रणेता, मंगलधाम।
उग्रवंश नभ विमल चन्द्रमा, पार्श्वनाथ को कोटि प्रणाम।।1।।

भूमिका

यह संसार महासागर है, चारों गतियाँ गर्त समान।
इनमें भ्रमण कर रहा चेतन, अनादिकाल से वश अज्ञान।।
मोह महामदिरा को पीकर, पर को अपना मान रहा।
कालकूट-सम-विषय-कषायें, उनको अमृत जान रहा।।2॥
मिथ्यादृष्टि, जीव अज्ञानी, करते-रहते जनम-मरण।
बिन चारित्र नहीं कर पाते, कर्म बेड़ियों का कर्तन।।
लेकिन कुछ विशिष्ट होते हैं, करके निज पुरुषार्थ सम्हाल।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरण से, लिखते अंक शुभंकर भाल।।3।
चल निगोद थावर तन पाते, विकलत्रय, संज्ञी पर्याय।
पा मानव तन, धर रत्नत्रय, सोलहकारण भावन भाय।।
लेते जन्म रूप तीर्थंकर, तप-केवल-देते उपदेश।
सिद्ध परम पद जा विराजते, घात-अघाती कर्म अशेष।।4॥
षट् आरे के कालचक्र में, ऐसे कुल होते चौबीस।
उनके पावन चरणकमल हम, श्रद्धा सहित नमाते शीश।।
भूत-भविष्यत्-वर्तमान की, संख्या पहुँची पार अनन्त।
जन्म अयोध्या, मोक्ष शिखर जी, पाते नियम सभी भगवन्त।।5।।
किन्तु असंख्ये कल्पकाल में, जब आता हुण्डा का काल
तब हो जातीं कुछ अनहोनी, परिवर्तित नियमों की चाल।।
वर्तमान हुण्डावसर्पिणी, काल हो रहा है गतिमान।
अतः अयोध्या सभी न जन्में, नहीं शिखर जी गये निर्वाण।।6
इस अनित्य, क्षणभंगुर जग में, पालनीय भगवन्त चरित्र।
हमें चाहिए, उन पर चल कर, हम बन जायें स्वयं पवित्र।।
तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ का, है चरित्र अतिशयी अनन्य।
अल्पबुद्धि से वर्णन करके, हुई लेखिनी मेरी धन्य।।7।।

गर्भकल्याणक

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, शोभित, सुस्थित 'काशी' देश।
नगर 'बनारस' शासन करते, 'अश्वसेन' गुणवन्त नरेश।।
'वामा रहा नाम पटरानी, सुख से बीत रहे थे दिन।
एक निशा में महिषी देखे, षोडश मंगलमयी स्वपन।।8।।
हाथी-बैल-सिंह-लक्ष्मी, माला-सूरज-चन्द्रविमल।
मीन-कलश-सर-सिंधु-सिंहासन, देव विमान धरणेन्द्र धवल।।
रत्नराशि-निर्धूम अग्नि ये, सोलह सपने देखे मात।
शुभ नक्षत्र, प्रहर आखिरी, वैशाख कृष्ण द्वितिया की रात।।9।।
बीती रात, हुआ सूर्योदय, रानी कहे स्वप्न अविरल।
सकल श्रवण कर, नृप बतलाया, रानी को स्वप्नों का फल।।
'तीनलोकपति श्री तीर्थंकर' हुए अवतरित गर्भ मंझार।
पुत्ररत्न को प्राप्त करोगी, यह षोडष स्वप्नों का सार।।10।।
पति मुखचन्द्र सुने वचनामृत, माता अतिशय हर्ष में आय।
बोली 'धन्य हुई आज मैं, धन्य हुई स्त्री पर्याय।।'
स्वर्ग उतरकर आया भू-पर, गर्भ महोत्सव किया महान।
युगों-युगों तक मंगलमय हो, पार्श्वनाथ जिन का कल्याण।।11।।
महापुरुष आने से पहले, होने लगते शगुन अनेक।
होने लगी रत्नसुवृष्टि, माता-प्रांगण दिन प्रत्येक।।
षट्पंचाशत सुरकुमारियाँ, माँ सेवा संलग्न हुईं।
महापुण्य संकेत ज्ञातकर, माता अतिशय मुदित हुई।।12।।

जन्मकल्याणक

यथा सीप में मोती बढ़ता, तथा गर्भ का हुआ विकास।
धीरे-धीरे माँ तीर्थंकर, ज्ञान-बुद्धि का हुआ प्रकाश।।
जैसे प्राची बालसूर्य को, जनती शोभित किरण हजार।
वैसे अश्वसेन-वामागृह, जन्मे ज्ञानी पार्श्वकुमार।।13।।
पौष कृष्ण एकादशि तिथि को, वे मंगलमय आये क्षण।
तीन लोक में आनंद छाया, उत्सव किया देवतागण।।
शची प्रसूती-गृह में जाती, जिन बालक के दर्शन कर।
स्त्रीलिंग छेद लेती है, आनन्दित-प्रमुदित होकर।।14।।

ज्यों ग्रीष्म में तीव्र तपन से, फट जाती धरती की देह।
तब करुणा की मरहम लेकर, जल बरसाने आते मेह।।
धर्मक्षेत्र में कसा शिकंजा, आडम्बर ने अपने हाथ।
सत्य धर्म का पाठ पढ़ाने, तब पधराये पारसनाथ।।15।।

गिरि सुमेरु सौधर्मइन्द्र ने, जिनवर का अभिषेक किया।
मात-पिता को सौंप मुदित मन, सहस्र नेत्र कर नृत्य किया।।
धीरे-धीरे बड़े हो गये, कर अंगुष्ठ का अमृतपान।
सोलह वर्ष निकटता पायी, चढ़े तृतिय यौवन सोपान।।16।।

रूप आपका अद्भुत सुन्दर, नौ हाथ तन ऊँचाई।
हरित वर्ण तन मन को हरता, फसल खेत ज्यों लहराई।।
उचित समय पा पूज्य पिता ने, कही पुत्र से मन की चाह।
'पुत्रवधू इस घर में आये, स्वीकृति देवें, करें विवाह'।।17।

जगत् जलधि से पार उतरने, को अद्भुत यह नौका है।
मानव भव शाश्वत सुख पाने, का उत्तम यह मौका है।।
अतः ब्याह कर व्यर्थ गवाना, नहीं चाहता मानव तन।
श्री पार्श्व ने पूज्य पिता से, सविनय सुन्दर कहे वचन।।18।।

नाग-नागिनी उपकार

देवकुमारों संग एक दिन, वन विहार को गये कुमार।
मिला तपस्या करता साधू, बिना दया का किये विचार।।
चार दिशाओं चार अग्नियों, ऊपर एक सूर्य की ज्वाल।
बैठ बीच में कष्ट उठाया, नहीं जीव रक्षा का ख्याल।।19।।

नाग-नागिनी रहे काष्ठ में, पार्श्व अवधि से जान लिया।
इनकी रक्षा सुकरणीय है, अपने मन में ठान लिया।।
तपसी को बहुशः समझाया, किन्तु न उसने मानी एक।
चीरा काठ, पड़ा विस्मय में, अध-कट नाग-नागिनी देख।।20।।

नाग-नागिनी मरत उबारे, देकर प्रभु ने मंत्र महान्।
नाग-नागिनी मर कर पहुँचे, पद्मावती-धरणेन्द्र विमान।।
हुआ तपस्वी अति ही क्रोधित, समझा निज अपमान विशेष।
नहीं सर्प को दूध पिलाना, नहिं देना मूरख उपदेश।।21।।

सोचो, कौन तापसी है यह, वही भाई का जीव कमठ।
कुयोनी निज दुष्कर्म भटका, वामा जनक हुआ वह शठ।।
पार्श्वकुमार का नाना है, यह राजा महीपाल था नाम।
पत्नि वियोगे हुआ तापसी, राजा छोड़ा राज्य तमाम।।22।।

तपता रहा कुतप में वर्षों, सदा रहा अज्ञानी भाव।
शंवर नामक देव ज्योतिषी, मरा हुआ दुर्ध्यान प्रभाव।।
अतः उचित है भव्य जनों को, सम्यक् दर्शन प्राप्त करें।
ज्ञान-ध्यान-तप धारण करके, मोक्ष सुलक्ष्मी वरण करें।।23।।

दीक्षाकल्याणक

पार्श्वकुमार के तीस वर्ष जब, राज्यावस्था में बीते।
दूत अयोध्या नृप का आया, अति उत्तम उपहार लिये।।
कुशल क्षेम नृप-नगरी पूछी, सदा दूत ने बतलाया।
वृषभ आदि तीर्थंकर प्रभु का, राम-लखन का यश गाया।।24।।

कहा अयोध्या नगरी उत्तम, आदिनाथ का जन्म स्थान।
राज्य किया, जीना सिखलाया, किया प्रजा उपकार महान।।
नील अप्सरा मरण देखकर, गृह तज धारा तप कल्याण।
केवल पाया, जग उपदेशा, गिरि कैलाश गये निर्वाण।।25।।

आदिनाथजिन वर्णन सुनकर, हो विरक्त मन पार्श्वकुमार।
"मैं भी तीर्थंकर कहलाता, किन्तु नहीं वैसा आचार।।
साधारण मानव सम मैंने, गवाँ दिये हैं तीस बरस।
मुझको तो अपने जीवन पर, खुद ही आने लगा तरस।।26।।

अहो! जीव ने देव लोक में, जाकर भोगे-भोग अपार।
तृप्ति हुई न, अब क्या होगी, भोग भुजंग, न इनमें सार।।
आत्मसाधना के करने में, अब विलम्ब है उचित नहीं।
इस जग में सुख लेश नहीं है, जैसे जल नवनीत नहीं।।27।।

भव-तन-भोग विरक्त पुत्र को, मात-पिता बहु समझाया।
किन्तु विरागी रंग के ऊपर, कोई रंग न चढ़ पाया।।
माँ के आँसू काम न आये, गये पिता के व्यर्थ वचन।
'घर में मुझको चैन नहीं है, रंच नहीं लगता है मन'।।28।।

भव-तन-भोग विरक्त चिन्तवन, इधर पार्श्व ज्यों मन लाये।
तत्क्षण सुर लौकान्तिक मिलकर, उतर स्वर्ग भू-पर आये।।
पुष्पांजलि प्रभु चरण चढ़ाई, करी सपर्या मन लाकर।
अनुमोदन तल्लीन हो गये, प्रभु के अतिशय गुण गाकर।।29।।

हे देवों के देव! दयानिधि! आप धन्य, तव धन्य विचार।
धन्य समय यह, हुए आप जब, मोह सैन्य जय को तैयार।।
मुक्तिवधू सौभाग्य मनाती, हुई प्रतीक्षारत हे देव।
तपः सखी को भेजा तुम ढिग, आकर्षित करने स्वयमेव।।30।।

अतिशय पुण्य उदय में आया, जग जीवों का भगवन् आज।
चरण बढ़ाये जग उद्धारण, तारण-तरण शरण जिनराज।।
इस प्रकार स्तुति कर प्रभू की, लौकान्तिक पहुँचे सुर लोक।
इधर इन्द्र सौधर्म ने आकर, दल-बल सहित लगाई धोक।।31।।

नगर बनारस सजा स्वर्ग-सा, धरा-गगन गूँजे जयकार।
इन्द्र किया अभिषेक प्रभू का, दिव्याभरण किया श्रृंगार।।
विमला नामक रत्नपालकी, श्रीजिनवर को बैठाया।
लगे प्रभू ज्यों मुक्तिरमा को, वरने अनुपम वर आया।।32।।

प्रथम पालकी कौन उठाये! वही, जो संग में दीक्षा ले।
भूमिगोचरी राजागण तब, उठा पालकी सात चले।
फिर विद्याधर, पुनः इन्द्र, आकाश मार्ग से गमन हुआ।
नगर पार कर, 'अश्व' सु-वन में, निमिष मात्र आगमन हुआ।।33।।

वट तरु तले शिला रत्नों की, रत्न चूर्ण स्वस्तिक ऊपर।
प्रभू विराजे, सिद्धनमन कर, लोंच किया, ली दीक्षा धर।।
हुए दिगम्बर मुद्राधारी पौष कृष्ण शुभ बेला में।
प्राप्त हुआ ज्ञान मनपर्यय, आत्म शुद्धि थी तेला में।।34।।

इन्द्रनीलमणि सम अति सुन्दर, लुंच किये जो केश सकल।
रत्नपिटारी रख इन्द्रों ने, किए विसर्जित क्षीरी जल।।
शतक तीन सौ राजागण भी, दीक्षित हो कल्याण किया।
सह उत्साह मना कल्याणक, स्वर्ग लोक सुर गमन किया।।35।।

जगत विजेता कामदेव ने, जिन पर छोड़े बाण सकल।
किन्तु एक भी काम न आया, नये प्रयास सभीनिष्फल।।
प्राप्त किया निष्काम परमपद, वय कौमार्य मार को मार।
बालयती श्रीपार्श्वनाथ को, नमन हमारा बारम्बार।।36।।

प्रभु की प्रथम पारणा

त्रय उपवास अनन्तर प्रभुवर, 'गुल्मखेटपुर' गये नगर।
प्रथम पारणा हुई आपकी, ब्रह्मदत्त राजा के घर।।
रत्न-सुमन-गंधोदक वृष्टि, धन्य-धन्य जयकार किया।
पंचाश्चर्य किये देवों ने, महापुण्य सत्कार किया।।37।।

कह अहार भगवान पार्श्व प्रभु जाकर पुनः विराजें वन।
तपोलीन रहते करने को, मोहशत्रु का सैन्य जयन।।
प्रतिदिन या दो-चार-दिवस में, भगवन लेते थे आहार।
तदनन्तर वन में ही जाकर, आतम गृह में करें विहार।।38।।

कमठ का उपसर्ग

बीत गये कुछ माह यूँ हि, छद्मस्थ अवस्थाचर्या-ध्यान।
तदा एक दिन तपमय होकर, आतमरस डूबे भगवान।।
गगन मार्ग से गमन कर रहा, शंवर नामक ज्योतिषि देव।
रुका विमान देव का वन में, ऊपर ही सहसा स्वयमेव।।39॥

नियम अटल है किसी देव या विद्याधर का कोई यान।
नहीं गुजर सकता ऊपर से यदि हों महापुरुष विद्यमान।।
हुआ मंत्र कीलित हो जैसे अप्रत्याशित घटना मान।
देखा नीचे महामुनीश्वर, आत्मलीन करते हैं ध्यान।।40।।

अवधीज्ञान लगाया उसने, पूर्वभवों का पता चला।
लगा क्रोधवश-वैर में जलने, वैर न होता कभी भला।।
उसने सोचा यह मरुभूती, इसने किया बुरा था हाल।
मूंड मुँडाकर गधे बिठाया, मुँह काला कर दिया निकाल।।41॥

'कुक्कुट सर्प' हुआ इस कारण, नरक पाँचवें दुःख सहे।
'अजगर' बना, गया 'तम' छटवें, दुःख मुख से नहिं जात कहे।।
'भील कुरंग" दुष्ट परिणामी, फिर मैंाया महातम सात।
'सिंह' हुआ फिर गया 'नरक' में, हुआ नहीं सम्यक्त्व प्रभात।।42।

कुपित हुआ अत्यंत प्रभू पर, पूर्वभवों का वैर निकाल।
लगा पीसने दाँत किटाकिट, रूप बनाया अति विकराल।।
बोला 'मजा चखाता इसको, किया था इसने मुँह काला।
इसको भी अब पता चलेगा, पड़ा किसी से है पाला'।।43।

चलने लगी भयंकर आंधी, पत्थर बरसे, गिरे पहार।
बिजली चमकी, बादल गरजे, पानी बरसा मूसलधार।।
आग बरसने लगी चहूँदिश, अट्टहास उपजाते भय।
जल-थल एकमेक हो गये, हुआ उपस्थित महाप्रलय।।44॥

प्राप्त विक्रिया बल से उसने, धारण किये महा दुर्भेष।
सात दिवस तक सतत दुष्ट वह, करता था उत्पात विशेष।।
लेकिन प्रभुवर रंच हिले ना, रहे मेरुवत् महा अचल।
छोटे पर्वत गिर जाते हैं, मेरु शिखर नहिं होता चल।।45।

तब धरणेन्द्र का आसन कंपा, अवधिज्ञान से जाना सब।
कृत उपकार याद कर दम्पति, सद्य सर्ग थल आये तब।।
की प्रदक्षिणा, नमन किया, फिर छत्र रूप फण फैल गया।
देवदंपती को लखकर, शंबर, लज्जित हो भाग गया।।46।

केवलज्ञानकल्याणक

ध्यानारूढ़ क्षपक श्रेणी चढ़, कर्म घातिया नष्ट किये।
केवलज्ञान हुआ सूर्योदय, गुण अनन्त, प्रभु प्रकट हुए।।
कृष्णा चैत्र चतुर्थी के दिन, प्रभु ने पाया केवलज्ञान।
सकल देवताओं ने मिलकर, किया महोत्सव ज्ञानकल्याण।।47।

प्रभु ने करी तपस्या जिस थल, जिस स्थल उपसर्ग हुआ।
अहि रूप धर छत्र के द्वारा, प्रभु उपसर्ग सु-दूर हुआ।।
उस स्थल का प्रथित हुआ जग, 'अहिच्छत्र' यह सार्थकनाम।
संकटहारी, सब सुखकारी, 'अहिच्छत्र' को करें प्रणाम।।48।।

सुन्दर समवसरण की रचना, धनकुबेर ने की तत्काल।
पहले गणधर रहे स्वयंभू, द्वादश सभा जुड़ी उस काल।।
दिव्यध्वनि के द्वारा भगवन, जग हितकर उपदेश दिया।
सबसे उत्तम धर्म अहिंसा, प्राणिमात्र ने ग्रहण किया।।50।।

शंबर द्वारा क्षमा याचना

क्षमासिंधु-करुणा के सागर, महासहिष्णू-परम उदार।
शूरवीर-तीर्थंकर भगवन, महामना-संहारक मार।।
समता-सिंधु परम उपकारी, सबके संकट सदा हरें।
शंबर प्रणत हुआ प्रभु चरणों, बोला भगवन क्षमा करें।।51।

काललब्धि के आ जाने पर, बन जाते हैं काम सभी।
शांति प्राप्त विनयी शंवर को, सम्यग्दर्शन हुआ तभी।।
सात शतक वनवासी तापस, सम्यग्दर्शन पाया है।
हुए संयमी, सबने सादर, प्रभु को शीष झुकाया है।।52।।

मोक्षकल्याणक

वर्ष उनहत्तर सात माह तक, कर विहार उपदेश दिया।
श्रावण शुक्ल सप्तमी प्रातः, सिद्धशिला प्रस्थान किया।।
सम्मेदाचल, स्वर्णकूट से, प्रभु ने पद पाया निर्वाण।
स्वर्ग उतर आया धरती पर, हर्षित मना मोक्षकल्याण।।53।

सिद्धान्त और महत्व

नेमिनाथ निर्वाण पधारे, बीत चुका बहुतेरा काल।
धर्मक्षेत्र आयीं विकृतियाँ, जन-जीवन स्थिति विकराल।।
याज्ञिक हिंसा-कुतप-तंत्र के फैल रहे थे जाल तमाम।
तब पारस ने जीवदया को बतलाया है धर्म महान।।54।।

क्रोध, क्रोध से शान्त न होता, उल्टा वैर बढ़ाता है।
किन्तु क्षमा देवी के चरणों, आखिर शीष झुकाता है।।
जिसके कर में क्षमा शस्त्र है, दुष्ट की कुछ ना चलती है।
अग्नी शान्त स्वतः हो जाती, बिन ईंधन ना जलती है।।55।
ढाईद्वीप में पाँच मेरु हैं, उनमें पहला मेरु प्रधान।
नाम सुदर्शन, चालिस योजन, एक लाख ऊँचाई जान।।
वर्तमान चौबीस तीर्थंकर, उनमें पारसनाथ महान।
क्षमाशीलता-साम्यभाव में, मिलता ना कोई उपमान।।55॥

है विज्ञान आज का कहता, क्रिया प्रतिक्रिया होती है।
किन्तु पार्श्व का जीवन उसको, देता खुली चुनौती है।।
दश-दश भव तक कमठ जीव ने, प्रभु पर अत्याचार किए।
किन्तु सदा समता ही धारी, मारुति-पारसनाथ हिये।।56।।

एक हाथ से बजे न ताली, लौकिक कथन सुना पाया।
किन्तु कमठ ने दशों भवों तक, इसे पूर्णतः झुठलाया।।
करता रहा कमठ शठ प्रभु पर, इक तरफा वारों पर वार।
किन्तु पार्श्व के जीव ने कभी, नहीं किया उसका प्रतिकार।।57।।

महापुरुष का साथ बंधुवर! सदाकाल हितकारी है।
अगर मित्रता हो क्या कहना, वैर भी मंगलकारी है।।
कमठ-मरुभूती जीवन का, उदाहरण प्रत्यक्ष रहा।
पार्श्व के कारण कमठ जीव ने, अन्तकाल सम्यक्त्व लहा।।58।।

पार्श्वनाथ 'शुभ' के प्रतीक हैं, कमठ 'अशुभ' की है पहचान।
पारसनाथ चरित कहता है, शुभ ही पाता विजय महान।।
परेशान हो सकता है शुभ, किन्तु पराजित कभी नहीं।
यह विचार कर पार्श्वचरण का पुण्य आचरण करें सभी।।59।।

अभिलाषा

पार्श्वनाथ का चरित सभी को, देता है अनुपम उपदेश।
क्रोध-वैर-अरु पाप सभी तज, ग्रहण करें शुभ का संदेश।।
भवभयहर्ता, मंगलकर्ता, तीर्थंकर सुखकारी हों।
चरण कमल में प्रणत सभी को, भव-भव मंगलकारी हों।।60।

फलश्रुति

पढ़ें भव्य जो ध्यान लगाकर, पार्श्वनाथ भगवान चरित्र।
पाप-कषायें टलें हृदय से, होगा जीवन परम पवित्र।।
पार्श्वनाथ जिनके चरणों में, नमन अनन्तों बार करें।
महासुकृत से प्राप्त हुआ यह, मानव जीवन सफल करें।।61।।

समर्पण

गणिनि आर्यिका ज्ञानमती का, पा विशेष आशिष-आदेश।
स्वल्पकाल में रचा काव्य यह, पंडित लालचंद्र 'राकेश'।।
उनके पावन करकमलों में, अर्पित है सविनय वंदामि।
प्रज्ञाश्रमणी मात चन्दनामती, सहित सबको वंदामि।।62।।

सम्मेदशिखर टोंक वन्दना

रचयित्री-आर्यिका चन्दनामती

–शंभु छंद–

तीर्थराज सम्मेदशिखर है, शाश्वत सिद्धक्षेत्र जग में।
एक बार जो करे वन्दना, वह भी पुण्यवान सच में।।
ऊँचा पर्वत पार्श्वनाथ हिल, नाम से जाना जाता है।
जिनशासन का सबसे पावन, तीरथ माना जाता है।।1।।

जब प्रत्यक्ष करें यात्रा, उस पुण्य का वर्णन क्या करना।
लेकिन प्रतिदिन भी परोक्ष में, गिरि का ध्यान किया करना।।
आँख बन्दकर करो कल्पना, मेरी यात्रा शुरू हुई।
प्रातःकाल चले सब यात्री, जय जयकारा शुरू हुई।।2।।

एक हाथ में छड़ी दूसरे, में चावल की झोली है।
ज्यादातर सब पैदल हैं, पर किसी-किसी की डोली है।।
कभी न चलने वाले भी, हिम्मत कर पर्वत चढ़ते हैं।
पारस प्रभु के पास पहुँचने, हेतु कदम बढ़ चलते हैं।।3।।

चढ़ते-चढ़ते आठ किलोमीटर, का पथ जब तय होता।
दायें हाथ तरफ तब इक, चौपड़ा कुंड दर्शन होता।।
वहाँ दिगम्बर जिनमंदिर, संस्कृति की अमिट धरोहर है।
पार्श्वनाथ चन्द्रप्रभु बाहूबलि की मूर्ति मनोहर हैं।।4।।

उस मन्दिर में रुककर अपने, प्रभु का दर्शन कर लेना।
सुन्दर बनी धर्मशाला में, इच्छा हो तो ठहर लेना।।
मंदिर दर्शन करके फिर, यात्रा प्रारंभ करो अपनी।
बायें हाथ चलो चढ़ कर जहाँ, गौतम स्वामी टोंक बनी।।5।।

यहाँ पहुँचकर ठंडी-ठंडी, हवा थकान मिटाती है।
गणधर चरण वन्दना से, यात्रा की शक्ती आती है।।
प्रथम टोंक यह हुई पास में, दुतिय टोंक कुंथू जिन की।
तीर्थंकर क्रम में यह पहली, टोंक नमूँ कुंथु प्रभु की।।6।।

इन टोंकों के दर्शन से, उपवास का फल प्रारंभ हुआ।
त्रय प्रदक्षिणा देने से, आगे शुभ गति का बंध हुआ।।
शुभ भावों से आगे बढ़कर, टोंक तीसरी आती है।
श्रीनमिनाथ जिनेश्वर की, वन्दना सहज हो जाती है।।7।।

चौथा नाटक कूट तीर्थंकर, अरहनाथ का आया है।
जहाँ करोड़ों मुनियों ने भी, तपकर शिवपद पाया है।।
वन्दन कर आगे बढ़ने से, मल्लिनाथ के चरण मिले।
आगे छठे टोंक पर श्री, श्रेयाँसनाथ पदकमल मिले।।8।।

इन सबका वन्दन कर मैंने, सिद्धशिला को नमन किया।
वहाँ विराजे सिद्धों को, अपने मन में स्मरण किया।।
थकना नहिं अब पुष्पदंत की, सप्तम टोंक पे चलना है।
आगे चढ़ने हेतु वहीं से, आतमशक्ती भरना है।।9।।

पुष्पदंत प्रभु के चरणों में, अर्घ्य चढ़ाकर नमन किया।
और चले आठवीं टोंक पर, पदमप्रभू की शरण लिया।।
नवमीं टोंक विराजे श्री, मुनिसुव्रत जिन के चरणकमल।
इन सबके पावन पद में, श्रद्धा से मैंने किया नमन।।10।।

हे भव्यात्मन् ! अब दसवीं, चन्द्रप्रभ टोंक पे चलना है।
पहले दौड़-दौड़ कर उतरो, फिर ऊँचाई चढ़ना है।।
चन्द्रप्रभ मंदिर में जाकर, चरणवन्दना करना है।
अपने सारे सुख-दुख को, प्रभु चरण बैठकर कहना है।।11।।

अब ग्यारहवीं टोंक पे चलकर, ऋषभदेव को नमन करो।
गिरि कैलाश से मुक्त हुए, यहाँ उनके चरण चिन्ह प्रणमो।।
श्री शीतल जिनवर की है, बारहवीं टोंक प्रसिद्ध कही।
मन-वच-तन से वन्दन कर, पाओ यात्रा का पुण्य सही।।12।।

श्री अनंत तीर्थंकर का, तेरहवाँ कूट स्वयंभू है।
उनके चरणों में श्रद्धायुत, शीश झुकाकर वन्दूँ मैं।।
संभव जिनवर का चौदहवाँ, धवलकूट माना जाता।
वासुपूज्य जिनका पन्द्रहवां, टोंक सभी को सुखदाता।।13।।

इनको वन्दन कर आगे, अभिनन्दन प्रभु के पास चलो।
बन्दर चिन्ह सहित उन प्रभु की, टोंक पे बन्दर से न डरो।।
अभिनन्दन के चरणों में, कर नमन चलो जलमंदिर तक।
चढ़ो वहाँ से जहाँ है गौतम, गणधर प्रभु की टोंक प्रथम।।14।।

फिर सत्रहवीं टोंक से अपनी, अगली यात्रा करना है।
धर्मनाथ प्रभु के चरणों में, नमन सभी को करना है।।
सुमतिनाथ का अट्ठारहवाँ, टोंक है अविचल कूट कहा।
नौ करोड़ बत्तीसलाख, उपवास का फल मिलता है यहाँ।।15।।

उन्निसवाँ है टोंक शांतिजिन, का जो यहाँ से मोक्ष गये।
नौ करोड़ से अधिक मुनी, इस कुंदकूट से मोक्ष गये।।
शांतिनाथ के संग सब मुनियों, को श्रद्धा से नमन किया।
पुनः बीसवीं टोंक पे जाकर, वीरप्रभू की शरण लिया।।16।।

श्री सुपार्श्व तीर्थंकर इक्कीसवीं टोंक पर राजे हैं।
कहते हैं यहाँ की मिट्टी से, रोग सभी नश जाते हैं।।
इनको वंदन करके पास में, विमलनाथ की टोंक चलो।
बाइसवीं इस टोंक को नमकर, अजितनाथ के निकट चलो।।17।।

थके कदम से तेइसवीं इस, टोंक का वंदन कठिन तो है।
लेकिन यात्रा पूरी करने, का शुभ भाव हृदय में है।।
धीरे-धीरे चढ़कर आखिर, अजितनाथ तक पहुँच गये।
उन चरणों में नमन किया फिर, नेमिनाथ जी प्राप्त हुए।।18।।

चौबिसवीं इस टोंक पे नेमीनाथ चरण को नमन किया।
पारसनाथ प्रभू पाने हेतू फिर मैंने गमन किया।।
स्वर्णभद्र यह टोंक है अंतिम, यात्रा पूर्ण यहाँ होती।
पार्श्वनाथ की पूजन करके, मन सन्तुष्टि यहाँ होती।।19।।

कुछ क्षण ध्यान करो फिर नीचे, गुफा में स्थित चरण नमो।
खुशी-खुशी वन्दना पूर्ण कर, पर्वत से नीचे उतरो।।
यही वन्दना आत्मा की, भव्यत्व शक्ति बतलाती है।
तभी "चन्दनामती" सभी में, भक्ति स्वयं आ जाती है।।20।।

भगवन् ! इस सम्मेदशिखर का, पुनः पुनः दर्शन पाऊँ।
यही भावना है मन में, सिद्धों के गुण में रम जाऊँ।।
इसी क्षेत्र से कभी मुझे, निर्वाण धाम भी मिल जावे।
सिद्ध भक्ति मेरे जीवन में, सिद्ध अवस्था दिलवाये।।21।।

भजन

-ब्र. कु. आस्था जैन (संघस्थ)

तर्ज–बार-बार तोहे क्या समझाऊँ.....

बार-बार तोहे शीश नवाऊँ, आऊँ तेरे द्वार।
पारस प्रभू जी मेरी, नैय्या लगा दो पार।।
सुनी है हमने पारस प्रभु तेरी महिमा।
भव संकट हर्ता पार्श्वनाथ तेरी गरिमा।।
बालयति बन करके तुमने किया जगत उद्धार,
पारस प्रभू.....।।1।।

वाराणसि का कण-कण धन्य हुआ है।
अश्वसेन वामादेवी का मन उपवन खिला है।
वैशाख वदी द्वितीया के दिन प्रभुगर्भ लिया अवतार।
पारस प्रभू.....।।2।।

पौष वदी ग्यारस को तुमने भू पर जन्म लिया।
शैशव में सुर संग खेले अहि युग को मंत्र दिया।।
नाग युगल धरणेन्द्र पद्मावती, बन के किया उपकार।
पारस प्रभू.....।।3।।

केवलज्ञान प्राप्त होते ही समवसरण की रचना।
समवसरण में बैठ सभी ने देखी तेरी महिमा।।
अहिच्छत्र में पार्श्वनाथ को हुआ है ज्ञान प्रकाश।
पारस प्रभू.....।।4।।

श्रावण सुदि सप्तमि का शुभ दिन है आया।
पार्श्व प्रभू ने सिद्धि प्रिया का वरण किया है पाया।।
श्री सम्मेदशिखर गिरि से फिर प्राप्त किया शिवधाम।
पारस प्रभू.....।।5।।

गणिनी प्रमुख ज्ञानमती औ चंदनामती जी मात।
पार लगा दो मेरी नैय्या यह विनती है आज।।
करे प्रार्थना यही "आस्था", मिले मुक्ति का धाम।
पारस प्रभू.....।।6।।

तीर्थंकर जन्मभूमि वंदना

(मंगलचतुर्विंशतिका)

—गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

(अनुष्टुप् छंद)

अयोध्या मंगलं कुर्या-दनन्ततीर्थकर्तृणाम्।
शाश्वती जन्मभूमिर्या, प्रसिद्धा साधुभिर्नुता।।1।।

ऋषभोऽजिततीर्थेशोऽप्यभिनंदनतीर्थकृत्।
श्रीमान् सुमतिनाथश्चा - नन्तनाथजिनेश्वरः।।2।।

पंचतीर्थकृतां गर्भ - जन्मकल्याणकादिषु।
इन्द्रादिभिः सदा वंद्या वंद्यते वंदयिष्यते।।3।।

संप्रति कालदोषेण शेषास्तीर्थंकराः पृथक्।
संजातास्ता अपिजन्म-भूमयो मंगलं भुवि।।4।।

श्रावस्ती मंगलं कुर्यात्, संभवनाथजन्मभूः।
तनुतान्मे मनःशुद्धिं, भव्यानां भवहारिणी।।5।।

कौशाम्बी मंगलं कुर्यात्, पद्मप्रभस्य जन्मभूः।
जिनसूर्यो मनोऽब्जं मे, प्रफुल्लीकुरुतादपि।।6।।

वाराणसी जगन्मान्या, मंगलं तनुतान्मम।
जन्मभूमिः सुरैः पूज्या, सुपार्श्वपार्श्वनाथयोः।।7।।

चन्द्रपुरी सुरैर्मान्या, मंगलं कुरुतात्सदा।
चन्द्रप्रभजिनेंद्रस्य, जन्मभूर्जन्मपावनी।।8।।

काकंदी मंगलं कुर्यात्, पुष्पदन्तस्य जन्मभूः।
आनंदं तनुताद् भूमौ, सर्वमंगलकारिणी।।9।।

मंगलं कुरुतान्नित्यं, जन्मभूर्भद्रकावती।
शीतलस्य जिनेंद्रस्य, मनो मे शीतलं क्रियात्।।10।।

सिंहपुरी जगन्मान्या, मंगलं कुरुतान्मम।
श्रीश्रेयांसजिनेंद्रस्य, जन्मभूमिः शिवंकरा।।11।।

चंपापुरी जगद्वंद्या, मंगलं तनुताद् ध्रुवं।
वासुपूज्यजिनेंद्रस्य, जन्मभूमिर्नुतामरैः।।12।।

सा कंपिलापुरी नित्यं, मंगलं कुरुतान्मम।
मच्चित्तं विमलीकुर्यात्, विमलेश्वरजन्मभूः।।13।।

रत्नपुरी यतीन्द्राणां, मंगलं कुरुताच्च नः।
सद्धर्मवृद्धये भूयाद्, धर्मनाथस्य जन्मभूः।।14।।

हस्तिनागपुरी नित्यं, मंगलं तनुतान्मम।
शांतिकुंथ्वरतीर्थेशां, जन्मभूमिर्जगन्नुता।।15।।

या मिथिलापुरी शश्वत्, मंगलं कुरुतान्मम।
जन्मभूमिः प्रसिद्धाभूत्, मल्लिनाथनमीशयोः।।16।।

मंगलं संततं कुर्यात्, राजगृही सुजन्मभूः।
मुनिसुव्रतनाथस्य, दद्यान्मे सुव्रतं त्वसौ।।17।।

शौरीपुर्यर्द्धचक्र्याद्यैः, मान्या मे मंगलं क्रियात्।
इन्द्रादिभिः सदा वंद्या, नेमिनाथस्य जन्मभूः।।18।।

या कुण्डलपुरी पूज्या, मंगलं कुरुताद् भुवि।
जन्मभूमिः प्रसिद्धास्ति, महावीरस्य संप्रति।।19।।

राजधानीह सिद्धार्थ-भूपतेः साधुभिर्नुता।
नंद्यावर्तं च प्रासादं, रत्नवृष्ट्या सुमंगलम्।।20।।

चतुर्विंशतितीर्थेशां, षोडश जन्मभूमयः।
वंद्यास्ता मंगलं कुर्युः, घ्नन्तु जन्मपरम्परां।।21।।

दीक्षाज्ञानस्थलं पूज्यं, प्रयागश्चाहिच्छत्रकं।
संततं मंगलं कुर्यात्, पूर्णज्ञानर्द्धये भवेत् ।।22।।

कैलाशचंपापावोर्ज-यन्तसम्मेदशृंगिषु।
निर्वाणभूमयो यास्ताः, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।23।।

पंचकल्याणकैः पूज्या, भूमिसरोवराद्रयः।
तास्तान् ज्ञानमती याचे, दद्युः सिद्धिं च मे ध्रुवम्।।24।।

णमोकार चालीसा

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

दोहा

वंदूँ श्री अरिहंत पद, सिद्ध नाम सुखकार।
सूरी पाठक साधुगण, हैं जग के आधार।।1।।

इन पाँचों परमेष्ठि से, सहित मूल यह मंत्र।
अपराजित व अनादि है, णमोकार शुभ मंत्र।।2।।

णमोकार महामंत्र को, नमन करूँ शतबार।
चालीसा पढ़कर लहूं, स्वात्मधाम साकार।।3।।

चौपाई

हो जैवन्त अनादिमंत्रम्, णमोकार अपराजित मंत्रम् ।।1।।
पंच पदों से युक्त सुयंत्रम्, सर्वमनोरथ सिद्धि सुतंत्रम्।।2।।
पैंतिस अक्षर माने इसमें, अड्ठावन मात्राएं भी हैं।।3।।
अतिशयकारी मंत्र जगत में, सब मंगल में कहा प्रथम है।।4।।
जिसने इसका ध्यान लगाया, मनमन्दिर में इसे बिठाया।।5।।
उसका बेड़ा पार हो गया, भवदधि से उद्धार हो गया।।6।।
अंजन बना निरन्जन क्षण में, शूली बदली सिंहासन में।।7।।
नाग बना फूलों की माला, हो गई शीतल अग्नी ज्वाला।।8।।
जीवन्धर से इसी मंत्र को, सुना श्वान ने मरणासन्न हो।।9।।
शांतभाव से काया तजकर, पाया पद यक्षेन्द्र हुआ तब।।10।।
एक बैल ने मंत्र सुना था, राजघराने में जन्मा था।11।।
जातिस्मरण हुआ जब उसको, उसने खोजा उपकारी को।।12।।
पद्मरुची को गले लगाया, आगे मैत्री भाव निभाया।।13।।
कालान्तर में वही पद्मरुचि, राम बने तब बहुत धर्मरुचि।।14।।
बैल बना सुग्रीव बन्धुवर! दोनों के सम्बन्ध मित्रवर।।15।।
रामायण की सत्य कथा है, णमोकार से मिटी व्यथा है।।16।।
ऐसी ही कितनी घटनाएँ, नए पुराने ग्रन्थ बताएँ।।17।।
इसीलिए इस मंत्र की महिमा, कही सभी ने इसकी गरिमा।।18।।
हो अपवित्र पवित्र दशा में, सदा करें संस्मरण हृदय में।।19।।
जपें शुद्धतन से जो माला, वे पाते हैं सौख्य निराला।।20।।
अन्तर्मन पावन होता है, बाहर का अघमल धोता है।।21।।
णमोकार के पैंतिस व्रत हैं, श्रावक करते श्रद्धायुत हैं।।22।।
हर घर के दरवाजे पर तुम, महामंत्र को लिखो जैनगण।।23।।
जैनी संस्कृति दर्शाएगा, सुख समृद्धि भी दिलवाएगा।।24।।

एक तराजू के पलड़े पर, सारे गुण भी रख देने पर।।25।।
दूजा पलड़ा मंत्र सहित जो, उठा न पाए कोई उसको।।26।।
उठते चलते सभी क्षणों में, जंगल पर्वत या महलों में।।27।।
महामंत्र को कभी न छोड़ो, सदा इसी से नाता जोड़ो।।28।।

देखो! इक सुभौम चक्री था, उसने मन में इसे जपा था।।29।।
देव मार नहिं पाया उसको, तब छल युक्ति बताई नृप को।।30।।
उसके चंगुल में फंस करके, लिखा मंत्र राजा ने जल में।।31।।
ज्यों ही उस पर कदम रख दिया, देव की शक्ती प्रगट कर दिया।।32।।

देव ने उसको मार गिराया, नरक धरा को नृप ने पाया।।33।।
मंत्र का यह अपमान कथानक, सचमुच ही है हृदय विदारक।।34।।
भावों से भी न अविनय करना, सदा मंत्र पर श्रद्धा करना।।35।।
इसके लेखन में भी फल है, हाथ नेत्र हो जाएं सफल है।।36।।

णमोकार की बैंक खुली है, ज्ञानमती प्रेरणा मिली है।।37।।
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में, मंत्रों का व्यापक संग्रह है।।38।।
इसकी किरण प्रभा से जग में, फैले सुख शांति जन-जन में।।39।।
मन-वच-तन से इसे नमन है, महामंत्र का करूं स्मरण मैं।।40।।

शंभु छंद

यह महामंत्र का चालीसा, जो चालिस दिन तक पढ़ते हैं।
ॐ अथवा असिआउसा मंत्र, या पूर्ण मंत्र जो जपते हैं।।
ॐकार मयी दिव्यध्वनि के, वे इक दिन स्वामी बनते हैं।
परमेष्ठी पद को पाकर वे, खुद णमोकारमय बनते हैं।।1।।

पच्चिस सौ बाइस वीर अब्द, आश्विन शुक्ला एकम तिथि में।
रच दिया ज्ञानमति गणिनी की, शिष्या ''चन्दनामति'' मैंने।।
मैं भी परमेष्ठी पद पाऊँ, प्रभु कब ऐसा दिन आएगा।
जब मेरा मन अन्तर्मन में, रमकर पावन बन जाएगा।।2।।

सम्मेदशिखर चालीसा

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

–दोहा–

सिद्धिप्रिया की प्राप्ति हित, नमन करूँ सब सिद्ध।
क्रम से भव को काटकर, होऊँ पूर्ण समृद्ध।।1।।
सिद्धक्षेत्र शाश्वत कहा, गिरि सम्मेद महान।
जहां अनन्तानंत प्रभु, ने पाया शिवधाम।।2।।
सम्मेदाचल तीर्थ का, चालीसा सुखकार।
पढ़ें सुनें जो भव्यजन, क्रम से हों भव पार।।3।।

–चौपाई–

जय हो श्री सम्मेद शिखर की, जय हो उस शाश्वत गिरिवर की।।1।।
हों जयवन्त बीस ये जिनवर, सिद्ध बने थे जो तीर्थंकर।।2।।
इस हुण्डावसर्पिणी युग में, चार जिनेश्वर अन्य स्थल से।।3।।
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध बन गए, वे तीरथ भी पूज्य बन गए।।4।।
लेकिन भूत भावि कालों में, यहीं से मुक्त हुए अरु होंगे।।5।।
यही अटल सिद्धान्त नियम है, सिद्धिवधू का यह उपवन है।।6।।
कोड़ाकोड़ि मुनीश्वर आते, इस पर्वत पर ध्यान लगाते।।7।।
टोंक-टोंक से मोक्ष पधारे, घाति अघाती कर्म विडारे।।8।।
इसीलिए गिरि की रजपावन, है वहाँ का कण-कण मनभावन।।9।।
यात्रा यद्यपि बहुत कठिन है, यात्री होता फिर भी धन्य है।।10।।
थक थककर भी चढ़ जाता है, अपनी मंजिल पा जाता है।।11।।
पार्श्वनाथ की टोंक पे जाकर, प्रभु के सम्मुख शीश झुकाकर।।12।।
जन्म सफल कर लेता मानव, दूर हटें दुर्गति के दानव।।13।।
मन्दिर कई बने पर्वत पर, जिनमें इक प्रसिद्ध जलमन्दिर।।14।।
थका पथिक कुछ देर बैठकर, करता है विश्राम वहाँ पर।।15।।
फिर यात्रा पर चल देता है, यात्रा का फल वर लेता है।।16।।
पर्वत का प्राकृतिक दृश्य भी, बड़ा मनोरम सुखद सत्य ही।।17।।
सीता नाला है इक झरना, जहाँ एक क्षण सबको रुकना।।18।।
शीतल जल से पग धो लेना, यदि शक्ती वापस हो लेना।।19।।
एक ओर गन्धर्व है नाला, बहता झर-झर झरना प्यारा।।20।।
उतर-उतर कर यात्री आते, स्वल्पाहार प्रसाद को पाते।।21।।
बच्चे-बूढ़े सब लेते हैं, दान स्वरूप द्रव्य देते हैं।।22।।
एक वन्दना करके भी वे, तीन, पाँच, नौ भी कर लेवें।।23।।

शतक सहस्र वन्दना वाले, कुछ मुनि श्रावक भक्त बखाने।।24।।
उनकी काया सुदृढ़ बनी है, भावों की माया सुघनी है।।25।।
इस पर्वत की महिमा न्यारी, कही पूर्व ऋषियों ने भारी।।26।।
एक बार वन्दे जो कोई, तांहि नरक पशुगति नहिं होई।।27।।
भव्यजीव ही जा सकते हैं, पर्वत वन्दन कर सकते हैं।।28।।
नहिं अभव्य पर्वत चढ़ सकते, शास्त्र जिनागम ऐसा कहते।।29।।
मोक्षगमन की शक्ति जहाँ है, भव्य शक्ति का वास वहाँ है।।30।।
चाहे वह कितने ही भव में, कर्मनाश कर पहुंचे शिव में।।31।।
किन्तु अभव्य न शिवपद पाते, निज अभव्य शक्ति के नाते।।32।।
ये परिणामिक भाव जीव के, होते हैं स्वयमेव जीव में।।33।।
वर्तमान में भी वह तीरथ, जिनमत की कहता है कीरत।।34।।
पर्वत के नीचे भी मंदिर, बने अनेकों अद्भुत सुन्दर।।35।।
कई धर्मशालाएं भी हैं, यात्री को सुविधाएं भी हैं।।36।।
श्रावण सुदि सप्तमि का मेला, होता है वहां खूब रंगीला।।37।।
होली पर भी मधुबन जाना, होली का देखो नजराना।।38।।
सांवरिया का नाम पुकारो, पारस का जयकार उचारो।।39।।
तुम भी पारस बन जाओगे, भक्ती का रस पा जाओगे।।40।।

–शंभु छंद–

चालीस दिन तक जो करे, नित चालीसहिं बार।
मिले सहस उपवास फल, सुख सम्पत्ति अपार।।1।।

गणिनी माता ज्ञानमति, बालसती विख्यात।
उनकी शिष्या चन्दनामती रचित यह पाठ।।2।।

सुगन्ध दशमी भाद्रपद, की तिथि है सुप्रसिद्ध।
वीर संवत् पच्चीस सौ, तेइस की कृति सिद्ध।।3।।

जब तक गिरि सम्मेद का, जग में रहे प्रकाश।
चालीसा यह तीर्थ का, तन मन करे विकास।।4।।

सिद्धों की उस श्रेणी में, आए मेरा नाम।
सिद्धक्षेत्र की भक्ति से, मिले मुझे शिवधाम।।5।।



कालसर्प योग निवारक चिन्तामणि भगवान श्री पार्श्वनाथ पूजा

रचयित्री- गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

–अथ स्थापना–

(तर्ज-गोमटेश जय गोमटेश मम हृदय विराजो.....)

पार्श्वनाथ जय पार्श्वनाथ, मम हृदय विराजो-2
हम यही भावना भाते हैं, प्रतिक्षण ऐसी रुचि बनी रहे।
हो रसना में प्रभु नाममंत्र, पूजा में प्रीती घनी रहे।।हम0।।
हे पार्श्वनाथ आवो आवो, आह्वान आपका करते हैं।
हम भक्ति आपकी कर करके, सब दुख संकट को हरते हैं।।
प्रभु ऐसी शक्ती दे दीजे, गुण कीर्तन में मति बनी रहे।।हम0।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथ अष्टक–

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान् की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।
सुरगंगा का उज्ज्वल जल ले, प्रभु चरणों त्रयधार करूँ।
पुनर्जन्म का त्रास दूर हो, इसीलिए प्रभु ध्यान धरूँ।।
भव भव तृषा मिटाने वाली, पूजा जिन भगवान की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।
मलयागिरि का शीतल चंदन, केशर संग घिसाया है।
प्रभु के चरण कमल में चर्चत, भव संताप मिटाया है।।
तन मन को शीतल कर देती, अर्चा जिन भगवान् की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान् की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।

चिन्मय परमानंद आतमा, नहीं मिला इन्द्रिय सुख में।
प्रभु को अक्षत पुंज चढ़ाते, सौख्य अखंडित हो क्षण में।।
इन्द्र सभी मिल करें वंदना, प्रभु के अक्षयज्ञान की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान् की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।

रतिपति विजयी पार्श्वनाथ को, पुष्प चढ़ाऊँ भक्ती से।
निज आत्मा की सुरभि प्राप्त हो, निजगुण प्रगटे युक्ती से।।
ब्रह्मर्षीसुर स्तुति करते, चिच्चैतन्य महान् की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान् की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।

मालपुआ रसगुल्ला बरफी, जिनवर निकट चढ़ाते ही।
नाना उदर व्याधि विघटित हो, समरस तृप्ती प्रगटे ही।।
गणधर मुनिवर भी गुण गाते, महिमा जिन भगवान् की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान् की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।

केवलज्ञान सूर्य हो भगवन् ! मुझ अज्ञान हटा दीजे।
दीपक से मैं करूँ आरती, ज्ञान ज्योति प्रगटित कीजे।।
चक्रवर्ति भी करें वंदना, अतिशय ज्योतिर्मान की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान् की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।

सुरभित धूप धूपघट में मैं, खेऊँ सुरभि गगन फैले।
कर्म भस्म हो जाएं शीघ्र ही, जो हैं अशुभ अशुचि मैले।।
सम्यग्दर्शन क्षायिक होवे, मिले राह उत्थान की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान् की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।

अनंनास मोसम्मी नींबू, सेब संतरा फल ताजे।
प्रभु के सन्मुख अर्पण करते, मिले मोक्षफल भव भाजें।।
जिनवंदन से निजगुण प्रगटे, मिले युक्ति शिवधाम की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आवो हम सब करें अर्चना, पार्श्वनाथ भगवान् की।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।
।।वंदे जिनवरम्-4।।

जल गंधादिक अर्घ्य सजाकर, जिनवर चरण चढ़ा करके।
रत्नत्रय अनमोल प्राप्त कर, बसूं मोक्ष में जा करके।।
इसी हेतु त्रिभुवन जनता भी, भक्ति करे भगवान् की।।
कालसर्प के योग निवारक, चिन्तामणि भगवान की।।वंदे जिनवरम्-4।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा –

कनक भृंग में मिष्ट जल, सुरगंगा सम श्वेत।
जिनपद धारा करत ही, भव जल को जल देत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

वकुल कमल चंपा सुरभि, पुष्पांजलि विकिरंत।
मिले निजातम संपदा, होवे भव दुःख अंत।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

–अथ पंचकल्याणक अर्घ्य –

वंदन शत शत बार है,
पार्श्वनाथ के चरण कमल में, वंदन शत शत बार है।
जिनका गर्भकल्याणक जजते, मिले सौख्य भंडार है।।
पार्श्वनाथ0।।टेक0।।

अश्वसेन पितु वामा माता, तुमको पाकर धन्य हुए।
तिथि वैशाख वदी द्वितिया को, गर्भ बसे जगवंद्य हुए।।
प्रभु का गर्भकल्याणक पूजत, मिले निजातम सार है।।
पार्श्वनाथ0।।1।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णाद्वितीयायां श्रीपार्श्वनाथजिनगर्भकल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वंदन शत शत बार है,
पार्श्वनाथ के चरण कमल में, वंदन शत शत बार है।
जिनका जन्मकल्याणक जजते, मिले सौख्य भंडार है।।

पार्श्वनाथ0।।

पौष कृष्ण ग्यारस तिथि उत्तम, वाराणसि में जन्म हुआ।
श्री सुमेरु की पांडुशिला पर, इन्द्रों ने जिन न्हवन किया।।
जो ऐसे जिनवर को जजते, हो जाते भव पार हैं।।

पार्श्वनाथ0।।2।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णाएकादश्यां श्रीपार्श्वनाथजिनजन्मकल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वंदन शत शत बार है,
पार्श्वनाथ के चरण कमल में, वंदन शत शत बार है।
जिनका तपकल्याणक जजते, मिले सौख्य भंडार है।।

पार्श्वनाथ0।।

पौषवदी ग्यारस जाति स्मृति, से बारह भावन भाया।
विमलाभा पालकि में प्रभु को, बिठा अश्ववन पहुँचाया।।
स्वयं प्रभू ने दीक्षा ली थी, जजत मिले भव पार है।।

पार्श्वनाथ0।।3।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णाएकादश्यां श्रीपार्श्वनाथजिनदीक्षाकल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वंदन शत शत बार है,
पार्श्वनाथ के चरण कमल में, वंदन शत शत बार है।
जिनका ज्ञानकल्याणक जजते, मिले सौख्य भंडार है।।

पार्श्वनाथ0।।

चैत्रवदी सुचतुर्थी प्रातः, देवदारु तरु के नीचे।
कमठ किया उपसर्ग घोर तब, फणपति पद्मावति पहुँचे।।
जित उपसर्ग केवली प्रभु का, समवसरण हितकार है।।

पार्श्वनाथ0।।4।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थ्यां श्रीपार्श्वनाथजिनकेवलज्ञानकल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वंदन शत शत बार है,
पार्श्वनाथ के चरण कमल में, वंदन शत शत बार है।
जिनका मोक्षकल्याणक जजते, मिले सौख्य भंडार है।।

पार्श्वनाथ0।।

श्रावण शुक्ल सप्तमी पारस, सम्मेदाचल पर तिष्ठे।
मृत्युजीत शिवकांता पायी, लोकशिखर पर जा तिष्ठे।।
सौ इन्द्रों ने पूजा करके, लिया आत्म सुखसार है।।

पार्श्वनाथ0।।5।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां श्रीपार्श्वनाथजिनमोक्षकल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य–ॐ ह्रीं कमठोपसर्गविजयिने श्रीपार्श्वनाथस्वामिने नमः कालसर्पयोगनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

जयमाला

(शंभु छंद –तर्ज –चंदन सा बदन.....)

जय पार्श्व प्रभो! करुणासिंधो! हम शरण तुम्हारी आये हैं।
जय जय प्रभु के श्री चरणों में, हम शीश झुकाने आये हैं।।टेक.।।

नाना महिपाल तपस्वी बन, पंचाग्नी तप कर रहा जभी।
प्रभु पार्श्वनाथ को देख क्रोधवश, लकड़ी फरसे से काटी।।
तब सर्प युगल उपदेश सुना, मरकर सुर पद को पाये हैं।।जय.।।1।।

यह सर्प सर्पिणी धरणीपति, पद्मावति यक्षी हुए अहो।
नाना मर शंबर ज्योतिष सुर, समकित बिन ऐसी गती अहो।।
नहिं ब्याह किया प्रभु दीक्षा ली, सुर नर पशु भी हर्षाये हैं।।जय.।।2।।

प्रभु अश्वबाग में ध्यान लीन, कमठासुर शंबर आ पहुँचा।
क्रोधित हो सात दिनों तक बहु, उपसर्ग किया पत्थर वर्षा।।
प्रभु स्वात्म ध्यान में अविचल थे, आसन कंपते सुर आये हैं।।जय.।।3।।

धरणेंद्र व पद्मावति ने फण पर, लेकर प्रभु की भक्ती की।
रवि केवलज्ञान उगा तत्क्षण, सुर समवसरण की रचना की।।
अहिच्छत्र नाम से तीर्थ बना, अगणित सुरगण हर्षाये हैं।।जय.।।4।।

यह देख कमठचर शत्रू भी, सम्यक्त्वी बन प्रभु भक्त बने।
मुनिनाथ स्वयंभू आदिक दश, गणधर थे ऋद्धीवंत घने।।
सोलह हजार मुनिराज प्रभू के, चरणों में शिर नाये हैं।।जय.।।5।।

गणिनी सुलोचना प्रमुख आर्यिका, छत्तिस सहस धर्मरत थीं।
श्रावक इक लाख श्राविकायें, त्रय लाख वहाँ जिन भाक्तिक थीं।।
प्रभु सर्प चिन्ह तनु हरित वर्ण, लखकर रवि शशि शर्माये हैं।।जय.।।6।।

नव हाथ तुंग सौ वर्ष आयु, प्रभु उग्र वंश के भास्कर हो।
उपसर्ग जयी संकट मोचन, भक्तों के हित करुणाकर हो।।
प्रभु महासहिष्णू क्षमासिंधु, हम भक्ती करने आये हैं।।जय.।।7।।

जब कालसर्प का योग किसी मानव को कष्ट प्रदान करे।
तब चिन्तामणि श्री पार्श्वनाथ के चरणों का जो ध्यान करे।।
विधिवत् अभिषेक व पूजन कर मनवाञ्छित फल वो पाये हैं।।जय.।।8।।ष

चौंतिस अतिशय के स्वामी हो, वर प्रातिहार्य हैं आठ कहे।
आनन्त्य चतुष्टय गुण छ्यालिस, फिर भी सब गुण आनन्त्य कहे।।
बस केवल 'ज्ञानमती' हेतू, प्रभु तुम गुण गाने आये हैं।।
जय पार्श्व प्रभो! करुणासिंधो! हम शरण तुम्हारी आये हैं।।जय.।।9।।

ॐ ह्रीं कालसर्पयोगनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं.....।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

दोहा – जो पूजें नित भक्ति से, पार्श्वनाथ पदपद्म।
शक्ति मिले सर्वसहा, होवे परमानंद।।1।।

।। इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिः।।

भगवान पार्श्वनाथ जन्मभूमि

वाराणसी तीर्थ पूजा

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

–स्थापना (शंभु छंद)–

जिस वाराणसि नगरी का हमने, नाम सुना है ग्रंथों में।
जो पावन और पवित्र सुपारस, पार्श्वनाथ के चरणों से।।
उस जन्मभूमि तीरथ की पूजन, हेतु करूँ आह्वानन मैं।
स्थापन सन्निधिकरण करूँ, वाराणसि तीर्थ का अर्चन मैं।।1।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकर श्रीसुपार्श्वनाथ पार्श्वनाथ जन्मभूमि वाराणसी तीर्थक्षेत्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं तीर्थंकर श्रीसुपार्श्वनाथ पार्श्वनाथ जन्मभूमि वाराणसी तीर्थक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं तीर्थंकर श्रीसुपार्श्वनाथ पार्श्वनाथ जन्मभूमि वाराणसी तीर्थक्षेत्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अष्टक (शंभु छंद)–

हे नाथ! विषयसुख की इच्छा में, मैंने निज को भरमाया।
लेकिन दुःखों की वैतरणी में, किंचित् भी सुख नहिं पाया।।
वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्रीसुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।1।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधाग्नी में जलकर अब तक, अपना सर्वस्व लुटाया है।
अब चंदन से पूजा करने का, भाव हृदय में आया है।।
वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्रीसुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।2।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयनिधि की पहचान बिना, जड़ को आत्मा मैंने माना।
पूजन में अक्षत पुंज चढ़ा, अब चाहूँ अक्षय पद पाना।।
वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्रीसुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।3।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं कामभोग की मदिरा से, अब तक मतवाला बना रहा।
उसकी संतृप्ती हेतू मैं, अब पुष्पमाल को चढ़ा रहा।।
वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्रीसुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।4।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

इस क्षुधा रोग की ज्वाला से, भव भव में जलता आया हूँ।
उस ज्वाला की उपशांति हेतु, नैवेद्य चढ़ाने आया हूँ।।

वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्री सुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।5।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार में पड़ा-पड़ा, संसार में ही परिभ्रमण किया।
वह मोह दूर करने हेतू, दीपक का अब अवलंब लिया।।
वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्रीसुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।6।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों का इस आत्मा के संग, बंधन अनादि से चला किया।
उस बन्धन से मुक्ती हेतू, मैं धूप अग्नि में जला दिया।।
वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्रीसुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।7।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

इतने फल भव-भव में खाये, उसका फल क्या पाया मैंने।
उत्तम शिवफल की आश में अब, फल थाल चढ़ाया है मैंने।।
वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्रीसुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।8।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सांसारिक अभिलाषाओं में, नहिं पद अनर्घ्य पहचान सका।
''चन्दनामती'' अब अर्घ्य लिये, किंचित् उस पद को जान सका।।
वाराणसि नगरी की पूजन, अब मुझको शांति दिलाएगी।
जिसकी पूजन से श्रीसुपार्श्व, पारस की स्मृति आएगी।।9।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमि वाराणसीतीर्थक्षेत्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा – **गंगनदी का नीर ले, करूँ तीर्थ पर धार।**
आत्मा भी निर्मल बने, पाऊँ शांति अपार।।

शांतये शांतिधारा।

वाराणसि उद्यान के, पुष्प सुगंधित लाय।
पुष्पांजलि अर्पण करूँ, वाराणसि के माँहि।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

–प्रत्येक अर्घ्य (शंभु छंद) –

भादों सुदि षष्ठी को जहाँ गर्भ, कल्याणक हुआ सुपारस का।
इन्द्रों ने तब उत्सव कीना, जिनवर के गर्भकल्याणक का।।
राजा सुप्रतिष्ठ की रानी पृथ्वी-षेणा भी तब पूज्य बनी।
उस गर्भागम से पावन नगरी, वाराणसि भी वंद्य घनी।।1।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथगर्भकल्याणकपवित्रवाराणसीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ ज्येष्ठ सुदी बारस तिथि में, जहाँ श्रीसुपार्श्व ने जन्म लिया।
उन जन्मकल्याणक घड़ियों ने, वाराणसि नगरी धन्य किया।।
स्वर्गों में वाद्य स्वयं बाजे, इन्द्रासन भी कम्पा उस क्षण।
उस जन्मभूमि वाराणसि की, अर्चना किया करते सुरगण।।2।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथजन्मकल्याणकपवित्रवाराणसीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

वाराणसि के उपवन में ही, जिनवर सुपार्श्व ने दीक्षा ली।
ऋतु परिवर्तन लख हो विरक्त, मोही परिजन को शिक्षा दी।।
वह तिथि भी ज्येष्ठ सुदी बारस, जब दीक्षा स्वयं लिया प्रभु ने।
दीक्षाकल्याणक से पवित्र, नगरी को अर्घ्य दिया मैंने।।3।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथदीक्षाकल्याणकपवित्रवाराणसीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

वाराणसि के उद्यान सहेतुक, में शिरीष तरु के नीचे।
फाल्गुन वदि छट्ठ तिथी को केवल-ज्ञान प्राप्त किया जिनवर ने।।
घाती कर्मों का कर विनाश, शुभ समवसरण लक्ष्मी पाया।
मैं इसीलिए वाराणसि तीरथ, की पूजन करने आया।।4।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथकेवलज्ञानकल्याणकपवित्रवाराणसी-तीर्थक्षेत्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

फिर बाद करोड़ों वर्ष जहाँ, प्रभु पार्श्वनाथ इतिहास चला।
वैशाख कृष्ण दुतिया को गर्भ-कल्याणक उत्सव वहाँ मना।।
पितु अश्वसेन माता वामा के, महलों में सुरगण आये।
उस पावन तीर्थ बनारस को, हम अर्घ्य चढ़ाकर हरषाये।।5।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीपार्श्वनाथगर्भकल्याणकपवित्रवाराणसीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

तिथि पौष कृष्ण ग्यारस को पारस-नाथ जहाँ पर जन्मे थे।
मेरूपर्वत की पांडुशिला पर, अभिषव किया था इन्द्रों ने।।
उस जन्मकल्याणक से पावन, नगरी को अर्घ्य चढ़ाऊँ मैं।
वाराणसि तीरथ है प्रसिद्ध, उसकी गुणगाथा गाऊँ मैं।।6।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीपार्श्वनाथजन्मकल्याणकपवित्रवाराणसीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जहाँ ऋषभदेव गुणगाथा सुन, पारसप्रभु को वैराग्य हुआ।
तिथि पौष वदी ग्यारस को प्रभु ने, राजपाट सब त्याग दिया।।
उन बालब्रह्मचारी प्रभु के, चरणों में शीश झुका मेरा।
उनकी दीक्षाभूमी वाराणसि, को है कोटि नमन मेरा।।7।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीपार्श्वनाथदीक्षाकल्याणकपवित्रवाराणसीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जब पार्श्वनाथ भगवान ध्यान में, लीन तपस्या में रत थे।
उपसर्ग किया तब पूर्व जन्म के, बैरी उस कमठासुर ने।।
धरणेंद्र और पद्मावती ने, उपसर्ग प्रभू का दूर किया।।
हुआ केवलज्ञान जहाँ प्रभु को, अहिच्छत्र तीर्थ वह पूज्य हुआ।।8।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीपार्श्वनाथकेवलज्ञानकल्याणकपवित्रअहिच्छत्रतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्णार्घ्य – जिनवर सुपार्श्व अरु पार्श्वनाथ के, कल्याणक से पावन जो।
उनके प्राचीन कथानक से, है प्रसिद्ध तीर्थ बनारस वो।।
उस तीरथ से प्रार्थना मेरी, आत्मा भी तीरथ बन जावे।
मैं पूर्ण अर्घ्य अर्पित करता, मुझको अनर्घ्य पद मिल जावे।।9।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकर श्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथगर्भजन्मादिकल्याणक पवित्र-वाराणसि तीर्थक्षेत्राय पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्यमंत्र– ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमिवाराणसी तीर्थक्षेत्राय नमः।

जयमाला

शंभु छंद – शुभ तीर्थराज वाराणसि को, मेरा है कोटि-कोटि वन्दन।
प्रभु श्रीसुपार्श्व अरु पार्श्वनाथ की, जन्मभूमि को सदा नमन।।टेक.।।
तीर्थंकर श्री वृषभेश्वर की, आज्ञा से बसी नगरियाँ थीं।
उनमें से ही प्रसिद्ध वाराणसि, आदी कई नगरियाँ थीं।।
यहाँ प्रथम आदि तीर्थंकर के, चलते रहते थे सदा भजन।
शुभ तीर्थराज वाराणसि को, मेरा है कोटि-कोटि वन्दन।।1।।

जब-जब स्वर्गों से च्युत होकर, तीर्थंकर यहाँ जनमते थे।
तब-तब धनपति आकर रुचि से, बहुमूल्य रत्न बरसाते थे।।
माता की सेवा करके अष्ट, कुमारी होती थीं प्रसन्न।
शुभ तीर्थराज वाराणसि को, मेरा है कोटि-कोटि वन्दन।।2।।
दो बार हुई पन्द्रह-पन्द्रह, महिने तक यहाँ रतन वर्षा।
सौधर्म इन्द्र इक सहस्र नेत्र से, प्रभु को देख-देख हर्षा।।
मेरूपर्वत की पाण्डुशिला पर, किया प्रभू का जन्म न्हवन।
शुभ तीर्थराज वाराणसि को, मेरा है कोटि-कोटि वन्दन।।3।।

भगवान जहाँ खेले एवं, स्वर्गों का भोजन किया जहाँ।
तीर्थंकर श्रीसुपार्श्व जिन ने, राजा बन राज्य किया था जहाँ।।
युवराज पार्श्व ने दीक्षा ली, स्वयमेव बालब्रह्मचारी बन।
शुभ तीर्थराज वाराणसि को, मेरा है कोटि-कोटि वंदन।।4।।
सम्मेदशिखर से मोक्ष गये, पारस सुपार्श्व द्वय तीर्थंकर।
उपसर्ग हुआ अहिछत्र में, केवलज्ञान लहा पारस जिनवर।।
तीर्थंकर प्रभु की पदरज से, धरती बन जाती नन्दनवन।
शुभ तीर्थराज वाराणसि को, मेरा है कोटि-कोटि वन्दन।।5।।

है वर्तमान में वाराणसि का, क्षेत्र भदैनी सुखकारी।
वह प्रभु सुपार्श्व की जन्मभूमि, मानी जाती मंगलकारी।।
भेलूपुर पारसनाथ जिनेश्वर, का कहलाता जन्मस्थल।
शुभ तीर्थराज वाराणसि को, मेरा है कोटि-कोटि वंदन।।6।।

यह अर्घ्यथाल स्वीकार करो, आठों द्रव्यों से युक्त मेरा।
यह शब्दमाल स्वीकार करो, गुणवर्णन से संयुक्त मेरा।।
यह भक्तिमाल स्वीकार करो, भावों से मैं करता अर्चन।
शुभ तीर्थराज वाराणसि को, मेरा है कोटि-कोटि वंदन।।7।।

जन्मभूमि वाराणसी, है जग में सुप्रसिद्ध।
नमन ''चन्दनामती'' सदा, पूजन का है लक्ष्य।।8।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथपार्श्वनाथजन्मभूमिवाराणसीतीर्थक्षेत्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

गीता छन्द – **जो भव्य प्राणी पार्श्वप्रभु की, जन्मभूमी को नमें।**
वाराणसी तीरथ की रज से, शीश उन पावन बनें।।
कर पुण्य का अर्जन कभी तो, जन्म ऐसा पाएंगे।
तीर्थंकरों की श्रृँखला में, ''चंदना'' वे आएंगे।।

।। इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिः।।

श्री पार्श्व प्रभु निर्वाण दिवस

डॉ. विमला जैन 'विमल', फिरोजाबाद

मोक्ष सप्तमी शुभ दिवस, खुला मोक्ष का द्वार,
शिखर सम्मेद के कूट से, पार्श्व हुये भव पार।
पार्श्व हुये भव पार, अलोकित ज्ञान मणी से,
अष्ट गुणों से युक्त, मिले जा शिव रमणी से।
रत्नत्रय की ज्योति, बराती दश वृष संग थे,
बारह भावन भगनि, भ्रात सोलह कारण थे।
एक माह का योग धरि, छत्तिस मुनि के साथ,
शेष अघाती कर्म हनि, बने त्रिलोकी नाथ।
बने त्रिलोकी नाथ, अमूरति आकृति पाई,
रहहि अनंतहि काल, सिद्ध पद की प्रभुताई।
मुक्ति रमा भरतार, बने सिद्धालय नाथा,
जय-जय बोले देव, नारि-नर नावहिं माथा।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, सिद्ध योग शुचि बार,
शुद्ध बुद्ध अविकार हो, स्वयम् बोध शिवकार।
स्वयम् बोध शिवकार, पार्श्व प्रभु जग हितकारी,
सुवर्णभद्र शुचि कूट, वंदते सब नर-नारी।
पार्श्व प्रभू निर्वाण, महोत्सव सब मिल करना।
पारसमणि जिनधर्म 'विमल' गहि जग से तरना।

श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ पूजन

–आशुकवि कल्याण कुमार जैन 'शशि'

–स्थापना –

हे पार्श्वनाथ करुणानिधान महिमा महान मंगलकारी।
शिव भर्तारी, सुख भंडारी सर्वज्ञ सुखारी त्रिपुरारी।।
तुम धर्मसेत, करुणानिकेत आनंद हेतु अतिशय धारी।
तुम चिदानंद आनंद कंद दुख-द्वंद फंद संकटहारी।।
आह्वानन करके आज तुम्हें अपने मन में पधराऊँगा।
अपने उर के सिंहासन पर गद-गद हो तुम्हें बिठाऊँगा।
मेरा निर्मल मन टेर रहा हे नाथ हृदय में आ जाओ।
मेरे सूने मन मंदिर में पारस भगवान समा जाओ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

भव वन में भटक रहा हूँ मैं भर सकी न तृष्णा की खाई।।
भव सागर के अथाह दुख में सुख की जल बिन्दु नहीं पाई।।
जिस भाँति आपने तृष्णा पर जय पाकर तृषा बुझाई है।
अपनी अतृप्ति पर अब तुमसे जय पाने की सुधि आई है।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

क्रोधित हो क्रूर कमठ ने जब नभ से ज्वाला बरसाई थी।
उस आत्मध्यान की मुद्रा में आकुलता तनिक न आई थी।
विघ्नों पर वैर-विरोधों पर मैं साम्यभाव धर जय पाऊँ।
मन की आकुलता मिट जाये ऐसी शीतलता पा जाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

तुमने कर्मों पर जय पाकर मोती सा जीवन पाया है।
यह निर्मलता मैं भी पाऊँ मेरे मन यही समाया है।।
यह मेरा अस्त व्यस्त जीवन इसमें सुख कहीं न पाता हूँ।
मैं भी अक्षय पद पाने को शुभ अक्षत तुम्हें चढ़ाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

अध्यात्मवाद के पुष्पों से जीवन फुलवारी महकाई।
जितना जितना उपसर्ग सहा उतनी उतनी दृढ़ता आई।।
मैं इन पुष्पों से वंचित हूँ अब इनको पाने आया हूँ।
चरणों पर अर्पित करने को कुछ पुष्प संजोकर लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

जय पाकर चपल इंद्रियों पर अंतर की क्षुधा मिटा डाली।
अपरिग्रह की आलोक शक्ति अपने अंदर ही प्रगटा ली।।
भटकाती फिरती क्षुधा मुझे मैं तृप्त नहीं हो पाया हूँ।
इच्छाओं पर जय पाने को मैं शरण तुम्हारी आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

अपने अज्ञान अंधेरे में वह कमठ फिरा मारा मारा।
व्यंतर विमानधारी था पर तप के उजियारे से हारा।।
मैं अंधकार में भटक रहा उजियारा पाने आया हूँ।
जो ज्योति आप में दर्शित है वह ज्योति जगाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

तुमने तप के दावानल में कर्मों की धूप जलाई है।
जो सिद्ध-शिला तक आ पहुँची वह निर्मल गंध उड़ाई है।।
मैं कर्म बंधनों में जकड़ा भव बंधन से घबराया हूँ।
वसु-कर्म दहन के लिए तुम्हें मैं धूप चढ़ाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

तुम महातपस्वी शांति मूर्ति उपसर्ग तुम्हें न डिगा पाये।
तप के फल ने पद्मावति के इंद्रों के आसन कम्पाये।।
ऐसे उत्तम फल की आशा मैं मन में उमड़ी पाता हूँ।
ऐसा शिव सुख फल पाने को, फल की शुभ भेंट चढ़ाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

संघर्षों में उपसर्गों में तुमने समता का भाव धरा।
आदर्श तुम्हारा अमृत-बन भक्तों के जीवन में बिखरा।।
मैं अष्ट द्रव्य से पूजा का शुभ थाल सजाकर लाया हूँ।
जो पदवी तुमने पाई है मैं भी उस पर ललचाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

पंचकल्याणक

वैशाख कृष्ण दुतिया के दिन तुम वामा के उर में आये।
श्री अश्वसेन नृप के घर में, आनंद भरे मंगल छाये।।

ॐ ह्रीं वैशाख-कृष्णा-द्वितीयायां गर्भ-मंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

जब पौष कृष्ण एकादशि को, धरती पर नया प्रसून खिला।
भूले भटके भ्रमते जग को, आत्मोन्नति का आलोक मिला।।

ॐ ह्रीं पौष-कृष्णा-एकादश्यां जन्म-मंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

एकादशि पौष कृष्ण के दिन, तुमने संसार अथिर पाया।
दीक्षा लेकर आध्यात्मिक पथ, तुमने तप द्वारा अपनाया।।

ॐ ह्रीं पौष-कृष्णा-एकादशीदिने तपोमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

अहिच्छत्र धरा पर जी भर कर, की क्रूर कमठ ने मनमानी।
तब कृष्णा चैत्र चतुर्थी को, पद प्राप्त किया केवलज्ञानी।।
यह वंदनीय हो गई धरा, दश भव का वैरी पछताया।
देवों ने जय-जयकारों से, सारा भूमण्डल गुंजाया।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थीदिवसे श्री अहिच्छत्रतीर्थे ज्ञानसाम्राज्यप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

श्रावण शुक्ला सप्तमि के दिन, सम्मेदशिखर ने यश पाया।
'सुवरण गिर' भद्र कूट से जब, शिव मुक्ति रमा को परिणाया।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां सम्मेदशिखरस्य सुवरणभद्रकूटात् मोक्षमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

जयमाला

सुर नर किन्नर गणधर फणधर, योगीजन ध्यान लगाते हैं।
भगवान तुम्हारी महिमा का, यशगान मुनीश्वर गाते हैं।।1।।

जो ध्यान तुम्हारा ध्याते हैं, दुख उनके पास न आते हैं।
जो शरण तुम्हारी रहते हैं, उनके संकट कट जाते हैं।।2।।

तुम कर्मदली, तुम महाबली, इंद्रिय सुख पर जय पाई है।
मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ, मन में यह आज समाई है।।3।।

तुमने शरीर औ आत्मा के, अंतर स्वभाव को जाना है।
नश्वर शरीर का मोह तजा निश्चय स्वरूप पहिचाना है।।4।।

तुम द्रव्य मोह, औ भाव मोह, इन दोनों से न्यारे न्यारे।
जो पुद्गल के निमित्त कारण, वे राग द्वेष तुम से हारे।।5।।

तुम पर निर्जन वन में बरसे ओले-शोले पत्थर पानी।
आलोक तपस्या के आगे चल सकी न शठ की मनमानी।।6।।

यह सहन शक्तियों का बल है जो तप के द्वारा आया था।
जिसने स्वर्गों में देवों के सिंहासन को कम्पाया था।।7।।

'अहि' का स्वरूप धर कर तत्क्षण धरणेन्द्र स्वर्ग से आया था।
ध्यानस्थ आप के ऊपर प्रभु फण-मंडल बन कर छाया था।।8।।

उपसर्ग कमठ का नष्ट किया मस्तक पर फण-मंडल रचकर।।
पद्मादेवी ने उठा लिया तुम को सिर के सिंहासन पर।।9।।

तप के प्रभाव से देवों ने व्यंतर की माया विनशाई।
पर प्रभो आपकी मुद्रा में तिल मात्र न आकुलता आई।।10।।

उपसर्गों का आतंक तुम्हें हे प्रभु तिल भर न डिगा पाया।
अपनी विडम्बना पर वैरी असफल हो मन में पछताया।।11।।

शठ कमठ, वैर के वशीभूत भौतिक बल पर बौराया था।
अध्यात्म आत्मबल का गौरव यह मूरख समझ न पाया था।।12।।

दश भव तक जिसने वैर किया पीड़ायें देकर मनमानी।
फिर हार मानकर चरणों में झुक गया स्वयं यह अभिमानी।।13।।

यह वैर महादुखदायी है यह वैर न वैर मिटाता है।
यह वैर निरंतर प्राणी को भव सागर में भटकाता है।।14।।

जिनको भव सुख की चाह नहीं दुख से न जरा भय खाते हैं।
वे सर्व-सिद्धियों को पाकर भव सागर से तिर जाते हैं।।15।।

जिसने भी शुद्ध मनोबल से ये कठिन परीषह झेली हैं।
सब ऋद्धि-सिद्धियाँ नत होकर उनके चरणों पर खेली हैं।।16।।

जो निर्विकल्प चैतन्य रूप शिव का स्वरूप तुमने पाया।
ऐसा पवित्र पद पाने को मेरा अंतर मन ललचाया।।17।।

कार्माण वर्गणायें मिलकर भव वन में भ्रमण कराती हैं।
जो शरण तुम्हारी आते हैं ये उनके पास न आती हैं।।18।।

तुमने सब वैर विरोधों पर समदर्शी बन जय पाई है।
मैं भी ऐसी समता पाऊँ यह मेरे हृदय समाई है।।19।।

अपने समान ही तुम सबका जीवन विशाल कर देते हो।
तुम हो तिखाल वाले बाबा जग ही निहाल कर देते हो।।20।।

तुम हो त्रिकालदर्शी तुमने तीर्थंकर का पद पाया है।
तुम हो महान अतिशयधारी तुम में आनंद समाया है।।21।।

चिन्मूरत आप अनंत गुणी रागादि न तुमको छू पाये।
इस पर भी हर शरणागत पर मनमाने सुख साधन आये।।22।।

तुम रागद्वेष से दूर-दूर इनसे न तुम्हारा नाता है।
स्वयमेव वृक्ष के नीचे जग शीतल छाया पा जाता है।।23।।

अपनी सुगंध क्या फूल कहीं घर पर आकर बिखराते हैं।
सूरज की किरणों को छूकर सुमन स्वयं खिल जाते हैं।।24।।

भौतिक पारसमणि तो केवल लोहे को स्वर्ण बनाती है।
हे पार्श्व प्रभो तुमको छूकर आत्मा कुंदन बन जाती है।।25।।

तुम सर्व शक्तिधारी हो प्रभु ऐसा बल मैं भी पाऊँगा।
यदि यह बल मुझको भी दे दो फिर कुछ न माँगने आऊँगा।।26।।

कह रहा भक्ति के वशीभूत हे दयासिंधु स्वीकारो तुम।
जैसे तुम जग से पार हुये मुझको भी पार उतारो तुम।।27।।

जिसने भी शरण तुम्हारी ली वह खाली हाथ न आया है।
अपनी अपनी आशाओं का सबने वांछित फल पाया है।।28।।

बहुमूल्य सम्पदायें सारी ध्यानें वालों ने पाई हैं।
पारस के भक्तों पर निधियाँ स्वयमेव सिमट कर आई हैं।।29।।

जो मन से पूजा करते हैं पूजा उनको फल देती है।
प्रभु-पूजा भक्त पुजारी के, सारे संकट हर लेती है।।30।।

जो पथ तुमने अपनाया है वह सीधा शिव को जाता है।
जो इस पथ का अनुयायी है वह परम मोक्ष पद पाता है।31।।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्रपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

पार्श्वनाथ भगवान को, जो पूजे धर ध्यान।
उसे लोक परलोक के, मिलें सकल वरदान।।

।। इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

भजन

तर्ज-जय जय माँ ज्ञानमती.....

अहिच्छत्र जी तीरथ का, इतिहास पुराना है।
वहाँ पार्श्व जिनेश्वर का, अभिषेक कराना है।।
जहाँ जैनी संस्कृति का, भण्डार भरा सचमुच।
उपसर्ग की जो घटना, स्मरण कराती युग।।
उस तीरथ की रजकण, मस्तक पे लगाना है।
अहिच्छत्र.....।।1।।
यह तीर्थक्षेत्र पावन, कण-कण इसका पूजित।
वंदन इसका करके, मन होता है प्रमुदित।।
पारस की जय करके, अब पुण्य कमाना है।
अहिच्छत्र.....।।2।।
गणिनी माँ ज्ञानमती की सम्प्रेरणा मिली।
"चन्दनामती" प्रभु के, उत्सव की ज्योति जली।।
सब मिलकर तीरथ के गौरव को बढ़ाना है।
अहिच्छत्र.....।।3।।
सुर नर वंदित तीरथ, प्राचीन ये प्रतिमा है।
दुनिया में बढ़ेगी अब, इसकी गुण गरिमा है।।
संदेश अहिंसा का, सबको पहुँचाना है।
अहिच्छत्र.....।।4।।

केतुग्रहारिष्ट निवारक
श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र पूजा

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

स्थापना-गीता छंद

तर्ज-आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं.....

चलो सभी मिल पूजन कर लें, पार्श्वनाथ भगवान की।
केतू ग्रह की बाधा हरने, वाले प्रभू महान की।।
वन्दे जिनवरम्-2, वन्दे जिनवरम्-2।।टेक.।।

हम सब प्रभु की पूजन हेतू, आह्वानन विधि करते हैं।
स्थापन सन्निधीकरण, करके आतम निधि वरते हैं।।
आओ तिष्ठो प्रभु मुझ मन में, कुछ तो शक्ति प्रदान करो।
निज सम धैर्य-क्षमा गुण देकर, मेरा भी उत्थान करो।।
पारस प्रभु की पूजन से, बनते पारस भगवान भी।
केतू ग्रह की बाधा हरने, वाले प्रभू महान की।।
वन्दे जिनवरम्-2, वन्दे जिनवरम्-2।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

-अष्टक-

तर्ज-हे माँ तेरी सूरत.....

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
भव भव में प्रभु हमने, कितना जल पी डाला।
पर शांत न हो पाई, मेरे मन की ज्वाला।।
भव भव के ताप मिटाने को, जलधारा करने आए हैं।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रह शांती करने आए हैं।।1।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
मेरे चैतन्य सदन में, क्रोधाग्नी जलती है।
अज्ञान के अंचल में, छिप-छिप वह पलती है।।
हम इसीलिए चन्दन लेकर, भवताप मिटाने आए हैं।।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।2।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
मेरा जीवन खंडित है, मद मोह व माया में।
अब करना अखंडित है, प्रभु शीतल छाया में।।
अतएव अखण्डित पुंजों से, अक्षय पद पाने आए हैं।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रह शांती करने आए हैं।।3।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
कितने उद्यानों में जा, पुष्पों की गंध लिया।
कभी घर को सजाया मैंने, कभी निज शृँगार किया।।
अब तेरे पावन चरणों में, हम पुष्प चढ़ाने आए हैं।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रह शांती करने आए हैं।।4।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
हमने कितने भव-भव में, पकवान बहुत खाए।
लेकिन इस नश्वर तन की, नहिं भूख मिटा पाए।।
क्षुधरोग निवारण हेतु प्रभो! नैवेद्य थाल भर लाए हैं।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रह शांती करने आए हैं।।5।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
अज्ञान नगर में मेरा, चिरकाल से है रमना।
नृप मोह के बन्धन में, नहिं पूर्ण हुआ सपना।।
अज्ञान अंधेर मिटाने को, हम दीप जलाकर लाए हैं।।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रह शांती करने आए हैं।।6।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
हमने कर्मों में निज को, आनन्दित माना है।
अतएव निजातम सुख को, किञ्चित् नहिं जाना है।।
कर्मों के ज्वालन हेतु प्रभो! हम धूप जलाने आए हैं।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रह शांती करने आए हैं।।17।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
मैं क्षणिक विनश्वर फल के, स्वादों में फँसा रहा।
जिह्वा की लोलुपता में, उत्तमफल को न लहा।।
तुम सम फल की प्राप्ती हेतू, फल थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रह शांती करने आए हैं।।8।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! तुम्हारी पूजन को, हम थाल सजाकर लाए हैं।
भगवान्.....भगवान् तुम्हारे चरणों में, ग्रहशांती करने आए हैं।।
मैं अष्टद्रव्य ले करके, तव सन्निध आया हूँ।
अष्टम वसुधा पाने को, मैं भी ललचाया हूँ।।
''चन्दना'' सिद्ध पद प्राप्ति हेतु, कुछ भक्त तेरे दर आए हैं।
भगवान तुम्हारे चरणों में, ग्रह शांती करने आए हैं।।9।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

तर्ज-करती हूँ तुम्हारी भक्ति.....

जब तक गंगा यमुना में, जलधार बहेगी।
तब तक पारस प्रभु की भक्ती, रसधार बहेगी।।
हे पार्श्वप्रभू जी, हे पार्श्वप्रभू जी।
कंचन झारी से चरणों में, त्रयधारा करनी है।
सांसारिक जन्म जरा मृत्यू की, बाधा हरनी है।।
जब तक केतू के कष्टों की, नहिं हानि रहेगी।
तब तक पारस प्रभु की भक्ती, रसधार बहेगी।
हे पार्श्वप्रभू जी, हे पार्श्वप्रभू जी।।1।।

शांतये शांतिधारा।

जब तक स्वर्गों में कल्पवृक्ष का, वास रहेगा।
पारसप्रभु के गुणपुष्पों का, इतिहास रहेगा।।
जय पारस देवा, जय पारस देवा।।
चम्पा चमेली पुष्पों से पुष्पांजलि करना है।
आत्मीक गुणों से अन्तर्मन को, पुष्पित करना है।।
उनका अर्चन केतू की बाधा, ह्रास करेगा।
पारस प्रभु के गुणपुष्पों का, इतिहास रहेगा।।
जय पारस देवा, जय पारस देवा।।2।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

तर्ज-आए महावीर भगवान.....

कर लो पारस प्रभु का ध्यान, तुम पारस बन जाओगे।
तुम पारस बन जाओगे, मुक्ति श्री पा जाओगे।। कर लो.।।टेक.।।
ग्रह केतु अरिष्ट की शान्ती, होवे तब मिटे अशान्ती।
भय भागें सब इक क्षण में, नहिं चोट लगे मेरे तन में।।
''चन्दना'' करो गुणगान, तुम पारस बन जाओगे।। कर लो.।।1।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।
शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।

जयमाला

तर्ज-तुमसे लागी लगन.....

जय जय पारस प्रभो, भवदधितारक विभो, द्वार आया।
अर्घ्य का थाल मैंने सजाया।।टेक.।।
गर्भ से मास छह पूर्व नगरी, रत्नमय वह बनारस पुरी थी।
इन्द्रगण आ गए, चक्रधर पा गए, तेरी छाया।
अर्घ्य का थाल मैंने सजाया।।1।।

जन्म होते ही कम्पित मुकुट थे, दिव्य बाजे स्वयं बज उठे थे।
जग चकित हो गया, मोह तम खो गया, प्रभु की माया।
अर्घ्य का थाल मैंने सजाया।।2।।

वामानन्दन हो पारस प्रभो तुम, अश्वसेन के प्रिय लाल हो तुम।
धर्मामृत जो बहा, ज्ञानामृत को लहा, जो भी आया।
अर्घ्य का थाल मैंने सजाया।।3।।

केतु ग्रह की सभी बाधा हर लो, उच्च पद यशसहित मुझको कर दो।
विघ्नविजयी हो तुम, मृत्युविजयी हो तुम, सिद्धि पाया।
अर्घ्य का थाल मैंने सजाया।।4।।

तेरी भक्ती का फल मैं यह चाहूँ, कंठ अपना अकुंठित बनाऊँ।
''चन्दनामती'' प्रभो, मांगते सब विभो, तेरी छाया।
अर्घ्य का थाल मैंने सजाया।।5।।

ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टनिवारक श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।
शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

पार्श्वनाथ की भक्ति का, जो करते रसपान।
अपनी आतमशक्ति की, वे करते पहचान।।

।। इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिः ।।

सम्मेदशिखर पूजन विधान

रचयित्री- गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

अथ स्थापना – शंभु छन्द

गिरिवर सम्मेदशिखर पावन, श्रीसिद्धक्षेत्र मुनिगण वंदित।
सब तीर्थंकर इस ही गिरि से, होते हैं मुक्तिवधू अधिपति।।
मुनिगण असंख्य इस पर्वत से, निर्वाण धाम को प्राप्त हुये।
आगे भी तीर्थंकर मुनिगण का शिवथल यह मुनिनाथ कहें।।1।।

दोहा- **सिद्धिवधू प्रिय तीर्थंकर, मुनिगण तीरथराज।**
आह्वानन कर मैं जजूँ, मिले सिद्धिसाम्राज्य।।2।।

ॐ ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

चाल- नन्दीश्वर पूजा

भव भव में शीतल नीर, जी भर खूब पिया।
नहिं मिटी तृषा की पीर, आखिर ऊब गया।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।1।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव भव में त्रयविध ताप, अतिशय दाह करे।
चंदन से पूजत आप, अतिशय शांति भरे।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।4।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ ! सर्वसुखहेतु, सबकी शरण लिया।
अब अक्षय सुख के हेतु, तुम पद पुंज किया।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।3।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु वर्ण वर्ण के फूल, चरण चढ़ाऊँ मैं।
मिल जाये भवदधिकूल, समसुख पाऊँ मैं।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।4।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बरफी पेड़ा पकवान, नित्य चढ़ाऊँ मैं।
हो क्षुधा व्याधि की हान, निजसुख पाऊँ मैं।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।5।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर ज्येति उद्योत, आरति करते ही।
हो ज्ञानज्योति उद्योत, भ्रम तम विनशे ही।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।6।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर धूप अग्नि में खेय, कर्म जलाऊँ मैं।
जिनपद पंकज को सेय, सौख्य बढ़ाऊँ मैं।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।7।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लेकर बहुफल की आश, बहुत कुदेव जजे।
अब एक मोक्षफल आश, फल से तीर्थ जजें।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।8।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वरअर्घ रजत के फूल, लेकर नित्य जजूँ।
होवे त्रिभुवन अनुकूल, तीरथराज जजूँ।।
सम्मेदशिखर गिरिराज, पूजूँ मन लाके।
पा जाऊँ निज साम्राज्य, तीरथ गुण गाके।।10।।

ॐ ह्रीं विंशतितीर्थंकरअसंख्यमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- **झरने का अतिशीत जल, शांतीधार करंत।**
त्रिभुवन में हो सुख अमल, सर्वशांति विलसंत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

हरसिंगार गुलाब ले, तीर्थराज को नित्य।
पुष्पांजलि चढ़ावते, मिले सर्वसुख इत्य।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक टोंक अर्घ

सोरठा- **तीर्थराज सुर वंद्य, पूजत निज सुख संपदा।**
मिले ज्ञान आनंद, पुष्पांजलि कर मैं जजूँ।।1।।

इति मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

श्री सम्मेद शिखर टोंक पूजन

सिद्धवर कूट नं. 1

श्री अजितनाथ जिन कूट सिद्धवर से निर्वाण पधारे हैं।
उन संघ हजार महामुनिगण, हन मृत्यू मोक्ष सिधारे हैं।।
इससे ही एक अरब अस्सी, कोटि अरु चौवन लाख मुनी।
निर्वाण गये सबको पूजूँ, मैं पाऊँ निज चैतन्य मणी।।
दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
बत्तिस कोटि उपवास फल, अनुक्रम से निज राज्य।।1।।

ॐ ह्रीं सिद्धवरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

धवल कूट नं. 2

श्री संभव जिनवर धवलकूट से, हजार मुनि सह मोक्ष गये।
इससे नौ कोड़िकोड़ि बाहत्तर, लाख बियालिस हजार ये।।
मुनि पाँच शतक मुनिराज सर्व, निर्वाण धाम को प्राप्त किये।
इन सबके चरण कमल पूजूँ, निजज्ञान ज्योति हो प्रगट हिये।।
दोहा - **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
ब्यालिस लाख उपवास फल, अनुक्रम से शिवराज्य।।2।।

ॐ ह्रीं धवलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितसम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

आनन्द कूट नं. 3

अभिनंदन जिन आनंद कूट से, हजार मुनिसह सिद्ध बने।
बाहत्तर कोड़िकोड़ि सत्तर, कोटि मुनि सत्तर लाख मने।।
ब्यालीस सहस अरु सातशतक, मुनि यहाँ से मोक्ष पधारे हैं।
इन सबके चरण कमल वंदूँ, ये सबको भवदधि तारे हैं।।
दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना नित्य।**
एक लाख उपवास फल, मिले स्वात्म सुख नित्य।।3।।

ॐ ह्रीं आनन्दकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

अविचल कूट नं. 4

श्री सुमतिनाथ अविचल सुकूट से, सहस साधु सह मोक्ष गये।
इक कोड़ि कोड़ि चौरासि कोटि, बाहत्तर लाख महामुनि ये।।
इक्यासी सहस सात सौ इक्यासी मुनि इससे मोक्ष गये।
इन सबके चरण कमल पूजूँ, हो शांति अलौकिक प्रभो ! हिये।।
दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
एक कोटि बत्तीस लख, मिले सुफल उपवास।।4।।

ॐ ह्रीं अविचलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

मोहन कूट नं. 5

श्री पद्मप्रभू मोहन सुकूट से, तीन शतक चौबिस मुनिसह।
निर्वाण पधारे आत्मसुधारस, पीते मुक्तिवल्लभा सह।।
इससे निन्यानवे कोटि सत्यासी, लाख तेतालिस सहस तथा।
मुनि सातशतक सत्ताइस सब, शिव पहुँचे पूजत हरूँ व्यथा।।
दोहा- **जो वंदे इस टोंक को, स्वर्ग मोक्ष फल लेय।**
एक कोटि उपवास फल, तत्क्षण उन्हें मिलेय।।5।।

ॐ ह्रीं मोहनकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

प्रभास कूट नं. 6

जिनवर सुपार्श्व सुप्रभासकूट से, पाँच शतक मुनि साथ लिये।
उनचास कोटिकोटि चौरासी, कोटि सुबत्तिस लाखसु ये।।
मुनि सात सहस सात सौ ब्यालिस, कर्मनाश शिवनारि वरी।
मैं सबके चरण कमल पूजूँ, मेरी होवे शुभ पुण्य घड़ी।।
दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
बत्तिस कोटि उपवास फल, मिले मोक्ष सुख राज्य।।6।।

ॐ ह्रीं प्रभासकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

ललित कूट नं. 7

श्री चंद्रनाथ निज ललितकूट से सहस मुनी सह मोक्ष गये।
इससे नव सौ चौरासि अरब, बाहत्तर कोटि अस्सि लख ये।।
चौरासि हजार पाँच सौ पंचानवे साधुगण सिद्ध हुये।
इनके चरणों में बार-बार, प्रणमूँ शिव सुख की आश लिये।।
दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
छ्यानवे लाख उपवास फल, मिले सरें सब काज।।7।।

ॐ ह्रीं ललितकूटात्सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

सुप्रभ कूट नं. 8

श्री पुष्पदंत सुप्रभ सुकूट से, सहस साधु सह सिद्ध हुये।
इससे ही इक कोड़ा कोड़ी, निन्यानवे लाख महामुनि ये।।
पुनि सात सहस चार सौ अस्सी, मुनी मोक्ष को पाये हैं।
मैं पूजूँ अर्घ चढ़ाकर के, ये गुण अनंत निज पाये हैं।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक को, जो वंदे कर जोड़।**
एक कोटि उपवास फल, लहें विघ्न घनतोड़।।8।।

ॐ ह्रीं सुप्रभकूटात्सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितपुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

विद्युत्वर कूट नं. 9

श्री शीतलजिन विद्युत सुकूट से, सहस साधुसह मोक्ष गये।
इससे अठरा कोड़ा कोड़ी, ब्यालीस कोटी साधु गये।।
बत्तीस लाख ब्यालिस हजार, नव शतक पाँच मुनि मोक्ष गये।
इनके चरणारविंद पूजूँ, परमानंद सुख की आश लिये।।

दोहा - **भाव सहित इस टोंक की , करूँ वंदना आज।**
एक कोटि उपवास फल, क्रम से जिन साम्राज।।9।।

ॐ ह्रीं विद्युत्वरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितशीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

संकुल कूट नं. 10

श्रेयांस प्रभू संकुल सुकूट से, एक सहस मुनि के साथे।
निर्वाण पधारे परम सौख्य को, प्राप्त किया भवरिपु घाते।।
इससे छ्यानवे कोटिकोटि, छ्यानवे कोटि छ्यानवे लक्ष।
नव सहस पाँच सौ ब्यालिस मुनि, शिव गये जजूँ कर चित्त स्वच्छ।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
एक कोटि उपवास फल, मिले पुनः शिवराज।।10।।

ॐ ह्रीं संकुलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

सुवीर कूट नं. 11

श्री विमल जिनेंद्र सुवीर कूट से, छह सौ मुनि सह सिद्ध हुये।
इससे सत्तर कोड़ा कोड़ी अरु, साठ लाख छह सहस हुये।।
मुनि सात शतक ब्यालीस मुनी, सब कर्मनाश शिवधाम गये।
उन सबके चरण कमल पूजूँ, मेरे सब कारज सिद्ध भये।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
एक कोटि उपवास फल, क्रम से शिव साम्राज्य।।11।।

ॐ ह्रीं सुवीरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

स्वयंभू कूट नं. 12

वर कूट स्वयंभू से अनंत जिन, निज अनंत पद प्राप्त किया।
उन साथ सात हज्जार साधु ने, कर्मनाश निज राज्य लिया।।
इससे छ्यानवे कोटिकोटि, सत्तर करोड़ मुनि मोक्ष गये।
मुनि सत्तर लख सत्तर हजार, अरु सात शतक मुनि मुक्त भये।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
नव करोड़ उपवास फल, क्रम से शिव साम्राज्य।।12।।

ॐ ह्रीं स्वयंभूकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितअनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

सुदत्त कूट नं. 13

श्री धर्मनाथ जिन सुदत्त कूट से, कर्मनाश कर मोक्ष गये हैं।
उनके साथ आठ सौ इक मुनि, पूर्ण सौख्य पा मुक्त भये हैं।।
उससे उनतिस कोड़ा कोड़ी, उन्निस कोटी साधू पूजूँ।
नौ लाख नौ सहस सात शतक, पंचानवे मुक्त गये पूजूँ।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना नित्य।**
एक कोटि उपवास फल, क्रम से अनुपम रिद्धि।।13।।

ॐ ह्रीं सुदत्तकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

कुंदप्रभ कूट नं. 14

श्री शांतिनाथ जिन कुंद कूट से, नव सौ मुनि सह मुक्ति गये।
नव कोटि कोटि नव लाख तथा, नव सहस व नौ सौ निन्यानवे।।
इस ही सुकूट से मोक्ष गये, इन सबके चरण कमल वंदूँ।
प्रभु दीजे परम शांति मुझको, मैं शीघ्र कर्म अरि को खंडूँ।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना नित्य।**
एक कोटि उपवास फल, मिले ज्ञान सुख नित्य।।14।।

ॐ ह्रीं कुंदप्रभकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितशांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

ज्ञानधर कूट नं. 15

शंभु छन्द

श्री कुंथुनाथ जिन कूट ज्ञानधर, से निर्वाण पधारे हैं।
उन साथ में इक हजार साधू, सब कर्मनाश गुणधारे हैं।।
इससे छ्यानवे कोड़ा कोड़ी, छ्यानवे कोटि बत्तीस लाख।
छ्यानवे सहस सात सौ ब्यालिस, शिव पहुँचे मुनि पूजूँ आज।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक को, जो वंदे सिर नाय।**
एक कोटि उपवास फल, लहे स्वात्मनिधि पाय।।15।।

ॐ ह्रीं ज्ञानधरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

नाटक कूट नं. 16

श्री अरहनाथ नाटक सुकूट से, सहस साधु सह मुक्ति गये।
इस ही से निन्यानवे कोटि, निन्यानवे लाख महामुनि ये।।
नव सौ निन्यानवे सर्व साधु, निर्वाण पधारे पूजूँ मैं।
सम्यक्त्व कली को विकसित कर, संपूर्ण दुःखों से छूटूँ मैं।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करूँ वंदना आज।**
छ्यानवे कोटि उपवास फल, पाय लहूँ निजराज।।16।।

ॐ ह्रीं नाटककूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

संबल कूट नं. 17

श्री मल्लिनाथ संबल सुकूट से, मोक्ष गये सब कर्म हने।
मुनि पाँच शतक प्रभु साथ मुक्ति को, प्राप्त किया गुण पाय घने।।
इस ही से छ्यानवे कोटि महामुनि, सर्व अघाती घाता था।
मैं परमानंदामृत हेतू इन पूजूँ गाऊँ गुण गाथा।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक को , वंदूँ बारंबार।**
एक कोटि प्रोषधमयी, फल उपवास जु सार।।17।।

ॐ ह्रीं संबलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

निरजर कूट नं. 18

श्री मुनिसुव्रत निर्जरसुकूट से, सहस साधु सह मुक्ति गये।
इससे निन्यानवे कोटिकोटि, सत्यानवे कोटि महामुनि ये।।
नौ लख नौ सौ निन्यानवे सब, मुनिराज मोक्ष को प्राप्त हुये।
हम इनके चरणों को पूजें, निज समतारस पीयूष पियें।।

दोहा- **कोटि प्रोषध उपवास फल, टोंक वंदते जान।**
क्रम से सब कुछ पायके, अंत लहें निर्वाण।।18।।

ॐ ह्रीं निर्जरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

मित्रधर कूट नं. 19

शंभु छंद

नमिजिनवर कूट मित्रधर से, इक सहस साधु सहमुक्ति गये।
इससे नव सौ कोड़ाकोड़ी, इक अरब लाख पैंतालिस ये।।
मुनि सात सहस नौ सौ ब्यालिस, सब सिद्ध हुए उनको पूजूँ।
निज आत्म सुधारस पान करूँ, दुःख दारिद संकट से छूटूँ।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक की, करें वंदना भव्य।**
एक कोटि उपवास फल, लहें नित्य सुख नव्य।।19।।

ॐ ह्रीं मित्रधरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

सुवर्णभद्र कूट नं. 20

श्री पार्श्व सुवर्णभद्र कूट से, छत्तिस मुनि सह मुक्ति गये।
इससे ही ब्यासी कोटि चुरासी, लाख सहस पैंतालिस ये।।
मुनि सात शतक ब्यालीस मुनी, सब कर्मनाश शिवधाम गये।
उन सबको पूजूँ भक्ति से, इससे मनवांछित पूर्ण भये।।

दोहा- **भाव सहित इस टोंक को, वंदूँ बारंबार।**
सोलह कोटि उपवास फल, मिले भवोदधि पार।।20।।

ॐ ह्रीं सुवर्णभद्रकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

चाल–हे दीनबन्धु

कैलाशगिरि से आदिनाथ मुक्ति पधारे।
उन साथ मुनि दस हजार मोक्ष सिधारे।।
मैं बार बार प्रभूपाद वंदना करूँ।
निजात्म तत्त्व ज्ञानज्योति से हृदय भरूँ।।21।।

ॐ ह्रीं कैलाशपर्वतात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं....।

वासुपूज्य भगवान की टोंक नं. 22

चाल–हे दीनबन्धु

चंपापुरी से वासुपूज्य मोक्ष गये हैं।
उन साथ छह सौ एक साधु मुक्त भये हैं।।
इनके पदारविंद को मैं भक्ति से नमूँ।
निज सौख्य अतीन्द्रिय लहूँ संसार सुख वमूँ।।22।।

ॐ ह्रीं चंपापुरीक्षेत्रात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

नेमिनाथ भगवान की टोंक नं. 23

चाल–हे दीनबन्धु

गिरनार से नेमी प्रभू निर्वाण गये हैं।
शंबू प्रद्युम्न आदि मुनि मुक्त भये हैं।।
ये कोटि बाहत्तर व सात सौ मुनी कहे।
इन सबकी वंदना करूँ ये सौख्यप्रद कहे।।23।।

ॐ ह्रीं ऊर्जयंतगिरिक्षेत्रात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितनेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

भगवान महावीर टोक नं. 24

चाल–हे दीनबन्धु

पावापुरी सरोवर से वीरप्रभू जी।
निज आत्म सौख्य पाया निर्वाण गये जी।।
इनके चरण कमल की मैं वंदना करूँ।
संपूर्ण रोग दुःख की मैं खंडना करूँ।।24।।

ॐ ह्रीं पावापुरीसरोवरात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं.....।

गणधर कूट नं. 25

चाल–हे दीनबन्धु

चौबीस जिनेश्वर के गणीश्वर उन्हें जजूँ।
चौदह शतक बावन कहे उन सबको मैं भजूँ।।
ये सर्व ऋद्धिनाथ रिद्धिसिद्धि प्रदाता।
मैं अर्घ चढ़ाके जजूँ ये मुक्ति प्रदाता।।25।।

ॐ ह्रीं वृषभसेनादिगौतमान्त्य सर्वगणधरचरणेभ्यः अर्घ्यं.....।

शंभु छंद

नंदीश्वर द्वीप बना कृत्रिम, उसमें बावन जिनमंदिर हैं।
इनमें जिनप्रतिमायें मनहर, उनकी पूजा सब सुखकर हैं।।
मैं पूजूँ अर्घ चढ़ाकर के, संसार भ्रमण का नाश करूँ।
जिन आत्म सुधारस पीकर के, निज में ही स्वस्थ निवास करूँ।।26।।

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपजिनालयजिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यं.....।

तीर्थंकर का शुभ समवसरण, अतिशायी सुंदर शोभ रहा।
श्री गंधकुटी में तीर्थंकर प्रभु, राज रहें मन मोह रहा।
मैं पूजूँ अर्घ चढ़ाकर के, तीर्थंकर को जिनबिंबों को।
सब रोग शोक दारिद्र हरूँ, पा जाऊँ निज गुणरत्नों को।।27।।

ॐ ह्रीं समवसरणस्थितसर्वजिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यं.....।

पूर्णार्घ – शंभु छन्द

गिरिवर सम्मेदशिखर से ही, अजितादि बीस तीर्थंकर जिन।
निज के अनन्त गुण प्राप्त किये, मैं उन्हें नमूँ पूजूँ निशदिन।।
यह ही अनादि अनिधन चौबीसों, जिनवर की निर्वाण भूमि।
मुनि संख्यातीत मुक्तिथल हैं, पूजत मिलती निर्वाण भूमि।।1।।

ॐ ह्रीं त्रैकालिक सर्वतीर्थंकरमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय पूर्णार्घ्यं.....।

जाप्य - ॐ ह्रीं अर्हं श्रीअनन्तानन्तप्रमसिद्धेभ्यो नमो नमः।

जयमाला

दोहा- चिन्मूरति चिंतामणि, चिन्मय ज्योती पुंज।
गाऊँ गुणमणिमालिका, चिन्मय आतमकुंज।।1।।

शंभु छन्द

जय जय सम्मेदशिखर पर्वत, जय जय अतिशय महिमाशाली।
जय अनुपम तीर्थराज पर्वत, जय भव्य कमल दीधितमाली।।
जय कूट सिद्धवर धवलकूट, आनंदकूट अविचलसुकूट।
जय मोहनकूट प्रभासकूट, जय ललितकूट जय सुप्रभकूट।।2।।

जय विद्युत संकुलकूट सुवीरकूट स्वयंभूकूट वंद्य।
जय जय सुदत्तकूट शांतिप्रभ, कूट ज्ञानधरकूट वंद्य।।
जय नाटक संबलकूट व निर्जर, कूट मित्रधरकूट वंद्य।
जय पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि, जयसुवरणभद्रसुकूट वंद्य।।3।।

जय अजितनाथ संभव अभिनंदन, सुमति पद्मप्रभ जिन सुपार्श्व।
चंदाप्रभु पुष्पदंत शीतल, श्रेयांस विमल व अनंतनाथ।।
जय धर्म शांति कुंथु अरजिन, जय मल्लिनाथ मुनिसुव्रत जी।
जय नमि जिन पार्श्वनाथ स्वामी, इस गिरि से पाई शिवपदवी।।4।।

कैलाशगिरी से ऋषभदेव, श्री वासुपूज्य चंपापुरि से।
गिरिनारगिरी से नेमिनाथ, महावीर प्रभू पावापुरि से।।
निर्वाण पधारे चउ जिनवर, ये तीर्थ सुरासुर वंद्य हुए।
हुंडावसर्पिणी के निमित्त ये, अन्यस्थल से मुक्त हुए।।5।।

जय जय कैलाशगिरि चंपा, पावापुरी ऊर्जयंत पर्वत।
जय जय तीर्थंकर के निर्वाणों, से पवित्र यतिनुत पर्वत।।
जय जय चौबीस जिनेश्वर के, चौदह सौ उनसठ गुरु गणधर।
जय जय जय वृषभसेन आदी, जय जय गौतम स्वामी गुरुवर।।6।।

सम्मेदशिखर पर्वत उत्तम, मुनिवृंद वंदना करते हैं।
सुरपति नरपति खगपति पूजें, भविवृंद अर्चना करते हैं।।
पर्वत पर चढ़कर टोंक टोंक पर, शीश झुकाकर नमते हैं।
मिथ्यात्व अचल शतखंड करें, सम्यक्त्वरत्न को लभते हैं।।7।।

इस पर्वत की महिमा अचिन्त्य, भव्यों को ही दर्शन मिलते।
जो वंदन करते भक्ती से, कुछ भव में ही शिवसुख लभते।।
बस अधिक उनंचास भव धर, निश्चित ही मुक्ती पाते हैं।
वंदन से नरक पशू गति से, बचते निगोद नहिं जाते हैं।।8।।

दस लाख व्यंतरों का अधिपति, भूतकसुर इस गिरि का रक्षक।
यह यक्षदेव जिनभाक्तिक जन, वत्सल है जिनवृष का रक्षक।।
जो जन अभव्य हैं इस पर्वत का, वंदन नहिं कर सकते हैं।
मुक्तीगामी निजसुख इच्छुक, जन ही दर्शन कर सकते हैं।।9।।

यह कल्पवृक्ष सम वांछितप्रद, चिंतामणि चिंतित फल देता।
पारसमणि भविजन लोहे को, कंचन क्या पारस कर देता।।
यह आत्म सुधारस गंगा है, समरससुखमय शीतल जल युत।
यह परमानंद सौख्य सागर, यह गुण अनंतप्रद त्रिभुवन नुत।।10।।

मैं नमूँ नमूँ इस पर्वत को, यह तीर्थराज है त्रिभवुन में।
इसकी भक्ती निर्झरणी में, स्नान करूँ अघ धोलूँ मैं।।
अद्भुत अनंत निज शांती को, पाकर निज में विश्राम करूँ।
निज 'ज्ञानमती' ज्योती पाकर, अज्ञान तिमिर अवसान करूँ।।।11।।

दोहा - नमूँ नमूँ सम्मेद गिरि, करूँ मोह अरि विद्ध।
मृत्युंजय पद प्राप्त कर, वरूँ सर्वसुख सिद्धि।।12।।

ॐ ह्रीं त्रैकालिकसर्वतीर्थंकरमुनिगणसिद्धपदप्राप्तसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं.....।
शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

गीता छन्द- जो भव्य श्रद्धा भक्ति से, सम्मेदगिरि को वंदते।
वे नरक पशु गति से छुटें, सुरपद धरें आनंदते।।
चक्रीश पद तीर्थेश पद, पाकर अतुल वैभव धरें।
फिर ''ज्ञानमति'' रवि किरण से, त्रिभुवन कमल विकसित करें।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

श्री पद्मावती पूजा

जगजीवन को शरण, हरण भ्रम तिमिर दिवाकर।
गुण अनन्त भगवन्त कंथ, शिवरमणि सुखाकर।।
किशनबदन लजिमदन, कोटिशशिसदन विराजैं।
उरगलच्छन पगधरण, कमठ मद खण्डन साजैं।।
अनन्त चतुष्टय लक्षिकर, भूषित पारस देव।
त्रिविध नमौं शिरनायके, करूँ पद्मावती सेव।।1।।

-दोहा-

आह्वानन बहुविधि करों, इस थल तिष्ठो आय।
सत्य मात पद्मावती, दर्शन दीजो धाय।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं पार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्र भार्या श्री पद्मावती महादेव्यै! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं पार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्र भार्या श्री पद्मावती महादेव्यै! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं पार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्र भार्या श्री पद्मावती महादेव्यै! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

-त्रिभंगी छंद-

गंगा ह्रदनीरं सुरभिसमीरं आक्रतक्षीरं ले आयो।
रतनन की झारी भरि कर धारी आनंदकारी चितचायो।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गोशीर घिसायो केशर लायो, गंध बनायो स्वच्छमई।
आतापविनाशे चितहुल्लासे, सुरभि प्रकाशे शीतमई।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ता उनहारं अक्षतसारं, खण्ड निवारं गंधभरे।
शशिज्योतिसमानं मिष्ट महानं, शक्तिप्रमानं पुंजधरे।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चम्पारु चमेली केतकि सेली, गंध जु फैली चहुँ ओरी।
चितभ्रमरलुभायो मन हरषायो, तुम ढिंग आयो सुन मोरी।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर घृतसाजे खुरमाखाजे, लाडू ताजे थार भरे।
नैनन सुखदाई तुरत बनाई, कीरत गायी अग्रधरे।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपकशशिजोतं तमक्षयहोतं, ज्ञान उद्योतं छाय रह्यो।
ममकुमतविनाशीसुमतप्रकाशी, समताभाषी सरनलह्यो।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरुधूपं सुरभिअनूपं, मन वच रूपं खेवत हो।
दशदिश अलि छाये वाद्य बजाये, तुम चरणाग्रे सेवतुहो।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम सुपारी श्रीफल भारी, आनन्दकारी भरिथारी।
तुम चरन चढ़ाऊँ चित उमगाऊँ, वांछित पाऊँ बलिहारी।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत पुष्प चरू चित, दीप धूप फल लाय धरे।
शुभ अर्घ बनायो पूजन धायो, तूर बजायो नृत्य करे।।
पद्मावती माता जगविख्याता, दे मोहि साता मोदभरी।
मैं तुम गुणगाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ, बलिबलि जाऊँ धन्यघरी।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्रीपार्श्वनाथ भक्ता धरणेन्द्रभार्यायै श्रीपद्मावत्यै महादेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

श्री पद्मावति माय, गुण अनेक तन शोभते।
अब वर्णन जयमाल के सुनौं सुजन मन लाय के।।1।।

-पद्धड़ी छंद-

जय तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ, प्रणमूँ तिरकाल नवाय माथ।
जिन मुख तैं बानी खिरी सार, सब जीवन को आनन्दकार।।

छद्मस्थ अवस्था को जु वर्ण, सुनियो भवि चित्तलगाय कर्ण।
इक दिन हय चढ़ि कर पार्श्वनाथ, अरु सखा अनेकों लिये साथ।।

गंगा तट आये मोद ठान, तहाँ तापस कुतप करै अयान।
इक काष्ठथूल में नाग दोय, तपसी को कुछ नहिं ज्ञान सोय।।

वह काष्ठ अग्नि में दियो लगाय, उरगानि को संकट परौ आय।
यह भेद जान श्री पार्श्वदेव, तापस के ढिग आये स्वमेव।।

तासों बोले नहिं ज्ञान तोय, हिंसामय तप करि कुगति होय।
चीरौ जु काष्ठ तत्काल सोय, काढ़े सु नागिनी नाग दोय।।

तिनके जु कंठगत रहे प्राण, पारस प्रभु करुणा धर महान।
तिनके वचनामृत हैं महान, निर्मल भावों से सुने कान।।

तत्काल पुण्यसमुदाय होय उत्तम गति बंध कियो सु दोय।
संन्यास कियो मन को लगाय, धरणेन्द्र पद्मावती लहाय।।

सो हि पद्मावती मात सार, नित प्रति पूजौं मैं बार बार।
बहुतें जीवन उपकार कीन, मेरी बारी मैं बहुत दीन।।

जल आदिक वसुविधि द्रव्यलाय, गुणगान गाय बाजे बजाय।
घनघन घनघन घण्टा बजन्त, तननं तननं नूपुर तुरंत।।

ताथेई थेई थेई घुंघुरू करन्त, झुकि-झुकि झुकि-झुकि फिर पग धरन्त।
बाजत सितार मिरदंग साज, बीणा मुरली मधुरी आवाज।।

करि नृत्य गान बहु गुण बखान, कहँलौं महिमा वरने अगान।
''सेवक'' पर सदा सहाय कीन, विनती मोरी सुनियो प्रवीन।।

-घत्ता-

पद्मावति माता, तुम गुण गाता, आनन्द दाता, कष्ट हरौ।
सुन माता मोरी, शरण जु तोरी, लखि मम ओरी, धीर धरो।।

-दोहा-

हे माता मम उर विषैं, पूरण तिष्ठो आय।
रहे सदैव दयालुता, कहता सेवक गाय।।

।। इत्याशीर्वादः।।

तीर्थंकर जन्मभूमि यात्रा

भजन

तर्ज –चलो मिल सब.....

चलो सब मिल यात्रा कर लो, तीर्थयात्रा का फल वर लो।
चौबिस तीर्थंकर की सोलह जन्मभूमि नम लो।।चलो.।।

ऋषभ, अजित, अभिनन्दन, सुमती, अरु अनंत जिनवर।
नगरि अयोध्या में जन्मे जो तीरथ है शाश्वत।।
अयोध्या को वंदन कर लो,
ऋषभदेव की जन्मभूमि का रूप नया लख लो।।चलो.।।1।।

श्रावस्ती में संभव कौशाम्बी में पद्मप्रभू।
वाराणसि में श्री सुपार्श्व पारस प्रभु को वंदूँ।।
चन्द्रपुरि तीरथ को नम लो,
जहाँ चन्द्रप्रभ जी जन्मे वह रज सिर पर धर लो।।चलो.।।2।।

पुष्पदन्त काकन्दी शीतल भद्दिलपुर जन्मे।
श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर सिंहपुरी जन्मे।।
तीर्थ चम्पापुर को नम लो,
वासुपूज्य की पंचकल्याणक भूमि इसे समझो।।चलो.।।3।।

कम्पिल जी में विमलनाथ, प्रभु धर्म रतनपुरि में।
हस्तिनापुर में शांति, कुंथु, अर, तीर्थंकर जन्मे।।
चलो मिथिलापुरि को नम लो,
मल्लिनाथ, नमिनाथ जन्मभूमि वंदन कर लो।।चलो.।।4।।

राजगृही में मुनिसुव्रत नेमी शौरीपुर में।
कुण्डलपुर में चौबिसवें महावीर प्रभू जन्मे।।
तीर्थ से भवसागर तिर लो,
जिनवर जन्मभूमि दर्शन कर जन्म सफल कर लो।।चलो.।।5।।

गणिनी ज्ञानमती जी की, प्रेरणा मिली भक्तों।
सभी जन्मभूमी जिनवर की, जल्दी विकसित हों।।
पुण्य का कोष सभी भर लो,
तीर्थ वंदना से ही "चंदना" आत्मशुद्धि कर लो।।चलो.।।6।।

मोक्षसप्तमी पर्व नृत्य नाटिका

(तर्ज– आए महावीर भगवान.....)

प्रश्न– कैसा उत्सव आया आज, क्यों धूम मची मंदिर में।
बतला दो मेरे भ्रात, क्यों धूम मची मंदिर में।।टेक.।।

उत्तर– सुन ले मेरी बहना आज, क्यों धूम मची मंदिर में।
है प्रभु पार्श्वनाथ निर्वाण, का उत्सव इस मंदिर में।।टेक.।।

प्रश्न– निर्वाण कहाँ से पाया, कहाँ प्रभु ने ध्यान लगाया।
क्या बात है उनमें खास, क्यों धूम मची मंदिर में।।कैसा.।।

उत्तर– सम्मेदशिखर पर जा प्रभु, पारस ने ध्यान लगाया।
वहीं से प्राप्त किया शिवधाम, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन ले.।।

प्रश्न– भैय्या मैं पूछूँ तुमसे, निर्वाण किसे कहते हैं?
इससे होता है क्या लाभ, क्यों धूम मची मंदिर में।।कैसा.।।

उत्तर– आठों कर्मों से आत्मा, जब छूट बने परमात्मा।
कहते उसको ही निर्वाण, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।
पद सिद्ध का तब मिल जाता, त्रैलोक्यपती बन जाता।
होता शाश्वत सुख का लाभ, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।

प्रश्न– इक बात और बतलाओ, लाडू रहस्य समझाओ।
क्यों इसे चढ़ाते आज, क्यों धूम मची मंदिर में।।कैसा.।।

उत्तर– लाडू सर्वोत्तम माना, पकवानों में पकवाना।
यह है सब खुशियों का राज, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।
प्रभु के निर्वाण दिवस पर, लाडू ही चढ़ाते हैं सब।
तुम भी लाडू चढ़ा लो आज, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।

प्रश्न– इक प्रश्न उठा है मन में, भैय्या पूछूँ तुमसे मैं।
क्यों हैं पार्श्व अधिक विख्यात, क्यों धूम मची मंदिर में।।कैसा.।।

उत्तर– उपसर्ग सहे पारस ने, इसलिए जान लिया सबने।
क्षमा गुण से हुए वे विख्यात, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।

प्रश्न– किस नगरी में जन्मे वे, क्या नाम पिता-माता के।
कहाँ दीक्षा ली थी जाय, क्यों धूम मची मंदिर में।।कैसा.।।

उत्तर– काशी में जन्म लिया था, पितु अश्वसेन माँ वामा।
वन अश्व में तप किया जाय, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।

प्रश्न– इक प्रश्न सहज उठता है, प्रतिमा पर फण रहता है।
उस फण का क्या है राज, क्यों धूम मची मंदिर में।।कैसा.।।

उत्तर– कमठासुर ने पारस पर, उपसर्ग किया जाकर जब।
आये नागयुगल बन देव, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।
इक ने फण पर बैठाया, इक ने फण छत्र लगाया।
वही बनी पार्श्व पहचान, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।

प्रश्न–सम्मेदशिखर से कितने, तीर्थंकर मोक्ष गए हैं।
क्यों तीर्थ अधिक वह ख्यात, क्यों धूम मची मंदिर में।।कैसा.।।
उत्तर–प्रभु वासुपूज्य आदीश्वर, नेमी व वीर को तजकर।
जिनवर बीस गए निर्वाण, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।
वहाँ सबसे ऊँचा मंदिर, हैं पार्श्व चरण जहाँ सुन्दर।
उससे तीर्थ हुआ विख्यात, वही उत्सव है मंदिर में।।सुन.।।

दोनों मिलकर–

तिथि मोक्षसप्तमी आई, पूजन इसलिए रचाई।
समझो तुम सब भी यह बात, क्यों धूम मची मंदिर में।।कैसा.।।
निर्वाण महोत्सव करके, सम्मेदशिखर को नम के।
चढ़ाएं लाडू प्रभु के पास, यही उत्सव है मंदिर में।।कैसा.।।
गणिनी माँ ज्ञानमती ने, इक नई प्रेरणा दी है।
करो पार्श्व प्रभू गुणगान, वही उत्सव है मंदिर में।।कैसा.।।
यह तृतीय सहस्राब्दि का, उत्सव इक वर्ष का आया।
करो पारस का गुणगान, यही उत्सव है मंदिर में।।कैसा.।।

भजन

तर्ज-जहाँ डाल-डाल पर.....

अहिच्छत्र के पार्श्वनाथ का महामहोत्सव आया,
जिनधर्म का ध्वज लहराया।।टेक.।।
प्रभु पार्श्वनाथ उपसर्ग भूमि और केवलज्ञान थली है,
श्री तीस चौबीसी मंदिर से भी इसको ख्याति मिली है।
हाँ इसको ख्याति मिली है...
उसमें खड्गासन पार्श्वनाथ प्रतिमा भी जग ने पाया
जिनधर्म का ध्वज लहराया।।1।।टेक.।।
प्राचीन जिनालय में पारस प्रभु ध्यानमग्न बैठे हैं।
मानों कमठासुर के संकट को आज भी वे कहते हैं।।
हाँ आज भी वे कहते हैं...
उनके दर्शन-वंदन से बनती शक्तिमान यह काया,
जिनधर्म का ध्वज लहराया।।2।।टेक.।।
जिनके तन-मन का रोम-रोम प्रभु भक्ती में अर्पित है।
उन गणिनी ज्ञानमती जी की प्रेरणा शक्ति सुरभित है।।
हाँ प्रेरणा शक्ति सुरभित है....
"चन्दनामती" सानिध्य उन्हीं माता का हमने पाया,
जिनधर्म का ध्वज लहराया।।3।।टेक.।।

आरति श्री पार्श्वनाथ भगवान की

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-करती हूँ तुम्हारी पूजा.....

करते हैं प्रभु की आरति, मन का दीप जलेगा।
पारस प्रभु की भक्ती से, मन संक्लेश धुलेगा।।
जय पारस देवा, जय पारस देवा-2।।।

हे अश्वसेन के नन्दन, वामा माता के प्यारे।
तेईसवें तीर्थंकर पारस, प्रभु तुम जग से न्यारे।।
तेरी भक्ती गंगा में, जो स्नान करेगा।
पारस प्रभु की भक्ती से, मन संक्लेश धुलेगा।।
जय पारस देवा, जय पारस देवा-2।।1।।

वाराणसि में जन्मे, निर्वाण शिखर जी से पाया।
इक लोहा भी प्रभु चरणों में, सोना बनने आया।।
सोना ही क्या वह लोहा, पारसनाथ बनेगा।
पारस प्रभु की भक्ती से, मन संक्लेश धुलेगा।।
जय पारस देवा, जय पारस देवा-2।।2।।

सुनते हैं जग में वैर सदा, दो तरफा चलता है।
पर पार्श्वनाथ का जीवन, इसे चुनौती करता है।।
इक तरफा बैरी ही कब तक, उपसर्ग करेगा।
पारस प्रभु की भक्ती से, मन संक्लेश धुलेगा।।
जय पारस देवा, जय पारस देवा-2।।3।।

कमठासुर ने बहुतेक भवों में, आ उपसर्ग किया।
पारसप्रभु ने सब सहकर, केवलपद को प्राप्त किया।।
कैवल्य ज्योति से पापों का, अंधेर मिटेगा।
पारस प्रभु की भक्ती से, मन संक्लेश धुलेगा।।
जय पारस देवा, जय पारस देवा-2।।4।।

प्रभु तेरी आरति से मैं भी, यह शक्ति पा जाऊं।
"चन्दनामती" तव गुणमणि की, माला यदि पा जाऊं।।
तब जग में नहिं शत्रू का, मुझ पर वार चलेगा।
पारस प्रभु की भक्ती से, मन संक्लेश धुलेगा।।
जय पारस देवा, जय पारस देवा-2।।5।।

तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की आरती

ॐ जय पारस स्वामी, प्रभु जय पारस स्वामी।
वाराणसि में जन्मे, त्रिभुवन में नामी।। ॐ जय0।।

अश्वसेन के नन्दन, वामा के प्यारे। माता वामा.....
तेइसवें तीर्थंकर-2, तुम जग से न्यारे।।ॐ जय0।।1।।

वदि वैशाख दुतीया, गर्भकल्याण हुआ। स्वामी.....
पौष कृष्ण एकादशि-2, जन्मकल्याण हुआ।।ॐ जय0।।2।।

जन्मदिवस ही दीक्षा, धारण की तुमने। स्वामी.....
बालब्रह्मचारी बन-2, तप कीना वन में।। ॐ जय0।।3।।

कमठासुर ने तुम पर, घोर उपसर्ग किया। स्वामी.....
अहिच्छत्र में तुमने-2, पद कैवल्य लिया।। ॐ जय0।।4।।

श्रीसम्मेदशिखर पर, मोक्षधाम पाया। स्वामी.....
मोक्षकल्याण मनाकर-2, हर मन हरषाया।। ॐ जय0।।5।।

परम सहिष्णु प्रभु की, आरति को आए। स्वामी.....
यही "चन्दनामती" अरज है-2, तव गुण मिल जाएं।। ॐ जय0।।6।।

भजन

–श्रीमती प्रीति जैन,वाराणसी (उ.प्र.)

श्री पार्श्व स्वामी जी प्रभुवर हमारे, संसार सिंधु के तुम हो किनारे।।
बनारस में तुमने जो जन्म लिया हो, काशी को तुमने ही पावन किया है।
शिखर जी के पर्वत से तुम मोक्षगामी, जो कि नरक पशुगति से उबारे।
श्री पार्श्व स्वामी जी प्रभुवर हमारे, संसार सिंधु के तुम हो किनारे।।

तुम अश्वसेन की पहली लहर हो, जाना कहाँ है ये तुमको खबर है।
हमको भी ले ले मुक्ती की मंजिल, हम भी तो बैठे हैं सिंधु के धारे।।
श्री पार्श्व स्वामी जी प्रभुवर हमारे, संसार सिंधु के तुम हो किनारे।।

धरणेन्द्र पद्मावती के आलय तुम्हीं हो, माँ वामाजी के हिमालय तुम्हीं हो।
हमको भी दे दो भक्ति का अर्पण, हम क्षीरोदधि से चरणा पखारें।
श्री पार्श्व स्वामी जी प्रभुवर हमारे, संसार सिंधु के तुम हो किनारे।।

कमठ के उपसर्ग विजेता तुम्हीं हो, अहिंसा धर्म के मसीहा तुम्हीं हो।
हमको भी दे दो तप की शक्ति, हम भी तो अपना जीवन सुधारें।
श्री पार्श्व स्वामी जी प्रभुवर हमारे, संसार सिंधु के तुम हो किनारे।।

अहिच्छत्र पार्श्वनाथ की आरती

रचयित्री - आर्यिका चंदनामती

आरति करो रे,
प्रभु पार्श्वनाथ अहिछत्र तीर्थ की आरति करो रे।।टेक.।।
जिनशासन के तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ प्रभु हैं।
उनके पार्श्वनाथ बनने की कथा ग्रंथ में वर्णित है।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
इतिहासपुरुष श्री पार्श्वनाथ की आरति करो रे।।1।।

वाराणसि में गर्भ जन्म, दीक्षा कल्याणक प्राप्त किया।
बालब्रम्हचारी बनकर, सांसारिक सुख का त्याग किया।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
श्री अश्वसेन वामानंदन की आरति करो रे।।2।।

कमठाचर के उपसर्गों को, जहाँ प्रभू ने सहन किया।
पद्मावति धरणेंद्र ने आ, उपसर्ग दूर कर नमन किया।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
उपसर्गविजेता पार्श्वनाथ की आरति करो रे।।3।।

पार्श्वनाथ की प्रथम देशना, समवसरण में खिरी जहाँ।
उसके ही प्रतिफल में समवसरण की रचना बनी जहाँ।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
कैवल्यभूमि अहिछत्र तीर्थ की आरति करो रे।।4।।

जहाँ पात्रकेसरी मुनी से, संबंधित इतिहास बना।
पद्मावति ने पार्श्वफणा पर , लिखकर दिया उन्हें सपना।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
अतिशायी तीरथ अहिच्छत्र की आरति करो रे।।5।।

इसी तीर्थ पर तीस चौबीसी, का विशाल जिनमंदिर है।
गणिनी ज्ञानमती माता की, मिली प्रेरणा सुन्दर है।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
उन सभी सात सौ बीस प्रभू की आरति करो रे।।6।।

अहिच्छत्र में आज भी पद्मावति, माता का अतिशय है।
उपसर्गों को दूर भगाकर, विजय दिलातीं निश्चय है।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
" चन्दनामती" उस विजयभूमि की आरति करो रे।।7।।

आरति
श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज–मैं तो .....

मैं तो आरती उतारूँ रे, सम्मेदगिरिवर की,
जय जय सम्मेदशिखर, जय जय जय-2।।टेक.।।
कहा शाश्वत है यह गिरिराज,
काल अनादी से.....काल अनादि से।
मुक्ति वरते यहीं से जिनराज,
काल अनादी से.....काल अनादि से।
पावन है पूज्य है, गिरिवर की धूल है, सिर पे चढ़ाओ जी,
हो धूली सिर पे चढ़ाओ जी।। मैं तो...।।1।।
इस युग के जिनेश्वर बीस,
मुक्त हुए यहीं से-मुक्त हुए यहीं से।
बने सिद्धशिला के ईश,
नमन करूँ रूचि से-नमन करूं रूचि से।।
आरती का थाल ले, भक्ति सुमन माल ले, सबको बुलाऊँ मैं,
हो भक्तों की टोली बुलाऊँ मैं ।। मैं तो..।।2।।
इक बार भी जो वन्दना,
करे इस गिरिवर की-करे इस गिरिवर की।
उनको मिलती न उस भव से,
नरक अरु पशुगति भी-नरक अरु पशुगति भी।।
मैं भी इसी भाव से, शुभ गती की चाव से, भक्ती रचाऊँ रे,
हो गिरि पर चढ़ करके जाऊँ रे ।। मैं तो..।।3।।
सांवरिया का है चमत्कार,
सम्मेदाचल में-सम्मेदाचल में।
पारस पारस की ही है पुकार,
आज भी मुधबन में-आज भी मधुबन में।।
''चंदनामति'' भक्ति में, आज भी शक्ति है, उसमें ही रम जाओ,
हो गिरि की आरति का फल पाओ ।। मैं तो..।।4।।

श्री पार्श्वनाथ स्तुति

–प्रदीपकुमार जैन, बहराइच (उ.प्र.)

आज आया शरण पार्श्व प्रभुवर तेरी।
विनती करता हूँ मैं सुन लो विनती मेरी।।

पौष कृष्णा एकादशी थी शुभ तिथि।
जन्में प्रभुवर नगर वाराणसी धन्य थी।।

मात वामा की गोदी में खेले प्रभु।
पालनें में झुलावें माँ झूलें प्रभु।।

नाग नागिन का उद्धार तुमने किया।
तुम हो सर्वज्ञ उपदेश हित का दिया।।

तीस वर्ष की आयु में छोड़ा महल।
दीक्षा धारण किया धारा चारित सकल।।

कमठ ने दुख दिये भव-भव में तुम्हें।
तुमने कीया क्षमा हर भव में उसे।।

तुमनें राग नहीं तुममें द्वेष नहीं।
निज में रहते हो लीन सदा आप ही।।

मेरी नैय्या भवँर में है कबसे पड़ी।
पार उसको लगा दो प्रभु शीघ्र ही।।

जब तलक मेरा इस जग से वास रहे।
आप मेरे सदा दिल में पास रहें।।

पार्श्व प्रभुवर करूँ मैं तेरी वंदना।
तव कृपा से 'प्रदीप' मिटै दुख सदा।।

भजन

चलो महोत्सव आया है, पारसनाथ ने बुलाया है,
अहिच्छत्र में पार्श्वनाथ का, अतिशय छाया है।। चलो.।।
प्रेम से बोलो जय पारस की, सब मिल बोलो जय पारस की।।
चलो.।।
तप में लीन पार्श्व प्रभु पर जब कमठ ने आ उपसर्ग किया।
पद्मावति धरणेन्द्र ने आ उपसर्ग दूर कर भक्ति किया।।
वही तीर्थ अहिच्छत्र नाम से ग्रंथों में पाया है।।
चलो.।।1।।
उसी जगह भूगर्भ से इक, प्रभु पार्श्व की प्रतिमा निकल पड़ी।
उन तिखाल वाले बाबा की, जय जय जनता बोल पड़ी।।
चमत्कार अब अहिच्छत्र का, जग में छाया है।।
चलो.।।2।।
एक हजार साल का उत्सव, उनका सब मिल करना है।
ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से, अहिच्छत्र अब चलना है।।
चलो "चन्दनामती" महोत्सव का क्षण आया है।।
चलो.।।3।।

भजन

तर्ज-जहाँ डाल-डाल.....

श्री पार्श्वनाथ प्रभु का तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव आया,
जन-जन में खुशियाँ लाया।।टेक.।।
है धन्य धरा इस भारत की, जहाँ उत्सव होते रहते।
तब महापुरुष के जीवन से, सब परिचित होते रहते।
सब परिचित.....
गणिनी माता श्री ज्ञानमती ने इसका बिगुल बजाया,
जन-जन में खुशियाँ लाया।।1।।
श्री ऋषभदेव से महावीर तक, चौबिस तीर्थंकर हैं।
इनमें से पारसनाथ नाम के, तेईसवें जिनवर हैं।
तेइसवें जिनवर.....
पितु अश्वसेन वामा माता से, जन्म जिन्होंने पाया,
जन-जन में खुशियाँ लाया।।2।।
अट्ठाइस सौ इक्यासीवाँ जब जन्मकल्याणक उत्सव।
प्रारंभ हुआ तब जन्मभूमि वाराणसि से ही महोत्सव।।
वाराणसि से.....
"चन्दनामती" स्वर्णिम प्रकाश को लिए महोत्सव आया,
जन-जन में खुशियाँ लाया।।3।।

पार्श्वनाथ जन्मजयंती ६ जनवरी २००५ के शुभ अवसर पर प्रस्तुत

भगवान पार्श्वनाथ जीवन दर्शन

भगवान पार्श्वनाथ के दशभव

लेखिका-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

पोदनपुर में महाराज अरविन्द की राजसभा—राजसभा में दरबार लगा हुआ है। मध्य में स्वर्ण का सिंहासन है। उस सिंहासन के छत्र में वैडूर्यमणि जड़ा हुआ है। जिसकी नीली-नीली आभा चारों तरफ अपना नील प्रकाश फैलाकर राजभवन में मानों नीले-नीले आकाश को ही उतार लाई है। सिंहासन के पृष्ठ भाग में भामंडल के स्थान पर पद्मराग मणियाँ जड़ी हुई हैं, जो कि प्रभात के उदित होते हुए सूर्य की अरुणिमा से दिशाओं को राग से रंजायमान अरुणित कर रही हैं। उस सिंहासन पर महाराज अरविंद बैठे हुए हैं। भवन में सर्वत्र रेशमी वस्त्रों के पर्दे टंगे हुए हैं जो कि मंद-मंद पवन के झकोरों से लहराते हुए गगन में ध्वजाओं के समान प्रतीत हो रहे हैं। मोती, मूँगा जिनके मध्य में गुँथे हुए हैं, ऐसे बेला, चमेली और गुलाब पुष्पों के हार चारों तरफ लटकते हुए अपनी मनोहर सुरभि से सभा भवन को सुरभित कर रहे हैं। मयूर यंत्र सामने कुछ दूर पर खड़ा है, जिसमें चाबी को घुमाते ही वह पंख फैलाकर नाचने लगता है और तभी उसके पंखों से गुलाब जल की छोटी-छोटी फुहारें निकलकर सभा-भवन में सुगंध मिश्रित शीतलता फैला रही हैं। ऊपर में तने हुए चंद्रोपक में मरकत मणियाँ लगी हुई हैं जो कि खेतों के धान्य के अंकुरों की हरीतिमा से बरबस ही दिशाओं को हरित कर रही हैं।

अतिशय कुशल प्रौढ़ मंत्री महोदय गंभीर मुद्रा को लिए हुए आज महाराज अरविंद के निकट आये हैं। महाराज मधुर मुस्कान से उनकी ओर देखते हुए यथोचित आसन पर बैठने का संकेत करते हैं। मंत्री महोदय हाथ जोड़कर विनयवृत्ति को साकार करते हुए पुनः अपने आसन पर बैठ जाते हैं।

'कहिए मंत्रिवर! सर्वत्र राज्य में कुशल तो है ना?'

'हाँ महाराज! आपके प्रसाद से सर्वत्र कुशल मंगल है। सचमुच में इस समय पोदनपुर नगरी आपके प्रसाद को प्राप्त कर साक्षात् भगवान बाहुबली के राज्यसुख का स्मरण किया करती है। शहर में अनीति तो प्रवेश ही नहीं कर पाती है क्योंकि नीतिदेवी ने तो उसका इस शहर से बहिष्कार ही कर दिया है और उसके लिए यहाँ के ऊँचे-ऊँचे कोटों का उल्लंघन करके अंदर आना सर्वथा अशक्य ही हो गया है। महाराज! शहर के चारों तरफ की जो सुन्दर खातिका है, उसमें खिले हुए सफेद कुमुद पुष्प अपनी सुरभि द्वारा दशों दिशाओं में सर्वत्र आपके उज्ज्वल यश को फैला रहे हैं।'

विश्वभूति मंत्री का वैराग्य—अरविंद महाराज एकटक मंत्री के मुख को देख रहे हैं। मंत्री जी कुछ क्षण सोचते रहे पुनः बोलते हैं—

'महाराज! आज मैं आप से सदा के लिए विदाई लेने आया हूँ।'

अरविंद महाराज एकदम आश्चर्यान्वित होते हुए बोले–'ऐं!!

मंत्री जी! क्या-क्या, आपने क्या-कहा? क्या मुझसे कोई नाराजगी का प्रसंग आया है?'

'नहीं-नहीं महाराज! आप अन्यथा न सोचें। प्रभो! आपके पिता और पितामह आदि बुजुर्गों ने तथा मेरे माता-पिता, पितामह आदि बुजुर्गों ने जिस आश्रम को अन्त में स्वीकार किया है और जो कि सनातन परम्परा रही है उसी के अनुसार मैं भी अब आपके इस विशाल प्रेम को और गृहवास के कारावास को छोड़कर शाश्वत सुख की खोज में उस संन्यस्त आश्रम से ही प्रेम करना चाह रहा हूँ। महाराज! आप प्रसन्न होइये और मुझे अब शीघ्र ही आज्ञा प्रदान कीजिए।'

महाराज कुछ क्षण के लिए स्तब्ध से हो गये। आकस्मिक आखिर यह घटना क्या है? क्या सचमुच ये ब्राह्मण विश्वभूति अपनी अनुंधरी भार्या को, अपने कमठ और मरुभूति इन युगल पुत्रों को छोड़कर वन में चले जायेंगे? क्या हमारे इस असीम प्रेम को ठुकरा देंगे?

हो सकता है, कोई बड़ी बात नहीं है। जब मनुष्य को वैराग्य हो जाता है तब उसे यह सारा विश्व का सौंदर्य ओसबिंदु के समान चंचल दिखाई देने लगता है, ऐसा मैंने शास्त्रों में पढ़ा है और सुना भी है। तो क्या, ये मंत्री जी उसी वैराग्य को प्राप्त कर चुके हैं? ऐसा अन्तर्द्वंद महाराज के मन में चल ही रहा था कि बीच में ही मंत्री जी, महाराज अरविंद के हृदय के मोह को समझ गये और बोले–

'महाराज! इस संसार में इस जीव का किसके साथ संबंध नहीं हुआ है? और यह जीव भला किसके स्नेहपाश में नहीं बँध चुका है? भला किसके साथ इसका प्रणय बंधन नहीं हुआ है? जबकि अनंत संसार में अनंत काल से यह जीव घूम रहा है। आज आप मेरे स्वामी हैं, पता नहीं कि अतीत के अनंत भवों में मैंने किस-किसको अपना स्वामी नहीं बनाया है? अथवा मैं स्वयं भी किस-किसका स्वामी नहीं हुआ हूँ? क्या पता मैं कितनी बार कीट, पतंगा आदि क्षुद्र योनियों में गया हूँ? क्या पता कितनी बार मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि स्थावरकायिक जीवों में जन्म ले लेकर मरता रहा हूँ? क्या पता कि मैंने कितनी बार आपसे भी अधिक वैभवशाली ऐसे महान् राज्य के वैभव भोगे हैं तथा इसी प्रकार से भोगभूमि के, स्वर्गों के सुखों का भी मैंने अनंतों बार अनुभव किया है।

"प्रभो! आज तक भी मुझे शांति नहीं मिली है, बस आज मैं उस अक्षय शांति की खोज में अपने आपको खो देना चाहता हूँ।"

"मंत्रिवर! क्या आपने अपने परिवारजनों से आज्ञा ले ली है? क्या आपके पुत्रों ने खुशी-खुशी आपको वन-वन में भटकने की और घर-घर में भिक्षावृत्ति करने की आज्ञा दे दी है?"

"हे राजन्! जब वे दोनों पुत्र आपकी ही आज्ञा में हैं, तब वे आपके अनुकूल ही चलेंगे पुनः वे आपकी आज्ञा के बाद आज्ञा क्यों नहीं देंगे? अवश्य देंगे। दूसरी बात यह है कि मोही पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू आदि कुटुंबीजन सभी स्वार्थ के सगे हैं अर्थात् सब अपने स्वार्थ के लिए ही रोते हैं और परमार्थ से रोक देते हैं किन्तु अब मैं इन लोगों के रुदन से विचलित होने वाला नहीं हूँ क्योंकि ये लोग मुझे क्या यमराज के मुख से बचा सकेंगे? यदि नहीं, तो फिर इनके मोह में फँसने से क्या लाभ है? अरे! मैंने अनंतकाल तक अनंतों बार परिवारजनों को रोते हुए छोड़ा है। क्या मैंने इस भव से पूर्व में भी अपने पुत्र-पौत्रों को रोते हुए छोड़कर पुनः संभाला था? यदि नहीं, तो अब क्या सोचना है? यह शरीर जड़ है, अशुचि है, विनश्वर है, जरा से जर्जरित होकर गिरने वाला है। इसके पहले ही मैं इस नश्वर शरीर से अविनश्वर सुख का मार्ग प्रशस्त बना लूँ। अब मुझे आप शीघ्र ही आज्ञा दीजिए और इन कमठ कुमार तथा मरुभूति कुमार की रक्षा कीजिए।"

राजा अरविंद विवश हुए किंतु मौन मुद्रा से ही स्वीकृति प्रदान करते हैं और कमठ तथा मरुभूति को परंपरागत से आगत मंत्री पद पर सम्मानित करते हैं।

(1) कमठ और मरुभूति–अरविंद महाराज आज बहुत ही चिंतित हो रहे हैं और मंत्रशाला में बैठे हुए विचार-विमर्श में व्यस्त हैं। अंत में यह निर्णय होता है कि राजा वज्रवीर्य, जो कि निरंकुश हो चुका है, उसको जीतने के लिए अब शीघ्र ही प्रस्थान कर देना चाहिए।

आज्ञा पाते ही सभी सैनिक युद्ध के लिए सज-धज कर तैयार हो रहे हैं। सेनापति ने आकर कहा–

'महाराज! सब व्यवस्था हो चुकी है। अब आप हाथी पर सवार होइये, सामने हाथी खड़ा है।'

'महाराज अरविंद ने पोदनपुर की सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी कमठ कुमार मंत्री पर डाल दी और स्वयं मरुभूति कुमार मंत्री के साथ वज्रवीर्य नगर की ओर सेना सहित प्रस्थान कर गये।

माता अनुंधरी की कुक्षि से दोनों ही पुत्र जन्मे थे किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि एक पाप है तो दूसरा पुण्य। एक विष है तो दूसरा अमृत,अथवा एक बक (बगुला) है तो दूसरा हंस, कहने का मतलब यही है कि एक ही गर्भ से दुर्जन और सज्जन दो भाई उत्पन्न हुए थे। कमठ अत्यंत कुटिल परिणामी दुष्टात्मा था और मरुभूति अतिशय सरल स्वभावी धर्मात्मा था। कमठ संपूर्ण कुनीति में कुशल था तो मरुभूति न्याय नीति में अतिशय निपुण था। सच ही है खड्ग और कवच दोनों लोहे के ही होते हैं किन्तु एक देह के खंड-खंड करने वाला है और दूसरा देह की रक्षा करने वाला है।

मंत्री कमठ समय पाकर निरंकुश हो गया और सर्वत्र अन्याय का साम्राज्य फैला दिया । मैं राजा हूँ वह ऐसा सभी से प्रायः घोषित कर चुका था।

किसी समय उसके कानों में किसी युवती के नूपुरों की झंकार आती है-'सामने हंस गति से चलने वाली युवती रत्नों के सुंदर आभूषणों से अपने सौन्दर्य को द्विगुणित करती हुई यह कौन है? क्या यह नागकन्या है? या देवकन्या है? या कोई अप्सरा है? निर्णय होने के बाद.....ओह!! यह तो मेरे लघुभ्राता की भार्या वसुंधरी है। एक क्षण के लिए वह सहम उठा। उसका मन ही उसे धिक्कारने लगा 'अरे रे!! पगले! यह तो अपनी पुत्रवधू के समान है, यह कैसे मिल सकती है?'

किंतु कुछ मुहूर्त तक भी यह सुन्दरी वसुंधरी सामने न होते हुए भी सामने घूम रही है क्योंकि वह दृष्टि में और मन में बस गई है। मन अत्यंत विह्वल हो रहा है।

निद्रा के न आने से नेत्र एकदम लाल हो रहे हैं। उसी समय मानो मित्र के दुःख को बाँटने के लिए ही सखा कलहंस आ गये। मित्र की ऐसी दुरवस्था को देखकर वह एकदम घबरा गये।

'ओहो मित्र! यह क्या स्थिति बना ली है? और मुझे सूचना तक भी नहीं है कि आपका कुछ स्वास्थ्य अस्वस्थ है। हाँ! मैं शीघ्र ही राजवैद्य को बुलाकर लाता हूँ।'

'नहीं-नहीं मित्र! नहीं, मुझे कुछ व्याधि नहीं है, तुम आओ और मेरे पास बैठो। अरे, राजवैद्य मेरा क्या इलाज करेगा? मेरी औषधि तो तुम्हीं हो, जो कि समय पर आ गये हो।'

कलहंस कुछ देर तक बैठकर इधर-उधर की बात करता है पुनः उसके आकुल-व्याकुल हुए तथा मुरझाये हुए मुखकमल को देखकर धीरे से पूछता है–

'कहो मित्र! आखिर तुम्हें किस मानसिक व्यथा ने पीड़ित किया है? स्पष्ट कहोमैं शीघ्र ही उस वेदना का प्रतिकार करूँगा?'

'क्या कहूँ मित्र! जब से मैंने लघुभ्राता की पत्नी उस वसुंधरी को देखा है, तभी से मुझे कामज्वर ने घेर लिया है। अब उस अंगना का स्पर्श कराकर तुम मुझे शीघ्र ही स्वस्थ करो।

इतना सुनते ही कलहंस ने दोनों हाथों से शीघ्र ही अपने दोनों कान बंद करलिये और पुनः कुछ क्षण ठहर कर बोला–

'कमठ! तुमने यह क्या अतिसाहस का विचार किया है? क्या यह संभव है? क्या राजा अरविंद जैसे न्यायप्रिय और लोकप्रिय राजा के रहते हुए तुम इस अनर्थ में जीवित रह सकते हो? क्या वह पुत्री सदृश वसुंधरी तुम्हारे भोगने योग्य है? और फिर जबकि वह तुम्हारे छोटे भाई की भोगी हुई होने से जूठन सदृश है। मित्र! छोड़ो-छोड़ो, इस दुराग्रहरूपी पिशाच का पल्ला छोड़ो और अपने स्वभाव में आओ! देखो! क्या हमारी भावज 'वरुणा' सौन्दर्य में वसुंधरी से कम हैं। यदि वे इस बात को सुनेंगी कि मेरे पतिदेव मेरी देवरानी पर आसक्त हैं तो वे क्या सोचेंगी? और अकस्मात् इस चरित्रहीनता से आपकी कितनी हानि होगी? क्या गति होगी? क्या आपने इस पर भी कुछ विचार किया है? यदि नहीं किया है, तो अब शीघ्र ही विचार करो।'

कमठ मित्र कलहंस की शिक्षास्पद बातें सुनकर क्रोध से भभक उठा, उसका चेहरातमतमा उठा। वह आवेश में आकर बोला–

'मित्र! बस-बस रहने दो, बस तुम्हारी शिक्षाओं को रहने दो, मैं तुमसे भी अधिक शिक्षाओं को जानता हूँ किंतु मैं राजा हूँ, यह वसुंधरी ही क्या, इस पोदनपुर में जो-जो सुंदर वस्तु होगी, उसे भी क्षणमात्र में हस्तगत कर सकता हूँ। मनुष्य को कभी भी मिले हुए अवसर को नहीं चूकना चाहिए। अभी राजा अरविंद और भाई मरुभूति तो अन्यत्र गये हुए हैं। सारी राज्यसत्ता तो मेरे ही हाथ में है। बस शीघ्रता करो, यदि तुम मेरे सच्चे–अभिन्न मित्र हो, तो सत्त्वर ही उस सुन्दरी से मेरा समागम करा दो।

कलहंस अंतःकरण में कुछ अलग ही सोच रहा था किंतु मित्र के इस दुराग्रह को पूर्ण करने के लिए तत्क्षण ही कुछ कूट उपाय सोचने लगा। कुछ क्षण बाद बोला–

'मित्र कमठ! मैं तुम्हारा कार्य बहुत शीघ्र ही सिद्ध किये देता हूँ। तुम चिंता छोड़ो और भोजन करो।'

पोदनपुर के बाहर उद्यान के लताकुंज में वसुंधरी प्रवेश करती है। कमठ गुलाब के पुष्पों की शय्या पर लेटा हुआ है। उसे देखते ही हर्षित मन होता हुआ बोल उठता है–

'आओ, आओ! प्रिय-वल्लभे आओ!! तुम्हारी विरहाग्नि से झुलसे हुए इस शरीर को और मन को शीघ्र ही अधरामृत से सिंचित करो, शांत करो।'

बेचारी वसुंधरी अकस्मात् इस वातावरण को देखकर घबरा गई और काँपने लगी। प्रभो! इस दुष्ट कलहंस ने मुझे कैसे फँसाया? मेरे साथ क्या छल रचा? हाय!! अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे मेरी रक्षा होगी? वह सोच ही रही थी, उसे भागने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था। बाहर से किवाड़ बंद कर दिये गये थे। कमठ शीघ्र ही उठकर दोनों हाथों से उठाकर, उसे अपनी पुष्प शय्या पर बिठा लेता है, तब वह साहस बटोर कर बोलती है–

'तात! आप मेरे पतिदेव के बड़े भ्राता होने से मेरे पूज्य पितातुल्य हैं। आपको यह नीच कृत्य करना शोभा नहीं देता है। अरे! सर्वत्र शहर में आपकी दुष्टता का डंका बज रहा है, फिर उसमें आप और एक कलंकी बनने का साहस कर रहे हैं। मैं इस समय आपसे अपने सतीत्व की, शील की भिक्षा माँगती हूँ।'

'प्राणप्रिये! देखो तो सही, तुम्हारे बिना मेरा रोम-रोम व्यथित हो रहा है। धर्मचर्चा का यह समय नहीं है।

.....कुछ क्षण के अनंतर वसुंधरी ने अपने अमूल्य शीलरत्न को खो दिया और वह मात्र रंकिनी, पापिनी, दुर्गतिगामिनी, कुलटा इस नाम को अपने नाम के साथ लगाकर कुलकलंकिनी हो गई।

प्रणय बंधन में दोनों कुल कलंकियों के दिन गुजर रहे हैं। महाराज अरविन्द राजा वज्रवीर्य को जीतकर वापस आ रहे हैं। वे आज बहुत ही प्रसन्न हैं क्योंकि एक क्षुद्र राजा वज्रवीर्य को अपनी आज्ञा में रखकर उसके द्वारा वज्र, (हीरा) मोती, माणिक्य आदि भेंट में लेकर विजयपताका को लहराते हुए और विजय के नगाड़ों से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए वापस पधार रहे हैं। सर्वत्र शहर में केला और कदली के पत्तों के द्वार बनाये गये हैं। जगह-जगह तोरण-वंदनवार लटक रहे हैं, जिनमें मुक्ता और मूँगे लगे हुए अपनी श्वेत और रक्त आभा बिखेर रहे हैं। तोरण द्वारों में फूलमालायें लटकती हुई राजा की विजय कीर्ति की सुरभि को द्विगुणित कर रही हैं। शहर की गली में चन्दन के छींटे दिये गये हैं, पुष्प बिखेरे गये हैं। महाराज के स्वागत की जोरदार तैयारियाँ हो रही हैं।

दूसरे दिन राजसभा में महाराज ने मरुभूति से पूछा–'मंत्रिवर! क्या यह बात सही है जो कि गुप्तचरों और विश्वस्त जनों द्वारा हमें मिली है?' मंत्री निरुत्तर किंतु माथा नीचे किये चुपचाप खड़े रहे। पुनः राजा पूछते हैं–''तो फिर बताओ, उस दुष्ट कमठ को क्या दंड देना चाहिए?''

'महाराज! एक बार आप उसे क्षमा प्रदान करें, मेरी यही आपसे विनती है।'

'क्षमा, क्षमा!! अशक्य है, असंभव है। मंत्री जी! व्यभिचार जैसे पाप में भाई, बंधु और पुत्र का मोह न्यायसंगत नहीं है। न्यायप्रिय राजा अन्याय में अपने पुत्र को भी प्राणदंड देने से नहीं चूकते हैं और तभी वे यशस्वी होते हैं।

अनंतर राजा की आज्ञा से कोतवाल ने कमठ का सिर मुँडाकर, मुख पर काला पोत दिया और उसे गधे पर बिठाकर सारे शहर में घुमाया। उसके आगे-आगे ढोल बजाया जा रहा था कि 'ऐसा दुष्कर्म जो भी करेगा, उसको ऐसा ही दण्ड दिया जावेगा।' कमठ के इस अपमान को देख-देखकर कुछ लोग हँस रहे थे, कुछ लोग निंदा कर रहे थे और बच्चे पीछे-पीछे दौड़कर कंकड़ मार रहे थे। कोतवाल ने इस विधि से उसे अपमानित करके देश से निकाल दिया। सो ठीक ही है क्योंकि अतितीव्र पाप तत्काल ही उदय में आ जाया करते हैं और तभी तो लोग पाप से डरते हैं अन्यथा क्यों डरें? इस प्रकार फूले हुए पापतरु को सभी संसार ने देखा, आगे इसमें नरक फल लगेगा अतः दुर्व्यसनों को पुनः-पुनः धिक्कार है।

महादण्ड को भोगकर कमठ का मुखकमल अपमान की अग्नि से झुलस गया था। वह भूताचल पर्वत पर तापसियों के आश्रम में पहुँचा। वहाँ पर सभी तापसी समीचीन ज्ञान के बिना मात्र अपने शरीर का शोषण कर रहे हैं। कोई वृक्ष में लटक कर अधोमुख झूलते हुए नीचे जलती अग्नि का धूम्रपान कर रहे हैं, कोई पंचाग्नि तप कर रहे हैं। (चारों तरफ अग्नि जलाकर और वृक्ष में छींके पर बैठ जाना तथा नीचे भी अग्नि जला लेना यह पंचाग्नि तप है।) कोई मौन से बैठे हैं, कोई शरीर में भस्म रमा रहे हैं, कोई मृगछाला को तन में लपेटे हुए हैं, कोई नख को बढ़ाये हुए हैं और कोई जटाओं के भार से सिर को बोझिल बनाये हुए हैं। ये साधु स्व-पर दया से शून्य हैं। अहिंसा के मर्म को नहीं समझ सके हैं। उन्हें नमस्कार कर प्रमुख गुरु के पादमूल में पहुँचकर कमठ ने भी दीक्षा ले ली और हाथ में पत्थर की शिला लेकर खड़ा होकर तपश्चरण करने लगा। उस समय ऐसा लगता है कि मानों वैराग्य और विवेक से शून्य क्रोधित हुए सर्प ने ही अपना फण ऊँचा उठा रखा है।

मरुभूति भाई से मिलने की उत्कंठा से और क्षमा कराकर वापस घर लिवा लाने की भावना से, जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए जा रहा है। दूर से तापसियों के बीच प्यारे भाई को देखकर-पहचान कर तथा उसकी ऐसी रुक्ष और विवर्ण दशा को देखकर दुःखी हुआ। मरुभूति कमठ के निकट पहुँचा। हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा–

'हे भाई! तुम्हारा हृदय विशाल है। जो कुछ हुआ, वह सब अपराध क्षमा करो और घर चलो। हे बंधु! तुम्हारे बिना मुझे घर में अच्छा नहीं लगता है। इतना बोलते हुए वह मरुभूति सरल मन से कमठ के पैरों में गिरकर नमस्कार करने लगा। बस उसी समय कमठ के मन में अत्यंत क्रोध उत्पन्न हुआ। अरे, यह दुष्टात्मा! पहले तो मुझे खूब ही अपमानित करा चुका है और अब बातें बना कर सफाई पेश करने आया है। क्रोध में अंधे हुए उस कमठ तापसी ने तत्क्षण ही अपने हाथ की शिला को उस छोटे भाई के सिर पर पटक दिया। सहोदर के सिर पर उस वज्रसदृश शिला के पड़ते ही खून के फव्वारे निकल पड़े। निकट ही तपस्या में रत हुए साधुओं से यह कुकृत्य न देखा गया। वे लोग उठ पड़े और हा-हाकार करने लगे। प्रमुख तापसी गुरु ने आकर इस निंद्य कृत्य को देखते हुए उस कमठ की बार-बार निन्दा की और तर्जना करते हुए उसे तत्क्षण ही आश्रम से बाहर निकाल दिया।

वहाँ से निकलकर यह दुष्ट पापी वन में पहुँचा और भीलों में मिल गया, उनके साथ चोरी-डकैती करने लगा। एक बार कोतवाल ने इन भीलों को चोरी करते पकड़ लिया और बुरी तरह बाँधकर इन पर मार पड़ी। सो ठीक ही है, जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है। क्या कभी इन्द्रायन की बेल में आम्र फल लग सकते हैं? अर्थात् नहीं लग सकते हैं। देखो! तप्त हुए तवे पर यदि स्वाति जल की बूँद गिर जाती है तो वह विनष्ट हो जाती है, वही बूँद यदि कमलदल का सत्संग करती है तो मोती के समान दिखने लगती है, वही बूँद यदि सागर के सीप में जाती है तो मुक्ताफल हो जाती है। ऐसा संगति का प्रभाव प्रत्यक्ष में सभी को दिख रहा है। इस प्रकार से नीच की संगति से नीच फल मिलता है, मध्यम की संगति से मध्यम फल होता है और उत्तम के संसर्ग से सदैव उत्तम फल प्राप्त होता है।

(2) मरुभूतिचर हाथी को देशसंयम की प्राप्ति–अतिसघन सल्लकी नामक वन में विशाल मुनिसंघ ठहरा हुआ है। कहीं ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के नीचे कुछ मुनि मिलकर स्वाध्याय कर रहे हैं, कहीं सिकतास्थल की शुद्ध-भूमि में कोई-कोई मुनि अपनी शुद्धात्मा के ध्यान में निमग्न होकर परमसमरस का पान कर रहे हैं, कहीं कुछ मुनि जिनेन्द्रदेव की आराधना में तत्पर हो स्तुति से दिशाओं को मुखरित कर रहे हैं और वहीं पर मर्कट अपनी चंचलता को प्रगट करते हुए वृक्षों की

डाल से झूलते हुए स्तुति को श्रवण कर रहे हैं, कहीं सिंह-व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तु विचरण कर रहे हैं, कहीं श्रावक, श्राविकायें भोजन बनाने की व्यवस्था में व्यस्त हैं, तो कहीं श्रावक भगवान की पूजा में संलग्न हो रहे हैं। संघ शिरोमणि आचार्य श्री अरविंद मुनिराज एक शुद्ध पाषाणशिला के ऊपर प्रतिमायोग से विराजे हुए निजात्मा का चिंतन कर रहे हैं।

उसी समय एक वज्रघोष नाम का विशालकाय हाथी उस विशाल संघ में क्षोभ उत्पन्न करता हुआ विचरण करने लगा। सकल संघ में खलबली मच गई। वह काल के समान विकराल हाथी इधर-उधर दौड़ रहा है। उसके धक्के से जो मनुष्य गिरा, सो उसी के पैर के नीचे दबकर परलोक सिधार गया, उस पर क्रूर हाथी ने कितने ही घोड़ों को मार गिराया, कितने ही गाय-बैलों को मृत्यु के घाट उतार दिया, कितने ही ऊँटों को गिरा दिया जो कि बेचारे पुनः नहीं उठ सके। पाकशाला में व्यस्त हुई महिलाओं को त्रस्त कर दिया। सभी श्रावक चिंतित होकर इधर-उधर भागे और मुनि संघ पर आये हुए उपसर्ग का कैसे निवारण हो, ऐसा उपाय सोचने लगे। वह मत्त हुआ हाथी अपने कपोलों से मदजल को बरसाता हुआ मुनिराज अरविंद के सन्मुख आ गया। सर्वत्र हा-हाकार मच गया। सूरिवर्य गुरुदेव (अरविन्द मुनिराज) सुमेरु पर्वत के समान अचल स्थित थे, उनके वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिह्न था। उसको देखते ही उस गजराज को जातिस्मरण हो गया। यह क्या? वह क्रूर हाथी तो एकदम शांत हो गया और मुनिराज के चरणों में मस्तक टेक दिया। अब मुनिराज कहते हैं–

'हे गजराज! तुमने यह क्या किया? अरे! यह हिंसा कर्म महान् दुःखमय ऐसी दुर्गति को देने वाला है। हिंसा के पाप से ही ये जीव संसार रूपी भयंकर वन में भटकते रहते हैं। यह हिंसा स्व और पर दोनों को ही दुखदायी है। अहो! तुमने ब्राह्मण के पुत्र मरुभूति मंत्री की पर्याय से मरकर यह तिर्यंच योनि पाई है। अरे! यह आर्तध्यान का, भाई के प्रति ममत्व परिणाम का ही फल है। मैं अरविंद राजा तुम्हारा स्वामी था। मैंने तुम्हें बार-बार मना किया कि तुम उस दुष्ट कमठ से मिलने मत जावो क्योंकि दुर्जन और श्लेष्मा ये दोनों जगत् में समान ही होते हैं। जैसे-जैसे इन्हें मधुरता दी जाती है, वैसे-वैसे ही ये दोनों अधिक कुपित होते जाते हैं। उस दुष्ट तापसी ने तुम्हारे सिर पर शिला पटक दी। तुम भाई के मोहरूपी आर्त परिणाम से मरकर इस गजयोनि में आ गये हो और उस कमठ की भार्या वरुणा भी कालांतर में मरकर तुम्हारी हथिनी हुई है, जिस भावज को तुमने माता के समान समझा था आज तुम उसी के साथ रमण करते हुए सुखी हो रहे हो। अरे, करिपति! देखो, देखो, संसार की विचित्रता को तो देखो!'

उस समय हाथी के नेत्रों से अश्रु की धारा बहने लगी, सो ऐसा मालूम होता था कि अंतरंग से मिथ्यात्व और दुर्ध्यान ही अश्रुजल के बहाने निकला जा रहा है और तभी तो उसमें सम्यक्त्व, अणुव्रत तथा धर्मध्यान को ठहरने की जगह मिल सकेगी। मुनिराज और भी कह रहे हैं–

'हे गजेन्द्र! मैंने तुम्हारे वियोग से दुःखी हो अवधिज्ञानी महामुनि से पूछा था कि मेरा प्रिय मंत्री मरुभूति अभी तक क्यों नहीं आया? तब उन्होंने सारी घटना सुनाई थी।

पुनः एक दिन मैं अपने प्रासाद की उपरिम छत पर बैठा हुआ प्राकृतिक सुषमा का अवलोकन कर रहा था कि अकस्मात् आकाश में मेघपटल से निर्मित एक सुन्दर मंदिर दिखाई दिया, जिसका शिखर अतिशय उन्नत और रमणीक था। उसे देखते ही मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि ऐसा सुन्दर जिनमंदिर बनवाना चाहिए। बस, मैंने हाथ में कागज और कलम उठाई, उसका चित्र खींचने के लिए, कि ऊपर दृष्टि डालते ही वह सुन्दर भवन विघटित हो गया। तत्क्षण ही मुझे संसार की स्थिति का सच्चा ज्ञान हो गया। यह विशाल राज वैभव इसी मेघपटल के बने हुए सुन्दर भवन के समान अस्थिर है। यह यौवन भी बिजली के समान चंचल है, फिर भी मोही प्राणी इन्हें स्थिर मान कर इन्हीं में रच-पच रहा है। उस समय मैंने प्रबुद्ध होकर सभी राज्यभार अपने सुपुत्र को सौंपकर निर्ग्रंथ गुरु के सान्निध्य में जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। इस समय मैं चतुर्विध संघ सहित सम्मेदशिखर महातीर्थ की वंदना के लिएजा रहा हूँ। सम्मेदशिखर तीर्थ की एक बार भी वंदना करने वाले जीव, भव्य ही होते हैं यह नियम है, उस तीर्थराज की वंदना करने से नरक और तिर्यंच गति टल जाती है। यहाँ तक कि भव्य जीव 49 भव के भीतर ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, इससे अधिक भव धारण नहीं कर सकते हैं।

गजराज! अब तुम मिथ्यात्वरूपी विष का वमन करो और पाँचों पापों को छोड़ो। यह सम्यग्दर्शन मोक्ष महल में चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी है, अनंतसुख का मूल है अथवा अनंतगुणरूपी कल्पवृक्ष का बीज है। अष्टादश दोष रहित जिनदेव ही सच्चे देव हैं, दयामयी धर्म ही सच्चा धर्म है और निर्ग्रंथ दिगंबर गुरु ही सच्चे गुरु हैं। बस, इन्हीं का दृढ़ श्रद्धान करना, इनके सिवाय रागद्वेषादि मैल से मलिन ऐसे देव को, दया रहित धर्म को और पाखंडी साधुओं को नहीं मानना ही सम्यग्दर्शन है। शंकादि पच्चीस मल दोष रहित सम्यग्दर्शन ही मोक्ष के लिए कार्यकारी है। निःशंकित आदि आठ अंग हैं, इनके बिना यह दर्शन संसार की बेल को उखाड़ने में समर्थ नहीं है। जैसे कि एक भी अक्षर से न्यून हुआ मंत्र विष की वेदना को दूर नहीं कर सकता है।

पंच उदंबर फल, (बड़, पीपल, पाकर, ऊमर और कठूमर) मद्य, मांस और मधु का त्याग करो, संकल्पी हिंसा का त्याग करो, असत्य भाषण, चोरी और कुशील का त्याग करो तथा परिग्रह तो तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं, फिर भी हे गजराज! तुम अपनी आशाओं पर नियंत्रण करो, इच्छाओं का प्रमाण करो। इन पाँच पापों के एकदेश त्याग से पाँच अणुव्रत कहलाते हैं। इनकी रक्षा करने वाले सात शील हैं जो कि 3 अणुव्रत और 4 शिक्षाव्रत रूप हैं। उन्हें भी ग्रहण करो, तुम इन व्रतों के प्रभाव से, नियम से देवगति को प्राप्त करोगे क्योंकि यह नियम है–

अणुवद महव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं।

देवायु के सिवाए अन्य आयु के बँध जाने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रत कोग्रहण नहीं कर सकता है।

अर्थात् जो अणुव्रती या महाव्रती है, वह नियम से देवगति में ही जावेगा, अन्यत्र तीन गति में जा नहीं सकता अथवा कदाचित् महाव्रती महामुनि है तो मोक्ष भी जा सकता है।'

इस प्रकार से गुरुदेव ने विस्तार से सम्यक्त्व और व्रतों का उपदेश दिया। तब हाथी उन व्रतों को ग्रहण करके अपने हर्ष को व्यक्त करते हुए बार-बार गुरुदेव को नमस्कार करने लगा। बार-बार पृथ्वीतल पर मस्तक टेक-टेक कर अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने लगा।

'यह गजराज श्रावक हो गया है' ऐसा जानकर श्रावकों ने उसे मिष्ठान्न आदि खिलाकर प्रासुक जल पीने को दिया। वहाँ से जब संघ का विहार हुआ, तब हाथी भी कुछ दूर तक संघ के साथ जाकर गुरुदेव को पहुँचा कर आया और गुरु के पादकमल का स्मरण करते हुए वहीं सल्लकी वन में रहने लगा।

अब हाथी संयमासंयम को साध रहा है, वह सम्यग्दृष्टि है, वह भूलकर भी त्रस जीव की विराधना नहीं करता है, सभी प्राणियों पर समभाव धारण किये हुए है, जो कोई क्षुद्र जंतु उसे सताते हैं, उनके प्रति पूर्ण क्षमा धारण करता है। अपने शरीर को कृश करते हुए इन्द्रियों का दमन कर रहा है, साहसपूर्वक प्रोषध व्रत पालन करता है, सूखे तृणपत्तों का भक्षण करता है, दूसरे पशु जिस मार्ग से चल चुके हैं ऐसे मर्दित हुए प्रासुक मार्ग से गमन करता है, जिस तालाब में अन्य हाथी आदि पानी को विलोडित कर देते हैं, उस प्रासुक हुए पानी को पीता है, बिना देखे पृथ्वी पर पैर नहीं रखता है और अपने तन पर पानी, कीचड़ आदि नहीं डालता है। अपने शील व्रत को पालन करने में कुशल वह हाथी हथिनी के पास भी नहीं जाता है। वह उस निर्जन वन में अन्य जंतुओं द्वारा किये गये उपसर्गों को सहन करने में समर्थ होता हुआ अपने मन में किंचित् भी दुर्ध्यान को नहीं लाता है। पाप के भय से अपने शरीर को काष्ठ के समान निश्चल रखता है, बार-बार इधर-उधर सूँड-पूँछ आदि हिलाता-डुलाता नहीं है। इस प्रकार बहुत काल तक दुर्द्धर तप करते हुए उसकी शक्ति क्षीण हो गई, फिर भी वह पंचपरमेष्ठी के चिंतवन में अपने मन को क्षीण नहीं करता है।

एक दिवस वह करीन्द्र अधिक प्यासा हुआ वेगवती नदी के तट पर आया और सूँडसे फूँक करके जल को प्रासुक किया, पुनः जल पीने लगा किन्तु उस नदी के किनारों पर कीचड़ अधिक था, उस कीचड़ में हाथी का पैर फँस गया। अब उसका उसमें से निकलना कठिन था। सच ही है जब कुंजर ही कीच में फँस जाये, तबउसे निकालने वाला कौन हो सकता है? उस समय वह गजपति श्रावक मन में सोचने लगा–'अब मुझे इस अथाह कीच से कोई निकालने वाला नहीं है जैसे कि

मोहरूपी कीच में फँसे हुए संसारी जीव को इस संसाररूपी अथाह समुद्र से निकालने वाला कोई नहीं है। हाँ! यदि मैं सल्लेखनारूपी बन्धु का सहारा ले लूँ तो वह मुझे अवश्य ही यहाँ से निकालकर उत्तम देवगति में पहुँचा सकता है।'

ऐसा निश्चय कर गजराज ने चतुराहार का जीवन भर के लिए त्याग करके महामंत्र का स्मरण करते हुए पंचपरमेष्ठी का ही अवलम्बन ले लिया। कुछ ही काल बीता था कि एक कुक्कुट जाति का साँप वहाँ आ गया। उसने पूर्व जन्म के संस्कारवश उस हाथी को डस लिया। वह उस वेदना से व्याकुल होने लगा किन्तु गुरु द्वारा प्राप्त हुए उपदेश से "आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है।" ऐसा वाक्य मंत्र स्मरण करते हुए वह शरीर से पृथक् अपनी आत्मा को ज्ञान पुंज, शुद्ध समझने लगा तथा पंचपरमेष्ठी के पाद कमलों के ध्यान से अपने परिणामों को स्थिर करके धर्मध्यानपूर्वक इस नश्वर देह से निकलकर (मरकर) बारहवें स्वर्ग में स्वयंप्रभ विमान में उपपाद शय्या से उत्पन्न होकर 'शशिप्रभ' नाम का देव हो गया।

(3) सहस्रार स्वर्ग में शशिप्रभ देव—स्वर्गपुरी का स्थान है—

वह देव सोलह वर्ष के राजकुमार के समान ही अपनी शय्या से उठ खड़ा हुआ। तमाम देवगण और देवांगनाएँ सम्मुख व इर्द-गिर्द खड़े हुए हैं, वे सब मधुर मुस्कान को लिए हुए हैं। सामने के कल्पवृक्षों से खिले हुए सुमन समर्पित हो रहे हैं। मानों वे नूतन देवराज के स्वागत के लिए पुष्पांजलि बिखेर रहे हैं। वहाँ की सौरभ व सुषमा को देखकर वह देव एक क्षण के लिए आश्चर्यान्वित हो जाता है पुनः उसे तत्क्षण ही अवधिज्ञानरूपी तीसरा नेत्र प्रगट हो जाता है। जिससे उसे स्पष्ट झलक जाता है कि.....

"मैं हस्तीचर हूँ, ओहो!! यह स्वर्गपुरी है और यह अतुल वैभव, ये देवांगनाएँ, ये परिवार देव, यह सब पुण्य का प्रसाद है। मैंने गुरुदेव के द्वारा जो सम्यक्त्वरूपी रत्न और अणुव्रतरूपी निधि प्राप्त की थी, उसी के फलस्वरूप यह तेजोधाम प्राप्त हुआ है।"

तब तक सभी देव, देवीगण अभिवादन करते हुए बोले—"हे स्वामिन्! आप जिनशासन के प्रभाव से इस उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं। अब उठिये और मंगल स्नान कीजिये, पुनः वस्त्रालंकार से भूषित होकर जिनेन्द्र भवन में जिनप्रतिमाओं की पूजन कीजिए। अनन्तर अपने वैभव का निरीक्षण कीजिए और उत्तम-उत्तम भोगों का अनुभव कीजिए।"

शशिप्रभदेव ने भी अपनी प्रसन्नता से सबको प्रसन्न करते हुए यथोचित क्रिया करके पहले जिनपूजा की। उसकी सोलह सागर की आयु है, साढ़े तीन हाथ का शरीर है जो कि वैक्रियक होने से अतिशय सुन्दर है। सोलह हजार वर्ष के व्यतीत होने पर भोजन की इच्छा होती है और उसी समय कंठ से अमृत झर जाता है, जिससे उसकी तृप्ति हो जाती है, यह अनुपम मानसिक आहार है, सोलह पक्ष (8 महीना) बीतने के बाद वह देव श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता है। चतुर्थ नरक पर्यंत उसका अवधिज्ञान जान रहा है और अणिमा, महिमा आदि आठ ऋद्धियाँ उसके पास विद्यमान हैं।

अहो! इसमें आश्चर्य ही क्या है? जो कि जंगली पशु गजराज आज स्वर्ग के वैभव का स्वामी बन गया है। यह सब केवल तपरूपी कल्पवृक्ष का ही सुफल फलित हुआ है।

कभी वह देव सुदर्शन मेरु पर जाकर सोलह चैत्यालयों की वंदना करता है, कभी वह नन्दीश्वर द्वीप में बावन चैत्यालयों में पूजा करता है, कभी तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के अवसरों पर भक्तिभाव से भाग लेता है, कभी चारणऋद्धिधारी मुनियों की वंदना करके उनसे उपदेश सुनता है, कभी अपने सच्चे गुरु अरविंद मुनिराज की पूजा करता है, कभी यहाँ पर आकर सम्मेदशिखर पर्वत की वंदना करके असीम पुण्य संचित कर लेता है।

कभी अपनी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा भवन में क्रीड़ा करता है, कभी नंदनवनों में विचरण करते हुए अपूर्व पुण्य के फल का उपभोग करता है। सुंदर-सुंदर गीतों से, नाना प्रकार के वादित्रों से, अनेक रस, हास्यमय अलंकारों से वे देवियाँ भी शशिप्रभदेव का मनोरंजन किया करती हैं।

.....हाँ, सुनो! तो वह कुक्कुट सर्प भी आखिर कहाँ है? किस स्थिति में है?

क्या पाप का, हिंसा का अथवा बैर का फल कभी किसी को मधुर मिला है? यदि नहीं, तो वह बेचारा कमठचर सर्प भी आखिर उस पाप के कटुक फल से कैसे बच सकेगा?

हाँ! तो वह सर्प अपनी आयु पूर्ण करके रौद्रध्यानरूप अशुभ परिणामों से मरा और पाँचवें नरक में जा गिरा। वहाँ अधोमुख गिरते ही उछला और फिर गिरा.....वहाँ की पृथ्वी का स्पर्श भी इतना भयंकर है कि मानों हजारों बिच्छुओं ने एक साथ ही डंक मार दिया हो। वहाँ की दुर्गन्धित मिट्टी यदि यहाँ आ जाये तो कई कोसों तक जीव मर जावें, वहाँ के दुःखों का वर्णन यदि करोड़ों जिह्वा बनाकर भी सरस्वती देवी करने लगे, तो भी वह असमर्थ हो जावेगी। वहाँ पर इस नारकी ने जीव हिंसा आदि पाप कर्म के निमित्त जन्म लिया है। इसलिए इसे उसका फल तो भोगना ही है अतः वहाँ इसकी आयु भी सत्रह सागर प्रमाण है।

(4) अग्निवेग विद्याधर—बहुत कुछ समय निकल जाने के बाद विद्युत्गति विद्याधर राजा की रानी विद्युन्माली की गोद में पुण्यशाली शिशु किलकारियाँ भर रहा है। माता अपने पुण्य के फलस्वरूप पुत्रको गोद में लेकर फूली नहीं समाती है।

राजसभा में विद्याधर-सभासद, बालक को हाथों-हाथ ले लेते हैं और विजयार्ध पर्वत के भावी महाराज को अपने अंक में लेकर भावविभोर हो उठते हैं।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश प्रसिद्ध है, उसमें चक्रवर्ती अर्धचक्रीको सूचित करने वाले रजतमय पर्वत विजयार्ध पर एक लोकोत्तम नाम का नगर है। उस नगर का भावी पालक यह शिशु अग्निवेगइस नाम को सुशोभित कर रहा है।

यह बालक अतिशय पुण्यशाली क्यों नहीं होगा, क्योंकि यह बारहवें स्वर्ग के शशिप्रभ देव की पर्याय से च्युत होकर यहाँ जन्मा है। इसीलिए तो यह अतुल वैभव का स्वामी है।

सौम्य प्रकृति का धारक यह शिशु, दूज के चन्द्रमा के समान वृद्धिंगत होता हुआ सभी नगरवासियों के मन और नेत्रों को हरण कर रहा है। फिर भी यह जिनदेव के चरण कमल का भ्रमर है, नित्य ही जिनभक्ति में अपने को समर्पित कर चुका है। राज्य संपदा को भोगते हुए सहसा भरी जवानी में ही एक दिन समाधिगुप्त मुनिराज के समीप धर्मश्रवण कर पंचेंद्रिय विषयों को विषवत् विषम समझकर तत्क्षण ही तृणवत् उनका त्याग कर दिया और पंचमहाव्रतों को प्राप्त कर अपने आप में कृतकृत्यता का अनुभव करने लगा।

अब वे अग्निवेग महामुनि घोर-घोर तपश्चरण करने लगे। सर्वतोभद्र आदि श्रेष्ठ उपवासों के द्वारा शरीर को क्षीण करते हुए भी वे गात्रमात्र, परिग्रहधारी निर्ग्रंथ साधु निजात्मा के अनुभव रूप परमानंदामृत को पीकर तृप्त हो रहे थे। वे अनंतगुणों के पुंजस्वरूप केवलज्ञानमयी अपनी शुद्धात्मा का ध्यान किया करते थे।

एक दिन वे महामुनि हिमगिरि पर्वत की गुफा के भीतर योग में लीन थे। वहाँ एक अजगर सर्प आता है, मुनि को देखते ही वह क्रोध से भयंकर होकर उन्हें निगल लेता है।

मुनिराज परम समता भाव से इस नश्वर शरीर से छूटकर सोलहवें स्वर्ग के पुष्कर विमान में देव हो जाते हैं। वहाँ पर देव-देवांगनाओं के द्वारा सेवित असीम वैभव को प्राप्त कर लेते हैं।

(5) अच्युत स्वर्ग में देव—वहाँ पर स्वर्ग में कहीं तो नंदन वन अपने सुगंधित कल्पवृक्षों के फूलों से दिशाओं को सुरभित कर रहे हैं, कहीं पर छोटी-छोटी बावड़ियाँ हंस और मयूर जैसे जलयंत्रों से जलकेलि के समय चारों तरफ उज्ज्वल जल की बूँदें बरसाती हैं, कहीं पर चित्रशाला में नाना प्रकार के चित्र अचेतन होकर भी सचेतन देवों को अपने वश में कर लेते हैं, इत्यादि सुषमा के साथ-साथ विक्रिया के माहात्म्य को प्रदर्शित करते हुए देव-देवीगण भी अपने-अपने स्वामी का मनोरंजन किया करते हैं। वहाँ पर उस अच्युत देव की आयु बाईस सागर प्रमाण है। कितने हजार वर्ष व्यतीत होने पर ही उन्हें मानसिक आहार होता है तथा कितने ही पक्ष बाद वह श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता है। तीन हाथ का ऊँचा सुन्दर, सात प्रकार धातु और उपधातु से रहित दिव्य वैक्रियक शरीर है। यह सब पुण्य का ही वैभव है।

इधर वह अजगर सर्प मुनि हत्या के घोर पाप से तथा और भी जीव हिंसा आदि क्रूर परिणामों से आयु व्यतीत कर मरा और सीधे छठे नरक में उत्पन्न हुआ, वहाँ बाईस सागर की आयुपर्यंत अनंत दुःखोंको भोगता रहा।

अहो!! एक भाई सरल और धर्म के परिणाम से स्वर्ग के व विद्याधर के सुखों को, पुनरपि स्वर्ग के सुखों को भोग

रहा है। एक बेचारा कुटिल तथा कुत्सित पाप परिणामों से नरक के और तिर्यंच के, पुनरपि नरक के अनंत दुःखों का अनुभव कर रहा है क्योंकि पुण्य और पाप के संस्कार अथवा वैर के संस्कार कितने ही जन्म तक चलते चले जाते हैं।

(6) वज्रनाभि चक्रवर्ती—पट्टरानी विजया का राजमहल है—

उषाकाल की लालिमा पूर्व दिशा में खिलने वाली है। पता नहीं क्यों? नक्षत्र और तारागण यत्र-तत्र पलायमान होते चले जा रहे हैं। शायद मालूम होता है कि पक्षियों के कलरव, भेरी नाद के द्वारा अपने स्वामी चन्द्रमा के प्रतिपक्षी भास्कर के उदित होने की सूचना पाकर ही वे भय से विलीन हो रहे हैं क्योंकि जब स्वामी स्वयं ही भय से निस्तेज हो रहा है, तब प्रजा का कहाँ ठिकाना रहेगा?

भवन में चारों तरफ रंग-बिरंगे रत्न जड़े हुए हैं, जो कमरे के अंदर भी इन्द्रधनुष की कल्पना प्रगट कर रहे हैं। सिरहाने पलंग में लगी हुई पद्मराण मणि तो मध्यरात्रि में भी अपनी स्वर्णिम आभा से सूर्य के प्रकाश को फैला रही थी पुनः अब मानों सूर्यदेव के प्रभाव को न फैलने देने के कारण ही अपनी किरणों का तेज बिखेर रही है।

सखियाँ प्रभाती गा रही हैं, वीणा की मधुर ध्वनि के साथ-साथ ही मधुर वाणी से प्रभु का गुण स्तवन करते हुए रानी विजया देवी को निद्रा देवी की गोद से अलग करने का साहस कर रही हैं।.....

''श्रीमन्नतामरकिरीटमणि प्रभाभि-रालीढ पादयुगदुर्द्धर कर्मदूर!
श्रीनाभिनन्दनजिनाजितसंभवाख्य! त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं तव सुप्रभातं।।''

विजया देवी चंद्रमा की चाँदनी के समान धवल, अतिशय स्निग्ध, कोमल और स्फटिक मणि के समान स्वच्छ बारीक चादर को अपने ऊपर से हटाती हैं और महामंत्र का स्मरण करते हुए उठकर, पूर्व दिशा की ओर मुख करके, कुछ क्षण ध्यान मुद्रा में बैठ जाती हैं। कायोत्सर्ग करके जिनदेव की स्तुति पढ़कर, अपनी सखियों की तरफ प्रसन्न मुद्रा से अवलोकन करती हैं।.....

प्रभातकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर महारानी सखियों के साथ राजसभा में प्रवेश करके महाराज वज्रवीर्य नरेन्द्र का यथायोग्य अभिवादन करती हैं और महाराज के द्वारा निर्दिष्ट आसन पर बैठ जाती हैं और निवेदन करती हैं.....।

''देव! आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने कुछ सुंदर स्वप्न देखे हैं। मेरी आन्तरिक प्रसन्नता का यही कारण है, मुझे कौतुक हो रहा है कि इन उत्तम स्वप्नों का क्या फल है? हे आर्य! कृपा कर अपने मुखचन्द्र की वचन किरणों से उनका फल स्पष्ट बताकर मेरे हर्ष समुद्र को वृद्धिंगत कीजिये।''

''कहिये देवी! उन स्वप्नों को कहिये?''

''पहले सुदर्शन मेरु को देखा है, पुनः सूर्य देखा है, पुनः चंद्रमा देखा है, अनन्तर देवविमान देखा है और बाद में बहुत ही विशाल सुन्दर जल से परिपूर्ण भरित सरोवर देखा है, ऐसे ये पाँच स्वप्न देखे हैं।''

राजा ने क्षण भर मन में कुछ सोचा। अनन्तर अपने दाँतों की किरणों से अमृत को झराते हुए ही हँसते हुए बोले-

''प्रिये! तुम अतिशय पुण्यशालिनी हो। ये स्वप्न यह बात स्पष्ट कह रहे हैं कि तुम चक्रवर्ती पुत्ररत्न को जन्म दोगी।''

इतना शब्द सुनते ही रानी का सारा शरीर रोमांच से पुलकित हो उठा। उन्हें ऐसा आभास हुआ कि मानों साक्षात् ऐसे पुत्र को प्राप्त ही कर लिया है।

नव महीने व्यतीत होने के बाद एक दिन सभा में एक दासी पहुँचकर पुत्र के जन्मोत्सव का उत्तम समाचार सुनाती है।

सभा में हर्ष की लहर दौड़ जाती है। महाराज उस सूचना देने वाली महिला को रत्नहार, वस्त्र, आभूषण, धन आदि देकर उसे सदा के लिए धनी और सुखी बना देते हैं।

जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में पद्म देश है, उसके अश्वपुर नगर में सर्वत्र हर्ष का ही वातावरण बन जाता है, शहर में चारों तरफ वन्दनवार, तोरण बाँधे जा रहे हैं। सर्वत्र बाजे बज रहे हैं, खुशियाँ मनाई जा रही हैं। राजा ने उस समय इतना दान बाँटा कि सभी जन तृप्त हो गये, भण्डार खुला है, दातार खड़े हैं किंतु अब कोई याचक आ ही नहीं रहा है।

मालूम होता है कि चक्रवर्ती वज्रनाभि ने आते ही शहर की दरिद्रता को कूच करा दिया है। जिनमंदिरों में जिनेन्द्रदेव का पूजा महोत्सव मनाया जा रहा है।

शिशु वज्रनाभि अच्युत स्वर्ग के वैभव को छोड़कर यहाँ आये हैं, इसलिए लक्ष्मी को वियोग सहन नहीं होने से ही मानों वह यहाँ भी आकर उनके चरण कमलों में निवास करने लगी है। चौंसठ लक्षणों से लक्षित स्वर्णाभ शरीर सब जन-जन को हरण कर रहा है।

.....युवावस्था में चक्ररत्न पैदा हुआ है, सुनकर वज्रनाभि नरेन्द्र ने विधिवत् जिनेन्द्रदेव की पूजा करके चक्ररत्न की पूजा की, पुनः दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया और कुछ काल में छहों खंड पृथ्वी को जीतकर पूर्ण विजयश्री का वरण करके वापस नगरी में आ गये।

सम्राट चक्रवर्ती वज्रनाभि महाराज षट्खंड पृथ्वी पर एकछत्र शासन कर रहे हैं।

चक्रवर्ती का वैभव—ऐरावत हाथी के समान चौरासी लाख हाथी हैं, वायु के समान वेगशाली रत्नों से निर्मित चौरासी लाख रथ हैं, पृथ्वी की तरह आकाश में भी गमन करने वाले अठारह करोड़ उत्तम घोड़े हैं, योद्धाओं को मर्दन करने वाले ऐसे चौरासी करोड़ पदाति (पियादे) हैं। स्वयं चक्रवर्ती का शरीर वज्रमय (वज्रवृषभनाराच संहनन वाला) है, उनका संस्थान समचतुरस्र है, छह खंड के सभी राजाओं में जितना कुछ बल होता है, उन सबसे अधिक बल उनके एक शरीर में है, उनके चक्ररत्न के प्रभाव से छह खंड के सभी राजा उनकी आज्ञा को सिर से धारण करते हैं, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उनके चरणों में नत हैं।

छ्यानवे हजार रानियाँ हैं, जिनमें से बत्तीस हजार रानियाँ आर्यखंड की हैं, बत्तीस हजार रानियाँ विद्याधरों की कन्यायें हैं और बत्तीस हजार रानियाँ म्लेच्छ खंड में जन्मे राजाओं की हैं। ये सब अप्सराओं के समान सुन्दर हैं। बत्तीस हजार नाट्यशालायें हैं, जिनमें हमेशा गीत, नृत्य, वाद्य आदि चलते रहते हैं। स्वर्गपुरी के समान बहत्तर हजार नगर हैं, नन्दनवन जैसे बगीचों से शोभायमान छ्यानवे करोड़ गाँव हैं, निन्यानवे हजार द्रोणमुख हैं, जो कि समुद्र के समीपवर्ती प्रदेश हैं, वे धन-धान्य से अतिशय समृद्ध हैं। अड़तालीस हजार पत्तन हैं, वे रत्नों की खानि होने से रत्नाकर के समान हैं। सोलह हजार खेट हैं, ये कोट, अटारी, खाई और परकोटों से शोभायमान हैं। समुद्र के बीच में होने वाले और कुभोगभूमिज मनुष्यों से भरे छप्पन अन्तरद्वीप हैं। जिनके चारों ओर खाई है, ऐसे चौदह हजार संवाह अर्थात् पर्वतों पर बसने वाले शहर हैं।

भोजनशाला में चावल पकाने के लिए एक करोड़ बड़े-बड़े हंडे हैं, जिनमें बीज बोने की नली लगी हुई है ऐसे एक लाख करोड़ हल हैं, तीन करोड़ गौशालायें हैं, जहाँ रत्नों के व्यापार चलते हैं ऐसे सात सौ कुक्षिवास हैं, अट्ठाईस हजार गहन वन हैं जो निर्जन देश और ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के विभागों से बंटे हुए हैं। अठारह हजार आर्यखंड के म्लेच्छ राजा हैं।

नव निधियाँ हैं जिनके काल, महाकाल, नैसर्प, पांडुक, पद्म, माणव, पिंगल, शंख और सर्वरत्न ये नाम हैं।

काल निधि से काव्य, कोश, अलंकार, व्याकरण आदि शास्त्र और वीणा, बांसुरी, नगाड़े आदि मिलते रहते हैं। महाकाल निधि से असि, मसि, कृषि आदि छह कर्मों के साधन, ऐसे समस्त पदार्थ और संपदाएँ निरंतर उत्पन्न होती रहती हैं।

नैसर्प निधि शय्या, आसन, मकान आदि देती है। पांडुक निधि समस्त धान्य और छहों रसों को उत्पन्न करती है। पद्मनिधि रेशमी, सूती आदि वस्त्र प्रदान करती है। शंखनिधि सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करने वाले सुवर्ण को देती है। सर्वरत्ननिधि महानील, इन्द्रनील, पद्मराग, वैडूर्य, स्फटिक आदि अनेक प्रकार के रत्नों और मणियों को देती है।

इन नौ निधियों के सिवाय चौदह रत्न हैं जिनमें सात सजीव और सात निर्जीव हैं। ये सब रत्न पृथ्वी की रक्षा और विशाल ऐश्वर्य और उपयोग के साधन हैं। चक्र, छत्र, दंड, खड्ग, मणि, चर्म और कांकिणी ये सात निर्जीव रत्न हैं और सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, तक्ष (सिलावट) और पुरोहित ये सात सजीव रत्न हैं।

सम्राट चक्रवर्ती ने सुदर्शन नामक चक्ररत्न से छहों खंड को जीत लिया है। सूर्यप्रभ नाम का छत्र राजसभा में जगमग ज्योति फैलाता हुआ सूर्य की प्रभा को लज्जित कर देता है। दण्डरत्न से विजयार्ध पर्वत की गुफा का द्वार खोला है।

सौनन्दक तलवार को देखकर वैरीजन कम्पित होकर चक्रवर्ती की शरण में आ गये हैं। मणिरत्न (चूड़ामणि) अंधकार को दूर कर देता है।

धर्मरत्न से मेघकृत जल के उपद्रव से सेना की रक्षा होती है-कांकिणी रत्न से गुफा में सूर्य-चंद्र आकार बनाकर प्रकाश फैलाया जाता है। सेनापति रत्न दिग्विजय में सभी योद्धाओं से अजेय रहता है। कामवृष्टि नामक गृहपति रत्न घर के सारे काम-काज संभाल लेता है। विजयगिरि नाम का ऐरावत सदृश उत्तम हाथी राजा का वाहन बनता है। पवनंजय नाम का घोड़ा स्थल के समान समुद्र में भी दौड़ लगाता है। सुभद्रा नाम की स्त्रीरत्न चक्रवर्ती के भोग सुख का साधन है जो कि अपने हाथ की शक्ति से वज्र को भी चूर कर सकती है। भद्रमुख नामक तक्ष रत्न स्थान-स्थान पर सुन्दर महलों का निर्माण करता है और बुद्धिसागर नाम का पुरोहित रत्न सभी निमित्तादि विद्या में प्रवीण रहता है। सभी धार्मिक कार्य उसी के अधीन रहते हैं।

चक्रवर्ती के रत्नों के साथ नवनिधि, पट्टरानियाँ, नगर, शय्या, आसन, सेना, नाट्यशाला, भाजन, भोजन और सवारी ये दस प्रकार के भोगोपभोग के साधन रहते हैं।

सोलह हजार गणबद्ध जाति के व्यंतर देव हाथ में तलवार लेकर निधिरत्न और चक्रवर्ती की रक्षा करने में नियुक्त रहते हैं।

चक्रवर्ती के महल को घेरकर क्षितिसार नाम का प्रसिद्ध कोट है। रत्नों के तोरणों से सुशोभित 'सर्वतोभद्र' नामक नगर का प्रमुख फाटक है। बड़े-बड़े डेरे खड़े करने के लिए नंद्यावर्त स्थान है। जिसमें सब ऋतुओं के सुख मिलें, ऐसा 'वैजयंत' नाम का महल है। दिक्स्वस्तिका नाम की सभाभूमि है। टहलते समय हाथ में लेने के लिए मणियों से निर्मित 'सुविधि' नाम की छड़ी है। सब दिशाओं के अवलोकन के लिए सबसे ऊँचा 'गिरिकूटक' नाम का राजमहल है। 'वर्द्धमान' नाम की नृत्यशाला है, जहाँ चक्रवर्ती नृत्य का अवलोकन करते हैं। 'धर्मांत' नाम का बड़ा भारी 'धारागृह' है (जिसमें सहस्रों जलयंत्र अर्थात् फव्वारे लगे हुए हैं) जो कि गर्मी के दिनों का निवास गृह है। वर्षा ऋतु के लिए 'गृहकूटक' नाम का राजभवन है। चूना से सफेद हुआ ऐसा 'पुष्करावती' नाम का चाँदी का महल है। सम्राट के भंडार का नाम 'कुबेरकांत' है जो कभी खाली नहीं होता है। 'वसुधारक' नाम का अटूट कोठार है। 'जीमूत' नाम का सुन्दर 'स्नानघर' है।

चक्रवर्ती वज्रनाभि के 'अवतंसिका' नाम की अत्यन्त प्रकाशमान रत्नों की माला है। बहुत ही मनोहर कपड़े का बना हुआ ऐसा 'देवरम्य' नाम का तंबू है। जिसके पाये रत्नमयी हैं, सिंह के आकार के हैं, ऐसी 'सिंहवाहिनी' नाम की शय्या है। 'अनन्तर' नाम का सबसे श्रेष्ठ सिंहासन है जो कि लोकोत्तर होने से अनुत्तर ऐसे अपने नाम को सार्थक कर रहा है। देवों द्वारा दिये गये 'अनुपमा' नाम के चामर बहुत ही सुंदर हैं कि जिनकी उपमा अन्य से नहीं दी जा सकती है। 'सूर्यप्रभ' नाम का सुंदर छत्र है। 'विद्युत्प्रभ' नाम के मणिकुंडल बिजली की कांति को भी जीतने वाले हैं। रत्नों की किरणों से व्याप्त 'विषमोचिका' नाम की खड़ाऊँ है जो कि चक्रवर्ती के सिवाय अन्य किसी के पैर का स्पर्श होते ही विष को छोड़ने लगती है। 'अभेद्य' नाम का कवच है जो कि महायुद्ध में शत्रुओं के तीक्ष्ण बाणों से भी टूट नहीं सकता। विजयलक्ष्मी के भार को धारण करने वाला 'अजितंजय' नाम का रथ है। 'बज्रकांड' नाम का धनुष है और 'अमोघ' नाम के सफल बाण हैं। शत्रु को नाश करने वाली 'बज्रतुंडा' नाम की प्रचंड शक्ति है। 'सिंहाटक' नाम का भाला है जो सिंह के नखों से भी अधिक तीक्ष्ण है। 'लोहवाहिनी' नाम की छुरी है जिसकी मूठ रत्नों से निर्मित है। 'मनोवेग' नाम का कणव जाति का एक विशेष शस्त्र है। 'सौनंदक' नाम की तलवार है। 'भूतमुख' नाम का खेट जाति का हथियार है।

उस चक्रवर्ती के 'आनंदिनी' नाम की बारह भेरी हैं जो अपनी आवाज को बारह योजन तक फैलाकर बजा करती हैं। 'विजयघोष' नाम के बारह नगाड़े हैं जिनकी आवाज लोग आनंद के साथ सुना करते हैं। 'गंभीरावर्त' नाम के चौबीस शंख हैं जो कि समुद्र से उत्पन्न हुए हैं। उन सकल सम्राट् के 'वीरांगद' नाम के रत्ननिर्मित कड़े हैं जो हाथ की कलाई को सुशोभित करते है। चक्रवर्ती के 'महाकल्याण' नाम का दिव्य भोजन है तथा अत्यन्त रुचिकर-स्वादिष्ट-सुगंधित,

जिसको अन्य कोई पचा नहीं सकता है, ऐसा 'अमृतगर्भ' नाम का 'खाद्य' पदार्थ है जिसका स्वाद बहुत मनोहर है, मसाले वगैरह से जिनका संस्कार किया गया है। 'अमृतकल्प' नामक 'स्वाद्य' पदार्थ है तथा रसायन के समान सुखदायी रस से भरी हुई अमृत नाम की दिव्य पीने की चीजें हैं। इस चक्रवर्ती के पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के ऐसे उत्तम-उत्तम ये फल हैं जो अन्य किसी के भोगोपभोग में नहीं आ सकते हैं और संसार में अद्वितीय हैं। वायु के झकोरे से उड़ते हुए जिनके अग्रभाग आकाशरूपी आँगन को भी बुहार कर साफ कर रहे हैं, ऐसी पताकायें उस 'वज्रनाभि' राजा के अड़तालीस करोड़ हैं।

अहो! पुण्य के बिना यह विपुल वैभव कैसे मिल सकता है? पुण्य के बिना सब दिशाओं को जीतने वाली यह जयश्री और देवताओं के द्वारा भी नमस्कार करने वाला ऐसा प्रताप कहाँ मिल सकता है?

वज्रनाभि चक्रेश्वर इतने वैभव को प्राप्त करके भी धर्म को नहीं भूले हैं, प्रत्युत् अधिक-अधिक रूप से प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव की पूजन करते हैं। निर्ग्रंथ गुरुओं को, अन्य-अन्य त्यागियों को आहार आदि दान देते हैं। निरन्तर शील का पालन करते हुए समय-समय पर उपवास भी करते हैं।

शहर के बाहर बगीचा है। बिना ऋतु के आम्र के फलों से आम्र वृक्ष झुक रहे हैं। अशोक, सप्तच्छद, चंपक आदि वृक्षों में नई-नई कोपलें निकली हुई हैं। बेला, चमेली, गुलाब आदि पुष्पों की सुगन्धि से सारा उद्यान सुरभित हो रहा है। चारों तरफ की लताएँ फूलों को बरसा-बरसाकर प्रसन्नता का अनुभव कर रही हैं। और, यह क्या? सर्प, नेवला, हरिण-व्याघ्र, वन हस्ती-शेर, चीता, भेड़िया, गौ, महिष आदि वन्य जन्तुगण बड़े प्रेम से एक साथ ही विचरण कर रहे हैं। यह देखो! गाय का बछड़ा शेरनी का दूध पी रहा है। इधर से शिकारी निकले, किंतु उनके बाण विफल जा रहे हैं और अन्य प्राणी विश्वास के साथ शिकारियों के सामने ही निर्भीक होकर खड़े हैं।

चक्रवर्ती महाराज अपने परिवारजनों से और पुरजनों से घिरे हुए उद्यान की तरफ बढ़ते ही आ रहे हैं। कुछ दूर एक पवित्र स्फटिक पाषाण की शिला पर एक महामुनि तिष्ठे हैं। चक्रवर्ती महाराज मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें बार-बार नमस्कार करते हैं, पूजन करते हैं और महामुनीन्द्र के गुणों का कीर्तन करते हुए स्तुति करते हैं।

पुनः चरणों में नत होकर निकट में बैठ जाते हैं और प्रार्थना करते हैं–

"प्रभो! हम जैसे संसारी प्राणियों के उद्धार हेतु धर्मोपदेशरूपी अमृत की वर्षा कीजिये।" मुनिराज ने उपदेश दिया–"हे राजन्! यह चैतन्य आत्मा अनन्त शक्तिमान् होते हुए भी अचेतन पुद्गल के वश में हो रहा है।"

गुरु के उपदेश को सुनकर राजा वज्रनाभि पंचेन्द्रियों के विषयों से विरक्त हो गये। उस समय उन्हें यह साम्राज्य-लक्ष्मी और स्त्री, पुत्र, मित्रादि, सरस पदार्थ नीरस भासने लगे। वे सोचने लगे–"मैंने चक्रीपद को प्राप्त करके इतने काल तक इन्द्रिय भोगों का अनुभव किया है किन्तु आज तक तृप्ति नहीं हुई है। इन भोगों से तृष्णा वृद्धिंगत ही होती है, न कि शांत। अतः इन क्षणिक सुखों का त्यागकर शाश्वत सुख को प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।" राजाधिराज सम्राट् ने अपने सुयोग्य पुत्र को राज्यभार सौंपकर आप स्वयं दीक्षा लक्ष्मी को स्वीकार कर लिया। अतुल छह खंड की विभूति को पुराने तिनके के सदृश छोड़ दिया और निर्ग्रंथ दिगम्बर महामुनि बन गये।

शत्रु-मित्र, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, स्तुति-निंदा, कनक-काँच और महल-मशान में परम समभाव को धारण करने वाले वे वज्रनाभि मुनिराज दुर्द्धर तपश्चरण करते हुए पृथ्वीतल पर विहार कर रहे थे। किसी समय ये मुनिराज वन में आतापन योग से विराजमान थे।

(7) मध्यम ग्रैवेयक में अहमिंद्र पद–उन्हें देखते ही क्रूरकर्मा भिल्लराज अत्यन्त कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके शरीर का भेदन करने लगा और कायरजनों से असहनीय ऐसा भयंकर उपसर्ग करने लगा। वे मुनिराज शरीर से पूर्णतया निस्पृह होकर ज्ञान-दर्शन स्वरूप आत्मा का ध्यान कर रहे हैं। आत्मा के स्वभाव से ही उत्पन्न सहज आत्मानुभूति से उपसर्ग के दुःखों का उन्हें अनुभव ही नहीं आ रहा है। यदि वे स्वात्म तत्त्व के ध्यानसे किंचित् नीचे आते हैं तो चतुर्विध आराधना के स्मरण में अपने उपयोग को स्थिर करते हुए धर्मध्यान में एकतान हो जाते हैं।इस नश्वर शरीर से चैतन्य आत्मा का प्रयाण

हो जाता है और वह मध्यम ग्रैवेयक के मध्यम विमान में श्रेष्ठ अहमिंद्र हो जाता है।वहाँ सत्ताईस सागर की आयु तक दिव्य सुखों का अनुभव करता है।

इधर कुछ दिन बाद वह भील रौद्रध्यानपूर्वक शरीर को छोड़कर मुनि हत्या के पाप से सातवें नरक में चला गया। वहाँ के कष्टों का बखान कौन कर सकता है? जो भोगता है वही जानता है या भगवान सर्वज्ञदेव जान सकते हैं। उस अन्धकूपमय नरकवास में उसने औंधे मुख जन्म लिया और जन्म लेते ही भूमि पर धड़ाम से गिरा, भूमि का स्पर्श होते ही जैसे हजारों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो ऐसी भयंकर वेदना हुई, पुनः वह नारकी पचास योजन तक ऊपर उछल पड़ा और पुनः गिर पड़ा जैसे तपे हुए तवे पर तिलों को डालते ही वे पुट-पुट करते हुए उछलने लगते हैं, वैसे ही नरक धरा में नारकी जन्म लेते ही भयंकर वेदना से उछलने लगते हैं। वह नारकी भी छिन्न-भिन्न शरीर होता हुआ अत्यन्त दुःखी और भयभीत उसी धरा पर लोट-पोट कर बिलबिलाने लगा और कहाँ जा सकता था? दशों दिशाओं को देखता हुआ चकितचित्त हो रोने लगता है–

"हाय! हाय! मैं यहाँ कहाँ आ गया? यह कौन स्थान है? मुझे यहाँ कौन लाया?'

इत्यादि सोचते ही उसे कुअवधिज्ञान प्रगट हो गया। जिससे सारी बातें जान लीं।

"अरे! अरे! मैं नरक भूमि में आ पड़ा हूँ! अब मेरे लिए यहाँ पर शरण कौन है? अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?

ऐसे विलाप करता हुआ वह पश्चात्ताप की दावानल अग्नि में जलने लगा। "हे प्रभो! मैंने मनुष्य पर्याय पाकर भी अधम से अधम पाप किये हैं, जिससे कि इस अनन्त दुःखमयी नरक पृथ्वी को प्राप्त हुआ हूँ। मैंने मद्य, माँस आदि अपवित्र अनन्त जीवों के कलेवरस्वरूप ऐसे पदार्थों का भक्षण किया है। तमाम पशु-पक्षियें को बिना अपराध के मार-मार गिराया है। वन में बिना कारण ही अग्नि लगाकर असंख्य जीव भस्म किये हैं।

इस प्रकार से वह नारकी अपने पूर्वकृत पापों का स्मरण कर रहा है कि इसी बीच नये नारकी को देखकर तमाम नारकी दौड़ पड़े और नेत्रों से अँगारे बरसाते हुए सभी क्रूरकर्मा नारकी उसे मारने लगते हैं।

कोई नारकी आप स्वयं भाले का रूप लेकर, कोई तलवार बनकर, कोई मुग्दर बनकर उसे मारने लगे। अनेकों प्रकार के शस्त्ररूप बन-बनकर वे उस नारकी के तिल-तिल बराबर खंड करने लगे। हाय! देखो! फिर भी शरीर के खंड-खंड होने पर भी मृत्यु नहीं है प्रत्युत् वे सब टुकड़े तत्क्षण ही पारे के समान मिलकर एक हो जाते हैं और वह बेचारा नारकी वेदना से चीखता-चिल्लाता ही रहता है। वे नारकी परस्पर में एक-दूसरे को दुःख ही दुःख देते रहते हैं। कोई कोल्हू में किसी को डालकर पेल रहे हैं, कोई चक्की में पीस रहे हैं, कोई तपे हुए तेल के कढ़ाव में पैर पकड़कर उठाकर पटक देते हैं, कोई अग्नि में झोंक देते हैं, कोई शूली पर आरोहण करा देते हैं, कोई पैर काटते हैं, कोई मर्म स्थान विदार देते हैं, कोई हड्डियों का चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं, कोई ऊपर से खाल उतार लेते हैं और कोई करवत से चीर-चीर कर अलग-अलग दो टुकड़े बना देते हैं, कोई भी किसी का पेट फाड़कर अन्दर की अँतड़ियाँ निकाल लेते हैं, कोई दोनों नेत्र निकाल लेते हैं, कोई खंभे से जकड़कर, बाँधकर अनेकों शस्त्रों से मारते हैं। कोई कहते हैं–

"अरे पापी! तूने मदिरा पी थी, अब पुनः पी ले। "ऐसे कठोर वचन बोल-बोल कर पूर्व पाप की याद दिलाते हुए उसे गरम-गरम तपाया हुआ ताँबा पिला देते हैं जिससे उसका सारा शरीर गल जाता है। सभी अन्दर की आँतें बाहर निकल पड़ती हैं। कोई उसी के माँस को काट-काटकर उसे ही खिलाते हैं और कहते हैं– "अरे! तुझे तो माँस बहुत अच्छा लगता था।" कोई तपाये हुए लोहे के खंभे से चिपका देते हैं और उसे परस्त्री के साथ रमण करने की याद दिलाते हैं।

इस प्रकार से उस नरक भूमि में एक पल को भी चैन नहीं है। यदि तीन लोक का सभी अन्न भी खा जायें तो भी भूख शांत नहीं हो सकती है किन्तु खाने को वहाँ एक कण भी नसीब नहीं होता है। सागर के समस्त जल को पीने के बाद भी प्यास बुझ नहीं सकती, फिर भी वहाँ पर एक बूँद पानी नहीं है। वहाँ एक लाख योजन प्रमाण इतने बड़े लोहे के गोले को पिघलाकर डाल दो, किन्तु उसी क्षण वह जम जाता है। सातवें नरक में इतनी भयंकर ठण्डी है। वहाँ के

अपार-दुःखों की कहानी यदि करोड़ों जिह्वा करके भी कोई तमाम समय वर्णन करता ही रहे तो वह पूरी नहीं हो सकती है। जैसे परवश वेदना ये नारकी सहन करते हैं, उसका अनन्तवाँ भाग भी यदि स्ववश होकर सहन कर लें, तो संसार समुद्र को ही पार कर जावें।

भील का जीव वहाँ पर सत्ताईस सागर प्रमाण मध्यम आयु पर्यंत इन दुःखों का अनुभव करता रहा है।

"सागर किसे कहते हैं?"

"दो हजार कोश प्रमाण एक लम्बा-चौड़ा और गहरा गड्ढा कल्पना में बनाइए। उसे सात दिन के अन्दर जन्में हुए मेड़े के बालों से भर दीजिए। ध्यान रखिये, इन बालों के इतने छोटे-छोटे खंड कर दिये जायें जिनका फिर वापस खंड ही न हो सके, ऐसे रोम-खंडों से भरे हुए उस गड्ढे की खूब ऊपर से कुटाई कर दीजिए पुनः उनमें से एक-एक-रोम को सौ-सौ बरस में निकालिए। जब वह गर्त खाली हो जाये, तब एक 'व्यवहार पल्य' होता है। इसमें जितना समय लगा है, उसे असंख्यात करोड़ वर्षों के समयों से गुणा कर दीजिए। इसमें जितने समय जावेंगे, वह 'उद्धार पल्य' कहलाता है। अनन्तर सौ वर्ष के जितने समय हैं, उतने समयों से उद्धार पल्य के रोमों को गुणित करने से जितने समय होवें, वह 'अद्धापल्य' हो जाता है। इन दश कोड़ाकोड़ी[1] 'अद्धापल्यों' का एक सागर होता है। ऐसे सत्ताईस सागर प्रमाण काल तक यह नारकी नरक के दुःखों को भोगता रहा है।

(8) आनंद महाराज–

अयोध्यापति आनंदकुमार महाराज की राज्यसभा–

राज्यसभा में महामंडलीक पद को विभूषित करते हुए महाराज आनन्दकुमार रत्नखचित स्वर्ण सिंहासन पर आरूढ़ हैं। वारांगनायें चमर ढोर रही हैं। महाराज आनन्दकुमार का वैभव विशाल है। आठ हजार मुकुटबद्ध राजा उनकी आज्ञा को शिरसा वहन करते हैं। दशों दिशाओं में महाराज के गुणों की उज्ज्वल कीर्ति व्याप्त हो रही है। अयोध्याधिपति राजा वज्रबाहु और उनकी रानी प्रभाकरी माता धन्य हैं, जिन्होंने ऐसे कुल दीपक को जन्म दिया है।

स्वामिहित नाम के एक विवेकशील मंत्री ने कहा–"महाराज! इस समय ऋतुओं का राजा बसन्त आ गया है। सर्वत्र सभी जन कुछ न कुछ महोत्सव कर रहे हैं। अभी फाल्गुन सुदी अष्टमी से पूर्णिमापर्यंत आष्टान्हिक महापर्व आ रहा है। इस अवसर में नंदीश्वर व्रत किया जाता है और महामहिम पूजा का अनुष्ठान भी होता है। हे प्रभो! जिनेन्द्रदेव की पूजा संपूर्ण पापों का नाश करने वाली है' पुनः पर्व के संयोग से वह पूजा अतिशय पुण्य को प्रदान करने वाली हो जाया करती है। जिनपूजा के समान इस जगत् में और कोई उत्तम कार्य न हुआ है और न हो सकता है। जिनेन्द्रदेव की पूजा की भावना ही सभी दुःखों को दूर करने का एक अमोघ उपाय है।"

मंत्री के उपदेश से मंडलेश्वर राजा आनन्दकुमार ने अतुल वैभव के साथ नन्दीश्वर पूजन का उपक्रम किया। विधान कार्य में अगणित लोगों ने भाग लिया था। उस पूजा को देखने के लिए वहाँ पर विपुलमति नाम के मुनिराज पधारे। आनंद राजा ने उनकी बड़ी विनय से वंदना की तथा उनके मुखचंद्र से धर्मामृत का पान किया। अनन्तर राजा ने कहा–

"भगवन् ! मुझे कुछ संशय हो रहा है सो कृपया आप उसका निवारण कीजिए। गुरुदेव! ये जिनेन्द्रदेव की प्रतिमायें तो धातु-पाषाण आदि से निर्मित हैं अतः अचेतन हैं पुनः पूजन करने वाले सचेतन को ये पुण्य फल कैसे प्रदान कर सकती हैं? प्रभो! इनमें किसी का भला-बुरा करने की शक्ति कहाँ है?"

मुनिराज ने कहा–"राजन्! आपने समयोचित प्रश्न किया है, सुनिये! यद्यपि ये जिनप्रतिमायें अचेतन हैं और जिनेन्द्र मंदिर अचेतन हैं तथापि ये भव्य जीवों के लिए पुण्य बंध के ही कारण हैं। यथार्थ में पुण्य बंध परिणामों से होता है। जिनेन्द्र भगवान रागादि दोषों से रहित, शस्त्र, वस्त्र, स्त्री, पुत्रादि से रहित हैं। उनके मुख की वीतराग सौम्य छवि परिणामों की उज्ज्वलता में कारण है। जिनमंदिर और उनकी प्रतिमाओं के दर्शन करने वालों के परिणामों में जितनी निर्मलता

1. एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जो संख्या आती है वह कोड़ाकोड़ी कहलाती है।

और प्रकर्षता होती है, वैसी अन्य कारणों से नहीं हो सकती है। जैसे कल्पवृक्ष चिंतामणि आदि अचेतन होते हुए भी मनवांछित और मनचिंतित फल देने में समर्थ हैं, वैसे ही जिनप्रतिमायें भी संपूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ हैं।

प्रतिमारूप में वीतराग मुद्रा को देखकर जिनेन्द्रदेव का स्मरण होता है जिससे अनन्तगुणा पुण्यबंध हो जाता है। देखिये! मणि, मंत्र, औषधि आदि अचेतन पदार्थ भी विष अथवा रोगादि को नष्ट करते हुए देखे जाते हैं, वैसे ही जिनबिंब का दर्शन और पूजन भी समस्त पाप को भस्मसात् करने वाला है। अधिक क्या! जो मूढ़जन जिनप्रतिमाओं का दर्शन नहीं करते हैं या उनकी निंदा करते हैं, वे स्वयमेव अनन्त संसार सागर में डूब जाते हैं। जैसे राजा की मुद्रा (फोटो-चित्र) आदि का अपमान करने पर मनुष्य राजद्रोही माना जाता है और राजा द्वारा दण्ड को प्राप्त होता है, वैसे ही जिनमुद्रा से अंकित मूर्तियाँ साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के सदृश पूज्य मानी जाती हैं, उनका अपमान करने वाला व्यक्ति धर्मद्रोही, आत्मद्रोही होता हुआ कर्म की मार से अनन्त दुःखों को प्राप्त करता है।''

इस प्रकार से जिनप्रतिमा के दर्शन-पूजन का फल बतलाते हुए मुनिराज ने राजा के सामने तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन करना प्रारंभ किया, जिसमें सबसे प्रथम वे सूर्य के विमान में स्थित जिनमंदिर का वर्णन करने लगे, वे बोले-

''हे राजन! सूर्य का विमान 48/61 योजन का है। एक योजन में लगभग 4000 मील होते हैं अतः 48/61×4000=3147, 33/61 मील प्रमाण विस्तृत सूर्य का विमान होता है। यह पृथ्वी तल से 800 योजन अर्थात् 3200000 मील की ऊँचाई पर है, उसमें बारह हजार किरणें हैं जो कि अति उग्र और उष्ण हैं। यह विमान अर्ध गोलक के सदृश है अर्थात् जैसे गेंद या नारंगी को बीच से काटने पर जैसा आकार होता है, वैसा ही इन विमानों का आकार है।

सूर्य के विमान को आभियोग्य (वाहन) जाति के 16000 देव सतत खींचते रहते हैं। 4000 देव पूर्व दिशा में सिंह का आकार धारण करते हैं, 4000 देव दक्षिण में हाथी का आकार, 4000 देव पश्चिम में बैल का आकार एवं 4000 देव उत्तर में घोड़े का आकार धारण किये रहते हैं। सूर्य का विमान पृथ्वीकायिक चमकीली धातु से बना हुआ है जो कि अकृत्रिम है। इस सूर्य बिंब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नामकर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं तथा उसके मूल में उष्णता न होकर किरणों में ही उष्णता होती है। आकाश में सूर्य की 184 गलियाँ हैं। इनमें से सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं। चूँकि जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चंद्रमा होते हैं। एक मिनट में सूर्य की गति लगभग 447623 मील प्रमाण है।

सूर्य विमान में नीचे का गोल भाग तो हम आपको दिख रहा है तथा ऊपर के समतल भाग में चारों तरफ गोल तटवेदी (परकोटा) है, उसमें चारों दिशाओं में चार गोपुर– मुख्य फाटक हैं। इन विमान के बीचों-बीच में उत्तम वेदी सहित राजांगण है। उसके ठीक बीच में रत्नमय दिव्यकूट है। उस कूट पर वेदी एवं चार तोरण द्वारों से युक्त जिनमंदिर हैं। वे जिनमंदिर मोती व सुवर्ण मालाओं से रमणीय और उत्तम वज्रमय किवाड़ों से संयुक्त दिव्य चन्द्रोपकों से सुशोभित हैं । वे जिनभवन देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित, अष्ट महामंगल द्रव्यों से परिपूर्ण, वंदनमाला, चमर, क्षुद्र घंटिकाओं के समूह से शोभायमान हैं। उन जिनभवनों में स्थान-स्थान पर विविध प्रकार की क्रीड़ाशालाएँ बनी हुई हैं।

वे जिनभवन समुद्र के सदृश गंभीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग, पटह आदि विविध प्रकार के दिव्य वादित्रों से नित्य शब्दायमान रहते हैं। उन जिनभवनों में तीन छत्र, सिंहासन, भामंडल और चामरों से युक्त 108 जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। उन जिनेन्द्रदेव के भवन में श्रीदेवी व श्रुतदेवी यक्षी एवं सर्वाण्ह व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ भगवान के आजू-बाजू में शोभायमान होती हैं। सभी देवगण गाढ़ भक्ति से जल, चंदन, तंदुल, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से नित्य ही उनकी पूजा करते रहते हैं।

जो भव्य जीव इन जिनप्रतिमाओं की भक्ति भाव से पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं, वे संसार के समस्त अभ्युदयों को भोग कर परंपरा से निर्वाण सुख को अवश्य ही प्राप्त कर लेते हैं।

इस जिनभवन के चारों ओर समचतुष्कोण, लंबे और नाना प्रकार के सुंदर-सुंदर सूर्यदेव के भवन बने हुए हैं। कितने

ही भवन मरकत वर्ण के, कितने ही कुंद पुष्प के और कितने ही सुवर्ण सदृश बने हुए हैं। इन सूर्यभवनों में सिंहासन पर सूर्यदेव विराजमान होते हैं। सूर्य की मुख्य देवियाँ चार हैं– द्युतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा और अर्चिमालिनी। सूर्य की और भी बहुत सी देवियाँ हैं। इसी प्रकार से मुनिराज ने बहुत ही विस्तृत उपदेश दिया।

सूर्य विमान के जिनमंदिर की असाधारण विभूति को सुनकर, आनंद महाराज को बहुत ही श्रद्धा हो गयी। वह राजा उस समय से प्रतिदिन आदि और अंत समय में दोनों हाथ जोड़कर तथा मुकुट झुकाकर सूर्य के विमान में स्थित जिनप्रतिमाओं की स्तुति करने लगा और अपने प्रासाद की छत पर स्थित होकर, उन सूर्य विमान में स्थित जिनप्रतिमाओं को प्रतिदिन अर्घ चढ़ाकर पूजा करने लगा। इतना ही नहीं, उसने कारीगरों के द्वारा मणि और सुवर्ण का एक सूर्य विमान भी बनवाया और उसमें कांति से चकचकायमान सुंदर जिनमंदिर बनवाया। उसमें रत्नों की जिनप्रतिमाएँ विराजमान कराईं पुनः उसने शास्त्रोक्त विधि से भक्तिपूर्वक आष्टाह्निक पूजा की। चतुर्मुख, रथावर्त, सबसे बड़ी सर्वतोभद्र और याचकों को मुँहमाँगा दान देने वाली ऐसी 'कल्पवृक्ष' नाम की महापूजाएँ कीं।

इस प्रकार उन आनंद महाराज को सूर्य की पूजा करते देख उनकी प्रामाणिकता से देखा-देखी अन्य लोग भी स्वयं भक्तिपूर्वक सूर्य मंडल की स्तुति करने लगे। आचार्य कहते हैं कि 'इस लोकमें उसी समय से सूर्य की उपासना चल पड़ी है।[1]

इस तरह आनंद नरेश बहुत काल तक धर्माराधन, जिनपूजन, दान आदि करते हुए सुख से प्रजा का पालन करते रहे हैं।

आनंद नरेश देवेन्द्र के समान अपनी सभा में स्थित हैं। अकस्मात् दर्पण में मुख अवलोकन करते ही उन्हें अपने मस्तक पर एक धवल केश दिखाई दिया। राजा का मन कंपायमान हो उठा। तत्काल वे भोगों से और विशाल राज्य वैभव से उदास हो गये। उनका मोहकर्म एकदम मंद हो गया। वे सोचने लगे, अहो! बाल्य अवस्था व्यतीत हो गई, तरुणाई आई और अब वह भी विदा माँग रही है, जरादेवी (बुढ़ापा) ने अब मेरे इस शरीररूपी घर में प्रवेश कर लिया है। इस प्रकार से मरण समय नजदीक आ रहा है, वह देवी इस बात का सूचना पत्र लेकर ही आई है।

बालक देह कोंपल है, यौवन में वह पत्ते रूप हो जाता है, वृद्धावस्था पके हुए पीले पत्ते के सदृश है जो कि कालरूपी हवा के झकोरे से गिर जाता है। कोई जीव गर्भ में ही मर जाते हैं, कोई जन्मते ही शरीर छोड़ देते हैं, कोई बाल्यदशा धारण कर चले जाते हैं। कोई यौवन में नरकाया से वंचित हो जाते हैं। इस प्रकार से मरण के समय का कुछ भी नियत काल नहीं है परन्तु यह बात अवश्य ही निश्चित है कि जो जन्म लेता है वह मरता अवश्य है। पर्वत से पड़ती हुई नदी के समान क्षण-क्षण में आयु निकलती चली जा रही है। राग से अंधा हुआ मैं भोगों में मग्न हो रहा हूँ। हाय! हाय! बड़े दुःख की बात है कि मैंने इतना अमूल्य जीवन घर में व्यतीत कर दिया है। खैर! हुआ सो हुआ, गई सो गई। अभी हमें शीघ्र ही आत्महित के कार्य में लग जाना चाहिए। ऐसा सोचते ही राजा ने मंत्रियों से अपना अभिप्राय प्रगट कर दिया। सुयोग्य बड़े पुत्र को राज्य-भार सौंपकर आप सागरदत्त मुनिराज के समीप पहुँचे और उनसे प्रार्थना की–

"हे गुरुदेव! मैं अब इस संसार समुद्र से पार होने के लिए चारित्र रूपी जहाज पर बैठना चाहता हूँ, सो आप मेरे कर्णधार होइये और मुझे इस अपार संसार से शीघ्र पार पहुँचाइये।"

उस प्रार्थना को सुनकर तरणतारण महामुनि ने अनेकों राजाओं के साथ उन महामंडलेश्वर आनंद नरेश को दैगम्बरी दीक्षा दे दी। जिसमें अट्ठाईस मूलगुणों का पालन होता है।

5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियनिरोध, 6 आवश्यक और 7 शेष गुण ये 28 मूलगुण होते हैं।

संपूर्ण त्रस-स्थावर जीवों की विराधना का त्याग करना अहिंसा महाव्रत है। असत्य और अप्रशस्त वचन बोलने का सर्वथा त्याग करना सत्य महाव्रत है। किसी की वस्तु बिना दी हुई न ग्रहण करना अचौर्य महाव्रत है। स्त्रीमात्र का त्याग कर देना ब्रह्मचर्य महाव्रत है और वस्त्र मात्र भी परिग्रह का त्याग कर देना परिग्रह त्याग महाव्रत है। चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना ईर्यासमिति है। हित, मित, प्रिय वचन बोलना भाषा समिति, छ्यालीस दोष टालकर शुद्ध आहार लेना

1. तदाप्रभृति लोकेस्मिन् बभूवाकेपिसेवनम्। (उत्तरपुराण पृ. 73)

एषणासमिति, देख-शोधकर पुस्तक आदि धरना, उठाना आदाननिक्षेपण समिति और प्रासुक भूमि में मल-मूत्रादि विसर्जन करना उत्सर्ग समिति है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाँच इन्द्रियों परविजय प्राप्त करना पंचेन्द्रिय निरोध है।

साम्यभावपूर्वक त्रिकाल सामायिक करना सामायिक आवश्यक है चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करना स्तुति आवश्यक है, एक तीर्थंकर आदि की स्तुति करना वंदना है, लगे हुए दोषों को दूर करना प्रतिक्रमण है, आगामी दोषों का त्याग करना या आहार आदि का त्याग करना प्रत्याख्यान है और योग मुद्रा आदि से स्थिरचित्त होकर कायोत्सर्ग-ध्यानादि करना कायोत्सर्ग आवश्यक है। ये षट् आवश्यक हैं।

वस्त्रमात्र का त्याग कर दिगम्बर रहना, केशलोंच करना, स्नान नहीं करना, दंतधावन नहीं करना, भूमिशयन करना, एक बार भोजन करना और खड़े होकर आहार लेना ये सात शेष गुण हैं। ऐसे ये अट्ठ्ठाईस मूलगुण हैं।

आनंद मुनिराज महान् आनंद और उत्साह के साथ इन मूलगुणों का पालन करने लगे। बारह प्रकार के तपश्चरण में भी तत्पर थे और बाईस परीषहों को जीतते हुए उत्तरगुणों को भी धारण कर रहे थे। शुभ लेश्या के धारक उन मुनिराज ने चारों आराधनाओं की आराधना की थी। गुरु के पादमूल में बैठकर उन्होंने ग्यारह अंग तक श्रुत का अध्ययन किया। अनंतर तीर्थंकर नामकर्म के लिए कारणभूत ऐसी सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन किया।

सोलहकारण भावना

1. **दर्शन विशुद्धि** – पच्चीस मल दोष रहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करना।
2. **विनय सम्पन्नता** –देव, शास्त्र, गुरु तथा रत्नत्रय का विनय करना।
3. **शीलव्रतों में अनतिचार** –व्रतों और शीलों में अतिचार नहीं लगाना।
4. **अभीक्ष्णज्ञानोपयोग** –सदा ज्ञान के अभ्यास में लगे रहना।
5. **संवेग** –धर्म और धर्म के फल में अनुराग होना।
6. **शक्तितस्तप** –अपनी शक्ति को न छिपाकर अंतरंग-बहिरंग तप करना।
7. **शक्तितस्त्याग** –अपनी शक्ति के अनुसार आहार, औषधि, अभय और ज्ञान दान देना।
8. **साधुसमाधि** –साधुओं का उपसर्ग आदि दूर करना या समाधि सहित वीर मरण करना।
9. **वैय्यावृत्यकरण** –व्रती, त्यागी, साधर्मी की सेवा करना, वैय्यावृत्ति करना।
10. **अर्हद्भक्ति** –अरहंत भगवान की भक्ति करना।
11. **आचार्य भक्ति** –आचार्य की भक्ति करना।
12. **बहुश्रुत भक्ति** –उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति करना।
13. **प्रवचन भक्ति** –जिनवाणी की भक्ति करना।
14. **आवश्यक अपरिहाणि** –छह आवश्यक क्रियाओं का सावधानी से पालन करना।
15. **मार्गप्रभावना** –जैनधर्म का प्रभाव फैलाना।
16. **प्रवचन वात्सल्य** –साधर्मीजनों में अगाध प्रेम करना।

आनंद मुनिराज ने इन भावनाओं को भाते हुए सातिशय तीर्थंकर प्रकृति का बँध कर लिया।

तपश्चरण के बल से मुनिराज को अनेकों प्रकार की ऋद्धियाँ उत्पन्न हो गईं। वे योगिराज जिस वन में ध्यान लगाते हैं, उस वन में रहने वाले और आने वाले जीवों की सभी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं, सूखे सरोवरों के तट पर विचरण करते हैं, सभी ऋतु के फल-फूल एक साथ आ जाते हैं, जात विरोधी सिंह-हरिण, नकुल, मयूर, सर्पादि सभी जीव बड़े प्रेम से मिलकर विचरण करते हैं। ये महामुनि परम समतारस के आस्वादन में तत्पर हैं और अपनी ही शुद्ध आत्मा के अनुभव से उत्पन्न हुए वीतराग सुखामृत का पान करके तृप्त हो रहे हैं।

एक समय वे मुनिराज उसी क्षण में प्रायोपगमन संन्यास लेकर प्रतिमायोग से ध्यान में लीन हो गये। उसी समय

भयंकर गर्जना करता हुआ एक सिंह वहाँ आता है जो कि कमठचर पापी भील का जीव नरकों के भयंकर दुःखों को भोग कर आया है। वह इन मुनिराज को देखता है। संस्कारवश क्रोध कषाय भड़क उठती है। वह शीघ्र ही दहाड़ मारकर मुनिराज पर धावा बोल देता है और उनके कंठ को पकड़ लेता है। तीक्ष्ण नखों से शरीर का विदारण करता है और कठोर पैनी डाढ़ों से सारे बदन को छिन्न-भिन्न कर देता है। मुख में मांस पिंड का ग्रास भर-भर कर खाने लगता है।

इस पशुकृत उपसर्ग को वे साधुराज परम शांत भाव से सहन करते हैं, किंचित् मात्र भी उनके मन में शरीर के प्रति राग और शत्रु सिंह के प्रति द्वेष नहीं है। परम धीर-वीर तपोधन दुःसह वेदना को ना कुछ गिनते हुए अपने ज्ञानपुंज स्वरूप, अनंत गुणों के निधान आत्मा के चिंतन में अपना उपयोग लगा लेते हैं। अहा, हा! देखो तो सही, इस क्षमा भाव की महिमा को! जिसके प्रभाव से वे मुनिराज इस नश्वर भौतिक मल-मूत्र के पिंडस्वरूप देह को छोड़कर दिव्य वैक्रियक देह धारण कर लेते हैं। आनत नाम के तेरहवें स्वर्ग के प्राणत नामक विमान में इन्द्र हो जाते हैं।

(9) आनत स्वर्ग में इन्द्रपद—अहो! समभाव की कितनी महिमा है! जो कि इस जीव को स्वयं उन्नति के शिखर पर पहुँचा देती है। वहाँ के वैभव को देखकर वे आनंदचर इन्द्रराज धर्म और धर्म के फल में अतिशय प्रीति को प्राप्त होते हैं। जहाँ की पृथ्वी चंद्रकांत, मूँगा, मणि आदि से निर्मित है, जहाँ रात्रि-दिन का भेद नहीं है। रत्नों के उद्योत की जगमगाहट से सूर्य का तेज भी लज्जित हो जाता है। मणियों के कंगूरे जिन पर लगे हुए हैं, ऐसे कांचन के परकोटे से वेष्टित स्वर्गपुरी का धाम है। गहरी खाई जल से भरी हुई है फिर भी उसमें जलचर जीव नक्र, चक्र, मगर आदि कुछ भी नहीं हैं। ऊँचे-ऊँचे दरवाजे हैं। ऊँचे-ऊँचे तोरणों से मनोहर रत्नों के भवन हैं। वहाँ पर चंपक, मंदार, पारिजात, सप्तच्छद आदि नाना तरह के फूलों से भरे हुए कल्पवृक्ष मंद-मंद पवन से अपनी शाखाओं को हिला रहे हैं। छहों ऋतु की शोभा देव-देवियों के मन को बरबस ही हरण किया करती है। वहाँ पर ईति, भीति, चोरी, उपद्रव आदि संकट रंचमात्र भी नहीं हैं। ऐसी स्वर्गपुरी में वे इन्द्रदेव उपपाद शय्या से नवयौवन शरीर को प्राप्त करके, उठकर बैठ जाते हैं देव-देवियों के जयकारों से दिशायें मुखरित हो उठती हैं।

अपने दिव्य अवधि चक्षु के द्वारा सारी बातों को स्पष्ट जानकर वे इन्द्र मंगल स्नान आदि विधि करके सबसे प्रथम जिनेंद्रदेव की पूजा करते हैं। अनन्तर अपनी विभूति का, देवांगनाओं का अवलोकन करते हैं। उनके शरीर में मल-मूत्र, पसीना आदि नहीं है, न उनकी पलकें लगती हैं, न नख और केश ही बढ़ते हैं। बुढ़ापा, अकालमृत्यु और व्याधि वहाँ पर नहीं हैं। इन्द्रराज अपने परिवार देवों के साथ कभी नंदीश्वरद्वीप में पूजा रचाते हैं, तो कभी सुमेरु पर्वतों की वंदना के लिए चले जाते हैं, कभी सीमंधर आदि तीर्थंकर के समवसरण में दिव्यध्वनि के द्वारा दिव्य धर्मामृत का पान करते हैं, तो कभी ऋषि, मुनियों के दर्शन का लाभ लेते हैं। कभी नंदनवन में क्रीड़ा करते हैं, तो कभी सभा में बैठकर देव-देवांगनाओं को संतुष्ट करते हुए मनोविनोद करते हैं। कभी-कभी उन्हें धर्म का उपदेश देते हुए कृतार्थ हो जाते हैं। भावी तीर्थंकर वे देवेन्द्र इस अतुल वैभव को भोगते हुए भी उसमें आसक्त नहीं हो रहे हैं।

बीस सागर की उनकी आयु है। बीस हजार वर्ष बाद मानसिक अमृतमयी आहार है और बीस पक्ष (10 माह) बीत जाने पर वे उच्छ्वास लेते हैं। साढ़े तीन हाथ का उनका दिव्य शरीर है। इस प्रकार वे इन्द्रराज अपनी आयु प्रमाण दिव्य सुखों का अनुभव कर रहे हैं।

(10) भगवान पार्श्वनाथ—वाराणसी नगरी में महाराज अश्वसेन अपने सिंहासन पर स्थित हैं-वंदीगण (प्रशंसक लोग) महाराज के अगणित गुणों का बखान कर रहे हैं तथा समय-समय पर मंत्रीगण राज्य की सुव्यवस्था और प्रजा के सुख-वैभव का वर्णन करते हुए महाराज को प्रसन्न कर रहे हैं। इसी बीच सौधर्म स्वर्ग में अपनी सुधर्मा सभा में बैठे हुए सौधर्म इन्द्र ने अपने दिव्य अवधिलोचन से कुछ देखकर पुनः धनपति (कुबेर) को बुलाकर कहा—

"धनद! आनंद नरेश का जीव, जो कि यहाँ आनत स्वर्ग में इन्द्र पद के सुखों का अनुभोग कर रहा है, उसकी आयु छह मास की ही शेष रही है, वे तेईसवें अवतार हैं। इसलिए अब शीघ्र ही तुम बनारसनगरी में जाओ और त्रिभुवन-तिलक के

जनक बनने का अतिशय सौभाग्य प्राप्त करने वाले अश्वसेन महाराज के महल में अविरल रत्नों की वर्षा करना शुरू कर दो।"

'जो आज्ञा महाराज!' कहकर कुबेर हाथ जोड़कर इन्द्रराज को सिर से प्रणाम कर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर, वहाँ से सीधे बनारस नगरी में पहुँचता है और माता वामादेवी के आँगन में अनर्घ्य–अमूल्य रत्नों की वर्षा करना प्रारंभ कर देता है। उस समय ऐसा मालूम होता है कि मानों स्वर्गलोक की लक्ष्मी ही जिनमाता की सेवा के लिए उतरी हो। प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ प्रमाण रत्नों की मोटी धारा बरसती है, उसके साथ सुरभित कल्पवृक्ष के सुमन बरसते हैं, सुगन्धित गंधोदक बरसता है, देवों के दुंदुभि बाजे महासागर के समान गंभीर शब्द करते हुए जनता को आह्लादित करते हैं और देवों के द्वारा किये गये 'जय-जयकार' शब्द महापुण्य की महिमा को प्रगट करते हैं अर्थात् उस समय देवगण इन्द्र की आज्ञा से इन पंचाश्चर्यों को करते हैं।

कुछ दिन बाद एक दिन की शुभ रात्रि में महारानी वामादेवी माणिक्य जड़ित रत्नपलंग पर सोई हुई हैं। मणिमय दीपक अपनी आभा बिखेर रहा है। ऐसा लगता है मानो वह महारानी के तेज को प्राप्त करने के लिए उत्कंठा ही दिखला रहा हो, किन्तु अचेतन रत्न के तेज में जिन-जननी के उस अलौकिक तेज का एक अंश भी नहीं आ सकता था। पिछली रात्रि में माता ने जिन जननी के पद भार को धारण करते हुए ही उत्तम-उत्तम सोलह स्वप्न देखे। ऐरावत हाथी, शुभ्र बैल, सिंह, लक्ष्मी देवी, दो फूलमाला, उदित होता हुआ सूर्य, तारावलि से वेष्ठित पूर्ण चंद्रमा, जल में तैरती हुई मछलियों का युग्मकमल से ढँके पूर्ण स्वर्ण कलश, सरोवर, समुद्र, सिंहासन, देवविमान, धरणेन्द्र विमान, रत्नों की राशि और निर्धूम अग्नि ये सोलह स्वप्न थे।

पुनः सुखपूर्वक निद्रा को पूर्ण कर माता मांगलिक बाजों की ध्वनि के साथ जागृत होती हैं और अपनी प्राभातिक क्रिया से निवृत्त होकर राजसिंहासन पर आसीन अपने पतिदेव के पास पहुँचकर, नमस्कार करके उनके द्वारा उचित आदर को प्राप्त करके, अर्धासन पर बैठ जाती हैं और सामने देखे हुए स्वप्नों को निवेदित करके उनके फल की जिज्ञासा में प्रत्युत्तर की अपेक्षा करती हैं। उसी समय महाराज अश्वसेन अपने अवधिज्ञान के बल से चिंतन कर एक-एक स्वप्न के फल को पृथक्-पृथक् बतलाते हुए कहते हैं–

"देवी! आपके गर्भ में त्रैलोक्यपति तीर्थंकर का जीव अवतरित हो चुका है।आप जगत्पति पुत्ररत्न को प्राप्त करेंगी, जिसके पुण्य फल के निमित्त से ही तो रुचकपर्वत निवासिनी तथा कुलाचलवासिनीदेवियाँ आकर आपकी सेवा कर रही हैं।

वामादेवी अपने पतिदेव के मुखचन्द्र के वचनामृत से परम संतोष और हर्ष को प्राप्त होती हुई अपनी स्त्रीपर्याय को सार्थक समझती हैं। इधर तीर्थंकर के पुण्य के प्रभाव से स्वयं ही देवों के यहाँ आसनकंप आदि के द्वारा सूचना मिल जाने से सौधर्म इन्द्र असंख्य देव-परिवारों के साथ बनारस नगरी में आकर जिनराज के माता-पिता का दिव्य अभिषेक आदि करके गर्भकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। जहाँ पर साक्षात् सौधर्म इन्द्र ही उत्सव को सम्पन्न करने वाला है, वहाँ के महोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है? यह दिन वैशाख वदी द्वितीया का था जो कि गर्भकल्याणक के मंगल से युगानुयुग तक मंगलमय ही रहेगा।

राजमहल में श्री आदि देवियाँ नाना प्रकार से माता-पिता की सेवा करती हुई, उनके मन को आनन्दित किया करती हैं। जैसे-जैसे गर्भ में बालक की वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे ही माता की बुद्धि अतिशयपने को प्राप्त होती चली जाती है। देवियाँ नाना प्रकार के प्रश्नों को करके वामादेवी के मुख से उनका चमत्कारिक उत्तर प्राप्त करके, अपने आप को कृतार्थ कर रही हैं। देखते-देखते नव महीने का समय भी व्यतीत हो गया। जैसे सीप में मोती रहता है, वैसे ही भगवान तीर्थंकर माता के गर्भ में तिष्ठ रहे हैं, न स्वयं मल से लिप्त हैं, न क्लेश को प्राप्त होते हैं और न उनके निमित्त से माता को ही रंचमात्र भी कष्ट का आभास होता है। यह एक तीर्थंकर प्रकृति के पुण्य की ही महानता है।

पौष बदी एकादशी की उत्तम तिथि के दिन सर्वश्रेष्ठ बेला में पूरब दिशा के समान वामादेवी ने त्रिभुवन कमल को विकसित करने वाले अद्भुत सूर्यस्वरूप पुत्र को जन्म दिया। पिता अश्वसेनरूपी उदयाचल से उदित होता हुआ बालसूर्य तीन ज्ञानरूपी किरणों के प्रकाश से देदीप्यमान हो रहा था।

उसी क्षण सहसा स्वर्ग में बिना बजाये ही घण्टे बजने लगे, ज्योतिषवासी देवों के यहाँ स्वयं ही सिंहनाद होने लगा, भवनवासियों के भवनों में स्वयं ही शंख ध्वनि हो उठी और व्यंतरवासी देवों के यहाँ भेरी बजने लगी। ये बाजे भगवान के प्रखर पुण्य से प्रेरित हुए स्वयं ही वाचालित हो उठे थे। इन्द्रों के आसन अपने आप कंपायमान हो उठे और उनके मस्तक के मुकुट स्वयं ही झुक गये। उस समय सुर कल्पवृक्षों से भी न रहा गया और वे भगवान की भक्ति में विभोर हो विविध प्रकार के पुष्पों की वर्षा करने लगे। सौधर्म इन्द्र सभी अतिशय विषयों से जिन जन्म की सूचना को पाकर, आसन छोड़कर सात कदम आगे बढ़कर पुनः-पुनः जिन बालक को नमस्कार करता हुआ असीम पुण्य संचित कर लेता है। अनन्तर ऐरावत हाथी पर चढ़कर सम्पूर्ण इन्द्र-प्रतीन्द्रों सहित अपनी शची देवी और असंख्य सुर परिवारों के साथ बनारस नगरी में आता है।

इन्द्र की आज्ञा से इन्द्राणी प्रसूति गृह में जाकर जिनबालक का दर्शन कर आनन्द को प्राप्त होती हुई, बालक को गोद में उठा लेती है। उस समय उसे इतना हर्ष होता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वास्तव में यही कारण है कि वह शची देवी अपनी स्त्री पर्याय को छेदकर पुनः पुरुष जन्म लेकर मोक्ष चली जाती है अर्थात् इन्द्राणी एक भवावतारी ही होती है। एक इन्द्र के जीवन में उनकी चालीस नील प्रमाण (400000000000000) शची देवियाँ मोक्ष चली जाती हैं क्योंकि इन्द्र की आयु सागरोपम से है और इन्द्राणियों की आयु पल्योपम से है।

वह शची देवी जिन बालक को लेकर इन्द्र के कर-कमलों में सौंप देती है। इन्द्र तत्क्षण ही ऐरावत हाथी पर बैठकर जिनबालक को गोद में लिए हुए सपरिवार सुमेरु पर्वत पर पहुँच जाते हैं और वहाँ तीर्थंकर बालक का जन्माभिषेक उत्सव करते हैं पुनः बालक को वस्त्राभूषण से अलंकृत कर ''पार्श्वनाथ'' ऐसा नामकरण करके वापस बनारस नगरी में आकर उस बालक को माता-पिता को सौंपकर पुनः वहाँ पर जन्मकल्याणक महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं।

इन्द्र तीर्थंकर शिशु के अँगूठे में अमृत को स्थापित कर देता है। उसी अँगूठे को चूसकर जिन बालक वृद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु वे माता के स्तन का पान नहीं करते हैं। इंद्र की आज्ञा से प्रभु के साथ उन्हीं के अनुरूप रूप लेकर देवगण क्रीड़ा करते रहते हैं। अहो! उन देवों का भी महान् सौभाग्य है कि जो जिनबालक के साथ बालक रूप में क्रीड़ा करते हुए मनोरंजन करते हैं। प्रभु के जन्म से ही दस अतिशय प्रगट रहते हैं। उनके नाम–

1. अतिशय सुन्दर रूप, जो कि तीन लोक के समस्त जीवों से भी उपमातीत है। इन्द्र भी जिस रूप को देखकर तृप्त न होते हुए एक हजार नेत्र बना लेता है फिर भी अतृप्त ही बना रहता है। सच है कि जिनके माता-पिता के शरीर में भी मल-मूत्र नहीं है, उनके सुन्दर रूप का क्या कहना? कहा भी है–

तित्थयरा तप्पियरा, हलहर चक्काइं वासुदेवाइं।
पडिवासु भोगभूमिय, आहारो णत्थि णीहारो।।

तीर्थंकर, उनके माता-पिता, बलभद्र, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और भोगभूमिया जीव इनके आहार तो है किन्तु नीहार नहीं है।

अतः प्रभु का रूप अतीव सुन्दर है। 2. उनके शरीर में सुगंध आती है 3. शरीर में पसीना नहीं होता है 4. मल-मूत्र नहीं रहता है 5. उनकी वाणी प्रिय और हितरूप होती है 6. शरीर में रुधिर दूध के समान श्वेत होता है 7. शरीर में अतुल्य बल होता है 8. शरीर में उत्तम-उत्तम एक हजार आठ लक्षण होते हैं 9. उनका संस्थान समचतुरस्र रहता है और 10. उनका संहनन वज्रवृषभनाराच नाम का होता है।

क्रम-क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए तीर्थंकर पार्श्वकुमार अद्भुत कल्पवृक्ष की उपमा धारण करते हैं। जब प्रभु सोलह वर्ष की अवस्था में प्रवेश कर चुके थे, एक बार सिंहासन पर विराजमान थे, अवसर पाकर महाराज अश्वसेन ने अपने कर्तव्य के नाते भगवान पार्श्वनाथ से विवाह करने का प्रस्ताव रखा किन्तु तीर्थंकर कुमार ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और वे बाल-ब्रह्मचारी ही रहे।

एक समय श्री पार्श्वनाथ बहुत से राजपुत्रों के साथ (राजपुत्र के वेश में देवों के साथ) हाथी पर सवार होकर बनारस नगरी के उद्यानों में विचरण कर रहे थे। वहाँ पर प्रभु देखते हैं कि एक तापसी साधु पंचाग्नि तप कर रहे थे। ये तापसी प्रभुपार्श्व के नाना थे अर्थात् माता वामा देवी के पिता थे।

पार्श्वनाथ वहाँ पर खड़े हो गए, बिना नमस्कार किए हुए स्तब्ध प्रभु को देखकर वह तापसी सोचने लगा–

"अहो! मैं इस बालक का नाना हूँ फिर भी यह मेरी विनय नहीं कर रहा है।" ऐसा सोचते-सोचते वह अतीव क्रोध में आकर, हाथ में कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी चीरने लगा।

उसके हाथ में कुल्हाड़ी लेते ही दया के रत्नाकर श्री प्रभु वचनामृत वर्षा को करते हुए हित, मित और प्रिय वचन बोले–

"हे तापसी! यह काठ मत चीरो, इसमें नाग युगल बैठे हुए हैं।"

यह सुन तापसी कहता है–

"अरे! क्या तू ही नारायण, महादेव या ब्रह्मा का अवतार है जो कि सम्पूर्ण चराचर का ज्ञाता बन रहा है? तू कैसे कह रहा है कि इस लकड़ी में सर्प युगल है?" ऐसा कहते-कहते ही उसने कुल्हाड़ी से लकड़ी के दो टुकड़े कर दिये और तत्क्षण ही उस नाग युगल के दो टुकड़े हो गये। उस समय तीर्थंकर प्रभु ने पुनः कहा–

"हे तापसी! तुम व्यर्थ ही गर्व कर रहे हो, देखो! तुम ज्ञान के बिना अपने तन को कष्ट दे रहे हो किन्तु सोचो तो सही, तुम्हारे मन में किंचित् दया के बिना धर्म भी नहीं हो सकता है।" उस समय वहपुनः बोलता है–

"अरे कुमार! मैं तेरी माता का जनक हूँ तथा इस समय तपस्वी हूँ, फिर भी तूने मद के वश में होकर मेरा विनय नहीं किया और उल्टे तू मेरे तपश्चरण की निन्दा कर रहा है, क्यों? मेरा तप अज्ञान तप क्यों है? मैं पंचाग्नितप तप रहा हूँ, कभी एक पैर से तो कभी ऊर्ध्व भुजा करके, ध्यान करता हूँ, भूख-प्यास की बाधा सहन करते हुए सूखे पत्ते से पारणा करता हूँ।

भगवान बोलते हैं–

"तपस्विन्! जिसमें छह काय के जीवों की हिंसा होती है, वह तप कुतप ही है। सम्यग्ज्ञान के बिना कायक्लेश उत्तम फल को नहीं दे सकता है किन्तु जो तप जैनधर्म के अनुसार है, वही निश्चित रूप से वाँछित फल को देने वाला है। मैंने तुम्हें हितकर वचन कहे हैं, तुम इन पर विचार करो और जो उचित प्रतीत होवे उसे ही ग्रहण करो, व्यर्थ ही अपने मन को मलिन मत करो।"

इस प्रकार भगवान के उपदेश को सुनते हुए वे नाग युगल शरीर का परित्याग कर धरणेन्द्र और पद्मावती हो गये। अहो! उन सर्प युगल के धन्य भाग्य थे जिससे उन्हें अन्त समय साक्षात् तीर्थंकर प्रभु के दर्शन हुए और उनकी दिव्य वाणी को पान करने का अवसर मिला।

यह तापसी कौन था?कमठचर जीव था। वह आनंद मुनिराज की हत्या के पाप से पाँचवें नरक में जाकर सत्रह सागर की आयु तक असीम दुःखों को भोग कर वहाँ से निकला और बहुत काल तक अर्थात् तीन सागर तक पशु योनि में त्रस-स्थावर पर्यायों को धारण करते हुए पुनः कुछ कर्म भार के हल्के हो जाने पर महीपालपुर में राजा महीपाल हुआ जिसकी पुत्री वामादेवी थीं। कुछ समय के बाद पट्टरानी के मरण के अनंतर वियोगजन्य दुःख से दुःखी होते हुए तापसी वेष धारण कर लिया था। यह तापसी इस उपर्युक्त घटना के अनंतर कुछ दिन बाद मरण करके कुतप के प्रभाव से शंबर नाम का ज्योतिषी देव हो गया। सच ही है, अज्ञानतप भी जब देवगति को प्राप्त करा देता है तो सम्यग्ज्ञान सहित तप कौन-कौन से उत्तम फलों को नहीं देवेगा? अर्थात् सम्यक्तप मोक्ष तक भी प्राप्त करा देता है।

पुण्य के समुद्रस्वरूप भगवान पार्श्वनाथ के लिए भोजन, वस्त्र आदि वस्तुएँ इन्द्र अपने स्वर्ग से ले जाकर प्रदान करता है। तीर्थंकर प्रभु गृहस्थावस्था में मर्त्यलोक का अन्न या वस्त्र नहीं ग्रहण करते हैं क्योंकि जब स्वयं इन्द्र ही प्रभु का किंकर है तो फिर उन्हें अन्य के द्वारा किसी वस्तु के ग्रहण करने की आवश्यकता का प्रसंग ही क्यों आयेगा?

प्रभु तीस वर्ष की अवस्था में प्रवेश करते हुए किसी समय सुखपूर्वक बैठे हुए हैं, उसी समय अयोध्या नरेश जयसेन महाराज का दूत आता है और नाना प्रकार की वस्तुएँ भेंट में रखकर नमस्कार करता है। भगवान उस दूत से कुछ क्षण बाद अयोध्या के वैभव को पूछते हैं, तब वह कुशल दूत भगवान ऋषभदेव के अवतार का वर्णन करते हुए सविस्तार अयोध्या की संपत्ति का वर्णन कर रहा था।

इसी बीच में प्रभु पार्श्वनाथ सहसा विरक्तमना होकर चिंतवन करने लगे–"अहो! इन तीर्थंकरों ने उत्तम-उत्तम भोगों को परित्याग करके आत्मसिद्धि प्राप्त की है, अब मेरा भी आत्मसाधना का समय हो चुका है। जब इन्द्रों के वैभव से इस जीव की तृप्ति नहीं हो सकती है तो किंचित् मात्र मनुष्य भव के सुखों से क्या तृप्ति हो सकती है?

जब सागर के जल से तृष्णा नहीं बुझ सकती है तो क्या घास के ऊपर पड़ी हुई ओस बिंदु से तृप्ति हो सकती है? असंभव है।"

उस समय जिनराज बारह भावनाओं का चिंतन कर ही रहे थे कि तत्क्षण ही लौकांतिक देव आकर, पुष्पांजलि चढ़ाकर प्रभु के चरणों की पूजा करके प्रभु के गुणों का कीर्तन करते हैं–

"हे देवाधिदेव! आप धन्य हैं, आपकी निर्मल विचारसरणि धन्य है! हे दयानिधे! यह समय भी धन्य है जो कि आपने मोहसेना को जीतने के लिए तैयारी की है। नाथ! आज शिवकांता अपने सौभाग्य की सराहना कर रही है और उसी की प्रतीक्षा में वह आज तपस्या सखी को भेजकर आपको अपनी ओर शीघ्र ही आकर्षित करना चाह रही है। जगत् के जीवों का आज महान् पुण्य अवसर आया हुआ है जो कि आपने उनके उद्धार के लिए कदम उठाया है।" इत्यादि रूप से स्तुति करते हुए वे लौकांतिक देव अपने-अपने स्थान पर चले गये।

उसी समय आसन कंपित होने से सौधर्म इंद्र स्वयं प्रभु की सेवा में उपस्थित हो गया। असंख्य देव-देवियों ने बनारस नगरी को स्वर्ग से भी अधिक रमणीक बना दिया। जय-जयकार की ध्वनि से पृथ्वी और आकाश पूर्णतया व्याप्त हो गया। इंद्र ने प्रभु का अभिषेक करके उन्हें दिव्य वस्त्र, आभूषण पहनाकर 'विमला' नाम की रत्नपालकी में विराजमान किया। उस समय प्रभु साक्षात् मुक्तिवधू को वरण करने के लिए वर ही प्रतीत हो रहे थे। पहले उस पालकी को भूमिगोचरी राजाओं ने उठाया और सात पैंड तक ले चले, पुनः विद्याधर राजागण सात पैंड तक लेकर चले। अनंतर इंद्रों ने श्री प्रभु की पालकी को अपने कंधों पर धारण किया और निमिषमात्र में वे आकाशमार्ग से चलते हुए नगर का उल्लंघन कर "अश्व" नाम के वन में पहुँच गये। वहाँ पर वटवृक्ष के नीचे रत्नमयी शिला पर शची ने रत्नों के चूर्ण से स्वस्तिक बनाया हुआ था।

प्रभु पालकी से उतरते हैं, कोलाहल शांत हो जाता है। जीवन-मरण, शत्रु-मित्र आदि में समभाव को रखने वाले तीर्थंकर कुमार इंद्र की प्रार्थना से मंगल स्वस्तिकासन पर उत्तर मुख कर स्थित हो जाते हैं और सिद्धों की वंदना करके, वस्त्र-आभूषण का परित्याग कर केशों का पंचमुष्टि लोंच करके, परम दिगम्बर जिनमुद्रा को धारण कर भगवान यथाजातरूप हो जाते हैं। वह पौष बदी एकादशी तिथि मंगलमयी हो जाती है। उस समय प्रभु के साथ अन्य तीन सौ राजा भी दीक्षित हो जाते हैं। इंद्रगण प्रभु के इंद्रनीलमणि सदृश केशों को रत्नपिटारी में रखकर बड़े वैभव के साथ क्षीरसागर में विसर्जित करते हैं। इस प्रकार से अतुल महिमायुक्त निष्क्रमण कल्याणक महोत्सव मनाकर सुरेन्द्रगण अपने-अपने स्थान पर चले जाते है।

प्रभु ने दीक्षा लेते ही तेले का (तीन उपवास का) नियम कर लिया। भगवान की दीक्षा के समय की विशुद्धि का माहात्म्य कौन कह सकता है? जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञान के धारी प्रभु को दीक्षा लेते ही अन्तर्मुहूर्त में मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो जाता है। इस लघुवय में श्रीपार्श्वनाथ ने कामदेव की सेना को जीतकर निष्काम पद प्राप्त किया है। ऐसे बालयती के पदकमल में मेरा अनंतशः नमस्कार होवे।

प्रभु को प्रथम आहार देने का सौभाग्य गुल्मखेटपुर के महाराज ब्रह्मदत्त को मिला था।

यद्यपि नाथ संपूर्ण प्राणियों के रक्षक थे तो भी मोह शत्रु को निर्मूल विध्वंस करने के लिए कटिबद्ध थे।

एक समय प्रभु योग में तन्मय हुए अपनी शुद्धात्मा के परमानन्द अमृत रस का अनुभव ले रहे थे। आकाश मार्ग से गमन करते हुए शंबर नामक ज्योतिषी देव का विमान वहीं पर रुक गया। यह नियम है कि महापुरुषों के ऊपर से किसी भी देव या विद्याधर का विमान उल्लंघन कर नहीं जा सकता। उसी समय अवधिज्ञान के बल से उस देव ने पूर्व भव के वैर का स्मरण किया और अत्यन्त कुपित होकर प्रभु के ऊपर घोर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। प्रलय काल के उत्पाद के समान भयंकर आँधी चलने लगी, पत्थरों की वर्षा होने लगी और मूसलाधार पानी बरसने लगा। उस समय जल और थल एक होकर सब महासागर सा दीखने लगा। विक्रिया बल से यह पापी कमठचर किलकिल शब्द करता हुआ महाबेताल का रूप लेकर अग्नि उगलने लगा। अधिक क्या कहना, उसने अनेक दुर्भेष धारण कर प्रभु के ऊपर भयंकर उपसर्ग किया किन्तु महामना प्रभु सुमेरु के समान अचल थे, परम सहिष्णु थे। जब प्रभु कई भवों तकइस पापी के उपसर्ग को सहन कर ही रहे थे तो पुनः अब तो वे साक्षात् तीर्थंकर थे, क्षमा की मूर्ति थे और कर्मशत्रु के विजेता महाशूरवीर थे।

इस उपसर्ग के प्रसंग में सहसा धरणेन्द्र देव का आसन कंपायमान हो उठा। उसने अवधिज्ञान के बल से प्रभु के उपसर्ग को जाना और उनके द्वारा अपने प्रति किये गये उपकार का चिंतन करता हुआ तत्क्षण ही अपनी भार्या पद्मावती देवी के साथ वहाँ आ गया। देव-दंपत्ति ने प्रभु की प्रदक्षिणा दी और बार-बार नमस्कार किया। प्रभु के मस्तक पर फण का छत्र तान दिया। धरणेन्द्र युगल को देखते ही वह देव पापी कमठचर भाग खड़ा हुआ।

प्रभु सातिशय अप्रमत्त अवस्था रूप निर्विकल्प ध्यान में स्थिर हो गये और इस सप्तम गुणस्थान से ऊपर चढ़कर क्षपक श्रेणी में आरोहण करते हुए दसवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का निर्मूल नाश करके बारहवें गुणस्थान के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का विनाश कर दिया तथा आत्मा के अनन्तगुणपुंज के साथ-साथ केवलज्ञानरूप परम ज्योति को प्राप्त कर लिया। तत्क्षण ही प्रभु पृथ्वी से ऊपर पाँच हजार धनुष प्रमाण (20000 हाथ प्रमाण) आकाश में पहुँच गये। इन्द्रों के आसन कंपित होते ही सौधर्म इन्द्र आदि सभी देव आ गये।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने अभूतपूर्व समवसरण रचना कर दी। प्रभु का उपसर्ग दूर हो गया और उस पवित्र स्थान में अहि–सर्प के रूप को धारण कर धरणेन्द्र ने प्रभु के ऊपर छत्र धारण किया था इसलिए उस स्थान का 'अहिच्छत्र' यह सार्थक नाम विश्व में प्रख्यात हो गया है। चैत्र कृष्ण चतुर्थी[1] के दिन इन्द्रों ने आकर प्रभु का केवलज्ञान महोत्सव मनाया था।

भगवान के समवसरण में प्रथम गणधर स्वयंभू स्वामी थे तथा अन्य और भी नव गणधर थे। कुल मिलाकर सोलह हजार मुनिराज, सुलोचना आदि को लेकर छत्तीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकाएँ और असंख्यात देव-देवियाँ तथा संख्यात तिर्यंच थे। ये सब भव्य जीव बारह सभाओं में बैठकर उपदेश सुनते थे।

शंबर नाम का वह ज्योतिषी देव भी काललब्धि पाकर शांत हो गया और उसने प्रभु को बार-बार नमस्कार कर सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया। यह देख उस वन में रहने वाले सात सौ तपस्वियों ने भी मिथ्यादर्शन छोड़कर संयम धारण कर लिया, सभी शुद्ध सम्यग्दृष्टि हो गये और बड़े आदर के साथ प्रदक्षिणा देकर भगवान के चरणों में नमस्कार करने लगे। आचार्य कहते हैं–"अहो! पापी कमठ के जीव का कहाँ तो निष्कारण वैर और कहाँ ऐसी शांति? सच कहा है कि महापुरुषों के साथ मित्रता तो दूर रही, शत्रुता भी वृद्धि का कारण होती है।"

"सख्यमास्तां विरोधश्च वृद्धये हि महात्मभिः।"[2]

बारह सभाओं के मध्य धर्मोपदेश करते हुए प्रभु ने पाँच माह कम सत्तर वर्ष तक विहार किया। अंत में जब प्रभु की आयु एक माह की शेष रह गयी तब वे विहार बंद कर सम्मेदाचल के शिखर पर छत्तीस मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हो गये। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातःकाल के समय प्रभु ने शेष अघातिया कर्मों को भी

1. उत्तरपुराण में चतुर्दशी है। 2. उत्तरपुराण पर्व 73।

निर्मूल करके, यमराज के मान का मर्दन कर निर्वाण पद प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्रों ने आकर प्रभु के निर्वाण कल्याणक महोत्सव की पूजा करके सातिशय पुण्य संचित करते हुए अपने जीवन को सफल बनाया।

श्री गुणभद्र आचार्य कहते हैं–

आदि मध्यांतगंभीराः सन्तोऽभोनिधिसन्निभाः।
उदाहरणमेतेषां पार्श्वो गण्यः क्षमावताम् ।।170।।

जो समुद्र के समान आदि, मध्य और अन्त में गंभीर रहते हैं, ऐसे सज्जनों का यदि कोई उदाहरण हो सकता है तो क्षमावानों में गिनती करने योग्य भगवान पार्श्वनाथ हो सकते हैं।

तीर्थेशाः सदृशो गुणैरनणुभिः सर्वेऽपि धैर्यादिभिः।
सन्त्यप्येवमधीश विश्वविदितास्ते ते गुणाः प्रीणनाः।।
तत्सर्वं कमठात्तथाहि महतां शत्रोः कृतापक्रियात्।
ख्यातिर्या महती न जातुचिदसौ मित्रात्कृतोपक्रियात्।।

"हे स्वामिन् । धैर्य आदि बड़े-बड़े गुणों से यद्यपि सभी तीर्थंकर समान हैं तथापि सबको संतुष्ट करने वाले आपके जो गुण संसार में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, वे सब एक कमठ के कारण ही प्रसिद्ध हुए हैं। सो ठीक ही है, क्योंकि अपकार करने वाले शत्रु से जो महापुरुषों की ख्याति होती है वह उपकार करने वाले मित्र से कभी नहीं होती।"

श्री पार्श्वनाथ और कमठ के पूर्वभव का एक सिंहावलोकन–पार्श्वनाथ का जीव पहले **मरुभूति** (1) हुआ, **हाथी** हुआ (2), फिर **सहस्रार स्वर्ग में देव** (3) हुआ, वहाँ से आकर **विद्याधर** हुआ (4), फिर अच्युत स्वर्ग में **देव** (5) हुआ, वहाँ से आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती(6), फिर **मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र**(7) हुआ, वहाँ से आकर **आनंद नाम का राजा (8)** हुआ, फिर **आनत स्वर्ग में इन्द्र** (9) हुआ तदनंतर **भगवान पार्श्वनाथ**(10) तीर्थंकर होकर भव्य जीवों के लिए परम आश्रय स्वरूप हुआ है।

कमठ का जीव पहले मरुभूति का **कमठ**(1) नाम का बड़ा भाई था, फिर **कुक्कुट** सर्प(2) हुआ, फिर **पाँचवें नरक**(3) गया, फिर **अजगर** हुआ (4), फिर **नरक** गया(5), फिर **भील** हुआ (6), पुनः **नरक** गया(7), पुनः **सिंह** हुआ(8), पुनः **नरक** गया(9) और फिर **महीपाल राजा** (10) होकर **शंबर देव**(11) हुआ है।

कमठ ने मरुभूति की भार्या के साथ व्यभिचार किया जिससे राजा अरविन्द ने कुपित हो उसे दंडित करके राज्य से बाहर निकाल दिया किंतु मरुभूति उस समय भी उस भाई पर क्रुद्ध न होते हुए उसे वापस लाने हेतु खोजते हुए वहाँ पहुँचता है कि जहाँ वह कमठ तापसी वेष में हाथ में पत्थर की विशालकाय शिला लेकर तप कर रहे है। मरुभूति का मन सरल था, भाई का प्रेम उमड़ रहा था किन्तु कमठ ने उसे ही अपना शत्रु समझ लिया और अत्यंत क्रोधावेश में अंधा होकर उसी के ऊपर अपने हाथ की शिला पटक दी।

फलस्वरूप वहीं से उसके संस्कार मरुभूति के प्रति क्रोध से बदला लेने के हो गये थे जो कि दश भव तक चलते रहे हैं। यह इकतरफा वैर का उदाहरण आप को इसी कमठ में मिलेगा, अन्यत्र नहीं। इतनी महान् क्षमा तथा सहिष्णुता का उदाहरण आपको भगवान पार्श्वनाथ के दशभव के जीवन में ही मिलेगा। इसलिए यदि आपके मन में किसी अपकारी के प्रति कलुषता बैठी हुई है तो आप बार-बार पार्श्वनाथ का चरित्र पढ़िए, सुनिए और मनन कीजिए। आप में क्षमा गुण का विकास होगा, जिसका फल कालांतर में बहुत ही मीठा मिलेगा और यदि आप उस कषाय कण को भीतर में लिए ही रहेंगे तो कमठ के समान आपकी हानि की संभावना हो सकती है अतः कषाय के एक कण को अग्नि से भी अधिक भयंकर समझकर, उससे बचने की कोशिश करनी चाहिए और पार्श्वनाथ के श्रीचरणों में अनन्त-अनन्त नमस्कार करते हुए अपने मनुष्य जीवन को सफल करना चाहिए।

हमें कमठ जैसे क्रोध के संस्कार नहीं चाहिए किन्तु पार्श्वनाथ जैसे क्षमा के, सहिष्णुता के संस्कार चाहिए।

भगवान पार्श्वनाथ का सचित्र जीवन

(हिन्दी-अंग्रेजी भाषा में)

प्रस्तुति—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

भगवान पार्श्वनाथ 10वें भव पूर्व-मरुभूति

पोदनपुर में महाराजा अरविन्द अपनी राजसभा में स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान थे। उनके विश्वभूति नामक मंत्री ने राज्य के कुशल समाचार बताकर महाराज से जिनदीक्षा की आज्ञा मांगते हुए अपने पुत्र कमठ और मरुभूति को महाराज के चरणों में समर्पित कर दिया। उन मंत्रिवर के दीक्षा लेते ही महाराज अरविन्द ने उनके दोनों पुत्रों को परम्परागत मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया। पुनः एक दिन राजा अरविन्द अपने शत्रु राजा वज्रवीर्य को जीतने हेतु चतुरंगिणी सेना के साथ मरुभूति मंत्री को लेकर युद्ध करने चल पड़े और कमठ कुमार मंत्री पर पोदनपुर के राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था डाल दी। कमठ जो कि स्वभाव से ही कुटिल परिणामी दुष्टात्मा था, वह समय पाकर मंत्री पद में अत्यन्त निरंकुश हो गया और सर्वत्र अन्याय का साम्राज्य फैला दिया।

किसी समय मंत्री कमठ ने अपने छोटे भाई मरुभूति की पत्नी वसुंधरी को अप्सरा के समान सुन्दर देखकर उसके साथ जबर्दस्ती दुराचार किया। राजा के वापस आने पर जब उन्हें यह पता चला तो उनकी आज्ञा से कोतवाल ने कमठ का सिर मुंडा कर मुंह काला करके उसे गधे पर बिठाकर सारे शहर में घुमा कर देश से निकाल दिया। उस दण्ड से अपमानित होकर कमठ एक तापस आश्रम में जाकर हाथ में पत्थर की शिला लेकर खड़ा होकर तपश्चरण करने लगा।

इधर मरुभूति अपने भाई के वियोग से दुखी हो उसे मनाकर वापस लाने हेतु आश्रम में गया और कमठ के पैरों में गिरकर क्षमायाचना करने लगा किन्तु क्रोधी कमठ ने उसके सिर पर पत्थर की शिला पटक दी अतः मरुभूति तुरंत वहीं मर गया और आर्त्तध्यान से मरकर वह सल्लकी वन में हाथी बनकर जन्मा।



LORD PARSHVANATH BEFORE 10TH BIRTH-MARUBHUTI

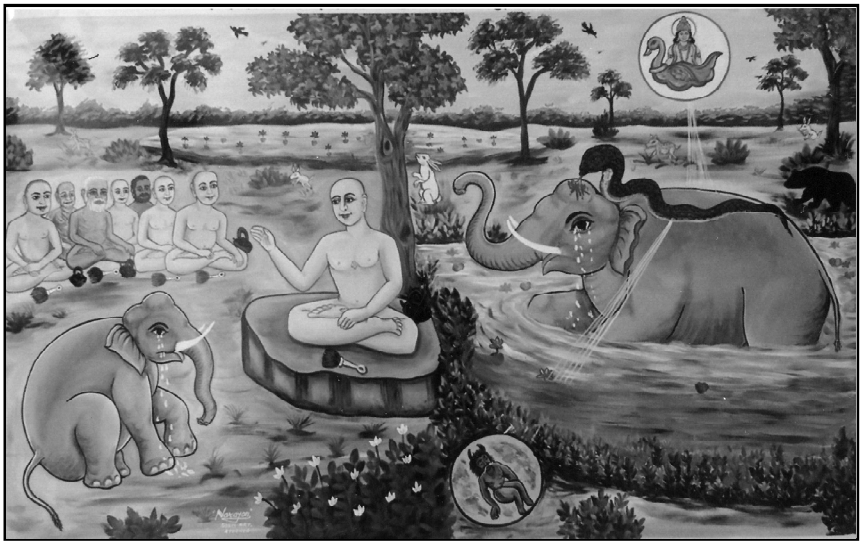
Two brothers Kamath & Marubhuti were the ministers of king Arvind of Podanpur. Once Kamath forcibily raped the wife of Marubhuti in his absence. Knowing this, the king expelled him out of the country. Angry Kamath started penance with a rock in his hands in some Ashram. Marubhuti came there to get him returned but Kamath threw the rock on his head, immediately he died and because of the attachment feelings for his brother, Marubhuti was born as an elephant in Sallaki forest.

भगवान पार्श्वनाथ 9वें भव पूर्व-हाथी

राजा अरविन्द ने भी एक बार आकाश में मेघों को विघटते देखकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली थी पुनः अपने संघ के साथ सम्मेदशिखर की यात्रा करते हुए सल्लकी वन में ठहरे थे। तभी अकस्मात् वज्रघोष नामक विशालकाय हाथी (मरुभूति का जीव) सारे संघ में खलबली मचाता हुआ विचरण करने लगा। उस हाथी के पैरों के नीचे दबकर अनेक मनुष्य-पशु आदि मर गये अतः सर्वत्र हा-हाकार मच गया। पुनः ज्यों ही वह ध्यानस्थ गुरुदेव श्री अरविन्द मुनिराज के निकट पहुँचा, उनके वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह देखकर उसे जातिस्मरण हो गया और वह एकदम शांत होकर बैठ गया। तब मुनिराज कहने लगे–

हे गजराज! तू अपने भाई कमठ के मोह में मरकर इस पशु पर्याय में जन्मा है, अब तू समस्त आर्त्तध्यान छोड़कर सम्यक्त्व को धारण कर और अपने अगले भव को सुधारने हेतु श्रावक के व्रतों को धारण कर। इस प्रकार गुरुदेव के मुख से विस्तारपूर्वक सम्यक्त्व एवं व्रतों का उपदेश सुनकर उस हाथी ने गुरुदेव को नमन करके श्रावक व्रतों को स्वीकार कर लिया।

एक दिन वह हाथी पानी पीने हेतु वेगवती नदी के तट पर गया और कीचड़ में फंस गया। वहाँ से निकलने का साधन न देखकर उसने चतुराहार का त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली और णमोकार महामंत्र के ध्यान में लीन हो गया। कुछ ही देर में एक कुक्कुट जाति के साँप ने (कमठ का जीव जो मरकर साँप हो गया था) पूर्व जन्म के वैर के संस्कारवश उसे डस लिया, तब वह हाथी शांत भाव से मरकर बारहवें स्वर्ग में ''शशिप्रभ'' नाम का देव हो गया।



LORD PARSHVANATH BEFORE 9TH BIRTH-ELEPHANT

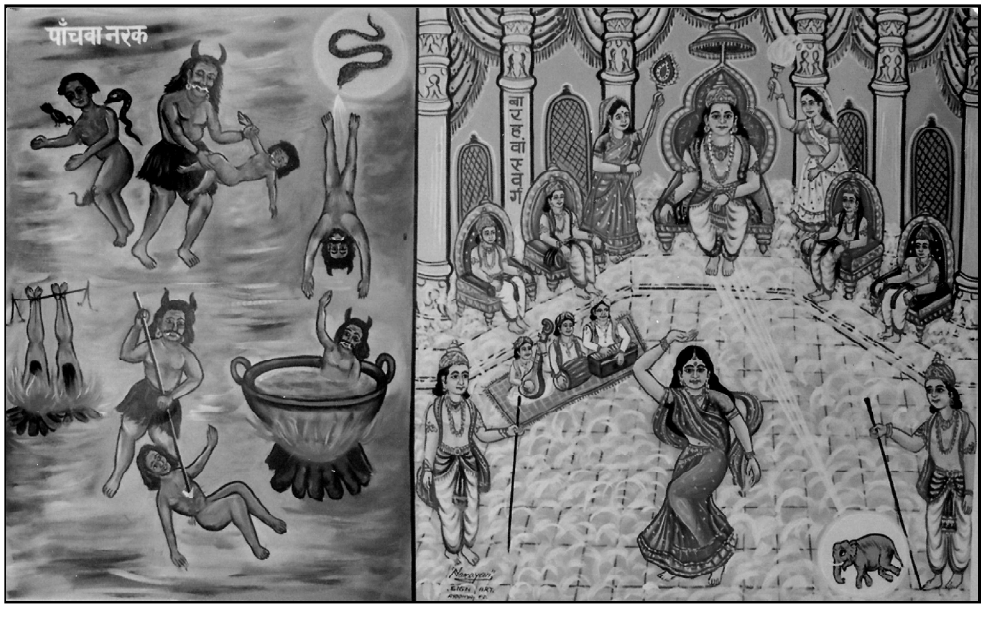
King Arvind took Jaineshwari Deeksha and once he reached the Sallaki forest with his Sangh. As soon as Vajraghosh elephant (Marubhuti in previous birth) saw the Muniraj, it became quite peaceful and by his preaching accepted the vows of a *Shravak* (householder) with Samyaktva (right belief). One day the elephant got trapped into the mud of a river and knowing the death to be sure, it accepted *Sallekhna* & concentrated on Namokar Mahamantra. In the meantime a Kukut snake (Kamath in previous birth) bit it but due to its peacefulness, the elephant became 'Shashiprabh Dev' in the 12th heaven after death.

भगवान पार्श्वनाथ 8वें भव पूर्व-शशिप्रभ देव

स्वर्ग में उपपाद शय्या पर जन्म लेते ही शशिप्रभ देव को अवधिज्ञान से ज्ञात हो गया कि मैं तिर्यंचयोनि की हाथी पर्याय से मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ। वहाँ पर गुरुदेव की कृपा से जो मैंने सम्यक्त्वरूपी रत्न एवं अणुव्रतरूपी निधि प्राप्त की थी, उसी के फलस्वरूप मुझे यह तेजोधाम स्वर्गपुरी का अतुल वैभव प्राप्त हुआ है।

स्वर्ग में सोलह सागर तक वह देव असीम सुखों को भोगता रहा। कभी वह जम्बूद्वीप, नंदीश्वरद्वीप आदि द्वीपों में जाकर अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना करता, कभी तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों में भाग लेता तो कभी चारणऋद्धिधारी मुनियों की एवं अपने सच्चे हितकारी गुरु अरविन्द मुनिराज की पूजा करता.....आदि।

देखो! धर्म एवं व्रतरूपी कल्पवृक्ष के प्रसाद से जहाँ एक हाथी का जीव स्वर्ग के सुखों को भोग रहा है, वहीं जिस कुक्कुट सर्प ने हाथी को डसा था, उसने अपनी आयु पूर्ण कर अधोलोक के पाँचवे नरक में जन्म ले लिया। वहाँ सत्रह सागर तक असीम दुःखों का अनुभव करता रहा। पुनः शशिप्रभ देव तो पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग की आयु बिताकर विद्याधर मनुष्य हो गया एवं बेचारा नारकी (कुक्कुट सर्प का जीव) मरकर अजगर सर्प की योनि में आ गया।



Lord Parshvanath Before 8th Birth-Shashiprabh Dev

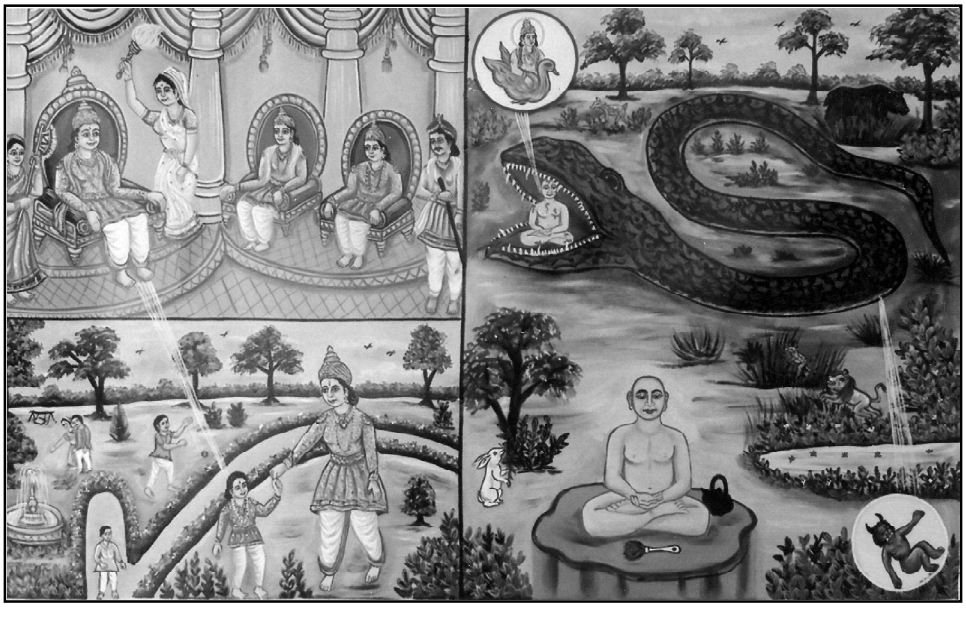
Shashiprabh Dev enjoyed the pleasures of the heaven for 16 Sagars (very large time), but he never neglected his religious practices because he knew that he had obtained all the happiness & comforts because of adopting *Anuvratas* in the previous birth of Vajraghosh elephant. On the other side, the Kukut snake, which had become *Narki* (hellish being) in the 5th hell due to its wicked nature, underwent the hardships & sorrows of the hellish life for 17Sagars. After completing their life-times the Dev became a Vidyadhar and the *Narki* became a fierce python (a large snake).

भगवान पार्श्वनाथ 7वें भव पूर्व-अग्निवेग विद्याधर

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत के लोकोत्तम नगर के विद्युत्गति विद्याधर राजा की रानी विद्युन्मालिनी से जन्मा शिशु अग्निवेग दूज चन्द्रमा के समान स्वयं बढ़ने लगा और सबकी खुशियों को भी वृद्धिंगत करने लगा।

राज्यसम्पदा को भोगते हुए सहसा भरी जवानी में ही अग्निवेग ने एक दिन समाधिगुप्त मुनिराज से संबोधन प्राप्त कर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली और घोर तपश्चरण करते हुए वे अपनी शुद्धात्मा का ध्यान करने लगे।

एक दिन वे महामुनि हिमगिरि पर्वत की गुफा के अन्दर ध्यान में लीन थे, तब वहाँ एक अजगर सर्प आया और मुनि को देखते ही उसने पूर्व भव के वैर संस्कारों के कारण भयंकर क्रोध से प्रेरित होकर उन्हें निगल लिया। मुनिराज परम समताभाव से मरकर सोलहवें स्वर्ग के पुष्कर विमान में देव हो गये तथा कालांतर में वह अजगर सर्प मुनिहत्या के घोर पाप एवं जीव हिंसा आदि क्रूर परिणामों से आयु पूर्ण कर छठे नरक में चला गया, वहाँ बाईस सागर तक अनंत दुःखों को भोगता रहा।



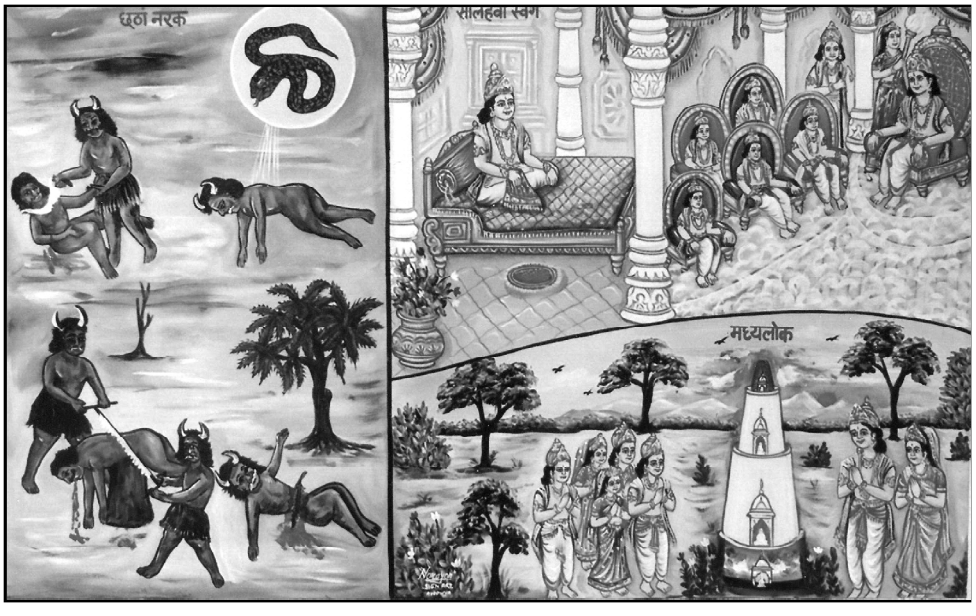
Lord Parshvanath Before 7th Birth-Agniveg Vidyadhar

Vidyunmalini, the wife of the Vidyadhar king Vidyutgati of East Videh Kshetra of Jamboodweep, gave birth to the son Agniveg (Shashiprabh dev in previous birth). Later Agniveg ruled over the country but in very young age he took Jaineshwari Deeksha listening to the preachings of Samadhigupt Muniraj. Once Agniveg Muniraj was meditating on his pure soul, suddenly the python (*Jeev* of Kamath) came there & swallowed him due to the malicious feelings of previous births. Muniraj became dev in the 16th heaven due to death with equanimous feelings while the python took birth in the 6th hell due to its cruel & violent nature.

भगवान पार्श्वनाथ 6वें भव पूर्व-अच्युत स्वर्ग में

सरलता और क्षमा की प्रतिमूर्ति वह मरुभूति का जीव पांचवे भव में अच्युत स्वर्ग के दिव्य सुखों का अनुभव कर रहा है। वहाँ बाईस सागर की आयु कैसे बीत गई उसे पता ही नहीं चलता है क्योंकि सम्यग्दर्शन से सहित वह देव सदैव तत्त्व चर्चा, जिनेन्द्र भक्ति एवं अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना आदि में अपना समय व्यतीत करता है।

पुण्य फल के रूप में प्राप्त उस अलौकिक वैभव को भोगते हुए भी उसे आत्मा और शरीर की भेदभिन्नता का पूर्ण ज्ञान है इसीलिए आयु के अंत में समाधिमरणपूर्वक शरीर छोड़कर अतिदुर्लभ मानवपर्याय में जन्म धारण कर लेता है तथा छठे नरक का नारकी (कमठ का जीव) वहाँ से निकलकर भील की पर्याय में जन्म ले लेता है।



LORD PARSHVANATH BEFORE 6TH BIRTH-IN ACHYUT HEAVEN

The *Jeev* of Marubhuti, who was the image of innocence & forgiveness, was enjoying the divine glamour of the Achyut (16th) heaven. He passed the life of 22 sagars there with *Jin-Bhakti*, worshipping in the eternal temples of Madhyalok & discussing the principles of Jainism etc. because he was having full belief in the differentiation of the body and the soul.

He accepted *Samadhimaran* at the last and so he was born as a humanbeing in the next birth. On the other side, the *Narki* of the 6th hell became a *Bheel* (tribal) after death.

Thus, we can notice that the simplicity & innocence in behaviour cause pleasures in life, while the cruel & revengeful nature has become the cause of undergoing sorrow & hardships in next births.

भगवान पार्श्वनाथ 5वें भव पूर्व-वज्रनाभि चक्रवर्ती

अच्युत स्वर्ग का वह देव जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र के अश्वपुर नगर में जब राजा वज्रवीर्य की रानी विजया के गर्भ में आया तब रानी ने एक रात्रि को पिछले प्रहर में सुदर्शन मेरु, सूर्य, चन्द्रमा देवविमान और सरोवर ये पाँच स्वप्न देखे। पुनः पति से सपनों के फल में चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करने का समाचार जानकर रानी विजया अतीव प्रसन्न हुईं।

युवावस्था में वज्रनाभि राजा ने चक्ररत्न प्राप्त कर छह खण्ड वसुधा पर एक छत्र शासन किया किन्तु वे निरंतर श्रावक के षट्कर्तव्यों का पालन करते हुए जिनधर्म को कभी नहीं भूले। प्रत्युत् दिन्प्रतिदिन जिनेन्द्रभक्ति में उनकी रुचि बढ़ती ही गई। ठीक ही है कि पुण्यात्माजन सांसारिक वैभव को पाकर कभी धर्म से बिमुख नहीं होते हैं।

एक दिन शहर के बाहर बगीचे में पधारे एक महामुनिराज के दर्शन करके चक्रवर्ती महाराज ने उनसे धर्मोपदेश सुना और तुरंत उन्होंने अपना राजपाट त्याग करके दीक्षा धारण कर ली। वे वज्रनाभि मुनिराज घोर तपश्चरण करते हुए एक बार वन में ध्यानलीन थे, तब उस कमठ के जीव ने जो छठे नरक से निकलकर जंगल में भील बना था, उसने मुनि को देखते ही उनके ऊपर बाण चला-चला कर छेदन-भेदन का खूब उपसर्ग किया।



Lord Parshvanath Before 5th Birth-Vajranabhi Chakravarti

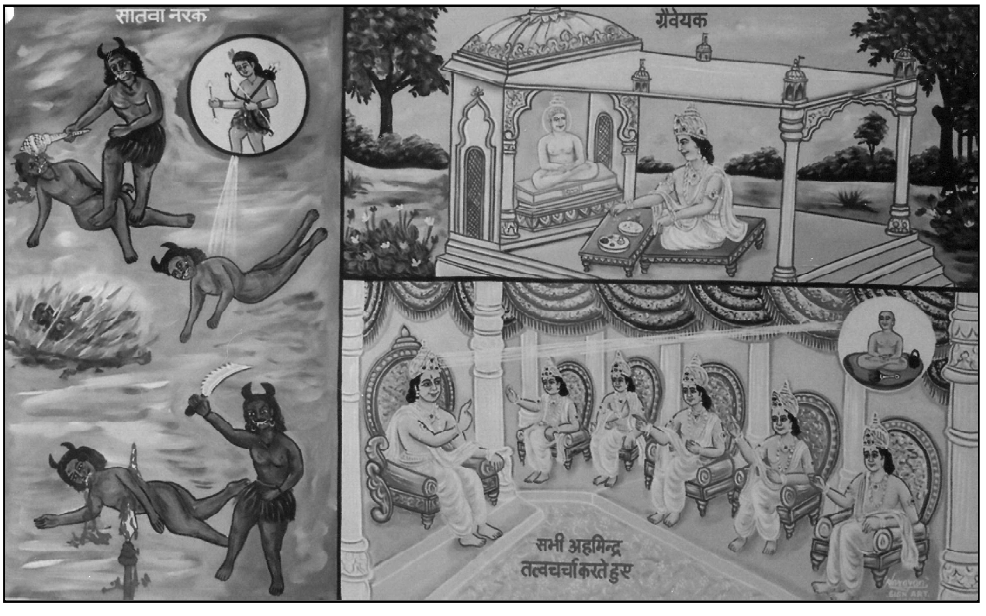
After coming from the Achyut heaven, the *Jeev* (soul) of the deity came in the womb of Maharani Vijaya, the wife of king Vajraveerya of the West Videh Kshetra of Jamboodweep. The mother saw 5 auspicious dreams indicating the birth of a *Chakravarti* son to her. Son Vajranabhi was born and later he became *Chakravarti*, who ruled over the 6 *Khandas* along with observing the vows of a *Shravak*. Once he accepted Jaineshwari Deeksha and performed hard penance for a long time. One day, the *Bheel* (the *Jeev* of Kamath) saw him and with inherent anger, pierced & killed the Muniraj with his arrows.

भगवान पार्श्वनाथ चौथे भव पूर्व-अहमिन्द्र

वज्रनाभि मुनिराज ने भील के तीक्ष्ण बाणों का उपसर्ग शांतिपूर्वक सहन किया और समाधिपूर्वक मरण करके वे सोलहवें स्वर्ग से भी ऊपर मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र बन गये, वहाँ सत्ताईस सागर तक दिव्यसुखों को उपभोग किया। लेकिन वह पापी भील मुनिहत्या के फलस्वरूप सातवें नरक में चला गया, जहाँ के दुःखों का वर्णन मुख से कर पाना भी असंभव है अर्थात् सत्ताईस सागर तक वह नरक में भीषण दुःख भोगता रहा।

वहाँ उसे कुअवधिज्ञान के प्रभाव से पूर्व भवों की सब बातें याद हो आईं कि मैंने पिछले जन्मों में बहुत पाप किये हैं। अनेकों पश्चात्ताप करने पर भी वहाँ क्षेत्रजन्य प्रभाव के कारण उसे तिल-तुषमात्र भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है।

कर्म की विचित्रता देखो, मरुभूति का जीव जो मुनि अवस्था से अहमिन्द्र बना था, वह सत्ताईस सागरों तक स्वर्ग में तत्त्वचर्चा आदि के द्वारा असीम सुखों का भोग करता रहा।



Lord Parshvanath Before 4th Birth-Ahmindra

Vajranabhi Muniraj had tolerated the atrocity of the *Bheel* very peacefully and so he became *Ahmindra* in the middle Graiveyak, which was even above the 16th heaven. He passed his lifetime of 27 Sagars there with divine comforts along with continuous *Jin-Bhakti*. However, the *Bheel* became the *Narki* in the 7th hell and underwent extreme hardships for 27 Sagars. He remembered all the sinful incidents of the previous births by the effect of wrong-clairvoyance (*Ku-avadhigyan*) but even on repeated repentance in own heart, he could not get any relief & comfort there. Think! one soul is enjoying the pleasures of heaven due to the effect of *Dharmapalan*, while the other soul is experiencing hardships due to the feelings & deeds of revenge and anger.

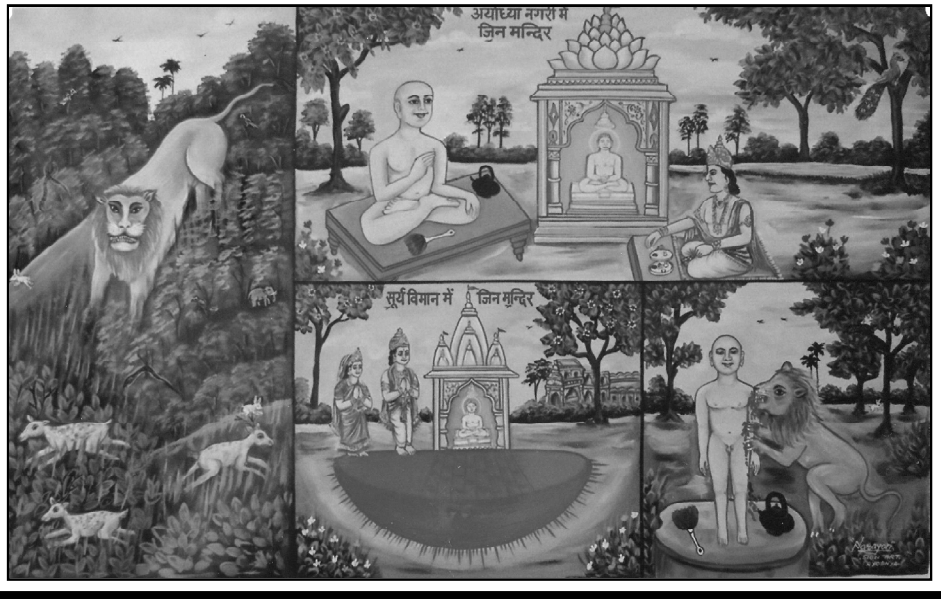
भगवान पार्श्वनाथ तीसरे भव पूर्व-राजा आनंद

ग्रैवेयक विमान के उस अहमिन्द्र ने सत्ताईस सागर की आयु बिताकर मध्यलोक की अयोध्या नगरी में महामंडलीक राजा आनंद के रूप में मनुष्य जन्म धारण कर लिया और कमठ का जीव सातवें नरक से निकलकर वहीं निकटवर्ती वन में सिंह हो गया।

महाराजा आनन्द ने राज्य सुखों का उपभोग करते हुए एक बार फाल्गुन अष्टान्हिका पर्व में मंदिर में नंदीश्वर पूजन के मध्य पधारे विपुलमती मुनिराज के मुखारविन्द से तीनों लोकों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन सुना तो उन्हें सूर्य विमान के जिनमंदिर के प्रति अगाढ़ श्रद्धा हो गई। अतः उन्होंने कुशल कारीगरों से अयोध्या की धरती पर ही मणि और सुवर्ण का एक सूर्य विमान बनवाया और उसमें रत्नमयी जिनप्रतिमाएं विराजमान कराईं पुनः शास्त्रोक्त विधि से वहाँ अनेक प्रकार से महापूजाएं की।

उत्तरपुराण में कहा है कि इस लोक में उसी समय से सूर्य की उपासना चल पड़ी है। आनन्द नरेश ने एक दिन राजसभा में बैठे-बैठे दर्पण में अपना मुख देखा तो सिर में एक सफेद बाल देखते ही उन्हें राज्य-वैभव से वैराग्य हो गया और उन्होंने अपने सुयोग्य बड़े पुत्र को राज्यभार सौंपकर सागरदत्त मुनिराज के पास दीक्षा धारण कर ली। पुनः गुरुचरणों में सोलहकारण भावनाओं को भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया।

वे आनंद मुनिराज एक बार वन में ध्यान लीन थे तब सिंह वहाँ आकर उन्हें खा लेता है और मुनि समता भाव से उपसर्ग सहन कर तेरहवें स्वर्ग के विमान में इन्द्र हो जाते हैं। आगे सिंह मरकर पांचवे नरक में चला जाता है।



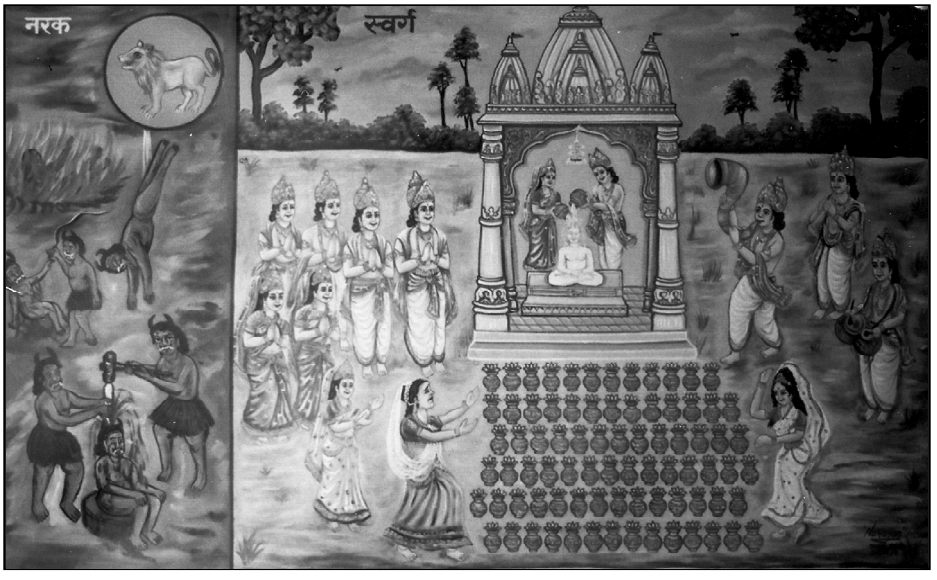
Lord Parshvanath Before 3rd Birth-King Anand

The *Ahmindra* became king Anand at Ayodhya in the next birth, while the *Narki* became the lion in the nearby forest. By listening to the preaching of a Muniraj, the king got built the *Viman* of the *Surya* (sun) with Jin temples, since then *Surya-Pujan* became famous in the world. Later king Anand took Jaineshwari Deeksha and bound Tirthankar Prakriti in the holy feet of his preceptor by the practice of *Solahkaran Bhavnas* . Once the lion (Kamath's *Jeev*) killed him while he was engrossed in meditation. Muniraj Anand became Indra in the 13th heaven by expiring with equanimity while the lion became *Narki* in the 5th hell.

भगवान पार्श्वनाथ दूसरे भव पूर्व-आनत स्वर्ग में इन्द्र

समता परिणामों की विशेषता के कारण आनंद मुनिराज ने तेरहवें स्वर्ग के इन्द्र का पद प्राप्त किया था। वहाँ उस इन्द्र को दिव्य अवधिज्ञान से ज्ञात हो जाता है कि पूर्व जन्म में मैंने महामुनि बनकर जो तपस्या की थी उसी के प्रभाव से यहाँ मुझे इन्द्र का वैभव प्राप्त हुआ है। अतः वहाँ के वैभव को देखकर वे आनंदचर इन्द्रराज धर्म और धर्म के फल में और अधिक श्रद्धा करने लगते हैं।

वे इन्द्रराज अपने परिवार देवों के साथ कभी नन्दीश्वर द्वीप में पूजन करने जाते हैं, कभी विदेहक्षेत्र में सीमंधर स्वामी आदि तीर्थंकर के समवसरण में दिव्यध्वनि का पान करते हैं तो कभी देव-देवांगनाओं के साथ मनोविनोद करते हैं। भावी तीर्थंकर वे देवेन्द्र इस अतुल वैभव को भोगते हुए भी उसमें आसक्त नहीं हो रहे हैं और वहाँ बीस सागर तक दिव्य सुखों का अनुभव कर रहे हैं।



Lord Parshvanath Before 2nd Birth-Indra at Aanat Heaven

Due to the feelings of equanimity at the time of inflictions, Anand Muniraj had become Indra in the 13th heaven. By the effect of divine clairvoyance (*Avadhigyan*), the Indra knew that he had come into the heaven due to the hard penance, done in the form of Digambar Muniraj. He enjoyed the divine pleasures for 20 Sagars along with practising Jain-Dharma with full devotion because he definitely knew that all the *Punya* was owing to Dharma only. Sometime he used to go to Nandishwar Dweep alongwith his family for worshipping, while at some other time, he used to go to the Samavsaran of Tirthankars like Simandhar Swami etc. Sometime he used to enjoy with other deities and so on.

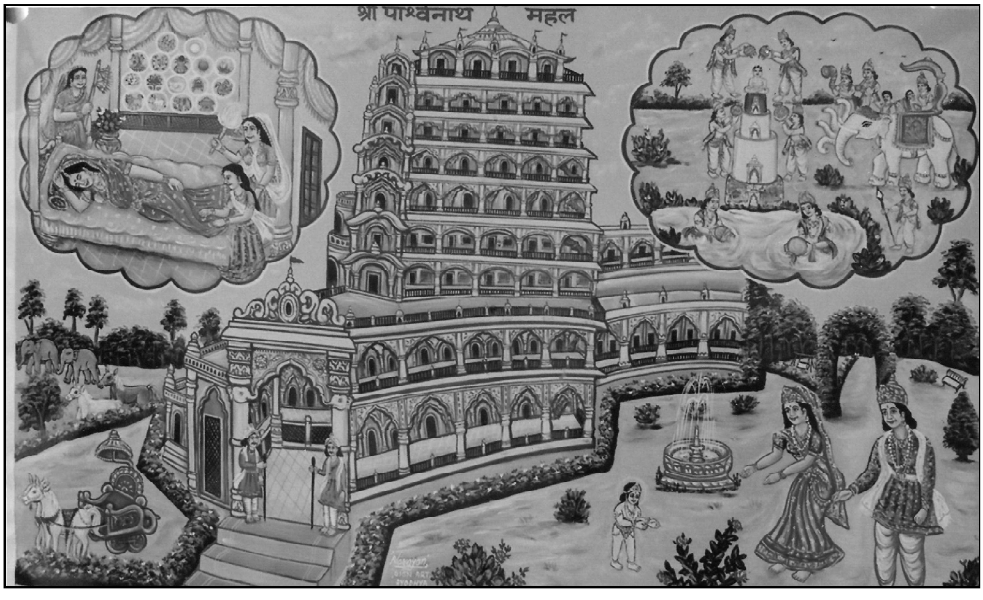
In the next birth, this Indra will be Lord Parshvanath.

भगवान पार्श्वनाथ के गर्भ-जन्मकल्याणक

वाराणसी नगरी में महाराजा अश्वसेन अपनी महारानी वामा देवी के साथ नौ मंज़िल वाले शिखराकार दिव्य महल में रहते थे। एक दिन उनके आंगन में धनकुबेर ने स्वर्ग से आकर रत्नवृष्टि शुरू कर दी और प्रतिदिन करोड़ों रत्न बरसाने लगा।

कुछ दिन (6 माह) बाद एक दिन (वैशाख वदी दूज) रात्रि के पिछले प्रहर में महारानी वामा देवी ने ऐरावत हाथी, बैल, सिंह आदि सोलह स्वप्न देखे पुनः प्रातः अपने पति से यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं कि तुम्हारे पवित्र गर्भ से तीर्थंकर महापुरुष का जन्म होगा। इसीलिए इन्द्र, देव, देवियाँ सभी तुम्हारी सेवा में लगे हुए हैं।

इस प्रकार अतिशय सुखपूर्वक दिन व्यतीत करते हुए वामा देवी ने पौष कृष्णा एकादशी के दिन सूर्य के समान तेजस्वी तीर्थंकर पुत्र को जन्म दिया। तब सौधर्मइन्द्र के साथ असंख्य देवों ने आकर प्रभु का जन्मकल्याणक महोत्सव मनाया। इन्द्र ने ऐरावत हाथी पर ले जाकर सुमेरु पर्वत की पाण्डुकशिला पर उनका जन्माभिषेक किया और उन्हें दिव्य वस्त्राभूषण से अलंकृत कर "पार्श्वनाथ" नाम से अलंकृत किया।



Garbh (Conception) & Janma (Birth) Kalyanaks of Lord Parshvanath

Maharaja Ashvasen was living along with his wife Maharani Vamadevi in 9 storeyed divine palace at Varanasi. One day Kuber started the showering of crores of jewels in his courtyard and continued this practice everyday. After 6 months, Vama Devi saw 16 dreams in the night of Vaishakh Vadi Duj indicating the incarnation of the Tirthankar child into her holy womb. Tirthankar son was born on Paush Krishna Ekadashi. Till then, showering of jewels was continued.

Indra took the child on the Panduk-Shila of Sumeru Parvat by Aeravat elephant for Birth-anointment and gave Him the name **'PARSHVANATH'**.

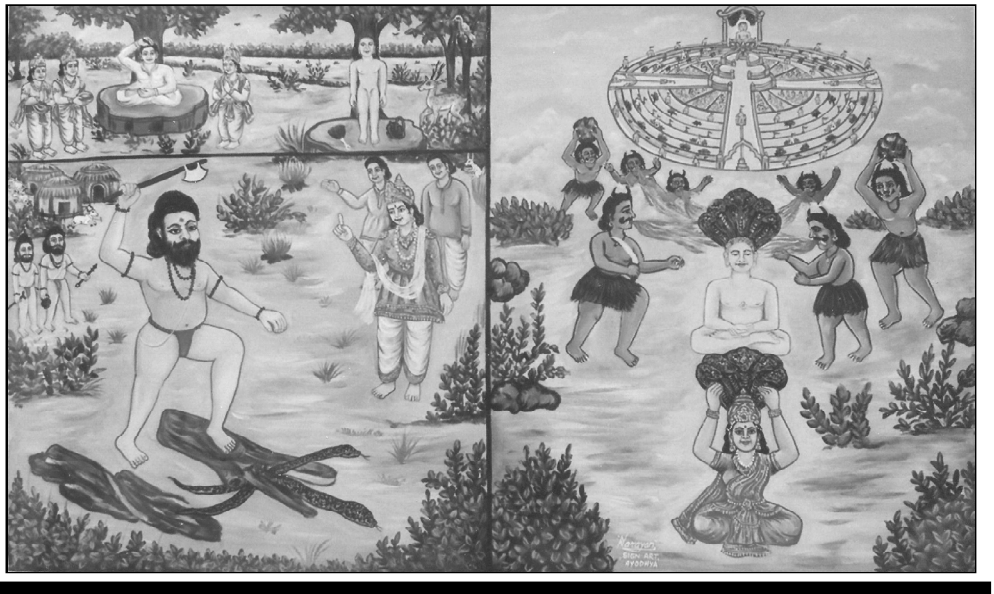
भगवान पार्श्वनाथ का नागयुगल को संबोधन, दीक्षा, उपसर्ग एवं केवलज्ञान

इन्द्र द्वारा अंगूठे में स्थापित अमृत का पान करते हुए जिनबालक पार्श्वनाथ ने शैशव से युवावस्था में प्रवेश किया। एक दिन पार्श्वकुमार ने अपने अनेक मित्रों के साथ बनारस नगरी के उद्यानों में विचरण करते हुए एक तापसी साधु को देखा जो पंचाग्नि तप कर रहा था। पार्श्वनाथ वहाँ खड़े होकर उसकी मिथ्या क्रियाएं देखने लगे, तब तापसी ने सोचा कि देखो! मैं इस बालक का नाना हूँ, फिर भी यह मेरी विनय नहीं कर रहा है पुनः वह क्रोध में भड़क कर कुल्हाड़ी से लकड़ी चीरने लगा। तत्क्षण अवधिज्ञानी पार्श्वनाथ बोल उठे कि इस लकड़ी में नागयुगल हैं, इसे मत चीरो।

तापसी को यह सुनकर और अधिक गुस्सा आ गया, किन्तु उसने ज्यों ही लकड़ी के दो टुकड़े किये, उसमें से कटे हुए छटपटाते नागयुगल भी निकल पड़े। तब पार्श्वनाथ के सम्बोधन से वे दोनों मरकर धरणेन्द्र-पद्मावती नामक यक्ष जाति के देव-देवी हो गये।

इस प्रकार अपनी अमृतमयी वाणी से अनेक जीवों का कल्याण करते हुए युवराज पार्श्वनाथ तीस वर्ष की उम्र में एक दिन सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उसी समय अयोध्या नरेश जयसेन महाराज का दूत आ गया और उसने अनेक प्रकार की भेंट समर्पित कर अयोध्या के वैभव एवं भगवान ऋषभदेव के दशभव आदि का वर्णन सुनाया। जिससे पार्श्वनाथ को वैराग्य हो गया अतः उन्होंने दीक्षा धारण कर ली।

वे भगवान एक बार किसी वन के अन्दर ध्यान में लीन थे, तभी कमठ का जीव मे पाँचवें नरक से निकलकर पशुयोनि के दुःख सहन करते हुए राजा महीपाल के रूप में महीपालपुर का राजा हो गया, पुः मिथ्यातप से मरकर शंबर नामक ज्योतिषी देव हो गया, इसने अब भी पार्श्वनाथ का पीछा नहीं छोड़ा और उनके ऊपर घोर उपसर्ा करने लगा। उसी समय धरणेन्द्र-पद्मावती ने आकर उपसर्ग दूर किया और भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इस उपसर्गविजय की भूमि को ही "अहिच्छत्र" तीर्थ की प्रसिद्धि प्राप्त हुई, जहाँ पार्श्वनाथ भगवान का प्रथम समवसरण अधर आकाश मेंनिर्मित हुआ था।



DEEKSHA (INITIATION) & KEVALGYAN (OMNISCIENCE) KALYANAKS OF LORD PARSHVANATH

Prince Parshvanath took Jaineshwari Deeksha at the age of 30 years. When he was engrossed into meditation in a forest once, an astral deity named Shambar (the *Jeev* of Kamath) started making atrocities on Him. Dharnendra & Padmavati came to protect the Lord and at the same time Parshvanath attained omniscience. This pious land was called as 'Ahichchhatra', where first Samavsaran of the Lord was created.

भगवान पार्श्वनाथ का शाश्वत निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर से निर्वाण

समवसरण में बारह सभाओं के मध्य धर्मोपदेश करते हुए प्रभु पार्श्वनाथ ने लगभग सत्तर वर्ष तक विहार किया। अंत में जब उनकी आयु एक माह की शेष रह गई तब वे विहार बंद कर सम्मेदाचल पर्वत केशिखर पर छत्तीस मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण कर विराजमान हो गये। पुनः श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातः समस्त कर्म नष्ट करके निर्वाण धाम को प्राप्त कर लिया। इन्द्रों ने उस समय उनका निर्वाण कल्याणक खूब महोत्सवपूर्वक मनाया। तब से लेकर आज तक सम्मेदशिखर के स्वर्णभद्रकूट पर भगवान पार्श्वनाथ का मोक्षकल्याणक प्रतिवर्ष भक्तगण धूमधाम से मनाते हुएनिर्वाणलाडू चढ़ाते हैं।

पंचकल्याणक वैभव को प्राप्त ऐसे उन भगवान पार्श्वनाथ के जन्म को 2883 वर्ष होचुके हैं। इसीलिए जैनसमाज की वरिष्ठतम साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने पूरेश्वेदेको भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव मनाने की प्रेरणा प्रदान की, जिसका उद्घाटन 6 जनवरी 2005 को जन्मभूमि वाराणसी में किया गया।

तीन वर्ष तक इस महोत्सव को विविध आयोजनों के साथ मनाया गया। उसमें गर्भ-जन्म एवं दीक्षाकल्याणक तीर्थ वाराणसी, केवलज्ञान कल्याणक तीर्थ अहिच्छत्र, निर्वाणकल्याणक तीर्थ सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र के साथ-साथ पार्श्वनाथ के समस्त अतिशय क्षेत्रों का भी प्रचार-प्रसार किया गया।



SALVATION OF LORD PARSHVANATH FROM SAMMED SHIKHARJI

Lord Parshvanath preached for about 70 years. When one month was remaining of His life-time, He reached Sammedachal mountain (Sammed-Shikhar), where He got Nirvan (salvation) on Shravan Shukla Saptami. At that time, Indras celebrated His Nirvankalyanak Mahotsava with great enthusiasm. Till today, devotees celebrate this Mahotsava by offering Nirvan Ladoo at the Swarnabhadra Koot of Sammed-Shikhar every year.

2883 years have passed since Lord Parshvanath was born, so Supreme Jain Sadhvi Pujya Ganini Shri Gyanmati Mataji inspired the whole country to celebrate 'LORD PARSHVANATH BIRTH-ANNIVERSARY THIRD MILLENNIUM MAHOTSAVA'. This Mahotsava was inaugurated at Varanasi, the birthland of the Lord, on 6th Jan. 2005.

With organising various programmes, the Mahotsava was celebrated for three years. In these Holy years the vast propaganda of Kalyanak Tirths and Atishaya Kshetra related to Lord Parshvanath viz. Varanasi, Ahichhatrh, Sammedshikhar etc. was done by the society.

भगवान पार्श्वनाथ प्रश्नोत्तरी

प्रस्तुति—पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज

(प्रथम भव)

प्रश्न 1 —भगवान पार्श्वनाथ दस भव पूर्व कौन सी पर्याय में थे?

उत्तर —भगवान पार्श्वनाथ दस भव पूर्व मरुभूति की पर्याय में थे।

प्रश्न 2 —मरुभूति कौन था?

उत्तर —मरुभूति राजा अरविन्द का मंत्री था।

प्रश्न 3 —राजा अरविन्द कहाँ के राजा थे?

उत्तर —राजा अरविन्द पोदनपुर के राजा थे।

प्रश्न 4 —मरुभूति को मंत्री पद की प्राप्ति कैसे हुई?

उत्तर —मरुभूति के पिता ब्राह्मण विश्वभूति पोदनपुर नरेश महाराजा अरविन्द के मंत्री थे, एक बार उन्हें संसार से वैराग्य हो गया और वह महाराजा अरविन्द से आज्ञा ले दीक्षा के लिए तत्पर हुए तब अरविंद महाराज ने परम्परा से आगत मंत्री पद उनके दोनों पुत्रों कमठ एवं मरुभूति को प्रदान किया।

प्रश्न 5 —क्या राजा से प्राप्त मंत्री पद को कमठ एवं मरुभूति दोनों ने उचित रूप से निर्वहन किया?

उत्तर —नहीं, कमठ अत्यन्त कुटिल परिणामी दुष्टात्मा था और मरुभूति अतिशय सरल स्वभावी धर्मात्मा था। मंत्री कमठ समय पाकर निरंकुश हो गया और सर्वत्र अन्याय का साम्राज्य फैला दिया जबकि मरुभूति ने उचित रूप से मंत्री पद का निर्वहन किया।

प्रश्न 6 —कमठ ने कौन सा ऐसा दुस्साहसिक कार्य किया जिससे उसे देश निकाला दिया गया?

उत्तर —कमठ ने अपने छोटे भाई मरुभूति की पत्नी के साथ व्यभिचार किया जिसकेफलस्वरूप राजा की आज्ञा से उसका सिर मुंडवाकर मुख पर कालिख पोतकर गधे पर बैठाकर सारे नगर में घुमाया गया और देश निकाला दे दिया।

प्रश्न 7 —इस अपमान को सहन करता हुआ कमठ कहाँ गया?

उत्तर —इस अपमान की अग्नि से झुलसा हुआ कमठ भूताचल पर्वत पर तापसियों के आश्रम में पहुँचा और उनके प्रमुख गुरु से दीक्षा ले तापसी बन पत्थर की शिला हाथ में लेकर तपस्या करने लगा।

प्रश्न 8 —पंचाग्नि तप किसे कहते हैं?

उत्तर —चारों तरफ अग्नि जलाकर और वृक्ष पर छीकें में बैठ जाना तथा नीचे भी अग्नि जला लेना पंचाग्नि तप है।

प्रश्न 9 —क्या मरुभूति भाई के इस निन्दनीय कार्य के कारण उसे क्षमा कर सका?

उत्तर —सरल स्वभावी मरुभूति ने न सिर्फ भाई को क्षमा ही प्रदान की अपितु भाई से मिलने व वापस घर लाने की उत्कण्ठा से तापसी आश्रम में जाकर भाई से विनयपूर्वक लौटने की प्रार्थना भी की।

प्रश्न 10—मरुभूति की प्रार्थना को स्वीकार कर क्या कमठ वापस घर आ गया?

उत्तर —जब मरुभूति ने कमठ से प्रार्थना की तब वह वापस घर न आकर अत्यन्त क्रोधित हो उठा और क्रोधवश पत्थर की शिला भाई मरुभूति के सिर पर पटक दी जिससे मरुभूति की वहीं तत्काल मृत्यु हो गयी।

प्रश्न 11—इस कुकृत्य को करने के बाद कमठ का क्या हुआ?

उत्तर —इस कुकृत्य के फल से प्रमुख तापसी गुरु ने उसकी बार-बार निन्दा करते हुए आश्रम से निकाल दिया।

प्रश्न 12—आश्रम से निकलकर वह कहाँ गया?

उत्तर –आश्रम से निकलकर वह पापी वन में पहुँचकर भीलों से मिलकर चोरी, डकैती आदि करने लगा।

प्रश्न 13–मरुभूति कहाँ गया?

उत्तर –मरुभूति भाई के मोहवश मरकर अतिसघन सल्लकी नामक वन में वज्रघोष नाम का विशालकाय हाथी हो गया।

(दूसरा भव)

प्रश्न 1 –सल्लकी वन में कौन से मुनिराज का संघ ठहरा था?

उत्तर –उस वन में आचार्यश्री अरविन्द मुनि का विशाल संघ ठहरा था।

प्रश्न 2 –मरुभूति के जीव वज्रघोष हाथी ने उन मुनियों को देखकर क्या किया?

उत्तर –वज्रघोष हाथी विशाल संघ में क्षोभ उत्पन्न करता हुआ विचरण करने लगा और सोरसंघ में खलबली मचा दी।

प्रश्न 3 –उसे किस प्रकार शांत किया गया?

उत्तर –वह मतवाला हाथी अपने कपोलों से मदजल को बरसाता हुआ जब मुनिराज अरबिन्द के सम्मुख पहुँचा तब सुमेरु के समान अचल मुनि के वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह देखकर उसे जातिस्मरण होगया और वह शांत हो गया।

प्रश्न 4 –गजराज के शांत हो जाने पर मुनिराज ने क्या किया?

उत्तर –गजराज के शांत हो जाने पर मुनिराज ने उसे पूर्वजन्म की सारी बातें याद दिलाते हुए संसार की असारता का बोध करा दिया और सम्यक्त्व ग्रहण करा दिया।

प्रश्न 5 –अरविन्द मुनि कौन थे?

उत्तर –अरविन्द मुनि पोदनपुर के राजा अरविन्द ही थे जिन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने दीक्षा ले ली।

प्रश्न 6 –उनके वैराग्य का क्या कारण था?

उत्तर –एक बार राजा अरविन्द अपने महल की छत पर बैठे हुए प्राकृतिक छटा को देख रहे थे तभी मेघ पटल से निर्मित एक सुन्दर मंदिर (उन्नत शिखर युक्त) दिखाई दिया। राजा ने सोचा कि ऐसा सुन्दर मंदिर तो बनवाना चाहिए और चित्र खींचने को कागज-कलम उठाया तभी वह सुन्दर भवन विघटित हो गया, यह देख उन्हें संसार की स्थिति का सच्चा ज्ञान हो गया और राज्यभार पुत्र को सौंपकर उन्होंने गुरु के पास जाकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

प्रश्न 7 –अरविन्द मुनि किस नगर की ओर विहार कर रहे थे?

उत्तर –अरविन्द मुनि संघ सहित सम्मेदशिखर महातीर्थ की वंदना हेतु जा रहे थे।

प्रश्न 8 –सम्मेदशिखर की वन्दना करने से क्या फल मिलता है?

उत्तर –सम्मेदशिखर की एक भी वंदना करने वाले जीव भव्य ही होते हैं, उन्हें नरक गति व तिर्यंचगति नहीं मिलती है, यहाँ तक कि 49 भव के भीतर वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न 9 –मोक्षमहल में चढ़ने के लिए प्रथम सीढ़ी क्या है?

उत्तर –सम्यग्दर्शन।

प्रश्न 10–सम्यग्दर्शन की क्या परिभाषा है?

उत्तर –सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर दृढ़ श्रद्धान करना, इनके सिवाय रागद्वेषादि मल से मलिन ऐसे देव को, दयारहित धर्म को और पाखंडी साधुओं को नहीं मानना ही सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न 11–पंच अणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर –हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एवं परिग्रह इन 5 पापों का एकदेश त्याग करना पांच अणुव्रत है।

प्रश्न 12–सात शील के नाम बताइये?

उत्तर –3 गुणव्रत एवं 4 शिक्षाव्रत ये सात शील हैं।

प्रश्न 13–किस आयु के बंध जाने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रत को ग्रहण नहीं कर सकता है?

उत्तर –देवायु के सिवाय अन्य आयु के बंध जाने पर।

प्रश्न 14–अणुव्रती एवं महाव्रती को किस गति का बंध नहीं होता है?

उत्तर –जो अणुव्रती या महाव्रती है वह नियम से देवगति में ही जावेगा अन्यत्र तीन गति में जा नहीं सकता अथवा कदाचित् महाव्रती महामुनि है तो मोक्ष भी जा सकता है।

प्रश्न 15–मुनिराज से सम्यक्त्व ग्रहण करने के बाद क्या हाथी ने उसका पालन किया?

उत्तर –मुनिराज से सम्यक्त्व ग्रहण करने के बाद गजराज ने उसका विधिवत् पालन करते हुए सभी के प्रति पूर्ण क्षमा रखी और पांच अणुव्रतों एवं सात शीलों का विधिवत् पालन करते हुए संयमासंयम को साधा।

प्रश्न 16–कीचड़ में फंस जाने पर हाथी ने क्या चिन्तवन किया?

उत्तर –कीचड़ में फंस जाने पर उस गजपति (श्रावक) ने सोचा–अब मुझे इस अथाह कीचड़ से कोई निकालने वाला नहीं है जैसे कि मोहरूपी कीचड़ में फंसे हुए संसारी जीव को इस संसाररूपी अथाह समुद्र से निकालने वाला कोई नहीं है। हाँ, यदि मैं सल्लेखनारूपी बंधु का सहारा ले लूँ तो वह मुझे अवश्य ही यहाँ से निकालकर उत्तम देवगति में पहुँचा सकता है।

प्रश्न 17–हाथी ने किस प्रकार की सल्लेखना ग्रहण की?

उत्तर –हाथी ने चतुराहार का जीवन भर के लिए त्याग करके महामंत्र का स्मरण करते हुए पंच परमेष्ठी का ही अवलम्बन ले लिया।

प्रश्न 18–उसकी मृत्यु किस प्रकार हुई?

उत्तर –कुछ समय पूर्व एक कुक्कुट जाति का सांप वहाँ आया और पूर्व जन्म के संस्कारवश उस हाथी को डस लिया। वेदना से व्याकुल हाथी ने गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश का चिन्तवन करते हुए धर्मध्यानपूर्वक इस नश्वर देह का त्याग किया।

प्रश्न 19–हाथी ने किस गति की प्राप्ति की?

उत्तर –हाथी बारहवें स्वर्ग में स्वयंप्रभ विमान में 'शशिप्रभ' नाम का देव हुआ।

प्रश्न 20–कुक्कुट सर्प कौन था?

उत्तर –कुक्कुट सर्प कमठ का जीव था।

(तीसरा भव)

प्रश्न 1 –देवों को जन्म से कितने ज्ञान होते हैं?

उत्तर –देवों को जन्म से मति, श्रुत व अवधि, ऐसे तीन ज्ञान होते हैं।

प्रश्न 2 –स्वयंप्रभ विमान में जन्में शशिप्रभ देव ने सर्वप्रथम क्या किया?

उत्तर –देव ने सर्वप्रथम मंगल स्नान कर वस्त्रालंकारों से सुसज्जित हो जिनप्रतिमाओं की पूजा की।

प्रश्न 3 –उस देव की आयु कितनी थी?

उत्तर –16 सागर।

प्रश्न 4 –शशिप्रभ देव की आहार प्रक्रिया बताइये?

उत्तर –शशिप्रभ देव का अनुपम मानसिक आहार था, सोलह हजार वर्ष के व्यतीत होने पर भोजन की इच्छा होती थी और उसी समय कंठ से अमृत झर जाता था जिससे उसकी तृप्ति हो जाती थी।

प्रश्न 5 –उसकी श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया क्या थी?

उत्तर –सोलह पक्ष (8 महीना) बीतने के बाद वह देव श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था।

प्रश्न 6 –उसका अवधिज्ञान कहाँ तक था?

उत्तर –चतुर्थ नरक पर्यंत उसका अवधिज्ञान था।

प्रश्न 7 –उस देव की कितनी ऋद्धियाँ थीं?

उत्तर –उस देव की अणिमा, महिमा आदि आठ ऋद्धियाँ थीं।

प्रश्न 8 –देव शशिप्रभ की नित्य चर्या क्या थी?

उत्तर –कभी वह देव सुदर्शन मेरु पर जाकर सोलह चैत्यालयों की वंदना करता था, कभीवह नंदीश्वर द्वीप में बावन चैत्यालयों में पूजा करता था, कभी तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के अवसर पर भक्तिभाव से भाग लेता था, कभी चारणऋद्धिधारी मुनियों की वंदना करके उनसे उपदेश सुनता था, कभी अपने सच्चे गुरु अरविन्द मुनिराज की पूजा करता था, कभी यहाँ मध्यलोक में आकर सम्मेदशिखर की वंदना कर असीम पुण्य का संचय करता था। कभी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा, तो कभी नंदनवन में विचरण करते हुए अपूर्व पुण्य के फल का उपभोग करता था।

प्रश्न 9 –कमठ का जीव कुक्कुट सर्प मरकर कहाँ गया?

उत्तर –कुक्कुट सर्प अपनी आयु पूर्ण करके रौद्रध्यान रूप अशुभ परिणामों से मरा और पांचवें नरक में गया।

प्रश्न 10–क्या नरक में मात्र दुःख ही दुःख है या कोई सुख भी है?

उत्तर –नरक में इतना असह्य दुःख है कि वहाँ के दुःखों का वर्णन यदि करोड़ों जिह्वा बनाकर भी सरस्वती देवी करने लगे तो भी वह असमर्थ हो जावेगी। वहाँ सुख लेशमात्र भी नहीं है।

प्रश्न 11–क्या नारकी जीवों का जन्म देवों की भांति उपपाद शैय्या पर होता है?

उत्तर –नहीं, नारकी जीव जन्म लेते ही अधोमुख गिरते ही उछलता है और पुनः गिरता है, उस समय वहाँ की पृथ्वी का स्पर्श भी इतना भयंकर होता है कि मानो हजारों बिच्छुओं ने एक साथ ही डंक मार दिया हो।

प्रश्न 12–नरक की मिट्टी कैसी है?

उत्तर –नरक की दुर्गन्धित मिट्टी यदि यहाँ आ जाए तो कई कोसों तक जीव मर जावें।

प्रश्न 13–उस नारकी जीव की आयु कितने सागर प्रमाण है?

उत्तर –वहाँ इसकी आयु सत्रह सागर प्रमाण है।

(चौथा भव)

प्रश्न 1 –शशिप्रभ देव ने स्वर्ग से च्युत होकर कौन सी पर्याय में जन्म धारण किया?

उत्तर –शशिप्रभ देव स्वर्ग से च्युत होकर विद्याधर राजा विद्युत्गति की महारानी विद्युन्माली से अग्निवेग नामक बालक के रूप में जन्मा।

प्रश्न 2 –राजा विद्युत्गति कहाँ के राजा थे?

उत्तर –जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश के विजयार्ध पर्वत के लोकोत्तम नामक नगर के राजा थे।

प्रश्न 3 –कुमार अग्निवेग को वैराग्य कब हुआ?

उत्तर –राज्य संपदा को भोगते हुए सहसा भरी जवानी में ही उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया।

प्रश्न 4 –उन्होंने किन गुरु से दीक्षा ग्रहण की?

उत्तर –उन्होंने समाधिगुप्त मुनिराज के समीप धर्मश्रवण कर पंचेन्द्रिय विषयों को विषवत् विषम समझकर तत्क्षण ही तृणवत्, उनका त्याग कर दिया और पंचमहाव्रतों को प्राप्त कर अपने आप में कृतकृत्य हो गये।

प्रश्न 5 –दीक्षा लेने के पश्चात् उन्होंने क्या किया?

उत्तर –दीक्षा के पश्चात् वे अग्निवेग महामुनि घोरातिघोर तपश्चरण करने लगे।
प्रश्न 6 –कमठ के जीव उस नारकी ने मरकर कहाँ जन्म लिया?
उत्तर –कमठ के जीव उस नारकी ने मरकर भयंकर अजगर के रूप में जन्म लिया।
प्रश्न 7 –क्या उस अजगर ने इस जन्म में भी मरुभूति के जीव पर उपसर्ग किया?
उत्तर –उस अजगर ने मुनि को देखते ही इस जन्म में भी उपसर्ग करते हुए क्रोध से भयंकर होकर उन्हें निगल लिया।
प्रश्न 8 –उपसर्ग सहन करते हुए वे मुनि इस नश्वर शरीर का त्याग कर कहाँ जन्मे?
उत्तर –मुनिराज परम समताभाव से इस नश्वर शरीर से छूटकर सोलहवें स्वर्ग के पुष्कर विमान में देव हो गए।

(पाँचवा भव)

प्रश्न 1 –देवों का जन्म कैसा होता है?
उत्तर –देवों का जन्म उपपाद शैय्या पर होता है, जन्म लेते ही वे सोलह वर्ष के युवा की भांति हो जाते हैं।
प्रश्न 2 –उस देव का वैभव कैसा था?
उत्तर –उस देव ने देव-देवांगनाओं के द्वारा सेवित असीम वैभव को प्राप्त कर लिया।
प्रश्न 3 –अच्युत देव की आयु कितनी थी?
उत्तर –22 सागर प्रमाण।
प्रश्न 4 –उसका मानसिक आहार कैसा था?
उत्तर –22 हजार वर्ष व्यतीत होने पर उनका मानसिक आहार होता था।
प्रश्न 5 –कितने पक्ष व्यतीत होने पर वह श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था?
उत्तर –22 पक्ष व्यतीत होने पर।
प्रश्न 6 –देव के शरीर की ऊँचाई कितनी थी?
उत्तर –3 हाथ।
प्रश्न 7 –मुनि पर उपसर्ग करने के फलस्वरूप अजगर मरकर कहाँ गया?
उत्तर –अजगर सर्प मुनि हत्या के घोर पाप से क्रूर परिणामों से मरकर छठे नर्क में गया।
प्रश्न 8 –वहाँ उसकी आयु कितने वर्ष की थी?
उत्तर –22 सागर।

(छठा भव)

प्रश्न 1 –अच्युत देव स्वर्ग से च्युत होकर कहाँ जन्मे?
उत्तर –अच्युत देव स्वर्ग से च्युत होकर जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में पद्म देश के अश्वपुर नगर में शिशु वज्रनाभि के रूप में जन्मे।
प्रश्न 2 –अश्वपुर नगर के राजा का नाम बताइये?
उत्तर –अश्वपुर नगर के राजा महाराज वज्रवीर्य नरेन्द्र थे।
प्रश्न 3 –शिशु वज्रनाभि की माता का क्या नाम था?
उत्तर –शिशु वज्रनाभि की माता का नाम महारानी विजया था।
प्रश्न 4 –शिशु वज्रनाभि की माता ने उसके जन्म से पूर्व कितने स्वप्न देखे?
उत्तर –शिशु वज्रनाभि की माता ने उसके जन्म से पूर्व 5 स्वप्न देखे।
प्रश्न 5 –वे स्वप्न क्या थे?

उत्तर –(1) सुदर्शन मेरु (2) सूर्य (3) चन्द्रमा (4) देवविमान (5) जल से परिपूर्ण सरोवर।

प्रश्न 6 –रानी विजया ने उन स्वप्नों का फल किससे पूछा?

उत्तर –रानी विजया ने उन स्वप्नों का फल महाराजा वज्रवीर्य से पूछा।

प्रश्न 7 –राजा ने उनका क्या फल बताया?

उत्तर –राजा ने स्वप्नों का फल बताते हुए कहा कि तुम चक्रवर्ती पुत्ररत्न को जन्म दोगी।

प्रश्न 8 –चक्रवर्ती राजा कितने खण्ड का स्वामी होता है?

उत्तर –छः खण्ड का।

प्रश्न 9 –चक्रवर्ती का क्या वैभव होता है?

उत्तर –चक्रवर्ती के ऐरावत हाथी के समान 84 लाख हाथी होते हैं, वायु के समान वेगशाली रत्नों से निर्मित 84 लाख रथ होते हैं, पृथ्वी की तरह आकाश में भी गमन करने वाले अठारह करोड़ उत्तम घोड़े होते हैं और योद्धाओं का मर्दन करने वाले 84 करोड़ पदाति (पियादे) होते हैं। 32 हजार नाट्यशालाएं, 72 हजार नगर, 96 करोड़ गाँव, 99 हजार द्रोणमुख, 48 हजार पत्तन, 16 हजार खेट, 56 अन्तर्द्वीप, 14 हजार संवाह होते हैं। भोजनशाला में चावल पकाने के लिए 1 करोड़ हंडे, बीज बोने की नली लगे 1 लाख करोड़ हल, 3 करोड़ गौशालाएं, 700 कुक्षवास, 28 हजार गहनवन व अठारह हजार आर्यखण्ड के म्लेच्छ राजा होते हैं।

प्रश्न 10–चक्रवर्ती का शरीर कैसा होता है?

उत्तर –चक्रवर्ती का शरीर वज्रमय होता है, उनका संस्थान समचतुरस्र होता है, छह खण्ड के सभी राजाओं में जितना बल होता है, उन सबसे अधिक बल उनके एक शरीर में होता है।

प्रश्न 11–उनके चक्ररत्न का क्या प्रभाव रहता है?

उत्तर –उनके चक्ररत्न के प्रभाव से छह खण्ड के सभी राजा उनकी आज्ञा को सिर से धारण करते हैं। 32 हजार मुकुटबद्ध राजा उनके चरणों में नत रहते हैं।

प्रश्न 12–चक्रवर्ती की कितनी रानियाँ होती हैं?

उत्तर –चक्रवर्ती की 96 हजार रानियाँ होती हैं जिनमें से 32 हजार रानियाँ आर्यखण्ड की,32 हजार रानियाँ विद्याधर कन्याएं एवं 32 हजार रानियाँ म्लेच्छ खण्ड में जन्में राजाओं की हैं। ये सब अप्सराओं के समान सुन्दर होती हैं।

प्रश्न 13–चक्रवर्ती की कितनी निधियाँ होती हैं?

उत्तर –9 निधियाँ होती हैं?

प्रश्न 14–9 निधियों के नाम बताइये?

उत्तर –काल, महाकाल, नैसर्प, पांडुक, पद्म, माणव, पिंगल, शंख और सर्वरत्न।

प्रश्न 15–काल निधि से किसकी प्राप्ति होती है?

उत्तर –काल निधि से काव्य, कोश, अलंकार, व्याकरण आदि शास्त्र और वीणा, बांसुरी,नगाड़े आदि मिलते रहते हैं।

प्रश्न 16–महाकाल निधि का क्या उपयोग है?

उत्तर –महाकाल निधि से असि, मसि, कृषि आदि छह कर्मों के साधन ऐसे समस्त पदार्थ और संपदाएं निरन्तर उत्पन्न होती रहती हैं।

प्रश्न 17–नैसर्प निधि क्या देती है?

उत्तर –नैसर्प निधि शय्या, आसन, मकान आदि देती है।

प्रश्न 18–पांडुक निधि का क्या कार्य है?

उत्तर –पांडुक निधि समस्त धान्य और छहों रसों को उत्पन्न करती है।

प्रश्न 19–पद्मनिधि क्या करती है?

उत्तर –पद्मनिधि रेशमी, सूती वस्त्र आदि प्रदान करती है।

प्रश्न 20–शंखनिधि का क्या उपयोग है?

उत्तर –शंखनिधि सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करने वाले सुवर्ण को देती है।

प्रश्न 21–सर्वरत्न निधि क्या देती है?

उत्तर –सर्वरत्ननिधि महानील, इन्द्रनील, पद्मराग, वैडूर्य, स्फटिक आदि अनेक प्रकार केरत्नों और मणियों को देती है।

प्रश्न 22–चक्रवर्ती के कितने रत्न होते हैं?

उत्तर –14 रत्न होते हैं।

प्रश्न 23–इनमें से कितने रत्न सजीव और कितने निर्जीव होते हैं?

उत्तर –इनमें से 7 रत्न सजीव और 7 रत्न निर्जीव होते हैं।

प्रश्न 24–इन रत्नों का क्या कार्य है?

उत्तर –ये सब रत्न पृथ्वी की रक्षा और विशाल ऐश्वर्य और उपभोग के साधन हैं।

प्रश्न 25–14 रत्नों में से 7 निर्जीव रत्नों के नाम बताइये?

उत्तर –चक्र, छत्र, दंड, खड्ग, मणि, चर्म और कांकिणी ये सात निर्जीव रत्न हैं।

प्रश्न 26–सात सजीव रत्नों के नाम बताइये?

उत्तर –सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, तक्ष (सिलावट) और पुरोहित ये सात सजीव रत्न हैं।

प्रश्न 27–चक्रवर्ती वज्रनाभि के चक्र का क्या नाम था?

उत्तर –सुदर्शन चक्र।

प्रश्न 28–उनके छत्र का क्या नाम था?

उत्तर –सूर्यप्रभ छत्र।

प्रश्न 29–उनके दण्डरत्न का क्या कार्य है?

उत्तर –दण्डरत्न से गुफा का द्वार खोलते हैं।

प्रश्न 30–सौनन्दक नामक तलवार से क्या करते हैं?

उत्तर –सौनन्दक तलवार को देखकर वैरीजन कम्पित होकर चक्रवर्ती की शरण में आ जाते हैं।

प्रश्न 31–मणिरत्न का काम बताइये?

उत्तर –मणिरत्न (चूड़ामणि) अंधकार को दूर कर देता है।

प्रश्न 32–चर्मरत्न और कांकिणी का क्या अर्थ है?

उत्तर –चर्मरत्न से मेघकृत जल के उपद्रव से सेना की रक्षा होती है और कांकिणी रत्न से गुफा में सूर्य-चंद्र का आकार बनाकर प्रकाश फैलाया जाता है।

प्रश्न 33–सेनापति रत्न और गृहपति रत्न का क्या कार्य है?

उत्तर –सेनापति रत्न दिग्विजय में सभी योद्धाओं से अजेय रहता है और कामवृष्टि नामक गृहपति रत्न घर के सारे काम-काज संभाल लेता है।

प्रश्न 34–अन्य सजीव रत्नों के क्या-क्या कार्य हैं?

उत्तर –विजयगिरि नामक ऐरावत सदृश उत्तम हाथी राजा का वाहन बनता है। पवनंजय नाम का घोड़ा स्थल के समान समुद्र में भी दौड़ लगाता है। सुभद्रा नाम का स्त्रीरत्न चक्रवर्ती के भोगसुख का साधन है जो कि अपने हाथ की शक्ति से वज्र को भी दूर कर सकती है। भद्रपुर नामक तक्ष रत्न स्थान-स्थान पर सुन्दर महलों का निर्माण करता है और बुद्धिसागर नाम का पुरोहित रत्न सभी निमित्तादि विद्या में प्रवीण रहता है, सभी धार्मिक कार्य उसी के अधीन रहते हैं।

प्रश्न 35–चक्रवर्ती के अन्य भोगोपभोग साधन कितने और कौन से हैं?

उत्तर –चक्रवर्ती के नवनिधि, पट्टरानियां, नगर, शय्या, आसन, सेना, नाट्यशाला, भाजन, भोजन और सवारी ये दस प्रकार के भोगोपभोग के साधन रहते हैं।

प्रश्न 36–चक्रवर्ती के भण्डार का क्या नाम है?

उत्तर –चक्रवर्ती के भण्डार का नाम कुबेरकांत है जो कभी खाली नहीं होता है।

प्रश्न 37–कोठार का क्या नाम है?

उत्तर –'वसुधारक' नाम का अटूट कोठार है।

प्रश्न 38–उनकी रत्नमाला का नाम बताइये?

उत्तर –अवतंसिका।

प्रश्न 39–उनके तंबू और शय्या का क्या नाम है?

उत्तर –उनका बहुत ही मनोहर कपड़े का बना हुआ 'देवरम्य' नाम का तम्बू है जिसके पाए रत्नमयी हैं, जो सिंह के आकार के हैं, ऐसी 'सिंहवाहिनी' नाम की शय्या है।

प्रश्न 40–सिंहासन का क्या नाम है?

उत्तर –'अनुत्तर' नाम का सबसे श्रेष्ठ सिंहासन है।

प्रश्न 41–चामर का नाम बताइये?

उत्तर –'अनुपमा' (देवप्रदत्त)।

प्रश्न 42–उनके मणिकुंडल, खड़ाऊँ व कवच का नाम बताइये?

उत्तर –विद्युत्प्रभ नामक मणिकुंडल हैं, रत्नों की किरणों से व्याप्त 'विषमोचिका' नाम की खड़ाऊँ है जो कि चक्रवर्ती के सिवाय अन्य किसी के पैर का स्पर्श होते ही विष को छोड़ने लगती है तथा कवच का नाम 'अभेद्य' है।

प्रश्न 43–वज्रनाभि चक्रवर्ती के रथ का नाम बताइये?

उत्तर –अजितंज।

प्रश्न 44–धनुष और बाण का क्या नाम है?

उत्तर –'वज्रकांड' नाम का धनुष है और 'अमोघ' नाम के सफल बाण हैं।

प्रश्न 45–उनके पास कौन सी शक्ति है?

उत्तर –शत्रु को नाश करने वाली 'वज्रतुंडा' नाम की प्रचंड शक्ति है।

प्रश्न 46–भाला एवं छुरी का नाम बताइये?

उत्तर –'सिंहाटक' नाम का भाला और रत्ननिर्मित मूठ वाली 'लोहवाहिनी' नाम की छुरी है।

प्रश्न 47–विशेष शस्त्र का क्या नाम है?

उत्तर –'मनोवेग' नाम का कठाव जाति का एक विशेष शस्त्र है।

प्रश्न 48–चक्रवर्ती की बारह भेरियों के नाम बताइये?

उत्तर –चक्रवर्ती के 'आनंदिनी' नाम की बारह भेरी हैं जो अपनी आवाज को 12 योजन्तक फैलाकर बजा करती हैं।

प्रश्न 49–नगाड़े कितने हैं? नाम बताइये?

उत्तर –'विजयघोष' नाम के 12 नगाड़े हैं जिनकी आवाज लोग आनंद के साथ सुना करते हैं।

प्रश्न 50–उनके शंखों की कितनी संख्या है?

उत्तर –उनके 'गंभीरावर्त' नाम के 24 शंख हैं जो कि समुद्र से उत्पन्न हुए हैं।

प्रश्न 51–उनका दिव्य भोजन क्या है?

उत्तर –चक्रवर्ती के 'महाकल्याण' नाम का दिव्य भोजन है।

प्रश्न 52–पताकाएं कितनी हैं?

उत्तर –48 करोड़।

प्रश्न 53–क्या इतने वैभव को प्राप्त कर भी वे धर्मकार्य करते थे?

उत्तर –चक्रवर्ती वज्रनाभि इतने वैभव को प्राप्त करके भी धर्म को नहीं भूले थे प्रत्युत् अधिक-अधिक रूप से प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव की पूजन करते थे, निर्ग्रन्थ गुरुओं व अन्य त्यागियों को आहारादि दान देते थे तथा निरन्तर शील का पालन करते हुए समय-समय पर उपवास भी करते थे।

प्रश्न 54–वज्रनाभि चक्रवर्ती को इतने अतुल्य वैभव के बीच वैराग्य कैसे हुआ?

उत्तर –एक बार उस नगर में एक महामुनि पधारे, उनके द्वारा दिये गए दिव्य अमृतमयी उपदेश को सुनकर वे पंचेन्द्रियों के विषयों से विरक्त हो गए और निर्ग्रन्थ महामुनि बन गए।

प्रश्न 55–दीक्षा के पश्चात् उन्होंने क्या किया?

उत्तर –दीक्षा के पश्चात् उन्होंने दुर्द्धर तपश्चरण किया।

प्रश्न 56–महामुनि वज्रनाभि के ऊपर उपसर्ग किसने किया?

उत्तर –एक क्रूरकर्मा भिल्लराज ने कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके शरीर का भेदन कर कायर जनों से असहनीय भयंकर उपसर्ग किया।

प्रश्न 57–ऐसी स्थिति में मुनिराज ने क्या किया?

उत्तर –मुनिराज शरीर से पूर्णतया निस्पृह होकर ज्ञानदर्शन स्वरूप अपनी आत्मा का ध्यान करते हुए धर्मध्यान में स्थिर हो गए और इस नश्वर शरीर से चैतन्य आत्मा का प्रयाण हो गया।

प्रश्न 58–इस नश्वर देह का त्याग कर उन्होंने किस गति की प्राप्ति की?

उत्तर –इस नश्वर देह का त्यागकर वे मध्यम ग्रैवेयक के मध्यम विमान में श्रेष्ठ अहमिन्द्र हो गए।

(सातवाँ भव)

प्रश्न 1 –अहमिन्द्र की आयु कितने सागर की थी?

उत्तर –27 सागर।

प्रश्न 2 –अहमिन्द्र का शरीर कैसा था?

उत्तर –अहमिन्द्र का शरीर अतिशय देदीप्यमान, समचतुरस्र संस्थान से युक्त था।

प्रश्न 3 –अहमिन्द्र कहाँ-कहाँ जाते हैं?

उत्तर –अहमिन्द्र परक्षेत्र में विहार नहीं करते हैं।

प्रश्न 4 –स्वर्ग में रहते हुए वे क्या करते हैं?

उत्तर –अहमिन्द्र तत्त्वचर्चा में तल्लीन रहते हुए सम्यग्दर्शन की प्रशंसा करते हैं और अपनी आत्मा के अधीन उत्पन्न हुए उत्कृष्ट सुख को धारण करते हुए सदैव प्रसन्न रहते हैं।

प्रश्न 5 –अहमिन्द्र का जीव स्वर्ग से च्युत होकर कहाँ जन्मा?

उत्तर –अहमिन्द्र का जीव स्वर्ग से च्युत होकर अयोध्या में आनन्द नामक राजकुमार के रूप में जन्मा।

प्रश्न 6 –कमठ का जीव भील मरकर कहाँ गया?

उत्तर –भील रौद्रध्यानपूर्वक शरीर को छोड़कर मुनिहत्या के पाप से सातवें नरक में चला गया।

प्रश्न 7 –जन्मते ही उसे किस दुख का सामना करना पड़ा?

उत्तर –उस अंधकूपमय नरकवास में उसने औंधे मुख जन्म लिया और जन्म लेते ही भूमि पर धड़ाम से गिरा, भूमि

का स्पर्श होते ही जैसे हजारों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो, ऐसी भयंकर वेदना हुई, पुनः वह नारकी 50 योजन तक ऊपर उछला और गिरा, जैसे तपे हुए तवे पर तिलों को डालते ही वे पुटपुट उछलने लगते हैं। छिन्न-भिन्न शरीर होता हुआ अत्यन्त दुखी और भयभीत उसी धरा पर लोट-पोटकर बिलबिलाने लगा।

प्रश्न 8 –नारकी जीव के कितने और कौन से ज्ञान होते हैं?

उत्तर –नारकी जीव के कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये तीन ज्ञान होते हैं।

प्रश्न 9 –वहाँ भूख लगने पर क्या आहार है?

उत्तर –नारकी जीव यदि तीन लोक का अन्न भी खा जायें तो भी उनकी भूख शांत नहीं हो सकती है किन्तु खाने को वहाँ एक कण भी नसीब नहीं होता है।

प्रश्न 10–प्यास लगने पर पीने योग्य वस्तु क्या है?

उत्तर –सागर के समस्त जल को पीने के बाद भी प्यास बुझ नहीं सकती, फिर भी वँहापर एक बूँद पानी नहीं मिलता है।

प्रश्न 11–क्या नरक में हर समय ठण्डक रहती है?

उत्तर –नरक में इतनी भयंकर ठण्डी है कि एक लाख योजन प्रमाण इतने बड़े लोहे के गोले को पिघलाकर डाल दो किन्तु उसी क्षण वह जम जाता है।

प्रश्न 12–उस नारकी को कितने वर्ष तक यह दुःख भोगने पड़े?

उत्तर –भील का जीव वहाँ पर सत्ताईस सागर प्रमाण मध्यम आयु पर्यंत इन दुःखों का अनुभव करता रहा है।

प्रश्न 13–सागर किसे कहते हैं?

उत्तर –दो हजार कोश प्रमाण एक लम्बा-चौड़ा और गहरा गड्ढा कल्पना में बनाइये। उसे सात दिन के अन्दर जन्में हुए भेड़ों के बालों से भर दीजिए। इन बालों के इतने-इतने छोटे खण्ड कर दिए जाएं जिनका फिर और खण्ड ही न हो सके, ऐसे रोम खण्डों से भरे हुए उस गड्ढे की खूब ऊपर से कुटाई कर दीजिए। पुनः उनमें से एक-एक रोम को सौ-सौ बरस में निकालिए। जब वह गर्त खाली हो जाए तब एक 'व्यवहार पल्य' होता है। इसमें जितना समय लगा है उसे असंख्यात करोड़ वर्षों के समयों से गुणा कर दीजिए। इसमें जितने समय जावेंगे वह 'उद्धार पल्य' कहलाता है। अनन्तर सौ वर्ष के जितने समय हैं उतने समयों से उद्धार पल्य के रोमों को गुणित करने से जितने समय होवें यह 'अद्धापल्य' हो जाता है। इन दस कोड़ाकोड़ी 'अद्धापल्यों' का एक सागर होता है।

प्रश्न 14–कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं?

उत्तर –एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जो संख्या आती है वह कोड़ाकोड़ी कहलाती है।

(आठवाँ भव)

प्रश्न 1 –अयोध्यापति आनंद कुमार के माता-पिता का क्या नाम था?

उत्तर –कुमार आनंद की माता का नाम महारानी प्रभाकारी तथा पिता का नाम राजा वज्रबाहु था?

प्रश्न 2 –राजा आनन्द कुमार किस पद पर आरूढ़ थे?

उत्तर –महामण्डलीक पद पर।

प्रश्न 3 –उनके अधीन कितने राजागण थे?

उत्तर –8 हजार मुकुटबद्ध राजा उनकी आज्ञा को शिरसा वहन करते थे।

प्रश्न 4 –महाराजा आनन्द ने आष्टाह्निक महापर्व में कौन सा अनुष्ठान किया?

उत्तर –महाराजा आनन्द ने आष्टाह्निक महापर्व में नन्दीश्वर पूजन का अतुल वैभव के साथ आयोजन किया।

प्रश्न 5 –इसकी सलाह किसने दी?

उत्तर –इसकी सलाह स्वामिहित नामक विवेकशील मंत्री ने दी।

प्रश्न 6 –जिनेन्द्रदेव की पूजा से क्या फल मिलता है?

उत्तर –जिनेन्द्रदेव की पूजा सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली है।

प्रश्न 7 –पर्व के दिनों में की गई पूजा क्या फल प्रदान करती है?

उत्तर –पर्व के संयोग से वह पूजा अतिशय पुण्य को प्रदान करने वाली हो जाती है। जिनपूजा के समान इस संसार में और कोई उत्तम कार्य नहीं है। जिनेन्द्रदेव की पूजा की भावना ही सभी दुःखों को दूर करने का एक अमोघ उपाय है।

प्रश्न 8 –नन्दीश्वर महापूजा में कौन से महामुनि पधारे?

उत्तर –विपुलमति नामक महामुनि पधारे।

प्रश्न 9 –राजा ने उनसे क्या निवेदन किया?

उत्तर –राजा ने उनसे अचेतन प्रतिमाओं द्वारा सचेतन को पुण्य फल प्रदान करने की जिज्ञासा शांत करने हेतु निवेदन किया।

प्रश्न 10–मुनिराज ने उसका क्या उत्तर दिया?

उत्तर –राजा ने कहा कि जिनमंदिर और उनकी प्रतिमाओं के दर्शन करने वालों के परिणामों में जितनी निर्मलता और प्रकर्षता होती है वैसी अन्य कारणों से नहीं हो सकती है। जैसे-कल्पवृक्ष, चिंतामणि आदि अचेतन होते हुए भी मनवांछित और मनचिंतित फल देने में समर्थ हैं, उनसे भी कहीं अधिक वैसी ही जिनप्रतिमाएं सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है।

प्रश्न 11–वीतराग मुद्रा के दर्शन का क्या फल है?

उत्तर –प्रतिमारूप में वीतरागमुद्रा को देखकर जिनेन्द्रदेव का स्मरण होता है जिससे अनन्तगुणा पुण्यबंध हो जाता है।

प्रश्न 12–जिनप्रतिमा के दर्शन न करने वाले अथवा निन्दा करने वालों को क्या फल मिलता है?

उत्तर –जो मूढ़जन जिनप्रतिमाओं का दर्शन नहीं करते हैं या उनकी निन्दा करते हैं वे स्वयमेव अनन्त संसार सागर में डूब जाते हैं।

प्रश्न 13–उसके पश्चात् मुनिराज ने राजा को क्या बताया?

उत्तर –उसके बाद मुनिराज ने राजा के सामने तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालयों तथा सूर्य, चन्द्र आदि के विमान में स्थित जिनबिंब का वर्णन किया।

प्रश्न 14–सूर्य का विमान कितने योजन का है?

उत्तर –48/61 योजन।

प्रश्न 15–एक योजन में कितने मील होते हैं?

उत्तर –4000 मील।

प्रश्न 16–सूर्य का विमान पृथ्वीतल से कितने योजन एवं कितने मील की ऊँचाई पर है?

उत्तर –सूर्य का विमान पृथ्वीतल से 800 योजन अर्थात् 3200000 मील की ऊँचाई पर है।

प्रश्न 17–सूर्य की किरणें कितनी और कैसी हैं?

उत्तर –इसमें 12 हजार किरणें हैं जो कि अति उग्र और उष्ण हैं।

प्रश्न 18–यह विमान कैसा है?

उत्तर –यह विमान अर्धगोलक के सदृश है अर्थात् जैसे गेंद या नारंगी को बीच से काटने पर जैसा आकार होता है

वैसा ही इन विमानों का आकार है।

प्रश्न 19–सूर्य के विमान को कौन खींचता है?

उत्तर –सूर्य के विमान को आभियोग्य (वाहन) जाति के 16000 देव सतत खींचते रहते हैं।

प्रश्न 20–कौन सी दिशा में कौन से आकार के कितने देव रहते हैं?

उत्तर –4000 देव पूर्व दिशा में सिंह का आकार धारण करते हैं, 4000 देव पश्चिम में बैल का आकार, 4000 देव दक्षिण में हाथी का आकार एवं 4000 देव उत्तर में घोड़े का आकार धारण किये रहते हैं।

प्रश्न 21–सूर्य का विमान किस धातु का बना हुआ है?

उत्तर –सूर्य का विमान पृथ्वीकायिक चमकीली धातु से बना है जो कि अकृत्रिम है।

प्रश्न 22–किस कर्म के उदय से सूर्य की किरणें चमकती हैं?

उत्तर –सूर्य बिम्ब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नामकर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं तथा उसके मूल में उष्णता न होकर किरणों में ही उष्णता होती है।

प्रश्न 23–आकाश में सूर्य की कितनी गलियाँ हैं?

उत्तर –184 गलियाँ हैं।

प्रश्न 24–जम्बूद्वीप में कितने सूर्य एवं कितने चन्द्रमा हैं?

उत्तर –जम्बूद्वीप में 2 सूर्य और 2 चन्द्रमा हैं।

प्रश्न 25–एक मिनट में सूर्य की गति लगभग कितने मील प्रमाण है?

उत्तर –447623 मील प्रमाण।

प्रश्न 26–सूर्य विमान में क्या-क्या हैं?

उत्तर –सूर्य विमान में नीचे का गोल भाग तो हम-आपको दिख रहा है तथा ऊपर के समतल भाग में चारों तरफ गोल तटवेदी है उसमें चारों दिशाओं में गोपुर–मुख्य फाटक हैं। इस विमान के बीचों-बीच में उत्तम वेदी सहित राजांगण हैं, उसके ठीक बीच में रत्नमय दिव्यकूट है। उस कूट पर वेदी एवं 4 तोरणद्वारों से युक्त जिनमंदिर है।

प्रश्न 27–उन जिनभवनों में कितनी जिनप्रतिमाएँ हैं?

उत्तर –108 जिनप्रतिमाएँ।

प्रश्न 28–उनकी भक्ति-वन्दना देवगण किस प्रकार करते हैं?

उत्तर –सभी देवगण गाढ़ भक्ति से जल, चंदन, तंदुल, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से नित्य ही उनकी पूजा करते रहते हैं।

प्रश्न 29–इन जिनभवनों में सूर्य देव के भवन किस प्रकार के बने हैं?

उत्तर –इन जिनभवनों के चारों ओर समचतुष्कोण, लंबे और नाना प्रकार के सुंदर-सुंदर सूर्य देव के भवन बने हुए हैं।

प्रश्न 30–ये भवन किस वर्ण के हैं?

उत्तर –कितने ही भवन मरकत वर्ण के, कितने ही कुंदपुष्प के और कितने ही सुवर्ण सदृश बने हुए हैं।

प्रश्न 31–इन सूर्य भवनों में सूर्यदेव कहाँ विराजते हैं?

उत्तर –इन सूर्य भवनों में सिंहासन पर सूर्य देव विराजमान होते हैं।

प्रश्न 32–सूर्य इन्द्र की कितनी देवियाँ हैं?

उत्तर –सूर्य इन्द्र की मुख्य देवियाँ चार हैं और अन्य बहुत सारी देवियाँ हैं।

प्रश्न 33–उन चार मुख्य देवियों के नाम बताइये?

उत्तर –वे चार मुख्य देवियाँ हैं–द्युतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा और अर्चिमालिनी।

प्रश्न 34–सूर्य विमान के जिनमंदिर की असाधारण विभूति को सुनकर आनंद महाराज ने क्या किया?

उत्तर –सूर्य विमान के जिनमंदिर की असाधारण विभूति को सुनकर आनंद महाराज को बहुत ही श्रद्धा हो गई। वह प्रतिदिन आदि और अंत समय में दोनों हाथ जोड़कर, मुकुट झुकाकर, सूर्य विमान में स्थित जिनप्रतिमाओं की स्तुति करने लगा और महल की छत पर प्रतिदिन अर्घ्य चढ़ाकर पूजा करने लगा। साथ ही कारीगरों के द्वारा मणि और सुवर्ण का एक सूर्य विमान बनवाकर उसमें कांतियुक्त सुन्दर जिनमंदिर बनवाया तथा शास्त्रोक्त विधि से भक्तिपूर्वक आष्टान्हिक, चतुर्मुख, रथावर्त, सर्वतोभद्र तथा कल्पवृक्ष नाम की महापूजाएं कीं।

प्रश्न 35–सूर्य उपासना की परम्परा कब से शुरू हुई?

उत्तर –आनंद महाराज को सूर्य की पूजा करते देख उनकी प्रामाणिकता से देखा-देखी अन्य लोग भी स्वयं भक्तिपूर्वक सूर्यमंडल की स्तुति करने लगे। इस लोक में उसी समय से सूर्य की उपासना चल पड़ी है।

प्रश्न 36–आनन्द महाराज को वैराग्य किस निमित्त से हुआ?

उत्तर –उन्हें एक समय दर्पण में मुख अवलोकन करते ही मस्तक पर एक धवल केश दिखाई दिया और वे विषय-भोगों से विरक्त हो गए।

प्रश्न 37–उन्होंने किन गुरु से दीक्षा ग्रहण की?

उत्तर –उन्होंने सागरदत्त मुनिराज के समीप जिनदीक्षा ग्रहण की।

प्रश्न 38–अट्ठाईस मूलगुण कौन से हैं?

उत्तर –5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियनिरोध, 6 आवश्यक और 7 शेष गुण ये 28 मूलगुण होते हैं।

प्रश्न 39–पंच महाव्रतों के नाम बताइये?

उत्तर –अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग महाव्रत।

प्रश्न 40–अहिंसा महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर –सम्पूर्ण त्रस-स्थावर जीवों की विराधना का त्याग करना अहिंसा महाव्रत है।

प्रश्न 41–सत्य महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर –असत्य और अप्रशस्त वचन बोलने का सर्वथा त्याग करना सत्य महाव्रत है।

प्रश्न 42–अचौर्य महाव्रत का क्या लक्षण है?

उत्तर –किसी की बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करना अचौर्य महाव्रत है।

प्रश्न 43–ब्रह्मचर्य महाव्रत का क्या लक्षण है?

उत्तर –स्त्री मात्र का त्याग कर देना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

प्रश्न 44–परिग्रह त्याग महाव्रत की परिभाषा बताओ?

उत्तर –वस्त्र मात्र भी परिग्रह का त्याग कर देना परिग्रह त्याग महाव्रत है।

प्रश्न 45–समितियाँ कितनी होती हैं परिभाषा सहित बताइये?

उत्तर –चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना ईर्या समिति है, हित-मित-प्रिय वचन बोलना भाषा समिति, छ्यालिस दोष तथा बत्तीस अंतराय टालकर शुद्ध आहार लेना एषणा समिति, देख-शोधकर पुस्तक आदि रखना, उठाना आदाननिक्षेपण समिति और प्रासुक भूमि में मल-मूत्रादि विसर्जन करना उत्सर्ग समिति है।

प्रश्न 46–पंचेन्द्रिय निरोध किसे कहते हैं?

उत्तर –स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पांच इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना पंचेन्द्रिय निरोध है।

प्रश्न 47–छह आवश्यकों के नाम बताओ?

उत्तर –सामायिक, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये षट् आवश्यक हैं।

प्रश्न 48–सामायिक किसे कहते हैं?

उत्तर –साम्यभावपूर्वक त्रिकाल सामायिक करना सामायिक आवश्यक है।

प्रश्न 49–स्तुति और वंदना में क्या अंतर है?

उत्तर –चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करना स्तुति आवश्यक है और एक तीर्थंकर आदि की स्तुति करना वंदना है।

प्रश्न 50–प्रतिक्रमण क्या है?

उत्तर –लगे हुए दोषों को दूर करना प्रतिक्रमण है।

प्रश्न 51–प्रत्याख्यान व कायोत्सर्ग में क्या अन्तर है?

उत्तर –आगामी दोषों का त्याग करना या आहार आदि का त्याग करना प्रत्याख्यान है और योगमुद्रा आदि से स्थिर चित्त होकर कायोत्सर्ग, ध्यानादि करना कायोत्सर्ग आवश्यक है।

प्रश्न 52–सात शेष गुण कौन-कौन से हैं?

उत्तर –वस्त्र मात्र का त्यागकर दिगम्बर रहना, केशलोंच करना, स्नान नहीं करना, दंतधावन नहीं करना, भूमिशयन करना, एक बार भोजन करना और खड़े होकर आहार लेना ये सात शेष गुण हैं।

प्रश्न 53–तीर्थंकर प्रकृति बंध के लिए कारणभूत कौन सी भावनाएं हैं?

उत्तर –सोलहकारण भावना।

प्रश्न 54–आनंद महाराज ने दीक्षा लेने के पश्चात् क्या किया?

उत्तर –आनंद महाराज 28 मूलगुणों का पालन करते हुए बारह प्रकार के तपश्चरण में तत्पर थे और 22 परिषहों को जीतते हुए उत्तरगुणों को भी धारण कर रहे थे। गुरु के पादमूल में बैठकर उन्होंने ग्यारह अंग तक श्रुत का अध्ययन किया। अनंतर तीर्थंकर नामकर्म के लिए कारणभूत सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन किया।

प्रश्न 55–सोलहकारण भावनाओं के नाम बताइये?

उत्तर –दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैय्यावृत्तकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यक अपरिहाणि, मार्ग प्रभावना एवं प्रवचन वात्सल्य ये 16 भावनाएं हैं।

प्रश्न 56–दर्शनविशुद्धि भावना किसे कहते हैं?

उत्तर –पच्चीस मलदोष रहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करना दर्शनविशुद्धि है।

प्रश्न 57–विनयसम्पन्नता का अर्थ बताओ?

उत्तर –देव, शास्त्र, गुरु तथा रत्नत्रय का विनय करना।

प्रश्न 58–शीलव्रतेष्वनतिचार का मतलब बताइये?

उत्तर –व्रतों और शीलों में अतिचार नहीं लगाना।

प्रश्न 59–'अभीक्ष्णज्ञानोपयोग' किसे कहते हैं?

उत्तर –सदा ज्ञान के अभ्यास में लगे रहना।

प्रश्न 60–संवेग का क्या अर्थ है?

उत्तर –धर्म और धर्म के फल में अनुराग होना।

प्रश्न 61–शक्तितस्त्याग और शक्तितस्तप में क्या अन्तर है?

उत्तर –अपनी शक्ति के अनुसार आहार, औषधि, अभय और ज्ञानदान देना शक्तितस्त्याग और अपनी शक्ति को न छिपाकर अंतरंग-बहिरंग तप करना शक्तितस्तप है।

प्रश्न 62–साधु-समाधि का लक्षण बताओ?
उत्तर –साधुओं का उपसर्ग आदि दूर करना या समाधि सहित वीरमरण करना।
प्रश्न 63–वैय्यावृत्तकरण का क्या अर्थ है?
उत्तर –व्रती, त्यागी, साधर्मी की सेवा करना, वैय्यावृत्ति करना।
प्रश्न 64–अर्हत्भक्ति और आचार्यभक्ति में क्या अंतर है?
उत्तर –अरहंत भगवान की भक्ति करना अर्हत्भक्ति और आचार्य की भक्ति करना आचार्यभक्ति है।
प्रश्न 65–बहुश्रुतभक्ति व प्रवचनभक्ति में क्या अन्तर है?
उत्तर –उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति करना बहुश्रुतभक्ति एवं जिनवाणी की भक्ति करना प्रवचन भक्ति है।
प्रश्न 66–मार्गप्रभावना किसे कहते हैं?
उत्तर –जैनधर्म का प्रभाव फैलाना।
प्रश्न 67–प्रवचन वात्सल्य किसे कहते हैं?
उत्तर –साधर्मीजनों में अगाध प्रेम करना प्रवचनवात्सल्य है।
प्रश्न 68–मुनिराज आनन्द के ऊपर उपसर्ग किसने किया?
उत्तर –एक समय मुनिराज क्षीर वन में प्रायोपगमन सन्यास लेकर प्रतिमायोग से ध्यान में लीन थे तभी कमठचर पापी भील के जीव एक सिंह ने दहाड़ कर मुनिराज पर धावा बोल दिया और उनके कंठ को पकड़कर तीक्ष्ण नखों से सारे बदन को छिन्न-भिन्न कर खा लिया।
प्रश्न 69–मुनि ने उस उपसर्ग को किस प्रकार सहन किया?
उत्तर –मुनिराज उस पशुकृत उपसर्ग को परम शांतभाव से सहन करते हैं और अनंत गुणों के निधान, आत्मा के चिंतन में अपना उपयोग लगा देते हैं और इस नश्वर भौतिक मल-मूत्र के पिंड स्वरूप देह को छोड़कर दिव्य वैक्रियक देह धारण कर लेते हैं।
प्रश्न 70–उन्होंने किस गति की प्राप्ति की?
उत्तर –वे अच्युत स्वर्ग के प्राणत नामक विमान में इन्द्र हो गए।
प्रश्न 71–सिंह का जीव मरकर कहाँ गया?
उत्तर –सिंह का जीव मरकर नरक गया।

(नवमाँ भव)

प्रश्न 1 –अच्युतेन्द्र की आयु कितने सागर की थी?
उत्तर –20 सागर।
प्रश्न 2 –कितने वर्ष बाद उनका मानसिक आहार होता था?
उत्तर –20 हजार वर्ष बाद।
प्रश्न 3 –कितने वर्ष बाद वे श्वासोच्छ्वास लेते थे?
उत्तर –बीस पक्ष (10 माह) बीत जाने पर।
प्रश्न 4 –उनका शरीर कितने हाथ का था?
उत्तर –साढ़े तीन हाथ का।
प्रश्न 5 –अच्युत स्वर्ग में जन्म लेने के बाद सर्वप्रथम उन्होंने क्या किया?
उत्तर –अपने दिव्य अवधिज्ञान के द्वारा सारी बातें जानकर वे इन्द्र मंगल स्नान आदि विधिवत् करके सबसे पहले

जिनेन्द्रदेव की पूजा करते हैं।

प्रश्न 6 –उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया?

उत्तर –उसके पश्चात् उन्होंने अपनी विभूति का, देवांगनाओं का अवलोकन किया।

प्रश्न 7 –देवों में क्या विशेषता होती है?

उत्तर –उनके शरीर में मल-मूत्र, पसीना आदि नहीं निकलता है, न उनकी पलकें झपकतीं हैं, न नख और केश ही बढ़ते हैं। बुढ़ापा, अकालमृत्यु और व्याधि भी उनके नहीं है।

प्रश्न 8 –अच्युतेन्द्र की चर्या क्या है?

उत्तर –इन्द्रराज अपने परिवार देवों के साथ कभी नन्दीश्वर में पूजा रचाते हैं, कभी सुमेरु पर्वतों की वंदना के लिए चले जाते हैं, कभी सीमंधर आदि तीर्थंकर के समवसरण में दिव्य ध्वनि के द्वारा दिव्य धर्मामृत का पान करते हैं तो कभी ऋषि, मुनियों के दर्शन का लाभ लेते हैं। कभी नंदनवन में क्रीड़ा करते हैं तो कभी सभा में बैठकर देव-देवांगनाओं को संतुष्ट करते हुए मनोविनोद करते हैं। कभी-कभी उन्हें धर्म का उपदेश देते हुए कृतार्थ हो जाते हैं।

प्रश्न 9 –इतने अतुल वैभव को प्राप्त कर क्या उसमें आसक्त हो जाते हैं?

उत्तर –नहीं, भावी तीर्थंकर वे देवेन्द्र इस अतुल वैभव को भोगते हुए भी उसमें आसक्त नहीं होते हैं।

प्रश्न 10–अच्युतेन्द्र अपनी आयु पूर्ण कर कहाँ जन्मे?

उत्तर –अच्युतेन्द्र अपनी आयु पूर्ण कर वाराणसी नगरी में महाराजा अश्वसेन के घर जन्मे।

प्रश्न 11–कमठ का जीव वह नारकी मरकर कहाँ गया?

उत्तर –वह नारकी अपनी नरकायु पूर्ण कर भगवान पार्श्वनाथ की माता वामा देवी का पिता हुआ।

(दशवाँ भव)

प्रश्न 1 –तीर्थंकर भगवान के कितने कल्याणक होते हैं?

उत्तर –पाँच कल्याणक।

प्रश्न 2 –पाँचों कल्याणकों के नाम बताइये?

उत्तर –गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं निर्वाण ये पाँच कल्याणक हैं।

प्रश्न 3 –जैनधर्म के तेईसवें तीर्थंकर कौन हैं?

उत्तर –भगवान पार्श्वनाथ।

प्रश्न 4 –भगवान पार्श्वनाथ के माता-पिता कौन थे?

उत्तर –वाराणसी नरेश महाराजा अश्वसेन एवं महारानी वामादेवी भगवान के माता-पिता थे।

प्रश्न 5 –तीर्थंकर भगवान के गर्भ में आने के कितने माह पूर्व से रत्नवृष्टि प्रारंभ होती है?

उत्तर –छः माह पूर्व से।

प्रश्न 6 –यह रत्नवृष्टि कहाँ होती है?

उत्तर –तीर्थंकर भगवान की माता के आँगन में।

प्रश्न 7 –रत्नवृष्टि कौन करता है और किसकी आज्ञा से करता है?

उत्तर –सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से धनकुबेर रत्नवृष्टि करता है।

प्रश्न 8 –प्रतिदिन कितने करोड़ रत्नों की वर्षा होती है?

उत्तर –साढ़े तीन करोड़ प्रमाण रत्न प्रतिदिन बरसते हैं।

प्रश्न 9 –रत्नवृष्टि के साथ-साथ देवगण और क्या-क्या करते हैं?

उत्तर –पंचाश्चर्यवृष्टि।

प्रश्न 10–माता वामादेवी ने तीर्थंकर शिशु के गर्भ में आने से पूर्व कितने स्वप्न देखे?

उत्तर –सोलह स्वप्न।

प्रश्न 11–वे सोलह स्वप्न कौन से हैं?

उत्तर –(1) ऐरावत हाथी (2) शुभ्र बैल (3) सिंह (4) लक्ष्मी देवी (5) दो फूलमाता (6) उदित होता हुआ सूर्य (7) तारावलि से वेष्ठित पूर्ण चन्द्रमा (8) जल में तैरती हुई मछलियों का युग्म (9) कमल से ढके दो पूर्ण स्वर्ण कलश (10) सरोवर (11) समुद्र (12) सिंहासन (13) देवविमान (14) धरणेन्द्र विमान (15) रत्नों की राशि और (16) निर्धूम अग्नि ये सोलह स्वप्न हैं।

प्रश्न 12–महारानी ने उन स्वप्नों का फल किनसे पूछा?

उत्तर –महाराज अश्वसेन से।

प्रश्न 13–राजा ने उनका क्या फल बतलाया?

उत्तर –राजा ने कहा कि आपके गर्भ में त्रैलोक्यपति तीर्थंकर का जीव अवतरित हो चुका है, आप जगत्पति पुत्ररत्न को प्राप्त करेंगी।

प्रश्न 14–माता की सेवा के लिए कहाँ से देवियाँ आती हैं?

उत्तर –स्वर्ग से (रुचकपर्वतवासिनी एवं कुलाचलवासिनी देवियाँ)

प्रश्न 15–भगवान पार्श्वनाथ की गर्भकल्याणक तिथि क्या है?

उत्तर –वैशाख वदी द्वितीया।

प्रश्न 16–भगवान पार्श्वनाथ किस तिथि में जन्मे?

उत्तर –पौषवदी ग्यारस को।

प्रश्न 17–भगवान के जन्म पर क्या विशेष बातें होती हैं?

उत्तर –उसी क्षण सहसा स्वर्ग में बिना बजाए ही घण्टे बजने लगते हैं, ज्योतिर्वासी देवों के यहाँ स्वयं ही सिंहनाद होने लगता है, भवनवासियों के भवनों में स्वयं ही शंखध्वनि उठने लगती है और व्यन्तर देवों के यहाँ भेरी बजने लगती है, इन्द्रों के आसन कांप उठते हैं, उनके मस्तक के मुकुट स्वयमेव ही झुक जाते हैं और कल्पवृक्षों से पुष्पवृष्टि होने लगती है।

प्रश्न 18–प्रभु के जन्म को जानकर सौधर्म इन्द्र क्या करता है?

उत्तर –सौधर्म इन्द्र सभी अतिशय विषयों से जिन जन्म की सूचना को पाकर आसन छोड़कर सात कदम आगे बढ़कर परोक्ष में पुनः-पुनः नमस्कार करता हुआ असीम पुण्य संचित कर लेता है अनन्तर ऐरावत हाथी पर चढ़कर शची इन्द्राणी एवं असंख्य सुरपरिवार के साथ आकर भगवान का जन्मकल्याणक महोत्सव मनाता है।

प्रश्न 19–जिनशिशु का प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य किसे प्राप्त होता है?

उत्तर –शची इन्द्राणी को।

प्रश्न 20–प्रभु के प्रथम दर्शन से उसे क्या फल मिलता है?

उत्तर –शची अपनी स्त्री पर्याय को छेदकर पुनः पुरुष जन्म लेकर एक ही भव में मोक्ष चली जाती है।

प्रश्न 21–एक इन्द्र के जीवन में कितनी इन्द्राणियाँ मोक्ष चली जाती हैं?

उत्तर –चालीस नील प्रमाण शची–इन्द्राणियाँ।

प्रश्न 22–ऐसा किस कारण से होता है?

उत्तर –क्योंकि इन्द्र की आयु सागरोपम से और इन्द्राणियों की आयु पल्योपम से होती है।

प्रश्न 23–सौधर्म इन्द्र जिनशिशु का जन्माभिषेक कहाँ करते हैं?

उत्तर –सुमेरु पर्वत की पाण्डुकशिला पर।

प्रश्न 24–भगवान का 'पार्श्वनाथ' यह नामकरण किसने किया?

उत्तर –सौधर्म इन्द्र ने जन्माभिषेक के पश्चात् पाण्डुकशिला पर किया।

प्रश्न 25–क्या जिनशिशु माता का स्तनपान करते हैं?

उत्तर –नहीं, इन्द्र तीर्थंकर शिशु के अंगूठे में अमृत को स्थापित कर देता है, उसी अंगूठे को चूसकर जिनबालक वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न 26–भगवान के साथ क्रीड़ा कौन करते हैं?

उत्तर –इन्द्र की आज्ञा से प्रभु के साथ उन्हीं की आयु के अनुरूप रूप बनाकर देवगण क्रीड़ा करते हैं।

प्रश्न 27–प्रभु के जन्म के कितने अतिशय होते हैं?

उत्तर –10 अतिशय।

प्रश्न 28–दस अतिशयों के नाम बताइये?

उत्तर –(1) अतीव सुन्दर शरीर (2) सुगंधित शरीर (3) पसीना रहित शरीर (4) मल-मूत्र रहित शरीर (5) प्रिय हित वचन (6) श्वेत रुधिर (7) अतुल्य बल (8) शरीर में 1008 लक्षण (9) समचतुरस्र संस्थान और (10) वज्रवृषभनाराच संहनन।

प्रश्न 29–किन जीवों के आहार तो है किन्तु नीहार नहीं है?

उत्तर –तीर्थंकर, उनके माता-पिता, बलभद्र, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और भोगभूमिया जीव, इनके आहार तो है किन्तु नीहार नहीं है।

प्रश्न 30–महाराजा अश्वसेन ने तीर्थंकर पार्श्वकुमार के समक्ष कितने वर्ष की उम्र में विवाह का प्रस्ताव रखा?

उत्तर –16 वर्ष की उम्र में।

प्रश्न 31–तीर्थंकर पार्श्वकुमार ने उसे स्वीकार किया अथवा नहीं?

उत्तर –तीर्थंकर पार्श्वकुमार ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और बाल ब्रह्मचारी रहे।

प्रश्न 32–भगवान पार्श्वनाथ राजपुत्रों के साथ कहाँ विचरण कर रहे थे?

उत्तर –वे राजपुत्रों के साथ हाथी पर सवार होकर बनारस के उद्यान में विचरण कर रहे थे।

प्रश्न 33–वहाँ उन्होंने क्या देखा?

उत्तर –वहाँ उन्होंने एक तापसी साधु को पंचाग्नि तप करते देखा।

प्रश्न 34–वह तापसी कौन था?

उत्तर –वह प्रभु पार्श्व के नाना थे अर्थात् माता वामादेवी के पिता थे।

प्रश्न 35–उन्हें देखकर प्रभु पार्श्व ने क्या किया?

उत्तर –प्रभु पार्श्व बिना नमस्कार किए वहीं खड़े हो गए।

प्रश्न 36–यह देखकर तापसी ने क्या सोचा?

उत्तर –तापसी ने सोचा कि मैं इसका नाना हूँ फिर भी यह मेरी विनय नहीं कर रहा है ऐसा सोचते-सोचते अतीव क्रोध में आकर वह हाथ में कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी चीरने लगा।

प्रश्न 37–तापसी को लकड़ी चीरते देख पार्श्वकुमार ने क्या कहा?

उत्तर –पार्श्वकुमार ने कहा कि हे तापसी! यह काठ मत चीरो, इसमें नागयुगल बैठे हुए हैं।

प्रश्न 38—यह सुनकर तापसी ने क्या किया?

उत्तर —यह सुन तापसी ने मारे क्रोध के लकड़ी के दो टुकड़े कर दिये।

प्रश्न 39—क्या उस लकड़ी में सचमुच नागयुगल थे?

उत्तर —हाँ, उस लकड़ी में नागयुगल थे जो तापसी द्वारा दो टुकड़े करते ही नागयुगल के दो टुकड़े हो गए।

प्रश्न 40—भगवान ने उन्हें कौन सा मंत्र सुनाया?

उत्तर —भगवान ने उन्हें दिव्य उपदेश देते हुए महामंत्र णमोकार सुनाया।

प्रश्न 41—भगवान के उपदेश को सुनते हुए नागयुगल शरीर का परित्याग कर कहाँ गए?

उत्तर —देवयोनि में धरणेन्द्र और पद्मावती हो गए।

प्रश्न 42—यह तापसी कौन था? क्या इसका पार्श्वकुमार से वैर था?

उत्तर —यह कमठचर का जीव था, जो आनन्द मुनिराज की हत्या के पाप से पाँचवें नरक में जाकर सत्रह सागर की आयु तक असीम दुखों को भोगकर निकला और बहुत काल तक अर्थात् तीन सागर तक पशु योनि में त्रस-स्थावर पर्यायों को धारण करते हुए पुनः कुछ कर्मभार के हल्के हो जाने पर महीपालपुर में राजा महीपाल हुआ जिसकी पुत्री वामादेवी थीं।

प्रश्न 43—राजा महीपाल ने तापसी वेष क्यों धारण किया?

उत्तर —पट्टरानी के मरण के अनंतर वियोगजन्य दुख से दुःखी होते हुए तापसी वेष धारण कर लिया।

प्रश्न 44—इस घटना के अनन्तर तापसी मरण करके कहाँ जन्मा?

उत्तर —तापसी मरण करके कुतप के प्रभाव से शंबर नाम का ज्योतिषी देव हो गया।

प्रश्न 45—तीर्थंकर भगवान कौन सा भोजन करते हैं?

उत्तर —तीर्थंकर प्रभु गृहस्थावस्था में मर्त्यलोक का अन्न या वस्त्र नहीं ग्रहण करते हैं उनके लिए भोजन, वस्त्र आदि वस्तुएं इन्द्र अपने स्वर्ग से ले जाकर प्रदान करता है।

प्रश्न 46—भगवान पार्श्वनाथ को वैराग्य किस निमित्त से हुआ?

उत्तर —अयोध्या नरेश जयसेन महाराज के द्वारा एक बार दूत से नाना प्रकार की वस्तुएं वाराणसी में भगवान पार्श्वनाथ के पास भेंट में भेजी गईं तब भगवान ने उससे अयोध्या का वैभव पूछा, तब दूत ने सविस्तार भगवान वृषभदेव के अवतार का वर्णन किया जिससे उन्हें राज्य सुख वैभव से वैराग्य हो गया।

प्रश्न 47—उन्हें कितने वर्ष की उम्र में वैराग्य हुआ?

उत्तर —30 वर्ष की उम्र में।

प्रश्न 48—भगवान के वैराग्य के समय कौन से स्वर्ग से कौन से देव आते हैं?

उत्तर —पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग से लौकांतिक देव आते हैं।

प्रश्न 49—भगवान कौन सी पालकी में बैठकर दीक्षा हेतु वन को रवाना हुए?

उत्तर —इन्द्र द्वारा लाई गई 'विमला' नाम की रत्नपालकी में बैठकर वन के लिए रवाना हुए।

प्रश्न 50—भगवान पार्श्वनाथ ने कौन से वन में किस वृक्ष के नीचे दीक्षा ली?

उत्तर —भगवान पार्श्वनाथ ने अश्व नामक वन में वटवृक्ष के नीचे दीक्षा ली।

प्रश्न 51—भगवान पार्श्वनाथ ने कौन सी तिथि में दीक्षा ली?

उत्तर —भगवान पार्श्वनाथ ने पौष वदी एकादशी तिथि में दीक्षा ली।

प्रश्न 52—उनके साथ अन्य कितने राजाओं ने दीक्षा ली?

उत्तर —300 राजाओं ने।

प्रश्न 53–तीर्थंकर भगवान को दीक्षा कौन प्रदान करता है?

उत्तर –तीर्थंकर सिद्धों की साक्षीपूर्वक स्वयं दीक्षा लेते हैं।

प्रश्न 54–भगवान के केशों का विसर्जन कौन, कहाँ करता है?

उत्तर –इन्द्रगण प्रभु के इन्द्रनीलमणि सदृश केशों को रत्नपिटारी में रखकर बड़े वैभव के साथ क्षीरसागर में विसर्जित करते हैं।

प्रश्न 55–प्रभु ने दीक्षा के पश्चात् कितने दिन का उपवास किया?

उत्तर –प्रभु ने दीक्षा लेते ही तेले का नियम कर लिया।

प्रश्न 56–भगवान को मनःपर्यय ज्ञान कब प्रगट होता है?

उत्तर –जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञान के धारी प्रभु को दीक्षा लेते ही अन्तर्मुहूर्त में मनः पर्ययज्ञान प्रकट हो जाता है।

प्रश्न 57–प्रभु को प्रथम आहार देने का सौभाग्य किसे प्राप्त हुआ?

उत्तर –प्रभु को प्रथम आहार देने का सौभाग्य गुल्मखेटपुर के महाराज ब्रह्मदत्त को मिला था।

प्रश्न 58–भगवान पार्श्वनाथ पर उपसर्ग किसने और कब किया?

उत्तर –एक समय प्रभु योग में तन्मय हुए अपनी शुद्धात्मा में लीन थे तभी आकाशमार्ग से गमन करते हुए शंबर नामक ज्योतिषी देव का विमान वहाँ रुक गया, अवधिज्ञान के बल से पूर्व भव के वैर का स्मरण कर अत्यन्त कुपित होकर उसने प्रभु पर घोर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया।

प्रश्न 59–आकाशमार्ग से गमन करते हुए शंबरदेव का विमान क्यों रुका?

उत्तर –यह नियम है कि महापुरुषों के ऊपर से किसी भी देव या विद्याधर का विमान उल्लंघन कर नहीं जा सकता है।

प्रश्न 60–इस उपसर्ग के प्रसंग में कौन से देव का आसन कंपायमान हो उठा?

उत्तर –धरणेन्द्र देव का।

प्रश्न 61–उन्होंने उपसर्ग का निवारण किस प्रकार किया?

उत्तर –उन्होंने अवधिज्ञान के बल से प्रभु के उपसर्ग को जाना और अपने प्रति किए गए उपकार का चिंतन करते हुए अपनी भार्या पद्मावती देवी के साथ वहाँ आ गये। देव दंपती ने प्रभु की प्रदक्षिणा दी और बार-बार नमस्कार किया तथा प्रभु के मस्तक पर फण का छत्र तान दिया। धरणेन्द्र युगल को देखते ही वह पापी कमठचर भाग खड़ा हुआ।

प्रश्न 62–उपसर्ग अथवा उपसर्ग निवारण का प्रभु पर क्या कोई असर हुआ?

उत्तर –प्रभु पर इनका कोई असर नहीं हुआ और वे सातिशय अप्रमत्त अवस्थारूप निर्विकल्प ध्यान में स्थिर हो गए और सत्तम गुणस्थान से ऊपर चढ़कर क्षपक श्रेणी में आरोहण करते हुए दशवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का निर्मूल नाशकर अघातिया कर्मों का क्रमशः नाशकर केवली परमात्मा हो गए।

प्रश्न 63–केवलज्ञान होते ही प्रभु कहाँ विराजमान हो गए?

उत्तर –केवलज्ञान होते ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने अभूतपूर्व समवसरण की रचना कर दी, तत्क्षण ही प्रभु पृथ्वी से 5000 धनुष प्रमाण ऊपर आकाश में पहुँच गए।

प्रश्न 64–जिस स्थान पर प्रभु का उपसर्ग दूर हुआ, वह स्थान किस नाम से जाना जाता है?

उत्तर –जिस पवित्र स्थान में अहि–सर्प के रूप को धारणकर धरणेन्द्र ने प्रभु के ऊपर छत्र धारण किया था इसलिए उस स्थान का 'अहिच्छत्र' यह सार्थक नाम विश्व में प्रख्यात हो गया है।

प्रश्न 65–भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान तिथि क्या है?

उत्तर –चैत्र कृष्णा चतुर्दशी।

प्रश्न 66–भगवान के समवसरण में प्रथम गणधर कौन थे?

उत्तर –स्वयंभू स्वामी।

प्रश्न 67–और अन्य कितने गणधर थे?

उत्तर –9 गणधर।

प्रश्न 68–कितने मुनि और आर्यिकाएँ थीं?

उत्तर –16000 मुनि एवं 36 हजार आर्यिकाएँ थीं।

प्रश्न 69–प्रधान गणिनी आर्यिका माता कौन थीं?

उत्तर –गणिनी आर्यिका सुलोचना।

प्रश्न 70–श्रावक-श्राविकाओं की संख्या कितनी थी?

उत्तर –1 लाख श्रावक एवं 3 लाख श्राविकाएं थीं।

प्रश्न 71–शंबर नामक ज्योतिषी देव उपसर्ग के पश्चात् कहाँ गया?

उत्तर –शंबर नाम का ज्योतिषी देव काललब्धि पाकर शांत हो गया और प्रभु को बार-बार नमस्कार कर सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया।

प्रश्न 72–उसको सम्यग्दर्शन प्राप्त करते देख वन में रहने वाले तापसियों पर क्या प्रभाव पड़ा?

उत्तर –उसको देख उस वन में रहने वाले सात सौ तपस्वियों ने भी मिथ्यादर्शन छोड़कर संयम धारणकर लिया व सभी शुद्ध सम्यग्दृष्टि हो गए।

प्रश्न 73–प्रभु ने धर्मोपदेश करते हुए कितने वर्ष तक विहार किया?

उत्तर –5 माह कम सत्तर वर्ष तक।

प्रश्न 74–भगवान पार्श्वनाथ ने कहाँ से मोक्ष प्राप्त किया?

उत्तर –सम्मेदशिखर पर्वत से।

प्रश्न 75–कौन सी तिथि में भगवान को निर्वाण प्राप्त हुआ?

उत्तर –श्रावण शुक्ला सप्तमी।

प्रश्न 76–उस तिथि को किस नाम से जाना जाता है?

उत्तर –मोक्षसप्तमी पर्व के नाम से।



भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानकल्याणक भूमि

-पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी

श्री पार्श्वनाथः स्वपरात्मविज्ञः, श्रेणीं श्रितः स्वात्मजशुक्लयोगैः।
घाती निहत्वा जगदेकसूर्यः, कैवल्यमाप्नोत् तमहं स्तवीमि।।

(आ. ज्ञानमती, पार्श्वस्तुति जिनस्तोत्र संग्रह)

स्वपर के ज्ञाता, शुक्लध्यान योग से श्रेणी, क्षपक श्रेणी में आरूढ़, घातिया कर्मों के नाश से केवलज्ञानकल्याणक को प्राप्त करने वाले विश्व समुदाय के उत्कृष्ट सूर्य भगवान पार्श्वनाथ की मैं स्तुति करता हूँ, प्रणाम करता हूँ।

वर्तमान काल में तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ स्वामी संकटमोचन के रूप में अत्यधिक पूज्यता को प्राप्त हैं। देश में सर्वाधिक रूप से प्राप्त प्रतिमाएं उनके अतिशय को प्रगट करती हैं। कमठ जीव के द्वारा भीषणतम छः दिन तक होने वाले उपसर्गों में सुमेरुवत् अविचलित भगवान धैर्य, क्षमा, सहिष्णुता, दया आदि गुणों के क्षेत्र में अद्वितीय रूप से विख्यात हैं, उनके प्रति भक्ति श्रद्धा से बरबस माथा झुक जाता है। उनके दिव्य केवलज्ञान कल्याणक की भी भूमि का कण-कण पवित्रता को प्राप्त होकर देवासुर व मानवों के द्वारा सदैव वंदनीय है।

श्रुतधराचार्य श्री यतिवृषभ ने 'तिलोयपण्णत्ति' में कहा है–

चित्ते बहुल-चउत्थी-विसाह-रिक्खम्मि पासणाहस्स।
सक्कपुरे पुव्वण्हे केवलणाणं समुप्पण्णं।। (खंड 2/708)

अर्थात् चैत्र कृष्णा चतुर्थी को विशाखा नक्षत्र में शक्रपुर में पूर्वाण्ह समय केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। यहाँ जिस शक्रपुर नगर का उल्लेख है उसका वर्तमान में पता नहीं है।

हरिवंशपुराण में आचार्य जिनसेन एवं उत्तरपुराण (महापुराण) में आचार्य गुणभद्र ने आश्रमकेस में अश्ववन में इसका उल्लेख किया है। दृष्टव्य है, हरिवंशपुराण का संदर्भ 60/254-56 व महापुराण सर्ग 73/134। आचार्य दामनन्दी ने पुराणसार संग्रह में पार्श्वनाथ चरित में तथा पार्श्वपुराण हिन्दी काव्य में महाकवि भूधरदास ने तापसियों के आश्रम के समीप उनके उपसर्ग विजय एवं केवलज्ञान उत्पत्ति का उल्लेख किया है। इन भूमियों का अस्तित्व अज्ञात है।

वर्तमान में दिगम्बर जैन परम्परा में श्रमण संघों के सर्वपूज्य उद्धारकर्ता आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के निम्न आर्या छंदमय निर्वाणभक्ति के इस अंश पर दृष्टि डालने से प्रकट होता है,

''महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वन्दामि।''

मैं अहिच्छत्र नगर में भगवान पार्श्वनाथ की वंदना करता हूँ।

इससे, आगम प्रमाण से व अनुमान से ज्ञात होता है कि भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र है। अनुमान की प्रामाणिकता, वर्तमान में उत्तरप्रदेश के बरेली जिले में रामनगर किला में प्राचीनरूप से स्थापित अहिच्छत्र तीर्थ के द्वारा होती है। परम्परा से व स्थानीय मान्यता में यह विख्यात है कि यहाँ कमठ के जीव संवर नामक देव के प्रभु के ऊपर उपसर्ग करने पर भक्ति भावना से ओतप्रोत होकर रक्षार्थ धरणेन्द्र-पद्मावती ने वहाँ आकर अपने कर्तव्य का निर्वाह किया था। उपसर्ग निवारण किया था।

इधर कुछ दशाब्दियों से राजस्थान के बिजौलिया नामक स्थान में जो भगवान पार्श्वनाथ पर उपसर्ग का जिक्र हुआ है उसे मात्र उपसर्ग तक सीमित माना जाना ही अपेक्षित है। संभव है कि अहिच्छत्र के उपसर्ग विजय से पूर्व भी उपसर्ग हुआ हो। किन्तु केवलज्ञान प्राप्ति अहिच्छत्र में ही स्वीकार करना अपेक्षित है। आचार्य कुन्दकुन्द ने उपर्युक्त गाथार्द्ध में मथुरा के उल्लेख के साथ निकटवर्ती अहिच्छत्र का उल्लेख किया है। इससे भी यही अहिच्छत्र सिद्ध होता है। प्रत्यक्षरूप से अवस्थिति, स्थापित तीर्थत्व, आगम अनुमान से वर्तमान का देशप्रसिद्ध एक मात्र अहिच्छत्र तीर्थ भगवान पार्श्वनाथ प्रभु

की केवलज्ञानकल्याणक भूमि है। नागवंशी राजाओं के क्षेत्र की दृष्टि से भी इतिहासज्ञों के द्वारा गवेषणीय है। ऊपर जो शक्रपुर एवं आश्रमकेस आदि का उल्लेख है वे सभी इसी अहिच्छत्र के ही पर्याय प्रतीत होते हैं। धरणेन्द्र ने विशाल नाग के रूप में अपने फणमंडप को छत्र के समान तानकर प्रभु का उपसर्ग निवारण किया था अतः उस भूमि को तभी से अहिच्छत्र सार्थक संज्ञा प्राप्त हुई थी। इस संज्ञा से भी यह सिद्ध है।

अहिच्छत्र में प्राचीन 'तिखाल वाले बाबा पार्श्वनाथ' के नाम से प्रसिद्ध मंदिर है। उसके लोकहित रूप चमत्कारी प्रभाव से जनसाधारण तक परिचित हैं। सभी वर्गों के लोग बाबा के दर्शन-वंदन-पूजन से अपना अहोभाग्य मानते हैं तथा धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्ग की साधना करते हैं। उक्त जिनालय को लगभग 25 वर्ष पूर्व भव्य, विशाल प्रभावक स्वरूप प्रदान किया गया है। उसमें चमत्कारी, सातिशय प्राचीन भगवान पार्श्वनाथ (तिखाल वाले बाबा) को सुन्दर वेदी में मूलनायक रूप से ही विराजमान किया है। अनेक भव्य वेदियों (कुल सात वेदिकाएं व एक समवसरण) में विशाल एवं सुन्दराकार प्रतिमाओं की स्थापना ने इस जिनालय में चार-चाँद लगा दिये हैं। इन्हीं में पद्मावती माता की वेदी भी है। विशाल प्रांगण में तीस चौबीसी जिनालय का निर्माण किया गया है जो श्रेष्ठ, चित्ताकर्षक रूप में भव्यता को प्राप्त है। यहीं यात्रियों की सुविधा हेतु धर्मशाला एवं भोजनालय है। धर्मशाला का विस्तारमय नव निर्माण द्रुतगति से चल रहा है। इस संस्थान से पूर्व ही सड़क के किनारे ज्ञानतीर्थ के नाम से मंदिर व निवास की व्यवस्था है। रामनगर गाँव में एक प्राचीन मंदिर भी अवस्थित है। यात्रीगण यहाँ आकर समस्त जिनालयों की वंदना करते हैं व भगवान पार्श्वनाथ के गुणों को आत्मसात् करने का प्रयास करते हैं। आस्था एवं विश्वास का भाव उनकी भक्ति में प्रधान कारण है। भगवान का लोकमनोहारी स्वरूप उनके जीवन में अभ्युदय प्रदान करता है तथा परम्परा से निर्वाण की सिद्धि संभव हो सकती है।

अहिच्छत्र में प्राचीन अवशेष जैनधर्म की संस्कृति की स्मृति दिलाते हैं, मन में प्रभाव स्थापित करते हैं। मंदिर प्रांगण के सम्मुख एक प्राचीन कुँआ है, किंवदन्ती है कि उसके जल से व्याधियों का निवारण होता है। यहाँ एक प्राचीन किले के अवशेष हैं जिनके माध्यम से इतिहास की प्राचीनता के परिवेश में अहिच्छत्र का प्रभाव एवं अवस्थिति सिद्ध होती है। बौद्ध साहित्य में भी अहिच्छत्र का उल्लेख है।

परम पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने कल्याणक भूमियों के विकास के क्रम में अहिच्छत्र की ओर ध्यान दिया है। अनवरत उनकी प्रेरणा से वहाँ गतिविधियाँ अग्रसित हो रही हैं। निकट शीघ्र ही पौष कृष्णा एकादशी 3 जनवरी 2008 को जन्मकल्याणक के अवसर पर पार्श्वनाथ स्वामी का महामस्तकाभिषेक उत्साह से संपन्न होने जा रहा है। भगवान के जन्म की तृतीयसहस्राब्दि का अवसर है, इसी उपलक्ष्य में जैनधर्म की प्रभावना एवं उसकी प्राचीनता सिद्धि का यह प्रयत्न किया जा रहा है।

सारांश यह है कि भगवान पार्श्वनाथ के केवलज्ञान कल्याणक की भूमि की वंदना कर हमें भी उनके मार्गानुसारी बनकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से अपनी आत्मा को प्रभावित करना चाहिए तथा पूजा-वंदना-दान-तप तथा अतिशय से जिनधर्म की महती प्रभावना करना चाहिए।

।। इत्यलम् ।।



भारतीय वाङ्मय में पार्श्वनाथ विषयक साहित्य

–डॉ.जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

जैनधर्म के तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के चरित को जैन कवियों ने तीर्थंकर महावीर के बाद प्रथम स्थान दिया है। भारतवर्ष की सभी भाषाओं में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के ऊपर लिखे गये अनेक काव्य उपलब्ध हैं। क्योंकि पार्श्वनाथ का आख्यान बड़ा ही रोचक तथा घटना प्रधान है। जैन शास्त्रों की मान्यतानुसार पार्श्वनाथ के 250 वर्ष बीत जाने पर भगवान महावीर का जन्म हुआ है।[1] वीर निर्वाण संवत् और ईस्वी सन् में 527 वर्ष का अंतर है। तीर्थंकर भगवान महावीर की आयु कुछ कम 72 वर्ष की थी।[2] अतएव 527+72=599 वर्ष ईस्वी पूर्व में महावीर का जन्म सिद्ध होता है।

महावीर के जन्म के 250 वर्ष पूर्व अर्थात् 599-250=849 वर्ष ईस्वी पूर्व तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण-समय मान्य है।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं-संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य भारतीय भाषाओं में 60 से भी अधिक काव्य तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवनचरित को लेकर विविध काव्य-विधाओं में लिखे गये हैं। उनमें से दिगम्बर जैन ग्रंथों का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत है–

कल्याण मंदिर-आचार्य कुमुदचंद्र–कल्याणमंदिर पार्श्वनाथ विषयक स्तोत्रों में प्रथम रचना है। इसमें 44 पद्य हैं। अंतिम पद्य में श्लेष द्वारा कवि ने अपने नाम की अभिव्यक्ति की है।

'जननयनकुमुदचन्द्रप्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो मुक्त्वा।
ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते।।'

डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री के अनुसार सिद्धसेन का दीक्षा नाम ही कुमुदचन्द्र था।[3] इस स्तोत्र में भगवान पार्श्वनाथ की भावपूर्ण स्तुति की गई है। भक्ति का माहात्म्य प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है कि हे भगवन्! जो मैं विविध तिरस्कारों का पात्र हो रहा हूँ, उससे स्पष्ट पता चलता है कि मैंने आपके चरणों की पूजा नहीं की है। क्योंकि आपके चरणों के पुजारियों का कभी किसी तरह का तिरस्कार नहीं होता है।[4]

सिद्धसेन दार्शनिक के साथ कवि हृदय भी है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में उन्हें समान आदर प्राप्त है तथा दोनों ही परम्परायें उन्हें अपना-अपना आचार्य स्वीकार करती हैं। आदिपुराण में जिनसेनाचार्य ने इनका सादर स्मरण किया है–

कवयः सिद्धसेनाद्या वयं च कवयो मताः।
मणयः पद्मरागाद्या ननु काचोऽपि मेचकः।।
प्रवादिकरियूथानां केसरी नयकेसरः।
सिद्धसेनकविर्जीयाद् विकल्पनखराङ्कुरः।।[5]

आचार्य हेमचंद्र ने शब्दानुशासन में, श्री अभयनन्दि ने जैनेन्द्र व्याकरण की वृत्ति में तथा जिनसेन प्रथम ने हरिवंशपुराण में सिद्धसेन की प्रशंसा की है।[6]

डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री ने आलोचन-प्रत्यालोचन पद्धति से सिद्धसेन का समय वि.सं. 625 (ई. सन् 568) के आसपास संभावित माना है।[7]

---

1. पार्श्वेशतीर्थसन्ताने पंचाशत् द्विशताब्दके। तदभ्यन्तरवर्त्यायुर्महावीरोऽत्र जातवान्।। – उत्तरपुराण 74।279
2. द्वासप्तमिसमाः किंचिदूनास्तस्यायुषः स्थितिः। – वही, 74।280
3. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 2 पृष्ठ 215
4. कल्याणमंदिर स्तोत्र, पद्य 36 5. आदिपुराण 1/39, 42
6. 'अनुसिद्धसेनं कवयः' शब्दानुशासन 2/2/39 का उदाहरण। 'उपसिद्धसेनं वैयाकरणाः' जैनेन्द्रव्याकरण 1/4/16 की कृति। 'बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः' हरिवंशपुराण 1/30 का उत्तरार्द्ध।
7. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 2 पृ. 211।

पार्श्वाभ्युदय[1]**: जिनसेन**—पार्श्वाभ्युदय तीर्थंकर पार्श्वनाथ के विषय में लिखा गया प्रथम अभ्युदयनामान्त काव्य तथा समस्यापूर्ति काव्यों में भी आद्य और सर्वोत्तम रचना है। चार सर्गात्मक इस काव्य में क्रमशः 118, 118, 57 और 71 कुल 364 पद्य हैं। कविकुलगुरु महाकवि कालिदास के मेघदूत के पद्यों मे कहीं-कहीं एक चरण और कहीं-कहीं दो चरणों को लेकर इस सम्पूर्ण काव्य की रचना समस्यापूर्ति के रूप में की गई है। इसमें भी कालिदास के मेघदूत की तरह मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। अंत में 5 मालिनी और 1 पद्य बसन्ततिलका छंद में है। आचार्य जिनसेन (8 वीं शताब्दी) के समय मेघदूत का क्या रूप था—यह जानने के लिए पार्श्वाभ्युदय का अत्यंत महत्व है।

पार्श्वनाथविषयक उत्तरकालीन काव्यों की तरह इस काव्य में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अनेक जन्म-जन्मांतरों का समावेश नहीं हो सका है। कथावस्तु बहुत ही संक्षिप्त है। अरविन्द (पोदनपुर के राजा) द्वारा बहिष्कृत कमठ सिन्धु तट पर जाकर तपस्या करने लगता है। कमठ का छोटा भाई मरुभूति भ्रातृ-प्रेम के कारण उसके पास जाता है, किन्तु क्रोधावेश में आकर कमठ उसे मार डालता है। अनेक जन्मों तक यही चक्र चलता रहता है। अंतिम जन्म में कमठ शम्बर और मरुभूति पार्श्वनाथ बनता है। शम्बर पूर्व वैर के कारण साधना में रत पार्श्वनाथ के ऊपर अनेक उपसर्ग उत्पन्न करता है। शम्बर यक्ष मेघरूप धारण करके पार्श्वनाथ को भी मेघरूप में मानकर अलकापुरी में जाने को कहता है। शम्बर अलकापुरी का बड़ा ही श्रृंगारी वर्णन करता है, पर पार्श्वनाथ विचलित नहीं होता। शम्बर फिर पाषाणवृष्टि करता है। उसी समय धरणेन्द्र और देवी पद्मावती आकर पार्श्वनाथ के उपसर्ग को दूर कर देते हैं। अंत में शम्बर भी पार्श्वनाथ के केवलज्ञान की उत्पत्ति देखकर क्षमायाचना करता है।

इस काव्य में शम्बर यक्ष के रूप में, राजा अरविन्द कुबेर के रूप में, पार्श्वनाथ को मेघ के रूप में चित्रित किया गया जान पड़ता है। काव्य में धार्मिक प्रतिपादन कुछ भी नहीं किया गया है। बीच-बीच में सूक्तियों का भी समावेश किया गया है। कालिदास के मेघदूत का रस श्रृंगार है, जबकि पार्श्वाभ्युदय का शांत। श्रृंगाररस की पंक्तियों का शांतरस में परिवर्तन जिनसेन जैसे परिनिष्ठित कवि द्वारा ही संभव हो सका है।

पार्श्वाभ्युदय की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता जिनसेन सेनसंघ के आचार्य वीरसेन के शिष्य और राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के समकालीन थे।[2] पार्श्वाभ्युदय की सगन्ति-पुष्पिका में जिनसेन को अमोघवर्ष का गुरु कहा गया है।[3] आचार्य जिनसेन के महापुराण के पूरक उत्तरपुराण के रचयिता आचार्य गुणभद्र ने प्रशस्ति में उल्लेख किया है कि अमोघवर्ष जिनसेन का परम भक्त था।[4] राजा अमोघवर्ष का राज्यकाल 815-877 ई. माना जाता है।[5] अतः जिनसेन का समय इनसे कुछ पूर्व होना चाहिए। शक सं. 705 (783ई.) में रचित हरिवंशपुराण में जिनसेनाचार्य ने पार्श्वाभ्युदय के रचयिता जिनसेन का उल्लेख किया है।[6] अतः पार्श्वाभ्युदय का रचना-काल ईसा की आठवीं शताब्दी ठहरता है। राजा अमोघवर्ष का तो जिनसेन से लड़कपन से ही सम्पर्क था।[7] अतः उनका समय आठवीं शताब्दी मानना आपत्तिजनक नहीं है।

पार्श्वाभ्युदय काव्य पर योगिराट् की एक संस्कृत टीका मिलती है, जिसका नाम सुबोधिका है। इस टीका में पार्श्वाभ्युदय की अत्यंत प्रशंसा की गई है। यह टीका मेघदूत पर लिखित मल्लिनाथ की संस्कृत टीका का अनुकरण

---

1. निर्णयसागर, बम्बई, 1909 ई. में तथा श्री गुलाबचंद्र हिराचंद्र कन्सट्रक्शन हाउस, बम्बई-1, 1995 सं. में (संस्कृत व्याख्या तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित) प्रकाशित।
2. पार्श्वाभ्युदय, 4/70-71
3. इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचितमेघदूततवेष्टिते पार्श्वाभ्युदये...नाम.....सर्गः। पार्श्वाभ्युदय सर्गान्त पुष्पिका।
4. यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तविर्भवत् पादाम्भाजरजः पिशंगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः। संस्मर्ता स्वमोघवर्षनृपतिः पूतो हमयेत्यक्तम्, स श्रीमान्जिनसेनपूज्यभगवत्पादौ जगन्मंगलम्।। उत्तरपुराण प्रशस्तिपद्य 9।
5. द्रष्टव्यः तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 2, पृ. 337।
6. याऽमिताभ्युदये पार्श्वे जिनेन्द्रगुणसंस्तुतिः। स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्ति संकीर्तयत्यसौ।।-हरिवंशपुराण, 1/40।
7. द्र. भारतीय इतिहास- एक दृष्टि (ज्योतिप्रसाद जैन), पृ. 301।

करती है। टीकाकार का समय शक सं. 1321 के बाद का सिद्ध होता है, क्योंकि उन्होंने शक सं. 1321 (1399 ई.) में रचित इरुग्दण्डनाथ के नानार्थरत्नमालाकोश का स्थान-स्थान पर निर्देश दिया है।[1] टीकाकार ने कालिदास और जिनसेन को समकालीन बताने का साहस किया है[2] , किन्तु यह बात प्रमाणविरुद्ध और सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है।

श्रीपुर पार्श्वनाथस्तोत्रः विद्यानंद स्वामि—दार्शनिक जगत् में विख्यात तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक एवं अष्टसहस्री सदृश महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध आचार्य विद्यानंद स्वामि कर्नाटक के निवासी ब्राह्मण थे। वादिराज सूरि (1025 ई.) ने पार्श्वनाथ चरित्र में इनका उल्लेख करते हुए कहा है कि "आश्चर्य है कि विद्यानंद के सरल सूत्र वाले दीप्तिमान अलंकार (तत्त्वार्थ के वार्तिकालंकार नामक ग्रंथ) को सुनने वालों के अंगों में भी दीप्ति आ जाती है।"[3] विद्यानंद का समय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन[4] लगभग 775–825 ई., डॉ. दरबारीलाल कोठिया[5] 775-840 ई. और डॉ. नेमीचंद शास्त्री[6] ईसा की नवमी शताब्दी मानते हैं। हमने वादिराज द्वारा उल्लेख को कालानुक्रमिक मानते हुए अनंतवीर्य और विशेषवादि के मध्य उल्लिखित होने से विद्यानंद का समय ईसा की दशम शताब्दी माना है।[7]

श्रीपुर पार्श्वनाथस्तोत्र तीस पद्यात्मक काव्य है। इसमें श्रीपुर या अंतरिक्ष के पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। स्तवन होने पर भी इसमें दर्शन एवं काव्य का अभूतपूर्व संगम दृष्टिगत होता है। अंकारों की योजना अप्रतिम है। एक पद्य यहाँ प्रस्तुत है–

'शरण्यं नाथार्हन् भव भव भवारण्यविगति-
च्युतानामस्माकं निरवकरकारुण्यनिलय।
यतोऽगण्यात्पुण्याच्चिरतरमपेक्ष्यं तव पदं
परिप्राप्ता भक्त्या वयमचललक्ष्मीगृहमिदम्।।[8]

पार्श्वनाथचरित्र : सोमदेवसूरि—डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने सोमदेवसूरि कृत पार्श्वनाथ चरित्र का उल्लेख किया है।[9] यह ग्रंथ अद्यावधि अनुपलब्ध है। सोमदेव कुशल राजनीतिज्ञ साहित्यकार तथा उत्कृष्ट धर्मवेत्ता थे। नीतिवाक्यामृत, यशस्तिलकचम्पू और उपासकाध्ययन से यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है। उन्होंने यशस्तिलकचम्पू में उसका रचनाकाल शक सं. 881 (959 ई.) निर्दिष्ट किया है,[10] अतः उनका काल विवादास्पद नहीं है। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने सोमदेव सूरि का समय 945-975 ई. माना है,[11] जो समीचीन है।

पार्श्वनाथचरित[12]ः वादिराजसूरि—पार्श्वनाथचरित द्वादश सर्गात्मक महाकाव्य है। इसका मूल स्रोत गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण है। जिनरत्नकोश में इसका विवरण पार्श्वनाथ पुराण नाम से दिया गया है।[13]कवि ने मंगलाचरण में अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियों एवं आचार्यों का उल्लेख किया है जो कालानुक्रमिक जान पड़ता है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से

1. द्र. पार्श्वाभ्युदय (निर्णयसागर) की श्री पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा लिखित भूमिका, पृ. 7।
2. पार्श्वाभ्युदय, टीकाकार की अनत्य प्रशस्ति, पृ. 270।
3. ऋजुसूत्रं स्फुरदरत्नं विद्यानंदस्य विस्मयः। शृण्वतामप्यलंकारं दीप्तिरंगेषु रंगति।।-पार्श्वनाथचरित 1/28।
4. 'जैन साहित्य सम्बर्द्धन में राष्ट्रकूट युग का योगदान लेख' सि. कैलाशचंद शास्त्री अभिनंदन ग्रंथ, पृ. 277
5. आप्तपरीक्षा प्रस्तावना पृ. 53
6. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 2 पृ. 352।
7. वादिराजसूरिकृत पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन पृ. 147
8. श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र, पद्य 29 (वीर सेवा मंदिर संस्करण)
9. 'जैन साहित्य सम्वर्द्धन में राष्ट्रकूट युग का योगदान' सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद शास्त्री अभिनंदन ग्रंथ, पृ.279
10. यशस्तिलकचम्पू,अन्त्य प्रशस्ति।
11. 'जैन साहित्य सम्वर्द्धन में राष्ट्रकूट का योगदान' सिद्धांताचार्य पं. कैलाशचंद शास्त्री अभिनंदन ग्रंथ पृ. 279।
12. माणिकचंद्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला बम्बई से वि. सं. 1973 (1916 ई.) में प्रकाशित।
13. जिनरत्नकोश पृ. 246।

इसका अत्यन्त महत्त्व है।[1] पार्श्वनाथचरित की रचना कवि ने महाराज जयसिंह की राजधानी में 947 शक सं.(1025 ई.) में की थी। इसका कवि ने स्वयं उल्लेख किया है।[2] इसका प्रधान रस शांत है। परन्तु अंग रसों के रूप में अन्य सभी रसों का प्रयोग किया गया है। डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने इसे उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य माना है।[3]

पाण्डवपुराण की प्रशस्ति में आचार्य शुभचंद्र ने पार्श्वनाथचरित पर पंजिका नामक टीका प्रणीत करने का उल्लेख किया है। वह टीका भट्टारक श्रीभूषण के अनुरोध पर लिखी गई थी और इसकी प्रथम प्रति श्रीपाल वर्णी ने तैयार की थी।[4] श्री नाथूराम प्रेमी ने स्व.श्री माणिकचंद्र जी के ग्रंथ भंडार में इस टीका के होने का उल्लेख किया है।[13] किन्तु प्रयास करने पर भी यह पंजिका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है। श्री कुन्दनलाल जैन ने दिल्ली जिन ग्रंथ रत्नावली में इस पंजिका को श्री दि. जैन सरस्वती भंडार, नया मंदिर-धर्मपुरा, दिल्ली में होने की सूचना दी है।[5] किन्तु प्रयास करने पर भी यह देखने में नहीं आ सकी।

वादिराज सूरि द्राविड संघ के अंतर्गत नंदिसंघ में अरुंगल नामक अन्वय (शाखा) के आचार्य थे।[6] इनके माता-पिता, जन्मभूमि आदि के विषय में प्रमाण उपलब्ध न होने पर भी गुरु और प्रगुरु (दादा गुरु) का उल्लेख पार्श्वनाथचरित की प्रशस्ति में होने के कारण संदेहास्पद नहीं है। सिंहपुर के प्रधान श्रीपाल देव वादिराज के गुरु के गुरु थे तथा श्रीपालदेव के शिष्य मतिसागर उनके गुरु थे।[7] रचनाकाल का उल्लेख होने से उनका समय ईसा की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं एकादश शताब्दी का पूर्वार्द्ध निर्विवाद है।[8]

पार्श्वनाथस्तोत्र : पद्मप्रभ मलधारिदेव—इस स्तोत्र का अपर नाम लक्ष्मीस्तोत्र भी है इसमें मूल 9 पद्य हैं। स्तोत्र में भगवान पार्श्वनाथ का गुणानुवाद, मरुभूति एवं कमठ के भवों का संकेत तथा उनकी अंतरंग एवं बहिरंग लक्ष्मी का वर्णन किया गया है। श्री दि. जैन सरस्वती भंडार नया मंदिर, धर्मपुरा-दिल्ली में इसकी अनेक प्रतियाँ हैं। यह माणिकचंद्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित हुआ था। स्तोत्र की आनुप्रासिक शैली अत्यंत मनोहारी है।

उदाहरणार्थ–

'लक्ष्मीमर्हस्तुल्यसती सती सती प्रवृद्धकालो विरतो रतो रतो।
जरारुजाजन्महता हता हता पार्श्व फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ।।[9]

कवि ने अंतिम पद्य में अपने नाम की भी सूचना दी है।[10]

पद्मप्रभ मलधारिदेव नियमसार की तात्पर्यवृत्ति टीका के प्रणेता के रूप में विख्यात हैं। इन्होंने नियमसार की टीका में 'तथा चोक्तं गुणभद्रस्वामिभिः' 'तथा चोक्तं वादिराजदेवैः' कहकर गुणभद्र एवं वादिराज का उल्लेख किया है। गुणभद्र का समय 898 ई. तथा वादिराज का समय 1025 ई. है। अतः इनका समय उनके बाद होना चाहिए। डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री ने इन्हीं सब प्रमाणों के आधार पर इनका समय ईसा की 12वीं शताब्दी माना है।[11]

---

1. द्रष्टक–लेखक का शोधप्रबन्ध 'वादिराजसूरिकृत पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन' पृ.129-149।
2. शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने संवत्सरे क्रोधने। मासे कार्तिकनाम्नि बुद्धिमहिते शुद्धे तृतीयादिने।
   सिंहे पाति जयादिके वसुमतीं जैनी कथेयं मया निष्पत्तिं गमिता सती भवतु वः कल्याणनिष्पत्तये।।पार्श्वनाथचरित, प्रशस्तिपथ5
3. द्रष्टव्य-डॉ.मंगलदेव शास्त्री द्वारा लिखित 'संस्कृत साहित्य के विकास में जैन विद्वानों का योगदान' लेख,वर्णी अभिनंदन ग्रंथ पृ. 394
4. जिनरत्नकोश पृ. 246। 13. जैन साहित्य और इतिहास पृ. 533 की पाद टिप्पणी
5. दिल्ली जिन ग्रंथ रत्नावली पृ.21 (परिशिष्ट)
6. श्री मद्द्राविड़संघेऽस्मिन् नन्दिसंघेऽस्त्यरुंगलः। अन्तयो भाति.....।।-जैन शिलालेख संग्रह भाग 2 लेखांक 288
7. पार्श्वनाथ चरित प्रशस्ति पथ 1-4।
8. विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य-वादिराजसूरिकृत पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन-डॉ.जयकुमार जैन
9. पार्श्वनाथस्तोत्र पद्य 1
10. 'श्री पद्मप्रभदेवनिर्मितमिदं स्तोत्रं जगन्मंगलम्।' वही, पद्य 6।
11. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 3 पृ.147।

पार्श्वनाथ पुराण : सकलकीर्ति–यह 23 सर्गात्मक काव्य है। इसका नाम पार्श्वनाथचरित्र भी उपलब्ध होता है। कथा का प्रारंभ वायुभूति के जीवन से होता है। वायुभूति का जीव ही अनेक जन्मों में की गई साधना के द्वारा पार्श्वनाथ तीर्थंकर होकर निर्वाण प्राप्त करता है। पार्श्वनाथपुराण की कथावस्तु को वर्ण्यविषय वे आधार पर सर्गों में विभक्त किया गया है।

सकलकीर्ति ने संस्कृत और राजस्थानी में अनेक ग्रंथों की रचना की। 15 वीं शताब्दी में विद्यमान पद्मपुराण के रचयिता जिनदास इनके शिष्य थे।[1] डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री सकलकीर्ति का समय वि.सं. 1443-1499 (1383-1442) मानते हैं।[2] किन्तु प्रो. विद्याधर जोहरापुरकर ने बलात्कारगण ईडर शाखा कालपट में आचार्य-परम्परा का निर्देश करते हुए सकलकीर्ति का समय वि.सं. 1450-1510 (1393-1453 ई.) माना है। इस आधार पर उनका साहित्य काल पंद्रहवीं शताब्दी का प्रारंभ माना जा सकता है।

इनका पार्श्वनाथाष्टक एक लघु स्तोत्र है, जो भावपूर्ण शैली में राजस्थानी भाषा में लिखित है।

पार्श्वनाथ स्तोत्र : पद्मनंदि भट्टारक–यह स्तोत्र संस्कृत पद्यात्मक है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री दि. जैन सरस्वती भंडार नया मंदिर, धर्मपुरा-दिल्ली में अच्छी हालत में गुटका सं. 7 में सुरक्षित है।[3] इसका नाम जीरापल्ली पार्श्वनाथ स्तोत्र भी मिलता है। इसमें जीरापल्ली स्थित जिनालय के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की रथोद्धता, शालिनी एवं वसन्ततिलका छन्दों में स्तुति की गई है।यह 90 पद्यात्मक कृति है। रचना अच्छी है। एक-दो पद्य यहाँ प्रस्तुत हैं–

'दुस्तरेऽत्र भवसागरे सतां कर्मचण्डिमभराऋिमज्जताम्।
प्रस्फुरति न करालम्बने त्वत्परो जिनवरोऽपि भूतले।।
त्वत्पदाम्बुजयुगाश्रयादिदं पुण्यमेति जगतोऽवतां सताम्।
स्पृश्यतामपि न चान्यशीर्षगं तव समोत्र तवको निगद्यते।।'[4]

भट्टारक पद्मनंदि प्रभाचंद्र के शिष्य थे।[5] प्रभाचंद्र के न पहुँचने पर एक प्रतिष्ठा महोत्सव के समय श्रावकों ने भट्टारक पद पर इनका पदाभिषेक किया था।[6] इन्होंने वि.सं. 1450 (1393 ई.) में वैशाखशुक्ला द्वादशी को आदिनाथ भगवान की एक मूर्ति प्रतिष्ठित कराई थी।[7] अतः इनका समय 14 वीं शताब्दी निर्मित है। पद्मनंदि द्वारा विरचित एक रावण पार्श्वनाथ स्तोत्र का भी पत चलता है। किन्तु यह स्तोत्र इन्हीं भट्टारक पद्मनंदि का है-यह संदेहास्पद है।

श्रुतसागरसूरि : पार्श्वनाथस्तवन–श्रुतसागरसूरि तत्त्वार्थ सूत्र के श्रुतसागरी वृत्ति के प्रणेता के रूप में विख्यात हैं। ये मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण के आचार्य थे। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है-पद्मनंदि–देवकीर्ति–विद्यानंदि–श्रुतसागरसूरि। विद्यानंदि भट्टारक के बाद मल्लिभूषण भट्टारक हुये जो श्रुतसागर सूरि के गुरुभाई (सतीर्थ) थे। मल्लिभूषण के शिष्य ब्रह्मनेमिदत्त ने श्रुतसागरसूरि का गुरुभाव से ही स्मरण किया है, क्योंकि वे उनके गुरु के सतीर्थ थे।[8] ब्रह्म नेमिदत्त ने श्रीपालचरित की रचना वि.सं.1585 (1528 ई.) में की थी। इनके गुरु के सतीर्थ होने से श्रुतसागर का समय ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी का अंत ठहरता है। डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री ने विद्यानंदि एवं मल्लिभूषण के पट्टकालों पर विचार करते हुए इनका समय वि.सं.1544-1556 (1487-1499 ई.) माना है।[9] अपनी तत्त्वार्थवृत्ति में उन्होंने अपने को देशव्रत, अनेक शास्त्रनिपुण, उभयभाषाचक्रवर्ती आगमप्रवीण एवं तार्किकशिरोमणि लिखा है।[10]

---

1. जिनरत्नकोश पृ. 234, 331। 2. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग-3, पृ. 329।
3. दिल्ली जिनग्रंथ रत्नावली पृ.98। 4. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 3, पृ.323-324 से उद्धृत।
5. द्र.जैन सिद्धांत भास्कर भाग 1, किरण 4, पृ. 53। 6. भट्टारक सम्प्रदाय लेखांक 237।
7. वही, लेखांक 239। 8. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 3, पृ. 39।
9. वही पृ. 393।
10. 'इत्यनवद्यगद्यपद्यविद्याविनोदितप्रमोदपीयूषरसयापापवित्रमतिसमभाजरत्नराजमहतिसागरयति राजराजितार्थनसमर्थेन तर्कव्याकरणछंदोऽलंकारसाहित्यादिशास्त्रनिशितमतिना श्रीमद्देवेन्द्रकीर्तिभट्टारकप्रशिष्येण शिष्येण सकलविद्वज्जनविहित-चरणसेवस्य श्रीविद्यानंदिदेवस्य संछर्दितमिथ्यामतदुर्गरेण श्रुतसागरेण सूरिणा.....। –श्रुतसागरी तत्त्वार्थवृत्ति पृ. 327

श्रुतसागरसूरि द्वारा विरचित पार्श्वनाथस्तवन की एक हस्तलिखित प्रति दिगम्बर जैन सरस्वती भंडार नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली में है। यह स्तवन 15 श्लोक प्रमाण है।[1] इसका अन्य प्रशस्ति श्लोक इस प्रकार है–

श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्रचन्द्रचलनालग्नस्य दासस्य मे।
नाम्नो वा श्रुतसागरस्य शिवभृद्भूयाद् भवच्छित्तये।।[2]

प्रतिलिपिकार ने इसमें लिखने में अनेक अशुद्धियाँ की हैं।

ब्रह्मज्ञानसागर : पार्श्वनाथपूजा–ब्रह्म ज्ञानसागर विद्याभूषण के शिष्य थे। ये विद्याभूषण काष्ठासंघ नंदीतटगच्छीय विश्वसेन के पट्टशिष्य थे। विद्याभूषण ने वि.सं. 1604 (1577 ई.) एवं वि. सं 1636 (1579 ई.) में पार्श्वनाथ भगवान की मूर्तियों की स्थापना कराई थी।[3] ब्रह्मज्ञानसागर ने अपनी कृतियों में भी गुरु के नाम का उल्लेख किया है। दशलक्षणकथा की प्रशस्ति में उन्होंने अपने को गुणभंडार कहा है।[4] ब्रह्मज्ञानसागर की अधिकांश रचनायें हिन्दी में हैं। केवल नेमिनाथपूजा, गोम्मट देवपूजा और पार्श्वनाथ पूजा में तीन पूजायें संस्कृत में लिखी गई हैं। भाषा सरल होने पर भी भावप्रवण है।

पार्श्वपुराण : वादिचंद्र–यह एक पौराणिक काव्य है, जिसमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित्र पौराणिक शैली में लिखा गया है। यह 1500 श्लोकप्रमाण है। कवि वादिचंद्र पवनदूत के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके गुरु का नाम भट्टारक प्रभाचंद्र और गुरु के गुरु का नाम ज्ञानभूषण था।[5] पार्श्वपुराण की एक हस्तलिखित प्रति इटावा सरस्वती भंडार में है।[6]

पार्श्वपुराण में वादिचंद्र ने अपने लिए प्रभाचंद्र के पट्ट का अधिकारी बताते हुए उन्हें अनेक दार्शनिकों से महान् बताया है तथा पार्श्वपुराण की रचना वि.सं. 1540 (1583 ई.) में कार्तिक शुक्ला पंचमी को बाल्मीक नगर में करने का उल्लेख किया है।[7] इस प्रकार कवि का रचना काल ईसा की 16 वीं शताब्दी का अंतिम चरण है।

पार्श्वपुराण : चंद्रकीर्ति–यह पंद्रह सर्गात्मक काव्य है, जो 2710 ग्रंथाग्र प्रमाण है। इसकी रचना वि.सं. 1654 (1597 ई.) में श्रीभूषण भट्टारक के शिष्य चंद्रकीर्ति ने वैशाख शुक्ला सप्तमी को गुरुवार के दिन देवगिरि के पार्श्वनाथजिनालय में की थी।[8] इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन बम्बई में है।[9]

चंद्रकीर्ति के गुरु श्रीभूषण भट्टारक काष्ठासंघीय थे। वे काष्ठासंघ के नंदी तटगच्छ के भट्टारक थे। वाचस्पति गैरोला ने उनकी परम्परा को इस प्रकार बतलाया है-रामसेन-नेमिषेण-विमलसेन-विशालकीर्ति-विश्वसेन-विद्याभूषण-श्रीभूषण। श्रीभूषण के उत्तराधिकारी के रूप में पद्मकीर्ति का उल्लेख किया है।[10] किन्तु प्रो. विद्याधर जोहरापुरकर ने काष्ठासंघ नंदीतटगच्छ की परम्परा का इस प्रकार उल्लेख किया है-धर्मसेन-विमलसेन-विशालकीर्ति-विश्वसेन-विद्याभूषण-चंद्रकीर्ति। प्रो.जोहरापुरकर ने चंद्रकीर्ति का समय वि.सं.1654-1681(1597-1624 ई.) माना है।[11] इस प्रकार चंद्रकीर्ति का भट्टारक रहने का समय ईसा की पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी का संधिकाल माना जा सकता है। चंद्रकीर्ति की एक पार्श्वनाथपूजा भी मिलती है।[12] इसकी अन्त्य प्रशस्ति इस प्रकार है–

---

1. दिल्लीजिनग्रंथरत्नावली, क्रमांक 679 पृ. 98। 2. वही, पृ. 146।
3. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 3 पृ.442।
4. भट्टारक श्री भूषणवीर। तिनके चेला गुणगंभीर। ब्रह्म ज्ञानसागर सुविचार। कीनो तीर्थ दशलक्षणसार।-दशलक्षण कथा, अन्त्य प्रशस्ति।
5. जिनरत्नकोश, पृ. 246। 6. जैन साहित्य और इतिहास पृ. 269।
7. सांख्यः शिष्यति सर्वथैव किं न वैशेषिको रंकति। यस्य ज्ञानकृपाणतो विजयतां सोऽयं विजयचंद्रमाः।।
   तत्पट्टमण्डनं सूरिवारिचंद्रः व्यरीरचत्। पुराणमेतत्पार्श्वस्य वादिवृन्दशिरोमणिः।।
   शून्याब्दे रसाष्जांके वर्षे पक्षे समुज्जवले। कार्तिके मासि पंचम्यां बाल्मीके नगरे मुदा।।
   –भट्टारक सम्प्रदाय, लेखांक 492, पृ. 193 से उद्धृत्।
8. जिनरत्नकोश, पृ. 246-247। 9.जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 125, पाद टिप्पणी 6।
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 369।
11. भट्टारक सम्प्रदाय पृ. 299। 12. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 3 पृ. 442।

'श्री भूषणालंकृतविश्वसेन-नरेन्द्रसूनुर्जिनपार्श्वनाथः।
श्री चंद्रकीर्तिः सततं पुनातु, वाणारसीपत्तनमण्डनं वः।।'[1]

विघ्नहरपार्श्वनाथस्तोत्र : भट्टारक महीचंद्र—भट्टारक महीचंद्र द्वारा विरचित विघ्नहर पार्श्वनाथ स्तोत्र की हस्तलिखित प्रति श्री दि.जैन सरस्वती भंडार नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली के गुटका सं. 8 में पत्र 24 तक सुरक्षित है।[2] यह संस्कृत पद्य में लिखित लघुकाय स्तोत्र है। इसमें 8 पद्य होने से इसे विघ्नहर पार्श्वनाथाष्टक भी कहा गया है।

महीचंद्र ने शक सं. 1618 (1696 ई.) में आशापुर में आदिपुराण की रचना की थी।[3] इनकी अन्य कृतियाँ अढाई व्रत कथा, गरुड पंचमी कथा, बारहमासी गीत, अर्हन्त आरती, नेमिनाथ भवान्तर एवं अन्य कतिपय स्तोत्र है। विघ्नहर पार्श्वनाथ स्तोत्र एवं कुछ अन्य स्तोत्रों को छोड़कर इनकी अन्य सभी कृतियाँ मराठी में मिलती हैं। इनका समय सत्तरहवीं शताब्दी का अंतिम चरण है।

पार्श्वनाथ स्तोत्र : हेमकीर्ति—हेमकीर्ति द्वारा संस्कृतभाषा में विरचित पार्श्वनाथस्तोत्र का उल्लेख मिलता है। ये लातूर के भट्टारक विद्याभूषण के शिष्य थे। इन्होंने नागपुर और सिन्दी (वर्धा) के मंदिरों में 1696 ई. से 1731 ई. तक पाँच मूर्तियों एवं यंत्रों की प्रतिष्ठा कराई थी।[4] मराठी में लिखित इनकी 4 रचनायें अरहंत पूजा, बारसमा आरती प्रकाशित हैं तथा दशलक्षण धर्म आरती एवं तीर्थवंदना अप्रकाशित है। गुजराती में अर्हंत पूजा का भी संकेत मिलता है।

छत्रसेन : पार्श्वनाथपूजा—छत्रसेन मूलसंघ, सेनगण पुष्करगच्छ की कारंजा शाखा के समंतभद्र भट्टारक के शिष्य थे। समंतभद्र के पश्चात् वे भट्टारक पदाभिषिक्त हुये। अर्जुनसुत द्वारा छत्रसेन की प्रशंसा में प्रदत्त एक पद्य से इसका समर्थन होता है—

श्री मूलसंघ में गच्छ मनोहर सोभत हे जु अतिहि रसाना।
पुष्करगच्छ सुसेन गणाश्रित पूज रचे जिनकी गुणमाला।।
समंतभद्र के पट प्रकट भयो छत्रसेन सुवादि विसाला।
अर्जुनसुत कहे भवि सु परवादी का मान मिटे तत्काला।।[5]

छत्रसेन मराठी, हिन्दी एवं संस्कृत के समर्थ विद्वान् थे। तीनों ही भाषाओं में उन्होंने साहित्य संरचना की है। उनकी मराठी रचना आदीश्वर भवान्तर शक सं. 1625 (1703 ई.) में पूर्ण हुई थी।[6] हीरा, बिहारी और अर्जुनसुत इनके प्रमुख शिष्य थे। हीरा ने वि.सं. 1754 (1697 ई.) में कद्रतशाह की प्रेरणा से वृधणपुर में अनिरुद्धहरण की रचना की थी।[7] अतः छत्रसेन का समय ईसा की सत्तरहवीं शती का अंतिम चरण तथा अट्ठारहवीं शती का प्रथम चरण मानना समुचित होगा।

छत्रसेन की तीन लघु रचनायें संस्कृत की उपलब्ध हैं-पार्श्वनाथ पूजा, पद्मावती स्तोत्र और अनंतनाथ स्तोत्र। पार्श्वनाथ पूजा की भाषा साधारण है, किन्तु भवों का प्रस्तुतीकरण अच्छा हुआ है।

पार्श्वपंचकल्याणक : जयसागर—पार्श्वपंचकल्याणक जयसागर की एक मात्र संस्कृत कृति है। हिन्दी में उनकी रचनायें ज्येष्ठजिनवरपूजा, विमलपुराण, तीर्थजयमाला एवं रत्नभूषणस्तुति प्राप्त होती है। रत्नभूषणस्तुति के रचयिता होने से स्पष्ट है कि ये रत्नभूषण के शिष्य थे। इनकी परम्परा इस प्रकार है-सोमकीर्ति-विजयसेन-यशकीर्ति-उदयसेन-त्रिभुवनकीर्ति-रत्नभूषण-जयसागर। रत्नभूषण का समय वि.सं. 1674 (1617 ई.) है।[8] अतः इनका समय इसके बाद ई. सन् की सत्तरहवीं शताब्दी का मध्य मानना उचित है।

---

1. भट्टारक सम्प्रदाय पृ. 278।
2. दिल्ली जिन ग्रंथ रत्नावली, पृ. 184।
3. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 4, पृ. 329
4. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 7, पृ. 218।
5. महारक सम्प्रदाय लेखांक 62 से उद्धत
6. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 7, पृ. 22।
7. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 3 पृ.446।
8. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 4 पृ.302।

प्रकृत जयसागर सीताहरण, अनिरुद्धहरण एवं समरचरित के प्रणेता ब्रह्म जयसागर का संबंध भट्टारक महीचंद के बाद मेरुचंद्र से है। मेरुचंद्र ब्रह्मसागर के सतीर्थ थे।

पार्श्वनाथस्तोत्रपंजिका : जयकेसरी—श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भंडार नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली के गुटका सं. 33 में जयकेसरी विरचित पार्श्वनाथ स्तोत्र पंजिका मिलती है। यह संस्कृत पद्य एवं गद्य में लिखित है। इस प्रति की हालत अच्छी है। इसमें 17 पृष्ठ हैं जिनमें 16 वां पृष्ठ नहीं है।[1]

इसका प्रारंभ 'ॐ नमो भगवते श्री पार्श्वनाथाय ह्रीं धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय.....' से होता है तथा समापन निम्नलिखित श्लोक से होता है-

'इति श्री जीरिकापल्ली स्वामी स्तोत्रार्थं लेशकृत्।
वदन्ति श्री पार्श्वनाथं सूरिः श्री जयकेसरिः।।[2]'

अन्त्य पुष्पिका में लिपि करने का समय पौष शुक्ल दशमी सोमवार वि.सं. 1859 (1802 ई.) दिया गया है।[3]

कलिकुण्डपार्श्वनाथपूजा : जिनदत्त—यह अद्यावधि अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ दि.जैन सरस्वती भंडार नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली के गुटका सं. 10, 38, 47 में विद्यमान है।[4]

इसका प्रारंभ 'सिद्धं विशुद्धं महमहानिवेश.....श्री कलिकुण्डयन्त्रम् ' से तथा अंत प्राकृत के 'वरखगिन्दु..... उपसग्गुतिहं'' के साथ होता है।[5]

पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र : अज्ञात—माणिकचंद्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला बम्बई से वि.सं. 1979 (1922 ई.) में सिद्धांतसारादि संग्रह का प्रकाशन हुआ था। इसमें एक स्तोत्र संकलित है जो समस्यापूर्ति के रूप में लिखा गया महत्वपूर्ण स्तोत्र है। एक अन्य कल्याणमंदिर स्तोत्र की पादपूर्ति के रूप में लिखा गया पार्श्वनाथस्तोत्र मिलता है। किन्तु इन स्तोत्रों के रचयिता का नाम-परिचय आदि का कुछ भी संकेत नहीं मिल सका है।

पासणाहचरिउ : देवदत्त—अपभ्रंश के चरितकाव्यों में डॉ.देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने देवदत्त के 'पासणाहचरिउ' (पार्श्वनाथचरित) का उल्लेख किया है।[6] इनकी कृति और इनका अपना परिचय उपलब्ध नहीं होता है।

जम्बूस्वामीचरिउ के रचयिता महाकवि वीर के पिता का नाम देवदत्त था। देवदत्त अपभ्रंश के अच्छे विद्वान् थे। महाकवि वीर ने अपभ्रंश साहित्य में अपने को प्रथम, पुष्पदंत को द्वितीय तथा अपने पिता देवदत्त को तृतीय स्थान प्रदान किया है।[7] संभव है, यही देवदत्त पासणाहचरिउ के रचयिता हों। यदि पासणाहचरिउ के रचयिता देवदत्त महाकवि वीर के पिता देवदत्त से अभिन्न हैं तो उनका समय ईसा की 10वीं शती का अंतिम भाग माना जा सकता है। क्योंकि महाकवि वीर के जम्बुसामिचरिउ का रचनाकाल 1019 ई. मान्य है।[8]

पासणाहचरिउ[9] : विबुध श्रीधर—पासणाहचरिउ अपभ्रंश में लिखित पौराणिक महाकाव्य है। इसकी कथावस्तु 12 संधियों में विभक्त हैं। ग्रंथ 2500 पद्य प्रमाण है। इसमें तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित निबद्ध है। काव्यत्व की दृष्टि से यह उत्तम कोटि की रचना है। नदियों, नगरों आदि का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया गया है। इसमें विविध छंदों का प्रयोग है तथा भाषा आलंकारिक है। कथावस्तु परम्परा प्राप्त है।

---

1. दिल्ली जिन ग्रंथ रत्नावली, पृ. 98।
2. वही, परिशिष्ट, पृ. 146।
3. 'इति श्री जरिउलीश्रीपार्श्वनाथदेवाधिदेवस्तोत्रपंजिका सम्पूर्णम्। लिपिकालौषसुदी 10 चंद्रवार सं. 1859।' -वही परिशिष्ट,पृ.146।
4. दिल्ली जिन ग्रंथ रत्नावली, पृ. 136।
5. वही, परिशिष्ट पृ. 175।
6. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ.35।
7. जम्बुसामिचरिउ, 1/4-5।
8. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 3, पृ. 127।
9. हस्तलिखित प्रति अग्रवाल दि.जैन मंदिर मोतीकटरा, आगरा में ह

अपभ्रंश एवं संस्कृत-साहित्य में 7 श्रीधर विद्वानों का उल्लेख मिलता है।[1] किन्तु पासणाहचरिउ में प्रदत्त प्रशस्ति में इनका परिचय उल्लिखित होने से अंधकाराच्छन्न नहीं है। ये हरियाणा के मूल निवासी थे। वहाँ से चलकर यमुना पार दिल्ली आये। वहीं पर अग्रवाल नट्टल साहू की प्रेरणा से उन्होंने इस ग्रंथ की रचना की।[2] यही कारण है कि दिल्ली का बड़ा ही रम्य वर्णन पासणाहचरिउ में हुआ है। कवि विबुध श्रीधर की माता का नाम वील्हा और पिता का नाम बुधगोल्ह था। पार्श्वनाथचरित (पासणाहचरिउ) में कवि ने ग्रंथ का रचनाकाल अंकित किया है। अतः इनका समय विवादास्पद नहीं है। पासणाहचरिउ की रचना वि.सं. 1189 (1132 ई.) में मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी रविवार को पूर्ण हुई थी।[3]

डॉ. राजाराम जैन ने कवि का कुल जीवन मात्र वि.सं. 1159-1230 (1102-1173 ई.) तक माना है।[4]

पासणाहचरिउ[5] : रइधू—इसकी कथावस्तु 7 संधियों में विभक्त है। रइधू की समस्त कृतियों के अपभ्रंश भाषा का यह काव्य श्रेष्ठ, सरस एवं रुचिकर है। इसमें संवाद प्रस्तुत करने का ढंग बड़ा ही सुन्दर तथा नाटकीय है। ये संवाद पात्रों के चरित्र चित्रण में पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं। रइधू के पासणाहचरिउ की अनेक हस्तलिखितप्रतियाँ कोटा, ब्यावर, जयपुर, आगरा के ग्रंथभंडारों में भरी पड़ी हैं,[6] जिससे इस ग्रंथ की लोकप्रियता और महत्ता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

रइधू काष्ठासंघ की माथुरगच्छ की पुष्करगणीय शाखा से संबद्ध है। अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी में इनकी 40 के लगभग रचनायें मिलती हैं। इनके पिता का नाम हरिसिंह, पितामह का नाम संघपति देवराज, माता का नाम विजयश्री तथा पत्नी का नाम सावित्री था। इनका एक पुत्र भी था, जिसका नाम उदयराज था।[7] कवि ने ग्वालियर शहर का बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है, जिससे ग्वालियर की तत्कालीन राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था, धार्मिक स्थिति आदि का पता चलता है। डॉ.राजाराम जैन ने इनका समय वि.सं. 1457-1536 (1400-1479 ई.) माना है।[8]

पासणाहचरिउ : असवाल कवि—अपभ्रंश भाषा में निबद्ध यह ग्रंथ 13 सन्धियों में विभक्त है। कथावस्तु परम्परागत है। इसमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का पूर्व 9 भवों सहित वर्णन किया गया है। कमठ का जीव मरुभूति के जीव से 9 भवों तक निरंतर वैर करना रहता है। 10 वें भव में मरुभूति का जीव तीर्थंकर पार्श्वनाथ के रूप में आत्मकल्याण करता है। पार्श्वनाथ 30 वर्ष की आयु में दीक्षा धारण कर लेते हैं और कठोर तपस्या करने के फलस्वरूप सम्मेदशिखर पर निर्वाण प्राप्त करते हैं। इस ग्रंथ की एक ही हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है, जो श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मंदिर मोतीकटरा आगरा में है। इसमें 91 से 97 तक के पन्ने नहीं हैं।[9] काव्यत्व की दृष्टि से इसका विशेष महत्व नहीं है।

असवाल कवि गोलारड वंश के लक्ष्मण के पुत्र थे। इस काव्य में इन्होंने मूलसंघ के बलात्कारगण के आचार्यों का उल्लेख किया है। अतः जान पड़ता है कि वे इसी से संबद्ध थे। ग्रंथ रचना चौहानवंशी राजा पृथ्वीसिंह के राज्यकाल में वि.सं. 1479 (1422 ई.) में हुई थी।[10]

पासपुराण : तेजपाल—पासपुराण पद्धड़िया छंद में लिखित एक खंडकाव्य है। ग्रंथ अद्यावधि अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भट्टारक हर्षकीर्तिभंडार अजमेर[11], बड़े घड़े का मंदिर अजमेर तथा आमेरशास्त्र भंडार जयपुर में है। बड़े घड़े का मंदिर अजमेर तथा आमेर शास्त्र भंडार जयपुर की प्रति का रचनाकाल क्रमशः वि.सं.1516 और 1577 (1459 और 1520 ई.) है।[12]

---

1. द्रष्टव्य-परमानंद शास्त्री द्वारा लिखित लेख अनेकांत वर्ष 8, किरण 12।
2. द्र.भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ. 157। 3. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 4 पृ.139।
4. 'विबुध श्रीधर और उनका पासणाहचरिउ' लेख सिद्धांताचार्य पं. कैलाशचंद्र शास्त्रीअभिनंदन ग्रंथ पृ. 228।
5. रावजी सखाराम दोशी, शोलापुर से प्रकाशित।
6. द्रष्टव्य- अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ.146।
7. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 4 पृ.200-201।
8. महाकवि रइधू के साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन पृ.120।
9. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ. 146। 10. अनेकांत वर्ष 13 किरण 10 अप्रैल 1955 पृ. 252।
11. वही पृ. 211। 12. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ. 146।

कवि तेजपाल मूलसंघ के भट्टारक रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति और विशालकीर्ति की आम्नाय से संबंधित थे। इन्होंने पासपुराण की रचना मुनि पद्मनंदि के शिष्य शिवनंदि भट्टारक के संकेत से वि.सं. 1515 (1458 ई.) में की थी।[1] इस आधार पर वि. सं. 1516 में लिखित बड़े-घड़े का मंदिर, अजमेर की हस्तलिखित प्रति उसी समय लिखी गई प्रतीत होती है। इस प्रकार कवि का समय ईसा की 15 वीं शताब्दी सिद्ध है।

पासणाहचरिउ : देवचंद्र—प्रस्तुत पासणाहचरिउ में 11 संधियाँ और 202 कड़वक हैं। देवचंद्र ने अपभ्रंश में लिखित इस कृति में पार्श्वनाथ भगवान के पूर्व भवों के साथ उनके जीवन पर प्रकाश डाला है। ग्रंथ अद्यावधि अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति पं. परमानंद शास्त्री के निजी संग्रह में होने का उल्लेख मिलता है। इसका लेखनकाल वि.सं. 1549 (1492 ई.) है। इसी की एक प्रति पासपुराण नाम से सरस्वती भवन नागौर में भी है। इसका रचनाकाल वि.सं.1520 (1463 ई.) है। प्रति पूर्ण है।[2]

पासणाहचरिउ की प्रशस्ति में इन्हें मूलसंघ के वासवसेन का शिष्य कहा गया है। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है- श्रीकीर्ति-देवकीर्ति-मोनीदेव-माधवचंद्र-अभयनंदी-वासवचंद्र-देवचंद्र। देवचंद्र ने पासणाहचरिउ की रचना गुंदिज्ज नगर के पार्श्वनाथ मंदिर में की थी।[3] एक वासवसेन नामक विद्वान का उल्लेख श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख में किया गया है।[4] संभवतः यही वासवसेन इनके गुरु होंगे। उक्त शिलालेख में वासवसेन को 'स्याद्वादतर्ककर्कशधिषणः' कहा गया है। देवचंद्र के काल-निर्धारण में कोई आंतरिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री भाषा शैली के परीक्षण आदि के आधार पर देवचंद का समय ईसा की 12वीं शताब्दी के आसपास मानते हैं।[5]

देवचंद्रकृत संस्कृत भाषा में लिखित पार्श्वनाथस्तोत्र भी मिलता है। इसकी हस्तलिखित प्रति श्री दि. जैन सरस्वती भंडार नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली में गुटका सं. 55 में सुरक्षित है। प्रति की हालत अच्छी है। अंतिम श्लोक इस प्रकार है–

देवश्रीहरिषेणपूर्वविभवः सो देवचंद्रस्थितः।
सम्यक्त्वादिगुणावृतो गतमलो भूयाज्जितो नः श्रियः।।[6]

पार्श्वनाथगीत : बूचराज—कवि बूचराज का उनकी कृतियों में बूचा, वल्ह, वील्ह एवं वल्हव नाम से भी उल्लेख हुआ है। किन्तु बूचा या बूचराज इनका अत्यधिक प्रचलित नाम रहा है। ये भट्टारक सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी थे। बूचराजकृत भुवनकीर्ति गीत से स्पष्ट होता है कि वे भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य थे। महारक रत्नकीर्ति का भी स्मरण उन्होंने भुवनकीर्ति गीत में किया है।[8] ऐसा प्रतीत होता है कि बूचराज को अपने अंतिम समय में रत्नकीर्ति का भीसामीप्य मिला था।

बूचराज की अधिकांश कृतियाँ राजस्थान के ग्रंथ भंडारों में प्राप्त होती हैं। अतः वे राजस्थानी माने जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा आदि का कुछ भी परिचय नहीं दिया। वि.सं. 1591 (1534 ई.) में भाद्रपद शुक्ला पंचमी को उन्होंने अपनी कृति संतोषजयतिलकु की रचना हिसार नगर में करके दशलक्षण में स्वाध्यायार्थ समाज को समर्पित की थी।[9] इसके पहले वे वि.सं.1589 (1532 ई.) में अपनी प्रथमकृति मयणजुज्झ की

---

1. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 4, पृ. 210।
2. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ. 147।
3. परमानंदशास्त्री द्वारा लिखित 'अपभ्रंश भाषा का पासचरिउ और कविवर देवचंद' लेख-अनेकांत वर्ष 11, किरण 4-5, जून-जुलाई 1952, पृ.211-212।
4. जैन शिलालेख संग्रह भाग 1, लेखांक 55, पद्य 25।
5. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 4 पृ. 182।
6. दिल्ली जैन ग्रंथ रत्नावली, परिशिष्ट पृ. 145।
7. श्रीभुवनकीर्तिचरण प्रणमोहूं सखी आज वद्धावहो।-भुवनकीर्तिगीत (कविवर बूचराज और उनके समकालीन कवि) पृ. 106।
8. बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ दयोसह गुरो।-वही पृ. 107।
9. संतोषुह जय तिलउ जंपिउ हिसार नगर मंझ में। जे सुणहि भविय इक्क मनि ते पावियं वंछिय सुक्ख।।
   संवति पनरइ इक्याण भद्दवि सिय पक्खि पंचमीदिवसे।
   -संतोष जय तिलकु (कविवर बूचराज और उनके समकालीन कवि) पद्य 121-122। पृ. 86

रचना राजस्थान में कर चुके थे।[1] अतः इनका रचनाकाल ईसा की सोलहवीं शताब्दी का मध्य ठहरता है।

पार्श्वनाथगीत में चार पद्यात्मक मनोहर गीत हैं, जिसमें भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। यह वि.सं. 1563 (1506 ई.) में लिखा गया था[2] और कदाचित् बूचराज की रचनाओं में प्राचीनतम है।

चिन्तामणि जयमाला, पार्श्वनाथशकुनसत्ताबीती, पार्श्वनाथ स्तवन,पार्श्वनाथ जयमाला : ठक्कुरसी—ठक्कुरसी ढूंढाहड़ क्षेत्र के चम्पावती (चाटसू) नगर के रहने वाले। इनके पिता का नाम धेल्ह था, जो स्वयं कवि थे। धेल्ह की दो कृतियाँ बुद्धिप्रकाश एवं विशालकीर्ति गीत उपलब्ध है। ये पहाड़िया गोत्रोत्पन्न खण्डेलवाल दिगम्बर जैन थे। ये पार्श्वनाथ के अत्यंत भक्त थे।[3] यही कारण है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में पार्श्वनाथ को विशिष्ट महत्व दिया है इन्होंने पार्श्वनाथ शकुन सत्ताबीसी की रचना वि.सं. 1578 (1521 ई.) में की थी।[4] अतः ये कवि बूचराज के समकालीन माने जा सकते हैं।

चिन्तामणि जयमाल अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी में लिखित 12 पद्यों की लघु रचना है जिसमें पार्श्वनाथ की भक्ति से घटित घटनाओं एवं विपत्तियों से बचने का वर्णन किया गया है। पार्श्वनाथ शकुन सत्ताबीसी 27 पद्यात्मक एक पार्श्वनाथ की स्तुति परक रचना है। इसमें चम्पावती में विराजमान पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस रचना का विशेष महत्व है, क्योंकि इसमें इब्राहीम लोदी के रणथम्भोर किले पर आक्रमण एवं उससे उत्पन्न उपद्रवी भगदड़ का वर्णन किया है।[5] पार्श्वनाथ स्तवन पण्डित मल्लिनाथ के आग्रह पर रचित द्वादश पद्यात्मक एक प्रभावक स्तोत्र है, जिसमें चंपावती के पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति की गई है। पार्श्वनाथ जयमाला भी पार्श्वनाथ की स्तुति में विरचित एकादश पद्यात्मक रचना है। इसके अंतिम पद में कवि ने अपने नाम एवं पिता के नाम का भी उल्लेख किया है। कवि ठक्कुरसी की ये सभी रचनायें डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने सम्पादित करके 'कविराज बूचराज और उनके समकालीन कवि' नामक ग्रंथ में प्रकाशित की है।

पार्श्वनाथ : भट्टारक रत्नकीर्ति—रत्नकीर्ति का जन्म गुजरात प्रांत के घोघा नगर में हुआ था। उनके पिता का नाम देवीदास और माता का नाम सहजलदे था। देवीदास हूंबडजातीय श्रेष्ठी थे। रत्नकीर्ति की मातृभाषा गुजराती थी तथा हिन्दी का उन्हें अच्छा ज्ञान था। उनके भक्तिपरक गीत हिन्दी भाषा में लिखे हुए हैं। रत्नकीर्ति कुन्दकुन्दाम्नायी मूलसंघ सरस्वती गच्छ बलात्कारगण के भट्टारक लक्ष्मीचंद के प्रशिष्य एवं अभयनंदि के शिष्य थे वि.सं. 1656 (1599 ई.) तक भट्टारक रहे।[6] अतः उनका रचनाकाल भी सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। रत्नकीर्ति के बाद उनके सुयोग्य शिष्य कुमुदचंद भट्टारक बने। उनके अन्य शिष्यों में ब्रह्म जयसागर, गणेश, राघव एवं दामोदर के नाम उल्लेख्य हैं।[7]

रत्नकीर्ति ने अनेक स्वतंत्र ग्रंथ एवं स्फुट पद लिखे हैं। इन स्फुट पदों में अनेक तीर्थंकर विषयक भी हैं। 'वाराणसी नगरी नो राजा अश्वसेन गुणधार' उनका पार्श्वनाथ विषयक पद है। ग्रंथ भंडारों के अन्वेषण से उनके अनेक पदों का मिलना संभावित है। उनकी स्वतंत्र कृतियाँ इस प्रकार हैं।- महावीर गीत, नेमिनाथफागु, नेमिनाथ बारहमासा, सिद्ध धूल,

1. राइ बिक्कम तणउं संबतु नवासिय पणरहसै। सरद रूत्ति आसवज वखाणिउं तिथि सुकलु पखु।
-मयणजुज्झ (कविवर बूचराज और उनके समकालीन कवि) पद्य 159 पृ.69।
2. दह पंच सहसउ वद तरेसठ माघ सुदि तिथि वारसी। कवि वल्ह परस जिणेंद वंदौ जन्म लिया बनारसी।।
पार्श्वनाथगीत (कविवर बूचराज और उनके समकालीन कवि) पद्य 4 पृ. 108।
3. द्रष्टव्य-'कविवर बूचराज और उनके समकालीन कवि' में कविवर ठक्कुरसी का परिचय, पृ.237-240।
4. धेल्ह णंदणु ठकुरसी नाम। जिणपाय पंकय भसलु तेण। पास धुय किस सचो जवि। पंदरासय अट्ठतरइ।
माह मासि सिय परव दुइजवि। -पार्श्वनाथशकुनसत्ताबीसी (कविवर बूचराज और अके समकालीन कवि) पद्य 27 पृ. 298।
5. जवहि लिद्धउ राणि संग्रामि रणथंभुवि दुग्ग गढु। जब इब्राहिम साहि कीयिउ वलु वौली मो कलिउ।
वोलु कौलु सबु तेण लोपिड जिव लग उज्झलि हाउसिउ। मेछ मूढु भय वाज्जि विपु चंपावती देस सहि गया दहइ दिसि मज्जि।
वही पद्य 21 पृ. 294।
6. द्रष्टव्य-भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंदः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 42-43।
7. वही, पृ. 47।

बलिभद्रनी वीनति, नेमिनाथ वीनती। उनके सभी ग्रंथों पर मातृभाषा गुजराती का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

पार्श्वनाथ गीत, संकटहरपार्श्वनाथनी विनती, लोडणपार्श्वनाथनी विनती, चिन्तामणिपार्श्वनाथगीतः भट्टारक कुमुदचंद

भट्टारक कुमुदचंद के पिता का नाम सदाफल एवं माता का नाम पद्माबाई था। वे मोढवंश के शिरोमणि थे।[1] उन्होंने युवावस्था के पूर्व ही संयम को धारण कर लिया था तथा इंद्रिय रूपी ग्राम को उजाड़कर काम रूपी नाग को जीत लिया था।[2] भट्टारक रत्नकीर्ति ने वि.सं.1656 (1599 ई.) में कुमुदचंद का भट्टारक पदाभिषेक किया था।[3]

भट्टारक रत्नकीर्ति द्वारा विरचित अद्यावधि छोटी-बड़ी 29 कृतियाँ तथा विभिन्न राग रागिनियों में निर्मित स्फुट पद प्राप्त होते हैं। पार्श्वनाथगीत दस पद्यात्मक है। इस गीत में हांसोट नगर के जिनालय में विद्यमान भगवान पार्श्वनाथ के पंचकल्याणकों का वर्णन किया गया है। संकटहर पार्श्वनाथनी विनती में संकटों को दूर करने के लिए पार्श्वप्रभु का स्मरण किया गया है। लोडण पार्श्वनाथनी विनती में लाट देशस्थ डभाई नगर के जिनालय में विराजमान तथा लोडण पार्श्वनाथ नाम से प्रसिद्ध प्रतिमा का स्मरण किया है। इसमें तीस पद्य हैं। अंत में इसका फल बताते हुए कहा गया है कि इसके स्मरण से सभी पाप, विघ्न बाधायें स्वतः नष्ट हो जाती हैं।[4] चिन्तामणि पार्श्वनाथगीत में पार्श्वप्रभु की अष्टद्रव्य से पूजा करने का महत्व बताया गया है।

पार्श्वनाथ छंद : हर्षकीर्ति—हर्षकीर्ति विरचित पार्श्वनाथ नामक कृति का उल्लेख डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने किया है। उन्होंने हर्षकीर्ति का परिचय इस प्रकार दिया है–

हर्षकीर्ति 17 वीं शताब्दी (विक्रम की) के चतुर्थ पाद के कवि थे। ये राजस्थानी संत थे तथा भट्टारकों से प्रभावित थे। इन्होंने अपनी अधिकांश रचनायें राजस्थानी भाषा में निबद्ध की हैं।[5]

पार्श्वनाथवीनती : वादिचंद—वादिचंद्र भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य और भट्टारक प्रभाचंद्र के शिष्य थे। इन्होंने संस्कृत में पार्श्वपुराण की संरचना वाल्हीक नगर में वि.सं. 1640 (1583 ई.) में की थी।[6] इनकी अन्य संस्कृत रचनाओं में ज्ञानसूर्योदय नाटक, यशोधरचरित तथा कालिदास के मेघदूत के आधार पर लिखा गया पवनदूत सुप्रसिद्ध है। इनका रचनाकाल भी पार्श्वपुराण के आसपास ही है। अतः इनका काल सोलहवीं शताब्दी का अंत तथा सत्तरहवीं शताब्दीका प्रारंभ माना जा सकता है।

पार्श्वनाथ वीनती की एक हस्तलिखित प्रति कोटडियों का दिगम्बर जैन मंदिर डूंगरपुर के शास्त्र भंडार में है। इसका रचनाकाल वि.सं. 1648 (1591 ई.) है।[7]

पार्श्वनाथरास : कल्याणकीर्ति—कल्याणकीर्ति सुप्रसिद्ध जैन संत देवकीर्ति मुनि के शिष्य थे। ये भीलोडा ग्राम के निवासी थे। वहीं पर मंदिर में इन्होंने आसोज शुक्ला पंचमी को वि. सं. 1692 (1635 ई.) में चारुदत्त रास या चारुदत्त

---

1. मोढवंश शृंगार शिरोमणि साह सदाफल तात रे। जायो जतिवर जुग जयवन्तों पद्माबाई सोहान रे।।
   धर्मसागर कृत गुर्वावली गीत। (भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंद्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 55 से उद्धत)
2. बालपणे जिणो संयम लिधो धरीयो वेराग रे। इंद्रिया ग्राम उजारमा ढेला, जीतो मदनाग रे।।
3. संवत सोल छप्पने वैशाखे प्रकट पट्टीधर थाप्या रे। रतनकीरतिगोरबारडोली वर सूर मंत्र शुभ आप्या रे।।
   -कुमुदचंद्रनी हमची, पद्य 9 (महारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंद्र : व्य.एवं कृ.पृ.233।
4. जेह ने नामे नासे शोक संकट सघला थापे फोक। लक्ष्मी रहे नित संगे।।
   नाम जपंजा न रहे पाप, जनम मरण टाले संताप। आये सुगति निवास।।
   जे नर सुमरे लोडण नाम ते पामे मनवांछित काम। कुमुदचंद कहे भासा।।
   लोडण पार्श्वनाथनी विनती, पद्य 28-30। (भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंद्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.216-217)
5. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंदः व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ. 13-14
6. शून्याब्दौ रसाब्जांके बर्षे पक्षे समुज्ज्वले।
   कीर्तिकमासपंचम्यां वाल्हीके नगरे मुदा।।-पार्श्वपुराण, अन्त्य प्रशस्ति (हस्तलिखित प्रति सरस्वती भंडार, इटवा)
7. राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची पंचम भाग पृ.491।

प्रबंध की रचना की थी।[1] इनकी पार्श्वनाथ विषयक कृति पार्श्वनाथरास का रचना काल वि.सं. 1617 (1560ई.) है।[2] अतः कवि का काल सोलहवीं-सत्तरहवीं शताब्दी ई. माना जा सकता है। पार्श्वनाथरास की पाण्डुलिपि जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के ग्रंथ भंडार में विद्यमान है।[3]

पार्श्वपुराण : धनसागर—पार्श्वपुराण हिन्दीभाषा में विरचित एक सुन्दर ग्रंथ है, जिसकी रचना छप्पयों में की गई है। इसकी अन्त्य प्रशस्ति से इसके रचनाकाल एवं गुरु परम्परा का पता चलता है-

काष्ठासंघ प्रसिद्ध गछ नंदीतटनायक।
विद्यागण गंभीर सकल विद्या गुणनायक।।
रामसेन आम्नाय इन्द्रभूषण भट्टारक।।
तत्पट्टोद्धर धीर सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक।
तद्वदन विनिर्गत अमृतसम सदुपदेश वानी सुनी।
षट्चरण पास जिनवरतणा जोड्या धनसागर गुणी।
देश वराड मझार नगर कारंजा सोहे।
चन्द्रप्रभ जिन चैत्य मूलनायक मन मोहे।।
काष्ठासंघ सुगछ लाडबागड़ बड़भागी।
वघेरवाल विख्यात न्यात श्रावक गुणरागी।।
जिनधर्मी जमुना संघपति सुत पूजा संघपति वचन।
चित्त मैं धरी अत्याग्रह थकी रची सु धनसागर रचन।
षोडशशत एकवीस शालिवाहन शक जाणो।
रस भुज भुज प्रमित वीर जिन शाक वखाणो।।
विक्रम शाक विवक्र वरस सत्रासे बीते।
उत्तर छप्पन माहि असित आश्विन दी दीजे।।
कृत मंगल मंगलवार दिन मंगल मंगल तेरसी।
धनसागर पास जिनेस का षट्पद वचन कहे इसी।।[4]

इससे स्पष्ट है कि इन्द्रभूषण के बाद सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक हुये। इन्होंने वि.सं.1744 (1687 ई.) में रत्नत्रय यंत्र वि.सं. 1747 (1690 ई.) में मेरुमूर्ति की स्थापना की थी।[5] उनके शिष्य धनसागर थे। इन्होंने वि.सं. 1773 (1716 ई.) में पार्श्वपुराण की रचना की थी। शेष परिचय उक्त प्रशस्ति से स्पष्ट है।

पार्श्वनाथ गीत : संयमसागर—ब्रह्म. संयमसागर कुमुदचंद भट्टारक के शिष्य थे। इन्होंने अपने गुरु की प्रशंसा में तथा तीर्थंकरों की स्तुति में अनेक गीत लिखे हैं। संयमसागर अपने गुरु कुमुदचंद को भी साहित्यसपर्या में सहयोग किया करते हैं। इनके द्वारा विरचित गीतों में पार्श्वनाथ की स्तुति में लिखा गया केवल एक गीत ही उपलब्ध हुआ है।[6] कुमुदचंद्र

---

1. तिहां चोमासि के रचना करि सोलवाणुगिरे आसो अनुसरि।
   अनुसरि आसो शुक्ल पंचमी श्री गुरुचरण हृदयधरि।
   कल्याणकीरति कहि सज्जन भणो सुणो आदरि करि।।
   चारुदत्त रास पद्य 15 भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंद्रः व्यक्तित्व एंव कृतित्व पृ. 15 से उद्धत ।
2. द्र. वही, पृ.16
3. राजस्थान के जैन भंडारों की ग्रंथ सूची भाग-2, पृ. 74।
4. भट्टारक सम्प्रदाय लेखांक 754 पृ.288
5. वही.पृ0 297
6. द्रष्टव्य-भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंद्रः व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ.-115।

भट्टारक का शिष्य होने से इनका समय ईसा की सत्तरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मानना समीचीन प्रतीत होता है।

पार्श्वनाथपद : भट्टारक शुभचंद्र—भट्टारक शुभचंद्र वि.सं. 1721 (1664 ई.) में भट्टारक अभयचंद्र के बाद ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा के दिन पोरबंदर में एक महोत्सव के समय भट्टारक गद्दी पर अभिषिक्त हुये।पं. श्रीपाल कृत शुभचंद्र हमची में उनका विस्तृत वृतान्त दिया गया है। प्रारंभ में उनका नाम नवलराय था। ब्रह्मचर्यव्रत धारण करने पर उनका नाम सहजसागर तथा भट्टारक पदासीन होने पर शुभचंद्र रखा गया।[1]

पार्श्वनाथ विषयक उनके दो गीत उपलब्ध होते हैं- 'जपो जिन पार्श्वनाथ अवतार' और 'अज्झारा पार्श्वनाथजी वीनती'। इन पदों में भक्ति भावना दर्शनीय है।

पार्श्वनाथस्तोत्र, पार्श्वनाथ पूजा : द्यानतराय—द्यानतराय आगरा निवासी गोयल गोत्रोत्पन्न श्यामदास अग्रवाल के पुत्र थे। इनका जन्म वि.सं. 1733 (1676 ई.) में हुआ था। इनका 1747 वि.सं. (1690 ई.) में 14 वर्ष की उम्र में विवाह हुआ। 1777 (1720 ई.) में उन्होंने सम्मेदशिखर की यात्रा की तथा 1788 वि.सं. (1723 ई.) में एक संकलन स्वरचित पदों, पूजाओं एवं कविताओं का किया। धर्मविलास इनकी सुप्रसिद्ध रचना है। जो जैन रत्नाकर कार्यालय मुम्बई से फरवरी 1914 में प्रकाशित हुई थी। जैन समाज में इनके पदों की महती प्रतिष्ठा है। उनके समय आगरा में मानसिंह और बिहारीदास जैन धर्म के सुविख्यात विद्वान् थे। उनके सानिध्य से द्यानतराय की जैनधर्म में प्रगाढ़ आस्था हो गई थी। वि.सं. 1780 (1723 ई.) में वे दिल्ली जाकर रहने लगे थे।[2] उन्होंने अनेक पदों, पूजाओं एवं स्तोत्रों की रचना की है। इनमें पार्श्वनाथ स्तोत्र एवं पार्श्वनाथ पूजा भी है। जैन भक्ति साहित्य में द्यानतराय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। आज भी उनके पदों, पूजाओं एवं स्तोत्रों की लोकप्रियता सर्वातिशायी है।

इनका पार्श्वनाथस्तोत्र 10 पद्यात्मक हिन्दी भाषा में लिखा गया स्तोत्र है। इसमें संस्कृत शब्दों एवं हिन्दी शब्दों का भी कहीं-कहीं संस्कृत के समान प्रयोग किया है। जैसे–

'नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्र अधीशं। शतेन्द्रं जु पूजै भजै नाय शीशं।।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं। नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं।।[3]

पार्श्वनाथस्तोत्र : जिनसागर—जिनसागर बलात्कारगण कारंजा शाखा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। जिनसागर संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं के ज्ञाता थे, परन्तु इनकी अधिकांश रचनायें हिन्दी में ही उपलब्ध हैं। इन्होंने अनेक स्तोत्र लिखे हैं, जिनमें पार्श्वनाथ स्तोत्र महत्वपूर्ण है। जिनसागर ने आदित्यव्रत कथा की रचना शक सं. 1646 (1724 ई.) में, जिनकथा की शक सं. 1649 (1727 ई.) में, पद्मावती कथा की शक सं. 1652 (1730 ई.) में, पुष्पांजलि कथा की शक सं. 1660 (1738 ई.) में तथा जीवंधर पुराण की रचना शक सं. 1666 (1744 ई.) में की थी।[4] इस प्रकार इनका रचनाकाल अट्ठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

पार्श्वपुराण चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तुति : भूधरदास—पार्श्वपुराण एक पौराणिक महाकाव्य है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ और उनके पूर्वभवों का बड़ा ही हृदयावर्णक वर्णन किया गया है। अनंतानुबंधी क्रोध किस प्रकार जन्म-जन्मातर तक चलता रहता है, इसे बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया गया है। पार्श्वनाथ विषयक हिन्दी साहित्य में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। काव्य के माध्यम से कवि ने जीवन के यथार्थ का बड़ा ही मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है-

---

1. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंदः व्यक्तित्व एवं कृतित्व पादटिप्पणी पृ. 80 द्रष्टव्य-पं. श्रीपालकृत शुभचंद्रहमची पद्य 1-10
2. ब्रज जनपद के जैन कवि-पं.बलभद्र जैन (श्री सुनहरीलाल जैन अभिनंदन ग्रंथ, पृ. 150)
3. पार्श्वनाथस्तोत्र, पद्य 1 (पूजनपाठप्रदीप पृ. 392)
4. द्रष्टव्य-तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 3, पृ.449-450।

'मरन दिवस को नेम न कोय।
यातै कछु सुधि परै न लोय।।
एक नेम यह तो परमान।
जन्म धरै सो मरे निदान।।'[1]
ज्ञान-दीप तप-तैल भर घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं पैठे पूरब चोर।।[2]

भूधरदास ने पार्श्वपुराण की रचना तिथि का ग्रंथ प्रशस्ति में स्वयं उल्लेख किया है। उन्होंने इसकी रचना आषाढ़ शुक्ला पंचमी वि.सं. 1789 (1732 ई.) में की थी।[3]

भूधरदास आगरा निवासी खंडेलवाल दि.जैन थे। जिनशतक की प्रशस्ति में उन्होंने लिखा है एक बार आगरा में जयसिंह सवाई सूबा और हाकिम गुलाबचंद आये। शाह हरिसिंह के कुल के लोगों की पुनः-पुनः प्रेरणा से उनके प्रसाद का अंत हो गया था और उन्होंने वि.सं. 1781 (1724 ई.) में जिनशतक की रचना की थी–

'आगरे में बलबुद्धि भूधर खंडेलवाल, बालक के ख्याल सौं कवित्त कर जाने हैं।
ऐसे ही करत भयो जै सिंह सवाई सूबा, हाकिम गुलाबचंद आये तिहि थाने हैं।
हरीसिंह शाह के सुवंश धर्मरागी नर, तिनके कहे सौं जोरि कीनी एक ठानै हैं।
सत्तरहसै इक्यासिया पोह पाव तमलीन।
तिथि तेरस रविवार को सतक समापन कीन।।[4]

इनके चिन्तामणि पार्श्वनाथस्तुति नामक स्तोत्र से पता चलता है कि शाहगंज मेंकोई दिगम्बर जैन मंदिर था और उसमें भगवान पार्श्वनाथ की कोई अतिशयकारी प्रतिमा थी। कविवर बनारसीदास नेभी इस प्रतिमा की स्तुति की। कविवर बनारसी दास ने भी इस प्रतिमा की स्तुति में एक स्तोत्र लिखा था। अद्यावधि आगरा के शाहगंज में कोई दिगम्बर जैन मंदिर नहीं है।

पार्श्वनाथ आरती : यमासा–यमासा कारंजा के भट्टारक शांतिसेन के शिष्य थे। मूलतः ये मराठी भाषा के कवि हैं, किन्तु हिन्दी में भी इनकी कुछ आरतियों एवं छप्पयों की उपलब्धि होती है। पार्श्वनाथ आरती इनमें से एक हैं। यमासा ने अपना उल्लेख अर्जुनसुत के रूप में किया है। मराठी में एक अन्य जैन कवि सोयरा ने भी अपने को अर्जुनसुत कहा है किन्तु यमासा और सोयरा में परस्पर क्या संबंध है-यह पता नहीं चल सका है। अर्जुनसुत नाम से एक आरती काष्ठासंघीय भट्टारक विजयकीर्ति की मिलती है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि यमासा या सोयरा से इन अर्जुनसुत का क्या संबंध है। जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग 7 के मराठी अनुभाग के लेखक ने पार्श्वनाथ आरती का अपने हस्तलिखित संग्रह में होना वर्णित किया है।[5] यमासा ने 326 पद्यात्मक आदित्यव्रत कथा की रचना वत्सगुल्म (वासिम) नगर में शक सं. 1673 (1751 ई.) में की थी।[6] अतः इनका समय अट्ठारहवीं शताब्दी निश्चित है।

पार्श्वनाथरास : कवि कपूरचंद–ब्रह्म कपूरचंद मुनि गणचंद्र के शिष्य थे। उन्होंने पार्श्वनाथरास की प्रशस्ति में अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख किया है। उसके अनुसार उनकी परम्परा इस प्रकार है-मूलसंघ सरस्वतीगच्छीय नेमचंद-यशकीर्ति

1. पार्श्वनाथ पुराण 4/67
2. वही, 4/81
3. संवत् सत्तरह शतक मैं और नवासी लीय। सुदी अषाढ तिथि पंचमी ग्रंथ कीय।।-वही, ग्रंथप्रशस्ति।
4. जिनशतक, अन्त्यप्रशस्ति।
5. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग
6 पृ. 226। 7. वही, पृ. 226।

(जसकीर्ति)-गुणचंद्र-कपूरचंद।[1] उन्होंने पार्श्वनाथ रास की रचना वि.सं. 1697 (1640 ई.) में की थी।[2] प्रशस्ति के उल्लेख से पता चलता है कि आनंदपुर नगर के राठौरवंशीय राजा जसवंतसिंह थे।उस नगर में 36 जातियाँ सुखपूर्वक निवास करती थीं तथा वहाँ उत्तुंग जिनालय थे।[3] उन्हीं में से पार्श्वनाथ जिनालय में पार्श्वनाथरास की रचना की थी।

पार्श्वनाथरास में कवि ने पार्श्वनाथ के जीवनचक्र का अति संक्षिप्त वर्णन पद्य कथा के रूप में प्रस्तुत किया है। काव्यत्व की दृष्टि से रचना का विशेष महत्व नहीं कहा जा सकता है। किन्तु संक्षेप में कवि ने कमठ के पूर्वभवों का बड़ी कुशलता के साथ वर्णन किया है।

पार्श्वपुराण : पार्श्वपंडित—पार्श्वपंडित के पिता का नाम लोकणनायक एवं माता का नाम कामियक्क था। इनके गुरु का नाम वासुपूज्य और बड़े भाई का नाम नागण था। इन्होंने अपनी कृति पार्श्वपुराण में अपने को कार्तवीर्य का आस्थान कवि घोषित किया है। ये कार्तवीर्य राजा लक्ष्मण के पिता थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पार्श्वपंडित द्वारा उल्लिखित कार्तवीर्य सौन्दति के रट्टवंशीय शासक कार्तवीर्य (चतुर्थ) हैं। 1205 ई.में लिखित एक शिलालेख में कार्तवीर्य के पुत्र लक्ष्मण की प्रशंसा की गई है तथा इसका लेखक पार्श्व को बताया गया है।[4] इससे स्पष्ट है कि कार्तवीर्य उनसे पूर्ववर्ती तो हैं ही। एक उल्लेख के अनुसार 1165 ई. में रट्टवंशीय महासामन्त कार्तवीर्य (चतुर्थ) शिलाहार नरेश के राज्य में स्थित एकसाम्बी के नेमिनाथ मंदिर की प्रसिद्धि सुनकर दर्शनार्थ गया था। वहाँ उसने दर्शन-पूजन करके उदार मन से दान भी दिया था।[5] अतः पार्श्व पंडित का समय बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। 1205 के उक्त शिलालेख में पार्श्वपंडित को कविकुलतिलक कहा गया है। अन्यत्र भी इस उपाधि का एवं सुकविजनमनोहर्षसस्सप्रवर्ष, विविधजनमनःपद्मिनीपात्रमित्र आदि उपाधियों का प्रयोग हुआ है।[6]

कवि पार्श्व का एकमात्र ग्रंथ पार्श्वपुराण उपलब्ध है, जो मद्रास विश्वविद्यालय प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। 16 आश्वासो में विभक्त यह एक चम्पू काव्य है। प्रारंभ में कवि ने पूर्ववर्ती कन्नड एवं संस्कृत के कवियों (पंप, पोन्न, रन्न कर्णपार्य, गुणवर्णन एवं धनंजय, भूपाल) का स्मरण किया है। इस काव्य में भगवान पार्श्वनाथ एवं कमठ का मनोहारी चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया है।

पारिखनाथ भवान्तर : मेघराज—मेघराज ब्रह्म जिनदास के प्रशिष्य तथा ब्रह्म शांतिदास के शिष्य थे। मेघराज मूलतः गुजरात के रहने वाले थे। मराठी ओर गुजराती दोनों ही भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। इसी कारण इन्हें उभयभाषा कवि चक्रवर्ती कहा गया है। इनकी एक कृति गिरिनार यात्रा तो गुजराती एवं मराठी दोनों भाषाओं में लिखी गई है। इसका एक चरण गुजराती का और अन्य चरण मराठी का है। जसोधरदास मराठी में यशोधर के कथानक पर लिखित प्रथम काव्य है। इनका समय 16 वीं शताब्दी का प्रथम चरण निश्चित किया गया है।[7]

---

1. श्रीमूल जी संघ बहु सरस्वती गछि।
   भयो मुनिवर बहु चारित स्वच्छ, तहां श्री नेमिचंद गछपति भयो।
   तास के पाट जिभ सौमे जी भाण। श्री जसकीरति मुनिपति भयो।
   जाणो जी तर्क अति शास्त्र पुराण।।श्री।।
   तास को शिष्य मुनि अधिक (.....)।
   पंच महाव्रतस्यो नित लीन। तेरह विधि चारित धरै।
   व्यंजन कमल विकासन चंद। ज्ञान गौ हम जिसौ अवि..... ले।
   मुनिवर प्रकट सुमि श्री गुणचंद।।श्री।।–पार्श्वनाथरास, पद्य 159-160
   (हस्त प्रति-श्री दि. जैन मंदिर (चौधरियों का) मालपुरा, टोंक, राजस्थान)
2. सोलासै सत्ताणवे मासि वैसाखि। पंचमी तिथि उजला पाखि।।
   नाम नक्षत्र आद्रा भलो। वार बृहस्पति अधिक प्रधान।।
   रास कीयो वामासुत तणो। स्वामी जी पारसनाथ के थान।। –वही, पद्य 162।
3. वही, पद्य 163।
4. द्र. रायल एशियाटिक सोसायटी जर्नल बम्बई, भाग 10 पृ. 220
5. भारतीय इतिहास-एक दृष्टि, पृ. 325।
6. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग-7, पृ.69।
7. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग-7, 210।

पार्श्वनाथभवांतर (पारिखनाथभवांतर) 47 कडवकों में विभक्त एक सुंदर काव्य है, जिसमें भगवान पार्श्वनाथ और माता वामादेवी के पूर्वजन्मों का संवादात्मक वर्णन किया गया है।

पार्श्वनाथ आरती : चिमना पंडित–यह आरती केवल पाँच पद्यात्मक है तथा इसमें औरंगाबाद के समीपस्थ ग्राम कचनेर के जैन मंदिर के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ का स्तवन है। जीवराज ग्रंथमाला शोलापुर (1965 ई.) में प्रकाशित तीर्थवंदनसंग्रह में इसका मुद्रण हुआ है।चिमना पंडित मूलतः मराठी कवि हैं। मराठी में इनकी लगभग 20 रचनायें उपलब्ध होती हैं। इनकी एक गुजराती रचना भी उपलब्ध है। इसमें पैठण के मुनिसुव्रत भगवान की विनती की गई है।इन्होंने अजितकीर्ति का गुरु के रूप में उल्लेख किया है, अतः इनका समय 1650 ई.-1675 ई. के लगभग निश्चित होता है। ये पैठणनगर में रहते थे।[1]

पार्श्वनाथ आरती : पद्मकीर्ति–ये पद्मकीर्ति भ. अजितकीर्ति के बाद भट्टारक पद पर अभिषिक्त रुक्मिणीव्रतकथा के रचयिता भट्टारक विशाल कीर्ति के पट्टशिष्य थे। इनकी एक लघुकाय कृति पार्श्वनाथ आरती उपलब्ध होती है। यह आरती 5 कड़वक प्रमाण है और इसमें चक्रपुर के भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। पद्मकीर्ति ने 1680 ई. में एवं 1686 में कुछ मूर्तियाँ स्थापित कराईं थीं। इन मूर्तियों पर उल्लेख से पद्मकीर्ति का साम्य सत्तरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।[2]

पार्श्वनाथ भवांतरगीत, श्रीपुरपार्श्वनाथ आरती : गंगादास–गंगादास मूलतः गुजराती थे तथा बलात्कारगण कारंजा शाखा के भट्टारक धर्मचंद्र के शिष्य थे किन्तु इस शाखा में धर्मकीर्ति नामक चार विद्वानों का पता चलता है-

1. देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य धर्मचंद्र
2. कुमुदचंद्र के शिष्य धर्मचंद्र
3. विशालकीर्ति के शिष्य धर्मचंद्र और
4. देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य धर्मचंद्र।

प्रकृत मे विवेच्य गंगादास विशालकीर्ति के प्रशिष्य एवं धर्मचंद्र के शिष्य हैं। गंगादास ने श्रुतस्कंधकथा की रचना वि.सं. 1773 (1716 ई.) में की थी।[3] इन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध मराठी कृति पार्श्वनाथ भवांतर की रचना शक सं. 1612 (1690 ई.) में की थी।[4] इन्होंने मराठी के अतिरिक्त संस्कृत में भी अनेक रचनायें लिखी हैं। इनका समय ई. की सत्तरहवीं-अट्ठारहवीं शताब्दी है।

पार्श्वनाथ भवांतर गीत डफ नामक वाद्य विशेष की संगत के साथ गेय काव्य है। यह 47 कडवकों में विभक्त है, जिनमें पार्श्वनाथ एवं उनके नव पूर्वभवों का वर्णन हुआ है। श्रीपुर पार्श्वनाथ आरती 5 कडवकों की मराठी रचना है। आरती संग्रह (प्रकाशन-जिनदास चवडे वर्धा 1904) में इस आरती का प्रकाशन हुआ है। इनकी अन्य रचनायें निम्नलिखित हैं-

चक्रवर्ती पालना एवं नेमिनाथ आरती (मराठी)

रविव्रत कथा, त्रेपनक्रिया विनती एवं जटा मुकुट (गुजराती)।

पंचमेरु पूजा, क्षेत्रपाल पूजा, सम्मेदाचल पूजा एवं तुंगीबलभद्रपूजा (संस्कृत)

पार्श्वनाथ स्तुति : पार्श्वनाथ आरती : तानू पंडित–पार्श्वनाथ स्तुति[5] एकादश पद्यात्मक है, जिसमें कचनेर के भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। पार्श्वनाथ आरती[6] पाँच पद्यात्मक है। दोनों ही मराठी की रचनायें हैं। तानू पंडित कारंजा के भट्टारक शांतिसेन के शिष्य थे। अतः इनका समय सन् 1751 से 1768 के आस-पास का है।

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ आरती : रतन–रतन द्वारा मराठी भाषा में विरचित यह एक लघु रचना है। इसमें 6 पद्यों में

---

1. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग-7, 215।
2. द्र. प्राचीन मराठी जैन साहित्य पृ. 66।
3. सं. 1773 वर्षे श्रावणसुदि 7 शुक्रे भ. श्री धर्मचंद्रः तस्य पंडित गंगादास लिखितं। श्री कार्यरंजकनगरे श्री चंद्रप्रभचैत्यालये-भट्टारकसम्प्रदाय लेखांक 137।
4. प्राचीन मराठी जैन साहित्य, पृ. 68। (सुविचार प्रकाशन मंडल नागपुर-पूना 1968 ई.)।
5. हस्तप्रति मराठी अनुभाग के लेखक के निजी संग्रह में होने का निर्देश जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग-7 में किया गया है।
6. जिनदास चवडे वर्धा द्वारा 1904 ई. में प्रकाशित आरती संग्रह में प्रकाशित।

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। रतन द्वारा विरचित सिद्धसेन आरती का रचना काल वि.सं. 1826 (1770 ई.) है।[1] इसके कुछ अंश का प्रकाशन 'भट्टारक संप्रदाय' में हुआ है।[2] सिद्धसेन कारंजा के भट्टारक थे।

पार्श्वनाथचरित्र : सेठ हिराचंद नेमचंद दोशी—शोलापुर के दोशी जी मूलरूप से गुजराती हैं। किन्तु मराठी जैन साहित्य के विकास में उनका अप्रतिम योगदान रहा है। उन्होंने 1884 में जैनबोधक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। 1923 से 1928 ई. तक सम्यक्त्ववर्धक पत्रिका का प्रकाशन कर बढ़ाया। पार्श्वनाथचरित्र मौलिक रचना न होने पर भी मराठी भाषा में लिखित सरल कथाओं में महत्वपूर्ण है। सेठ दोशी जी का जीवनचरित श्री दीनानाथ बापूजी मंगुडकर ने विस्तृत रूप से लिखा है। यह पुस्तक श्री रतनचंद हिराचंद दोशी द्वारा 1967 ई. में शोलापुर से प्रकाशित हुई है।

पार्श्वनाथ स्तोत्र : जिनसागर—जिनसागर द्वारा मराठी में विरचित पार्श्वनाथ स्तोत्र 'जिनसागर की समग्र कविता' नामक संकलन में प्रकाशित हुआ है।[3] जिनसागर कारंजा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य तथा माणिकनंदि के सतीर्थ थे। इनका पूर्वनाम जिनदास था। इन्होंने अपने गुरु देवेन्द्रकीर्ति के साथ गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा की थी। जिनसागर की मराठी भाषा में विरचित 26 रचनायें उपलब्ध हैं। संस्कृत में तथा हिन्दी में भी इन्होंने रचनायें लिखी हैं। संस्कृत में पंचमेरु पूजा, नवग्रह पूजा एवं नंदीश्वर पूजा तथा हिन्दी में दशलक्षण धर्म सवैया एवं स्फुट 25 सवैया उपलब्ध हैं।[4]

1. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ. 227।
2. भट्टारक संप्रदाय पृ. 23।
3. जीवराज ग्रंथमाला शोलापुर से 1959 ई.में प्रकाशित।
4. द्र. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग-7, पृ. 223-224।

भट्टारक सकलकीर्ति और उनका पार्श्वनाथचरितम्

-डॉ. कमलेशकुमार जैन*

पार्श्वो विघ्नविनाशको वृषजुषा पार्श्वश्रिता धार्मिकाः,
पार्श्वेणाशु विलभ्यतेऽखिलसुखं पार्श्वाय तस्मै नमः।
पार्श्वान्नास्त्यपरो हितार्थजनकः पार्श्वस्य मुक्तिः प्रिया,
पार्श्वे चित्तमहं दधे जिनप माँ शीघ्रं स्वपार्श्वे नय।।

भगवान महावीर स्वामी की परम्परा में दीक्षित दिगम्बर जैन मुनियों को कठोर साधना का सम्यक् निर्वाह न कर पाने तथा कालदोष के कारण भट्टारक-परम्परा का जन्म हुआ।

भट्टारक-परम्परा—यह भट्टारक-परम्परा दिगम्बर मुनियों की तुलना में अपनी आचारगत शिथिलता के कारण अपने उत्पत्ति काल से बहुप्रतिष्ठित न हो सकी, किन्तु परवर्ती काल में इसके द्वारा की गई जैनधर्म एवं जैन संस्कृति की प्रभावना तथा प्राचीन जैन साहित्य की सुरक्षा और नवीन तथा लोक कल्याणकारी साहित्य की संरचना के कारण अत्यधिक समादृत हुई है।

भट्टारक सकलकीर्ति—भट्टारक-परम्परा में भट्टारक सकलकीर्ति का नाम बहुत ही आदर के साथ लिया जाता है। इनका वैदुष्य एवं लोक प्रभाव इनकी साहित्य-सेवा से स्वतः प्रमाणित है। भट्टारक सकलकीर्ति वि.सं.1444 में ईडर की गद्दी पर बैठे थे और उनकी मृत्यु गुजरात के महसाना नामक स्थान पर वि.सं.1499 में हुई। उनका समाधिस्थल महसाना में बना हुआ है।[1]

भट्टारक सकलकीर्ति संस्कृत भाषा के प्रौढ़ और प्रतिष्ठित विद्वान् थे। उनके द्वारा संस्कृत भाषा में लिखित उनतीस रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[2] साथ ही राजस्थानी भाषा में निबद्ध लगभग पन्द्रह रचनाएँ[3] उनकी बहुमुखी प्रतिभा के दस्तावेज हैं।

तिरेसठ शलाका-पुरूष—जैनधर्म में बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रति-नारायण, नौ बलभद्र और चौबीस तीर्थंकरों की गणना तिरेसठ शलाका पुरुषों अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के रूप में की गई है और इन्हीं का जीवन-चरित लोक मंगल स्वरूप स्वीकार किया गया है। अतः इन्हीं महापुरूषों का चरित्र-चित्रण जैन पुराणों अथवा जैन काव्यों में सामान्य रूप से आदर्श मानकर चित्रित किया है। उक्त तिरेसठ शलाका-पुरुषों के अतिरिक्त अन्य जिन महापुरुषों को जैन चरित-काव्यों में प्रमुख स्थान मिला है उनमें चौबीस कामदेवों का नाम उल्लेखनीय है। इन महापुरूषों के जीवन से ही हमें यह शिक्षा मिलती है कि 'रामवद् वर्तिव्यं, न रावणादिवत्'- अर्थात् राम की तरह आचरण करना चहिए, रावण आदि की तरह नहीं।

पार्श्वनाथ-चरितम्—भट्टारक सकलकीर्ति ने अपने चरित काव्यों में जिन महापुरुषों के आदर्शमयी जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है, उनमें भगवान पार्श्वनाथ का लोक मंगलकारी जीवन-चरित 'पार्श्वनाथ-चरितम्' के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

भगवान पार्श्वनाथ और कमठ—चौबीस तीर्थंकरों में भगवान पार्श्वनाथ, तेईसवें तीर्थंकर के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये ऐतिहासिक महापुरूष हैं। पुराणों एवं काव्यों के माध्यम से ज्ञात होता है कि इनके पूर्व भवों का जीवन बहुत ही संघर्षमय रहा है। किन्तु भगवान पार्श्वनाथ की सहनशीलता और इनके जन्म-जन्मान्तर के बैरी कमठ के जीव द्वारा छाया की तरह इनका प्रतिपल विरोध—दोनों ही आश्चर्यकारी हैं। कमठ का जीव बदले की भावना से निरंतर उपसर्ग करता है और भगवान पार्श्वनाथ का जीव अपने पूर्वकृत कर्मों को उदय में आया जानकर उन उपसर्गों को शांतिपूर्वक सहता है। पूर्वकृत अच्छे या बुरे कर्मों की फल व्यवस्था का भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व भवों में और तीर्थंकर पर्याय में भी जैसा परिपाक हुआ है वह अत्यंत विरल है। इस कथानक से जैनदर्शन के कर्म-सिद्धांत की समंतात् पुष्टि होती है।

* प्राध्यापक—जैन दर्शन (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय-वाराणसी)

अहिंसा और हिंसा का संघर्ष—इस कथानक में एक साथ एक ओर अहिंसा और दूसरी ओर हिंसा, एक ओर क्षमा दूसरी ओर क्रोध, एक ओर भावों की सरलता और दूसरी ओर भावों की कुटिलता, एक ओर शांति का लहराता हुआ सिंधु और दूसरी ओर ज्वार-भाटा से संतप्त समुद्र का विकराल रूप आदि ऐसे कार्य हैं, जो नदी के दो तटों की भांति एक दूसरे से सर्वथा प्रतिकूल हैं। मरुभूति का जीव अहिंसा आदि संस्कृतियों का प्रतीक है और कमठ का जीव हिंसा का नग्न ताण्डव करता हुआ राक्षसी संस्कृति का मूर्तिमान् पिण्ड है।

श्रमण और वैदिक संस्कृति—यह वह संघर्षपूर्ण काल था जब एक ओर वैदिक संस्कृति के पुरोधा यज्ञ-यागादि में धर्म के नाम पर पशुओं की बलि का न केवल समर्थन करते थे, अपितु निरीह पशुओं की बलि चढ़ाकर स्वर्ग के दरवाजे खोलना चाहते थे और दूसरी ओर श्रमण संस्कृति के उन्नायक महापुरुष सर्वस्व त्यागकर प्राणिमात्र की रक्षा के लिए कृतसंकल्प थे। वस्तुतः कमठ का जीव और भगवान पार्श्वनाथ का जीव उपर्युक्त वैदिक और श्रमण—इन दोनों संस्कृतियों के तत्कालीन संघर्ष के प्रतीक हैं, जिन्हें भट्टारक सकलकीर्ति ने 'पार्श्वनाथ-चरितम्' में वर्णित भगवान पार्श्वनाथ और कमठ के जीव के संघर्षमय जीवन के माध्यम से प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

अनंतानुबंधी कषाय का परिपाक—जैनदर्शन में प्रतिपादित अनंतानुबंधी कषाय किस प्रकार जन्म-जन्मांतर तक बदला लेने को प्रेरित करती है, यह कमठ के जीव के पूर्वभवों एवं वर्तमान भव के क्रिया-कलापों से स्पष्ट होता है।

कमठ और मरुभूति—भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा चरित 'पार्श्वनाथ-चरितम्' भगवान पार्श्वनाथ के इतःपूर्व नौ भवों एवं वर्तमान तीर्थंकर पर्याय की जीती-जागती कथा है।

यह कथा पोदनपुर के महाराज अरविन्द के न्यायपूर्ण शासन एवं उनके मंत्री विश्वभूति नामक ब्राह्मण के उदात्त गुणों से प्रारंभ होती है। विश्वभूति और उसकी पत्नी अनुन्धरी से दो पुत्र हुये—कमठ और मरुभूति। कमठ विष के समान और मरुभूति अमृतोपम था। एक दिन विश्वभूति अपने मस्तक पर उगे हुये एक सफेद बाल को देखकर संसार से भयभीत हो गये और उन्होंने पुण्य के संयोग से उस सफेद केश के छल से धर्म का श्रेष्ठ अंकुर उत्पन्न हुआ माना, जो कालक्रम से चारित्र को उत्पन्न करने वाला है—

अथैकदा विलोक्याशु मस्तके पलितं कचम्।
राजमंत्री ससंवेगं प्राप्येदं चिन्तयेद् हृदि।।
अहो मे पुण्ययोगेन केऽभूद् धर्मांकुरो महान्।
पलितच्छद्मना केशोऽयं चारित्रविधायकः।।[6]

अपने चारित्र रूप संयम के द्वारा विश्वभूति का जीव कालक्रम से मुक्ति को प्राप्त हुआ।

कमठ द्वारा कुशील सेवन एवं उसका दुष्परिणाम—उधर राजा अरविन्द और मरुभूति के युद्ध में चले जाने के पश्चात् कमठ के जीव ने काम-वासना से प्रेरित हो जब अपने अनुज की पत्नी का सेवनकरना चाहा तो कवि ने उसके मित्र कलहंस के माध्यम से अनुज-वधु के सेवन रूप निकृष्ट कार्य की निंदा की हैऔर उसके दुष्परिणामों का उल्लेख करते हुए अधोगति का भय दिखलाया है कि परस्त्री के लम्पट वे पापी मूर्ख राजा वध-बन्धन आदि प्राप्त कर दुर्गति रूपी समुद्र में निमग्न होते हैं। जो मनुष्य इस लोक में अन्य स्त्रियों का आलिंगन करते हैं, वे नरक मेंतपाये हुए लोहे की पुतलियों के आलिंगन को प्राप्त होते हैं और इस लोक में राजा के द्वारा सर्वस्व हरण और प्राणदण्ड आदि प्राप्त करते हैं।[7]

कवि ने रावण आदि के उदाहरण देकर कुशील सेवन की अभिलाषा करने वाले को महापाप का भागी एवं नरकगामी बतलाया है।[8] किन्तु जिस प्रकार अन्ध पुरुष के सामने नृत्य, क्षीण आयु वाले पुरुष को प्रदत्त औषधि और रागी पुरुष को दिया गया हितकारी धर्म का उपदेश व्यर्थ होता है, उसी प्रकार पाप को नष्ट करने वाले धर्म के सूचक और अनाचार को नष्ट करने वाले कलहंस नामक मित्र के सारपूर्ण समस्त वचन कमठ के पाप से व्यर्थ हो गये।[9]

यहाँ कवि ने कमठ के द्वारा सेवित कुशील और उसके परिणामस्वरूप अनेक कुगतियों को प्राप्त होने वाले कमठ

के जीव का क्रमशः अनेक सर्गों में विवेचन किया है और स्पष्ट किया है कि कुशील ही वह मूलाधार है जिस पर कमठ के जीव का आगामी भवों का निकृष्ट एवं पापमय जीवन का ढांचा खड़ा हुआ है।

भगवान पार्श्वनाथ के दश भव—तेईस सर्गों में विभक्त यह 'पार्श्वनाथ-चरितम्' एक उत्कृष्ट महाकाव्य है, जो पुराण एवं काव्य—इन दोनों शैलियों में गुम्फित किया गया है। इसके प्रारम्भिक नौ सर्गों में भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम नौ भवों—मरुभूति, वज्रघोष हाथी, सहस्रार स्वर्ग का देव शशिप्रभ, अग्निवेग विद्याधर, अच्युत स्वर्ग का देव विद्युत्प्रभ, वज्रनाभि चक्रवर्ती, मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र, आनंद राजा और आनत स्वर्ग के देव रूप का विवेचन किया गया है। तदनंतर दशम स्वर्ग में काशी के महाराज विश्वसेन और उनकी प्राणप्रिया ब्राह्मी से कुमार पार्श्व के जन्म होने से पूर्व देवों द्वारा रत्नवृष्टि आदि और ग्यारहवें सर्ग से तेईसवें सर्ग तक भगवान के गर्भ-जन्म, जन्माभिषेक, कुमार द्वारा आभूषणों को धारण करना और आनंद नामक नाटक खेलना, बालक्रीड़ा एवं वैराग्योत्पत्ति, अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन, दीक्षा वर्णन, केवलज्ञानोत्पत्ति, समवसरण रचना, गणधरों द्वारा विविध प्रश्न, भगवान द्वारा तत्त्वोपदेश एवं विविध कर्मों से प्राप्त होने वाले फलों के विवेचन, भगवान पार्श्व का विहार और अंत में मोक्ष-गमन का क्रमशः वर्णन किया गया है।

धर्म का सेवन हितकारी—भट्टारक सकलकीर्तिकृत प्रस्तुत 'पार्श्वनाथचरितम्' पर समग्र दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने भगवान पार्श्वनाथ के समग्र जीवन[10] और मुनिधर्म[11] का विवेचन किया है। कवि का मानना है कि जिस प्रकार जगत् में चतुर मनुष्यों के द्वारा कार्य की सिद्धि के लिए सेवक का पालन किया जाता है उसी प्रकार ग्रास मात्र के दान से राग के बिना शरीर का पालन करना चाहिए।[12] शरीर का चाहे पोषण किया जाये अथवा शोषण, वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होता है। अतः मुक्ति प्राप्ति के लिए उसका सम्यक् प्रकार से शोषण करना अर्थात् अंत समय में सल्लेखना आदि धारण करना ही श्रेष्ठ है।[13] क्योंकि संसार में दुःख की ही प्रबलता है, कोई सुखी नहीं है।[14] अतः धर्म का सेवन करना ही हितकारी है। धर्म विविध प्रकार से पापों को हरने वाला है, मुक्ति रूपी स्त्री को देने वाला है, अनंत सुख का सागर है, अत्यंत निर्मल है, अभिलषित पदार्थों का दाता है, समस्त लक्ष्मियों का पिता है, अनंत गुणों को देने वाला है, तीर्थंकर की विभूति का दायक है और चक्रवर्ती तथा इन्द्र के पद आदि को प्रदान करने वाला है।[15]

अचेतन जिन-प्रतिमा की पूजा से पुण्य-प्राप्ति—अनेक प्रश्नों का समाधान भी इस ग्रंथ में किया गया है। अचेतन जिन-प्रतिमा की पूजा पुण्य का कारण कैसे होती है? इसका समाधान करते हुए कवि का कहना है कि—जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा तथा मंदिर आदि भव्य जीवों के पुण्य का कारण नियम से हैं, इसमें संशय नहीं। जिनेन्द्र भगवान के उत्तम बिम्ब आदि का दर्शन करने वाले धर्माभिलाषी भव्य जीवों के परिणाम तत्काल शुभ-श्रेष्ठ होते हैं। जिनेन्द्र भगवान का सादृय रखने वाली महाप्रतिमाओं के दर्शन से साक्षात् जिनेन्द्र भगवान का स्मरण होता है, निरंतर उनका साक्षात् ध्यान होता है और उसके फलस्वरूप पापों का निरोध होता है। शस्त्र, आभरण, वस्त्रादि, विकार पूर्ण आकार, रागादिक महान् दोष और क्रूरता आदि अवगुणों का समूह जिस प्रकार पृथिवीतल पर जिनप्रतिमाओं में नहीं है उसी प्रकार धर्मतीर्थ प्रवृत्ति करने वाले श्री जिनेन्द्र देव में नहीं है।[16]

साम्यता आदि गुण तथा कीर्ति, कांति और शांति आदि विशेषतायें जिस प्रकार जिनबिम्ब में दिखलाई देती हैं उसी प्रकार श्री जिनेन्द्र देव में विद्यमान हैं। जिस प्रकार जिनप्रतिमाओं में मुक्ति का साधनभूत स्थिर वज्रासन और नासाग्रदृष्टि देखी जाती है उसी प्रकार धर्म के प्रवर्तक जिनेंद्र देव में वे सब विद्यमान हैं। इस प्रकार तीर्थंकर प्रतिमाओं के लक्षण देखने से उनकी भक्ति करने वाले पुरुषों को तीर्थंकर भगवान का परम निश्चय होता है अर्थात् वस्त्राभूषण तथा राग—द्वेषसूचक अन्य चिंहों से रहित जिन-प्रतिमाओं के दर्शन से वीतराग सर्वज्ञ देव के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। इसलिए उन जैसे परिणाम होने से तथा उनका ध्यान और स्मरण आने से तथा उनका निश्चय होने से धर्मात्माजनों को महान् पुण्य होता है। पुण्योदय से इस लोक में पुण्यशाली जनों की इस भव तथा परभव में त्रिलोक संबंधी सभी अभिलाषित पदार्थों की सिद्धियाँ सम्पन्न होती हैं। अतः तीर्थंकर प्रतिमाओं की भक्तिपूर्वक पूजा करने से सत्पुरुषों को समस्त मनोवांछित फल

पृथिवी तल पर तथा स्वर्ग लोक में प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार दशांग कल्पवृक्ष दान चाहने वाले पुरुषों को संकल्पित महान् भोग देते हैं उसी प्रकार पूजी हुई जिनप्रतिमाएँ पूजा करने वाले पुरुषों को महान् भोग देती हैं। जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न सत्पुरुषों को मन से चिन्तित पदार्थ देता है उसी प्रकार अचेतन प्रतिमा भी भक्ति करने वालों को मन से चिन्तित पदार्थ देती है। जिस प्रकार अचेतन मणि, मंत्र, औषधि आदि विष तथा रोगादिक को नष्ट करते हैं उसी प्रकार अचेतन प्रतिमाएँ भी पूजा-भक्ति करने वाले पुरुषों के विष तथा रोगादिक को नष्ट करती हैं।[17]

अन्य विविध वर्णन—उपर्युक्त के अतिरिक्त कवि ने अन्य अनेक विषयों का समायोजन अपने इस ग्रंथ में किया है। कवि का कहना है कि—गृहस्थ धर्म का ठीक-ठीक पालन करने से प्राणियों को सोलह स्वर्ग तक की प्राप्ति होती है और क्रम से सुख के सागर स्वरूप निर्वाण को प्राप्त होते हैं।[18] धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और क्रम से मोक्ष प्राप्त होता है।[19]

प्रसंग प्राप्त होने पर कवि ने अन्य जिन विषयों का विवेचन किया है, उनमें दश धर्म[20] सम्यग्दर्शन के आठ अंग[21], षोडशकारण भावनाएँ[22], सोलह स्वप्न[23], स्वप्नों का फल[24], देवियाँ द्वारा तीर्थंकर की माता से अनेक प्रश्न और माता द्वारा उनके उत्तर[25], प्रहेलिका[26], क्रिया गुप्ति[27], और निरोष्ठ्य काव्य[28] की रचना , मेरु पर्वत एवं पाण्डुकशिला[29] का वर्णन, आनंद नाटक[30], पार्श्वनाथ भगवान के शरीर के एक सौ आठ लक्षण[31], द्वादशानुप्रेक्षा[32],पंच महाव्रत[33], पंच महाव्रतों की पाँच-पाँच भावनायें[34], ऐरावत हाथी[35], समवसरण[36], कौन कर्म से जीव क्या प्राप्त करता है, इसका विस्तार से विवेचन[37] और भगवान के 108 सार्थक नामों[38] की सूची विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इन विषयों के विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि कवि ने इस 'पार्श्वनाथचरितम्' में यद्यपि भगवान पार्श्वनाथ के दश भवों का विशेष रूप से वर्णन किया है, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रसंगों में जैनधर्म एवं दर्शन के अनेक गूढ़ सिद्धांतों तथा आचार संबंधी विषयों का सांगोपांग वर्णन करने से पाठक मात्र इसी ग्रंथ के अध्ययन से संक्षेप में जैनधर्म के विविध पक्षों को हृदयंगम कर सकता है।

कमठ के वैर का अंत और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति—कवि ने अंत में भगवान के दिव्य उपदेश के प्रभाव का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—कमठ के जीव उस ज्योतिष्क देव ने भगवान की दिव्य-ध्वनि रूपी अमृत को पीकर अनंत भव से उत्पन्न मिथ्या वैर रूपी विष को नष्ट कर दिया तथा जगत् के स्वामी श्री पार्श्व जिनेन्द्र को नमस्कार कर चंद्रमा के समान निर्मल, शंकादि दोषों से रहित मुक्ति के उत्कृष्ट बीज स्वरूप सम्यग्दर्शन का ग्रहण किया।[39] इससे स्पष्ट है कि महापापी जीव भी जिनेन्द्र वाणी के प्रभाव से आत्म-कल्याण करने में समर्थ है।

भगवान पार्श्वनाथ का लोकव्यापी प्रभाव—लोक में पूजा और प्रतिष्ठा वही व्यक्ति प्राप्त करता है जो जन-जन के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर लोकमंगल के कार्य करता है। यतः भगवान् पार्श्वनाथ ने केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् कुरु, कौशल, काशी, सह्य, पुण्ड्र, मालव, अंग, बंग, कलिंग, पंचाल, मगध, विदर्भ, भद्रदेश तथा दशार्ण आदि अनेक स्थानों में विहार करके जीवों को सन्मार्ग का उपदेश दिया था[40], अतः वे जन-जन के प्रिय बन गये। उनका प्रभाव लोकव्यापी हो गया। वे लोक पूजित हो गये। भगवान पार्श्वनाथ के लोकव्यापी प्रभाव का उल्लेख करते हुए श्री बलभद्र जैन ने लिखा है कि—भगवान पार्श्वनाथ का सर्वसाधारण पर कितना प्रभाव था, यह आज भी बंगाल, बिहार, उड़ीसा में फैले हुए लाखों सराकों, बंगाल के मेदिनीपुर जिले के सद्गोपों, उड़ीसा के रंगिया जाति के लोगों, अलक बाबा आदि के जीवन-व्यवहार को देखने से चलता है। यद्यपि भगवान पार्श्वनाथ को लगभग पौने तीन हजार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और ये जातियाँ किन्हीं बाध्यताओं के कारण जैनधर्म का परित्याग कर चुकी हैं, किन्तु आज भी ये जातियाँ पार्श्वनाथ को अपना आद्य कुलदेवता मानती हैं। पार्श्वनाथ के उपदेश परम्परागत रूप से इन जातियों के जीवन में अब तक चले आ रहे हैं। पार्श्वनाथ के सिद्धांतों के संस्कार इनके जीवन में गहरी जड़ जमा चुके हैं। इसलिये ये लोग अहिंसा में पूर्ण विश्वास करते हैं, माँस भक्षण नहीं करते, जल छानकर पीते हैं, जैन तीर्थों की यात्रा करते हैं, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर की उपासना करते हैं।[41] आगे वे लिखते हैं कि उनके लोक-व्यापी प्रभाव का ही यह परिणाम है कि तीर्थंकर मूर्तियों

में सर्वाधिक मूर्तियाँ पार्श्वनाथ की ही उपलब्ध होती हैं और उनके कारण पद्मावती देवी की भी इतनी ख्याति हुई कि आज भी शासन-देवियों में सबसे अधिक मूर्तियाँ पद्मावती की ही मिलती हैं।[42]

इसी प्रसंग में दिल्ली के दिगम्बर जैन लाल मंदिर और वाराणसी के भेलूपुर स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में स्थापित पद्मावती देवी की मूर्तियों की पूजा-प्रतिष्ठा भी उल्लेखनीय है। साथ ही अन्य अनेक नगरों के जैन मंदिरों में पद्मावती देवी की स्थापना के मूल में भी भगवान पार्श्वनाथ का लोकव्यापी प्रभाव ही कारण है।

'पद्मावती कल्प' आदि ग्रंथों की रचना और उनके माध्यम से तंत्र-मंत्रों की सिद्धि द्वारा लौकिक सम्पत्ति की प्राप्ति आदि के मूल में भी भगवान पार्श्वनाथ की ही भक्ति कारण कही जा सकती है।

ऐसे लोक पूजित भगवान पार्श्वनाथ की शतशः वंदना करता हुआ मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ।

संदर्भ–

1. जैन साहित्य का इतिहास (सिद्धांताचार्य पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, भाग 1 पृ.452)
2. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 3, पृ. 329-330।
3. द्रष्टव्य जैन धर्म का प्राचीन इतिहास (परमानंद शास्त्री), भाग 2, पृ.492-493
4. वादिराजकृत पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन (डॉ. जयकुमार जैन) पृ. 2
5. पार्श्वनाथचरितम् 1/68 (हिन्दी अनु. डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रका. श्री महावीर जी)
6. वही, 1/71-72।
7. वही,1/86-89।
8. वही, 1/90 ।
9. वही,1/-93-94।
10. वही, 2/28-38, 4/9
11. वही, 3/37-49, 5/10-11, 17/28-32।
12. वही, 5/50।
13. वही, 5/53।
14. वही, 5/61।
15. वही, 6/105।
16. वही, 7/56-60
17. वही, 7/61-69।
18. वही, 7/49-50।
19. वही, 7/96।
20. वही, 8/33-43।
21. वही, 8/63-70।
22. वही, 8-73-97।
23. वही, 10/91-109।
24. वही, 11/28-37।
25. वही, 11/72-103।
26. वही, 11/104-105।
27. वही, 11/106।
28. वही, 11/108।
29. वही, 12/56-65।
30. वही, 13/67-100
31. वही, 14/45-52।
32. वही, 15/2-136।
33. वही, 17/28-32।
34. वही, 17/33-41।
35. वही, 18/11-21।
36. वही, 18/45-155।
37. 21/42-111।
38. वही, 22/49-63।
39. वही, 22/15-16।
40. वही, 23/18-19
41. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, भाग 1, पृ. 360।
42. वही, भाग 1, पृ. 361।

आचार्य जिनसेन (द्वितीय) और उनका 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य

-विद्यावाचस्पति डॉ. श्रीरंजनसूरि देव, पटना

जैन काव्यों की महनीय परम्परा में, आचार्य जिनसेन (द्वितीय) द्वारा प्रणीत 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य की उपादेयता सर्वविदित है। आचार्य जिनसेन (द्वितीय), आचार्य नेमिचंद्र शास्त्री की ऐतिहासिक कृति 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' (खंड 2) के अनुसार श्रुतधर और प्रबुद्धाचार्यों के बीच की कड़ी थे। इनकी गणना सारस्वताचार्यों में होती है। यह अपनी अद्वितीय सारस्वत प्रतिभा और अपार कल्पना-शक्ति की महिमा से 'भगवत् जिनसेनाचार्य' कहे जाते थे। यह मूलग्रंथों के साथ ही टीका ग्रंथों के भी रचयिता थे। इनके द्वारा रचित चार ग्रंथ प्रसिद्ध हैं– जयधवला टीका का शेष भाग, 'आदिपुराण' या 'महापुराण', 'पार्श्वाभ्युदय' और 'वर्धमान पुराण'। इनमें 'वर्धमान पुराण' या 'वर्धमान चरित' उपलब्ध नहीं है।

आचार्य जिनसेन (द्वितीय) ईसा की आठवीं-नवीं शती में वर्तमान थे। यह काव्य, व्याकरण, नाटक, दर्शन, अलंकार, आचारशास्त्र, कर्म सिद्धांत प्रभृति अनेक विषयों में बहुश्रुत विद्वान थे। यह अपने योग्य गुरु के योग्यतम शिष्य थे। जैन सिद्धांत के प्रख्यात ग्रंथ 'षट्खंडागम' तथा 'कसायपाहुड' के टीकाकार आचार्य वीरसेन (सन् 792 से 823 ई.) इनके गुरु थे। क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी द्वारा सम्पादित 'जैनेन्द्र सिद्धांत कोश' में भी उल्लेख है कि आचार्य जिनसेन, धवला टीका के कर्त्ता श्री वीरसेन स्वामी के शिष्य तथा उत्तरपुराण के कर्त्ता श्री गुणभद्र के गुरु थे और राष्ट्रकूट-नरेश जयतुंग एवं नृपतुंग, अपरनाम अमोघवर्ष (सन् 815 से 877 ई.) के समकालीन थे। राजा अमोघवर्ष की राजधानी मान्यखेट में उस समय विद्वानों का अच्छा समागम था।[1]

'जैनेन्द्र सिद्धांत कोश' के संदर्भानुसार आचार्य जिनसेन आगर्भ दिगम्बर थे; क्योंकि इन्होंने बचपन में आठ वर्ष की आयु तक लंगोटी पहनी ही नहीं और आठ वर्ष की आयु में ही दिगम्बरी दीक्षा ले ली। इन्होंने अपने गुरु आचार्य वीरसेन की, कर्मसिद्धांत-विषयक ग्रंथ 'षट्खंडागम' की अधूरी 'जयधवला' टीका को, भाषा और विषय की समान्तर प्रतिपादन-शैली में पूरी किया था और इनके अधूरे 'महापुराण' या 'आदिपुराण' को (कुल 47 पर्व) जो 'महाभारत' से भी बड़ा है, इनके शिष्य आचार्य गुणभद्र ने पूरा किया था। गुणसेन द्वारा पूरा किया गया अंश या शेषांश उत्तरपुराण नाम से प्रसिद्ध है। पंचस्तूपसंघ की गुर्वावलि के अनुसार वीरसेन के एक और शिष्य थे-विनयसेन।

आचार्य जिनसेन (द्वितीय) ने दर्शन के क्षेत्र में जैसी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है, वैसी ही अपूर्व मनीषा काव्य के क्षेत्र में भी प्रदर्शित की है। इस संदर्भ में इनकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व की संस्कृत काव्यकृति 'पार्श्वाभ्युदय' उल्लेखनीय है। प्रस्तुत काव्य के अंतिम दो श्लोकों से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त राष्ट्रकूटवंशीय नरपति अमोघवर्ष के शासनकाल में इस विलक्षण कृति की रचना हुई। श्लोक इस प्रकार हैं–

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यम्।
मलिनितपरकाव्यं तिष्ठातादाशाशाङ्कः भुवनमवतु देवः सर्वदाऽमोघवर्षः।।
श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृंगः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण काव्यं व्यधायि परिवेष्टित मेघदूतम्।।

अर्थात् प्रस्तुत 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य कालिदास कवि के अनेक गुणों से युक्त निर्दोष काव्य 'मेघदूत' को आवेष्टित करके रचा गया है। मेघसन्देश-विषयक अन्य काव्य को निष्प्रभ करने वाला यह काव्य यावच्चन्द्र विद्यमान रहे। और, राजा अमोघवर्ष सदा जगद्रक्षक बने रहें। यहाँ 'देवः अमोघवर्ष' शब्द मेघ का वाचक भी है। इस पक्ष में इसका अर्थ होगा- सफलवृष्टि करने वाला मेघ'।

दूसरे श्लोक का अर्थ है– श्री वीरसेन मुनि के पद-पंकज पर मंडराने वाले भृंग-स्वरूप श्रेष्ठ श्रीमान् विनयसेन मुनि

की प्रेरणा से मुनिश्रेष्ठ जिनसेन ने 'मेघदूत' को परिवेष्टित करके इस 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य की रचना की।

पूर्वोक्त महामुनि आचार्य वीरसेन, विनयसेन और जिनसेन नामक मुनिपुंगवों के गुरु थे। विनयसेन की प्रार्थना पर ही आचार्य जिनसेन ने कालिदास के समग्र 'मेघदूत' को समस्यापूर्ति के द्वारा आवेष्टित कर पार्श्वाभ्युदय की रचना की। चार सर्गों में पल्लवित इस काव्य में कुल 364 (प्रथमः 118; द्वितीयः118; तृतीयः 57; चतुर्थः 71) श्लोक हैं। इसका प्रत्येक श्लोक 'मेघदूत' के क्रम से, श्लोक के चतुर्थांश या अर्द्धांश को समस्या के रूप में लेकर पूरा किया गया है। समस्यापूर्ति का आवेष्टन तीन रूपों में रखा गया है–

1. पादवेष्टित, 2. अर्धवेष्टित और 3. अन्तरितावेष्टित। अन्तरितावेष्टित में भी एकांतरित और द्वयन्तरित ये दो प्रकार हैं।

प्रथम 'पादवेष्टित' में, चतुर्थ चरण में 'मेघदूत' के किसी श्लोक का कोई एक चरण रखा गया है और 'अर्धवेष्टित' में 'मेघदूत' के किसी श्लोक के दो चरणों का विनियोग तृतीय-चतुर्थ चरणों के रूप में किया गया है और फिर 'अंतरितावेष्टित' में, 'मेघदूत' के श्लोकों को 'पार्श्वाभ्युदय' के जिस श्लोक में प्रथम और चतुर्थ चरण में रखा गया है , उसकी संज्ञा 'द्वयन्तरितार्धवेष्टित' है तथा जिस श्लोक में प्रथम और तृतीय चरण के रूप में रखा गया है, उसकी संज्ञा 'एकान्तरित' है। इस प्रकार की व्यवस्था का ध्यातव्य वैशिष्ट्य यह है कि 'मेघदूत' के उद्धत चरणों के प्रचलित अर्थ कोविद्वान् कवि आचार्य जिनसेन ने अपने स्वतंत्र कथानक के प्रसंग से जोड़ने में विस्मयकारी विलक्षणता का परिचय दिया है।

यहाँ समस्या-पूर्ति के उक्त प्रकारों का एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

पादवेष्टित–

श्रीमन्मूर्त्या मरकतमयस्तम्भलक्ष्मीं वहन्त्या
योगैकाग्रयस्तिमिततरया तस्थिवांसं निदध्यौ।
पार्श्व दैत्यो नभसि विहरन्बद्धवैरेण दग्धः
कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमतः।।(सर्ग 1:श्लोक 1)

अर्धवेष्टित–

रम्योत्संगे शिखरनिपतन्निर्झरारावहृद्ये
पर्यारूढद्रुमपरिगतोपत्यके तत्र शैले।
विश्रान्तः सन्व्रज वमनदीतीरजामां निषिन्चञ्नुद्यानानां
नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।। (सर्ग 1: श्लो. 101)

एकान्तरितावेष्टित–

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्यवीणां
गाढोत्कण्ठं करूणविरुतं विप्रलापायभानम्।
मद्गोत्रांक विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा
त्वामुद्दिश्य प्रचलदलकं मूर्च्छनां भावयन्ती।। (सर्ग 3: श्लो. 38)

द्वयन्तरितार्धवेष्टित–

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुलावा
त्वत्सम्प्राप्त्यै विहितनियमान्देवताभ्योभजन्तः।
बुद्धयारूढं चिरपरिचितं त्वदगतं ज्ञातपूर्वं
मात्सादृश्यं विरहतनु वा भावेगम्यं लिखन्ती।। (सर्ग 3: श्लो. 36)

द्वयन्तरितार्धवेष्टित का द्वितीय प्रकार–

अन्तस्तापं प्रपिशुनयता स्वंकवोष्णेन भूयो
निःश्वासेनाधर किसलयक्लेशिना विक्षिपत्नी।

शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बं
विश्लिष्टं वा हरिणचरितं लाञ्छनं तन्मुखेन्दोः।।(सर्ग 3ः श्लो. 46)

इस श्लोक के द्वितीय-तृतीय चरणों में 'मेघदूत' के श्लोक के द्वितीय-तृतीय चरणों का विन्यास हुआ है।

एकान्तरितावेष्टित का द्वितीय प्रकार–

चित्रन्यस्तामिव सवपुषं मन्मथीयावस्था
माधिक्षमां विरहशयने सन्निषण्णैक पार्श्वाम्।
तापापास्त्यै हृदयानिहितां हारयष्टिं दधाना
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।।(सर्ग 3ः श्लो. 44)

इस श्लोक के द्वितीय-चतुर्थ चरणों में 'मेघदूत' के श्लोक के द्वितीय-चतुर्थ चरणों का विनियोग हुआ है।

पादवेष्टित का द्वितीय प्रकार–

मामाकाशप्रणिहित भुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
रुन्तिष्ठासुं त्वदुपगमन प्रत्ययात्स्वप्नजातात्।
सख्यो दृष्ट्वा सकरुणमृदुव्यावहासिं दधानाः
कामोन्मुग्धाः स्मरयितुमहो संश्रयन्ते विबुद्धान्।। (सर्ग 4ः श्लोः 36)

इस श्लोक में प्रथमचरण 'मेघदूत' के श्लोक का है। इसलिए इसकी आख्या पूर्वार्ध पादवेष्टित है।

पादवेष्टित का तृतीय प्रकार–

निद्रासंगादुपहितरतेर्गाढमाश्लेषवृन्ते-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।
विश्लेषस्स्याद्विहितरुदितैराधिजैराशुबोधैः
कामोऽसह्यं घटयतितरां विप्रलम्भावतारम्।। (सर्ग 4ः श्लोक 37)

प्रस्तुत श्लोक में द्वितीय चरण 'मेघदूत' के श्लोक का है। इस प्रकार, कवि श्री जिनसेन ने पादवेष्टित, पादार्धवेष्टित, और पादान्तरितावेष्टित के रूप -वैभिन्नय की अवतारणा द्वारा 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य के रचना शिल्प में चमत्कार-वैचित्र्य उत्पन्न कर अपनी अद्भुत काव्यप्रौढिता का आह्लादक परिचय दिया है।

आचार्य जिनसेन राजा अमोघवर्ष के गुरु थे, यह काव्य के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति में, मूल काव्य और उसकी सुबोधिका व्याख्या की पुष्पिका में उल्लिखित हैः 'इत्यमोघवर्षपरमेश्वर-परमगुरुश्री जिनसेनाचार्य विरचित मेघदूतवेष्टितवेष्टिते पार्श्वाभ्युदये....!' प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री पन्नालाल बाकलीवाल के अनुसार राष्ट्र कूटवंशीय राजा अमोघवर्ष 736 शकाब्द में कर्णाटक और महाराष्ट्र का शासक था। इसने लगातार तिरसठ वर्षों तक राज्य किया। इसने अपनी राजधानी मलखेड या मान्यखेट में विद्या एवं सांस्कृतिक चेतना के प्रचुर प्रचार-प्रसार के कारण विपुल यश अर्जित किया था। ऐतिहासिकों का कहना है कि इस राजा ने 'कविराजमार्ग' नामक अलंकार-ग्रंथ कन्नड-भाषा में लिखा था। इसके अतिरिक्त, 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला' नामक एक लघुकाव्य की रचना संस्कृत में की थी। यह राजा आचार्य जिनसेन के चरणकमल के नमस्कार से अपने को बड़ा पवित्र मानता था।

'पार्श्वाभ्युदय' के अंत में सुबोधिका-टीका, जिसकी रचना आचार्य मल्लिनाथ की मेघदूत-टीका के अनुकरण पर हुई है, के कर्त्ता पंडिताचार्य योगिराट् की ओर से 'काव्यावतर' उपन्यस्त हुआ है, जिससे 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य की रचना की एक मनोरंजक पृष्ठभूमि की सूचना मिलती है–

एक बार कालिदास नाम का कोई ओजस्वी कवि राजा अमोघवर्ष की सभा में आया और उसने स्वरचित 'मेघदूत' नामक काव्य को अनेक राजाओं के बीच, बड़े गर्व से, उपस्थित विद्वानों की अवहेलना करते हुए सुनाया। तब, आचार्य

जिनसेन ने अपने सतीर्थ्य आचार्य विनयसेन के आग्रहवश उक्त कवि कालिदास के गर्व-शमन के उद्देश्य से सभा के समक्ष उसका परिहास करते हुए कहा कि यह काव्य (मेघदूत) किसी पुरानी कृति से चोरी करके लिखा गया है, इसीलिए इतना रमणीय बन पड़ा है। इस बात पर कालिदास बहुत रुष्ट हुआ और जिनसेन से कहा–'यदि यही बात है, तो लिख डालो कोई ऐसी ही कृति।' इस पर जिनसेन ने कहा–'ऐसी काव्यकृति तो मैं लिख चुका हूँ, किन्तु है वह यहाँ से दूर किसी दूसरे नगर में। यदि आठ दिनों की अवधि मिले तो उसे यहाँ लाकर सुना सकता हूँ।

आचार्य जिनसेन को राज्यसभा की ओर से यथाप्रार्थित अवधि दी गई और उन्होंने इसी बीच तीर्थंकर पार्श्वनाथ की कथा के आधार पर 'मेघदूत' की पंक्तियों से आवेष्टित करके 'पार्श्वाभ्युदय' जैसी महार्घ काव्य रचना कर डाली और उसे सभा के समक्ष उपस्थित कर कवि कालिदास को परास्त कर दिया।

पार्श्वाभ्युदय' का संक्षिप्त कथावतार इस प्रकार है–भरतक्षेत्र में सुरम्य नामक देश में पोदनपुर नाम का एक नगर था। वहाँ अरविन्द नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा के कमठ और मरुभूति नाम के दो मंत्री थे, जो द्विजन्मा विश्वभूति तथा उसकी पत्नी अनुंदरी के पुत्र थे। कमठ की पत्नी का नाम वरुणा था और मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा नाम की थी। एक बार छोटा भाई मरुभूति शत्रु-राजा वज्रवीर्य के विजय के लिए अपने स्वामी राजा अरविन्द के साथ युद्ध में गया। इस बीच मौका पाकर दुराचारी अग्रज कमठ ने अपनी पत्नी वरुणा की सहायता से भ्रातृ पत्नी वसुंधरा को अंगीकृत कर लिया। राजा अरविन्द जब शत्रु विजय करके वापस आया, तब उसे कमठ की दुर्वृत्ति की सूचना मिली। राजा ने मरुभूति के अभिप्रायानुसार नगर में प्रवेश करने के पूर्व ही अपने भृत्य के द्वारा कमठ के नगर-निर्वासन की आज्ञा घोषित कराई, क्योंकि राजा ने दुर्वृत्त कमठ का मुँह देखना भी गवारा नहीं किया। कमठ अपने अनुज पर क्रुद्ध होकर जंगल चला गया और वहाँ उसने तापस-वृत्ति स्वीकार कर ली।

अपने अग्रज कमठ की निर्वेदात्मक स्थिति से जाने क्यों मरुभूति को बड़ा पश्चाताप हुआ। जंगल जाकर उसने अपने अग्रज कमठ को ढूँढ निकाला और वह उसके पैरों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा। क्रोधान्ध कमठ ने पैरों पर गिरे हुए मरुभूति का सिर पत्थर मारकर फोड़ डाला, जिससे उसकी वहीं तत्क्षण मृत्यु हो गई।

इस प्रकार, अकालमृत्यु को प्राप्त मरुभूति आगे भी अनेक बार जन्म-मरण के चक्कर में पड़ता रहा। एक बार वह पुनर्भव के क्रम में काशी जनपद की वाराणसी नगरी में महाराज विश्वसेन और महारानी ब्राह्मी देवी के पुत्र-रूप में उत्पन्न हुआ और तपोबल से तीर्थंकर पार्श्वनाथ बनकर पूजित हुआ। अभिनिष्क्रमण के बाद, एक दिन, तपस्या करते समय पार्श्वनाथ को पुनर्भवों के प्रचंड में पड़े हुए संबर नाम के प्रसिद्ध कमठ ने देख लिया। देखते ही उसका पूर्व जन्म का वैर भाव जग पड़ा और उसने मुनीन्द्र पार्श्वनाथ की तपस्या में विविध विघ्न उपस्थित किये। अंत में मुनीन्द्र के प्रभाव से कमठ को सद्गति प्राप्त हुई। जिज्ञासु जनों के लिए इस कथा का विस्तार जैन पुराणों में द्रष्टव्य है। मरुभूति का अपने भव से पार्श्वनाथ के भव में प्रोन्नयन या अभ्युदय के कारण इस काव्यकृति का पार्श्वाभ्युदय नाम सार्थक है।

इस 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य में कमठ यक्ष के रूप में कल्पित है और उसकी प्रेयसी भ्रातृपत्नी वसुन्धरा की यक्षिणी के रूप में कल्पना की गई है। राजा अरविन्द कुबेर है, जिसने कमठ का एक वर्ष के लिए नगर-निर्वासन का दण्ड दिया था। शेष अलकापुरी आदि की कल्पनाएँ 'मेघदूत' का ही अनुसरण-मात्र हैं।

आचार्य जिनसेन ने 'मेघदूत' की कथावस्तु को आत्मसात् कर उसे 'पार्श्वाभ्युदय' की कथावस्तु के साथ किस प्रकार प्रासंगिक बनाया है, इसके दो-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

तस्यास्तीरे मुहुरुपलवान्नूर्ध्वशोषं प्रशुष्यन्-
नुब्दाहुस्सन्परुसमनसः पंचतापं तपो यः।
कुर्वन्नस्म स्मरति जडधीस्तापसानां मनोज्ञां
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।' (सर्ग 1: श्लोक3)

मन्दबुद्धि कमठ उस सिंधु नदी के तीर पर बार-बार पत्थरों को पकड़ता था। ऊपर से पड़ने वाली तीव्र धूप से उसके शरीर के अवयव सूख रहे थे। ऊपर हाथ उठाते हुए वह कठिन चिन्तनपूर्वक पंचाग्नि तापने का तप कर रहा था। शीतल छाया वाले पेड़ों से युक्त रामगिरि नामक पर्वत पर वास करता हुआ वह तपस्वियों के लिए मनोरम स्थान का स्मरण तक नहीं करता था।

त्वां ध्यायन्त्या विरहशयनाभोगमुक्ताखिलाङ्गयाः
शंके तस्या मृदुतलमवष्टभ्य गण्डोपधानम्।
'हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदुपसरणक्लिष्टकान्तिर्विभर्त्ति।।' (सर्ग 3ः श्लोक 27)

विरह की शय्या पर जिसका सारा शरीर निढाल पड़ा है, ऐसी वसुन्धरा तुम्हारा ध्यान करती हुई अपने कपोलतल में कोमल तकिया लिए लेट गई होगी; संस्कार के अभाव में लम्बे पड़े अपने केशों में आधे छिपे मुख को हाथ पर रखे हुए होगी, उसका वह मुख मेघ से आधे ढके क्षीण कान्ति वाले चंद्रमा की भाँति शोचनीय हो गया होगा, ऐसी मेरी आशंका है।

प्रौढ काव्यभाषा में लिखित प्रस्तुत काव्य मेघदूत के समान ही मन्दाक्रान्ता छंद में आबद्ध है। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी की तीव्र तपस्या के अवसर पर उनके पूर्वभव के शत्रु संबर या कमठ द्वारा उपस्थापित कठोर कायक्लेशों तथा सम्भोगश्रृंगार से संवलित प्रलोभनों का अतिशय प्रीतिकर और रुचिरतर वर्णन इस काव्य का शैल्पिक वैशिष्ट्य है।

मेघदूत जैसे श्रृंगारकाव्य को शांतरस के काव्य में परिणत करना कवि श्री जिनसेन की असाधारण कवित्व-शक्ति को इंगित करता है। संस्कृत के संदेश काव्यों या दूतकाव्यों में सामान्यतया विप्रलम्भ श्रृंगार तथा विरह-वेदना की पृष्ठभूमि रहती है। परन्तु जैन कवियों ने संदेशकाव्यों में श्रृंगार से शांत की और प्रस्थिति उपन्यस्त कर एतद्विध काव्य-परम्परा को नई दिशा प्रदान की है। त्याग और संयम को जीवन का सम्बल समझने वाले जैन कवियों ने श्रृंगारचेतनामूलक काव्य-विधा में भारत के गौरवमय इतिहास तथा उत्कृष्टतर संस्कृति के महार्घ तत्वों का समावेश किया है। संदेशमूलक काव्यों में तीर्थंकर जैसे शलाकापुरुषों के जीवनवृत्तों का परिगुम्फन किया है। 'मेघदूत' के श्लोकों के चरणों पर आश्रित समस्यापूर्त्ति के बहुकोणीय प्रकारों का प्रारंभ कवि श्री जिनसेन द्वितीय के 'पार्श्वाभ्युदय' से होता है। यही नहीं, जैन काव्य-साहित्य में दूतकाव्य की परम्परा का प्रवर्त्तन भी 'पार्श्वाभ्युदय' से ही हुआ है। इस दृष्टि से इस काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व है।

'पार्श्वाभ्युदय' से तो 'अभ्युदय'–नामान्त काव्यों की परम्परा ही प्रचलित हो गई। इस संदर्भ में 'धर्मशर्माभ्युदय' (हरिश्चंद्र ः तेरहवीं शती); 'धर्माभ्युदय' (उदयप्रभ सूरि ः तेरहवीं शती) 'कप्फिणाभ्युदय' (शिव स्वामी ः नवम शती); 'यादवाभ्युदय' (वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक ः तेरहवीं शती); 'भरतेश्वराभ्युदय' (आशाधरः तेरहवीं शती) आदि काव्य उल्लेख्य हैं।

'मेघदूत' की प्रभावान्विति से आविष्ट होने पर भी 'पार्श्वाभ्युदय' की काव्यभाषा, शैली की दृष्टि से सरल नहीं; अपितु जटिल है। फलतः कथावस्तु सहसा पाठकों को हृदयंगम नहीं होती। समस्यापूर्ति के रूप में गुम्फन होने के कारण तथा कथावस्तु के बलात् संयोजन के कारण भी मूल के अर्थ बोध में विपर्यस्तता की अनुभूति होती है। मूलतः 'पार्श्वाभ्युदय' प्रतिक्रिया में प्रगति एक कठिन काव्य है।

'पार्श्वाभ्युदय' समस्यापूर्तिपरक काव्य होने पर भी इसमें कविकृत अभिनव भाव-योजना अतिशय मनोरम है। किन्तु संदेश-कथन की रमणीयता 'मेघदूत' जैसी नहीं है। इसमें जैनधर्म के किसी सिद्धांत का कहीं भी प्रतिपादन नहीं हुआ है, किन्तु कैलाश पर्वत और महाकाल–वन में जिनमंदिरों और जिन प्रतिमाओं का वर्णन अवश्य हुआ है। जगह-जगह सूक्तियों का समावेश काव्य को कलावरेण्य बनाता है। इस प्रसंग में–

'रम्यस्थानं त्यजति न मनो, दुर्विधान प्रतीहि' (1.74); 'पापापाये प्रथममुदितं कारणं भक्तिरेव' (2.65); 'कामोऽसह्यंघटयतितरां विप्रलम्भावतारम्' (4.37) आदि भावगर्भ सूक्तियाँ दृष्टव्य हैं।

शब्दशास्त्रज्ञ आचार्य जिनसेन का भाषा पर असाधारण अधिकार है। इनके द्वारा अप्रयुक्त क्रियापदों का पदे-पदे प्रयोग ततोऽधिक शब्द-चमत्कार उत्पन्न करता है। बड़े-बड़े वैयाकरणों की तो परीक्षा ही 'पार्श्वाभ्युदय' में सम्भव हुई है। इस संदर्भ में आचार्य कवि श्री के द्वारा प्रयुक्त 'ही', ('हि' के लिए); 'स्फावयन्'(=वर्धयन्); 'प्रचिकटयिषुः' (=प्रकटयितुमिच्छुः); 'वित्तानिघ्नः' (=वित्ताधीनः); 'मङ्क्षु' (=शीघ्रेण); 'सिषिद्धुषः' (=सिद्धादेवताविशेषाः); 'पेणीयस्व' (=अत्यर्थं पानं विधेहि); 'रवेन' (=गगनेन); 'प्रोथिनी' (=लम्बोष्ठी); 'मुरुण्डः' (=वत्सराजोनरेन्द्र); 'हेपयन्त्याः' (=विडम्बयन्त्याः); 'निर्दिधक्षेत्' (=निर्दग्धुमिच्छेत); 'वैजयार्थम्' (=विजयस्यार्थस्येदं); 'जिगलिषु' (=गलितुमिच्छु); 'शंफलान्पम्फलीति' (=शं सुखमेव फलं येषां तान् भृशं फलति); 'गहक्तमानाः' (=जुगुप्सावन्तः); 'जाघटीति' (=भृशं घटते) आदि नाति प्रचलित शब्द विचारणीय हैं।

'पार्श्वाभ्युदय' आचार्य जिनसेन का अवश्य ही एक ऐसा पार्यन्तिक काव्य है, जिसका अध्ययन-अनुशीलन कभी अशेष नहीं होगा। काव्यात्मक चमत्कार, सौन्दर्य-बोध, बिम्बविधान एवं रसानुभूति के विविध उपादान 'पार्श्वाभ्युदय' में विद्यमान हैं। निबन्धनपटुता, भावानुभूति की तीव्रता, वस्तुविन्यास की सतर्कता, विलास वैभव, प्रकृति-चित्रण आदि साहित्यिक आयामों की सघनता के साथ ही भोगवाद पर अंकुशारोपण जैसी वर्ण्य वस्तु का विन्यास 'पार्श्वाभ्युदय' की काव्यप्रौढि को सातिशय चारुता प्रदान करता है।

काव्यकार आचार्य जिनसेन ने अर्थव्यंजना के लिए ही भाषिक प्रयोग वैचित्र्य से काम लिया है। 'काव्यावतार' में वर्णित कथा-प्रसंग के आधार पर यदि आचार्य जिनसेन को कालिदास का समकालीन माना जाय तो, यह कहना समीचीन होगा कि भारतीय सभ्यता के इतिहास में जिस युग में इस देश की विशिष्ट संस्कृति सर्वाधिक विकसित हुई थी, उसी युग में 'पार्श्वाभ्युदय' के रचयिता विद्यमान थे। वह कालिदास की तरह भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग के कवि थे। इस युग की सभ्यता और संस्कृति साहित्य में ही नहीं; अपितु ललित, वास्तु, स्थापत्य आदि विभिन्न कलाओं में परिपूर्णता के साथ व्यक्त हुई है। आचार्य जिनसेन (द्वितीय) इस युग के श्रेष्ठ कवि थे और इन्होंने समय की बाह्य वास्तविकता अर्थात् सभ्यता का चित्रण तो किया ही है, साथ ही उसकी अंतरंग चेतना का भी जिसे हम संस्कृति कह सकते हैं, मनोहारी समाहार प्रस्तुत किया है।

संदर्भ –

1. विशेष दृष्टव्य – ''तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'', डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री, पृ.337।

2. विशेष दृष्टव्य – ''संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान'', डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री, (भारतीय ज्ञानपीठ, 1971) पृ. 237।

'फणामण्डलमण्डित तीर्थंकर पार्श्वनाथ'

–डॉ.विमला जैन 'विमल', फिरोजाबाद (उ.प्र.)

''चिन्तामणिं चिन्तित काम रूपम्
पार्श्व प्रभुं नौमिनिरस्त पापम्''

'पुण्यफला अरिहन्ता' के रूप में सर्वोत्कृष्ट पर्याय तीर्थंकर की है, उनमें भी सर्वाधिक लोकप्रिय भक्तों के चिन्तामणि, जन-जन के कल्पतरू, दीनों को कामधेनु, कटु क्रूर निम्न श्रेणी की लोह धातु को मात्र स्पर्श से स्वर्ण बनाने वाली पारस मणी के प्रतीक भगवान पार्श्वनाथ भक्तों के ही नहीं कलाकारों के भी कंठहार रहे हैं। वीतराग चैत्य प्रतीकों में कलाकार की कल्पना को गौण होना पड़ता है यहाँ यथार्थ की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति में शिवम् को साकार करना होता है अतः कलाकार को कल्पना की कलात्मकता का बहिष्कार करना ही पड़ता है। भगवान पार्श्वनाथ पर सर्वज्ञता से पूर्व ध्यानस्थ अवस्था में उपसर्ग होता है और उस समय धरणेन्द्र पद्मावती अपने उपकारी पार्श्व प्रभु की सेवा में उपस्थित हो नागफण पर उठा नाग छत्र लगा उपसर्ग निवारण में समर्पित होते हैं। यद्यपि तीर्थंकर पार्श्वनाथ उस उपसर्ग में मेरु सदृश अचल एकाग्र हैं। ध्यान की चरम उत्कृष्टि की फलश्रुति कैवल्य की प्राप्ति कर लेते हैं तथापि नागेन्द्र सपत्नीक उपसर्ग निवारण का श्रेय ले लेता है और सदा-सदा के लिए तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्तियों पर नागफण अवस्थित होने की परम्परा बन जाती है। जैन समाज में भगवान पार्श्वनाथ को उपसर्गविजयी या आधिदैविक प्रतीकात्मक स्वरूप में **'हर कष्ट का त्राता'** का मान दिया जाता है। भगवान पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरूष हैं जैन ही नहीं जैनेतर आगम साहित्य पुराणों में उनकी चर्चा परिचर्चा सर्वाधिक रही है। तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीव जन्म-जन्मान्तर से क्षमा, समता, संयम के अनुपमेय महानायक रहे हैं तो कमठ का जीव जन्म-जन्मान्तर में क्रूर कषायों का खलनायक रहा है। मुख्यतः दश जन्म की एक तरफा द्वेषाग्नि ने जहाँ पार्श्वनाथ को कुन्दन से पारसमणी सर्वोपरि मानवोत्तर बनाया है वहीं उनकी क्षमता-समता ने अंत में कमठ की क्रोधाग्नि का शमन किया है। अतः यह घटना कभी विस्मृत न हो अतः कलाकार ने नागफण से उनके वीतराग स्वरूप को अभिन्न कर दिया है। प्रस्तुत आलेख में इसी आधिदैविक प्रतीकात्मकता एवं कलात्मकता पर विहंगम चर्चा की गयी है।

मूर्तिकला और चित्रकला के आदि प्रणेता प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं, उन्होंने मानव को **'जीवन जीने की कला'** सिखाई, कर्म युग में कर्म पुरूषार्थ, धर्म, अर्थ, काम पुरूषार्थ का विधि-विधान गृहस्थावस्था में और मोक्ष पुरूषार्थ अरिहन्तावस्था में प्रवर्तन कर आदि ब्रह्मा के नाम से वैदिक और आगमिक महापुरूष के नाम से जाने जाते हैं। उन्होंने असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प षट्कर्म जीविकार्जन के लिए बताये थे। शिल्प के अन्तर्गत वास्तु, मूर्ति, चित्रकला आदि विधि-विधान भी उन्होंने सर्वप्रथम अपने पुत्रों को ही दिया था अतः जैनागम में इनकी विस्तृत परिचर्चा है यहाँ मात्र नागरूपाकृतियों का मुख्यतः नागमंडित पार्श्व प्रभु के स्वरूप का आधिदैविक प्रतीकात्मक महत्त्व एवं कलात्मक स्वरूप ही चर्चा का विषय है।

जैन कला में विभिन्न रूपाकृतियों की भाँति नागाकृतियों का भी अपना अलग अस्तित्व है। जहाँ बाह्य स्वरूप में अनेक भंगिमाओं में उसे सौन्दर्यात्मक रूपाकार प्रदान किया गया है वहीं उनका आधिदैविक प्रतीकात्मक महत्त्व भी अपने में रहस्यात्मक दिव्यता से ओत-प्रोत है। जैन कला में ही नहीं अन्य धर्मों तथा संस्कृति और साहित्य में भी नाग या नागेन्द्र की विशेष परिचर्चा रही है। जैन कला में सर्पफणा का रूपांकन बड़ा ही अभिरूचिपूर्ण तथा सम्मोहक रहा है साथ ही उसका प्रतीकात्मक महत्त्व भी बड़ा रोचक है। कला प्राणवन्त तभी बनती है जब उसके रूपात्मक पार्थिव शरीर में भावात्मक दर्शन या आधिदैविक प्रतीकात्मक देवांश प्रवेश करता है। कलात्मक रूप में भावात्मक देव की प्रतिष्ठा ही कला की सच्ची प्राण प्रतिष्ठा है उसकी भावात्मकता का आकर्षण ही जीव अथवा मानव को खींचता है। रूपांकन में कलाकार की कल्पना

और प्रकृति का समन्वय होता है वहीं भावात्मकता में सत्य के साथ शिवम् या कल्याणकारी मंगल भावना अन्तर्निहित होती है। सत्य और सौन्दर्य कला का कलेवर है तो सत्य और शिव उसकी आत्मा अतः सत्य की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति का उद्देश्य शिवम् की उपलब्धि है। इस लक्ष्य को वास्तु, मूर्ति तथा चित्रकला के माध्यम से दृष्टव्य बनाया जाता है तो काव्य, साहित्य और संगीत के द्वारा श्रव्य कला, उद्देश्य कला के द्वारा दर्शन का साक्षात्कार ही मनुष्य है।

कुमार पार्श्वनाथ द्वारा मरणासन्न युगल नाग को णमोकार मंत्र सुना सुगति का योग देना, पद्मावती-धरणेन्द्र का उनके यक्षी-यक्ष होना, तथा कमठासुर द्वारा उपसर्ग किये जाने पर नाग लोकाधिपती धरणेन्द्र पद्मावती का उपसर्ग निवारण करना तथा उसी समय शुक्ल ध्यान की चरम उत्कृष्टि पर पहुँच कैवल्योपलब्धि हो अरिहन्तावस्था को प्राप्त होना आदि ऐसी घटनायें हैं जो भगवान पार्श्वनाथ का नाग से सम्बन्ध स्थापित करने की परम्परा को आश्रय देती है अतः भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के साथ सर्प विभिन्न मुद्राओं में मंडित होने लगा। नागफण की परम्परा एक शाश्वत सत्य के रूप में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा का आवश्यक अंग बन गयी और रूप शिल्पी ने नागाकृतियों में कल्पना का लावण्य भरकर मौलिकता को चमत्कारिक दिव्यता में प्रतिरूपित करना अपना अहोभाग्य बना लिया। **जैन कला में नागाकृतियाँ मुख्यतः चार प्रकार से रूपांकित हुई हैं।** भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति के साथ नागफण पाँच, सात, नौ, ग्यारह अथवा सहस्र फण के रूप में विभिन्न प्रकार से बनाये गये हैं। दूसरी प्रकार की नागाकृतियाँ धरणेन्द्र पद्मावती के रूप में लावण्य युक्त दिव्यता से ओत-प्रोत हैं। तृतीय प्रकार की नागाकृतियाँ अलंकरण या शोभन के रूप में आलेखित हैं। सामान्य रूप से नागांकन वर्णनात्मक चित्रों, तक्षण कला या कर्षण शैली में दृष्टव्य होते हैं। जहाँ तक कलात्मकता का प्रश्न है यहाँ कल्पना की ऊँची उड़ान दृष्टव्य है।

भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमायें नागफण से मंडित होना विशेष सम्मान का प्रतीक है अथवा नागेन्द्र धरणेन्द्र पद्मावती के इष्टदेव के रूप में दृष्टव्य होती है, इनमें उत्कृष्ट कलात्मकता दसवीं शताब्दी के बाद से ही अधिक प्रखर हुई है। कितनी ही प्रतिमाओं में नाग अति विशाल रूप में सात वलय (मोड़) लेता हुआ दायीं ओर पूंछ से आरम्भ होकर सात कुण्डलियों में पूरा घेरने के बाद भी अगल-बगल में काफी कुछ द्रष्टव्य हो सौन्दर्य वृद्धि कर रहा है। सिर पर सप्त फण कलात्मक रूप में झुके हुए हैं, ध्यानस्थ खड्गासन में मूर्ति अति भव्य वीतरागी सौम्य भावात्मक तथा आकर्षक है। नागाकृति को कलात्मकता, मौलिकता और स्वाभाविकता में कल्पना का अद्भुत स्वरूप प्रदान किया गया है। यह मूर्ति हासन चिक्कवसदि में अवस्थित है इसी प्रकार की एक मूर्ति मंगलौर श्रीमन्ती बाई स्मारक संग्रहालय में संग्रहीत तीर्थंकर पार्श्वनाथ की धातु निर्मित है जो अति कलात्मक एवं आकर्षक है। खड्गासन प्रतिमा में सर्प की पूंछ पीछे लटकी हुई है। पेनुकुण्डा जिनालय के पार्श्वनाथ कलात्मक नागाकृति के साथ अत्यंत मनोहर हैं, यह चालुक्य कला 11-12 वीं शताब्दी की उत्कृष्ट छवि प्रस्तुत करती है नागफण मंडित श्री 1008 सहस्रफणी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर दरगा (बीजापुर) की जिनप्रतिमा कलाकार की कल्पना तथा कला कौशल का अद्भुत भव्य चमत्कार कहा जा सकता है। यह प्रतिमा काले पाषाण की लगभग पाँच फुट अवगाहना की है। एक हजार फणों से सुशोभित यह चैत्य एक अतिशयपूर्ण प्रतिमा के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी यह भी एक विशेषता है कि एक सर्पफण में जल या दूध डालने से सभी सहस्र फणों से दूध बहने लगता है। यह विश्व ख्याति प्राप्त मूर्ति अतिभव्य भावपूर्ण तथा आकर्षक है, सहस्र नागफणों की कलात्मकता दर्शक को सम्मोहन में डाल देती है, यह दैवीय दिव्यता से आह्लादित करने वाली अप्रतिम प्रतिमा शान्त रस का अनूठा सौन्दर्य प्रतिपादित कर देती है। सहस्रफणी पार्श्वनाथ के रूप में अनेक प्रतिमायें भारत के कोने-कोने में संजोयी हुयी हैं। केशरियाजी, देवरी तीर्थ क्षेत्र, बड़ागाँव, फिरोजाबाद आदि अनगिनत स्थानों पर मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, आवश्यकता है उनके कलात्मक सौन्दर्य को एक सूत्र में पिरोने की। सहस्रफण मानवीय अचेतन मन की सहस्र इच्छाओं का प्रतीक है सम्भवतः कला शिल्पी ने इसी भाव को अप्रतिम प्रतीक रूप में सुशोभित करने में गौरव का अनुभव किया है। ये प्रतिमायें स्वयं में अद्वितीय आदिदैविक प्रतीकात्मक कला सौष्ठव का आदर्श स्वरूप हैं।

उपरोक्त कलात्मक स्वरूप के अतिरिक्त अन्यान्य प्रकार की अनेक नागाकृतियाँ जैन कला में देखी जा सकती हैं मुख्यतः धरणेन्द्र पद्मावती के स्वरूप में, नर-नारी की मुखाकृतियों में अधोअंग सर्प का है ये चमत्कारिक लावण्य को आविर्भूत किये हुए है। इनके अतिरिक्त शोभन स्वरूप में आलेखित नागाकृति अनबूझ पहेली दिखती है। हर फन हल्ली-होस वसदि में उलझाये-सुलझाये कलात्मक नाग भाव भंगिमा में अद्वितीय है। भगवान पार्श्वनाथ के साथ नागाकृतियाँ भी पूज्य बन गयी हैं। सरीसृप की पर्याय में नाग सर्वोपरि है, नागेन्द्र धरणेन्द्र के नाम पर उच्चासन का अधिकारी तथा पाताल लोक का अधिनायक सर्व शक्तिमान कष्ट निवारक आराध्य बन तीर्थंकर पार्श्वनाथ का लाञ्छन ही नहीं फण के रूप में मस्तक पर भी स्थापित हो गया है।

श्रावण शुक्ला सप्तमी मुकुटसप्तमी के रूप में भगवान पार्श्वनाथ का मोक्षकल्याणक दिवस है और इससे दो दिन पूर्व ही लौकिक जनों द्वारा नाग पंचमी का त्योहार अपने आधिदैविक प्रतीक के रूप में मनाया जाता है। सर्प प्रकृति की भयानक शक्ति का प्रतीक है इसे पूर्व जन्म का प्रतीक भी माना जाता है अतः सर्प के केंचुली छोड़ने को आत्मा का बन्धन त्याग या पूर्व जन्म की धारणा का पर्याय माना गया है। आज वैज्ञानिक युग में धर्म और दर्शन को व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञान की कसौटी पर खरा देखने की लालसा बलवती हो रही है अतः आवश्यकता है जैन धर्म में रची-पची इन कलात्मक नागाकृतियों को एक वृहद शोध ग्रंथ के रूप में विश्व पटल पर रखा जाये।

भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाणोत्सव पर हम पार्श्वनाथ पर्वत तीर्थराज सम्मेदशिखर पर **'लाडू चढ़ा'** अपने धर्म पुरूषार्थ की इतिश्री मान लेते हैं परन्तु यह इक्कीसवीं सदी, पुरा की जीर्णता में नवीन अनुसंधान की उपलब्धि चाहती है। दर्शन और धर्म निराकार होते हैं, सिद्धांत और विचार सूत्र देते हैं परंतु कला उसे साकार स्वरूप प्रदान करती है। जन सामान्य को उसका आधिदैविक प्रतीकात्मक स्वरूप कला, वास्तु, मूर्ति, चित्र और साहित्य के द्वारा ही परिभाषित होता है। कला संस्कृति की अमूल्य निधि के रूप में फैली हुई है, उनका संरक्षण, संवर्धन जैन संस्थाओं को करना है, कलाकृतियों की आभान्वित मुक्ताओं को माला का रूप देने का यह स्वर्ण युग आरंभ हो चुका है।

पुरूषोत्तम श्री पार्श्व जिन, सर्वश्रेष्ठ दिव्येश।
लक्षण नाग, नागेन्द्र सिर, नमन 'विमल' विद्येश।।

जैन स्तोत्र और भगवान पार्श्वनाथ

-डॉ. कपूरचंद जैन*

भारतीय धर्मों/दर्शनों में जैन धर्म/दर्शन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही एक दर्शन है जो पूर्णतः व्यक्ति स्वातन्त्र्य की घोषणा करता है। जैनधर्म/दर्शन की प्राचीन भाषा प्राकृत रही है। प्राकृत भाषा में स्तोत्र के लिए 'थुई' और 'थुदि' इन दो शब्दों का प्रयोग मिलता है। संस्कृत में स्तोत्र के लिए 'स्तुति', 'स्तव', 'स्तोत्र' आदि शब्द व्यवहृत है। प्रारंभ में 'स्तुति' और 'स्तव' में अंतर था। यथा ''एकः श्लोकः दौ श्लोकौ, त्रिश्लोकाः वा स्तुतिर्भवति परतश्चतुः श्लोकादिः स्तवः। अन्येषामाचार्याणां मतेन एक श्लोकादिः सप्तश्लोकपर्यन्ता स्तुतिः ततः परमष्टश्लोकादिकाः स्तवाः।''[1]

इसी प्रकार 'स्तव' तथा 'स्तोत्र' में भेद बताते हुए कहा गया है कि 'स्तव' गंभीर अर्थ वाला और संस्कृत भाषा में निबद्ध होता है तथा 'स्तोत्र' विविध छंदों वाला और प्राकृत भाषा में निबद्ध होता है।[2] आजकल यह अंतर समाप्त प्रायः है और 'स्तुति', 'स्तव', 'स्तवन', 'स्तोत्र' आदि शब्द समानार्थी हो गये हैं।

आचार्य समन्तभद्र ने स्तुति को प्रशस्त परिणाम उत्पादिका कहा है–'स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल परिणामाय स तदा'[3]। विद्वानों ने 'पूजाकोटिसमं स्तोत्रम्' कहकर एक स्तोत्र के फल को एक करोड़ पूजा के फल के समान बताया है।

स्तोत्र पाठ से पुण्य का अर्जन केवल मनुष्य ही नहीं देवता भी करते हैं। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में देव सदैव पूजा अर्चना किया करते हैं।ऐसे में स्तोत्रादि का पाठ स्वाभाविक ही है। पं.जुगलकिशोर मुख्तार ने भावपूजा को स्तुति ही कहा है[4]। इस संदर्भ में सबसे बड़ा प्रमाण आचार्य मानतुंग का है। वे भक्तामर में कहते हैं–मैं उस जिनेन्द्र की स्तुति करता हूँ, जो देवताओं द्वारा चित्त को हरण करने वाले स्तोत्रों के द्वारा संस्तुत हैं।

'यः संस्तुतः सकल वाङ्मय तत्त्वबोधा-
दुद्भूत बुद्धि पटुभिः सुरलोकनाथैः।[5]

आचार्य समन्तभद्र ने स्तोत्र का उद्देश्य पापों को जीतना बताया है–

श्रीमज्जिनपदाभ्यासं प्रतिपद्याऽऽगसां जये।
कामस्थान प्रदानेशं स्तुतिविद्यां प्रसाधये।[6]

आचार्य मानतुंग ने भी स्तुति को पापनाशक बताया है-

त्वत्संस्तवेन भव संतति सन्निबद्धं।।[7]
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम्

इतना ही नहीं भक्ति या स्तोत्र पाठादि से तीर्थंकर प्रकृति का भी बंध होता है। जैन साहित्य में तीर्थंकर प्रकृति के बंध के जो 16 कारण बताये गये हैं, उनमें एक कारण अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भी है। अभीक्ष्णज्ञानोपयोग लक्षण करते हुए लिखा गया है–

''काले पाठः स्तवो ध्यानं, शास्त्रे चिन्ता गुरौ नतिः।
यत्रोपदेशना लोके, शास्त्रज्ञानोपयोगिता।।''

अर्थात् योग्य काल में पाठ स्तवन और ध्यान करना, शास्त्रों का मनन करना, गुरु को नमन करना और उपदेश देना इन्हें लोक में अभीक्ष्णज्ञानोपयोग कहते हैं।

ये सभी स्तुति या स्तोत्र के पारलौकिक फल हैं। स्तोत्र या स्तुति का इहलौकिक फल भी चिन्तय है। अधिकांश व्यक्ति किसी इहलौकिक फल की इच्छा करते हुए भी स्तोत्र पाठ करते देखे जाते हैं। शास्त्रों में स्तोत्र पाठ से इहलौकिक फल प्राप्ति का भी कथाओं के माध्यम से उल्लेख है। 'उवसग्गहर स्तोत्र' जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, उपसर्ग

* अध्यक्ष संस्कृत विभाग, श्री कुन्दकुन्द जैन, पी.जी. कॉलेज, खतौली।

निवारणार्थ रचा गया है। 'विषापहार' विषहरण के लिए, 'एकीभाव' कुष्टनिवारणार्थ, 'भक्तामर' बन्दीग्रह से मुक्ति के लिए, 'कल्याण मंदिर' कल्याण प्राप्ति के लिए रचा गया है। इस तरह हर स्तोत्र की अलौकिक महिमा का वर्णन तत्-तत् स्थानों पर किया गया है। एक-एक पद्य की महिमा का भी वर्णन उपलब्ध होता है। भक्तामर के 48 काव्यों में प्रत्येक के अलग-अलग प्रयोजन बताये गये हैं।

जैन तीर्थंकर या भगवान तो वीतरागी होते हैं वे प्रशंसा करने पर कुछ देते नहीं और आलोचना करने पर कुछ लेते नहीं हैं। वे किसी के पापों का नाश नहीं करते और न किसी को मुक्तिवधू का वरण कराते हैं। फिर उनसे ऐसी प्रार्थनायें क्यों की जाती हैं, उनमें व्यर्थ ही कर्तृत्व का आरोप क्यों किया जाता है। इसका उत्तर कल्याण मंदिर स्तोत्रकार ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में दिया है। यथा–

'हृद्वर्तिनि त्वयि विभो' शिथिलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः।
सघः भुजंगममया इव मध्यभाग
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य।[8]

अर्थात् प्रभो! हृदयमंदिर में आपके विराजमान रहने पर निविड भी कर्मबन्ध शिथिल हो जाते हैं, जैसे चंदन के वृक्ष पर मोर के आने पर, उससे लिपटे हुए सर्प ढीले पड़ जाते हैं। कारण यह है कि स्तोत्रों में जिन तीर्थंकरों या पुण्यात्मा पुरुषों की स्तुति की जाती है, वे सभी कर्मजेता हुए हैं। उन्होंने अज्ञान काम-क्रोधादि प्रवृत्तियों पर पूर्णतः विजय प्राप्त की है, उनके हृदय-मंदिर में विराजमान रहने पर पाप खड़े नहीं रह सकते। यह भी कह सकते हैं कि इन पुण्य पुरुषों के ध्यान से आत्मा का शुद्धात्म स्वरूप सामने आता है और स्तोता उसे प्राप्त करने को बेचैन हो उठता है। पाप परिणति नष्ट हो जाती है और वह अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है। मुक्त हो जाता है।

जैन स्तोत्रकारों के उपास्य यद्यपि सभी तीर्थंकर पुण्य पुरुष समान रूप से हैं तथापि ऋषभदेव और पार्श्वनाथ को आधार बनाकर अधिकांश स्तोत्र रचे गये हैं। इनमें भी पार्श्वनाथ परक स्तोत्र ही अधिक हैं। जिन स्तुति/स्तोत्रों में चौबीसों तीर्थंकरों या महापुरुषों की स्तुति की गई है उनमें भी पार्श्वनाथ की स्तुतिपरक पद्यों की संख्या अन्य की अपेक्षा अधिक रहती है। इसका कारण क्या है? हमारी अल्प बुद्धि में तो यही कारण समझ में आता है कि जैसा कि आज भी लोक में यह धारणा प्रचलित है कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ विघ्नों का नाश करने वाले हैं। लोक में आज भी पार्श्वनाथ की छवि विघ्नविनाशक के रूप में प्रख्यात है यही कारण है कि पार्श्वनाथ के साथ–'विघ्नविनाशक', 'विघ्नहर' जैसी उपाधियाँ लग गई हैं। वीतरागी देव पार्श्वनाथ के साथ ऐसी उपाधियाँ कब और कैसे जुड़ गईं यह अनुसन्धान का विषय है।

प्राचीनतम जैन स्तोत्रों में कुन्दकुन्द कृत ''तित्थया शुद्धि'' तथा ''सिद्ध भक्ति'' की गणना की जाती है। भद्रबाहु[9] के नाम से प्रचलित 'उवसग्ग हर स्तोत्र' भी अति प्राचीन एवं महत्वपूर्ण है। संस्कृत स्तोत्रकारों में आचार्य समन्तभद्र अग्रगण्य हैं। इनके 'स्वयम्भू स्तोत्र' 'देवागम स्तोत्र' 'मुक्त्यनुशासन', जिन स्तुति शतक' अति प्रसिद्ध हैं।

आचार्य मानतुंग कृत 'भक्तामर स्तोत्र' समाज में बहुप्रचलित स्तोत्र है। इसके बाद प्रसिद्धि की दृष्टि से जिस स्तोत्र का नाम आता है वह है–'कुमुदचंद्र' कृत कल्याणमंदिर स्तोत्र। इसके 44 पद्यों में अंतिम पद्य को छोड़कर शेष सभी पद्य वसन्ततिलका छंद में हैं। कुमुदचंद्र का समय बारहवीं शताब्दी माना गया है। अन्य स्तोत्रों के अधिकांश पद्यों की रचना ऐसे शब्दों में होती है जिन्हें किसी भी तीर्थंकर की स्तुति में घटाया जा सकता है। पर कल्याण मंदिर में अधिकांश पद्य ऐसे हैं, जो तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर ही घटते हैं। दूसरे ही पद्य में कवि कहता है कि–

तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय धूमकेतोः,
तस्याहमेव किल संस्तवन करिष्ये।

मैं उस तीर्थंकर की स्तुति कर रहा हूँ जो कमठ के मान का मर्दन करने वाले हैं।

कल्याणमंदिर की शैली समास रहित और प्रसाद गुण मंडित है। आरंभ में कवि अपनी विनय प्रकट करते हुए कहता है–हे स्वामी! मेरे जैसे मनुष्य सामान्य रूप से भी आपके स्वरूप का वर्णन करने के लिए कैसे समर्थ हो सकते हैं? ढीठ भी उल्लू का बच्चा जो दिन में अंधा रहता है, क्या सूर्य-रूप-वर्णन में समर्थ हो सकता है।

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप।
मस्मादृशा कथमधीश! भवन्त्यधीशा।।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो।
रूपं प्ररूपयति किं किल धर्म रश्मेः।।[10]

आराधना किसी की भी हो एकाग्रता के बिना कभी सफल नहीं होती। इस कथन के आलोक में कवि का कहना है कि हे जनबन्धु! मैं आज तक मोक्षलक्ष्मी का भर्ता नहीं बना हूँ इसका कारण यही है कि आपका नाम सुनने पर भी, आपकी पूजा करने पर भी और आपको देखने पर भी मैंने भक्तिपूर्वक आपको धारण नहीं किया। क्रिया के फलदायक न होने में भवहीनता की मुख कारण है–

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि।
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जन बान्धव दुःख पात्रं।
यस्मात्क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।।[11]

पार्श्वनाथ विषयक अन्य स्तोत्रों में प्रमुख हैं :

1. विद्यानंद (आठवीं शती) श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र
2. इन्द्रनंदि (लगभग 1050 ई.) पार्श्वनाथ स्तोत्र
3. राजसेन (ल. 1150 ई.) पार्श्वनाथाष्टक
4. पदमप्रभ मलधारी (1167-1217 ई.) पार्श्वनाथ (लक्ष्मी) स्तोत्र
5. विद्यानंदि (1181 ई.) पार्श्वनाथ स्तोत्र
6. धर्मवर्धन (ल.1200ई.) षड्भाषा निर्मित पार्श्वजिनस्तवन
7. महेन्द्रसूरि (1237 ई.) जीरावतली पार्श्वनाथ स्तोत्र
8. पद्मप्रभ (1237 ई.) पार्श्वस्तव
9. जिनप्रभ सूरि (1295-1333 ई.) पार्श्वनाथ स्तव
10. नयचंद्र सूरि (ल. 14 वीं शती) स्तम्भ पार्श्वस्तव
11. पद्मनंदि भट्टारक (1360-95 ई.) रावण पार्श्वनाथ स्तोत्र जीरावतली पार्श्वनाथ स्तवन

कल्याण मंदिर की पादपूर्ति में रचित पार्श्वनाथ विषयक स्तोत्र हैः

अज्ञात कर्तृक–पार्श्वनाथ स्तोत्र

अज्ञात कर्तृक–वीर स्तुति

अज्ञात–कर्तृक विजयानंद सूरीश्वर स्तवन

इस प्रकार हम देखते है कि भ.पार्श्वनाथ को आधार बनाकर सर्वाधिक स्तोत्रों की रचना हुई है और लगभग सभी स्तोत्रों में उनकी स्तुति की गई है। पार्श्वनाथ को जैन लोकदेवता के रूप में पहले भी माना जाता था और आज भी माना जा रहा है।

संदर्भ –

1. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.551।
2. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.551।
3. स्वयम्भू स्तोत्र 21/1।
4. स्तुति विद्या, भूमिका,पृ. 10
5. भक्तामर स्तोत्र, 3।
6. स्तुति विद्या, 1।
7. भक्तामर स्तोत्र, श्लोक 07
8. कल्याण मंदिर स्तोत्र, पद्य संख्या 8।
9. ये भद्रबाहु श्रुतकेवली भद्रबाहु से भिन्न माने गये हैं।
10. कल्याण मंदिर, पद्य 3।
11. कल्याण मंदिर, पद्य 38।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भगवान पार्श्वनाथ की जीवनपद्धति एवं उपदेशों की प्रासंगिकता

डॉ. कु. मालती जैन-मैनपुरी

जिनके बचन, उर धरत जुगल नाग।
भये धरणेन्द्र पद्मावती पलक में।
जाकी नाम महिसा सों कुधातु कनक वनै।
पारस पखान नामी भयो है खलक में।
जिनकी जनमभूमि नाम के प्रभाव हम।
आपन सरूप लख्यो भानु सी भलक में।
तेउ प्रभु पारस, महारस के दाता अब।
दीजै मोहि साता दृगलीला की ललक में।

''कविवर बनारसीदास''

संस्कृत में एक सूक्ति है– ''परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते'' अर्थात् इस परिवर्तनशील संसार में कौन जन्म नहीं लेता और कौन मरण को प्राप्त नहीं होता। जीवन और मरण इस नश्वर जगत के शाश्वत सत्य हैं। जिन्दगी और मौत कुछ नहीं केवल आँख खुलने और बंद होने की कहानी है। ''किसी की आँख खुल गयी, किसी की आँख मुँद गई'' जो फल्यो सो कुम्हलाय''। जो पुष्प विकसित होता है, उसका मुरझाना भी निश्चित है किन्तु कभी-कभी इस धरती पर ऐसी दिव्य आत्मायें जन्म लेती हैं, जिनके जन्म पर जिन्दगी मुस्कुराती है और देहावसान पर मौत शरमाती है। जो एक बार जन्म लेकर अपनी कठोर तपस्या एवं विशुद्ध भाव परिणति से अष्ट कर्मों के बंधन को काटकर निर्वाण प्राप्त करते हैं और हमेशा-हमेशा के लिए जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं, उनके देहावसान के पश्चात् ही उनकी जीवनशैली और उपदेश अंधकार में भटकती मानवता के लिए आलोक स्तम्भ का कार्य करते हैं। अपने महान कार्यों से वे समय की बालुका पर जो पदचिन्ह छोड़ जाते हैं, वे अमिट होते हैं। वास्तव में ऐसी ही विभूतियों का जन्म लेना सार्थक होता है।

लेना जन्म उन्हीं का सार्थक, इस दुनियाँ में आकर के।
चमक दिखाकर रविकिरण सी, जाते यश फैलाकर के।।
बहुत समय पश्चात् हस्तियाँ, ऐसी भू पर आती हैं।
जिनके तप संयम के आगे, जगती झुकती जाती है।।

जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ऐसी ही महान विभूति हैं। वे जहाँ क्षमा, समता, दया, सहिष्णुता, धैर्य जैसे महान गुणों के देदीप्यमान सूर्य के रूप में जिनशासन के विस्तृत व्योम पर आलोकित हैं, वहीं इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से चली आई पंच महाव्रत एवं पंच अणुव्रत रूप, निवृत्ति एवं प्रवृत्ति रूप जिनधर्म की परम्परा प्रवाह के आधार स्तम्भ भी हैं। उन्हीं से प्राप्त तीर्थंकर परम्परा को 24 वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने ''जियो और जीने दो'' के रूप में समस्त जगत को प्रदान किया।

कुछ समय पूर्व जैनेतर विद्वान् प्राच्यविद एवं इतिहासकारों ने भ्रान्तिवश भगवान पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिह्न लगाकर भगवान महावीर को जैनधर्म का संस्थापक और पार्श्वनाथ को चातुर्याम धर्म का प्रवर्तक स्वीकार किया। शनैः-शनैः जैन साहित्य और जैन इतिहास के तुलनात्मक अध्ययन तथा पुरातात्विक खोजों ने उनके मत की ऐतिहासिकता को मुक्तकण्ठ से मान्य कर लिया है। भगवान पार्श्वनाथ के जीवन की घटनायें एवं उनसे संबंधित स्थान

भी इतिहास सम्मत है। जन्मस्थान वाराणसी नगरी, उपसर्ग एवं केवलज्ञान स्थल अहिच्छत्र नगरी और निर्वाण स्थल सम्मेदशिखर वास्तविक स्थान है ही और आज भी वे उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं।

चौबीस तीर्थंकरों में भगवान पार्श्वनाथ लोकजीवन में सर्वाधिक प्रतिष्ठित हैं। इस आर्यखंड के प्रत्येक राज्य में भगवान पार्श्वनाथ विभिन्न विशेषणों के साथ पूजे जाते हैं। कहीं वे ''अंतरिक्ष पार्श्वनाथ'' के रूप में प्रतिष्ठित हैं तो कहीं देवालय ''चिन्तामणि पार्श्वनाथ'' की जय से गुंजित होता है, कहीं वे ''तिखाल वाले बाबा'' के रूप में विराजमान हैं तो कहीं उनकी भक्ति के चमत्कार से ''पटेरिया जी'' गढ़ाकोटा जिला-सागर (म.प्र.) अतिशय क्षेत्र बन गया है। ''मक्सी पार्श्वनाथ'' भी वंदनीय स्थल है। एक-दो अपवाद के अतिरिक्त सम्भवतः ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पार्श्वनाथ की मूर्ति न हो। जिनालयों में कहीं मूलनायक प्रतिमा के रूप में, कहीं चौबीसी के मध्य, कहीं पद्मासन, खड्गासन तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित हैं। इस संदर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि भगवान पार्श्वनाथ और चमत्कार एक-दूसरे के पर्याय बन गये हैं।

भगवान पार्श्वनाथ लोक जीवन में कितने रचे-पचे हैं वह इस तथ्य से स्पष्ट है कि बंगाल, बिहार और उड़ीसा में फैले हुए लाखों सराकबंधु, बंगाल के मेदिनीपुर जिले के सदगोवा, उड़ीसा के रंगिया जाति के लोग आज भी पार्श्वनाथ को अपना कुलदेवता मानते हैं। भगवान पार्श्वनाथ के उपदेश उनके जीवन में गहरी जड़ें जमा चुके हैं। ये लोग माँस भक्षण नहीं करते, जल छानकर पीते हैं, रात्रिभोजन का निषेध है, जैन तीर्थों की यात्रा करते हैं। जिन प्रान्तों में ये लोग निवास करते हैं वहाँ देवता पर बलि चढ़ाना, माँसाहार करना सामान्य बात है किन्तु ये जनजातियाँ भगवान पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित अहिंसा धर्म का पालन करतीं हैं। इनके अतिरिक्त सम्मेदशिखर के निकट रहने वाली भील जाति पार्श्वनाथ की अनन्य भक्त है। इस जाति के लोग मकरसंक्रान्ति के दिन एकत्रित होकर सम्मेदशिखर की सभी टोंकों पर उत्सव मनाते हैं। सम्पूर्ण पर्वत ''साँवरिया पारसनाथ शिखर पर भले विराजे जी'' के भक्तिगान से गुंजित हो उठता है।

भगवान पार्श्वनाथ की इस लोकप्रियता एवं सर्वव्यापकता के संदर्भ में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस चमत्कार का कारण क्या है? इस जिज्ञासा के समाधान के लिए हमें पार्श्वनाथ के दसों भवों के क्रियाकलापों पर दृष्टिपात करना होगा। दस जन्मों की यह कथा सत् और असत्, अँधकार और प्रकाश एवं उत्थान और पतन के पारस्परिक द्वन्द की लम्बी कहानी है। पार्श्व का जीव क्षमा, शांति, सहिष्णुता, दया के भावों से आपूरित, आत्म वैभव को प्राप्त करने के लिए तत्पर एवं समर्पित है जबकि उनके पूर्वभव के भाई कमठ का जीव बैर, क्रोध एवं प्रतिहिंसा की कुत्सित भावनाओं का प्रतीक बना पतन की ओर उन्मुख है। कमठ के द्वारा मरुभूति की हत्या का दौर कई भवों तक चलता है। कभी कमठ अपने चरणों में नत मरुभूति की पत्थर पटककर हत्या कर देता है तो कभी बज्रघोष हाथी के रूप में साधु से श्रावकव्रत धारण कर आत्मशुद्धि के पथ पर चलने वाले मरुभूति के, क्रूर विषधर बनकर प्राण हरण करता है। कमठ का जीव कभी अजगर बनकर अग्निवेग साधु के रूप में मरुभूति को निगल जाता है तो किसी अन्य भव में कुरंग भील बन विष भरे बाणों से उसकी हत्या कर देता है। वैर की बेल सूखती नहीं। कमठ का जीव सिंहयोनि में उत्पन्न होकर आनंद कुमार साधु के रूप में जन्में मरुभूति के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर उदरस्थ कर लेता है।

इस प्रकार तीर्थंकर पार्श्व के पूर्व 9 भवों के युग-प्रवाह में कमठ के जीव ने वैर और प्रतिशोध की भावना से पार्श्व के जीव की हत्या कर चार बार नरक एवं तिर्यंच योनि के दुख भोगे। इसी प्रकार आत्म विकास की यात्रा में क्षमा भावों के कारण पार्श्व के जीव ने चार बार ग्रैवेयक स्वर्ग के सुखों का भोग किया और अंत में तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर राजकुमार पार्श्व के रूप में उत्पन्न होकर तीर्थंकर पद प्राप्त किया।

वर्तमान परिस्थितियों में जब समस्त विश्व में हिंसा, आतंकवाद, क्रोध और प्रतिशोध की दावाग्नि धधक रही है, विनाश के लिए परमाणु एवं नाभिकीय हथियारों के संग्रह की होड़ मची है, तब भगवान पार्श्व की अनन्त क्षमाशीलता ही विश्व को महाविनाश से बचा सकती है–

महाविनाश ढहते कगार पर आज खड़ी मानवता रोती,
अट्टहास करती दानवता, गगन सिसकता धरती कँपती।
क्षमा, अहिंसा की सरगम पर, विश्वशांति का राग सुनाओ,
हिंसा की अँधी गलियों में, एक प्रेम का दीप जलाओ।।

भगवान पार्श्व के पूर्व भवों के ये वृतांत हमें यह संदेश देते हैं कि हम अपने क्रोध का रूपान्तरण वैर में न करें। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–"वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है।" क्रोध पुराना होकर वैर में परिवर्तित हो जाता है और तब उसका अंत महाविनाश में होता है। विपरीत परिस्थितियों में क्रोध उत्पन्न होना मानवीय दुर्बलता है लेकिन हमारा क्रोध अनंतानुबंधी न हो। हमारा क्रोध जल में खींची गई लकीर की तरह क्षणिक हो, पाषाण में खुदी रेखा की तरह अमिट न हो।

भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व भवों की कथा हमें यह भी शिक्षा देती है कि क्रोध को क्रोध से नहीं जीता जा सकता। जिस प्रकार रक्तरंजित वस्त्र को रक्त से स्वच्छ नहीं किया जा सकता, उसे स्वच्छ करने के लिए जल की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार क्रोध को क्षमा की वारिधारा से ही शांत किया जा सकता है।

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुसाधुना जिने।
जिने कदर्यदानेन, सच्चेनालीकवादिनं।।

क्रोध को अक्रोध से जीतो, असाधु को साधुता से जीतो, कृपण को दान से जीतो और मिथ्याभाषी को सत्य से जीतो।

इस संदर्भ में हमें राष्ट्रकवि दिनकर की निम्न पंक्तियाँ बड़ी युक्ति-युक्त लगतीं हैं–

आदमी नहीं मरता, बरछों से, तीरों से।
लोहे की कड़ियों की, साजिश बेकार हुई।
बाँधो मनुष्य को शबनम की जंजीरों से।

भगवान पार्श्व ने कमठ के जीव को क्षमा की जंजीरों से ही बाँधा था। क्षमा, शांति एवं करूणा के प्रतीक पार्श्व मुनिराज ने जब कमठ के जीव द्वारा किये गये भयंकर उपसर्गों को शांत भाव से सहन किया तब कमठ के हृदय में प्रज्जवलित प्रतिहिंसा की अग्नि उनकी क्षमा की वारिधारा से शांत हो गई। जन्म-जन्मातर का वह बैरी तीर्थंकर पार्श्व का भक्त बनकर आत्मोद्धार के पथ का पथिक बना–

क्रोधित हो क्रूर कमठ ने जब। नभ से ज्वाला बरसाई थी।
उस आत्मध्यान की मुद्रा में आकुलता तनिक न आई थी।।
विघ्नों को वैर विरोधों को मैं शांत भाव से सह जाऊँ।
मन की व्याकुलता मिट जाये ऐसी शीतलता पा जाऊँ।।

पार्श्व भक्त की यह कामना अब भी प्रासंगिक है।

वर्तमान परिस्थितियों में जब नारी सशक्तीकरण की आवाज तीव्र स्वर में उठाई जा रही है, मुनिराज पार्श्व के ऊपर कमठ के जीव संवर देव के द्वारा किये गये भयानक उपसर्गों से धरणेन्द्र और पद्मावती के द्वारा उनकी रक्षा नारी सशक्तीकरण का प्रेरणास्पद उदाहरण है। पद्मावती की कथा नारी शक्ति और भक्ति का चरम निदर्शन है। श्रमण संस्कृति में नारी "आँचल में दूध और आँखों में पानी" लिये अबला नारी नहीं है, वह कठिन से कठिन कार्य में पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली वीरांगना है। संवर देव द्वारा ध्यानस्थ मुनिराज पार्श्व पर किया गया उपसर्ग साधारण उपसर्ग नहीं था। भैया भगवतीदास ने अपने "अहिच्छत्र पार्श्वनाथ" काव्य में उपसर्ग का शब्द चित्रण निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किया है–

कोउ रुण्डमाला परिकंठहि, अगनि ज्वाल भुकंतये।
महाकाल रूप त्रिकाल, सूरति भय दिखावत गन्तये।
महि वरस बरषा क्रूर थाक्यो, भवसमुद्रहि पन्तये।
पूजिए पारस जिनन्द भविजन, नगर श्री अहिच्छत्तये।।

उपसर्ग का दृश्य रोमांचकारी था। चारों ओर जल ही जल, ऊपर से पत्थरों की वर्षा, साथ में हवा के तीव्र थपेड़े प्रतीत होता था यह प्रलयवत् जल राशि का उद्दाम वेग प्रभु को बहा ले जायेगा। नारी की सुषुप्त शक्ति जागृत हुई, भक्ति बलवती हुई। मस्तिष्क में विचार कौंधा–भले ही मैं स्त्री योनि में हूँ लेकिन मेरी आत्मा में उतना ही बल है, जितना मेरे पति धरणेन्द्र में। सच्ची श्रद्धा, निष्काम भक्ति, दृढ़ आस्था लिंगभेद नहीं करती। मैं अपने प्राण देकर भी अपने जीवनदायी प्रभु की रक्षा करूँगी। पद्मावती ने अपने मस्तक पर प्रभु को धारण किया, धरणेन्द्र नेअपने फण का छत्र प्रभु के मस्तक पर तान दिया। अद्‌भुत दृश्य था। नीचे नारी महाशक्ति बनकर प्रतिष्ठित थी और ऊपर पुरूष संरक्षक वितान बनकर खड़ा था। दोनों एक-दूसरे के सहयोगी, एक-दूसरे के पूरक, यही तो सृष्टि का रहस्य है। शक्ति और भक्ति के इस मणिकांचन सहयोग के समक्ष कमठ नतमस्तक था। उसने आज जीवन में प्रथम बार अबला नारी की आत्मिक शक्ति और दृढ़ भक्ति के प्रतिफल को निहारा था।इस घटना ने एक नया इतिहास रचा। जहाँ धरणेन्द्र और पद्मावती ने पार्श्व प्रभु की उपसर्गसे रक्षा की, वह स्थान अहिच्छत्र कहलाता है। अहि सर्प का पर्यायवाची है। यह क्षेत्र समर्पित है सर्पयुगल को, नागवंशी धरणेन्द्र और पद्मावती को।

पद्मावती ने फन फैलाया उस पर स्वामी को बैठाया,
धरणेन्द्र ने फन फैलाया, प्रभु के सर पर फौरन छाया।
यही जगह अहिच्छत्र कहाये.....

पद्मावती के व्यक्तित्व के इन उदात्त जीवन मूल्यों ने जैन समाज में उन्हें कष्टहारिणी माता के रूप में प्रतिष्ठित किया। काश! पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित स्वातंत्र्य के स्थान पर स्वच्छन्दता का वरण करने वाली आधुनिक नारियाँ पद्मावती की कर्त्तव्यपरायणता, कृतज्ञता और स्त्री-पुरूष सहयोग की भावना से कुछ शिक्षा ग्रहण कर पातीं।

नारी कल्याण के लिए गहरी चिंता की रेखाओं का मुखौटा लगाये वर्तमान राजनैतिक नेता संसद में लम्बे-चौड़े भाषण देकर या स्त्रीशोषण के विरोधी कतिपय कानून बनाकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री तो समझ लेते हैं, पर उन कानूनों का कार्यान्वयन कैसे हो, इससे उनका सरोकार नहीं होता। पारिवारिक हिंसा के विरोध में ''घरेलू हिंसा'' अधिनियम के चर्चे जुबान-जुबान पर हैं पर आज भी भारतीय नारी अपने निकट संबंधियों की अवैध भोगलिप्सा का शिकार बनती है। पारिवारिक पावन रिश्ते आज पुरूषों की अनियंत्रित कामवासना से कलंकित हो चुके हैं। पहले तो भारतीय नारी लज्जा के कारण अपने यौनशोषण के खिलाफ मुँह नहीं खोलती और यदि स्त्री ऐसा साहस करती भी है तो न्याय की जटिल एवं धीमी प्रक्रिया उसके तन-मन को तोड़ देती है और वह इसे भाग्य की विडम्बना समझकर स्वीकार कर लेती है।

भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम भव में पोदनपुर के राजा अरविन्द और मंत्री पुत्र मरुभूति की अनुपस्थिति में मरुभूति का भाई कमठ छल से उसकी पत्नी वसुंधरी के साथ अवैध संबंध स्थापित करता है। वसुंधरी लोकलज्जा के भय से इस रहस्य को गोपनीय रखती है किन्तु गुप्तचरों के द्वारा भेद खुल जाने पर राजा उसे मृत्युदण्ड देने की घोषणा करता है। क्षमाशील मरुभूति की प्रार्थना पर राजा कमठ के मृत्युदण्ड को तो निरस्त कर देते है पर उसका मुँह काला कर गधे पर बिठाकर नगर में घुमाकर देश निकाला देते हैं। सार्वजनिक अपमान की यह प्रक्रिया मृत्यु से कम कष्टकर नहीं है। वर्तमान परिस्थितियों में ऐसी ही त्वरित, शिक्षाप्रद, न्यायिक प्रक्रिया की आवश्यकता है।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आधुनिक युग की ज्वलन्त समस्या है। जिव्हालोलुपी मनुष्य अपनी स्वाद, सन्तुष्टि एवं श्रृंगार-प्रसाधन के लिए मूक तिर्यंच प्राणियों का वध कर प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ रहा है। भौतिकवादी मनुष्य के इस घृणित आचरण के मूल में है-उसके हृदय में प्राणिमात्र के प्रति दया, करूणा की भावना का अभाव। कुमार पार्श्व

का लक्कड़ के भीतर जलते नागयुगल की प्राण रक्षा कर उनकी परिणाम विशुद्धि के लिए उन्हें णमोकार मंत्र सुनाना- उनके मानस में प्रवाहित दया की सरिता के उद्दाम वेग की सुखद परिणति है। यदि हमारे मन, वचन और कर्म में दया की, अहिंसा की त्रिपथगा प्रवाहित होने लगे तो पर्यावरण प्रदूषण की समस्या स्वतः समाप्त हो जायेगी। कहा गया है- ''दयानदी महातीरे सर्वे धर्मास्तृणांकुराः''

दया रूपी नदी के विशाल तट पर सभी धर्मों के तृणांकुर उत्पन्न हो जाते हैं।

यहि अहिंसा की नदी सूख गई तो सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य सभी धर्म सूख जायेंगे। यदि इन सभी धर्मों को हरा-भरा और जीवन को सुन्दर एवं सौरभमय देखना है तो अहिंसा की त्रिपथगामिनी दिव्यगंगा को मन-वचन-कर्म के पथ पर अबाध गति से बहने दिया जाये।

आइये–अहिंसा, जीवदया, क्षमा, सहिष्णुता आदि उदात्त जीवन मूल्यों के प्रतीक भगवान पार्श्वनाथ के जन्म कल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव के अवसर पर आत्मरूपी नदी में डुबकी लगायें–

आत्मानदी संयमतोयपूर्णा, सत्यावहा शीलतटादयोर्मि।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र, न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा।।

आत्मा नदी है, इसमें संयम का जल भरा है, नदी की तरंगें उठ रही हैं। इसके शील रूपी तट बड़े मजबूत हैं। इसी में स्नान करना चाहिए। अहिंसा और दया की गंगा में स्नान करने से ही आत्मा की शुद्धि होती है। शरीर पर पानी डालने से केवल शरीर की सफाई हो सकती है, आत्मा कदापि स्वच्छ नहीं हो सकती।

भगवान पार्श्वनाथ की जीवन पद्धति और उपदेश इसी शाश्वत सत्य का चरम निदर्शन है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी उनके द्वारा प्रतिपादित जीने की कला और संदेश नितान्त प्रासंगिक है। आवश्यकता है–तदनुकूल आचरण की, क्योंकि सच्चा धर्म शब्दों में नहीं आचरण में ढलता है। हमारी त्रासदी यह है कि हमने धर्म और कर्म के मध्य विभाजन रेखा खींच दी है। हमारा धर्म अँधा है, हमारा कर्म लँगड़ा है। आइये – हम धर्म को कर्ममय और कर्म को धर्ममय बनायें। पार्श्व रूपी पारस के स्पर्श से हमारी कलुषित आत्मा भले ही स्वर्ण न बन सके किन्तु कम से कम हमारी आत्मा पर जमी काम, क्रोध, मान, माया, लोभ कषायों की काई छूट जाये, तभी परम पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के द्वारा प्रेरणा पाकर मनाये जा रहे भगवान पार्श्वनाथ के जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव की सार्थकता सिद्ध होगी।



'पर्यावरण-संरक्षण और तीर्थंकर पार्श्वनाथ'

–प्राचार्य निहालचंद जैन, बीना (म.प्र.)

आज सम्पूर्ण विश्व में चिंतन, चेतावनी और चिंता का दौर चल रहा है। पृथ्वी की सुरक्षा के लिए चेतवनी का विषय है पर्यावरण, चिन्तन का विषय है। पर्यावरण-प्रदूषण और चिंता है कि प्रदूषण सेपर्यावरण किस प्रकार संरक्षित किया जाए।

जीवन के संदर्भ में पर्यावरण-प्रदूषण दो घटकों से जुड़ा है– प्रथम बाह्य-घटक है जिनके अंतर्गत-पृथ्वी, जल, वायु, ध्वनि, ताप और आण्विक-रेडियोधर्मी तत्त्वों द्वारा उत्पन्न प्रदूषण की बात आती है। दूसरा घटक आंतरिक है-जो व्यक्ति की शुभाशुभ भावनाओं, उसके मानसिक द्वन्द एवं तनाव से सम्बद्ध है। जीवन का आन्तरिक स्वरूप इससे प्रभावित/आन्दोलित रहता है।

कमठ के जीव और मरुभूति के जीव की संघर्ष-कथा–कमठ के जीव और मरुभूति के जीव पार्श्वनाथ के विगत दस भवों की संघर्ष-कथा का यदि पर्यावरण के संदर्भ में अध्ययन करें तो हमें एक नई दृष्टि प्राप्त होती है। संवरासुर अहंकार, क्रोध एवं वैर की ज्वाला में दग्ध है। उसकी आन्तरिक पर्यावरणीय चेतना, बैर के कालुष्य से विकृत है। उसके अनेक जन्मों की कषायें कभी कुक्कुट सर्प और कभी भयंकर अजगर के रूप में उद्भूत होती हैं। प्रतिशोध से भरे उसके रौद्र-परिणाम प्रत्येक भव में मरुभूति के जीव का प्राणान्त करते हैं। इसके विपरीत मरुभूति का जीव, साधना और संयम की मंजिलें उत्तरोत्तर प्राप्त करता हुआ, भीतर के पर्यावरण को विशुद्ध बनाता है। मरुभूति का जीव कभी हाथी की पर्याय में सल्लेखना पद से कर्म-निर्जरा कर अच्युत स्वर्ग में जाता है। कभी ग्रैवेयक में अहमिन्द्र/इन्द्र बनकर भावी तीर्थंकर के रूप में वाराणसी नगरी में महाराजा अश्वसेन के राजगृह में पार्श्वनाथ के रूप में जन्म लेता है।

एक ओर दुष्ट कमठ का जीव अपने खोटे परिणामों के कारण, आंतरिक पर्यावरण को विक्षुब्ध कर रहा है और दूसरी ओर मरुभूति की आत्मा सम्यक्त्व की राह पर चलकर अपने आंतरिक पर्यावरण को निर्मल और प्रदूषण-मुक्त बना, परिष्कृत कर रही है। दसवें भव में संवर असुर के घोर उपसर्ग के सामने भगवान पार्श्वनाथ की असीम सहनशक्ति मानो उस आसुरी शक्ति पर धवल चेतना की एक अक्षय विजय है।

पार्श्वनाथ के नाना महिपाल तापसी वेश धारण कर अपने सात सौ शिष्यों के साथ पञ्चाग्नि तप कर रहे हैं। जंगल के काष्ठों को जलाकर आग प्रज्वलित रखते हैं। निरंतर आग से उठता धुँआ, अहर्निश वायु प्रदूषण का मुख्य कारक बनता है।

पार्श्वनाथ की दृष्टि ने केवल अन्तस् के चेतन-पर्यावरण को विशुद्ध रखने की थी, वरन् वे बाह्य पर्यावरण-संरक्षण के लिए महीपाल तापस को व्यर्थ जंगल के काष्ठों को काटकर आग न जलाने के लिए कहते हैं। महीपाल तापस वही कमठ का जीव है, जो विगत कई भवों से प्रतिशोध से परितप्त है। राजकुमार पार्श्वनाथ के प्रतिरोध करने पर वह तमतमा कर आग-बबूला हो उठता है तथा काष्ठ के मोटे-मोटे लट्ठों को विदीर्ण करने के लिए उठाता है। पार्श्वकुमार ने अपने अवधिज्ञान से जाना कि जिन काष्ठ-खंडों को वह चीरने जा रहा है, उसमें युगल सर्प हैं। दयार्द्र 'पार्श्वनाथ' कुल्हाड़ी से उन काष्ठों को चीरने से मना करते हैं, लेकिन तापस उल्टा उन्हीं पर कुपित होकर लक्कड़ को चीर देता है जिससे युगल सर्पों के दो टुकड़े हो जाते हैं। करूणा भाव से कुमार पार्श्वनाथ उन्हें कल्याणकारी महामंत्र 'णमोकार' सुनाकर सम्बोधते हैं। समता भावों से मरण को प्राप्त हुए वही युगल सर्प, धरणेन्द्र एवं पद्मावती होते हैं, जो आगे चलकर भगवान पार्श्वनाथ की तपस्या करते हुए घोर उपसर्ग से रक्षा करते हैं। यह घटना दो तथ्य उजागर करती है–

1. तीर्थंकर बालक पार्श्वनाथ की दृष्टि में लकड़ी को निष्प्रयोजन जलाना, पर्यावरण संरक्षण के प्रतिकूल है।
2. अहिंसा और जीव दया की निष्काम भावना से व्यक्ति अन्तस और बाह्य दोनों पर्यावरण को स्वच्छ बनाता है।

दुष्ट संवर के उपसर्ग–घोर प्रदूषण के प्रतीक–संवर देव ने सात दिन तक भीषण उपसर्ग किये। ये उपसर्ग वस्तुतः पर्यावरण-प्रदूषण के ही रूप थे। अपार जलराशि, अग्नि की प्रचण्डता, तेज झंझावात, मेघ-गर्जन, तड़ित की कर्कश ध्वनियाँ, पर्वत खण्डों का प्रबल आवेग एवं नर-कंकालों सहित क्रूर हिंसक नृत्यादि का प्रदर्शन। इन भयंकर उपसर्ग जनित प्रदूषणों से रक्षा करने के लिए धरणेन्द्र सात फणों वाले नाग के रूप में प्रकट हुआ। उसने विशाल फण-मण्डल तैयार कर, ध्यानस्थ भगवान पार्श्वनाथ को चारों ओर से ढंक लिया। भगवान पार्श्वनाथ की विश्वकल्याण कामना से सम्पूरित भावना की फलश्रुति के रूप में धरणेन्द्र का आना और प्रकृति के विक्षोभ को दूर करना–पर्यावरण संरक्षण की गहन दृष्टि थी।

धरणेन्द्र के सात फन सात प्रकार के प्रदूषणों से रक्षा करने के प्रतीक हैं। सात दिन तक प्रदूषण का विप्लव जारी रहा। जब इंद्र ने रौद्र रूप जल की उत्तुंग लहरें उठते देखीं और सम्पूर्ण वनखंड को समुद्र में बदलते देखा तब उसने कमठासुर पर 'महायुद्ध वज्र' घुमाकर फेंका। जिससे वह भयाक्रान्त हो भागा और फिर कहीं शरण न पाकर जिनेन्द्र प्रभु पार्श्वनाथ की शरण में जाकर नतशीश हुआ। संवरसुर की पराजय पर्यावरण-प्रदूषण की निरर्थकता की द्योतक है। पार्श्व-प्रभु की उपसर्गों पर विजय पर्यावरण-संरक्षण की निर्मल दृष्टि का प्रतीक है। सम्पूर्ण घटना में हिंसा, अहिंसा के मुकाबले हार जाती है। क्षुद्र संवर का हृदय-परिवर्तन, पर्यावरण की विजय है।

पर्यावरण संरक्षण का मूल अहिंसा–भगवान पार्श्वनाथ अहिंसा के प्रबल संवाहक बने। अहिंसा पर्यावरण संरक्षण का मूल आधार है। आज मानव हथियारों से ज्यादा रेडियोधर्मी विनाशक धूल एवं आण्विक-शक्ति से घबड़ाया हुआ है। अहिंसा, प्रकृति और पर्यावरण को संरक्षित करने का पहला पाठ पढ़ाती है। भगवान पार्श्वनाथ ने अहिंसा का समर्थ उपदेश देकर आर्य-आर्येतर जातियों को अहिंसा धर्म में संस्कारित किया।

वन सहजीवी संस्कृति और अहिंसा–भगवान पार्श्वनाथ की तपस्या का मूलस्थान 'अश्व वन' था। वस्तुतः वनों पर आधारित सहजीवी जीवन-पद्धति में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा है जिससे भोजन, पेय, औषधि, रसायन आदि की व्यवस्था सम्भव है। प्राकृतिक वनों से पर्यावरण पूर्ण सन्तुलित रहता है। 'कल्पवृक्ष' की अवधारणा, वन संस्कृति के श्रेष्ठ अवदान का प्रतीक है। वृक्षों को उस समय 'कल्पवृक्ष' कहा जाता रहा, जब वे जीवन की सारी आवश्यकताएँ पूरी कर दिया करते थे। भगवान पार्श्वनाथ वन्य संस्कृति से जुड़े 'महायोगी' अनुत्तर पुरूष थे। उनका दिगम्बरत्व-प्रकृति एवं पर्यावरण से तादात्म्य स्थापित करने के लिए था, वे रमणीय थे। यही कारण है कि वन-बहुल प्रान्त बिहार एवं उड़ीसा तथा बंगाल में फैले लाखों सराक, बंगाल के मेदिनीपुर जिले के सद्गोप तथा उड़ीसा के रङ्गिया आदिवासी इनके परम भक्त हैं। निश्चित ही पार्श्वनाथ के उपदेशों का इनके लोक जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा; जिससे ये जातियाँ आज भी इन्हें अपना 'कुल देवता' मानती हैं। तय है कि वन-पर्यावरण के सन्निकट रहने वाले भगवान पार्श्वनाथ के शरीर का वर्ण हरित था। हरित वर्ण वृक्षों की हरियाली तथा वनों की हरीतिमा का प्रतीक है। अतः हम कह सकते हैं कि पार्श्वनाथ का परमौदिक शरीर पर्यावरण-संरक्षण का जीवन्त उदाहरण है।

महामुनि भगवान पार्श्वनाथ प्रथम पारणा के दिन आहार हेतु गुल्मखेट नगर आये थे, यहाँ धन्य नामक राजा ने नवधा भक्तिपूर्वक परमान्न–खीर का आहार दिया। तत्पश्चात् देवों ने पंचाश्चर्य किये। उन सभी पंचाश्चर्यों का संबंध पर्यावरण-संरक्षण और पर्यावरण-विशुद्धि से था। ये हैं–शीतल सुगन्धित पवन बहना, सुरभित जल-वृष्टि, देवकृत पुष्पवर्षा, देव-दुन्दुभि एवं जयघोष।

भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण स्थल एवं पर्यावरण चेतना–भगवान पार्श्वनाथ की निर्वाण भूमि श्री सम्मेदशिखर है, जो बिहार प्रांत (अब झारखंड प्रांत) में 'पारसनाथ हिल' के नाम से जानी जाती है, यह सम्पूर्ण जैन समाज की पवित्र भूमि है। यहाँ 20 तीर्थंकरों ने निर्वाण प्राप्त किया था। यह पर्वत सघन वन से आच्छादित है और पर्यावरण संरक्षण का जीवन्त स्थान है।

पर्वत पर पारसनाथ टोंक सबसे ऊँची है, जिससे चारों ओर का मनोहारी प्राकृतिक दृश्य आँखों की शीतलता/स्निग्धता प्रदान करता है। यहाँ का सम्पूर्ण पर्यावरण शुद्ध प्राणवायु आक्सीजन का फैला हुआ अपार भण्डार है, जो वातावरण में अधिकतम प्रतिशत के रूप में विद्यमान है। पैदल वन्दनार्थी भक्तगणों के यही आक्सीजन अपार शक्ति का संचार करती है और 27 कि.मी. की यह पर्वत की चढ़ाई यात्रा में थकान महसूस नहीं होने देती। एक ओर जहाँ भक्त की श्रद्धा कार्य करती है तो बाह्य घटक के रूप में यह प्राणवायु श्वासों में घुलकर ऊर्जा का स्रोत बनती है। सम्मेदाचल पार्श्वप्रभु की पर्यावरण चेतना का संवाहक है।

पर्यावरण संरक्षण में पार्श्वप्रभु की महती भूमिका—पर्यावरण संरक्षण में भगवान पार्श्वनाथ पर विहङ्गम दृष्टि भगवज्जिनसेनाचार्य ने अपने अमर महाकाव्य 'पार्श्वाभ्युदय' के माध्यम से डाली है। उन्होंने संवर के माध्यम से मेघ के रूपों और उसके प्रतिफलों को अधिक विस्तार से वर्णित किया तथा अध्यात्मनिष्ठ निर्मल भावों के साक्ष्य से यह सिद्ध किया कि पार्श्व प्रभु याचक नहीं, अपितु परिपूर्ण समर्थ शक्तिवान हैं। कमठ का अधम जीव संवर, मेघों के द्वारा उनके चित्त में क्षोभ उत्पन्न करना चाहता है और सोचता है कि उनका धैर्य डगमगाने पर किसी तरह उन्हें मार डालूँगा, लेकिन वह पार्श्वनाथ की आत्मशक्ति से अपरिचित था। आचार्य जिनसेन की दृष्टि में, संवर देव काम, क्रोध एवं मद से युक्त रागद्वेष के द्वन्दों में झूल रहा है।वहीं वीतरागी प्रभु निश्छल समाधि की ओर बढ़ते हुए आत्म वैभव को पाने वाले हैं। भगवान पार्श्वप्रभु का बाहरी पर्यावरण, जिसमें वे तपस्या लीन हैं जितना स्वच्छ और निर्दोष है, उनका आभ्यन्तर पर्यावरण भी रागद्वेष, मोह, आसक्ति, कामना, वासना आदि प्रदूषणों से मुक्त पूर्ण स्वच्छ बन चुका है। वहाँ न काम शेष है न कामना। उस निरंजन पर्यावरण में अक्षय शांति के अजस्र स्रोत खुल गये हैं। सही है जिनका आभ्यन्तर शुद्ध पारदर्शी परिष्कृत हो चुका उसका बाहरी पर्यावरण फिर कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। आत्म तत्त्व की अजेय शक्ति के सामने बाहर की सारी विद्रूप शक्तियाँ लड़खड़ा जाती हैं।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ की वाणी में करूणा, मधुरता और शांति की त्रिवेणी समाहित है। करूणा में अहिंसा, मधुरता में प्रेम और शांति में समता झांकती है। उन्होंने अहिंसा को अजेय शक्ति के सहारे तपाग्नि तपते तापसी-परम्परा का शुद्धीकरण किया और विवेक व ज्ञान युक्त तप की प्रशस्त दिशा दी। संक्षेप में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की पारगामी दृष्टि उल्लेखनीय है। उन्होंने जीवन व जगत को प्रकृति के साथ चलने के लिए कहा क्योंकि प्रकृति पर्यावरण के संरक्षण के प्रति प्रतिपल समर्पित है।



'भगवान पार्श्वनाथ एवं उनका अतिशय'

–श्रीमती आशा जैन, दिल्ली

भारत भूमि ऋषि, मुनियों, आर्यिकाओं की भूमि है इसीलिये अनादिकाल से यहाँ जन-जन मंगलकारी अरिहंत, सिद्ध एवं साधुओं की लीला-स्थली के पुनीत धर्मतीर्थों के दर्शन एवं वंदन से संसार ताप-पीड़ित मानव मन आत्म अनुभूति की ओर अग्रसर होने लगता है, पुण्य की प्राप्ति होती है, पाप धुल जाते हैं और संसारी प्राणी उनसे प्रेरणा पाकर संसार सागर से तिरने का प्रयत्न करते रहते हैं।

विगत ईसवी सन् 2005 में परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न 105 श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से जैनधर्म के तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का उद्घाटन भगवान की जन्मभूमि वाराणसी में पूज्य माताजी के संघ सानिध्य में धर्मप्रभावनापूर्वक मनाया गया, पुनः ''सम्मेदशिखर वर्ष'' भी मनाया गया क्योंकि सम्मेद शिखर जी भगवान की निर्वाण भूमि है इसीलिए देश भर में पूरे वर्ष उन्हीं से संबंधित कार्यक्रम चलते रहे, हमने भी मंदिरों में करवाकर पुण्य अर्जित किया, जिसमें श्री लालमंदिर जी में पार्श्वनाथ विधान व पंचायती मंदिर जी में श्री सम्मेद शिखर जी की चाँदी की भव्य फोटो के सम्मुख भगवान पार्श्वनाथ जी वेदी में विराजमान करके 108 लाडू चढ़ाकर मोक्ष कल्याणक मनाया। 26 महिलाओं को '' वामा देवी सम्मान'' से विभूषित किया।

वैसे तो पूरे भारत में ही भगवान पार्श्वनाथ को बड़ी भावना के साथ विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे–अणिन्दा पार्श्वनाथ, साँवलिया पार्श्वनाथ, मक्सी पार्श्वनाथ, सहस्रफणी पार्श्वनाथ, चिंतामणी पार्श्वनाथ, कलिकुण्ड पार्श्वनाथ आदि। फिर भी मैं महाराष्ट्र के कुछ मुख्य पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र के बारे में ''तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव'' के समापन पर छपने वाले ऐतिहासिक ग्रंथ में प्रकाश डालना चाहती हूँ।

1. अंतरिक्ष पार्श्वनाथ–यह क्षेत्र अकोला क्षेत्र में है, मुम्बई-नागपुर रेलमार्ग पर अकोला से 70 कि.मी. दूर है। ग्राम के मध्य में '' अंतरिक्ष पार्श्वनाथ'' अतिशय क्षेत्र है।

ऐसा माना जाता है कि चोलवंशी नरेश श्रीपाल जी ने मंदिर का निर्माण कराया था, भगवान रामचंद्र जी के समय में भी यह क्षेत्र था, यहाँ भट्टारको की गद्दियाँ हैं।

यह क्षेत्र इसलिये भी प्रसिद्ध हुआ क्योंकि श्रीपाल जी का कुष्ट रोग यहाँ पर ही दूर हुआ था। प्रतिमा अंतरिक्ष में थी जिसके नीचे से एक घुड़सवार निकल जाता था। मुगल काल में मूर्ति को भूगर्भगृह में विराजमान कर दिया, वर्तमान में भी इस प्रतिमा के नीचे से कागज निकाला जा सकता है। मंदिर के शिखर की ईंटें पानी में तैरती हैं। इस अष्टकोणीय मंदिर की शिल्प रचना आकर्षक है।

2. कलिकुण्ड पार्श्वनाथ–यह क्षेत्र साँगली जिले में पूना-सतारा-मिरज लाइन पर किरलोस्करवाडी से 4 कि.मी. तथा सांगली से सड़क मार्ग द्वारा 51 कि.मी. दूर है। प्राचीन काल में इस नगर का नाम कोडिन्यपुर था, बाद में यह कुण्डल हो गया, नगर में कलिकुण्ड पार्श्वनाथ जिनालय है। कहते हैं इस नगर में सत्येश्वर नाम का राजा राज्य करता था जो बहुत बीमार हो गया, बहुत उपचार किया मगर सब बेकार यहाँ तक कि वह मरणासन्न स्थिति तक पहुँच गया। इसकी रानी पद्मश्री ने पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति निर्मित करवाई और बड़े भक्ति भाव से तन्मय हो पूजा करने लगी, धीरे-धीरे राजा स्वस्थ हो गया। इससे राजा-प्रजा इस मूर्ति के भक्त बन गए और यह मूर्ति अतिशय सम्पन्न मानी जाने लगी। कुण्डल गाँव के 2 कि.मी. दूरी पर पहाड़ी पर नैसर्गिक गुफा के ऊपर गुफा में भी भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा है इस क्षेत्र को झरी पार्श्वनाथ कहते हैं। झरी पार्श्वनाथ से 4 कि.मी. दूर पर्वत मार्ग पर दूसरे पहाड़ पर सप्तफणी पार्श्वनाथ का मंदिर है तथा निकट मैदान में चरण चिन्ह बने हुए हैं।

3.चिन्तामणि पार्श्वनाथ–यह क्षेत्र परभणी जिले में शिरड़ शाहपुर से 24 कि.मी. की दूरी पर है। यहाँ भगवान

पार्श्वनाथ की अतिशययुक्त प्रतिमा है। यहाँ पर भक्तजन अपनी मनोकामना पूरी करने हेतु बड़ी संख्या में आते रहते हैं।

4. आष्टा अतिशय क्षेत्र–यह क्षेत्र उस्मानाबाद जिले में उस्मानाबाद सड़क मार्ग पर 51 कि.मी.दूर है, यह स्थान कासार आष्टा के नाम से जाना जाता है यहाँ पार्श्वनाथ भगवान की अतिशय सम्पन्न प्रतिमा है, उसकी भक्ति से विघ्नों का नाश होता है अतः भक्तजन इसे विघ्नहर पार्श्वनाथ कहते हैं। कहते हैं लगभग 500 वर्ष पूर्व मुस्लिम शासनकाल में जब मूर्तियों का निर्मम भंजन किया जा रहा था, मूर्ति सुरक्षा हेतु इस मूर्ति को बन्द करके ले जाया जा रहा था तब यहाँ से 2 कि.मी. दूर दस्तापुर गाँव के बाहर बैलगाड़ी पहुँची तो वहाँ जाकर रूक गयी। उसी रात आष्टा गाँव की एक स्त्री को स्वप्न आया कि मूर्ति कहीं नहीं जायेगी। अतः मूर्ति को वापस लाया गया, मूर्ति के चमत्कार को देखकर सभी ग्रामवासी इसके भक्त हो गये और इसे ग्राम देवता मानने लगे।

5.कचनेर अतिशय क्षेत्र–यह औरंगाबाद नगर से बीड़ सड़क मार्ग पर 55 कि.मी. दूर है। श्री महावीरजी के समान ही दक्षिणाष्ट में चिंतामणी पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र प्रसिद्ध है। लगभग 250 वर्ष पूर्व ग्राम के एक भुयार के द्वार पर संपतराव नामक ग्रामीण की एक गौ प्रतिदिन संध्या में अपना दूध झरा देती थी। संपतराव की दादी यह देख चकित होती थी। एक दिन प्रातःकाल में उसे स्वप्न में भुयार के द्वार के नीचे से मूर्ति निकालने का संकेत मिला। खुदाई में सप्तफणयुक्त पार्श्वनाथ जी की मूर्ति मिली, जिसे एक बाड़े में वेदी पर रख पूजा करने लगे, किन्तु कुछ वर्षों बाद यह मूर्ति धड़ से खंडित हो गई। उक्त मूर्ति को जल में विसर्जन करने की चेष्टा करने पर मूर्ति ने लच्छीराम कासलीवाल को स्वप्न में दृष्टान्त देकर पुनः, जुड़ने की विधि बताते हुए 7 दिन तक बन्द कमरे में एक गड्ढे में मूर्ति को रखकर अखंड भजन-पूजन करने को कहा, ऐसा करने पर चमत्कारिक ढंग से अपने आप द्वार के पट खुल गए एवं जुड़ी हुई मूर्ति के दर्शन लोगों ने किए। यथाविधि मूर्ति को वेदी पर विराजमान कर दिया गया तथा क्षेत्र का विकास होने लगा। आज भी यह मूर्ति अपने चमत्कारों से श्रद्धालुओं की मनोकामना पूरी करती है।

चिन्तामणि १००८ भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से हमें क्या शिक्षा ग्रहण करना चाहिए?

लेखिका–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

''भव संकट हर्ता पार्श्वनाथ विघ्नों के संहारक तुम हो।
हे महामना है क्षमाशील मुझमें भी पूर्ण क्षमा भर दो।।
यद्यपि मैंने शिवपथ पाया पर यह विघ्नों से भरा हुआ।
इन विघ्नों को अब दूर करो सब सिद्धि लहूँ निर्विघ्न तया।।''

भगवान पार्श्वनाथ का जीवन एक अलौकिक जीवन रहा है। जिन्होंने दस भव तक कमठ के उपसर्ग को सहन किया, दस भव तक कमठ ने प्रति क्षमा-भाव धारण किया। कहते हैं-'ताली दोनों हाथों से बजती है' लेकिन भगवान पार्श्वनाथ के जीवन में ताली एक थाल से बजी है। कमठ का एक तरफा बैर भगवान पार्श्वनाथ के प्रति दस भव तक चलता रहा।

भगवान पार्श्वनाथ के दस भव इस प्रकार हैं–

1. मरुभूति 2. हाथी 3. सहस्रारस्वर्ग में शशिप्रभ देव 4. अग्निवेग विद्याधर 5. अच्युत स्वर्ग में देव 6. वज्रनाभि चक्रवर्ती 7. मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र 8. अयोध्या के आनंदराजा 9. आनत स्वर्ग में इंद्र 10. भगवान पार्श्वनाथ

कमठ के दस भव इस प्रकार हैं–

1. कमठ 2. कुक्कुटसर्प 3. पाँचवे नरक 4. अजगर 5. छठे नरक 6. भील 7. सातवें नरक 8. सिंह 9. महीपाल राजा 10. शंवर देव

भगवान पार्श्वनाथ ने क्षमाभाव को धारण करके स्वर्ग के सुखों को भोगा, चक्रवर्ती पद को प्राप्त किया, राजा बने और फिर एक दिन तीन लोक के नाथ भगवान बन गए। जिसकी देवगण, चक्रवर्ती, राजा, महाराजा सभी नमन, भक्ति, पूजन आदि करके अपने कर्मों को निर्जीर्ण करते हैं।

कमठ के जीव ने क्रोध को अंगीकार किया फलस्वरूप उसने तिर्यंच, नरक के दुख भोगे। जहाँ पर कष्ट ही कष्ट मिलता है। छहढाला में पं. श्री दौलतराम जी ने नरक गति के दुःखों का बहुत अच्छी तरह से वर्णन किया है–

जहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो।
तहाँ राध शोणित वाहिनी, कृमि कुल कलित देह दाहिनी।।1।।

सेमर तरु दल जुत असि पत्र असि ज्यो देह विदारे तत्र।
मेरु समान लोह गल जाय ऐसी भीत उष्णता धाय।।2।।

तिल-तिल करे देह के खंड असुर भिड़ावे दुष्टप्रचण्ड।
सिंधु नीर ते प्यास न जाए ते पण एक न बूँद लहाए।।3।।

तीन लोक को नाजजु खाय मिटे न भूख कजान लहाय।
यह दुख बहु सागर लो सह्यो करम जोगते नरगति लह्यों।।4।।

नरक के दुखों को जानकर हमें भयभीत होना चाहिए। हमें ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए। जिससे हमें नरक, तिर्यंच गति प्राप्त हो। पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माता जी ने दशलक्षण धर्म की पूजा में लिखा है–

'क्रोध कषाय महाविष है, भव भव में दुख दायक है।''

अतः हमें अपने जीवन में क्रोध कषाय का त्याग कर क्षमाभाव को धारण करना है। 'तुंकारी' की कथा बहुत प्रसिद्ध है क्रोध के कारण ही उसका नाम तुंकारी पड़ गया था और जब उसने क्रोध का फल भोग लिया तब उसे सीख मिली एक दिन वह गुस्से में घर से निकल कर जंगल में चली गई वहाँ चोरों ने उसके गहने छीन लिए शील भंग करना चाहा तो देवीय शक्ति ने रक्षा की। लेकिन वह एक रंगरेज के हाथ में पड़ी जो कि उसके शरीर से खून निकाल कर कंबल रंगता था। अतः उसे लकवें की बीमारी हो गई। पुण्योदय से एक दिन उसके भाई ने उसे देख लिया तब वह उसे घर लाया और खूब इलाज किया तब एक वैद्य जी ने लक्षपाक तेल बताकर उसे धीरे-धीरे स्वस्थ किया। तब उसने अपने मन में नियम कर लिया कि अब कभी क्रोध नहीं करूँगी।

क्षमा, सहिष्णुता, कृतज्ञता, विनय, सरलता, शुचिता आदि ऐसे गुण हैं जिनसे मानव महान बनता है। ऊपर उठता है, उर्ध्वगमन करता है और नियम से एक दिन सिद्ध शिला को–मोक्षधाम को प्राप्त करता है।

इसके विपरीत क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर आदि से व्यक्ति अधोगमन करता है नरक तिर्यंच गतियों के दुख भोगता है। न स्वयं सुखी रह सकता है न दूसरों को सुखी देख सकता है।

अतः हमें अपने जीवन में क्या धारण करना है? क्षमाभाव- पूज्य माताजी ने पूजा में लिखा है–

क्षमा निजात्मा का गुण है क्रोध भव अग्नि कण है।
क्षमा पूर्ण शीतल जल है सभी गुणों में उज्ज्वल
ऐसे पावन क्षमा धर्म को हृदय कमल में ध्याते हैं।
समरस हेतू क्षमाधर्म को हर्षित अर्घ चढ़ाते हैं।।

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने दशधर्मों के ऊपर सुन्दर भजन लिखे हैं। क्षमा धर्म पर भजन है-

क्षमा धर्म से अपनी बगिया सजाओ।
गुणों की सुरभि अपने जीवन में लाओ।।

क्षमाधर्म को हृदय में धारण करने से परिणामों में शांति होती है। जीवन स्वस्थ निरोग रहता है। जिस प्रकार जल का स्वभाव शीतलता है उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव क्षमा गुण है। क्रोध तो विभाव परिणाम है।

भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के अंतर्गत जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी युगप्रवर्तिका चारित्र–चंद्रिका, वाग्देवी, क्षमा की प्रतिमूर्ति, 250 ग्रंथों की प्रणेत्री, जम्बूद्वीप रचना, तेरहद्वीप रचना की पावन प्रेरिका, तीर्थंकरों की जन्मभूमियों की उद्धारिका, मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण की प्रेरणास्रोत गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ का एक वृहद् ग्रंथ छपाने की प्रेरणा प्रदान की है। यह विशाल ग्रंथ जन-जन के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। व्रत करने के इच्छुक महानुभावों के लिए अनेक नए-नए व्रतों का संग्रह इस पुस्तक में मिलेगा।

भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से मैं यही शिक्षा ग्रहण करती हूँ कि हे भगवान्! मैं अपने जीवन में क्रोध कषाय को दूर करके क्षमा भाव को धारण करूँ। प्राणीमात्र के प्रति मेरा क्षमा भाव हो। भगवान पार्श्वनाथ के समान अपने जीवन को समुन्नत बना सकूँ। इन्हीं भावनाओं के साथ भगवान पार्श्वनाथ के चरणकमलों में कोटि-कोटि नमन।

भगवान पार्श्वनाथ दशावतार नाटक

(भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व भवों पर प्रस्तुत क्रमिक नाटक)

प्रस्तुति–पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज

मरुभूति

–प्रथम दृश्य–

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना)

धरती का तुम्हें नमन है, आकाश का तुम्हें नमन है।
तीन लोक के सौ इन्द्रों ने, किया तुम्हें वंदन है।।
सौ-सौ बार नमन है-2
पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में, सौ-सौ बार नमन है।।टेक.।।
तीन तीर्थ माने हैं जिनके, पंचकल्याण से पावन,
वाराणसि, अहिच्छत्र और सम्मेदशिखर मनभावन।
इनके दर्शन से भक्तों के, पावन होते मन हैं,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।1।।

वर्तमान में पार्श्वनाथ का, अतिशय खूब बखाना,
अंतरिक्ष, शिरपुर, चंवलेश्वर, मक्सी, अडिन्दा जाना।
अतिशायी कचनेर में जाकर, करो प्रभू दर्शन है,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।2।।
कर्नाटक के बीजापुर में, सहस्रफणा पारस हैं,
जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में, चिन्तामणि पारस हैं।
भारत के अनेक नगरों में, पारस प्रभु मंदिर हैं,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।3।।
गणिनी ज्ञानमती माता, कहती हैं सब भक्तों को,
पारस प्रभु के अतिशय से, परिचित करवाओ सब को।
सभी ''चन्दनामती'' प्रभु का, उत्सव करो सफल है,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।4।।

राजदरबार का दृश्य

(राज्यसभा में नृत्य)

राजदरबार लगा हुआ है। मध्य में स्वर्ण सिंहासन पर अपने अतुलित वैभव के साथ पोदनपुर के महाराजा अरविन्द विराजमान हैं। मंत्रीगण अपने-अपने स्थान पर विराजमान हैं। तभी अतिशय कुशल प्रौढ़ मंत्री महोदय गंभीर मुद्रा को लिए हुए महाराज के पास आते हैं।)

मंत्री विश्वभूति–प्रणाम महाराज!

महाराज–(मधुर मुस्कान से उनकी ओर देखते हुए यथोचित आसन पर बैठने का इशारा करते हैं) आइए मंत्रिवर! कहिए! राज्य में सर्वत्र कुशल तो है ना?

मंत्री—(बैठते हुए) हाँ महाराज! आपके प्रसाद से सर्वत्र कुशल मंगल है। सचमुच में इस समय पोदनपुर आपके प्रसाद को प्राप्त कर साक्षात् भगवान बाहुबली के राज्यसुख का स्मरण किया करती है। शहर में अनीति तो प्रवेश ही नहीं कर पाती है क्योंकि नीतिदेवी ने उसका इस शहर से बहिष्कार ही कर दिया है। आपकी यश सुरभि दशों दिशाओं में फैल रही है।

(अरविंद महाराज एकटक मंत्री के मुख को देख रहे हैं। मंत्री जी कुछ क्षण सोचते हैं पुनः बोलते हैं)

मंत्री—महाराज! आज मैं आपसे सदा के लिए विदाई लेने आया हूँ।

महाराज—(आश्चर्य चकित होते हुए) ऐं!! मंत्री जी क्या-क्या, आपने क्या कहा? क्या मुझसे कोई नाराजगी का प्रसंग आया है?

मंत्री—नहीं-नहीं महाराज! आप अन्यथा न सोचें। प्रभो! आपके पिता और पितामह आदि बुजुर्गों ने तथा मेरे माता-पिता, पितामह आदि बुजुर्गों ने जिस आश्रम को अंत में स्वीकार किया है और जो सनातन परम्परा रही है मैं भी उस गृह कारावास को छोड़कर सन्यस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहता हूँ।

महाराज—मगर.....।

मंत्री—महाराज! आप प्रसन्न होइए और मुझे अब शीघ्र ही आज्ञा प्रदान कीजिए।

(महाराज कुछ क्षण को स्तब्ध हो जाते हैं पुनः मंत्री की भार्या अनुंधरी व युगल पुत्रों के बारे में सोचने लगते हैं)

महाराज—(मन में) क्या मंत्रिवर वास्तव में हमारे असीम प्रेम को ठुकरा देंगे? हो सकता है! जब मनुष्य को वैराग्य हो जाता है तब उसे यह सारा विश्व का सौन्दर्य ओसबिंदु के समान चंचल दिखाई देने लगता है। तो क्या ये मंत्री जी उसी वैराग्य को प्राप्त कर चुके हैं?

(मंत्री महाराज को सोच में निमग्न देखकर महाराज के हृदय के मोह को समझ गए और बोले)

मंत्री—(खड़े होकर) महाराज! इस संसार में इस जीव का किसके साथ संबंध नहीं हुआ है। यहाँ किस-किसको मैंने अपना स्वामी नहीं बनाया? अथवा मैं किस-किसका स्वामी नहीं हुआ? कितनी बार मैंने चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण किया होगा? किस-किस योनि में नहीं गया होऊँगा? लेकिन प्रभो! अब तक मुझे शांति नहीं मिली, बस, अब मैं उस अक्षय शांति की खोज में अपने आपको लीन कर लेना चाहता हूँ।''

महाराज—मंत्रिवर! क्या आपने अपने परिवारजनों से आज्ञा ले ली है? क्या आपके पुत्रों ने खुशी-खुशी आपको वन में भटकने की और घर-घर में भिक्षावृत्ति की आज्ञा दे दी है?

मंत्री—हे राजन! जब वे दोनों पुत्र आपकी आज्ञा में हैं तब वे आपके अनुकूल ही चलेंगे पुनः वे आपकी आज्ञा के बाद आज्ञा क्यों नहीं देंगे? दूसरी बात यह है कि पत्नी-पुत्रादि सभी स्वार्थ के सगे हैं, सब परमार्थ से रोकने वाले हैं, पर क्या ये मुझे यमराज के मुख से बचा सकेंगे? यदि नहीं, तो फिर इनके मोह में फंसने का क्या लाभ? ना जाने कितने भवों में मैंने कितने परिवारों को रोते-बिलखते छोड़ा होगा। यह शरीर जड़ है, विनश्वर है, इसी से मैं अविनश्वर सुख का मार्ग बना लूँ अतः मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिए।

(राजा अरविंद विवश हैं किन्तु मौनपूर्वक स्वीकृति देते हैं और परम्परा से आगत मंत्रीपद पर कमठ एवं मरुभूति पुत्रों को नियुक्त कर देते हैं)

—दूसरा दृश्य—

(महाराज अरविंद चिंतित मुद्रा में मंत्रशाला में बैठे विचार-विमर्श कर रहे हैं)

महाराजा—मंत्रीगण! राजा वज्रवीर्य अब बिल्कुल निरंकुश हो चुका है अतः उसको जीतने के लिए शीघ्र ही प्रस्थान कर देना चाहिए।

मंत्रीगण—जो आज्ञा महाराज।

(आज्ञा पाते ही सभी सैनिक युद्ध के लिए सज-धजकर तैयार हो रहे हैं। तभी सेनापति प्रवेश करते हैं)

सेनापति—महाराज! सब व्यवस्था हो चुकी है। अब आप हाथी पर सवार होइए, सामने हाथी खड़ा है।

महाराज—(मंत्री कमठ से) मंत्रिवर! चूँकि हम युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहे हैं अतः आज से पोदनपुर की सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी हम आपके ऊपर डाल रहे हैं।

कमठ—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है महाराज।

निर्देशक—(माता अनुंधरी की कुक्षि से जन्मे दोनों पुत्रों में धरती-आसमान का अंतर था, एक पाप था, दूसरा पुण्य, एक विष था दूसरा अमृत, अर्थात् कमठ अत्यन्त कुटिल परिणामी, कुनीति में कुशल दुष्टात्मा था और मरुभूति अत्यन्त सरल स्वभावी, अतिशय निपुण धर्मात्मा था। मंत्री कमठ समय पाकर निरंकुश हो गया और स्वयं को राजा घोषित कर अन्याय का साम्राज्य फैला दिया)

(दृश्य परिवर्तन—कमठ का घर)

कमठ—(अट्टहास करता हुआ) हा हा हा हा! मैं पोदनपुर का राजा हूँ, सबको मेरी आज्ञा में ही रहना पड़ेगा। (तभी किसी युवती के नूपुरों की झंकार सुनाई देती है)

कमठ—(मन में) ओह! ये नूपुरों की आवाज! सामने हंस गति से चलने वाली सुंदर रत्नआभूषणों से अपने सौन्दर्य को द्विगुणित करती हुई यह युवती कौन है? क्या यह नागकन्या है या देवकन्या है या कोई अप्सरा है?

(निर्णय होने के बाद) ओह! यह तो मेरे लघुभ्राता की भार्या वसुंधरी है। (एक क्षण को सहम जाता है, फिर मन ही मन स्वयं को धिक्कारने लगा) अरे रे! पगले! यह तो अपनी पुत्रवधू के समान है, यह कैसे मिल सकती है?

(कमठ वसुंधरी के निकल जाने के बाद भी उससे अपना ध्यान नहीं हटा पाता है और उसका मन विह्वल हो रहा है। वह वहाँ से निकलकर सोने की चेष्टा करता है)

—तीसरा दृश्य—

(कमठ शैय्या पर लेटा है। निद्रा के न आने से उसके नेत्र एकदम लाल हो रहे हैं तभी उसका अभिन्न मित्र कलहंस प्रवेश करता है। मित्र की ऐसी दुरवस्था देखकर वह एकदम घबरा उठा)

कलहंस—ओहो मित्र! यह क्या स्थिति बना ली है और मुझे सूचना तक नहीं है कि आपका स्वास्थ्य कुछ अस्वस्थ है। हाँ, मै शीघ्र ही राजवैद्य को बुलाकर लाता हूँ।

कमठ—नहीं-नहीं मित्र। नहीं, मुझे कुछ व्याधि नहीं है, तुम आओ और मेरे पास बैठो। अरे, राजवैद्य मेरा क्या इलाज करेगा? मेरी औषधि तो तुम्हीं हो जो कि समय पर आ गए हो।

(कलहंस कमठ से इधर-उधर की बातें करने लगता है पुनः उसके व्याकुल तथा मुरझाए हुए चेहरे को देखकर धीरे से पूछता है)

कलहंस—कहो मित्र! आखिर तुम्हें किस मानसिक व्यथा ने पीड़ित किया है? स्पष्ट कहो, मैं शीघ्र ही उस वेदना का प्रतिकार करूँगा।

कमठ—क्या कहूँ मित्र! जब से मैंने लघुभ्राता की पत्नी उस वसुंधरी को देखा है तभी से मुझे कामज्वर ने घेर लिया है। उस अंगना का स्पर्श कराकर तुम मुझे शीघ्र ही स्वस्थ करो।

(यह सुनकर कलहंस घबराकर दोनों हाथों से कानों को बंद कर लेता है। पुनः कुछ क्षण बाद कहता है)

कलहंस—कमठ! तुमने यह क्या अतिसाहस का विचार किया है? क्या यह संभव है? क्या राजा अरविंद जैसे न्यायप्रिय और लोकप्रिय राजा के रहते हुए यह अनर्थ कर सकते हो? क्या वह पुत्री सदृश अनुंधरी तुम्हारे भोगने योग्य है? मित्र! छोड़ो-छोड़ो, इस दुराग्रहरूपी पिशाच का पल्ला छोड़ो और अपने स्वभाव में आओ! देखो! क्या हमारी भाभी

'वरुणा' सौन्दर्य में किसी से कम है? वह यह सुनेंगी तो क्या सोचेंगी? इस चरित्रहीनता से आपकी कितनी हानि होगी? क्या गति होगी? क्या आपने इस पर विचार किया?

(कमठ मित्र की शिक्षास्पद बातें सुनकर क्रोध से भभक उठा, उसका चेहरा तमतमा उठा)

कमठ–(आवेश में) मित्र! बस-बस रहने दो! बस, तुम्हारी शिक्षाओं को रहने दो, मैं तुमसे भी अधिक शिक्षाओं को जानता हूँ किन्तु मैं राजा हूँ। यह वसुंधरी ही क्या इस पोदनपुर में जो-जो सुंदर वस्तु होगी उसे भी क्षणमात्र में हस्तगत कर सकता हूँ। देखो! राजा अरविंद और भाई मरुभूति तो हैं नहीं! राज्यसत्ता मेरे ही हाथ में है। बस, शीघ्रता करो।

कलहंस–लेकिन मित्र! एक बार पुनः विचार कर लो।

कमठ–देखो! यदि तुम मेरे सच्चे-अभिन्न मित्र हो तो शीघ्र ही उस सुन्दरी से मेरा समागम करा दो।

(कलहंस मित्र के दुराग्रह को पूर्ण करने के लिए उपाय सोचता है और कहता है)

कलहंस–मित्र कमठ! मैं तुम्हारा कार्य बहुत शीघ्र ही सिद्ध किए देता हूँ। तुम चिंता छोड़ोऔर भोजन करो।

कमठ–(प्रसन्न होकर) धन्यवाद मित्र।

–चौथा दृश्य–

(पोदनपुर का उद्यान) (लताकुंज में वसुंधरी का प्रवेश। कमठ गुलाब के पुष्पों की शय्या पर लेटा है। उसे देखते ही हर्षित मन होता हुआ बोलता है)

कमठ–आओ, आओ, प्रिय वल्लभे आओ!! तुम्हारी विरहाग्नि से झुलसे हुए इस शरीर को और मन को शीघ्र ही अधरामृत से सिंचित करो, शांत करो।

(वसुंधरी अकस्मात् इस वातावरण को देखकर घबराकर कांपने लगती है और भगवान का स्मरण करने लगती है)

वसुंधरी–(हाथ जोड़कर इष्टप्रार्थना करते हुए) हे प्रभो! इस दुष्ट कलहंस ने मुझे कैसे फंसाया। मेरे साथ क्या छल रचा। हाय! हाय! अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? कैसे मेरी रक्षा होगी?

(इधर वह अपनी रक्षा का उपाय सोच ही रही थी कि पापी कलहंस बाहर से दरवाजाबंद कर देता है तथा दुष्टात्मा कमठ शीघ्र ही उठकर दोनों हाथों से उठाकर उसे अपनी पुष्पशय्या पर बिठा लेता है तब वह साहस बटोर कर कहती है)

वसुंधरी–(प्रार्थना भरे स्वर में) तात! आप मेरे पतिदेव के बड़े भ्राता होने से मेरे पूज्य पितातुल्य हैं। आपको यह नीच कृत्य करना शोभा नहीं देता है। अरे! सर्वत्र शहर में आपकी दुष्टता की चर्चा है। फिर उसमें आप एक और कलंकी बनने का साहस कर रहे हैं। मैं इस समय आपसे अपने सतीत्व की, शील की भिक्षा मांगती हूँ।

कमठ–प्राणप्रिये! देखो तो सही, तुम्हारे बिना मेरा रोम-रोम व्यथित हो रहा है। यह धर्मचर्चा का समय नहीं है।

निर्देशक–(कुछ क्षण के अनंतर वसुंधरी ने अपने अमूल्य शीलरत्न को खो दिया और अब प्रणय बंधन में दोनों कुल कलंकियों के दिन गुजर रहे हैं)

निर्देशक–(इधर महाराज अरविंद राजा वज्रवीर्य को जीतकर वापस आ रहे हैं। वे आज बहुत ही प्रसन्न हैं क्योंकि वे विजय के नगाड़ों से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए वापस आ रहे हैं। पूरे पोदनपुर में महाराज के स्वागत की जोरदार तैयारी चल रही है।)

(अगले दिन राजसभा लगती है)–

–राजदरबार का दृश्य–

(महाराज मरुभूति को अपने पास बुलाते हैं)

महाराज–(मरुभूति से)– मंत्रिवर! क्या यह बात सही है जो कि गुप्तचरों और विश्वस्तजनों के द्वारा हमें मिली है।

(मंत्री निरुत्तर किंतु माथा नीचे किये चुपचाप खड़े हैं। राजा पुनः पूछते हैं)

महाराज—तो फिर बताओ उस दुष्ट कमठ को क्या दण्ड देना चाहिए?

मरुभूति—(हाथ जोड़कर) महाराज! एक बार आप उसे क्षमा प्रदान करें मेरी यही आपसे विनती है।

महाराज—(क्रोधित मुद्रा में) क्षमा, क्षमा!! अशक्य है, असंभव है। मंत्री जी! व्यभिचार जैसे पाप में भाई, बंधु और पुत्र का मोह न्याय संगत नहीं है। न्यायप्रिय राजा अन्याय में अपने पुत्र को भी प्राणदंड देने से नहीं चूकते हैं और तभी वे यशस्वी होते हैं।

(अनन्तर राजा कोतवाल को बुलाकर आज्ञा देते हैं)

महाराज—(कोतवाल से)-कोतवाल! अतिशीघ्र ही पापी कमठ का सिर मुंडाकर इसका मुख काला कर गधे पर बिठाकर पूरे शहर में घुमाओ ताकि लोग जान सकें कि दुष्कृत्य का क्या फल मिलता है।

कोतवाल—जो आज्ञा महाराज।

(कोतवाल राजाज्ञा का पालन करता है। आगे-आगे ढोल बज रहा है और पीछे-पीछे कमठ गधे पर सवार है, सभी कमठ के इस अपमान को देख-देखकर हंस रहे हैं)

—पाँचवा दृश्य—

ढोलक वाला—(आगे-आगे चलते हुए) जो भी ऐसा दुष्कर्म करेगा उसको ऐसा ही दण्ड दिया जाएगा।

पुरवासी—अरे! देखो तो! इस पापी को इसके किये की कैसी सजा मिली है।

एक—(हँसकर) हाँ भाई! ऐसा दुष्कर्म करने वाले के लिए यह सजा कम ही है।

कुछ बच्चे—चल, चल, भाई! इस गंजे को कंकड़-पत्थर मारकर मजे लेते हैं। (ऐसा कहकर कंकड़ मारते हुए बच्चे खूब मजे लेते हैं)

(कोतवाल ने इस विधि से उसे अपमानित कर देश से निकाल दिया। महादण्ड को भोगकर अपमानित कमठ भूताचल पर्वत पर तापसियों के आश्रम में पहुँचता है)

—छठा दृश्य—

भूताचल पर्वत का दृश्य

निर्देशक—(अनेक तापसी समीचीन ज्ञान के बिना मात्र अपने शरीर का शोषण करते हुए तप कर रहे हैं, कोई-कोई पंचाग्नि तप कर रहे हैं, कोई शरीर में भस्म रमा रहे हैं इत्यादि। कमठ उन्हें नमस्कार कर प्रमुख गुरु के पादमूल में पहुँचकर तापसी दीक्षा ले लेता है)

कमठ—प्रणाम गुरुदेव!

तापसी—आयुष्मान भव वत्स।

कमठ—गुरुदेव! मुझे भी तापसी दीक्षा प्रदान कर कृतार्थ करें।

तापसी—ठीक है वत्स!

निर्देशक—(कमठ दीक्षा लेकर हाथ में पत्थर की शिला लेकर खड़ा होकर तपश्चरण करने लगा। इधर मरुभूति भाई से मिलने की उत्कंठा से उसे ढूँढ़ता हुआ वहीं पहुँच जाता है। दूर से तापसियों के बीच प्यारे भाई को देखकर पहचानकर, ऐसी रूक्ष और विवर्ण दशा को देखकर दुःखी हुआ मरुभूति कमठ के पास जाकर निवेदन करता है)

मरुभूति—(प्रार्थना भरे स्वर में) हे भाई! तुम्हारा हृदय विशाल है। जो कुछ हुआ वह सब अपराध क्षमा करो और घर चलो।

(कमठ उसकी ओर क्रोधित दृष्टि से देखता है)

मरुभूति—(पुनः कहता है)-हे बंधु! जो कुछ हुआ वह सब अपराध क्षमा करो। तुम्हारे बिना मुझे घर में अच्छा नहीं लगता है।

(इतना बोलते हुए सरल मन से मरुभूति कमठ के पैरों में गिरकर नमस्कार करने लगा। बस, उसी समय कमठ के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ)

कमठ—अरे! यह दुष्टात्मा पहले तो मुझे खूब अपमानित कर चुका है और अब बातें बनाकर सफाई देने आया है। अभी बताता हूँ इसे। (इतना कहकर क्रोध में अंधा वह तापसी कमठ शीघ्र ही अपने हाथ की शिला छोटे भाई के सिर पर पटक देता है)

कमठ—ले दुष्ट! मैं यह शिला तेरे सिर पर पटक कर तेरा काम खत्म किये देता हूँ।

(भाई के सिर पर वज्र सदृश शिला के पड़ते ही खून के फव्वारे निकल पड़े। निकट ही तपस्या में रत हुए तापसियों से यह कुकृत्य देखा न गया और वे हाहाकार कर उठे)

एक तापसी—अरे देखो तो! इस नये साधु ने क्या अनर्थ कर दिया। विनय से युत अपने भाई को ही मार डाला।

दूसरा तापसी—धिक्कार है, धिक्कार है। अरे जल्दी कोई गुरुदेव को सूचना दो। इस पापी नेाह्न क्या किया?

तीसरा तापसी—साधु होकर हत्या, अरे इतनी कषाय?

(तभी किसी के द्वारा सूचना प्राप्त होने पर प्रमुख तापसी गुरु आ जाते हैं और क्रोधित हो उठते हैं)

तापसी गुरु—अरे दुष्ट! क्या तूने इसीलिए दीक्षा ली थी। अरे! ऐसा ही निंद्य कृत्य करना था तो तू यहाँ आया ही क्यों था। धिक्कार है, तूने हम सब पर कलंक लगा दिया। (पुनः आदेशात्मक स्वर में) जा! निकल जा यहाँ से! आज से इस आश्रम में तेरे लिए कोई स्थान नहीं है।

(ऐसा कहकर तापसी गुरु ने उसे तत्क्षण ही आश्रम से बाहर निकाल दिया। वहाँ से निकलकर वह दुष्ट वन में जाकर भीलों से मिल गया और चोरी, डकैती करने लग गया। एक बार वह राज्य में चोरी करने गया।

—सातवाँ दृश्य—

कमठ—(अपने साथियों से) चलो मित्रों! आज किसी बड़े सेठ के यहाँ चोरी करने चलते हैं।

भील साथी—चलो यार! जब तुम जैसा साथी हो तो किस बात का डर।

(सभी चोरी के लिए जाते हैं लेकिन कोतवाल के द्वारा पकड़ लिए जाते हैं)

कोतवाल—बहुत दिनों से इन चोरों ने नाक में दम कर रखा है। आज तो इन्हें पकड़कर ही रहूँगा। (तभी उसे पास के घर से कुछ आहट सुनाई देती है)

अच्छा तो आज पकड़ में आ ही गए। अभी बताता हूँ। (एक किनारे छुप जाता है और चोरी करके घर से निकलते हुए उन चोरों को पकड़ लेता है)

(सभी को बंदी बनाकर) अब पकड़ में आए बच्चू! काफी दिनों से चकमा देकर भाग जाते थे, आज खबर लूँगा तुम सबकी। (सभी को खूब मारता है और ले जाकर कारागार में डाल देता है)

निर्देशक—(इस प्रकार वह पापी कमठ नाना प्रकार के दुःखों को भोगता हुआ अपनी आयु पूर्ण कर तीव्र पापकर्म के उदय से सल्लकी नामक वन में विशाल सर्प हो जाता है और मरुभूति का जीव मोहकर्म के उदय से मरकर उसी वन में विशालकाय हाथी हो जाता है।)

वज्रघोष हाथी (दूसरा भव)

(अति सघन सल्लकी नाम का वन है। जहाँ आज हर्ष का वातावरण है क्योंकि आज इस वन में विशाल मुनिसंघ ठहरा हुआ है)

निर्देशक—(कहीं-कहीं ऊँचे वृक्षों के नीचे कुछ मुनि मिलकर स्वाध्याय कर रहे हैं। कहीं कोई मुनि अपनी शुद्धात्मा के ध्यान में निमग्न हैं, कुछ मुनि जिनेन्द्रदेव की आराधना में तत्पर हो स्तुति से दिशाओं को मुखरित कर रहे हैं। उसी

वन में मर्कट, सिंह-व्याघ्र आदि जीव-जन्तु विचरण कर रहे हैं। कहीं श्रावक-श्राविकाएं भोजन बनाने में व्यस्त हैं, कहीं श्रावक भगवान की पूजा में संलग्न हैं। संघ शिरोमणि आचार्य श्री अरविंद मुनिराज शुद्ध पाषाण शिला पर विराजमान निजात्मा का चिंतन कर रहे हैं)

एक मुनिराज—महाराज जी! देखो तो, इस शास्त्र में कितनी सुन्दर पंक्तियाँ लिखी हैं। लिखा है—

शिवं शुद्ध बुद्धं परम विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्ता न कर्म।
न अंगं न संगं न इच्छा न कायं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागं।।

दूसरे मुनिराज—हाँ महाराज जी! इसी वीतराग अवस्था को प्राप्त करने के लिए ही तो हम सब तपश्चर्या कर रहे हैं।

दूसरी ओर—एक मुनिराज (भगवान की भक्ति करते हुए)

आदीश्वरादि जिनसूर्य युगादि नाथः। साकेतशासनपतिः पुरुदेव नाथः।।
स्वायम्भुवः सकल लोक हितंकरो यः। तं नाभिनन्दन जिनं प्रणमामि नित्यं।।

वहीं एक श्रावक भगवान की पूजा कर रहे हैं—

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

एक ओर—(कुछ श्रावक-श्राविकाएं आहारचर्या की सामग्री जुटा रहे हैं)

हर्षित—अरे भाई! जरा जल्दी करो। आहार चर्या का समय होने वाला है।

गौरव—हाँ भइया! सारी तैयारी हो चुकी है बस, चौक पूरना बाकी है। (पास खड़ी बहन से) संस्कृति बहन! जरा चौक तो पूर देना।

संस्कृति—अच्छा भइया। (कहकर चौक पूरने लगती है)

(तभी बाहर कोलाहल सुनाई देता है और कुछ श्रावकगण इधर-उधर भागते हुए नजर आते हैं)

गौरव—बहना! देख तो यह शोर कैसा है?

संस्कृति—पूछती हूँ भइया। पता नहीं क्या बात है? लोग इधर-उधर क्यों भाग रहे हैं? (एक श्रावक से) भइया! क्या हुआ? आप सब इतने घबराए हुए क्यों हैं?

एक श्रावक—बहन! एक विशाल हाथी पूरे संघ में क्षोभ को उत्पन्न कर रहा है, ना जाने कितनेही श्रावकों को गिरा दिया।

(तभी वहाँ गौरव, हर्षित एवं संस्कार भी आ जाते हैं)

हर्षित—क्या हुआ भाई?

दूसरा श्रावक—भइया! एक हाथी ने बहुत परेशान कर डाला है, पूरे संघ को अस्त-व्यस्त कर दिया है।

गौरव—क्या! अब क्या होगा?

एक श्राविका—हाँ, उस क्रूर हाथी ने कितने ही हाथी, घोड़ों और गाय-बैलों को मार डाला है। कितने ही ऊँटों को गिरा दिया जो कि बेचारे पुनः नहीं उठ सके।

दूसरी श्राविका—और तो और भाई! उसने पाकशाला में व्यस्त हुई महिलाओं को दुःखी कर दिया।

संस्कार—(चिंतित मुद्रा में) ओह! यह तो मुनि संघ पर उपसर्ग ही आ गया। कहीं वह किसी मुनि का अहित न कर देवे।

संस्कृति—हाँ भाइयों-बहनों! जल्दी सोचो। इस उपसर्ग का निवारण कैसे हो। चलो जल्दी चलो, सभी आचार्यश्री के पास चलकर देखें।

(सभी भागकर आचार्यश्री के पास पहुँचते हैं और देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि वह हाथी मदजल बरसाता हुआ मुनिराज अरविंद के पास ही पहुँच गया है)

एक श्रावक—(चिंतित मुद्रा में) अरे! अब क्या होगा? वह तो आचार्यवर्य के पास ही पहुँच गया।

दूसरा—(घबड़ाकर) हे भगवन्! रक्षा करो। इस उपसर्ग को दूर करो।

श्राविका—अरे! कोई तो आओ! कहीं यह गुरुवर का कुछ अहित न कर देवे।

(सभी श्रावक-श्राविकाएं आकुल-व्याकुल हो इधर-उधर भागदौड़ कर रहे हैं परन्तु सूरिवर्य गुरुदेव सुमेरुपर्वत के समान अचल हैं। उनके वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह था। उसको देखते ही उस गजराज को जातिस्मरण हो गया)

(वह वज्रघोष हाथी मुनिराज को एकटक देख रहा है)

हाथी—(मन में) ओह! यह तो मेरे पूर्वजन्म के स्वामी हैं और मैं इनका मंत्री मरुभूति था।

(जातिस्मरण होते ही वह क्रूर हाथी एकदम शांत हो गया और मुनिराज के चरणों में मस्तक टेक दिया। तब मुनिराज ने उसे सम्बोधित किया)

मुनिराज—हे गजराज! तुमने यह क्या किया? अरे! यह हिंसाकर्म महान दुःखों को देने वाला है। यह हिंसा स्व और पर दोनों को दुखदायी है।

(पुनः उसे ध्यान से सुनते देखकर कहते हैं)

अहो! तुमने ब्राह्मण के पुत्र मरुभूति मंत्री की पर्याय से भाई के प्रति आर्तध्यानपूर्वक मरकर यह तिर्यंचयोनि पाई है। मैं अरविंद राजा तुम्हारा स्वामी था। मैंने तुम्हें इस दुष्टात्मा कमठ से मिलने को मना किया था पर तुम नहीं माने और उस दुष्ट तापसी ने तुम्हारे सिर पर शिला पटक दी।

(गजराज को एक-एक बातें स्मरण हो आती हैं तब मुनि पुनः कहते हैं)

तुम भाई के मोहरूपी आर्त परिणाम से मरकर इस गजयोनि में आ गए हो, उस कमठ की भार्या वरुणा भी कालांतर में मरकर तुम्हारी हथिनी हुई है। जिस भावज को तुमने माता के समान समझा था आज तुम उसी के साथ रमण करते हुए सुखी हो रहे हो। अरे करपति! देखो, देखो, संसार की विचित्रता तो देखो।

(उस समय हाथी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी मानो उसके अंतरंग से मिथ्यात्व और दुर्ध्यान ही अश्रुजल के बहाने निकल रहे हैं)

(दूर खड़े श्रावकगण अचरज में हैं कि यह क्रूर हाथी इतना शांत कैसे है?)

एक श्रावक—अरे-घोर आश्चर्य! इतना क्रूर हाथी और एकदम शांत। यह कैसे हुआ?

दूसरा—शायद वीतराग मुद्रा की ही महिमा है।

तीसरा—भाई! मुझे तो लगता है कि उसे जातिस्मरण हो गया है।

एक श्राविका—(आश्चर्य से) जातिस्मरण?

दूसरी श्राविका—हाँ, मैंने पुराणों में ऐसे कथानक कई-कई बार पढ़े हैं।

तीसरी श्राविका—चलो बहनों-भाईयों! हम भी पास जाकर देखें कि मुनिराज उसे क्या उपदेश दे रहे हैं।

सभी—हाँ, हाँ, चलो चलते हैं।

(इधर मुनिराज उसे निरन्तर सम्बोधित कर रहे हैं)—

मुनिराज—हे गजेन्द्र! मैंने तुम्हारे वियोग से दुःखी होकर अवधिज्ञानी महामुनि से पूछा था कि मेरा प्रिय मंत्री मरुभूति अभी तक क्यों नहीं आया, तब उन्होंने सारी घटना सुनाई थी। पुनः एक दिन मैं महल के ऊपर छत पर प्राकृतिक सुषमा को देख रहा था कि अकस्मात् आकाश में मेघ से निर्मित एक सुन्दर मंदिर दिखाई पड़ा और मैं उसे साकार रूप देने के लिए कागज-कलम उठाकर उसका चित्र खींचने ही वाला था कि वह सुन्दर भवन विघटित हो गया। बस, मुझे संसार, शरीर व भोगों से विरक्ति हो गई और मैंने निर्ग्रन्थ गुरु के सानिध्य में जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। इस समय मैं चतुर्विध संघ सहित सम्मेदशिखर महातीर्थ की वंदना के लिए जा रहा हूँ। इसकी वंदना करने वाले जीव भव्य ही होते हैं और 49 भव के अंदर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

(गजराज अब और शांतचित्त हो महामुनि की धर्ममयी वाणी का पान कर रहा है और श्रावकगण भी वहीं आकर

बैठ जाते हैं और उपदेशामृत सुनने लगते हैं)

मुनिराज पुनः उसे सम्बोधित करते हैं–

गजराज! अब तुम मिथ्यात्वरूपी विष का वमन करो और पाँचों पापों का त्याग करो। यह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष महल में चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी है। दयामयी धर्म ही सच्चा धर्म है, निर्ग्रन्थ गुरु ही सच्चे गुरु हैं। बस, इन्हीं का दृढ़ श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है। निःशंकित आदि आठ अंग हैं इसके बिना यह दर्शन संसारकी बेल को उखाड़ने में समर्थ नहीं है।

सुनो! अब तुम पंच उदुम्बर फल और मद्य, मांस, मधु का त्याग करो। पंच अणुव्रतों का पालन करो। इनकी रक्षा करने वाले सात शीलों का पालन करो। इन व्रतों के प्रभाव से तुम नियम से देवगति को प्राप्त करोगे।

निर्देशक–(इस प्रकार से गुरुदेव ने विस्तार के साथ सम्यक्त्व और व्रतों का उपदेश दिया तब हाथी उन व्रतों को ग्रहण करके अपने हर्ष को व्यक्त करते हुए बार-बार गुरुदेव को नमस्कार करने लगा और बार-बार पृथ्वीतल पर मस्तक टेक-टेककर अपनी श्रद्धा प्रकट करने लगा)

(गजराज को श्रावक जानकर सभी श्रावकगण उसे मिष्ठान्न आदि खिलाकर प्रासुक जल पिलाते हैं)

एक श्रावक–भइया! क्या आश्चर्य की बात है कि हाथी जैसा पशु भी श्रावक हो गया है।

दूसरा–हाँ! उसने मुनिराज से पंच अणुव्रत ग्रहण कर लिए हैं।

तीसरा–चलो चलें, उसे मिष्ठान्न और प्रासुक जल दे कर आते हैं।

सभी तैयार हो जाते हैं–हाँ, हाँ चलो चलते हैं, उसे कुछ खिला-पिला भी दें और आचार्यश्री के दर्शन भी कर लें।

श्राविका–हाँ, मैं भी चलूँगी, क्योंकि मैंने सुना है कि आचार्य श्री वहाँ से विहार कर सम्मेदशिखर की ओर प्रस्थान कर रहे हैं।

(सभी उसे मिष्ठान्न आदि खिलाते हैं पुनः एक श्राविका कहती हैं)

श्राविका–आइए चलते हैं, क्योंकि आचार्यवर्य संघ सहित शिखरजी की ओर विहार कर रहे हैं।

(हाथी भी यह सुनकर कुछ दूर तक संघ के साथ जाकर गुरुदेव को पहुँचाकर आया और गुरु के पादकमल का स्मरण करते हुए वहीं सल्लकी वन में रहने लगा)

(अब हाथी संयमासंयम को साध रहा है। वह सम्यग्दृष्टि है, किसी भी जीव को भूलकर भी नहीं सताता है। अपने शरीर को कृश करते हुए इन्द्रियों को दमन कर रहा है। अपने शीलव्रत को पालनकरने में कुशल वह हाथी हथिनी के पास भी नहीं जाता है। उस निर्जन वन में अन्य जंतुओं द्वारा किए गए उपसर्गों को सहनकरने में समर्थ होता हुआ अपने मन में किंचित् भी दुर्ध्यान नहीं लाता है। इस प्रकार बहुत काल तक दुर्द्धर तप करते हुएउसकी शक्ति क्षीण हो गई फिर भी वह पंचपरमेष्ठी के चिंतवन में अपने मन को क्षीण नहीं करता है।)

एक दिन वह करीन्द्र प्यासा हुआ वेगवती नदी के तट पर आया और सूंड़ से फूँक करके जल को प्रासुक किया, पुनः जल पीने लगा।

हाथी–(मन में) बहुत प्यास लगी है, जल को प्रासुक करके थोड़ा सा जल पी लूँ।

(तभी) अरे! यहाँ तो कीचड़ बहुत अधिक है, अरे! मेरा तो पैर ही फंसा जा रहा है। हे भगवान्! अब मैं बाहर कैसे निकलूँ।

(हाथी कीचड़ में बुरी तरह फंस गया है और मन ही मन सोचता है)–

अब मुझे इस अथाह कीचड़ से कोई भी निकालने वाला नहीं है जैसे मोहरूपी कीच में फंसे हुए संसारी जीव को इस संसाररूपी अथाह समुद्र से निकालने वाला कोई नहीं है। हाँ! यदि मैं सल्लेखनारूपी बंधु का सहारा ले लूँ तो वह मुझे अवश्य ही यहाँ से निकालकर उत्तम देवगति में पहुँचा सकता है।

निर्देशक–(ऐसा निश्चय कर गजराज ने चतुराहार का जीवन भर के लिए त्याग करके महामंत्र का स्मरण करते

हुए पंचपरमेष्ठी का अवलम्बन ले लिया। कुछ काल बीता ही था कि एक कुक्कुट जाति का सांप वहाँ आ गया और पूर्व जन्म के बैर के संस्कार से उसे डस लिया)।

गजराज वेदना से व्याकुल हो रहा है किन्तु गुरुदेव द्वारा प्राप्त उपदेश से स्वयं को संभाले हुए है।)

हाथी—हे प्रभू! इस सर्प ने अकारण ही मुझे डस लिया। एक तो कीचड़ से न निकल पाने की वेदना और दूसरी इसके काटने की वेदना। फिर भी मुझे संतोष रखना होगा क्योंकि गुरुदेव ने कहा था कि यह आत्मा भिन्न है-शरीर भिन्न है-2।।

निर्देशक—(ऐसा वाक्य स्मरण करते हुए वह शरीर से अपनी आत्मा को पृथक् समझ पंचपरमेष्ठी का ध्यान करने लगा और अपने परिणामों को स्थिर करके धर्मध्यानपूर्वक इस नश्वर देह का त्यागकर बारहवें स्वर्ग में स्वयंप्रभ विमान में 'शशिप्रभ' देव हो गया।)

शशिप्रभ देव (तीसरा भव)

—प्रथम दृश्य—

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना)

स्वर्ग का दृश्य—इन्द्रसभा में अप्सरा का नृत्य।

(बारहवें स्वर्ग में इन्द्रसभा लगी है। आज वहाँ चर्चा चल रही है कि आज हमारे स्वर्ग में मर्त्यलोक का एक तिर्यंच जीव हाथी की पर्याय से निकलकर शशिप्रभ देव के रूप में जन्म लेने वाला है।

सहस्रार इन्द्र—स्वर्गलोक के मेरे प्रिय देवों! देवियों! आज हमारे स्वर्ग में एक पुण्यशाली नए देव का आगमन होने वाला है, सो आप सब उसके स्वागत की तैयारी करें।

एक देव—स्वामी! आप किस पुण्यशाली जीव की बात कर रहे हैं?

दूसरा देव—हाँ इन्द्रराज! यहाँ तो हमेशा ही अनेक देव-देवी जन्म लेते रहते हैं, लेकिन ऐसी चर्चा होते मैंने नहीं देखी। आज कौन से विशेष देव यहाँ आने वाले हैं?

सहस्रार इन्द्र—हाँ, बताता हूँ, वह वास्तव में विशेष ही है। अभी-अभी कुछ देर पहले ही मध्यलोक के आर्यखण्ड में सल्लकी नामक वन में एक हाथी का जीव सल्लेखनापूर्वक मरण कर अपना शरीर छोड़कर यहाँ शशिप्रभ देव के रूप में जन्म लेने वाला है।

इन्द्राणी—हे पुरन्दर! एक हाथी का जीव और देव?

इन्द्र—हाँ देवी! यही तो जैनधर्म की महिमा है। जो जीव अणुव्रती या महाव्रती है वह नियम से देवगति में ही आवेगा।

इन्द्राणी—क्या वह दोबारा मनुष्य नहीं हो सकता है?

इन्द्र—नहीं देवी! देखो-अणुवद महव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं। अर्थात् देवायु के सिवा अन्य आयु के बंध जाने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रत को ग्रहण नहीं कर सकता है और उस हाथी ने भी अरविंद मुनि से पंच अणुव्रत लिए थे और उसका पूरा पालन किया था।

तीसरा देव—देवराज! उसमें ऐसी क्या विशेषता है जो इतनी श्रद्धा से आप उसका नाम ले रहे हैं।

सहस्रार इन्द्र—मित्र! उसकी विशेषता यह है कि वह अब से सातवें भव में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में तेईसवाँ तीर्थंकर होने वाला है।

—द्वितीय दृश्य—

निर्देशक—(स्वर्ग में सुन्दर सुसज्जित शैय्या बनी हुई है, शैय्या ऊपर चारों ओर से ढ़की हुई है। उसके अन्दर एक नवयुवक मानों सो रहा है। बाजे, नगाड़ों की ध्वनि हो रही है, पुष्पों की वर्षा तथा मन्द-मन्द वायु चल रही है कि तभी

अनेक देव-देवी उस शैय्या के समीप पहुँचकर नमस्कार की मुद्रा में खड़े हो जाते हैं)

शशिप्रभ देव—(शैय्या पर उठकर बैठे और आगे से शैय्या का पर्दा हटाया) ॐ नमः सिद्धेभ्यः (णमोकार मंत्रोच्चारण) (आश्चर्य से) ओह! मैं कौन हूँ? मैं कहाँ आ गया? यह सुन्दरता मैं कहाँ की देख रहा हूँ? ये सब मुझे नमस्कार क्यों कर रहे हैं?

देवगण—हम सभी देवों का प्रणाम स्वीकार करें, देव! स्वर्ग में आपका शुभागमन मंगलमय हो। आप यहाँ यह सब स्वर्ग का सौन्दर्य देख रहे हैं। शशिप्रभ नामक देव के रूप में आपका यहाँ जन्म हुआ है।

शशिप्रभ देव—(अवधिज्ञान से सारी बातें जानकर) मैं हस्तीचर हूँ, ओहो!! यह स्वर्गपुरी है और यह अतुल वैभव।

देवगण—स्वामिन्! आप जिनशासन के प्रभाव से इस उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं। आप उठिए और मंगल स्नान कीजिए, पुनः वस्त्रालंकार से भूषित होकर जिनेन्द्र भवन में जिनप्रतिमाओं की पूजन करिये। अनन्तर अपने वैभव का निरीक्षण कीजिए और उत्तम-उत्तम भोगों का अनुभव कीजिए।

एक देव—(समीप जाकर) हे स्वामिन्! आप पुण्यवान हैं, आपकी सदा विजय हो। हे नाथ! स्नन की सामग्री तैयार है।

शशिप्रभ देव—(चिन्तन मुद्रा में) ये देवांगनाएं, ये परिवार देव, यह सब पुण्य का प्रसाद है। मैंने गुरुदेव के द्वारा जो सम्यक्त्वरूपी रत्न और अणुव्रतरूपी निधि प्राप्त की थी उसी के फलस्वरूप यह तेजोधाम प्राप्त हुआ है।

(शशिप्रभ देव ने भी अपनी प्रसन्नता से सबको प्रसन्न करते हुए यथोचित क्रिया करके पहले जिनपूजा की) (मंदिर का दृश्य दिखाकर देव को परिवार देवों के साथ पूजा करते हुए दिखावें)

(पुनः मंदिर से अपनी देवसभा में आकर)

एक देव—देखिये मित्रराज! अब आपको मैं यहाँ की व्यवस्था बता रहा हूँ। हे देवोत्तम! स्वर्गके ये दिव्य वस्त्र, माला, मुकुट, आभूषण आदि ग्रहण करें जो हमेशा खिले पुष्प के समान आपके शरीर पर शोभायमान रहेंगे।

शशिप्रभ देव—धन्यवाद देव साथी! मैं आपके स्नेह का आभारी हूँ। हम और आप सभी मिलकर यहाँ पर स्वर्गसुख का उपभोग करते हुए धर्माराधना करेंगे। क्योंकि धर्म से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है।

(देवियाँ आगे बढ़कर देव को नमस्कार कर वहीं खड़ी हो जाती हैं)

शशिप्रभ देव—(हाथ जोड़कर) हे प्रभो! जिस जिनधर्म के प्रभाव से मुझे यह सब लक्ष्मी प्राप्त हुई है, वह जिनधर्म सदा जयवन्त रहे।

—तृतीय दृश्य—

निर्देशक—(स्वर्ग के दिव्य सुखों को भोगते हुए कभी वह देव सुदर्शन मेरु पर जाकर सोलह चैत्यालयों की वंदना करता है, कभी वह नन्दीश्वर द्वीप में 52 चैत्यालयों में पूजा करता है, कभी तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के अवसर पर भक्तिभाव से भाग लेता है, कभी चारणऋद्धिधारी मुनियों की वंदना करके उनके उपदेश सुनता है, कभी अपने सच्चे गुरु अरविंद मुनिराज की पूजा करता है। कभी मध्यलोक में आकर सम्मेदशिखर की वंदना करके असीम पुण्य संचित कर लेता है और कभी अपनी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा भवन में क्रीड़ा करता है)

(यहाँ देव को सम्मेदशिखर आदि तीर्थों की वंदना करते हुए दिखावें)

—चतुर्थ दृश्य—

(अब शशिप्रभ देव की देवायु के छह माह शेष रह गए अतः वह अपनी आयु का अन्त समय समझकर धर्माराधना में विशेषरूप से लीन रहने लगा)

शशिप्रभ देव—ओह! मेरी आयु का अन्त समय आ गया है। अब मुझे शीघ्र ही जिनधर्म की आराधना में विशेषरूप से तत्पर हो जाना चाहिए।

देवसाथी—प्रभो! आपका विचार अति उत्तम है। इस संसार में जो जीव जन्म लेता है उसका मरण अवश्यंभावी है। बस, आवश्यकता इतनी है कि अंत समय में हमारा हर क्षण जिनेन्द्रदेव की आराधना में लगा रहे।

शशिप्रभ देव—चलें मित्रवर! चलकर नन्दीश्वर, सुमेरु आदि जिनालयों की वंदना करते हैं।

देवसाथी—चलिए देवोत्तम! चलते हैं।

निर्देशक—(शशिप्रभ देव अपने देव साथियों के साथ जाकर जिनालयों की वंदना एवं पूजा आदि करते हैं)

(इस प्रकार देखते-देखते छह माह बीतने लगे। जब आयु का अंत समय नजदीक आया तो वे चैत्यवृक्ष के नीचे पद्मासन मुद्रा में बैठ गये)

शशिप्रभ देव—ॐ सिद्धाय नमः, ॐ सिद्धाय नमः, ॐ सिद्धाय नमः।

(इस मंत्र का उच्चारण करते हुए उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया और समाधि के प्रभाव से जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश के राजा विद्युत्गति से अग्निवेग नाम के पुत्र हुए।)

इधर कुक्कुट सर्प मरकर नरक में चला गया।

(यहाँ नरक के दुःखों का दृश्य भी दिखावें)

अग्निवेग विद्याधर (चौथा भव)

—प्रथम दृश्य—

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना)

(पुष्कलावती देश के लोकोत्तर नामक नगर का दृश्य है। विद्याधर राजा विद्युत्गति का राजमहल)

(विद्याधर राजा विद्युतगति का दरबार लगा है। महाराज मंत्रीगणों के साथ वार्ता में मग्न हैं। अचानक एक दासी प्रसन्न मुद्रा में राजदरबार में भागती हुई आती है)

दासी—महाराज की जय हो! महाराज की जय हो! बधाई हो महाराज! रानी विद्युन्माला ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है।

(महाराज प्रसन्न हो अपने गले का हार उतारकर उसे देते हैं और दासी जयकार करतीहुई लौट जाती है)

महाराज—(अपने मंत्रीगणों से) मंत्री महोदय! सारे नगर में खुशियाँ मनाई जायें, आज हम बहुत प्रसन्न हैं। राजकोष खोल दो, कोई भी खाली हाथ न जाने पाए, सबको मुँहमाँगा धन बांटा जाए।

मंत्रीगण—जो आज्ञा महाराज! (सारे राज्य में खुशियाँ मनाई जा रही हैं, सब तरफ उल्लास का वातावरण है)

—दूसरा दृश्य—

(राजा विद्युत्गति एवं रानी विद्युन्माली सिंहासन पर विराजमान हैं, पास में ही बालक अग्निवेग बैठा है, पास में ढ़ेर सारे खिलौने पड़े हैं और दोनों उसे देखकर प्रसन्न हो रहे हैं)

राजा—देवी! वास्तव में हमारा पुत्र उत्तम लक्षणों से युक्त है। देखो तो उसकी चेष्टाएं एवं बालक्रीड़ा। इसकी खिलखिलाहट देखकर मन फूला नहीं समाता।

रानी—हाँ महाराज! इसको देखकर लगता है कि यह कोई होनहार जीव है।

(इस प्रकार माता-पिता के मन को आनन्दित करता हुआ वह अग्निवेग शिशु पहले घुटनों, फिर पैरों के बल चलता हुआ बाल्यावस्था में प्रवेश करता है और जब कभी वह राजदरबार में प्रवेश कर जाता है तो सभी उसे अपनी गोद में लेकर हर्ष विभोर हो उठते हैं)

–तृतीय दृश्य–

राजदरबार का दृश्य

राजा अपने दरबारियों के साथ वार्ता में मग्न हैं तभी बालक अग्निवेग एक दासी के साथ प्रवेश करता है। दासी एक ओर चुपचाप खड़ी हो जाती है और बालक दौड़कर अपने पिता की गोद में चढ़ जाता है।

राजा–(उसे दुलार करते हुए) अरे पुत्र! तू राजदरबार में आ गया। क्या बात है बेटे! आ जा, मेरे कलेजे से लग जा।

मंत्री–महाराज! आपका पुत्र बहुत ही होनहार है और सर्वांगीण सुन्दर है। लाइए महाराज, मैं भी इसे थोड़ा सा दुलार कर लूँ (राजा से लेकर उसे दुलार करते हुए) तभी सेनापति भी अपनी मनोभिलाषा व्यक्त करते हैं)

सेनापति–महाराज! मुझे भी इसे प्यार-दुलार कर अद्‌भुत आनन्द मिलता है, लाइए मंत्रीराज! मैं भी अपने आनन्द को वृद्धिंगत कर लूँ।

एक अन्य सभासद–हे प्रजापालक! हम सभी को अपने भावी महाराज को खिलाकर अपूर्व प्रसन्नता मिलती है। हम सब इसे प्यार करेंगे।

निर्देशक–(इस प्रकार राजदरबार में सभी उसे हाथों हाथ लेते हैं और विजयार्ध पर्वत के भावी महाराज को अपने अंक में भरकर अतिशायी आनन्द का अनुभव करते हैं। सौम्य प्रकृति का धारक यह शिशु दूज के चन्द्रमा के समान वृद्धिंगत होता हुआ सभी नगर के मन और नेत्रों को हरण कर रहा है)

–चतुर्थ दृश्य–

नगर का दृश्य है। युवा कुमार अग्निवेग रथ पर सवार नगर में भ्रमण कर रहे हैं। नगरवासी उसे देखकर वार्ता करते हैं।

एक पुरवासी–(दूसरे से) देखो भइया! यह अपने राजा का पुत्र कुमार अग्निवेग है।

दूसरा श्रावक–सचमुच! अपने महाराज का प्रतिबिम्ब ही है।

एक श्राविका–कितना सलोना है, कहीं नजर ना लग जाए।

दूसरी श्राविका–हाँ, बड़ी भाग्यवान होगी वह राजकुमारी जिसे यह वरण करेगा।

तीसरा श्रावक–भईया, बहनों! मेरा तो मन ही नहीं भर रहा है, जी करता है एकटक उसे निहारता ही रहूँ।

तीसरी श्राविका–भाई! आखिर हैं तो अपने भावी महाराज! रूप, गुण आदि सभी में विशेष होंगे ही, हम अपने महाराज की तरह इनकी छत्रछाया में भी सर्वदा प्रसन्न रहेंगे।

निर्देशक–(नगरवासी अपने-अपने विचार में मग्न हैं और कुमार अग्निवेग अपने विचार में, क्योंकि उन्हें सर्वदा जिनेन्द्र भगवान की भक्ति ही भाती है। यूँ तो राजा विद्युत्गति ने उनका युवराज पद पर अभिषेक कर दिया है लेकिन वह नित्य ही जिनभक्ति में अपने को समर्पित कर चुके हैं।)

–पाँचवा दृश्य–

निर्देशक–(युवराज अग्निवेग अपने पिता से राज्य संपदा को प्राप्त कर कुशलतापूर्वक राज्य संचालन करते हुए जीवन यापन कर रहे थे तभी एक दिन वह समाधिगुप्त नामक मुनिराज के दर्शन करते हैं और पंचेन्द्रिय विषयों को विषवत् समझकर उनसे विरत हो जाते हैं)

(जिनमंदिर का दृश्य है। युवराज अग्निवेग जिनेन्द्रदेव की पूजा-आराधना करके उठते हैं तो वहीं उन्हें समाधिगुप्त मुनिराज के दर्शन हो जाते हैं और वे उन्हें नमोस्तु कर धर्मश्रमण हेतु उनके पास बैठ जाते हैं।)

कुमार अग्निवेग–नमोऽस्तु भगवन्! नमोस्तु!

मुनि श्री–सद्धर्मवृद्धिरस्तु!

कुमार अग्निवेग–हे महामुनि! आपका रत्नत्रय कुशल तो है?

मुनि श्री–हाँ वत्स!

कुमार—प्रभो! रत्नत्रय निधि स्वरूप गुरुवर! कृपाकर अपने दिव्य धर्मामृत से हमें अभिसिञ्चत करें।

मुनि श्री—हे भद्र! इस संसार में जिनधर्म और सम्यग्दर्शन के समान और कोई अनमोल निधि नहीं है, वही प्रत्येक प्राणी को संसार समुद्र से पार करने वाला है अतः सदैव उसी का आश्रय लेना चाहिए। यह जीव अनादि काल से इस संसार में परिभ्रमण कर रहा है, बड़े भाग्य से ही उत्तम कुल, उत्तम जाति, उत्तम शरीर और उत्तम बुद्धि मिलती है अतः उसका सदुपयोग करना चाहिए।

कुमार अग्निवेग—(मन में), हे गुरुदेव! आप सच ही कह रहे हैं, इस संसर में कौन अपना, कौन पराया। यह राज्य संपदा, धन-वैभव सब क्षणिक हैं, नश्वर हैं, अविनश्वर सुख तो मोक्ष मे हैं जिसकी प्राप्ति के लिए मुझे सतत प्रयत्न करना होगा। (उन्हें तत्क्षण ही विषय भोगों से वैराग्य हो जाता है) (पुनः मुनिराज से) हे गुरुदेव! कृपा कर मुझे भवदधितारणी जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कर कृतार्थ करें।

मुनि श्री—तुम्हारा विचार अति उत्तम है, तुम अवश्य ही निकट संसारी हो, शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करोगे।

—छठा दृश्य—

निर्देशक—(इस प्रकार कुमार अग्निवेग पंचेन्द्रिय विषय भोगों को तृणवत् त्यागकर मुनिराज से पंचमहाव्रतों को प्राप्त कर स्वयं में कृतकृत्यता का अनुभव करने लगे और घोरातिघोर तपश्चरण करने लगे। सर्वतोभद्र आदि श्रेष्ठ उपवासों के द्वारा शरीर को क्षीण करते हुए भी वे निजात्मा के अनुभवरूप परमानन्दामृत को पीकर तृप्त हो रहे थे और सदैव शुद्धात्मा का ध्यान किया करते थे। एक दिन वे वन में हिमगिरि पर्वत की गुफा में ध्यान में लीन थे कि भयंकर अजगर सर्प वहाँ आता है और मुनि श्री को देखते ही वह क्रोध से भयंकर होकर उन्हें निगल लेता है)

(वन का दृश्य तथा उसमें पशु-पक्षी आवाज करते दिखावें)

मुनिराज अग्निवेग—(ध्यान मुद्रा में) ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः....।।

(तभी एक भयानक अजगर सर्प आ जाता है)

निर्देशक—(पूर्व जन्म के संस्कार से वह अजगर तेजी से फुक्कारते हुए मुनिराज को निगलना शुरू कर देता है और मुनिराज परम समता भाव से जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में लीन होते जाते हैं)

मुनिराज—(मन में) ॐ नमः सिद्धेभ्यः। आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। जब देह ही मेरा नहीं तो किससे राग, किससे द्वेष, कौन शत्रु-कौन मित्र। परम वीतरागी आत्म तत्त्व का चिंतन ही मोक्ष प्राप्ति में सहायक होगा। ॐ सिद्धाय नमः-2।।

(इस प्रकार आत्म तत्त्व का चिंतवन करते-करते इस नश्वर शरीर से छूटकर वे मुनिराज सोलहवें स्वर्ग के पुष्कर विमान में देव हो जाते हैं)

अच्युत स्वर्ग में विद्युतप्रभ देव (पाँचवां भव)

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना)

स्वर्ग का दृश्य—इन्द्र सभा में अप्सरा का नृत्य

—प्रथम दृश्य—

(अच्युत स्वर्ग में इन्द्र सभा लगी हुई है और सभी देवगण आपस में वार्ता कर रहे हैं)

इन्द्र—(अपने अवधिज्ञान से जानकर) अहो! धर्म की कितनी महिमा है जिससे मनुष्य लोक से प्राणी इस स्वर्गलोक में आ जाता है।

एक देव—क्या हुआ इन्द्रराज! अचानक आप धर्म की महिमा का वर्णन क्यों करने लगे? क्या पृथ्वीलोक में कोई विशेष बात हुई है?

इन्द्र—हाँ देव! बात ही कुछ ऐसी है आज मध्यलोक में जम्बूद्वीप की धरती पर जन्म लेकर कुशलतापूर्वक राज्य

संचालन कर पुनः जिनदीक्षा धारण कर समाधिमरणपूर्वक शरीर का त्याग करने वाले राजा अग्निवेग का जीव विद्युत्प्रभदेव के रूप में हमारे स्वर्ग में जन्म लेने वाला है।

दूसरा देव—हे पुरन्दर! वैसे तो इस स्वर्ग में अनेक देव जन्म लेते रहते हैं पर कभी तो ऐसी चर्चा आपके मुख से मैंने नहीं सुनी। इस देव में ऐसी क्या बात है जो आप उनका गुणानुवाद कर रहे हैं?

इन्द्राणी—हाँ देव! हमें भी जानने की जिज्ञासा है कि आखिर उन आने वाले देव में ऐसी क्या विशेषता है।

इन्द्र—तो सुनो! मैं तुम सबको बताता हूँ। उसकी विशेषता यह है कि अब से छठे भव में वह देव जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की बनारस नगरी में तेईसवें तीर्थंकर के रूप में जन्मेगा।

सभी देव मिलकर—जय हो, जय हो, तेईसवें तीर्थंकर भगवान की जय हो। तब तो हम सबको मिलकर उन महान आत्मा के स्वागत हेतु प्रस्थान करना चाहिए।

पहला देव—हाँ, क्यों नहीं! हम सभी उस महापुरुष के स्वागतार्थ चलेंगे।

(सभी जय-जयकार करते हुए प्रस्थान करते हैं)

—द्वितीय दृश्य—

(सोलहवें स्वर्ग के पुष्कर विमान में उपपाद शैय्या सुसज्जित है जिसके ऊपर सोलह वर्षीय देव सोते हुए के समान दिखावें)

(बाजों की ध्वनि हो रही है, पुष्पवृष्टि हो रही है और देवगण जय-जयकार करते हुए नमस्कार की मुद्रा में खड़े हैं)

विद्युतप्रभ देव—(शैय्या पर उठकर बैठते हुए) ॐ नमः सिद्धेभ्यः (णमोकार मंत्र बोलते हैं पुनः) (ऐसा बोलते हुए आश्चर्यचकित होकर) ओह! मैं कहाँ आ गया? कौन हूँ मैं? ये सब जो मेरे चारों ओर खड़े जय-जयकार कर रहे हैं, कौन हैं यह? इतना दिव्य वैभव, इतनी विभूति! कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा?

सभी देवगण—स्वामिन्! हम सबका प्रणाम स्वीकार करें। आप यहाँ सोलहवें स्वर्ग में विद्युतप्रभ देव के रूप में जन्में हैं।

विद्युतप्रभ देव—(सोचने की मुद्रा में) (अवधिज्ञान द्वारा जानकर) ओह! अच्छा-अच्छा। मैं सब समझ गया। सब याद आ गया मुझे। पूर्व जन्म में मैं विद्याधर राजा का पुत्र अग्निवेग था और जिनदीक्षा लेकर घोर तपश्चर्या करके समाधिपूर्वक शरीर त्यागकर यहाँ पहुँचा हूँ।

देवगण—हे देव! आप पुण्यशाली जीव हैं। आपकी जय हो, देव। अब आप मंगल स्नान हेतु प्रस्थान करें और उसके पश्चात् जिनमंदिर के दर्शनार्थ चलें।

विद्युतप्रभ देव—मित्र देव! मैं शीघ्र ही जिनमंदिर एवं जिनपूजा हेतु प्रस्थान करता हूँ।

(स्नान करके उत्तम वस्त्राभूषण धारण कर वे देव तैयार होकर अपने देव साथियों के साथ अपने विमान में स्थित जिनमंदिर में प्रवेश कर भक्तिभाव से जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं, भक्तिपूर्वक स्तोत्र पाठ करते हैं, अनन्तर जिनबिंबों का अभिषेक-पूजन करते हैं)

(यहाँ जिनमंदिर का दृश्य दिखावें।)

—तृतीय दृश्य—

स्वर्ग का दृश्य है—

एक देव—स्वामिन्! अब आप अपने वैभव का निरीक्षण करें।

विद्युतप्रभ देव—ठीक है। मैं आपके साथ चलता हूँ।

देव—चलिए मित्रवर!

(उसके साथ चले जाते हैं)

(इन देव की अणिमादि आठ ऋद्धियाँ थीं, बाईस सागर प्रमाण आयु थी। 22 हजार वर्ष व्यतीत होने पर मानसिक

आहार करते थे, 22 पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे। तीन हाथ का ऊँचा सुन्दर, सात प्रकार धातु और उपधातु से रहित दिव्य वैक्रियक शरीर है)

विद्युतप्रभ देव साथी—देवों के साथ अपना वैभव देखते हुए—

देव—प्रभो! यह आपकी देवियाँ हैं। ये अनेकों सुन्दर स्त्रीरूप बना सकती हैं।

विद्युतप्रभ देव—(मन में जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करते हुए) यह सब जिनमहिमा का ही सुफल है जो मुझे इतने दिव्य सुखों की प्राप्ति हुई है।

(देवियाँ स्वामी को नमस्कार कर अपने भवन की ओर प्रस्थान करती हैं और वह देव विद्युतप्रभ देव को उनकी सेना, दिव्य सभा आदि दिखाने हेतु प्रस्थान करता है)

—चतुर्थ दृश्य—

(वह विद्युतप्रभ देव स्वर्ग में अपने देव साथियों के साथ मनोरंजन भी करते थे)

एक देव—हे देवोत्तम! सम्पूर्ण नंदनवन अपने सुगंधित कल्पवृक्षों के फूलों से सुरभित हो रहा है, चलिए वहाँ सैर के लिए चलें।

दूसरा—हे देव! वहाँ छोटी-छोटी बावड़ियाँ जो कि हंस और मयूरों के जलयंत्रों से युक्त हैं, चारों तरफ उज्ज्वल जल की बूंदे बरसा रही हैं, चलिए जल क्रीड़ा के लिए चलें।

तीसरा—हे मित्र! चित्रशाला में नाना प्रकार के चित्र अचेतन होकर भी सचेतन देवों को मानों अपने वश में कर लेते हैं। चलिए, वहाँ चलें।

एक देवी—हे स्वामी। मैं आपके मनोरंजन के लिए अपनी विक्रिया से विविध रूप बनाकर आपको प्रसन्न करूँगी।

(इसके साथ ही वे तत्त्वचर्चा भी करते हैं)

—पाँचवा दृश्य—

(विद्युतप्रभ देव अपनी देवियों और अनेक परिकर देवों के साथ बैठे हैं)

(अप्सरा द्वारा देवसभा में नृत्य)

इन्द्र—हे देव! मध्यलोक में जन्म लेने वाले तीर्थंकर भगवान का पंचकल्याणक मनाने का पुण्य हमें प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप हम भी अपनी आत्मा को भगवान बनाने की दिशा में महान पुण्य को प्राप्त कर लेते हैं।

दूसरा देव—हाँ स्वामिन्! देखो ना! जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी वे तीर्थंकर 34 अतिशयों से सहित होते हैं।

इन्द्राणी—देवराज! तीर्थंकर शिशु का दर्शन मात्र ही हमारे चतुर्गति का नाश कर देता है।

सभी देव—उन तीर्थंकर भगवान की महिमा अकथनीय है।

(सभी देव-देवियाँ आपस में तीर्थंकर भगवान का गुणानुवाद करते हैं)

एक देव—देवराज! आष्टान्हिक महापर्व आ रहा है। हमें नन्दीश्वर द्वीप में आष्टान्हिक पर्व मनाने हेतु चलना चाहिए।

अच्युतेन्द्र—हाँ देव साथी! आपने अच्छा याद दिलाया। आप वहाँ चलने की तैयारी करें। हम सब वहाँ चलकर बावन जिनमंदिरों में विराजमान जिनप्रतिमाओं का विशेष संगीत नृत्य आदि से महापूजा-अभिषेक करेंगे।

इन्द्र—जो आज्ञा स्वामिन्! (चला जाता है)

(कुछ देर बाद पुनः आकर) हे नाथ! विमान तैयार है, दिव्य पूजन सामग्री आदि सब तैयार हैं। चलिए। जिनवंदना हेतु प्रस्थान करें।

अच्युतेन्द्र—चलो बंधुओं! हम सब चलें और दर्शन-पूजन कर असीम पुण्य का संचय करें। (सभी प्रस्थान करते हैं)

–छठा दृश्य–

(इस प्रकार से वह अच्युतेन्द्र अपना समय सुखपूर्वक व्यतीत कर रहे हैं। धीरे-धीरे करके उनकी 22 सागर की आयु समाप्त होने को आई और जब मात्र 6 माह शेष बचे तो उनके गले में पड़ी हुई कल्पवृक्षों की पुष्पमाला मुरझाने लगी अतः वह समझ गए कि मेरी आयु का अन्तकाल आ गया है।

अच्युतेन्द्र–ओह! मेरी माला तो सूख रही है इसका मतलब कि मेरा अन्तकाल आ रहा है। अतः अब मुझे जिनभक्ति में अपने चित्त को अनुरक्त करना चाहिए।

देवसाथी–प्रभो! आपने उचित विचार किया। यह जिनधर्म ही हमें न सिर्फ दिव्यसुखों को प्रदान करने वाला है अपितु मोक्षसुख को भी प्रदान करने वाला है।

अच्युतेन्द्र–अच्छा देवसाथियों! मैं प्रभु का स्मरण एवं ध्यान प्रारंभ करता हूँ।

(ज्यों-ज्यों छह माह व्यतीत होते हैं त्यों-त्यों वह अच्युतेन्द्र धर्म में और अधिक अनुरक्त होते जाते हैं और अंत में एक वृक्ष के नीचे पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ हो जाते हैं।

(ध्यान मुद्रा में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए दिखावें)

विद्युतप्रभ देव–ॐ सिद्धाय नमः-3।

(इस प्रकार मंत्रोच्चारपूर्वक अपने नश्वर शरीर का उन्होंने त्याग कर दिया और जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में पद्म देश के अश्वपुर नगर में चक्रवर्ती वज्रनाभि के रूप में जन्म लेते हैं।)

चक्रवर्ती वज्रनाभि (छठा भव)

–प्रथम दृश्य–

(सामूहिक प्रार्थना)

अश्वपुर नगर के राजा वज्रवीर्य की पट्टरानी विजया देवी अपने राजमहल में सुखपूर्वक निद्रा में मग्न हैं, उषाकाल की लालिमा पूर्व दिशा में खिलने वाली है। सखियाँ प्रभाती गा रही हैं और वीणा की मधुर ध्वनि के साथ प्रभु का मधुर गुणस्तवन करते हुए रानी विजयादेवी को निद्रा से जगाने का प्रयास कर रही हैं–

सखियाँ– उठो मात! खिल रही है उषा,
तीर्थ वन्दना स्तवन करो।
श्री जिनगुण स्तवन उचारो,
श्री जिनवर को नमन करो।।

(विजया देवी स्वच्छ चादर को अपने ऊपर से हटाती हैं और महामंत्र का स्मरण करते हुए उठकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके कुछ क्षण ध्यान मुद्रा में बैठ जाती हैं)

विजया देवी–ॐ नमः सिद्धेभ्यः-3।। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

(दोनों हाथों को जोड़कर जिनेन्द्र भगवान को नमन करते हुए स्तुति पढ़ती हैं)

(स्तुति)

जिनने तीन लोक त्रैकालिक, सकल वस्तु को देख लिया।
लोकालोक प्रकाशी ज्ञानी, युगपत् सबको जान लिया।।
राग द्वेष, जर, मरण, भयावह, नहिं जिनका संस्पर्श करें।
अक्षय सुखपद के वे नेता, जग में मंगल सदा करें।।

पुनः प्रसन्न मुद्रा में अपनी सखियों की ओर देखती हैं, तब सखियाँ पूछती हैं–

एक सखी–महारानी जी! आज आप बहुत प्रसन्न दिखाई दे रही हैं, क्या कोई विशेष कारण है?

दूसरी सखी–हाँ माते! आप तो नित्य की भाँति ही आज निद्रा का त्याग कर रही हैं फिर आज इतनी प्रसन्न! हमें भी बताइये उसका कारण।

तीसरी सखी–लगता है रानी माँ ने कोई सुन्दर सा सपना देखा है।

चौथी सखी–हाँ! मुझे भी ऐसा ही लगता है कि आप हमें कोई अच्छी सी खुशखबरी सुनाने वाली हैं।

महारानी जी–हाँ, हाँ सखियों! आज मैं बहुत ही अधिक प्रसन्न हूँ और इसका कारण है कि मैंने आज बहुत सुन्दर-सुन्दर सपने देखे हैं।

पाँचवी सखी–माता! हमें भी बताइये ना कि वे स्वप्न क्या हैं?

महारानी–सखियों! इतना अधीर मत होवो। स्नान आदि से निवृत्त होकर अभी राजसभा में चलूँगी, वहीं महाराज से उन स्वप्नों का फल पूछूँगी तभी तुम सब भी सुन लेना।

(महारानी प्रभातकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर राजसभा में जाती हैं)

–दूसरा दृश्य–

(महारानी अपनी सखियों के साथ राजदरबार में प्रवेश करने को उद्यत हैं)

(राजदरबार का दृश्य)

(महाराज दरबार में अपने सभासदों के साथ आसीन हैं)

–राजनर्तकी द्वारा नृत्य–

द्वारपाल–महाराज की जय हो। महारानी विजया की जय हो।

सावधान! महारानी विजया अपनी सखियों सहित राजदरबार में पधार रही हैं।

(महारानी राजदरबार में प्रवेश करके महाराज वज्रवीर्य नरेन्द्र का यथायोग्य अभिवादन करती हैं)

महारानी–प्रणाम महाराज!

सखियाँ–हम सबका प्रणाम स्वीकार करें प्रजापालक।

महाराज–आइए महारानी आइए, आसन ग्रहण करिये। देवियों, आप लोग भी अपना आसन ग्रहण करें। कहिए महारानी, आज दरबार में किस कारण से आना हुआ?

(यथायोग्य आसन पर बैठ जाती हैं, सखियाँ भी वहीं पास में बैठ जाती हैं तब महारानी कहती हैं)

महारानी–देव! आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने कुछ सुन्दर स्वप्न देखे हैं, मेरी आन्तरिक प्रसन्नता का यही कारण है। मुझे कौतुक हो रहा है कि इन उत्तम स्वप्नों का क्या फल है? हे आर्य! कृपा कर अपने मुखचन्द्र की वचन किरणों से उनका फल स्पष्ट बताकर मेरे हर्ष समुद्र को वृद्धिंगत कीजिए।''

महाराज–कहिए देवी! उन स्वप्नों को कहिए?

महारानी–स्वामी! पहले स्वप्न में मैंने सुदर्शन मेरु को देखा, पुनः सूर्य देखा है, पुनः चन्द्रमा देखा है, अनन्तर देवविमान देखा है और बाद में बहुत ही विशाल सुंदर जल से परिपूर्ण भरित सरोवर देखा है, ऐसे ये पाँच स्वप्न देखे हैं।

महाराज–(कुछ क्षण मन में सोचकर) पुनः मुस्कुराते हुए–

प्रिये! तुम अतिशय पुण्यशालिनी हो। ये स्वप्न यह बात स्पष्ट कह रहे हैं कि तुम चक्रवर्ती पुत्ररत्न को जन्म दोगी।

महारानी–(प्रसन्न होकर) महाराज! इतना सुनने मात्र से ही मेरा सारा शरीर रोमांच से पुलकित हो उठा है, ऐसा लगता है कि मैंने साक्षात् चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त कर लिया है।

(अपने प्रश्नों का उत्तर प्राप्त कर महारानी अपनी सखियों सहित वहाँ से प्रस्थान कर देती हैं और धीरे-धीरे करके नव माह व्यतीत हो जाते हैं)

(नव महीने व्यतीत होने के बाद एक दिन सभा में एक दासी पहुँचकर पुत्र के जन्मोत्सव का उत्तम समाचार सुनाती है)

–तृतीय दृश्य–

(राजदरबार का दृश्य, महाराज अपने सभासदों के साथ दरबार में उपस्थित हैं, राजनर्तकी द्वारा नृत्य चल रहा है। तभी एक दासी वहाँ पहुँचकर पुत्र के जन्मोत्सव का उत्तम समाचार सुनाती हैं)

दासी–(दरबार में पहुँचकर महाराज को प्रणाम करते हुए) महाराज की जय हो-2। दासी का प्रणाम स्वीकार करें महाराज! बधाई हो–बधाई हो, महारानी विजया ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है प्रभो!

महाराज–(प्रसन्न मुद्रा में) ओह! इस समाचार को सुनकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। दासी, तुमने यह सूचना देकर मेरी प्रसन्नता को अत्यधिक वृद्धिंगत कर दिया है, (महामंत्री से) महामंत्री जी! दासी को नाना वस्त्र, आभूषण और धनादि देकर सदा के लिए सुखी बना दीजिए। आज हम बहुत प्रसन्न हैं। सुनिये! पूरे राज्य में खुशियाँ मनाई जाएं, याचकों को मुँहमाँगा धन बांटा जाए, कोई भी याचक खाली हाथ न जाने पाए।

महामंत्री–जो आज्ञा महाराज! हम सबकी भी बधाई स्वीकार करें प्रजापालक।

(पुनः दासी को बहुत धन, वस्त्रादिक दान दिलवाते हैं, दासी महाराज की जयजयकार करती हुई वापस चली जाती है)

(सारे राज्य में खुशियाँ मनाई जा रही हैं, सर्वत्र बाजे बज रहे हैं। राजा ने प्रजा को इतना धन बांटा कि सभी जन तृप्त हो गये, भण्डार खुला है, दातार खड़े हैं किन्तु अब कोई याचक आ ही नहीं रहा है। मालूम होता है कि चक्रवर्ती वज्रनाभि ने आते ही शहर की दरिद्रता को दूर भगा दिया है। जिनमंदिरों में जिनेन्द्रदेव का पूजा महोत्सव मनाया जा रहा है।)

–चतुर्थ दृश्य–

निर्देशक–(शिशु वज्रनाभि धीरे-धीरे युवावस्था में प्रवेश कर जाते हैं और महाराज वज्रवीर्य उन्हें सब प्रकार से योग्य जान उनका राजतिलक कर देते हैं। वे कुशलतापूर्वक राज्य संचालन कर रहे थे तभी उन्हें सूचना मिलती है कि आयुधशाला में चक्ररत्न पैदा हुआ है।)

महाराजा वज्रनाभि राजसिंहासन पर आरूढ़ हैं तभी सेनापति प्रवेश करते हैं।

सेनापति–प्रणाम महाराज! महाराज! एक शुभ सूचना है, अपनी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है।

महाराज–(प्रसन्न होकर) यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है सेनापति, चलिए, चलकर चक्ररत्न की पूजा करते हैं।

सेनापति–जैसी आपकी आज्ञा प्रभो!

(महाराज वज्रनाभि ने विधिवत् जिनेन्द्रदेव की पूजा करके चक्ररत्न की पूजा की, पुनः सेनापति को आदेश दिया)

महाराज–(सेनापति से) सेनापति! सेनाओं को सुसज्जित करें, हम दिग्विजय के लिए प्रस्थान करना चाहते हैं।

सेनापति–अच्छी बात है स्वामी।

निर्देशक–(महाराजा वज्रनाभि दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते हैं और कुछ काल में छहों खण्ड पृथ्वी को जीतकर पूर्ण विजयश्री का वरण करके वापस नगरी में आ गए। चक्रवर्ती वज्रनाभि के चक्ररत्न के प्रभाव से छह खण्ड के सभी राजा उनकी आज्ञा को सिर से धारण करते हैं, छ्यानवे हजार रानियाँ, नौ निधियाँ, चौदह रत्न आदि दस प्रकार के उनके भोगोपभोग के साधन हैं। विपुल वैभव के धनी चक्रवर्ती महाराज वज्रनाभि इतने वैभव को प्राप्त करके भी धर्म को नहीं भूले हैं प्रत्युत् अधिक-अधिक रूप से प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव की पूजन करते हैं। निर्ग्रन्थ गुरुओं को, अन्य-अन्य त्यागियों को आहार आदि दान देते हैं। निरन्तर शील का पालन करते हुए समय-समय पर उपवास भी करते हैं।)

(यहाँ पर महाराज को पूजन आदि करते हुए का दृश्य दिखावें)

–पंचम दृश्य–

निर्देशक–(शहर के बाहर का बगीचा है, जहाँ आज षट्ऋतु के फल-फूल एक साथ उग रहे हैं, सारा उद्यान सुरभित

हो रहा है। सर्प, नेवला, हरिण-व्याघ्र आदि वन्य जन्तुगण बड़े प्रेम से एक साथ ही विचरण कर रहे हैं। गाय का बछड़ा शेरनी का दूध पी रहा है। इधर से शिकारी निकले, किन्तु उनके बाण विफल जा रहे हैं और अन्य प्राणी बड़े विश्वास के साथ शिकारियों के सामने ही निर्भीक होकर खड़े हैं। हो भी क्यों नहीं, यह जिनधर्म की महिमा है। आज इस बगीचे में एक महामुनि पधारे हैं जिनके दर्शन के लिए स्वयं चक्रवर्ती महाराज अपने पुरजन-परिजन सहित पधार रहे हैं।)

(चक्रवर्ती महाराज अपने परिवारजनों और पुरजनों से घिरे हुए उद्यान की तरफ बढ़ते ही आ रहे हैं, कुछ दूर एक पवित्र स्फटिक पाषाण की शिला पर एक महामुनि तिष्ठे हैं, चक्रवर्ती महाराज मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें बार-बार नमस्कार करते हैं)

चक्रवर्ती महाराज–(मुनिराज को नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणा लगाते हुए)

स्तुति पढ़ते हैं– सप्तभंगयुत स्याद्वादमय गंगाजगत पवित्र करें।
सबकी पापधूलि को धोकर जग में मंगल नित्य करें।।
विषय वासनारहित निरम्बर सकल परिग्रह त्याग दिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।।
भवसमुद्र में पतितजनों को सच्चे अवलम्बन दाता।
वे गुरुवर मम हृदय विराजो सब जन को मंगलदाता।।

पुनः उन्हें बार-बार नमस्कार कर उनकी पूजन करते हैं और चरणों में नत होकर निकट बैठ जाते हैं और प्रार्थना करते हैं।

सम्राट चक्रवर्ती–प्रभो! हम जैसे संसारी प्राणियों के उद्धार के लिए धर्मोपदेशरूपी अमृत की वर्षा कीजिए।

मुनिराज–हे राजन्! यह चैतन्य आत्मा अनन्त शक्तिमान होते हुए भी अचेतन पुद्गल के वशमें हो रहा है।

निर्देशक–(इस प्रकार से गुरु के उपदेश को सुनकर राजा वज्रनाभि पंचेन्द्रियों के विषयों से विरक्त हो गए। उस समय यह साम्राज्य लक्ष्मी और स्त्री पुत्र, मित्रादि सरस पदार्थ नीरस भासने लगे। देखिये वे क्या सोच रहे हैं।)

सम्राट–ओह! मैंने चक्रीपद को प्राप्त करके इतने काल तक इन्द्रिय भोगों का अनुभव किया है किन्तु आज तक तृप्ति नहीं हुई है। इन भोगों से तृष्णा वृद्धिंगत ही होती है न कि शान्त। अतः इन क्षणिक सुखों का त्यागकर शाश्वत सुख को प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

(राजाधिराज सम्राट को तत्क्षण वैराग्य हो जाता है और वे अपने सुयोग्य पुत्र को राज्यभार सौंपकर आप स्वयं दीक्षा लक्ष्मी को स्वीकार कर लेते हैं)

(महाराज अपने पुत्र का राजतिलक कर पुनः मुनिराज के पास आते हैं)

सम्राट–प्रभो! मुझे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कर इस संसार समुद्र से पार करने में मेरा अवलम्बन करें।

निर्देशक–(मुनिराज उन्हें दीक्षा प्रदान करते हैं। अब सम्राट ने अतुल छह खंड की विभूति को पुराने तिनके के सदृश छोड़ दिया और निर्ग्रन्थ दिगम्बर महामुनि बन गए)

(शत्रु-मित्र, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुख, स्तुति-निन्दा, कनक-कांच और महल-मशान में परम समभाव को धारण करने वाले वे वज्रनाभि मुनिराज दुर्द्धर तपश्चरण करते हुए पृथ्वी तल पर विहार कर रहे थे। किसी समय वे एक वन में आतापन योग से विराजमान थे। उन्हें देखते ही क्रूरकर्मा भिल्लराज अत्यन्त कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके शरीर का भेदन करने लगा)

मुनिराज–(ध्यानावस्था में) ॐ नमः सिद्धेभ्यः-3। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

शिवं शुद्ध बुद्धं परम विश्वनाथं, न देवो न बन्धुर्न कर्ता न कर्म।
न अंगं न संगं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्।।

(तभी एक भील उधर से प्रवेश करता है।)

भिल्लराज—अरे! यहाँ कौन बैठा है, जरा देखूँ तो कोई पशु तो नहीं है, आज शिकार के लिए इधर-उधर नहीं जाना पड़ेगा।

(पास जाकर देखता है)

अरे! यह तो कोई साधु है (तभी उसे जातिस्मरण होते ही पूर्वजन्म की सारी बातें याद आ जाती हैं) ओह! यह तो मेरा पूर्व जन्म का वैरी है, यह तो मेरे भाई मरुभूति का जीव है, इसने मुझे भव-भव में दुख प्रदान किया है। आज तो इससे बदला लेने का अच्छा अवसर है, यह तो ध्यान में लीन है और मेरे पास बाणों की कमी नहीं है, अभी बाणों से इसे भेदता हूँ।

(इतना कहकर उन शांत, गंभीर, ध्यानारूढ़ मुनिराज के ऊपर अत्यन्त कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके शरीर का भेदन करने लगा और जब मुनिराज अविचल रहे तो कहने लगा।)

भिल्लराज—अरे मूढ़! आँखे तो खोल। कैसा है ये, मैंने इसे बाणों से वेध दिया है और यह बिल्कुल शांत बैठा है। देखता हूँ अब क्या करेगा?

निर्देशक—(वह भिल्ल पुनः कायरजनों से असहनीय ऐसा भयंकर उपसर्ग करने लगा किन्तु वे मुनिराज शरीर से पूर्णतया निस्पृह होकर ज्ञानदर्शन स्वरूप अपनी आत्मा का ध्यान कर रहे हैं और उन्हें उपसर्ग के दुःखों का किंचित् भी अनुभव नहीं आ रहा है।)

मुनिराज—मैं आत्म स्वरूपी हूँ, मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ, चिच्चैतन्य स्वरूपी हूँ, पुद्गल से निर्मित इस देह से कैसा मोह। यह तो फूस की तरह पल भर में जल जाने वाला है, लेकिन आत्मा तो अजर-अमर है और इसी आत्मा को सिद्धात्मा बनाना है। सोऽहं, सोऽहं, सोऽहं।

निर्देशक—(इस प्रकार चतुर्विध आराधना के स्मरण में अपने उपयोग को स्थिर करते हुए वे धर्मध्यान में लीन हो जाते हैं और यह आत्मा इस नश्वर शरीर से निकल जाती है और वे मध्यम ग्रैवेयक के मध्यम विमान में श्रेष्ठ अहमिन्द्र हो जाते हैं।)

मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र (सातवाँ भव)

—मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य—

(मध्यम ग्रैवेयक का दृश्य)

—प्रथम दृश्य—

(अहमिन्द्रों की सभा लगी हुई है, सभी अहमिन्द्र आज बहुत प्रसन्न हैं और आपस में चर्चा कर रहे हैं क्योंकि आज उनके यहाँ एक नये इन्द्र का जन्म होने वाला है।)

अहमिन्द्र (1)—मध्यम ग्रैवेयक में जन्म लेने वाले मेरे प्रिय मित्रों! आज का दिवस हमारे लिए बहुत ही शुभ है। आज एक अत्यन्त पुण्यशाली आत्मा हमारे मध्य एक नये मित्र के रूप में आने वाली है।

अहमिन्द्र (2)—देवर्षि! आप किस पुण्यशाली आत्मा की बात बता रहे हैं?

अहमिन्द्र (3)—इन्द्रराज! यहाँ तो वही जन्म लेता है जो महान पुण्यशाली होता है और संसार समुद्र से पार होने वाला होता है।

अहमिन्द्र (1)—हाँ, हाँ मित्रगणों! तुम्हारी जिज्ञासा की पुष्टि मैं अभी किए देता हूँ। अभी-अभी कुछ देर पहले ही

मध्यलोक में चहुँओर अपनी कीर्तिपताका को फहराने वाले चक्रवर्ती वज्रनाभि मुनिराज एक भील द्वारा किए गए घोर उपसर्ग को सहनकर समाधिपूर्वक शरीर का त्यागकर इस मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र के रूप में जन्म लेने वाले हैं।

अहमिन्द्र (4)—देवराज! पर यह तो बताइये उनकी विशेषता क्या है?

अहमिन्द्र (1)—उनकी विशेषता यह है कि वह आज से चौथे भव में तीर्थंकर भगवान बनने वाले हैं।

अहमिन्द्र (5)—अच्छा! यह तो बताइए कि वे अहमिन्द्र किस क्षेत्र के तीर्थंकर बनने वाले हैं?

अहमिन्द्र (1)—सुनो देवगणों! वे अहमिन्द्र जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड की वाराणसी नगरी में महाराज अश्वसेन की महारानी वामादेवी की कुक्षि से तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के रूप में अवतरित होंगे।

सभी अहमिन्द्र—(अपने अवधिज्ञान से जानकर) जय हो, जय हो, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय हो। देवर्षि! चलिए ना, हम भी चलकर उन अहमिन्द्र का अपने इस ग्रैवेयक विमान में स्वागत करें।

अहमिन्द्र—चलो मित्र! मैं भी चलता हूँ।

(इतना कहकर सभी निकल जाते हैं)

—द्वितीय दृश्य—

मध्यम ग्रैवेयक में सुन्दर एवं सुसज्जित शैय्या पर एक सोलह वर्षीय तरुण सो रहे हैं। अचानक जोर-जोर से बाजे-नगाड़े एवं तुरही आदि बजने लगते हैं, पुष्पों की वर्षा एवं मंद-मंद हवा चल रही है कि तभी अनेक अहमिन्द्र वहाँ पर आ जाते हैं।

अहमिन्द्र—(शैय्या पर उठकर बैठ जाते हैं और पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हैं)

ॐ नमः। णमो अरिहंताणं, णमो.....(पुनः आश्चर्यपूर्वक) ओह! यह कौन सा स्थान है? मैं कहाँ आ गया? मैं कौन हूँ? इतनी भव्यता? यह सामने खड़े दिव्य पुरुष कौन हैं? इन्हीं से पूछना पड़ेगा।

एक अहमिन्द्र—प्रणाम अहमिन्द्र देव! ग्रैवेयक विमान में आपका शुभागमन मंगलमय हो। इस विमान में आप अहमिन्द्र के रूप में जन्में हैं।

नये अहमिन्द्र—(कुछ विचारमग्न हो जाते हैं) अच्छा, अच्छा, मैं सब जान गया। अवधिज्ञान के द्वारा मैं अपने पूर्वभव की सारी बातें जान गया हूँ। ओह! सम्यक्त्व के प्रभाव से और जिनमुद्रा को धारण करने के फलस्वरूप ही मैं इस सर्वोत्तम विमान में आया हूँ। जिनधर्म का प्रभाव ही ऐसा है कि तिर्यंच प्राणी भी सम्यग्दर्शन एवं अणुव्रत के प्रभाव से देव बन जाते हैं फिर मैं तो महाव्रती था।

सभी अहमिन्द्र—आइए मित्रवर! जिस धर्म की शरण प्राप्त कर आप महाव्रती से देव बने उसी की शरण में पुनः चलें। उठिये! सर्वप्रथम जिनेन्द्रदेव की पूजन करिए।

नये अहमिन्द्र—चलिए मित्रों! मैं तैयार हूँ।

(अहमिन्द्र देव पूजन के वस्त्र पहनकर तैयार हो जाते हैं और देवों के साथ अकृत्रिम जिनमंदिर में पहुँचकर भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं।)

—मंदिर का दृश्य—

अहमिन्द्र मंदिर में प्रवेश करते हैं और—

अहमिन्द्र—ॐ जय, जय, जय, निःसही, निःसही, निःसही, नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु। णमो अरिहंताणं.....। पुनः अभिषेक पूजन करते हैं-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं.....(पुनः सभी अहमिन्द्रों के साथ पूजन का दृश्य दिखावें)

(पूजन के पश्चात् पुनः अपने ग्रैवेयक विमान में आकर तत्त्वचर्चा आदि करते हुए दिव्य सुखों का उपभोग करने लगते हैं)

–तृतीय दृश्य–

निर्देशक–(महान पुण्यात्मा वह अहमिन्द्र वहाँ सत्ताईस सागर की आयु तक दिव्य सुखों का अनुभव करते हैं। दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, अतिशय देदीप्यमान शरीर के धारी वह अहमिन्द्र सत्ताईस हजार वर्ष व्यतीत होने पर दिव्य मानसिक आहार ग्रहण करते थे। चूँकि वे अहमिन्द्र परक्षेत्र में विहार नहीं करते इसलिए कभी-कभी अपने साथी मित्रों के साथ अपने निवास स्थान के समीपवर्ती उपवन के सरोवर के किनारे की भूमि में क्रीड़ा हेतु जाते थे)

अहमिन्द्र–(अपने साथी मित्रों से) प्रिय मित्रों! आज हमारी इच्छा है कि हम सब क्रीड़ा के लिए चलें।

एक देव–देवर्षि! चलिये ना! हम सब क्रीड़ा के लिए तैयार हैं।

अहमिन्द्र–मगर यह तो बताइए कि स्थान कौन सा चुना जाए?

दूसरा देव–मित्र! अपने निवास के पास जो उपवन में सरोवर है ना, उससे सुन्दर स्थान और कौन सा हो सकता है, वहीं चलते हैं।

अहमिन्द्र–हाँ, हाँ! यह स्थान ठीक रहेगा। हम वहाँ जलक्रीड़ा करेंगे।

सभी देवगण–चलिए मित्रराज! चलते हैं।

(सभी क्रीड़ा हेतु जाते हैं। आमोद-प्रमोद करते हुए जलक्रीड़ा करते हैं और हँसते-बोलते हुए वापस आ जाते हैं। सभी आकर सभा में अपने-अपने स्थान पर बैठकर उन अहमिन्द्र के साथ संभाषण करने में तत्पर हो जाते हैं)

एक इन्द्र–हे अहमिन्द्र! कृपया हमें अहमिन्द्र शब्द का मतलब समझाएं।

अहमिन्द्र–अहमिन्द्र अर्थात् मैं इन्द्र हूँ-मैं इन्द्र हूँ'' इसके अतिरिक्त जहाँ और कोई चिन्तवन, कोई भेद नहीं है वह अहमिन्द्र कहलाते हैं।

दूसरा इन्द्र–हे महाभाग! तत्त्व कितने होते हैं?

नये अहमिन्द्र–सुनो! तत्त्व सात होते हैं-जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

तीसरा इन्द्र–कर्मबंध का क्या कारण है देवर्षि?

अहमिन्द्र–कर्मबंध के 5 कारण हैं–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

चौथा इन्द्र–इसमें प्रधान कारण क्या है?

अहमिन्द्र–मिथ्यात्व और कषाय इसमें प्रधान कारण है।

पाँचवां इन्द्र–ऐसा क्यों मित्रवर?

अहमिन्द्र–ऐसा इसलिए, क्योंकि मोहनीय कर्म के दो भेद हैं और वह सब कर्मों में प्रधान है। मोहनीय कर्म के अभाव में संसार परिभ्रमण का चक्र ही रुक जाता है। इन मिथ्यात्व और कषाय के आधीन हुआ संसारी जीव ज्ञानावरणादि सात कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंधों को प्रतिसमय ग्रहण करता है।

पहला इन्द्र–प्रभो! पुण्य का उत्कृष्ट फल क्या है?

छठा इन्द्र–और पाप का उत्कृष्ट फल क्या है?

अहमिन्द्र–पाप का उत्कृष्ट फल परिणामों को शान्त नहीं रखने, इन्द्रियों का दमन नहीं करने, निर्दोष चारित्र पालन नहीं करने से तथा हिंसादि पापों के करने से पापी जीवों को प्राप्त होता है। पाप का दुष्फल नरक-निगोद आदि है।

सातवाँ इन्द्र–हे महापुरुष! सिद्ध भगवान का स्वरूप क्या है?

अहमिन्द्र–सिद्ध परमेष्ठी अष्ट कर्मों से रहित और आठ गुणों से सहित होते हैं।

आठवाँ इन्द्र–वे रहते कहाँ हैं?

अहमिन्द्र–वे सिद्धशिला पर विराजमान रहते हैं।

दूसरा इन्द्र–अच्छा! और उनका सुख कैसा है?

अहमिन्द्र–सिद्धों का सुख केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है, बाधारहित है, कर्मों के क्षय से उत्पन्न होता है, परम

आल्हाद स्वरूप है, अनुपम और सर्वश्रेष्ठ है।

(इस प्रकार वह अहमिन्द्र सदैव तत्त्वचर्चा में तल्लीन रहते हुए सम्यग्दर्शन की प्रशंसा करते थे और इस प्रकार वे अपनी सत्ताईस सागर की आयु पूरी कर लेते हैं और आयु के अंत में बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हुए अपना समय धर्मध्यान में लगाते हैं।

और-अहमिन्द्र—ॐ सिद्धाय नमः.....(इस प्रकार अपने दिव्य वैक्रियिक शरीर का त्यागकर अयोध्यापति राजा वज्रबाहु की रानी प्रभाकरी से आनन्द कुमार के रूप में जन्म लेते हैं)

राजा आनन्द (आठवाँ भव)

—मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य—

—प्रथम दृश्य—

राजदरबार का दृश्य—राजनर्तकी द्वारा नृत्य

निर्देशक—(अयोध्या नगरी के राजा वज्रबाहु अपने राजदरबार में बैठे हैं। ऐसा लगता है मानों वे आज किसी शुभ सूचना का इंतजार कर रहे हैं। जी हाँ! आज उनकी प्रिय रानी प्रभाकरी प्रसूतिगृह में हैं और भावी पुत्र के शुभागमन की प्रतीक्षा में महाराज अति व्याकुल हैं। अचानक महाराज उठकर टहलते हुए मंत्री से वार्तालाप करने लगते हैं)

राजा वज्रबाहु—मंत्री महोदय! अभी तक कोई समाचार नहीं आया, हम अपने पुत्र का मुख देखनेको अति व्याकुल हैं।

मंत्री—महाराज, धीरज रखिये। आपके साथ-साथ हम और सारी प्रजा भी अपने भावी राजा की प्रतीक्षा में आकुलित है। आइए, अन्तःपुर की ओर चलें।

तभी अचानक एक दासी का प्रवेश—

दासी—(प्रसन्न मुद्रा में) बधाई हो प्रजापति! बधाई हो। रानी प्रभाकरी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है। पुत्र का मुखमण्डल ऐसा चमक रहा है मानो कोई दिव्यात्मा हो।

राजा—(इनाम स्वरूप अपने गले का हार देते हुए) लो दासी। इस शुभ सूचना को सुनाकर तुमने मुझे ही नहीं समस्त प्रजा को भी हर्षित किया है। यह लो अपना पुरस्कार।

दासी—महाराज की जय हो, महाराज सदा जयशील रहें, आपकी कीर्तिपताका सदैव फहराती रहे। (प्रणाम कर चली जाती है।)

मंत्री—स्वामिन्! अब मुझे भी प्रस्थान की आज्ञा दीजिए ताकि मैं भी सारी प्रजा को यह शुभ समाचार सुनाकर खुशियाँ मना सकूँ।

राजा—आज्ञा है मंत्रिवर! मैं भी अपने पुत्र का मुखावलोकन करने हेतु अन्तःपुर की ओर प्रस्थान करता हूँ। (राजा एवं मंत्री दोनों अलग-अलग दिशाओं में चले जाते हैं)

निर्देशक—(राजा अन्तःपुर जाकर पुत्र का मुखावलोकन करते हैं और अपने आनन्द को वृद्धिंगत करने वाले पुत्र का 'आनन्द कुमार' नामकरण करते हैं। इधर राज्य में सर्वत्र खुशियाँ मनाई जा रही हैं, सब तरफ उल्लास का वातावरण है)

—द्वितीय दृश्य—

निर्देशक—(कुमार आनंद अपने माता-पिता एवं कुटुम्बीजनों के आनन्द को वृद्धिंगत करते हुए धीरे-धीरे कुमारावस्था को पारकर युवावस्था में प्रवेश कर जाते हैं और सभी विद्याओं और कलाओं में पूर्ण निष्णात हो जाते हैं। महाराज वज्रबाहु उन्हें पूर्णरूपेण राज्यसंचालन में निपुण जानकर अपनी संपूर्ण राज्यलक्ष्मी को उन्हें सौंपने को उद्यत होते हैं और द्वारपाल से कहकर कुमार को बुलवाते हैं)

राजदरबार का दृश्य—मंत्रीगण राजा के साथ बैठे हैं।

युवराज आनन्द—(राजदरबार में प्रवेश कर) प्रणाम पिताश्री! आपने मुझे याद किया। कहिए, मेरे लिए क्या आज्ञा है?

राजा वज्रबाहु–हाँ पुत्र! आज मैंने तुम्हें एक विशेष कार्य हेतु बुलवाया है।

युवराज–आज्ञा करें पिताश्री!

राजा–(सिंहासन से उठकर पुत्र के समीप जाकर स्नेह से मस्तक पर हाथ फेरते हुए) बेटा! अब तुम पूर्णरूपेण राज्य संचालन के योग्य हो चुके हो अतः मैं इस राज्यलक्ष्मी को तुम्हें सौंपकर अब निश्चिन्त होकर धर्मध्यान में अपना मन लगाना चाहता हूँ।

युवराज–परन्तु पिताश्री! मैं.....

राजा–(बीच में ही) नहीं पुत्र! यह हमारी कुलपरम्परा रही है कि पुत्र के राज्यसंचालन में योग्य होने पर राजगद्दी उसे सौंपकर पिता जिनेन्द्रभक्ति में तत्पर हो अपना जीवन सफल करते हैं।

मंत्रीगण–परन्तु हे महाराज! आपकी रिक्तता, आपका विछोह, हम कैसे सहन कर पाएंगे।

युवराज–हाँ पिताश्री! कैसे रहेंगे हम आपके बिना?

राजा–अरे पुत्र! इतने समझदार होकर यह कैसी बातें कर रहे हो। वत्स! इस संसार में प्राणी अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है। देखो! मृत्यु का कोई भरोसा नहीं, मात्र अपने साथ एक जिनधर्म ही जाना है और आगे तुमको भी तो उसी परम्परा का निर्वाह करना है। (मंत्रियों से) मंत्रीगणों! शीघ्र ही युवराज के राज्याभिषेक की तैयारी करो।

मंत्रीगण–जो आज्ञा महाराज! (महाराज शीघ्र ही युवराज का राज्याभिषेक कर देते हैं और युवराज आनंद महाराज के रूप में कुशलतापूर्वक राज्य संचालन करने लगते हैं)

–तृतीय दृश्य–

(अयोध्यापति आनन्द कुमार महाराज की राज्यसभा। राज्यसभा में महामंडलीक पद को विभूषित करते हुए महाराज आनन्द कुमार रत्नखचित सिंहासन पर आरूढ़ हैं। वारांगनाएं चंवर ढोर रही हैं। आनन्द महाराज का विशाल वैभव है, आठ हजार मुकुटबद्ध राजा उनकी आज्ञा में हैं, चारों दिशाओं में महाराज के गुणों की उज्जवल कीर्ति व्याप्त हो रही है)

–राजसभा में राजनर्तकी का नृत्य–

पुनः समय पाकर स्वामिहित नामक विवेकशील मंत्री कहता है–

मंत्री–महाराज! इस समय ऋतुओं का राजा बसंत आ गया है। सर्वत्र सभी जन कुछ न कुछमहोत्सव कर रहे हैं।

महाराज–बताइए मंत्रिवर! हमें क्या करना चाहिए?

मंत्री–महाराज! अभी फाल्गुन सुदी अष्टमी से पूर्णिमा पर्यंत आष्टान्हिक महापर्व आ रहा है। इस अवसर में नंदीश्वर व्रत किया जाता है और महामहिम पूजा का अनुष्ठान भी होता है। हे प्रभो! जिनेन्द्र देव की पूजा सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली है पुनः पर्व के संयोग से वह पूजा अतिशय पुण्य को प्रदान करने वाली हो जाया करती है। जिनपूजा के समान इस जगत में और कोई उत्तम कार्य न हुआ है और न हो सकता है। जिनेन्द्रदेव की पूजा की भावना ही सभी दुःखों को दूर करने का एक अमोघ उपाय है।

महाराज–ठीक है मंत्रिवर! शीघ्र ही नंदीश्वर पूजा का भव्य आयोजन कीजिए और यह विशेष ध्यान रखिएगा कि इस विधान कार्य में जितने भी लोग बैठना चाहें उन सबकी उचित और अच्छी व्यवस्था हो।

मंत्री–जैसी आज्ञा महाराज।

निर्देशक–(शीघ्र ही मंत्रीवर वहाँ से निकल जाते हैं और अतुल वैभव के साथ नंदीश्वर पूजन का आयोजन करते हैं। उस विधान कार्य में अगणित लोगों ने भाग लिया। उस पूजा को देखने के लिएवहाँ पर विपुलमति नाम के मुनिराज पधारे। तब महाराज आनन्द उनके दर्शनार्थ जाते हैं और दिव्य उपदेश के साथ-साथ अपनी शंका का समाधान भी करते हैं)

राजा–नमोस्तु मुनिवर!

मुनिराज—सद्धर्मवृद्धिरस्तु।

राजा—प्रभो! आपका रत्नत्रय कुशल तो है?

मुनिराज—हाँ राजन्! मेरे रत्नत्रय की कुशलता है।

राजा—स्वामिन्! कृपा कर अपने धर्मामृत वचनों से हमें अभिसिंचित कीजिए।

मुनिराज—आयुष्मन्! सुनो! इस संसार में जिनपूजा के समान और कोई उत्तम कार्य न हुआ है और न हो सकता है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाली है और सर्वदा कल्याणकारी है।

राजा—भगवन्! मुझे कुछ संशय हो रहा है सो कृपया आप उसका निवारण कीजिए?

मुनिराज—अवश्य राजन्! कहिए, क्या शंका है?

राजा—गुरुदेव! ये जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाएं तो धातु-पाषाण आदि से निर्मित हैं अतः अचेतन हैं पुनः पूजन करने वाले सचेतन को ये पुण्य फल कैसे प्रदान कर सकती हैं?

मुनिराज—राजन्! आपने समयोचित प्रश्न किया है। सुनिये! यद्यपि ये जिनप्रतिमाएं अचेतन हैं और जिनेन्द्र मंदिर भी अचेतन हैं तथापि वे भव्य जीवों के लिए पुण्य बंध के ही कारण हैं। यथार्थ में पुण्य बंध परिणामों से होता है। जिनेन्द्र भगवान रागादि दोषों से रहित शस्त्र, वस्त्र, स्त्री, पुत्रादि से रहित हैं। उनके मुख की वीतराग सौम्य छवि परिणामों की उज्जवलता में कारण है। जिनमंदिर और उनकी प्रतिमाओं के दर्शन करने वालों के परिणामों में जितनी निर्मलता और प्रकर्षता होती है वैसी अन्य कारणों से नहीं हो सकती है।

राजा—परन्तु प्रभो! इनमें किसी का भला-बुरा करने की शक्ति कहाँ है?

मुनिराज—देखो! जैसे कल्पवृक्ष, चिंतामणि आदि अचेतन होते हुए भी मनवांछित और मन चिंतित फल देने में समर्थ हैं वैसे ही जिनप्रतिमाएं भी सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ हैं। प्रतिमारूप में वीतराग मुद्रा को देखकर जिनेन्द्रदेव का स्मरण होता है जिससे अनन्तगुणा पुण्यबंध हो जाता है। जैसे मणि, मंत्र, औषधि आदि अचेतन पदार्थ भी विष अथवा रोगादि को नष्ट करते हुए देखे जाते हैं वैसे ही जिनबिंब का दर्शन और पूजन भी समस्त पाप को भस्मसात् करने वाला है।

राजा—फिर तो इनकी निंदा करने वाला महापाप का बंध करता होगा?

मुनिराज—जो मूढ़जन जिनप्रतिमाओं का दर्शन नहीं करते हैं या उनकी निंदा करते हैं वे स्वयमेव अनंत संसार सागर में डूब जाते हैं जैसे कि राजा की मुद्रा आदि का अपमान करने पर मनुष्य राजद्रोही माना जाता है और राजा द्वारा दण्ड को प्राप्त होता है वैसे ही जिनमुद्रा से अंकित मूर्तियाँ साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के सदृश पूज्य मानी जाती हैं उनका अपमान करने वाला व्यक्ति धर्मद्रोही, आत्मद्रोही होता हुआ कर्म की मार से अनन्त दुखों को प्राप्त करता है।

निर्देशक—(इस प्रकार मुनिराज ने राजा को जिनप्रतिमाओं के दर्शन का फल बतलाते हुए उनके सामने तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन किया, जिसमें सर्वप्रथम वे सूर्य के विमान में स्थित जिनमंदिर का वर्णन करने लगे)

महामुनि—हे राजन्! सूर्य का विमान 48/61 योजन का है यह पृथ्वीतल से 32 लाख मील ऊँचाई पर है। इसमें बारह हजार किरणे हैं जो कि अति उग्र और उष्ण हैं। यह विमान अर्धगोलक के सदृश है।

राजा—प्रभो! इनका स्वरूप कृपया विस्तार से बताइए?

मुनिराज—इस सूर्य के विमान को आभियोग्य जाति के सोलह हजार देव सतत खींचते रहते हैं। यह पृथ्वीकायिक चमकीली धातु से बना हुआ है जो कि अकृत्रिम है। इस सूर्य बिम्ब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नामकर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं तथा उसके मूल में उष्णता न होकर किरणों में ही उष्णता होती है। आकाश में सूर्य की 184 गलियाँ हैं। इनमें से सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं चूँकि जम्बूद्वीप में 2 सूर्य और 2 चंद्रमा होते हैं।

राजा—महामुनिराज! सूर्य की गति क्या है?

मुनिराज–एक मिनट में सूर्य की गति लगभग चवालीस लाख छियत्तर हजार तेईस मील प्रमाण है।

राजा–प्रभो! यह सूर्य विमान हमें दिखाई तो देते नहीं हैं?

मुनिराज–राजन्! सूर्य विमान में नीचे का गोल भाग तो हम आपको दिख रहा है तथा ऊपर के समतल भाग में चारों तरफ गोल तटवेदी हैं जिसमें रत्नमय दिव्यकूट हैं उसमें अष्टमंगल द्रव्य, वंदनमाला, चंवर, घंटिका आदि से सहित जिनभवन हैं, जिनमें 108-108 जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं, ये हमें नहीं दिखाई देतेहैं।

राजा–वहाँ इनकी पूजा कौन करता है?

मुनिराज–वहाँ सभी देवगण गाढ़ भक्ति से अष्टद्रव्य से नित्य ही उनकी पूजा करते रहते हैं।

राजा–प्रभो! इनकी पूजन का क्या फल है?

मुनिराज–जो भव्यजीव इन जिनप्रतिमाओं की भक्तिभाव से पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं वे संसार के समस्त अभ्युदयों को भोगकर परम्परा से निर्वाणसुख को अवश्य ही प्राप्त कर लेते हैं।

राजा–इनमें सूर्यभवन कहाँ बने हुए हैं?

मुनिराज–इन जिनभवन के चारों ओर समचतुष्कोण, लम्बे और नाना प्रकार के सुंदर-सुंदर सूर्य देव के भवन बने हुए हैं। कितने ही भवन मरकतवर्ण के, कितने ही कुंद पुष्प के और कितने ही सुवर्ण सदृश बने हुए हैं, जिनमें सिंहासन पर सूर्यदेव विराजमान होते हैं।

निर्देशक–(इसी प्रकार से मुनिराज ने बहुत ही विस्तृत उपदेश दिया। सूर्य विमान के जिनमंदिर की असाधारण विभूति को सुनकर आनंद महाराज को बहुत ही श्रद्धा हो गई। वह राजा उस समय प्रतिदिन दोनोंसमय हाथ जोड़कर, मुकुट झुकाकर जिनप्रतिमाओं की स्तुति करने लगा और उन्हें अर्घ्य चढ़ाने लगा। इतना ही नहींउसने कारीगरों के द्वारा मणि और सुवर्ण का एक सूर्य विमान भी बनवाया और उसमें कांति से चकाचौंधयुक्त सुन्दर जिनमंदिरबनवाया, उसमें रत्नों की जिनप्रतिमाएं विराजमान कराईं पुनः उसने शास्त्रोक्त विधि से भक्तिपूर्वक आष्टान्हिक पूजा की और सर्वतोभद्रकल्पद्रुम आदि महापूजाएं कीं)

–चतुर्थ दृश्य–

निर्देशक–(याचकों को मुंहमांगा दान बाँटा जा रहा है, सर्वत्र राजा आनन्द की जयजयकार हो रही है और नाना चर्चाएं चल रही हैं)

एक–अरे भईया! बड़ा सामान ले रखा है, सुन्दर कपड़े, गहने, भोजन आदि, क्या कोई खजाना हाथ लग गया?

दूसरा–भाई! खजाना ही समझ लो, अपने राजाधिराज आनन्द ने सर्वतोभद्र, कल्पद्रुम आदि महापूजाएँ की हैं और किमिच्छक दान बांटा है, जाओ भाई, तुमको भी जो इच्छा हो ले लो।

तीसरा–अच्छा भइया! फिर तो हम भी चलते हैं।

दूसरा–और सुनोगे, क्या किया है महाराज ने?

पहला–क्या किया है भईया, जल्दी बताओ।

दूसरा–महाराज ने जब नंदीश्वर पूजा का आयोजन किया, तब वहाँ विपुलमति नाम के मुनिराज पधारे और उन्होंने महाराज को सूर्यविमान के जिनमंदिरों की असाधारण विभूति के बारे में बताया, जिसे सुनकर महाराज ने सोने का सुन्दर सूर्यविमान बनवाकर उसमें जिनमंदिर बनवाया है और उसमें रत्नप्रतिमाएँ विराजमान की हैं।

तीसरा–चलो भाई, चलकर उनके दर्शन भी करें। (वहाँ के दर्शन करते हैं)

दूसरा–देखा भइया! क्या दिव्य प्रतिमाएँ हैं, मैं तो इनकी नित्यप्रति पूजा करूँगा।

पहला–हाँ, आज से मैं भी सूर्य पूजा करूँगा।

दूसरा–भइया! तुम ही क्या, हम सब सूर्य पूजा करेंगे, जब अपने महाराज ने इतना सुन्दर मंदिर बनवाया है, तो आज से प्रतिदिन हम सूर्य पूजा करेंगे।

(इस प्रकार उन आनंद महाराज को सूर्य की पूजा करते देख उनकी प्रामाणिकता से देखा-देखी अन्य लोग भी स्वयं भक्तिपूर्वक सूर्यमण्डल की स्तुति करने लगे। आचार्य कहते हैं कि इस लोक में उसी समय से सूर्य की उपासना चल पड़ी है।)

–पंचम दृश्य–

(इस तरह आनंद नरेश बहुत काल तक धर्माराधन, जिनपूजन, दान आदि करते हुए सुख से प्रजा का पालन कर रहे हैं। आनंद नरेश देवेन्द्र के समान अपने महल में स्थित हैं। एक समय वह राज्यसभा में जाने के लिए तैयार हुए तभी दर्पण में मुख देखते ही उन्हें मस्तक पर एक धवल केश दिखाई दिया। राजा का मन कंपायमान हो उठा, तत्काल वे भोगों से और विशाल राज्यवैभव से उदास हो गए)

आनंद राजा–(सोच में) ओह! यह क्या! श्वेत केश! (एकदम कांप उठते हैं) बाल्य अवस्था व्यतीत हो गई, तरुणाई आ गई और अब वह भी विदा मांग रही है, जरा देवी ने अब मेरे इस शरीररूपी घर में प्रवेश कर लिया है। इस प्रकार से मरण समय नजदीक आ रहा है, वह देवी इस बात का सूचना पत्र लेकर ही आई है। बड़े दुःख की बात है कि मैंने इतना अमूल्य जीवन घर में व्यतीत कर दिया।

(उन्हें वैराग्य होते ही उनका मोहकर्म एकदम मंद हो गया और उन्होंने अपने मंत्रियों को शीघ्र ही बुला भेजा)

मंत्री–(अंदर आकर) प्रणाम महाराज! आपने मुझे याद किया?

राजा–हाँ मंत्रिवर! मैंने बहुत काल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया और अब मुझे उससे उदासीनता हो गई है अतः मैं इसका त्याग करना चाहता हूँ।

दूसरे मंत्री–किन्तु महाराज! आपके बिना यह राज्यवैभव सब सूना है। हम सब अनाथ हो जाएंगे प्रभो!

राजा–देखो! बालक देह कोंपल है, यौवन में वह पत्ते रूप हो जाता है, वृद्धावस्था पके हुए पीले पत्ते के सदृश है, जो कि कालरूपी हवा के झकोरे से गिर जाता है। कोई जीव गर्भ में ही मर जाते हैं, कोई बाल्यावस्था धारण कर चले जाते हैं, कोई यौवन में नरकाया से वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार से मरण के समय का कुछ भी नियत काल नहीं है। परन्तु यह बात अवश्य ही निश्चित है कि जो जन्म लेता है वह मरता अवश्य है। भाई! पर्वत से पड़ती हुई नदी के समान क्षण-क्षण में आयु निकलती चली जा रही है। अतः हमें शीघ्र ही आत्महित के कार्य में लग जाना चाहिए।

तीसरे मंत्री–राजन्! किन्तु महाराज.....

महाराज–प्रिय मंत्रियों! मैं अपने बड़े और सुयोग्य पुत्र को राज्यभार सौंप रहा हूँ और फिर जहाँ इतने कुशल मंत्री हों, वहाँ क्या चिन्ता! आप शीघ्र ही राजतिलक की तैयारियाँ करवाइए।

(मंत्रीगण उदास मन से राज्यतिलक की तैयारी करते हैं, हर्ष व विषाद मिश्रितसभा में राजा अपने बड़े पुत्र को राज्यभार सौंप देते हैं और आप स्वयं सागरदत्त मुनिराज के समीप पहुँचकर दीक्षा की याचना करते हैं)

–छठा दृश्य–

(राजा आनंद मुनिराज सागरदत्त के श्रीचरणों में बैठे हैं और प्रार्थना कर रहे हैं)

महाराज आनंद–हे गुरुदेव! मैं अब इस संसार समुद्र से पार होने के लिए चारित्ररूपी जहाज पर बैठना चाहता हूँ, सो आप मेरे कर्णधार होइए और मुझे इस अपार संसार से शीघ्र ही पार पहुँचाइए।

मुनिराज–आपने बड़ा ही उत्तम विचार किया अयोध्या नरेश। इस असार संसार को पार करने के लिए जिनमुद्रा को धारण करना सर्वोत्तम है।

निर्देशक–(तरणतारण महामुनि सागरदत्त ने अनेकों राजाओं के साथ उन महामंडलेश्वर आनन्द नरेश को दिगम्बरी दीक्षा दे दी। जिनमुद्रा को धारण कर आनंद मुनिराज महान आनंद और उत्साह के साथ इन मूलगुणों का पालन करने लगे। शुभ लेश्या के धारक उन मुनिराज ने चारों आराधनाओं की आराधना की थी। गुरु के पादमूल में बैठकर उन्होंने ग्यारह अंग तक श्रुत का अध्ययन किया। अनंतर तीर्थंकर नामकर्म के लिए कारणभूत ऐसी सोलहकारण भावनाओं का

चिंतवन किया और सातिशय तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। तपश्चरण के प्रभाव से उन्हें अनेकों प्रकार की ऋद्धियाँ उत्पन्न हो गईं। वे योगिराज जिस वन में ध्यान लगाते हैं सभी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। षट्ऋतु के फल-फूल एक साथ आ जाते हैं, क्रूर पशु जो जात विरोधी हैं प्रेम से मिलकर विचरण करते हैं। महामुनि आनंद महाराज अपनी ही शुद्ध आत्मा के अनुभव से उत्पन्न हुए वीतराग सुखामृत का पान करके तृप्त हो रहे हैं।)

–सप्तम दृश्य–

(एक समय वे मुनिराज क्षीरवन में प्रायोपगमन सन्यास लेकर प्रतिमायोग से ध्यान में लीन हो गए। उसी समय भयंकर गर्जना करता हुआ एक सिंह वहाँ आता है जो कि कमठचर पापी भील का जीव नरकों के भयंकर दुखों को भोगकर आया है। मुनिराज को देखकर उसकी क्रोध कषाय भड़क उठती है और वह दहाड़ मारकर मुनिराज पर धावा बोल देता है।)

(मुनिराज ध्यान में अविचल हैं तभी उधर से एक सिंह निकलता है)

सिंह–(मन में) अरे! मनुष्य, आज तो अच्छा शिकार हाथ लगा (थोड़ा सा आगे बढ़ता है) ओह! यह तो वही दुष्ट है, मेरा जन्म-जन्म का बैरी शत्रु, इसी के कारण मुझे बड़ी यातनाएं सहनी पड़ी हैं और देखो तो कैसा भोला बना बैठा है, अभी डराता हूँ।

(जोर से गर्जना करता है किन्तु मुनिराज ध्यान में लीन हैं, उन पर उस गर्जना का कोई असर नहीं होता है), सिंह पुनः सोचता है–

अच्छा! मेरी भयंकर गर्जना को सुनकर अच्छे-अच्छे कांप जाते हैं, मगर यह तो शांतचित्त है (उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठती है और वह दहाड़ मारकर मुनिराज पर धावा बोल देता है और उनके कंठ को पकड़ लेता है)।

मुनिराज–(धर्मध्यान में लीन हो जाते हैं) अरे! यह तो वही मेरा भाई कमठ का जीव है, इस क्रोध कषाय ने इसे कितने भवों तक कष्ट दिया मगर इतना क्रोध। खैर, कोई बात नहीं, मुझे समता भाव का आश्रय लेना है। मैं शुद्ध-बुद्ध-नित्य-निरंजन, परमात्मा हूँ, यह आत्मा शुद्ध स्फटिक सम है, सिद्धशिला पर गमन करने वाली है मुझे शुद्धात्म तत्त्व का चिंतवन करना है। (और वे आत्मचिंतवन में लीन हो जाते हैं।)

निर्देशक–(मुनिराज ध्यान में लीन हैं और वह क्रूर सिंह तीक्ष्ण नखों से मुनिराज के शरीर का विदारण करता है और सारे बदन को छिन्न-भिन्न कर देता है। इस पशुकृत उपसर्ग को वे साधुराज परम शांतभाव से सहन करते हैं। परम धीर-वीर तपोधन दुःसह वेदना को कुछ ना गिनते हुए अपने ज्ञानपुंज स्वरूप, अनंत गुणों के निधान आत्मा के चिंतन में अपना उपयोग लगा देते हैं और उसके प्रभाव से वे इस नश्वर भौतिक मल-मूत्र के पिंडस्वरूप देह को छोड़कर दिव्य वैक्रियक देह को धारण कर आनत स्वर्ग में आनतेन्द्र हो जाते हैं।)

आनतेन्द्र (नवमाँ भव)

–मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य–

(स्वर्ग में इन्द्र का दरबार लगा हुआ है, अप्सरा द्वारा नृत्य चल रहा है। नृत्य के बाद वहाँ आज देवों में कुछ चर्चा चल रही है)

इन्द्र–स्वर्गलोक के मेरे प्रिय देवगणों! आज की सभा में हम आपको एक विशेष जानकारी प्रदान करने जा रहे हैं।

देव–देवराज! कृपया बताइये कि ऐसी कौन सी विशेष जानकारी आप हमें देने वाले हैं।

इन्द्र–मित्रों! आज हमारे आनत नामक स्वर्ग में एक महापुण्यशाली आत्मा देवरूप में जन्मलेने वाली है।

देव–स्वामी! उन पुण्यशाली आत्मा की क्या विशेषता है?

इन्द्र–देवसाथी, उस पुण्यशाली आत्मा के बारे में मैं आपको अवश्य बताऊँगा, वह महान आत्मा जम्बूद्वीप के

भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में शाश्वत जन्मभूमि अयोध्यानगरी के राजा आनन्द के रूप में थी, जिसने सागरदत्त नामक महामुनिराज से जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन किया और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया, वही राजा आनंद अपनी आयु पूर्ण कर समाधिपूर्वक अपने नश्वर शरीर का त्यागकर यहाँ आनतेन्द्र के रूप में जन्म लेने वाले हैं।

इन्द्र—हे इन्द्रराज! यह आनतेन्द्र कौन सी नगरी में कौन से तीर्थंकर के रूप में जन्मेंगे?

इन्द्र—मित्रवर! वह जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में वाराणसी नगरी के राजा अश्वसेन की प्रिय महारानी वामादेवी से तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के रूप में जन्मेंगे।

सभी देव-देवी मिलकर—(खड़े होकर) जय हो, जय हो, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय हो। वाराणसी नगरी की जय हो। हे इन्द्रराज! अब हमें बताइये कि हम क्या-क्या तैयारी करें, जिससे कि वे देवसाथी सदैव प्रसन्न रहें।

इन्द्र—मित्रों! आप सब स्वर्ग के विमान को खूब सुसज्जित करें और देखिए उपपाद शैय्या तो ठीक है ना! उसे फूलों से खूब सुसज्जित करिए।

सभी—ठीक है मित्रवर!

(सभी जयजयकार करते हुए निकल जाते हैं)

—दूसरा दृश्य—

निर्देशक—(स्वर्ग में सुन्दर फूलों से सुसज्जित उपपाद शैय्या तैयार है, शैय्या ऊपर चारों ओर से ढ़की हुई है। अन्दर एक सोलहवर्षीय नवयुवक निद्रा में लीन है। बाजे, नगाड़ों की ध्वनि हो रही है, पुष्पों की वर्षा तथा मन्द-मन्द वायु चल रही है, जय-जयकार से दशों दिखाएँ मुखरित हो रही हैं, अनेक देव-देवी हाथ जोड़कर शैय्या के चारों ओर खड़े हैं। तभी वह देव उठकर बैठ जाते हैं।)

आनतेन्द्र—(हाथ जोड़कर णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हैं) ॐ नमः सिद्धेभ्यः-3।।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं.....।। ओह! मैं कौन हूँ? मैं यहाँ कहाँ आ गया? मैं इतनी सुन्दरता कहाँ की देख रहा हूँ? कौन हैं ये लोग, इतने सुन्दर और मुझे नमस्कार कर रहे हैं। (पुनः अवधिज्ञान से जानकर) ओह! मैं स्वर्ग में देव हुआ हूँ।

सभी देवगण—हम सभी देवों का प्रणाम स्वीकार करें। स्वर्ग में आपका आगमन मंगलकारी हो। आप तेरहवें स्वर्ग में आनतेन्द्र के रूप में जन्मे हैं।

आनतेन्द्र—ओह! मैं राजा आनन्द की पर्याय में था। मैंने वहाँ कुशलतापूर्वक राज्य संचालन कर वैराग्य हो जाने से दीक्षा ग्रहण कर ली थी और सोलहकारण भावनाओं का चिन्तवन करते हुए समाधिपूर्वक शरीर का त्याग किया था जिससे मैं चौदहवें स्वर्ग में जन्मा हूँ, अब मुझे पुनः उसी धर्म की शरण लेनी है।

एक देव—(समीप जाकर) हे स्वामिन्! आपकी जय हो, आप पुण्यवान हैं। प्रभो! स्नान की सभी सामग्री तैयार है अतः आप शैय्या का त्यागकर मंगल स्नान करें, पुनः जिनेन्द्र भगवान की पूजन करने चलेंगे। इसके बाद अपने वैभव का सर्वेक्षण करने चलें।

(आनतेन्द्र नहा धोकर सुन्दर वस्त्र पहनकर तैयार हो जाते हैं और देवसाथियों के साथ अकृत्रिम जिनमंदिर में पहुँचकर अभिषेक पूजन करते हैं) (यहाँ मंदिर का दृश्य दिखावें) पुनः स्वर्ग में वापस आते हैं—

—तृतीय दृश्य—

एक देव साथी—(आनतेन्द्र को उनका वैभव दिखाते हुए) देखिए मित्रवर! अब मैं आपको यहाँ की सारी व्यवस्था बता रहा हूँ। हे देवोत्तम! स्वर्ग के ये दिव्य वस्त्र, माला, मुकुट आदि ग्रहण करें, जो हमेशा खिले हुए पुष्प के समान आपके शरीर को सुशोभित करेंगे।

आनतेन्द्र—धन्यवाद देव! आपके इस स्नेह के लिए मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। हम और आप सभी मिलकर यहाँ स्वर्ग के सुखों का उपभोग करते हुए धर्माराधना करेंगे, क्योंकि धर्म से बढ़कर संसार में कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

(पुनः कुछ देवियों को उनकी सेवा में प्रस्तुत करते हुए)

देव—हे देवश्रेष्ठ! इस स्वर्ग में यह देवियाँ सदैव आपकी सेवा में तत्पर रहा करेंगी और आपका मनोरंजन करती हुई दिव्य भौतिक सुख प्रदान करेंगी।

(वे देवियाँ आगे बढ़कर आनतेन्द्र के चरण स्पर्श कर कहती हैं)

देवियाँ—हे देव! हमारे लिए क्या आज्ञा है?

आनतेन्द्र—देवियों! आइए हम सब नंदीश्वर द्वीप की वंदना के लिए चलें, वहाँ पूजन के पश्चात् सीमंधर स्वामी के समवसरण में चलेंगे।

एक देवी—नाथ! क्या आप वहाँ के वनों में क्रीड़ा हेतु भी चलेंगे।

आनतेन्द्र—नहीं देवी! सर्वप्रथम जिस धर्म के प्रभाव से मुझे यह सब लक्ष्मी प्राप्त हुई है उस जिनधर्म की आराधना हेतु चलेंगे। (प्रीतिपूर्वक) देखो देवी! यह रूप-सौंदर्य आदि भी आप लोगों को पूर्वजन्म के पुण्य प्रभाव से मिला है।

सभी देवियाँ—चलिए स्वामिन्! हम तैयार हैं।

(आनतेन्द्र देव-देवियों के साथ नंदीश्वर द्वीप की वंदना हेतु जाते हैं और वहाँ पूजन आदि करके सीमंधर स्वामी के समवसरण में चल देते हैं)

—चतुर्थ दृश्य—

(सीमंधर स्वामी का समवसरण है, देव अपनी देवियों के साथ अपने योग्य कोठे की ओर बढ़ते हुए देव-देवियों को वहाँ का वैभव दिखाते हैं)

आनतेन्द्र—देखो मित्रों! देखो देवियों! यह जिनधर्म की ही महिमा है जिसके प्रभाव से मनुष्य तीर्थंकर पद की प्राप्ति कर लेता है।

एक देव—ओह! कैसा अनुपम दृश्य है, चारों ओर मानस्तंभ में जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं। सरोवर, वाटिका, बावड़ी, नाट्यशाला, धर्मसभा सब कुछ अद्भुत है।

आनतेन्द्र—देवियों! मित्रों! चलिए, धर्मसभा में अपने योग्य कोठे में बैठकर दिव्यध्वनि का पान करें।

सभी देव-देवी—चलिए प्रभो!

(वह सभी देव-देवियों के साथ समवसरण में स्थित बारह सभा में अपने योग्य कोठे में बैठ जाते हैं और भगवान की ॐकारमयी दिव्यध्वनि खिरती है जिसे गणधरदेव श्रवण कर विस्तार से बताते हैं)

तीर्थंकर भगवान—इस संसार में धर्म से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। इस धर्म के द्वारा प्रत्येक प्राणी अपने को मोक्षमहल का स्वामी बना सकता है।

आनतेन्द्र—प्रभो! धर्म का अर्थ क्या है?

भगवान—जो संसार के दुखों से निकालकर उत्तम सुख में पहुँचा दे वही धर्म है।

आनतेन्द्र—त्रैलोक्याधिपति! इस धर्म को पूर्णरूप से कैसे ग्रहण कर सकते हैं।

भगवान—ज्ञानावरण आदि आठ कर्म जो हमें हर क्षण दुख देकर चतुर्गतियों में भ्रमण कराते हैं, उनको पूर्णरूप से नष्ट करके हम इस धर्म को आत्मसात कर परमात्मस्वरूप की प्राप्ति कर सकते हैं।

आनतेन्द्र—भगवन्! क्या हम भी परमात्मा पद प्राप्त कर सकते हैं?

भगवान—भव्यात्मन्! अभी आप देवपर्याय में हैं, जब आप मनुष्य पर्याय की प्राप्ति करेंगे तो पुरुषार्थपूर्वक अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकते हैं।

(सीमंधर स्वामी का धर्मोपदेश ग्रहण कर आनतेन्द्र देव-देवियों के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते हैं।)

–पंचम दृश्य–

(स्वर्ग के सुखों को भोगते हुए वह इन्द्र अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके शरीर में मल-मूत्र, पसीना आदि नहीं हैं, न उनकी पलकें लगती हैं। न नख और केश ही बढ़ते हैं। बुढ़ापा, अकाल मृत्यु और व्याधि वहाँ नहीं है। वह कभी ऋषि, मुनियों के दर्शन का लाभ लेते हैं, कभी नंदन वन में क्रीड़ा करते हैं, तो कभी सभा में बैठकर देव-देवांगनाओं को संतुष्ट करते हुए मनोविनोद करते हैं। कभी-कभी उन्हें धर्म का उपदेश देते हुए कृतार्थ हो जाते हैं। भावी तीर्थंकर वे आनतेन्द्र इस अतुल वैभव को भोगते हुए भी उसमें आसक्त नहीं हैं।

बीस सागर की उनकी आयु है। बीस हजार वर्ष बाद मानसिक अमृतमयी आहार है और 20 पक्ष बीत जाने पर वे उच्छ्वास लेते हैं। साढ़े तीन हाथ का उनका दिव्य शरीर है)

(यहाँ आनतेन्द्र को बाग-बगीचे में घूमते हुए दिखावें, पुनः देवसभा में देवांगना का नृत्य देखकर मनोरंजन करते हुए दिखावें।)

–छठा दृश्य–

(आनतेन्द्र स्वर्ग सुख में निमग्न हैं अचानक उन्हें अवधिज्ञानपूर्वक यह ज्ञात हो जाता है कि अब मेरी आयु के मात्र छः माह शेष बचे हैं।)

आनतेन्द्र–(मन में) ओह! देखते-देखते मेरी बीस सागर की आयु पूरी हो गई और मेरा अन्त समय आ गया। अब मुझे प्रतिक्षण जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में तल्लीन हो जाना चाहिए।

(तभी वहाँ देवगण प्रवेश करते हैं और उन्हें विचारमग्न देखकर पूछते हैं)

एक देव साथी–प्रभो! किस चिन्तन में मग्न हैं?

आनतेन्द्र–मित्र! चूँकि मेरी आयु का अन्तकाल नजदीक आ रहा है अतः अब मुझे भगवान की भक्ति में तत्पर हो जाना चाहिए।

दूसरे देव–हे महाभाग! क्या आप हमें छोड़ देंगे?

तीसरे देव–हे स्वामी! हमें आपके बिना धर्म का मार्ग कौन दिखाएगा?

आनतेन्द्र–देखो मित्रों! सच्चे धर्म का मार्ग तो यही है कि इस समय आप विषाद न करें बल्कि मुझे जिनधर्म में और दृढ़ करें। आप ही तो कहते थे कि आप भावी तीर्थंकर हैं फिर अगर मैं मोह में पड़ गया तो क्या होगा? अच्छा तो यही है कि मैं प्रतिक्षण प्रभुभक्ति करूँ।

देवगण–हे महामानव! हे श्रेष्ठवर! हे भावी तीर्थंकर भगवान! आपने हम सभी को उत्तम मार्ग दिखाया है, एक क्षण के लिए तो हम भी आपके मोह में पड़ गए थे, लेकिन संसार में चतुर्गति भ्रमण का कारण यह मोह ही है। जिसने इस पर विजय पाई, वही जिन बन सकता है।

आनतेन्द्र–बिल्कुल ठीक समझे मित्रों! चलिए, अब जिनमंदिर में चलें।

देवगण–चलिए स्वामी! हम सब जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के लिए चलें।

(सभी देव-देवी आनतेन्द्र के साथ जिनमंदिर में पहुँचते हैं और भगवान की भक्ति में लीन हो जाते हैं, देखते-देखते छः माह भी व्यतीत हो जाते हैं और आयु का अंत समय जानकर आनतेन्द्र एक रत्नजटित शिला पर बैठकर ध्यान में लीन हो जाते हैं)

आनतेन्द्र–ॐ सिद्धाय नमः.....।।

(इस प्रकार उनकी आयु पूर्ण हो जाती है और वह वाराणसी नगरी में महाराज अश्वसेन की महारानी वामादेवी के पवित्र गर्भ में सीप में मोती के समान अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं।)

भगवान पार्श्वनाथ (दसवाँ भव)

निर्देशक–(वाराणसी नगरी में महाराज अश्वसेन अपने सिंहासन पर स्थित हैं–बंदीगण महाराज के अगणित गुणों का बखान कर रहे हैं तथा समय-समय पर मंत्रीगण राज्य की सुव्यवस्था और प्रजा के सुख वैभव का वर्णन करते हुए महाराज को प्रसन्न कर रहे हैं। इसी बीच सौधर्म स्वर्ग में अपनी सुधर्मा सभा में बैठे सौधर्म इन्द्र ने अपने दिव्य अवधि लोचन से कुछ देखकर पुनः धनपति कुबेर को बुलाकर कहते हैं।

–सौधर्म इन्द्र की सुधर्मा सभा का दृश्य–

–अप्सरा द्वारा नृत्य–

अचानक सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है और वे अपने अवधिज्ञान से सब बातें जान जाते हैं–

सौधर्म इन्द्र–ओह! यह क्या! मेरा आसन क्यों कंपायमान हो रहा है। (सोचकर) अरे! वाराणसी नगरी में आज से 15 माह पश्चात् तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जन्म लेने वाले हैं। आज से नौ माह पश्चात् वे महारानी वामादेवी की पवित्र कुक्षि से अवतरित होंगे। जय हो, जय हो, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय हो।

(पुनः धनपति कुबेर का स्मरण करते हैं और कुबेर का आगमन होता है।)

धनकुबेर–(प्रवेश कर) प्रणाम इन्द्रराज! आपने मुझे याद किया। कहिए स्वामिन्! क्या आज्ञा है?

सौधर्म इन्द्र–हे धनद! आनन्द नरेश का जीव जो कि यहाँ आनत स्वर्ग में इन्द्रपद के सुखों का उपभोग कर रहा है उसकी आयु छह माह ही शेष रही है, वे तेईसवें अवतार हैं। इसलिए अब शीघ्र ही तुम बनारस नगर में जाओ और त्रिभुवनतिलक के जनक बनने का अतिशय सौभाग्य प्राप्त करने वाले महाराजा अश्वसेन के महल में लगातार 15 माह तक रत्नों की वर्षा करना शुरू कर दो।

धनकुबेर–जो आज्ञा महाराज!

निर्देशक–(इतना कहकर हाथ जोड़कर इन्द्रराज को प्रणाम कर वह वहाँ से वाराणसी नगरी में पहुँचता है और माता वामादेवी के आंगन में अमूल्य रत्नों की वर्षा करना प्रारंभ कर देता है, उस समय ऐसा मालूम होता है कि मानों स्वर्गलोक की लक्ष्मी ही जिनमाता की सेवा के लिए उतरी हो।

राजमहल में रत्नवृष्टि हो रही है यह देखकर जनता आश्चर्यचकित है–

एक व्यक्ति–देखो, देखो, रत्नवृष्टि हो रही है, कैसा अनुपम दृश्य है।

दूसरा–हाँ, वह तो मैं भी देख रहा हूँ, पर इतना तो बताओ कि यह वृष्टि क्यों हो रही है?

पहला–अरे भाई! कमाल है, क्या तुम्हें यह भी नहीं मालूम! अपने महाराज अश्वसेन हैं ना। उनकी रानी वामादेवी से तीर्थंकर प्रभु का जन्म होने वाला है।

दूसरा–क्या कहा? पुत्र जन्म होने वाला है। लेकिन यह जो रत्नवृष्टि कर रहा है, उसे कैसे मालूम हुआ? (धनकुबेर की ओर इशारा कर)

पहला–भईया! तुम्हें नहीं मालूम, यह तो स्वर्ग से ही आए हुए धनकुबेर हैं।

दूसरा–क्या! धनकुबेर! मुझे विस्तार से बताओ भाई।

पहला–सुनो! सौधर्म इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से सब कुछ जानकर धनकुबेर को यहाँ रत्नवृष्टि करने भेजा है।

दूसरा–अच्छा! समझ गया, अपने वाराणसी नगरी में तीर्थंकर भगवान जन्म लेने वाले हैं।

पहला–हाँ, अब से पन्द्रह माह तक लगातार रत्नवृष्टि होगी।

दूसरा–भला, पन्द्रह मास तक क्यों?

पहला–इसलिए क्योंकि आज से छह महीने बाद प्रभु गर्भ में आएंगे और नव महीने बाद जन्म लेंगे।

दूसरा–सचमुच तीर्थंकर प्रभु की महिमा अपार है।

एक अन्य पुरुष—भाइयों! जब जन्म से पहले ही इतना अतिशय है तो जन्म लेने के बाद बड़ा ही आनन्द आएगा।

(तभी एक बहन उधर आती है)

बहन—भाई! देखो तो, आकाश से उत्तम-उत्तम रत्नों की वृष्टि हो रही है। क्या सुन्दर दृश्य है।

तीसरा—हाँ बहन! बड़ा ही मनोरम दृश्य है। चलो, राजमहल में चलकर रत्न लेकर आते हैं। चलो भाईयों! तुम सब भी चलो।

—द्वितीय दृश्य—

(वामा माता राजमहल में माणिक्यजड़ित रत्नयुक्त पलंग पर कोमल शैय्या पर सो रही हैं। रात्रि के अंतिम प्रहर में माता ने जिनजननी के पदभार को ग्रहण करते हुए उत्तम-उत्तम सोलह स्वप्न देखे। अंत में उन्होंने देखा कि एक उन्नत कंधों वाला बैल मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है। ऐसा देखकर एक क्षण तो वह चौंक उठती हैं पुनः प्रसन्नमना हो निद्रा का परित्याग करती हैं।)

महारानी वामादेवी—(उठकर बैठकर) ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ.....। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं (पुनः प्रसन्नमना हो देवियों की तरफ देखती हैं)

पहली देवी—हे माता! आज आप बहुत प्रसन्न दिखाई दे रही हैं, सो क्या कारण है?

दूसरी देवी—हाँ माता! आज आप विशेष प्रसन्न दिखाई दे रही हैं, क्या कोई खास कारण है?

माता—हाँ देवियों! आज मेरी प्रसन्नता का कुछ विशेष ही कारण है।

तीसरी देवी—माता! वह कारण क्या है? हमें भी बताइये।

माता—देवियों! आज रात्रि के अंतिम प्रहर में एक, दो नहीं अपितु पूरे सोलह स्वप्न देखे हैं।

चौथी देवी—माता! जरूर कोई दिव्य स्वप्न देखे होंगे।

पांचवी देवी—महारानी जी! कृपया उन स्वप्नों के बारे में हमें भी बताइये।

छठी देवी—हाँ माता! बताइए ना! वे दिव्य स्वप्न क्या हैं?

माता—देवियों! इतनी अधीर मत होवो। अभी स्नान आदि से निवृत्त होकर राजसभा में चलूँगी, वहीं महाराज से उन स्वप्नों का फल पूछूंगी, तब आप सब भी सुन लेना।

सातवीं देवी—ठीक है माता। (अपनी सखियों से) सखी! माता के स्नान आदि की जल्दी व्यवस्था करो।

आठवीं देवी—बहन! उबटन, गर्म जल आदिक सब तैयार है।

(देवियाँ माता को स्नान करवाकर उन्हें शृँगारित करती हैं और महारानी वामादेवी राजसभा में महाराज से उनका फल जानने हेतु प्रस्थान करती हैं।

—तृतीय दृश्य—

(महाराज अश्वसेन राजसिंहासन पर बैठे हैं। महारानी राजदरबार में प्रवेश करती हैं)

द्वारपाल—सावधान! महारानी वामादेवी अपनी सखियों के साथ राजदरबार में पधार रही हैं।

(महारानी महाराज के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करती हैं और उनके द्वारा उचित आदर को प्राप्त करके अर्धासन पर बैठ जाती हैं।)

महारानी—हे स्वामिन्! आपको नमस्कार हो।

महाराज—(आसन की ओर इशारा करते हुए) आइए महारानी! अर्धासन ग्रहण करिये, कहिए, आज राजदरबार में किस कारण से आना हुआ?

देवियाँ—प्रणाम पिताश्री!

महाराज—बैठो देवियों!

महारानी—महाराज! आज राजदरबार में मेरे आने का कारण मेरे स्वप्न हैं।

महाराज—कैसे स्वप्न देवी! कहिए वे क्या हैं?

महारानी—महाराज! पहले स्वप्न में मैंने ऐरावत हाथी देखा, दूसरे स्वप्न में शुभ्र बैल को देखा, तीसरे स्वप्न में सिंह, चौथे में कमल पर विराजमान लक्ष्मी, पांचवें स्वप्न में दो फूलमाल, छठवें स्वप्न में उदित होता हुआ सूर्य, सातवें स्वप्न में ताराबलि से वेष्ठित पूर्ण चन्द्रमा, आठवें स्वप्न में जल में तैरती हुई मछलियों का युगल, नवमें स्वप्न में कमल से ढके हुए पूर्ण स्वर्ण कलश को देखा। दसवें स्वप्न में मैंने कमल पुष्पों से भरा सरोवर, ग्यारहवें स्वप्न में चंचल तरंगों से युक्त समुद्र, बारहवें स्वप्न में मणिमय सिंहासन, तेरहवें स्वप्न में देवविमान, चौदहवें स्वप्न में धरणेन्द्र भवन, पन्द्रहवें स्वप्न में रत्नों की राशि और सोलहवें स्वप्न में निर्धूम अग्नि देखी है, इस प्रकार मैंने ये सोलह स्वप्न देखे हैं।

महाराज—उत्तम, अति उत्तम! शुभ स्वप्न हैं प्रिये।

महारानी—महाराज! इन सोलह स्वप्नों को देखने के पश्चात् मैंने देखा कि एक उन्नत कंधों वाला शुभ्र बैल मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है।

(महारानी उन स्वप्नों को निवेदन करके उनके फल की जिज्ञासा में प्रत्युत्तर की अपेक्षा करती हैं। उसी समय महाराज अपने अवधिज्ञान के बल से चिंतवन कर एक-एक स्वप्न के फल को पृथक्-पृथक् बतलाते हैं, पुनः कहते हैं—

महाराज—देवी! आपके गर्भ में त्रैलोक्यपती तीर्थंकर का जीव अवतरित हो चुका है, आप जगत्पति पुत्ररत्न को प्राप्त करेंगी, जिसके पुण्यफल के निमित्त से ही तो रुचकपर्वतनिवासनी तथा कुलाचलवासिनी देवियाँ आकर आपकी सेवा कर रही हैं।

निर्देशक—(वामा देवी अपने पतिदेव के मुखचन्द्र के वचनामृत से परम सन्तोष और हर्ष को प्राप्त होती हुई अपनी स्त्रीपर्याय को सार्थक समझती हैं सभी प्रजाजन भी हर्ष से पुलकित हो उठते हैं,सखियाँ भी हर्ष से रोमांचित हो जाती हैं तथा महारानी वामादेवी के साथ हंसी-मनोरंजन करते हुए उन्हें अन्तःपुर में ले जाती हैं)

(तीर्थंकर के पुण्य के प्रभाव से स्वयं ही देवों के यहाँ आसन कंप आदि के द्वारा सूचना मिल जाने से सौधर्म इन्द्र असंख्य देव परिवारों के साथ आकर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ माता की सेवा करते हुए उन्हें आनन्दित किया करती हैं और नाना प्रकार के प्रश्नों को करके वामादेवी के मुख से उनका चमत्कारिक उत्तर प्राप्त करके अपने आपको कृतार्थ कर रही हैं)

(गर्भकल्याणक का नृत्य)

—चतुर्थ दृश्य—

निर्देशक—(इस प्रकार गर्भावतार के 9 माह तक लगातार वाराणसी नगरी में विभिन्न उत्सव होते रहे और देखते-देखते नव माह भी पूर्ण हो गए। पौष वदी एकादशी की उत्तम तिथि के दिन सर्वश्रेष्ठ बेला में पूरब दिशा के समान वामादेवी ने त्रिभुवन कमल को विकसित करने वाले अद्भुत सूर्य स्वरूप पुत्र को जन्मदिया। जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी उन तीर्थंकर शिशु के जन्म से सभी दिशाएं निर्मल हो उठीं, नरकों में भी क्षणभर के लिए शान्ति छा गई और स्वर्गों से बिना बजाए ही बाजे बजने लगे। इन्द्रों के आसन अपने आप कंपायमान हो उठे और उनके मस्तक के मुकुट स्वयमेव ही झुक गए)

—स्वर्ग का दृश्य—

(स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर भगवान का जन्म हुआ जानकर अपने सिंहासन से उतरकर सात पैंड आगे बढ़कर परोक्ष में प्रभु को नमस्कार करते हैं, पुनः आदेश देते हैं—)

सौधर्म इन्द्र—हे देवों! ऐरावत हाथी को खूब सजाकर तैयार करो, हम सब मध्यलोक चलकर तीर्थंकर भगवान का जन्मकल्याणक उत्सव मनाएंगे।

देवगण—जो आज्ञा इन्द्रराज!

(सौधर्म इन्द्र अपने विशाल परिकर के साथ दुन्दुभि बाजे, जयजयकार आदि से आकाशमंडल को गुंजायमान करते हुए मध्यलोक के आर्यखण्ड की वाराणसी नगरी में पहुँचते हैं और नगरी की तीन प्रदक्षिणा देकर राजदरबार में प्रवेश करते हैं)

देवों का सामूहिक स्वर–तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय हो। वाराणसी नगरी की जय हो। महाराजा अश्वसेन की जय हो। महारानी वामादेवी की जय हो।

सौधर्म इन्द्र–(महाराज अश्वसेन से) हे पूज्य तात! हमें भी प्रभु का जन्मोत्सव मनाने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

पिता अश्वसेन–(खुशी से) हाँ-हाँ क्यों नहीं! इन्द्रराज! हमारे लिए इससे बढ़कर प्रसन्नता की और क्या बात होगी। जाइए, प्रभु का जन्मोत्सव मनाइए।

सौधर्म इन्द्र–(शचि इन्द्राणी से) हे शचि! आप शीघ्र ही प्रसूतिगृह में जाकर जिनशिशु का दर्शन करिए और अपनी स्त्रीलिंग को छेदकर अपने इस जन्म को सफल करिए। और हाँ, जल्दी ही जिनशिशु को लेकर आना, मैं भी प्रभु का दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल करूँगा और प्रभु को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक करूँगा।

(इन्द्राणी तत्काल प्रसूतिगृह में जाकर दिव्य देहधारी पार्श्वकुमार एवं जिनमाता का दर्शन करती हैं और जिनमाता की बार-बार प्रशंसा करते हुए कहती हैं)

इन्द्राणी–हे महादेवी! आप तीनों जगत के स्वामी को उत्पन्न करने के कारण समग्र विश्व की माता हो एवं आप ही महादेवी भी हो। हे माता! संसार में आपकी तुलना की अन्य कोई स्त्री नहीं है।

निर्देशक–(इस प्रकार माता की स्तुति कर इन्द्राणी ने उन्हें मायामयी निद्रा में सुला दिया और जिनशिशु की गोद में उठाकर बार-बार उसका मुख चूमते हुए शरीर से निकलती उज्जवल ज्योति को देखकर वह हर्षित हो उठी पुनः प्रसूतिगृह से बाहर आकर इन्द्र के निवेदन पर जिनशिशु को इन्द्र को सौंप दिया। इन्द्र भगवान की अपूर्व सुन्दरता को देखकर उनकी स्तुति में कहने लगा)

इन्द्रराज–हे देव! आप हमें परम आनन्द प्रदान करने के लिए बाल चंद्रमा की भांति लोक को प्रकाश देने के लिए प्रगट हुए हैं। हे ज्ञानी! आप विश्व के स्वामी हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं। (प्रणाम कर उन्हें लेकर झूम-झूमकर नाच उठता है और गाता है)

–स्तुति–

तर्ज–फूलों सा चेहरा तेरा.....

प्यारा सा मुखड़ा मेरे, जिनवर का सुखकार है।
तेज तेरा देख के, रूप तेरा देख के, हर्षित ये नर-नार हैं।।
अश्वसेन पितु का लाडला है, माता वामा का दुलारा है तू।
वाराणसी में जन्मा है देखो, जन-जन की आँखों का तारा है तू।।
इन्द्रगण से सेवित, मुनिगणों से वंदित, सारे जगत में न्यारा है तू।
भव संकटहारी प्रभू की, वाणी भी सुखकार है।
तेज तेरा देख के, रूप तेरा देख के, हर्षित ये नर-नार हैं।।
प्यारा सा मुखड़ा मेरे.....।।1।।

निर्देशक–(पुनः जिनशिशु को गोद में लेकर ऐरावत हाथी पर बैठकर सुमेरु पर्वत की ओर चल पड़े। अनेक देव-देवियाँ चंवर ढुराते जा रहे हैं। ऐसा सुन्दर दृश्य! जो कि पहले किसी ने नहीं देखा।

(इस प्रकार विशाल वैभव के साथ सभी लोग सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर पहुँचकर जिनशिशु को बैठा देते हैं, सभी देवगण ऊपर से नीचे पंक्ति में खड़े हो जाते हैं, सभी के हाथों में बड़े-बड़े कलशों में क्षीरोदधि का प्रासुक जल है। जयजयकार की ध्वनि के साथ क्रमशः 1008 कलशों से अभिषेक सम्पन्न हो गया।)

(पुनः बालक को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर उनका 'पार्श्वनाथ' ऐसा नामकरण करके वापस बनारस आकर उस बालक को माता-पिता को सौंपकर पुनः वहाँ पर जन्मकल्याणक महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं। नगरवासी भी जिनशिशु को देखकर मानों तृप्त नहीं हो रहे हैं और पालने में पार्श्वकुमार को झुलाते जाते हैं।)

पालना गीत–

पलना ये रत्नों वाला, रेशम की डोरी वाला, पलने में झूले वामा लाल
त्रिभुवन भी जिससे है निहाल।
पलने में लाल लटकते, मोती, माणिक हैं हिलते, उनकी चमक बेमिशाल।
त्रिभुवन भी जिससे है निहाल।।टेक.।।
उसमें विराजे देखो, त्रिभुवनपति अन्तर्यामी।
मुखड़ा सलोना देखो, लीला है कितनी न्यारी।।
हम सब हैं वारी जाते, चरणों में शीश झुकाते, करते हैं तुझको प्रणाम।
त्रिभुवन भी जिससे है निहाल।।1।।

–पंचम दृश्य–

निर्देशक–इन्द्र ने चूँकि तीर्थंकर भगवान के अंगूठे में अमृत को स्थापित कर दिया था, उसी अंगूठे को चूसकर जिनबालक वृद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु वे माता का स्तनपान नहीं करते हैं। इन्द्र की आज्ञा से प्रभु के साथ उन्हीं के अनुरूप वेष धारण कर देवगण क्रीड़ा करते रहते हैं। क्रम-क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए तीर्थंकर पार्श्वकुमार जब सोलह वर्ष की अवस्था में प्रवेश कर रहे थे तब पिता अश्वसेन ने अपने कर्तव्य के नाते भगवान पार्श्वनाथ से विवाह करने का प्रस्ताव रखा)

सोलहवर्षीय कुमार पार्श्वनाथ सिंहासन पर विराजमान हैं, अवसर पाकर महाराजा अश्वसेन उनसे कहते हैं–

महाराजा अश्वसेन–प्रिय पुत्र! आज हम आपसे एक विशेष वार्ता करना चाहते हैं।

पार्श्व कुमार–कहिए पिताश्री! क्या बात है?

महाराज–आज्ञा नहीं पुत्र! एक इच्छा है मेरी और तुम्हारी माता वामा देवी की।

कुमार–क्या इच्छा है पिताश्री?

महारानी–बेटे! जब पुत्र युवावस्था में प्रवेश कर जाते हैं तब हर माता-पिता की इच्छा होती है कि वह शीघ्र ही घर में एक प्यारी सी बहू लेकर आवें, घर में पोते-पोतियों की किलकारियाँ गूंजें। इसलिए पुत्र! हम चाहते हैं कि तुम भी हमें विवाह हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान करो।

कुमार–माताश्री! पिताश्री! यह संसार तो क्षणभंगुर है, इन क्षणिक सुखों में फंसकर अपने अनमोल मानव जीवन को व्यर्थ गंवाने से क्या लाभ! मैं तो आपका तीर्थंकर पुत्र हूँ, जगत के कल्याण हेतु जन्मा हूँ। मैं विवाह के बंधन में नहीं बंधूगा।

महारानी–किन्तु बेटे! कुछ तीर्थंकरों को छोड़कर सभी ने तो विवाह किया है, फिर तुम क्यों मना करते हो?

पार्श्वकुमार–माता! आखिर बाद में उन्होंने भी उसे छोड़ा है फिर इस छोटी सी उम्र में ऐसा करके व्यर्थ अमूल्य समय को क्यों गवाएँ, इसलिए हे प्यारी माँ! मैंने तो सिद्धिकन्या से विवाह का पूर्ण निर्णय ले लिया है और आपको उसे अपनी बहू बनाने की स्वीकृति प्रदान करनी ही पड़ेगी।

(इस प्रकार तीर्थंकर कुमार पार्श्वनाथ ने माता-पिता के समझाने के लाख प्रयासों के बाद भी इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और बाल ब्रह्मचारी रहे।)

–षष्ठम् दृश्य–

एक समय श्री पार्श्वनाथ बहुत से राजपुत्रों के साथ हाथी पर सवार होकर बनारस के उद्यानों में विचरण कर रहे थे। वहाँ प्रभु ने एक जगह एक तापसी साधु को पंचाग्नि तप करते देखा, जो कि प्रभु पार्श्व के नाना थे, पार्श्वनाथ वहाँ पर अपने नाना को बिना नमस्कार किए खड़े हो गए तब वह तापसी सोचने लगा–

तापसी–(मन में) अहो! मैं इस बालक का नाना हूँ तथा तापसी भी हूँ। फिर भी यह मेरी विनय नहीं कर रहा है।

(और यह सोचते-सोचते अतीव क्रोध में आकर हाथ में कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी चीरने लगता है। उसके हाथ में कुल्हाड़ी लेते ही दया के रत्नाकर श्रीप्रभु वचनामृत वर्षा को करते हुए हित, मित और प्रिय वचन बोले।)

पार्श्वकुमार–हे तापसी! यह लकड़ी मत काटो, इसमें नागयुगल बैठे हैं।

तापसी–(क्रोधित होकर) अरे! क्या तू ही नारायण, महादेव या ब्रह्मा का अवतार है जो कि सम्पूर्ण चराचर का ज्ञाता बन रहा है? तू कैसे कह रहा है कि इस लकड़ी में सर्पयुगल हैं?

(ऐसा कहते-कहते ही उसने कुल्हाड़ी से लकड़ी के दो टुकड़े कर दिये और तत्क्षण ही उस नागयुगल के दो टुकड़े हो गए और वे बेचारे छटपटाने लगते हैं। उस समय तीर्थंकर प्रभु ने पुनः कहा)

तीर्थंकर भगवान–हे तापसी! तुम व्यर्थ ही गर्व कर रहे हो। देखो! तुम ज्ञान के बिना अपने तन को कष्ट दे रहे हो किन्तु सोचो तो सही, तुम्हारे मन में किंचित दया के बिना धर्म भी नहीं हो सकता है।

तापसी–अरे कुमार! मैं तेरी माता का जनक हूँ तथा इस समय तपस्वी हूँ। फिर भी तूने मद के वश में होकर मेरा विनय नहीं किया और उल्टे तू मेरे तपश्चरण की निन्दा कर रहा है, क्यों? मेरा तप अज्ञान तप क्यों है? मैं पंचाग्नि तप तप रहा हूँ, कभी एक पैर से तो कभी ऊर्ध्व भुजा करके ध्यान करता हूँ, भूख प्यास की बाधा सहन करते हुए सूखे पत्ते से पारणा करता हूँ।

भगवान–तपस्विन्! जिसमें छह काय के जीवों की हिंसा होती है वह तप कुतप ही है। सम्यग्ज्ञान के बिना कायक्लेश उत्तम फल को नहीं दे सकता है किन्तु जो तप जैनधर्म के अनुसार है वही निश्चितरूप से वांछित फल को देने वाला है।

तापसी–अच्छा! तू मुझे समझाने चला है।

भगवान–देखो! मैंने तुम्हें हितकर वचन कहे हैं तुम इन पर विचार करो और जो उचित प्रतीत होवे उसे ही ग्रहण करो, व्यर्थ ही अपने मन को मलिन मत करो।

(पुनः भगवान उन तड़पते हुए सर्पयुगल को दया से परिपूर्ण होते हुए अनेक प्रकार से उपदेश देते हैं तथा महामंत्र णमोकार मंत्र सुनाते हैं और वे नागयुगल शरीर का परित्याग कर धरणेन्द्र देव और पद्मावती देवी हो गए।)

बंधुओं! आपको यहाँ एक विशेष बात और बतानी है कि पुण्य के समुद्रस्वरूप भगवान् पार्श्वनाथ के लिए भोजन, वस्त्र आदि वस्तुएँ इन्द्र अपने स्वर्ग से लेकर जाकर प्रदान करता है। तीर्थंकर प्रभु गृहस्थावस्था में मृत्युलोक अर्थात् पृथ्वीलोक का अन्न या वस्त्र नहीं ग्रहण करते हैं क्योंकि जब स्वयं इन्द्र ही प्रभु का किंकर है तो फिर उन्हें अन्य के द्वारा किसी वस्तु के ग्रहण करने की आवश्यकता का प्रसंग ही क्यों आएगा। इस प्रकार देखते-देखते भगवान पार्श्वनाथ के जीवन के उन्तीस वर्ष व्यतीत हो गए।

–सप्तम दृश्य–

(प्रभु पार्श्वनाथ तीस वर्ष की अवस्था में प्रवेश करते हुए किसी समय राज्यसभा में सुखपूर्वक बैठे हुए हैं उसी समय राजदरबार में अयोध्या नरेश जयसेन महाराज का दूत आता है और नाना प्रकार की वस्तुएँ भेंट में रखकर नमस्कार करता है)

–राजदरबार का दृश्य–

(सभा में महाराज अश्वसेन के साथ प्रभु पार्श्वनाथ भी बैठे हैं तभी अयोध्या नरेश जयसेन का दूत प्रवेश करता है)

दूत–महाराज अश्वसेन की जय हो। युवराज पार्श्वनाथ की जय हो।

महाराज–कहो दूत! अपने आगमन का कारण कहो।

दूत–महाराज! मैं अयोध्या नरेश महाराजा जयसेन का दूत हूँ। उन्होंने आपके लिए अपनी यह छोटी सी भेंट आपकी सेवा में प्रस्तुत की है।

भगवान पार्श्वनाथ–क्या कहा दूत! अयोध्या नगरी के राजा जयसेन ने। यह वही तो अयोध्या नगरी है, जहाँ सदैव तीर्थंकर भगवन्तों का जन्म होता रहा है।

दूत–हाँ युवराज! यह वही अयोध्या नगरी है, जहाँ युग की आदि में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जन्म लिया और प्रजा को जीवन जीने की कला सिखाई, पुनः नीलांजना के नृत्य से उन्हें वैराग्य हो गया और उन्होंने जिनदीक्षा धारण कर ली। उसी अयोध्या नगरी में भगवान अजितनाथ, अभिनंदननाथ व सुमतिनाथ भगवान भी जन्मे हैं जिन्होंने वैराग्य होते ही दीक्षा ग्रहण कर ली और मुक्तिरमा का वरण कर लिया।

(इधर दूत भगवान ऋषभदेव के अवतार का वर्णन करते हुए सविस्तार अयोध्या की संपत्ति का वर्णन कर रहा था उधर प्रभु पार्श्वनाथ सहसा विरक्तमना होकर चिन्तवन करने लगे)

प्रभु पार्श्वनाथ–अहो! इन तीर्थंकरों ने उत्तम-उत्तम भोगों का परित्याग करके आत्मसिद्धि प्राप्त की है अब मेरा भी आत्मसाधना का समय हो चुका है। जब इन्द्रों के वैभव से इस जीव की तृप्ति नहीं हो सकती है तो किंचित् मात्र मनुष्य भव के सुखों से क्या तृप्ति हो सकती है।

(जिस समय प्रभु बारह भावनाओं का चिन्तवन कर रहे थे कि तत्क्षण ही लौकांतिक देव आकर पुष्पांजलि चढ़ाकर प्रभु के चरणों की पूजा करके प्रभु के गुणों का कीर्तन करने लगते हैं)

(लौकांतिक देवों का जय-जयकार करते हुए दरबार में प्रवेश)

(प्रभु के समीप पहुँचकर उन्हें प्रणाम करते हैं)

लौकांतिक देव-1–हे देवाधिदेव! आप धन्य हैं। आपकी निर्मल विचारसरणि धन्य है।

लौकांतिक देव-2–हे दयानिधे! यह समय भी धन्य है जो कि आपने मोहसेना को जीतने के लिए तैयारी की है।

लौकांतिक देव-3–नाथ! आज शिवकांता अपने सौभाग्य की सराहना कर रही है और उसकी प्रतीक्षा में वह आज तपस्या सखी को भेजकर आपको अपनी ओर शीघ्र ही आकर्षित करना चाहती है।

लौकांतिक देव-4–स्वामी! जगत् के जीवों का आज महान पुण्य अवसर आया है जो कि आपने उनके उद्धार के लिए कदम उठाया है।

(इत्यादि रूप से स्तुति करते हुए वे लौकांतिक देव अपने-अपने स्थान पर चले गए)

निर्देशक–(उसी समय आसन कंपित होते ही सौधर्म इन्द्र ने स्वयं प्रभु की सेवा में असंख्य इन्द्रों के साथ उपस्थित होकर वाराणसी नगरी को स्वर्ग से भी अधिक रमणीक बना दिया और प्रभु का अभिषेक कर उन्हें दिव्य वस्त्रालंकार पहनाकर विमला नाम की पालकी में बिठाया। जिसे सर्वप्रथम भूमिगोचरी राजाओं ने पुनः विद्याधर राजाओं ने, अनन्तर इन्द्रों ने अपने कंधे पर धारण किया और निमिष मात्र में आकाशमार्ग से चलते हुए अश्व नामक वन में पहुँचे, जहाँ इन्द्र ने शचि इन्द्राणी द्वारा पूरित रत्नों के चूर्ण से बने स्वस्तिक पर बैठने का निवेदन किया और प्रभु ने सिद्धों की साक्षीपूर्वक पंचमुष्टि केंशलोंच कर दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली और दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया। वह दिवस पौष वदी एकादशी का था।उनके साथ-साथ अन्य तीन सौ राजाओं ने भी दीक्षा धारण कर ली। प्रभु ने दीक्षा लेते ही तेला का नियम ले लिया। प्रभु को प्रथम ही आहार देने का सौभाग्य गुल्मखेटपुर के महाराजा ब्रह्मदत्त को मिला था)

–अष्टम् दृश्य–

(एक समय प्रभु योग में तन्मय हुए अपनी शुद्धात्मा के परमानन्द अमृत रस का अनुभव ले रहे थे तभी आकाशमार्ग से गमन करते हुए संवर नामक ज्योतिषी देव का विमान वहीं रुक गया)

(भगवान पार्श्वनाथ ध्यानारूढ़ हैं तभी संवरदेव का विमान वहाँ रुक गया)

संवर देव–अरे! यह क्या हुआ? मेरा विमान क्यों रुक गया। (नीचे देखता है) जरूर कोई महापुरुष नीचे विराजमान हैं, तभी यह मेरा विमान आगे नहीं बढ़ रहा है। (पुनः अपने अवधिज्ञान से जानकर) अच्छा! तो यह बात है। यह तो मेरे दस जन्मों का शत्रु है, इसने मुझे कमठ की पर्याय में किस प्रकार अपमानित किया था। कैसा चुपचाप बैठा है, अभी बताता हूँ, ध्यान में लीन हैं योगीराज, अभी इनका ध्यान भंग करता हूँ।

(क्रोधित होकर) अरे दुष्ट! आज मैं अपने हर जन्म का बदला लेकर रहूँगा।

(इतना कहकर उसने प्रभु के ऊपर घोर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। जोर-जोर से अट्टहास करता हुआ वह भयंकर आंधी चलाने लगा, पत्थरों की वर्षा होने लगी, मूसलाधार बारिश होने लगी। उस समय जल और थल एक होकर महासागर सा दिखने लगा। विक्रिया बल से वह पापी कमठचर किलकिल शब्द करता हुआ महाबेताल का रूप लेकर अग्नि उगलने लगा। अधिक क्या कहना, उसने अनेक प्रकार के भेष धारण कर प्रभु पर भयंकर उपसर्ग किया परन्तु महामना प्रभु सुमेरु के समान अचल थे, परम सहिष्णु थे। उस उपसर्ग के प्रसंग में सहसा धरणेन्द्र देव का आसन कंपायमान हो उठा।)

संवर देव–आ हा हा हा! देख पापी, दुष्ट, आंखे खोल, वर्ना मैं तुझे डुबो दूँगा, आग उगल-उगल कर तुझे जला डालूँगा।

(भगवान पार्श्वनाथ को अविचल ध्यानारूढ़ देख और क्रोधित हो उठता है)

अच्छा तो तू ऐसे नहीं मानेगा। देख, ले सह मेरा वार। आ हा हा हा.....।।

(उधर धरणेन्द्र देव का आसन कंपायमान हो उठा)

धरणेन्द्र देव–(आसन कंपित होता देख) अरे! यह क्या हुआ? मेरा आसन क्यों कंपित हो उठा (पुनः अवधिज्ञान से विचार कर) ओह! यह क्या? मेरे प्रभु पर उपसर्ग, मेरे संकटहर्ता पर इतना बड़ा उपसर्ग। (पुनः देवी पद्मावती से कहते हैं)

देवी पद्मावती! हम पर अनन्य उपकार कर तिर्यंच योनि से निकालकर देवयोनि की प्राप्ति कराने वाले संकटहर्ता भगवान पार्श्वनाथ पर एक देव द्वारा घोर उपसर्ग हो रहा है।

देवी पद्मावती–क्या कहा नाथ! प्रभु पार्श्वनाथ पर उपसर्ग, हमें णमोकार महामंत्र को सुनाकर उत्तम गति की प्राप्ति कराने वाले उन क्षमाशील प्रभु पर उपसर्ग। चलिए नाथ! जल्दी चलिए। हमारे उपकारी प्रभु का उपसर्ग दूर करिए।

धरणेन्द्र देव–हाँ देवी! शीघ्रता करिए।

(दोनों देव दंपत्ति वहाँ पहुँचते हैं और प्रभु की तीन प्रदक्षिणा लगाकर उन्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं पुनः उस पापी देव से कहते हैं)

धरणेन्द्र देव–अरे! पापी संवर! ठहर जा। क्यों, तुझे पता नहीं कि तू यह किस पर उपसर्ग कर रहा है, प्रभु पार्श्वनाथ पर! अरे दुष्ट! क्या तुझे यम का भी भय नहीं।

संवर देव–अच्छा तो तू इनकी रक्षा करने आया है, जब यह स्वयं अपनी रक्षा न कर सका तो तुझे बुलाया है।

देवी पद्मावती–अरे नराधम! जब प्रभु कई भवों से तेरे उपसर्ग को सहन कर रहे हैं तो अब तो वे साक्षात् तीर्थंकर भगवान हैं, कर्मशत्रु के विजेता हैं, महाशूरवीर हैं, तू भला उनका क्या बिगाड़ सकता है? अभी भी समय है प्रभु से क्षमा मांग ले।

संवर देव–क्षमा और इससे। एक शत्रु से क्षमा। हा-हा-हा-हा, ले बचा अपने प्रभु को।

(यह कहकर पुनः उपसर्ग प्रारंभ कर देता है) तब प्रभु पार्श्वनाथ के ऊपर धरणेन्द्र और पद्मावती फण का छत्र तान देते हैं और धरणेन्द्र युगल को देखते ही वह पापी कमठचर भाग खड़ा होता है)

(पार्श्वनाथ भगवान पर इन उपसर्गों का कोई असर नहीं है, शान्तचित्त प्रभु ने सप्तमगुणस्थान से ऊपर चढ़कर क्षपक श्रेणी में आरोहण करते हुए दशवें, पुनः बारहवें गुणस्थान में पहुँचकर केवलज्ञानरूप परम ज्योति को प्राप्त कर लिया। तत्क्षण ही प्रभु पृथ्वी से 5000 धनुष ऊपर आकाश में पहुँच गए। इन्द्रों के आसन कंपित होते ही सौधर्म इन्द्रादि सभी देवगण वहाँ आ गए और इन्द्र की आज्ञा से धनकुबेर ने समवसरण की रचना कर दी।

बंधुओं! प्रभु पर आए उपसर्ग को दूर करने के लिए धरणेन्द्र देव ने अहिसर्प का रूप धारण कर प्रभु के ऊपर छत्र धारण किया था इसीलिए उस स्थान का 'अहिच्छत्र' यह सार्थक नाम विश्व में विख्यात हो गया।

भगवान पार्श्वनाथ का समवसरण लगा है। उनके समवसरण में प्रथम गणधर स्वयंभू स्वामी तथा अन्य नौ गणधर थे, सोलह हजार मुनि, छत्तीस हजार आर्यिकाएं, 1 लाख श्रावक, 3 लाख श्राविकाएं तथा असंख्यात देव-देवियाँ व संख्यात तिर्यंच थे। सभी बारह सभा में अपने-अपने योग्य कोठे में बैठे भगवान का उपदेश सुन रहे हैं।

भगवान पार्श्वनाथ की दिव्य वाणी खिरती है-ॐ.....

भव्यात्मन्! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता ही मोक्ष का मार्ग है, इस रत्नत्रय को धारण करने वाला जीव संसार से तिर जाता है। जो चतुर पुरुष रसायन के समान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों का सेवन करता है वह अचिन्त्य और अविनाशी मोक्षरूपी पद को प्राप्त कर लेता है।

(इधर संवर नाम का वह ज्योतिषी देव भी काललब्धि पाकर शांत हो गया और उसने प्रभु को नमस्कार कर उपदेश श्रवण कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। यह देख उस वन में रहने वाले सात सौ तपस्वियों ने भी मिथ्यादर्शन छोड़कर संयम धारण कर लिया। बारह सभाओं के मध्य धर्मोपदेश करते हुए प्रभु ने पाँच माह कम सौ वर्ष तक विहार किया, अंत में जब प्रभु की आयु एक माह शेष रह गई तब वे विहार बंद कर सम्मेदाचल के शिखर पर 36 मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हो गए। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातःकाल के समय प्रभु ने शेष अघातिया कर्मों को भी निर्मूल करके यमराज के मान का मर्दन कर निर्वाणपद प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्रों ने आकर प्रभु के निर्वाणकल्याणक महोत्सव को धूमधाम से मनाया)

(यहाँ सम्मेदशिखर का दृश्य दिखाकर प्रभु का निर्वाणकल्याणक का दृश्य दिखावें। पुनः एक सामूहिक नृत्य के साथ नाटक का समापन करें।)

भजन

तर्ज –फूलों सा चेहरा तेरा.....

शाश्वत है तीरथ मेरा, सम्मेदगिरि नाम है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।टेक.।।

कहते हैं इस गिरि की वन्दना से,
तिर्यंच नरकायु मिलती नहीं है।
श्रद्धा सहित इसकी अर्चना से,
भव्यत्व कलिका खिलती रही है।।

रात अंधेरी हो, भक्ति सहेली हो, लगता न डर पर्वत पर कभी।
अतिशय से गूँजे यहाँ, सांवरिया का नाम है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।1।।

इस युग के चौबीस तीर्थंकरों में,
मोक्ष गए बीस जिनवर यहाँ से।
कितने करोड़ों मुनियों ने भी,
तप करके शिवालय पाया यहाँ से।।
तीर्थ पुराना है, श्रेष्ठ खजाना है, सबको तिराता है संसार से।
तीरथ की कीरत अमर, कर सकता इंसान है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।2।।

जिनधर्म निधि को पाकर के उसका,
सच्चा सदुपयोग करना है हमको।
आपस में मैत्री, दीनों पे करुणा,
का भाव जग में सिखाना है सबको।।
स्वार्थ त्याग करके, शीघ्र जाग करके, जैनत्व की सब रक्षा करो।
तीरथ की रज ''चन्दना'', मस्तक का परिधान है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।3।।



भगवान पार्श्वनाथ

-कु. अर्चिता जैन सुपुत्री श्री अरुण कुमार जैन, इलाहाबाद

प्रस्तावना—जैनधर्म के अनुसार वर्तमान में 24 तीर्थंकर हुए हैं, तीर्थंकरों की इस शृँखला में पहले भगवान ऋषभदेव फिर भगवान महावीर और अब भगवान पार्श्वनाथ का नाम हम सभी के मस्तक पटल पर छाया हुआ है। उनकी जयंती और निर्वाणोत्सव हम आज बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। भगवान पार्श्वनाथ 23वें तीर्थंकर हैं।

हिन्दुओं की मान्यतानुसार अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, अवन्ति, उज्जयिनी और द्वारका ये सात महापुरियाँ हैं। इनमें काशी मुख्य मानी गयी है। ''काश्यां हि मरणान्मुक्तिः'' यह हिन्दू शास्त्रों का वाक्य है। आज बनारस नगरी हिंदुओं के तीर्थधाम से अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हैं किन्तु प्राचीन इतिहास देखने पर ज्ञात होता है कि जिनधर्म की प्रभावना के अनेक कथानक यहाँ से जुड़े हुए हैं जिसमें भगवान पार्श्वनाथ का जन्मस्थल भेलूपुर मोहल्ले को माना जाता है।

जीवन परिचय—काशी और वाराणसी नाम से प्रख्यात बनारस नगरी कर्मभूमि के प्रारंभ से ही इन्द्र के द्वारा बसाई गई है। यहाँ 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म हुआ है।

''वाराणसि नगरी धन्य हुई, धन धन्य हुए सब नर नारी।
हे अश्वसेननंदन! तुम से, वामा माँ भी मंगलकारी।।
वैसाख वदी वह दूज भली, माता उर आप पधारे थे।
श्री आदि देवियों ने आकर, माता से प्रश्न विचारे थे।।''

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र संबंधी काशी देश में बनारस नाम का एक नगर है, जहाँ राजा अश्वसेन (विश्वसेन) राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम वामा (ब्राह्मी) था। जब उन सोलहवें स्वर्ग के इन्द्र की आयु छह मास ही अवशेष रह गई थी, तब इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने माता के आँगन में रत्नों की धारा बरसाना शुरू कर दी थी। रानी ब्राह्मी ने सोलह स्वप्नपूर्वक वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन इन्द्र के जीव को गर्भ में धारण किया था।

नवमास पूर्ण होने पर पौष कृष्णा एकादशी के दिन पुत्र का जन्म हुआ था। इन्द्रादि देवों ने सुमेरु पर्वत पर ले जाकर तीर्थंकर शिशु का जन्माभिषेक करके ''पार्श्वनाथ'' यह नामकरण किया था। श्री नेमिनाथ के बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जाने पर इनका जन्म हुआ था। तीर्थंकर पार्श्वकुमार ने विवाह नहीं किया था। इनके शरीर की ऊँचाई 9 हाथ, आयु 100 वर्ष और वर्ण हरा था। एक बार ध्यान में लीन प्रभु ने शंवर नाम ज्योतिषी देव (कमठ नामक पूर्व भव का वैरी) के दारूण उपसर्गों को सहनकर चैत्र कृष्णा चतुर्थी तिथि को अहिच्छत्र में केवलज्ञान प्राप्त किया तथा श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्षधाम को पधारे हैं। उनके बाद सम्मेदशिखर पर्वत से किसी भी तीर्थंकर ने मोक्ष की प्राप्ति नहीं की है। अतः यह पर्वत वर्तमान में ''पारसनाथ हिल'' के नाम से जाना जाता है।

बाल्यकाल—

शुभ पौष वदी ग्यारस तिथि थी, जब आए प्रभु साक्षात् यहाँ।
मित्रों संग वन में घूम रहे, अहियुग को दीना मंत्र महा।।
तब नागयुगल धरणेन्द्र तथा, पद्मावति होकर भक्त बने।
शुभ पौष वदी ग्यारस के दिन, प्रभु दीक्षा ले मुनिश्रेष्ठ बने।।

सोलह वर्ष बाद नवयौवन से युक्त भगवान किसी समय क्रीड़ा के लिए अपनी सेना के साथ नगर के बाहर गये। कमठ का जीव जो कि सिंह पर्याय से नरक गया था, वह वहाँ से आकर महीपाल नगर का महीपाल नाम का राजा हुआ था। उसी की पुत्री वामा देवी भगवान की माता थी। यह राजा (भगवान के नाना) किसी समय अपनी पत्नी के वियोग में तपस्वी होकर वहीं आश्रम के पास वन में पंचाग्नियों के बीच में बैठा तपश्चरण कर रहा था। देवों द्वारा पूज्य भगवान

उसके पास जाकर उसे नमस्कार किये बिना ही खड़े हो गये। यह देखकर वह साधु क्रोध से युक्त हो गया और सोचने लगा ''मैं कुलीन हूँ, तपोवृद्ध हूँ और इसका नाना हूँ'' फिर भी इस अज्ञानी कुमार ने अहंकारवश मुझे नमस्कार नहीं किया है, क्षुभित हो उसने अग्नि में लकड़ियों को डालने के लिए पड़ी हुई लकड़ी को काटने हेतु अपना फरसा उठाया। इतने में ही अवधिज्ञानी भगवान पार्श्वनाथ ने कहा ''इसे मत काटो'' इसमें जीव हैं किन्तु मना करने पर भी उसने लकड़ी काट ही डाली, तत्क्षण ही उसके भीतर रहने वाले सर्प और सर्पिणी निकल पड़े और घायल हो जाने से छटपटाने लगे।

यह देखकर प्रभु के साथ स्थित सुभौमकुमार ने कहा कि तू अहंकारवश यह कुतप करके पाप का ही आस्रव कर रहा है। सुभौम के वचन सुन तपस्वी क्रुधित होकर अपने तपश्चरण की महत्ता प्रकट करने लगा। तब सुभौमकुमार नेअनेक युक्तियों से उसे समझाया कि सच्चेदेव, शास्त्र और गुरु के सिवाय कोई हितकारी नहीं है।जिनधर्म में प्रणीत सच्चे तपश्चरण से ही कर्म निर्जरा होती है। यह मिथ्यातप, जीव हिंसा सहित होने से कुतप ही है। स्वयं वह तपस्वी समझ तो गया किन्तु पूर्व वैर का संस्कार होने से अपने पक्ष के अनुराग से अथवा दुःखमय संसार के कारण सेअथवा स्वभाव से ही दुष्ट होने से उसने स्वीकार नहीं किया प्रत्युत् ''यह सुभौमकुमार अहंकारी होकर मेरा तिरस्कार कर रहा है'' ऐसा समझ वह भगवान पार्श्वनाथ पर अधिक क्रोध करने लगा। पुनः इसी शल्य से मरकर ''शम्बर'' नाम का ज्योतिषी देव हो गया।

इधर सर्प और सर्पिणी पार्श्वकुमार के उपदेश से शांतभाव को प्राप्त हुए तथा मरकर बड़े ही वैभवशाली देवता धरणेन्द्र और पद्मावती हो गये।

दीक्षा—तीस वर्ष की अवस्था में एक दिन राजसभा में अयोध्या नरेश जयसेन के दूत द्वाराभगवान ऋषभदेव का चरित्र सुनते-सुनते भगवान गृहवास से पूर्ण विरक्त हो गये और लौकांतिक देवों द्वारा पूजा को प्राप्त हुए। प्रभु देवों द्वारा लाई गई विमला नाम की पालकी पर बैठकर अश्ववन में पहुँच गये। वहाँ दारूवृक्ष के नीचेतेला का नियम लेकर पौष कृष्णा एकादशी के दिन प्रातःकाल के समय सिद्ध भगवान को नमस्कार करके प्रभु तीन सौ राजओं के साथ दीक्षित हो गये।

उपसर्ग—

तत्क्षण मनपर्ययज्ञानी हो, सब ऋद्धी से परिपूर्ण हुए।
इक समय सघन वन के भीतर, प्रभु निश्चल ध्यानारूढ़ हुए।।
कमठासुर ने उपसर्ग किया, अग्नी ज्वाला को उगल-उगल।
पत्थर फेंके मूसलधारा, वर्षायी आँधी उछल-उछल।।

पारणा के दिन गुल्मखेट नगर के धन्य नामक राजा ने अष्ट मंगलद्रव्यों से प्रभु कर पड़गाहन कर आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त कर लिये। छद्मस्थ अवस्था के चार मास व्यतीत हो जाने पर भगवान एक समय देवदारु वृक्ष के नीचे विराजमान होकर ध्यान में लीन हो गये। इसी समय कमठ का जीव शंबर ज्योतिषीदेव आकाशमार्ग से जा रहा था, अकस्मात् उसका विमान रुक गया, उसे विभंगावधि से पूर्व का वैर बंध स्पष्ट दिखने लगा। फिर क्या था, क्रोधवश उसने महागर्जना, महावृष्टि भयंकर वायु आदि से महा उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया, बड़े-बड़े पहाड़ तक लाकर समीप में गिराये, इस प्रकार उसने सात दिन तक लगातार भयंकर उपसर्ग किया।

उस ही क्षण धरणीपति पद्मावति, आ करके बहु भक्ति किया।
प्रभु को मस्तक पर धारणकर, ऊपर से फण का छत्र किया।।

अवधिज्ञान से यह उपसर्ग जानकर धरणेन्द्र अपनी भार्या पद्मावती के साथ पृथ्वीतल से बाहर निकला। धरणेन्द्र और पद्मावती ने भगवान को अपने फणाओं के ऊपर उठा लिया और वज्रमय छत्र तान कर स्थित हो गये। आचार्य कहते हैं देखो! स्वभाव से ही क्रूर प्राणी इन सर्प-सर्पिणी ने अपने ऊपर किये गये उपकार को याद रखा सो ठीक ही है। क्योंकि सज्जन पुरुष अपने ऊपर किये हुए उपकार को कभी नहीं भूलते हैं।

तदनंतर ध्यान के प्रभाव से प्रभु का मोहनीय कर्म क्षीण हो गया इसलिए वैरी कमठ का सब उपसर्ग दूर हो गया।

केवलज्ञान–

प्रभु क्षपक श्रेणि में चढ़ करके, मोहनी कर्म का नाश किया।
सम्पूर्ण घातिया को विनाश, कैवल्यश्री को वरण किया।।
पृथ्वी से बीस हजार हाथ, ऊपर पहुँचे अर्हन्त बने।
इन्द्रों के आसन कांप उठे, प्रभु समवसरण गगनांगण में।।
वदि चैत्र चतुर्थी तिथि उत्तम, जब प्रभु में ज्ञान प्रकाश हुआ।
उस स्थल का उस ही क्षण से, अहिच्छत्र तीर्थ यह नाम हुआ।।

एक बार ध्यान में लीन प्रभु ने शंबर नामक ज्योतिषी देव (कमठ नामक पूर्व भव का बैरी) के दारूण उपसर्गों को सहन कर चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन प्रातःकाल के समय अहिच्छत्र में विशाखा नक्षत्र में लोकालोकप्रकाशी केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्रों ने आकर समवसरण की रचना करके केवलज्ञान की पूजा की। शंबर नाम का देव भी काललब्धि पाकर उसी समय शान्त हो गया और उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। आचार्य कहते हैं-अहो! पापी कमठ के जीव का कहाँ तो निस्कारण वैर और कहाँ ऐसी शांति? सच कहा है कि महापुरुषों के साथ मित्रता तो दूर रही, शत्रुता भी वृद्धि का कारण होती है।''

''सख्यमास्तां विरोधश्च वृद्धये हि महात्मभिः।''

भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में स्वयंभू आदि को लेकर दस गणधर थे, सोलह ह्जार मुनिराज, सुलोचना को आदि लेकर छत्तीस हजार आर्यिकाएं, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएं थीं। इसप्रकार बारह सभाओं को धर्मोपदेश देते हुए भगवान ने पाँच मास कम सत्तर वर्ष तक विहार किया। अंत में आयु का एकमाह शेष रहने पर विहार बंद हो गया। प्रभु पार्श्वनाथ सम्मेदाचल के शिखर पर छत्तीस मुनियों के साथ प्रतिमायोग से विराजमान हो गये। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रात:काल के समय विशाखा नक्षत्र में सिद्धपद को प्राप्त हो गये। इन्द्रों ने आकर मोक्षकल्याणक उत्सव मनाया।

श्री पार्श्वनाथ के पूर्वभव–पार्श्वनाथ का जीव पहले मरुभूति हुआ, फिर सहस्रार स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर विद्याधर हुआ, फिर अच्युत स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर वज्रनाभि चक्रवर्ति, फिर मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ, वहाँ से आकर आनंद नाम का राजा हुआ, फिर आनतस्वर्ग में इन्द्र हुआ तदनंतर भगवान पार्श्वनाथ तीर्थंकर होकर भव्य जीवों के लिए परम आश्रय स्वरूप हुआ है।

कमठ के पूर्वभव–कमठ का जीव पहले मरुभूति का कमठ नाम का बड़ा भाई था, फिर कुक्कुट सर्प हुआ, फिर पाँचवे नरक गया, फिर अजगर हुआ, फिर नरक गया, फिर भील हुआ, पुनः नरक गया, पुनः सिंह हुआ, पुनः नरक गया और फिर महीपाल राजा होकर शंबर देव हुआ है।

कमठ ने मरुभूति की भार्या के साथ व्यभिचार किया जिससे राजा अरविंद ने कुपित हो उसे दंडित करके राज्य से बाहर निकाल दिया किन्तु मरुभूति उस समय भी उस भाई पर क्रुद्ध न होते हुए उसे वापस लाने हेतु खोजते हुए वहाँ पहुँचता है कि जहाँ वह कमठ तापसी वेष में हाथ में पत्थर की विशालकाय शिला लेकर तप कर रहे हैं। मरुभूति का मन सरल था, भाई का प्रेम उमड़ रहा था किन्तु कमठ ने उसे ही अपना शत्रु समझ लिया और अत्यंत क्रोधावेष में अंधा होकर उसी के ऊपर अपने हाथ की शिला पटक दी।

फलस्वरूप वहीं से उसके संस्कार मरुभूति के प्रति क्रोध से बदला लेने के हो गये थे जो कि दश भव तक चलते रहे हैं।

उपसंहार–भगवान पार्श्वनाथ वर्तमान वीर नि. सं. 2534 से 2784 वर्ष पहले मोक्ष गये हैं। इसमें सौ वर्ष की आयु मिलाने से 2884 वर्ष भगवान को जन्म लेकर हो गये हैं।

श्री गुणभद्र आचार्य कहते हैं–

''आदि मध्यांतगंभीराः सन्तोंऽभोनिधिसन्निभाः।
उदाहरणमेतेषां पार्श्वो गण्यः क्षमावताम्।।

जो समुद्र के समान आदि मध्य और अंत में गंभीर रहते हैं, ऐसे सज्जनों का यदिकोई उदाहरण हो सकता है तो क्षमावानों में गिनती करने योग्य भगवान पार्श्वनाथ हो सकते हैं। ऐसे पार्श्वनाथ भगवान हमें भी संपूर्ण प्रकार के उपसर्गों को सहन करने की शक्ति प्रदान करें और क्षमाशील बनाएं। इतनी महान क्षमा तथा सहिष्णुता का उदाहरण हमें भगवान पार्श्वनाथ के दशभव के जीवन में ही मिलेगा। इसलिए यदि हमारे मन में किसी अपकारी के प्रति घृणा बैठी हुई हो तो हमें बार-बार पार्श्वनाथ का चरित्र पढ़ना, सुनना और मनन करना चाहिए। हममें क्षमा गुण का विकास होगा, जिसका फल कालांतर में बहुत ही मीठा मिलेगा और यदि हम उस कषाय के कण को भीतर में लिए ही रहेंगे तो कमठ के समान हमारी हानि की संभावना हो सकती है। अतः कषाय के एक कण को अग्नि से भी अधिक भयंकर समझकर उससे बचने की कोशिश करनी चाहिए और पार्श्वनाथ के श्रीचरणों में अनन्त-अनन्त नमस्कार करते हुए अपने मनुष्य जीवन को सफलकरना चाहिए।

हमें कमठ जैसे क्रोध के संस्कार नहीं चाहिए, किन्तु पार्श्वनाथ जैसे क्षमा के, सहिष्णुता के संस्कार चाहिए, क्योंकि कहा भी है–

''उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह भव जस पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो।।
कहिए अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै।
धरतैं निकारैं तन विदारैं, वैर जो न तहाँ धरैं।।
तै करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध अग्नि बुझाये प्राणी, साम्य जल ले सीयरा।''

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

–सौ. सुरेखा राजगोंडा पाटिल, लेखानगर, बेलगाँव

हम लोग बहुत ही भाग्यशाली हैं कि हमने जैनधर्म में जन्म लिया और चौबीस तीर्थंकर जैसे महान देव लोगों से हमको परिचय हो गया। परंतु उनमें भगवान पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर हैं। भगवान पार्श्वनाथ के जीवन की घटनाएँ, अनेक जीव के साथ उनके भवों का संबंध, वैर-भाव और उपसर्ग-निवारण आदि सब मिलकर एक घटनात्मक बन जाता है जो हमको बांध कर रखता है। चौबीस भगवान की मूर्तियों में भगवान पार्श्वनाथ की मूर्तियों में सबसे अधिक-विविधता है।

भगवान के जन्म से 15 माह पूर्व से वाराणसी नगरी में सुबह, मध्यान्ह, संध्या में रत्नों की वर्षा होती थी। वाराणसी वह नगर था जो भरतक्षेत्र में काशी नगर के अलंकार रूप था। उस नगर के राजा विश्वसेन और उनकी रानी का नाम ब्राह्मी था। रत्नवर्षा करना एक परम्परा और नियोग है। श्री ह्री, धृति, कीर्ति आदि-देवागनाएँ माता की सेवा के लिए अंतःपुर में पहुँची। तीर्थंकर भगवान की माता जब शय्या पर शयन कर रही थीं। रात का समय था। एक आनंदमय संवेदन से माता का रोम-रोम सजल हो रहा था। उस समय माता ने अद्‌भुत सोलह सपने देखे। गर्भ में भगवान के सद्‌भाव के प्रभाव से अधिक विशुद्धि हो गयी। महारानी ने महाराज को इन सोलह सपनों के बारे में बताया तो उन्होंने मंत्रीगण और सभासद से चर्चा करके ये बताया कि ये सपने तो बहुत शुभ शकुन हैं।

अंततः पौष कृष्णा एकादशी के दिन विशाखा नक्षत्र में तब सभी ग्रह अपने उच्च स्थान में थे, उस उत्तम समय में ब्राह्मी देवी ने भगवान तीर्थंकर को जन्म दिया। तब आकाश से सुगंधित पुष्पों की वर्षा हो रही थी।

प्रभु जन्म होने पर आनंद और उत्साह का वर्णन कौन कर सकता है। वहाँ पर शंखध्वनी होने लगी, व्यंतरवासियों के यहाँ भी भेरीनाद होने लगा। सौधर्म इंद्र का आसन कांपने लगा। लेकिन प्रभू का जन्म हुआ ये जानकर आदर से मस्तक झुक गया। अपने जन्म का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य समझकर सौधर्म इंद्र प्रभु का जन्मकल्याणक मनाने अपने परिवार के साथ वाराणसी नगर की ओर निकले। जब शची इंद्राणी ने बालक को देखा तो उसके नयनचकोर पुलकित हो गये। बालक अपने हाथों में उठाया और इंद्र को देने के लिए प्रसव मंदिर के बाहर आ गयी। शची ने जब बालक को इंद्र को सौंपा, तब उनका अनुपम सौन्दर्य देखकर इंद्र उनको देखते ही रह गये। इतने पर तृप्त न होने पर हजार नेत्रोंसे उन्हें देखकर अपने अंतःकरण को तृप्त किया और प्रभु का मनोहर रूप देखते ही रहे। जैसे ही भगवान को अपने गोद मेंउठाया तो सभी देव-देवियाँ जय-जयकार करने लगे। बाद में इंद्र ने तीर्थंकर पिता की पूजा की, और कहा "हे राजन्! तीर्थंकर भगवान का जन्मकल्याणक करना हमारा नियम है और बड़े ही धूम-धाम से जन्मकल्याणक मनाया। समस्त लोगों पर भगवान का प्रभाव पड़ा था। इसीलिए जिनेन्द्र का पवित्र नाम पार्श्वनाथ रखा गया।

देवोपुनीत भोगों के भोगने वाले कुमार धीरे-धीरे युवावस्था में पदार्पण कर गये। उनका मुख चंद्रमा के समान था। नेत्र कमल के समान और भुजाएँ विशाल थी। शरीर की काँति तमाल वृक्ष के समान मनोहर थी।

एक दिन पार्श्वनाथ राजदरबार में बैठे हुए थे। सभा लगी हुई थी। एक मनुष्य सभा में आया, पार्श्वनाथ को नमस्कार करके उसने पूछा, "हे प्रभु! मैं उपवन से आ रहा हूँ। मेरी नजर-उधर एक मुनि पर पड़ी, धीर वीर लगते हैं। चारों ओर भयंकर रूप से जलने वाली अग्नि में बैठकर सूर्य की तरफ दृष्टि लगाकर पंचाग्नि तप कर रहे हैं।

भगवान पार्श्वनाथ ने अपने ज्ञान से पता किया उनका वैरी कमठ का जीव नरक की आयु भोगकर मनुष्यगति को आया है, और वही बालतप कर रहा है। हाथी पर सवार होकर वे वन में पहुँचे तो तपाग्नी में तपस्वी को देखा, और बंधुभाव से कहा कि इस तरह के हिंसामय तप से आत्मतत्व की प्राप्ति नहीं होती। केवल शरीर को कष्ट देने से किसी को आनंद नहीं मिलता। उसे तू छोड़ दे। ये सुनकर कमठ के मन पर कुछ असर नहीं हुआ। उनकी बात सुनकर उसे क्रोध

आया। अनेक भवों का वैर उसे याद आया। अनेक नरक यातना भोगकर वह महीपाल तपस्वी हुआ। वह सोचने लगा कि मैं तपोवृद्ध, वयोवृद्ध हूँ, यह बालक है फिर भी मुझे नमस्कार भी नहीं किया और उपदेश कर रहा है। जलती आग में लकड़ी डालने के लिए काटने को कुल्हाडी उठायी। तभी कुमार ने उसको मनाकर दिया। तो वह तपस्वी क्रोधित हो गया और कहा! अरे! इस समय तेरे पास वैभव ही वैभव है इसीलिए तू गर्वित हो गया है। यह सुनकर भी पार्श्वनाथ को क्रोध नहीं आया। तब तापसी को और क्रोध आया और उसने क्रोधित हो लक्कड़ के दो टुकड़े कर दिये उस लकड़ी में युगल नाग-नागिन का जोड़ा आग की उष्णता से छटपटा रहा था। नाग को मरने की हालत में देखकर पार्श्वनाथ ने उन्हें पंचपरमेष्ठी का मंत्र (णमोकार मंत्र) बोला। नाग ने भी उसे मन से सुना, जिससे अज्ञानांधकार दूर हो गया।

मंत्र के प्रभाव से चारों ओर अग्नि से जलने वाले शरीर का त्याग करके नाग भवनवासी जाति का देव हो गया और वह नागिनी उसी देव की देवी हुई। नाग धरणेन्द्र और नागिनी पद्मावती हो गये। नाग-नागिन को अवधिज्ञान था।जिससे दोनों को उपकार का ज्ञान हुआ। महिपाल तपस्वी क्लेश प्रभाव से भवनवासी असुर जाति का देव हो गया।

भगवान पार्श्वनाथ को पूर्ण यौवनावस्था प्राप्त हो गयी। राजा विश्वसेन और रानी उनके मंगल विवाह की सोचने लगे और उन्होंने कुमार से बात की तो उन्होंने बड़े ही आदर से कहा–मैंने अनेक भवों में अनेक भोगों का भोग किया फिर भी मन को सच्चा आनंद नहीं मिला। क्योंकि भोगों से जो सुख मिलता है, अंततः वो दुखदायक होता है। जो भोग को जानकर भी उन्हें स्वीकार करता है वह अज्ञानी जीव ऐसा है जैसे हाथ में दीपक होने पर भी कुंऐ में गिरता है। भोग, उपभोग, विषय-वासना में जीव के विज्ञान से उत्पन्न भाव हैं, नाम अलग हैं परंतु जीवों को दुख देते हैं।

एक बार अयोध्या के दूत द्वारा भगवान ऋषभदेव के भवों और अयोध्या वृतान्त सुनकर वे प्रभु उत्कृष्ट वैराग्य को प्राप्त हुए।

लौकांतिक देवों ने भगवान के अंतःकरन की वैराग्य भावना जान ली और ब्रह्म स्वर्ग से आकर उन्होंने भगवान की इस प्रकार स्तुति की-'भगवान हमें अपना मधुर गीत प्रारंभ करने के लिए वसंत ऋतु ही चाहिए। प्रभु आपने मोह जाल से छूटने का जो पवित्र निश्चय किया है, वह आप जैसे उच्च आत्मा के-पूर्णतया अनुरुप है। मोहरूपी शत्रु को जीतने की आपकी इच्छा श्रेष्ठ है। प्रत्येक जीव सुख चाहता है। परन्तु मृत्यु के बाद जन्म न हो ऐसे केवल आप जैसे वीतरागी करते हैं। प्रभो धर्म की सृष्टी कीजिए।

संसार मोहरूपी कीचड़ में फंसा है। धर्म को आप जैसे हाथों की जरूरत है। दिगम्बर दीक्षा धारण कीजिए और केवलज्ञान पाकर भव्य जीवों को ज्ञान दीजिए। भगवान के वैराग्य के कारण इंद्र तथा देवों के आसन कांपने लगे। तब इंद्र सब देवों को लेकर बनारस आ गये, और दीक्षाकल्याणक मनाया। पालकी में भगवान को बिठाया। अश्व नामक वन में भगवान आ गये। पालकी से उतरकर पूर्व दिशा की ओर मुख कर स्फटिकमणी की पाषाण शिला पर पर्यंकासन से विराजमान हो गये। 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर केशलुंचन किया और दीक्षा ले ली। उस दिन पौषकृष्णा एकदशी का प्रातःकाल था। जन्म से ही तीन-ज्ञान के धारक भगवान के दीक्षा लेते ही चौथा मनःपर्यय ज्ञान प्रकट हुआ।

दीक्षा लेने के बाद गुल्मश्वेट नगर में गये। वहाँ के राजा ने नवधा भक्तिपूर्वक भगवान का पड़गाहन करके आहार दिया। प्रभु का आहार क्या था, वह तो एक महोत्सव था। उसके प्रभाव से देवों ने पंचाश्चर्य किये-शीतल सुगंधित हवा बहने लगी, देवों ने पुष्पवर्षा की ।

एक बार प्रभु देवदारु वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न हुए। तभी कमठ का देव रूपी जीव आकाशमार्ग से जा रहा था। अकस्मात विमान रुक गया। उसको पूर्व भव का वैर स्मरण में आ गया। उसको क्रोध आया, उसने भीषण गर्जना की, प्रलयकारी वर्षा करना प्रारंभ किया। फिर उसने पवन को भी प्रवाहित किया। उससे नगर पर्वत, वृक्ष उड़ गये। इतना होने पर भी पार्श्वनाथ विचलित नहीं हुए, तब वो अधिक क्रोधित हो गया। बाद में वो भयंकर शस्त्रशस्त्रों की वर्षा करने

लगा। वे शस्त्र भी तप के प्रभाव से पुष्प बनकर गिरते थे। जब शस्त्र भी निष्फल हुआ, तब माया से अप्सराओं का समूह उत्पन्न किया। वो नृत्य-गीत करने लगे। परन्तु पार्श्वनाथ अंतर्विहार में मग्न थे। किन्तु कमठ भी हार मानने वालों में नहीं था। उसने रौद्र पशुओं द्वारा उपसर्ग किया, किन्तु अनेक प्रयत्न के बाद भी प्रभु अपने आत्मज्ञान से विचलित नहीं हुए। उसी समय संवर देव ने सात दिन तक उपसर्ग किया। अपने ज्ञान से नागेन्द्र धरणेन्द्र अपनी देवी पद्मावती के साथ आये। धरणेन्द्र ने भगवान को चारों ओर से अपने फणों के द्वारा ढक लिया। पद्मावती देवी भगवान को मस्तक के ऊपर धारण कर लिया और इस प्रकार अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञता धरणेन्द्र-पद्मावती ने बताई।

अंत में संवर ने हार मानी और भगवान के समवसरण में उसने क्षमा-माँगकर शरण ली।

भगवान के शुक्ल ध्यान के प्रभाव से उनका मोहमयी कर्म नष्ट हो गया था और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। वह दिन चैत्र कृष्णा चतुर्दशी का था। अंत में उन्होंने श्रावण शुक्ला सप्तमी को सम्मेदशिखर पर्वत के स्वर्णभद्र कूट से विशाखा नक्षत्र में प्रातःकाल मोक्ष प्राप्त किया। उस समय जितने भी अंतर दृष्टी, दिव्यज्ञान के धारक मुनि थे वे जान गये कि भगवान मोक्ष को प्राप्त हो गए उन्होंने प्रभु को भक्ती से प्रणाम किया और विधीपूर्वक चारों निकायों के देवों ने जिनेन्द्र के निर्वाणकल्याणक की पूजा की।

तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन दर्शन

-गणिनी ज्ञानमती

जन्मभूमि	–	**वाराणसी (उत्तर प्रदेश)**
पिता	–	महाराजा अश्वसेन
माता	–	महारानी वामादेवी (ब्राह्मी)
वर्ण	–	क्षत्रिय
वंश	–	उग्रवंश
देहवर्ण	–	मरकतमणि सदृश (हरा)
चिन्ह	–	सर्प
आयु	–	सौ वर्ष
अवगाहना	–	नौ हाथ
गर्भ	–	वैशाख कृ. 2
जन्म	–	पौष कृ. 11
तप	–	पौष कृ. 11
दीक्षा वन एवं वृक्ष	–	अश्ववन एवं देवदारूवृक्ष
प्रथम आहार	–	गुल्मखेट नगर के राजा धन्य द्वारा (खीर)
केवलज्ञान स्थल	–	अहिच्छत्र
केवलज्ञान	–	चैत्र कृ. 4 (14)
मोक्ष	–	श्रावण शु. 7
मोक्षस्थल	–	सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर	–	श्री स्वयंभू आदि 10
मुनि	–	सोलह हजार
गणिनी	–	आर्यिका सुलोचना
आर्यिका	–	छत्तीस हजार
श्रावक	–	एक लाख
श्राविका	–	तीन लाख
जिनशासन यक्ष	–	धरणेन्द्र देव
यक्षी	–	पद्मावती देवी

भगवान पार्श्वनाथ वर्तमान वीर नि.सं. 2534 से 2784 वर्ष पहले मोक्ष गए हैं।

भजन

तर्ज–क्या खूब दिखती हो.....

यह शान्त छवी तेरी बड़ी सुन्दर लगती है।
मन्द मन्द मुस्कान सदा चेहरे पर बिखरती है।।
त्याग तपस्या की किरणें अन्तर से निकलती हैं।।यह.।।

तुमने जो पथ अपनाया-अपनाया,
वह वीतरागता का मारग कहलाया।
जहाँ ममता मोह न माया-नहिं माया,
जहाँ निर्ममता की मिलती शीतल छाया।
विश्व प्रेम की दृष्टि जहाँ नयनों से झलकती है,
त्याग तपस्या की किरणें अन्तर से निकलती हैं।।यह.।।1।।

जिनशासन की यह महिमा-हाँ महिमा।
जहाँ देव, शास्त्र, गुरु तीन रतन की गरिमा।
अनमोल रत्न इन्हें कहना-हाँ कहना,
जिन आतम में अब उन्हें संजोकर रखना।
उन रत्नों की चमक तेरी काया में झलकती है,
त्याग तपस्या की किरणें अन्तर से निकलती हैं।।यह.।।2।।

युग-युग तक तेरी गाथा-हाँ गाथा।
गाएगा यह संसार नमाकर माथा।
जो वंदन करने आता-हाँ आता।
''चन्दनामती'' वांछित फल पूर्ण कराता।।
यह प्रतिमा तव आकर्षक मुद्रा से झलकती है,
त्याग तपस्या की किरणें अन्तर से निकलती हैं।।यह.।।3।।

भजन

तर्ज-कभी राम बनकें.....

निज ध्यान करने, गुणगान करने, चले आना आतम में चले आना।

बड़ा चंचल है मन इसको बांधो।
बड़ा नश्वर है तन इसको साधो।।
शुद्धात्म भजने, परमात्म भजने, चले आना आतम में चले आना।।१।।

कभी ॐकार में मन रमाओ।
कभी मन में प्रभू को बसाओ।।
मंत्र जाप करने, मन को साफ करने, चले आना आतम में चले आना।।२।।

मन के मंदिर में वेदी बनाओ।
उसपे आतम प्रभू को बिठाओ।।
पूजा पाठ करने, मन एकाग्र करने, चले आना आतम में चले आना।।३।।

भावों का छत्र प्रभु पे लगाओ।
''चन्दना'' श्रद्धा चंवर ढुराओ।।
प्रभु को प्राप्त करने, आतम लाभ वरने, चले आना आतम में चले आना।।४।।

भगवान पार्श्वनाथ के पंचकल्याणक तीर्थ

भगवान पार्श्वनाथ की गर्भ-जन्म एवं दीक्षाकल्याणक भूमि

वाराणसी तीर्थ का परिचय

प्रस्तुति-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जैन तीर्थ–काशी (वाराणसी) जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। तीर्थक्षेत्र के रूप में इसकी प्रसिद्धि सातवें तीर्थंकर भगवान सुपार्श्वनाथ के काल से ही हो गयी थी। जब यहाँ उनके गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणक मनाये गये उस समय काशी के नरेश महाराज सुप्रतिष्ठ थे। पृथ्वी उनकी महारानी थी। ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ उनके गर्भ से उत्पन्न हुए।

'तिलोयपण्णत्ति' ग्रंथ में उनके जन्म के संबंध में लिखा है–

वाराणसीए पुडवी सुपइट्ठेहिं सुपास देवो य।
जेट्ठस्स सुक्कवार सिदिणम्मि जादो विसाहाए।।4।532

अर्थात् सुपार्श्वदेव वाराणसी नगरी में माता पृथ्वी और पिता सुप्रतिष्ठ से ज्येष्ठ शुक्ला 12 के दिन विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न हुए।

इसके पश्चात् तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के गर्भ, जन्म और दीक्षाकल्याणक इसी प्रकार धूमधाम और उल्लास के साथ मनाये गये।

'तिलोयपण्णत्ति' में उनके जन्म के संबंध में इस प्रकार विवरण मिलता है–

हयसेण वम्मिलाहिं जादो हि वाणारसीए पासजिणो।
पूसस्स बहुल एक्कारसिए रिक्खे विसाहाए।।4।548।।

अर्थात् भगवान पार्श्वनाथ वाराणसी नगरी में पिता अश्वसेन और माता वम्मिला (वामा) से पौष कृष्णा एकादशी के दिन विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न हुए।

पार्श्वनाथ का जन्म–काशी देश में वाराणसी नामक एक नगरी थी। महाराज अश्वसेन वहाँ के राजा थे। वामा देवी उनकी महारानी थीं। वैशाख कृष्णा द्वितीया को शुभ नक्षत्र में पार्श्वनाथ का जीव वामादेवी के गर्भ में आया। इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुबेर ने गर्भावतरण के छह माह पूर्व से रत्नवर्षा प्रारंभ कर दी। रत्नवर्षा का यह कार्य भगवान के जन्म होने तक चलता रहा। इन्द्र और देवों ने वाराणसी नगरी में पहुँचकर त्रिलोकीनाथ भगवान का गर्भकल्याणक उत्सव बड़ी भक्ति के साथ मनाया। भगवान के पुण्य प्रभाव से महाराज अश्वसेन के प्रासादों में, नगर में और काशी राज्य में सुख-समृद्धि में निरन्तर वृद्धि होने लगी।

पौष कृष्णा एकादशी को भगवान का जन्म हुआ। इन्द्रों और देवों ने वाराणसी में आकर भगवान को अपने ऐरावत हाथी पर सुशोभित रत्नमय सिंहासन पर विराजमान किया। बालक भगवान को लेकर वे सुमेरु पर्वत के पाण्डुक वन में स्थित पाण्डुकशिला पर ले गये और वहाँ क्षीरसागर के जल से उनका अभिषेक किया। इन्द्राणी ने प्रभु का शृँगार किया, वस्त्रालंकार पहनाये। तब सौधर्मेन्द्र भगवान को लेकर अन्य इन्द्रों और देवों के साथ वाराणसी आये और महाराज अश्वसेन के नवमंजिले सर्वार्थसिद्धि महल में उन्होंने भक्तिमग्न होकर ताण्डव नृत्य किया। फिर सब लोग अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

तापसी का मान-भंग–कुमार पार्श्वनाथ एक दिन क्रीड़ा के लिए नगर से बाहर गये। वहाँ उन्होंने एक वृद्ध तापसी को देखा जो पंचाग्नि तप कर रहा था। वह महीपाल नगर का राजा था और पार्श्वनाथ का नाना लगता था। अपनी रानी

के वियोग से वह तापस बन गया था। उसके सात सौ तापस शिष्य थे।

कुमार पार्श्वनाथ उस महीपाल तापस को नमस्कार किये बिना उसके पास जाकर खड़े हो गये। तापस ने उनके इस व्यवहार को बड़ा अपमानजनक माना। उसने बुझती हुई अग्नि में लकड़ी डालने के लिए एक बड़ा लक्कड़ उठाया और कुल्हाड़ी से काटने के लिए वह ज्यों ही तैयार हुआ कि अवधिज्ञानी भगवान पार्श्वनाथ ने उसे रोका–'इसे मत फाड़ो। इसमें साँप हैं।' मना करने पर भी वह तापस नहीं माना और उसने लकड़ी काट ही डाली। इससे लकड़ी में बैठे हुए साँप-साँपिनी दोनों के दो टुकड़े हो गये। प्रभु ने दयार्द्र होकर उस सर्प-युगल को णमोकार मंत्र सुनाया। मंत्र सुनकर वह सर्प-युगल शांत भावों से मरा और अपनी शुभ भावनाओं के कारण मरकर धरणेन्द्र और पद्मावती बने। तापसी का घोर तिरस्कार और अपमान हुआ। वह वहाँ से अन्यत्र चला गया। उसका सारा क्रोध कुमार पार्श्वनाथ के ऊपर केन्द्रित हो गया। कषाय परिणामों में वह निर्मलता नहीं ला सका और मरकर संवर नाम का ज्योतिषी देव हुआ।

भगवान की दीक्षा एवं ज्ञानकल्याणक–पार्श्वनाथ जब तीस वर्ष के हुए, तब एक दिन अयोध्यानरेश जयसेन ने उपहार देकर दूत को भेजा। पार्श्वनाथ ने दूत से अयोध्या के समाचार पूछे। दूत अयोध्या के समाचार सुनाते-सुनाते भगवान ऋषभदेव का भी चरित सुनाने लगा। सुनते ही पार्श्वनाथ को जातिस्मरण हो गया। उन्हें पूर्व जन्मों की घटनाओं से तीस वर्ष की अवस्था में संसार से वैराग्य हो गया। तत्काल लौकान्तिक देव आये। उन्होंने भगवान के वैराग्य की अनुमोदना की। सभी जाति के देवों और इन्द्रों ने आकर दीक्षाकल्याणक का अभिषेक किया। तदनन्तर भगवान पालकी में बैठकर वाराणसी नगरी के बाहर अश्ववन (या अश्वत्थवन) में पहुँचे और वहाँ पालकी से उतरकर सिद्धों को नमस्कार किया। फिर प्रभु ने पद्मासन लगाकर पंचमुष्टि लोंच किया। भगवान दीक्षा लेकर तेला का नियम लेकर योग में लीन हो गये। पुनः वे विहार करते हुए गुल्मखेटपुर नगर पहुँचे और वहाँ राजा धन्य के घर महामुनि पार्श्वनाथ का प्रथम आहार हुआ।

अनन्तर विहार करते हुए वे एक बार भीमाटवी में पहुँचे और कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानलीन हो गये। तभी कमठ का जीव संवर नाम का असुर आकाशमार्ग से जा रहा था कि अकस्मात् उसका विमान रुक गया। जब उसने अवधिज्ञान से इसका कारण जानना चाहा तो उसे अपने पूर्व भव का वैर स्पष्ट दिखने लगा। उसे बहुत क्रोध आया और अपनी सामर्थ्य के अनुसार पार्श्वनाथ को घोर कष्ट देने लगा। किन्तु धीर-वीर पार्श्वनाथ का ध्यान शरीर की ओर नहीं था, वे तो आत्मलीन थे। घोर कष्टों का भी कोई प्रभाव उनके ऊपर नहीं हुआ। अवधिज्ञान से यह उपसर्ग जानकर नागकुमार देवों का इन्द्र धरणेन्द्र अपनी इन्द्राणी पद्मावती सहित भगवान के पास आया। धरणेन्द्र-पद्मावती ने भगवान को मस्तक पर धारण करके ऊपर से ऊपर फणा-मण्डप तान दिया। इस प्रकार उपसर्ग निवारण हुआ। वही स्थान **अहिच्छत्र** के नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

वाराणसी से 6 किमी. दूर सिंहपुरी क्षेत्र है। यह स्थान पहले वाराणसी का ही भाग रहा है। यहाँ ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान श्रेयांसनाथ के गर्भ, जन्म, दीक्षा और ज्ञानकल्याणक हुए थे। तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में इस संबंध में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है–

सीहपुरे सेयंसो विण्हु णरिंदेण वेणुदेवीए।
एक्कारसिए फग्गुण सिद पक्खे समणभेजादो।।4।536।।

अर्थात् भगवान श्रेयांसनाथ सिंहपुरी में पिता विष्णु नरेन्द्र और माता वेणुदेवी से फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में उत्पन्न हुए।

वाराणसी से 22 किमी. दूर चन्द्रपुरी क्षेत्र है। सिंहपुरी से यह स्थान लगभग दस मील है। यहाँ आठवें तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभ का जन्म हुआ था। इस संबंध में तिलोयपण्णत्ति में निम्नलिखित कथन मिलता है–

चन्दपहो चन्दपुरे जादो महसेण लाच्छेमइ आहिं।
पुस्सस्स किण्ह एयारसिए अणुराह णक्खत्ते।।4।533।।

अर्थात् चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र चन्द्रपुरी में पिता महासेन और माता लक्ष्मणा से पौष कृष्णा एकादशी को अनुराधा नक्षत्र में उत्पन्न हुए।

आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण में चन्द्रप्रभ भगवान के दीक्षाकल्याणक के संबंध में लिखा है–

दिनद्वयोपवासित्वा वने सर्वर्तुकाह्वये।
पौषे मास्यनुराधायामेकादश्यां महीभुजाम्।।45।216।।

-सर्वर्तुक वन में दो दिन के उपवास का नियम लेकर पौष कृष्णा एकादशी को (एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण कर ली।)

इस प्रकार काशी जनपद के वाराणसी, सिंहपुरी और चन्द्रपुरी तीनों नगर चार तीर्थंकरों के कल्याणक क्षेत्र हैं।

धार्मिक और ऐतिहासिक घटनाओं का केन्द्र–वाराणसी नगर में प्राचीन काल में अनेक धार्मिक और ऐतिहासिक घटनाएँ घटित हुई हैं। जैन पुराण-साहित्य में सर्वप्रथम इस नगर का उल्लेख राजकुमारी सुलोचना के प्रसंग में आया है। काशी नरेश अकंपन ने अपनी पुत्री सुलोचना का स्वयंवर किया। राजकुमारी के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर भारत के बहुत से नरेश और राजकुमार इस अवसर पर वाराणसी में आये। उनमें भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत के ज्येष्ठ पुत्र युवराज अर्ककीर्ति, महाराज भरत के प्रधान सेनापति जयकुमार जैसे विख्यात पुरुष भी सम्मिलित हुए थे। सभी राजकुमार आशा लेकर आये थे, किन्तु भाग्यलक्ष्मी जयकुमार के ऊपर प्रसन्न हो उठी। राजकुमारी सुलोचना ने वरमाला जयकुमार के गले में डाल दी। कुछ हताश और ईर्ष्यालु राजकुमारों ने कुमार अर्ककीर्ति को भड़का दिया 'आप चक्रवर्ती महाराज के उत्तराधिकारी हैं, भावी सम्राट हैं। आपके यहाँ होते हुए आपके एक सेवक के यह कन्यारत्न मिले, यह अन्याय की पराकाष्ठा है। साम्राज्य की सम्पूर्ण सुन्दर वस्तुओं पर सम्राट् का अधिकार होता है।'

आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव का धर्मशासन और आद्य चक्रवर्ती भरत का राज्यशासन सम्पूर्ण भरत क्षेत्र में प्रवर्तमान था। किन्तु वाराणसी ने सभ्यता के इस आदिम काल में एक नये इतिहास का निर्माण किया। इस युग में सामाजिक व्यवस्था के नये-नये आयाम निर्धारित हो रहे थे। यह स्वयंवर भी उनमें एक था। यह प्रथम बार आयोजित किया गया था। इस प्रथा द्वारा स्त्री जाति को अपना भावी जीवन साथी चुनने की स्वाधीनता दी गयी थी। बातों में आकर राजकुमार अर्ककीर्ति ने न्याय की इस रेखा को लाँघकर स्वामी-सेवक का अनावश्यक प्रश्न खड़ा कर देना चाहा। जयकुमार ने अन्याय की इस चुनौती को स्वीकार किया। उन्होंने बनारस के विस्तृत मैदान में युवराज अर्ककीर्ति और उनके साथी राजकुमारों को पराजित कर न्याय और नैतिकता को धूमिल होने से बचा लिया।

एक अन्य पौराणिक उल्लेख के अनुसार भगवान मल्लिनाथ के तीर्थ में यहाँ नौवें चक्रवर्ती पद्म हुए। उन्होंने सम्पूर्ण भरत क्षेत्र को जीतकर काशी को उसकी राजधानी बनाया। ये प्रतापी सम्राट् इक्ष्वाकुवंशी थे।

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि भगवान् पार्श्वनाथ विहार करते हुए केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् वाराणसी पधारे थे उनके दर्शनार्थ काशी नरेश अश्वसेन (भगवान् के पिता) और महारानी वामादेवी दोनों आये। समवसरण में भगवान् का उपदेश सुनकर दोनों ने ही दीक्षा ले[1] ली थी।

इसके पश्चात् यहाँ इतिहास की जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई, वह थी स्वामी समन्तभद्र की। मुनि समन्तभद्र दक्षिण भारत के उरगपुर (अथवा उरैयूर) के रहने वाले थे। यह त्रिचनापल्ली नगर का बाहरी प्रान्त था। इसकी राजधानी कंचनपुर या कांजीपुरम् अथवा कांची[2] थी। उस समय यहाँ पल्लव राजाओं का राज्य था। यह मद्रास से दक्षिण-

1. पासनाह चरिउ–आचार्य पद्मकीर्ति रचित।
2. इहैव दक्षिणस्थायां काञ्च्यां पुर्यां परात्मवित्। मुनिः समन्तभद्राख्यो विख्यातो भुवनत्रये।।–आराधना कथाकोष 21।

पश्चिम की ओर 42 मील दूर है तथा कावेरी नदी के तट पर अवस्थित है। उनके पिता फणिमण्डलान्तर्गत उरगपुर के राजा[1] थे। इनके बचपन का नाम शान्तिवर्म[2] था।

मुनि समन्तभद्र घोर तपस्वी थे और प्रकाण्ड विद्वान भी। किन्तु अशुभोदय से इन्हें भस्मक रोग हो गया। भस्मक रोग में कफ क्षीण हो जाता है, वायु और पित्त बढ़ जाते हैं। इससे जठराग्नि अत्यन्त प्रदीप्त, बलाढ्य और तीक्ष्ण हो जाती है। जो भी भोजन किया जाता है, क्षण मात्र में भस्म हो जाता है। पौष्टिक भोजन से ही यह रोग शान्त होता है। मुनि अवस्था में यह सम्भव नहीं था। अतः वे गुरु की आज्ञा से वहाँ से चल दिये। उस समय वे मणुवक हल्ली (मैसूर से लगभग 40 मील दूर) में विराजमान थे।

वहाँ से चलकर वे दिगम्बर अवस्था में कांची में पहुँचे। फिर भस्म रमाकर लाम्बुश में पहुँचे। वहाँ के बौद्धभिक्षु का वेश बनाकर पुण्ड्र (बंगाल), उण्ड्र (उड़ीसा) में घूमे। तदनन्तर परिव्राजक का बाना धारण करके दशपुर (मध्यप्रदेश का मन्दसौर) जा पहुँचे। फिर श्वेतवस्त्रधारी योगी बनकर वाराणसी गये[3]। किन्तु यथेष्ट सुस्निग्ध पौष्टिक आहार की व्यवस्था नहीं बन सकी।

उस समय वाराणसी के नरेश शिवकोटि थे। उन्होंने शिवजी का एक विशाल मंदिर बनवाया था। वहाँ राज्य की ओर से अनेक प्रकार के व्यंजन शिवजी के आगे चढ़ते थे। स्वामी समन्तभद्र ने देखा कि पुजारी शिवजी की पूजा करके बाहर आये और शिवजी को चढ़ाई हुई व्यंजनों की भारी राशि बाहर लाकर रख दी। समन्तभद्र उसे देखकर पुजारियों से कहने लगे–'आप लोगों में किसी में ऐसी शक्ति नहीं है, जो इस नैवेद्य को शिवजी को खिला सकें।' पुजारियों को इस प्रश्न से बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा–'क्या आप में यह शक्ति है?' स्वामी बोले–'हाँ, मुझमें यह शक्ति है। तुम चाहो तो मैं यह सारी सामग्री शिवजी को खिला सकता हूँ।'

पुजारी तत्काल राजा के पास गये और उनसे सब समाचार कहा। राजा को भी सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उस अद्‌भुत योगी को देखने के लिये वह उसी समय शिवालय में आया। उसने स्वामी समन्तभद्र को देखा। उनकी तेजमण्डित मुखमुद्रा और आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर वह बड़ा प्रभावित हुआ। उसने बड़ी विनय के साथ निवेदन किया–'योगीराज! सुना है, आप में शिवालय का यह संपूर्ण नैवेद्य शिवजी को खिलाने की सामर्थ्य है। यदि यह सत्य है तो लीजिए यह सामग्री, इसे महादेव जी को खिलाइए।'

स्वामी ने स्वीकृति देकर सब पकवानों को मंदिर में रखवा दिया और सब लोगों को मंदिर से बाहर निकालकर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। फिर आनन्दपूर्वक भोजन किया और सम्पूर्ण पक्वान्न को समाप्त करके बाहर आये। महाराज और उपस्थित जन वह अश्रुतपूर्व दृश्य देख विस्मित रह गये।

अब राजा की ओर से प्रतिदिन एक से एक बढ़कर सुस्वादु पक्वान्न आने लगे और आचार्य उससे अपनी व्याधि शांत करने लगे। इस प्रकार छह माह व्यतीत हो गये। रोग शांत होता गया और उसी मात्रा में नैवेद्य बचने लगा। पुजारियों को संदेह बढ़ने लगा। उन्होंने जाकर राजा से यह बात कही। राजा को भी संदेह हुआ। राजा के कहने पर पुजारियों ने एक चालाक लड़के को मोरी में छिपा दिया।

यथासमय योगीराज ने किवाड़ बन्द करके भोजन किया। लड़के ने यह सब देखा और बाहर आकर पुजारियों से कह दिया। राजा को भी यह समाचार भेजा गया। राजा आया और आचार्य महाराज से बोला–'हमें सब समाचार मिल

---

1. श्रवणबेलगोल के श्री दौर्वलि जिनदास शास्त्री के शास्त्र भण्डार में आप्तमीमांसा ग्रन्थ है। उसका पुष्पिका वाक्य इस प्रकार है– इति श्री फणिमण्डलालंकाराख्योरगपुराधिपसूनोः। श्रीस्वामीसमन्तभद्रमुनेः कृतौ आप्तमीमांसायां...
2. 'गत्वैकस्तुतमेव' इस अंतिम पद में, समन्तभद्र विरचित 'स्तुति विद्या' ग्रन्थ के अन्त में एक पंक्ति है- 'शान्तिवर्मकृत जिनस्तुतिशंत'
3. वाराणसीं ततः प्राप्तः कुलघोषैः समन्विताम्। योगिलिङ्गं तथा तत्र गृहीत्वा पर्यटन् पुरे।।19।। सः योगी लीलया तत्र शिवकोटिमहीभुजा। कारितं शिवदेवोरुप्रासादं संविलोक्य च।।20।। आराधना कथाकोष–कथा 4

गये हैं। तुम्हारा धर्म क्या है? तुम सबके समक्ष शिवजी को नमस्कार करो।' स्वामी समन्तभद्र बोले–'राजन्! मेरा नमस्कार स्वीकार करने में शिवजी समर्थ नहीं हैं। तब भी राजा बराबर आग्रह करता रहा और निश्चय हुआ कि दूसरे दिन प्रातःकाल स्वामी समन्तभद्र शिवजी को नमस्कार करेंगे।

रात्रि में स्वामी समन्तभद्र चौबिस तीर्थंकरों की स्तुति करने लगे। प्रातःकाल होने पर राजा आया। शिवलिंग के समक्ष स्वामी जी को बुलाया गया। राजा ने उनसे शिवजी को नमस्कार करने के लिए कहा। स्वामी जी जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति में तन्मय होकर स्वयम्भू स्तोत्र (चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति) का पाठ करने लगे। जिस समय वे आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की स्तुति करने लगे, शिवमूर्ति फट गयी और उसमें से भगवान चन्द्रप्रभु की दिव्य प्रतिमा प्रकट हुई । इस दिव्य चमत्कार को देखकर सभी बड़े प्रभावित हुए। तब राजा हाथ जोड़कर बोला-'भगवन्! आपका प्रभाव अचिन्त्य है। किन्तु आप हैं कौन? उस समय स्वामी समन्तभद्र ने आत्म-परिचय के लिए 'काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं'[1] इत्यादि श्लोक बोला। राजा तथा अनेक प्रजाजन स्वामीजी के शिष्य हो गये। स्वामी समन्तभद्र ने पुनः जैन मुनि की दीक्षा ले ली। राजा शिवकोटि आदि ने भी उनसे मुनि-दीक्षा ले ली[2]।

वाराणसी के बाँस फाटक मुहल्ले में गुदौलिया चौक मार्ग पर एक छोटा-सा शिवालय है, जो फटे महादेव के नाम से ख्यात है। इसकी पिण्डी ठीक बीच से एकदम फटी है।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बनारसीदास भी यात्रा के निमित्त काशी में आये थे। उनके लिखे हुए 'अर्धकथानक' नामक आत्मचरित ग्रन्थ से पता चलता है कि वे व्यापार आदि के सिलसिले में वाराणसी कई बार आये थे। इतना ही नहीं, उनका बनारसीदास यह नाम भी बनारस की यात्रा के कारण ही पड़ा। उनके इस नामकरण की कथा बड़ी रोचक है। बनारसीदास का जन्म माघ शुक्ला 11 संवत् 1643 को श्रीमान् खड्गसेन के घर में जौनपुर में हुआ। जब बालक छह सात महीने का हुआ, तब खड्गसेन जी यात्रा के निमित्त काशी गये। बालक का राशि नाम विक्रमाजीत था। खड्गसेन जी ने बालक को पार्श्वप्रभु के चरणों में रख दिया और उसके दीर्घायु होने की प्रार्थना की। उस समय मंदिर का पुजारी भी वहाँ खड़ा था। थोड़ी देर ध्यान लगाकर बोला–भगवान् पार्श्वनाथ के यक्ष ने मुझसे कहा है कि यदि बालक का नाम पार्श्वनाथ के जन्म नगर (बनारस) के नाम पर रखा जायेगा तो बालक चिरायु होगा।

जो प्रभु पार्श्व जन्म को गाँव। सो दीजे बालक को नांव।।
तो बालक चिरजीवी होय। यह कलि लोप भयो सुर सोय।। (अर्धकथानक, 91-92)

तब से बालक का नाम बनारसीदास रख दिया गया।

वि.संवत् 1661 में, जब पिता खड्गसेन जी शिखर जी की यात्रा पर चले गये, तब बनारसीदास अपनी माता से पार्श्वनाथ भगवान् के मेले में जाने के लिए झगड़ने लगे। यहाँ तक कि इसके लिए उन्होंने दही, दूध, घृत, चावल, चने, तेल, ताम्बूल, पुष्प आदि कितनी ही वस्तुओं का हठपूर्वक त्याग कर दिया। चैत के महीने में यह नियम लिया था कि जब तक बनारस के पार्श्वनाथ की यात्रा नहीं कर लूँगा, तब तक इन वस्तुओं का उपयोग नहीं करूँगा। इस नियम को छह-सात महीने हो गये। कार्तिकी पूर्णमासी के गंगास्नान के लिए बहुत-से शिवभक्त और पार्श्वनाथ की पूजा के लिए जिनभक्त बनारस जा रहे थे। उन लोगों के साथ बनारसीदास भी गये। 'अर्धकथानक' में उन्होंने इसका बड़े रोचक ढंग से वर्णन किया है—

''कासी नगरी में गये, प्रथम नहाये गंग।
पूजा पास सुपास की, कीनी मन धर रंग।।232।।

---

1. काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः। पुण्डोड्रे शाक्यभिक्षुः दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट्।। वाराणस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुरांगस्तपस्वी। राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी।।
2. ब्रह्मचारी नेमिदत्त कृत आराधना कथा कोष, कथा-4।

जे जे खन की बस्त सब, ते ते मोल मंगाइ।
नेवज ज्यों आगें धरे, पूजे प्रभु के पाइ।।233।।
दिन दस रहे बनारसी, नगर बनारस माहिं।
पूजा कारन द्योहरे, नित प्रभात उठि जाहिं।।234।।

इस प्रकार बनारसीदास ने वाराणसी नगरी की दस दिवसीय यात्रा बड़े भक्ति-भाव से की।

बनारस के स्थानीय भारत-कला भवन में पुरातत्व संबंधी बहुमूल्य सामग्री संग्रहीत है। यहाँ राजघाट तथा अन्य स्थानों पर खुदाई में जो पुरातत्व सामग्री उपलब्ध हुई थी, वह इस कला भवन में सुरक्षित है। यह सामग्री विभिन्न युगों से संबंधित है। इसमें पाषाण और धातु की अनेक जैन प्रतिमाएं भी हैं ये कुषाण काल से लेकर मध्यकाल तक की हैं।

बनारस में 'भदैनी जैन घाट' नाम से एक स्थान है जो भगवान सुपार्श्वनाथ का जन्मस्थान माना जाता है। यहाँ आजकल स्याद्वाद महाविद्यालय नामक प्रसिद्ध शिक्षा संस्था है। इस भवन के ऊपर भगवान सुपार्श्वनाथ का मंदिर है। यह गंगा तट पर अवस्थित है, दृश्य अत्यंत सुन्दर है। मंदिर छोटा ही है किन्तु शिखरबद्ध है।

भगवान पार्श्वनाथ का जन्मस्थल वर्तमान के भेलूपुर मोहल्ले को माना जाता है। उनके जन्मस्थान पर बहुत विशाल सुन्दर मंदिर बना हुआ है। उसी कम्पाउन्ड के भीतर धर्मशाला भी बनी हुई है। जिसमें सभी दिगम्बर जैन बंधुओं के ठहरने की समुचित व्यवस्था है। भेलूपुर में एक और दिगम्बर जैन मंदिर भी है उसमें मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा है।

हिन्दुओं की मान्यतानुसार अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, अवन्ति और द्वारका ये सात महापुरियाँ हैं इनमें काशी मुख्य मानी गई है। ''काश्यां हि मरणान्मुक्तिः'' यह हिन्दू शास्त्रों का वाक्य है। काशी में मरने से मुक्ति होती है इस विश्वास के कारण ही प्राचीन काल में यहाँ देहोत्सर्ग करने के लिए हिन्दू लोग आया करते थे। काशी का संबंध महाराजा हरिश्चन्द्र, कबीर और तुलसी से भी जुड़ा रहा है।

बनारस सहस्रों वर्षों से विद्या का केन्द्र रहा है। यहाँ भारतीय वाङ्मय-दर्शन और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की प्राचीन परम्परा आज तक सुरक्षित है।

दिल्ली से कुण्डलपुर (नालंदा) की ओर संघ के मंगल विहार के मध्य पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी का 19 नवंबर 2002 को बनारस में पदार्पण हुआ। वहाँ लगभग 1 सप्ताह प्रवास के मध्य ''बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय'' में प्रथम बार जैन साधुओं के मंगल प्रवचन का कार्यक्रम भी हुआ। जिसमें बी.एच.यू. तथा डा. सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपतियों सहित अनेक वरिष्ठ प्रवक्ताओं ने पूज्य माताजी की संस्कृत भाषाजनित प्रतिभाशक्ति का कोटिशः अभिनंदन किया तथा अपने विश्वविद्यालयों में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-हस्तिनापुर द्वारा प्रदत्त साहित्य को ससम्मान विराजमान किया।

6 जनवरी 2005 को पौष कृ. 11 के दिन पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा द्वारा बनारस में 'भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। त्रिवर्षीय इस महोत्सव का समापन पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र में पौष कृ. 11 (3 जनवरी 08) को हो रहा है।

तीर्थंकर द्वय की उस पावन जन्मभूमि बनारस को शत-शत नमन।

भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान कल्याणक भूमि

अहिच्छत्र तीर्थ का परिचय

प्रस्तुति–आर्यिका चन्दनामती

स्थिति–अहिच्छत्र उत्तरप्रदेश के बरेली जिले की आँवला तहसील में स्थित है। दिल्ली से अलीगढ़ 126 किमी. तथा अलीगढ़ से बरेली लाइन पर (चन्दौसी से आगे) आँवला स्टेशन 135 किमी. है। आँवला स्टेशन से अहिच्छत्र क्षेत्र सड़क द्वारा 18 किमी. है। आँवला से अहिच्छत्र तक पक्की सड़क है। स्टेशन पर ताँगे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इसी रेलवे लाइन पर रेवती बहेड़ाखेड़ा स्टेशन से 5 किमी. पूर्व दिशा में पड़ता है। किन्तु आँवला स्टेशन पर उतरना अधिक सुविधाजनक है। इसका पोस्ट ऑफिस रामनगर है।

कल्याणक क्षेत्र–अहिच्छत्र आजकल रामनगर गाँव का एक भाग है। इसको प्राचीन काल में संख्यावती नगरी कहा जाता था। एक बार भगवान पार्श्वनाथ मुनिदशा में विहार करते हुए संख्यावती नगरी के बाहर उद्यान में पधारे और वहाँ प्रतिमायोग धारण करके ध्यानलीन हो गये। संयोगवश संवर नामक एक देव विमान द्वारा आकाश मार्ग से जा रहा था। ज्यों ही विमान पार्श्वनाथ के ऊपर से गुजरा कि वह वहीं रुक गया। उग्र तपस्वी ऋद्धिधारी मुनि को कोई सचेतन या अचेतन वस्तु लाँघकर नहीं जा सकती। संवरदेव ने इसका कारण जानने के लिए नीचे की ओर देखा। पार्श्वनाथ को देखते ही जन्म-जन्मान्तरों के वैर के कारण वह क्रोध से भर गया। विवेकशून्य हो वह अपने पिछले जीवन में पार्श्वनाथ के हाथों हुए अपमान का प्रतिशोध लेने को आतुर हो उठा और अनेक प्रकार के भयानक उपद्रव कर उन्हें त्रास देने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु स्वात्मलीन पार्श्वनाथ पर इन उपद्रवों का रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। न वे ध्यान से चल-विचल हुए और न उनके मन में आततायी के प्रति दुर्भाव ही आया। तभी नागकुमार देवों के इन्द्र धरणेन्द्र और उसकी इन्द्राणी पद्मावती के आसन कम्पित हुए। वे पूर्व जन्म में नाग-नागिन थे। संवरदेव तापसी था। पार्श्वनाथ उस समय राजकुमार थे। जब पार्श्वनाथ सोलह वर्ष के किशोर थे, तब गंगा-तट पर सेना के साथ हाथी पर चढ़कर वे भ्रमण के लिए निकले। उन्होंने एक तपस्वी को देखा, जो पंचाग्नि तप कर रहा था। कुमार पार्श्वनाथ अपने अवधिज्ञान के नेत्र से उसके इस विडम्बनापूर्ण तप को देख रहे थे। इस तपस्वी का नाम महीपाल था और यह पार्श्वनाथ का नाना था। पार्श्वनाथ ने उसे नमस्कार नहीं किया। इससे तपस्वी मन में बहुत क्षुब्ध था। उसने लकड़ी काटने के लिए अपना फरसा उठाया ही था कि भगवान पार्श्वनाथ ने मना किया 'इसे मत काटो, इसमें जीव हैं।' किन्तु उनके मना करने पर भी उसने लकड़ी काट डाली। इससे लकड़ी के भीतर रहने वाले सर्प और सर्पिणी के दो टुकड़े हो गये। परम करुणाशील पार्श्व प्रभु ने असह्य वेदना में तड़फते हुए उन सर्प-सर्पिणी को णमोकार मंत्र सुनाया। मंत्र सुनकर वे अत्यन्त शांत भाव के साथ मरे और नागकुमार देवों के इन्द्र और इन्द्राणी के रूप में धरणेन्द्र और पद्मावती हुए।

महीपाल अपनी सार्वजनिक अप्रतिष्ठा की ग्लानि में अत्यन्त कुत्सित भावों के साथ मरा और ज्योतिष्क जाति का देव बना। उसका नाम अब संवर था। उसी देव ने अब मुनि पार्श्वनाथ से अपने पूर्व वैर का बदला लिया। धरणेन्द्र और पद्मावती ने आकर प्रभु के चरणों में नमस्कार किया और भगवान का उपसर्ग दूरकर अपनी भक्ति का परिचय प्रदान किया। पार्श्वनाथ तो इन उपद्रवों, रक्षाप्रयत्नों और क्षमा-प्रसंगों से निर्लिप्त रहकर आत्मध्यान में लीन थे। उन्हें तभी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। वह चैत्र कृष्णा चतुर्थी का दिन था। इन्द्रों और देवों ने आकर समवसरण में भगवान के ज्ञानकल्याणक की पूजा की। उस समय संवरदेव ने भी प्रभु के चरणों में जाकर अपने पापों का प्रायश्चित किया। भगवान पार्श्वनाथ का वहाँ पर प्रथम जगत्कल्याणकारी उपदेश हुआ।

उक्त घटना का चित्रण आचार्य समंतभद्र (3-4 शताब्दी) ने अपने स्वयंभू स्तोत्र के 'पार्श्वनाथ-स्तवन' में इस प्रकार किया है–

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः, प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः।
वलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो, महामना यो न चचाल योगतः।।1।।
बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरित्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा।।2।।

अर्थात् तमालवृक्ष के समान नीले, इन्द्रधनुष तथा बिजली से युक्त और भयंकर वज्र, वायु और वृष्टि को सब ओर फेंकने वाले मेघों से, जो कि पूर्व जन्म के वैरी देव के द्वारा लाये गये थे, पीड़ित होने पर भी महामना पार्श्वदेव ध्यान से विचलित नहीं हुए। उस समय धरणेन्द्र नामक नाग ने चमकती हुई बिजली के समान पीत कान्ति को लिए हुए अपने विशाल फणामण्डल का मण्डप बनाकर उपसर्ग से ग्रस्त पार्श्वनाथ को उसी प्रकार ढक लिया,जिस प्रकार कृष्ण संध्या में बिजली से मुक्त मेघ पर्वत को ढक लेते हैं।

भगवान आत्म-ध्यान में विचरण करते हुए निरन्तर शुक्ल-ध्यान में आगे बढ़ रहे थे। उनके कर्म नष्ट हो रहे थे। आत्मा की विशुद्धि बढ़ती जा रही थी। तभी उन्हें लोकालोक-प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त हो गया। सारे उपसर्ग स्वतः ही समाप्त हो गये। देवों और इन्द्रों के आसन कम्पित हुए।

अतिशय क्षेत्र–नागेन्द्र द्वारा भगवान के ऊपर छत्र लगाया गया था, इस कारण इस स्थान का नाम संख्यावती के स्थान पर अहिच्छत्र हो गया। साथ ही भगवान के केवलज्ञान कल्याणक की भूमि होने के कारण यह पवित्र तीर्थक्षेत्र हो गया।

भगवान पार्श्वनाथ के सिर पर धरणेन्द्र द्वारा सर्प फण लगाने और भगवान के केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् लगता है यहाँ की मिट्टी में ही कुछ अलौकिक अतिशय आ गया। यहाँ पर पश्चाद्वर्ती काल में अनेक ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटित होने का वर्णन जैन साहित्य में अथवा अनुश्रुतियों में उपलब्ध होता है। इन घटनाओं में आचार्य पात्रकेशरी की घटना तो सचमुच ही विस्मयकारी है। आचार्य पात्रकेशरी का समय छठी-सातवीं शताब्दी माना जाता है। (स्व. पं. जुगलकिशोर मुख्तार और स्व. प्रो. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य के मतानुसार आचार्य पात्रकेशरी का आनुमानिक समय छठी शताब्दी का अंतिम अथवा सातवीं शताब्दी का प्रारंभिक काल है।) वे इसी पावन नगरी के निवासी थे। उस समय नगर के शासक अवनिपाल थे। उनके दरबार में पाँच सौ ब्राह्मण विद्वान थे, जो प्रायः तात्त्विक गोष्ठी किया करते थे। पात्रकेशरी इनमें सर्वप्रमुख थे। एक दिन यहाँ के पार्श्वनाथ मंदिर में ये विद्वान गोष्ठी के निमित्त गये। वहाँ एक मुनि, जिनका नाम चारित्रभूषण था, आचार्य समंतभद्र विरचित देवागम स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। पात्रकेशरी ध्यानपूर्वक उसे सुन रहे थे। उनके मन की अनेक शंकाओं का समाधान स्वतः होता गया। उन्होंने पाठ समाप्त होने पर मुनिराज से स्तोत्र दुबारा पढ़ने का अनुरोध किया। मुनिराज ने दुबारा स्तोत्र पढ़ा। पात्रकेशरी उसे सुनकर अपने घर चले गये और गहराई से तत्त्व-चिन्तन करने लगे। उन्हें अन्य दर्शनों की अपेक्षा जैन दर्शन सत्य लगा। किन्तु अनुमान प्रमाण के संबंध में उन्हें अपनी शंका का समाधान नहीं मिल पा रहा था। इससे उनके चित्त में कुछ उद्विग्नता थी।

तभी पद्मावती देवी प्रगट हुई और बोली–'विप्रवर्य! तुम्हें अपनी शंका का उत्तर कल प्रातः पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा द्वारा प्राप्त हो जायेगा।' दूसरे दिन पात्रकेशरी पार्श्वनाथ मंदिर में पहुँचे। जब उन्होंने प्रभु की मूर्ति की ओर देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। पार्श्वनाथ प्रतिमा के फण पर निम्नलिखित कारिका लिखी हुई थी–

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।।

कारिका को पढ़ते ही उनकी शंका का समाधान हो गया। उन्होंने जैनधर्म को सत्य धर्म स्वीकार कर उसे अंगीकार कर लिया। तत्पश्चात् वे जैन मुनि बन गये। अपनी प्रकाण्ड प्रतिभा के कारण जैन दार्शनिक परम्परा के प्रमुख आचार्यों

में उनकी गणना की जाती है।

-आराधना कथाकोष, कथा-1

पात्रकेशरी के पश्चाद्वर्ती सभी दार्शनिक जैन आचार्यों ने अपने ग्रंथों में और जैन राजाओं ने शिलालेखों में इस घटना का बड़े आदरपूर्वक उल्लेख किया है। वादिराज सूरि के 'न्यायविनिश्चयालंकार' नामक भाष्य में उल्लेख है कि यह श्लोक पद्मावती देवी ने तीर्थंकर सीमंधर स्वामी के समवसरण में जाकर गणधरदेव के प्रसाद से प्राप्त किया था।

श्रवणबेलगोल के 'मल्लिषेण प्रशस्ति' नामक शिलालेख (नं. 54/67) में, जो शक सं. 1050 का है, लिखा है–

महिमा सपात्रकेसरिगुरोः परं भवति यस्य भक्त्यासीत्।
पद्मावतीसहाया त्रिलक्षण - कदर्थनं कर्तुम्।।

उन पात्रकेशरी गुरु का बड़ा माहात्म्य है जिनकी भक्ति के वश होकर पद्मावती देवी ने 'त्रिलक्षण-कदर्थन' की रचना में उनकी सहायता की।

यह ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त श्लोक के आधार पर ही आचार्य पात्रकेशरी ने 'त्रिलक्षणकदर्थन' नामक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रंथ की रचना की थी।

इसी प्रकार की एक दूसरी चमत्कारपूर्ण घटना का उल्लेख 'आराधनासार कथाकोष' में उपलब्ध होता है।

उस समय इस नगर का शासक वसुपाल था। उसकी रानी का नाम वसुमती था। राजा ने एक बार अहिच्छत्र नगर में बड़ा मनोज्ञ सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण कराया और उसमें पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा स्थापित करायी। राजा की आज्ञा से एक लेपकार मूर्ति के ऊपर लेप लगाने को नियुक्त हुआ। लेपकार मांसभक्षी था। वह दिन में जो लेप लगाता था रात में गिर जाता था। इस प्रकार कई दिन बीत गये। लेपकार पर राजा बहुत क्रुद्ध हुआ और उसे दण्डित कर निकाल दिया। एक दिन एक अन्य लेपकार आया। अकस्मात् उसकी भावना हुई और उसने मुनि के निकट जाकर कुछ नियम लिये, पूजा रचायी। दूसरे दिन से उसने जो लेप लगाया, वह फिर मानो वज्रलेप[1] बन गया।

यहाँ क्षेत्र पर एक प्राचीन शिखरबन्द मंदिर है। उसमें एक वेदी तिखालवाले बाबा की है। इस वेदी में श्यामवर्णी भगवान पार्श्वनाथ की एक मूर्ति है तथा उनके आगे भगवान के चरण विराजमान हैं। इस तिखाल के संबंध में बहुत प्राचीनकाल से एक किंवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है कि जब इस मंदिर का निर्माण हो रहा था, उस दिन एक रात लोगों को ऐसा लगा कि मंदिर के भीतर चिनाई का कोई काम हो रहा है। ईंटों के काटने-छाँटने की आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही थी। लोगों के मन में दुःशंकाएँ होने लगीं और उन्होंने उसी समय मंदिर खोलकर देखा तो वहाँ कुछ नहीं था। अलबत्ता एक आश्चर्य उनकी दृष्टि से छिपा नहीं रह सका। वहाँ एक नयी दीवाल बन चुकी थी, जो संध्या तक नहीं थी और उसमें एक तिखाल बना हुआ था। अवश्य ही किन्हीं अदृश्य हाथों द्वारा यह रचना हुई थी। तभी से लोगों ने इस वेदी की मूर्ति का नाम 'तिखाल वाले बाबा' रख दिया। कहते हैं, जिनके अदृश्य हाथों ने कुछ क्षणों में एक दीवार खड़ी करके भगवान के लिए तिखाल बना दिया, वे अपने आराध्य प्रभु के भक्तों की प्रभु के दरबार में हाजिर होने पर मनोकामना भी पूरी करते हैं।

पुरातत्त्व एवं इतिहास–यह नगरी भारत की प्राचीनतम नगरियों में से एक है। भगवान ऋषभदेव ने जिन 52 जनपदों की रचना की थी, उसमें एक पांचाल भी था। परवर्तीकाल में पांचाल जनपद दो भागों में विभक्त हो गया–उत्तर पांचाल और दक्षिण पांचाल। पहले सम्पूर्ण पांचाल की ही राजधानी अहिच्छत्र थी, किन्तु विभाजन होने पर उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र रही और दक्षिण पांचाल की कम्पिला। जैन साहित्य में पांचाल के प्रायः इन दो भागों का उल्लेख मिलता है। महाभारत काल में अहिच्छत्र के शासक द्रोण थे और कम्पिला के द्रुपद।

नगरी का यह 'अहिच्छत्र' नाम सर्प द्वारा छत्र लगाने के कारण पड़ा, इसमें जैन, वैदिक और बौद्ध तीनों ही धर्म

1. मुनि श्री चन्दकृत कहाकोसु, सन्धि 6, कडवक 9, पृ. 66।

सहमत हैं। किन्तु इस संबंध में जो कथानक दिये हैं, उनमें जैन कथानक अनेक कारणों से अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है। भगवान पार्श्वनाथ ऐतिहासिक महापुरुष थे। उनका प्रभाव तत्कालीन सम्पूर्ण भारत–विशेषतः उत्तर और पूर्व भारत में अत्यधिक था। वैदिक साहित्य भी उनके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। उनके प्रभाव के कारण वैदिक ऋषियों की चिन्तन धारा बदल गई। उनके चिन्तन की दशा हिंसामूलक यज्ञों और क्रियाकाण्डों से हटकर अध्यात्मवादी उपनिषदों की रचना की ओर मुड़ गयी।

भगवान पार्श्वनाथ संबंधी उपर्युक्त घटना की गूँज उस काल में दक्षिण भारत तक पहुँची थी। इस बात का समर्थन कल्लुरगुड्डू (जिला सीमौगा, मैसूर प्रान्त-सन् 1121) में उपलब्ध उस शिलालेख से भी होता है जिसमें गंग वंशावली दी गई है। उसमें उल्लेख है कि भगवान पार्श्वनाथ को अहिच्छत्र में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

पार्श्वनाथ संबंधी इस घटना का एक सांस्कृतिक महत्व भी है। इस घटना ने जैन कला को–विशेषतः जैन मूर्तिकला को बड़ा प्रभावित किया। पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं का निर्माण इस घटना के कारण ही कुछ भिन्न शैली में होने लगा। चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ अपने आसन, मुद्रा, ध्यान आदि की दृष्टि से सभी एक समान होती हैं। उनकी पहचान और अन्तर उनके आसन पर अंकित किये गये चिन्ह द्वारा ही किया जा सकता है। केवल पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ अन्य तीर्थंकर-प्रतिमाओं से एक बात में निराली हैं। अरहंत दशा की प्रतिमा होते हुए भी उनके सिर पर सर्प-फण रहता है, जो हमें सदा ही कमठ द्वारा घोर उपसर्ग करने पर नागेन्द्र द्वारा पार्श्वनाथ के ऊपर सर्प-फण के छत्र तानने का स्मरण दिलाता रहता है। इतना ही नहीं, अनेक पार्श्व प्रतिमाएँ इस घटना के स्मारक रूप में धरणेन्द्र-पद्मावती के साथ निर्मित होने लगीं और इसीलिए जैन साहित्य में इस इन्द्र दम्पति की ख्याति पार्श्वनाथ के भक्त यक्ष-यक्षिणी के रूप में विशेष उल्लेख योग्य हो गयी।

यहाँ क्षेत्र से दो मील दूर एक प्राचीन किला है, जिसे महाभारतकालीन कहा जाता है। इस किले के निकट ही कटारीखेड़ा नामक टीले से एक प्राचीन स्तंभ मिला है। उस स्तंभ पर एक लेख है। इसमें महाचार्य इन्द्रनन्दि के शिष्य महादरि के द्वारा पार्श्वपति (पार्श्वनाथ) के मंदिर में दान देने का उल्लेख है। यह लेख पार्श्वनाथ मंदिर के निकट ही मिला है। इस टीले और किले से कई जैन मूर्तियाँ मिली हैं। कई मूर्तियों को ग्रामीण लोग ग्रामदेवता मानकर अब भी पूजते हैं। संभव है वर्तमान में जो पार्श्वनाथ मंदिर है, वह नवीन मंदिर हो और जिस स्थान पर किले और टीले से प्राचीन जैन-मूर्तियाँ निकली हैं, वहाँ प्राचीन मंदिर रहा हो। यदि यहाँ के टीलों और खण्डहरों की, जो मीलों में फैले हुए हैं, खुदाई की जाये, तो हो सकता है कि गहराई में पार्श्वनाथकालीन जैन मंदिर के चिन्ह और मूर्तियाँ मिल जायें।

ऐसा कोई मंदिर गुप्तकाल तक तो अवश्य था। शिलालेखों आदि से इसकी पुष्टि होती है। गुप्तकाल के पश्चाद्वर्ती इतिहास में इस संबंध में कोई सूत्र उपलब्ध नहीं होता। फिर भी यह तो असन्दिग्ध है कि परवर्ती काल में भी शताब्दियों तक यह स्थान जैनधर्म का एक विशाल केन्द्र रहा। इस काल में यहाँ पाषाण की अनेक जैन प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। ऐसी अनेक प्रतिमाएँ, स्तूपों के अवशेष, मिट्टी की मूर्तियाँ और कला की अन्य वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये सभी प्रतिमाएँ दिगम्बर परम्परा की हैं। यहाँ श्वेताम्बर परम्परा की एक भी प्रतिमा न मिलने का कारण यही प्रतीत होता है कि यहाँ पार्श्वनाथ काल में दिगम्बर परम्परा की ही मान्यता, प्रभाव और प्रचलन रहा है।

कहा जाता है कि अपने वैभव काल में अहिच्छत्र नगर 48 मील की परिधि में था। आज के आँवला, वजीरगंज, रहटुइया, जहाँ अनेकों प्राचीन मूर्तियाँ और सिक्के प्राप्त हुए हैं, पहले इसी नगर में सम्मिलित थे। यहाँ के भग्नावशेषों में 18 इंच तक की ईंटें मिलती हैं।

क्षेत्र-दर्शन (सन् 1975 के जीर्णोद्धार से पूर्व)–सड़क से कुछ फुट ऊँची चौकी पर क्षेत्र का मुख्य द्वार था।

फाटक के बायीं ओर बाहर उस भग्न मूर्ति के शीर्ष के दर्शन होते थे, जो किले से लाकर यहाँ दीवार में एक आले में रखा गया था, अब वह यहाँ के स्वाध्याय भवन में रखा है। भीतर एक विशाल धर्मशाला थी। बीच में एक पक्का कुआँ था।

बायीं ओर मंदिर का द्वार था। द्वार में प्रवेश करते ही क्षेत्र का कार्यालय मिलता था। सामने बायीं ओर गर्भगृह में वेदी थी, जिसमें तिखाल वाले बाबा (भगवान पार्श्वनाथ) की प्रतिमा विराजमान थी। पार्श्वनाथ की यह श्यामवर्णी हरितपन्ना की सातिशय प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में आज भी विराजमान है। इसकी अवगाहना साढ़े 9 इंच है। प्रतिमा अत्यन्त सौम्य और प्रभावक है। इस प्रतिमा के पादपीठ पर कोई लेख नहीं है। सर्प का लांछन अवश्य अंकित है और सिर पर फण-मण्डल है। वेदी के नीचे सामने वाले भाग में दो सिंह आमने-सामने मुख किये हुए बैठे हैं।

प्रतिमा के आगे भगवान के श्रीचरण स्थापित हैं जिनका आकार 1 फुट साढ़े 5 इंच है। उन पर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है-

श्रीमूलसंघे नन्द्याम्नाये बलात्कारगणे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये दिगम्बराम्नाये अहिच्छत्रनगरे श्री पार्श्वजिनचरणा प्रतिष्ठापिताः। श्रीरस्तु।

प्रतिमा का निर्माणकाल 10-11वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है।

इस वेदी के ऊपर लघु शिखर है।

इस वेदी से आगे दायीं ओर दूसरे कमरे की वेदी में मूलनायक पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण 1 फुट 10 इंच अवगाहना की अत्यन्त मनोहर पद्मासन प्रतिमा थी। प्रतिमा के सिर पर सप्त फणावली का मण्डल था। भामण्डल के स्थान पर कमल की सात लम्बायमान पत्तियों और कली का अंकन जितना कलापूर्ण लगता था, उतना ही अलंकरणमय था। अलंकरण का यह रूप अद्‌भुत और अदृष्टपूर्व था।

मूर्ति के नीचे सिंहासनपीठ के सामने वाले भाग में 24 तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण थीं।

इसी प्रकार यहाँ अन्य वेदियों में भी प्राचीन प्रतिमाओं के विराजमान होने का उल्लेख मिलता है। जो मंदिर के जीर्णोद्धार के बाद अन्य नवनिर्मित वेदियों में विराजमान कर दी गई प्रतीत होती हैं।

धर्मशाला के मुख्य द्वार के सामने सड़क के दूसरी ओर का मैदान भी मंदिर का है। सड़क से कुछ आगे चलने पर वह विशाल पक्का कुआँ या वापिका है, जिसके जल की ख्याति पूर्वकाल में दूर-दूर तक थी।

मंदिर के निकट ही रामनगर गाँव है। वहाँ भी एक शिखरबंद मंदिर है। इस मंदिर में फणमण्डित भगवान पार्श्वनाथ की श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना 4 फुट है। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। फणावली में 'अन्यथानुपपन्नत्वं.....' श्लोक भी लिखा हुआ है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा वी.सं. 2481 वैशाख शुक्ला 7 गुरुवार को श्री महावीर जी में हुई थी।

मूलनायक के अतिरिक्त दो पाषाण की और दो धातु की प्रतिमाएँ भी हैं।

पहले इस मंदिर के स्थान पर पद्मावती पुरवाल पंचायत की ओर से ला. हीरालाल जी सर्राफ एटा तथा पं. चम्पालाल जी पेंठत निवासी का बनवाया हुआ मंदिर था। बाद में उसके स्थान पर समस्त दिगम्बर समाज की ओर से यह मंदिर बनाया गया।

मंदिर के बाहर उत्तर की ओर आचार्य पात्रकेशरी के चरण बने हुए हैं। चरणों की लम्बाई 11 इंच है।

ऐसा विश्वास है कि आचार्य पात्रकेशरी इसी स्थान पर बने हुए मंदिर में देवी पद्मावती द्वारा प्रतिबोध पाकर जैनधर्म में दीक्षित हुए थे।

सन् 1975 के पश्चात्—जिस स्थान पर पार्श्वनाथ प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त किया था वहाँ हजारों वर्ष पुराना मंदिर था, जिसका जीर्णोद्धार सन् 1975 में किया गया और आज इसी स्थान पर एक सुन्दर अति आकर्षक सात उन्नत शिखर

युक्त मंदिर है जिसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ईसवी सन् 1978 में हुई थी।

सप्त फणालंकृत श्यामवर्ण प्रतिमा—मूल मंदिर की एक कलात्मक वेदी में मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की सप्त फणालंकृत श्यामवर्ण की प्रतिमा है। यह प्रतिमा देखने में संगमरमर की प्रतीक होती है। इस मूर्ति के नीचे तीर्थंकर की छोटी-छोटी चौबीस प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। प्रतिमा के वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह है, कान कंधों को स्पर्श कर रहे हैं। ऊपर की फणावली सीधी है। दाईं ओर भगवान पार्श्वनाथ की संगमरमर की खड्गासन प्रतिमा है, बाईं ओर भगवान पार्श्वनाथ की एक पद्मासन मूर्ति है। शीर्ष पर पंचमुखी फण है। इस चौबीसी वेदी में अनेक अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ हैं तथा एक सिद्ध भगवान की प्रतिमा भी विराजमान है। इसी वेदी में भूगर्भ से प्राप्त दो प्राचीन अत्यन्त मनोज्ञ व कलात्मक प्रतिमाएं विराजमान हैं जिसमें एक पंच बालयति की प्रतिमा अष्ट धातु की है तथा दूसरी भूरे रंग के पाषाण की शांतिनाथ, कुंथुनाथ एवं अरहनाथ की संयुक्त प्रतिमा है। यह प्रतिमा मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा के आगे सफेद संगमरमर के सिंहासन में विराजमान हैं।

भगवान महावीर जी की वेदी—श्री मंदिर में प्रवेश करते ही गर्भगृह के बाईं ओर प्रथम वेदी पर तीन सुन्दर हंसों एवं लाल कमल की वेदी के ऊपर भगवान महावीर स्वामी की एक छः फुट ऊँची अत्यन्त मनमोहक, पद्मासन प्रतिमा विराजमान है जिसकी स्थापना सन् 1978 ई. में हुई है। इस मूर्ति के दर्शन करने से विशेषरूप से उसकी शांत मुद्रा एवं वीतराग छवि देखने से जो अनुभूति प्राप्त होती है वह वर्णनातीत है। श्रद्धालु एक बार देखे तो निहारता ही रह जाता है।

भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन वेदी—यह वेदी भगवान महावीर के समान ही निर्मित है। यह भगवान पार्श्वनाथ की विशाल पाँच फुट ऊँची श्याम वर्ण की 11 फुट युक्त पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। परन्तु इस मूर्ति में एक विशेष आकर्षण देखते ही बनता है और एक निराली शांत छवि के दर्शन होते हैं। जिससे श्रद्धालुओं को अलौकिक आनंद प्राप्त होता है।

भगवान पार्श्वनाथ का प्रथम समवसरण—यहाँ एक अत्यन्त आकर्षक समवशरण बना हुआ है जिसकी प्रतिष्ठा सन् 1991 ई. में आचार्यश्री 108 अजितसागर महाराज के सानिध्य में हुई थी। जिसके दर्शनार्थ यात्री दूर-दूर से यहाँ आते हैं। बीच में ऊपर आकर्षक एक अशोक वृक्ष के नीचे भगवान पार्श्वनाथ की चारों दिशाओं में मुख किये हुए चार मनोज्ञ प्रतिमाएं विराजमान हैं एवं चार बहुत ही सुन्दर विमान समवसरण पर पुष्पवृष्टि करते हुए दिखाये गये हैं। इसके दर्शन करने से हमें उस समय की याद से मन प्रफुल्लित हो जाता है जब यहाँ देवों द्वारा भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम समवसरण की रचना हुई थी और उन्होंने प्रथम देशना की थी।

तीन प्रतिमाओं युक्त वेदी—इस वेदी में तीन प्रतिमाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तीनों का रंग हल्का कत्थई है और वे शिलापट्ट पर उत्तीर्ण हैं।

बाईं ओर पंच बालयति की मनोहर मूर्तियाँ हैं। जिनके बीच में फणालंकृत पार्श्वनाथ तीर्थंकर की खड्गासन प्रतिमा है, इसके परिसर के नीचे एक यक्ष और दो यक्षी चमरवाहक हैं उनके ऊपर दो कायोत्सर्ग मुद्रा में दस इंच आकार की एक तीर्थंकर प्रतिमा है इसके ऊपर सात इंच अवगाहना की एक पद्मासन प्रतिमा अंकित है। इसी प्रकार दायीं ओर दो प्रतिमाएँ हैं। इसी शिलापट्ट के बीच में भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा स्थित है ऊपर सर्प फण है, अवगाहना ढाई फिट है। पादपीठ पर दो सिंह जीभ निकाले बैठे हैं जो कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्ति का संदेश दे रहे हैं। दांयी ओर यक्ष और बायीं ओर यक्षिणी हैं। भामण्डल के दोनों ओर हाथी उत्कीर्ण हैं। यह गज लक्ष्मी के प्रतीक हैं। उसके ऊपर इन्द्र हाथों में स्वर्ण कलश लिए क्षीरसागर के पावन जल से भगवान का अभिषेक करते प्रतीत होते हैं।

तीस चौबीसी मंदिर—यहाँ प्रांगण में ही एक विशाल तीस चौबीसी मंदिर भी है। इसमें 11 शिखर हैं बीच में मुख्य मूर्ति भगवान पार्श्वनाथ की है। उसकी ऊँचाई 13.5 फुट है। इन पर 108 फण हैं। मंदिर में 10 कमल हैं। प्रत्येक कमल

पर 72 पंखुड़ियाँ हैं। कमल की प्रत्येक पंखुड़ी पर एक-एक भव्य पाषाण की मूर्ति विराजमान है। मध्यलोक के ढाईद्वीप संबंधी पाँच भरत क्षेत्र, पाँच ऐरावत क्षेत्र में होने वाले चौबीस-चौबीस तीर्थंकरों के भूत, भविष्य एवं वर्तमान की 720 मूर्तियाँ हैं। मंदिर के शिखरों पर तथा अंदर कमलों पर सुनहरे कलश लगे हैं। यह तीस चौबीसी मंदिर सम्पूर्ण भारतवर्ष में अद्वितीय मंदिर है। जम्बूद्वीप रचना की प्रेरणास्रोत पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा सन् 1993 में दी गई प्रेरणानुसार इस मंदिर का निर्माण हुआ है।

पद्मावती माता का परिचय—जैसा कि विदित ही है कि जब इसी स्थान पर कमठ ने मुनि अवस्था में ध्यानस्थ पार्श्वनाथ के ऊपर उपसर्ग किया तो देवों का आसन कम्पायमान हुआ और अपने परोपकारी पर उपसर्ग जानकर धरणेन्द्र एवं पद्मावती भगवान की भक्ति के लिए स्वर्ग से आ गये और इसी बीच भगवान को केवलज्ञान हो गया अतः पद्मावती माता का उद्गम स्थान श्री अहिच्छत्र ही है। मूलमंदिर में उन पद्मावती देवी की प्रतिमा विराजमान है। उनकी भक्ति करने एवं अपनी मनोकामना पूरी करने हजारों श्रद्धालु यहाँ दूर-दूर से आकर अपना मनोरथ पूर्ण करते हैं और समय-समय पर अपनी मनोकामना पूर्ण होने पर विशेष दान भी देते हैं।

मानस्तंभ—मंदिर जी के पूर्व की ओर एक विशाल सफेद पाषाण का बहुत ही सुन्दर एवं मनोरम मानस्तंभ बना हुआ है जिसमें बहुत ही सुन्दर भगवान पार्श्वनाथ की चतुर्मुख चार मूर्तियाँ विराजमान हैं।

नवनिर्मित पार्श्वनाथ-धरणेन्द्र-पद्मावती मंदिर—तीर्थ परिसर में तीस चौबीसी मंदिर के बगल में इस मंदिर का नव निर्माण हुआ है। यहाँ के इतिहास को दर्शाती भगवान पार्श्वनाथ एवं उनके शासन देव-देवी की नई प्रतिमाएँ विराजमान हुई हैं। इनकी प्रतिष्ठा 10 दिसम्बर से 14 दिसम्बर 2007 (मगसिर शु. एकम से पंचमी) तक पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के संघ सानिध्य एवं क्षुल्लक समर्पणसागर जी महाराज के सानिध्य में सम्पन्न हो रही है।

तिखाल वाले बाबा भगवान पार्श्वनाथ का सहस्राब्दि महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव भी 16 दिसम्बर 2007 से 4 जनवरी 2008 तक सम्पन्न हो रहा है। इसी अवसर पर तीन वर्ष से चल रहे भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव (पूज्य ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 2005 में उद्घाटित) का समापन भी पौष शु. 11 (3 जनवरी 2008) को हो रहा है।

वार्षिक मेले—यहाँ चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी से द्वादशी तक एक विशाल मेले का आयोजन होता है जिसमें प्रतिदिन सामूहिक पूजन, विधान, रथयात्रा, सामूहिक आरती व कीर्तन के अतिरिक्त रात्रि को विशेष सांस्कृतिक एवं प्रश्नमंच इत्यादि कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। श्रावण शुक्ला सप्तमी को भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण महोत्सव जोर-शोर से मनाया जाता है। उस दिन अहिच्छत्र में पद्मावती माता का अति विशाल शृँगार-आराधना आदि भक्तों द्वारा की जाती है। पौष कृष्णा एकादशी को, पार्श्वनाथ जयंती के रूप में मनाया जाता है। उपर्युक्त तीनों मेलों में हजारों की संख्या में भारतवर्ष के कोने-कोने से यात्रीगण आकर धर्मलाभ प्राप्तकर अपनी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं।

आवास सुविधा—क्षेत्र पर पानी, बिजली, भोजन, बिस्तर आदि सभी प्रकार की उत्तम सुविधाएं हैं। यहाँ पर सात हाल, तीन सौ सुसज्जित कमरे यात्रियों के लिए हर समय पलंग बिस्तर सहित उपलब्ध रहते हैं।

भोजन व्यवस्था—क्षेत्र पर समुचित भोजन व्यवस्था भी है।

भगवान पार्श्वनाथ की निर्वाणभूमि

श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र का परिचय

प्रस्तुति–आर्यिका चन्दनामती

शाश्वत सिद्धक्षेत्र–

श्री सम्मेदशिखर सम्पूर्ण तीर्थक्षेत्रों में सर्वप्रमुख एवं शाश्वत सिद्धक्षेत्र है। इसीलिए इसे तीर्थराज कहा जाता है। इसकी एक बार वंदना-यात्रा करने से कोटि-कोटि जन्मों में संचित पापों का नाश हो जाता है। निर्वाण क्षेत्र पूजा में कविवर द्यानतराय जी ने सत्य ही लिखा है-''एक बार वन्दे जो कोई। ताहि नरक-पशुगति नहिं होई।।'' एक बार वन्दना करने का फल मात्र नरक और पशुगति से ही छुटकारा नहीं है, अपितु परम्परा से संसार से भी छुटकारा है।

ऐसी अनुश्रुति है कि श्री सम्मेदशिखर और अयोध्या ये दो तीर्थ अनादि-निधन-शाश्वत हैं। अयोध्या में सभी तीर्थंकरों का जन्म होता है और सम्मेदशिखर से सभी तीर्थंकरों का निर्वाण होता है। किन्तु हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से इस शाश्वत नियम में व्यतिक्रम हो गया। अतः अयोध्या में केवल पाँच तीर्थंकरों का ही जन्म हुआ और सम्मेदशिखर से केवल बीस तीर्थंकरों ने निर्वाणलाभ किया। किन्तु इनके अतिरिक्त भी असंख्य मुनियों ने यहीं पर तपश्चरण करके मुक्ति प्राप्त की। सम्मेदशिखर की वंदना से तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्र से जो तीर्थंकर और अन्य मुनिवर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, उनके गुणों को सच्चाई के साथ अपने हृदय में उतारें और तदनुसार अपनी आत्मा के गुणों का विकास करें। ऐसा करने से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा, इसमें संदेह नहीं।

ढाई द्वीप में कुल 170 निर्वाणक्षेत्र होते हैं। उनमें जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर ही है जो पारसनाथ हिल के नाम से विख्यात है। प्राकृत निर्वाणकाण्ड में सम्मेदशिखर से बीस तीर्थंकरों की निर्वाण-प्राप्ति का उल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया है, जो इस प्रकार है–

''वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुर-वंदिदा धुद-किलेसा।
सम्मेदे गिरि-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं।।2।।

संस्कृत निर्वाणभक्ति में इसी बात का वर्णन इस प्रकार है–

''शेषास्तु ते जिनवरा जितमोहमल्ला, ज्ञानार्कभूरिकिरणैरवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारितसौख्यनिष्ठं, सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः।।25।।

प्रसिद्ध आर्षग्रंथ 'तिलोयपण्णत्ति' (4/1186-1206) में तो आचार्य यतिवृषभ ने बीस तीर्थंकरों द्वारा सम्मेदशिखर पर्वत से मुक्ति प्राप्त करने का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। उसमें उन्होंने प्रत्येक तीर्थंकर की निर्वाणप्राप्ति की तिथि, नक्षत्र और उनके साथ मुक्त होने वाले मुनियों की संख्या भी दी है। यह विवरण अत्यन्त उपयोगी और ज्ञातव्य है। अतः यहाँ दिया जा रहा है–

चेत्तस्स सुद्धपंचमिपुव्वण्हे भरणिणामरिक्खम्मि।
सम्मेदे अजियजिणे मुत्तिं पत्तो सहस्ससमं।।

अजितनाथ जिनेन्द्र चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन पूर्वाण्ह काल में भरणी नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से एक हजार मुनियों के साथ मुक्ति को प्राप्त हुए।

चेत्तस्स सुक्कछट्ठीअवरण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे।
संपत्तो अपवग्गं संभवसामी सहस्सजुदो।।

संभवनाथ स्वामी चैत्र शुक्ला षष्ठी के दिन अपराण्ह समय में जन्म-नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से एक हजार मुनियों के साथ अपवर्ग (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

वइसाहसुक्कसत्तमिपुव्वण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे।
दससयमहेसिसहिदो णंदणदेवो गदो मोक्खं।।

अभिनंदननाथ वैशाख शुक्ला सप्तमी को पूर्वाण्ह समय में अपने जन्म नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से एक हजार महर्षियों के साथ मोक्ष को प्राप्त हुए।

चेत्तस्स सुक्कदसमीपुव्वण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे।
दससयरिसिसंजुत्तो सुमइस्सामी स मोक्खगदो।।

सुमतिनाथ स्वामी चैत्र शुक्ला दशमी के दिन पूर्वाण्हकाल में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से एक हजार ऋषियों के साथ मोक्ष को प्राप्त हुए।

फग्गुणकिण्ह चउत्थी अवरण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे।
चउवीसाधिय तियसयसहिदो पउमप्पहो देवो।।

पद्मप्रभ देव फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी के दिन अपराण्ह में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से तीन सौ चौबीस मुनियों के साथ मुक्ति को प्राप्त हुए।

फग्गुणबहुलच्छट्ठीपुव्वण्हे पव्वदम्मि सम्मेदे।
अणुराहाए पणसयजुत्तो मुत्तो सुपासजिणो।।

सुपार्श्व जिनेन्द्र फाल्गुन कृष्णा षष्ठी को पूर्वाण्ह समय में अनुराधा नक्षत्र के रहते सम्मेद पर्वत से पाँच सौ मुनियों के साथ मुक्त हुए।

सिदसत्तमि पुव्वण्हे भद्दपदे मुणिसस्स संजुत्तो।
जेट्ठासुं सम्मेदे चंद्रप्पह जिणवरो सिद्धो।

चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को पूर्वाण्हकाल में ज्येष्ठा नक्षत्र के रहते एक हजार मुनियों सहित सम्मेदशिखर से मुक्त हुए।

अस्सजुद सुक्कअट्ठमिअवरण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे।
मुणिवरसहस्ससहिदो सिद्धिगदो पुप्फदंतजिणो।।

पुष्पदंत भगवान् आश्विन शुक्ला अष्टमी के दिन अपराण्ह काल में अपने जन्म नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से एक हजार मुनियों के साथ सिद्धि को प्राप्त हुए।

कत्तियसुक्के पंचमिपुव्वण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे।
णिव्वाणं संपत्तो सीयलदेवो सहस्सजुदो।।

शीतलनाथ कार्तिक शुक्ला पंचमी के पूर्वाण्ह समय में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण को प्राप्त हुए।

सावणिय पुण्णिमाए पुव्वण्हे मुणिसहस्ससंजुत्तो।
सम्मेदे सेयंसो सिद्धिं पत्तो धणिट्ठासुं।।

भगवान श्रेयांस श्रावण की पूर्णिमा को पूर्वाण्ह में धनिष्ठा नक्षत्र में सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियों के साथ सिद्ध हुए।

सुक्कट्ठमीपदोसे आसाढे जम्मभम्मि सम्मेदे।
छस्सयमुणिसंजुत्तो मुत्तिं पत्तो विमलसामी।।

विमलनाथ स्वामी आषाढ़ शुक्ला अष्टमी के दिन प्रदोषकाल में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते छह सौ मुनियों के साथ सम्मेदशिखर से मुक्ति को प्राप्त हुए।

चेत्तस्स किण्ह पच्छिम दिण्णप्पदोसम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदम्मि अणन्तो गत्तसहस्सेहिं संपत्तो।।

अनन्तनाथ भगवान चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या को प्रदोष काल में अपने जन्म नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से सात हजार मुनियों के साथ मुक्ति को प्राप्त हुए।

जेट्ठस्स किण्हचोद्दसिपच्चूसे जम्मभम्मि सम्मेदे।
सिद्धो धम्मजिणिंदो रूवाहियअडसएहिं जुदो।।

धर्मनाथ जिनेन्द्र ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के दिन प्रत्यूष काल में अपने जन्म नक्षत्र के रहते आठ सौ एक मुनियों के साथ सम्मेदशिखर से मुक्त हुए।

जेट्ठस्स किण्ह चोद्दसिपदोससमयम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे संतिजिणो णवसयमुणिसंजुदो सिद्धो।।

शांतिनाथ तीर्थंकर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के दिन प्रदोष काल में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते नौसो मुनियों के साथ सम्मेदशिखर से सिद्ध हुए।

वइसाहसुक्कपाडिवपदोससमये हि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे कुंथुजिणो सहस्ससहिदो गदो सिद्धिं।।

कुंथुजिन वैशाख शुक्ला प्रतिपदा के दिन प्रदोष समय में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते एक हजार मुनियों सहित सम्मेदशिखर से सिद्ध हुए।

चेत्तस्स बहुलचरिमे दिणम्मि णियजम्मभम्मि पच्चूसे।
सम्मेदे अरदेओ सहस्ससहिदो गदो मोक्खं।।

अरनाथ भगवान चैत्र कृष्णा अमावस्या के दिन प्रत्यूष काल में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते एक हजार मुनियों के साथ सम्मेदशिखर से मोक्ष को प्राप्त हुए।

पंचमिपदोससमए फग्गुणबहुलम्मि भरणिणक्खत्ते।
सम्मेदे मल्लिजिणो पंचसयसमं गदो मोक्खं।।

मल्लिनाथ तीर्थंकर फाल्गुन कृष्णा पंचमी को प्रदोष समय में भरणी नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से पाँच सौ मुनियों के साथ मोक्ष को प्राप्त हुए।

फग्गुणकिण्हे वारसि पदोससमयम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे सिद्धिगदो सुव्वददेओ सहस्ससंजुत्तो।।

मुनिसुव्रतनाथ फाल्गुन कृष्णा बारस के दिन प्रदोष समय में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते एक हजार मुनियों सहित सम्मेदशिखर से सिद्धि को प्राप्त हुए।

वइसाहकिण्ह चोद्दसिपच्चूसे जम्मभम्मि सम्मेदे।
णिस्सेयस संपण्णो समं सहस्सेण णमिसामी।।

नमिनाथ स्वामी वैशाख कृष्णा चतुर्दशी के दिन प्रत्यूष काल में अपने जन्म नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखर से एक हजार मुनियों के साथ निःश्रेयस पद को प्राप्त हुए।

सिद सत्तमीपदीसे सावणमासम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे पासजिणो छत्तीसजुदो गदो मोक्खं।।

पार्श्वनाथ जिनेन्द्र श्रावण मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी को प्रदोषकाल में अपने जन्म-नक्षत्र के रहते छत्तीस मुनियों के साथ सम्मेदशिखर से मुक्त हुए।

नोट-उत्तरपुराण में निर्वाणकल्याणक तिथियों में अन्तर है। वर्तमान में उसी के आधार से निर्वाणकल्याणक मनाने की परम्परा है।

इसी प्रकार आचार्य गुणभद्र ने 'उत्तरपुराण' में, आचार्य रविषेण ने 'पद्मपुराण' में, आचार्य जिनसेन ने 'हरिवंशपुराण' में तथा अन्य अनेक शास्त्रों में सम्मेदशिखर को बीस तीर्थंकरों और असंख्य मुनियों की निर्वाणभूमि बताया है। 'मंगलाष्टक' में भी चार तीर्थंकरों की निर्वाणभूमियों का उल्लेख करके शेष बीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि के रूप में सम्मेदशैल को मंगलकारी माना है। जटासिंहनन्दी ने 'वरांगचरित्र' में लिखा है–

''शेषा जिनेन्द्रास्तपसः प्रभावाद् विधूय कर्माणि पुरातनानि।
धीराः परां निर्वृतिमभ्युपेताः सम्मेदशैलोपवनान्तरेषु।।27/92।।

संस्कृत और प्राकृत ग्रंथों के अतिरिक्त अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के कवियों ने भी सम्मेदशिखर को तीर्थक्षेत्र माना है और उसे बीस तीर्थंकरों एवं अनेक मुनियों की सिद्धभूमि माना है।

मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि गुणकीर्ति (अनुमानतः 15वीं शताब्दी का अंतिम चरण) अपने गद्य ग्रंथ 'धर्मामृत' (परिच्छेद 167) में लिखते हैं–

''संमेद महागिरि पर्वति बीस तीर्थंकर अहूठ कोडि मुनिस्वरु सिद्धि पावले त्या सिद्ध क्षेत्रासिं नमस्कारु माझा।''

अपभ्रंश भाषा के कवि उदयकीर्ति (12-13वीं शताब्दी) ने 'तीर्थ वंदना' नामक अपनी लघु रचना में सम्मेदशिखर के संबंध में निम्नलिखित उल्लेख किया है–

'सम्मेद महागिरि सिद्ध जे वि। हउँ वंदउँ बीस जिणंद ते वि।'

गुजराती भाषा के कवि मेघराज (समय 16वीं शताब्दी) ने विभिन्न तीर्थों की वंदना के प्रसंग में सम्मेदशिखर की वंदना में निम्नलिखित पद्य बनाया है–

चलि जिनवर जे बीस सिद्ध हवा स्वामी संमेद गिरीए।
सुरनर करे तिहा जात्र पूज रचे बड़भाव धरीए।।

भट्टारक अभयनन्दि (सूरत) के शिष्य सुमतिसागर (समय 16वीं शताब्दी के मध्य में) ने 'तीर्थजयमाला' में लिखा है–

''सुसंमेदाचल पूजो संत। सुबीस जिनेश्वर मुक्ति वसंत।।''

नन्दीतटगच्छ, काष्ठासंघ के भट्टारक श्रीभूषण के शिष्य ज्ञानसागर (समय 1578-1620) ने गुजराती में 'सर्वतीर्थ-वंदना' लिखी है। इसमें कुल 101 छप्पय हैं। इनमें तीन छप्पय में सम्मेदगिरि की वंदना और प्रशंसा अत्यन्त भावपूर्ण शब्दों में की है। यहाँ उनमें से एक पद्य का रसास्वाद कराया जा रहा है–

सम्मेदाचल शृंग बीस जिनवर शिव पाया।
संख्या रहित मुनीश मोक्ष तिस थान सिधाया।
यात्रा जेह करंत तास पातक सबि जाये।
मनवांछित फल पूर सद्य सुखसंपति थाये।।
सारद अथवा सुरगुरु जो तस गुण वर्णन करे।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति जन्म जन्म पातक हरे।।1।।

बीस तीर्थंकरों के अतिरिक्त अनेक मुनिजन यहाँ तपस्या करके और कर्मों का नाश करके मुक्ति पधारे हैं। ऐसे कुछ मुनियों का वर्णन पुराण और कथा-ग्रंथों में उपलब्ध होता है।

'उत्तरपुराण' (48/129-137) में सगर चक्रवर्ती का प्रेरक जीवन-चरित्र दिया गया है। जब मणिकेतु देव ने अपने पूर्वभव की मित्रता को ध्यान में रखकर सगर चक्रवर्ती को आत्म-कल्याण की प्रेरणा देने के लिए उसके साठ हजार पुत्रों के अकाल मरण का शोक-समाचार सुनाया तो चक्रवर्ती को सुनते ही संसार से वैराग्य हो गया और भगीरथ को राज्य देकर उसने मुनि दीक्षा ले ली। उधर देव ने उन साठ हजार पुत्रों को उनके पिता द्वारा मुनिदीक्षा लेने का समाचार जा

सुनाया। उस समाचार को सुनकर उन सबने भी मुनि व्रत धारण कर लिया और तपस्या करने लगे। अन्त में सम्मेदशिखर से उन्होंने मुक्ति प्राप्त की।

'सर्वे ते सुचिरं कृत्वा सत्तपो विधिवद् बुधाः।
शुक्लध्यानेन संमेदे संप्रापन् परमं पदम्।।''

सम्मेदशिखर पर मंदिरों के निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–

भट्टारक ज्ञानकीर्ति ने 'यशोधर चरित' की रचना की है। यह ग्रंथ उन्होंने संवत् 1659 में लिखा था। इस ग्रंथ की प्रशस्ति में राजा मानसिंह के मंत्री नानू का नामोल्लेख करते हुए सम्मेदशिखर पर बीस मंदिरों के निर्माण का उल्लेख है। ग्रंथकार ने पहले अपना परिचय दिया है। उसके बाद मंदिरों के निर्माण का उल्लेख किया है। प्रशस्ति का उक्त अंश यहाँ दिया जा रहा है।

राजाधिराजोऽत्र तदा विभाति श्रीमानसिंहो जितवैरिवर्गः।
अनेकराजेन्द्रविनम्यपादः स्वदानसंतर्पितविश्वलोकः।।62।।
तस्यैव राज्ञोऽस्ति महानमात्यो नानूसुदामा विदितो धरित्र्याम्।
संमेदशृंगे च जिनेन्द्रगेहमष्टापदे वादिमचक्रधारी।।64।।
योऽकारयद् यत्र च तीर्थनाथाः सिद्धिंगता विंशतिमानयुक्ताः।

अर्थात् यहाँ (चम्पानगरी के निकटवर्ती अकबरपुर गाँव में) महाराज मानसिंह हैं, जिन्होंने वैरियों का दमन किया है और बड़े-बड़े राजाओं से अपने चरणों में मस्तक झुकवाया है। उनके महामंत्री का नाम नानू है। उन्होंने सम्मेदशिखर के ऊपर वहाँ से सिद्धगति को प्राप्त करने वाले बीस तीर्थंकरों के मंदिर का निर्माण कराया, जैसे प्रथम चक्रवर्ती भरत ने अष्टापद के ऊपर मंदिरों का निर्माण कराया था और उनकी कई बार यात्राएँ की थीं।

इसी ग्रंथ में अन्यत्र महामंत्री नानू का परिचय इस प्रकार दिया है–

तस्य क्षितीश्वरपतेरधिकारि श्रीजैनवेश्मकृत (दुर्लभ) पुण्यधारी।
यात्रादिधर्मशुभकर्मपथानुचारी जैनो बभूव वनिजां वर इभ्यमुख्यः।।17।।
खण्डेलवालान्वय एव गोत्रे गोधाभिधे रूपसुचन्द्रपुत्रः।
दाता गुणज्ञो जिनपूजनेन्द्रो सिवारिधौतारिकदम्बपङ्कः।।18।।
रायात्कुबेरं मदनं स्वरूपेणार्कं प्रतापेन विधुं सुसौम्यात्।
ऐश्वर्यतां वासवमर्चयापि तिरस्करोतीह जिनेन्द्रभक्तः।।19।।
नानू सुनामा जगतीप्रसिद्धो यो मौलिबद्धावनिनाथतुल्यः।
स्ववंशवाताध्वविकाससूरोऽस्य प्रार्थनातो क्रियते मयैतत्।।20।।

उस राजा मानसिंह के एक अधिकारी गोधा गोत्रीय रूपचंद खण्डेलवाल थे। वह महान् पुण्यात्मा, यात्रा आदि शुभकर्म करने वाला और अत्यन्त धनाढ्य व्यापारी था। वह महान दाता, गुणज्ञ, जिनपूजन में रत रहने वाला था। वह धन में कुबेर को, स्वरूप में कामदेव को, प्रताप में सूर्य को, सौम्यता में चन्द्रमा को, ऐश्वर्य में इन्द्र को तिरस्कृत करता था। उसका पुत्र नानू था। वह राजा के समान था और अपने वंश का शिरोमणि था। उसकी प्रार्थना पर मैं यह चरित बना रहा हूँ।

महामात्य नानू ने सम्मेदशिखर के ऊपर बीस तीर्थंकरों के जो मंदिर-टोंकें बनाई, उनसे पहले वहाँ क्या मंदिर नहीं थे और थे तो वे किसने बनवाये थे? इस संबंध में अनुसंधान की आवश्यकता है।

तीर्थंकर भगवान जिस स्थान से मुक्त हुए, उस स्थान पर सौधर्मेन्द्र ने चिन्ह स्वरूप स्वस्तिक बना दिया, दिगम्बर परम्परा में इस प्रकार की मान्यता प्रचलित है। इस मान्यता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भक्त श्रावकों ने

उन स्थानों पर तीर्थंकरों के चरण स्थापित किये। महामात्य नानू ने जिन मंदिरों का निर्माण किया था, वे पुराने जीर्ण मंदिरों के स्थान पर ही बनाये गये थे। (यहाँ मंदिरों का अर्थ टोकें हैं)

मंत्रिवर नानू द्वारा बनायी गयी वे ही टोंकें अब तक वहाँ विद्यमान हैं।

मंत्रिवर नानू के पहले यहाँ मंदिर और मूर्तियाँ थीं, इस प्रकार के उल्लेख हमें कई ग्रंथों में मिलते हैं। तेरहवीं शताब्दी के विद्वान् यति मदनकीर्ति, जो पं. आशाधर जी के प्रायः समकालीन थे, ने 'शासन चतुस्त्रिंशिका' में लिखा है–

सोपानेषु सकष्टमिष्टसुकृतादारुह्य यान् वन्दते।
सौधर्माधिपति प्रतिष्ठितवपुष्का ये जिना विंशतिः।।
मुख्याः स्वप्रमितिप्रभाभिरतुला संमेदपृथ्वीरुहि।
भव्योऽन्यस्तु न पश्यति ध्रुवमिदं दिग्वाससां शासनम्।।11।।

अर्थात् सौधर्म इन्द्र ने बीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ जहाँ प्रतिष्ठित की हैं तथा जो प्रतिमाएँ अपने आकार की प्रभा से तुलनारहित हैं, उस सम्मेदरूपी वृक्ष पर भव्यजन कष्ट उठाकर भी सीढ़ियों द्वारा चढ़कर पुण्योदय से उन प्रतिमाओं की वंदना करते हैं। भव्य के अतिरिक्त उनके दर्शन अन्य कोई नहीं कर सकता। यह दिगम्बर-धर्म शाश्वत है अर्थात् यहाँ सदा से रहा है।

यति जी ने सम्मेदशिखर के संबंध में जो वर्णन किया है, उसमें तीन बातों का उल्लेख किया गया है-1. इस क्षेत्र पर सौधर्म इन्द्र ने बीस तीर्थंकरों की प्रतिमा स्थापित की थी। (2) उन प्रतिमाओं का प्रभामण्डल प्रतिमाओं के आकार का था, इसलिए उनकी ओर देखने के लिए श्रद्धा की आँखें ही समर्थ होती थीं। जिनके हृदय में श्रद्धा नहीं होती थी, वे इन प्रभा-पुंज स्वरूप प्रतिमाओं को देख नहीं सकते थे। (3) यतिजी के काल तक अर्थात् तेरहवीं शताब्दी तक इस तीर्थराज पर दिगम्बर समाज का आधिपत्य था।

इस वर्णन से यह फलितार्थ निकलता है कि पहले सम्मेदशिखर के ऊपर बीस मंदिर बने हुए थे और उनमें सौधर्मेन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित बीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ विराजमान थीं। ये मंदिर कितने बड़े थे और इनका क्या हुआ, यह तो पता नहीं चलता। लेकिन ऐसा लगता है कि ये मंदिर नहीं, बल्कि टोंकों के रूप में थे और पहले इन्हीं में मूर्ति विराजमान होंगी। पश्चात् असुरक्षा आदि कारणों से इन मूर्तियों के स्थान पर चरण विराजमान कर दिये होंगे और जीर्ण होने पर महामात्य नानू ने इनके स्थान पर ही बीस टोंके या मंदरियाँ बनवा दी होंगी।

यतिवर्य मदनकीर्ति के काल में सम्मेदशिखर पर एक अमृतवापिका भी थी, जिसमें भक्त लोग अष्टद्रव्यों (जल, गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, धूप और फल) से बीस तीर्थंकरों के लिए अर्घ्य चढ़ाते थे।

यस्याः पायसि नामविंशतिभिदा पूजाष्टधा क्षिप्यते।
मंत्रोच्चारण-बंधुरेण युगपन्निर्ग्रन्थरूपात्मनाम्।।
श्रीमत्तीर्थकृतां यथायथमियं संसंपनीपद्यते।
संमेदामृतवापिकेयमवताद्दिग्वाससां शासनम्।।

–शासन-चतुस्त्रिंशिका-14

अर्थात् जिसके पवित्र जल में निर्ग्रंथ रूप के धारक श्री तीर्थंकरों के क्रमिक नामों के साथ सुन्दर मंत्रोच्चारणपूर्वक अष्टद्रव्य का अर्घ्य चढ़ाया जाता है और यथायोग्य रीति से उनकी पूजा की जाती है वह सम्मेदगिरि की अमृतवापिका दिगम्बर शासन की सदा रक्षा करे।

यह अमृतवापिका ही वर्तमान में जल-मंदिर कहलाता है।

प्राचीनकाल में सम्मेदगिरि की यात्रा के विवरण–

भक्तजन अत्यन्त प्राचीन काल से ही सिद्धक्षेत्र सम्मेदगिरि की पुण्यप्रदायिनी यात्रा के लिए जाते रहे हैं। इन यात्राओं के विवरण पुराण ग्रंथों, कथाकोषों और विविध भाषाओं में निबद्ध यात्रा-विवरण-काव्यों तथा ग्रंथ-प्रशस्तियों में मिलते हैं।

सम्मेदशिखर की यात्रा के संदर्भ में संघ सहित मुनि अरविन्द का चरित्र 'उत्तरपुराण' में मिलता है। पोदनपुर नगर के राजा अरविंद थे। उनके नगर में वेदों का विशिष्ट विद्वान् विश्वभूति ब्राह्मण रहता था। उसके दो पुत्र थे- कमठ और मरुभूति। मरुभूति महाराज अरविंद का मंत्री था। वह अत्यन्त सदाचारी, विवेकी और नीतिपरायण भद्र व्यक्ति था। इसके विपरीत कमठ दुराचारी और दुष्ट प्रकृति का था। एक बार मरुभूति की स्त्री वसुंधरी के कारण उत्तेजित होकर कमठ ने मरुभूति की हत्या कर दी। मरुभूति मरकर मलय देश में कुब्जक नामक सल्लकी के भयानक वन में हाथी हुआ। राजा अरविंद ने किसी समय विरक्त होकर राजपाट छोड़ दिया और दिगम्बर मुनिदीक्षा धारण कर ली। एक बार वे संघ के साथ सम्मेदशिखर की वंदना के लिए जा रहे थे। चलते-चलते वे उसी वन में पहुँचे। सामायिक का समय हो जाने से वे प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हो गये। इतने में घूमता-फिरता वह मदोन्मत्त हाथी उधर ही आ निकला और मुनिराज के पास आते ही वह शान्त हो गया। उसकी दृष्टि मुनिराज के वक्षस्थल पर बने श्रीवत्स लांछन पर पड़ी। वह टकटकी लगाकर उस चिन्ह को देखता रहा। उसे देखकर उसके मन में अनजाने ही मुनि के प्रति प्रेम उमड़ने लगा। सामायिक समाप्त होने पर मुनिराज ने आँखें खोलीं। वे अवधिज्ञानी थे। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से जानकर हाथी को उपदेश दिया और कहा-''गजराज! पूर्वजन्म में तू मेरा अमात्य मरुभूति था। आज तू इस निकृष्ट तिर्यंच योनि में पड़ा हुआ है। तू कषाय छोड़कर आत्म-कल्याण कर।'' मुनिराज का उपदेश गजराज के हृदय में बैठ गया। उसने अणुव्रतों का नियम ले लिया। जीवन सात्त्विक बन गया। यही हाथी का जीव आगे जाकर कठोर साधना से तेईसवाँ तीर्थंकर बना। अस्तु!

मुनिराज अरविंद संघ सहित आगे बढ़ गये और सम्मेदशिखर पहुँचकर उन्होंने भक्तिभाव सहित तीर्थराज की वंदना की। उन्होंने मोह का क्षय कर घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा वहीं से मोक्ष प्राप्त किया।

कवि महाचन्द्र ने अपभ्रंश भाषा के 'संतिणाह चरिउ (रचना काल सं. 1587) में सारंग साहू का परिचय देते हुए उनकी सम्मेदशिखर यात्रा का वर्णन किया है–

''भोयउ सुह वीयउ गुणगण जूयउ णाणचंदु पभणिज्जइ।
तहु भामिणि गुण गण रामिणि सउराजही कहिज्जइ।।2।।
तहु तिण्णि अंगसू तिण्णि रयण णं तिण्णि लोय ते सुद्ध वयण।
पढ़मउ सम्मेय वि जत्त करणु सारंग वि णामे सुद्ध करणु।।3।।

इसका आशय यह है कि भोजराज के पुत्र ज्ञानचंद की पत्नी का नाम 'सउराजही' था जो अनेक गुणों से विभूषित थी। उसके तीन पुत्र हुए। पहला पुत्र सारंग साहू था, जिसने सम्मेदशिखर की यात्रा की थी। उसकी पत्नी का नाम 'तिलोकाही' था।

भट्टारक रत्नचन्द्र मूलसंघ सरस्वती गच्छ के भट्टारक थे। ये हुंबड़ जाति के थे। इन्होंने 'सुभौमचक्रि-चरित्र' की रचना सं. 1683 में सागपत्तन (सागवाड़ा, वाग्वर देश) के हेमचन्द्र पाटनी की प्रेरणा से पाटलिपुत्र में गंगा के किनारे सुदर्शन चैत्यालय में की थी। पाटनी जी भट्टारक रत्नचन्द्र जी के साथ शिखर जी की यात्रा के लिए गये थे। इनके साथ आचार्य जयकीर्ति तथा श्रावकों का संघ भी था। इस संबंध में उन्होंने ग्रंथ की प्रशस्ति में उल्लेख भी किया है जो इस भाँति है–

संमेदाचलयात्रायै रत्नचन्द्रास्समागताः।
जगन्महन्नात्मजाचार्यं जयकीर्तिभिरन्वितः।।16।।
श्रीमत्कगलकीर्त्याह्वैः सूरिभिश्च सुवर्णिभिः।
कल्याण-कचराख्यान-कान्हजी-भोगिदासकैः।।17।।

कारंजा के सेनगण के भट्टारक सोमसेन के पट्टशिष्य भट्टारक जिनसेन द्वारा सम्मेदाचल की यात्रा का उल्लेख मिलता है। जिनसेन का समय शक सं. 1577 से 1607 (सन् 1655 से 1685) तक है।

सम्मेदशिखर माहात्म्य की रचनाएँ—अनेक कवियों ने विभिन्न भाषाओं में सम्मेदशिखर के माहात्म्य और पूजाओं की रचनाएँ की हैं, उनसे एक महान् सिद्धक्षेत्र और तीर्थराज के रूप में सम्मेदशिखर के गौरव पर प्रकाश पड़ता है और इस तीर्थक्षेत्र का नाम लेते ही श्रद्धा से स्वतः ही मस्तक उसके लिए झुक जाता है।

गंगादास कारंजा के मूलसंघ बलात्कारगण के भट्टारक धर्मचन्द्र के शिष्य थे। आपने मराठी में पार्श्वनाथ भवान्तर, गुजराती में आदित्यवार व्रतकथा, त्रेपन क्रिया विनती व जटामुकुट, संस्कृत में क्षेत्रपाल पूजा एवं मेरुपूजा की रचना की है। आपका काल सत्रहवीं शताब्दी है। आपने संस्कृत में सम्मेदाचल पूजा भी बनायी, जो सरल और रोचक है।

कवि देवदत्त दीक्षित कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा भदौरिया राजाओं के राज्य में स्थित अटेर नगर के निवासी थे। इन्होंने शौरीपुर के भट्टारक जिनेन्द्रभूषण की आज्ञा से 'सम्मेदशिखर माहात्म्य' और 'स्वर्णाचल माहात्म्य' की रचना की थी। दीक्षित जी संभवतः 19वीं शताब्दी के विद्वान् थे। उन्होंने 'सम्मेदाचल माहात्म्य' के प्रारंभ में लिखा है–

गुरुं गणेशं वाणीं च ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च।
सम्मेदशैलमाहात्म्यं प्रकटीक्रियते मया।।2।।

इस माहात्म्य में इक्कीस अध्याय हैं। यह सुबोध संस्कृत में लिखा गया है।

सम्मेदशिखर की यात्रा

मार्ग—तीर्थराज सम्मेदशिखर जी, जिसका दूसरा नाम 'पारसनाथ हिल' है, जो पहले बिहार प्रदेश के हजारीबाग जिले में स्थित था अब झारखण्ड प्रदेश के अन्तर्गत आता है जो गिरीडीह जिले में है। यहाँ पहुँचने के लिए रेलवे के कई मार्ग हैं-(1) गया, दिल्ली अथवा कलकत्ता की ओर से आने वालों के लिए पारसनाथ स्टेशन उतरना चाहिए। (2) कलकत्ता की ओर से आने वाले गिरीडीह स्टेशन भी उतर सकते हैं। (3) पटना से राँची जाने वाली ट्रेनों से पारसनाथ उतर सकते हैं। ये सभी ईस्टर्न रेलवे की मेन लाइन हैं।

ईसरी—पारसनाथ स्टेशन के सामने ही लगभग एक फर्लांग दूरी पर ईसरी में दो दिगम्बर जैन धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। एक बीसपन्थी और दूसरी तेरापंथी। दोनों निकट-निकट हैं। दोनों धर्मशालाओं में जिनमंदिर हैं और दोनों के बीच में श्रीगणेश प्रसादवर्णी द्वारा स्थापित उदासीन आश्रम है, जहाँ अनेक विरक्त स्त्री-पुरुष धर्मध्यान करने हेतु प्रवास करते हैं।

मधुवन—ईसरी से लगभग 22 किमी. पर मधुवन है। मधुवन के लिए यहाँ से बस तथा टैक्सी मिलती है। यहाँ से गिरीडीह रोड पर 16 किमी. चलकर मधुवन के लिए सड़क मुड़ती है और 6 किमी. चलकर मधुवन आ जाता है। मधुवन पर्वत के उत्तरी भाग की ओर है।

गिरीडीह से मधुवन 25 किमी. है। गिरीडीह-ईसरी रोड पर बसें बराबर मिलती हैं।

मधुवन में बीसपंथी और तेरहपंथी दो कोठियाँ अर्थात् धर्मशालाएँ हैं।

श्री सम्मेदशिखर पर्वत की तलहटी में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों की धर्मशालाएँ और मंदिर हैं। सबसे पहले दिगम्बर जैन तेरहपंथी कोठी मिलती है। फिर श्वेताम्बर कोठी, जो मझली कोठी कहलाती है और सबसे अंत में दिगम्बर जैन बीसपंथी कोठी है। यह उपरैली कोठी कहलाती है।

बीसपंथी कोठी—इन तीनों कोठियों में बीसपंथी कोठी सबसे प्राचीन है। इसकी स्थापना सम्मेदशिखर की यात्रार्थ आने वाले जैन बंधुओं की सुविधा के लिए लगभग चार सौ वर्ष पूर्व की गई थी, ऐसा कहा जाता है।

यह कोठी ग्वालियर गादी के भट्टारक जी के अधीन थी। इस शाखा के भट्टारक महेन्द्रभूषण ने शिखर जी पर एक कोठी और एक मंदिर की स्थापना की और मंदिर में पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान करायी। उन्होंने एक धर्मशाला भी बनवायी। समाज के दो दानी सज्जनों ने दो मंदिर भी बनवाये। महेन्द्रभूषण के पश्चात् शतेन्द्रभूषण, राजेन्द्रभूषण, शिलेन्द्रभूषण और शतेन्द्रभूषण भट्टारक क्रम से कोठी के अधिकारी हुए।

बीसपंथी कोठी के बहुत दिनों पश्चात् (लगभग 250 वर्ष बाद) श्वेताम्बर कोठी का निर्माण हुआ। उसके लगभग 100 वर्ष बाद तेरापंथी कोठी बनी है। बीसपंथी एवं तेरहपंथी दोनों कोठियों के अन्तर्गत अनेक दिगम्बर जिनमंदिरों की व्यवस्थाएँ संचालित होती हैं।

पर्वत-यात्रा के मार्ग—सम्मेदशिखर की यात्रा के लिए ऊपर जाने के दो मार्ग हैं-एक तो नीमिया घाट होकर और दूसरा मधुवन की ओर से। नीमिया घाट पर्वत के दक्षिण की ओर है। यहाँ एक डाक बंगला, जैन धर्मशाला बनी हुई है। इधर से जाने पर पर्वत की वंदना उलटी पड़ती है और सबसे पहले पार्श्वनाथ टोंक पड़ती है।

नीमियाघाट की ओर से सम्मेदशिखर की यात्रा करने में 6 मील की चढ़ाई पड़ती है। ऊपर टोंकों की वंदना 6 मील और वापसी 6 मील। चढ़ाई में 6 मील की यात्रा करनी होती है।

नीमियाघाट की दिगम्बर जैन धर्मशाला और मंदिर बीसपंथी कोठी के अन्तर्गत है। पालगंज का दिगम्बर जैन मंदिर भी बीसपंथी कोठी के अन्तर्गत है। इसका जीर्णोद्धार लगभग 150 वर्ष पहले क्षुल्लक ज्ञानचंद्र जी ने कराया था। पहले सम्मेदशिखर की यात्रा के लिए यात्री पालगंज होकर आते थे। जब पालगंज के राजा का अभिषेक होता था, उस समय दिगम्बर जैन प्रतिमा वहाँ विराजमान करके उसका अभिषेक होता था। इस गंधोदक को छिड़ककर राज्य की शुद्धि की जाती थी।

मधुवन की ओर से भी कुल मिलाकर 18 मील (27 किमी.) की यात्रा पड़ती है। किन्तु अधिकांश यात्री मधुवन की ओर से ही यात्रा करते हैं। इधर से यात्रा करने में कई सुविधाएँ हैं। सबसे बड़ी सुविधा तो यह है कि इधर अन्य अनेक यात्रियों का साथ मिल जाता है और इतनी लम्बी यात्रा अन्य साथियों के कारण सुगम बन जाती है, इसके विपरीत नीमिया घाट की ओर से यात्रा करने में यात्री को प्रायः अकेले ही चढ़ना-उतरना पड़ता है। इससे यात्रा दुरूह मालूम पड़ने लगती है।

27 किमी. की यह लम्बी यात्रा किशोर, युवक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी तीर्थंकरों का जय-घोष करते, स्तुति-विनती पढ़ते आनन्दपूर्वक कर लेते हैं। सांस फूल जाती है किन्तु मन में क्षण-भर को भी खिन्नता के भाव नहीं आते। बल्कि अपनी धार्मिक श्रद्धा, उल्लास, उत्साह और प्रकृति की सुषमा में विभोर होकर यात्री यात्रा पूरी करके जब वापस अपने डेरे पर लौटता है तो उसे अनुभव होता है कि भगवान की भक्ति में अद्‌भुत शक्ति है, वरना इतनी लम्बी यात्रा कैसे संभव थी। अब पर्वत पर पूरा रास्ता पक्का बन जाने से यात्रा अत्यन्त सुगम हो गई है।

यात्रा संबंधी आवश्यक सूचनाएँ—पर्वत वंदना के लिए पहले यात्री रात्रि दो बजे उठकर शौच और स्नान से निवृत्त होकर तीन बजे चल देते थे किन्तु अब कुछ असुरक्षा के भय से यात्रियों को प्रातः 5 बजे से पहले नहीं जाने दिया जाता है। पर्वत यात्रा के लिए सर्दी का मौसम ही उपयुक्त रहता है। ग्रीष्म ऋतु में गर्मी के कारण यात्रा करना कठिन होता है और बरसात में सब जगह हरियाली, जीवों की उत्पत्ति और फिसलन हो जाती है। यात्रा के समय पुरुष लोग नये धोती, बनियान और दुपट्टा धुले हुए धारण करते हैं तथा महिलाएं भी नये धुले वस्त्रों में पहाड़ चढ़ती हैं। वृद्ध और अशक्त पुरुष

और महिलाएँ डोली में वंदना कर सकते हैं। अन्य लोग लाठी लेकर चढ़ते हैं। उससे पर्वत पर चढ़ने-उतरने में बड़ी सहायता मिलती है। धर्मशालाओं में इन सब चीजों की व्यवस्था रहती है।

इस तीर्थराज की वंदना के लिए जाते समय न केवल शरीर और वस्त्र आदि की बाह्य शुद्धि ही आवश्यक है, अपितु मन और वाणी की पवित्रता भी आवश्यक है।

धर्मशाला से चलकर लगभग एक फर्लांग से ही पर्वत की चढ़ाई प्रारंभ हो जाती है। यहाँ से करीब तीन किमी. पर गंधर्व नाला पड़ता है। यहीं पर बीसपंथी कोठी की तरफ से एक धर्मशाला बनी है। लौटते समय यात्रियों के लिए यहाँ जलपान का प्रबंध है। नाले से कुछ दूर आगे जाने पर एक रास्ता सीता नाले की ओर और दूसरा पार्श्वनाथ टोंक की ओर जाता है।

श्री सम्मेदशिखर का अद्‌भुत माहात्म्य—मधुवन से जब सम्मेदशिखर की यात्रा के लिए रवाना होते हैं, तब मन में एक अद्‌भुत उल्लास, उमंग और तीर्थंकरों के प्रति निश्छल भक्ति की पुण्य भावना होती है। वहाँ का सारा वातावरण ही भक्तिमय होता है। यात्री के मन में व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप में द्यानतरायजी की यह पंक्ति सदा अंकित रहती है– "एक बार वन्दे जो कोई। ताहि नरक-पशुगति नहिं होई।।" शास्त्रों में तो शिखरजी की वंदना करने का फल यह बताया है कि वह व्यक्ति फिर संसार में अधिक से अधिक 49 भव धारण करने के बाद मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह अतिशयोक्ति नहीं, किन्तु सत्य है। इसमें तर्क और संदेह को कोई स्थान नहीं है। इसीलिए तो इसे तीर्थराज की संज्ञा दी गई है। भाव-भक्तिपूर्वक इसकी यात्रा और वंदना करने से कोटि-कोटि जन्मों के संचित कर्मों का नाश हो जाता है।

बीस तीर्थंकरों को इसी पर्वत पर अंतिम योग-निरोध करके निर्वाण प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त यहाँ से असंख्य मुनियों को मोक्ष प्राप्त हुआ है। यहाँ से मुक्ति प्राप्त करने वाले मुनियों की निश्चित संख्या शास्त्रों में दी हुई है। कुल कूटों की संख्या 20 है जो बीस तीर्थंकरों के निर्वाण स्थान हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस क्षेत्र से असंख्य मुनिजन अनादिकाल से समय-समय पर मुक्त हुए हैं। इसलिए यह क्षेत्र अत्यन्त पवित्र है, उसका कण-कण पवित्र है। यही कारण है कि इस तीर्थ पर सिंह, व्याघ्र, हिरण आदि अनेकों जाति विरोधी और हिंसक प्राणी विचरते देखे गये हैं किन्तु कभी किसी ने एक दूसरे पर आक्रमण किया हो या किसी यात्री के साथ कभी कोई दुर्घटना घटी हो ऐसा कभी सुना नहीं गया। ऐसे अवसर कई बार आये हैं, जब रात्रि में यात्रा के लिए जाने वाले भाइयों से कोई यात्री पिछड़ गया और अकेला पड़ गया और राह में उसे शेर मिल गया। किन्तु न यात्री के मन में भय और न शेर के मन में क्रूरता। शेर एक ओर चला गया और यात्री अपनी राह पर आगे बढ़ गया। यह सब इस तीर्थराज का प्रभाव है। यहाँ के वातावरण में पवित्रता और शुचिता की भावना सदैव बनी हुई रहती है।

तीर्थ-दर्शन—पहाड़ पर ऊपर चढ़ने पर सर्वप्रथम गौतम स्वामी की टोंक मिलती है। वहाँ एक कमरा भी बना हुआ है जो यात्रियों के लिए विश्राम के काम आता है। टोंक से बायें हाथ की ओर मुड़कर पूर्व दिशा की पन्द्रह टोंकों की वंदना करनी चाहिए। ये टोंकें ही कूट कहलाती हैं। इन टोंकों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं–

(1) कुंथुनाथ का ज्ञानधर कूट (2) नमिनाथ का मित्रधर कूट (3) अरहनाथ का नाटक कूट (4) मल्लिनाथ का सम्बल कूट (5) श्रेयांसनाथ का संकुल कूट (6) पुष्पदंत का सुप्रभ कूट (7) पद्मप्रभु का मोहन कूट (8) मुनिसुव्रतनाथ का निर्जर कूट (10) आदिनाथ का कूट (11) शीतलनाथ का विद्युत कूट (12) अनन्तनाथ का स्वयंभू कूट (13) संभवनाथ का धवलदत्त कूट (14) वासुपूज्य का कूट (15) अभिनन्दन का आनंद कूट।

इन टोंकों में भगवान चन्द्रप्रभु की टोंक बहुत ऊँची हैं। ये सभी टोंकें पूर्व दिशा में हैं। इनमें तीर्थंकरों के चरण विराजमान हैं। इन टोंकों पर जाने के लिए मार्ग बने हुए हैं। तीर्थंकर-चरणों पर जो लेख पूर्व में खुदे हुए थे, उनके अनुसार ये सब सं. 1825 में प्रतिष्ठित किये गये प्रतीत होते हैं किन्तु वर्तमान में लगभग 15-20 वर्षों में ये चरण और प्रशस्तियाँ प्रायः बदल दी गई हैं।

भगवान अभिनंदननाथ की टोंक से उतरकर जल मंदिर में जाते हैं।

यहाँ से गौतम स्वामी की टोंक पर पहुँचते हैं। इस स्थान से चारों ओर रास्ते जाते हैं बायीं ओर कुंथुनाथ टोंक को दायीं ओर पार्श्वनाथ मंदिर को, सामने जल मंदिर और पीछे मधुवन को। अतः यहाँ पश्चिम दिशा की ओर जाकर शेष नौ टोंकों की वंदना करनी चाहिए।

पार्श्वनाथ टोंक—सम्मेदशिखर पर्वत की यह अंतिम और प्रमुख टोंक है। टोंक के स्थान पर अब एक सुन्दर जिनालय बन गया है। जिसमें मण्डप और गर्भगृह है। गर्भगृह में एक वेदी पर पार्श्वनाथ भगवान के कृष्ण वर्ण के चरण विराजमान हैं। चरण नौ अंगुल के हैं।

इन टोंकों में भगवान पार्श्वनाथ की यह टोंक सबसे ऊँची है। इस टोंक पर खड़े होकर चारों ओर का मनोहर दृश्य देखते ही बनता है। मन में एक अनिर्वचनीय प्रफुल्लता भर उठती है। ऐसी आह्लादपूर्ण प्राकृतिक दृश्यावली में मन ध्यान, सामायिक और पूजा-स्तोत्र में स्वतः निमग्न हो जाता है। यहाँ आकर सब यात्री पूजन करते हैं।

ये सभी टोंकें ऊँचाई में आठ फुट और चौड़ाई में भी इससे अधिक नहीं। इन टोंकों के निर्माण का प्रारंभ काल जानना कठिन है, उसी प्रकार चरणों की स्थापना इस क्षेत्र पर सबसे पहले किसने की, यह बताना भी कठिन है। वास्तव में जहाँ से तीर्थंकर मोक्ष पधारे, उस स्थान को इन्द्र ने चिन्हित कर दिया। उन्हीं स्थानों पर टोंक और चरण बना दिये गये। यह भी कहा जाता है कि सम्राट श्रेणिक ने जीर्ण टोंकों के स्थान पर भव्य टोंकों का निर्माण कराया था। बाद में समय-समय पर भक्तों ने इन टोंकों का जीर्णोद्धार कराया अथवा उनके स्थान पर नवीन टोंक बनवा दी गई। यही बात चरणों के संबंध में है। वर्तमान चरणों पर जो लेख खुदे हुए हैं, उनका तात्पर्य इतना ही है कि अमुक व्यक्ति ने प्राचीन चरणों का जीर्णोद्धार किया अथवा प्राचीन चरणों के स्थान पर नवीन चरण स्थापित कराये।

शिखरजी पर शिकार वर्जित—जैन समाज की अहिंसक भावना के कारण सरकार की ओर से इस पर्वत पर किसी प्रकार का शिकार करना वर्जित कर दिया गया है और उसकी सूचना एक शिलापट्ट पर लगा दी गई है। जैन लोग इस तीर्थ की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने का पूर्ण प्रयत्न करते रहे हैं।

सन् 1859 से 1862 तक इस पहाड़ पर ब्रिटिश सेनाओं के लिए एक सैनीटोरियम बनाने के लिए सरकार की ओर से जाँच होती रही थी। किन्तु सैनिकों के रहने से यहाँ मांस पकाया जायेगा, इस आशंका से जैन समाज ने जबरदस्त विरोध किया और वह विचार छोड़ दिया गया।

शिखरजी का पहाड़ कई पीढ़ियों से पालगंज के जमींदार के अधिकार मे चला आ रहा था। उक्त घराने के सभी लोग दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायी थे। यहाँ तक कि दर्शन-पूजा के लिए उन्होंने अपने यहाँ दिगम्बर जैन मंदिर भी बनवाया था जो अभी भी पालगंज में विद्यमान है। उसकी प्रतिष्ठा श्री 105 धर्मदास जी द्वारा वि.सं. 1939 में हुई थी। वे शिखरजी की रक्षा भी धर्मपूर्वक किया करते थे। लेकिन दुर्भाग्यवश कर्मचारियों की अयोग्यता से जमींदार कर्जदार हो गये। उस अवसर पर दिगम्बर समाज की ओर से उन्हें बतौर कर्ता हजारों रुपये दिये गये। फिर भी उनकी स्टेट इनकमवर्ड हो गई। उस समय इस इलाके के डिप्टी कमिश्नर मि. केणी थे। उन्होंने शिखरजी की पहाड़ की मनोरमता और स्काटलैण्ड की पहाड़ियों-जैसी प्राकृतिक सुषमा देखकर ही उस समय अंग्रेजों के लिए एक सैनीटोरियम बनाने का विचार किया था। बाद में विरोध होने पर वह विचार स्थगित कर दिया गया था।

यात्रा से वापसी—भगवान पार्श्वनाथ की टोंक से वापस लौटते समय विशेष कठिनाई नहीं होती। क्योंकि उतराई है और मार्ग ठीक है। बीच-बीच में जंगल में पगडण्डियाँ भी जाती हैं। यदि उन पर चला जाये तो लगभग डेढ़ मील की यात्रा बच जाती है। किन्तु पगडण्डियों पर चलना बहुत कठिन है। रास्ता भूलने का भी डर है। यदि भील (मजदूर) साथ हो तो फिर कोई डर नहीं। इस समय लाठी से बड़ी सहायता मिलती है।

जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर शून्य है उसी प्रकार श्री सम्मेदशिखर के बिना दिगम्बर जैन समाज शून्य है।

शिखर जी हमारा ऐसा पवित्र तीर्थ है जहाँ से इस 'हुण्डावसर्पिणी काल' में हमारे 24 तीर्थंकरों में से 20 तीर्थंकरों एवं असंख्यात मुनिवरों ने मोक्ष प्राप्त किया है। इसलिए शिखर जी हमारी संस्कृति और धर्म की धरोहर है। उसका एक-एक कण हम सभी के लिए पूज्यनीय एवं वंदनीय है।

जैन समाज के इस सर्वप्रमुख शाश्वत तीर्थ की व्यवस्था जहाँ स्थानीय संस्थाएँ देखती हैं, वहीं भारतवर्षीय दिगम्बरा जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के द्वारा इसका विशेष प्रबंध देखा जाता है। वह कमेटी पिछले कई वर्षों से श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साथ सम्मेदशिखर के विषय में मतभिन्नता का सामना कर रही है। उनके अनुसार कुछ तथ्य यहाँ प्रस्तुत हैं–

इस तीर्थराज पर एवं अन्य कई क्षेत्रों पर श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजकों एवं अन्य धर्मावलंबियों द्वारा शाम-दाम-दण्ड-भेद से नये-नये षड्यंत्र रचकर हमें अपने अधिकारों से वंचित करने का प्रयास किया जा रहा है। विशेषकर सम्मेदशिखर जी के बारे में श्वेताम्बर मूर्तिपूजकों द्वारा नये-नये विवाद उत्पन्न करके दिगम्बर जैन समाज के अधिकारों पर कुठाराघात किया जा रहा है। इस निवेदन के माध्यम से हम समाज को उनके द्वारा पूर्व में किये गये घातक षड्यंत्रों की कुछ झलकियाँ देना चाहते हैं, ताकि आप सभी श्वेताम्बरों के कुटिल इरादों से परिचित हो सकें-

1. सन् 1972 में शिखर जी पर उन 4 तीर्थंकरों की नई टोंके निर्मित कर दी गईं जो वहाँ से मोक्ष नहीं गये थे। यह शिखर जी के प्राचीन मूल स्वरूप को बदलने की बहुत बड़ी साजिश थी।

2. सन् 1900 में वंदना पथ पर हमारे द्वारा बनाई गई करीब 250 सीढ़ियों को इनके इशारे पर इनके आदमियों ने रातों-रात तोड़ डाला, ताकि हमारा कोई अधिकार पहाड़ पर न रहे। इसका फौजदारी मुकदमा चला, जिसमें इनके आदमियों को सजा भी हुई।

3. इन्होंने मुगल बादशाह अकबर के तथाकथित झूठे फरमानों के आधार पर शिखरजी के मालिकाना अधिकार का दावा करते हुए फरमानों की नकलों को कोर्ट में प्रस्तुत किया परन्तु वे ओरिजनल नहीं होने से पटना हाईकोर्ट ने उन्हें दिनाँक 14-04-1921 को जालसाजी करार दिया। यह उल्लेखनीय है कि श्वेताम्बरों द्वारा श्री ऋषभदेव (केसरिया जी), तारंगाजी क्षेत्र, शत्रुंजय-पालीताना में भी इन जाली फरमानों का उपयोग किया गया था।

4. सन् 1929 में श्वेताम्बरों ने शिखरजी पर्वत पर जाने के मुख्य मार्ग पर लोहे का गेट बनाकर वहाँ वॉचमैन रखना चाहा और कहा कि बिना उनकी इजाजत के दिगम्बरों को पूजा करने का अधिकार नहीं है, जिसे कोर्ट ने निरस्त करते हुए सभी टोंक 24 घंटे खुले रखने का आदेश दिया। उन्होंने चरणचिन्हों पर वरक तथा केशर लगाना प्रारंभ किया जिसको लेकर पूजा केस लंदन की प्रिव्ही काउन्सिल में चला। कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि सभी 21 टोंकों पर दिगम्बर आम्नाय के चरणचिन्ह विराजमान हैं। अतएव उन्हें दर्शन-पूजन से रोकने का किसी को अधिकार नहीं है। परन्तु उनकी रख-रखाव के बारे में हमारी ओर से उस समय कोई ठोस सबूत नहीं दे सकने से रख-रखाव का अधिकार उनका ही रहा, जो बिहार जमींदारी उन्मूलन कानून (बिहार लैण्ड रिफार्म्स एक्ट, 1953) के लागू होने से समाप्त हो गया। इसके पश्चात् श्वेताम्बरों ने सन् 1965 में बिहार सरकार से एक एग्रीमेंट कर लिया और खनिज एवं वन सम्पत्ति का 40 प्रतिशत सरकार को छोड़कर 60 प्रतिशत स्वयं लेने लगे।

5. बिहार सरकार एवं आनंद जी कल्याण जी ट्रस्ट के बीच हुए एग्रीमेंट से अपनी समाज को चिंता हुई। उस समय समाज के नेता साहू शांतिप्रसाद जैन थे। उनके प्रयत्नों से 6 अगस्त 1966 को भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं बिहार सरकार के बीच एक एग्रीमेंट करवा लिया गया। दिगम्बरों के साथ हुए सरकार के एग्रीमेंट के अनुसरण में शिखरजी पहाड़ पर कुंथुनाथ टोंक के पास धर्मशाला बनाने के लिए कमेटी की ओर से एक टीन शेड धर्मशाला के रूप में लगाया गया। 26 जनवरी 1967 को आनंदजी कल्याणजी के आदमियों ने उसे रातों-रात तोड़ डाला और उसका सामान भी उठा ले गये, जिसके लिए फौजदारी केस हुआ और उनके आदमियों को जुर्माना व सजा भी हुई।

इस प्रकार हमने एक कुटिल प्रयासों को विफल करते हुए मुकदमों में अपनी जीत हासिल की। लम्बे समय से चले

आ रहे शिखरजी तीर्थ के विवाद का ऐतिहासिक फैसला तब हुआ जब पटना हाईकोर्ट की राँची बैंच के न्यायमूर्ति श्रीमान पी. के. देव ने अपने 1 जुलाई 1997 के फैसले में श्वेताम्बरों के मंसूबों को करारा झटका दिया। इस फैसले के मुख्य अंश इस प्रकार हैं–

1. कोर्ट ने कहा कि आनंद जी कल्याण जी ट्रस्ट के नाम से कोई भी ट्रस्ट बिहार में रजिस्टर्ड नहीं है, इसलिए पारसनाथ पहाड़ से सेठ आनंदजी कल्याणकजी (श्वेताम्बर फर्म)–अहमदाबाद के मालिकाना अधिकार के सभी दावे खारिज किए जाते हैं।

2. कोर्ट ने यह भी कहा कि ये लोग (आनंदजी कल्याणजी) शिखर के टोंकों से चढ़ावा तो उठाते थे किन्तु उन्होंने पिछले सौ वर्षों में एक रुपया भी शिखरजी की व्यवस्था एवं विकास के लिए नहीं लगाया। इनकी राशि अन्य श्वेताम्बर तीर्थों में ले जाकर खर्च की। अतएव उन्हें मैनेजमेंट का अधिकार नहीं है और इनके प्रबंध एवं नियंत्रण के सभी दावे रद्द किये जाते हैं।

3. इस निर्णय में उस फैसले का विशेष उल्लेख किया गया है जिसमें प्रिव्ही कांउसिल ने 21 प्राचीन टोंके (20 तीर्थंकरों की तथा एक गौतम गणधर स्वामी की) दिगम्बर आम्नाय की मानी हैं एवं केवल4 नई टोंकें श्वेताम्बर आम्नाय की मानी हैं।

4. निर्णय में दिगम्बर जैन यात्रियों के लिए पर्वत पर नयी धर्मशाला निर्माण करने की मांग न्यायसंगत ठहराई गई है और कहा गया है कि हमारा आवेदन आने पर राज्य सरकार हमें भूमि अवश्य उपलब्ध करावे। यह भी कहा है कि पर्वत की व्यवस्था हेतु बिहार सरकार द्वारा दिगम्बर और श्वेताम्बर जैन समाज के प्रतिनिधियों की एक संयुक्त कमेटी बनायी जावे जिसका अध्यक्ष जिला कलेक्टर हो।

उपरोक्त निर्णय के विरुद्ध सेठ आनंदजी कल्याणजी फर्म ने राँची हाईकोर्ट की डबल बेंच के सामने अपील करते हुए उक्त निर्णय पर स्टे-ऑर्डर की मांग की, जिसे कोर्ट ने अस्वीकृत कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर स्टे-आर्डर की मांग की, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने भी खारिज कर दिया। डबल बेंच के अघोषित निर्णय के बाद यह मुकदमा रांची हाईकोर्ट की फुल बेंच ने सिंगल जज न्यायमूर्ति श्री पी.के. देव के फैसल को ही बरकरार रखा तथा कहा कि दिगम्बरों को पहाड़ पर धर्मशाला बनाने का अधिकार है और इनका आवेदन आने पर राज्य सरकार इन्हें भूमि अवश्य उपलब्ध करावे। इस प्रकार सत्य की जीत हुई।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पिछले 100 वर्षों से चल रहे मुकदमों का पूरा खर्च भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी करती आई है। अब तक करीब 2 करोड़ की राशि इन मुकदमों पर खर्च हुई है और उसके लिए उसने कभी भी समाज से अलग से धन एकत्रित करने की आवश्यकता महसूस नहीं की। कमेटी के पास जो ध्रुवफंड है उसके ब्याज की आमदनी से कमेटी इन केसों को लड़ती रही है। अब राँची हाईकोर्ट की तीनों बेंचों के फैसले हमारे पक्ष में होने से श्वेताम्बर मूर्तिपूजक बौखलाये हुए हैं और वे येन-केन-प्रकारेण हमारे अधिकारों को समाप्त करने के प्रयास में जुटे हुए हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष में जैनों की कुल जनसंख्या में से 70 प्रतिशत जनसंख्या दिगम्बरों की है, शेष 30 प्रतिशत में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, स्थानकवासी, तेरहपंथी आदि हैं। वे शत्रुंजय एवं पालीताना अधिक जाते हैं परन्तु श्री सम्मेदशिखर जी के मामले में वे पूरे सजग हैं। हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि कई श्वेताम्बर भाईयों ने यह मंशा व्यक्त की है कि जैसे भी हो उन्हें शिखरजी केस की लड़ाई जीतनी है, रकम चाहे जो भी खर्च हो, उनकी देने की तैयारी है। यह हमारे समाज के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। अब शिखरजी की रक्षा कैसे की जावे यह हमारे लिए चिंतनीय विषय बन गया है। राँची हाईकोर्ट के फैसले के आलोक में असंतुष्ट सेठ आनंदजी कल्याणजी फर्म-अहमदाबाद एवं श्वेताम्बर जैन सोसायटी, कोलकाता के प्रतिनिधियों ने शिखरजी पहाड़ के मैनेजमेंट के लिए कमेटी गठित किये जाने के राज्य सरकार के निर्णय का विरोध करते हुए सुप्रीम कोर्ट में अलग-अलग एस.एल.पी. फाइलकी हैं। हमारी ओर से भी पिटीशनें, फाइल हुई हैं। ये सभी पिटीशनें अभी एडमिट नहीं हुई हैं परन्तु सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह आदेश हुआ है कि केस की सुनवाई करने के बाद फैसला दे दिया जायेगा। श्वेताम्बर समाज सुप्रीम कोर्ट में श्री फली नरिमन,श्री अरुण जेटली, श्री सिद्धार्थ शंकरराय,

श्री मुकुल रोहतगी जैसे दिग्गज वकीलों को खड़ा करके शिखरजी केस काफैसला अपने पक्ष में कराने के प्रयास में लगा हुआ है। हमारा पक्ष सत्य के बल पर अभी तक विजयी होता आया है। अब यह लड़ाईआर-पार की लड़ाई है। इसलिए यह मौका हम भी नहीं खोना चाहते हैं। हमने अपनी ओर से भी वरिष्ठ एडवोकेट श्री ह्रीश सालवे, श्री अशोक देसाई एवं कुछ अन्य सीनियर एडवोकेट्स को आर्ग्यूमेंट्स के लिए खड़ा करने का निर्णय लिया है। इनको सहयोग देने के लिए एडवोकेट श्री मनोज गोयल को भी इस कार्य में जोड़ा गया है। ऐसी संभावना की जा रहीहै कि यह केस कई दिनों तक चलेगा, जिसमें करोड़ों रुपये व्यय होने का अनुमान है। जब यह केस राँची हाईकोर्ट की, फुल बेंच के सामने 19 दिनों तक चला था तब अपनी ओर से करीब 60 लाख रुपये व्यय हुए थे।

श्री गिरनारजी, श्री शिखरजी दोनों ही केस सुनवाई पर आ गये हैं। श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ, सिरपुर का केस भी सुप्रीम कोर्ट में फाइनल हियरिंग में है। श्री ऋषभदेव (केशरिया जी), श्री पावापुरी एवं श्री चंवलेश्वर पार्श्वनाथ क्षेत्र, बागूदार (भीलवाड़ा-राज.) के मुकदमें भी अलग-अलग न्यायालयों में विचाराधीन हैं। इन मुकदमों पर विपुल धनराशि व्यय होने की संभावना को देखते हुए तीर्थक्षेत्र कमेटी इसके लिए प्रथम बार दिगम्बर जैन समाज के सामने आई है और अपील करती है कि जिससे जितना भी संभव हो सके, तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी एवं अन्य क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए उदार हस्त से योगदान करें। कहीं ऐसा न हो कि धनाभाव के कारण हम केस की उचित पैरवी करने में असमर्थ हो जायें और अभी तक की जीती हुई लड़ाई हमें हारनी पड़े। यदि ऐसा होता है तो हमारी आने वाली पीढ़ी हमें कभी माफ नहीं करेगी। हमारा समाज बहुत बड़ा समाज है। हमें पूर्ण विश्वास है कि समाज का हर व्यक्ति इस समस्या के लिए अवश्य सोचेगा और यथाशक्ति आर्थिक सहयोग करेगा।

अन्य जिनमंदिरों एवं भगवान ऋषभदेव जिनमंदिर का निर्माण—शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर में मुख्यरूप से बीसपंथी-तेरहपंथी कोठी के साथ-साथ पिछले 25-30 वर्षों से अनेक नवनिर्माणों के द्वारा भारी विकास कार्य हुआ है। पूज्य आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज की प्रेरणा से समवसरण मंदिर, तीस चौबीसी मंदिर आदि के विशाल निर्माण, गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी की प्रेरणा से मध्यलोकशोध संस्थान, आचार्यश्री संभवसागर महाराज की प्रेरणा से त्रियोग आश्रम, आचार्यश्री सुमतिसागर महाराज की प्रेरणा से त्यागी-व्रती आश्रम आदि निर्माणों के साथ वहाँ अनेक दि. जैन संस्थाएँ अपने-अपने नवनिर्माण आदि कार्यकलापों के द्वारा सिद्धक्षेत्र की गरिमा वृद्धि में अपना सक्रिय योगदान प्रदान कर रही हैं। इसी शृँखला में पर्वतराज के चौपड़ा कुण्ड पर स्थित दिगम्बर जैन मंदिर एवं धर्मशाला यात्रियों के लिए विशेष सुविधा प्रदान करते हुए यात्रा के आनंद को द्विगुणित कर देते हैं।

सन् 2003 में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने पावन तीर्थ सम्मेदशिखर के इतिहास में एक नया अध्याय और जोड़ दिया। पूज्य माताजी ने वहाँ पर भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा एवं मंदिर निर्माण की प्रेरणा दी। भगवान बाहुबली एवं चौबीसी मंदिर के परिसर में बाहर की ओर निर्मित इस मंदिर का निर्माण कराने का पुण्यलाभ डॉ. पन्नालाल जैन पापड़ीवाल-पैठण (महाराष्ट्र) परिवार को प्राप्त हुआ है। वर्तमान में यह निर्माण कार्य पूर्ण होकर दिसम्बर 2005 में पूज्य ज्ञानमती माताजी के शिष्य जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज एवं अध्यक्ष कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन के पावन सानिध्य में सवा नौ फुट ऋषभदेव प्रतिमा जी की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी सम्पन्न हो चुका है। निश्चित ही यह भव्य और मनोज्ञ प्रतिमा प्रत्येक दर्शक को जैनधर्म की प्राचीनता एवं भगवान आदिनाथ के जीवन का स्मरण कराती रहेगी।

शास्त्रों में तो शिखर जी की वंदना का फल बताते हुए कहा है कि व्यक्ति इस पर्वत की वंदना करके अधिकतम 49 भव धारण करने के बाद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। ऐसे पावन सिद्धधाम शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर को कोटि-कोटि नमन।

भगवान पार्श्वनाथ के प्रसिद्धि प्राप्त अतिशय क्षेत्र

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कचनेर

–जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर से 35 कि.मी. दूर कचनेर अतिशय क्षेत्र है जो पैठण (हा.) से 30 कि.मी. एवं औरंगाबाद से 35 कि.मी. दूर अवस्थित है। यहाँ अतिशययुक्त, विघ्नविनाशक, मनोवांछितफलदायक श्री 1008 चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान है। उत्तरी भारत के श्री महावीर जी क्षेत्र के समान दक्षिण भारत में यह क्षेत्र विख्यात है। प्राचीन काल में कचनेर ग्राम के मध्य बस्ती में एक जैन मंदिर था जिसमें श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति थी। जनश्रुति के अनुसार तथा भगवान की पूजन में जयमाला में उल्लिखित वर्णन के अनुसारयह मूर्ति चतुर्थकालीन है। मध्यकाल में मूर्तिभंजकों के पाशवी कृत्यों से बचाने के लिए सम्भवतः इस भुयारी (तलघर) मंदिर को मिट्टी से बुझा दिया गया हो।

अतिशय–लगभग 250 वर्ष पूर्व एक गाय नित्य सायंकाल जब जंगल से लौटती थी जब जहांभुयार का द्वार था उस जगह अपने स्तनों का दूध झराकर फिर गोठे में जाती थी। यह दृश्य उस गाँव के पतराव की दादी प्रतिदिन देखती थी और आश्चर्य में डूब जाती थी। एक दिन उसने गाय को जंगल में नहीं जाने दिया औरबाँधकर रखा,किन्तु आश्चर्य तब हुआ जब सायंकाल का समय होते ही गाय रस्सी तोड़कर गोठे से निकली और नित्य की भांति उस जगह जाकर दूध झराया। दादी माँ इस चमत्कार को समझ नहीं सकी और विचार करती रही। एक दिन प्रातःकालमें उसने सपने में देखा कि गाय जहाँ प्रतिदिन दूध झराती है वहाँ भुयार (तलघर) का द्वार है और वहाँ एक मूर्ति है। मूर्ति संकेतकरती है ''मुझे इस भुयार से निकालो, आपका कल्याण होगा''। दादी की प्रेरणा से मिट्टी खोदी गई। भुयार (तलघर) का दरवाजा प्रकट हुआ, सीढ़ियाँ लगाई गईं, भीतर स्वप्न के अनुसार सप्तफणायुक्त चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा पाई गई। ग्रामवासी इस घटना से दंग रह गए और भावविभोर हो गए। उस समय गाँव में जैनियों की बस्ती नहीं थी इसलिए कचनेर ग्रा. के 2 कि.मी. दूरी पर जैन टेकड़ी नामक स्थान से जैनियों को बुलाया गया। दि.जैन प्रतिमा उन श्रावकों के सुपुर्द करदी गई। भगवान विराजमान करने के लिए गाँव में एक बाड़ा खरीदा गया, यथाविधि श्रद्धा व भक्ति के साथ उस बाड़े में प्रतिमा विराजमान की गई। कुछ वर्षों बाद एक शोकदायी अशुभ घटना घटी। अचानक मूर्ति की गर्दन धड़ से अलग हो गई औरजमीन पर गिर गई। धड़ वेदी पर ही रहा, मूर्ति खंडित हो गई। समाज द्वारा खंडित प्रतिमा को जलाशय में विसर्जन करनेका निर्णय लिया गया तथा पूजा-दर्शनादि के लिए एक नई प्रतिमा लाने का संकल्प किया गया। भगवान महावीर की प्रतिमा श्री क्षेत्र जैनपुर (जिंतूर) से लाई गई। यह मूर्ति लाते समय महाद्वार पर और विराजमान करते समय वेदी पर अतिशययुक्त घटनाएं घटीं।

नई मूर्ति आने के बाद यथासमय श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा को जलाशय में विसर्जित करने का निश्चय हुआ। इसी मध्य क्षेत्र के कार्यकर्ता पिंप्री निवासी श्री लच्छीराम जी कासलीवाल को स्वप्न में दृष्टिगत हुआ, प्रतिमा ने संकेत दिया कि 'मुझे विसर्जित मत करो, एक कमरे में गड्ढा बनाकर मुझे उसमें रखकर घी शक्कर से गड्ढा भर दो, कमरा बंद कर ताला लगा दो। सात दिन तक अखण्ड भजन पूजन करते रहो, मेरा धड़ और गर्दन जुड़ जाएगा।''

श्री लच्छीराम जी कासलीवाल सेठ जी ने समाज को जब स्वप्न की जानकारी दीतब स्वप्न के अनुसार कार्यवाही करने का समाज ने निर्णय लिया। मंदिर के भीतर एक कमरे में गड्ढा खोदकर दृष्टान्तानुसार प्रतिमा रखी गई, कमरे का ताला लगा दिया। सात दिन के अखण्ड भजन-पूजन के पश्चात् आठवें दिन कमरे का ताला स्वयं खुल गया। लोगों ने देखा चिंतामणि पार्श्वनाथ की खण्डित प्रतिमा पुनश्च जुड़ गई। लोगों ने आनंदविभोर होकर जयजयकार किया। यथाविधि प्रतिमा पुनश्च वेदी पर विराजमान की गई। प्रतिमा खंडित होने के निशान अब भी प्रतिमा की गर्दन पर दृष्टिगत होते हैं। मूर्ति का अतिशय चमत्कार सब ओर फैल गया। लोगों ने विघ्नविनाशक मनोवांछित फलदायक मूर्ति का चमत्कारअनुभव किया।

मूर्ति सम्बन्धी भावनाएं–भारतवर्ष में इस मूर्ति का अभिषेक करना अथवा देखना सभी संकटों से मुक्ति पाना है।

श्रवणबेलगोला स्थित भगवान बाहुबली की मूर्ति का जो महत्त्व अभिषेक को दिया जाता है वही महत्त्व इस मूर्ति को प्राप्त है। कहा जाता है कि अपने-अपने गाँव से कचनेर तक पैदल यात्रा करने से मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है। ऐसी श्रद्धा वाला भारत में पैदल यात्रा के लिए प्रसिद्ध यह एकमात्र दि.जैन अतिशय क्षेत्र है।

वार्षिक मेला–प्रतिवर्ष कार्तिक शु.15 को क्षेत्र पर वार्षिक यात्रा का आयोजन किया जाता है जिसमें हजारों यात्री पधारते हैं।

यातायात की सुविधाएं–श्री कचनेरजी क्षेत्र औरंगाबाद बीड सड़क मार्ग पर औरंगाबाद शहर से 37 कि.मी. दूर है। शहर से कचनेर के लिए प्रतिदिन बस सुविधा उपलब्ध है। टैक्सी, रिक्शा आदि का भी प्रबन्ध है। औरंगाबाद आने के लिए विमान सुविधा, रेल सुविधा उपलब्ध है। दक्षिण मध्य रेलवे से सिकन्द्राबाद-मनमाड़ मार्ग पर औरंगाबाद स्थित है। क्षेत्र द्वारा दर्शनार्थियों के लिए औरंगाबाद कचनेर वाहन नवम्बर 1992 से शुरु की गई है। मिनी बस द्वारा यह सुविधा औरंगाबाद से प्रतिदिन सुबह व शाम में उपलब्ध है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएं–क्षेत्र पर निवास के लिए धर्मशाला का प्रबंध है। एक नई धर्मशाला का निर्माण मंदिर के निकट 'श्री रामलाल बडजाते' नगर में किया जा रहा है। सशुल्क भोजनशाला है, साथ ही औषधालय एवं विद्यालय भी है।

चंवलेश्वर पार्श्वनाथ

–ब्र.कु.बीना जैन (संघस्थ)

अवस्थिति और मार्ग–श्री चंवलेश्वर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र राजस्थान प्रदेश के भीलवाड़ा जिले में भीलवाड़ा से 45 किमी.पूर्व की ओर है। भीलवाड़ा से पारौली तक पक्की सड़क है, बसें जाती हैं। वहाँ से लगभग 6 किमी.कच्चा मार्ग है, बैलगाड़ी मिलती है। दूसरा मार्ग अजमेर से खण्डवा जाने वाली पश्चिमीरेलवे लाइन पर विजयनगर है। वहाँ से 42 किमी. शाहपुरा है। पक्की सड़क है। बसें चलती हैं। शाहपुरा से बैलगाड़ी का रास्ता है। सवारी मिलती हैं। तीसरा मार्ग देवली कैण्ट से जहाजपुर होते हुए बस द्वारा पारौली पहुँचने का है। वहाँ से क्षेत्र तक बैलगाड़ी द्वारा पहुँच सकते हैं।

यहाँ अरावली पर्वत श्रृँखला ने प्रकृति की अनिन्द्य सुषमा का अक्षय कोष लुटाया है। इन पर्वतमालाओं के चरणों को मेवाड़ की विश्रुत बनास नदी पखारती है। इन्हीं पर्वतमालाओं के मध्य कालीघाटी अवस्थित है। इसी के पहाड़ पर चंवलेश्वर क्षेत्र विद्यमान है।

अतिशय क्षेत्र का इतिहास–कहा जाता है, इन्हीं पर्वतों के मध्य में प्राचीनकाल में 'दरिवा' नामक एक नगर था जो धन-धान्य से सम्पन्न और व्यापार के कारण अत्यन्त समृद्ध था। इस नगर में शाह श्यामा सेठ रहते थे। उनके पुत्र का नाम था सेठ नथमल शाह। एक ग्वाला इनकी गाय को चराने ले जाता था। कुछ दिनों से गाय दूध नहीं देती थी। जब चरकर आती तो उसके स्तन खाली मिलते। सेठ ने ग्वाले से इसका कारण पूछा, किन्तु वह जवाब नहीं दे सका। तब ग्वाले ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं इस बात का पता लगाऊँगा।

दूसरे दिन ग्वाले ने सेठ की गाय पर बराबर नजर रखी। जब गोधूलि बेला में गायों के वापस होने का समय हुआ तो ग्वाले ने देखा कि सेठ जी की गाय स्वतः ही पहाड़ की चूल पर जा रही है और एक स्थान पर खड़ी होने पर उसका दूध स्वयं झर रहा है। सारा दूध झरने पर गाय वापस आकर स्वतः ही गायों के झुण्ड में मिल गई है।

ग्वाले ने अपनी आँखों देखा सारा वृत्तान्त सेठ जी को सुना दिया। सेठ जी सोचने लगे-"गाय का दूध स्वतः ही क्यों झरता है और वह भी एक निश्चित स्थान पर!" इसका कोई समाधान उन्हें प्राप्त नहींहो सका। वे इसी विषय पर विचार करते-करते सो गये। रात्रि के अंतिम प्रहर में उन्हें स्वप्न आया। कोई देव पुरुषउन्हें कह रहा था-"जहाँ गाय का दूध झरता है उस स्थान पर भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति है। उसे तुम निकालो और जिनालय बनवकर उसमें प्रतिष्ठा करो।"

प्रातः जागने पर सेठ जी स्वप्न का स्मरण करके बड़े प्रसन्न हुए। इस दैवी प्रेरणा से वे अपने आपको भाग्यशाली मानने लगे। उन्होंने सामायिक किया, नित्यक्रिया से निवृत्त होकर स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण किये और कुछ व्यक्तियों को साथ लेकर स्वप्न में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे। उन्होंने नौ बार णमोकार मंत्र पढ़कर जमीन खोदना प्रारंभ किया। कुछ समय पश्चात् उन्हें मूर्ति का एक भाग दिखाई दिया। तब धीरे-धीरे सावधानीपूर्वक मिट्टी हटायी गई, मूर्ति को बाहर निकाला। देखा कि मूर्ति सच में भगवान पार्श्वनाथ की है जो बलुआई पाषाण की सलेटी वर्ण की पद्मासन मुद्रा में दो फुट अवगाहन की है। इस मनोज्ञ मूर्ति के दर्शन करते ही उपस्थित सभी व्यक्तियों का रोम-रोम हर्षित हो गया। सबने भगवान का अभिषेक-स्तवन-पूजन किया।

मूर्ति का समाचार चारों ओर फैल गया। भगवान का दर्शन करने के लिए वहाँ दूर-दूर से लोग आने लगे। तब सेठ जी ने मंदिर-निर्माण का संकल्प किया और उसे बनवाना प्रारंभ कर दिया। मंदिर का निर्माण उसी स्थान पर किया गया, जहाँ से मूर्ति प्रकट हुई थी। कुछ ही समय में शिखरबन्द मंदिर बनकर तैयार हो गया। सेठ जी ने वैशाख शुक्ला 10 विक्रम संवत् 1007 को पंचकल्याणकपूर्वक भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी। इस उत्सव में साधर्मीजन हजारों की संख्या में पधारे थे। ऐसा भी ज्ञात होता है कि सेठ नथमल जी की सेवाओं और जनकल्याणकारी कार्यों से प्रसन्न होकर मेवाड़ नरेश ने उन्हें 'राजभद्र' की उपाधि प्रदान की थी। यही उपाधि बाद में राजभद्रा कहलाने लगी। सेठ जी राजमान्य थे, यह तो ज्ञात होता है किन्तु उन्हें यह राजमान्यता मंदिर-प्रतिष्ठा के पश्चात् प्राप्त हुई अथवा उससे पूर्व में थी, यह ज्ञात करने का कोई साधन नहीं है।

इस मंदिर का नाम पहले चूलेश्वर रहा है, ऐसा पुराने लेखों से पता चलता है। बाद में चूलेश्वर से चंवलेश्वर कैसे बन गया, इस बात का कोई उल्लेख देखने में नहीं आया। संभवतः चूलेश्वर से ही बिगड़ते-बिगड़ते चंवलेश्वर बन गया।

क्षेत्र-दर्शन—क्षेत्र छोटी सी पहाड़ी पर है। इसके ऊपर जाने के तीन दिशाओं से मार्ग हैं। पूर्व की ओर 256 पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उसके बाद एक छतरी बनी हुई है जो यात्रियों के विश्राम के लिए बनायी गयी प्रतीत होती है। इसके बाद दो फर्लांग का कच्चा मार्ग है। रास्ते में एक पक्का तिवारा पड़ता है। इसमें पानी का एक कुण्ड है, जिसमें बारहों महीने जल भरा रहता है। भगवान के अभिषेक के लिए यहीं से जल ले जाया जाता है। इस स्थान को 'तिवारा खान' कहते हैं। कच्चे रास्ते को पार करके पुनः 110 पक्की सीढ़ियाँ हैं।

मंदिर का शिखर बहुत दूर से दिखाई पड़ता है। उसके आकर्षण से खिंचा हुआ भक्त यात्री थकान का अनुभव नहीं करता। सीढ़ियाँ चढ़ने पर समतल भूमि मिलती है, जिस पर मंदिर का परकोटा बना हुआ है। परकोटे के अंदर प्रवेश करने पर मैदान आता है। उसके मध्य में मंदिर बना हुआ है। मंदिर के द्वार के ऊपरी भाग में पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई है, जिसे देखते ही अनुभव हो जाता है कि वह जैनमंदिर है। मंदिर में प्रवेश करने पर छोटा चौक मिलता है। इसमें मकान बने हुए हैं। पश्चिम की ओर एक छतरी बनी हुई है, जिसमें पाषाण के चरणयुगल विराजमान हैं। बाद में मण्डप मिलता है। फिर मोहन-गृह मिलता है। मोहन-गृह के प्रवेशद्वार के सिरदल पर तीन तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। मध्य में पद्मासन और उसके दोनों ओर खड्गासन। वेदी एक ही है। उस पर मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ विराजमान हैं। इनके दायीं ओर भव्य चौबीसी है। वेदी के चारों ओर परिक्रमा-पथ है।

पहाड़ के नीचे तलहटी में एक मंदिर है। उसमें भगवान पार्श्वनाथ की विशाल अवगाहना वाली खण्डित प्रतिमा विराजमान है। यहीं पर नवनिर्मित जैन धर्मशाला है।

व्यवस्था—क्षेत्र की व्यवस्था एक निर्वाचित प्रबंधकारिणी समिति करती है। यह समिति पंजीकृत है।

वार्षिक-मेला—इस क्षेत्र पर प्रतिवर्ष पौष वदी 9 और 10 को मेला लगता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—क्षेत्र पर 40 कमरे हैं। 1 हाल है। भोजनशाला सशुल्क है, अनुरोध करने पर भोजन तैयार होता है। औषधालय भी है। यहाँ पहुँचने का सरल मार्ग मॉडलगढ़ से काछोला-राजगढ़ होते हुए, भीलवाड़ा से कोटड़ी होते हुए और जयपुर से देवली, जहाजपुर, खजुरी होते हुए है।

अन्देश्वर पार्श्वनाथ

–पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज

मार्ग और अवस्थिति–'श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अन्देश्वर पार्श्वनाथ' राजस्थान प्रदेश के बाँसवाड़ा जिले की कुशलगढ़ तहसील में है। समीप का रेलवे स्टेशन पश्चिमी रेलवे का उदयगढ़ है यहाँ से 50 किमी. है। यह क्षेत्र दाहोद से उत्तर की ओर 50 किमी., कुशलगढ़ से पश्चिम की ओर 15 किमी. तथा कलिंजरा से पूर्व की ओर 8 किमी. दूर है। यह कुशलगढ़ और कलिंजरा के मध्य है, नियमित बस सेवा है। बस मंदिर के आगे ही रुकती है। इसका पोस्ट ऑफिस कुशलगढ़ है। यह क्षेत्र एक छोटी-सी पहाड़ी पर है। चारों ओर सघनवन है।

क्षेत्र का इतिहास–इस क्षेत्र के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं, एक भील किसान एक बार अपने खेत में हल चला रहा था। अकस्मात् उसका हल पत्थर से टकराया। किसान ने उस पत्थर को प्रयत्नपूर्वक निकाला। किन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह साधारण पाषाण नहीं है, बल्कि पाषाण के भगवान हैं। भगवान ने साक्षात् दर्शन दिये हैं, इस विश्वास से वह भगवान के सामने भक्ति से नृत्य करने लगा। धीरे-धीरे यह समाचार उसके परिवार और जाति वालों को भी मालूम हुआ। अबोध भक्तों का वहाँ मेला लग गया। सबने भगवान के ऊपर तेल-सिंदूर पोतकर खूब भक्ति की। प्रतिदिन ये लोग इसी प्रकार भगवान की भक्ति करके रिझाने लगे। भगवान का स्थान भी एक खेजड़े के वृक्ष के नीचे बन गया।

एक दिन कलिंजरा के श्री भीमचंद महाजन को स्वप्न आया। दूसरे दिन महाजन यहाँ पहुँचा, दर्शन किये, अभिषेक किया। यह समाचार दिगम्बर जैन समाज को भी ज्ञात हुआ। जैन लोग यहाँ आये और छोटा सा मंदिर बनवाकर उसमें मूर्ति को विराजमान कर दिया। धीरे-धीरे अन्देश्वर पार्श्वनाथ की प्रसिद्धि सारे बागढ़, मध्यप्रदेश और गुजरात प्रान्त में फैल गई। फलतः जनता अधिकाधिक संख्या में आने लगी।

अतिशय–भगवान पार्श्वनाथ की उपर्युक्त मूर्ति के अतिशयों के संबंध में लोगों में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं कहते हैं, एक बार चोरों ने चाँदी के किवाड़ उतार लिये और उन्हें लेकर चल दिये। लेकिन वह अंधे और पागल हो गये और इधर-उधर घूमकर एक ओर छिपने का प्रयास करते रहे मगर उनका प्रयास विफल रहा और सब माल पीछे वापस आया। एक बार उन्होंने फिर प्रयत्न किया और अबकी बार तिजोड़ी खोलकर रुपये निकाल लिये। किन्तु इस बार वे जा नहीं सके, वे अंधे हो गये और यहीं पर पास के जंगल में भटकते रहे।

मूर्ति के अतिशय से प्रभावित होकर अनेक जैन और जैनेतर व्यक्ति यहाँ मनोकामना लेकर आते हैं।

क्षेत्र-दर्शन–यह क्षेत्र पहाड़ के ऊपर जंगल में है। यहाँ कोई बस्ती नहीं है, केवल दो दिगम्बर जैन मंदिर और धर्मशाला हैं। दोनों ही मंदिर पार्श्वनाथ मंदिर कहलाते हैं। एक मंदिर कुशलगढ़ की श्री दिगम्बर जैन पंचायत ने बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1965 में हुई थी। भगवान पार्श्वनाथ की श्यामवर्ण चमत्कारिक मूर्ति इसी मंदिर में विराजमान है। दूसरा मंदिर कुशलगढ़वासी श्री हीराचंद महाजन ने बनवाया था, जिसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् 1992 में हुई थी। इनमें पहला मंदिर ही बड़ा मंदिर कहलाता है।

बड़े मंदिर में गर्भगृह और सभामण्डप है। उसके आगे सहन है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की 1 फुट 8 इंच ऊँची कृष्ण पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिमा के ऊपर सप्त फणावली है। यह प्रतिमा एक शिलाफलक में है। भगवान के सिर के ऊपर तीन छत्र हैं। उनके ऊपर दुन्दुभिवादक हैं। उनके ऊपर भी पाँच पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। इनके दोनों पार्श्वों में आकाशचारी देव और गज हैं। फण के पार्श्वों में मालाधारी गन्धर्व हैं। उनसे नीचे दोनों ओर खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इस मूर्ति के ऊपर कोई लेख नहीं है। यह मूर्ति इसी स्थान पर निकली थी। कहते हैं, जब इस मूर्ति को बाहर मंदिर में विराजमान करने के लिए ले जाना चाहा तो वह उठाये न उठी। तब उसी स्थान पर दूसरा मंदिर बनाया गया।

यह मूर्ति अनुमानतः 12-13वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। इस मूर्ति के अतिरिक्त वेदी पर पाषाण की 8 और धातु की 9 मूर्तियाँ और भी विराजमान हैं।

इस मंदिर से आगे सड़क के किनारे दूसरा मंदिर है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ की 2 फुट 7 इंच अवगाहना वाली कृष्ण पाषाण की पद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह 9 फण वाली है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1992 में हुई थी। इसके अतिरिक्त वेदी पर 8 पाषाण की और 10 धातु की मूर्तियाँ भी हैं।

दोनों ही मंदिर शिखरबन्द हैं।

धर्मशाला—क्षेत्र पर दिगम्बर जैन धर्मशाला है। मंदिर से लगभग 100 गज दूर एक तालाब के निकट कुआँ है। जल-पूर्ति के लिए यही एकमात्र साधन है। क्षेत्र नागरिक कोलाहल से दूर एकान्त और शान्त वातावरण में अवस्थित है।

व्यवस्था—व्यवस्था की दृष्टि से यह निर्णय किया गया कि अन्देश्वर कलिंजरा के निकट है, परन्तु तत्कालीन कुशलगढ़ स्टेट में होने से तथा बांसवाड़ा-कुशलगढ़ स्टेटों के बीच सीमा-विवाद होने के कारण कलिंजरा के मार्ग से सामान पहुँचाना कठिन था। अतः क्षेत्र की व्यवस्था का भार दिगम्बर जैन समाज कुशलगढ़ को दिया गया।

वार्षिक मेला—क्षेत्र का वार्षिक उत्सव कार्तिक पूर्णिमा को होता है। इसी दिन अन्देश्वर पार्श्वनाथ प्रगट हुए थे। घोडा भीमचन्द को स्वप्न दिया था। अतः तभी से प्रथम ध्वजारोहण घोडा भीमचंद एवं उनके वंशजों द्वारा ही किया जाता है जो अब तक कायम है।

सन् 1974 के पश्चात्—वर्तमान में श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अन्देश्वर पार्श्वनाथ कुशलगढ़ की सम्पूर्ण व्यवस्था और देखरेख समस्त दि. जैन पंच महाजन दशाहूमड़ बीसपंथी कुशलगढ़ (राज.) के अधीन है।

व्यवस्था कमेटी द्वारा मुख्य सड़क से क्षेत्र तक डामरीकरण तथा यात्रियों के आवागमन हेतु बसों में आने-जाने की व्यवस्था कराई गई है। इस क्षेत्र पर नल, बिजली एवं आवास व्यवस्था हेतु विशाल धर्मशाला का निर्माण करवाया गया है जिसमें समस्त आवासीय सुविधाएँ यात्रियों के लिए उपलब्ध कराई गई हैं। अतिशय क्षेत्र में अतिशय पार्श्वनाथ मंदिर, पार्श्वनाथ मंदिर, शांति, कुंथु, अरहनाथ का कांच मंदिर, सवा ग्यारह फुट ऊँची 108 फण युक्त पार्श्वनाथ की खड्गासन मूर्ति एवं अर्धचन्द्राकार में निर्मित पार्श्वनाथ जिनालय है।

क्षेत्र के दो मंदिरों में आध्यात्मिक चित्रयुक्त आकर्षक रंगीन काँच से कलाकृति का कार्य करवाया गया है। क्षेत्र में संगमरमरयुक्त 41 फुट 3 इंच ऊँचे विशाल मानस्तंभ का निर्माण करवाया गया है। साथ ही विशाल खड्गासन त्रिमूर्ति (भरत-बाहुबली-आदिनाथ) की मूर्तियों की स्थापना हेतु वेदियों का निर्माण कार्य योजनापूर्वक ढंग से करवाया जा रहा है। इस प्रकार व्यवस्थापक कमेटी के सुनियोजित नेतृत्व में यह क्षेत्र निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है।

क्षेत्र मंदिर प्रांगण में अति रमणीय बगीचा का निर्माण किया गया है। मेला तेरस से लेकर पूर्णिमा तक त्रिदिवसीय होता है। पुरातन विभाग द्वारा जिस मूर्ति को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। ऐसी भारतवर्ष में एकमात्र अन्देश्वर पार्श्वनाथ के फण के ऊपर पंच बालयति भगवान की मूर्ति विराजमान है। सन् 2006 में भी यहाँ चमत्कार हुआ है।

अन्देश्वर के करीब 4 या 5 मील की दूरी पर जैनेतर क्षेत्र मंगलेश्वर है। वहाँ के भग्नावशेष हमें अपनी प्राचीनता और जैनत्व का पूरा-पूरा प्रमाण देते हैं, वहाँ से लगाकर अन्देश्वर तक अनेकों जैनत्व के भग्नावशेष पाये जाते हैं तथा वहाँ की कुछ खण्डित किन्तु मनोहर जैन मूर्तियाँ कुशलगढ़ पुलिस स्टेशन में आज भी मौजूद हैं, जिसकी कलात्मक रचना बहुत ही मनोरम है।

क्षेत्र पर अन्य सुविधाएँ—क्षेत्र पर कुल 25 कमरे हैं, जिसमें 10 डीलक्स हैं। 2 हॉल हैं जिसमें 100-200 यात्री ठहर सकते हैं। भोजनशाला नियमित और रियायती शुल्क पर है। विद्यालय शासकीय है।

नागफणी पार्श्वनाथ

–धनपाल रतनलाल जैन, बीछीवाड़ा, डूंगरपुर (राज.)

मार्ग और अवस्थिति–यह एक अतिशय क्षेत्र है। ऋषभदेव से लगभग 40 किमी. दूर बीछीवाड़ा नगर है। नियमित बस सेवा है। बीछीवाड़ा से मैस्वो नदी तक 10 किमी. लम्बी पहाड़ी सड़क है जो पत्थरों के टुकड़े डालकर बनायी गयी है। बीछीवाड़ा होती हुई बस लगभग 6 किमी. तक जाती है। वहाँ से काफी चढ़ाई और उतराई है। अतः पैदल ही यात्रा की जा सकती है। मैस्वो नदी पर पहुँचकर, मौदर गाँव से पूर्व ही नदी के किनारे बायीं ओर लगभग एक फर्लांग चलकर पहाड़ के ऊपर मंदिर दिखाई देने लगता है। मंदिर तक जाने के लिए लगभग 50 सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। जहाँ सीढ़ियाँ प्रारंभ होती हैं, वहाँ एक जलकुण्ड है। पहाड़ के कई स्रोतों से जल निरन्तर आता रहता है और एक गोमुख से इस कुण्ड में गिरता रहता है। इसी कुण्ड का जल पीने और भगवान के अभिषेक के काम में आता है। कहते हैं, कभी-कभी यहाँ सिंह आदि वन्य पशु भी जल पीने आ जाते हैं। यह स्थान राजस्थान प्रान्त के डूंगरपुर जिले में है। प्राचीनकाल में क्षेत्र के निकट बस्ती थी।

क्षेत्र-दर्शन–पहाड़ी के ऊपर मंदिर बना हुआ है। मंदिर में गर्भगृह और उसके आगे खेला मण्डप है। मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है। किन्तु पार्श्वनाथ की यह स्वतंत्र प्रतिमा नहीं है। अपितु पार्श्वनाथ के सेवक धरणेन्द्र के शीर्ष पर पार्श्वनाथ की लघु प्रतिमा विराजमान है। यह काफी घिस गई है जिससे प्रतीत होता है कि प्रतिमा काफी प्राचीन है। भगवान के सिर पर सप्तफण मण्डप बना हुआ है। इनमें तीन फण खण्डित हैं।

धरणेन्द्र ललितासन में बैठे हुए हैं। उनके दायें हाथ में पुष्प है तथा बायाँ हाथ जंघा पर रखा है। उनके हाथों में दस्तबन्द, भुजाओं में भुजबन्द तथा गले में रत्नहार है। धोती की चुन्नटों का अंकन बड़ा भव्य बन पड़ा है। बायें हाथ के नीचे उत्तरीय लटका हुआ है।

इस प्रतिमा का वर्ण श्याम है। अवगाहना 2 फुट 2 इंच है। प्रतिमा की चरण चौकी के ऊपर कोई लेख नहीं है। मस्तक का पृष्ठभाग खण्डित है। यही प्रतिमा जनता में नागफणी पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध है।

नागफणी पार्श्वनाथ की दायीं ओर मल्लिनाथ की कृष्णवर्ण वाली और 1 फुट 4 इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। यह कृष्ण वर्ण है, पद्मासन है और 1 फुट 3 इंच उन्नत है। मल्लिनाथ प्रतिमा के पादपीठ पर इस प्रकार लेख अंकित है-"श्री मूलसंघे 1637 वर्षे वैशाख वदि 8 बुधे भट्टारक श्री गुणकीर्ति गुरुपदेशात्"।

वेदी पर धातु के पार्श्वनाथ और एक चौबीसी विराजमान है। गर्भगृह के द्वार पर पार्श्वनाथ भगवान की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेख के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् 2008 ज्येष्ठ कृष्णा 5 को हुई थी। खेला मण्डप के तीन ओर छड़दार किवाड़ें लगी हुई हैं। यहाँ का दृश्य बिल्कुल तपोवन जैसा लगता है। मण्डप के आगे दोनों ओर ऊँची पर्वतमालाएँ और हरे-भरे वृक्षों की कतारें हैं। पर्वतों के मध्य चौरस भाग में मैस्वो नदी है। यह नदी बरसाती है। ग्रीष्म ऋतु में यह सूखी पड़ी रहती है। यह स्थान बिल्कुल निर्जन है। इसका निकटवर्ती मौदर गाँव यहाँ से प्रायः दो फर्लांग दूर है।

अतिशय–जैन एवं जैनेतर जनता में अतिशय क्षेत्र के रूप में इस क्षेत्र की मान्यता है। भक्तजन मनोकामनाएँ लेकर यहाँ आते हैं। ग्रामवासियों के पशु पहाड़ पर चरने जाते हैं। कभी कोई पशु चरते-चरते दूर निकल जाता है और संध्या को बहुत ढूँढ़ने पर भी जब नहीं मिलता तो पशु का मालिक नागफणी बाबा की दुहाई देकर बोलता है-"बाबा! अगर मेरा जानवर सुबह घर आ जायेगा तो मैं तेरे ऊपर दूध चढ़ाऊँगा।" कहते हैं, इस पहाड़ पर सिंह दम्पत्ती रहता है। किन्तु आज तक कभी भी सिंह ने यहाँ किसी पशु का शिकार नहीं किया। यहाँ के आदिवासियों का यह दृढ़ विश्वास है कि नागफणी बाबा की छत्रछाया में कभी भी उनकी कोई हानि नहीं हो सकती।

धर्मशाला–मंदिर के दोनों पार्श्वों में धर्मशाला बनी हुई है। मंदिर की दायीं बाजू में नीचे ऊपर हाल बने हुए हैं। बायें पार्श्व में नीचे तीन कमरे और ऊपर एक और हाल बना हुआ है। यात्रियों के लिए गद्दे, रजाइयाँ और बर्तनों की सुविधा

उपलब्ध हैं, जल की सुविधा प्रकृति ने कर ही दी है।

प्रतिमा का इतिहास और किंवदन्ती—नागफणी पार्श्वनाथ प्रतिमा की प्राप्ति के संबंध में एक अद्‌भुत किंवदन्ती प्रचलित है। कहते हैं पहले यह प्रतिमा ऊपर पहाड़ पर पेड़ों के झुरमुट में पड़ी हुई थी। एक महिला किसी कार्यवश पहाड़ पर जा रही थी। जब वह इस प्रतिमा के निकट से गुजरी तो अकस्मात् उसकी दृष्टि प्रतिमा के ऊपर पड़ी। भगवान के दर्शन पाकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मनौती मनायी—"बाबा! अगर मेरी कामना पूर्ण हो जाये तो मैं प्रतिदिन तेरी सेवा-पूजा किया करूँगी।" जब इस भक्त महिला की कामना पूर्ण हो गई तो वह अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रतिदिन वहाँ आकर भगवान की सेवा-पूजा करने लगी। एक दिन उस भक्त महिला ने अपने भगवान से कहा—"बाबा! मैं बूढ़ी औरत ठहरी। मुझमें हर रोज इतना ऊँचा चढ़कर आने की शक्ति नहीं है। तुम नीचे आ जाओ, वरना मैं कल से नहीं आऊँगी।" भक्त के निश्छल हृदय की पुकार थी यह। फलतः रात्रि में देव ने स्वप्न में उसे उपाय बताया—"तू सरकण्डे की गाड़ी बना और कच्चे सूत की गुण्डी बना। तू मुझे गाड़ी पर रखकर ले जाना। लेकिन पीछे मुड़कर न देखना।"

वह वृद्धा स्वप्न में बताये गये उपाय का स्मरण कर बड़ी प्रसन्न हुई। प्रातःकाल होते ही उसने सरकण्डों की गाड़ी बनायी, कच्चे सूत से उसे कसा और गाड़ी लेकर अपने भगवान को लेने पहुँची। उसके मन में खुशी समा नहीं पा रही थी कि आज भगवान उसके घर पर पधारेंगे। उसने भगवान की अगवानी के लिए बड़ी तैयारियाँ की थीं। उसने अपनी झोंपड़ी को सजाया-सँवारा था। गोबर से उसे लीपा था। आज त्रिलोकीनाथ भगवान अपनी इच्छा से उसकी झोंपड़ी में आने वाले थे। तीनों लोकों में कौन इतना भाग्यशाली होगा।

ऐसी हुमस लिये गाड़ी लेकर वह भगवान के पास पहुंची। उसके शरीर पर पड़ी हुई झुर्रियों में आज उमंग, उत्साह और शक्ति की अलौकिक विद्युत् प्रवाहित हो रही थी। उसके भाग्य से स्पर्धा करने की क्षमता आज किसी में नहीं थी। उसने जाकर अपने भगवान के आगे हाथ जोड़े, साष्टांग नमस्कार किया और उठकर आदेश के स्वर में बोली—"अब चलो भगवान!" यों कहकर उसने भगवान को उठाया। लगा कि भगवान तो चलने के लिए जैसे बड़े उत्सुक हों। उस वृद्धा का जरा सा सहारा मिला कि भगवान गाड़ी में सवार हो गये। गाड़ी खींचती हुई भगवान को ले चली। गाड़ी खींचने में उसे कोई जोर नहीं लगाना पड़ रहा था। गाड़ी ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्ते पर ऐसे चली जा रही थी, मानो कोई चिकनी सीमेण्ट की सड़क हो।

गाड़ी एक झरने के निकट आयी। वह पहाड़ से उतर आयी थी। अब तक वह वृद्धा हर्ष और भक्ति से विह्वल मानो बेसुध बनी चली आ रही थी। झरने पर आकर उसके मन में संदेह जागा-"गाड़ी इतनी हल्की कैसे लग रही है। भगवान तो बहुत भारी हैं, किन्तु गाड़ी तो भारी नहीं लगती। कहीं भगवान रास्ते में ही तो नहीं गिर गये।' उसने मुड़कर देखा। बड़ी प्रसन्न हुई कि भगवान तो गाड़ी पर बैठे हैं। फिर उसी उमंग से उसने गाड़ी खींची, किन्तु गाड़ी टस से मस नहीं हुई। भक्ति के जिस सम्बल के सहारे वह भगवान को यहाँ तक लाने में सफल हुई थी, संदेह होते ही भक्ति का सम्बल हाथ से छूट गया था। आदिवासी गाजे-बाजे लेकर भगवान की अगवानी के लिए वहाँ आये। उन सभी ने मिलकर भगवान को ले जाने के अनेक उपाय किये किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुए। वृद्धा अपनी भूल पर बहुत रोयी, किन्तु बाद में यह अनुभव कर उसने संतोष धारण किया कि भक्ति के प्रवाह में यदि थोड़ा सा भी संदेह का अंश बना रहता है तो वह भक्ति फलदायी नहीं होती। नागफणी पार्श्वनाथ तब से उसी स्थान पर विराजमान हैं। तभी से इनकी ख्याति दिनोंदिन बढ़ती गई और उसने तीर्थक्षेत्र का रूप धारण कर लिया।

सरकार ने मंदिर के चारों ओर पहाड़ पर 10 बीघा जमीन मंदिर को भेंट स्वरूप प्रदान की है।

वार्षिक मेला—यहाँ प्रत्येक पूर्णिमा को मेला भरता है। किन्तु यहाँ आषाढ़ पूर्णिमा को बड़ा मेला भरता है। इस दिन कई हजार जैन और जैनेतर जनता यहाँ एकत्रित होती है।

व्यवस्था—क्षेत्र की व्यवस्था के लिए एक प्रबंधक समिति बनी हुई है।

सन् 1974 के पश्चात्—आवागमन के साधनों में बीछीवाड़ा बस स्टैण्ड से बस सुबह से शाम तक मिलती है तथा प्रति घंटे जीप की काफी सुविधा है।

यात्रियों की सुविधा के लिए मंदिर की तलहटी में पहाड़ को काटकर 113×33 लम्बाई, चौड़ाई में तीन मंजिल की डीलक्स फ्लैट्स की धर्मशाला है। नीचे भोजनशाला है, जिसमें यात्रियों के भोजन की सुविधा है।

क्षेत्र बहुत ही रमणीय है। प्रातः पानी गरम सा रहता है, चिड़ियों की चहचहाहट एवं पानी की कल-कल आवाज मन को अद्भुत आल्हाद प्रदान करती है। कहा जाता है कि प्रातःकालीन झरने से आने वाले गर्म पानी के उपयोग से तथा मंदिर की 108 प्रदक्षिणा देने से रोग निवारण होता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—क्षेत्र पर कुल 25 कमरे हैं, जिसमें 9 कमरे डीलक्स हैं, 3 हॉल हैं। भोजनशाला नियमित और सशुल्क है।

महुवा (विघ्नहर पार्श्वनाथ)

–ब्र.कु. आस्था जैन (संघस्थ)

मार्ग और अवस्थिति—'श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महुवा' सूरत जिले में वारडोली स्टेशन से 15 किमी. दूर पूर्णा नदी के तट पर अवस्थित है। यह क्षेत्र 'विघ्नहर श्री पार्श्वनाथ महुवा' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ जाने के लिए वारडोली, नवसारी और सूरत से बसें मिलती हैं। महुवा में पोस्ट ऑफिस, टेलीफोन भी है। एक महुवा भावनगर जिले में भी है किन्तु वहाँ कोई दिगम्बर जैन तीर्थ नहीं है।

अतिशय क्षेत्र—यहाँ भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के चमत्कारों के संबंध में बड़ी ख्याति है। कहते हैं, इस प्रतिमा के भावसहित दर्शन करने से आये हुए समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं। इसीलिए इसके दर्शन करने के लिए एवं मनौती मानने के लिए यहाँ जैनों के अतिरिक्त जैनेतर भी बड़ी संख्या में आते हैं।

इस मूर्ति के बारे में ऐसा कहा जाता है–एक बार महुआ के सेठ डायभाई और कायभाई दोनों भाइयों को स्वप्न आया। स्वप्न में उन्होंने पार्श्वनाथ की इस मूर्ति को देखा। कोई दिव्य पुरुष उन्हें प्रेरणा कर रहा था कि भगवान पार्श्वनाथ की उक्त मूर्ति सुल्तानाबाद (पश्चिम खानदेश) के तुलावगाँव भूमि के अंदर अमुक स्थान पर है। उस स्थान को खुदवाने का प्रबंध करें। प्रातःकाल उठने पर दोनों भाई आवश्यक कृत्यों से निवृत्त होकर देवदर्शन और पूजन को गये, वहाँ से लौटकर वे स्वप्न में देखे हुए तुलावगाँव में पहुँचे और स्वप्न में यथानिर्दिष्ट स्थान की खुदाई करायी। खुदाई कराने पर भगवान पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा निकली। उसे रथ में विराजमान करके महुवा लाये और वहाँ के चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर में भट्टारक श्री विद्यानंद जी द्वारा इसकी प्रतिष्ठा करायी गयी।

मूर्ति के प्रकट होने के संबंध में एक अन्य किंवदन्ती भी प्रचलित है। कहतेहैं सुल्तानाबाद गाँव का एक किसान खेत जोत रहा था। अकस्मात् उसका हल किसी ठोस वस्तु से रुक गया। तब उसने वहाँ खुदाई की तो यह मूर्ति प्रकट हुई। कुछ दिनों तक तो किसान ने प्रतिमा को एक झोंपड़ी में रखा। जब जैनों को ज्ञात हुआ तो वे उसे रथ में विराजमान करके ले चले। वह रथ यहाँ आकर ठहर गया। फलतः इस मंदिर के भूगर्भगृह में उस मूर्ति को विराजमान कर दिया गया।

विराजमान होते ही इस मूर्ति के चमत्कारों की ख्याति जनता में फैलने लगी। हर सम्प्रदाय और जाति के लोग उस ख्याति से आकर्षिक होकर पार्श्व प्रभु के चरणों में पहुँचने लगे। कहते हैं, जो व्यक्ति मन में कोई कामना लेकर भक्तिभाव के साथ पार्श्वनाथ के दरबार में जाता है, उसकी मनोकामना अवश्य पूरी होती है।

जिस प्रकार 30-40 वर्ष पूर्व श्री महावीर जी क्षेत्र पर भक्त मीणा और गूजर भक्ति में महावीर बाबा के लिए कढ़ी-चावल तक चढ़ाते थे, कुछ वैसा ही दृश्य यहाँ भी देखने को मिलता है। अनेक भक्तजन तो यहाँ बैंगन-जैसे फल और सब्जी तक चढ़ाते हैं। कुछ भक्तजन मनौती मानते हैं तो भगवान के लिए मंगल कलश और गाजे-बाजे के साथ चढ़ावा चढ़ाने आते हैं। उनकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसीलिए पार्श्वनाथ को ये निष्कपट अबोध भक्तजन संकल्प सिद्धि के देवता कहते हैं। जिन लोगों को पुत्र-प्राप्ति की कामना होती है, वे चाँदी का पालना चढ़ाते हैं, नेत्र-रोगी चाँदी के नेत्र, पंगु चाँदी की वैशाखी, इसी प्रकार अन्य रोगी चाँदी की कोई वस्तु स्वेच्छा से बनवाकर यहाँ चढ़ाते हैं। अनेक भक्तजन अपने आराध्य के लिए रुपये-पैसे भी चढ़ाते हैं। यहाँ सप्ताह में शनिवार और रविवार को विशेष भीड़ रहती है।

क्षेत्र का माहात्म्य—इस क्षेत्र की महिमा का वर्णन करते हुए ब्रह्म ज्ञानसागर जी ने 'सर्वतीर्थ वंदना' नामक अपनी रचना में बताया है कि इस क्षेत्र पर मुनिजनों का विहार होता था और मुनिजन यहाँ ठहरकर ग्रंथों का अभ्यास करते थे। उल्लेख इस प्रकार है—

''मधुकर नयर पवित्र यत्र श्रावक घन वासह।
मुनिवर करत बिहार बहुविध ग्रंथ अभ्यासह।
जिनवर धाम पवित्र भूमिगृह में जिन पासह।
.....।।
नामे नवनिधि संपजे सकल विघ्न भंजे सदा।
ब्रह्मज्ञानसागर वदति विघ्नहरो वंदूं मुदा।।69।।

लगता है, प्राचीनकाल में यह क्षेत्र विद्यारसिकों के लिए केन्द्र स्थान रहा है। यहीं पर बैठकर मूलसंघ सरस्वतीगच्छ के भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य भट्टारक वादिचन्द्र ने 'ज्ञानसूर्योदय' नाटक की रचना की थी। उन्होंने इस ग्रंथ की समाप्ति विक्रम सं. 1648 में की थी, जैसा कि इस नाटक के अंतिम श्लोक से ज्ञात होता है—

''वसु-वेद-रसाब्जके वर्षे माघे सिताष्टमी दिवसे।
श्रीमन्मधूकनगरे सिद्धोऽयं बोधसंरभः।।''

अर्थात्—मधूक नगर (महुवा) में सं. 1648 में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। इसी प्रकार कारंजा के सेनगणान्वयी लक्ष्मीसेन के शिष्य ब्रह्महर्ष ने भी 'महुवा विघ्न हरे सहु थेनं' कहकर महुआ के पार्श्वनाथ का उल्लेख किया है। यह उल्लेख उनकी 'पार्श्वनाथ जयमाला' का है।

भट्टारक ज्ञानसागर और वादिचन्द्र के उल्लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि महुआ का प्राचीन नाम मधुकर नगर या मधूकनगर था तथा यहाँ प्राचीन काल में जैनों की विशाल जनसंख्या थी। कहीं-कहीं इस **नर** का नाम मधुपुरी भी मिलता है।

मंदिर का विनाश—इस अतिशय क्षेत्र पर जाने क्या भयंकर भूल या अशुद्धि हुई, जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र को भीषण आग और बाढ़ की दुर्घटना का तीन बार शिकार होना पड़ा। प्रथम बार सन् 1929 में मंदिर के आसपास 10 घरों में भीषण अग्निकाण्ड हुआ। जिसमें मंदिर की ऊपर मंजिल का भाग अग्नि में भस्म हो गया। वहाँ भट्टारक-गद्दी और शास्त्र भंडार था। यहाँ उस समय दो मंदिर थे—चन्द्रप्रभ मंदिर और पार्श्वनाथ मंदिर। इन मंदिरों में लकड़ी पर दर्शनीय नक्काशी का काम था। किन्तु अधिकांश नष्ट हो गया। दूसरी बार सन् 1968 और तीसरी बार सन् 1970 में विनाशकारी बाढ़ के प्रकोप ने मंदिर को अपनी चपेट में ले लिया। दोनों ही बार मंदिर का अधिकांश भाग पानी में डूब गया। इससे मंदिर को बहुत क्षति पहुँची। तीन बार की इन दुर्घटनाओं में दोनों मंदिर धराशायी हो गये अथवा क्षतिग्रस्त हो गये किन्तु यह संयोग ही था कि किसी मूर्ति को कोई क्षति नहीं पहुँची और विघ्नहर पार्श्वनाथ की प्रतिमा एवं भोंयरा सुरक्षित रहे।

तब बम्बई, सूरत तथा अन्य स्थानों के जैन बंधुओं ने एकत्रित होकर मंदिर के पुनर्निर्माण का निश्चय किया। फलतः अब नवीन महत्त्वाकांक्षी योजना के अनुसार शिखरबंद मंदिर, धर्मशाला और स्वाध्याय मंदिर का निर्माण किया गया है।

क्षेत्र-दर्शन—मंदिर का निर्माणकार्य पूर्ण हो चुका है। चन्द्रप्रभ मंदिर की मूर्तियाँ एक कमरे में विराजमान कर दी गई हैं तथा विघ्नहर पार्श्वनाथ अपने मूल स्थान भोंयरे में ही विराजमान हैं। कुछ सीढ़ियाँ उतरकर भोंयरे में एक वेदी पर श्यामवर्ण की चार फुट ऊँची एवं सप्त फणवाली श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा की नाक और हाथ कुछ खण्डित हैं। बायीं ओर भगवान चन्दप्रभ की 2 फुट 2 इंच अवगाहना वाली श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् 1648 की प्रतिष्ठित है तथा दायीं ओर श्वेतवर्ण शांतिनाथ विराजमान हैं। अवगाहना आदि पूर्व प्रतिमा के समान है।

आगे की पंक्ति में भगवान महावीर की साढ़े सात इंच की तथा उसके इधर-उधर साढ़े पाँच इंच ऊँची पार्श्वनाथ की धातु प्रतिमाएँ हैं।

गर्भगृह को छड़दार किवाड़ों का अवरोध देकर सुरक्षित कर दिया गया है।

एक अन्य कमरे में 23 पाषाण प्रतिमाएँ तथा 29 धातु प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मूर्ति लेखों के अनुसार इनमें संवत् 1390, 1522, 1535, 1548, 1614, 1661, 1665, 1827 और 1911 की प्रतिमाएँ हैं। कुछ प्रतिमाओं के पीठासन पर लेख नहीं है। इनमें दो मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं—पहली है आदिनाथ भगवान की और दूसरी है पद्मावती की। साढ़े चार फुट ऊँचे एक शिलाफलक में भगवान आदिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है। छत्रवाला भाग खण्डित है। सिर के दोनों ओर गन्धर्वयुगल माला लिये हुए हैं। मुख्य मूर्ति के दोनों पार्श्वों में 11-11 पद्मासन मूर्तियाँ तथा चरणों से अधोभाग में खड्गासन मूर्तियाँ हैं। चरणों के दोनों ओर भक्त हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। इससे अधोभाग में बायीं ओर यक्ष तथा दायीं ओर यक्षी है। सिंहासन के सिंहों और गजों के मध्य में ललितासन में एक देवी बैठी है।

इस मूर्ति के पादपीठ पर कोई लेख अंकित नहीं है। किन्तु शैली के आधार पर यह 11-12वीं शताब्दी की अनुमानित की गई है। इनके दर्शन से विघ्न दूर होते हैं।

एक अन्य मूर्ति पद्मावती देवी की है जो संवत् 1827 की है। इसकी अवगाहना 2 फुट 1 इंच है। देवी के शीर्ष पर तीन फणों का मण्डप है। उसके ऊपर भगवान पार्श्वनाथ विराजमान हैं।

इस कमरे के निकट ही एक अन्य भोंयरे में भी कुछ मूर्तियाँ विराजमान हैं।

धर्मशाला—मंदिर के निकट धर्मशाला है। इसके अधिकांश भाग में मंदिरों का सामान रखा हुआ है, जिसमें लकड़ी के कुछ ऐसे खण्ड भी है, जिनके ऊपर लेख अंकित है। ये खण्ड इन लेखों के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण और बहुमूल्य कहे जा सकते हैं। इन्हें व्यवस्थित करके काँच के फ्रेम में रख देना चाहिए, जिससे कीड़ों आदि से इनकी रक्षा हो सके। शिलाओं, भित्तियों आदि पर उत्कीर्ण लेखों के समान ही इन दारु-लेखों का भी अपना ऐतिहासिक महत्व है।

धर्मशाला में बिजली की व्यवस्था है। मंदिर में कुआँ है, मंदिर के निकट पूर्णा नदी है। मंदिर का निर्माण पूर्ण होने के साथ धर्मशाला में यात्रियों के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—यहाँ पर 45 कमरे हैं जिसमें 30 कमरे डीलक्स हैं, 4 हॉल हैं। भोजनशाला, औषधालय एवं विद्यालय भी है।

अतिशय क्षेत्र कुण्डल (कलिकुण्ड पार्श्वनाथ)

–ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

मार्ग और अवस्थिति–श्री कलिकुण्ड पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कुण्डल महाराष्ट्र प्रान्त के सांगली जिले में तालुका तासगाँव में अवस्थित है। यह पूना-सतारा-मिरज रेलमार्ग पर किर्लोस्करबाड़ी से 3.5 किमी. है। यह क्षेत्र सड़क मार्ग से सांगली से 51 किमी., कराड़ से 29 किमी. तथा तासगाँव से भी 29 किमी. है। सभी स्थानों से यहाँ के लिए बस-सेवा चालू है। किर्लोस्करबाड़ी से क्षेत्र तक के लिए ताँगे भी मिलते हैं।

अतिशय क्षेत्र–प्राचीनकाल में इस नगर का नाम कौण्डिन्यपुर था। बाद में यह कुण्डल हो गया। कहते हैं, इस नगर का सत्येश्वर नामक एक राजा था, जो बहुत बीमार था। बहुत उपचार करने पर भी उसके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। वह मरणासन्न दशा तक पहुँच गया। उसकी रानी का नाम पद्मश्री था। उसने पत्थर जमा करके पार्श्वनाथ की मूर्ति तैयार करायी और बड़े भक्तिभाव से इसकी पूजा करने लगी। धीरे-धीरे राजा के स्वास्थ्य में सुधार होने लगा और वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया। इससे राजा और प्रजा सभी इस चमत्कारी मूर्ति के भक्त बन गये। यह तभी से अतिशय सम्पन्न मूर्ति मानी जाने लगी।

इस मूर्ति के अभिषेक के लिए जिस गाँव से दही आता था, उस गाँव का नाम दह्यारी पड़ गया, जिस गाँव से दूध आता था, उसका दुधारी, जिस गाँव से कुंभ (नारियल) आता था, उसका नाम कुम्भार और जिस गाँव से फल आते थे, उस गाँव का नाम पलस पड़ गया। ये गाँव अब भी विद्यमान हैं और क्षेत्र के निकट ही हैं।

इतिहास–प्राचीनकाल में कौण्डिन्यपुर (वर्तमान कुण्डल) करहाटक (वर्तमान कराड़) राज्य के अन्तर्गत था। उस समय करहाटक में शस्त्र-विद्या और शास्त्र-विद्या के शिक्षण के लिए विख्यात विश्वविद्यालय था। यहाँ उस समय प्रकाण्ड विद्वानों का वास था। विद्वानों को राज्याश्रय प्राप्त था। भारत के बड़े-बड़े विद्वान यहाँ आकर स्थानीय शास्त्रार्थ किया करते थे। उनकी जय-पराजय का निर्णय राज्यसभा में ही होता था। आचार्य समन्तभद्र भारतीय विद्वानों की अपनी दिग्विजय यात्रा में यहाँ भी पधारे थे और यहाँ के विद्वानों को वाद में जीता था।[1]

कुछ वर्ष पूर्व कुण्डल नगर के दसलाढ़ नामक एक व्यक्ति को अपने घर में खुदाई करने पर तीन ताम्र शासन पत्र प्राप्त हुए थे। इनका प्रकाशन दैनिक अकाल के 3-4-1955 के अंक में हुआ था। इनमें से प्रथम ताम्रपत्र राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय द्वारा दिये दान से संबंधित है। द्वितीय ताम्रपत्र में पुलकेशिन विजयादित्य द्वारा दिये दान शासन का उल्लेख है।

तृतीय ताम्रपत्र शक संवत् 1210 का है। इसमें बनवासी नगर के कदम्बवंशी मयूरवर्मन द्वारा दिये गये दान का उल्लेख मिलता है। इस दान पत्र से कई महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इसमें प्रारंभिक 5 श्लोकों में मंगलाचरण करने के पश्चात् बताया है-एक दिन कदम्बवंशी राजा कृतवर्मा दर्पण में अपना मुख देख रहे थे। सिर पर एक श्वेत केश को देखकर उनके मन में संसार और भोगों से विराग उत्पन्न हो गया। उसने अपने पुत्र मयूरवर्मा का अभिषेक करके उसे राज्य सौंप दिया और मुनि-दीक्षा ले ली।

क्षेत्र-दर्शन–कुण्डलनगर में एक मंदिर है। यह कलिकुण्ड पार्श्वनाथ मंदिर कहलाता है। इसके गर्भगृह में वेदी पर 5 फीट 4 इंच ऊँची भगवान पार्श्वनाथ की कृष्ण वर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। अभी कुछ वर्ष पूर्व मूर्ति पर लेप किया गया है। अतः लेख दब गया है। यह मूर्ति बालुकामय कहलाती है। वक्ष पर श्रीवत्स नहीं है। इसके पीछे दीवार में हाथ जोड़े हुए देवियाँ बनी हुई हैं। यही मूर्ति कलिकुण्ड पार्श्वनाथ कहलाती है। अनेक भक्तजन यहाँ मनौती मानने आते हैं।

1. श्रवणबेलगोला का शिलालेख नं. 54।

इस मूर्ति के सामने पार्श्वनाथ भगवान की एक और मूर्ति कृष्ण वर्ण की पद्मासन मुद्रा में आसीन हैं। इसकी अवगाहना 1 फुट 3 इंच है। यह सप्तफणमण्डित है। वक्ष पर श्रीवत्स नहीं है। पादपीठ पर सर्प का लांछन अंकित है। मूर्तिलेख के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् 964 में हुई थी।

इस वेदी पर विधिनायक पार्श्वनाथ की एक धातु-प्रतिमा संवत् 1936 की प्रतिष्ठित है। यहाँ धातु का एक शिखराकार चैत्य भी है।

दायीं ओर पद्मावती देवी की श्वेत मार्बल की मूर्ति है। वेदी के नीचे शिखराकृति बनी हुई है जिससे लगता है कि नीचे भोंयरा है।

गर्भगृह के बाहर सभामण्डप में दायीं ओर दीवार में धरणेन्द्र और बायीं ओर की दीवार में पद्मावती की मूर्तियाँ हैं। इन दोनों को अज्ञानतावश सिन्दूर पोत दिया गया है। धरणेन्द्र मुकुट, गलहार, जनेऊ, कड़ा और भुजबंद धारण किये हुए हैं। पद्मावती मुकुट और हार धारण किये हैं। दोनों के साथ सर्प बना है जिससे इनकी पहचान धरणेन्द्र और पद्मावती के रूप में की जाती है।

मंदिर के बाहर प्रांगण और एक लम्बा बरामदा है। यह यात्रियों के ठहरने के उद्देश्य से बनाया गया है। मंदिर के बाह्य परिक्रमापथ में एक शिलाफलक में तीर्थंकर मूर्ति बनी हुई है। इसमें एक ओर हाथ जोड़े हुए स्त्री बैठी है, दूसरे पार्श्व में एक पुरुष खड़ा है। संभवतः यह प्रतिष्ठाकारक दम्पती हैं। अधोभाग में एक-दूसरे के नीचे दो कोष्ठक बने हैं। संभवतः इनमें भरत-बाहुबली का युद्ध प्रदर्शित है।

विशेष जानकारी—इस क्षेत्र के बारे में कहा जाता है कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी का समवसरण यहाँ आया है। यहाँ पंचामृत अभिषेक की परम्परा हैं मंदिर जीर्णोद्धार व यात्रियों की सुविधा हेतु विकास योजनाएँ प्रगति पर हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—क्षेत्र पर मात्र 2 कमरे, 1 हॉल तथा 3 किमी. दूर किर्लोस्कर वाड़ी में कम्पनी का गेस्ट हॉउस है। धर्मशाला भी है।

श्री १००८ सहस्रफणी अतिशय क्षेत्र (बीजापुर)

बीजापुर अतिशय क्षेत्र कर्नाटक प्रांत के बीजापुर जिले में अवस्थित है। यह क्षेत्र बीजापुर रेलवे स्टेशन से 6 कि.मी. दूर तथा बस स्टैण्ड से 2 कि.मी. दूर है। रेल अथवा सड़क मार्ग से व्हाया सोलापुर होकर जा सकते हैं।

यहाँ भगवान पार्श्वनाथ की सातिशय प्रतिमा लगभग 1500 वर्ष प्राचीन है। 1008 सर्प फणों से सुशोभित होने के कारण यह प्रतिमा सहस्रफणी कहलाती है। हर फण भीतर से जुड़ा होने के कारण अभिषेक का जल या दूध हर फण से उतरते हुए मूर्ति को अभिषिक्त करता है। क्षेत्र पर मंदिर जीर्णोद्धार के साथ अनेक विकास योजनाएँ प्रगति पर हैं। यहाँ कई दर्शनीय स्थल हैं जिनमें गोल गुम्बज प्रमुख है।

वार्षिक मेला—क्षेत्र का वार्षिक मेला एवं विशेष आयोजन की तिथि पौष वदी एकादशी एवं श्रावण शुक्ला सप्तमी है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—क्षेत्र पर डीलक्स कमरे 20 हैं, साथ ही एक हाल भी है। भोजनशाला एवं पुस्तकालय भी है।

मक्सी पार्श्वनाथ

–पदम कुमार पाटोदी, मक्सी

मार्ग और अवस्थिति–श्री अतिशय क्षेत्र मक्सी पार्श्वनाथ सेण्ट्रल रेलवे की भोपाल-उज्जैन शाखा पर मक्सी नामक स्टेशन से लगभग तीन कि.मी. दूर है। स्टेशन से लगभग एक फर्लांग दूर दिगम्बर जैन धर्मशाला भी है। क्षेत्र पर दो मंदिर हैं। उज्जैन से यह क्षेत्र 36 कि.मी. है और इन्दौर से 72 कि.मी.। क्षेत्र के लिए उज्जैन, इन्दौर, शाजापुर से बराबर बसें मिलती हैं। यहाँ पोस्ट आफिस है। इसका जिला शाजापुर है। गाँव का नाम, जहाँ यह क्षेत्र है, कल्याणपुर है।

अतिशय–यह क्षेत्र भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा के अतिशयों के कारण अतिशय क्षेत्र कहलाता है। इस मूर्ति के विविध चमत्कारों की कथाएँ जनश्रुतियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। महमूद गजनवी ने भारत के विभिन्न भागों पर 1000 से 1027 तक अनेक बार आक्रमण किये। आक्रमण करने में उसका मुख्य ध्येय इस्लाम का प्रचार, भारतीयों को इस्लाम की दीक्षा देना, भारत के मंदिर और मूर्तियों का विनाश करना, यहाँ से धन लूटना और अपने साथ अधिक से अधिक हाथी और गुलामों को गजनी ले जाना था। वह जब देश को रौंदता हुआ और मंदिरों, मूर्तियों का भंजन करता हुआ मक्सी आया, उस समय रात्रि हो गयी थी। उसने सैनिकों को विश्राम करने की आज्ञा दी। प्रातःकाल होने पर पार्श्वनाथ की विख्यात मूर्ति और मंदिर को तोड़ने की उसकी योजना थी। किन्तु रात में वह भयानक रूप से बीमार पड़ गया। उसे अन्तः- अनुभव होने लगा कि यह यहाँ के पार्श्वनाथ का चमत्कार है। उसने फौज को आदेश दिया कि वे जैनियों के इस मंदिर और मूर्ति को कोई नुकसान न पहुँचावें। बल्कि उसने कृत्य के प्रायश्चित्तस्वरूप मंदिर के मुख्य द्वार पर ईरानी शैली के पाँच कँगूरे बनवा दिये, जिससे इस घटना की स्मृति सुरक्षित रह सके तथा अन्य कोई मुस्लिम आक्रान्ता इस पर आक्रमण न करे।

ये कंगूरे मंदिर के द्वार पर अब तक बने हुए हैं। लगता है कि उक्त घटना महमूद गजनवी की न होकर मालवा के किसी सुलतान की है क्योंकि महमूद मालवा में तो आ ही नहीं पाया था। सुलतान का क्या नाम था, यह तो ज्ञात नहीं हो सका किन्तु उपर्युक्त घटना में सत्य अवश्य मालूम पड़ता है।

एक और भी अनुश्रुति है। कुछ चोर ताला तोड़कर चोरी करने के इरादे से मंदिर में घुसे। वे माल-असबाब की गठरी बाँधकर चलने लगे लेकिन वे अन्धे हो गये। वे रात भर परिक्रमा में घूमते रहे, किन्तु मार्ग नहीं मिला। सुबह होने पर वे माल सहित पकड़े गये।

यह निश्चित है कि मक्सी के पार्श्वनाथ चमत्कारी हैं और यहाँ अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटित होती रहती हैं। इसलिए यहाँ के सम्बन्ध में अनके रहस्यपूर्ण किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी हैं। आज भी अनेक जैनेतर लोग भी यहाँ मनौती मानने आते हैं।

क्षेत्र का इतिहास–इस क्षेत्र का कोई प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। इसके संबंध में भी एक किंवदन्ती अवश्य प्रचलित है। प्राचीन काल में शाजापुर-उज्जैन मार्ग पर मक्सी गाँव में एक ब्राह्मण राहगीरों को पानी पिलाया करता था। एक रात में उसे स्वप्न में कोई दिव्य पुरुष कह रहा था–जहाँ तेरी प्याऊ है, उसके नीचे जमीन में भगवान हैं। उन्हें तू निकाल। दूसरे दिन उसने जमीन खोदी तो पार्श्वनाथ की मूर्ति निकली। ब्राह्मण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भगवान ने प्रकट होकर उसे दर्शन दिये हैं। उसने अपनी झोंपड़ी में मूर्ति विराजमान कर ली। वह भैरव मानकर इसकी पूजा करता था। इसके ऊपर तेल-सिन्दूर चढ़ाता। धीरे-धीरे लोगों को इसके बारे में पता चलता गया। लोग यहाँ आते, मनौती मानते।

एक बार एक दिगम्बर जैन श्रेष्ठी को किसी अपराध में कैद करके उज्जैन ले जाया गया। श्रेष्ठी का पुत्र अपने पिता से मिलने उज्जैन जा रहा था। मार्ग में मक्सी में वह उक्त ब्राह्मण की प्याऊ पर पानी पीने रूका। बातों-बातों

में उसे भैरव के चमत्कारों का पता चला। उसने भैरव जी के दर्शन किये और मनौती मानी, ''अगर मेरे पिता कैद से मुक्त हो जायेंगे तो मैं तुम्हारे लिए एक मंदिर बनवाऊँगा।'' मनौती मानकर वह चल दिया। उस रात को उज्जैन नरेश को स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्न में राजा को कोई आदेश दे रहा था–''तुम शाजापुर के श्रेष्ठी को अविलम्ब मुक्त कर दो।'' राजा ने प्रातःकाल होते ही श्रेष्ठी को मुक्त कर दिया। श्रेष्ठी का पुत्र उज्जैन पहुँचकर अपने पिता से मिला। वहाँ से दोनों पिता-पुत्र घर पहुँचे। रात को श्रेष्ठी पुत्र को स्वप्न में एक दिगम्बर मुनि के दर्शन हुए। वे श्रेष्ठीपुत्र से कह रहे थे–''तुम मक्सी में जिसे भैरव समझ रहे हो, वे तो भगवान पार्श्वनाथ हैं।'' श्रेष्ठी पुत्र प्रातः होते ही अपने इष्ट-मित्रों के साथ मक्सी पहुँचा। वहाँ देखा कि प्रतिमा का तेल-सिंदूर अपने आप साफ हो चुका है। अब भगवान पार्श्वनाथ की मनोज्ञ प्रतिमा वहाँ विराजमान थी। सबने भक्तिभाव से भगवान के दर्शन किये और उनकी पूजा की। श्रेष्ठी पुत्र ने मक्सी में एक विशाल मंदिर निर्माण कराया। उसमें पार्श्वनाथ प्रतिमा विराजमान कराकर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण किया।

इस किंवदन्ती में घटनामूलक परिचय तो है किन्तु मंदिर निर्माण के सम्बन्ध में विशेष कोई जानकारी नहीं मिलती। अन्य भी कोई स्रोत नहीं है, जिससे मंदिर-निर्माता का नाम और परिचय ज्ञात हो सके। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भगवान पार्श्वनाथ की यह मनोज्ञ प्रतिमा दिगम्बर परम्परा की है। इस मंदिर का निर्माण किसी अज्ञात दिगम्बर धर्मानुयायी ने कराया है। प्रारम्भ से इस मंदिर का स्वामित्व, व्यवस्था और अधिकार दिगम्बर समाज के अधीन रहा है। यहाँ के मंदिर, धर्मशाला, तालाब, बगीचा आदि का निर्माण दिगम्बर समाज ने कराया है। पहले यहाँ दिगम्बर समाज के लोगों की संख्या बहुत थी। किन्तु आजीविका और व्यापार की दृष्टि से अधिकांश दिगम्बर जैन अन्यत्र चले गये। अवसर पाकर यहाँ के ब्राह्मण पुजारियों ने मंदिर के पीछे देहरियों में महादेव, हनुमान, विष्णु एवं नवग्रह की मूर्तियाँ रख दीं। मुसलमानों ने मंदिर के पीछे बगीचे के पास अपनी कब्रें बना दीं। अव्यवस्था के इसी काल में श्वेताम्बरों ने अपनी विधि से पूजा करना और क्षेत्र की सम्पत्ति पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया।

इस अतिशय क्षेत्र का उल्लेख भट्टारक सुमतिसागर (सोलहवीं शताब्दी के मध्य में), भट्टारक ज्ञानसागर (सोलहवीं शताब्दी के अन्त में), भट्टारक जयसागर (सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध), भट्टारक ब्रह्महर्ष (सन् 1843-1866) ने अपनी रचनाओं में किया है। इनसे पूर्ववर्ती मदनकीर्ति और आचार्य जिनप्रभ सूरि ने 'शासन-चतुस्त्रिंशिका' तथा 'विविध-तीर्थकल्प' में इस क्षेत्र का कोई उल्लेख नहीं किया। ये दोनों विद्वान 13 वीं-14 वीं शताब्दी के हैं। इन दोनों ने ही तत्कालीन प्रसिद्ध तीर्थों के सम्बन्ध में परिचयात्मक प्रकाश डाला है, किन्तु मक्सी पार्श्वनाथ का उल्लेख तक नहीं किया। इससे लगता है कि इस क्षेत्र के अतिशयों की ख्याति इन विद्वानों के काल में नहीं हो पायी थी, जबकि इन दोनों ने ही मालवा के अभिनंदननाथ जिन की स्तुति की है और बताया है कि यवनों द्वारा यह प्रतिमा तोड़ी जाने पर वह पुनः जुड़ गयी और अवयवों सहित वह ठीक हो गयी। उसके पश्चात् उस प्रतिमा में अनेक चमत्कार प्रकट हुए। 'विविध-तीर्थकल्प' में तो अवन्तिदेश के इस अभिनंदननाथ जिन की घटना के सम्बन्ध में यह भी बताया है कि यह घटना मालवाधिपति जयसिंह देव के शासन-काल से कुछ वर्ष पूर्व में हुई थी।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मक्सी पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र की स्थापना 14 वीं शताब्दी के पश्चात् कभी हुई है। सम्भवतः पार्श्वनाथ की यह मूर्ति किसी मंदिर में थी। मंदिर को आक्रान्ताओं ने नष्ट कर दिया। 14 वीं-15 वीं शताब्दी में यह मूर्ति भूगर्भ से निकाली गयी है और मंदिर का निर्माण करके उसमें यह विराजमान की गयी। तब से इसके अतिशयों की प्रसिद्धि हुई और यह अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया। लेकिन सोलहवीं शताब्दी में यह क्षेत्र ख्याति के शिखर पर पहुँच चुका था। भट्टारक ज्ञानसागर ने इस क्षेत्र के संबंध में जैसी प्रशंसा की है, उससे इस धारणा की पुष्टि होती है। उन्होंने लिखा है–

''मालवा देश मझार नयर मगसी सुप्रसिद्धह।
महिमा मेरु समान निर्धनकूं धन दीधह।
मगसी पारसनाथ सकल संकट भयभंजन।
मनवांछित दातार विघनकोटि मद गंजन।
रोग शोक भय चोर रिपु तिस नामे दूर पले।
ब्रह्म ज्ञानसागर बदति मनवांछित सधलों फले।।

–सर्वतीर्थ वन्दना–24

इसमें ज्ञानसागर जी ने मक्सी के पार्श्वनाथ को समस्त संकटों को दूर करने वाला, मनोकामना पूर्ण करने वाला, विघ्नों का हर्ता, रोग-शोक, भय, चोर-शत्रु इनको दूर करने वाला बताया है। अवश्य ही भट्टारक जी के काल में मक्सी के पार्श्वनाथ की प्रसिद्धि इसी रूप में रही होगी।

अधिकार के लिए संघर्ष–यह मंदिर मूलतः दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का था और इसकी व्यवस्था आदि भी सदा से दिगम्बर जैन समाज की एक निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती थी। इसका निर्माण भी दिगम्बर जैन समाज ने केवल अपने द्रव्य से कराया था। मंदिर से संबंधित मकान, बगीचा आदि सभी चल-अचल सम्पत्ति दिगम्बर जैन समाज ने ही बनवायी थी। मंदिरों में जो मूर्तियाँ हैं, वे सभी दिगम्बर आम्नाय की हैं। यहाँ कभी-कभी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लोग भी दर्शनों के लिए आ जाते थे। भगवान के दर्शन-पूजन से किसी को वंचित न रखा जाये, इस नीति के अनुसार उस समय की प्रबन्ध समिति ने श्वेताम्बर लोगों का दर्शन-पूजन करने से कभी नहीं रोका।

पूजा के प्रश्न और सम्पत्ति की मालिकी को लेकर श्वेताम्बर समाज ने विवाद खड़ा कर दिया। जब विवाद किसी प्रकार समाप्त नहीं हुआ, तब केस अदालत में गया। तब अगस्त 1882 में पंचनामे द्वारा यह तय हुआ कि बड़े मंदिर में दोनों समाजों को अपनी-अपनी आम्नाय के अनुसार दर्शन-पूजन करने दिया जाये। फैसले में प्रातः 6 बजे से 9 बजे तक का समय पूजन के लिए दिगम्बर जैन समाज को दिया गया। उसके बाद का समय श्वेताम्बर समाज को दिया गया। दर्शन के लिए किसी के ऊपर समय का प्रतिबन्ध नहीं रखा गया। फैसले में बड़ा मंदिरश्वेताम्बर समाज के प्रबन्ध में दिया गया और छोटे मंदिर का प्रबन्ध दिगम्बर समाज के। तत्कालीन ग्वालियर महाराज का आदेश स्पष्ट है कि सुपुर्दगी का अर्थ मालिकी नहीं, केवल ट्रस्टीशिप है क्योंकि मंदिर की मालिकी देवता में निहित है। इनकी आय उनकी होगी, जिनके सुपुर्द यह है। किसी सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति, जो किसी मंदिर के दर्शन, पूजन को जाये, वह कोई नयी बात नहीं करेगा। दिगम्बर अपनी मान्यतानुसार बड़ी मूर्ति का अभिषेक, दर्शन और पूजन करते हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे।

इसके बाद सदा के लिए दोनों का विवाद समाप्त करने के लिए ग्वालियर महाराज ने बड़े मंदिर की सुपुर्दगी और व्यवस्था श्वेताम्बर समाज से लेकर दिनाँक 4-5-1921 की आज्ञा द्वारा पंचकमेटी के सुपुर्द कर दी। इस कमेटी में दो दिगम्बर, दो श्वेताम्बर और ग्वालियर हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को सम्मिलित किया गया। मुख्य न्यायाधीश की ओर से जिले का कलेक्टर नियुक्त किया गया।

सन् 1927 में ग्वालियर दरबार की आज्ञा से नियुक्त सुपरिण्टेण्डेण्ट ने श्वेताम्बर-दिगम्बर पंचों के सामने मंदिर की सब मूर्तियों का विवरण तैयार किया था। उसकी पुस्तिका भी बनकर प्रकाशित हुई थी। उसमें देवरियों की सभी मूर्तियाँ दिगम्बर बतलायी हैं।

कानून ने बहुत स्पष्ट निर्णय दिये हैं किन्तु श्वेताम्बर लोगों ने मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान् की दिगम्बर प्रतिमा को श्वेताम्बर आम्नाय की बनाने के कई बार प्रयत्न किये। इस बीच 42 दिगम्बर मूर्तियों पर नेत्र जड़ दिये गये हैं।

वर्तमान में स्थिति इस प्रकार है–

1. छोटे मंदिर और उसकी धर्मशाला पर दिगम्बर जैन समाज का पूर्ण अधिकार है। 2. बड़े मंदिर में प्रातः 6 बजे

से 9 बजे तक दिगम्बर समाज का कोई भी यात्री दिगम्बर आम्नाय के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक पूजा-प्रक्षाल कर सकता है। 3. दिगम्बर समाज को अधिकार है कि पूजा के समय मूलनायक श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति पर किसी तरह का शृंगार होवे तो उसे अलग कर देवे। 4. दिगम्बर यात्री जब भी दर्शन करना चाहें, उन्हें दर्शन करने से नहीं रोका जा सकता।

क्षेत्र दर्शन—श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मक्सी बस्ती के मध्य में अवस्थित है। यहाँ परकोटे के अंदर दो मंदिर और धर्मशालाएँ हैं। परकोटे के मुख्य द्वार से प्रवेश करने पर दायीं ओर बड़ा मंदिर (मुख्य मंदिर) है तथा बायीं ओर धर्मशाला बनी हुई है। मंदिर में प्रवेश करने पर सामने एक चबूतरे पर भगवान पार्श्वनाथ की कृष्ण वर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। मूर्ति की अवगाहना 3 फुट 6 इंच है। चबूतरा दो फुट ऊँचा है। मूर्ति के नीचे कोई पीठासन नहीं है। मूर्ति के सिरपर सप्त फणावली सुशोभित है। यह मूर्ति अत्यन्त सौम्य, शान्त एवं मनोज्ञ है। मुख पर सहज वीतरागता अंकित है। यह बलुआ पाषाण की है और इसके ऊपर ओपदार पालिश की हुई है। मूर्ति के दर्शन करने पर दृष्टि और मन उसी पर केन्द्रित हो जाते हैं और हृदय भक्ति के सरस भावों से परिपूर्ण हो आता है। यह प्रतिमा भगवान के उस वीतराग रूप की साक्षात् प्रतीक है, जब भगवान अन्तर्बाह्य परिग्रह से रहित होकर पद्मासन मुद्रा में ध्यानावस्थित थे। उनके नेत्र ध्यानावस्था में अर्धोन्मीलित थे, दृष्टि नासा के अग्रभाग पर स्थिर थी और परम शुक्ल ध्यान द्वारा घातिया कर्मों का नाश करके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्तसुखरूप अनन्त चतुष्टय प्राप्त कर अर्हंत परमेष्ठी हुए। अष्ट प्रातिहार्ययुक्त उसी अवस्था की यह मूर्ति है।

प्रतिमा की फणावली के दोनों पार्श्वों में दो गज हैं। उनमें नीचे दो पुरूष खड़े हैं। बायीं ओर के पुरूष के हाथ में माला है। दायीं ओर के पुरूष के हाथ में कुछ नहीं है। उनसे नीचे दोनों पार्श्वों में चमरवाहन नागेन्द्र खड़े हुए हैं। ये सभी काली पालिश से रंगे हुए हैं। इन्हें किन्हीं अनाड़ी हाथों ने गढ़ा है। लगता है भगवान् का यह सम्पूर्ण परिकर बाद में निर्मित हुआ है।

इस मूर्ति पर कोई लेख या लांछन नहीं है। सर्पफण-मण्डल के कारण पार्श्वनाथ की पहचान हो जाती है। जब यह प्रतिमा भूगर्भ से निकाली गयी, तब चरण चौकी भूगर्भ में ही दबी रह गयी। अतः यह किस काल में निर्मित हुई, इसका कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। लोग भक्तिवश इसे चतुर्थ काल अर्थात् ईसा पूर्व छटी-सातवीं शताब्दी की कहते हैं। पालिश के कारण इसके पाषाण की भी परीक्षा नहीं हो सकती। साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर देखें तो मदनकीर्ति यतिवर की 'शासनचतुस्त्रिंशिका' और 'विविधतीर्थकल्प' में या उनसे पूर्ववर्ती किसी ग्रन्थ में इस प्रतिमा की चर्चा नहीं मिलती। सम्भव है, यह परमार काल की रचना हो। यदि यह अनुमान सत्य हो तो यह स्वीकार करना होगा कि अपने प्रारम्भिक काल में यह विशेष प्रसिद्ध नहीं थी। मुस्लिम काल में इसका मंदिर तोड़ दिया गया या टूटकर गिर गया होगा और यह प्रतिमा मंदिर के अवशेषों में दब गयी होगी। जब भूगर्भ से निकालकर विराजमान किया गया, तब इसके चमत्कारों का सौरभ बिखरा।

मूल वेदी के दायें और बायें पार्श्व में एक-एक वेदी है, जो चबूतरेनुमा है। बायीं ओर की वेदी पर कृष्णवर्ण के पार्श्वनाथ विराजमान हैं। दायीं ओर की वेदी पर नेमिनाथ स्वामी की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूलतः प्रतिमा श्वेत पाषाण की है, किन्तु किन्हीं लोगों ने काला लेप लगाकर इसे कृष्ण वर्ण की बना दी है। इसके दोनों पार्श्वों में दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। ये सभी मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नाय की हैं। इस वेदी पर सप्त धातु की चन्द्रप्रभ स्वामी की एक प्रतिमा विराजमान है। उसका मूर्तिलेख निम्न भाँति पढ़ा गया है–

'विक्रम संवत् 1899 वर्षे मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे 11 बुधवारे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये....टीकमगढ़ निवासी चौधरी लक्ष्मणस्तस्य भ्राता.....प्राण सुखस्तेन प्रतिमेयं श्री क्षेत्र मक्सीमध्ये प्रतिष्ठिता'।

टीकमगढ़ निवासी चौधरी लक्ष्मणदास प्राणसुखदास ने यहाँ के छोटे मंदिर का निर्माण किया था और उसमें

मूलनायक सुपार्श्वनाथ विराजमान किये थे। इस पर भी वही लेख अंकित है। ये दिगम्बर धर्मानुयायी श्रावक थे। टीकमगढ़ में उनके वंशज अब तक विद्यमान हैं।

सभामण्डप में चक्रेश्वरी और पद्मावती की मूर्तियाँ हैं। चक्रेश्वरी की एक मूर्ति ताक में है। जिसके ऊपरी भाग पर आदिनाथ भगवान् की दिगम्बर प्रतिमा विराजमान है। इस मंदिर के सिरदल पर मध्य में नेमिनाथ तथा इधर-उधर खड्गासन दिगम्बर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

बड़े मंदिर की पलिमा (परिक्रमा) में 42 देहरियाँ (छोटे देवालय) बनी हुई हैं। इनमें 4 देहरियाँ खाली खड़ी हुई हैं। इनमें जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान हैं।

सेठ जीवराज पापड़ीवाल एक धर्मात्मा दिगम्बर श्रावक थे। उन्होंने विक्रम संवत् 1548 वैशाख सुदी 3 को सैकड़ों-हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठा करायी। प्रतिष्ठाचार्य थे भट्टारक जिनचन्द्र। उन्होंने मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराके गाड़ियों में उन्हें भरवाकर विभिन्न स्थानों के मंदिरों को भेज दिया। यही कारण है कि उत्तर भारत का शायद ही कोई मंदिर ऐसा होगा जिसमें जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति विराजमान न हो। प्रायः उनकी सभी मूर्तियों पर लेख रहता है। यह मूर्ति-लेख बहुधा निम्न प्रकार का या इससे मिलता-जुलता रहता है–

'संवत् 1548 वैशाख सुदि 3 श्रीमूलसंघे भट्टारक जिनचंद्रदेव साहु जीवराज पापड़ीवाल नित्यं प्रणमति सौख्यं शहर मुड़ासा श्री राजस्य सिंह रावल।'

भट्टारक जिनचंद्र दिगम्बर परम्परा में बलात्कारगण की दिल्ली-जयपुर शाखा के भट्टारक थे। वे भट्टारक शुभचंद्र (सं.1450-1507) के शिष्य थे। इनका भट्टारक काल संवत् 1507 से 1571 तक माना जाता है। आपने अपने जीवन काल में अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा करायी।

यहाँ की सभी देहरियों में सेठ जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान हैं। अतः ऐसा लगता है कि देहरियों की प्रतिष्ठा पापड़ीवाल ने ही करायी थी और इन प्रतिमाओं को यहाँ विराजमान किया था। यदि यह मान लिया जाये कि पापड़ीवाल ने देहरियों की प्रतिष्ठा नहीं करायी, तब भी यह तो स्वीकार करना होगा कि मूलतः यह मंदिर दिगम्बर परम्परा का था। इसलिए भी श्री पापड़ीवाल ने यहाँ मूर्तियाँ भिजवायीं क्योंकि उन्होंने किसी श्वेताम्बर मंदिर में मूर्तियाँ नहीं भिजवायी थीं।

देहरी नं. 39 में नन्दीश्वर द्वीप की रचना है। इसमें 52 प्रतिमाएँ हैं। इनमें 44 प्रतिमाएँ खड्गासन हैं, शेष पद्मासन हैं और दिगम्बर हैं। नन्दीश्वर द्वीप की यह रचना दिगम्बर परम्परा के अनुसार है। श्वेताम्बर परम्परा में तो इस प्रकार की नन्दीश्वर रचना कहीं नहीं मिलती।

बड़े मंदिर में एक शिलालेख (नं.1) है, जिसमें उल्लेख है कि इस मंदिर का निर्माण संग्रामसिंह सोनी ने संवत् 1472 में कराया जो माण्डवगढ़ के सुलतान महमूद खिलजी का खजांची था। मूर्ति की प्रतिष्ठा संवत् 1518 में की गयी। शिलालेख पर संवत् 1667 उत्कीर्ण है। किन्तु शिलालेख की लिपि के आधार पर यह शिलालेख अति आधुनिक प्रतीत होता है। प्राचीन संवत् डालकर नये शिलालेख बनवाने और उनसे अपने पक्ष की पुष्टि करने का इतिहास पुराना है।

बड़े मंदिर से दक्षिण की ओर इस अहाते में ऊँचे चबूतरे पर छोटा मंदिर है। यह सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर कहलाता है। इस मंदिर में गर्भालय तथा महामण्डप बना हुआ है। गर्भालय में भगवान् सुपार्श्वनाथ की कृष्ण वर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसकी अवगाहना 2 फुट 6 इंच है तथा इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1899 में हुई। प्रतिमा चौरस वेदी में विराजमान है। इस मंदिर और मूर्ति की प्रतिष्ठा टीकमगढ़ निवासी सेठ लक्ष्मणदास प्राणसुखदास ने करायी थी, जिन्होंने बड़े मंदिर की चन्द्रप्रभ भगवान् की धातु-मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी। सुपार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा के साथ ही चन्द्रप्रभ की भी प्रतिष्ठा हुई थी। उन्होंने एक मूर्ति छोटे मंदिर में मूलनायक के रूप में विराजमान कर दी

और धातु-मूर्ति बड़े मंदिर में। बड़ा मंदिर तब तक दिगम्बर परम्परा का मान्य मंदिर था और दिगम्बर समाज के ही अधिकार में था।

मूलनायक भगवान् सुपार्श्वनाथ के दोनों पार्श्वों में महावीर और सुपार्श्वनाथ की मूँगिया वर्ण की पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनकी अवगाहना 1 फुट 8 इंच है। इसके आगे की कटनी पर भ.पार्श्वनाथ की 1 फुट 4 इंच उन्नत संवत् 1548 की तथा भ.आदिनाथ की 1 फुट 2 इंच ऊँची लेखरहित तथा दो धातु मूर्तियाँ एक पार्श्वनाथ 2 फुट 2 इंच तथा चौबीसी 1 फुट 8 इंच विराजमान हैं।

महामण्डप में एक वेदी में भगवान् पार्श्वनाथ की कृष्ण पाषाण की 5 फुट उन्नत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह संवत् 2025 की प्रतिष्ठित है।

इस मंदिर के बराबर में एक छोटा मंदिर है। इसमें तीन दर की एक वेदी है। मध्य में भगवान् पार्श्वनाथ की कृष्ण पाषाण की पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1961 में हुई थी। इसके पार्श्व में बायीं ओर चन्द्रप्रभ और दायीं ओर पार्श्वनाथ की श्वेतवर्ण पाषाण पर पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। दोनों ही सेठ जीवराज पापड़ीवाल द्वारा संवत् 1548 में प्रतिष्ठित हुई थीं।

छोटे मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार के बगल में क्षेत्र का कार्यालय है। मंदिर के पृष्ठ भाग में धर्मशाला है। मंदिर के आगे चबूतरा है। उस पर क्षेत्र के दक्षिण की ओर सड़क के लिए द्वार बना हुआ है। क्षेत्र के अहाते से पृष्ठ भाग की सड़क मिली हुई है। क्षेत्र के पीछे तालाब बना हुआ है।

धर्मशाला—छोटे मंदिर के पृष्ठ भाग में धर्मशाला बनी हुई है। इसमें 11 कमरे हैं। रसोईघर, स्नान गृह, शौचालय, बगीचा ये सब धर्मशाला के पृष्ठ भाग में हैं। जल के लिए नल और कुआँ है। प्रकाश के लिए बिजली है। नगर में सभी आवश्यक वस्तुएँ मिल जाती हैं। बड़े मंदिर के प्रवेश द्वार के सामने भी एक धर्मशाला है।

क्षेत्र के अहाते से लगा हुआ एक अहाता और है जिसमें विश्रान्ति भवन बना हुआ है। इसके ऊपर के भाग में दिगम्बर जैन गुरुकुल है तथा नीचे का भाग यात्रियों के उपयोग के लिए है। यहाँ भी नल और बिजली की समुचित व्यवस्था है।

क्षेत्र पर स्थित संस्थाएँ—वर्तमान में क्षेत्र पर एक गुरुकुल चल रहा है, जिसका संचालन मालवा प्रान्तिक दिगम्बर जैन सभा बड़नगर द्वारा किया जाता है।

व्यवस्था—क्षेत्र की संपूर्ण व्यवस्था एक निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती है। यह समिति मध्यप्रदेशीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अधीन है।

वार्षिक मेला—इस क्षेत्र पर फाल्गुन शुक्ला 8 से 15 तक वार्षिक मेला होता है।

सन् 1974 के पश्चात्—मक्सी क्षेत्र पर चल रहे निर्माण कार्यों में ऊँचाईयाँ छूते-छूते शिखर व एक डोम बनकर तैयार हो गए हैं। भगवान पार्श्वनाथ की नवीन वेदी पर शिखर बन गया है। मूलनायक के सामने कोई मूर्ति नहीं होनी चाहिए, मूलनायक दबना नहीं चाहिए यह विचार दिगम्बर गुरुओं के संबोधन से दिगम्बर समाज के श्रेष्ठी वर्ग को समझ में आया तब फेरबदल करने का मन बनाकर एक उच्च शिखर और बनाया गया जहाँ पार्श्वनाथ जी को विराजमान किया जायेगा। भगवान सुपार्श्वनाथ के साक्षात् चमत्कार स्वरूप से चल रहा निर्माणकार्य बगैर विघ्न के निरंतर आगे बढ़ने लगा है। मंदिर सभा मण्डप को बड़ा बनाकर आकर्षक रूप दिया जा रहा है। मंदिर के बाहर एक परिक्रमा बनाई गई है, जो लाल पत्थरों की कलाकृति से सजाई जा रही है। प्रवेशद्वार के साथ दूर से भगवान सुपार्श्वनाथ के दर्शन अब हो सकेंगे।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—क्षेत्र पर कुल 15 कमरे हैं। जिसमें 3 डीलक्स कमरे हैं। भोजनशाला सशुल्क है। अनुरोध करने पर भोजन तैयार होता है। औषधालय गाँव के भीतर है। क्षेत्र पर गुरुकुल व पुस्तकालय भी है।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ

(भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ पुस्तक एवं मोहन जैन, धरणगाँव द्वारा प्रेषित लेख के आधार पर प्रस्तुत)

मार्ग और अवस्थिति–श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र 'अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ' महाराष्ट्र के अकोला जिले में सिरपुर गाँव में स्थित है। सिरपुर पहुँचने के लिए सबसे निकट का स्टेशन अकोला है जो बम्बई-नागपुर रेलवे मार्ग पर यहाँ से लगभग 70 किमी. दूर है। गाँव तक पक्की सड़क है और नियमित बस सेवा है। यहाँ आने के लिए अकोला की ओर से आने वालों को मालेगाँव आना पड़ता है। वहाँ से सिरपुर 6 किमी. है। नांदेड़ से वाशिम, वाशिम से मालेगाँव होकर भी आ सकते हैं। वाशिम स्टेशन सिरपुर से 30 किमी. खण्डवा–पूर्णा छोटी रेलवे लाइन पर है।

क्षेत्र का इतिहास–अतिशय क्षेत्र सिरपुर (श्रीपुर) और उसके अधिष्ठाता अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ भारत भर में प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र का इतिहास काफी प्राचीन है। कुछ लोगों की धारणा है कि इस क्षेत्र का निर्माण ऐल नरेश श्रीपाल ने कराया था। उनका आशय संभवतः क्षेत्र से नहीं, मंदिर से है। अर्थात् वर्तमान मंदिर राजा श्रीपाल ने निर्मित कराया होगा। किन्तु क्षेत्र के रूप में अन्तरिक्ष में विराजमान उस मूर्ति विशेष की और क्षेत्र की ख्याति तो इससे भी पूर्वकाल से थी। जैन साहित्य, ताम्रशासन और शिलालेखों में इसके संबंध में अनेक उल्लेख मिलते हैं। जैन कथा साहित्य के आधार पर तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि यह चमत्कारी प्रतिमा रामचन्द्र के काल में भी विद्यमान थी। विद्याधर नरेश खरदूषण ने इसकी स्थापना की थी। कथा इस प्रकार है–

लंकानरेश रावण की बहन चन्द्रनखा का विवाह खरदूषण विद्याधर नरेश के साथ हुआ था। खरदूषण जिनदर्शन किये बिना भोजन नहीं करता था। एक बार वन विहार करते हुए उसे प्यास लगी। किन्तु वहाँ आसपास में कोई जिनालय दिखाई नहीं पड़ रहा था। प्यास अधिक बढ़ने लगी। तब उसने बालुका की एक मूर्ति बनाकर उनका पूजन किया। पश्चात् उस मूर्ति को एक कुएँ में सुरक्षित रख दिया।

16वीं सदी के लक्ष्मण नामक एक कवि ने 'श्रीपुर पार्श्वनाथ विनती' में इस घटनाक्रम इस प्रकार पद्यमय चित्रण किया है–

''लंकानयरी रावण करे राज्य। चन्द्रनखा भगिनी भरतार।।1।।
खरदूषण विद्याधर धीर। जिनमुख अवलोकनव्रत धरे धीर।।2।।
वसंत मास आयो तिह काल। क्रीड़ा करन चाल्यो भूपाल।।3।।
लागी तृषा प्रतिमा नहिं संग। बालुतनू निर्मायो बिंब।।4।।
पूजि प्रतिमा जल लियो विश्राम। राख्यो बिंब कूपनि ठाम।।5।''

आचार्य लावण्यविजयजी आदि कई श्वेताम्बर आचार्यों ने भी पार्श्वनाथ के बिम्ब की स्थापना खरदूषण द्वारा की गई माना है। दूसरे आचार्यों के मतानुसार इस बिम्ब की स्थापना माली-सुमाली द्वारा हुई मानी जाती है।

जैन पुराणों में कई स्थानों पर श्रीपुर का नामोल्लेख मिलता है। चारुदत्त धनोपार्जन के लिए भ्रमण करता हुआ यहाँ आया था। इसका उल्लेख चारुदत्त चरित्र में आया है। कोटिभट श्रीपाल वत्सनगर (वाशिम, जिला अकोला) आया था, तब इस नगर के बाहर विद्या साधन करते हुए एक विद्याधर की सहायता उसने की थी।

सिरपुर (श्रीपुर) के पार्श्वनाथ की ख्याति पौराणिक युग के पश्चात् ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में भी रही है। प्राकृत निर्वाण-काण्ड में इस मूर्ति की वंदना करते हुए कहा गया है–'पासं सिरपुरि वंदमि' अर्थात् 'मैं श्रीपुर के पार्श्वनाथ की वंदना करता हूँ।' भट्टारक उदयकीर्ति कृत अपभ्रंश निर्वाण-भक्ति में इसी का अनुकरण करते हुए कहा है–'अरु वंदउँ सिरपुरि पासणाहु। जो अंतरिक्ख थिउ णाणलाहु।' प्राकृत निर्वाण भक्ति की अपेक्षा अपभ्रंश निर्वाण भक्ति में एक विशेषता है। इसमें श्रीपुर के जिन पार्श्वनाथ की वंदना की गई है, उनके संबंध में यह भी सूचित किया गया है कि वे पार्श्वनाथ अन्तरिक्ष में स्थित हैं।

इनके अतिरिक्त गुणकीर्ति, मेघराज, सुमतिसागर, ज्ञानसागर, जयसागर, चिमणा पण्डित, सोमसेन, हर्ष आदि कवियों ने तीर्थ वंदना के प्रसंग में विभिन्न भाषाओं में अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ का उल्लेख किया है। यतिवर मदनकीर्ति ने 'शासन चतुस्त्रिंशिका' में इस प्रतिमा के चमत्कार के संबंध में इस प्रकार बताया है–

''पत्रं यत्र विहायसि प्रविपुले स्थातुं क्षणं न क्षमं,
तत्रास्ते गुणरत्नरोहणगिरिर्यो देवदेवो महान्।
चित्रं नात्र करोति कस्य मनसो दृष्टः पुरे श्रीपुरे,
स श्रीपार्श्वजिनेश्वरो विजयते दिग्वाससां शासनम्।।''

अर्थात् जिस ऊँचे आकाश में एक पत्ता भी क्षण भर के लिए ठहरने में समर्थ नहीं है,उस आकाश में भगवान जिनेश्वर का गुणरत्न पर्वतरूपी भारी जिनबिम्ब स्थिर है। श्रीपुर नगर में दर्शन करने पर वे पार्श्वजिनेश्वर किसके मन को चकित नहीं करते?

इस प्रकार अनेक आचार्यों, भट्टारकों और कवियों ने श्रीपुर के अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की स्तुति की है और आकाश में अधर स्थिर रहने की चर्चा की है। कुछ शिलालेख और ताम्रशासन भी उपलब्ध हुए हैं, जिनमें इस क्षेत्र को भूमि दान करने का उल्लेख मिलता है। चालुक्यनरेश जयसिंह के ताम्रपत्रानुसार ई. सन् 488 में इस क्षेत्र को कुछ भूमि दान दी गई थी। एक अन्य लेख के अनुसार मुनि श्री विमलचन्द्राचार्य के उपदेश से (ई. सन् 776) पृथ्वी निर्गुन्दराज की पत्नी कुन्दाच्ची ने श्रीपुर के उत्तर में 'लोकतिलक' नामक मंदिर बनवाया था। इन्हीं विमलचन्द्राचार्य की प्रतिष्ठित कई छोटी-बड़ी मूर्तियाँ श्रीपुर में उपलब्ध होती हैं।

अकोला जिले के सन् 1911 के गजैटियर में यहाँ के संबंध में लिखा है कि आज जहाँ मूर्ति विराजमान है, उसी भोंयरे में वह मूर्ति संवत् 555 (ई. सन् 498) में वैशाख सुदी 11 को स्थापित की गई थी।

इसके विपरीत कुछ लोगों की मान्यता है कि ऐल नरेश श्रीपाल ने यह पार्श्वनाथ मंदिर बनवाया था। ऐल श्रीपाल के संबंध में एक रोचक किंवदन्ती भी प्रचलित है। जो इस प्रकार है–

ऐलिचपुर के नरेश ऐल श्रीपाल जिनधर्मपरायण राजा थे। अशुभोदय से उन्हें कुष्ठ रोग हो गया। उन्होंने अनेक उपचार कराये, किन्तु रोग शान्त होने के बजाय बढ़ता ही गया। एक बार वे अपनी रानी के साथ कहीं जा रहे थे। मार्ग में विश्राम के लिए वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। निकट ही एक कुआँ था। वे उस कुएँ पर गये। उन्होंने उसके जल से स्नान किया और उस जल को तृप्त होकर पिया। फिर वे रानी के साथ आगे चल दिये। दूसरे दिन रानी की दृष्टि में यह बात आयी कि रोग में पर्यान्त अन्तर है। रानी ने राजा से पूछा–''आपने कल भोजन में क्या-क्या लिया था?'' राजा ने उन व्यंजनों के नाम गिना दिये जो कल लिये थे। रानी कुछ देर सोचती रही, फिर उसने पूछा–''आपने स्नान कहाँ किया था?'' राजा ने उस कुएँ के बारे में बताया जहाँ कल स्नान किया था। रानी बोली–''महाराज! हमें लौटकर वहीं चलना है जहाँ आपने कल स्नान किया था। आपके रोग में सुधार देख रही हूँ। मुझे उस कुएँ के जल का ही यह चमत्कार प्रतीत होता है।''

राजा और रानी लौटकर कुएँ तक आये। उन्होंने वहीं अपना डेरा डाल दिया। कई दिन तक रहकर राजा ने उस कुएँ के जल से स्नान किया। इससे रोग बिल्कुल जाता रहा। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु वह उस कूप के संबंध में विचार करने लगा–क्या कारण है जो इस कूप-जल में इतना चमत्कार है। रात्रि में जब वह सो रहा था तब उसे स्वप्न दिखाई दिया और स्वप्न में पार्श्वनाथ की मूर्ति दिखाई दी। स्वप्न से जागृत होने पर उसने बड़े यत्नपूर्वक वह मूर्ति कुएँ से निकाली। प्रतिमा के दर्शन करते ही राजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। उसने बड़ी भक्ति के साथ भगवान की पूजा की। फिर स्वप्न में देवपुरुष द्वारा बतायी विधि के अनुसार घास की गाड़ी में उस प्रतिमा को रखकर चल दिया। उसकी इच्छा प्रतिमा को अपनी राजधानी ऐलिचपुर ले जाने की थी। वह कुछ ही दूर गया होगा कि उसके मनमें संदेह हुआ–गाड़ी हल्की क्यों

है? उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा, प्रतिमा सुरक्षित थी। वह गाड़ी लेकर फिर चला, किन्तु प्रतिमा नहीं चली, वह बहुत भारी हो गयी। तब राजा ने लाचार होकर मूर्ति वहाँ के (श्रीपुर) मंदिर के तोरण में विराजमान करा दी। पश्चात् मंदिर का निर्माण कराया। इस कार्य में भट्टारक रामसेन का पूरा सहयोग रहा। किसी कारणवश वहाँ की जनता रामसेन से इस मूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं कराना चाहती थी अतः रामसेन ने अधूरे मंदिर में ही प्रतिमा विराजमान करने का विचार किया किन्तु प्रतिमा वहाँ से हटी नहीं। तब रामसेन वहाँ से चले गये।

पश्चात् राजा ने पद्मप्रभमलधारी भट्टारक को बुलाया। उन्होंने अपनी भक्ति से धरणेन्द्र को प्रसन्न किया और धरणेन्द्र के आदेशानुसार प्रतिमा के चारों ओर से दीवारें बनवाकर मंदिर का निर्माण कराया।

इस प्रकार विद्याधर नरेश खरदूषण ने जिस प्रतिमा की स्थापना की थी, वह मूर्ति पहले कुएँ में निवास करती थी। ऐल श्रीपाल ने उसे कुएँ से निकाला और उसका देवालय बनवाया।

ये किंवदन्ती हैं। इससे मन को पूरा समाधान नहीं हो पाता, बल्कि मन में कुछ शंकाएँ भी उठ खड़ी होती हैं। जैसे– (1) खरदूषण मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के काल में हुआ है जो कि तीर्थंकर परम्परा में बीसवें तीर्थंकर हैं। खरदूषण ने उनकी प्रतिमा न बनाकर तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा क्यों बनायी? भविष्य में होने वाले पार्श्वनाथ तीर्थंकर की फणावलीयुक्त प्रतिमा की कल्पना उसने क्यों कर ली? (2) खरदूषण ने जिस प्रतिमा को कुएँ में विराजमान कर दिया था, उस प्रतिमा की ख्याति किस प्रकार हो गई? निर्वाणकाण्ड आदि से ज्ञात होता है कि राजा ऐल श्रीपाल से पूर्व भी श्रीपुर के पार्श्वनाथ की ख्याति थी और यह अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध था।

इन प्रश्नों का समाधान पाये बिना क्षेत्र का प्रामाणिक इतिहास खोजा नहीं जा सकेगा। क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन है, इसमें संदेह नहीं है। यदि हम प्राकृत निर्वाण-काण्ड में आये हुए 'पासं सिरपुरि वंदमि' समेत अतिशय क्षेत्रों संबंधी समस्त गाथाओं को बाद में की गई मिलावट भी मान लें, जैसी कि कुछ विद्वानों की धारणा है, तब भी क्षेत्र को प्राचीन सिद्ध करने वाले अन्य भी प्रमाण उपलब्ध हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, चालुक्य नरेश जयसिंह के वि. संवत् 545 (ई. सन् 488) के ताम्रशासनादेश द्वारा इस क्षेत्र को कुछ भूमि दान दी गई थी। अर्थात् ईसा की पाँचवीं शताब्दी में भी यह क्षेत्र प्रसिद्ध था।

आठवीं शताब्दी के आचार्य जिनसेन ने 'हरिवंशपुराण' में श्रीपुर आदि नगरों को दिव्य नगर माना है। बृहत् जैन शब्दार्णव, पृ. 317 के अनुसार 'इस मूर्ति की प्रतिष्ठा वि. संवत् 555 में हुई थी।'

सिरपुर के संदर्भ

Sirpur Inscription
(In Situ)

Shirpur is 37 miles from Akola. IN the temple of Antariksha Parswanath, belonging to the Digambar Jain Community, there is an abroded inscription in Sanskrit, which seems to be dated in Sambat 1334. But Mr. Consens believes that the temple was built at least a hundred years earlier. The name of Antariksha Parswanath with that of the builder of temple Jaysingh also occurs in the record."

- Consens Progress Reprot 1902, P.3

and Epigraphia Indomoslemanica, 1907-8, P.21

Inscriptions in the C.P. & Berar, by R.B. Hiralal, P. 389

-Central Provinces & Berar District Gazettier Akola District, Vol. VIII, by C. Brown I.C.S. & A. F. Nelson I.C.S.

ने भी संवत् 555 का समर्थ किया है।

भ्रान्त धारणाएँ– श्रीपुर के पार्श्वनाथ की मूर्ति अत्यन्त चमत्कारपूर्ण, प्रभावक और अद्‌भुत है। इसका सबसे अद्‌भुत चमत्कार यह है कि यह अन्तरिक्ष में अधर विराजमान है। कहते हैं, प्राचीन काल में यह अन्तरिक्ष में एक पुरुष से भी अधिक ऊँचाई पर अधर विराजमान थी। श्री जिनप्रभसूरि श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ कल्प में इस मूर्ति की ऊँचाई इतनी मानते हैं, जिसके नीचे से सिर पर घड़ा लिये हुए स्त्री आसानी से निकल जाये। उपदेश सप्तति में सोमर्ध गणी बताते हैं कि पहले यह प्रतिमा इतनी ऊँची थी कि घट पर घट धरे स्त्री इसके नीचे से निकल सकती थी। श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ छन्द में श्री लावण्य समय नीचे से एक घुड़सवार निकल सके इतनी ऊँचाई बताते हैं।

इस प्रकार की कल्पनाओं का क्या आधार रहा है, यह किसी आचार्य ने उल्लेख नहीं किया और दुर्भाग्य से ऐसे संदर्भ प्राप्त नहीं हैं जो उनकी धारणा या कल्पना का समर्थन कर सकें। श्रद्धा के अतिरेक में जनता में नाना प्रकार की कल्पनाएँ बनने लगती हैं। आचार्यों ने जैसा सुना, वैसा लिख दिया। उनके काल में मूर्ति भूमि से एक अंगुल ऊपर थी, आज भी वह अन्तरिक्ष में अधर स्थित है।

कहने का सारांश यह है कि जिसकी ख्याति हो जाती है, उसके संबंध में कुछ अतिशयोक्ति होना अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु उनके बारे में भ्रांति या विपर्यास होना खेदजनक है। इस क्षेत्र की अवस्थिति के बारे में भी कुछ भ्रान्तियाँ हो गई हैं। जैसे– श्रीपुर पार्श्वनाथ क्षेत्र कहाँ हैं, इस संबंध में कई प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित हैं। सुप्रसिद्ध जैन इतिहासवेत्ता पं. नाथूराम प्रेमी धारवाड़ जिले में स्थित शिरूर गाँव को श्रीपुर मानते हैं। इस स्थान पर शक संवत् 787 का एक शिलालेख भी उपलब्ध हुआ था। बर्गेस आदि पुरातत्त्ववेत्ता बेसिंग जिले के सिरपुर स्थान को प्रसिद्ध जैन तीर्थ मानते हैं तथा वहाँ प्राचीन पार्श्वनाथ मंदिर भी मानते हैं।

किन्तु हमारी विनम्र सम्मति में ये दोनों ही मान्यताएँ नाम-साम्य के कारण प्रचलित हुई हैं। श्वेताम्बर मुनि शीलविजयी (विक्रम सं. 1748) ने 'तीर्थमाला' नामक ग्रंथ में अपनी तीर्थ-यात्रा का विवरण दिया है। उस विवरण को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये, तो श्रीपुर के संबंध में कोई भ्रान्ति नहीं रह सकती। उन्होंने अपनी दक्षिण यात्रा का प्रारंभ नर्मदा नदी से किया था। सबसे प्रथम वे मानधाता गये। उसके बाद बुरहानपुर होते हुए देवलघाट चढ़कर बरार में प्रवेश करते हैं। वहाँ 'सिरपुर नगर अन्तरीक पास, अमीझरो वासिम सुविलास' कहकर अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ और वाशिम का वर्णन करते हैं। उसके बाद लूणारगाँव, ऐलिचपुर और कारंजा की यात्रा करते हैं।

इस यात्रा विवरण से इसमें संदेह का रंचमात्र भी स्थान नहीं रहता कि वर्तमान सिरपुर पार्श्वनाथ ही श्रीपुर पार्श्वनाथ है। वाशिम, लूणारगाँव, ऐलिचपुर और कारंजा इसी के निकट हैं। मुनि शीलविजयी ने सिरपुर पार्श्वनाथ को अंतरिक्ष में विराजमान पार्श्वनाथ लिखा है। वर्तमान सिरपुर पार्श्वनाथ तो अन्तरिक्ष कहलाता ही है और वस्तुतः यह प्रतिमा भूमि से एक अंगुल ऊपर अन्तरिक्ष में विराजमान है। जबकि धारवाड़ के शिरूर गाँव अथवा बेसिंग जिले के सिरपुर गाँव के पार्श्वनाथ मंदिर में जो पार्श्वनाथ-प्रतिमा हैं, वह न तो अन्तरिक्ष में स्थित है और न उन प्रतिमाओं को अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ ही कहा जाता है।

धारवाड़ (मैसूर प्रान्त) जिले के शिरूर के पक्ष में एक प्रमाण अभिलेख संबंधी दिया जाता है, वह एक ताम्रपत्र है, जिसके अनुसार शक संवत् 698 (ई.स. 776) में पश्चिमी गंगवंशी नरेश श्रीपुर द्वारा श्रीपुर के जैनमंदिर के लिए दान दिया गया। यह मंदिर निश्चय ही गंगवाड़ी प्रदेश में होगा। इसलिए धारवाड़ जिले के शिरूर गाँव को श्रीपुर मानने में कोई आपत्ति नहीं है। इस संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि विद्यानंद स्वामी ने जिस 'श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र' की रचना की है, वह श्रीपुर भी वर्तमान शिरूर गाँव ही हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि गंगवाड़ी का श्रीपुर (वह शिरूर हो अथवा अन्य कोई) प्राचीनकाल में अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान था और वहाँ कोई पार्श्वनाथ मंदिर था। उसकी ख्याति भी दूर-दूर तक थी। प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान आचार्य विद्यानंद गंगवंशी नरेश शिवमार द्वितीय (राज्यारोहण सन् 810, श्रीपुरुष के पुत्र) और राचमल्ल सत्यवाक्य (शिवमार का भतीजा,

राज्यारोहण-काल सन् 816) इन दोनों नरेशों के समकालीन थे। उनका कार्यक्षेत्र भी प्रायः गंगवाड़ी प्रदेश ही रहा है। श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र के रचयिता ये ही दार्शनिक आचार्य विद्यानंद है अथवा वादी विद्यानंद, यह अभी तक निर्णय नहीं हो पाया। यदि दार्शनिक आचार्य विद्यानंद इसके रचयिता सिद्ध हो जाते हैं तो कहना होगा कि श्रीपुर के उक्त पार्श्वनाथ मंदिर के साथ आचार्य विद्यानंद का भी संबंध था।

श्रीपुर (गंगवाड़ी) के इन पार्श्वनाथ के साथ एक और महत्वपूर्ण घटना का संबंध बताया जाता है। वह घटना है आचार्य पात्रकेशरी की। आचार्य पात्रकेशरी एक ब्राह्मण विद्वान थे। उनकी धारणा शक्ति इतनी प्रबल थी कि जिस ग्रंथ को वे दो बार पढ़ या सुन लेते थे, वह उन्हें कण्ठस्थ हो जाता था। एक दिन वे पार्श्वनाथ मंदिर में गये। वहाँ एक मुनि देवागम स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। उस स्तोत्र को सुनकर पात्रकेशरी बड़े प्रभावित हुए। स्तोत्र समाप्त होने पर पात्रकेशरी ने उन मुनिराज से स्तोत्र की व्याख्या करने के लिए कहा। मुनिराज सरल भाव से बोले-"मैं इतना विद्वान नहीं हूँ जो इस स्तोत्र की व्याख्या कर सकूँ।" तब पात्रकेशरी ने उनसे स्तोत्र का एक बार फिर पाठ करने का अनुरोध किया। मुनिराज ने उसका पुनः पाठ किया। सुनकर पात्रकेशरी को वह स्तोत्र कण्ठस्थ हो गया। वे घर जाकर उस पर विचार करने लगे, किन्तु अनुमान के विषय में उनके मन में कुछ संदेह बना रहा। वे विचार करते-करते सो गये। रात्रि में उन्हें स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्न में उनसे कोई कह रहा था-"तुम क्यों चिंतित हो। प्रातः पार्श्वनाथ के दर्शन करते समय तुम्हारा संदेह दूर हो जायेगा।" प्रातःकाल होने पर वे पार्श्वनाथ मंदिर में गये। वहाँ पार्श्वनाथ का दर्शन करते समय उन्हें फण पर एक श्लोक अंकित दिखाई दिया। श्लोक इस प्रकार था–

"अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।।"

श्लोक पढ़ते ही उनका संदेह जाता रहा। उनके मन में जैनधर्म के प्रति अगाध श्रद्धा के भाव उत्पन्न हो गये। वे विचार करने लगे-"मैंने अब तक अपना जीवन व्यर्थ ही नष्ट किया। मैं अब तक मिथ्यात्व के अंधकार में डूबा हुआ था। अब मेरे हृदय के चक्षु खुल गये हैं। मुझे अब एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना आत्मकल्याण के मार्ग में लग जाना चाहिए।" उन्होंने जिनेन्द्र प्रतिमा के समक्ष हृदय से जैनधर्म को अंगीकार किया और दिगम्बर मुनि-दीक्षा ले ली। वे जैन दार्शनिक परम्परा के जाज्वल्यमान रत्न बने। इस प्रकार पात्रकेशरी को श्रीपुर के पार्श्वनाथ के सम्मुख आत्म-बोध प्राप्त हुआ।

एक सम्पूर्ण कथन का सारांश यह है कि श्रीपुर नामक कई नगर थे। उन नगरों में पार्श्वनाथ मंदिर और पार्श्वनाथ-प्रतिमा की भी प्रसिद्धि थी। किन्तु इन सबमें अंतरिक्ष पार्श्वनाथ केवल एक ही थे और वे थे उस श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर) में, जो वर्तमान में अकोला जिले में स्थित है। आचार्य विद्यानंद अथवा पात्रकेशरी की घटना जिस श्रीपुर के पार्श्वनाथ मंदिर में घटित हुई, यह अवश्य अन्वेषणीय है। आचार्य पात्रकेशरी से संबंधित घटना अहिच्छत्र में घटित हुई, इस प्रकार के उल्लेख भी कई ग्रंथों और शिलालेखों में उपलब्ध होते हैं। आराधना कथाकोश-कथा 1 में उस घटना को अहिच्छत्र में घटित होना बताया है। इसलिए इस संबंध में भी विश्वासपूर्वक कहना कठिन है कि वस्तुतः यह घटना श्रीपुर में घटित हुई अथवा अहिच्छत्र में? यदि श्रीपुर में घटित हुई तो किस श्रीपुर में?

ऐल श्रीपाल कौन था?–ऐलवंशी नरेश श्रीपाल का कुष्ठ रोग अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ के माहात्म्य के कारण वहाँ के कुएँ के जल में स्नान करने से जाता रहा, इस प्रकार का उल्लेख हम इस लेख के प्रारंभ में कर चुके हैं। वह श्रीपाल कौन था? कुछ लोग इस श्रीपाल और पुराणों में वर्णित कोटिभट श्रीपाल को एक व्यक्ति मानते हैं जो मैना सुन्दरी का पति था, किन्तु यह मान्यता निराधार है और केवल नाम साम्य के कारण है। वस्तुतः कोटिभट श्रीपाल भगवान नेमिनाथ के तीर्थ में हुए हैं, जबकि ऐल-श्रीपाल का काल अनुमानतः दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इसी ऐल नरेश ने पार्श्वनाथ मंदिर बनवाया था। इस मंदिर में कई शिलालेख मिलते हैं। किन्तु उनमें जो अंश पढ़ा जा सका है, उसमें रामसेन, मल्लपद्मप्रभ, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ स्पष्ट पढ़े गये हैं। पवली मंदिर के द्वार के ललाट पर एक लेख इस प्रकार पढ़ा गया

है-'श्री दिगम्बर जैन मंदिर श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्य प्रतिष्ठित।'

इन लेखों में आचार्य रामसेन, आचार्य मलधारी पद्मप्रभ, आचार्य नेमिचन्द्र इन आचार्यों का नामोल्लेख है। ये सभी आचार्य समकालीन थे और इनके समय में ऐल श्रीपाल ऐलिचपुर का राजा था। वह राष्ट्रकूट नरेश इन्द्रराज तृतीय और चतुर्थ का सामन्त था। जिला वैतूल के खेरला गाँव से शक सं. 1079 और 1094 (क्रमशः ई.स. 1157 और 1172) के दो लेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें श्रीपाल की वंश-परम्परा में नृसिंह, बल्लाल और जैनपाल नाम दिये हुए हैं। खेरला गाँव राजा श्रीपाल के आधीन था। राजा श्रीपाल के साथ महमूद गजनवी (सन् 999 से 1027) के भानजे अब्दुल रहमान का भयानक युद्ध हुआ था। 'तवारीख-ए अमजदिया' नामक ग्रंथ के अनुसार यह सन् 1001 में ऐलिचपुर और खेरला के निकट हुआ था। अब्दुल रहमान का विवाह हो रहा था। वह नौशे का मौर बांधे हुए बैठा था।तभी युद्ध छिड़ गया। वह दूल्हे के वेष में ही लड़ा। इस युद्ध में दोनों मारे गये। यह स्थान अचलपुर-वैतूल रोड पर खरपी के निकट माना जाता है।

ऐल श्रीपाल जैनधर्म का कट्टर उपासक था। इसी कुएँ के जल से कुष्ठ रोग ठीक हो जाने पर उसने अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति कुएँ के जल से निकलवायी और मंदिर बनवाया। इसी ने ऐलोरा की विश्वविख्यात गुफाओं का निर्माण कराया था।

यह भी कहा जाता है कि इस राजा ने सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि पर भी मंदिर का निर्माण कराया था।

इस प्रकार अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ मंदिर निर्माता ऐल श्रीपाल था। उसने ऐलिचपुर, ऐलोरा आदि कई नगर अपने वंश-नाम पर बसाये।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है। जब ऐल श्रीपाल ऐलिचपुर में शासन कर रहा था, लगभग उसी के काल में आश्रमनगर में एक परमारवंशी श्रीपाल शासन कर रहा था। यह राजा भोज का संबंधी और सामन्त था, जबकि ऐल श्रीपाल राष्ट्रकूट नरेश इन्द्रराज का सामन्त था। आश्रमनगर के श्रीपाल के संबंध में ब्रह्मदेव सूरि कृत बृहद्द्रव्यसंग्रह-टीका के आद्यवाक्य में इस प्रकार परिचय दिया गया है–"अथ मालवदेशे धारा नाम नगराधिपतिराजभोजदेवाभिधान-कलिकालचक्रवर्तिसंबन्धिनः श्रीपालमहामण्डलेश्वरस्य.....।" इसमें श्रीपाल को भोजराज का संबंधी और महामण्डलेश्वर माना है और वह आश्रमपत्तन नगर का शासक बताया है। दोनों श्रीपालों का काल समान है, नाम समान है, सामन्त-पद भी समान है। अतः दोनों श्रीपालों के संबंध में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। किन्तु दोनों का वंश समान नहीं है, दोनों के स्वामी समान नहीं हैं। फिर विचार करने की बात यह है कि राजा भोज-जैसा अनुभवी शासक आश्रमपत्तन नगर (बूंदी जिला) का शासन ऐलिचपुर (अकोला जिला) में बैठे हुए व्यक्ति को क्यों सौंपेगा, जबकि ऐलिचपुर की अपेक्षा धारानगरी आश्रमपत्तन के अधिक निकट है। इसलिए नामसाम्य होने पर भी दोनों श्रीपाल भिन्न व्यक्ति हैं।

यहाँ एक बात अवश्य विचारणीय है। ब्रह्मदेव सूरि ने बृहद्द्रव्यसंग्रह की टीका के उत्थानिका वाक्य में यह सूचना दी है कि आश्रमपत्तन नगर में सोम श्रेष्ठी के अनुरोध पर नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव ने लघु द्रव्य-संग्रह रची और फिर तत्त्वज्ञान के विशद बोध के लिए बृहद्द्रव्य-संग्रह की रचना की। दूसरी ओर अंतरिक्ष पार्श्वनाथ मंदिर के द्वार के ऊपर अंकित लेख में 'श्री दिगम्बर जैन मंदिर श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्य प्रतिष्ठित' यह वाक्य दिया है। यद्यपि यह वाक्य अधिक प्राचीन नहीं लगता, किन्तु नेमिचन्द्राचार्य नाम से भ्रान्ति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इससे तो ऐसा आभास होता है कि आश्रमपत्तन नगर के शासक श्रीपाल और ऐलिचपुर के शासक श्रीपाल में अभिन्नता है तथा आश्रमपत्तन नगर में बैठकर जिन नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव ने द्रव्यसंग्रह की रचना की, उन्होंने ही अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा की।

किन्तु वस्तुतः नामसाम्य होने पर भी ये व्यक्ति अलग-अलग हैं क्योंकि धारानरेश भोज और ऐल श्रीपाल का समय भिन्न है। भोज ई. सन् 1000 में गद्दी पर बैठा और श्रीपाल की मृत्यु सन् 1001 में हो गयी। केवल एक वर्ष का ही काल दोनों का समान था। अतः इस एक वर्ष में श्रीपाल द्वारा मंदिर-निर्माण का कार्य संभव नहीं हो सकता।

मंदिर और मूर्ति दिगम्बर आम्नाय की हैं–पवली मंदिर, सिरपुर मंदिर, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति तथा अन्य सभी

मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नाय की हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। मंदिर का निर्माण दिगम्बर धर्मानुयायी ऐल श्रीपाल ने कराया, मूर्तियों के प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठाचार्य दिगम्बर धर्मानुयायी रहे हैं। मूर्तियों की वीतराग ध्यानावस्था दिगम्बर धर्मसम्मत और उसके अनुकूल है। इस मंदिर और मूर्तियों के ऊपर प्रारंभ से दिगम्बर समाज का अधिकार रहा है। इसके अतिरिक्त पुरातात्त्विक, साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्य भी मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र सम्पूर्णतः दिगम्बर धर्मानुयायियों का है।

श्वेताम्बर मुनि शीलविजयी ने 17वीं शताब्दी में दक्षिण के तीर्थों की यात्रा की थी। उन्होंने 'तीर्थमाला' नाम से अपनी यात्रा का विवरण भी पुस्तक के रूप में लिखा था। उसमें उन्होंने लिखा है कि यहाँ से समुद्र तक सर्वत्र दिगम्बर ही बसते हैं। इसके पश्चात् उन्होंने सिरपुर अन्तरिक्ष को दिगम्बर क्षेत्र लिखा है।

इससे पूर्व यतिवर्य मदनकीर्ति (ईसा की 13वीं शताब्दी) अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ को स्पष्ट ही दिगम्बरों के शासन की विजय करने वाला अर्थात् दिगम्बर धर्म की मूर्ति बता ही चुके थे।

यहाँ उत्खनन के फलस्वरूप जो पुरातत्त्व उपलब्ध हुआ है, उससे भी सिद्ध होता है कि ये मंदिर और मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नाय की हैं। प्रथम उत्खनन 1928 ई. में हुआ था। सिरपुर गाँव के बाहर पश्चिम दिशा की ओर पवली मंदिर है। मंदिर की दीवार के इर्द गिर्द पक्के फर्श के ऊपर 4-5 फुट मिट्टी चढ़ गई थी। उसे सन् 1967 में हटाया गया। फलतः मंदिरके तीन ओर दरवाजों के सामने 10×10 फुट के चबूतरे और सीढ़ियाँ निकलीं। इसके अतिरिक्त पाषाण की खड्गासन सर्वतोभद्रिका जिनप्रतिमा, जिनबिम्ब स्तंभ, एक शिलालेख युक्त स्तंभ और अन्य कई प्रतिमाएँ निकली हैं। गर्भगृह की बाह्य भित्तियाँ भी निकली हैं, जिनमें 18 इंच या इससे भी लम्बी, 9 इंच चौड़ी और 2फुट 3 इंच मोटी ईंटें लगी हुई हैं।

इसी प्रकार मंदिर के अंदर गर्भगृह के सामने पत्थर के चौके लगाने के लिए खुदाई की गई। खुदाई में दिनाँक 6-3-67 को 11 अखण्ड जैन मूर्तियाँ निकलीं। इनमें एक मूर्ति मूँगिया वर्ण की तथा शेष हरे पाषाण की हैं। सभी के पाद पीठ पर लेख उत्कीर्ण हैं। इन लेखों में आचार्य रामसेन, मलधारी पद्मप्रभ, नेमिचन्द्र आदि का नामोल्लेख मिलता है, जो दिगम्बर आचार्य थे। इन मूर्तियों, स्तंभों और लेखों में एक भी वस्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय से संबंधित नहीं है, सभी दिगम्बर मान्यता के अनुकूल हैं।

पुरातत्त्व-विभाग के पूर्वांचल की सर्वे रिपोर्ट (17-4-73) में लिखा है–सिरपुर का प्राचीन मंदिर अंतरिक्ष पार्श्वनाथ का है तथा वह दिगम्बर जैनों का है।

लिस्ट ऑफ प्रोटेक्टेड मौन्यूमेण्ट (List of Protected Monuments, inspected by the Govt. of India, correted on Sept. 1920**)**–यह सिरपुर गाँव के बाहर का अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ का मंदिर जैनों का है तथा पुरातत्त्व विभाग ने इसको संरक्षित करके अपने अधिकार में लिखा है और ता. 8 मार्च 1921 के करार के अनुसार दिगम्बरी लोग साधारण मरम्मत कर सकते हैं तथा विशेष मरम्मत सिर्फ सरकार ही करेगी।

इसके पश्चात् पुरातत्त्व विभाग भोपाल की ओर से दिनाँक 5-12-64 को दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के नाम एक महत्वपूर्ण पत्र आया। उसमें लिखा है–"सरकार की ओर से सिरपुर के पवली मंदिर की मरम्मत नहीं हो सकी क्योंकि पवली मंदिर सुरक्षित स्थानों की सूची में से निकाल दिया है। आप मालिक हैं। अब आप उचित मरम्मत करा सकते हैं।"

इस मंदिर के संबंध में इम्पीरियल गजेटीयर (आक्सफोर्ड) वाशिम डिस्ट्रिक्ट-भाग 7, पृ. 97 पर उल्लेख है कि अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ का प्राचीन मंदिर इस जिले में सबसे अधिक आकर्षक कलापूर्ण स्थान है। यह मंदिर दिगम्बर जैनों का है।

यहाँ खुदाई में जो मूर्तियाँ और स्तंभ निकले थे, उनके लेख इस प्रकार पढ़े गये हैं–

1. नेमिनाभ भगवान–अवगाहना 7 इंच, संवत् 1727 मार्गशीर्ष सुदी 3 शुक्ले श्री काष्ठासंघे माथुरगच्छे पुष्करगणे श्री लोहाचार्यान्वये भट्टारकश्रीलक्ष्मीसेनाम्नाये भट्टारकश्रीगुणभद्रोपदेशात्.....ज्ञातीय इक्ष्वाकुवंशे उपरोत पाबायक गोत्रे स.क तस्यात्मज स.वासुदेव तस्यात्मज.....इदं बिम्बं प्रणमति।

2. भगवान पार्श्वनाथ–अवगाहना 7 इंच, संवत् 1754 वैशाख सुदी 13 शुक्रवार काष्ठासंघे.....प्रतिष्ठा।

3. भागवान पार्श्वनाथ–अवगाहना 8 इंच। शके 1591 फाल्गुण सुदी द्वितीया सेनगणे भ. सोमसेन उपदेशात् श्रीपुर नगरे प्रतिष्ठा।

4. भगवान पार्श्वनाथ–अवगाहना 9 इंच। स्वस्ति श्री संवत् 1811 माघ शुक्ला 10 श्री कुन्दकुन्दाम्नाये गुरु ज्ञानसेन उपदेशात् आदिनाथ तत्पुत्र पासोवा सडतवाल (पुत्र) कृपाल जन्मनिमित्ते श्रीपुर नगरे अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ पवली जिनालय जीर्णोद्धार कृत्य प्रतिष्ठितमिदं बिम्बं।

5. पाषाण स्तंभ–श्री अन्तरिक्ष नमः गुरु कुन्दकुन्द नमः संवत् 1811 माघ सुदी 10 आदिनाथ पुत्र पासोवा सडतवाल.....पुत्र कृपाला जमे देंऊल उद्धार केले।

इन मूर्ति लेखों से भी यह स्पष्ट है कि ये मूर्तियाँ और जिनालय दिगम्बर सम्प्रदाय के हैं। इनके निर्माता, प्रतिष्ठापक, प्रतिष्ठाचार्य आदि सभी दिगम्बरी थे।

क्षेत्र-दर्शन

पवली का दिगम्बर जैन मंदिर–सिरपुर गाँव के बाहर अति प्राचीन हेमाड़पंथी शैली का दिगम्बर जैन मंदिर है। यहीं पर राजा ऐल श्रीपाल का कुष्ठ रोग यहाँ के कुएँ के जल में स्नान करने से ठीक हुआ था। इस कुएँ में से ही उसने अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति निकाली थी और उसने यहीं पर मंदिर का निर्माण कराया था। पवली का यह मंदिर ऐल श्रीपाल द्वारा बनवाया हुआ है। कहा जाता है कि इस मंदिर के शिखर में ऐसी ईंटों का प्रयोग किया गया था, जो जल में तैरती हैं। यद्यपि इन ईंटों का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है, अधिकांशतः पाषाण का प्रयोग हुआ है। यह मंदिर अष्टकोण आकार का है और अत्यन्त कलापूर्ण है। इस पाषाण मंदिर के नीचे ईंटों का चबूतरा बना। ये ईंटें भी आकार में बड़ी और अधिक प्राचीन हैं। लगता है, वर्तमान पाषाण मंदिर के निर्माण के पहले यहाँ ईंटों का कोई प्राचीन मंदिर था।

मराठी भाषा में पोल शब्द का अर्थ है मिट्टी गारे की सहायता के बिना बनायी गयी पत्थर की दीवार। लगता है इस पोल शब्द से ही अपभ्रंश होकर पवली शब्द बन गया और वह मंदिर का ही नाम हो गया। यह मंदिर गाँव के बाहर पश्चिम की ओर वृक्षों की पंक्ति के मध्य खड़ा हुआ है। इस मंदिर में पूर्व, उत्तर और दक्षिण की ओर पत्थर के द्वार बने हुए हैं। द्वार के सिरदल पर पद्मासन दिगम्बर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसी प्रकार द्वारों के दोनोंओर खड्गासन दिगम्बर जैन मूर्तियाँ और आम्रपत्रों से वेष्टित कलशों का अंकन बड़ा भव्य प्रतीत होता है। दक्षिण द्वार पर तीर्थंकरों के जीवन से संबंधित अत्यन्त कलापूर्ण चित्रांकन है। पूर्व के द्वार पर तीन-तीन पंक्तियों के दो शिलालेख हैं जिन्हें इस प्रकार पढ़ा जा सकता है–

ऊपर का शिलालेख–शाक 909....पंच.....मूलसंघे.....(बलात्कार) भट्टारक श्री.....जि....न....रा (ज्ञी) रा (जा) मति श्री भूपालभूप श्री पार्श्वनाथ बिं.....(राष्ट्रकूटसंघ).....श्री जे (जि) न.....(प्र) तिष्ठित.....(इन्द्र) राज (हने) श्रीपाल इह श्रीरायतनं।

दूसरा शिलालेख–।।स.....1338 वैशाख सुदि श्री मालवस्थ ठः रामल पौत्र ठः भोज पुत्र अमर (कुल) समुत्पन्न संघपति ठः श्री जगसिंहेन अन्तरिक्ष श्री पार्श्व (ना) थ निजकुल (उद्धारक) षटवड वंश.....राज.....।

गर्भगृह में भगवान पार्श्वनाथ की 3 फीट 6 इंच उत्तुंग संवत् 1457 में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। शीर्ष पर 9 फण सुशोभित हैं। वक्ष पर श्रीवत्स अंकित है। कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। इस वेदी पर पाषाण की 32 और धातु की 4 मूर्तियाँ हैं।

गर्भगृह के द्वार पर अर्हन्त और देव-देवियों की प्रतिमा बनी हुई हैं। द्वार अलंकृत है। गर्भगृह के आगे दालान बना हुआ है। बायीं ओर 2 फुट 2 इंच ऊँचे एक पाषाण फलक में अर्धपद्मासन दिगम्बर प्रतिमा बनी हुई है। परिकर में भामण्डल, छत्र और कोनों में पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। अधोभाग में खड्गासन दिगम्बर मूर्तियाँ हैं।

इस वेदी से आगे बायीं ओर एक वेदी में 1 फुट 6 इंच ऊँचे फलक में भगवान महावीर की अर्ध पद्मासन मूर्ति है।

इससे आगे 2 फीट 6 इंच ऊँचे फलक में पार्श्वनाथ की प्रतिमा उत्कीर्ण है। ये तीनों मूर्तियाँ प्राचीन हैं।

दालान में दायीं ओर 2 फीट 2 इंच ऊँचे शिलाफलक में अर्ध पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। सिर के पृष्ठ भाग में भामण्डल और उपरिभाग में छत्र की संयोजना है। ऊपर दोनों कोनों पर दो पद्मासन और नीचे दो खड्गासन मूर्तियों का अंकन है। इससे आगे बढ़ने पर दूसरी वेदी में श्वेत पाषाण की चन्द्रप्रभ भगवान की पद्मासन मूर्ति है। इसकी अवगाहना 1 फुट 5 इंच है और वीर संवत् 2496 में प्रतिष्ठित हुई है। इस वेदी से आगे बढ़ने पर तीसरी वेदी में 2 फीट 7 इंच ऊँचे एक शिलाफलक में संवत् 1545 की पार्श्वनाथ मूर्ति है। यह श्यामवर्ण है और पद्मासन है। इसके परिकर में गजारूढ़ इन्द्र तथा दोनों पार्श्वों में पार्श्वनाथ के सेवक यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती हैं। नीचे चरणचौकी पर गज बने हुए हैं, जो इन्द्र के ऐरावत गज के प्रतीक हैं। मध्य में धरणेन्द्र उत्कीर्ण हैं।

गर्भगृह के सामने चार स्तंभों पर आधारित खेलामण्डप बना हुआ है। स्तंभों पर तीर्थंकरों, मुनियों और भक्ति-नृत्य में लीन भक्तों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मण्डप के मध्य में गोलाकार चबूतरा बना हुआ है। जो संभवतः पूजा, मण्डल विधान के प्रयोजन से बनाया गया है।

यह मंदिर पूर्वाभिमुखी है। उत्तर और दक्षिण द्वारों के आगे अर्धमण्डप बने हुए हैं। दक्षिण द्वार पर दो चैत्यस्तंभ रखे हुए हैं, जिनमें सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ हैं। पूर्व द्वार के आगे का अर्धमण्डप गिर गया है। यह मंदिर अठकोण बना हुआ है। इसकी रचना शैली अत्यन्त आकर्षक है।

मंदिर के आगे बायीं ओर चबूतरे पर भट्टारक शान्तिसेन, भट्टारक जिनसेन और भट्टारकों के शिष्यों की समाधियाँ बनी हुई हैं।

इस मंदिर के सामने एक और जिनालय है। इसमें प्रवेश करने पर बायीं ओर 2 फीट 5 इंच उत्तुंग पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण पद्मासन मूर्ति है जो वीर संवत् 2496 की प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति में फण की संयोजना नहीं की गई, पाद पीठ पर सर्प का लांछन बना हुआ है। इसकी बायीं ओर 5 फीट 9 इंच उत्तुंग पंच फणावलिमण्डित श्यामवर्ण सुपार्श्वनाथ की खड्गासन प्राचीन मूर्ति है तथा दायीं ओर 5 फीट 6 इंच उन्नत नौ फण विभूषित पार्श्वनाथ की खड्गासन प्राचीन मूर्ति है। इस मूर्ति के सिर पर जटाएँ अंकित हैं।

इससे बायीं ओर बढ़ने पर पार्श्वनाथ की 3 फुट 5 इंच ऊँची श्याम वर्ण की खड्गासन मूर्ति है। इसके सिर पर सप्तफण मण्डप है। इसके आगे बायीं ओर बढ़ने पर 3 फीट 4 इंच ऊँचे फलक में मध्य में खड्गासन और ऊपर-नीचे दो-दो पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ये मूर्तियाँ यहीं उत्खनन में निकली थीं।

यहाँ मंदिर के बाहर अहाते में 18 प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं। ये सभी खण्डित हैं। ये मूर्तियाँ इसी मंदिर से खुदाई में निकली थीं। यहाँ एक कुआँ हैं। इसके जल में कुष्ठ रोग, उदर रोग आदि ठीक हो जाते हैं, ऐसा कहा जाता है।

मंदिर के पास धर्मशाला बनी हुई है जिसमें पाँच कमरे हैं। संवत् 2026 में यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी।

पवली मंदिर के निकट एक जिनालय बना हुआ है। इसमें केवल गर्भगृह है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ की 4 फीट 5 इंच ऊँची 9 फणवाली पद्मासन मूर्ति विराजमान है। मंदिर का द्वार पूर्वाभिमुखी है।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ मंदिर—इस मंदिर के संबंध में यह अनुश्रुति है कि ऐल श्रीपाल ने अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा इस मंदिर में नहीं करायी थी, बल्कि पवली के दिगम्बर जैन मंदिर में करायी थी। मुस्लिम काल में, जब मूर्तियों का व्यापक विनाश किया जा रहा था, तब अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति की सुरक्षा के लिए पवली के मंदिर से सिरपुर के इस मंदिर में लाकर भोंयरे में विराजमान कर दिया गया था। पवली मंदिर की खण्डित मूर्तियों को देखने से इस अनुश्रुति में सार दिखाई देता है। किन्तु यह मूर्ति किस संवत् में पवली के मंदिर से लाकर यहाँ विराजमान की गई, यह ज्ञात नहीं होता। इस संबंध में हमारी धारणा इससे भिन्न है। हमारी विनम्र मान्यता है कि ऐल श्रीपाल ने ही सिरपुर के जिनालय का निर्माण कराया था और पवली के कुएँ से मूर्ति को निकालकर और यहाँ लाकर भूगर्भगृह में विराजमान

किया था। ऐल श्रीपाल के संबंध में पूर्व में जिस किंवदन्ती का उल्लेख किया गया है, उसमें भी यह बताया गया है कि ऐल श्रीपाल घास की गाड़ी में मूर्ति को कुछ दूर ले गया। जब उसने पीछे मुड़कर देखा तो मूर्ति वहीं अचल हो गयी। इस अनुश्रुति से भी हमारी धारणा की पुष्टि होती है। हमें लगता है, जहाँ पवली मंदिर है, पहले उस स्थान पर कोई मंदिर था। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति उसमें विराजमान थी। वह मंदिर किसी कारणवश नष्ट हो गया या किसी आततायी ने नष्ट कर दिया। उस काल में मूर्ति को बचाने के उद्देश्य से मूर्ति को कुएँ में छिपा दिया। ऐल श्रीपाल ने उस मूर्ति को कुएँ से निकाला और उसे लेकर चला। किन्तु सिरपुर में आकर मूर्ति अचल हो गयी, तब उसने मूर्ति के ऊपर ही मंदिर का निर्माण कराया। हमारी यह धारणा अधिक तर्कसंगत और स्थिति के अनुकूल लगती है। इस स्थिति में यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि तब पवली मंदिर किसने बनवाया? हमारी मान्यता है कि पवली मंदिर भी ऐल श्रीपाल ने ही बनवाया। जहाँ उसने कुएँ से मूर्ति निकालकर रखी, उसी स्थान पर स्मृति के रूप में उसने मंदिर बनवाया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ऐल श्रीपाल कट्टर दिगम्बर धर्मानुयायी था। उसने वाशिम, मुक्तागिरि, ऐलौरा आदि कई स्थानों पर दिगम्बर जिनालयों का निर्माण कराया था। अतः पवली और सिरपुर के जिनालय मूलतः दिगम्बर जिनालय थे और हैं। उसने जिन रामसेन, मलधारी पद्मप्रभ और नेमिचन्द्र से प्रतिष्ठा करायी थी, वे भी दिगम्बर जैन भट्टारक थे और उन्होंने दिगम्बर विधि से प्रतिष्ठा की। अस्तु।

यह मंदिर गाँव के मध्य में गली में है। मंदिर का प्रवेश-द्वार छोटा है। उसमें झुककर ही प्रवेश किया जा सकता है। प्रवेश करने पर एक छोटा प्रांगण मिलता है। उसके तीन ओर बरामदे हैं। यहीं दिगम्बर जैन गद्दी (कार्यालय) है तथा तिजोड़ी आदि रहती है। इस प्रांगण में ऊपर से ही अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ के दर्शन के लिए एक झरोखा बना हुआ है। इस झरोखे में से मूर्ति के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

आँगन में से ही तलघर (भोंयरे) में जाने के लिए सोपान-मार्ग बना हुआ है। तलघर में भगवान पार्श्वनाथ की 3 फीट 8 इंच ऊँची और 2 फीट 8 इंच चौड़ी कृष्ण वर्ण अर्धपद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति अत्यन्त अतिशयसम्पन्न और मनोज्ञ है। इसके शीर्ष पर सप्तफणावलि सुशोभित है। कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन है। सिर के पीछे भामण्डल है तथा सिर के ऊपर छत्र शोभायमान है। यह मूर्ति भूमि से कुछ ऊपर अधर में स्थित है। नीचे और पीछे कोई आधार नहीं है। केवल बायीं ओर मूर्ति का अंगुलभर भाग भूमि को स्पर्श करता है। नीचे से रूमाल निकल जाता है, केवल इस थोड़े से भाग में आकर अड़ जाता है।

मूलनायक के आगे विधिनायक पार्श्वनाथ की छह इंच अवगाहना वाली लघु पाषाण प्रतिमा विराजमान है। दोनों ही मूर्तियों के ऊपर लेख नहीं है।

दायीं ओर एक दीवार-वेदी में मध्य में महावीर स्वामी की 1 फुट 7 इंच उन्नत श्वेत खड्गासन प्रतिमा है। इसके बायीं ओर पार्श्वनाथ की 1 फुट 4 इंच ऊँची श्वेत पद्मासन और दायीं ओर शांतिनाथ की 1 फुट 2 इंच ऊंची संवत् 1548 की प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण की पद्मासन प्रतिमा है।

मूलनायक के बायें पार्श्व में नेमिनाथ की संवत् 1564 में प्रतिष्ठित 1 फुट समुन्नत श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। इससे आगे बढ़ने पर मुनिसुव्रतनाथ की संवत् 1548 की 1 फुट 1 इंच ऊँची श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। फिर अरनाथ की संवत् 1548 में प्रतिष्ठित 1 फुट 2 इंच ऊँची श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। इससे आगे संवत् 1548 में प्रतिष्ठित 1 फुट 4 इंच ऊँची आदिनाथ भगवान की श्वेत पद्मासन मूर्ति है। इनसे ऊपर दीवार-वेदी में संवत् 1561 में प्रतिष्ठित और 1 फीट 7 इंच उन्नत श्वेत वर्ण ऋषभदेव पद्मासन मुद्रा में आसीन हैं। इसके दोनों पार्श्वों में श्याम वर्ण तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। इनमें से काले पाषाण की एक मूर्ति आदिनाथ की है। यह 7 इंच ऊँची है और इसका प्रतिष्ठाकाल संवत् 1946 है। दूसरी मूर्ति अनन्तनाथ की है। यह 10 इंच ऊंची और अति प्राचीन है। इस पर ब्राह्मी लिपि में दो पंक्तियों का लेख है। इनके बगल में 3 पाषाण चरण बने हुए हैं, जिनमें शक संवत् 1808 के नेमिसागर के और संवत् 1946 के आदिनाथ और पार्श्वनाथ के चरण हैं।

इनके बगल में 2 फीट 3 इंच ऊँचे पाषाण-फलक में पद्मावती देवी, 5 तीर्थंकर मूर्तियों और चमरवाहकों का अंकन है। अधोभाग में दोनों किनारों पर भैरव बने हुए हैं तथा संवत् 1930 का प्रतिष्ठा लेख खुदा है।

इन मूर्तियों के बगल में भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति कारंजा की गद्दी है।

बायीं ओर बरामदे में 5 वेदियाँ बनी हुई हैं, जिनमें काष्ठासन पर संवत् 1548 की 4 मूर्तियाँ विराजमान हैं। एक वेदी में अर्धपद्मासन अति प्राचीन तीर्थंकर मूर्ति भी विराजमान है। इसी बरामदे से होकर नीचे तल-प्रकोष्ठ (भोंयरे) में जाने का सोपान-मार्ग है। यह आकार में छोटा है, किन्तु इसमें सम्पूर्ण मंदिर की रचना दिखाई पड़ती है। 2 फीट 7 इंच ऊँचे श्याम वर्ण शिलाफलक में खड्गासन चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसे विघ्नहर पार्श्वनाथ भी कहते हैं। इसके परिकर में छत्र, कीचक, मालावाहक देव, 4 तीर्थंकर प्रतिमाएँ, चमरेन्द्र और भक्त हैं। इस मूर्ति के सामने क्षेत्र के रक्षक दो क्षेत्रपाल विराजमान हैं। यह भोंयरा आठ फीट ऊँचा है। चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है। अनेक लोग यहाँ मनौती मनाने आते हैं। कहते हैं, लगातार पाँच रविवारों को भक्तिपूर्वक इसके दर्शन करने से कामना पूर्ण होती है।

ऊपर आँगन के पास एक कमरे में वेदी में सहस्रफण पार्श्वनाथ की श्वेत वर्ण वाली दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इनके अतिरिक्त पाषाण की 9 और धातु की 2 प्रतिमाएँ हैं। एक चरण पादुका भी है।

एक ओर भट्टारक वीरसेन की गुरु-गद्दी है। उसके पास बरामदे में भट्टारक विशालकीर्ति की गद्दी है। इस प्रकार इस मंदिर में तीन भट्टारकों के पीठ या गद्दियाँ रही हैं। लगता है, इन तीन भट्टारकों में भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति बलात्कारगण की कारंजा शाखा के, भट्टारक वीरसेन सेनगण और भट्टारक विशालकीर्ति संभवतः बलात्कारगण की लातूर शाखा के थे।

यह उल्लेखनीय है कि इस मंदिर में उपर्युक्त सभी मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नाय की हैं, नग्न दिगम्बर हैं। इनके प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठाचार्य सभी दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे, जैसा कि उनके मूर्ति-लेखों से ज्ञात होता है। भट्टारकों की तीन परम्पराओं की यहाँ गद्दियाँ रही हैं। ये भट्टारक भी दिगम्बर धर्मानुयायी थे। कुल मिलाकर यह सिद्ध होता है कि मंदिर और मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नाय की हैं और सदा से दिगम्बर समाज के अधिकार में रही हैं।

इस मंदिर के ऊपर शिखर है तथा मंदिर के द्वार पर नगाड़ाखाना है। मंदिर के ऊपर दिगम्बरों की ध्वजा लगी हुई है। वर्ष में अनेक बार यात्रा उत्सव होते हैं, उन अवसरों पर तथा जब कभी प्रतिष्ठा विधान आदि होते हैं, उन अवसरों पर दिगम्बर समाज पुरानी ध्वजा उतारकर नयी ध्वजा लगाती है।

नीचे के भोंयरे की देहलियों में जहाँगीर और औरंगजेबकालीन रुपये जड़े हुए हैं। कुछ उखड़ भी गये हैं। यह मंदिर पंचायतन कहलाता है। यहाँ पंचायतन से प्रयोजन है, जिसमें आराध्य मूलनायक की मूर्ति हो, शासन देवों की मूर्ति हो, शास्त्र का निरूपण करने वाले गुरु की गद्दी हो, क्षेत्रपाल हों और सिद्धान्त-शास्त्र हों। ये सभी बातें यहाँ पर हैं ही।

मंदिर के चबूतरे के बगल में एक कच्चा मण्डप है जो दिगम्बर समाज के अधिकार में है। इसमें एक पीतल की वेदी पर संवत् 1925 में प्रतिष्ठित सुपार्श्वनाथ भगवान की श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमानहै। यहाँ दो चरण-चिन्ह भी स्थापित हैं।

धर्मशाला—मण्डप के पीछे दिगम्बर समाज की दो धर्मशालाएँ बनी हुई हैं—एक मण्डप के पीछे और दूसरी मंदिर के पीछे। यहीं क्षेत्र का दिगम्बर जैन कार्यालय है। इन धर्मशालाओं में यात्रियों के लिए बिजली, गद्दे, तकिये, चादरें और बर्तनों की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। मण्डप के पीछे वाली धर्मशाला में मीठे जल का कुआँ है, जिसमें मोटर फिट है तथा हैण्डपम्प लगा हुआ है। कुएँ के पास ही स्नानगृह बना है। इन धर्मशालाओं में कुल कमरों की संख्या 37 है।

व्यवस्था—सिरपुर और पवली के दोनों मंदिरों, समाधियों तथा उनसे संबंधित सम्पत्ति की व्यवस्था 'दिगम्बर जैन तीर्थ कमेटी सिरपुर' द्वारा होती है। यह एक पंजीकृत संस्था है। इसका चुनाव वैधानिक ढंग से नियमानुसार होता है।

मेला—क्षेत्र का वार्षिक मेला कार्तिक शुक्ला 13 से 15 तक तीन दिन होता है। इस अवसर पर भगवान की रथयात्रा निकलती है। मेले में लगभग 3-4 हजार व्यक्ति सम्मिलित होते हैं।

चैत्र शुक्ला 1 को नववर्ष के उपलक्ष्य में दो दिन मेला होता है। इस अवसर पर जलयात्रा होती है।

आषाढ़ शुक्ला 14-15 को विशेष आयोजन के साथ अभिषेक और पूजन होता है।

निकटवर्ती तीर्थक्षेत्र—अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ सिरपुर के पास वाशिम में अमीझरो पार्श्वनाथ (धाकड़ मंदिर) और चिन्तामणि पार्श्वनाथ (सैतवाल मंदिर) है जो 700 वर्ष प्राचीन है। इन दोनों मंदिरों में भोंयरे हैं।

ऐल राजा ने बरार प्रदेश में अनेक मंदिरों का निर्माण कराया था।

श्वेताम्बर समाज द्वारा कलह—श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन क्षेत्र का मंदिर और मूर्तियाँ स्पष्टतः दिगम्बर आम्नाय की हैं, किन्तु श्वेताम्बरों द्वारा दिगम्बर तीर्थों पर बलात् अधिकार करने की अपनी नीति के कारण लगभग आधी शताब्दी से इस क्षेत्र पर भी श्वेताम्बर समाज द्वारा अनुचित कार्य किये जा रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व श्वेताम्बर लोगों ने दिगम्बर समाज से केवल दर्शन-पूजन की सुविधा मांगी थी। दिगम्बर समाज ने उदारतावश उन्हें यह सुविधा प्रदान कर दी। परिणाम यह हुआ कि श्वेताम्बर भाइयों ने इस उदारता का लाभ उठाकर अपने पैर फैलाने शुरू कर दिये और सम्पूर्ण तीर्थ पर अपना स्वामित्व जताने लगे। प्रीवी कौंसिल तक केस चले। वहाँ से जो निर्णय हुआ, उसके अनुसार दोनों मंदिरों, उनकी मूर्तियों आदि का स्वामित्व और उनकी व्यवस्था का दायित्व तो दिगम्बर समाज का है, केवल अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति के पूजन के लिए दोनों समाजों के लिए तीन-तीन घण्टे का समय नियत कर दिया गया है।

वर्तमान स्थिति—यह अंतरिक्ष पार्श्वनाथ पवली दिगम्बर जैन मंदिर नाम से आज भी विद्यमान है तथा वह जलाशय, कूप (कुआं) के रूप में विद्यमान है। यह दिगम्बर जैन संस्कृति की परंपरागत प्राचीन ऐतिहासिक निधी है। इसके सन्निकट इस कूप के जल से आज भी अनेक चर्मरोग ठीक होते हैं। अनेक श्रद्धालुओं का यह वास्तविक अनुभव है जो विज्ञान के लिए आव्हान है। इस कुएं का जल दूर-दूर से आये यात्री औषधी मानकर लेते हैं और आरोग्य लाभ पाते हैं।

श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ पवली दिगम्बर जैन मंदिर के प्रांगण में एवम् सभामंडप में समय-समय पर उत्खनन होते रहे। उसमें अनेक दिगम्बर प्रतिमायें तथा दिगम्बर संस्कृति के विविध अवशेष प्राप्त हुए हैं। उत्खनन में प्राप्त ईटें पानी पर तैरती हैं। यह यहाँ की विशेषता है।

इस मंदिर के प्रवेश द्वार पर उत्कीर्ण शिलालेखों से यह सिद्ध होता है कि, इस मंदिर का निर्माण राजा ईल अर्थात् श्रीपाल द्वारा ई.सन् की 10 वीं शताब्दी में हुआ है तथा इस मंदिर का जीर्णोद्धार ई.सं. 1406 में हुआ है।

भारतीय इतिहास के आक्रमण काल की परिवर्तन शृंखला में भगवान अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की यह अतिशय युक्त चमत्कारी "अंतरिक्ष मूर्ति" शिरपुर ग्राम में विद्यमान पुरातन भोयरेंयुक्त मंदिर में सुरक्षाकी दृष्टि से स्थानांतरित की गई। यह मंदिर श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ स्वामी दिगम्बर जैन संस्थान बस्ती मंदिर शिरपुर नाम से प्रख्यात है। बस्ती मंदिर का जीर्णोद्धार ई.सन् 16 वीं शताब्दी में हुआ है। यह मंदिर दिगम्बर आम्नाय का प्रतीक है। मंदिर की छतपर एवं चौक में चूने से दिगम्बररूप में बनीं मूर्तियाँ दिगंबरत्व का प्रमाण हैं तथा इस मंदिर पर ध्वजारोहण का अधिकारकेवल दिगम्बर जैन समाज को है।

यह मंदिर त्रि-स्तरीय (तीन ताल में है, ऊपर के ताल में तीन वेदियाँ है। मध्य के ताल में (भोयरे में) दस वेदियाँ है। इन सभी वेदियों पर दिगम्बर तीर्थंकरों की मूर्तियाँ विराजमान हैं जो पूर्णरूपेण दिगम्बर आम्नाय की हैं। पूर्णतः दिगम्बर जैन समाज के स्वामित्व अधिकार में हैं तथा केवल दिगम्बर जैन आम्नायानुसार पूजा की जाती है।

पार्श्वनाथ मूर्ति मूलतः पाषाण की है एवम् पूर्णतः दिगम्बर आम्नाय की है। गत शताब्दी से यह मूर्ति लेप में लिप्त है जो श्वेताम्बर आक्रमण प्रवृत्ति द्वारा आज विवाद का विषय बनी हुई है।

इस मध्यतल में दिगम्बर रूप में उत्कीर्ण तीर्थंकर प्रतिमा सहित पद्मावती देवी की संगमरमर की अतिसुंदर मूर्ति विराजमान है। जिसकी प्रतिष्ठा यहाँ के मूल निवासी स्व. बालासा नामक कासार जाति के श्रावक द्वारा संवत् 1930 (ई.सं. 1873) में हुयी है। अन्य मूर्तियों पर लिखित शिलालेख द्वारा यह सिद्ध होता है कि मंदिर की स्थापना से ही यह मंदिर दिगम्बर जैन समाज का रहा है और आज भी है।

यहीं पर दिगम्बर आम्नाय के तीन भट्टारक गुरुपीठों के अंतर्गत एक स्वस्ति श्री भट्टारक पट्टाचार्य देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज का पीठ है तथा ऊपर के ताल पर स्वस्ति श्री भट्टारक पट्टाचार्य वीरसेन महाराज एवं स्वस्ति श्री भट्टारक पट्टाचार्य विशालकीर्ति जी महाराज ऐसे दो पीठ परंपरा से स्थापित हैं।

पूर्व में इन भट्टारक पीठों के निर्देशन में और संरक्षण में मंदिर की व्यवस्था, जीर्णोद्धार तथा धर्मशालाओं का निर्माण एवम् जीर्णोद्धार होता रहा है। श्वेताम्बर समाज का कोई भी पीठ यहाँ पर न था न आज है।

मंदिर के तीसरे स्तर के भूगर्भ के भोयरे में दिगम्बर आम्नाय की तीन वेदियाँ हैं। इनमें से एक वेदी पर दिगम्बर आम्नाय की दिगम्बर स्वरूप में खड्गासनस्थ चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान की प्राचीन मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति अंतरिक्ष भगवान पार्श्वनाथ मूर्ति के समकालीन है। अन्य दो वेदियों पर दिगम्बर आम्नाय के क्षेत्रपाल विराजमान हैं।

दिगम्बर-श्वेताम्बर विवाद-मीमांसा–श्वेताम्बर संप्रदाय की निर्मिती भगवान महावीर के निर्वाण के बाद करीब 6 वें शताब्दी में हुई। यह निर्विवाद सत्य है। इतिहास संशोधकों ने इसे मान्यता दी है।तीर्थ संस्कृति एवम् सभ्यता के प्रतीक हैं। समृद्ध अतीत की धरोहर हैं। किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय का नेतृत्व अपने पुरातनत्व को सिद्ध करने की होड़ में लगा है।

यही कारण है कि गत शताब्दी से हमारे ऐतिहासिक तीर्थों पर योजनाबद्ध आक्रमण कर श्वेताम्बर स्वामित्व प्रस्थापित करने का प्रयास हो रहा है। तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेद शिखर जी, गिरनार जी, पावापुरी जी तथा अन्य अतिशय क्षेत्र जैसे केशरियाजी, मक्सी पार्श्वनाथ जी, अंतरिक्ष पार्श्वनाथ जी शिरपुर आदि अनेक आक्रमण के लक्ष्य रहे हैं।

श्वेताम्बरियों ने अंतरिक्ष पार्श्वनाथ मूर्ति के संबंधी ई.सन् 1990 में न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। जिसका अंतिम निर्णय प्रिव्ही कौन्सिल द्वारा ई.सन् 1929 में हुआ।

मूर्ति का मूल स्वरूप लेप से व्याप्त था। श्वेताम्बरियों द्वारा यह मूर्ति गोबर एवम् रेत के मिश्रण से बनी हुई है ऐसी भ्रांतिपूर्ण झूठी कथायें प्रस्तुत की गयीं। इस कारण न्यायालयों द्वारा लेप के आवरणों को हटाकर निर्णय देने संबंधी असमर्थता व्यक्त की गयी। झूठे सबूत, आगम संबंधी गलत मान्यतायें तथा व्यवस्थापन सिद्ध करने हेतु बनावटी बही खाते प्रस्तुत होने से यह मूर्ति श्वेताम्बरी मानी गयी। परन्तु मूर्ति की पूजा दोनों संप्रदायों को ई.स.1905 के समय-सारिणीनुसार करने का अधिकार दिया गया। तत्पश्चात् मूर्ति पर आवश्यकतानुसार लेप पर लेप चढ़ते रहे किन्तु पाप का घड़ा भरने से सन् 1959 में श्वेताम्बरी नेतृत्व को लेप हटाने की प्रेरणा अव्यक्त शक्ति द्वारा दी गयी। लेप के आवरण हटाये गये। सत्यस्वरूप प्रगट हुआ। यह मूर्ति पाषाण की दिगम्बर आम्नाय की हुई। अन्याय का निराकरण करने से यह अंतरिक्ष पार्श्वनाथ भगवान का अतिशय माना जाता है।

अब इस विवाद को नया आयाम प्राप्त हुआ है। ई.सन् 1960 में दिगम्बरियों ने प्रीव्हीकौन्सिल द्वारा घोषित निर्णय निरस्त कर मूर्ति के दिगम्बर सत्यस्वरूप (मूलरूप) स्वीकृति संबंधी न्यायालय में दावा प्रस्तुत किया। यह विवाद न्यायालय द्वारा निर्णीत होना शेष है। वीतरागता जैन तत्वज्ञान का सर्व स्वीकृत प्राण है। यह जैनत्व की अस्मिता है। इसका संरक्षण एवम् संवर्धन करना यही सभी का धर्म है। इस क्षेत्र संबंधी प्रचलित विवाद का निर्णय वीतरागता अर्थात् जैनत्व का प्राण सिद्ध करने का निर्णायक बिन्दु होगा। श्वेताम्बरियों की कुप्रवृत्ति का भंडाफोड होगा। इस दावे से परावृत्त होने के लिए श्वेताम्बर पक्ष द्वारा नीति-अनीति का विचार न कर आक्रमणों की शृंखला गत अनेक वर्षों से चल रही है। आज भी न्यायालय में श्री पवली दिगम्बर जैन मंदिर, पद्मावती देवी तथा दिगम्बरी धर्मशालाओं पर स्वामित्त्व प्रस्थापित करने के दावे दाखिल हैं।

वीतरागता को पूर्ववत् प्रतिष्ठित करने का न्यायोचित आंदोलन वर्षों से चल रहा है।

आईये! इस यज्ञ में हम सभी सम्मिलित होकर तन-मन-धन समर्पित कर पुण्य लाभ एवं कर्तव्य पूर्ति का आनंद लें। हमारी भावना हो.....

अर्हत्पुराणपुरूषोत्तमपावनानि वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिञ्ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ पुण्यंसमग्रमहमेकमना जुहोमि।।स्वस्तिक मंगल, पूजापाठ।

क्षेत्र की विशेषताएँ—आज भी यह अंतरिक्ष पार्श्वनाथ भगवान की प्राचीन-मनोज्ञ-अतिशययुक्त मूर्ति अंतरिक्ष में अधर स्थिति में विराजमान है। दिगम्बर जैन धर्मावलंबियों की इस मूर्ति पर अनन्य श्रद्धा है तथा श्रद्धालुओं को समय-समय पर साक्षात्कार हुये हैं। यह अंतरिक्ष भगवान पार्श्वनाथ मूर्ति पुरातन शिल्पकला का जगद्विख्यात अद्भुत अद्वितीय नमूना है। तीर्थंकरों के अतिशयों में ''अंतरिक्ष'' यह अतिशय एकमात्र दिगम्बर आगम द्वारा स्वीकार्य है।

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ पवली दिगम्बर जैन मंदिर के सन्निकट कुऐं के जल से आज भी अनेक प्रकार के चर्मरोग ठीक होते हैं। अनेक भक्तों का यह वास्तविक अनुभव है। इस कुऐं का जल दूर-दूर से आये यात्रीगण औषधि रूप से ग्रहण करते हैं और आरोग्य लाभ पाते हैं।

पुरातत्वीय संशोधन—श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र शिरपुर, जिला-वाशिम (महा.) प्राचीन दिगम्बर जैन संस्कृति के अस्तित्व का एवं अस्मिता का ज्वलंत इतिहास है।

पुरातत्व, उत्खनन, मूर्तिलेख, साहित्य में उल्लेख एवं अनेक विध प्रशस्तियों द्वारा तथा पुरातत्वीय सर्वेक्षण और गॅजेटियर्स द्वारा यह समय-समय पर सिद्ध हुआ है कि श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ संस्थान शिरपुर तथा श्री पवली दि. मंदिर दिगम्बर जैन परम्परा के ही हैं।

इस संदर्भ में लक्षणीय चिरस्थायी प्रमाण—''श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ भगवान का यह प्राचीन मंदिर दिगम्बर जैनियों के स्वामित्व का है और इस मंदिर के शिलालेख में ई.सन् 1406 ऐसा स्पष्ट उत्कीर्ण है।''

The old temple of Antariksha Parshwanath belongs to the Digambari jain Community has an inscription with a date which has been read as year 1406 A.D.

Imperial Gazeteer, Oxford. Part XXIII Page 39

''वाशिम तहसील के शिरपुर कस्बे में अंतरिक्ष पार्श्वनाथ मंदिर है जो दिगम्बर जैनियों के स्वामित्व का है जो इस पूरे जिले में अत्यंत मनोरम प्राचीनतम स्मारक है।''

इम्पीरियम गजेटियर ऑक्सफोर्ड भाग 7, पृ.97

The Temple of Antariksha Parshwanath at Shirpur in Basim Taluqu belonging to the Digambari jain Community is the most interesting monument of the past in the district.

Imperial Gazeteer, Oxford. Part VII Page 97

बम्बई सरकार द्वारा पश्चिम भारत विषयक पुरातत्त्व विभाग सर्वेक्षण प्रगति अहवाल दिनाँक 30-2-1902 नुसार गाँव (शिरपुर) से थोड़ी दूरी पर पश्चिम दिशा में दिगम्बर जैन समाज के स्वामित्व का अंतरिक्ष पार्श्वनाथ भगवान का प्राचीनतम मंदिर है।

Govt. of Bombay progress report of Archelogical survey of western India dated 30–2–1902 says

" A short distance outside the village in the west stood the old Termple of Antariksha Parshwanath belongs to Digambari jain Community "

क्षेत्र संबंधी पत्र व्यवहार का पता इस प्रकार है–

मंत्री, श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन संस्थान

पो.-सिरपुर (तालुका-वाशिम), जिला-अकोला (महाराष्ट्र)

श्री संकटहरण गंधर्वपुरी पार्श्वनाथ तीर्थ

–सुरेन्द्र कुमार जैन, गंधर्वपुरी (देवास) म.प्र.

जैन तीर्थ गंधर्वपुरी इंदौर-भोपाल मार्ग पर सोनकच्छ नगर से उत्तर में करीब 9 किलोमीटर दूरी पर पक्की सड़क से जुड़ा हुआ छोटी-छोटी विन्ध्याचल की पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित है। इसके पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की श्रेणियाँ हैं, तो पश्चिम में 1.5 किलोमीटर की दूरी पर कालीसिंध नदी बहती है। यह ऐतिहासिक दि. जैन तीर्थ है जहाँ पर भगवान महावीर रुके थे। यह बात 13वीं शताब्दी में लिखी गई जैनधर्म की पुस्तक कालकाचार्य कथानक से भी प्रभावित होती है। कालिदास के प्रसिद्ध ग्रंथ मेघदूत में भी उज्जैन के पूर्व में स्थित गंधर्वपुरी का उल्लेख किया गया है।

गाँव के एक छोर में एक नाला बहता है, जिसके उस पार कुशवाह (काछी) समाज की बस्ती है वहाँ पर एक शिव मंदिर है। गाँव के लोग इस शिवमंदिर को राजाओं के मंदिर के नाम से पुकारते हैं। इस नाले को पूर्वज सोमवती नदी के नाम से बताते हैं, जिसमें पहले पूरे वर्ष पानी बहता रहता था, किन्तु सिंचाई होने से पूरे वर्ष पानी बहना बंद हो गया है। शोधकर्ताओं की राय है कि इसकी भौगोलिक स्थिति को देखते हुए यह बहुत बड़ा नगर था। इसके पूर्व दक्षिण में 5 किमी. दूर तालोद नामक गाँव है, जहाँ पर मूर्तियों के अवशेष मिलते हैं और वहीं से सोमवती नदी (नाले) का उद्गमस्थल माना जाता है। उत्तर पूर्व में पहाड़ी के उस पार ग्राम कथनारिया करीब 4-5 किलोमीटर पर स्थित है जहाँ पर भी मूर्तियाँ एवं अवशेष मिलते हैं। इसी प्रकार पश्चिम उत्तर में ग्राम बेराखेड़ी है जो कि राजपूत लोगों की बस्ती है, ऐसा प्रतीत होता है कि बेराखेड़ी अपभ्रंशरूप में है। मूल शब्द वीरखेड़ा है। इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम में ग्राम सुराखेड़ा, जिसकी गंधर्वपुरी से दूरी 3 किमी. है, कालीसिंध नदी के तट पर स्थित है, वह भी राजपूतों का गाँव है। संभवतः सूराखेड़ा का शुद्धरूप सूरखेड़ा होगा। पूर्व में ग्राम लोंदिया के पास पहाड़ी के समीप से ग्राम गन्धावल का प्रवेश द्वार माना जाता था, इसे पुतलीघोड़ा स्थान कहते हैं, क्योंकि वहाँ पर एक पत्थर का स्तंभ आज भी गड़ा है। वर्तमान में भी सड़क पहाड़ी के किनारे से निकलती है, इससे यह ज्ञात होता है कि जो राजा हुआ होगा, उसने इसकी सुरक्षा की दृष्टि से भी चुनकर एक नगर में रूप में बसाया होगा।

सभ्यता का विकास हमेशा नदियों के किनारे होता रहा है, जैसे सिंधु घाटी की सभ्यता, इसी प्रकार यह गाँव भी कालीसिंध नदी के किनारे बसा है। यहाँ पर भी प्राचीन मूर्तियाँ एवं अवशेष पाये जाते हैं, इससे सिद्ध हो जाता है कि यह एक प्राचीन नगर रहा होगा। गंधर्वपुरी के स्थापत्य एवं मूर्तिकला को देखकर लगता है कि यह सभी प्रतिमाएँ गुप्तकाल के पूर्व की पाँचवी-छठी शताब्दी की हैं।

आज वर्तमान में यहाँ पुरातत्व विभाग की ओर से एक संग्रहालय स्थित है, जिसमें सैकड़ों जैन, शिव, वैष्णव धर्म की मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। वैसे भी गाँव में यत्र-तत्र मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हुई है, प्रत्येक मकान के दासों में मूर्तियाँ लगी हैं, पुरातत्व दृष्टिकोण से मध्यप्रदेश में गंधर्वपुरी का 23वाँ स्थान है।

बुजुर्गों से ज्ञात होता है कि गाँव में जो हरिजन मोहल्ला नाले के किनारे स्थित है वहाँ एक जैन मंदिर था जिसके अवशेष वहाँ आज भी विद्यमान हैं। पुरातत्व संग्रहालय में यहाँ की एक विशाल जैन प्रतिमा संग्रहालय में रखी है, जिसकी लम्बाई करीब 12 फुट है एवं चौड़ाई 4 फुट है। इस मंदिर के कुछ अवशेष गाँव के एक मकान में लगे हैं। वर्तमान में गाँव के मध्य में एक दिगम्बर जैन मंदिर स्थित है, जिसमें मूलनायक मूर्ति श्री पार्श्वनाथ भगवान की है और यह मंदिर करीब 250 वर्ष पुराना है जो चूने एवं पतली ईंट का बना हुआ है। ग्रंथों में चूने के मंदिर का महत्व अलग ही है, मंदिर क्रेक होने से इसमें गार्डर लगाई है।

शोधकर्ता यहाँ की प्राचीन जैन प्रतिमा एवं अवशेषों को देखकर यह तर्क लगाते हैं कि यह एक बहुत बड़ा नगर

एवं व्यापारिक केन्द्र रहा होगा। यहाँ पर अनेक जैन मंदिर थे, साथ ही जैन परिवार की बाहुल्यता भी थी। शोधकर्ताओं के मत के अनुसार यहाँ जैन परिवार होने के कारण यदि खुदाई की जावे तो पुरानी सम्पदा भी मिलना चाहिए। यहाँ वर्तमान में जैनियों के मात्र 5 परिवार ही रह गये हैं।

आज भी यहाँ पर भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर स्वामी की एवं करीब सभी तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं, किन्तु कुछ मूर्तियाँ चिन्ह समाप्ति होने से ज्ञात नहीं हो पा रही हैं कि यह कौन से तीर्थंकर की मूर्ति है, वैसे आज भी गाँव में जमीन के नीचे अनेक मूर्तियाँ दबी पड़ी हैं। कुछ जगह मकान की नींव खोदने पर बड़े-बड़े पत्थर के बने कमरे एवं सीढ़ियाँ मिली हैं। यहाँ पर अभी दो जैन तीर्थंकर की विशाल प्रतिमा है, इनमें एक मूर्ति माताजी के मंदिर के पीछे स्थित है। मूर्ति का छत्र टूटा है जो मूर्ति के समीप रखा है, संभवतः यह मूर्ति श्री शांतिनाथ तीर्थंकर की है इसकी लम्बाई करीब 17 फीट होनी चाहिए। इसके जमीन के अंदर की लम्बाई 10 फीट एवं नीचे 7 फुट गड़ी होना चाहिए, इसकी चौड़ाई करीब 4.5 फीट है।

वैसे इस गाँव का तीर्थक्षेत्र के संदर्भ में काफी महत्व है। श्री बलभद्र जैन ने (गंधावल) वर्तमान में गंधर्वपुरी के संदर्भ में भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ मंदिर भाग-3 में इसका उल्लेख किया है।

गंधर्वपुरी का उल्लेख गंधावल के नाम से प्राचीन जैन स्मारक दिगम्बर जैन डायरेक्टरी में मुद्रित सन् 1914 में सरस्वती लायब्रेरी खण्डवा पुस्तक में किया गया है, जिसमें इसका प्राचीन नाम चम्पावती है एवं यहाँ से 2 मील दूर पर्वत पर एवं जैन मंदिर के खण्डर हैं।

यहाँ पुरातत्त्व पर शोध करने वाले अनेक विद्वान समय-समय पर आते रहे हैं जिसमें मुख्य हैं–डॉ. यू.एन.राय-इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डॉ. प्रज्ञा मिश्रा-इंदौर के साहित्यकार डॉ. चन्द्रशेखर दुबे इत्यादि। इनका अनुमान है कि इसका पुराना नाम गन्धावल रहा होगा।

डॉ. कैलाशनाथ काटजू जो कि जवाहरलाल के परिषद में गृहमंत्री थे, तब वे यहाँ आये थे उन्हें इस गाँव में प्राचीन मूर्तियाँ देखकर बेहद लगाव हो गया था, बाद में जब वे प्रदेश के मुख्यमंत्री बने तब उन्होंने इसे सड़क से इंदौर-भोपाल मार्ग से जुड़वाया एवं पुरातत्त्व संग्रहालय की स्थापना करवाई। साथ ही इसका नाम गंधावल से गंधर्वपुरी करवाया।

डॉ. त्रिवेदी जो कि काटजू साहब के मंत्री काल में पुरातत्व विभाग में थे, उनका मत था कि मध्यप्रदेश के पुरातत्व विभाग ने गंधावल उर्फ गंधर्वपुरी के साथ बिल्कुल न्याय नहीं किया है।

वैसे यहाँ की अनेक अच्छी एवं आकर्षक मूर्तियाँ भोपाल, देवास एवं दिल्ली संग्रहालयों में ले जाई गई है।

आज हमारी जैन समाज पुराने जैन मंदिर पर ध्यान न देकर नये तीर्थ पर ध्यान देती है। यह सत्य है कि यहाँ मंदिर में जो मूर्ति पार्श्वनाथ भगवान की है बहुत ही चैतन्य एवं चमत्कारी है, वैसे पुरानी मूर्तियों में ज्यादा महत्व चैतन्यता एवं आकर्षण होता है। यहाँ के जैनवासियों को गर्व है कि हम एक प्राचीन जैन धरोहर के बीच में उस गाँव में रह रहे हैं, किन्तु यहाँ जैन समाज विस्तृत नहीं होने के कारण एवं पूर्णरूप से आर्थिक कमी के कारण इस धरोहर के विकास में अड़चन आ रही है।

क्षेत्र पर ठहरने हेतु मात्र एक गेस्ट हाउस है। इस तीर्थ को विकास की आवश्यकता है। इसकी रक्षा और विकास करना समस्त धर्मानुरागियों का पावन कर्तव्य है। यह तीर्थ जैन संस्कृति के अतीत की बहुमूल्य धरोहर है।

वार्षिक मेला–पौष वदी ग्यारस के दिन (पार्श्वनाथ जन्मोत्सव पर) वार्षिक मेला लगता है।

श्री अतिशय क्षेत्र वागोल पार्श्वनाथ

–हसमुखलाल शांतिलाल सेठ (मंत्री), कुशलगढ़

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र वागोल पार्श्वनाथ बीसपंथी मंदिर, वागोल-कुशलगढ़ (राज.) में अवस्थित है। यह क्षेत्र केशरियाजी से 150 किमी., नागफणी पार्श्वनाथ से 130 किमी. एवं अन्देश्वर पार्श्वनाथ से 20 किमी. दूर है। दाहोद–बांसवाड़ा हाइवे के भीलकुंआ ग्राम से 25 किमी. की दूरी पर यह स्थित है। अतिशय क्षेत्र पर आने-जाने के लिए कुशलगढ़, बांसवाड़ा से सीधी रोडवेज बस सुविधा उपलब्ध है। अतिशय क्षेत्र अन्देश्वर के लिए मुम्बई–दिल्ली बड़ी लाइन के रेलवे स्टेशन दाहोद, थान्दला रोड तथा रतलाम जंक्शन से वाया कुशलगढ़, कलिंजरा, भीलकुंआ के लिए सीधी बस सेवा उपलब्ध है।

यह अतिशय क्षेत्र वागोल ग्राम में हिरन नदी के तट पर स्थित है। यह क्षेत्र राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं गुजरात राज्य की सीमाओं के नजदीक स्थित है जहाँ सम्पूर्ण भारत से जैन-जैनेतर यात्री तीर्थ के दर्शन हेतु आते हैं और दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं।

भगवान वागोल पार्श्वनाथ की श्यामवर्ण चमत्कारी मूर्ति संवत् 1617 में भट्टारक सुमतकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित की गई। किंवदन्ती है कि भगवान वागोल पार्श्वनाथ का पाषाण कलशयुक्त मंदिर भट्टारक महाराज द्वारा आकाशगामिनी विद्या के बल से अन्यत्र स्थान से लाकर वागोल ग्राम में स्थापित किया गया।

'सब विघ्न निवारे, सुख विस्तारे, तुम चरणन शीश धरूँ' उक्त युक्ति को चरितार्थ करता यह अतिशय क्षेत्र भक्तजनों को अपनी ओर आकर्षित कर सबकी मनवांछित इच्छाओं को कल्पवृक्ष की भांति पूर्ण करता है। संतानहीन को संतान प्राप्ति, दुखी को सुख और हर कठिनाइयों से मुक्ति प्राप्त होती है। मूर्ति पर प्रशस्ति (लेख) अंकित है जिसके अनुसार संवत् 1617 में यह भट्टारक सुमतकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित की गई है। क्षेत्र का संचालन दिगम्बर जैन दशा हूमड़ पंच बीसपंथी समाज, कुशलगढ़ द्वारा किया जाता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–क्षेत्र पर यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला उपलब्ध है।

वार्षिक मेला–चैत्र शुक्ला एकम पर ध्वजारोहण व विविध कार्यक्रमों के साथ वार्षिक मेले का आयोजन होता है जिसमें जैन समाज के साथ ही हजारों की संख्या में आदिवासी समाज व अन्य धर्मावलम्बी सम्मिलित होते हैं।

गिरि पार्श्वनाथ

पहले पहाड़ से लगभग 4 किमी. पहाड़ पर चलने पर दूसरा पहाड़ आता है। पहाड़ के ऊपर सपाट मैदान में एक छतरी में दो चरण चिन्ह बने हुए हैं। इनके संबंध में अनुश्रुति है कि यहाँ भगवान महावीर का समवसरण आया था। उनकी स्मृति में ये चरण चिन्ह बनाये गये हैं। यहाँ से थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर एक मंदिर मिलता है। मंदिर 8 फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। यहाँ 3 फीट 2 इंच ऊँची कृष्ण वर्ण की पद्मासन मुद्रा में सप्तफणी पार्श्वनाथ प्रतिमा विराजमान है। कन्धे के दोनों पार्श्वों में फलक में चमरेन्द्र बने हुए हैं। ये ही गिरि पार्श्वनाथ कहलाते हैं। मूर्ति के ऊपर लेप किया हुआ है। इसमें शैली आदि दब गयी है। अतः इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं हो पाता। इसके निकट क्षेत्रपाल की मूर्ति है।

मंदिर के चारों ओर बाहर प्रदक्षिणापथ है और ऊँचा पक्का अहाता है। यह मंदिर पूर्वाभिमुखी है।

यहाँ से गाँव के लिए सीधा मार्ग जाता है।

श्री अणिन्दा पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र

–प्रभुलाल मानावत (सचिव), उदयपुर

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अणिन्दा पार्श्वनाथ जी राजस्थान के उदयपुर जिले में स्थित है। अणिन्दा ग्राम के तहसील वल्लभनगर में स्थित यह क्षेत्र जंगल के मध्य तालाब के किनारे पर स्थित है। रेलवे स्टेशन उदयपुर से यह 40 कि.मी. एवं उदयापोल बस स्टैण्ड, उदयपुर से 42 कि.मी. दूर है। उदयपुर चित्तौड़ मार्ग पर होने से यात्री आसानी से पहुँच सकते हैं।

अणिन्दा जी में मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा 2000 वर्ष प्राचीन है। यह मंदिर दक्षिणमुखी है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में दक्षिणाभिमुखी मंदिर और कहीं भी नहीं है। मंदिर के दक्षिणाभिमुखी होने का कारण यह है कि जब प्रतिमाजी भूगर्भ से निकलीं तब भगवान का मुख दक्षिण की ओर था, मंदिर बनाने से पूर्व मूर्ति का मुख पूर्वाभिमुखी करना चाहते थे परन्तु लोग इस कार्य में असफल रहे। प्रतिमाजी पर लिखी प्रशस्ति के अनुसार मूर्ति संवत् 1100 की प्रतिष्ठित है।

सन् 1950 में इस क्षेत्र पर मूलनायक भगवान के अलावा कुछ नहीं था, चारों ओर झाड़ियाँ और वीरान जंगल था। सन् 1960 के बाद विकास का क्रम प्रारंभ हुआ और मंदिर के तीनों ओर कमरों का निर्माण हुआ जिसका श्रेय श्रीमान मोहनलाल जी भदावत को जाता है उन्हीं के अथक प्रयासों से यह कार्य सम्पन्न हुआ है। मूल मंदिर के बाहर की देवरियों में बाद में भगवान शांतिनाथ व भगवान पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ विराजमान की गईं। क्षेत्र की विशेष प्रसिद्धि सन् 1991 से हुई और विकास का क्रम तेज हुआ। विकास की इस श्रृंखला में सन् 1993 व 1996 में कैलाश पर्वत पर 17 फीट उत्तुंग भगवान आदिनाथ तथा भूत, वर्तमान व भविष्यत्काल के 24 तीर्थंकरों के जिनबिम्ब देवरिया बनवाकर विराजमान कराए गए। पद्म सरोवर का निर्माण कराकर फव्वारों के बीच कमल पर 21 फीट उत्तुंग भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा को विराजमान किया गया। मानस्तंभ एवं देवी पद्मावती माता के मंदिर का भव्य निर्माण हुआ तथा सन् 1996 में भव्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन हुआ जिसमें सुमेरु पर्वत पर भगवान महावीर की 9 फीट पद्मासन प्रतिमा और चारों खंडों की चार दिशाओं के लिए 16 प्रतिमाजी प्रतिष्ठित कर विराजमान की गईं।

चमत्कार–यहाँ पर सभी की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। निर्धनों को धन, पुत्रहीनों को पुत्र व अनेक प्रकार की ऊपरी बाधाएँ दूर होकर प्राणी सब प्रकार से सुखी हो जाता है।

समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र श्री केशरिया जी, देवारी पार्श्वनाथ व ध्यान डूंगरी भीण्डर हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–क्षेत्र पर 55 कमरे व 3 हाल हैं। सन् 2002-03 में डीलक्स कमरों का निर्माण हुआ जो पूर्ण सुविधायुक्त बने हैं। सन् 2005 में विशाल भोजनशाला का निर्माण हुआ है जो नियमित चलती है और सशुल्क है।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र आहू

–पवन जैन गंगवाल, प्रताप मार्ग, धार (म.प्र.)

इन्दौर नगर से 65 कि.मी. एवं धार नगर से 13 कि.मी. दूर पश्चिम दिशा में श्री संकटमोचन आहू पार्श्वनाथ दि.जैन अतिशय क्षेत्र, आहू में स्थित है। इन्दौर-धार-अहमदाबाद मार्ग से जुड़ा होने के कारण यहाँ आवागमन सुलभ है।

मालवा की भूमि पर धार नगरी में राजा भोज का राज्य था, आचार्य मानतुंग स्वामी को जब उन्होंने 48 कोठरियों में (बन्दीगृह में) बन्द कर दिया तब उन्होंने भगवान आदिनाथ की भक्ति करते हुए 48 काव्यों की रचना की जिससे बन्दीगृह के 48 ताले स्वयमेव टूट गए, भक्ति का ऐसा चमत्कार देखकर राजा भोज को भी मुनिराज के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा। वह स्तोत्र आज भक्तामर स्तोत्र के नाम से जाना जाता है। पुरातात्त्विक वैभव की छटा और शिल्पकला का अद्‌भुत उदाहरण आहू मंदिर में देखने को मिलता है।

आहू में भगवान पार्श्वनाथ की एक फुट 7 इंच अवगाहना प्रमाण चमत्कारिक प्रतिमा विराजमान है, जिसके अनेकों प्रमाण जैन एवं जैनेतर लोगों की जुबान पर प्रसंगवश आते हैं और लोकव्यवहार में भी कहे और सुने जाते हैं। यह क्षेत्र 500 वर्ष प्राचीन माना जाता है। आहू में विराजित पार्श्वनाथ प्रतिमा लगभग 350 वर्ष तक भव्य चैत्यालय में भक्तों को भक्ति मार्ग में प्रेरित करती रही परन्तु कहते हैं कि पहले यहाँ लगभग 150 घर जैनों के थे। आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व चैत्यालय का रूपान्तर मंदिर में किया गया। वहाँ लगातार धर्मप्रेमी लोगों का जमावड़ा बना रहता है।

पार्श्वनाथ भगवान के जन्मोत्सव पर विशाल मेले का आयोजन प्रतिवर्ष होता रहता था, दूर-दूर से यात्रीगण आकर यहाँ ठहरते थे। समय चक्र के साथ-साथ जैन समाज के लोगों का शहरों की ओर आकर्षण बढ़ता गया, नवीन व्यवसायों ने उन्हें प्रवासित होने के लिए बाध्य किया। आहू में मंदिर में पूजा-प्रक्षाल के लिए घर ही नहीं बचे। एक ब्राह्मण इसकी देखरेख करने लगा, मंदिर जी जीर्ण-शीर्ण हो चला। जब धार के उत्साही नवयुवकों को यह बात मालूम पड़ी तो वे लोग आहू जाकर मंदिर की जीर्ण-शीर्ण हालत देखकर चिन्तातुर हुए। धार नगर के उत्साही नवयुवकों के मन में अरिहंत भक्ति का अपूर्व भाव जागृत हुआ। मंदिर के जीर्णोद्धार का प्रस्ताव उन्होंने समाज के समक्ष रखा। तीर्थ रक्षा समिति के ध्यान में इस बात को लाने पर उन्होंने इस प्रस्ताव को काफी व्यय साध्य बताकर इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया तब उन उत्साही युवकों ने यह भार अपने जिम्मे लिया और पुरूषार्थ ने अपना रंग दिखाया। मंदिर का भित्ति निर्माण, सिंहद्वार, वेदी प्रतिष्ठा सन् 1986 में हुई और अप्रैल 1996 में जीर्णोद्धार के प्रथम चरण का कार्य सम्पन्न हुआ। द्वितीय चरण में यात्रियों के आवास हेतु विशाल धर्मशाला, भोजनशाला आदि का एवं एक प्रवचन हाल का निर्माण हुआ। तृतीय चरण में वर्ष 1998 में मंदिर पर ध्वजारोहण के लिए ध्वजदण्ड स्थापना व मूलनायक संकटमोचन आहू पार्श्वनाथ को कमलासन पर विराजमान किया गया। तीर्थ का विकास कार्य अभी प्रारंभ है।

वर्तमान में आहू अतिशय क्षेत्र की विकास गाथा जन-जन द्वारा मुक्त कंठ से कही जाती है। अतिशय के कारण ही ग्रामोन्नति की झलक यहाँ सहज रूप में देखी जा सकती है। आवागमन के लिए पहुँच मार्ग, विद्युतिकरण, संचार साधनों का विकास, पथ वृक्षारोपण आदि से यह क्षेत्र सुगम, सुरम्य तथा आकर्षण का केन्द्र बन गया है। दिगम्बर जैन समाज के यहाँ पर 5 घर हैं। जिनेन्द्र भक्ति की अविरल धारा, दिगम्बर संतों के मंगल विहार तथा यात्रियों के आवागमन से अपूर्व आनंद का वातावरण बना रहता है। संतों की अमृतवाणी का प्रभाव यहाँ के निवासियों पर पड़ने से उनके जीवन में चमत्कारिक परिवर्तन हुए हैं।

वार्षिक मेला– प्रतिवर्ष पौष वदी ग्यारस के दिन यहाँ वार्षिक मेला लगता है, जिसमें हाथी, घोड़े , बग्घियाँ आदि रहती हैं। भारतवर्ष के कई भागों से यात्रीगण प्रतिदिन यहाँ अपनी मनोकामनाएं पूर्ण करने आते रहते हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ– क्षेत्र पर जयसागर धर्मशाला है। 3 कमरे और 1 हाल भी है। भोजनशाला आदि की सुविधा नहीं है।

श्री पार्श्वनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र पटेरिया जी

–बालचंद्र जैन (मंत्री), पटेरिया-गढ़ाकोटा (सागर) म.प्र.

जैन तीर्थ पटेरिया सागर से 48 किमी. दमोह से 30 किमी. एवं जबलपुर से 140 किमी. की दूरी पर स्थित है। निकटवर्ती रेलवे स्टेशन सागर, दमोह एवं पथरिया है। गढ़ाकोटा बस स्टैण्ड से यह तीर्थ 1 किमी. दूर है। चूँकि यह क्षेत्र सागर-दमोह मुख्य सड़कमार्ग पर स्थित है अतः दोनों स्थानों से पहुँचना सरल है।

भव्य गगनचुम्बी जिनालय, भगवान पार्श्वनाथ की तीन विशाल प्रतिमाएँ, चारों ओर मंदिर को घेरे हुए एक परकोटा दूर-दूर तक फैली हरियाली, सब ओर छाया मौन, एक अनोखा सा आकर्षण और मन को छू लेने वाली शान्ति, यही तीर्थ पटेरिया है। 230 वर्ष प्राचीन जिनालय जिसकी ऊँचाई लगभग 90 फुट और भगवान पार्श्वनाथ की तीन प्रतिमाओं की ऊँचाई साढ़े सात फुट है।

कहा जाता है कि 217 वर्ष पूर्व इतना बड़ा मंदिर बनोनया वंश के श्रेष्ठी राधाकिशुन जूनशाह ने अपने रुई के व्यापार में एक दिन के मुनाफे की रकम से बनवाया था। गजरथ महोत्सव के साथ भगवान की मंगलकारी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई थी, उस समय वीर बुन्देला छत्रशाल के वंशज महाराज हरीसिंहदेव शासन करते थे, रियासतें थीं। हृदय के बड़े दानी और वीर पुरुष उन दिनों हुआ करते थे, जिनमें श्रद्धा थी, सर्वमंगल की भावना थी। मंदिर के आसपास लोग बसे थे अच्छी आबादी थी पर धीरे-धीरे वक्त के साथ सब बदल गया। अब जिनालय से बस्ती के बीच फासला बढ़ गया पर सुखद बाद यह रही कि अपने भगवान से बस्ती के लोगों की दूरी नहीं बढ़ी, उनकी भगवान में आस्था नहीं घटी।

समय-समय पर धार्मिकजनों ने मिलकर मंदिर को सजाने-संवारने का प्रयास किया। आज से लगभग 90 वर्ष पूर्व क्षेत्र के विकास के लिए जीर्णोद्धार शुरू हुआ जो आज निरन्तर प्रगति पर है। इस अतिशयकारी क्षेत्र पर बैठकर आत्मा में अपूर्व शांति का अनुभव होता है। कहते हैं कि गजरथ के वक्त भोजन व्यवस्था के लिए घी कम पड़ गया था तब तत्कालीन भट्टारक श्री महेन्द्रकीर्ति जी का आदेश हुआ कि घबराओ मत! मंदिर के मुख्य द्वार के दाहिनी ओर जो जलकुण्ड है उसका पानी कढ़ाई में डालो, घी की कमी पूरी हो जायेगी। हुआ भी ऐसा ही। लोग आश्चर्यचकित रह गये। सर्वमंगल की भावना से भरकर कहे गए वचन वास्तव में कभी निरर्थक नहीं होते, ऐसी धर्म की महिमा है। एक अतिशयस्तंभ और भट्टारक की गद्दी यहाँ आज भी सुरक्षित है। जो लोगों की सद्भावनाओं को साकार बनाती है।

जिनालय के चारों ओर फैली सुरम्य नीरवता आज भी आत्मसाधना में लीन रहने वाले महान साधकों को आकर्षित करती है। यहाँ अनेक चमत्कार एवं अतिशय हुए हैं जैसे– भाद्रपद कृष्णा 7 गुरुवार, 20 अगस्त 1992 को रात्रि 8 बजे से 1 बजे तक अनवरत जल का प्रवाहन, मंदिर में रात्रि में वाद्ययंत्रों, घुंघरुओं की सुमधुर ध्वनि सुनाई देना आदि। माह के प्रथम रविवार को वहाँ बाबा का दरबार लगता है जिसमें अनेकों लोग व्याधिमुक्त हुए हैं। पुराना किला 1 किमी. की दूरी पर है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ– यात्रियों के ठहरने के लिए क्षेत्र पर 3 हाल एवं 18 कमरे हैं। यात्रियों के अनुरोध पर भोजनशाला में सशुल्क भोजन तैयार होता है।

करगुवाँ अतिशय क्षेत्र

–ब्र.कु. चन्द्रिका जैन (संघस्थ)

मार्ग– श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र करगुवाँ झाँसी शहर से 5 कि.मी. की दूरी पर झाँसी-लखनऊ राजमार्ग पर मेडिकल कालेज के ठीक सामने आधा कि.मी. दूर पहाड़ी की मनोरम तलहटी में अवस्थित है। यहाँ आठ एकड़ जमीन पर प्राचीन परकोटा बना हुआ है। क्षेत्र इसी परकोटे के अंदर है। परकोटे के अंदर आम, जामुन आदि फलदार वृक्ष लगे हुए हैं तथा कुछ भूमि पर खेती भी होती है। मंदिर भूगर्भ (भोंयरे) में है। पहले यहाँ अंधकार रहता था। किन्तु कुछ समय पहले जैन समाज ने यहाँ जीर्णोद्धार कराया था। अब तो भूगर्भ में एक विशाल हाल बन गया है और उसमें प्रकाश की समुचित व्यवस्था हो गयी है।

इस भोंयरे में अब केवल सात प्रतिमाएँ हैं। छह प्रतिमाओं पर संवत् 1343 खुदा हुआ है और एक महावीर स्वामी की प्रतिमा पर संवत् 1851 खुदा हुआ है। यहाँ मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है। इस प्रतिमा के निकट प्रायः सर्प देखे गये हैं किन्तु किसी को उन्होंने कभी काटा नहीं है। अनेक भक्तजन यहाँ मनोती मनाने आते हैं। इस कारण यह अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है।

इन सात प्रतिमाओं में पाँच पद्मासन हैं तथा दो खड्गासन हैं। ये प्रायः तीन से चार फुट ऊँची हैं।

यहाँ पहले बहुत मूर्तियाँ थीं। किन्तु कहते हैं कि अंग्रेजों ने जब 1814 ई.में झाँसी पर आक्रमण किया था, उस समय उच्छृंखल अंग्रेज सैनिकों ने बहुत सी मूर्तियों को तोड़-फोड़ डाला।

इस क्षेत्र के अतिशयों की अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं, लगभग दो सौ वर्ष पहले की बात है। एक गाड़ी खंडित जिनप्रतिमाओं से भरी हुई इधर से निकली। जैसे ही वह गाड़ी मंदिर की भूमि से गुजरने लगी, गाड़ी वहीं रूक गयी। उस समय झाँसी का नाम बलवंतनगर था। यह समाचार वहाँ भी पहुँचा। अनेक व्यक्ति आये, अनेक उपाय किये, किन्तु गाड़ी नहीं चली।

उसी रात को बलवंतनगर के प्रमुख जैन पंच श्री नन्हेजू को स्वप्न हुआ कि जिस स्थान पर गाड़ी रूकी है उसके नीचे जमीन में जैन मूर्तियाँ हैं। उन्हें तुम निकलवाओ। प्रातःकाल श्री नन्हेजू ने यह स्वप्न अपने मित्रों और परिचितों को सुनाया और तब यह निश्चय हुआ कि उस स्थान की खुदाई करायी जाये। सब लोग उस स्थान पर गये और खुदाई आरंभ की गयी। कुछ गहरा खोदने पर मूर्तियाँ दिखाई देने लगीं। तब यह निश्चय हुआ कि पहले रक्षा का प्रबंध हो जाये, तभी आगे खुदाई करायी जाये। इस निर्णय के अनुसार खुदाई रोक दी गयी।

उस समय बलवंतनगर में बाजीराव पेशवा द्वितीय का शासन था। श्री नन्हेजू उनके सम्मानप्राप्त दरबारी थे। सिंघई जी ने दरबार में जाकर यह आश्चर्यजनक समाचार सुनाया। चर्चा के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि महाराज उस स्थान पर जायेंगे। तदनुसार महाराज और सिंघई जी घोड़ों पर करगुवाँ पहुँचे। उनके सामने खुदाई की गई। थोड़ी देर में भव्य जिनप्रतिमाएँ प्रकट हुई। जनता हर्षित होकर जय-जयकार करने लगी।

तभी महाराज और नन्हेजू ने मनोरंजन के तौर पर घोड़ों की दौड़ का निश्चय किया। दोनों ने घोड़े दौड़ाये। भाग्य ने सिंघई जी का साथ दिया। उनका घोड़ा जीत गया। महाराज ने उनसे इच्छानुसार इनाम लेने का आग्रह किया। सिंघई जी ने अवसर का लाभ उठाकर उस भूगर्भ स्थान के चारों ओर आठ एकड़ जमीन माँग ली। महाराज ने उन्हें तत्काल प्रदान कर दी। सिंघई जी ने समाज के सहयोग से उस भूमि के चारों ओर परकोटा खिंचवाया, बगीचा लगवाया और विशेष समारोह के साथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करायी, जिसमें भगवान महावीर की उपर्युक्त प्रतिमा विराजमान करायी।

क्षेत्र के सामने ही जब से मेडिकल कालेज खुला है, तब से क्षेत्र पर यात्री अधिक संख्या में आने लगे हैं। अभी मार्च सन् 1972 में एक विशाल मेला हुआ था। इस भूगृह की वेदी का जीर्णोद्धार किया गया था और वेदी-प्रतिष्ठा की गयी थी। इस अवसर पर एकत्रित जनसमूह ने महावीर शोध संस्थान और बुन्देलखंड महावीर विश्वविद्यालय की स्थापना का निश्चय किया। शोध-संस्थान का शिलान्यास तो 12 मार्च सन् 1972 को समाज के विख्यात उद्योगपति दानवीर साहू शांतिप्रसाद जी के कर कमलों द्वारा संपन्न हो चुका है। क्षेत्र से संलग्न 55 एकड़ भूमि में विश्वविद्यालय का निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया है।

वार्षिक मेला– यहाँ वर्ष में दो मेले भरते हैं–चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (भगवान महावीर का जन्म-दिवस तथा कार्तिक कृष्णा अमावस्या (भगवान महावीर का निर्वाण दिवस)। इसके अतिरिक्त दशलक्षण पर्व के पश्चात् कलशाभिषेक का मेला लगता है।

क्षेत्र पर स्वाध्याय भवन आदि बने हैं। यह स्थान सोनागिरी से 45 कि.मी एवं पावागिरी जी (ललितपुर) से 50 कि.मी. दूर स्थित है। निकटतम प्रमुख नगर झांसी व दतिया हैं।

झरी पार्श्वनाथ

कुण्डल गाँव से 2 किमी0 दूर पहाड़ पर एक प्राकृतिक गुफा बनी हुई है। यह 26 फुट 2 इंच लम्बी तथा 13 फुट 8 इंच चौड़ी है। गुफा के दो भाग हैं। दायीं ओर के भाग में पार्श्वनाथ प्रतिमा है। यह 3 फीट 8 इंच अवगाहना की कृष्ण वर्ण वाली पद्मासन प्रतिमा है। शिरोभाग पर नौ फण सुशोभित हैं। दायीं ओर पद्मावती देवी की 2 फुट 7 इंच ऊँची कृष्ण वर्ण की चतुर्भुजी मूर्ति है। देवी के दो हाथ वरद मुद्रा में हैं। बायें हाथ में कमल और दायें हाथ में त्रिशूल है। देवी के सिर पर सप्तफण हैं। देवी कानों में कर्णफूल, गले में हार, भुजाओं में भुजबंद और हाथों में कंकण धारण किये हुए हैं। फण के ऊपर पार्श्वनाथ की लघु प्रतिमा बनी हुई है। उसके ऊपर फण और शिखर हैं। यह देवी-मूर्ति स्वतंत्र कोष्ठक में है।

पार्श्वनाथ प्रतिमा के सामने 6 स्तंभों का एक मण्डप बना हुआ है। मण्डप के ऊपर गुफा की छत में दायीं ओर काले पाषाण हैं तथा बायें भाग में ताम्बुष पाषाण हैं। गुफा में, मण्डप में और मूर्ति के ऊपर निरन्तर जल झरता रहता है। इसलिए इस प्रतिमा को झरी पार्श्वनाथ कहते हैं।

गुफा का बायाँ भाग 12 फीट लम्बा है। इसकी चौड़ाई पूर्ववत् है। इसमें आधे भाग में 4 फीट ऊँचा चबूतरा है तथा आगे भाग में कुण्ड बना हुआ है जिसमें 5 फीट गहरा जल है। कुण्ड में जल निरन्तर आता रहता है। गुफा के द्वार पर दीवार बनाकर उसमें दो द्वार निकाले गये हैं।

इस गुफा के दायीं ओर कुछ ऊपर चढ़कर एक अन्य प्राकृतिक गुफा है। गुफा के बाह्य भाग में कुण्ड बना हुआ है जिसमें जल बराबर आता रहता है। गुफा के अंदर एक हॉल है तथा उसके अंदर एक छोटी गुफा है। छोटी गुफा की सामने की भित्ति में मध्य में हनुमान, बायीं ओर राम और दायीं ओर सीता की अनाम मूर्तियाँ बनी हुई हैं। एक अन्य गुफा इस गुफा के बगल में हैं। यह गुहा मंदिर दक्षिणाभिमुखी है।

इस पहाड़ के सामने 2-2।। मील दूर पर कृष्णा नदी बहती है। पहाड़ के सामने चौरस मैदान है।

तेर अतिशय क्षेत्र

–ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ)

मार्ग और अवस्थिति–'श्री दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र तेर' महाराष्ट्र प्रान्त के उस्मानाबाद जिले में अवस्थित है। उस्मानाबाद से यह स्थान 19 किमी. है और वार्शी से 49 किमी. है। पक्की सड़क है। उस्मानाबाद से तेर के लिए एस.टी. बस जाती है। यह क्षेत्र तेर गाँव से बाहर वाटर वर्क्स के ठीक सामने खेतों में वृक्षों की छाया में स्थित है। गाँव में दिगम्बर जैनों का कोई घर नहीं है। क्षेत्र का पुजारी गाँव में रहता है। वह प्रातःकाल मंदिर में आकर पूजा-प्रक्षाल कर जाता है। दर्शनार्थियों को गाँव में जाकर पुजारी से मंदिर की चाबी लानी पड़ती है। रेल-मार्ग से कुर्डुवाड़ी-लातूर शाखा लाइन (एस.सी.रेलवे) पर तेर स्टेशन है। स्टेशन से लगभग 3 किमी. गाँव है। किन्तु यहाँ ठहरने आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। उस्मानाबाद में ठहरने की सुविधा है। इस क्षेत्र के निकट तेरणा नदी बहती है तथा यहाँ से 6 किमी. दूर नवनिर्मित हवाई अड्डा है।

अतिशय क्षेत्र–यह एक अतिशय क्षेत्र है। क्षेत्र पर अहाते के बाहर एक बावड़ी है। उसके संबंध में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि प्राचीनकाल में इस क्षेत्र पर यात्री बहुसंख्या में आते थे। उन्हें भोजन पकाने या अन्य किसी काम के लिए बर्तनों की जब आवश्यकता होती थी तो वे एक कागज पर अपेक्षित बर्तनों के नाम लिखकर उस बावड़ी में डाल देते थे। थोड़ी देर के पश्चात् सूची वाले बर्तन बावड़ी के जल पर बहते हुए आ जाते थे। यात्री उन्हें निकाल लेते थे। काम हो जाने पर वे पुनः बर्तनों को बावड़ी में डाल देते थे और बर्तन थोड़ी देर बाद जल में अदृश्य हो जाते थे। एक बार एक यात्री ने किसी बड़े बर्तन का नाम पर्ची पर लिखकर पर्ची बावड़ी में डाल दी। थोड़ी देर बाद वह बर्तन जल से बाहर आ गया। यात्री उसे निकालकर ले गया। किन्तु उसने काम हो जाने पर बर्तन बावड़ी को नहीं लौटाया। एक व्यक्ति की इस बदनीयती के कारण बावड़ी नाराज हो गयी। तब से उसने बर्तन देना बंद कर दिया।

उत्तरप्रदेश के मदनपुर क्षेत्र पर भी वहाँ की बावड़ी के संबधं में बिल्कुल इसी प्रकार की किंवदन्ती प्रचलित है।

तेर की बावड़ी के संबंध में एक अन्य महत्वपूर्ण सूचना मिली कि इस बावड़ीका जल पहले बड़ा स्वादिष्ट और आरोग्यप्रद था। दूर-दूर से रुग्ण व्यक्ति यहाँ आते थे और बावड़ी का जल तथा यहाँ की वायु का सेवन करके वे स्वस्थ हो जाते थे।

क्षेत्र पर एक अद्भुत बात और सुनने में आयी है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। कहते हैं, इस मंदिर में ऐसी ईंटों का उपयोग किया गया है जो जल में तैरती हैं। कुछ वर्ष पूर्व मंदिर की दीवार में खिड़कियाँ बनायी गयी थीं। दीवार तोड़ने से जो ईंटे निकलीं वे जल में डालने पर डूबती नहीं हैं, बल्कि तैरती रहती हैं। इस आश्चर्यजनक बात की भनक अनेक लोगों के कानों तक पहुँची तो वे उन ईंटों को उठा ले गये। किन्तु वहाँ पड़े हुए मलवे में अब भी कुछ ईंटें या उनके खण्ड तलाश करने पर मिल जाते हैं।

इस घटना में सच्चाई कहाँ तक है यह एक अलग विचारणीय बात है लेकिन इससे रामायण की उस घटना का समर्थन हो जाता है जब लंका पर आक्रमण करने के लिए रामचन्द्र जी की आज्ञा से उस काल के प्रसिद्ध वास्तुविद्या विशारद नल और नील ने समुद्र के ऊपर ऐसे सेतु का निर्माण किया, जिसमें स्तंभ या आधार नहीं थे। अवश्य ही उन्होंने तेर के इस मंदिर में प्रयुक्त इन ईंटों के समान ही किन्हीं विशेष प्रकार की ईंटों या पत्थरों का प्रयोग किया होगा।

सिरपुर (अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ) के निकटस्थ पवली ग्राम के प्राचीन जैन मंदिर में भी ऐसी ईंटें मिलने का उल्लेख है।

इतिहास–तेर नगर का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। पौराणिक दृष्टि से इसका इतिहास नल और नील के काल तक जा पहुँचता है। उस समय तेर बहुत बड़ा नगर था। नल और नील इस नगर में आये थे। इस संबंध में हरिषेण कथाकोष, करकण्डुचरिउ आदि ग्रंथों में महत्वपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। इनमें बताया है कि विजयार्ध पर्वत पर रहने वाले रूप और यौवन से सम्पन्न नल और नील नामक दो भाई तेर नगर में आये। उन्होंने इस नगर के निकट पर्वत पर

भगवान पार्श्वनाथ की एक लयण (गुफा) का निर्माण किया। उसमें सहस्र स्तंभ बने थे। किन्तु निरन्तर जल की धारा पड़ने से वह लयण नष्ट हो गया।

इसके पश्चात् उपर्युक्त ग्रंथों के अनुसार **भगवान पार्श्वनाथ के तीर्थ** में हुआ करकण्डु नरेश दिग्विजय करता हुआ यहाँ आया था।

इसके बाद अनेक शताब्दियों तक इस नगर का नाम अंधकार में डूबा रहा। किन्तु 10वीं शताब्दी में शिलाहार नरेशों के काल में इस नगर को विशेष महत्व प्राप्त हो गया। इन नरेशों की महाराष्ट्रीय शाखा का शासन कराड़, कोल्हापुर, मिरज आदि पर था और ये सभी नरेश 'तगरपुर-वराधीश्वर' विरुद धारण करते थे। तेर का नाम ही उस समय तगरपुर था। इस शाखा के राज्य का संस्थापक जतिग था। राष्ट्रकूट नरेशों के ह्रास काल में ये नरेश एक प्रकार से स्वतंत्र हो गये। इन्होंने 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण कोंकण को भी अपने राज्य में मिला लिया था। जतिग के पश्चात् इस वंश में गण्डरादित्य और विजयादित्य प्रसिद्ध नरेश हुए। इस वंश का ध्वज स्वर्ण गरुड़ ध्वज था। ये नरेश अपने आपको विद्याधर नरेश जीमूतकेतु (जिसने गरुड़ को अपने शरीर का सम्पूर्ण मांस खिला दिया था) के पुत्र जीमूतवाहन के वंशज कहते थे। इन नरेशों के शासनकाल में तेर (तगर) की श्रीसमृद्धि बहुत बढ़ी। शिलाहार नरेशों के शासनकाल के पश्चात् तेर का वैभव धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

शिलाहार वंशी नरेशों के शासन-काल में (संभवतः गण्डरादित्य के शासनकाल में) तेर में वर्तमान जैन मंदिर का निर्माण हुआ था और अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई थी। स्वयं गण्डरादित्य ने मिरज जिले में गण्डर समुद्र नामक एक विशाल तालाब का निर्माण कराया था और उसके तट पर अनेक जैन, हिन्दू और बौद्ध मंदिर बनवाये थे। उन मंदिरों के रख-रखाव के लिए उसने अनेक गाँव भी दान में दिये थे। यह नरेश 12वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था।

उत्तरकालीन साहित्य में तेर—शिलाहार वंश के बाद संभवतः तेर का वैभव क्षीण हो गया, किन्तु लगता है, इसका एक अतिशय क्षेत्र के रूप में महत्व कई शताब्दियों तक कायम रहा। भट्टारक युग के कई लेखकों ने इसका उल्लेख किया है।

16वीं शताब्दी के अंतिम चरण तथा 17वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुए ब्रह्मज्ञानसागर ने 'सर्वतीर्थ वंदना' में तेर के संबंध में एक छप्पय लिखा है जो इस प्रकार है-

'तेरनपुर सुप्रसिद्ध स्वर्गपुरी सम जाणो।
वर्धमान जिनदेव तास तिहाँ चैत्य बखाणो।
पाप हरत सुख करत अतिशय श्रीजिनकेरो।
भविक लोक भयहरत दूर करत भवफेरो।
समवसरण जिनवीर को तेर थकी पाछ्यो वल्यो।
ब्रह्मज्ञान जग उद्धरण पावापुर सर शिव मल्यो।।34।।'

ब्रह्मज्ञानसागर के इस छप्पय से लगता है कि उनके काल में तेरनगर वैभव सम्पन्न था, यहाँ की मूर्ति अतिशय सम्पन्न थी और उनके काल में भी यह धारणा प्रचलित थी कि तेर में भगवान महावीर का समवसरण आया था।

काष्ठासंघी भट्टारक रत्नभूषण के शिष्य जयसागर ने 'तीर्थ जयमाला' में 'सुतेरनयर वन्दौं वर्धमान' इस पद्यांश द्वारा तेरनगर के वर्धमान स्वामी की वंदना की है। जयसागर जी का समय 17वीं शताब्दी का पूर्वार्ध निश्चित किया गया है।

उपर्युक्त अवतरणों से यह तो सुनिश्चित है ही कि तेर क्षेत्र की ख्याति 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक तो निश्चित रूप से थी।

क्षेत्र-दर्शन—इस क्षेत्र पर दोहरा परकोटा बना हुआ है। बाहरी परकोटे से अंदर प्रवेश करने पर मंदिर के चारों ओर काफी बड़ा मैदान मिलता है। पुनः दूसरे परकोटे के प्रवेश-द्वार से प्रवेश करते हैं। दायींओर हेमाड़पन्थी महावीर मंदिर है। उसके गर्भगृह में वेदी पर भगवान महावीर की 5 फुट 3 इंच ऊँची और 5 फुट चौड़ी कृष्ण पाषाण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

वक्ष पर श्रीवत्स है। स्कंध पर जटाएँ हैं। चार वर्ष पूर्व इस प्रतिमा पर लेप किया गया था, जिससे मूर्ति लेख और लांछन दब गये हैं। मूलनायक के आगे पाषाण और धातु की 1-1 प्रतिमा आसीन है। वेदी के आगे एक छोटा चबूतरा है।

परिक्रमा-पथ में पृष्ठ-भित्ति में तीन आले बने हुए हैं। मध्य आले में श्यामवर्ण 2 फुट 7 इंच ऊँचे पद्मासन मुद्रा में ऋषभदेव विराजमान हैं। सिर के ऊपर पाषाणफलक में छत्रत्रयी है। वक्ष पर श्रीवत्स अंकित है। कंधे पर जटाएँ हैं। शेष दोनों आलों में बलुए वर्ण की 2 फुट 7 इंच उन्नत पार्श्वनाथ की सप्तफणमण्डित खड्गासन मूर्तियाँ हैं। दोनों मूर्तियों के पृष्ठभाग में सर्प वलय बना है। दायीं ओर की मूर्ति के आगे 8 इंच लम्बे चरण बने हुए हैं। यहाँ पार्श्वनाथ की 3 फुट ऊँची मूर्ति है।

गर्भगृह से निकलने पर बायीं ओर पार्श्वनाथ की 3 फुट ऊँची बलुए पाषाण की खड्गासन मूर्ति है। उसके आगे चरण हैं। पादपीठ पर बायीं ओर स्पष्ट लेख अंकित है। इसके पार्श्व में एक फलक में 2 फुट 3 इंच ऊँची खड्गासन मूर्ति है।

बाहर बरामदे में आने पर बायीं ओर 3 फुट 3 इंच ऊँची खण्डित खड्गासन मूर्ति रखी है। आगे चरण हैं। दायीं ओर 5 मूर्तियाँ रखी हुई हैं–3 फुट 10 इंच ऊँचे पाषाणफलक में खड्गासन, 5 फुट 4 इंच ऊँचे स्तंभ में सर्वतोभद्रिका, 2 फुट 5 इंच ऊँचे स्तंभ में सर्वतोभद्रिका, 1 फुट 5 इंच के फलक में खड्गासन प्रतिमाऔर 3 फुट 10 इंच उन्नत पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा। एक पाषाण में चरण बने हैं। ये सभी प्रतिमाएँ बलुए पाषाण कीहैं, प्राचीन हैं और पर्याप्त घिस गई हैं।

इस मंदिर के आगे खुला सहन है। बायीं ओर (परकोटे के प्रवेश-द्वार के ठीक सामने) हेमाड़पन्थी पार्श्वनाथ मंदिर है। मंदिर के द्वार के बाहर दायीं ओर 3 फुट 10 इंच लम्बी और 2 फुट 2 इंच चौड़ी शिला पर 24 तीर्थंकरों के चरण चिन्ह बने हुए हैं। इसके आगे एक पाषाण पर 10 इंच लम्बे चरण चिन्ह हैं। कहा जाता है कि इस नगर में भगवान महावीर का समवसरण आया था। उनकी स्मृति में ये चरण-चिन्ह अंकित किये गये हैं।

पार्श्वनाथ मंदिर में केवल गर्भगृह बना हुआ है। पार्श्वनाथ भगवान की 5 फुट 9 इंच ऊँची कृष्ण वर्ण खड्गासन प्रतिमा है। पृष्ठ भाग में सर्पवलय है। इसके अतिरिक्त वेदी पर 11 पाषाण प्रतिमाएँ और हैं जिनमें 4 सर्वतोभद्रिका हैं।

पार्श्वनाथ मंदिर के बगल में एक कमरे का फर्श तथा एक कमरा बना हुआ है।

वर्तमान में इन दोनों मंदिरों की दशा बहुत खराब है। भित्तियों में बड़े-बड़े वृक्ष उग आये हैं।

इन मंदिरों के परकोटे के आगे एक लघु पार्श्वनाथ मंदिर है। इसकी दशा भी बहुत ही शोचनीय है। मंदिर में संभवतः कभी झाड़ू भी नहीं लगती है। इसमें प्रवेश करने पर दुर्गन्ध आती है। दीवारों पर मकड़ियों के जाले लगे हुए हैं।

इस मंदिर में सामने दीवार में 2 फुट 10 इंच ऊँचे एक शिलाफलक में पार्श्वनाथ की एक खड्गासन मूर्ति है। बायीं ओर एक पद्मासन मूर्ति है। उसके नीचे पक्षी बने हुए हैं। दायीं ओर एक खड्गासन मूर्ति है। बगल में भक्त हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ अतिप्राचीन हैं एवं पुरा वास्तु संग्रहालय है।

इसके दोनों पार्श्वों में सर्प-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दायीं ओर पाँच सर्प कुण्डली मारे और फण फैलाये दिखाई पड़ते हैं। बायीं ओर वृक्षाकार आकृति में अधोभाग में 5 सर्पफण तथा ऊपर के गुच्छक में 25 सर्पफण बने हुए हैं।

बायीं ओर की दीवार में 5 फुट 9 इंच ऊँचे स्तंभ में सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है। दायीं ओर दीवार में 3 फुट 7 इंच ऊँचे फलक में पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा है तथा अधोभाग में दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इस मंदिर के ऊपर भी अन्य मंदिरों के समान शिखर हैं।

इसके निकट ही वह बावड़ी है, जिसके चमत्कारों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। बावड़ी के ऊपर चार पाषाण-सर्प बने हुए हैं। पास ही एक ऊँची गुमटी में चरण विराजमान हैं। उसके निकट एक देवड़ी में भी चरण हैं। ये दोनों किन्हीं मुनियों की समाधियाँ हैं।

वार्षिक मेला–यहाँ प्रतिवर्ष माघ शुक्ला 5 और 6 को वार्षिक मेला लगता था। इस अवसर पर भगवान की पालकी निकलती थी। लगभग 4-5 सौ यात्री इसमें सम्मिलित होते थे। अब प्रत्येक अमावस्या को मेला लगता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–यहाँ 15 कमरे हैं तथा 2 हाल हैं। एक शासकीय गेस्ट हाउस है। भोजनशाला आदि नहीं है।

सावरगाँव अतिशय क्षेत्र

–महावीर मेहता (मंत्री)

मार्ग और अवस्थिति–'श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सावरगाँव' महाराष्ट्र प्रान्त के तुलजापुर तालुका में उस्मानाबाद जिले में अवस्थित है। शोलापुर से सावरगाँव के लिए सूरतगाँव होती हुई एक बस संध्या को 5 बजे जाती है। शोलापुर से सूरतगांव के लिए तो अनेक बसें चलती हैं। शोलापुर से सूरतगाँव 25 किमी. है। सूरतगाँव से सावरगाँव के लिए बैलगाड़ियाँ भी मिलती हैं।

अतिशय–इस क्षेत्र पर भगवान पार्श्वनाथ की बड़ी मनोज्ञ प्रतिमा है। इस प्रदेश के लोक-मानस में ऐसी श्रद्धा व्याप्त है कि यह प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है और इसकी भक्ति करने से मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसी श्रद्धावश अनेक लोग यहाँ मनौती मानने आते हैं। यह भी कहा जाता है कि दिन में इस मूर्ति के तीन रूप बदलते हैं। प्रातःकाल मूर्ति के मुख पर बाल्यकाल के भाव अंकित रहते हैं, मध्यान्ह में मुखमुद्रा पर तारुण्य का ओज रहता है और संध्या के समय उसके मुख पर वार्धक्य झलकता है।

क्षेत्र-दर्शन–जिनालय गाँव के मध्य में बना हुआ है। सीढ़ियों से चढ़कर जिनालय के मुख्यद्वार में प्रवेश करते हैं। द्वार के ऊपर नौबतखाना बना हुआ है। संभवतः प्राचीनकाल में इस मंदिर का बहुत वैभव होगा और यहाँ चारों संध्याओं के समय नौबत बजती होगी। चारों ओर ऊँची दीवार बनी हुई है। मंदिर मध्य में है। उसकेचारों ओर खुला सहन है।

मंदिर में प्रवेश करने पर सामने गर्भगृह में वेदी पर मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की 4 फीट 4 इंच ऊँची और 3 फीट चौड़ी कृष्णवर्ण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह नौ फणमण्डित है। इसके पृष्ठ भाग में सर्पवलय है। इसके कर्ण स्कंधचुम्बी हैं। वक्ष पर श्रीवत्स नहीं है। इस प्रतिमा के ऊपर संवत् 1983 में लेप कराया गया था। इससे प्रतिमा की शैली और लेख दब गया है। अतः इसका काल-निर्णय करना कठिन है। लेप के पश्चात् प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुई। इस अवसर पर पूज्य आचार्य शांतिसागर जी अपने संघ सहित पधारे थे।

इस वेदी पर मूलनायक के अतिरिक्त 1 फुट 7 इंच ऊँची और संवत् 1990 में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ की एक पाषाण प्रतिमा और धातु की 9 प्रतिमाएँ और हैं।

गर्भगृह के द्वार के सिरदल पर अर्हन्त मूर्ति बनी हुई है। द्वार पाषाण का बना हुआ है और अलंकृत है। आगे बरामदा है। इसमें दो स्तंभ हैं, उनके सिरदल पर भी अर्हन्त प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। दायीं ओर एक चौकोर पाषाणखण्ड के ऊपर 2 फीट 4 इंच ऊँची हलके श्यामवर्ण की सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है। इसके पास चबूतरे पर मुनि-चरण बने हुए हैं। दायीं तथा बायीं दीवारवेदियों में पार्श्वनाथ की 1 फुट 5 इंच ऊँची कृष्णवर्ण और शान्तिनाथ की 1 फुट 4 इंच ऊँची श्वेत वर्ण प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मुख्य वेदी से बाहर निकलने पर दायीं ओर एक कमरे में वेदी पर कृष्णवर्ण की संवत् 1598 में प्रतिष्ठित आदिनाथ की पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त वेदी पर सुपार्श्वनाथ, अरनाथ, चन्द्रप्रभ, पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों की 8 पाषाण प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

बायीं ओर की कोठरी में वेदी पर 2 फीट 1 इंच ऊँची पद्मासनस्थ पार्श्वनाथ की कृष्णवर्ण प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त वेदी पर 7 पाषाण प्रतिमाएँ और हैं।

मुख्य गर्भगृह के आगे 4 स्तंभों पर आधारित खेला-मण्डप है। उसके आगे खुला स्तंभमण्डप है। मंदिर के ऊपर शिखर है। स्तंभमण्डप के ऊपर लघु शिखर है। इनसे आगे सभामण्डप बना हुआ है।

सभामण्डप के दोनों ओर खुले मैदान में दो मानस्तंभ है। ये 5 खण्डों में बने हुए हैं। पूर्व दिशा के मानस्तंभ में प्रत्येक खण्ड में मिट्टी की 1 और शीर्ष वेदी पर 1 प्रतिमा विराजमान हैं, जबकि पश्चिम के मानस्तंभ में केवल शीर्ष वेदी में

4 प्रतिमाएँ विराजमान हैं। पूर्व दिशा के मानस्तंभ के पास 2 फीट 7 इंच ऊँची एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी है। प्रतिमा काफी प्राचीन है। इसके पास प्राचीन चरण बने हुए हैं। एक ओर क्षेत्रपाल की मूर्ति है।

विशेषता—यह अतिशय क्षेत्र 1100 वर्ष पुराना है। अहिंसा का प्रतीक यहाँ आज भी उपलब्ध है। श्रावण सुदी एकम से पंचमी तक सांप, बिच्छू आदि वैरभाव के जीव साथ-साथ खेलते पाये जाते हैं। उस समय बड़ा जुलूस होता है। मंदिर हेमाड़पंथी सिर्फ पत्थर पर पत्थर रखकर बनवाया गया है। 400 वर्ष पहले यह जमीन खुदवाकर निकाला गया है। भगवान की प्रतिमा चतुर्थकालीन 2600 साल पुरानी कार्बन टेस्ट से सिद्ध हुई है। मूलनायक प्रतिमा को चाँदी का छत्र चढ़ाने से चढ़ाने वाले की हर मनोकामना पूरी होती है। क्षेत्र महान अतिशयकारी है।

धर्मशाला—यहाँ पृथक् धर्मशाला नहीं है। किन्तु मंदिर के अहाते में ही 7 कमरे बने हुए हैं। यहाँ कुआँ हैं। मंदिर में बिजली नहीं है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—क्षेत्र पर कुल 14 कमरे हैं। 2 हॉल हैं। भोजनशाला सशुल्क है, अनुरोध पर भोजन तैयार हो जाता है। यहाँ पुस्तकालय भी है। सोलापुर एवं तुलजापुर से बस सेवा उपलब्धहै, क्षेत्र पर भी बस की सुविधा है।

मेला—क्षेत्र पर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष वदी 10 और 11 को दो दिन मेला होता है। इस अवसर पर बाहर से लगभग 500 व्यक्ति आ जाते हैं। इस समय भगवान की पालकी नगर-भर में निकाली जाती है।

आष्टा अतिशय क्षेत्र

–बी.आर.भस्मे (मंत्री)

मार्ग और अवस्थिति—'श्री दिगम्बर जैन विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कासार आष्टा' महाराष्ट्र प्रदेश के उस्मानाबाद जिले में उमर्गा तालुका में स्थित है। यह सोलापुर-हैदराबाद नेशनल हाइवे नं. 9 पर स्थित भोसगागाँव से 5 किमी. दूर पर है। गाँव तक पक्की सड़क है। यह उमर्गा से 24 किमी., उस्मानाबाद से 51 किमी. और शोलापुर से 64 किमी. है। शोलापुर से आष्टा के लिए संध्या के 5 बजे बस चलती है और वह प्रातः 8 बजे शोलापुर को वापस लौटती है। आष्टा नामक कई गाँव हैं। प्रस्तुत आष्टा कासार आष्टा कहलाता है। क्योंकि प्राचीन काल में इस गाँव में कासार जैनों के 200-250 घर थे।

अतिशय क्षेत्र—यहाँ पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति अतिशयसम्पन्न है। इसकी भक्ति से विघ्नों का नाश होता है अतः भक्तजन इसे विघ्नहर पार्श्वनाथ कहते हैं। इस मूर्ति के संबंध में एक किंवदन्ती प्रचलित है। लगभग 500 वर्ष पूर्व मुस्लिम शासन-काल में जब मूर्तियों का निर्मम भंजन किया जा रहा था, मूर्ति के रक्षण की दृष्टि से यह निर्णय किया गया कि मूर्ति को किसी सुरक्षित स्थान पर स्थानान्तरित कर दिया जाये। फलतः इसे संदूक में बंद करके ले जाया जा रहा था। जब यहाँ से 2 किमी. दूर दस्तापुर गाँव के बाहर बैलगाड़ी पहुँची तो वहाँ जाकर वह रुक गई। बहुत प्रयत्न करने पर भी गाड़ी वहाँ से नहीं चली। उसी रात आष्टा गाँव के जैन पटेल की पुत्रवधू को स्वप्न आया कि मूर्ति कहीं नहीं जायेगी, दस्तापुर जाकर मूर्ति को वापस लौटा लाओ। प्रातःकाल उठने पर उसने अपने स्वप्न की चर्चा घर वालों से की। सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए। परिवार तथा गाँव के अन्य जैन नर-नारी भक्ति गीत गाते हुए दस्तापुर पहुँचे। वहाँ उक्त पुत्रवधू तथा अन्य लोगों ने भगवान के दर्शन किये, आरती उतारी और भक्तिपूर्वक पूजा की तथा प्रार्थना की–"प्रभु! हम आपको ले जाने के लिए आये हैं, आप चलिए।" साधारण प्रयत्न करते ही गाड़ी आष्टा की ओर चल पड़ी। वापस पहुँचने पर इसके लिए मंदिर का निर्माण कराया गया और प्रतिष्ठा महोत्सव के साथ उस मंदिर में मूर्ति को विराजमान किया गया।

मूर्ति के चमत्कार को देखकर सभी ग्रामवासी इसके भक्त बन गये और इसे ग्राम-देवता मानने लगे। तभी से जैन-जैनेतर सभी लोग भगवान के दर्शनों के लिए यहाँ आने लगे। अनेक भक्तजन मनोकामनाएँ लेकर प्रभु-चरणों में आते हैं और प्रभु की भक्ति से उनकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सरकार ने भी भगवान की सेवा-पूजा के लिए कुछ भूमि मंदिर को दी है जो आज भी मंदिर के नाम विद्यमान है। मनौती मानने वाले भक्तगण घी से भगवान का अभिषेक भी करते हैं।

इस मूर्ति के ऊपर सर्प-फण नहीं है, पादपीठ पर सर्प लांछन बना हुआ है।

क्षेत्र दर्शन—प्राचीन मंदिर हेमाड़पंथी शैली का था। उसके स्थान पर एक मण्डप बनाकर उसके दो भाग कर दिये गये हैं। अन्तःभाग गर्भगृह और बाह्य भाग सभामण्डप के रूप में प्रयुक्त होता है। इस मण्डप के दायीं ओर कुछ भाग प्राचीन मंदिर का अवशिष्ट है।

गर्भगृह में चबूतरानुमा वेदी में मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की 1 फुट 5 इंच ऊँची कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। वक्ष पर श्रीवत्स है। प्रतिमा के कर्ण स्कंधचुम्बी हैं। इसके आगे भगवान ऋषभदेव की 10 इंच ऊंची श्वेत पद्मासन प्रतिमा आसीन है। मूर्ति-लेख के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1472 में की गई थी। इसके दोनों पार्श्वों में पार्श्वनाथ और ऋषभदेव की धातु प्रतिमाएँ हैं।

बायीं ओर एक कृष्ण पाषाणफलक में 24 तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। मध्य के खुले भाग में खड्गासन पार्श्वनाथ हैं। फलक का आकार 2 फीट 2 इंच है तथा इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् 1929 है। इसके दोनों ओर पार्श्वनाथ और बिना लांछन की कृष्णवर्ण वाली पद्मासन प्रतिमाएँ हैं तथा 3 धातु प्रतिमाएँ हैं। इनके बायीं ओर चन्द्रप्रभ भगवान की श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। इनके अतिरिक्त 2 पाषाण की तथा 7 धातु की प्रतिमाएँ और हैं।

मूलनायक की दायीं ओर श्वेत मार्बल का 3 फीट 4 इंच ऊँचा संवत् 1929 में प्रतिष्ठित 24 तीर्थंकरों का एक फलक है, जिसके मध्य में पार्श्वनाथ प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त एक खड्गासन और एक पद्मासन धातु प्रतिमा है।

इसकी दायीं ओर 9 इंच ऊँची सुपार्श्वनाथ की श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त कृष्ण पाषाण की 4 तथा धातु की 12 प्रतिमाएँ हैं।

ये सब प्रतिमाएँ एक ही चबूतरे पर विराजमान हैं। यहाँ क्षेत्रपाल भी विराजमान हैं।

सभामण्डप में पाषाण की पद्मावती देवी आसीन हैं। मण्डप का फर्श मार्बल का है। मंदिर के ऊपर शिखर नहीं है। सभामण्डप के आगे बरामदा और प्रांगण है।

धर्मशाला—यहाँ यात्रियों के लिए पृथक् से कोई धर्मशाला नहीं है। गर्भगृह के सामने हाल एवं कार्यालय है। मंदिर के प्रांगण में ही सामने और दायीं ओर दो बरामदे हैं तथा इन बरामदों में दो कमरे हैं। कमरे रसोई के, बरामदे यात्रियों के ठहरने के काम आते हैं। मंदिर में बिजली है, कुआँ है और यात्रियों की सुविधा के लिए बरतनों की भी व्यवस्था है। शौच के लिए गाँव से बाहर जाना पड़ता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—यहाँ 6 कमरे और 3 हॉल हैं। 16 किमी. दूर नलदुर्ग में गेस्ट हाउस उपलब्ध है। भोजनशाला सशुल्क है, अनुरोध पर भोजन तैयार होता है। श्रमण संस्कृत साधनापीठ है। क्षेत्र पर पुस्तकालय भी है।

मेला—क्षेत्र पर चैत्र वदी 4 (भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञान तिथि) को वार्षिक मेला होता है। मेला दो दिन का होता है। पहले दिन चैत्र वदी 3 को भगवान शांतिनाथ विधान पूजा होती है। जलयात्रा, पूजा-अभिषेक, प्रवचन और पालकी आदि कार्यक्रम होते हैं। मेले के लिए पूरा महाराष्ट्र और तटवर्ती कर्नाटक और आंध्रप्रदेश से यात्री यहाँ इकट्ठे होते हैं।

जिंतूर अतिशय क्षेत्र में पार्श्वनाथ की अद्भुत प्रतिमा

–जीवन प्रकाश जैन, हस्तिनापुर

मार्ग और अवस्थिति–महाराष्ट्र प्रान्त में दक्षिण-मध्य रेलवे की काचेगुड़ा-मनमाड़ शाखा लाइन के परभणीस्टेशन से 42 किमी. जिंतूर नगर है और वहाँ से लगभग 4 किमी. दूर सह्याद्रि पर्वत पर श्रीनेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अवस्थित है। जिंतूर नगर तक पक्की सड़क है तथा परभणी से बस सेवा चालू है। नगर से क्षेत्र तक कच्ची सड़क है।

इतिहास–इस नगर का प्राचीन नाम जैनपुर है। जैनपुर से जिंतूर किस प्रकार हो गया, इससंबंध में सेदुल कादरी द्वारा लिखित फारसी की एक पुस्तक में विवरण दिया गया है। यह पुस्तक ताड़पत्र परलिखी हुई है और यहाँ की मस्जिद में सुरक्षित है। इस पुस्तक में इस क्षेत्र और नगर का जो विवरण मिलता है, उससे पता चलता है कि कादरी अफगानिस्तान से दिल्ली आया था। वह दिल्ली से अजमेर की ख्वाजा साहब की दरगाह में पहुँचा। वहाँ के वली ने उसे बताया कि तुम दक्षिण में जैनपुर जाओ। वहाँ बड़ा मजबूत किला है। रात में उसके द्वार बंद हो जाते हैं और सुबह खुलते हैं। तुम उसे जाकर विजय करो। गाँव के नजदीक पहाड़ पर गुफाएँ हैं, जिनमें अंधकार रहता है। उन गुफाओं में बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं।

वली के आदेश से कादरी अजमेर से खुलताबाद, दौलताबाद होता हुआ जैनपुर पहुँचा। उन दिनों जैनपुर यमराज और नेमिराज नामक दो जैन भाइयों की जागीर था। कादरी ने बादशाह की सेना की सहायता से नगर को जीत लिया और यहाँ की तथा क्षेत्र की मूर्तियों का विध्वंस किया तथा मंदिरों को मस्जिद बना दिया। यह घटना हिजरी सन् 631 की है। नगर को जीतकर उसका नाम जिंतूर रख दिया। तब से इस नगर को जिंतूर कहा जाने लगा। मुसलमानों के वार्षिक उत्सव के समय इस ग्रंथ का पाठ किया जाता है।

संवत् 1532 में नांदगाँव निवासी बघेरवाल जातीय वीर संघवी आये। यहाँ के मंदिरों की भग्नावस्था देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। तब उन्होंने इन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। कहते हैं, नगर में पहले 14 जैन मंदिर थे और 300 घर जैनों के थे। इनमें वर्तमान में 2 मंदिर विद्यमान हैं। 3-4 मंदिरों के भग्नावशेष मिलते हैं। 7 जैन मंदिरों की मूलनायक प्रतिमाएँ साहू के जैन मंदिर में रखी हुई हैं।

जिस पहाड़ पर जिनालय है, उसके सामने की पहाड़ी पर एक गुफा बनी हुई है, जिसे चन्द्रगुफा कहते हैं। यहाँ मुसलमान आक्रान्ताओं ने बहुत सी मूर्तियाँ तोड़ दी थीं। कहते हैं, जैनों ने खण्डित मूर्तियाँ जमीन में दबा दीं और अखण्डित मूर्तियाँ गाँव के मंदिर में पहुँचा दीं। यह गुफा पर्याप्त प्राचीन है। इस गुफा का उल्लेख संस्कृत निर्वाण-भक्ति में आया है। इस उल्लेख से ही उसकी प्राचीनता असन्दिग्ध हो जाती है। सन्दर्भ श्लोक इस प्रकार है-

''श्रीमच्चन्द्रगुहावराक्षरशिलां वस्त्रावतारं सदा।
अर्चे चारणपादुकाचणगुहे सर्वामरैरर्चिताम्।
भास्वल्लक्षणपङ्क्तिनिर्वृतिपथं विन्दुं च धर्मं शिलाम्।
सम्यग्ज्ञानशिलाञ्च नेमिनिलयं वन्दे च शृङ्गत्रयम्।।28।।''

इसमें ज्ञानशिला और नेमिनाथ मंदिर के नेमिनाथ की वंदना की गई है। संभवतः प्राचीनकाल में चन्द्रगुफा में कोई शिला थी जिसे ज्ञानशिला कहते थे। आज ज्ञानशिला को तो लोग भूल गये हैं, किन्तु चन्द्रगुहा और चारण मुनियों की पादुका (चरण-चिन्ह) अब भी विद्यमान हैं।

क्षेत्र-दर्शन–क्षेत्र तक कच्ची सड़क है। एक अहाते के अंदर गुहा-मंदिर हैं। ये गुफाएँ एक ही मंदिर के भीतर हैं। इस मंदिर में कुल 6 गुफाएँ या तल-प्रकोष्ठ बने हुए हैं। इन प्रकोष्ठों में जाने के लिएमार्ग है। मंदिर में प्रवेश करते ही दायीं ओर एक प्रकोष्ठ में 4 फीट 8 इंच ऊँचा पाषाण-चैत्य है। जिसमें चारों दिशाओं में 27 मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पाषाण श्यामवर्ण है।

यहाँ से सीढ़ियों द्वारा उतरकर एक कक्ष में जाते हैं। इसमें भगवान आदिनाथ की 2 फीट अवगाहना की श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति के स्कंध तक जटाएँ हैं। चरण चौकी पर कोई लांछन नहीं है किन्तु जटाओं के कारण

इसे आदिनाथ की प्रतिमा माना जाता है। इस कक्ष से 4 सीढ़ियाँ उतरकर 11 फीट 9 इंच चौड़ा और 16 फीट 6 इंच लम्बा एक कक्ष मिलता है। इसमें भगवान शांतिनाथ की 5 फीट 4 इंच ऊँची और 4 फीट 4 इंच चौड़ी एक पद्मासन प्रतिमा आसीन है। वक्ष पर श्रीवत्स नहीं है। कर्ण स्कन्धस्पर्शी हैं।

इस कक्ष से थोड़ा उतरने पर एक कक्ष में भगवान नेमिनाथ की 7 फीट 2 इंच ऊँची और 5 फीट 8 इंच चौड़ी श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके वक्ष पर श्रीवत्स है। कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। जटाएँ स्कंध तक हैं। इसके अधोभाग में दोनों पार्श्वों में 3-3 भक्त-स्त्रियों और मध्य में 3 भक्त-पुरुषों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इसके पार्श्ववर्ती एक अन्य प्रकोष्ठ में भगवान पार्श्वनाथ की नौ फणावलिमण्डित 5 फीट 10 इंच उत्तुंग और 4 फीट 5 इंच चौड़ी पद्मासन प्रतिमा है। वक्ष पर श्रीवत्स है। पृष्ठ भाग पर सर्पवलय बना हुआ है। यह वलय एक अन्य वलय में लिपटा हुआ है। वक्ष पर श्रीवत्स अंकित है। इसके फण पर्याप्त भारयुक्त हैं। इतनी विशाल और भारी मूर्ति लगभग 3 इंच वर्गाकार पाषाण के एक टुकड़े पर आधारित है। अतः लोग इसे अंतरिक्ष पार्श्वनाथ कहते हैं। इस मूर्ति के नीचे इतना स्थान है जिसमें मोटा कोबरा सर्प आसानी से बैठ सकता है। एकाधिक बार यहाँ काला फनियल सर्प भी मूर्ति के नीचे बैठा हुआ देखा गया है। लगभग 20 वर्ष पहले मूर्ति के गिर जाने की आशंका से इस पाषाण-खण्ड को तोड़ने का प्रयत्न किया गया था। वह पाषाण-खण्ड तो नहीं टूटा, किन्तु प्रतिमा का बैलेन्स कुछ बिगड़ गया। फलतः प्रतिमा बायीं ओर से भूमि पर कुछ टिक गई है।

इस प्रकोष्ठ से ऊपर चढ़कर चैत्यस्तंभ के पार्श्ववर्ती प्रकोष्ठ में एक खड्गासन मूर्ति बाहुबली स्वामी की है जिसकी अवगाहना 4 फुट 7 इंच है। इसमें गहन माधवी लताओं का अंकन है। दायें स्कंध पर एक सर्प फण निकाले हुए है। बायें कंधे का सर्पफण खण्डित है। इस कक्ष में बायीं ओर एक शिलाफलक में मध्य में एक खड्गासन प्रतिमा बनी हुई है। ऊपर दोनों किनारों पर दो पद्मासन और अधोभाग में खड्गासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मध्यवर्ती मूर्ति के कंधों पर जटाएँ हैं।

इस मंदिर के सामने की पहाड़ी पर चन्द्रगुफा है। दोनों पहाड़ियों के मध्य में धवधवी नामक नदी बहती है। नेमिनाथ मंदिर से नीचे घाटी में उतरने पर एक चबूतरे पर चरण-पादुका बनी है। संभवतः यह किसी चारण मुनि की स्मृति में बनायी गयी है जो इस पहाड़ी पर कभी आये थे। सामने की पहाड़ी पर राजुलमती का प्राचीन मंदिर है। यहाँ एक वेदी है। इसके चारों ओर तीन कटनी वाली दीवार है। मुस्लिम आक्रामकों की विध्वंस-लीला से बची हुई यहाँ की मूर्तियाँ गाँव के मंदिर में पहुँचा दी गई है।

प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठाचार्य—इन मूर्तियों की चरण-चौकी पर लेख उत्कीर्ण हैं। इन लेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस मंदिर और उसके तल-प्रकोष्ठों का निर्माण नाँदगाँव निवासी बघेरवाल जातीय सुरा गोत्रीय जस्सू संघवी और उनकी धर्मपत्नी कौण्डाई के पुत्र वीर संघवी ने कराया था। वीर संघवी की पत्नी का नाम घालावी था। उसके पुत्रों के नाम नेमा, सातू या शान्ति, अन्तू या अनन्तसा थे। मूर्ति-लेखों में उनकी स्त्रियों के ये छह नाम मिलते हैं—गंगाई, सरस्वती, जयवाई, नेमाई, रतनाई और आदाई।

इन मूर्तियों के प्रतिष्ठाचार्य थे भट्टारक कुमुदचन्द्राचार्य, जो मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण कुन्दकुन्दाचार्यान्वय के भट्टारक थे। भट्टारक कुमुदचन्द्र, भट्टारक धर्मचन्द्र, उनके शिष्य भट्टारक धर्मभूषणउनके शिष्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। ये सभी भट्टारक कारंजा पीठ के अधीश्वर थे। इनका भट्टारक-काल संवत् 1656 से 1670 तक [1]निश्चित किया गया है। इन्होंने इस क्षेत्र की मूर्तियों की प्रतिष्ठा शक संवत् 1532 श्रावण सुदी 13 और फाल्गुन वदी 10 को करायी थी।

किन्तु एक खण्डित पार्श्वनाथ मूर्ति की चरण-चौकी के लेख से कुछ नवीन तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है, जिनसे (1) इन भट्टारकों के काल-निर्णय पर प्रभाव पड़ता है। (2) वीर संघवी के पाँच पुत्र थे, इस मान्यता का खण्डन होता है तथा (3) यह धारणा कि वीर संघवी के तीन पुत्रों ने अपने नाम के अनुरूप तीर्थंकरों की एक-एक प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायी,

1. भट्टारक सम्प्रदाय, लेखक प्रो. वी.पी. जोहरापुरकर एम.ए., पृ. 77।

इस धारणा का भी खण्डन होता है। बल्कि मूर्ति-लेखों के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीर संघवी और उनके पुत्रों ने इन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करायी थी।

पार्श्वनाथ की मूर्ति का लेख इस प्रकार है–

"शक 1530 फाल्गुन शुद्ध 5 मूलसंघे बलात्कारगणे कुन्दकुन्दाचार्य-परम्परागत भट्टारव धर्मचन्द्र तत्पट्टे भट्टारक श्री धर्मभूषण तत्पट्टे भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री कुमुदचन्द्राचार्य भट्टारक धर्मचन्द्र उपदेशात् बघेरवालजातीय सुरागोत्रे संघवी श्री जसाशाह भार्या संघवी श्री कौण्डाई तस्य पुत्र 9 एतेषां मध्येसंघवी श्री वीर सा भार्या घालावी तस्य पुत्रत्रय संघवी श्री अनन्तसा भार्या गंगाई संघवी सातूसा भार्या रतनाई संघाधिपति श्री नेमासा भार्या जयवाई नित्यं प्रणमति।"

इस लेख से ज्ञात होता है कि भट्टारक धर्मचन्द्र ने शक संवत् 1530 में पार्श्वनाथ-मूर्ति की प्रतिष्ठा की; जसाशाह संघवी के 9 पुत्र थे, जिनमें संघवी वीरसा एक पुत्र था; और संघवी वीरसा के 3 पुत्र थे। इससे ऐसा लगता है कि इन तीन पुत्रों की 6 पत्नियों के जो नाम विभिन्न मूर्ति-लेखों में उपलब्ध होते हैं, वस्तुतः उनकी पत्नियों की संख्या 3 ही थी, किन्तु उनके नाम दो-दो थे।

क्षेत्र की दशा–कुछ वर्षों पहले भूकम्प आया था। उससे पहाड़ी क्रेक हो गयी। भूकम्प का प्रभाव मंदिर पर भी पड़ा था। पहाड़ी की दरार की सीध में मंदिर की दीवार और छत में भी दरार पड़ गई। इससे मंदिर की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है। चन्द्रगुफा में कोई मूर्ति नहीं है।

क्षेत्र पर धर्मशाला है, जिसमें 6 कमरे हैं।

गाँव के मंदिर–जिन्तूर नगर में वर्तमान में 2 मंदिर हैं-(1) साहू का महावीर दिगम्बर जैन मंदिर और (2) महावीर दिगम्बर जैन मंदिर पुराना।

साहू का मंदिर–यह मंदिर मूर्तियों की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। नगर के प्राचीन 7 मंदिरों की मूलनायक प्रतिमाएँ इसी मंदिर में विराजमान हैं। दूसरे मंदिर से भी कुछ मूर्तियाँ लाकर यहाँ विराजमान कर दी गई हैं। इस मंदिर में एक वेदी पर पीतल के दो सहस्रकूट चैत्यालय हैं। दायीं ओर का चैत्यालय 4 फीट 9 इंच ऊँचा और 1 फुट 1 इंच चौड़ा है। बायीं ओर का जिनालय लोकाकार है और 4 फीट 5 इंच ऊँचा है। दोनों ही जिनालयों में 1000+24 मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इनमें 1000 मूर्तियाँ सहस्रकूट जिनालय की और 24 मूर्तियाँ वर्तमान 24 तीर्थंकरों की लगती है। लोकाकार जिनालय के ऊपर लेख उत्कीर्ण है। इसके अनुसार शक संवत् 1541 माघ वदी 8 को काष्ठासंघ लाडबागड़गच्छ पुष्करगण लोहाचार्यान्वय के भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति, उनके शिष्य हेमेन्द्रकीर्ति, उनके शिष्य प्रतापकीर्ति ने बघेरवालजातीय पिवल्या गोत्र के पुंजा और उनके परिवार की ओर से इस सहस्रकूट जिनालय की प्रतिष्ठा की।

इसके ऊपर भाग में भी लेख है। इसके अनुसार काष्ठासंघ नन्दीतट गच्छ विद्यागण रामसेनान्वय के भट्टारक श्री विद्याभूषण, उनके शिष्य भट्टारक श्रीभूषण ने इसकी प्रतिष्ठा की।

उपर्युक्त दो लेखों के कारण यह समझना कठिन है कि वस्तुतः किन भट्टारक ने इसकी प्रतिष्ठा की। संभवतः भट्टारक प्रतापकीर्ति के उपदेश से इस जिनालय का निर्माण हुआ और भट्टारक श्रीभूषण ने इसकी प्रतिष्ठा की।

इस मंदिर (साहू के मंदिर) का भी एक अद्भुत इतिहास है। इस मंदिर में भगवान शीतलनाथ की श्वेत पद्मासन मूलनायक प्रतिमा थी। घटना उस समय की है, जब इस मंदिर पर मुस्लिम काल में मुसलमानों का आक्रमण होने वाला था। आक्रमण होने से पहले एक सज्जन को रात्रि में स्वप्न हुआ, 'तुम मुझे यहाँ से तत्काल हटा दो।' प्रातःकाल होने पर उसने शुद्ध वस्त्र पहनकर छिपाकर मूर्ति को वहाँ से हटा दिया और कहीं छिपा दिया। थोड़े समय बाद ही मुलसमानों ने मंदिर पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने मूर्तियों का भयंकर विनाश किया। मंदिर को मस्जिद बना दिया। जब हैदराबाद के विरुद्ध भारत सरकार ने पुलिस एक्शन लिया और हैदराबाद रियासत को भारत में सम्मिलित कर लिया, तब जैनों ने सरकार के समक्ष इसके बारे में अपनी माँग रखी। मस्जिद बना लेने पर भी वेदी के दो स्तंभों पर पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ

बनी हुई थीं। अतः सरकार ने जैनों की माँग स्वीकार कर ली और यह मंदिर पुनः जैनों के अधिकार में दे दिया गया। तब इसका जीर्णोद्धार किया गया।

पुराना महावीर मंदिर—इस मंदिर में यों तो अनेक मूर्तियाँ हैं, किन्तु दो मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। चक्रनाथ—गुहा से लायी हुई पद्मावती देवी की 3 फुट ऊँची एक श्यामवर्ण प्रतिमा है। इसकी अलंकरण-सज्जा दर्शनीय है। देवी चतुर्भुजी है। दूसरी मूर्ति भगवान पार्श्वनाथ की है जो 3 फीट 10 इंच ऊँची है और खड्गासन मुद्रा मेंअवस्थित है। इस प्रतिमा के ऊपर लताएँ अंकित हैं जो भगवान की ध्यानावस्था को प्रकट करती हैं। प्रतिमा अद्भुत है। इसकी प्रतिष्ठा शक संवत् 1514 में हुई थी।

इस मंदिर के नीचे तलघर बना हुआ है। यहाँ की समस्त मूर्तियाँ साहू के मंदिर में पहुँचा दी गई हैं।

धर्मशाला—यहाँ धर्मशाला है जिसमें 1 कमरा है। बिजली और कुआँ है। मंदिर के पृष्ठभाग में नवीन धर्मशाला और प्रवचन मण्डप का निर्माण हो रहा है।

मेला—यहाँ प्रतिवर्ष भाद्रपद वदी 5 को वार्षिक मेला होता है। इस अवसर पर गाँव से भगवान की पालकी निकलती है जो क्षेत्र पर जाती है। इस मेले में चार-पाँच सौ व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। श्रावण सुदी 6 को नेमिनाथ भगवान के तपकल्याणक के दिन क्षेत्र पर पूजा का विशेष आयोजन होता है।

सन् 1974 के पश्चात्—आज भी तीर्थक्षेत्र का अतिशयपूर्ववत् विद्यमान है। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा 9 फणायुक्त पाषाण की जमीन से 4 अंगुली अधर है। भगवान के पार्श्वभाग में नागफणा ॐकार युक्त है। इस गुफा की छत में एक झरोखा प्रकाश हेतु रखा गया है। इस झरोखे से आया सूर्यप्रकाश श्री जी की चंद्राकार प्रदक्षिणा करता है और बाद में लुप्त हो जाता है।

सन् 1947 में हैदराबाद के निजाम के राज्य में इस क्षेत्र पर घोर उपसर्ग हुआ। भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति को छोड़ अन्य सभी मूर्तियों को क्षति पहुँचाई। भगवान पार्श्वनाथ की गुफा में चमत्कार हुआ। श्रीजी का नागफणा दुष्ट गुंडों को जीवित दिखा और वो लोग डरकर भाग गए। आज भी कभी-कभी एक 10-12 फीट लम्बा साँप भगवान के दर्शन करने के लिए प्रगट होता है, कई यात्रियों ने उसे देखा भी है।

क्षेत्र पर नया यात्री निवास निर्मित हुआ है। 21 कमरे तथा 2 हाल में लगभग 300 यात्रियों की निवास व्यवस्था हो सकती है। सशुल्क भोजन व्यवस्था उपलब्ध है।

अरटाल अतिशय क्षेत्र

(ऋषभदेशना पत्रिका से साभार)

कर्नाटक हावेरी जिले में स्थित अरटाल ग्राम का पूरा नाम अरटावली था। हावेरी से अरटाल ग्राम करीब 51 किमी. दूर है। अरटाल अतिशय क्षेत्र में विराजमान 1008 श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा अतिशययुक्त है। मंदिर की प्राचीनता-वहाँ विद्यमान शिलालेख के अनुसार सन् 1045 में इस मंदिर का निर्माण हुआ था। आज भी यह मंदिर और मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं।

प्राचीन इतिहास के अनुसार यह क्षेत्र तपस्वियों की तपोभूमि रहा है। अभी कुछ वर्षों से पार्श्वनाथ भगवान की मनोज्ञ प्रतिमा के मस्तक से सुगंधित जल झरने लगा है। अब यह आसपास के लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनता जा रहा है। मूर्ति इतनी मनोज्ञ है कि दर्शनार्थी मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। क्षेत्र उन्नति की ओर अग्रसर है।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पनागर

(ऋषभदेशना पत्रिका से साभार)

जबलपुर (म.प्र.) से 15 किमी. दूर राष्ट्रीय राजमार्ग क्र. 7 पर मुख्य सड़क पर बलेहा सरोवर के निकट प्रकृति की सुरम्य गोद में सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पनागर सर्वाधिक मनोहर एवं रमणीक स्थल है। हस्तलिखित ग्रंथों से यह ज्ञात होता है कि इसका इतिहास लगभग 2000 वर्ष प्राचीन है। पूर्व में इसका नाम पनागर था अर्थात् यह नगर स्वर्ण का भंडार माना जाता था।

यहाँ की अद्भुत सम्पत्ति 'बड़ा जैन मंदिर' है जो अपनी पुरातन गौरव गाथा का यशोगान कर रहा है। मंदिर के सूक्ष्म वैभव का अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट है कि इसका निर्माण तीन या चार चरणों में हुआ होगा। मंदिर के मध्य भाग की मूल वेदी, जिसे आज जती बाबा की वेदी कहा जाता है का निर्माण संवत् 884 में हुआ और उसी समय भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। मध्य भाग का निर्माण सं. 886 में उत्खनन से प्राप्त मूर्तिवत् रचना को प्रतिष्ठापित कर हुआ। मध्य भाग में ही नंदीश्वर जिनालय का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् सं. 1964, 1324, 1400, 1511, 1548 में आयोजित महानतम् धार्मिक आयोजनों का स्वर्णिम श्रृँखलावत उल्लेख प्राप्त है।

संवत् 1548 बड़े जैन मंदिर के इतिहास का स्वर्णमयी वर्ष कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस वर्ष नगर के कछियाने वार्ड में खुदाई में प्राप्त श्री 1008 भगवान शांतिनाथ की चतुर्थकालीन अतिशयमयी मूर्ति की प्रतिष्ठापना करने हेतु बड़े जैन मंदिर में मूर्ति लाते समय असावधानीवश बाएँ हाथ का भाग खंडित हो गया था। देवों ने समाज के प्रमुख को आदेश देकर वह हाथ दंत कथानुसार गुड़ एवं चूने से जुड़वाया एवं 1548 में मूर्तिकी पुनर्प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई गई।

इसी प्रकार भगवान पार्श्वनाथ की 5 फुट उत्तुंग चमत्कारी पद्मासन मूर्ति बैलगाड़ी से कहीं अन्यत्र ले जायी जा रही थी। गाड़ी बड़े मंदिर जी के समीप पहुँचकर अनेक प्रयास के बाद भी आगे नहीं बढ़ सकी। अंततः समाज के प्रमुखों के सद्प्रयासों से उस मूर्ति की प्रतिस्थापना संवत् 1548 में हुई।

अतिशयों की श्रृंखला में एक घटना और जुड़ी जब भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति दीवाल से सटाकर बनी वेदी से स्वयमेव पूजन हेतु निर्मित स्थल पर मध्य में अवस्थित हो गई।

उपर्युक्त घटनाक्रमों के साथ अधोवर्णित अतिशयों की गाथाएँ घर-घर की कहानी बनी हुई हैं। 1. सन् 1940 में भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति से अनवरत जलस्राव का होना, प्रत्यक्षदृष्टि प्रेमलाल माली। 2. सन् 1910 में केशरवृष्टि 3. 3 फरवरी 1983 को भगवान शांतिनाथ, पार्श्वनाथ एवं अन्य त्रिमूर्तियों से अनवरत 6 घंटे तक जलस्राव का होना। 4. बड़े मंदिरजी की अनेक वेदियों में रात्रि में देवों द्वारा आरती, भजन, संगीत की ध्वनि आदि।

इस प्रकार यहाँ के मंदिरों के निर्माण की पृष्ठभूमि में जैन समाज की भूमिका कभी भुलाई नहीं जा सकती। भगवान शांतिनाथ की प्राचीन भव्य मूर्ति एवं भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन मूर्ति दर्शकों का मन मोह लेती है। किंवदन्ती है कि भगवान शांतिनाथ के दरबार से आज तक कभी कोई भक्त खाली हाथ नहीं लौटा।

पंचायती मंदिर में लगभग 2.5 मीटर ऊँची भगवान ऋषभदेव की कायोत्सर्ग मुद्रा में अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा है। इसके अतिशय के कारण ही यह क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ है। सम्मेदशिखर जी की रचना दर्शनीय है। अतिशयकारी भगवान सुपार्श्वनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार 2 वर्ष में पूर्ण हुआ है। प्रतिमा अति मनोज्ञ, मनोहारी एवं सुन्दर है, वेदी प्रतिष्ठा के समय से ही साक्षात् अतिशययुक्त है।

मढ़िया जी से यह क्षेत्र 20 किमी. एवं कोनीजी से 60 किमी. दूर अवस्थित है। देवरी से मात्र 2 किमी. दूर रेलवे स्टेशन है, वहाँ से आटो रिक्शा आदि से क्षेत्र पर जाया जा सकता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—यात्रियों के आवास हेतु यहाँ 1 धर्मशाला, 1 जती भवन एवं 14 अन्य कमरे हैं। भोजनशाला सशुल्क है। एक विद्यालय (कन्याशाला) तथा पुस्तकालय भी है।

श्री विघ्नहरणेश्वर पार्श्वनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र कुलचारम

–राजेश पहाड़े, हैदराबाद

बैंगलोर से 300 कि.मी. एवं हैदराबाद से 80 कि.मी. दूर विघ्नहरणेश्वर पार्श्वनाथ आन्ध्रप्रदेश के मेदक जिले में स्थित है। काले पाषाण की सुन्दर प्रतिमा सन् 1984 में खुदाई में प्राप्त हुई। सप्तफणी इस खड्गासन प्रतिमा की ऊँचाई 9 फीट है। यह अलौकिक देवरक्षित प्रतिमा 9 वीं शताब्दी की है। प्रतिमा के चरणों में धरणेन्द्र नाग की पूंछ दर्शायी गई है जो कुण्डली बनाता हुआ प्रतिमा के मस्तक पर 7 फण फैलाए हुए है। पुरातत्त्व विभाग के अनुसार इस प्रतिमा का निर्माण 11 वीं शताब्दी के आसपास चालुक्य राजा त्रिभुवन बल्लभ के पहले किया गया है।

श्री विघ्नहरणेश्वर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कुलचारम का उद्भव 21 वींसदी की अतिशय पूर्ण जैनधर्म की अहिंसामयी प्रभावना की महत्त्वपूर्ण घटना थी। आन्ध्रप्रदेश में सहस्रों वर्ष प्राचीनबिखरी जैन संस्कृति, मंदिर–मूर्ति जैनत्व के इस इतिहास को उजागर करते हैं। जैन अनुयायियों के अभाव में जैनेतर बन्धुओंद्वारा पूजित मूर्तियाँ भी वहाँ हैं। जैनधर्म की अमिट छाप छोड़ने वाली ये मूर्तियाँ आंधी, तूफान, बारिश, सर्दी, गर्मी आदि के थपेड़ोंको सहती हुई अपने अस्तित्त्व को स्वयं सुरक्षित बनाए हुए हैं।

श्री क्षेत्र कुलचारम के पार्श्वनाथ स्वयं अपने अतिशयपूर्ण प्रभाव से प्रगट हुए हैं। कहते हैं कि शासन ने जब दीन अनाथों के पुनर्वास हेतु भूगर्भ में छुपी प्रतिमाजी वाले भूखण्ड पर घर निर्माण करा दिए तब वे सारे घर जलकर राख के ढ़ेर बन गए और धीरे-धीरे धरा का प्रक्षालन होने पर भव्य फणावली के दर्शन लोगों को प्राप्त हुए। भव्य आकार से युक्त वृहत्काय पाषाण को दो दर्जन से भी अधिक लोगों ने जब मिलकर सीधा किया तब सर्वांग सुन्दर सम्पूर्ण अवयवों से संयुक्त दिगम्बर अवस्था में प्राप्त मूर्ति को जैनों की समझकर हैदराबाद दि. जैन समाज को समाचार विदित कराया गया। चूँकि जब से यह प्रतिमा प्रकट हुई है तभी से ग्रामवासियों में समृद्धि तथा आस्था इतनी ज्यादा हो चुकी थी कि सरकारी अनुमति के बावजूद इस प्रतिमा को यहाँ से दूसरी जगह नहीं ले जाया जा सका। तब हैदराबाद दि. जैन समाज के सन् 1984 से 1997 तक लगातार प्रयास किए जाने पर मूर्ति प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हुई।

हैदराबाद के वरिष्ठ नागरिकों के अथक प्रयास के पश्चात् ग्रामवासियों की श्रद्धा को देखते हुए यह निर्णय लिया गया कि इस भव्य मूर्ति की प्रतिष्ठापना हेतु यहीं पर धर्मशाला, भोजनशाला आदि की सुविधाओं से परिपूर्ण एक भव्य जिनालय का निर्माण कराया जाये जो वास्तु स्थापत्य पुरातत्त्व की कला का दर्शन कराने वाला हो।

वर्तमान में क्षेत्र पर अत्यन्त सुन्दर मनोज्ञ कलाकृति से युक्त वास्तुशास्त्र के अनुरूप शिखरयुक्त जिनमंदिर है जो दर्शकों का मन आल्हादित कर देता है। मंदिर का मुख्य प्रवेशद्वार और मूलवेदी अति सुन्दर एवं दर्शनीय है। क्षेत्र पर शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की प्रतिकृति भी देखने लायक है। शिखरजी के दर्शन से अनायास ही अनन्तानंत सिद्धों का स्मरण हो जाता है। निर्माणाधीन मानस्तंभ वास्तु स्थापत्य शिल्पकला का एक अद्वितीय नमूना है।

भगवान पार्श्वनाथ की उत्तुंग वृहत्काय, सप्त फणावलीयुक्त श्यामवर्णी कमलासन सहित प्रतिमा लगभग 11 फुट 3 इंच ऊँचाई वाली है। कुण्डलाकार चरणों से लेकर सिर के ऊपर तक कुण्डलाकार सर्प अत्यन्त सुन्दर है। फणावली के ठीक ऊपर से किया गया क्षीराभिषेक सभी फणों से होता हुआ सिर और कंधों से गिरता हुआ चरणों तक पहुँचता है। क्षीराभिषेक का दृश्य मोतियों की धारा के समान प्रतीत होता है। प्रतिमा अपने पूर्ण दिगम्बरत्व के कारण जैनधर्म और अहिंसा धर्म एवं त्याग का संदेश प्रदान कर रही है। विघ्नहरणेश्वर पार्श्वनाथ जी दिन-प्रतिदिन भक्त श्रद्धालुओं के कष्टनिवारक और मनोरथपूरक होने से लोकप्रिय होते जा रहे हैं। जैनों के अलावा जैनेतर लोग बड़ी श्रद्धा से विपुल संख्या में क्षेत्र पर दर्शन के लिए पहुँचते हैं और अपनी मनोभिलाषा पूरी करते हैं।

जैन पुरातात्त्विक सम्पदा आंध्रप्रदेश राज्य में फैली पड़ी है। जो मुख्यतः 40 स्थानों पर प्राप्त हो चुकी है, जिसका उल्लेख आंध्रप्रदेश शासन में पुरातत्त्व निदेशक रहे डॉ. जी. जवाहर लाल ने अपनी पुस्तक अंग्रेजी ''जैन सेन्टर इन आंध्रप्रदेश'' में एवं 'जैन मान्यूमेंट इन आंध्रप्रदेश' में किया है।

क्षेत्र पर विकास कार्य प्रगति पर है। आंध्रप्रदेश के इस प्रथम तीर्थस्थल पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा मार्च 2003 में सम्पन्न हो चुकी है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–यात्रियों के ठहरने के लिए क्षेत्र पर 1 हाल और 20 कमरे हैं। भोजनशाला सशुल्क है।

चन्द्रवाड़ अतिशय क्षेत्र

–चंद्रप्रकाश जैन, चौकी गेट, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

फिरोजाबाद से 7 किमी. दूर चन्द्रवाड 'शौरीपुर के उत्तर और फिरोजाबाद के दक्षिण में यमुना किनारे बसा हुआ है। इतिहास में चन्द्रवाड़ को चन्द्रघाट के नाम से भी उल्लेख किया गया है। आज भी इसके प्राचीन ध्वंसावशेषों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह छोटे से गाँव के रूप में बसा हुआ है, ऐतिहासिक दृष्टि से कहा जाता है कि भगवान कृष्ण के पिता वासुदेव की नगरी चन्द्रवाड को वि.स. 1052 में चन्द्रपाल (चन्द्रसेन) नाम के राजा ने पुनः बसाया था।

आज भी प्राचीन अतिशय क्षेत्र चन्द्रवाड़ में जैन मूर्तियों के मिलने का सिलसिला जारी है। इस श्रृँखला में जैनधर्म के **तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ** की मूर्ति मिलने से इस ऐतिहासिक श्रृँखला में एक कड़ी और जुड़ गई है।

कुछ वर्ष पूर्व स्थानीय भारतीय जैन मंच के उत्साही युवा कार्यकर्ताओं ने यमुना नदी के किनारे भगवान चन्द्रप्रभ की चरण-छतरी की स्थापना की है। उसी के पार्श्व में स्थित है प्राचीन हनुमान मंदिर। उसेव वयोवृद्ध पुजारी बाबा डोरीलाल मंदिर के सामने घास-फूँस से आच्छादित स्थान की सफाई पिछले कई दिनों से कर रहे थे स्थान के बीचों-बीच बबूल का एक सूखा ठूँठ खड़ा था। बाबाजी ने उसे खींचा तो उसके साथ हजारों चीटियाँ रेंगकर बाहर अने लगीं तथा ठूँठ की जड़ के साथ सवा छह इंच गुणित सवा चार इंच की अवगाहना की श्यामवर्ण भगवान पार्श्वनाथ की एक सांगोपांग एवं मनोज्ञ प्रतिमा भी निकलकर बाहर आ गई। सूचना पाकर ग्रामवासियों की भीड़ जुटने लगी। अब तक की प्राप्त मूर्तियों में यह सबसे सुन्दर है।

वरिष्ठ जैन विद्वान प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन के अनुसार इस मूर्ति पर अंकित प्रशस्ति भगवान महावीरकालीन, जनभाषा पाली में उत्कीर्ण है तथा उस पर विक्रम संवत् 504 स्पष्ट अंकित है। इससे सिद्ध हैकि यह मूर्ति लगभग सोलह सौ वर्ष प्राचीन है। जहाँ यह मूर्ति मिली है उसके निकट ही पच्चीकारीयुक्त दो स्तंभ, जो क्रमश छह और तीन फुट ऊँचे हैं, भी स्थित हैं। अब सभी को यह विश्वास होने लगा है कि यह क्षेत्र अपने गर्भ में बहुत महत्व कापुरातात्विक सम्पदा समेटे हुए है। यदि शासन-स्तर पर यहाँ उत्खनन कराया जाये तो शिल्पकाल की अनेक चमत्कारिक रचनाएं समने आ सकती हैं।

चन्द्रवाड़ और उसके आस-पास के इलाकों में चौहानवंशी राजाओं का शासन रहा है। उन्हीं के शासनकाल में इस नगर का अभ्युदय हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि में यह निर्विवाद है कि यहाँ का सम्राट जैन धर्मानुयायी था और उसके समय में जैन मंदिर और जिनप्रतिमाओं को बहुतायत से बनाया गया तथा जैन साहित्य, बाहुबली चरित्र, भविष्य दन्तकथा पुण्याश्रव ग्रंथ जैसे अनेक ग्रंथ भी विपुल मात्रा में लिखे गये हैं। मुनि ब्रह्मगुलाल, रइधू महाचन्द्र, लक्ष्मण, श्रीधर, पदमनन्दी, धनपाल, धर्मधर, माणिकचंद्र ऐसे अनेक प्रमाण हैं फिर भी यह अनुसंधान का विषय तो है ही। जैन समाज को ऐसे ऐतिहासिक तथा पुरातात्विक क्षेत्र के लिए अवश्य ही कार्य करना चाहिए।

चन्द्रवाड़ के विकास की कहानी जैन इतिहास का स्वर्णकाल है परन्तु इसके ध्वस्त होने की घटना बहुत ही मर्मस्पर्शी एवं दुःखद है। राजा चन्द्रपाल के शासनकाल में मुहम्मद गौरी ने इस पर आक्रमण किया था, मोहम्मद गौरी से हार जाने के बाद राजा ने चढ़ाई की और राजा वीरगति को प्राप्त हो गया। गौरी ने क्रूरता से जैन मूर्तियों को खण्डहर बना दिया। उस स्थिति में श्रावक लोग अपने प्राण बचाकर भाग गये और काफी कुछ मूर्तियाँ भी अपने साथ ले गये, जो फिरोजाबाद के विभिन्न मंदिरों तथा यत्र-तत्र अन्यान्य स्थानों पर आज प्रचुर मात्रा में प्रतिष्ठित हैं। मुख्यरूप से श्री चन्द्रप्रभु की स्फटिक मणि वाली मूर्ति चन्द्रवाड़ की ही देन है साथ ही श्री शांति, कुंथु, अरहनाथ की मूर्ति व नेमिनाथ की मूर्ति है। बड़े मोहल्ले के जैन मंदिर में काफी मूर्तियाँ चन्द्रवाड़ की हैं। दिल्ली के सेठ कूचा मंदिर में तथा मथुरा संग्रहालय व भिण्ड के मंदिरों के अलावा आस-पास के अनेक स्थानों पर यहाँ की मूर्तियाँ होने के प्रमाण हैं।

कहा जाता है कि यहाँ राजा के संरक्षण में मूर्तिकार मूर्तियाँ गढ़ते रहते थे तथा निर्माण होने के बाद उनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करा दी जाती थी। जनश्रुति तथा जैन साहित्य के अनुसार यहाँ 51 पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं का उल्लेख मिलता है। इससे अनुमान है कि यहाँ जैन मंदिर बहुतायत में होंगे। चन्द्रवाड़ में 24 चरण छतरियाँ भी हैं,

जो जीर्णोद्धार की प्रतीक्षा में हैं। आस-पास समय-समय पर अनेक जिनप्रतिमाएं खंडित एवं अखंडित अवस्था में मिलती रहती हैं। इस क्षेत्र पर दिगम्बर साधुओं का भी आवागमन रहता है। प्रत्येक दो अक्टूबर को यहाँ पर विशाल मेले का आयोजन किया जाता है, जिसमें हजारों नर-नारी उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। जब भी इस स्थल की खुदाई होती है कुछ न कुछ मूल्यवान वस्तु निकलती है। चन्द्रवाड़ से प्राप्त अनेक प्रतिमाएं फिरोजाबाद के अनेक मंदिरों विशेषकर बड़ा मंदिर और चन्द्रप्रभु दि. जैन मंदिर में विराजमान हैं।

इस अत्यंत पिछड़े धार्मिक एवं आस्था से जुड़े क्षेत्र को पुनः विकसित करने के लिए अपनी लोकप्रिय सरकार से हम सभी आशा करते हैं कि इस क्षेत्र को शिक्षा, उद्योग, पर्यटन, यातायात, बिजली,पानी व आम आदमी से जुड़ी अपार समस्याओं को देखते हुए इस क्षेत्र के बहुमुखी विकास के लिए इस क्षेत्र पर सरकार द्वारा योजनाबद्ध तरीके से कार्य किये जायें ताकि जैन समाज की इस विलुप्त होती हुई संस्कृति को बचाया जा सके व इस क्षेत्रमें पुरातत्व महत्व के स्थानों का पुनः जीर्णोद्धार कराया जा सके, ताकि यह क्षेत्र प्रदेश के प्रमुख दार्शनिक स्थल के रूप में विकसित हो सके।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बहलना (उ.प्र.)

–वीरेन्द्र कुमार जैन, सलावा

अतिशय क्षेत्र बहलना एक सुन्दर क्षेत्र है जहाँ प्रवेश करते ही असीम शांति का अनुभव होता है। बहलना अतिशय क्षेत्र दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय मार्ग पर मुजफ्फरनगर बहलना चौक से पश्चिम की ओर 5 किमी. की दूरी पर स्थित है। हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र से यह लगभग 60 किमी. की दूरी पर है।

इस तीर्थक्षेत्र पर भगवान पार्श्वनाथ की अतिशययुक्त प्रतिमा श्वेतवर्णी, नौ फण्वाली अत्यन्त मनोहर है, जो अति प्राचीन है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–प्राचीन इतिहास के पृष्ठों में यह क्षेत्र पहले 'वहरा' नाम से जाना जाता था। यहाँ एक विशाल किला आज भी है। कहते हैं सम्राट शेरशाह सूरी के एक सिपहसालार ने इसका निर्माण कराया था। इस किले के चार मुख्य द्वार थे। समय के साथ-साथ तीन द्वार नहीं रहे आज इसका एक ही द्वार शेष है। इसमें दिल्ली जाने के लिए नीचे-नीचे एक सुरंग भी थी, जो अब बंद हो गई है।

लगभग दो शतक पूर्व 'वहरा' एक बड़ा शहर था। यहाँ पर लगभग 300 जैन परिवार रहते थे एवं भगवान पार्श्वनाथ का भव्य जिनालय था। मूर्ति पर लिखी प्रशस्ति एवं दर्शनमात्र से यह विदित होता है कि श्वेत पाषाण की नौ फण वाली भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति अति प्राचीन, अति सुन्दर, अति गंभीर एवं अतिशययुक्त है। पूर्व में यहाँ सैकड़ों जैन परिवार थे परन्तु समय में परिवर्तन आया और देखते ही देखते सभी परिवार यहाँ से पलायन कर गए, वर्तमान में यहाँ एक भी जैन परिवार नहीं है परन्तु जिनालय की व्यवस्था सुचारू रूप से चल रही है।

अतिशय–प्रतिमा अतिशययुक्त है जिसके कई उदाहरण हैं। कहते हैं आज से 49 वर्ष पूर्व मंदिरजी में चोर घुस आए थे। उनमें से एक ने छत्र, चंवर, सिंहासन और अन्य कीमती सामान गठरी में बांध लिया था। चोर जब बाहर जाने लगे तो रास्ता नहीं मिला। पूरी रात्रि वहीं बंद रहा। प्रातःकाल जब मंदिर खोला गया तो उसे पकड़ लिया गया। चोर ने बतलाया कि ''जब मैं सामान लेकर बाहर जाने लगा तो मुझे आँखों से दिखलाई देना बंद हो गया और मैं बाहर नहीं निकल सका।' उसने भगवान से क्षमायाचना की तभी उसकी आँखों में रोशनी आ गई। महीनों तक भगवान की वेदी में छत्र व घुंघरू हिलना अतिशय के साक्षात् उदाहरण हैं। मंदिरजी में ही भूगर्भ में चरणचिन्ह है जहाँ से प्रतिमा प्राप्त हुई। मंदिरजी के सामने सवा सत्तावन फुट ऊँचा मानस्तंभ है जिस पर सुन्दर कारीगरी की गई है।

मंदिरजी में कुछ वर्ष पूर्व अनायास ही गर्भगृह के दर्शन हुए, यह चारों ओर से पूरी तरह बंद था। गांव की तरफ से इस गृह में आने के लिए लगभग तीन फुट ऊँचे लखोरी ईंटों के दो दरवाजे बने हुए थे। श्रमण सन्तों का मत है कि पूर्व में यह छोटा सा जिनालय रहा होगा। उनका कथन है कि इसमें नीचे तल में मूर्तियाँ विद्यमान हैं और समय आने पर यह प्राप्त होंगी। वर्तमान में यह 'ध्यान केन्द्र' के रूप में है जहाँ पार्श्वनाथ भगवान के चरण स्थापित हैं।

मुनियों की समाधियाँ– क्षेत्र पर तीन मुनिराजों की समाधियाँ बनी हुई हैं। सन् 1965 में परमपूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज का संघ यहाँ पर आया था, उनके संघ के दो मुनिराज श्री बोधिसागर जी एवं श्री सुपार्श्वसागर जी महाराज की समाधि यहाँ हुई तथा वर्ष 2001 में मुनि श्री चारित्रभूषण महाराज की समाधि यहँाहुई। समाधियों के आसपास अच्छी हरियाली है। समाधियों के दर्शन से हमें स्वयं भी समाधिमरणपूर्वक मृत्यु कावरण करने की शिक्षा प्राप्त होती है।

क्षेत्र पर भगवान के अभिषेक हेतु एक विशाल पांडुकशिला निर्मित है। प्रतिवर्ष भगवान पार्श्वनाथ का मोक्षकल्याणक (श्रावण शुक्ला सप्तमी) बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। मंदिरजी के बाहर बाल वाटिका है। जिसमें सुंदर फूलों के मध्य बच्चों की क्रीडा हेतु झूले हैं। क्षेत्र पर लाला चतरसेन प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं शोध संस्थान का निर्माण किया गया है। यहाँ अनेक बीमारियों का उपचार योगासन, प्राणायाम, ध्यान, मिट्टी, जल, भाप, मसाज, एक्यूप्रेशर, चुम्बक, पैरों व घुटनों की कसरत के साथ किया जाता है। सुन्दर नौका विहार भी यहाँ की विशेषता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध आवासादि सुविधाएँ– क्षेत्र पर यात्रियों की सुविधा हेतु कमरे व हॉल की व्यवस्था है। यात्रियों के भोजन हेतु निःशुल्क भोजनालय की व्यवस्था है। सुन्दर प्रतिमा जी, हरे भरे वृक्ष, तीर्थंकर वाटिका, अश्ववन, पार्श्व नौका विहार से यात्री प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सालय भी है।

वार्षिक मेला– क्षेत्र का वार्षिक मेला 2 अक्टूबर, 18 अप्रैल एवं पार्श्वनाथ निर्वाण महोत्सव के दिन होता है।

बालाबेहट

बालाबेहट एक ग्राम है जो उत्तर प्रदेश जिला झाँसी के अंतर्गत स्थित है। यहाँ पर पोस्ट-आफिस भी है। ललितपुर से इस क्षेत्र तक प्रतिदिन मोटर जाती है। बरसात के दिनों में मोटर का आना-जाना बन्द हो जाता है। मार्ग इस प्रकार है–ललितपुर से दक्षिण की ओर ललितपुर-सागर रोड पर लगभग 25 कि.मी. जाते हैं। वहाँ से 13 कि.मी.कच्चा मार्ग है। ललितपुर से अमझराघाटी होकर भी बालाबेहट जाते हैं। अमझराघाटी से 5 कि.मी. पक्का मार्ग है, बाद में लगभग 14 कि.मी. कच्चा मार्ग है। यह रास्ता अपेक्षाकृत अच्छा है। एक अन्य रास्ता करोंदा स्टेशन से है। यहाँ से 16 कि.मी. की दूरी पर उत्तर दिशा में कच्चे रास्ते से बैलगाड़ी द्वारा वहाँ पहुँचा जा सकता है।

यह एक अतिशय क्षेत्र है। यहाँ की मुख्य प्रतिमा काले पाषाण की भगवान् पार्श्वनाथ की है, जो डेढ़ फुट अवगाहना की है। यह प्रतिमा साँवलिया के नाम से प्रचलित है। कहते हैं, कि वि.सं.1500 में किसी व्यक्ति को स्वप्न हुआ और उसने दूसरे दिन इस प्रतिमा को जमीन के अंदर से खोदकर निकाला। तभी से इसकीप्रसिद्धि हो गयी है। अब यह प्रतिमा एक विशाल मंदिर में विराजमान है जो लगभग 200 वर्ष प्राचीन है। जब कभी रात्रि में यहाँ दीपावली नृत्य-पूजन आदि करते हैं, बाजे बजते हैं, यह किंवदन्ती भी प्रचलित है। प्रतिमा के लेख से प्रतीत होता है कि यह वि.सं.1446 में प्रतिष्ठित हुई थी।

क्षेत्र पर एक मंदिर है। एक दूसरा मंदिर भी है जो जीर्णावस्था में है, अतः खाली पड़ा है। प्रतिमाओं की कुल संख्या 51 है। यहाँ दो धर्मशालाएँ हैं जिनमें एक जीर्ण है। गाँव में अभी-अभी कुछ जैनों के घर भी बस गये हैं।

बड़ागाँव

–ब्र. कु. अलका जैन (संघस्थ)

मार्ग– बड़ागाँव का दिगम्बर जैन मंदिर अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ पहुँचने का मार्ग इस प्रकार है–

दिल्ली-सहारनपुर सड़क मार्ग से सड़क के किनारे खेकड़ा बस-स्टैण्ड है। खेकड़ा उत्तर प्रदेश में मेरठ जिले की तहसील बागपत में गुड़, गल्ले की प्रसिद्ध मंडी है। दिल्ली से खेकड़ा का बस-स्टैण्ड 22 कि.मी. है। स्टैण्ड से खेकड़ा का बाजार 2 कि.मी. है। स्टैण्ड पर हर समय ताँगे और रिक्शे मिलते हैं। बाजार से बड़ागाँव 5 कि.मी. है। खेकड़ा से मेरठ जाने वाली बस से बड़ागाँव जा सकते हैं अथवा साइकिल रिक्शा से जा सकते हैं। गाँव में होकर मंदिर के लिए रास्ता है। मंदिर गाँव के बिल्कुल पास है।

अतिशय क्षेत्र–इस मंदिर की प्रसिद्धि अतिशय क्षेत्र के रूप में है। लगभग 50 वर्ष पहले यहाँ एक टीला था, जिस पर झाड़-झंखाड़ उगे हुए थे। देहात के लोग यहाँ मनौती मानने आते रहते थे। अपने जानवरों की बीमारी में या उन्हें नजर लगने पर वे यहाँ बड़ी श्रद्धा से आते थे और दूध चढ़ाकर मनौती मानते थे और उनके पशु रोगमुक्त हो जाते थे। बहुत से लोग अपनी बीमारी, पुत्रप्राप्ति और मुकद्दमों की मनौती मानने भी आते थे और इस टीले पर दूध चढ़ाते थे। इससे उनके विश्वास के अनुरूप उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती थी। सम्भवतः किसी जमाने में यहाँ विशाल मंदिर था। किन्तु मुस्लिम काल में धर्मान्धता अथवा प्रकृतिक प्रकोप के कारण नष्ट हो गया और टीला बन गया।

एक बार ऐलक अनंतकीर्ति जी खेकड़ा ग्राम में पधारे। उस समय प्रसंगवश वहाँ के लोगों ने उनसे इस टीले की तथा उसके अतिशयों की चर्चा की। फलतः वे उसे देखने गये। उन्हें विश्वास हो गया कि इस टीले में अवश्य ही प्रतिमाएँ दबी होंगी। उनकी प्रेरणा से वैशाख वदी 8 संवत् 1978 को इस टीले की खुदाई करायी गयी। खुदाई होने पर प्राचीन मंदिर के भग्नावशेष निकले और उसके बाद बड़ी मनोज्ञ 10 दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ निकलीं, जिनमें 7 पाषाण तथा तीन धातु की थीं। लगभग 5 अंगुल की एक हीरे की भी प्रतिमा निकली थी। किन्तु वह खंडित थी। अतः यमुना नदी में प्रवाहित कर दी गयी। धातु प्रतिमाओं पर कोई लेख नहीं है। किन्तु पाषाण प्रतिमाओं पर (दो को छोड़कर शेष पर) मूर्तिलेख हैं। उनसे ज्ञात होता है कि इन प्रतिमाओं में कुछ 12 वीं शताब्दी की हैं और कुछ 16 वीं शताब्दी की।

इससे उत्साहित होकर यहाँ एक विशाल दिगम्बर जैन मंदिर का निर्माण किया गया और ज्येष्ठ शुक्ला 9 संवत् 1979 को यहाँ भारी मेला हुआ। इसके बाद संवत् 1989 में यहाँ समारोहपूर्वक शिखर की प्रतिष्ठा हुई।

जिस स्थान पर खुदाई की गयी थी, वहाँ पर पक्का कुआँ बना दिया गया। कुआँ 18 फीट गहरा है। इस कुएँ का जल अत्यंत शीतल, स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक था। इसके जल से अनेक रोग दूर हो जाते थे। धीरे-धीरे इस कुएँ की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी और यहाँ बहुत से रोगी आने लगे। इतना ही नहीं, इस कुएँ का जल कनस्तरों में रेल द्वारा बाहर जाने लगा। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि खेकड़ा के स्टेशन पर प्रतिदिन 100-200 कनस्तर जाते थे। वहाँ से उन्हें बाहर भेजा जाता था।

मंदिर में मनौती मानने वाले जैन और अजैन बन्धु अब भी आते हैं। जिनके जानवर बीमार पड़ जाते हैं, वे भी यहाँ मनौती मानने आते हैं।

जिनमंदिर– यह मंदिर शिखरबंद है। शिखर विशाल है। उसका निचला भाग कमलाकार है। मंदिर में केवल एक हालनुमा मोहनगृह है। हाल के बीचों-बीच तीन कटनीवाली गंधकुटी है। गंधकुटी एक पक्के चबूतरे पर बनी हुई है। वेदी में मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना 1 हाथ के लगभग है। प्रतिमा सौम्य और चित्ताकर्षक है। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख सुदी 3 संवत् 1547 में भट्टारक जिनचंद्र ने की थी। इस प्रतिमा के अतिरिक्त एक पीतल की प्रतिमा इस वेदी में विराजमान है।

मंदिर के चारों ओर बरामदा बना हुआ है। बरामदे के चारों कोनों पर शिखरबंद मंदरियाँ बनी हुई हैं। पूर्व की वेदी में ऋषभदेव भगवान की मटमैले रंग की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना डेढ़ हाथ की है। यह प्रतिमा 15 वीं शताब्दी की है तथा यह भूगर्भ से निकली थी।

दक्षिण की वेदी में मूलनायक भगवान विमलनाथ की भूरे पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है। नीचे के हाथ की उँगलियाँ खंडित हैं। इसका लांछन मिट गया है किन्तु परम्परागत मान्यता के अनुसार इसे विमलनाथ की मूर्ति कहा जाता है। मूर्ति के नीचे इतना लेख स्पष्ट पढ़ने में आया है–

संवत् 1127 माघ सुदी 13 श्रीशं लभेथे'

इसी वेदी में भगवान पार्श्वनाथ की एक कृष्ण पाषाण की मूर्ति है। यह पद्मासन है। अवगाहना 1 फुट है। हाथ खंडित हैं। इस पर कोई लेख नहीं है। पालिश कहीं-कहीं उतर गयी है। यह मूर्ति भी विमलनाथ के समकालीन लगती है। ये दोनों भूगर्भ से निकली थीं।

पश्चिम की वेदी में भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की एक हाथ अवगाहना वाली पद्मासन प्रतिमा है। पीतल की एक 6 इंची वेदी में चारों दिशाओं में पीतल की चार खड्गासन चतुर्मुखी प्रतिमाएँ हैं। पीतल की दो प्रतिमाएँ और हैं जो क्रमशः सवा दो इंची और डेढ़ इंची हैं। ये सभी भूगर्भ से निकली थीं।

उत्तर की वेदी में भगवान महावीर की मटमैले रंग की पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना डेढ़ हाथ है। यह पूर्व की वेदी में विराजमान भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा के समकालीन है तथा दोनों का पाषाण भी एक ही है। यह भी भूगर्भ से प्राप्त हुई थी।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त सभी वेदियों में पीतल की एक-एक प्रतिमा और यंत्र हैं, जो सभी आधुनिक हैं।

मंदिर के चारों ओर धर्मशाला है, जिसका द्वार पूर्व दिशा में है। धर्मशाला के बाहर एक पक्का चबूतरा और एक पक्का कुआँ है जो मंदिर की सम्पत्ति है। धर्मशाला के दक्षिण की ओर के कमरों के बीच में एक कमरे में नवीन मंदिर है, जिसमें दो वेदियाँ हैं। बड़ी वेदी में मूलनायक चंद्रप्रभु भगवान की प्रतिमा है। इनके अतिरिक्त तीन पाषाण तथा एक धातु की प्रतिमा है। इनमें एक पाषाण प्रतिमा भूगर्भ से निकली थी। यह एक भूरे पाषाण-खंड में उकेरी हुई है जो प्रायः पाँच अंगुल की है।

छोटी वेदी में शीतलनाथ भगवान की खड्गासन, पाषाण की दो पद्मासन और एक पीतल की खड्गासन प्रतिमा विराजमान है।

मानस्तम्भ का शिलान्यास– कई वर्ष पहले यहाँ क्षुल्लक सुमतिसागर जी पधारे थे। उन्होंने इस क्षेत्र पर मानस्तम्भ के निर्माण की प्रेरणा दी। किन्तु उस समय यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सका। सन् 1971 में आचार्य शिवसागर जी के शिष्य मुनि श्री वृषभसागर जी महाराज ने दिल्ली चातुर्मास के समय लोगों को इस कार्य के लिए पुनः प्रेरित किया।। फलतः 8 नवम्बर सन् 1971 को महाराज जी के सानिध्य में मंदिर के सामने मानस्तम्भ का शिलान्यास हो गया।

यहाँ की जलवायु बड़ी स्वास्थ्यवर्धक है। इस क्षेत्र पर अनेक नवनिर्माण भी प्रबंध समिति द्वारा हुए हैं। बड़ागांव अतिशय क्षेत्र पर अन्य संस्थाएँ भी अनेक नवनिर्माण करके जिनशासन की प्रभावना में अग्रेसर हैं। उनमें प्रमुख रूप से आचार्य श्री सन्मतिसागर महाराज की प्रेरणा से त्रिलोक तीर्थ का निर्माण, आर्यिका श्री चंद्रमती माताजी की प्रेरणा से महिलाश्रम एवं पूज्य मुनि श्री अमितसागर महाराज के शिष्य स्व.मुनि श्री संवेगसागर जी की प्रेरणा से श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन साधु व्रती आश्रम है।

भगवान पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र संकटहरण पार्श्वनाथ, कुशलगढ़

–जयंतीलाल नथमल सेठ (अध्यक्ष)

क्षेत्र विवरण–श्री 1008 संकटहरण अतिशययुक्त पार्श्वनाथ दि. जैन जूना मंदिर, कुशलगढ़, राजस्थान राज्य में बांसवाड़ा जिले के दक्षिण छोर पर गुजरात, मध्यप्रदेश व राजस्थान इन तीनों राज्योंकी सीमा सन्धि स्थल पर स्थित है।

आज से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व कुशलगढ़ नगर सुरम्य प्रकृति के अंचल में बसाया गया था। इसके पश्चात् दि. जैन समाज ने इस मंदिर का निर्माण करवाकर इसमें वर्तमान मूलनायक अतिशययुक्त श्री 1008 संकटहरण पार्श्वनाथ भगवान की अत्यन्त मनोहर एवं आकर्षक अष्टधातु की नौ फणायुक्त संवत् 1623 की प्रतिमा विराजमान की।

मूर्ति का विवरण–संकटहरण भगवान पार्श्वनाथ की यह अष्टधातु प्रतिमा 16वीं शताब्दी की है। मूर्ति की ऊँचाई 18 इंच तथा वजन 20 किलोग्राम है। मूर्ति के ऊपर अत्यन्त मनमोहक 9 फण हैं एवं मूर्ति के पद्मासन के नीचे भी नागफणों को बांधे रखने हेतु त्रिशूल बना हुआ है। पुरातत्त्व विभाग इस मूर्ति को अत्यधिक मूल्यवान घोषित कर राजस्व मण्डल अजमेर में पुरातत्त्व विभाग के म्यूजियम में रखने हेतु निवेदन कर चुका था।

अतिशययुक्त मंदिर का परिचय–संकटहरण मंदिर में मूर्ति स्थापना से ही कुशलगढ़ नगर धन-धान्य से परिपूर्ण था, धीरे-धीरे दिगम्बर जैन समाज के परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही थी अतः इसी मार्ग से कुछ दूरी पर वटवृक्ष के समीप विशाल दि. जैन बीसपंथी मंदिर समाज द्वारा बनवाया गया तथा उसमें मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाकर विराजमान की गई।

सन् 1977 के 40 वर्ष पूर्व अर्थात् सन् 1934 में यह जूना मंदिर क्षतिग्रस्त हो जाने से इस मंदिर जी की समस्त प्रतिमाएँ दिगम्बर जैन बड़वाले बीसपंथी मंदिरजी के एक कमरे में विराजमान की गई। उसके बाद जूना मंदिरजी की पेड़ी बनाने का निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया।

कुछ समय के बाद रात्रि में चोरों द्वारा मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा एवं चौविष्टा ये दोनों प्रतिमाएँ चुराकर कुशलगढ़ से 8 किमी. की दूरी पर एक भयानक जंगल में छिपा दी गई। उसके पश्चात् समाज द्वारा काफी प्रयास के बाद चौविष्टा का पता लगने से उस प्रतिमा को लाकर वापस विराजमान किया गया। चूँकि मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा जंगल में जमीन खोदकर चोरों द्वारा जमीन में छिपा दी गई थी जिससे पता नहीं लग पाया। पता नहीं लगने से मंदिर में जीर्णोद्धार का कार्य नहीं हो सका और कार्य नहीं होने से मंदिर के स्थान पर अशुद्ध पदार्थ, कूड़े व करकट के ढ़ेर तथा झाड़ियों के समूह के रूप में यह स्थान परिवर्तित हो गया। मूर्ति चोरी चले जाने से तथा मूर्ति वापस प्राप्त नहीं होने से दिगम्बर जैन बीसपंथी समाज ने इस जूना मंदिरजी के पुनःनिर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया। इस अविनय परिणाम स्वरूप दिगम्बर जैन समाज कुशलगढ़ व नगरवासियों का व्यवसाय एवं आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन दयनीय होने लगी। संयोग से दिगम्बर जैन समाज एवं नगरनिवासियों के सौभाग्य एवं प्रबल पुण्योदयवश परमपूज्य वात्सल्य दिवाकर आचार्य श्री 108 विमलसागरजी का संघ सहित कुशलगढ़ में पदार्पण हुआ। दिगम्बर जैन समाज ने आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज को जूना मंदिरजी का स्थान दिखलाया तथा चोरी की घटना व क्षतिग्रस्त होने से अवगत करवाया। तब आचार्य महाराज ने कहा कि यहाँ से कूड़ा-करकट हटवाकर यहाँ पर जीर्णोद्धार स्वरूप भवन का निर्माण करवाओ, साथ ही कुछ प्रतिमाएं विराजमान करने की भी प्रेरणा दी और कहा कि इस पवित्र भूमि की यह दशा होने से ही नगरवासियों व दिगम्बर जैनों की आर्थिक स्थिति कमजोर होती जा रही है इसका यही कारण है। इसलिए जीर्णोद्धार कार्य करवाकर एक मूर्ति स्थापित की जावे। तब समाज ने जीर्णोद्धार एवं निर्माण कराने का निर्णय लिया।

आचार्यश्री के विहार के 15 दिन बाद नगरवासियों व दिगम्बर जैन समाज के पुण्योदय से चोरी में गई मूलनायक 1008 पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा कुशलगढ़ से करीब 8 किमी. की दूरी पर ग्रामीण क्षेत्र के पास एक खेत में काश्तकार द्वारा खेत की जुताई करते समय हल के टकराने से प्रगट हुई। काश्तकार ने मूर्ति को उपर्युक्त स्थान पर विराजमान

किया और ग्रामवासियों को ढोल बजाकर सूचित किया। अब प्रतिदिन समस्त ग्रामवासी इकट्ठे होकर बाजे-बजाकर तेल, सिंदूर, अगरबत्ती, धूप, श्रीफल व पैसे आदि चढ़ाकर भगवान की श्रद्धापूर्वक भक्ति करने लगे। इस प्रकार वहाँ पर लोगों का भारी मात्रा में तांता लग गया। संयोगवश इस ग्राम में स्थित पंचायत समिति, कुशलगढ़ के प्राथमिक विद्यालय में सेवारत श्रीमान जयन्तिलाल जी/नथमल जी सेठ, प्रधानाध्यापक जो दिगम्बर जैन बीसपंथी समाज, कुशलगढ़ के अध्यक्ष सेठ नथमल जी/मूलचंद जी कुशलगढ़ के सुपुत्र हैं। उनको जानकारी प्राप्त हुई,उन्होंने उक्त स्थल पर पहुँचकर मूर्ति प्रगट होने संबंधी जानकारी प्राप्तकर श्रद्धापूर्वक भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन किये एवं कुशलगढ़ आकर उन्होंने अपने पिताश्री को एवम् समाज के महानुभावों को इस अभूतपूर्व घटना की सूचना दी। तब अध्यक्ष महोदयजी ने समाज को इकट्ठा करके मूर्ति निकलने के संबंध में समाज को अवगत कराया। तत्पश्चात् समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा बुजुर्गों ने मौके पर पहुँचकर मूर्ति के दर्शन करके बताया कि यह ही जूना मंदिरजी की मूर्ति है और ग्रामवासियों से यह मूर्ति उन्हें सुपुर्द करने के लिए निवेदन किया। परन्तु ग्रामवासियों ने यह मूर्ति सुपुर्द करने से इंकार कर दिया। ग्रामवासियों द्वारा मूर्ति नहीं देने से तहसील कार्यालय कुशलगढ़ में दिगम्बर जैन बीसपंथी समाज द्वारा कार्यवाही की गई। तब माननीय तहसीलदार साहब द्वारा घटनास्थल पर पहुँचकर मूर्ति तहसील कार्यालय में सुरक्षित लाकर रख दी गई। उक्त क्षेत्र के ग्रामवासियों ने भी इस भूमि से प्राप्त मूर्ति पर अपना अधिकार जताते हुए उन्हें मूर्ति वापस लौटाने हेतु आपत्ति-पत्र प्रेषित करदिया।

इस प्रकार श्री 1008 अतिशययुक्त पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा विवादित स्थिति में पहुँच गई और यह मूर्ति श्री तहसीलदार साहब ने श्री जिलाधीश महोदयजी बांसवाड़ा के कार्यालय में पहुँचा दी। तब दोनों पक्षों को श्रीमान जिलाधीश महोदय ने अपना-अपना सबूत पेश करने को कहा। दिगम्बर जैन बीसपंथी समाज द्वारा ठोस सबूत देने पर भी जिलाधीश महोदय ने विरोधी पक्षों को प्रमाणित मानकर उनके पक्ष में अपना निर्णय प्रदान कर दिया।

श्री नथमल जी/मूलचंद जी सेठ दिगम्बर जैन समाज के अध्यक्ष ने समाज के कहे अनुसार जिलाधीश द्वारा दिये गये निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्तकर रेवेन्यू बोर्ड अजमेर में इस अनुचित निर्णय के विरुद्ध अपील कर दी तथा अपने ठोस प्रमाण प्रस्तुत कर विजय श्री का वरण किया। रेवेन्यू बोर्ड अजमेर में अपील का न्यायोचित निर्णय अध्यक्ष दिगम्बर जैन बीसपंथी समाज, कुशलगढ़ के पक्ष में (मूर्ति का स्वामित्व सिद्ध) होने से तथा भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा अध्यक्ष दिगम्बर जैन बीसपंथी समाज कुशलगढ़ को अविलम्ब सुपुर्द करने का आदेश जिलाधीश बांसवाड़ा को प्रदान किये जाने से समाज में हर्ष की लहर दौड़ गई।

जिलाधीश महोदय (बांसवाड़ा) ने यह मूर्ति दिगम्बर जैन बीसपंथी समाज के अध्यक्ष श्री नथमल जी/मूलचंद जी सेठ, निवासी कुशलगढ़ के सुपुर्द कर दी।

श्री अतिशय युक्त 1008 पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति लाने के पश्चात् दिगम्बर जैन समाज बीसपंथी कुशलगढ़ के जूना मंदिर जी का निर्माण कार्य शुरू करके सन् 1986 में समापन किया गया। 23 जून 1988 में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवायी गई और मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा जूना मंदिर में यथास्थान विराजमान की गई।

कहते हैं कि मूर्ति के समक्ष अगरबत्ती जलाकर आराधना करने से मनवांछित फल की प्राप्ति होती है। मूर्ति पर प्रशस्ति (लेख) अंकित है जिसके अनुसार यह संवत् 1623 में भट्टारक सुमतकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित है।

कुशलगढ़ के अन्य दर्शनीय मंदिरों में दिगम्बर जैन बीसपंथी मंदिर (बड़वाला), श्री तेरहपंथी पार्श्वनाथ मंदिर, समवसरण मंदिर, आचार्य सुधर्मसागर नसिया आदि हैं।

आवागमन के साधन–अतिशय क्षेत्र कुशलगढ़ बांसवाड़ा जिले से 60 किमी., दाहोद (गुज.) से 90 किमी., रतलाम (म.प्र.) से 90 किमी. दूरी पर स्थित है। अतिशय क्षेत्र पर आने-जाने के लिए बांसवाड़ा, दाहोद, रतलाम से सीधी बस सुविधा उपलब्ध है। अतिशय क्षेत्र के लिए मुम्बई–दिल्ली बड़ी लाइन के रेलवे स्टेशन दाहोद, थान्दलारोड तथा रतलाम जंक्शन से सीधी बस सेवा उपलब्ध है।

क्षेत्र का संचालन दि. जैन दशाहूमड़ पंच बीसपंथी समाज, कुशलगढ़ द्वारा किया जाता है।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पटनागंज, रहली

–ब्र. कु. प्रीति जैन (संघस्थ)

मध्यप्रदेश के सागर जिलान्तर्गत रहली तहसील मुख्यालय में लगभग 1200 वर्ष प्राचीन श्री दिगम्बर जैन अतिशयकारी तीर्थक्षेत्र पटनागंज जी विशाल क्षेत्र स्थित है। स्वर्णभद्र नदी के सुरम्य तट पर एक ही परकोटे में अतिप्राचीन और अतिशयकारी 30 गगनचुंबी जिनालयों की लम्बी श्रृँखला है। इतने प्राचीन इस क्षेत्र और क्षेत्र पर विराजमान प्रतिमाओं का अतिशय आज भी विद्यमान है।

औरंगजेब के समय किये गये बर्बर अत्याचार के बाद भी सुरक्षित रहे पटनागंज जैन तीर्थ से एकाएक शताब्दी पूर्व यहाँ फैली महामारी एवं वन्य प्राणियों के भय से जैन समाज ने पलायन कर दिया था।

पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी सन् 1944 में जब रहली क्षेत्र पधारे तो अतिशय क्षेत्र पटनागंज के हालात पर हतप्रभ रह गये। उन्होंने पटनागंज के जीर्णोद्धार का दृढ़ निश्चय किया। फलतः सम्पूर्ण जैन समाज का एकीकरण हुआ और तीसरे दिन जीर्णोद्धार कार्य प्रारंभ हुआ।

इस तरह अपने समय से चरमोत्कर्ष और उत्कृष्ट भगवान महावीर स्वामी की विशाल प्रतिमा और सहस्रफणी पार्श्वनाथ की अनूठी प्रतिमा सहित संपूर्ण क्षेत्र का अतिशयपूर्ण दर्शन एक बार फिर वर्णीजी के निमित्त से सुरम्य और सुलभ बन सका।

क्षेत्र के प्रमुख आकर्षण

भगवान मुनिसुव्रतनाथ जी–एक ही परकोटे में एक साथ 30 भव्य जिनमंदिरों में प्रतिष्ठित अतिशयकारी प्रतिमाओं के समूह में एक और अद्वितीय प्रतिमा उल्लेखनीय है। भगवान मुनिसुव्रतनाथजी की प्राचीनता की दृष्टि से भारत की सबसे विशाल पद्मासन प्रतिमा जो कि उत्थई वर्ण में है, अपने आप में अनूठी है।

इसी मंदिर में दशवीं शताब्दी की दो प्रतिमाएँ एवं एक प्रतिमा अन्य वेदी पर स्थापित है। साथ ही साढ़े तीन फुट उत्तुंग मूंगावर्ण की भगवान शांतिनाथ जी की अलौकिक प्रतिमा भी इसी मंदिर में विराजमान है।

प्राचीन रचनाओं में नंदीश्वर द्वीप और पंचमेरु जिनालय के साथ ही समवसरण की रचना भी अतिप्राचीन कला से परिचित कराती है।

सहस्रकूट चैत्यालय–बेमिसाल औद अनूठी रचनाओं में दुनिया का सबसे बड़ा सहस्रकूट चैत्यालय भीकलाकृति का अद्भुत नमूना है। इस 9 फुट ऊँचे अति प्राचीन सहस्रकूट चैत्यालय में 32 फुट कीगोलाई में खड्गासन और पद्मासन मुद्रा में उत्कीर्ण 1008 अरहंत प्रतिमाओं के एक साथ दर्शन भी दर्शनार्थियों को क्षेत्र में बार-बार आने के लिए प्रेरित करते हैं।

सहस्रफणी पार्श्वनाथ जी–चंदनवृष्टि (केशरवृष्टि) आदि अनेक अतिशययुक्त इस प्राचीन क्षेत्र में विराजित भगवान पार्श्वनाथ जी की एक हजार आठ सर्प फणों से युक्त संसार की सबसे विशाल सहस्रफणी प्रतिमा सैकड़ों सालों से इस क्षेत्र को सुशोभित कर रही हैं।

बड़े बाबा भगवान महावीर स्वामी–भगवान महावीर स्वामीजी की (प्राचीनता की दृष्टि से) भारत की सबसे विशाल पद्मासन प्रतिमा पटनागंज के बड़े बाबा के रूप में विद्यमान है। खास बात यह है कि प्रतिष्ठित स्थल पर ही विशाल चट्टान में आसन सहित विशालकाय प्रतिमा उत्कीर्ण होने पर जब इसे अन्यत्र ले जाना संभव नहीं हो सका, तो इसी स्थान पर भव्य मंदिर का निर्माण किया गया, जो कि सदियों से अपनी अतिशययुक्त विशेषताओं के कारण आस्था का केन्द्र बिन्दु है। भारत की सबसे विशाल भगवान महावीर स्वामी की उत्तुंग 13 फुट इस पद्मासन प्राचीन प्रतिमा के दर्शन कर धर्मावलम्बी श्रद्धालु अपनी मनोकामनाएँ पूर्णकर सदियों से अपने जीवन को धन्य करते आ रहे हैं।

बड़े बाबा की इस विशालतम प्राचीन और अतिशयकारी प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक विशेष अवसरों पर ही सम्पन्न होता है। प्रमुख रूप से भगवान महावीर जी जन्मजयंती दिवस एवं निर्वाणकल्याणक दिवस (दीपावली) पर प्रभावनापूर्ण महोत्सव के रूप में सौभाग्यशाली श्रद्धालु 'बड़े बाबा' का मस्तकाभिषेक कर अपने जीवन में पुण्य का संचय करके मानव जीवन को सार्थक बनाते हैं।

अतिशय—अतिशय क्षेत्र पटनागंज स्थित जिनालयों में भक्तिपूर्वक पूजन करते-करते गंधोदक नेत्र में लगाते हुए नेत्र-ज्योति प्राप्त करने वाले लोकमन पुजारी तीस वर्षों तक क्षेत्र पर पूजन-अर्चन करते रहे।

क्षेत्र पर विस्तार की अनेक योजनाएँ चल रही हैं। क्षेत्र पर मंदिरों की संख्या 30 है। यह क्षेत्र सागर, दमोह, जबलपुर एवं नरसिंहपुर से 42 किमी0 दूर है। बस स्टैण्ड रहली से 2 किमी.दूर है। सागर, दमोह, जबलपुर, पटेरिया, खुरई, बीना, गौरझामर इत्यादि स्थानों से बस सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—यहाँ यात्रियों के आवास हेतु 40 कमरे एवं 3 हाल हैं। गेस्ट हाउस है किन्तु शासकीय है। भोजनशाला सशुल्क है जहाँ यात्रियों के अनुरोध पर भोजन तैयार किया जाता है। विद्यालय (प्राथमिकशाला), औषधालय एवं पुस्तकालय भी है।

वार्षिक मेला—प्रतिवर्ष महावीर जयंती, दीपावली एवं मुकुटसप्तमी के दिन वार्षिक मेला लगता है।

कनकगिरी के विजयी पार्श्वनाथ

–सुरेश जैन (आई.ए.एस.), भोपाल

कनकगिरि कर्नाटक राज्य में कर्नाटक, केरला और तमिलनाडु राज्यों की सीमा पर स्थित है। मैसूर से नजनगढ़ एवं गुण्डलूपेठ होते हुए ऊँटी मार्ग जाता है। ऊँटी से लौटते समय गुण्डलूपेठ से दाहिनी ओर जाकर कनकगिरि 25 कि.मी. दूर पर स्थित है। मैसूर एवं नजनगढ़ से मलेयूर तक नियमित रूप से बसें आती जाती हैं। रेलवे स्टेशन से मैसूर की दूरी 52 कि.मी. एवं कलवन्दे से 10 कि.मी. है।

विशाल मनोहर शिलाखंडों से सुशोभित यह पर्वत कनकाद्रि के नाम से भी जाना जाता है। क्षेत्र पर तीन मंदिर हैं, 24 तीर्थंकरों के 24 चरणों की 24 नसियाएं हैं। मुख्य मंदिर से पहाड़ी पर पहुँचने के लिए 350 सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कनकगिरि कर्नाटक राज्य का एकमात्र सिद्धक्षेत्र है। आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी की तपोभूमि एवं समाधिक्षेत्र कर्नाटक, केरल एवं तमिलनाडु राज्यों की सीमा पर स्थित मलेयूर गाँव में स्थित है। भगवान महावीर का यहाँ विहार हुआ था। यह कर्नाटक राज्य के मैसूर नगर से 50 कि.मी. की दूरी पर स्थित मनोरम शिलाखंडों का पर्वत है, जहाँ से सूर्यपुर के महान तपोनिधि सुप्रतिष्ठ महामुनि ने घोर तप साधना के फलस्वरूप केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी से सम्बद्ध शिलालेख एवं गुफाएं यहाँ उपलब्ध हैं। श्री अनंतबल मुनि ने भी यहाँ से केवलज्ञान प्राप्त किया है तथा ज्ञानचंद मुनि ने मोक्ष प्राप्त किया है। जैन मुनि तपस्वियों के साधकों की सल्लेखनाविधिपूर्वक समाधि के बारे में 27 से अधिक शिलालेख हैं। आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ईसा की पाँचवीं शताब्दी में इस क्षेत्र पर विराजमान रहे। उन्होंने यहाँ सर्वार्थसिद्धि, जैनेन्द्र व्याकरण, कल्याणकारक एवं समाधिशतक आदि अमूल्य ग्रंथों की रचना की। साथ ही संपूर्ण विश्वोदय एवं विश्वशांति की उदात्त भावना से रचित मूल संस्कृत शांति पाठ की रचना की।

कनकगिरि में 1008 श्री पार्श्वनाथ भगवान, पद्मावती देवी, कूष्मांडिनीदेवी, ज्वालामालिनी देवी एवं क्षेत्रपाल ब्रह्मयक्ष की मनोज्ञ एवं सातिशय प्रतिमाएं विराजमान हैं। इतिहासकारों के अनुसार ये प्रतिमाएं 1500 वर्ष प्राचीन हैं। अनेक मुनि, आर्यिकाओं ने इस पवित्र क्षेत्र की वंदना की है। कनकगिरि में पूजन-भक्ति करने से नवग्रहों की पीड़ा और कालसर्पदोष का निवारण होता है। इसी उद्देश्य से यहाँ भगवान नेमिनाथ की यक्षी कूष्माण्डिनी देवी और भगवान पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती देवी आमने-सामने स्थित हैं। कालसर्पयोग निवारण के लिए दक्षिण भारत में यही एकमात्र स्थान है। विजयी पार्श्वनाथ के दर्शन-पूजन से असाधारण आत्मिक शक्ति एवं तात्कालिक भौतिक प्रगति प्राप्त होती है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधायें–क्षेत्र पर यात्रियों के ठहरने के लिए निःशुल्क कमरे उपलब्ध हैं। भोजनशाला भी निःशुल्क है। औषधालय, पुस्तकालय एवं विद्यालय भी है।

सातिशय श्री संकटहर पार्श्वनाथ भगवान जैनगिरी, जटवाड़ा

–डॉ. सी.के. पाटणी, शहागंज, औरंगाबाद (महा.)

यह स्थान महाराष्ट्र प्रांत के औरंगाबाद के उत्तर दिशा में 99 कि.मी. दूरी पर है। ईसा की चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली बादशाह महमूद तुगलक का राज था। सुरक्षा व प्रशासन व्यवस्था की दृष्टि से उसे यादवों द्वारा निर्मित देवगिरी का किला बड़ा उपयुक्त स्थान लगा। उसने अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरी ले जाने के लिए विशाल सेना व वणिक व्यापारियों के साथ प्रस्थान किया। इन व्यापारियों में दिल्ली, आगरा के करीब एक हजार जैन परिवार के लोग थे। देवगिरी आने पर महमूद तुगलक की सेना तो देवगिरी में रही व साथ के जैन व्यापारी ने अपने निवास के लिए देवगिरी की पूर्व दिशा में नजदीक ही नदी के किनारे पर बस गये। वहाँ निवास कर व्यापार करने लगे। यहाँ जैन लोगों की बस्ती होने से इसे ''जैनवाडा'' कहा जाने लगा। यह स्थान बड़ा रमणीय एवं शुद्ध हवा पानी से युक्त था। चारों तरफ पहाड़ी, उन पर वनराई गाँव के नजदीक ही सुंदर नदी। ऐसे रमणीय स्थानों में उन्होंने अपने आराध्य देव जिनेन्द्र भगवान के भी मंदिर बनवाये। कहा जाता है कि जिसमें से एक मंदिर शीतलनाथ भगवान का था। इस मंदिर के कुछ पीतल के बरतन औरंगाबाद के अग्रवाल दिगम्बर जैन मंदिर, सराफा में विद्यमान हैं। जिस पर 'शीतलनाथ मंदिर जटवाड़ा' नाम उत्कीर्ण है। जब प्राचीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई तब जटवाड़ा के बरतन हमने प्रत्यक्ष देखे थे।

जटवाड़ा, जोगवड़ा यह स्थान पर्वतों से घिरा होने से साधुओं के ध्यान व निवास के लिए उत्तम स्थान है। हिंदू साधु, योगी जहाँ रहते थे, उसे जोगीवाडा या जोगवाडा कहते थे। जैनवाड़ा में जैन यति रहते थे। इस का नामांतर जटवाडा है। इस के नजदीक 3/4 कि.मी. पर 'जोगवाडा' ग्राम है। यह दोनों गाँव अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं और अपने-अपने संस्कृति के परम परिचायक हैं। यद्यपि गाँव बहुत छोटा है।

महमूद तुगलक का पुनर्गमन– महमूद तुगलक देवगिरी आया परन्तु कुछ ही वर्षों बाद पुनः अपनी सेना व मंत्रीगणों के साथ दिल्ली चला गया। परन्तु जैन व्यापारियों का यहाँ व्यापार अच्छा जम गया। वे वापस नहीं गये। वे यहाँ ही जैनवाडा में रहकर अपना व्यापार उद्योग व धर्म साधना करते रहे। नजदीक ही ऐलोरा की जैन गुफायें थीं। राष्ट्रकूट राजाओं की राजधानी का व आचार्य जिनसेन का कर्मस्थान शूलीभंजन था। राष्ट्रकूट राजा किसी को शूली पर देकर किसी का वध व हत्या करना, मृत्युदण्ड देना हिंसा पाप समझते थे। उनके राज्य में शूली पर देने की बंदी थी। इसलिए उन्होंने अपनी राजधानी का नाम 'शूलीभंजन' रखा था। यह तो जैन राजाओं की ही विशेषता थी कि वहपापों का तो त्याग करते थे परंतु पापी का वध व हत्या करना पाप समझकर उस का भी त्याग करते थे। इस तरह जटवाड़ा का यह परिसर जैन गरिमा का पावन पवित्र सुस्थान रहा। ऐसे स्थान में 500/600 वर्ष प्राचीन सातिशय संपन्न पार्श्वनाथ भगवान प्रतिमा सह अन्य तीर्थंकरों की 21 प्रतिमायें प्राप्त होने से यह स्थान केवल गरिमामय ही नहीं रहा, प्रत्युत् यह स्थान वंदनीय जैन धर्मक्षेत्र बन गया।

कालाय तस्मै नमः।

काल बड़ा बलवान होता है। उसी से चेतन-अचेतन द्रव्य एवं पदार्थों में व्यक्त या अव्यक्त रूप में क्यों न हो, नित्य प्रत्येक समय में, सेकेण्ड में परिवर्तन होता ही है। महमूद तुगलक के जाने के बाद, दो सौ वर्ष बाद सोलहवीं (16 वीं) शताब्दी में जैनवाड़ा के जैनियों की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। शासन व्यवस्था में ऐसा परिवर्तन हो गया, कि जैनियों में असुरक्षा की भावना व स्थिति निर्मित हो गयी और जैनवाड़ा-जटवाड़ा से जैन स्थानांतरित होने लगे। अपने प्राणों की तथा अपने आराध्य देव तीर्थंकरों की प्रतिमा की रक्षा का गहन प्रश्न उनके सामने प्रस्तुत रहा। इतना भी समय नहीं था कि वे अपने पूज्य तीर्थंकरों की प्रतिमायें अपने साथ स्थानांतरित कर सकें। इसलिए मंदिर के ही तलघर (भूयार) में मूर्तियों को रखकर ऊपर से मंदिर का ढांचा गिरा दिया गया ताकि पत्थरों का, विटों का मिट्टी का ढ़ेर उठाकर मूर्तियों का भंजन व विनाश करना असामंजस्य तत्त्वों के लिए असंभव हो जाये। राजस्थान में एक पापड़ीवाल महानुभाव हुये जिन्होंने सवा लाख प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराकर भारत के कोने-कोने में, गाँव-गाँव प्रतिमायें विराजमान कराकर

यह सिद्ध करा दिया कि असमंजस्य तत्त्वों के लिए जैन संस्कृति का व जैन मूर्तियों का विनाश करना असंभव है। जैनवाड़ा के लोगों ने भी यह बता दिया कि जैन प्रतिमाओं में वह सातिशय प्रभाव है कि वे सुरक्षित रहेगीं। पंचम काल के अंत तक जिनमंदिर बनते ही रहेंगे। जैन संस्कृति, जैनाचार अमर रहेगा।

जैनवाड़ा के जैन लोग जितना हो सका, उतना साहित्य लेकर देवगिरी, औरंगाबाद, देऊलगाँव राजा, अंबड, जिंतूर आदि स्थानों में स्थानांतरित हुये। वहाँ भी उन्होंने जैन प्रतिमायें प्रतिष्ठित कराकर जैन मंदिरों का निर्माण किया और अपनी संस्कृति की रक्षा व आचार धर्म का पालन किया। जैनधर्म के लोगों की धर्माचार की दृढ़ श्रद्धा और कट्टरता से ही अनादिकाल से आज तक जैनधर्म टिका रहा। इस में साधुओं का योगदान अपूर्व, अप्रतिम, आश्चर्यजनक रहा। उनके उपदेशों के अनुसार श्रावकों ने त्याग की पराकाष्ठा की। आचार धर्म की महत्ता को जैन समाज कभी नजरअंदाज नहीं कर सकता। वही उनके अस्तित्व का मूलाधार है। कालपरिवर्तन से जैनवाड़ा जटवाड़ा के जैन लोगों को आपदा से झगड़ना पड़ा। इसलिये तो कहते हैं "कालाय तस्मै नमः"।

सोनाबाई का सपना, आचार्यों की भविष्यवाणी—जैनवाड़ा जटवाड़ा से जैन स्थानांतरित होने के चार-पाँच शताब्दियों के बाद बीसवीं शताब्दी में औरंगाबाद के एक जैन व्यक्ति श्री पुंजासा साहूजी की धर्मपत्नी सौ.सोनाबाई को बार-बार सपने में एक जैन मंदिर जैन मूर्तियों सहित दिखने लगा। श्री पुंजासा कपड़े के व्यापारी थे। गाँव-गाँव के बाजार में जाकर कपड़ा बेचते थे। सौ. सोनाबाई को दिखने वाला जैन मंदिर कहीं दिखता क्या, इस का शोध ले रहे थे। एक दिन सोनाबाई के साथ जटवाड़ा में गये। वहाँ जाने पर एक इमारत देखकर सोनाबाई ने कहा कि सपने में दिखने वाला मंदिर यही है। वे उस इमारत के द्वार पर गये। द्वार के ऊपर एक छोटी सी वीतराग प्रतिमा उत्कीर्ण थी परन्तु मंदिर में अन्य धर्मों के देवी-देवताओं की प्रतिमा व महादेव की पिंडी थी। वे बड़े अचरज में पड़ीं। द्वार पर जैन प्रतिमा है, अंदर मूर्तियाँ अन्य धर्म की हैं और सपने में तो वही जैन मंदिर एवं मूर्तियाँ दिखती हैं। इसका समाधान कौन, कैसे करेगा?

आचार्य आर्यनंदीजी महाराज का जन्मस्थान औरंगाबाद जिले में ढोरकिन गाँव था। उनका कर्मस्थान भांबरवाडी, कन्नड, पैठण, एलोरा, औरंगाबाद रहा। वे नजदीक ही थे। सोनाबाई ने अपने सपने की बात व जटवाड़ा मंदिर की बात बताकर क्या किया जावे? ऐसा पूछा। महाराज श्री ने बताया यह जैन मंदिर ही था। यहाँ जैन मूर्तियाँ प्राप्त होंगी। प्रयास किया जायेगा, ग्रामीण जनता को समझाया जायेगा। समय तो लगेगा।

मध्यावधि में आचार्य महावीरकीर्तिजी औरंगाबाद आये। औरंगाबाद से जटवाड़ा को विहार हुआ। निरीक्षण के बाद उन्होंने भी कहा कि भविष्य में यहाँ जिनमूर्तियाँ प्राप्त होंगी तथा इस क्षेत्र का अतिशय प्रसिद्ध होगा।

मंदिर प्राप्ति—आचार्य आर्यनंदी महाराज के प्रयत्नों को यश प्राप्त हुआ, गाँव के सरपंच तथा जनता ने मंदिर की अपनी मूर्तियाँ हटाकर वहाँ जैन मंदिर होना मान्य किया। इस मंदिर की वेदी के नीचे तीन भूयार थे। उसमें से एक भूयार में से तीर्थंकर पद्मप्रभु भगवान की प्रतिमा प्राप्त हुई। आर्यनंदी महाराज ने उस मूर्ति के संरक्षण, पूजा अर्चा की जिम्मेदारी सौ. सोनाबाई पर सौंपी तथा उस मूर्ति की स्थापना मंदिर की वेदी के पास सामने चबूतरे पर की। सोनाबाई ने यहाँ पूजा की जिम्मेदारी स्वीकारी व उसका पालन किया।

प्रश्न यह है कि सोनाबाई को ही सपने में यह प्राचीन हेमाडपंथी मंदिर और जिनप्रतिमायें क्यों दिखीं? जैनवाड़ा के जैन व्यक्तियों ने जब स्थानांतर किया, तब शायद पूर्व जन्म में सोनाबाई का जीव उन स्थानांतरित जैन सदस्यों में से एक सदस्य रहा हो। पूर्व जन्म के संस्कारों से इस जन्म में सपने में वह प्राचीन मंदिर व मूर्तियाँ दिखीं। वह तो कहती थी कि उसे रत्नों की, सोने-चाँदी की मूर्तियाँ भी दिखती हैं। वह माल्यवान मूर्तियाँ जैन लोग स्थानांतर के समय साथ ले गये हों तथा वजनदार पाषाण की मूर्तियाँ भूयार में रखकर स्थानांतरित हुये हों। यह तो अनुमान है परंतु निराधार नहीं, क्योंकि अनुमान भी प्रमाण होता है। सत्याधार होता है। यह न्याय सिद्धांत है।

21 मूर्तियाँ प्राप्ति का दिन– भाद्रपद शुक्ला पंचमी—28 अगस्त 1987 को शेखनूर नाम का मुस्लिम व्यक्ति अपने घर के लिए एक पत्थर मिट्टी में से निकाल रहा था। आजू-बाजू की मिट्टी निकालने के बाद वह पत्थर धंसता चला गया। ऐसा कैसे हुआ? लोगों ने झांककर देखा तो नीचे भूयार में मूर्तियाँ दिखीं। तुरंत यह वार्ता औरंगाबाद के जैन भाई को

भेजी गयी क्योंकि जटवाड़ा की जनता जैन मूर्तियों को पहचानती थी। यह दिन भाद्रपद शुक्ला पंचमी का पर्यूषण पर्व का स्थापना दिवस था। इस योग से जनता बहुत हर्षित हुई। जटवाड़ा में जैन भाईयों की यात्रा उमड़ पड़ी। संपूर्ण परिसर तीर्थंकरों की जयजयकार से गूँज पड़ा। गाँव के पटेल ने यह वार्ता पुराण वस्तु संशोधन विभाग को भी दे दी। उनके अधिकारियों ने मूर्ति अपने अधिकार में ली।

तुरन्त जैन भाइयों का एक ट्रस्ट बनाने की कार्यवाही की गयी तथा ये मूर्तियाँ जैन मंदिर में प्रस्थापित करने की कार्यवाही की गयी। महाराष्ट्र विधान सभा के विधायक श्री अमानुल्ला मोतीवाला ने भी इस कार्य में सहकार्य किया तथा जैनों ने महावीर जयंती के दिन अभिषेक करके 21 मूर्तियाँ जो भूयार से प्राप्त हुई थीं, उसे प्राचीन मंदिर की विशाल वेदी पर विराजमान किया गया। जब से मूर्तियाँ विराजमान की गयीं तब से ही भगवान का एक से एक चमत्कार व अतिशय लोगों को नजर में आने लगा। लोगों के संकट निवारण होने लगे। नागराज अष्टमी, चतुर्दशी व यदा कदा प्रकट होकर कई घंटों तक भगवान के सामने बैठने लगे। 1 वर्ष के बच्चे को हृदयविकार हो गया, डॉक्टर ने उसे जन्म भर औषधि लेते रहने को कहा, वह जटवाड़ा में आया, भक्ति से पूजा-प्रार्थना की, छह माह में वह भला चंगा हो गया, वार्षिक यात्रा में उसने यह बात सब जनता को बतायी, इसलिए यहाँ के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ को जनता 'संकटहर' इस सार्थक नाम से पुकारने लगी। सच्ची दृढ़ भक्ति से ही पूज्य श्री पार्श्वनाथ भगवान का सातिशय प्रभाव प्रगट होता है। भगवान को जो 108 प्रदक्षिणा देते हुये 108 बार वंदन करता है, उसके उस दिन में लगने वाले 108 पापों का नाश होता है तथा उस पर आने वाले संकट टल जाते हैं, मनोकामना की पूर्ति होती है। यह संकटहर पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन व वंदन का अतिशय का प्रभाव है। औरंगाबाद जिले के लोग अवसर मिलते ही संकटहर पार्श्वनाथ के दर्शनार्थ आते हैं और पापविनाश व संकट निवारण का उपाय करते हैं, पूजा–अर्चा करते हैं।

सौ.सोनाबाई के परिवार के लोगों ने अपने मंदिर के कब्जे का अधिकार छोड़कर 1987 में नवनिर्मित ट्रस्ट के अधीन मंदिर व मूर्तियाँ दे दीं। यह भी उन्होंने पुण्यकार्य किया है। 1987 में जब ट्रस्ट निर्माण हुआ, तब मंदिर व उसके सामने की छत्री व कंपाउण्ड वाल जीर्ण-शीर्ण अवस्था में थीं। ट्रस्ट की आर्थिक स्थिति शून्य मात्र थी परन्तु कार्यकर्ताओं की कर्मठता एवं लोगों की दान प्रवृत्ति व भगवान के सातिशय पुण्य प्रभाव से सामने आया हुआ कार्य धीरे-धीरे पूर्ण होता गया। मंदिर में सुधार व जीर्णोद्धार का कार्य होने लगा। क्षेत्र पर आने वाले साधुगणों ने भी कार्य व दान की प्रेरणा दी।

क्षेत्र का नया नामकरण– 1997 के पहले इस क्षेत्र का नाम श्री 1008 संकटहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, जटवाड़ा था। 1997 में आचार्य देवनंदी जी ने सभी में यह बताया कि इस क्षेत्र का नामोल्लेख ''श्री 1008 संकटहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, 'जैनगिरी' जटवाड़ा ऐसा होगा''। तब से इस क्षेत्र के पत्र व्यवहारादि में जैनगिरी-जटवाड़ा ऐसा ही नामोल्लेख होता है।

सातिशय पुण्य प्रभाव कार्य इस क्षेत्र में होने से ही अत्यंत अल्पावधि में यह क्षेत्र भारत भर में पहचाना जाने लगा।

इस क्षेत्र में जो समाधिमरण प्राप्त करता है, वह निश्चय से स्वर्गों में देवगति में जन्म लेता है, ऐसा कहा जाता है।

श्री संकटहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र के भूमि के पश्चिम दिशा में एक पहाड़ है, इसकी भूमि करीब 40 एकड़ है। यह पहाड़ वनीकरणार्थ महाराष्ट्र शासन द्वारा इस क्षेत्र को प्राप्त हुआ, वहाँ क्षेत्र द्वारा वनीकरण का कार्य होगा। जिससे क्षेत्र को स्थायी उपलब्धि होने की संभावना है। इसी पहाड़ पर भगवान बाहुबली की 12 फुट ऊँची प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी है।

ईसवी सन् 2004 में तीन मूर्ति तथा चौबीस तीर्थंकर मंदिर का निर्माण हुआ। मानस्तंभ, पहाड़ पर बाहुबली की मूर्ति एवं तीन मूर्ति चौबीसी तीर्थंकर मंदिर का निर्माण हुआ। भगवान पार्श्वनाथ मंदिर का शिखर मंदिर का कार्य मदुरई के मंदिर की तरह विलोभनीय एवं अत्यंत दर्शनीय हुआ। संपूर्ण महाराष्ट्र में यहाँ के इस मंदिर के शिखर जैसा मानस्तंभ जैसा अद्वितीय मानस्तंभ वास्तव में अन्यत्र नहीं है। भक्तजन बड़ी श्रद्धा से दर्शन कर आनंदित होते हैं। यह क्षेत्र सब के कल्याण का स्थान है।

श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र 'पुण्योदय तीर्थ'-हाँसी

-मुकेश जैन (सह सचिव)

यह अतिशय क्षेत्र राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक-10 महाराजा अग्रसेन राष्ट्रीय मार्ग पर है। यह हिसार की ओर तीसरा कि.मी. स्टोन है। तोमरवंशीय सम्राट् अनंगपाल प्रथम, जिन्होंने 736 ई. में वर्तमान दिल्ली को बसाया, उन के प्रतापी पुत्र राजकुमार द्रुपद ने हाँसी में गढ़ (जो अब खंडहर रूप में है) का निर्माण करवाया था। पांडवों के तोमरवंशीय शासकों ने यहाँ 1153 ई. तक राज किया। इतिहास प्रसिद्ध सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के पूर्वज शाकम्भरी के चौहान नरेश विसलदेव ने हाँसी क्षेत्र जीतकर राज किया। उस काल खंड में हाँसी में भगवान पार्श्वनाथ के एवं अन्य भव्य मंदिर थे। भारत के अंतिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की दुर्भाग्यपूर्ण पराजय के बाद हाँसी पर मोहम्मद गौरी के एक मुँहलगे गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक का कब्जा हुआ। इस तुर्क लुटेरे ने हाँसी के भव्य मंदिरों को लूटने के बाद नष्ट भी किया। ऐसे ही हिंसक लुटेरे मीरासाहब व अन्यों से बचाने के लिए अनेक शूरवीरों एवं धर्मपरायण श्रावकों एवं श्रद्धालुओं ने जान पर खेलकर कुछ जिनप्रतिमाओं को हाँसी किले में भूमिगत कर दिया।

19 फरवरी 1982 ई. के दिन हाँसी के ऐतिहासिक किले में 57 दिगम्बर जैन प्रतिमाएें ताम्बे के टोकने में रखी हुई बच्चों को गिल्ली डंडा खेलते हुई दिखाई दीं। तीर्थंकरों एवं अन्य देवी-देवताओं की इन सभी मूर्तियों को बसंतपंचमी 30 जनवरी 1982 ई. के दिन श्री दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर हाँसी में श्रद्धालुओं के दर्शनार्थ रखा गया। इसके पश्चात् दस वर्ष तक ये सभी प्रतिमाएँ पुरातत्त्व विभाग चंडीगढ़ के सरकारी म्यूजियम में रहीं। 30 दिसम्बर 1991 ई. के दिन ये सभी उत्कृष्ट शिल्पकलायुक्त प्राचीन प्रतिमाएँ हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमंत्री के आदेश पर स्थानीय दिगम्बर जैन समाज को सौंप दी गईं।

अशुभ उदय से हाँसी के श्री दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर में विराजमान किले से प्रकटी पूजनीय प्रतिमाएँ एवं श्री मंदिरजी की सभी धातुओं से निर्मित प्रतिमायें दिनाँक 26 अक्टूबर 2005 को रहस्यमय ढंग से चोरी हो गई थीं। इन चोरी गई सभी प्रतिमाओं का हरियाणा पुलिस द्वारा अचानक मात्र 36 दिन में बरामद किया जाना, वास्तव में अपने आप में एक अतिशय ही कहा जायेगा। आज ये सभी प्रतिमाऐं हाँसी के पंचायती बड़े मंदिर जी में एक भव्य नव निर्मित वेदी में विराजमान हैं। बड़ी संख्या में लोग आज इन चमत्कारी, अतिशययुक्त प्रतिमाओं के दर्शन कर मनोवंछित कामनाऐं पूरी कर रहे हैं।

यह अतिशय आचार्यों एवं संतों के आशीर्वाद व श्री मंदिरजी में विराजमान अद्भुत व अतिशयकारी भगवान पार्श्वनाथ चौबीसी का चमत्कार ही कहलायेगा।

क्षेत्र विकास—विलुप्त दृषद्वती नदी के तल पर बसे ऐतिहासिक नगर हाँसी (जिला-हिसार) हरियाणा राष्ट्रीय मार्ग क्र.-10 (महाराजा अग्रसेन राष्ट्रीय मार्ग-दिल्ली से फाजिल्का-पंजाब बार्डर) पर, हाँसी से हिसार की ओर 3 कि.मी. पर 7 एकड़ भूमि परिसर में भगवान पार्श्वनाथ जिनमंदिर की नींव भराई का कार्य लगभग एक करोड़ रूपये की लागत से एवं भूमि पर चारदीवारी का काम 10 लाख रुपये की लागत से पूर्ण हो चुका है। गर्भगृह, मूल वेदी एवं नृत्यमंडप का निर्माण कार्य द्रुतगति से चालू है। मूल वेदी एवं नृत्यमंडप के निर्माण के लिए अनुमानित व्यय राशि प्राप्त हो चुकी है। गर्भगृह के निर्माण के लिए भी अनुमानित व्यय राशि शिलाओं के रूप में प्राप्त हो रही है। श्री मंदिरजी में प्रवेश के लिए पौड़ियों का निर्माण कार्य हो चुका है। इस बन रहे जिनमंदिर के शिल्पी विश्वविख्यात श्री सी.बी.सोमपुरा, अहमदाबाद हैं। श्री आर.के. जैन, चीफ इंजीनियर-चण्डीगढ़ (सेवा निवृत्त) के मार्गदर्शन में निर्माण कार्य चालू है। उत्तरी भारत का यह विलक्षण मंदिर बने, यह हमारा संकल्प है।

भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र को 'पुण्योदय तीर्थ' नाम से घोषित किया गया है। क्षेत्र परिसर में दर्शनार्थियों के ठहरने के 19 कमरों का खंड एवं जिनचैत्यालय बन गये हैं।

हाँसी के ऐतिहासिक किले, जहाँ से सम्राट् पृथ्वीराज चौहान ने शासन किया, से प्रकटी अतिशययुक्त भगवान पार्श्वनाथ चौबीसी अक्षय मूर्ति, चैत्यालय जी में विराजमान है। अतिशय क्षेत्र के अनुपम मंदिरजी में हाँसी किले से प्रकट पूज्यनीय तीर्थंकरों, भगवान पार्श्वनाथ चौबीसी एवं खड्गासन पंचबालयतियों की भव्य प्रतिमाएँ स्थापित होंगी।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पार्श्वनाथ चूलगिरि, जयपुर

–महेन्द्र कुमार जैन (व्यवस्थापक)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–सन् 1953 की वैशाख कृष्णा द्वितीया, भगवान पार्श्वनाथ के गर्भकल्याणक दिवस पर आचार्यरत्न प्रातःस्मरणीय 108 श्री देशभूषण जी महाराज ने इस पर्वतीय क्षेत्र पर सामायिक करने का निश्चय किया। पर्वत की तपन, भीषण गर्मी तथा चढ़ाई की दुरुहता निर्ग्रन्थ मुनिराज के संकल्प में बाधा नहीं बन पाई। पर्वत के नुकीले पत्थर, कांटों से भरे झाड़-झंखाड़ के उपरान्त उन्होंने अपने लिए मार्ग बना लिया और आचार्यवर यथासमय अपनी लक्षित भूमि पर सामायिक में लीन हो गये। उन्होंने अपने भक्तों को इसी स्थान पर साधना कुटीर के निर्माण के भाव से अवगत कराया। धार्मिक चेतना से लोक आस्था जुड़ जाती है तो दुर्गम भी सुगम होकर सिद्धि हो जाती है, अतिशय हो जाता है। जयपुर नगर के दक्षिण-पूर्वी अंचल में जयपुर-महावीर जी मार्ग पर श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री पार्श्वनाथ चूलगिरि ऐसी ही सिद्धि है, जो आज देश भर के दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियों के लिए अतिशय क्षेत्र बन गया है।

सन् 1953 की पौष कृष्णा एकादशी को आचार्य श्री के सानिध्य में पर्वतीय शिखर पर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म कल्याणक महोत्सव आयोजित किया गया। आचार्यश्री ने शिखर का नामकरण "चूलगिरि" किया। श्रावकों के मध्य चूलगिरि पर तीर्थंकर पार्श्वनाथ के श्रीचरण एवं एक साधना कुटीर के निर्माण का संकल्प किया गया। श्रद्धा, भक्ति व समर्पण ने पर्वत को वंदनीय बना दिया। एक अतिशय अपने आप में जाग्रत हो उठा।

अप्रैल, 1966 में भगवान पार्श्वनाथ की मूलनायक खड्गासन प्रतिमा के साथ-साथ भगवान महावीर, भगवान नेमिनाथ, चौबीसी एवं यंत्रों की प्रतिष्ठा के लिए पंचकल्याणक महोत्सव का भव्य आयोजन किया गया। चूलगिरि पर देवाधिदेव भगवान पार्श्वनाथ की सात फुट ऊँची श्यामवर्णी पाषाण की खड्गासन प्रतिमा मूलनायक के रूप में तथा इसके निकट निर्मित दो अन्य वेदियों में भगवान महावीर व भगवान नेमिनाथ की साढ़े तीन फुट ऊँची धवल पाषाण की पद्मासन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गईं। भगवान पार्श्वनाथ की परिक्रमा में 28 गुमटियों में 24 तीर्थंकरों की पद्मासन प्रतिमाएँ एवं चार चरण प्रतिष्ठित किये गये, एक अतिरिक्त निर्मित कक्ष में मातेश्वरी पद्मावती देवी को विराजमान किया गया। पूजा-प्रक्षाल हेतु पहाड़ पर शुद्ध जल हेतु एक लघु टांके का निर्माण कराया गया। चूलगिरि पर निर्माण कार्यों का प्रथम चरण इस तरह पूर्ण हुआ। अतिशय क्षेत्रों के निर्माण कार्य को कभी विराम नहीं मिलता, करनी चलती है तो चलती ही रहती है। चूलगिरि पर निर्माण चलता ही रहा है। क्षेत्र का स्वरूप भी निखरता एवं संवरता रहा है।

सन् 1982 में आचार्यरत्न 108 श्री देशभूषण जी महाराज के ससंघ जयपुर पदार्पण पर 10 से 15 मई तक पुनः दूसरा पंचकल्याणक आयोजित किया गया। देश के कोने-कोने से श्रद्धालु भक्तों ने असीम उत्साह एवं श्रद्धा से इसमें भाग लिया। भगवान महावीर की श्वेत पाषाण से निर्मित 21 फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा चूलगिरि क्षेत्र के जिस भाग में प्रतिष्ठित की गयीं, उस विशाल प्रांगण का नामकरण हो गया "महावीर चौक"। महावीर चौक 75×65 फुट के आकार का है तथा मंदिरजी पर 60 फुट ऊँचाई के विशाल शिखर का निर्माण हो चुका है। भगवान महावीर चौक में मूल प्रतिमाजी के पार्श्व में श्रद्धालुओं द्वारा प्रतिमाजी का अभिषेक करने हेतु एक पक्के मंच का निर्माण कराया जा चुका है तथा इसी

चौक से गुफाजी में दर्शनार्थ जाने के लिए इसे सीढ़ी मार्ग से जोड़ा गया है। 40×40 फुट आकार की पर्वत गुफा में चौबीस तीर्थंकरों की सवा दो-दो फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गईं। यह सम्पूर्ण दीर्घा संगमरमर पाषाण से निर्मित है जो अत्यंत मनोहारी है। इस दीर्घा के मध्य में एक अन्य जिनालय में भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली भगवान की खड्गासन प्रतिमाएँ तथा दो शासन देवियों–ज्वालामालिनी तथा चक्रेश्वरी के मंदिर हैं, यह जिनालय भी संगमरमर पाषाण से निर्मित है।

चूलगिरि पर ''ऋद्धि-सिद्धि'' दायक विजय पताका महायंत्र इस क्षेत्र का विशेष अतिशय है। 40 कि.ग्रा. ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण यह महायंत्र 4×4 फुट वर्गाकार आकृति में है। महायंत्र में 6561 कोष्ठक हैं तथा यंत्र में स्वर व व्यंजन, मंत्र, जाप्य, स्वस्तिक चिन्ह, मानस्तंभ, अर्हन्तमूर्ति श्रुत अक्षर तथा जैन यक्ष-यक्षिणियों के नाम उत्कीर्ण हैं। जनप्रभावना सिद्ध करती है कि यह महामंत्र सर्व प्रकार संकटमोचक है।

क्षेत्र के अधिकृत समस्त परिसर के चारों ओर सुरक्षा एवं वन सम्पदा की रक्षार्थ 7 फुट ऊँची पक्की दीवार निर्मित की जा चुकी है। इसे सदैव हरा-भरा बनाये रखने के लिए हजारों की संख्या में विविध वृक्ष लगाये जा चुके हैं।

बहुमूल्य रत्नों की प्रतिमाओं का जिनालय–बहुमूल्य रत्नों की प्रतिमाओं को विराजमान करने हेतु चूलगिरि क्षेत्र पर एक अत्यधिक सुरक्षित व्यवस्था सहित संगमरमर के कलात्मक जिनालय का निर्मण अप्रैल, 2002 में कराया जा चुका है।

धार्मिक विधि-विधान–जयपुर शहर व देश के विभिन्न प्रदेशों से भक्तजन समय-समय पर चूलगिरि क्षेत्र पर आकर आष्टान्हिका, शांतिविधान व वृहत् स्तर पर विशेष विधानों का आयोजन करते हैं। दिगम्बर जैन आम्नाय के अनुसार किये जाने वाले सभी धार्मिक आयोजनों के लिए पूजा सामग्री, पूजा उपकरण, मण्डप मांडना, विधान कराने वाले विद्वान आदि की समुचित व्यवस्था क्षेत्र पर उपलब्ध रहती है।

श्री देशभूषण निलय–सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाओं से युक्त 28 कमरों वाला देशभूषण निलय बाहर से आने वाले यात्रियों के आवास हेतु क्षेत्र पर निर्मित है। निलय में सर्दी-गर्मी के लिए आवश्यक बिस्तर, पंखे आदि की व्यवस्था सशुल्क उपलब्ध है।

भोजनालय एवं जलपान गृह–सूर्यास्त के पूर्व भोजन के लिए अत्याधुनिक ढंग से निर्मित भोजनालय कक्ष में गैस संचालित भोजन व्यवस्था की गई है।। त्यागी-व्रतियों के लिए (शोध) खाना बनाने व खाने की व्यवस्था अतिरिक्त रूप से की गई है। भोजनशाला में एक बार में 75 यात्रियों के बैठने की व्यवस्था है। समाज द्वारा आयोजित की जाने वाली गोठ घुघरियों के सुविधार्थ अलग से समुचित स्थान व रसोईयों का प्रबंध किया जाता है। खाना बनाने के बर्तन, लकड़ी, छूने, गैस, पानी, रोशनी आवश्यकता पर उपलब्ध कराये जाते हैं। धार्मिक उत्सवों पर बड़े भोज के लिए पूर्व सूचना पर यात्रियों के लिए उचित व्यवस्था भी की जाती है।

दर्शनार्थियों के लिए क्षेत्र पर एक सुव्यवस्थित जलपान गृह का निर्माण कराया जा चुका है। जलपान गृह में गर्मी-सर्दी के पेय व अल्पाहार हमेशा उपलब्ध रहते हैं।

निर्मल-रत्न ध्यान केन्द्र–ज्ञान-ध्यान व साधना के लिए आधुनिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप सहित इस केन्द्र का निर्माण कराया गया है। यहाँ स्त्री-पुरुष निर्विघ्न ध्यान एवं साधना कर आध्यात्मिक लाभ अर्जित कर सकते हैं। उत्तरी भारत के तीर्थस्थलों में यह एक अनुपम ध्यान केन्द्र है।

स्वाध्याय कक्ष–क्षेत्र पर निर्मित इस स्वाध्याय कक्ष में काफी संख्या में प्राचीन-नवीन धार्मिक ग्रंथ, जैन ऐतिहासिक पुस्तकें व पठन योग्य धार्मिक सामग्री उपलब्ध है। इसमें पाठकों के लिए धार्मिक महत्त्व की दुर्लभ सामग्री उपलब्ध कराने के प्रयास किये जा रहे हैं।

जलाशय–चूलगिरि क्षेत्र पर पीने के जल की समुचित व्यवस्था उपलब्ध कराये जाने के उपरांत भी वर्षा ऋतु में पर्वत के प्राकृतिक जल को एकत्रित कर क्षेत्र के चारों ओर हरियाली व पर्यावरण की सुरक्षा बनाये रखने के लिए वर्षा का 18 लाख लीटर जल एकत्रित रखने की क्षमता वाले इस वृहद् जलाशय का निर्माण कराया जा चुका है। जल की

निरन्तर होने वाली कमी की पूर्ति एवं यात्रियों की सुख-सुविधाओं में जल की कमी से कोई असुविधा न होने पावे, इस दृष्टि से यह दूरदर्शी प्रयास किया गया है। सभी क्षेत्रों में इस योजना की सराहना की गई है।

सड़क एवं सीढ़ी मार्ग—तलहटी से यात्रियों के लिए चूलगिरि तक पहुँचने के लिए सड़क एवं सीढ़ी मार्ग निर्मित है।

पैदल यात्री 6 इंच चौड़ाई वाली सुलभ 1008 सीढ़ियों के मार्ग से 15 से 20 मिनट की अवधि में शिखर तक पहुँच सकते हैं। मार्ग में विश्राम के लिए तीन विश्राम स्थल भी निर्मित हैं। निजी वाहन वाले यात्री 5 कि.मी. के सड़क मार्ग से शिखर तक सहजता से पहुँचते हैं। सड़क मार्ग इतना सुलभ एवं सुरम्य है कि दुपहिया वाहन भी 20 मिनट में मंदिर तक पहुँच जाता है।

व्हील चेयर व्यवस्था—वृद्ध एवं शारीरिक रूप से अशक्त यात्रियों को दर्शन लाभ कराने हेतु क्षेत्र पर व्हील चेयर सुविधा उपलब्ध है।

बस सेवा—यात्रियों के लिए क्षेत्र पर आने व जाने के लिए क्षेत्र की प्रबंध समिति की ओर से नियमित बस सेवा सशुल्क उपलब्ध रहती है।

सुलभ केन्द्र सुविधाएँ—स्त्री-पुरुषों के लिए क्षेत्र पर आधुनिक ढंग से निर्मित अलग-अलग सुविधा व सुलभ केन्द्र उपलब्ध हैं।

स्थाई पूजा योजना—स्थाई पूजा योजना के अंतर्गत दातार द्वारा जमा कराई गई राशि से उसके द्वारा निर्धारित किये गये दिन पूजा का आयोजन किया जाता है। दातार को भी पूजा में सम्मिलित होने हेतु उसकी सूचना 15 दिन पूर्व प्रेषित कर दी जाती है।

कोठाला स्थित चिंतामणि पार्श्वनाथ

संकलन–श्रीमती त्रिशला कासलीवाल, इन्दौर

कोठाला अतिशय क्षेत्र महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र पर जालना जिले में स्थित है। यह क्षेत्र परतुर रेलवे स्टेशन तथा सेलू से 30 किलोमीटर दूरी पर है। क्षेत्र पर जाने के लिए बस की सुविधा उपलब्ध है।

कोठाला ग्राम में जैन बस्ती नहीं है। पास के पिंपलगाँव ग्राम के जैन बंधु यहाँकी व्यवस्था देखते रहते हैं। यहाँ का प्राचीन मंदिर हेमाड़पंथी पत्थर का निर्मित है। मंदिर में भगवान पार्श्वनाथ की अतिशयमनोज्ञ रेत की प्रतिमा बनी हुई है। यह मूर्ति चतुर्थकालीन होकर 2 फीट ऊँची पद्मासन अवस्था में है। इस प्रतिमा का निर्माणखरदूषण राजा के द्वारा किया गया है।

यहाँ की किंवदन्ती है कि इस ग्राम के पास नागझिरी गाँव है वहाँ श्रीपाल राजा रहते थे। उन्हें एक दिन रात को सपना आया कि हे राजन, यह पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा नागझिरी से आष्टी ग्राम ले जाओ पर ध्यान रहे कि रास्ते में पीछे मुड़कर मत देखना वरना प्रतिमा उसी स्थान पर रुक जावेगी। प्रतिमा को लघु बैलगाड़ी में रखकर ले जाने लगे। बीच रास्ते में गाड़ीवान ने उत्सुकतावश पीछे मुड़कर देखा वैसे ही गाड़ी उसी स्थान पर रुक गई। सभी लोग अचरज कर देखने हेतु इकट्ठा हो गये। गाड़ी वहाँ से बिल्कुल भी नहीं हिली। बैलगाड़ी भी अदृश्य हो गई। इसी स्थान पर प्रतिमा स्थापित हुई तथा ग्राम का नाम कोठाला पड़ा। क्षेत्र पर जीर्णोद्धार हो चुका है।

इस ग्राम की विशेषता है कि भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति के लिए यहाँ के लोग शुद्ध दूध ही देते हैं। अभिषेक के दूध में यदि पानी मिलाकर दिया गया हो तो जिस गाय या भैंस का वह दूध होता है उस समय भैंस के कान से खून निकलने लगता है आज भी यही स्थिति बनी हुई है। इसलिए आज भी मूर्ति के अभिषेक केलिए गाँव के लोग शुद्ध दूध ही देते हैं।

ऐसी अतिशययुक्त मूर्ति के दर्शन के लिए हजारों लोग वर्ष भर आते रहते हैं। इसके दर्शन मात्र से ही भक्तों के मनोरथ, मनोकामना पूर्ण होती है। यहाँ प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष माह की अमावस को मेलालगता है जिसमें हजारों यात्री आते हैं।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र एलोरा (औरंगाबाद-महा.)

–अंबरकर राव

क्षेत्र परिचय– महाराष्ट्र में औरंगाबाद शहर से 30 कि.मी. दूरी पर एलोरा अतिशय क्षेत्र है। यहाँ की आबादी की दृष्टि से एलोरा छोटा सा दिखता है। फिर भी अपनी विशेष कलाकृति एवं मंदिरों के कारण विश्व में अद्वितीय माना गया है।

यहाँ की प्रकृति नयन मनोहर है। जलवायु स्वास्थप्रद है। वर्षाकाल में यहाँ का सौन्दर्य बड़ा ही अनोखा होता है। एलोरा की गुफाएं बीज चंद्राकार पहाड़ में खोदी गई हैं। यहाँ एलोरा की प्रकृति हमें निराला अनुपम आनंद प्रदान करती है। एलोरा की शिल्पकला हमें भारतीय संस्कृति की विशालता का परिचय देती है। यहाँ जैन, बौद्ध, वैदिक, शैवपंथीय ब्राह्मणीय की 34 सुंदर गुफाएँ हैं। 1 से लेकर 12 तक गुफाऐं हैं। जिसमें 10 नम्बर की गुफा विशेष है। गुफा नं.13 से लेकर 29 तक शैव पंथीय है। उसमें से नं. 16, जो कैलाश गुफा के नाम से जानी जाती है अपनी विशालता एवं सुंदरता के कारण विश्वविख्यात है।

जैन गुफाएं– नं.-30 से लेकर 34 तक जैन गुफा संख्या में कम हैं। फिर भी उसकी वास्तुकला, शिल्पकला एवं चित्रकला की प्रशंसा देश-विदेश के गणमान्य विद्वानों ने की है। 30 नं. की गुफा कैलाश की प्रतिकृति है। भीतर जाते ही शिल्पकला के सुन्दर नमूने देखने को मिलते हैं। जो गुफा नं. 32 इंद्रसभा (समवसरण धर्मसभा) के नाम से मशहूर है। इस गुफा में जहाँ-तहाँ वीतराग भगवान की मूर्तियाँ शिलाओं में उत्कीर्ण की गई हैं। प्रायः हर एक मूर्ति के ऊपर तीन मुकुट हैं जो भगवान के तीन जगत को जीतने के प्रतीक हैं और इसी कारण भगवान त्रिलोकीनाथ कहलाते हैं। यहाँ गुफाओं में चित्रकला विद्यमान है। यद्यपि वह सर्वत्र नहीं है फिर भी जो शेष है उसमें भारतीय है, प्राचीन चित्रकला का परिचय हो जाता है। चित्रकला विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि पुराने समय में इसी कला का प्रचार गुजरात तथा राजस्थान में देखने को मिलता है। सभी मूर्तियाँ प्रमाणबद्ध हैं, अद्वितीय एवं अनुपम हैं।

भगवान पार्श्वनाथ मंदिर– इन गुफाओं से उत्तर की ओर 1 कि.मी. दूरी पर 23 वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथजी का मंदिर बना हुआ पाया जाता है। जगह के इस उचित चुनाव के कारण शायद मूर्तिभंजक की नजर हमारे सौभाग्य से इस मंदिर पर नहीं पड़ी अन्यथा उनकी चोटों से यह अछूता न रहता। यहाँ का दृश्य बड़ा ही लुभावना है। जन कोलाहलों से दूर और चित्ताकर्षक है। परिसर नीलाकाश नीरव, निस्पंद फैला हुआ है। यात्री जब यहाँ पहुँचता है तो मानों शांति की सुखद छाया में आ बैठता है। एलोरा के इस मंदिर में सप्तकलायुक्त यक्ष-यक्षिणी सहित महामनोज्ञा, विशालकाय, अर्द्धपद्मासनस्थ, कोई 16 फीट ऊँची, 9 फीट चौड़ी ध्यानमग्न भगवान पार्श्वनाथ वीतराग प्रतिमा विराजमान है। शिल्पकार ने अपनी कल्पना और प्रतिमा द्वारा मानव जगत के आध्यात्मिक और भौतिक संस्कृति के उच्चतम सिद्धांतों को समुचित अंकन करके कला का कमाल दिखाया है। आत्मा की कला-कला की आत्मा है। जिस शिल्पकार ने यह मूर्ति बनायी वह वास्तविक अपनी अंतर आत्मा में गोते लगाकर व्यवहारतः भगवान रूप में–स्वरूप में तन्मय होकर ही ऐसी अनोखी कला के निर्माण में समर्थ हुआ होगा। आध्यात्मिक आदर्श ही भारतीय सभ्यता की आधारशिला है।

प्रतिमा की प्रसन्न मुद्रा, विशाल कंधे तथा हाथ पर रखी हुई अंगुलियाँ, शिर के कुंतल केस, अर्ध उन्मीलित नेत्र, ध्यानमग्न गंभीर भव्य चेहरा, ये सब बातें मूर्ति की वीतरागता और सुंदरता में वृद्धि ही करते हैं। दर्शक दर्शन के लिए सामने आते ही हर्ष विभोर हो उठता है। मूर्ति के अगल-बगल में यक्ष-यक्षिणी बने हुए हैं। सिंहासन पर बीचोंबीच एक और भगवान पार्श्वनाथ की छोटी मूर्ति बनाई हुई है। सिंहासन के निचले भाग पर धर्मचक्र खुदा हुआ है तथा एक तरफ प्रतिष्ठाकारक श्रावकोत्तम ''चक्रेश्वर'' अपनी धर्मपत्नी के साथ तथा एक तरफ चक्रेश्वर के तीनों भाई अनेक आभूषण

तथा यज्ञोपवीत आदि से विभूषित हैं। विनम्र और भक्ति से हाथ जोड़े हुए दिखाई देते हैं। यह सब बेजोड़ है। शिल्पकार ने अपनी चतुराई का कमाल दिखाया है। यहाँ दर्शक तथा यात्री अपूर्व शक्ति का अनुभव करते हैं और अपनी यात्रा सफल समझते हैं। दोष रहित आत्मा को ही नग्नता शोभा देती है।यह भाव नास्तिक के मन में भी स्वभावतः आते हैं। भगवान सब प्रकार के आभूषण से रहित हैं, फिर भी जगत के शिरोभूषण बने हैं, सार यह है कि नग्नत्व दोष रहित होने के निशानी है।

इस अतिशय क्षेत्र पर पहले कार्तिक पूर्णिमा का मेला लगता था। अब यह मेला बदी 14 को होता है। भगवान के चरणों के नीचे एक लेख खुदा हुआ है। इस शिल्प लेख में विदित होता है कि इस एलोरा तीर्थ पर शक संवत् 1156 (ई.सं.1234) में श्री वर्धनापुर के निवासी श्रावक राणूजी के पुत्र श्रावक म्हालुगी की धर्मपत्नी स्वर्णा की कुक्षि से उत्पन्न चारों पुत्रों में चक्रेश्वर बड़ा था। वह महादानी, धर्मपरायण, स्थिर व शुद्धदृष्टिवान, सतीवल्लभ, अपने दानादि गुणों के कारण कल्पवृक्ष के समान था। उन्होंने ही पर्वत पर भगवान पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों के विशाल जिनबिम्ब समारोह पूर्वक प्रतिष्ठित कराये थे। इस चक्रेश्वर ने इस एलोरा स्थान को ऐसा सुतीर्थ बना दिया जिसकी तुलना पूर्व काल में भरत चक्रवर्ती के द्वारा कैलाशपर्वत बनवाने से की जाती है। उसके साथ ही उसी शिलालेख से यह भी बातें समझ में आती हैं कि चक्रेश्वर सद्गुणों का आकर और निर्मल धर्म का संरक्षक दातार था। उसने दान धर्म के प्रभाव से अपने कर्मों को धोया तथा धर्ममूर्ति, निर्मल धर्म के संरक्षक यह चक्रेश्वर मानों पंचम वासुदेव जी ही हुए।

ऐतिहासिकता– एलोरा की महान कलाकृतियों से परिचित होने पर स्वभावतः हमारा ध्यान इसके इतिहास की ओर आकृष्ट होता है। एलोरा के विषय में हुए संशोधनों से हमें ज्ञात होता है कि एलोरा का पहला नाम एलापुर था। यह इतिहास प्रसिद्ध हो चुका है। आंध्र, चालुक्य, राष्ट्रकूट, कल्यान तथा यादवों के समय में एलापुर नामका एक गाँव था। इतिहासवेत्ताओं का यह मत है कि दिगम्बर जैन तपस्वी एलाचार्य ने आठवीं सदी के लगभग इस भूभाग को अपने पावन विहार से पुनीत किया था और इसी एलाचार्य के नाम पर इस भूभाग को एलोरा संज्ञा प्राप्त हुई है। ऐलाचार्य भगवत् जिनसेनाचार्य के दादागुरु थे। धवलाकार स्वामी वीरसेन ने आषढ़ी (एलाचार्य) सिद्धांत ग्रंथों का अध्ययन किया था। जयधवला ग्रंथ में कवि चक्रवर्ती वीरसेन स्वामी ने एक जगह अपने को एलाचार्य का शिष्य कहा है।

महामंडलेश्वर अमोघवर्ष प्रथम ने अपना शेष काल सूलिभंजन में बिताया।

सूलिभंजन एलोरा से 5 कि.मी. दूरी पर है। इसी अमोघवर्ष को जिनसेनाचार्य ने धर्म के पाठ पढ़ाये। इससे स्पष्ट होता है कि आठवीं सदी से लेकर 12 वीं सदी तक एलोरा में जैनियों का खासा निवास था। इस ऐतिहासिक तथ्यों का विचार करने पर यह निश्चित होता है कि नवमीं शताब्दी से लेकर 13 वीं शताब्दी तक अर्थात् मुसलमानों द्वारा दक्षिण आक्रमणों तक जैन गुफाऐं बनती रहीं।

एलोरा, अजंता जो अपनी संस्कृति के लिए विश्व में विख्यात हैं। उसी प्रांगण में जैन जगत के इतिहास में उभरकर आया है, इस शताब्दी की अनूठी देन "श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल)। गुरुकुल प्रणाली का गौरवशाली इतिहास तक्षशिला, नालंदा विश्वविद्यालय जो आज खंडहरों के रूप में विद्यमान है। वही झाँकी, इस शताब्दी में लौकिक शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक दृष्टि का सूत्रपात एलोरा गुरुकुल से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। गुरुदेव आचार्य श्री 108 समंतभद्र महाराज की प्रेरणा से तथा तीर्थरक्षा शिरोमणि आचार्य श्री 108 आर्यनंदी महाराज के सानिध्य में प्रारंभ हुआ यह गुरुकुल आज देश में अपना देदीप्यमान स्थान रखता है।

गुरुकुल की विशेषता–

□.200 दिगम्बर जैन बालकों को अत्यल्प शुल्क में भोजन, निवास की व्यवस्था।

□. दो मंजिला नवनिर्मित आ.आर्यनंदी छात्रावास।

□. नवनिर्मित श्री सुभाषसा केशरसा साहूजी भोजनालय।

□. सर्वांगीण विकास हेतु अत्याधुनिक बाहुबली व्यायामशाला।

□. स्वाध्याय हेतु आचार्य आर्यनंदी श्रुतभंडार।

□. आरोग्य हेतु श्री चुन्नीलाल सा साहूजी आरोग्यधाम।

□. आध्यात्मिक प्रगति हेतु नित्यनियम से पूजा, अभिषेक, प्रार्थना, स्वाध्याय आदि।

□. धार्मिक शिक्षा में जैन-धर्म चारों भाग, छहढाला, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्डश्रावकाचार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि ग्रंथों का सार्थ पठन-पाठन।

□. संगणक प्रशिक्षण की स्वतंत्र व्यवस्था, तज्ज्ञ प्रशिक्षक।

□.यात्रियों के ठहरने हेतु सुसज्जित दो धर्मशालाएँ।

विद्यालय का उल्लेखनीय कार्य–

□ कक्षा 5 वीं से 10 वीं तक शैक्षणिक सुविधा।

□ लौकिक शिक्षा में मैट्रिक का औसतन परीक्षा परिणाम लगभग 80 से 90 प्रतिशत रहता है। जिसमें अधिकांश छात्र विशेष प्रावीण्य धारक होते हैं।

□ खेलकूद में राष्ट्रीय स्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त किया, परिणामस्वरूप केंद्र सरकार द्वारा विशेष अनुदान प्राप्त।

□ महाराष्ट्र राज्य के शिक्षा विभाग में ग्रामीण विभाग के स्कूलों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया है।

□ क्रीड़ा-साहित्यिक-सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक स्पर्धाओं में सदैव अग्रसर।

□ टेक्नीकल स्कूल द्वारा बालकों को स्वावलंबी बनाया जाता है इस विभाग का भी महाराष्ट्र में अपना विशेष स्थान है।

□ विद्यालय में 1200 छात्र हैं, 36 शिक्षकों का सुविद्य स्टाफ है।

आसेगाँव

मार्ग और अवस्थिति–श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ दि.जैन अतिशय क्षेत्र, आसेगाँव महाराष्ट्र प्रांत के हिंगोली जिले के वसुमतनगर तालुका में अवस्थित है। रेलवे स्टेशन वसुमतनगर से यह तीर्थ 8 कि.मी. दूर एवं नांदेड़ से 16 कि.मी. दूर अवस्थित है। वसुमतनगर तथा नांदेड़ से बस अथवा जीप द्वारा जाया जा सकता है। सड़क पक्की है।

ऐतिहासिकता–यह अति प्राचीन अतिशय क्षेत्र है। यहाँ पर चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान की पंचकुमारयुक्त अतिमनोज्ञ एक हजार साल पुरानी मनोवांछित फलदायी चमत्कारिक मूर्ति विराजमान है।

मंदिर की वास्तु हेमाड़ पंथी क्षीण होने से मंदिर धर्मशाला के जीर्णोद्धार का काम पूर्णतः नया हुआ है। यहाँ पंचकल्याणक और वेदी प्रतिष्ठा सन् 2003 में संपन्न हो चुकी है। आसना नदी के पश्चिम तट पर बसा हुआ यह क्षेत्र भूमि से 20 फुट ऊँची गढ़ी पर विराजमान है। सातिशय चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा का अभिषेक प्रतिदिन होता है जिसके लिए गाँव से दूध आता है। यहाँ की विशेषता है कि गाँव में से मंदिर जी में पानी मिला दूध कभी नहीं दिया जाता है।

वार्षिक मेला–यहाँ पर कार्तिक शुक्ला 15 को प्रतिवर्ष यात्रोत्सव होता है। इसके अलावा पौष मास की वदी ग्यारस से तेरस तक श्री पार्श्वनाथ जन्मजयंती को वार्षिक उत्सव मनाते हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सेवाएँ–क्षेत्र पर कुल 9 कमरे हैं जिसमें 2 कमरे डीलक्स हैं, 2 हॉल भी हैं, यहाँ कुल 200 यात्रियों को ठहराने की क्षमता है। भोजनशाला सशुल्क है, अनुरोध करने पर भोजन तैयार किया जाता है।

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र-खड़ौआ, जिला-एटा

-डॉ. कु.मालती जैन, मैनपुरी

पृथ्वी का पर्यायवाची शब्द है-'रत्नगर्भा' यह पृथ्वी अपने गर्भ में न जाने कितने रत्नों को छिपाये है, किसी विशिष्ट अवसर पर, किसी शुभ निमित्त से जब कोई देदीप्यमान अमूल्य रत्न पृथ्वी के गर्भ से बाहर आता है तब उसकी दिव्य आभा से समस्त परिसर आलोकित हो जाता है।

ऐसी ही घटना हुई-6-12-2004 को, जब आचार्य श्री विवेकसागर के शिष्य ऐलक श्री विश्वप्रभुसागर जी स्थानीय जैन समाज के आमंत्रण पर खड़ौआ पधारे। रात्रि के विश्राम के समय लगभग 12:30 पर महाराज श्री को स्वप्न आया कि जिनमंदिर के आगे भूमि में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ हैं। इसलिए उस पर किसी प्रकार की गंदगी न करें। प्रातःकाल ऐलकश्री ने जैन समाज के लोगों से स्वप्न दर्शन की चर्चा कर यह इच्छा प्रकट की कि भूगर्भ से प्रतिमाओं के उत्खनन का कार्य सम्पन्न होना चाहिए। जैन बंधुओं ने इसे अपने गाँव का सौभाग्य समझा। भूमि की स्वामिनी श्रीमती मुन्नीदेवी पत्नी श्री विनोद कुमार जैन से भूमि को खुदवाने की अनुमति माँगी गई। श्रीमती मुन्नीदेवी ने अपने परिवारीजन से परामर्श कर सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। शुभ घड़ी शुभ दिन 11-12-2004 को चतुर्दशी के दिन महाराज जी के आहार से पूर्व ही भूमि खनन का कार्य प्रारंभ हुआ। अतिशय चमत्कार-9 फीट गहरे गड्ढे से नाग-नागिन का जोड़ा निकला, खनन करने वाले श्रमिक भयभीत हो बाहर आ गये। सर्पयुगल ने किसी को काटा नहीं। जैन बंधुओं ने भी अहिंसा धर्म का पालन करते हुए नाग-नागिन को पकड़वाकर जंगल में छुड़वा दिया।

सर्पयुगल को देखकर भक्तों के मस्तिष्क में पार्श्वनाथ भगवान के गृहस्थ जीवन की घटना कौंध गई। वाराणसी में अपने मित्रों के साथ विहार करते हुए पार्श्वनाथ ने एक तापसी को एक लक्कड़ को जलाते हुए देखा। अवधिज्ञान से पार्श्वनाथ भगवान को ज्ञात हुआ कि इस लक्कड़ में एक जीवित सर्पयुगल है जो कुछ समय पश्चात् काल का ग्रास बन जाएगा।पार्श्वनाथ्ज्ञ ने तापसी को अग्नि जलाने से रोका। तापसी को कुमार के कथन पर विश्वास नहीं हुआ। उसने क्रोधित हो जैसे ही कुल्हाड़ी से लक्कड़ को चीरा-मरणासन्न नाग-नागिन का जोड़ा बाहर आ गया। करुणा की प्रतिमूर्ति पार्श्वनाथ ने सर्पयुगल को णमोकार मंत्र सुनाया। शुभ भावों से सर्पयुगल की मृत्यु हुई और उनका जन्म धरणेन्द्र-पद्मावती के रूप में हुआ। कमठ के द्वारा ध्यानस्थ प्रभु पर भयंकर उपसर्ग किये जाने पर धरणेन्द्र-पद्मावती ने ही अपने फण का वितान (छत्र) टाँगकर प्रभु की रक्षा की थी।

कुछ और खुदाई करने पर भगवान पार्श्वनाथ की दो प्रतिमाएँ, एक चाँदी का सर्प और विजययंत्र प्राप्त हुआ। यह समाचार पूरे खड़ौआ में फैल गया। समस्त जाति, धर्म, सम्प्रदाय के लोग खनन स्थल पर एकत्रित हो गये। भगवान पार्श्वनाथ की जयकार की तुमुल ध्वनि से नभ गुंजित हो उठा। खड़ौआवासियों को गर्व हुआ अपनी धरती पर, जो सचमुच में रत्नगर्भा सिद्ध हुई। छोटा सा गाँव खड़ौआ अपने बड़े भाग्य पर हर्ष एवं गर्व से झूम उठा।

चमत्कार की पुस्तिका में अभी कुछ और पृष्ठ शेष थे। 12-12-2004 को जब महाराजश्री ने पार्श्व प्रभु की दोनों प्रतिमाएँ थाली में रखीं, सर्प और सर्पिणी जंगल से आकर उस थाली के चारों ओर मँडराने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण रात्रि प्रभु-प्रतिमाओं की रक्षा की। एक सर्प तो भगवान की थाली को घेरे हुए था और दूसरा सर्प प्रतिमा के ऊपर फण फैलाकर खड़ा हुआ था। धरणेन्द्र और पद्मावती के द्वारा प्रभु के उपसर्ग-निवारण की पुरातन कथा को वर्तमान युग में जीवंत होते देखकर दर्शकों के हर्ष की सीमा न रही। उन्हें प्रतीत हुआ कि आज उनका खड़ौआ में जन्म लेना सार्थक हो गया। दर्शकों ने नतमस्तक हो रत्नगर्भा धरती की माटी को मस्तक पर लगाया और संकल्प किया-इस पुनीत स्थान पर भव्य मंदिर-निर्माण का, अहिच्छत्र की परिकल्पना उनके मस्तिष्क में जागृत हुई। विचार आया-हम अपने प्रयत्नों से 'खड़ौआ' को अहिच्छत्र का रूप प्रदान करेंगे।

मंदिर निर्माण का कार्य द्रुतगति से हो रहा है। सर्प युगल आज भी कभी-कभी वेदी पर विचरण करते हैं या कभी अपने पूर्व स्थल गड्ढे में विहार कर आते हैं। उल्लेखनीय समाचार यह है कि आज तक सर्पयुगल ने किसी को काटा नहीं। यहाँ तक कि वे फुफकारना भी भूल गये हैं। पार्श्व प्रभु के सच्चे भक्तों के संदर्भ में यह आश्चर्य का विषय नहीं है। करुणा सागर प्रभु के चरणों में समर्पित होने वाले प्राणियों के हृदय में क्रोध, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा जैसे कुत्सित भाव उत्पन्न ही नहीं होते। पार्श्वप्रभु का स्वयं का जीवन क्षमा, करुणा और अहिंसा का सुन्दरतम निदर्शन है-इसलिए भक्त उन्हीं सौम्य, सात्विक भावों को धारण करना चाहता है–

'क्रोधित हो क्रूर कमठ ने जब, नभ में ज्वाला बरसाई थी।
उस आत्मध्यान की मुद्रा में, आकुलता तनिक न आई थी।
विघ्नों पर वैर विरोधों पर, मैं साम्य भाव धर जय पाऊँ।
मन की व्याकुलता मिट जाये, ऐसी शीतलता पा जाऊँ।

मंदिर एवं अतिथि–निवास के कार्य में सबसे सहयोग की आवश्यकता है। खड़ौआ में जैन बंधुओं की संख्या अधिक नहीं है। पारस प्रभु के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। पार्श्व प्रभु की कृपा से आपका किंचित सहयोग भी चमत्कार दिखलाएगा।

दिगम्बर जैन देवपुरी अतिशय क्षेत्र (देरोल-वाघेला)

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

गुजरात प्रांत में खेड़ब्रह्मा तहसील से पूर्व दिशा में 6 कि.मी. की दूरी पर 'देरोल' ग्राम है, जो पूर्व में 'देवनगरी' या 'देवपुरी' के नाम से विख्यात रहा है। इसे अब 'देरोल' के नाम से जाना जाता है। यह स्थान खेड़ब्रह्मा से 8 कि.मी. की दूरी पर है, रेल द्वारा अहमदाबाद से खेड़ब्रह्मा जा सकते हैं, देरोल-वाघेला में बस भी आती हैं। खेड़ब्रह्मा-अहमदाबाद, ईडर-हिम्मतनगर मुख्य मार्ग है, बस एवं टैक्सी खेड़ब्रह्मा से उपलब्ध है।

वर्तमान में यहाँ तीन जिनालय हैं इनमें से एक श्वेताम्बरों के प्रबंध में है, शेष दो मंदिरों की व्यवस्था दिगम्बर जैन समाज करती है। चतुर्थ शताब्दी की प्राचीन काल की कलात्मक भगवान श्री 1008 आदिनाथ की अतिशयकारी बावन जिनालय प्रतिमा मंदिर क्रमांक 1 में है एवं दूसरे जिनालय में भगवान श्री 1008 पार्श्वनाथ की अतिशयकारी मनोकामना पूर्ण करने वाली चमत्कारी प्रतिमा है। इन दोनों मंदिरों में सभी प्रतिमाएँ दिगम्बर आम्नाय की हैं। मंदिर बावन जिनालय कोठरिया पर संवत् 1115 से 1135 लिखा है। स्थानीय लोग इसे 'लाखेणाना' मंदिर के नाम से जानते हैं।

विशेष–भगवान पार्श्वनाथ से मन्नत मांगने पर एवं पूर्ण होने पर गुड़ एवं शक्कर का प्रसाद रखने पर वहाँ के लोगों को बांट दिया जाता है।

वार्षिक मेला–हर पूर्णिमा पर मेला लगने पर 1000 से अधिक लोग आते हैं एवं वर्ष में ज्येष्ठ सुदादशमी को बड़ा मेला लगता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–क्षेत्र पर मात्र 10 कमरे और एक हाल है। भोजनशाला नियमित एवं सशुल्क है, औषधालय भी है।

हुँमचा (हुंबुज पद्मावती) दि.जैन अतिशय क्षेत्र

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, हुंबुज पद्मावती जिला सिमोगा में स्थित है। इसका पोस्ट हुम्बुज एवं तहसील हासानगर है। यह शिमोगा से 60 कि.मी. दूर, उडुपी से 120 कि.मी. दूर एवं हरिहर से 125 कि.मी. दूर अवस्थित है। सड़क मार्ग द्वारा व्हाया शिमोगा, आइनुर, रिपनपेट एवं हुमचा से सरलतापूर्वक पहुँचा जा सकता है। क्षेत्र पर 11 मंदिर हैं। पहाड़ भी है।

यहाँ पद्मावती मंदिर अतिशयपूर्ण है। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि सच्चे मन से प्रार्थना करने पर मनोकामना पूर्ण होती है तथा मंदिर में कोई फूल गिर जाए तो यात्री की मनोकामना पूर्ण हो जायेगी। यहाँ हर वर्ष पंचामृत अभिषेक महोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न होता है। प्रत्येक शुक्रवार को सर्वाधिक यात्री आते हैं। समीपवर्ती क्षेत्र वारंगल, कारकल, मूड़बिद्री, वेणूर, धर्मस्थल, जोगफाल व ज्वालामालिनी हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–यहाँ कुल 68 कमरे हैं जिनमें 48 डीलक्स फ्लैट हैं। 2 हाल हैं एवं 1 गेस्ट हाउस है। भोजनशाला नियमित, निःशुल्क है। औषधालय, पुस्तकालय एवं गुरुकुल भी है।

श्री पार्श्वनाथ दि.जैन कमठाण अतिशय क्षेत्र

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

जिला बीदर (कर्नाटक) में स्थित कमठाण नामका यह अतिशय क्षेत्र बीदर बस स्टैण्ड से आधा कि.मी.दूर एवं रेलवे स्टेशन से 11 कि.मी. दूर है। रेल अथवा सड़क मार्ग, मुम्बई-हैदराबाद राष्ट्रीय राजमार्ग क्र.9 से 19 कि.मी. की दूरी पर है। बीदर जैन मंदिर में भी ठहरने के लिए कमरे की व्यवस्था है। बीदर नगर में जैन मंदिर देखने लायक है। समीपवर्ती अन्य दर्शनीय स्थलों में 100 कि.मी. की दूरी पर 'मान्य-खेट' (मल-खेड़) में भगवान मल्लिनाथ का मंदिर है। समीपवर्ती क्षेत्र बीदर, हुमनाबाद, भालकी, औरादनगर, अतिशय क्षेत्र कुलचारम्, अतिशय क्षेत्र हुणसी (गुलबर्गा) हैं।

रट्ट राजवंशी के राजा द्वारा निर्मित भगवान पार्श्वनाथ की ध्यानमग्न पद्मासन प्रतिमा 4 फीट ऊँची 1100 वर्ष प्राचीन अति सुन्दर एवं मनोहारी है। देखने वालों को ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् तीर्थंकर मौन व्रत धारण कर तपस्या में जीवन्त बैठे हुए हैं। सन् 1987 में आचार्य श्री श्रुतसागर महाराज ने प्रतिमाजी को गुफा के ऊपरी भाग में प्रतिष्ठापित करवाया।

रथयात्रा महोत्सव–प्रतिवर्ष माघ शुक्ल 5 से 7 तक रथयात्रा महोत्सव मनाया जाता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–यहाँ मात्र 12 कमरे एवं 2 हाल हैं। 1 प्रवचन हाल है जिसमें 200 व्यक्तियों के बैठने की क्षमता है। भोजनशाला आधुनिक सुविधा से युक्त निःशुल्क है किन्तु अनुरोध करने पर भोजन तैयार होता है। औषधालय एवं पुस्तकालय है।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र स्तवनिधी

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र स्तवनिधी जिला बेलगाँव (कर्नाटक) में स्थित है। यह क्षेत्र कोल्हापुर रेलवे स्टेशन से 45 कि.मी. एवं बेलगाँव रेलवे स्टेशन से 70 कि.मी. दूर अवस्थित है। सड़क मार्ग से पहुँचने के लिए कोल्हापुर से 45 कि.मी. राष्ट्रीय राजमार्ग क्र.-4 है। निकटतम नगर कोल्हापुर एवं इचलकरंजी हैं। समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र कुम्भोज बाहुबली, कोथली एवं कसमलगी हैं।

यहाँ के बारे में प्रसिद्धि है कि बीजापुर के बादशाह की बेगम बहुत बीमार थीं। पायशेट्टि और जायशेट्टि श्रावकों के उपचार से बेगम ठीक हो गईं, तब बादशाह ने उनके अनुरोध पर जिनमंदिर निर्माण करने की अनुमति प्रदान की। रात्रि में दोनों श्रावकों को स्वप्न में वल्मीक से ध्वनि सुनाई दी। तब उक्त स्थान पर खोदने पर मूर्ति खण्डित अवस्था में मिली। तब उन्हें पुनः स्वप्न हुआ तब उन्होंने पुनः मूर्ति निकाली तो अखण्डित मूर्ति प्राप्त हुई। वही मूर्ति **श्री नवखंड पार्श्वनाथ भगवान** वर्तमान में दर्शन के लिए उपलब्ध हैं। यहाँ क्षेत्रपाल ब्रह्मदेव भी श्रद्धा के स्रोत हैं।

वार्षिक मेला–क्षेत्र का वार्षिक मेला प्रतिवर्ष पौष कृष्णा अमावस्या को लगता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–यहाँ पर कुल 34 कमरे हैं एवं 3 हॉल हैं। भोजनशाला निःशुल्क नियमित है।

णमोकार महामंत्र साधना केन्द्र, बही पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र

–ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

णमोकार महामंत्र साधना केन्द्र, बही पार्श्वनाथ चौपाटी ग्राम बही तहसील मल्हारगढ़ जिला मंदसौर में स्थित है। क्षेत्र पर चार मंदिर, एक चौबीसी एवं एक मानस्तम्भ है। क्षेत्र पर सम्मेदशिखर पहाड़ की रचना भी बनी हुई है। पिपल्या मंडी रेलवे स्टेशन से यह 3 कि.मी. दूर एवं मंदसौर रेलवे स्टेशन से यह 14 कि.मी. दूर अवस्थित है। सड़क मार्ग व्हाया मंदसौर या पिपल्या मंडी है। समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र प्रतापगढ़, बमोतर शांतिनाथ, देवगढ़, धरियावद है जो कि राजस्थान में स्थित है।

इस साधना केन्द्र पर णमोकार महामंत्र का जाप करने से बड़ा आनंद प्राप्त होता है एवं विघ्न-बाधाओं से मुक्ति मिलती है। यहाँ आचार्य श्री कल्याणसागर जी महाराज की समाधि भी बनी है, क्षेत्र का निर्माण इन्हीं की प्रेरणा से हुआ है। यहाँ वृद्धाश्रम, संत निवास, शिक्षण संस्थान बनाने की योजना है। समवसरण रचना का कार्य प्रगति पर है।

वार्षिक मेला–श्री पार्श्वनाथ जयंती, आष्टान्हिक पर्व-आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को प्रतिवर्ष मेले का आयोजन होता है तथा विशेष आयोजन भी होता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–यात्रियों के आवास हेतु क्षेत्र पर 13 डीलक्स कमरे एवं 2 हाल हैं। भोजनशाला सशुल्क है, अनुरोध करने पर भोजन तैयार होता है।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बरेला

–ब्र. कु. चन्द्रिका जैन (संघस्थ)

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बरेला जिला–जबलपुर (म.प्र.) में स्थित है।

जबलपुर रेलवे स्टेशन से यह 16 कि.मी. एवं बरेला बस स्टैण्ड से आधा कि.मी. दूर स्थित है। जबलपुर-मंडला सड़क मार्ग से पहुँच सकते हैं।

क्षेत्र पर 3 मंदिर हैं। यहाँ 200 वर्ष पुराना शिखरबंद मंदिर है। लगभग 10 वर्ष पूर्व मंदिर जी से 14 प्रतिमाएँ चोरी चली गईं थीं जो 2 दिन बाद सही हालत में बरामद हो गईं। क्षेत्र के अतिशय के कारण ही एक बार मंदिर के शिखर पर बिजली गिरने से मंदिर के जलने के अलावा कोई नुकसान नहीं हुआ। समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र मढ़ियाजी (जबलपुर), भेड़ाघाट, पनागर, बहोरीबंद अतिशय क्षेत्र, कोनीजी, कुण्डलपुर सिद्धक्षेत्र हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ– क्षेत्र पर मात्र 5 कमरे और 1 हाल है। भोजनशाला निःशुल्क है, अनुरोध पर भोजन तैयार होता है। क्षेत्र पर औषधालय, विद्यालय व पुस्तकालय भी है।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कैथूली

श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कैथूली,मध्यप्रदेश के कैथूली ग्राम में स्थित है जिसका जिला मंदसौर है। समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र चाँदखेड़ी एवं झालरापाटन हैं। रामगंजमंडी रेलवे स्टेशन से यह 16 कि.मी. दूर है, स्टेशन पर उतरकर पुनः सड़क मार्ग से जाते हैं। रामगंज मंडी बस स्टैण्ड से भी यह 16 कि.मी. दूर अवस्थित है। भानपुरा सड़क मार्ग से यह 25 कि.मी. एवं निमथूर होकर 13 कि.मी.है। रामगंज मंडी से या सड़क मार्ग मंदसौर-गरोठो से यह 105 कि.मी.दूर है।

म.प्र., राजस्थान सीमा एवं अरावली पर्वत श्रृंखला की तलहटी पर स्थित यह स्थल 1100 वर्ष प्राचीन है। चतुर्थ काल की चौबीसी एवं मनोहारी चमत्कारी प्रतिमा है। जिनालय के गर्भगृह में वेदियाँ हैं। एक सुरंग की गन्तव्य अज्ञात है। गर्भगृह में एक प्राचीन शिलालेख होने से ऐतिहासिक संकेत उभरे हैं। शिलालेख एवं किंवदंती के अनुसार यहाँ भगवान चन्द्रप्रभु की प्राचीन प्रतिमा होनी चाहिए। संभव है कि किसी तलघर में मूर्तियों का खजाना मिले। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा क्षेत्र पर विराजित है तथा कुल 40 जिनबिम्ब विराजमान हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ-क्षेत्र पर यात्रियों के आवास हेतु 7 कमरे और 1 हाल है। अनुरोध पर सशुल्क भोजन उपलब्ध है।

श्री दिगम्बर जैन पार्श्वगिरि (बड़वानी)

श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र पार्श्वगिरि (बड़वानी) म.प्र. के ग्राम आमल्या पानी में स्थित है। इसका जिला व तहसील बड़वानी है। रेलवे स्टेशन महू से यह 138 कि.मी., खंडवा रेलवे स्टेशन से 180 कि.मी. एवं इन्दौर रेलवे स्टेशन से यह 160 कि.मी. दूर है। बस स्टैण्ड से मात्र 2 कि.मी. दूर अवस्थित है। इन्दौर, महू व खंडवा से बस द्वारा भी बड़वानी पहुँच सकते हैं। समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र बावनगजा, ऊन व सिद्धवरकूट हैं।

क्षेत्र पर अत्यंत प्राचीन परमारकालीन मंदिर था जिसके अवशेष आज भी विद्यमान हैं। भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा (परमारकालीन) क्षेत्र पर विराजित है। प्रतिमा के दर्शन से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं एवं समस्त प्राणियों के दुख-दर्द भी मिट जाते हैं, ऐसी क्षेत्र की मान्यता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ– क्षेत्र पर यात्रियों के आवास हेतु मात्र 6 कमरे और 2 हालहैं, जिसमें 2 कमरे डीलक्स हैं।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पिड़रुवा

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पिड़रुवा मध्यप्रदेश के सागर जिले में पिड़रुवा ग्राम में स्थित है, तहसील बंडा है। रेलवे स्टेशन सागर से 35 कि.मी. दूर है, बस स्टैण्ड से भी इसकी दूरी 35 कि.मी. है। सड़क मार्ग पाली से पिड़रुवा या सागर से धामोनी मार्ग वहरोल से पिड़रुवा पहुँच सकते हैं। सागर से सड़क मार्ग द्वारा झाँसी रोड पर पाली-35 कि.मी. दूर है।

यह सागर से उत्तर की ओर 35 कि.मी. दूर सघन वन में स्थित अतिप्राचीन क्षेत्र है। आदिनाथ स्वामी की 6 फीट पद्मासन प्रतिमा, पाषाण की 41 प्रतिमाएँ एवं पीतल की 71 प्रतिमाएँ विराजित हैं। मंदिरजी में 31 बड़े यंत्र, 81 हस्तलिखित ग्रंथ एवं छपे शास्त्र हैं। क्षेत्ररक्षक पद्मावती देवी की प्रतिमा अद्‌भुत एवं अतिशयकारी है एवं अमावस्या पर कष्ट दूर करती है। मंदिर में 7 वेदियाँ, 2 चौक व 4 शिखर हैं। अनेक आचार्य, मुनि, माताजी यहाँ ध्यानार्थ पधारते रहते हैं। मंदिर में संवत् 1400 की अत्यंत प्राचीन मूर्तियाँ हैं। हस्तलिखित ग्रंथराज हैं। मंदिर में ग्राम नैतना, बम्होरी सागोनी, धामोनी के मंदिर समाहित हैं। शनि अरिष्ट निवारक श्री देव मुनिसुव्रतनाथ भगवान की अद्वितीय तीन फुट श्यामवर्ण, पाषाण की प्रतिमा है। प्रत्येक शनिवार-अमावस्या को मेला लगता है।

समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र नैनागिरि, बीना (बारहा), कुण्डलपुर, द्रोणगिरि, पजनारी, बण्डाजी एवं खजुराहो हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ-

क्षेत्र पर 4 कमरे और 2 हाल हैं। भोजनशाला है पर अनुरोध पर समयानुसार भोजन तैयार होता है।

श्री चिन्सुरा पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

श्री चिन्सुरा पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पश्चिम बंगाल के हुगली जिले में अवस्थित है। रेलवे स्टेशन चूचड़ा है, बस स्टैण्ड लोकल है।

इस मंदिर में दिगम्बर, श्वेताम्बर आदि सभी लोग क्षेत्रपाल की पूजा अर्चना हेतु आते रहते हैं। प्रतिमा प्राचीन एवं मनोरम है। ऐसी मान्यता है कि तीर्थयात्री श्री क्षेत्रपाल जी, भौमियाँ जी को मनोकामना पूर्ण होने पर पूजने आते हैं। भगवान श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा 400 वर्ष पुरानी है। 'हुगली-चिन्सुरा' शहर आरशा परगना के अंतर्गत है। मंदिर 18 वीं शताब्दी के प्रारंभ में निर्मित हुआ है, यह विख्यात पार्श्वनाथ मंदिर गली में जोगीपाड़ा का जैन मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है एवं अन्य तीर्थंकर की भी प्रतिमाएँ हैं।

वार्षिक मेला–वार्षिक मेला महावीर जयंती एवं अनंत चतुर्दशी को लगता है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–क्षेत्र पर मात्र 2 कमरे और 1 हाल है। निजी गेस्ट हाउस है। भोजनशाला में अनुरोध पर सशुल्क भोजन तैयार होता है। 2 कि.मी. की दूरी पर निजी होटल व गेस्ट हाउस है। निजी औषधालय भी है।

समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र मधुवन पारसनाथ (झारखण्ड), कोयलाधार दिगम्बर जैन मंदिर एवं खण्डगिरि-उदयगिरि (उड़ीसा) है।

श्री देबारी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र

–ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

श्री देबारी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र राजस्थान के उदयपुर जिले में अवस्थित है। ग्राम देबारी स्थित इस तीर्थ पर मात्र एक ही जिनमंदिर है। यह स्थान उदयपुर रेलवे स्टेशन तथा बस स्टैण्ड से मात्र 10 कि.मी. की दूरी पर है। उदयपुर से सड़क मार्ग से भी सुगमता से पहुँचा जा सकता है।

समीपवर्ती तीर्थक्षेत्रों में अणिन्दा पार्श्वनाथ, श्री केशरिया जी, नागफणी पार्श्वनाथ और अन्देश्वर पार्श्वनाथ प्रमुख हैं।

भगवान पार्श्वनाथ की अतिशय युक्त यह प्रतिमा श्याम वर्ण की अति मनोहारी है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–क्षेत्र पर यात्रियों के आवास हेतु 14 कमरे व 3 हाल हैं जिसमें 10 कमरे डीलक्स हैं। क्षेत्र पर आधुनिक अतिथिगृह है। यहाँ पर 40 बिस्तरों का दवाखाना अत्याधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण है।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय चमत्कारी क्षेत्र टोड़ी-फतेहपुर

श्री दिगम्बर जैन अतिशय चमत्कारी टोड़ी-फतेहपुर उत्तरप्रदेश के झाँसी जिले में स्थित है। इसकी तहसील महरौली है। मऊरानीपुर रेलवे स्टेशन से 30 कि.मी. दूर झाँसी से 90 कि.मी. दूर तथा बस स्टैण्ड टोड़ी फतेहपुर से यह 50 किमी. दूर है। गुरसराय मार्ग पर पंडवाहा तिराहा 5 कि.मी.है, टैक्सी दिन भर उपलब्ध है। मऊरानीपुर एवं झाँसी से नियमित बस द्वारा जा सकते हैं।

इस क्षेत्र में 2 मनोहारी अतिशययुक्त जिनमंदिर हैं जिसमें चौबीसी समवसरण एवं नंदीश्वर द्वीप की मनोहारी रचना है। यहाँ प्रवचन भी होते हैं एवं धर्म का मार्ग भी दिखाया जाता है।

विशेषता–यहाँ पर असाध्य रोगों का इलाज जैनधर्म के माध्यम से किया जाता है। इस मंदिर में जो भी रोगी रोता हुआ आता है वह प्रसन्न होकर जाता है। यहाँ पर संकट से घिरे हुए व्यक्तियों की बाधाओं का निराकरण होता है।

वार्षिक मेला–समवसरण सभा कृष्ण पक्ष की 12 से प्रारंभ होकर शुक्ल पक्ष की द्वितीया तक चलती है, जिसमें यात्रियों के ठहरने एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था है। समीपवर्ती क्षेत्र करगुंआ जी (झाँसी), आहार जी, पपौरा जी, खजुराहो व सोनागिरि जी हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–क्षेत्र पर 50 कमरे और 3 हाल हैं जिसमें 10 कमरे डीलक्स हैं। गेस्ट हाउस पंडवाहा में है जो 5 कि.मी. दूर है। भोजनशाला है, औषधालय निजी एवं शासकीय दोनों हैं, विद्यालय शासकीय है।

थूवौन जी के अतिशयकारी पार्श्वनाथ मंदिर

–आर्यिका श्री अभयमती माताजी

अतिशय क्षेत्र–श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र थूवौन मध्यप्रदेश के ग्वालियर संभाग में गुना जिले के अंतर्गत तहसील मुंगावली में पार्वत्य प्रदेश में अवस्थित है। यह अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ पर देवकृत अतिशयों की घटनाएँ किंवदंती के रूप में प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि सेठ पाड़ाशाह का राँगा यहाँ आकर चाँदी हो गया था। पाड़ाशाह को लेकर इस प्रकार की न जाने कितनी किंवदंतियाँ विभिन्न क्षेत्रों पर प्रचलित हैं। बजरंगगढ़ में उन्हें एक पारसमणि मिली थी, जिससे वे सोना बनाकर मंदिर बनवाया करते थे। आहारजी में एक शिला पर राँगा उतारने पर वह सारा राँगा चाँदी हो गया। थूवौन में भी उनका राँगा चाँदी हो गया और भी न जाने किन-किन क्षेत्रों पर उनका राँगा चाँदी हुआ हो। आधुनिक समीक्षकों का विचार है कि पाड़ाशाह राँगा के बहुत बड़े व्यापारी थे। उनके पास राँगा का बहुत बड़ा स्टाक था। परिस्थितिवश राँगा महँगा हो गया। इससे सेठ पाड़ाशाह की चाँदी हो गयी और उस मुनाफे के धन से उन्होंने खलारा, बल्हारपुर, सुखाहा, भामौन, सुमेका पहाड़, शेषई, राई, पनवाड़ा, आमेट, दूवकुण्ड, थूवौन, आरा (अगरा), पचराई, गोलाकोट, सोनागिर, अहार, बजरंगगढ़ आदि अनेक स्थानों पर जैन मंदिर बनवाये और उनकी धर्मपत्नी ने– जो वैष्णव धर्म की अनुयायी थी– वैष्णव मंदिर बनवाये।

वास्तव में इस क्षेत्र का अतिशय यह नहीं है कि यहाँ किसी व्यक्तिविशेष का राँगा चाँदी हो गया, वरन् क्षेत्र का अतिशय यह है कि यहाँ जो व्यक्ति भक्तिवश दर्शनार्थ आता है, उसके मानस पर यहाँ की एकान्त शांति, पवित्र वातावरण और भगवान जिनेन्द्रदेव की वीतराग मूर्तियों का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह कुछ काल के लिए सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त होकर आत्मिक शांति और आह्लाद का अनुभव करने लगता है। इस शांति और आह्लाद को पाने के लिए यहाँ देवगण भी आते हैं और यहाँ आकर वे भाव-भक्ति से वीतराग प्रभु का दर्शन, वंदन और पूजन करते हैं।

किन्तु साधारणजनों के मन में चमत्कारों और अतिशयों के माध्यम से भगवान की भक्ति का अंकुरारोपण होता है। वे ऐसे चमत्कारों और अतिशयों से ही अतिशय प्रभावित होते हैं। इसलिए उनकी सन्तुष्टि के लिए यहाँ ऐसी कुछ घटनाओं का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जो किंवदन्तियों के रूप में इस प्रदेश में बहुप्रचलित हैं, उनमें से यहाँ एक का वर्णन है–

एक बार आततायियों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया। वे जब मूर्तिभंजन करने के लिए आगे बढ़े तो उन्हें मूर्ति ही दिखाई नहीं दी। तब वे लोग मंदिर को ही क्षति पहुँचाकर वापस चले गये।

क्षेत्र का प्राकृतिक सौन्दर्य–वेत्रवती (वेतवा) की एक सहायक नदी उर्वशी (उर) से एक कि.मी. दूर एक सपाट चट्टान पर मंदिर है। मंदिर के उत्तर की ओर एक छोटी सी नदी लीलावती (लीला) है। इसप्रकार इन युगल सरिताओं के मध्य स्थित क्षेत्र की प्राकृतिक सुषमा अवर्णनीय है। ये नदियाँ कलकल ध्वनि करती हुईपर्वत-शिलाओं से टकराती, उछलती, मचलती, बहती अत्यंत लुभावनी लगती हैं। एक ओर पर्वतमालाएँ, उन पर छितराये हुए सघन वन की हरीतिमा और उसके बीच सिर उठाकर झाँकते हुए जिनालयों के उत्तुंग शिखर तथा उनके शीर्ष पर फहराती हुईधर्मध्वजाएँ– ये सब मिलकर इस सारे अंचल को, सारे वातावरण को एक स्वप्नलोक सा बना देते हैं और भक्त हृदय आध्यात्मिक साधना के लिए उपयुक्त इस प्रशान्त पावन लोक में आकर सारे भौतिक अवसादों को भूल जाता है। उसका मन अध्यात्म की रंगीनियों में डूब जाता है।

क्षेत्र के नाम की व्युत्पत्ति–जिस प्रकार बौद्ध साहित्य में 'तुम्बवन' का नाम आता है जो अब 'तूमैन' कहलाता है, उसी प्रकार प्राचीन काल में इस क्षेत्र का नाम 'तपोवन' रहा होगा। तपोवन शब्द विकृत होकर 'थोवन' हो गया। कुछ लोग इसे थूवौन भी कहते हैं।

क्षेत्र दर्शन–क्षेत्र पर मंदिरों की कुल संख्या 25 है।

चंदेरी–अशोकनगर सड़क के किनारे ही क्षेत्र अवस्थित है। बस क्षेत्र के प्रवेश द्वार पर रुकती है। प्रवेशद्वार में प्रवेश करते ही क्षेत्र का कार्यालय है। यह धर्मशाला है। धर्मशाला में बिजली आदि की समुचित व्यवस्था है।

धर्मशाला के पृष्ठभाग में मंदिरों तक जाने का मार्ग है।

क्षेत्र पर स्थित 25 जिनमंदिरों में से भगवान पार्श्वनाथ के जिनालयों का यहाँ मुख्यतः वर्णन किया जा रहा है–

मंदिर नं.–1 पार्श्वनाथ जिनालय–इसमें **भगवान पार्श्वनाथ** की मूलनायक प्रतिमा लगभग 15 फुट ऊँची खड्गासन है। निकटवर्ती थूवौन ग्राम के निवासी लछमन मोदी और पंचम सिंघई ने संवत् 1864 में वैशाख शुक्ला पूर्णमासी के दिन इसकी प्रतिष्ठा करायी। मूलनायक के दोनों ओर दो खड्गासन और उनसे नीचे दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं तथा मंदिर के ऊपर तीन शिखर बने हुए हैं, जिनमें तीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। मूलनायक के सिर के ऊपर सर्पफण मंडप बना है। इसमें फणावली पृथक्-पृथक् सर्पों के द्वारा अति कलापूर्ण ढंग से बनायी गयी है। ये सर्प प्रतिमा के कंधों के दोनों पार्श्वों में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। प्रतिमा के चरणों के दोनों पार्श्वों में चमरेन्द्र खड़े हैं। गर्भगृह का आकार 11 फुट 3 इंच ×10 फुट 10 इंच है।

मंदिर नं.-2–पार्श्वनाथ जिनालय–इसमें भगवान पार्श्वनाथ की कायोत्सर्गासन में मूलनायक प्रतिमा है। इसकी अवगाहना 12 फुट है। इसके दोनों ओर दो खड्गासन और दो पद्मासन बिम्ब हैं। इस मंदिर का निर्माण थूवौन निवासी श्री खुशालराय मोदी ने कराया और संवत् 1869 में माघ शुक्ला त्रयोदशी को प्रतिष्ठा करायी। गर्भगृह का आकार 11 फुट 2 इंच × 10 फुट 10 इंच है।

मंदिर नं.-6–पँचभाइयों का मंदिर–भगवान आदिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा वाली 6 फुट ऊँची मूर्ति है। इनकी जटाएँ अद्भुत हैं और पादचुम्बी हैं। ऐसी पादचुम्बी जटाएँ अन्यत्र दुर्लभ हैं।

इनके दोनों ओर पार्श्वनाथ भगवान की 4 फुट 7 इंच ऊँची खड्गासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। पार्श्वनाथ के पार्श्व में एक पद्मासन प्रतिमा पाँच फुट की है। द्वार पर 11 पंक्तियों का लेख है। इससे ज्ञात होता है कि मंदिर का निर्माण सन् 1680 में हुआ है।

मंदिर नं.-7–पार्श्वनाथ मंदिर–यह मंदिर बड़े पँचभाइयों का मंदिर कहलाता है। मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है। यह खड्गासन है और इसकी अवगाहना 15 फुट है। इस प्रतिमा के दोनों ओर दो खड्गासन और दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। मूलनायक के हाथों से अधोभाग में गज पर चमरेन्द्र खड़े हैं। सबसे नीचे के भाग में दोनों ओर दो-दो भक्त हाथ जोड़े बैठे हैं।

मंदिर नं.-12–पार्श्वनाथ मंदिर–इसमें भगवान पार्श्वनाथ की 16 फुट अवगाहना वाली मूलनायक खड्गासन प्रतिमा है। कन्धों से ऊपर दोनों ओर दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। हाथी पर चमरवाहक खड़े हैं। यहमंदिर रावतों का कहलाता है। परवार जाति में ईडरीमूर को रावत कहते हैं किन्तु लेख न होने से निर्माता का नाम और निर्माण का काल ज्ञात नहीं हो पाया।

मंदिर नं.-13–पार्श्वनाथ मंदिर–इसमें भगवान पार्श्वनाथ की मूलनायक प्रतिमा 16 फुट (आसन सहित) है। प्रतिमा के सिर के ऊपर नौ फणावली वाला सर्प फण-मंडप बना हुआ है। इस फणावली में नौ सर्प पृथक्-पृथक् बने हुए हैं। फणावली के दोनों ओर दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। गजारूढ़ चमरेन्द्र भगवान की सेवा में संलग्न हैं। चरणों के दोनों ओर दो भक्त महिलाएँ भगवान के आगे हाथ जोड़े हुए खड़ी हैं। इस मंदिर के शिखर में पूर्व, दक्षिण और उत्तर तीनों ओर तीन बिम्ब हैं। इसका प्रतिष्ठाकाल शकाब्द 1645 (विक्रम संवत् 1780) है। लगता है, यह काल आनुमानिक है। प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक महेन्द्रकीर्ति जी थे।

मंदिर नं.-23–पार्श्वनाथ मंदिर–भगवान पार्श्वनाथ की मूलनायक प्रतिमा कायोत्सर्गासन में विराजमान है। अवगाहना 6 फुट 3 इंच है। ऊपर दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। नीचे चमरवाहक हैं। मंदिर के निर्माता प्रानपुरा निवासी कोई मोदी हैं। नाम अस्पष्ट है। इस मंदिर की प्रतिष्ठा मंदिर नं.18 के साथ हुई थी। इस प्रकार मंदिर नं. 18 से 23 तक 6 मंदिरों की प्रतिष्ठा एक साथ हुई थी। ये मंदिर एक पंक्ति में हैं। ये मूर्तियाँ विशेष मनोज्ञ नहीं हैं। सम्भवतः सब मूर्तियों का शिल्पकार एक ही व्यक्ति था।

मार्ग–सेन्ट्रल रेलवे के ललितपुर स्टेशन पर उतरकर वहाँ से सड़क मार्ग से 34 कि.मी. चंदेरी है। चंदेरी-अशोकनगर सड़क मार्ग पर चंदेरी से 14 कि.मी. और अशोकनगर से लगभग 50 कि.मी. दूर पिपरौल ग्राम है। वहाँ से 8 कि.मी. थूवौन क्षेत्र है। दूसरा मार्ग अशोकनगर से सीधा 26 कि.मी. है। इस मार्ग पर आठ महीने मोटर का आवागमन रहता है। पश्चिमी रेलवे की कोटा-बीना लाइन पर मुंगावली स्टेशन उतरकर वहाँ से चंदेरी जा सकते हैं। इस प्रकार ललितपुर, अशोकनगर, मुंगावली तीनों ही स्थानों से क्षेत्र पर जा सकते हैं और मार्ग की दूरी भी लगभग समान पड़ती है। इसका जिला गुना है। क्षेत्र पर यात्रियों के आवास हेतु उचित सुविधाएँ हैं।

श्री नाइचाकुर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र

-फूलचंद चन्द्रकांत जैन (अध्यक्ष-नाइचाकर अतिशय क्षेत्र)

सोलापुर से 90 कि.मी. दूर, बस स्टैण्ड उमरगा से 20 कि.मी. एवं नारंगवाड़ी से 7 कि.मी. दूर स्थित यह अतिशय क्षेत्र मराठवाड़ा संभाग में है। महाराष्ट्र के उस्मानाबाद जिले में स्थित यह क्षेत्र 500 वर्ष पुराना है।

यहाँ भगवान पार्श्वनाथ की अतिशय युक्त सुंदर, मनोहारी, मुख्य प्रतिमा है। इच्छा पूर्ति के लिए यात्री भगवान पार्श्वनाथ एवं क्षेत्रपाल जी के दर्शन करने के लिए आते हैं। क्षेत्रपाल जी का भी यहाँ बहुत महत्त्व है। यह क्षेत्र ''भगवान पार्श्वनाथ व पंचभैरव क्षेत्रपाल दि. जैन अतिशय क्षेत्र'' के नाम से पहचाना जाता है। भक्तों की यह मान्यता है कि यहाँ के मंदिर के दर्शन करने से सभी दुःख दूर होते हैं। दूर-दूर से यात्रीगण आकर भगवान का दर्शन करके कृतार्थ हो जाते हैं। ''भक्तों की इच्छापूर्ती करने वाले भगवान'' ऐसी इस अतिशय क्षेत्र की ख्याति है। यह मंदिर पुराना है, जागृत देवस्थान है। भूकम्प आने से मंदिर क्षतिग्रस्त हो गया है। नया मंदिर निर्माणाधीन है।

वार्षिक मेला–वार्षिक यात्रा पौष कृष्णा अमावस्या को होती है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–क्षेत्र पर मात्र 1 हाल है। गेस्ट हाउस निर्माणाधीन है।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, भौंरासा

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र भौंरासा, भौंरासा ग्राम के विदिशा जिले में स्थित है। मध्यप्रदेश के इस ऐतिहासिक तीर्थ की तहसील कुरवाई है। क्षेत्र पर मात्र 1 मंदिर है।

मंदिर जी में भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत पद्मासन साढ़े 4 फुट ऊँची, सं. 1272 की प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है एवं अन्य कई प्रतिमाएँ हैं। यह क्षेत्र 4000 वर्ग फुट में विकसित है। भौंरासा एक सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक तीर्थस्थल है। समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र बड़ोह, सिरोंज, नसियाँजी, उदयगिरि (विदिशा) एवं चंदेरी हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ-क्षेत्र पर कुल 8 कमरे एवं 4 हाल हैं जिनमें 2 कमरे डीलक्स हैं। भोजनशाला निःशुल्क है, अनुरोध करने पर भोजन तैयार किया जाता है। पुस्तकालय भी है।

धाराशिव की गुफाओं में पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ

–ब्र. कर्मयोगी रवीन्द्र कुमार जैन

मार्ग और अवस्थिति– धाराशिव की गुफाएँ लयण कहलाती हैं। ये उस्मानाबाद शहर (महाराष्ट्र प्रदेश) से केवल 5 किमी. दूर हैं। शहर की कोतवाली के बगल से ईशान कोण से एक सड़क इन गुफाओं को जाती हैं। 4 किमी. तक तो सड़क है और 1 किमी. पहाड़ी मार्ग से होकर जाना पड़ता है। जहाँ तक सड़क है, वहाँ तक ताँगा और रिक्शा चले जाते हैं। उस्मानाबाद के लिए शोलापुर, औरंगाबाद अथवा कुर्डुवाड़ी-लातूर रेल मार्ग के येडसी स्टेशन से सरकारी बसें जाती हैं।

गुहा मंदिरों का इतिहास– इन गुहामंदिरों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भगवान पार्श्वनाथ से कुछ वर्षों केपश्चात् हुए कलिकुण्ड नरेश ने यहाँ तीन लयणों अथवा गुहा-मंदिरों का निर्माण कराया थाऔर उनमें **पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमाएँ** विराजमान करायी थीं। इन लयणों का इतिहास आचार्य हरिषेण ने 'बृहत्कथाकोश' ग्रंथ में दिया है। मुनि कनकामर कृत 'करकण्डुचरिउ' नामक अपभ्रंश ग्रंथ में विस्तारपूर्वक इसकी कथा दी गई है। कथा का सारांश इस प्रकार है–

चम्पानगरी में दधिवाहन नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम पद्मावती था। एक बार जब रानी गर्भवती थी, उसके मन में दोहला उत्पन्न हुआ– "मैं मर्दाने वस्त्र धारण करके गजराज पर आरूढ़ होकर वन-विहार के लिए जाऊँ।' उसने अपनी यह इच्छा अपने पति को बतायी। राजा अपनी रानी की इच्छा पूर्ति के लिए झट तैयार हो गया। गजशाला से मुख्य गज को मँगाकर, रानी को मर्दाने वस्त्र धारण कराके, गज के ऊपर रानी को अपने साथ आरूढ़ कराकर वहाँ से चल दिया। नगर से बाहर निकलते ही वन की मादक वायु के शीतल झकोरों के लगते ही गज मदोन्मत्त हो उठा और बड़ी द्रुतगति से वन की ओर भागने लगा। महावत ने अंकुशों के प्रहारों द्वारा गज को वश में करने की बहुत चेष्टा की, किन्तु गज नहीं रुका। वह मार्ग में वृक्षों और लताओं को उखाड़कर फेंकने लगा, महावत को सूँड़ से पकड़कर पैरों तले रौंद दिया। राह में जो पशु या मनुष्य उसकी चपेट में आ गये, उन सबको रौंद दिया। गज अनेक नगरों, गाँवों और पर्वतों को लाँघता हुआ तीव्र वेग से चलता गया।

राजा ने इस भयानक संकट से बचने का उपाय सोचा। तभी उसे एक वृक्ष की लटकती हुई शाखा दिखाई पड़ी। राजा उसे पकड़कर लटक गया, किन्तु रानी भयाक्रान्त होकर जड़ बनी बैठी रही। अनेक योजनों की यात्रा के पश्चात् जब गज शान्त हुआ तो एक पद्म सरोवर को देखकर जल में आलोडन की इच्छा से धीमी गति से जल में घुसा। रानी अवसर देखकर गज के ऊपर से कूद पड़ी और वन में एक ओर चल दी।

चलते-चलते वह एक श्मशान में पहुँची। वहाँ उसे प्रसव-पीड़ा हुई। भाग्य की यह कैसी विडम्बना थी कि एक राजरानी के प्रसव के समय परिचर्या के लिए कोई परिचारिका भी नहीं थी। रानी ने पुत्र प्रसव किया। तभी एक शापग्रस्त विद्याधर चाण्डाल-वेष में वहाँ आया और अपनी शाप-कथा विस्तार से बताकर कहने लगा– "देवी! अनेक वर्षों से मैं इस श्मशान में इस पुण्यवान बालक की प्रतीक्षा कर रहा था। इसके कारण ही मुझे शाप से मुक्ति मिल सकेगी। निमित्तज्ञों ने ऐसा ही बताया है। मैं इस बालक का अपने पुत्र के समान लालन-पालन करूँगा। इसे आप मुझे दे दें।" रानी ने अपना सद्यःजात शिशु उस चाण्डाल को दे दिया। शिशु को देकर वह एक आर्यिका के आश्रम में चली गयी। बालक के हाथ में जन्म से खुजली थी, अतः उसका नाम करकण्डु रख दिया गया। पद्मावती दूर रहकर भी अपने प्राणप्रिय पुत्र का ध्यान रखती थी।

बालक करकण्डु अब किशोर हो गया। एक दिन वह भ्रमण करता हुआ वन में पहुँचा। जब वह श्रान्त हो गया तो एक वृक्ष की छाया में बैठ गया। उसी दिन उस नगर के नरेश की मृत्यु हो गयी थी। नरेश के कोई संतान नहीं थी। सिंहासन सूना नहीं रखा जा सकता था अतः अमात्यों ने निश्चय किया कि राजगज को जल से पूर्ण कलश देकर छोड़ दिया जाये। वह जिसका अभिषेक कर दे, उसी का राज्याभिषेक कर दिया जाये। इस निर्णय के अनुसार गज छोड़ा गया।

वह नगर में घूमता रहा, किन्तु उसने किसी का भी अभिषेक नहीं किया। राज्याधिकारी और सेवक राजगज के साथ थे। सारे नगर में भ्रमण करता हुआ राजगज वन में चल दिया। वह भ्रमण करता हुआ उधर जा निकला, जिधर करकण्डु वृक्ष के नीचे चिन्तामग्न बैठा हुआ था। उसको पता तक नहीं चला कि कब राजगज उसके समीप आ खड़ा हुआ। राजगज ने जब कलश का जल उसके सिर पर उड़ेल दिया तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठा और आश्चर्यचकित नेत्रों से कभी राजगज को और कभी राजकर्मचारियों को देख रहा था। राजकर्मचारियों ने उसका आश्चर्य दूरकरते हुए विनयपूर्वक निवेदन किया– "आप इस नगर के नरेश मनोनीत हुए हैं। आप हमारे साथ राजप्रासाद चलें, वहाँ आपका राज्याभिषेक किया जायेगा।"

वह राजगज पर आरूढ़ होकर राजप्रासाद पहुँचा। वहाँ शुभलग्न में राजपुरोहित और अमात्यों ने विधिवत् उसका राज्याभिषेक करके राजसी वस्त्रालंकार और मुकुट पहनाकर सिंहासन पर बैठाया। राज्यासीन होते ही करकण्डु ने राजसी सम्मान के साथ अपने विद्याधर माता-पिता को राजमहलों में बुला लिया। उसने अल्प समय में ही राज्य में बहुमुखी सुधार किये, जिससे सम्पूर्ण प्रजा अपने नवीन राजा से बहुत प्रसन्न हुई, साथ ही राजकोष भी बहुत बढ़ गया। राज्य में खुशहाली हो गयी। सभी ओर उसकी जयजयकार होने लगी। उसने राज्य की स्थिति सुदृढ़ बना दी। राज्य की सैनिक शक्ति में भी उसने पर्याप्त वृद्धि की। उसने कलिंग देश के दन्तिपुर नगर को अपनी राजधानी बनाया।

आन्तरिक स्थिति सुदृढ़ करने के पश्चात् उसने आसपास के राज्यों को जीतना प्रारंभ कर दिया। अनेक राजाओं ने उसका माण्डलिक बनना स्वीकार कर लिया। अब सम्पूर्ण कलिंग पर उसका अधिकार हो गया। तब शुभ मुहूर्त में वह दिग्विजय के लिए निकला। सर्वप्रथम उसने दक्षिण के राज्यों की ओर ध्यान दिया। वह जहाँ भी गया, विजयश्री ने उसके चरण चूमे। वह अपने इस विजय-अभियान के संदर्भ में तेर नगर में आया। वहाँ के राजा ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली और बहुमूल्य भेंट देकर उसे संतुष्ट किया। एक दिन तेर नरेश शिव उससे सविनय निवेदन करने लगा–"देव! यहाँ निकट ही एक पर्वत पर बड़ी आश्चर्यजनक घटना होती है। उस पर्वत के भीलराज ने मुझे उस घटना का विवरण बताया है। उस पर्वत पर एक वामी है। एक गज प्रतिदिन सूँड़ में जल भरकर और अद्‌भुत कमल-पुष्प लेकर उस वामी तक आता है। वह वामी पर जल छिड़कता है, वहाँ कमल-पुष्प चढ़ाता है और वामी को नमस्कार करके चला जाता है। यदि देव प्रसन्न हों तो आप भी इस आश्चर्य को देखने का अनुग्रह करें।"

करकण्डु नरेश को भी यह सुनकर देखने की उत्सुकता हुई। वह अनेक नरेशों, अमात्यों और पुरजनों से परिवृत हुआ पर्वत की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर सबने उस वामी को देखा। तभी उन्हें एक गज-हाथी आता हुआ दिखाई पड़ा। गज वामी के पास आकर खड़ा हो गया। उसने सूँड़ में भरा हुआ जल वामी के ऊपर छिड़का, पश्चात् वामी पर कमल चढ़ाया और सिर झुकाकर वन में चला गया। यह देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ।

करकण्डु नरेश कुछ देर विचार करके बोला–"प्रतीत होता है, इस वामी के नीचे कोई जिनप्रतिमा है। इस गज को अवधिज्ञान द्वारा अथवा किसी प्रकार इस प्रतिमा का ज्ञान हो गया है अतः यह प्रतिदिन प्रतिमा की पूजा करने आता है।" फिर करकण्डु महाराज के सुझाव पर जब वामी को खुदवाया गया तो वहाँ पार्श्वनाथ भगवान की अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा दिखाई पड़ी। सबने भक्तिपूर्वक भगवान के दर्शन और पूजन किये।

सहसा करकण्डु को प्रतिमा के पीठ पर एक गाँठ दिखाई पड़ी। उसने आदेश दिया–"इस गाँठ को तोड़ दिया जाये। इससे प्रतिमा की सुन्दरता में निखार आ जायेगा। तत्काल मूर्ति शिल्पी बुलाये गये। गाँठ देखकर मुख्य शिल्पी हाथ जोड़कर बड़ी विनयपूर्वक बोला–"राजाधिराज! मेरी घृष्टता क्षमा करें। यदि यह गाँठ तोड़ी गई तो अनर्थ हो जायेगा।" किन्तु राजहठ के आगे किसी की नहीं चली। गाँठ तोड़ी गई। गाँठ के टूटते ही उसमें से जलधारा निकल पड़ी। फिर प्रयत्न करने पर भी जलधारा नहीं रुकी।

करकण्डु नरेश को एक विद्याधर से यह भी ज्ञात हुआ कि रथनूपुर के नील और महानील नामक दो विद्याधर नरेश शत्रु से पराजित होकर तेर में आ बसे और वहीं अपना राज्य स्थापित कर लिया। एक बार वे लंका की यात्रा को गये।

लौटते हुए मलय देश के पूदी पर्वत पर एक जिनालय में उक्त पार्श्वनाथ प्रतिमा के दर्शन करके मन में उन्हें विचार उत्पन्न हुआ कि इस प्रतिमा को हम अपने नगर में ले चलेंगे और ऐसी ही मनोज्ञ प्रतिमा बनवायेंगे। यह सोचकर वे उस प्रतिमा को ले आये। रात में विश्राम करने के लिए वे इस पर्वत पर उतरे। प्रातःकाल होने पर उन्होंने ले जाने के लिए प्रतिमा उठायी, किन्तु वह उठ नहीं सकी, वहीं अचल हो गई। तब उन्होंने वहीं एक सहस्र स्तम्भों वाली लयण बनवा दी किन्तु वह लयण निरन्तर जलधारा के कारण टूट-फूट गयी।

करकण्डु ने उसी लयण को पुनः बनवाया। उसके अतिरिक्त दो लयण और बनवाये और उनमें पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ विराजमान करायीं।

दक्षिण के सम्पूर्ण नरेशों पर विजय प्राप्त करके करकण्डु ने बंग को जीता। पश्चात् उसने अंग पर आक्रमण किया। दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। दधिवाहन और करकण्डु भी एक-दूसरे के सम्मुख डट गये। तभी एक स्त्री दौड़ती हुई आयी। उसने हाथ उठाकर दोनों को रोकते हुए कहा–"यह युद्ध बंद करो, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। पिता और पुत्र को मैं अपने नेत्र से शत्रु के रूप में आमने-सामने खड़ा हुआ नहीं देख सकती।"

दधिवाहन और करकण्डु दोनों विस्मित होकर उस स्त्री को देखने लगे। दधिवाहन ने पूछा–"भद्रे! तुम कौन हो?" वह स्त्री और कोई नहीं पद्मावती थी। वह बोली–"इस मलिन वेष में मुझे आप नहीं पहचान सके। मैं पद्मावती हूँ और यह आपका पुत्र करकण्डु है।" तब दधिवाहन ने उसे पहचान लिया और उसे अपने अंक में भर लिया। बीस वर्ष के बिछुड़े पति-पत्नी का यह अप्रत्याशित संयोग कितना रोमांच, हर्ष और विस्मय से भरा हुआ था।

दधिवाहन पद्मावती को छोड़कर अपने पुत्र की ओर दौड़ा और उसे भी अपने आलिंगन में लपेट लिया। करकण्डु अत्यन्त चकित विस्मित हुआ कुछ समझ नहीं पा रहा था। तब पद्मावती ने अपनी दुर्भाग्य कथा सुनाते हुए उसके जन्म का वृत्तान्त सुनाया। तभी उसके माता-पिता विद्याधर दम्पत्ती भी आ गये। उन्होंने भी पद्मावती के कथन का समर्थन किया। करकण्डु को अब विश्वास हुआ कि मेरे माता-पिता ये विद्याधर नहीं, अपितु दधिवाहन और पद्मावती हैं। उसने अपने वास्तविक माता-पिता के चरण छुए। दधिवाहन ने वहीं करकण्डु को अंग का राजा बना दिया। इस प्रकार करकण्डु भारत के बहुत विशाल भूभाग का स्वामी हो गया।

धाराशिव की तीन गुफाएँ और उनकी पार्श्वनाथ मूर्तियाँ इसी करकण्डु नरेश द्वारा निर्मित करायी गयी थीं। यह नरेश पार्श्वनाथ और महावीर के मध्यवर्तीकाल में हुआ था। नल और नील नामक विद्याधर भी पार्श्वनाथ के पश्चाद्वर्तीकाल में हुए थे, ऐसा लगता है। ये नील-महानील रामचन्द्र के समकालीन नल-नील से भिन्न प्रतीत होते हैं क्योंकि रामचन्द्र के काल में सर्पफणवाली पार्श्वनाथ की कोई मूर्ति थी, ऐसा उल्लेख किसी शास्त्र या पुराण में नहीं मिलता। पार्श्वनाथ की सर्पफणावलियुक्त प्रतिमा पार्श्वनाथ के पश्चात् ही बनना प्रारंभ हुई थी अतः लगता है, नल-नील पार्श्वनाथ के 100–50 वर्ष पश्चात् हुए थे। पार्श्वनाथ प्रतिमा उनसे कुछ पूर्वकाल की थी। नल-नील ने जो लयण बनाया था, वह निरन्तर जलधारा गिरने के कारण गिर पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है, करकण्डु नरेश नल-नील से लगभग 100 वर्ष पश्चात् हुआ था। इस प्रकार धाराशिव की ये गुफाएँ 2550 या 2600 वर्ष प्राचीन हैं।

कुछ पुरातत्त्व वेत्ताओं के मत में ये गुफाएँ ईसा की तीसरी शताब्दी की हो सकती हैं तथा वहाँ की पार्श्वनाथ-मूर्तियों का आनुमानिक काल ईसा की पाँचवीं से आठवीं शताब्दी मानते हैं। प्रचलित इतिहास में करकण्डु नामक किसी राजा का नाम उपलब्ध नहीं होता अतः ये पुरातत्त्ववेत्ता करकण्डु को ऐतिहासिक व्यक्तित्व स्वीकार करने के लिए संभवतः तैयार नहीं हैं किन्तु महावीर से पूर्वकालीन इतिहास की शोध-खोज का अभी तक कोई गंभीर प्रयत्न नहीं हुआ। ऐसी दशा में साहित्यिक साक्ष्यों को एकदम उपेक्षणीय अथवा अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता। दूसरी ओर तीसरी से आठवीं शताब्दी तक का उपर्युक्त काल-निर्धारण नितान्त काल्पनिक एवं आनुमानिक आधार पर किया गया लगता है। इसके लिए कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं किया गया। बिना किसी पूर्वाग्रह के हमारा अब भी विश्वास है कि धाराशिव की गुफाएँ एवं मूर्तियाँ महावीर से पूर्वकालीन हैं।

उस्मानाबाद का प्राचीन नाम धाराशिव था अतः गुफाओं का नाम इस नगर के नाम पर ही 'धाराशिव गुफाएँ' पड़ गया। उस काल में तेर नगर का विशेष महत्व था और गुफाओं वाला क्षेत्र तेर का प्रभाव क्षेत्र था। अतः साहित्य में कहीं-कहीं इन्हें तेर की गुफाएँ भी कह दिया गया है।

अतिशय क्षेत्र–प्राचीन काल में धाराशिव के पार्श्वनाथ को अग्गलदेव या अर्गलदेव कहा जाता था। इनके अतिशयों के कारण इनकी बड़ी मान्यता थी। ये अग्गलदेव इतने विख्यात थे कि आचार्यों ने केवल अग्गलदेव का उल्लेख किया है, उसके साथ नगर तक का उल्लेख करने की आवश्यकता उन्होंने अनुभव नहीं की। प्राकृत निर्वाणकाण्ड में केवल 'अग्गलदेवं वंदमि' लिखना ही पर्याप्त समझा। विश्वभूषण (17वीं शताब्दी का उत्तरार्ध) ने भी 'अर्गलदेवं वंदे नित्यं'' लिखकर अर्गलदेव की वंदना की है किन्तु अनेक लेखकों ने अग्गलदेव अथवा अर्गलदेव की स्पष्ट पहचान के लिए उसके साथ धाराशिव का भी उल्लेख किया है कि धाराशिव नगरी के आगलदेव को मैं नमस्कार करता हूँ। इसी प्रकार जयसागर ने 'सुआगलदेव धारासिव ठाम' लिखकर गुणकीर्ति का ही अनुकरण किया है। ज्ञानसागर ने 'सर्वतीर्थ वंदना में' आगलदेव का स्मरण छप्पय छंद में इस प्रकार किया है–

''धारासिव सुभ ठाण स्वर्गपुरीसम लहिए।
आगलदेव जिनेश नाम थी पातक दहिए।
पर्वतमध्य निवास महिमा नहिं पारह।
सेवत नवविधि होय पूजत सुखभंडारह।।
आगलदेव तणी कथा सुणताँ पातक परिहरे।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति मनवांछित पूरण करे।।''

उदयकीर्ति ने आगलदेव की स्थिति स्पष्ट करने के लिए उन्हें करकण्डु राजा द्वारा निर्मित बताया है। यथा– 'करकंडराय णिम्मियउ भेउ। हउँ वंदउँ आगलदेव देउ।।'

उपर्युक्त विद्वान् 13वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक के हैं। अर्थात् धाराशिव के पार्श्वनाथ की अर्गलदेव के रूप में 17वीं शताब्दी तक तो निश्चितरूप से ख्याति रही है। अर्गलदेव के रूप में यह मान्यता कब और कैसे धुँधली पड़ती गई, यह जानने का कोई साधन नहीं है।

क्षेत्र-दर्शन–यहाँ पर्वत पर 4 गुफाएँ उत्तराभिमुखी बनी हुई हैं। इसी प्रकार 3 गुफाएँ दक्षिणाभिमुखी हैं। दोनों के मध्य में उत्तराभिमुखी गुफाओं के सामने शिवगुरु का मंदिर बना है। दक्षिणाभिमुखी गुफाओं में मूर्तियाँ नहीं हैं, केवल एक गुफा में पार्श्वनाथ की जीर्ण मूर्ति है। ये गुफाएँ और मूर्तियाँ पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में हैं किन्तु वास्तव में पुरातत्त्व विभाग इतनी बहुमूल्य पुरातन सामग्री की ओर से उदासीन है। यहाँ की मुख्य गुफा का प्रवेश भाग गिर गया है। उसके कारण गुफा में अंधकार रहता है, यात्रियों को प्रवेश करने में भी असुविधा होती है तथा गुफा के शेष भाग के गिरने का भी खतरा है। सफाई और प्रकाश के अभाव में गुफाओं में चमगादड़ों का साम्राज्य है।

गुफा नं.1–यहाँ हम मुख्य गुफा की ओर से दर्शन करेंगे। इस गुफा का प्रवेश भाग गिर गया है। पहाड़ की बड़ी-बड़ी शिलाएँ तथा बाहरी भाग गिरकर गुफा के द्वार पर मलवे का ढेर एकत्रित हो गया है। इस मलवे के कारण द्वार अवरुद्ध हो गया है और गुफा में अंधकार व्याप्त हो गया है। अंदर प्रवेश करने के लिए छोटा सा मार्ग शेष है। प्रवेश करते समय भय बना रहता है कि कहीं कोई शिला ऊपर से आकर गिर न पड़े।

गुफा में प्रवेश करते ही 20 स्तंभों पर आधारित एक विशाल मण्डप मिलता है। इसमें जगह-जगह से ऊपर से पानी टपकता रहता है। इसके कारण मण्डप में जल भरा रहता है। बगल से निकलकर सामने 6 सीढ़ियाँ चढ़कर गर्भगृह मिलता है। इसमें सामने ही भगवान पार्श्वनाथ की 6 फीट 6 इंच ऊँची और 6 फीट चौड़ी श्याम वर्णी अर्धपद्मासन प्रतिमा विराजमान है। वक्ष पर श्रीवत्स नहीं है। कान स्कंध तक नहीं हैं। सिर के ऊपर विशाल सप्तफण सुशोभित है। फणों

के दोनों पार्श्वों में पुष्पवर्षा करते हुए देव दीख पड़ते हैं। भगवान के दोनों ओर इन्द्र चमर लिये बैठे हैं। इन्द्रों के सिर पर किरीट तथा गले में रत्नहार सुशोभित हैं। उनके आगे सिंह मुख फाड़े हुए बैठा है।

इस गर्भगृह का आकार 19 फीट 8 इंच लम्बा और 16 फीट 3 इंच चौड़ा है। परिक्रमापथ बना हुआ है। इतनी विशाल होते हुए भी मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ और लावण्ययुक्त है।

मण्डप के तीन ओर 23 प्रकोष्ठ बने हुए हैं। गर्भगृह के वामपार्श्व में एक खड्गासन 6 फीट उत्तुंग श्यामवर्ण प्रतिमा है। केशों की अलग-अलग सुन्दर लटें बनी हुई हैं। सिर के ऊपर छत्र है। इस प्रतिमा के बगल में भूरे पाषाण की 3 फीट ऊँची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है।

इस प्रकोष्ठ के बाहर भूरे पाषाण की 3 फीट उन्नत एक तीर्थंकर प्रतिमा रखी है। यह अर्धपद्मासन है। सिर के ऊपर छत्र हैं। छत्रों के दोनों ओर चमरेन्द्र हैं। उनसे नीचे दोनों ओर दो-दो पद्मासन प्रतिमाएँ और बनी हुई हैं। पादपीठ पर सात भक्त श्रावक हाथ जोड़े हुए विनय मुद्रा में बैठे हैं। प्रतिमा खण्डित है।

इस प्रकोष्ठ के बगल वाली कोठरी में सरस्वती की 2 फीट 7 इंच ऊँची श्यामवर्णी मूर्ति है। बायें कंधे के सहारे वीणा रखी हुई है और देवी उसे दायें हाथ से बजा रही है। बायाँ हाथ वरद मुद्रा में है। देवी अर्धपद्मासन से बैठी है।

मण्डप में 3 फीट 1 इंच ऊँची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी हुई है। यह खण्डित है। शिखर के ऊपर चारों दिशाओं में पद्मासन तथा नीचे खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

इन प्रकोष्ठों के अतिरिक्त शेष प्रकोष्ठों में चमगादड़ों ने निवास बना लिया है।

गुफा नं.2—उक्त गुफा की बायीं ओर की गुफा में तीन द्वार हैं। यह गुफा 17 फीट 1 इंच लम्बी और 11 फीट 2 इंच चौड़ी है। इसके मध्य में दो जलकुण्ड बने हुए हैं। दीवार के सहारे 4 फुट 4 इंच ऊँची पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। यह सप्तफणावलियुक्त है। प्रतिमा की पीठ पर सर्प-वलय बना हुआ है। प्रतिमा का वर्ण हलका श्याम है। इसका मुख घिस गया है। इसके वाम पार्श्व में 3 फीट 9 इंच ऊँची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है तथा दक्षिण पार्श्व में 1 फुट 9 इंच ऊँचे पाषाणफलक में पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण हैं। उसके ऊपर छत्र तथा नीचे चमरवाहक हैं।

गुफा नं.3—दायीं ओर एक विशाल गुफा है। इसमें बाहर बरामदा तथा 20 स्तंभों पर आधारित विशाल सभामण्डप है। मण्डप का फर्श कच्चा है। गर्भगृह 19 फीट 2 इंच लम्बा और 17 फीट 9 इंच चौड़ा है। 4 फीट ऊँचे चबूतरे पर भगवान पार्श्वनाथ की अर्धपद्मासन श्यामवर्ण प्रतिमा है। यह 6 फीट 2 इंच ऊँची और 6 फीट चौड़ी है। इसका लेप कहीं-कहीं उतर गया है। सिर के ऊपर सप्तफण है, किन्तु जीर्ण-शीर्ण हैं। शेष रचना प्रथम गुफा की प्रतिमा के समान है, किन्तु काफी अस्पष्ट हो चुकी है। वेदी के चारों ओर परिक्रमा-पथ बना हुआ है। इस गुफा में कहीं-कहीं जल टपकता है, किन्तु जल-कुण्ड नहीं बना है।

मुख्य गर्भगृह की बायीं ओर एक प्रकोष्ठ में एक चबूतरे पर 4 फीट 2 इंच ऊँची अर्धपद्मासन श्यामवर्ण प्रतिमा है। ऊपर छत्रत्रयी है। छत्रों के दोनों ओर चमरेन्द्र हैं, किन्तु अस्पष्ट हैं। मूर्ति से लेप उतर गया है। बरामदे में दायीं ओर एक गुफा है। इस गुफा में सात द्वार हैं। बीच में स्तंभ बने हुए हैं। इसके आगे चौरस चबूतरा है। इस गुफा की हालत अच्छी है। इसका जीर्णोद्धार किया गया है। स्तंभ नये लगे हैं। चबूतरे पर दायीं ओर एक छोटी गुफा बनी हुई है।

गुफा नं.4—इस गुफा में प्रवेश द्वार तथा उसके दोनों ओर खिड़कियाँ हैं। फिर सभामण्डप है जिसमें 4 स्तंभ बने हुए हैं। सामने गर्भगृह है, जिसमें भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति है। मूर्ति बिल्कुल जीर्णशीर्ण है। यह मूर्ति गारे मिट्टी की बनी हुई है। रचना पूर्ववत् है, किन्तु सब कुछ अस्पष्ट है। इसमें परिक्रमा-पथ नहीं है। गर्भगृह भी छोटा है। इस गुफा में 4 प्रकोष्ठ बने हुए हैं। ये सब खाली हैं।

यहाँ से पहाड़ पर पगडण्डी द्वारा दक्षिणाभिमुखी गुफाओं की ओर जाते हैं। यहाँ 3 गुफाएँ बनी हुई हैं। इसका विवरण इस प्रकार है–

गुफा नं. 5—इस गुफा में तीन खण्ड हैं। इसमें जल भरा हुआ है।

गुफा नं. 6—इसमें 5 द्वार हैं। मध्य में स्तंभ है। आगे बराण्डा है। 10 स्तंभों पर आधारित सभामण्डप बना हुआ है। स्तंभों के मध्य गर्भगृह है। इसमें 5 फीट 6 इंच ऊँची पार्श्वनाथ प्रतिमा है। इसके शीर्ष पर नौ फण बने हुए हैं किन्तु जीर्णशीर्ण हैं। सब कुछ अस्पष्ट है। इस गुफा में दो कोठरियाँ बनी हैं।

गुफा नं.7—इस गुफा में 11 द्वार हैं। एक कोठरी बनी हुई है। गुफा में जल है। द्वारों के सिरदलों पर पशुओं आदि की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। किन्तु वे अस्पष्ट हो गई हैं।

उपर्युक्त सभी गुफाओं का निर्माण-काल एक नहीं लगता। संभवतः उत्तराभिमुखी गुफाएँ प्राचीन हैं। इसमें गुफा नं. 1-3 और 4 करकण्डु नरेश द्वारा निर्मित लगती हैं। पार्श्वनाथ मूर्तियाँ, जो अर्धपद्मासन हैं, वे भी करकण्डु द्वारा प्रतिष्ठित प्रतीत होती हैं। शेष गुफाएँ एवं मूर्तियाँ उत्तरकालीन लगती हैं। इनका निर्माण समय पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा अनुमानित काल लगता है।

धर्मशाला—उस्मानाबाद में दो जैन मंदिर हैं। वे एक-दूसरे के सामने बने हुए हैं। सेठ नेमचंद बालचंद गांधी के मंदिर में धर्मशाला बनी हुई है जिसमें 5 कमरे हैं। नल और बिजली की उचित व्यवस्था है।

पिसनहारी मढ़ियाजी के अतिशयकारी पार्श्वनाथ मंदिर

–ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ)

अवस्थिति और मार्ग–जबलपुर नगर की गणना मध्यप्रदेश के प्रमुख नगरों में की जाती है। यह औद्योगिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से महाकौशल का सबसे बड़ा नगर है। जैन समाज का तो यह केन्द्र ही है। यहाँ जैनों के लगभग दो हजार घर हैं तथा 36 दिगम्बर जैन मंदिर और 3 चैत्यालय हैं।

जबलपुर नगर से 6 कि.मी. दूर जबलपुर-नागपुर रोड पर दक्षिण-पश्चिम की ओर ुधवा और त्रिपुरी के बीच में एक छोटी-सी पहाड़ी है। यह धरातल से 300 फुट ऊँची है। 'पिसनहारी की मढ़िया' अथवा मढ़िया इसी पहाड़ी पर है। पहाड़ी पर जाने के लिए 265 सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसके पास ही मेडिकल कॉलेज बना हुआ है।जबलपुर शहर से यहाँ आने के लिए बसों और टैम्पुओं की सुविधा है। यहाँ का पता इसप्रकार है–पिसनहारी मढ़िया ट्रस्ट, नागपुर रोड, जबलपुर (म.प्र.)।

क्षेत्र का इतिहास–यह स्थान लगभग 500 वर्ष से प्रकाश में आया है। यद्यपि इसके आसपास चारों ओर प्राचीन कला-सामग्री बिखरी पड़ी है, किन्तु मढ़िया में इसके पूर्व का कोई पुरातत्त्व नहीं मिलता। इस क्षेत्र के नाम और निर्माण के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें से एक किंवदन्ती यह भी है–

जबलपुर नगर के मध्य में कमानिया द्वार (त्रिपुरीस्मारकद्वार) के निकट एक निर्धन पिसनहारी विधवा रहती थी। वह आटा पीसकर अपना निर्वाह करती थी। एक दिन उसने जैन मुनि का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसने तभी मन में एक जैन मंदिर निर्माण कराने का संकल्प कर लिया किन्तु समस्या थी धन की। जिसने जीवन में दूसरों के समक्ष कभी हाथ नहीं पसारा, जो अपने श्रम पर ही निर्भर रहकर अपना जीवन-यापन करती थी, वह मंदिर के लिए दूसरों से भिक्षा कैसे माँगती ! उसका संकल्प अखंड था। उसने निश्चय कर लिया कि श्रम द्वारा धन संग्रह करके मंदिर-निर्माण करना है, और मंदिर अवश्य बनेगा, चाहे इसके लिए कितना ही श्रम क्यों न करना पड़े।

बस, इस संकल्प का सम्बल लेकर वह श्रम करने में जुट गयी। वह घर-घर जाती और वहाँ से अन्न लाकर पीसती। सुबह से शाम तक उसकी चक्की कभी विराम न लेती। चक्की की मधुर ध्वनि से उसका अडिग संकल्प गानों के रूप

में गूँजता। वृद्ध शरीर और अथक परिश्रम किन्तु संकल्प की संजीवनी उसे श्रान्त-क्लान्त न होने देती। ज्यों-ज्यों धन-संचय होता जाता, त्यों-त्यों उसमें एक नवीन स्फूर्ति तरंगित होती जाती। लोग उसके इस दुस्साहस पर हँसते, किन्तु वह लोक निंदा या उपहास से निर्लिप्त बनी अपनी साधना में निरत रहती।

वह दिन भी आ पहुँचा, जब लोगों ने देखा कि वृद्धा पिसनहारी कुदाल-फावड़ा लेकर मढ़िया की पहाड़ी पर वन्य झाड़ियों और वृक्षों को काट-काटकर मंदिर के लिए ऊबड़-खाबड़ भूमि को समतल बनाने में जुटी हुई है। तब राज (मिस्त्री) आये, मजदूर आये, ईंट चूना और पत्थर लाये गये और मंदिर का निर्माण आरंभ हो गया। उसकी निंदा करने वाले अब उसकी प्रशंसा करने लगे। जो उसका उपहास उड़ाते थे, वे उसे सहयोग देने को तत्पर हो गये किन्तु उस तपस्विनी को यह सब देखने-सुनने का अवकाश कहाँ था। वह तो मजदूरों के संग ईंट-गारा इधर से उधर पहुँचाने में जुटी रहती। प्रातः से संध्या तक मजदूरों के साथ वह काम करती, उनके काम की देखभाल करती और रात्रि होते ही उस निर्जन नीरव जंगल में खटिया डालकर चौकसी करती।

तब वह दिन भी आ पहुँचा, जब मंदिर तैयार हो गया। उसके ऊपर शिखर का मुकुट लग गया किन्तु मुकुट में मणि नहीं थी, जो बड़ी भारी कमी थी। स्वर्ण कलश के बिना शिखर सूना-सूना सा लग रहा था। एक निर्धन असहाय अबला के पास इतनी पूँजी कहाँ थी जिससे वह स्वर्ण कलश चढ़ा पाती। तब उस पुण्यशाली महाभागा ने ऐसा कलश चढ़ाया, जैसा संसार ने न कभी देखा था, न कभी सुना था। उसने अपनी चक्की के दोनों पाट शिखर में चिनवा दिये। जिन पाटों ने उसे जीवन में रोटी दी, जिन पाटों ने उसके संकल्पों को मूर्त रूप दिया, वे ही उसकी एकमात्र पूँजी थे। भगवान के लिए उसने अपनी समग्र पूँजी समर्पित कर दी।

किन्तु इतिहास उसका नाम सुरक्षित न रख पाया, यह कैसी विडम्बना है। फिर भी जन-जन की श्रद्धा ने इस क्षेत्र को 'पिसनहारी मढ़िया' के रूप में सदा सर्वदा के लिए अमर कर दिया।

इस मंदिर में गुम्बज के नीचे के आले में दो मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनके सिंहासन पीठ पर प्रतिष्ठा संवत् 1587 उत्कीर्ण है। ये ही यहाँ की सर्वप्राचीन मूर्तियाँ हैं। इनसे पूर्ववर्ती एक मूर्ति संवत् 1548 की है, जो शाह जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित है। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर इसी प्रतिष्ठा-संवत् की अनेक मूर्तियाँ भेजी थीं। उक्त मूर्ति पापड़ीवाल जी द्वारा भेजी हुई है। संवत् 1587 में निर्मित मंदिर और मूर्तियों के अतिरिक्त यहाँ अन्य कोई पुरातत्त्व सामग्री नहीं है। शेष मंदिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठा तो वीर संवत् 2483 और 2484 में हुई है। लगता है, इस अंतराल में (वीर संवत् 2056 से 2483 तक) 427 वर्ष तक यहाँ कोई दूसरा मंदिर नहीं बना और न इसे तीर्थक्षेत्र के रूप में मान्यता मिली।

संवत् 1939 में जबलपुर के जैन समाज की दृष्टि इस ओर गयी। वह यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य, ऐतिहासिक महत्त्व और आध्यात्मिक साधना के उपयुक्त वातावरण से प्रभावित होकर आकृष्ट हुआ। धीरे-धीरे यहाँ निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया। सीढ़ियाँ बनीं, धर्मशालाएँ बनीं। फिर संवत् 1976 में यहाँ दो गजरथ महोत्सव संपन्न हुए। इन उत्सवों में सहस्रों व्यक्तियों ने सम्मिलित होकर इस स्थान के महत्त्व को समझा। संवत् 1984 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का यहाँ पदार्पण हुआ। क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी तो यहाँ पर्याप्त समय तक रहे। इन दोनों आध्यात्मिक संतों के पुण्य प्रसाद और प्रभाव से इस स्थान का द्रुत गति से विकास हुआ, क्षेत्र के रूप में इसकी ख्याति हुई और अनेक नवीन मंदिर-मन्दरियों का निर्माण करने की प्रेरणा जगी।

यहाँ का चमत्कारिक जलकुण्ड अवश्य उल्लेखनीय है। वह जलकुण्ड अब भी विद्यमान है।

क्षेत्र दर्शन–जबलपुर-नागपुर सड़क के किनारे एक विशाल अहाते के मध्य में क्षेत्र का कार्यालय, धर्मशाला तथा क्षेत्र स्थित संस्थाओं के भवन अवस्थित हैं। यहाँ एक जिनालय और मानस्तम्भ भी है। इसके पृष्ठभाग में पहाड़ी है, जिस पर मंदिरों की श्वेत पंक्ति, उन्नत शिखर और उनके ऊपर लहराती ध्वजाएँ बरबस ध्यान आकर्षित कर लेती हैं।

कार्यालय से कुछ दूर चलने पर पहाड़ी की चढ़ाई प्रारंभ हो जाती है। पहाड़ी पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई

हैं। चढ़ाई सुगम है। पहाड़ी पर तेरह मंदिर हैं जिनमें दो मंदिर भगवान पार्श्वनाथ के हैं जिनका परिचय यहाँ प्रस्तुत है–

मंदिर नं.-2–इससे कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर **पार्श्वनाथ मंदिर** मिलता है। यह मूर्ति कृष्ण पाषाण की है और पद्मासन है। इसकी अवगाहना 2 फुट 7 इंच है। यह वीर संवत् 2483 में प्रतिष्ठित हुई। इस चबूतरानुमा वेदी पर 2 पाषाण की और 4 धातु-प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहाँ भगवान पार्श्वनाथ के वीर सं. 2483 में प्रतिष्ठित चरण चिन्ह भी विराजमान हैं।

मंदिर नं.-12–कमलासन पर **भगवान पार्श्वनाथ की 1 फुट 10 इंच ऊँची मूर्ति** पद्मासन में विराजमान है। वीर संवत् 2484 में इसकी प्रतिष्ठा हुई।

क्षेत्र स्थित संस्थाएँ–क्षेत्र पर पूज्य वर्णी जी की प्रेरणा से स्थापित वर्णी जैन गुरुकुल और छात्रावास हैं। विद्यालय और छात्रावास के भवन गुरुकुल के अपने हैं। यहाँ निकट ही मेडिकल कालेज है। इस दृष्टि से गुरुकुल के महत्व और उपयोगिता का सहज ही मूल्यांकन किया जा सकता है।

धर्मशालाएँ–क्षेत्र स्थित धर्मशालाओं में 60 कमरे हैं। धर्मशालाओं में प्रकाश के लिए बिजली की व्यवस्था है। जल के लिए कई कुएँ और हैण्डपंप हैं। क्षेत्र पर आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था है, जैसे बरतन, बिस्तर आदि। जबलपुर, भेड़ाघाट आदि के लिए बस और टैम्पो यहाँ बराबर मिलते हैं।

व्यवस्था–यहाँ की व्यवस्था के लिए 'पिसनहारी मढ़िया ट्रस्ट' नामक एक ट्रस्ट है। इसके पदाधिकारियों और सदस्यों का चुनाव जबलपुर जैन समाज द्वारा होता है।

वर्तमान स्थिति–वर्तमान में यह तीर्थ श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, पिसनहारी मढ़िया जी अतिशय क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। जिला जबलपुर के ग्राम पुरवा (त्रिपुरी वार्ड) में स्थित इस तीर्थ पर रेल अथवा सड़क मार्ग से जबलपुर होकर जा सकते हैं। पर्वत पर भव्य जिनालय के साथ नंदीश्वर द्वीप की रचना दर्शनीय है। पर्वत पर ही अति सुन्दर रमणीक विद्युत साज-सज्जा युक्त मनमोहक फव्वारे से सुसज्जित बगीचा बनाया गया है। समीपवर्ती क्षेत्र पनागर, कोनी जी, बहोरी बंद, भेड़ाघाट आदि हैं। क्षेत्र पर यात्रियों के ठहरने हेतु उचित सुविधाएँ हैं।

बिजौलिया के पार्श्वनाथ

–जीवन प्रकाश जैन, हस्तिनापुर

मार्ग और अवस्थिति–राजस्थान प्रदेश के भीलवाड़ा के निकट उपरमाल परगने के निकट श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बिजौलिया अवस्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए तीन मार्ग हैं-(1) कोटा से बूँदी होते हुए यह स्थान 85 किमी. तथा बूंदी रोड से 10 किमी. है, पक्की सड़क है। मोटर सुगमता से पहुँच सकती है। यह मार्ग सबसे सुगम है। (2) भीलवाड़ा से माण्डलगढ़ होते हुए यह क्षेत्र लगभग 85 किमी. है। माण्डलगढ़ से क्षेत्र 37 किमी. है। (3) नीमच कैण्ट से सिंगौली होकर लगभग 100 किमी. है किन्तु सिंगौली से लगभग 22 किमी. कच्चा मार्ग है। ऊँट या घोड़े द्वारा यहाँ पहुँच सकते हैं।

बिजौलिया, उदयपुर से पूर्व में 224 किमी. और कोटा से पश्चिम में 85 किमी. है और चित्तौड़ से उत्तर-पूर्व में 112 किमी. दूर है। बिजौलिया ग्राम प्राचीन है। ग्राम के चारों ओर चहारदीवारी बनी हुई है। चहारदीवारी से दक्षिण-पूर्व में 1 मील दूर यह क्षेत्र है।

यह प्रदेश अपनी समृद्धि के कारण आक्रान्ताओं का आकर्षण-केन्द्र रहा है। इसीलिए सुरक्षा की दृष्टि से इस नगर के चारों ओर बहुत ऊँचा परकोटा बनाया गया। इसमें दो ही द्वार हैं। इस परकोटे के कारण यह नगर सदियों

से सुरक्षित रहा है। इस परकोटे में प्राचीन मंदिरों की सामग्री काम में लायी गयी है। यहाँ यह किंवदन्ती प्रचलित है कि पहले बिजौलिया में 108 विशाल मंदिर थे। धर्मान्ध मूर्तिभंजकों ने इन मंदिरों को तोड़ दिया। उन टूटे हुए मंदिरों के पाषाण आदि से ही यह परकोटा बनाया गया है। अब भी प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेष यहाँ चारों ओर बिखरे पड़े हैं।

नगर के दक्षिण-पूर्व में दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ क्षेत्र है। यह क्षेत्र सुदृढ़ परकोटे से घिरा हुआ है। इसके चारों कोनों पर दुहरी गुम्बददार चार देवरियाँ या छोटे मंदिर बने हुए हैं तथा मध्य में एक मंदिर बना हुआ है। यही पार्श्वनाथ मंदिर कहलाता है। परकोटे का मुख पश्चिम की ओर है तथा मंदिर पूर्वाभिमुख है।

यह मंदिर पंचायतन है। मंदिर के चारों कोनों पर चार देवरियां बनी हुई हैं तथा मध्य में मंदिर बना हुआ है। गर्भगृह या जिनगृह 7 फुट 2 इंच लम्बा, 7 फुट 1 इंच चौड़ा और 6 फुट 7 इंच ऊँचा है। वेदी पर मध्य में 6 फुट 4 इंच ऊँची पाषाण की एक शिखराकृति है। शिखर में एक द्वाराकृति बनी हुई है। इसके रिक्त स्थान पर मूलनायक प्रतिमा विराजमान रही होगी किन्तु इस समय यह स्थान रिक्त है। इसकी मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की रही होगी, ऐसा विश्वास किया जाता है। यह प्रतिमा आजकल यहाँ नहीं है। शिलालेख में धरणेन्द्र द्वारा स्वप्न में जिस प्रतिमा का संकेत किया गया है तथा लोलार्क श्रेष्ठी ने जिसे निकालकर प्रतिष्ठित किया था, लगता है, वह प्रतिमा शिखराकृति की मूलनायक प्रतिमा से भिन्न थी, क्योंकि शिलालेख में पार्श्वनाथ प्रतिमा का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है। उसमें शिखराकृति का कोई उल्लेख नहीं किया। इस प्रकार पार्श्वनाथ की दो प्रतिमाएं होनी चाहिए, किन्तु उनमें से वर्तमान में एक भी प्रतिमा नहीं है। इतना ही नहीं, मूलनायक पार्श्वनाथ के अतिरिक्त वेदी पर अन्य प्रतिमाएँ भी रही होंगी जबकि इस समय शिखराकृति के अतिरिक्त और कोई भी प्राचीन प्रतिमा वहाँ नहीं है।

शिखर की द्वाराकृति पर चौबीस तीर्थंकर मूर्तियाँ तथा मध्य में पार्श्वनाथ मूर्ति उत्कीर्ण है। मध्य-मूर्ति के ऊपर छत्रत्रयी तथा गजलक्ष्मी है। छत्रों के ऊपर पद्मावती देवी हाथ जोड़े हुए बैठी हैं। उसके सर्पफण के ऊपर मध्य कोष्ठक में तथा कोण कोष्ठकों में पार्श्वनाथ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। गजलक्ष्मी के दोनों कोनों पर देवयुगल माला लिये हुए खड़े हैं। कोने की पार्श्वनाथ प्रतिमाओं से नीचे दोनों ओर अलग-अलग कोष्ठकों में सात-सात देवी मूर्तियाँ हैं। दोनों ओर इन्द्र खड़े हैं। इन्द्र दायें हाथ में चमर तथा बाएँ हाथ में बिजौरा फल लिए हुए हैं। इनके अतिरिक्त दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। इनके पार्श्व में बायीं ओर पद्मावती और धरणेन्द्र तथा दायीं ओर अम्बिका और गोमेद यक्ष खड़े हैं। अम्बिका की गोद में एक बालक है तथा दायीं ओर एक बालक आम्रगुच्छक लिये खड़ा है। गोमेद यक्ष हाथ जोड़े खड़ा है। मुख्य शिखर के ऊपर कोनों पर दो पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

वर्तमान स्थिति—क्षेत्र पर सन् 2000 में जीर्णोद्धार कार्य हुआ है। वर्तमान में क्षेत्र पर जिन चौबीसी, जिन चौबीसी जिनालय का सिंह द्वार, रेवती कुण्ड का जीर्णोद्धार, पार्श्वनाथ गणधर परमेष्ठी जिनालय, आचार्य परमेष्ठी के चरण चिन्ह, संतशाला आदि के नवनिर्माण हुए हैं तथा अनेक योजनाएँ निर्माणाधीन हैं। 2 मानस्तंभ हैं।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ—क्षेत्र पर 42 कमरे हैं, जिसमें 20 कमरे डीलक्स हैं। भोजनशाला नियमित, सशुल्क है। औषधालय आदि नहीं हैं।

व्यवस्था—क्षेत्र की व्यवस्था एक निर्वाचित समिति करती है, जिसका नाम 'श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र कमेटी' है।

क्षेत्र का पता इस प्रकार है—मंत्री, श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र कमेटी, बिजौलिया (भीलवाड़ा) राजस्थान।

रेशन्दीगिरि (नैनागिरि) सिद्धक्षेत्र

(भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ पुस्तक एवं सुरेश जैन, भोपाल द्वारा प्रेषित लेख के आधार पर प्रस्तुत)

निर्वाण-क्षेत्र—श्री रेशन्दीगिरि निर्वाण-क्षेत्र है। इस क्षेत्र का दूसरा नाम नैनागिरि भी है। प्राकृत निर्वाण-काण्ड में इस क्षेत्र के विषय में निम्नलिखित उल्लेख आया है–

'पासस्स समवसरणे, सहिया वरदत्त मुणिवरा पंचा।
रिस्सिंदे गिरिसिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।19।।'

अर्थात् भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में स्वहित के इच्छुक वरदत्त आदि पाँच मुनिराज रेशन्दीगिरि के शिखर से मोक्ष गये, उन्हें नमस्कार है।

ये वरदत्त आदि पाँच मुनिवरों के क्या नाम थे, यह किसी पुराण-ग्रन्थ में देखने में नहीं आया किन्तु इस क्षेत्र के पर्वतस्थित प्रथम मंदिर में उन पाँचों मुनियों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं और उनके नाम इस प्रकार अंकित हैं–मुनीन्द्रदत्त, इन्द्रदत्त, वरदत्त, गुणदत्त और सायरदत्त। इस गाथा से इतना ज्ञात होता है कि ये पाँच मुनि भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में थे।

इस गाथा के अर्थ और पाठ के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद है। कुछ विद्वान इस गाथा से यह आशय निकालते हैं कि पार्श्वनाथ भगवान का समवसरण इस क्षेत्र पर आया था। उनके इस प्रकार का आशय निकालने का आधार सम्भवतः भैया भगवतीदास द्वारा किया हुआ इस गाथा का पद्यात्मक हिन्दी अनुवाद है, जो इस प्रकार है–

'समवसरण श्री पार्श्व जिनंद। रेसिंदीगिरि नयनानंद।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज। ते वन्दों नित धरम जिहाज।।'

इस हिन्दी अनुवाद में रेशन्दीगिरि पर पार्श्वनाथ के समवसरण के आगमनविषयककोई क्रियापद नहीं है और न वरदत्त आदि पाँच मुनियों के वहाँ से मुक्ति-गमन से संबन्धित ही कोई क्रिया पद है। सम्भवतः इसी से कुछ लोग यह आशय निकालते हैं कि पार्श्वनाथ का समवसरण इस क्षेत्र पर आया था। वस्तुतः यह हिन्दी अनुवाद त्रुटिपूर्ण है। मूल गाथा से ऐसा कोई आशय व्यक्त नहीं होता किन्तु कुछ विद्वान् यह कहते हैं कि इस गाथा को देखते हुए यहनिश्चित धारणा जमती है कि रेशन्दीगिरि पर पार्श्वनाथ का समवसरण आया था क्योंकि इस गाथा में स्पष्ट उल्लेख है कि पार्श्वनाथ के समवसरण में स्थित वरदत्त आदि पाँच मुनि रेशन्दीगिरि से मुक्त हुए, क्योंकि यदि पार्श्वनाथ का समवसरण यहाँन आया होता तो 'पार्श्वनाथ के समवसरण में स्थित' यह विशेष पद क्यों रहता? आचार्य ने यह पद वस्तुतः एक विशेष उद्देश्य से दिया है। वह उद्देश्य यह है कि इस क्षेत्र पर पार्श्वनाथ का समवसरण जब आया, तभी पाँच मुनियों ने तप किया और शुक्लध्यान द्वारा कर्मों का नाश कर यहाँ से निर्वाण प्राप्त किया। इसी स्थिति में 'पार्श्वनाथ के समवसरण में स्थित' इस पद की सार्थकता है।

कुछ विद्वान 'रिस्सिन्दे' इस पाठ को अशुद्ध मानकर इसके स्थान पर 'रिस्सद्धि' शुद्ध पाठ मानते हैं और उसका अर्थ ऋष्यद्रि अर्थात् ऋषिगिरि करते हैं। ऋषिगिरि राजगृही के पाँच पहाड़ों में से एक पहाड़ है। ये विद्वान वरदत्त आदि मुनियों का निर्वाण-स्थान रेशन्दीगिरि न मानकर ऋषिगिरि को मानते हैं। इन विद्वानों ने इस पाठ-भेद की कल्पना किस आधार पर की, यह स्पष्ट नहीं हो पाया। लगता है, संस्कृत निर्वाण-भक्ति के 'ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि बलाहके च' इस पद के 'ऋष्यद्रिके' पाठ से उन्हें ऐसी कल्पना करने की प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। किसी प्रति में 'रिस्सद्धि' यह पाठ नहीं मिलता।

वस्तुतः 'रिस्सिन्दे' पाठ सर्वथा शुद्ध है। उसका संस्कृत रूप 'रिष्यन्दे अथवा ऋष्यन्दे' बनता है। ऋष्यन्दगिरि का अपभ्रंश होकर रेशन्दगिरि, फिर बोलचाल में रेशन्दीगिरि हो गया।

पं. पन्नालाल जी सोनी द्वारा सम्पादित 'क्रियाकलाप' में यह गाथा निम्निलिखित रूप में दी गयी है–

पासस्स समवसरणे, गुरुदत्तवरदत्तपंचरिसिपमुहा।
गिरिसिंदे गिरिसिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।

इस पाठ के अनुसार पार्श्वनाथ के समवसरण में स्थित गुरुदत्त, वरदत्त आदि पाँच मुनि गिरीशेन्द्र (हिमालय) के शिखर से मुक्त हुए। इस मान्यता का समर्थन किसी अन्य स्रोत से नहीं होता।

17 वीं शताब्दी में हुए पं. चिमणा पण्डित ने मराठी भाषा में 'तीर्थवन्दना' लिखी है। उसमें उन्होंने भी गुरुदत्त और वरदत्त मुनियों का नामोल्लेख करके उनका मुक्ति-स्थान रेशन्दीगिरि ही माना है।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है।

'समोसरनरम्य श्री पासोजीचे। रीसिंदेगिरि आले होते तयाचे।
तेथे गुरुदत्त मुनि वरदत्त। तपे झाले पंच यति मुक्तिकांत।।24।।'

इसी प्रकार सोलहवीं शताब्दी के विद्वान मेघराज ने मराठी में तीर्थ वन्दना लिखी है। उसमें उन्होंने भी रेशन्दीगिरि का ही नाम दिया है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है–

'वलि मुनि सिद्ध बहुत वरदत्त रंग आदि करीए।
रीसंदीगिरिवर जाण तेहु वांदु भाव धरीए।।14।।'

गुरुदत्त-वरदत्त सम्बन्धी पाठभेद विशेष महत्त्व का नहीं है। सम्भव है, पाँच मुनियों में गुरुदत्त और वरदत्त नामक दो मुनि भी रहे हों किन्तु 'रिस्सिन्दे' के स्थान पर 'रिस्सद्धि' या अन्य किसी पाठ की कल्पना बड़ी क्लिष्ट कल्पना है। परम्परागत रूप से रेशन्दीगिरि को ही निर्वाण-स्थान माना जाता है। तीर्थवंदनसम्बन्धी सभी पाठों में रेशन्दीगिरि का ही नाम आता है।

रेशन्दीगिरि का नाम नैनागिरि क्यों और किस प्रकार पड़ा, इसका कोई युक्ति-संगत कारण नहीं मिलता। किसी ग्रन्थ में रेशन्दीगिरि का नाम नैनागिरि आया हो, ऐसा भी देखने में नहीं आया। भैया भगवतीदास ने निर्वाण-काण्ड का जो भाषानुवाद किया है, उसमें 'रेशन्दीगिरि नैनानन्द' आया है। इसमें नैनानन्द रेशन्दीगिरि का विशेषणपरक पद है। सम्भव है, भैया भगवतीदास के काल में रेशन्दीगिरि को नैनागिरि भी कहा जाता हो और नैनानन्द पद से उसी की ओर संकेत किया गया हो।

हमें इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं है कि वर्तमान रेशन्दीगिरि ही निर्वाण-क्षेत्र रहा है और किसी कारण से भी हो, इसे ही नैनागिरि कहा जाता है।

पुरातत्त्व–यहाँ क्षेत्र पर तथा उसके आस-पास कुछ पुरातत्त्व-सामग्री प्राप्त होती है। यहाँ जो मूर्तियाँ खुदाई में निकली हैं, वे अनुमानतः 11वीं शताब्दी की हैं। अनुश्रुति है कि लगभग 100 वर्ष पहले बम्होरी निवासी चौधरी श्यामलाल जी को स्वप्न आया। उसमें उन्होंने रेशन्दीगिरि पर्वत पर एक मंदिर देखा। जब उनकी नींद खुली तो उन्होंने अपने स्वप्न की चर्चा अन्य धर्म-बन्धुओं से की। तब निश्चय हुआ कि क्षेत्र पर जाकर खुदाई करायी जाये। क्षेत्र पर स्वप्न में देखे हुए स्थान पर खुदाई करायी गयी। वहाँ एक प्राचीन मंदिर भूगर्भ से उत्खनन के फलस्वरूप निकला। यह पार्श्वनाथ मंदिर कहलाता है। क्षेत्र पर जो प्राचीन मूर्तियाँ निकली हैं, वे भी इसी मंदिर में रखी हुई हैं। यही मंदिर यहाँ का सबसे प्राचीन मंदिर कहलाता है। एक शिलालेख के अनुसार, जो मंदिर की दीवार में लगा हुआ है, इस मंदिर का निर्माण सं. 1109 में हुआ है। इस प्रकार यह मंदिर एक हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है।

इस मंदिर में भूगर्भ से प्राप्त 13 प्राचीन मूर्तियाँ रखी हुई हैं। वे अपनी रचना-शैली से ही मंदिर की समकालीन प्रतीत होती हैं। पुरातत्त्व-सामग्री में एक वेदिका भी है जो क्षेत्र से लगभग एक मील दूर जंगल में है। इसे भी 11वीं-12 वीं शताब्दी का बताया जाता है, यद्यपि यह इतनी प्राचीन नहीं है। इसके अतिरिक्त यहाँ और कोई पुरातत्त्व-सामग्री नहीं मिली है।

क्षेत्र दर्शन–यह पहाड़ी साधारण ऊँची है। यहाँ 36 जिनालय पहाड़ी के ऊपर हैं और 15 जिनालय मैदान में सरोवर के निकट हैं। इस प्रकार यहाँ जिनालयों की कुल संख्या 51 है तथा 1 मानस्तम्भ है। इनमें से 37 मंदिर शिखरबद्ध हैं। एक मंदिर सरोवर के मध्य में पावापुरी के समान बना हुआ है। इसे जल-मंदिर कहते हैं।

तलहटी के मंदिर एक परकोटे के अंदर बने हुए हैं।

यह क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुषमा के साथ आध्यात्मिक साधना का केन्द्र रहा है। इसी प्राकृतिक वैभव से आकर्षित होकर इस एकान्त निर्जन स्थान में वरदत्त आदि मुनीश्वरों ने इसे अपनी साधना-स्थली बनाया और यहाँ से मुक्ति प्राप्त करके इसे सिद्धक्षेत्र होने का गौरव प्रदान किया।

पर्वत के मंदिर–

1. पार्श्वनाथ मंदिर–भगवान पार्श्वनाथ की बादामी वर्ण की यह खड्गासन प्रतिमा 11 फुट की (आसनसहित 16 फुट) है। इसकी प्रतिष्ठा वीर सं. 2478 (विक्रम सं. 2009) में हुई। इस प्रतिमा के सिर पर सर्प-फणावली नहीं है। चरण-चौकी पर सर्प का लांछन है जो पार्श्वनाथ तीर्थंकर का लांछन है। सिर के पृष्ठभाग में सुन्दर भामण्डल है तथा ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है। परिकर में विमान में बैठ हुए देव, चमरेन्द्र और वाद्यवादक हैं।

मुख्य वेदियों के अतिरिक्त 6 वेदियाँ और 22 लघु वेदिकाएँ (आले) हैं, जिनमें 24 तीर्थंकरों की संवत् 2482 की प्रतिमाएँ हैं। इसके अलावा पार्श्वनाथ के गर्भगृह के दरवाजे पर एक ओर 5 फुट 6 इंच ऊँची बाहुबली स्वामी की खड्गासन प्रतिमा है। एक वेदी में यहाँ से मुक्त हुए मुनिराज मुनीन्द्रदत्त, इन्द्रदत्त, वरदत्त, गुणदत्त और सायरदत्त की खड्गासन श्वेत वर्ण की मूर्तियाँ विराजमान हैं। इस मंदिर में मूर्तियों की कुल संख्या 38 है।

भक्तजन इस मंदिर को 'बड़े बाबा का मंदिर', 'चौबीसी जिनालय' आदि कई नामों से पुकारते हैं। यह मंदिर बहुत विशाल है।

2. पार्श्वनाथ मंदिर–ऊपर दूसरी मंजिल पर यह मंदिर है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ की कृष्ण पाषाण की 1 फुट 4 इंच अवगाहना वाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है, जिसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् 2465 में हुई।

3. नेमिनाथ मंदिर–भगवान नेमिनाथ की श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा सं.2012 में हुई।

4. चन्द्रप्रभ मंदिर–चन्द्रप्रभ भगवान की श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है, जिसकी अवगाहना 1फुट 3 इंच है।

5. अजितनाथ जिनालय–कृष्ण पाषाण की अजितनाथ भगवान की 1 फुट 10 इंच ऊँची प्रतिमा है। मूर्ति-लेख नहीं है।

6. आदिनाथ जिनालय–1 फुट 6 इंच अवगाहना वाली आदिनाथ भगवान की कृष्ण पाषाण की यह पद्मासन प्रतिमा संवत् 1858 में प्रतिष्ठित हुई।

7. आदिनाथ जिनालय–आदिनाथ भगवान की श्वेत पाषाण की यह प्रतिमा आसनसहित 3 फुट 7 इंच है। यह पद्मासन है और इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1858 में हुई है। इसके आगे वरदत्तादि मुनियों के दो चरण-चिन्ह विराजमान हैं।

8. शांतिनाथ जिनालय–भगवान शांतिनाथ की श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा 2 फुट 5 इंच उन्नत है। यह वीर सं.2490 में प्रतिष्ठित हुई है। इसके आगे तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। तीनों ही साढ़े सात इंच ऊँची हैं और सं.1548 में प्रतिष्ठित हुई हैं। इनमें चन्द्रप्रभ की दो श्वेत वर्ण की हैं और पार्श्वनाथ की एक कृष्ण वर्ण की है।

9. शांतिनाथ जिनालय–इसमें शांतिनाथ भगवान की श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना 1 फुट 7 इंच है तथा इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1943 में हुई।

10. चन्द्रप्रभ मंदिर–मूँगिया वर्ण की चन्द्रप्रभ भगवान की यह प्रतिमा 1 फुट 4 इंच ऊँची है और संवत् 1942 की प्रतिष्ठित है। इसके पार्श्व में नमिनाथ भगवान की साढ़े नौ इंच ऊँची श्वेत वर्ण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1548 में हुई है।

11. बड़ा मंदिर– यह मंदिर 'बड़ा मंदिर' कहलाता है। यह उत्खनन के फलस्वरूप भूगर्भ से 100 वर्ष पूर्व निकला बताया जाता है। यही वह मंदिर है जिसकी चर्चा जैन पुरातत्त्व के संदर्भ में पूर्व में की जा चुकी है। मंदिर के साथ 13 मूर्तियाँ भी भूगर्भ से प्राप्त हुई थीं और वे भी इसी मंदिर में विराजमान हैं। इस मंदिर और मूर्तियों की प्राचीनता बताने वाला एक शिलालेख इस मंदिर की एक दीवार में लगा हुआ है जिसमें प्रतिष्ठा-काल संवत् 1109 अंकित है।

मंदिर की मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है। यह 4 फुट 7 इंच उन्नत है, खड्गासन है और संवत् 2015 में इसकी प्रतिष्ठा हुई। भूगर्भ से प्राप्त 13 मूर्तियों में से 9 मूर्तियाँ मुख्य वेदी पर विराजमान हैं और शेष 4 मूर्तियाँ अलग-अलग चबूतरों पर हैं। इन मूर्तियों में एक गोमेद यक्ष और अम्बिका की मूर्ति है जो 3 फुट ऊँची है। यह देशी पाषाण की और भूरे वर्ण की है। देवी गोद में बालक लिये हुए है। यक्ष-यक्षी दोनों ही अलंकारों से सज्जित हैं। दोनों के किरीट अत्यन्त कलात्मक हैं। दोनों के ऊपर जो आम्र-स्तवक है, उसकी कला भी असाधारण है। आम्रशाखाओं पर एक वानर चढ़ता हुआ दिखाई देता है। उसके ऊपर नेमिनाथ तीर्थंकर की पद्मासन प्रतिमा है। मूर्ति के हाथ खण्डित हैं।

एक मूर्ति 4 फुट ऊँची है। यह ऋषभदेव की पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिमा के सिर पर तीन छत्र हैं। सिर के दोनों ओर गजराज खड़े हुए हैं। छत्रों के दोनों पार्श्वों में माला लिये हुए नभचारी गन्धर्व हैं। उनके नीचे 4 खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। चरणों के दोनों ओर चमरेन्द्र विनयमुद्रा में खड़े हैं।

एक मूर्ति की अवगाहना 3 फुट 8 इंच है। इस शिलाफलक में दोनों ओर जो हाथी बने हैं, उनमें से एक खण्डित है। चमरवाहकों के नीचे दो भक्त हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। मूर्ति के अधोभाग में यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्ण हैं। मूर्ति की छाती पर श्रीवत्स है। मूर्ति का एक कान खण्डित है।

5 फुट की एक अन्य मूर्ति ऋषभदेव की है। परिकर अन्य मूर्तियों के समान है। मूर्ति के हाथ, पैर, नाक वगैरह खण्डित हैं। छत्रत्रयी के बगल में एक ओर गज नहीं है। एक चमरेन्द्र का सिर खण्डित है।

12. चन्द्रप्रभ जिनालय–इसमें भगवान चन्द्रप्रभ की 2 फुट ऊँची कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् 2002 में प्रतिष्ठित की गयी। इस वेदी में दो मूर्तियाँ और हैं। इनके अतिरिक्त दो प्राचीन मूर्तियाँ अलग-अलग वेदियों में विराजमान हैं।

13. अभिनंदननाथ मंदिर–यहाँ अभिनंदननाथ भगवान की कृष्ण पाषाण की 2 फुट 7 इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है। इसका संवत् पढ़ा नहीं गया। इसके अतिरिक्त 3 पाषाण मूर्तियाँ और हैं।

14. मुनिसुव्रतनाथ मंदिर–इसमें भगवान मुनिसुव्रतनाथ की कृष्ण पाषाण की पद्मासन मूर्ति वीर संवत् 2451 में प्रतिष्ठित हुई। इसकी अवगाहना 2 फुट 5 इंच है। पाँच मूर्तियाँ और हैं। इस मंदिर के आगे मानस्तम्भ है।

15. मुनिसुव्रतनाथ मंदिर–यहाँ श्वेत वर्ण की भगवान मुनिसुव्रतनाथ की पद्मासन प्रतिमा है। यह 2 फुट 6 इंच ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1943 में हुई।

16. नेमिनाथ मंदिर–यहाँ नेमिनाथ की 1 फुट 3 इंच उन्नत कृष्ण वर्ण की पद्मासन प्रतिमा है। यह संवत् 1955 में प्रतिष्ठित हुई।

17. मुनिसुव्रतनाथ मंदिर– इस मंदिर में विराजमान मुनिसुव्रतनाथ मूर्ति की अवगाहना 3 फुट की है। यह कृष्ण पाषाण की है, पद्मासन है और वीर संवत् 2482 की प्रतिष्ठित हुई है।

18. चंद्रप्रभ मंदिर–भगवान चंद्रप्रभ की श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा की अवगाहना 1 फुट 5 इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1983 में हुई।

19. अजितनाथ मंदिर–इस मंदिर में प्रतिष्ठित प्रतिमा की ऊँचाई 2 फुट 8 इंच है। यह श्वेत पाषाण की पद्मासन है और संवत् 1943 की इसकी प्रतिष्ठा हुई।

20. नेमिनाथ मंदिर–यहाँ वीर संवत् 2464 में प्रतिष्ठित नेमिनाथ की 1 फुट 3 इंच उन्नत कृष्ण पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है।

21. चन्द्रप्रभ मंदिर–इसमें मूंगिया वर्ण की चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिमा है। यह 1 फुट 7 इंच ऊँची है, पद्मासन है और संवत् 1943 में प्रतिष्ठित हुई है।

22. पार्श्वनाथ मंदिर– इस मंदिर की मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है, पद्मासन है, कृष्ण पाषाण की

निर्मित है और संवत् 1943 की इसकी प्रतिष्ठा हुई है। इस वेदी पर एक कृष्ण वर्ण वाली मूर्ति और विराजमान है।

23. नेमिनाथ मंदिर–यहाँ भगवान नेमिनाथ की 1 फुट 7 इंच ऊँची श्वेत पाषाण की प्रतिमा है। यह पद्मासन में आसीन है और संवत् 1943 में प्रतिष्ठित करायी गयी है।

24. चन्द्रप्रभ मंदिर–इस मंदिर में श्वेत पाषाण की 1 फुट उन्नत चन्द्रप्रभ की मूर्ति है। यह पद्मासन मुद्रा में आसीन है और संवत् 1942 में प्रतिष्ठित हुई है।

25. पार्श्वनाथ जिनालय–यहाँ भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत वर्ण की प्रतिमा है। यह पद्मासन है, 2 फुट समुन्नत है और संवत् 1943 में प्रतिष्ठित हुई है।

26. चन्द्रप्रभ जिनालय–यहाँ भगवान चन्द्रप्रभ की श्वेत पाषाण की प्रतिमा है। यह पद्मासन है। इसका माप 1 फुट 2 इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1942 में हुई है। इस मूर्ति के अलावा एक कृष्ण पाषाण की पद्मासन प्रतिमा और विराजमान है।

27. चन्द्रप्रभ जिनालय–यह प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में विराजमान है। यह श्वेत वर्ण की है और 1 फुट ऊँची है। इस मूर्ति के पीठासन पर लेख नहीं है।

28. पार्श्वनाथ मंदिर-इस मंदिर में पार्श्वनाथ भगवान की श्वेत पाषाण की संवत् 1995 की प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है।

29.चन्द्रप्रभ मंदिर–यहाँ भगवान चन्द्रप्रभ की यह मूर्ति 1 फुट 5 इंच उत्तुंग श्वेतवर्ण और पद्मासन है।

30. अजितनाथ मंदिर–इस मंदिर में भगवान अजितनाथ की 5 फुट अवगाहना वाली कृष्ण पाषाण की प्रतिमा है। यह संवत् 1948 में प्रतिष्ठित हुई है।

31. एक गुमटी में वरदत्तादि मुनियों के चरण-चिन्ह विराजमान हैं।

32. ऋषभदेव मंदिर–यहाँ ऋषभदेव भगवान की श्वेतवर्ण, 2 फुट 3 इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है। संवत् 1952 में प्रतिष्ठित हुई है।

33. चन्द्रप्रभ मंदिर–इसमें चन्द्रप्रभ भगवान की श्वेतवर्ण तथा 1 फुट 3 इंच उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा है। मूर्तिलेख न होने से प्रतिष्ठा-काल ज्ञात नहीं हुआ।

34. अभिनंदननाथ मंदिर–श्वेत वर्ण की वीर संवत् 2478 में प्रतिष्ठित और 2 फुट 2 इंच ऊँची अभिनंदननाथ की पद्मासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान है।

35. इस मंदिर में चरण-चिन्ह विराजमान हैं।

36. मेरु मंदिर–इस मंदिर में अन्तः प्रदक्षिणा-पथ से गन्धकुटी तक पहुँचते हैं। गन्धकुटी में चन्द्रप्रभ की श्वेत पाषाण की 1 फुट 2 इंच ऊँची प्रतिमा विराजमान है। यह पद्मासन है और संवत् 2008 में प्रतिष्ठित हुई है।

मानस्तम्भ–मेरु मंदिर के निकट ही मानस्तम्भ बना हुआ है।

इस पहाड़ी पर जैन मंदिरों का यह गुच्छा अधिक विस्तृत भूभाग में फैला हुआ नहीं है। इसलिये दर्शन करने में अधिक समय नहीं लगता। यहाँ की प्रबन्ध समिति की उदारता के कारण एक हिन्दू बाबा ने जैन मंदिर-गुच्छक के प्रायः मध्य में एक हनुमान मंदिर बना लिया है और कुछ ही वर्षों में उसे काफी बढ़ा लिया है, अस्तु। मंदिरों तक जाने का मार्ग पक्का है। प्रथम मंदिर के बाहर कुछ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हुई हैं जो भूगर्भ से प्राप्त हुई हैं। उनमें अम्बिका की भी एक सुन्दर मूर्ति है। ये मूर्तियाँ प्रायः 11 वीं शताब्दी की प्रतीत होती हैं। ये समस्त मंदिर एक अहाते के अन्दर हैं।

पहाड़ी पर खड़े होकर सरोवर की ओर दृष्टिपात करने पर दृश्य बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। मध्य में जल-मंदिर, उस ओर मैदान के शिखरबद्ध जिनालय और इस ओर पर्वत की मंदिर-माला, जिन पर उत्तुंग शिखर शोभायमान हैं।

तलहटी के मंदिर–

1. जल-मंदिर–एक विशाल सरोवर के मध्य में एक भव्य मंदिर बना हुआ है। मंदिर तक जाने के लिय पुल है। पुल से जाने पर सर्वप्रथम चबूतरा मिलता है। चबूतरे पर एक पक्का कुआँ बना हुआ है। मंदिर के मूलनायक भगवान महावीर की श्वेत वर्ण की पद्मासन प्रतिमा है जो 2 फुट ऊँची है और वीर सं. 2482 में प्रतिष्ठित हुई है। समवसरण में 5 पाषाण की और 9 धातु की मूर्तियाँ हैं।

पुल के पास सड़क के किनारे पाषाण का एक सूचना-पट लगा हुआ है। उसमें राज्य की ओर से सरोवर में मछली पकड़ने तथा पर्वत और जंगल में पशु-पक्षी का शिकार करने पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया गया है और इसकी अवहेलना करने पर कठोर दण्ड की व्यवस्था है।

2. सुमतिनाथ मंदिर–यहाँ भगवान सुमतिनाथ की श्वेत वर्ण की 2 फुट ऊँची प्रतिमा संवत् 2008 में प्रतिष्ठित हुई। यह पद्मासनासीन है। वेदी पर एक धातु–प्रतिमा भी है।

3. श्री नेमिनाथ मंदिर–नेमिनाथ की कृष्ण पाषाण की 1 फुट 8 इंच ऊँची यह पद्मासन मूर्ति संवत् 1979में प्रतिष्ठित हुई।

4. नेमिनाथ मंदिर–यह मूर्ति 1 फुट 5 इंच ऊँची है और इसकी प्रतिष्ठा संवत् 1966 में हुई। शेष सब कुछ मंदिर नं.-3 की मूर्ति के समान है।

5. चन्द्रप्रभ मंदिर– श्वेत वर्ण , 1 फुट 10 इंच ऊँची इस पद्मासन मूर्ति की प्रतिष्ठा संवत् 1955 में हुई। इस मंदिर में 4 पाषाण की तथा 20 धातु की छोटी मूर्तियाँ हैं।

6. पार्श्वनाथ मंदिर–यहाँ पार्श्वनाथ की सिलेटी वर्ण की, 2 फुट 2 इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है और इसका प्रतिष्ठाकाल संवत् 1917 है। इस वेदी पर मूलनायक के अतिरिक्त 2 पाषाण की और 5 धातु की प्रतिमाएँ हैं।

7. पार्श्वनाथ मंदिर–यहाँ चाँदी की एक वेदी में धातु की साढ़ेसात इंच ऊँची एक पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान है। यह संवत् 1881 की है। इस प्रतिमा के अतिरिक्त इस वेदी में 2 तीर्थंकर मूर्तियाँऔर दो चमरवाहकों की धातु-मूर्तियाँ हैं।

8. चन्द्रप्रभ मंदिर–मूलनायक भगवान चन्द्रप्रभ की प्रतिमा श्वेत पाषाण की है। इसकी अवगाहना 2 फुट है। इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् 1967 है। यह पद्मासन मुद्रा में है। इसके अतिरिक्त 3 पाषाण की और 21 धातु की मूर्तियाँ हैं।

9.चन्द्रप्रभ मंदिर–इसमें श्वेत पाषाण की 1 फुट 4 इंच उन्नत पद्मासन मूर्ति है। यह संवत् 1955 में प्रतिष्ठित हुई है।

10. नेमिनाथ मंदिर–इसकी वेदी पर मूलनायक नेमिनाथ की तथा 4 अन्य पाषाण-प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मूलनायक का वर्ण श्वेत है। इसकी माप 1 फुट 3 इंच है। संवत् 1948 में यह प्रतिष्ठित हुई। यह पद्मासन है।

11. पार्श्वनाथ मंदिर–यहाँ की पार्श्वनाथ की प्रतिमा पूर्वोक्त नेमिनाथ प्रतिमा के साथ प्रतिष्ठित हुई। इसका वर्ण कृष्ण है और इसकी अवगाहना 2 फुट 2 इंच है। यह भी पद्मासन है।

12. पार्श्वनाथ मंदिर–यहाँ की पार्श्वनाथ की मूर्ति भी संवत् 1948 में प्रतिष्ठित हुई। यह श्वेत वर्ण, पद्मासन और 1 फुट 9 इंच अवगाहना की है।

13. ऋषभदेव मंदिर–ऋषभदेव की इस पाषाण-प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी संवत् 1948 में हुई है। इसका वर्ण श्वेत है।

14. पीतल की एक वेदी में कृष्ण वर्ण की तीन पाषाण-प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

15. ऋषभदेव मंदिर–इसकी भी प्रतिष्ठा संवत् 1948 में हुई थी। यह श्वेतवर्ण एवं पद्मासन है और इसकीमाप 1 फुट 8 इंच है। भगवान् की 2 धातु प्रतिमाएँ भी हैं।

अतिशय–कभी-कभी इस क्षेत्र पर ऐसी घटना भी घटित हो जाती है जिसके कार्य-कारण का पता साधारण बुद्धि द्वारा नहीं चल पाता। ऐसी घटना को ही बोलचाल की भाषा में अतिशय या चमत्कार कहा जाने लगता है।

घटना अद्‌भुत है। यह प्रत्यक्षदर्शियों से सुनी हुई है। 40 वर्ष पहले की बात है। एक बैल मंदिर नं.-2 में जीने से ऊपर चढ़ गया और कार्निश पर आ गया। जब लोगों को पता चला तो वहाँ एकत्र हो गये, किन्तु सभी किंकर्तव्यविमूढ़

थे। बैल न पीछे लौट सकता था, न मुड़ सकता था और गिरते ही उसके मरने का भय था। लाचार होकर उपद्रव की शांति के लिए मंदिर में शांतिविधान और हवन किया गया। हवन करते समय आवाज आयी–तुम लोग चिंता मत करो, बैल सकुशल उतर जायेगा। सब लोग निश्चिन्त होकर धर्मशाला में लौट आये। जब लोग लौट रहे थे, तब सबने आश्चर्य से देखा कि बैल तालाब के पास में चर रहा था।

इस प्रकार की अद्‌भुत बातें यहाँ अनेक बार देखने को मिली हैं।

दर्शनीय स्थल–क्षेत्र के निकट नदी की धारा के मध्य में 50 फुट ऊँची एक पाषाण-शिला है। कहा जाता है कि इसी शिला पर तप करते हुए वरदत्त आदि पाँच मुनिराज मुक्त हुए थे। अतः यह शिला सिद्धशिला कही जाती है। इसके अतिरिक्त क्षेत्र से लगभग एक मील दूर जंगल में एक वेदिका है जो काफी विशाल है। देखने में प्रतीत होता है कि वेदिका काफी प्राचीन है।

धर्मशालाएँ–क्षेत्र पर 3 धर्मशालाएँ हैं–1. सेठ शोभाराम मलैया-सागर द्वारा निर्मित, 2.सिं.मूलचंद गिरधारीलाल-विलाई द्वारा निर्मित और 3. सागर वालों की। इन धर्मशालाओं में कुल मिलाकर 52 कमरे और 3 हॉल हैं। क्षेत्र पर बिजली है, जल के लिए सरोवर कुएँ हैं। बस्ती बहुत छोटी सी है, किन्तु क्षेत्र पर खाद्य सामग्री मिल जाती है। क्षेत्र दलपतपुर-बकस्वाहा सड़क के बिलकुल किनारे है।

मेला–क्षेत्र का वार्षिक मेला प्रतिवर्ष अगहन सुदी 11 से 15 तक होता है। इस अवसर पर रथोत्सव भी होता है।

क्षेत्र पर तीन उत्सवों के अवसर पर लगे मेले विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम उत्सव संवत् 1943 में हुआ। इस वर्ष यहाँ तीन गजरथ चले थे। दूसरा उत्सव संवत् 2008 में था। उस वर्ष यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी। तीसरा उत्सव संवत् 2013 में हुआ और उस वर्ष यहाँ पर गजरथ चला था। इन उत्सवों में पंचकल्याणकपूर्वक बिम्ब-प्रतिष्ठाएँ हुई थीं। इन प्रतिष्ठोत्सवों में सहस्रों व्यक्तियों ने भाग लिया था।

व्यवस्था–क्षेत्र की व्यवस्था प्रान्तीय समाज द्वारा निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती है। प्रबन्ध समिति का चुनाव हर तीसरे वर्ष वार्षिक मेले के अवसर पर होता है।

अवस्थिति और मार्ग–रेशन्दीगिरि (नैनागिरि) सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में अवस्थित है। यहाँ पहुँचने का मार्ग इस प्रकार है–सागर-कानपुर रोड पर सागर से 45 कि.मी. दूर दलपतपुर गाँव है। यहाँ से पूर्व की ओर दलपतपुर-बकस्वाहा मार्ग पर दलपतपुर से 12 कि.मी. दूर यह क्षेत्र अवस्थित है। सड़क पक्की है। दलपतपुर में क्षेत्र की धर्मशाला भी है। सागर से रेशन्दीगिरि के लिए सीधे बस भी जाती है। प्रथम सागर-बकस्वाहा और द्वितीय सागर-विजावर मार्ग, दोनों ही बस मार्गों पर रेशन्दीगिरि पड़ता है।

सन् 1974 के पश्चात्–यहाँ पर संवत् 1109 से लेकर प्रत्येक शताब्दी की मूर्तियाँ प्राप्त हैं।

सरोवर एवं पहाड़ी के संगम पर 10000 वर्ग फीट क्षेत्र में विशाल समवसरण मंदिर का निर्माण किया जा चुका है। इसकी पंचकल्याणक सन् 1987 में हुई, जिसमें क्षेत्र के तत्कालीन मंत्री श्री सेठ शिखरचन्द्र जी का अनुकरणीय योगदान रहा है।

क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाएँ–क्षेत्र पर 110 कमरे हैं, जिसमें 30 डीलक्स हैं। 7 हॉल हैं। पुस्तकालय में लगभग 6000 पुस्तकें हैं। भोजनशाला नियमित सशुल्क चलती है। विद्यालय एवं वृद्धाश्रम भी है।

श्रीनगर में पार्श्वनाथ का अतिशय

–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

उद्दाम विरही ने सन् 1894 में श्रीनगर को ध्वस्त कर दिया और इस ध्वंस-लीला से यह जैन तीर्थ भी नहीं बच पाया किन्तु प्रतिमाएँ सुरक्षित रहीं। स्व.लाला प्रतापसिंह जैन और स्व. लाला मनोहरलाल जैन के संयुक्त प्रयास से ध्वस्त मंदिर का पुनर्निर्माण हुआ। इस काल में जो मंदिर बनाया गया, वह शिल्प-चातुर्य और कलापूर्ण वास्तु-विधान की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। संभवतः उत्तराखण्ड का कोई मंदिर श्रीनगर के जैन मंदिर के समुन्नत, सूक्ष्म शिल्प विधान और भव्य चित्रकारी से समता नहीं कर सकता। लगता है, यहाँ का प्रत्येक पाषाण सजीव है।

अतिशय–इस मंदिर में केवल एक वेदी है, जिस पर तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मूलनायक भगवान ऋषभदेव की और दो भगवान पार्श्वनाथ की। तीनों ही पद्मासन प्रतिमाएँ हैं और प्रभावक हैं। पाषाण का सूक्ष्म निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि ये प्रतिमाएँ लगभग पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन होंगी। **इनमें भगवान पार्श्वनाथ की कृष्ण पाषाण की पद्मासन प्रतिमा तो चतुर्थ काल की बतायी जाती है जो अत्यन्त सातिशय है। भक्तों की मान्यता है कि इस प्रतिमा की भक्ति करने से सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस प्रतिमा के चमत्कारों और अतिशयों के संबंध में जनता में नाना प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें सर्वप्रमुख यह है कि यहाँ रात्रि में देवगण आते हैं और इस मूर्ति के समक्ष भावविभोर होकर नृत्य और पूजन करते हैं। लोगों में यह भी धारणा व्याप्त है कि इस प्रतिमा का ही यह चमत्कार है कि अलकनन्दा की बाढ़ में भी वेदी और प्रतिमाओं की कोई क्षति नहीं हुई। वस्तुतः एक अतिशय क्षेत्र के रूप में इस प्रतिमा का सबसे बड़ा चमत्कार तो यह है कि जो इसके दर्शनों को जाता है, उसके मन में शुभ भावनाएँ और भगवान की भक्ति का ऐसा उद्रेक होता है कि संसार की तमाम वासनाओं को वह भूल जाता है।**

मंदिर के प्रांगण में क्षेत्रपाल भैरों का भी मंदिर है। सन् 1970 से ही मंदिर में जीर्णोद्धार का कार्य चल रहा है।

मार्ग–उत्तर रेलवे के मुरादाबाद-सहारनपुर मुख्य लाइन के नजीबाबाद स्टेशन से श्रीनगर बस मार्ग से कोटद्वार होते हुए सौ मील दूर है तथा ऋषिकेष से बस द्वारा 67 मील दूर है। यह नगर हिमालय में अलकनन्दा के तट पर बसा हुआ है। यहाँ अलकनन्दा नदी धनुषाकार हो गयी है। श्री दिगम्बर जैन मंदिर भी अलकनंदा के तट पर अवस्थित है। यात्रियों के ठहरने के लिए मंदिर के बाहर नंद्यावर्त अतिथिभवन है।

इतिहास–सम्पूर्ण हिमालय पर्वत आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का विहार स्थल रहा है। पुराण साहित्य से यह ज्ञात होता है कि भगवान ऋषभदेव ने अनेक वर्षों तक हिमालय (कैलाशपर्वत) में तपस्या की, केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् कई बार भगवान का समवसरण भी इस पर्वत पर आया और अन्त में कर्म क्षय करके वे हिमालय से ही मुक्त हुए। उनके अतिरिक्त अनेक मुनियों ने पावनतोया गंगा नदी के एकान्त तट पर हिमालय की शिलाओं पर बैठकर तपस्या की। भरत, बाहुबली, भगीरथ आदि अनेक मुनियों ने यहीं से निर्वाण प्राप्त किया। भगवान पार्श्वनाथ का भी एक बार समवसरण यहाँ आया था और उनके आत्मकल्याणकारी उपदेश सुनकर अनेक व्यक्तियों ने जैनधर्म अंगीकार किया था। इसी कारण अनेक शताब्दियों तक जैनधर्म और उसके अनुयायियों का हिमालय के अंचल में प्रभाव रहा है। श्रीनगर के निकटवर्ती नगरों में अब भी डिमरी, चौधरी आदि अनेक जातियों के लोग रहते हैं, जिनमें अब तक जैन संस्कार पाये जाते हैं। इससे प्रतीत होता है इनके पूर्वज अवश्य जैन धर्मानुयायी रहे होंगे किन्तु किन्हीं परिस्थितियों के कारण वे जैनधर्म और उसके अनुयायियों के सम्पर्क से सर्वथा पृथक् हो गये लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि हिमालय के कण-कण में लोकवंद्य तीर्थंकरों और मुनियों की चरण-धूलि मिली हुई है और यहाँ का कण-कण पावन तीर्थ है।

श्रीनगर का जैन मंदिर भी प्राचीन काल में एक प्रसिद्ध तीर्थ रहा है। श्रीनगर किसी समय पौढ़ी गढ़वाल की राजधानी थी। अपनी भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक कारणों से उत्तराखण्ड के प्रमुख नगरों में इनकी गणना रही है। यह व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र रहा है अतः यह स्वाभाविक है कि यहाँ पर तथा पार्श्ववर्ती नगरों में जैनों की प्रचुर संख्या रही। इस बात के प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि यहाँ के जैन मंदिर की मान्यता जैन तीर्थ के रूप में रही तथा बद्रीनाथ आदि जैन तीर्थों को जाने वाले जैन यात्री इस तीर्थ के दर्शनार्थ आते रहे।

कटक में पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमायें

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

कटक उत्कल प्रदेश की प्राचीन राजधानी है। कटक के तीन ओर नदियाँ हैं– महानदी, कुआँखाई और काठजोड़ी। यह हावड़ा जंक्शन से पुरी को जाने वाली रेलवे लाइन पर 409 किमी. दूर है। स्टेशन से लगभग 5 किमी. दूर चौधरी बाजार में जैन भवन है। यहाँ ठहरने की अच्छी सुविधा है। इसी के पृष्ठ भाग में प्राचीन चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर है। यह बड़ा मंदिर कहलाता है तथा इस मंदिर से लगभग 100 गज दूर इसी बाजार में दिगम्बर जैन चैत्यालय है।

चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर–इसमें दो गर्भगृह हैं। दोनों में एक-एक वेदी है। बायीं ओर की वेदी में कुल 6 पाषाण प्रतिमाएँ हैं तथा मुख्य वेदी में 16 पाषाण की एवं 9 धातु की प्रतिमाएँ हैं।

बायीं ओर की वेदी–इस वेदी में स्थित सभी प्रतिमाएँ प्राचीन हैं। कहते हैं, ये प्रतिमाएँ खण्डगिरि से यहाँ लाई गई थीं। इन प्रतिमाओं का प्रतिष्ठाकाल अनुमानतः 10वीं शताब्दी है। सभी प्रतिमाएँ सिलेटी या श्याम वर्ण की हैं। सभी एक ही काल की प्रतीत होती हैं।

(बायें से दायें को) (1) एक सवा दो फुटी **शिलाफलक में खड्गासन पार्श्वनाथ प्रतिमा** है। अधोभाग में एक स्त्री लेटी हुई है। उसके दोनों ओर हाथ जोड़े हुए दो भक्त खड़े हैं। संभवतः यह तीर्थंकर माता की मूर्ति है। पार्श्वनाथ मूर्ति के दोनों ओर मध्य भाग में चमरवाहक इन्द्र चमर लिये हुए खड़े हैं। इनके दोनों ओर तीन उपाध्याय या आचार्य उपदेश मुद्रा में विराजमान हैं। भगवान के सिर पर पाँच फणावलियाँ हैं। इनके ऊपर तीन छत्र सुशोभित हैं। सर्प-कुण्डली पीठ को घेरे हुए है। कुण्डली और फणावली अत्यन्त भव्य जान पड़ती हैं। मूर्ति के शिरोभाग पर दोनों ओर हाथों में पारिजात पुष्पमालाएँ लिए हुए आकाशचारी गंधर्वयुगल दीख पड़ते हैं।

(2) एक पाषाणफलक में पद्मप्रभु भगवान की सवा तीन फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। चरण-चौकी पर मूर्तिलेख है। दोनों ओर चमरेन्द्र हैं। भगवान के सिर पर छत्र है। ऊपर दोनों कोनों पर पुष्प विकीर्ण करते हुए आकाशगामी गंधर्व दीख पड़ते हैं।

(3) सवा दो फुट अवगाहना वाले **शिलाफलक में पार्श्वनाथ तीर्थंकर की खड्गासन मूर्ति** है। यह मूर्ति वैसी ही है जैसी कि मूर्ति नं. 1 है। अन्तर केवल अधोभाग में है। इसमें पादपीठ के नीचे बायीं ओर भक्त स्त्री-पुरुष बद्धांजलि बैठे हुए हैं तथा एक नागपुरुष दण्ड लिए हुए खड़ा है। दायीं ओर एक नागपुरुष हाथ जोड़े हुए खड़ा है।

(4) एक शिलाफलक में सवा दो फुट अवगाहना वाली श्याम वर्ण पार्श्वनाथ की खड्गासन मूर्ति है। पाद पीठ पर सर्प लांछन है। मूर्ति के दोनों बाजुओं में चमरेन्द्र खड़े हैं। उनके ऊपर बायीं ओर चार उपाध्याय मूर्तियाँ हैं तथा दायीं ओर तीन उपाध्याय मूर्तियाँ और एक कीचक है। भगवान के सिर पर सप्त फणावलियाँ सुशोभित हैं। फलक के शिरोभाग पर दोनों कोनों में केवल हाथ दिखाई पड़ते हैं। बायीं ओर के हाथों में दुन्दुभि है तथा दायीं ओर के हाथों में झाँझ है।

(5) एक सोलह इंची पाषाणफलक में दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। बायीं ओर की मूर्ति भगवान आदिनाथ की तथा दायीं ओर की मूर्ति भगवान महावीर की है। दोनों के जटाजूट दर्शनीय हैं।

(6) एक शिलाफलक में डेढ़ फुट **अवगाहना वाले पार्श्वनाथ तीर्थंकर ध्यानमुद्रा** में खड़े हैं। दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। उनके ऊपर दो-दो पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। जो संभवतः वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ और महावीर तीर्थंकरों की हैं अतः निश्चय ही यह फलक पंचबालयति तीर्थंकरों का है। पार्श्वनाथ भगवान के सिर के दोनों ओर पुष्पमाल लिए गंधर्व हैं कोनों पर हाथों में दुंदुभि और झाँझ दीख पड़ते हैं।

मुख्य वेदी–इसका गर्भगृह पहले की अपेक्षा बड़ा है। इस वेदी पर 13 पाषाण प्रतिमाएँ और 1 धातु प्रतिमा प्राचीन है। मूलनायक भगवान चन्द्रप्रभ की आठ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। यह श्याम वर्ण की है। इस वेदी की उल्लेखनीय प्रतिमाओं में दो पाषाण चैत्य हैं, जिन पर चारों दिशाओं में चार प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। एक शिलाफलक में ऊपर की पंक्ति

में मध्य में आदिनाथ की पद्मासन मूर्ति है। उसके दोनों ओर चार-चार खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इनके नीचे आठ पंक्तियों में खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। प्रत्येक पंक्ति में 19-19 मूर्तियाँ हैं। यह सहस्रकूट जिनचैत्य कहलाता है।

एक अन्य पाषाणकाल में आदिनाथ और महावीर अर्थात् आद्य और अंतिम तीर्थंकर की मूर्ति है। शान्तिनाथ भगवान की एक मूर्ति डेढ़ फुट अवगाहना वाली है। इसके पाद पीठ पर हरिण का चिन्ह है तथा इसका भामण्डल दर्शनीय है।

पीतल की एक मूर्ति सत्तरह इंच की है। यह ऋषभदेव की खड्गासन मूर्ति है। इसका जटाजूट अत्यन्त भव्य है।

मंदिर प्राचीन है। दोनों गर्भगृहों के ऊपर विशाल शिखर बने हुए हैं। ये द्रविड़ कला के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। दोनों शिखर पृथक्-पृथक् शैली के हैं। इनको देखकर कलाकार की दक्षताऔर अद्भुत कल्पना के दर्शन होते हैं।

भानपुर—यह एक छोटा सा गाँव है। यह कटक से भुवनेश्वर जाने वाली सड़क पर कटक से 8 किमी. दूर है। यहाँ भूगर्भ से प्राप्त पाँच धातु प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। नकुलभट्ट खण्डायत नामक जिस व्यक्ति को ये प्रतिमाएँ कुआँखाई नदी में मिट्टी खोदते हुए मिली थीं, उन्होंने इस संबंध में जो कुछ लिखा है, इस प्रकार है—"मेरी आर्थिक स्थिति पहले अत्यन्त खराब थी। दाल-भात का खर्च कठिनाई से निकलता था। आज से पाँच वर्ष पहले बाँध भरने के लिए मैंने मिट्टी का ठेका लिया था। एक दिन मैं कुआँखाई नदी में मिट्टी खोद रहा था, तभी मुझे खुदाई के समय ये मूर्तियाँ मिलीं। मिट्टी से निकलकर भगवान ने मुझे दर्शन दिये हैं, इस बात से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मैं हर्ष में अपनी गरीबी का दुख भी भूल गया। मैंने भगवान की मूर्तियों को लाकर एक पेड़ के नीचे विराजमान कर दिया। काम के समय के अतिरिक्त मेरा सारा समय भगवान की सेवा-अर्चना में ही जाता था। भगवान जब स्वयं ही मेरे घर पधारे थे, तो मुझे फिर कमी किस बात की रहती ! भगवान की कृपा हुई तो जमीन-जायदाद भी खरीद ली, चावल का मिल खोल लिया है। अब सब तरह से मौज है। मिल के पास ही यह छोटा सा मंदिर बनवा दिया है और भगवान को लाकर यहाँ विराजमान कर दिया है।"

मंदिर छोटा सा ही है। उसके ऊपर शिखर भी है। कुल पाँच मूर्तियाँ हैं। ये काठ के सिंहासन पर रखी हुई हैं। मूर्तियाँ रजत वर्ण की हैं। ये दानेदार धातु की हैं। भूगर्भ में दबी रहने के कारण ही शायद ये दानेदार हो गई हैं। ऐसी कई मूर्तियाँ भुवनेश्वर संग्रहालय में भी सुरक्षित हैं। संभव है, ये अष्ट धातु की हों।

मध्य की मूर्ति चौबीसी है। मध्य में गोलाकार में 12, ऊपर 8 और चारों कोनों पर 4 इस प्रकार 24 मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त नीचे के भाग में पार्श्वनाथ की और शीर्ष भाग पर महावीर की मूर्ति बनी हुई है। यह मूर्ति दस इंच की है। इसके नीचे के भाग पर लेख है। संवत् 1090 पढ़ा जा सका है अर्थात् यह मूर्ति ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की है। यह मूर्ति पद्मासन है।

इस मूर्ति के दोनों ओर दो-दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इनमें एकदम बायीं ओर की मूर्ति **भगवान पार्श्वनाथ** की है तथा शेष तीनों ऋषभदेव भगवान की हैं। इनकी ऊँचाई क्रमशः छह इंच, नौ इंच, ग्यारह इंच और छह इंच है। मूर्तियों की पहचान उनके पाद पीठ पर बने हुए सर्प और वृषभ से होती है जो क्रमशः **पार्श्वनाथ** और ऋषभदेव तीर्थंकरों के चिन्ह हैं। ग्यारह इंच वाली ऋषभदेव की मूर्ति के पाद पीठ पर चारों ओर नवग्रह बने हुए हैं। पादपीठ तीन कटनीदार बना हुआ है और गोलाकार है।

भानपुर से दो मील आगे सड़क से लगभग एक फर्लांग कच्चे मार्ग द्वारा प्रतापपुर गाँव है। वहाँ भी नदी से जैन मूर्तियाँ निकली थीं। गाँव वालों ने उन्हें नदी के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचरख दिया किन्तु उनमें से एक मूर्ति चोरी चली गई। उसका पता नहीं लग सका। तब उन मूर्तियों को एक निकटवर्ती मठ में रख दियाजो अब भी वहीं पर रखी हुई हैं।

कटक शहर के बाह्य भाग में गंगा मंदिर में भी एक जैन मूर्ति रखी हुई है।

इधर अन्य भी कई स्थानों पर जैन मूर्तियाँ भूगर्भ से उपलब्ध हुई हैं अथवा वैष्णव मंदिरों में रखी हुई हैं।

खजुराहो का सुन्दर पार्श्वनाथ जिनालय

–ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

मार्ग और अवस्थिति–खजुराहो मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित है और अत्यन्त कलापूर्ण भव्य मंदिरों के कारण विश्व भर में प्रसिद्ध पर्यटन केन्द्र है। एक हजार वर्ष पूर्व यह चन्देलों की राजधानी था, किन्तु आज तो यह एक छोटा सा गाँव है जो खजुराहो सागर अपरनाम निनौरा ताल नामक झील से दक्षिण-पूर्वी कोने में बसा है। यह स्थान महोबा से 55 कि.मी. दक्षिण की ओर, हरपालपुर से 96 कि.मी. तथा छतरपुर से 46 कि.मी. पूर्वा की ओर, सतना से 120 कि.मी. व पन्ना से 43 कि.मी. पश्चिमोत्तर दिशा में है। इन सभी स्थानों से खजुराहो तक पक्की सड़क है और नियमित बस सेवा है। रेल से यात्रा करने वालों के लिए हावड़ा-बम्बई लाइन पर सतना स्टेशन से तथा झाँसी-मानिकपुर लाइन पर हरपालपुर और महोबा से यहाँ के लिए बसें नियमित चलती हैं। इसी प्रकार इलाहाबाद, कानपुर, झाँसी, ग्वालियर, बीना, सागर, भोपाल, जबलपुर आदि से बस द्वारा छतरपुर होते हुए खजुराहो पहुँच सकते हैं।

जनश्रुति के अनुसार यहाँ 85 मंदिर थे, किन्तु अब तो प्राचीन मंदिरों में से केवल 30 मंदिर ही विद्यमान हैं, शेष मंदिर नष्ट हो गये।

यहाँ दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो अस्पष्ट होने के कारण पढ़े नहीं जा सके। इनमें से एक लेख एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इसमें केवल 'नेमिचन्द्र' शब्द पढ़ा जा सकता है। अक्षरों की शैली से यह 10 वीं शताब्दी का सिद्ध होता है। इसी प्रकार दूसरे लेख में 'स्वस्ति श्री साधु पालना' शब्द पढ़े जा सके हैं। सन् 1876-77 में यहाँ खुदाई में 13 जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई थीं।

जैन मंदिरों का समूह–गाँव के दक्षिण-पूर्व में जैन मंदिरों का समूह है। वे मंदिर एक आधुनिक चहारदीवारी से घिरे हैं। आदिनाथ, **पार्श्वनाथ** और शांतिनाथ मंदिरों के अतिरिक्त कई आधुनिक जैन मंदिर हैं जो प्राचीन मंदिर के ध्वंसावशेषों पर बनाये गये हैं। तीर्थंकरों की अनेक प्राचीन मूर्तियाँ मंदिर में तथा अहाते में खुले संग्रहालय के रूप में रखी हुई हैं। इनमें से कई मूर्तियों पर तिथि वाले लेख अंकित हैं।

खजुराहो के वर्तमान जैन मंदिरों में पार्श्वनाथ मंदिर (मंदिर नं.25) सबसे विशाल और सबसे सुन्दर है। वह 68 फुट 2 इंच लम्बा और 34 फुट 11 इंच चौड़ा है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख है। खजुराहो के समस्त हिन्दू और जैन मंदिरों में भी कला-सौष्ठव और शिल्प की दृष्टि से यह अन्यतम माना जाता है। खजुराहो का कन्दारिया मंदिर अपनी विशालता एवं लक्ष्मण मंदिर उत्कीर्ण मूर्ति सम्पदा की दृष्टि से विख्यात है किन्तु पार्श्वनाथ मंदिर के कलागत वैशिष्ट्य एवं अद्‌भुत शिखर संयोजना की समानता वे मंदिर नहीं कर सकते। प्रसिद्ध विद्वान् फर्गुसन ने इस मंदिर के संबंध में जो उद्‌गार प्रकट किये हैं, उनसे वास्तविक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

'वास्तव में समूचे मंदिर का निर्माण इस दक्षता से साथ हुआ है कि सम्भवतः हिन्दू स्थापत्य में इसके जोड़ की कोई रचना नहीं है जो इसकी जगती की तीन पंक्तियों की मूर्तियों के सौन्दर्य, उत्कृष्ट कोटि की कला संयोजना और शिखर के सूक्ष्मांकन में इसकी समानता कर सके।'

कन्दारिया महादेव मंदिर के साथ **पार्श्वनाथ मंदिर** की तुलना करते हुए फर्गुसन आगे लिखते हैं–

'कन्दारिया महादेव मंदिर के साथ पार्श्वनाथ मंदिर की तुलना करें तो हम यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि पार्श्वनाथ मंदिर कहीं अत्यधिक श्रेष्ठ है।'

इस प्रकार हम देखते हैं **कि पार्श्वनाथ मंदिर खजुराहो के मंदिर समूह में सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय है।**

पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माणकाल प्रायः सभी विद्वान् 10वीं शताब्दी मानते हैं। द्वार के बायें खंभे पर 12 पंक्तियों का एक लेख है, जिसमें प्रतिष्ठा काल संवत् 1011 दिया गया है। लिपि के आधार पर यह लेख किसी प्राचीनतर लेख की उत्तरकालीन प्रतिलिपि माना जाता है।

संग्रहालय– बस अड्डे के पास सरकारी संग्रहालय है। इसमें प्रायः खजुराहो के प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेषों में से प्राप्त पुरातत्त्व सामग्री संग्रह की गयी है। उसमें से कुछ सामग्री तो यहाँ व्यवस्थित रूप में सुरक्षित है, किन्तु अधिकांश सामग्री हिन्दू मंदिर समूह के पास एक खुले अहाते में पड़ी है।

संग्रहालय में सुरक्षित सामग्री में जैन पुरातन सामग्री भी है। इसमें तीर्थंकर मूर्तियाँ और शासन-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। जैन सामग्री के लिए अलग से एक जैन कक्ष बना हुआ है। प्रमुख कक्ष में भी दो जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। एक तो भगवान ऋषभदेव की है और दूसरी शासन-सेवक यक्ष और यक्षी की है।

धर्मशालाएँ–खजुराहो विख्यात पर्यटक केन्द्र है। यहाँ हजारों व्यक्ति प्राचीन भारत की कला का दर्शन करने आते हैं। अनेक जैन इस क्षेत्र के दर्शन करने और पूर्वजों के कला-प्रेम एवं कला को देखने आते हैं। यों तो यहाँ श्रेणी-1 और 2 के होटल, रेस्ट हाउस, डाक-बँगला, लॉज आदि हैं जिनमें यात्री ठहरते हैं; किन्तु जैन यात्रियों की सुविधा के लिए समाज के सहयोग से यहाँ 6 धर्मशालाओं का निर्माण किया गया है। इनमें दो विभाग कर दिये गये हैं। एक तो सामान्य धर्मशाला है जिसमें यात्री निःशुल्क ठहर सकते हैं। दूसरा विश्रान्ति-भवन, जिसमें निश्चित शुल्क देकर ठहर सकते हैं।

मेला–क्षेत्र का वार्षिक मेला चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में होता है। इसी अवसर पर विधानानुसार क्षेत्र की प्रबन्ध समिति का भी चुनाव होता है। यहाँ आश्विन कृष्ण 3 को प्रतिवर्ष पालकी निकाली जाती है। यह उत्सव छतरपुर रियासत के काल से प्रतिवर्ष मनाया जा रहा है। दोनों ही उत्सवों में जैन जनता बड़ी संख्या में एकत्र होती है।

ग्वालियर (म.प्र.) में है पार्श्वनाथ की सबसे बड़ी पद्मासन प्रतिमा

-आर्यिका चन्दनामती

स्थिति और मार्ग–ग्वालियर सेण्ट्रल रेलवे की मुख्य लाइन पर आगरा-झाँसी के मध्य में आगरा से 118 कि.मी. और झाँसी से 97 कि.मी. दूर एक प्रसिद्ध शहर है। यह एक समय ब्रिटिश शासनकाल में भारत की रियासतों में चौथे नम्बर पर था और उसके नरेश सिन्धिया वंश के थे। आजकल तो यह मध्यप्रदेश का एक प्रमुख शहर मात्र रह गया है और कुछ प्रशासकीय कार्यालयों के अतिरिक्त उसका कोई विशेष राजनैतिक महत्त्व नहीं है किन्तु प्राचीन काल में इसका बड़ा राजनैतिक महत्त्व रहा है और अनेकों राजनैतिक घटनाएँ यहाँ घटित हुई हैं। दक्षिण-भारत का द्वार होने के कारण इसको विशेष राजनैतिक महत्त्व मिल चुका है। जैन इतिहास, जैन कला और पुरातत्त्व की दृष्टि से भी इसका गौरवपूर्ण स्थान रहा है।

गोपाचल दुर्ग–पुरातन काल में ग्वालियर के कई नाम जैन वाङ्मय में उपलब्ध होते हैं– जैसे गोपाद्रि, गोपगिरि, गोपाचल, गोपालाचल, गोवागिरि, गोवालगिरि, गोपालगिरि, गोवालचलहु, ग्वालियर। ये सब नाम ग्वालियर के दुर्ग के कारण पड़े हैं। इस दुर्ग का अपना एक इतिहास है। कुछ लोगों का कथन है कि यह दुर्ग ईसा से 3000 वर्ष पूर्व का है। कुछ पुरातत्त्वज्ञ इसे ईसा की तीसरी शताब्दी में निर्मित मानते हैं। इस दुर्ग की गणना भारत के प्राचीन दुर्गों में की जाती है।

यह किला 300 फुट ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है। उत्तर से दक्षिण की ओर इसकी लम्बाई पौने दो मील है तथा पूर्व से पश्चिम तक इसकी चौड़ाई 600 से 2800 फुट तक है।

इस गढ़ में जितनी मूर्तियाँ बनी हुई हैं, उनका निर्माण महाराज डूँगरसिंह और कीर्तिसिंह के शासनकाल में 55 वर्षों

में हो पाया था। मूर्तियों के निर्माण का प्रारंभ तो महाराज डूँगरसिंह के काल में ही हो गया, किन्तु मूर्तियों का निर्माण अधिकांशतः महाराज कीर्तिसिंह के काल में पूर्ण हुआ। महाराज डूँगरसिंह के शासनकाल में तो पहाड़ी की ऊबड़-खाबड़, आड़ी-तिरछी शिलाओं और चट्टानों को छेनी-हथौड़ी की सहायता से साफ और चिकना बनाने का उपक्रम चलता रहा। फिर कलाकारों ने चट्टानों के कठिन हृदयों को भेदकर उनके भीतर से सौम्यता, शांति और वीतरागता को प्रतिमा के मुख पर अंकित करने में सफलता प्राप्त की। सारे पर्वत को उधेड़कर जिनेन्द्र प्रभु के विशाल और कमनीय रूप को उजागर करने में कलाकार ने पूर्णतः सफलता प्राप्त की। उन्होंने सम्पूर्ण दुर्ग को जैन प्रतिमाओं का भव्य मंदिर बना दिया। प्रतिमाओं की इस विशालता में भी कलाकार की छेनी और हथौड़ा चूके नहीं हैं और सब कहीं समुचित रूप में भावनाओं और रेखाओं तक का उभार हुआ है। यह कलाकारों के नैपुण्य को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है।

सबसे ऊँची पार्श्वनाथ प्रतिमा–**इस पर्वत पर कुल जैन मूर्तियों की संख्या 1500 के लगभग है। इनमें 6 इंच से लेकर 57 फुट तक की मूर्तियाँ सम्मिलित हैं। यहाँ की सबसे विशाल मूर्ति भगवान आदिनाथ की है जो उरवाही दरवाजे के बाहर है, खड्गासन मुद्रा में है और 57 फुट ऊँची है। इसके पैरों की लम्बाई 9 फुट है। एक पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा है जो 42 फुट ऊँची मानी जाती है। पद्मासन प्रतिमाओं में यह भारत में सबसे विशाल प्रतिमा है।**

मूर्तियों का निर्मम भंजन–ग्वालियर दुर्ग की मूर्तियों का निर्माण तोमरवंशी नरेश डूँगरसिंह और उनके उत्तराधिकारी पुत्र करनसिंह (अथवा कीर्तिसिंह) के शासन काल के 33 वर्षों (सन् 1440 से 1473) में हुआ था। महाराज मानसिंह ने कुछ मूर्तियों का निर्माण करवाकर इसमें वृद्धि की। इन मूर्तियों का निर्माण केवल इन नरेशों ने ही नहीं कराया, अपितु इस पुण्य कार्य में अनेक भक्त श्रावकों ने भी भाग लिया और करोड़ों रुपये व्यय करके पुण्य और कीर्ति का संचय किया।

सन् 1557 में बाबर के सेनापति रहीमदादखाँ ने दुर्ग के पास रहने वाले एक फकीर शेख मोहम्मद गौस की मदद से इब्राहीम लोदी के सूबेदार तातारखाँ को पराजित करके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। जब बाबर ने विजेता के रूप में दुर्ग में प्रवेश किया तो वह इन विशाल और भीमकाय मूर्तियों को देखकर बड़ा झुँझलाया और उसने इन मूर्तियों को ध्वस्त करने का आदेश दे दिया। इस बात का उल्लेख उसने अपने 'बाबरनामा' में किया है। इसका आदेश पाकर सैनिकों ने इन मूर्तियों के ऊपर हथौड़ों से निर्मम प्रहार किये, जिसके फलस्वरूप अधिकांश मूर्तियों की मुखाकृति ही नष्ट हो गयी। अनेक मूर्तियों के हाथ-पैर खंडित कर दिये गये। इस प्रकार प्रायः सभी मूर्तियाँ क्षत-विक्षत कर दी गयीं। धर्मोन्माद की ज्वाला में इतिहास, पुरातत्त्व और कला की न जाने कितनी बहुमूल्य सामग्री नष्ट कर दी गयी, इसका मूल्यांकन कौन कर सकता है! **इनमें से संयोगवश किसी अतिशय विशेष के कारण भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा अखंडित है।**

संग्रहालय में जैन पुरातत्त्व–ग्वालियर का केन्द्रीय पुरातत्त्व संग्रहालय दुर्ग के गूजरी महल में स्थित है। गूजरी महल न केवल एक प्राचीन स्मारक ही है, अपितु वह स्थापत्य कला का एक अनुपम उदाहरण भी है। इस महल के साथ एक प्रेम कथानक जुड़ा हुआ है। जो मध्यभारत में बड़ा लोकप्रिय है। राजा मानसिंह को शिकार खेलने का बड़ा शौक था। एक दिन वे दुर्ग के उत्तर-पश्चिम में स्थित 'राय' गाँव में शिकार खेलने पहुँच गये। गाँव में एक जगह दो भैंसों में युद्ध हो रहा था। दोनों भयंकर क्रोध के कारण एक दूसरे से गुँथे हुए थे। दर्शकों का भारी शोर हो रहा था। कुछ गुजरियाँ सिर पर घड़े रखे हुए राह साफ होने की प्रतीक्षा में वहाँ खड़ी थीं। किसी में यह साहस नहीं था कि भैंसों को अलग कर दे। सहसा एक गूजरी आगे बढ़ी, घड़े उतारकर एक ओर रख दिये, भैंसों के पास पहुँची और अपने बलिष्ठ हाथों से उनके सींग पकड़कर दोनों को अलग कर दिया। राजा मानसिंह खड़े हुए देख रहे थे। वे एक नारी के इस अतुल साहस और शारीरिक बल को देखकर उसकी ओर आकर्षित हो गये। उसके सौन्दर्य ने उनका मन हर लिया। राजा ने गूजरी से विवाह

का प्रस्ताव किया। सुन्दरी के परिजन और पुरजन राजा का प्रस्ताव सुनकर गर्व से फूल उठे किन्तु गूजरी कन्या सहसा विवाह के लिए तैयार नहीं हुई। उसने एक शर्त पेश की– यदि राय ग्राम की नदी से महल तक हर समय जल पहुँचने की व्यवस्था कर दी जाये तो वह विवाह कर सकती है क्योंकि राय ग्राम की नदी के जल के कारण ही तो इतनी शक्ति वाली है। राजा ने यह शर्त स्वीकार कर ली। बम्बों द्वारा पानी लाने की व्यवस्था कर दी गयी। विवाह के बाद गूजरी का नाम 'मृगनयना' रखा गया। उसके रहने के लिए एक सुन्दर महल बनवाया गया। वह 'गूजरी महल' के नाम से विख्यात है तथा 'रानी सागर' इस बात का स्मरण दिलाता है कि राजा मानसिंह ने अपनी प्यारी रानी के लिए जल की विशेष व्यवस्था की थी।

इस संग्रहालय में जो जैन पुरातत्त्व सामग्री संग्रह की गयी है, वह प्रायः तीन स्थानों से–प्राचीन ग्वालियर, पधावली और भिलसा। ग्वालियर से आयी मूर्तियाँ प्रायः तोमरवंश के शासन काल (15-16 वीं शताब्दी) की हैं, कुछ 11-12 वीं शताब्दी की हैं। एक पद्मासन मूर्ति, मूर्ति लेख के अनुसार, महाराजाधिराज मानसिंह के शासनकाल में विक्रम सं. 1552 में प्रतिष्ठित की गयी थी। पार्श्वनाथ की विक्रम सं. 1476 की है। एक अन्य पार्श्वनाथ की मूर्ति 11-12 वीं शताब्दी की है। ग्वालियर की मूर्तियों में नेमिनाथ, धर्मनाथ और चंद्रप्रभ की मूर्तियाँ हैं एवं चौमुखी मूर्तियाँ हैं। इनमें क्रमशः ऋषभनाथ, अजितनाथ, महावीर और पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ हैं।

भिलसा से भी एक चतुर्मुखी प्रतिमा मिली है। उसमें भी मूर्तियों का क्रम उपर्युक्त रीति से है। भिलसा से प्राप्त ऋषभदेव की एक मूर्ति अपने अद्भुत केश-विन्यास के कारण विशेष उल्लेखनीय जान पड़ती है।

पधावली की मूर्तियों में आदिनाथ, धर्मनाथ, पद्मप्रभ, अजितनाथ और पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ पधावली के पश्चिम में स्थित पहाड़ी से लायी गयी थीं। ये सब 12-14 वीं शताब्दी की हैं।

ये सब मूर्तियाँ गूजरी महल के फाटक में घुसते ही गैलरी में रखी हैं, अथवा गैलरी नं.-20 (जैन कक्ष) में सुरक्षित हैं। इन मूर्तियों का क्रमिक विवरण इस प्रकार है–

1. पार्श्वनाथ–मूर्ति का सिर

2. पद्मासन प्रतिमा अवगाहना ढाई फुट। ऊपर दोनों सिरों पर दो पद्मासन अर्हंत प्रतिमाएँ हैं। उनके नीचे दो देवियाँ वाद्य यन्त्र लिए हुए हैं। उनसे नीचे चमरवाहक हैं।

3. साढ़े चार फुट शिलाफलक पर दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। सिर के ऊपर छत्र हैं। कोनों पर आकाशचारी गन्धर्व हैं। भगवान के हाथों के पास दोनों ओर दो-दो चमरेन्द्र खड़े हैं। पाषाण का वर्ण कुछ हल्का पीला है।

4. दूसरे बरामदे में–सहस्रकूट चैत्यालय।

5. सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ पद्मासन मुद्रा में, अवगाहना चार फुट।

6. सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ खड्गासन मुद्रा में। चारों कोनों पर चमरवाहक।

7. पूर्वोक्त प्रतिमा-जैसी है। चमरवाहक नहीं है।

जैन कक्ष नं. 20 में मूर्तियों का क्रम इस प्रकार है–

1. सवा दो फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा। गरदन के ऊपर भाग नहीं है।

2. सर्वतोभद्रिका।

3. पद्मासन मुद्रा में सदा दो फुट उन्नत प्रतिमा पुष्पदन्त तीर्थंकर की। परिकर में ऊपर कोनों पर गजारूढ़ इन्द्र, नभचारी देव और मध्य में चमरेन्द्र।

4. तीर्थंकर मूर्ति का केवल पीठासन भाग है, शेष खण्डित है। मध्य में बोधिवृक्ष बना हुआ है। उसके दोनों ओर खड़े हुए भक्त उसकी पूजा कर रहे हैं। उसके ऊपर तो पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। उनके ऊपर दोनों ओर यक्ष और यक्षी खड़े हैं। मूर्तिलेख के अनुसार इस मूर्ति की प्रतिष्ठा संवत् 1552 ज्येष्ठ सुदी 9 सोमवार को सम्पन्न हुई थी।

5. खड्गासन मुद्रा में 7 फुट उन्नत तीर्थंकर प्रतिमा। परिकर में आकाशचारी गन्धर्व और चमरेन्द्र ।

6. ढाई फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति। सिर के पीछे प्रभालय है।

7. पंचबालयति की मूर्ति। मध्य में खड्गासन पार्श्वनाथ हैं। ऊपर दो पद्मासन तथा नीचे दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। उनके दोनों ओर चमरवाहक हैं।

8. एक खण्डित मूर्ति केवल पद्मासन (पथोली) का भाग अवशिष्ट है। मूर्ति लेख के अनुसार संवत् 1492 में प्रतिष्ठित।

9. एक भव्य तीर्थंकर प्रतिमा। पद्मासन मुद्रा में अवगाहना साढ़े चार फुट। छत्र और भामण्डल कलापूर्ण हैं। दोनों ओर दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं, किन्तु खण्डित हैं।

10. सात फुट उन्नत, पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर मूर्ति छत्रत्रयी है। ऊपर दोनों कोनों पर माला लिये हुए देव-देवियाँ बनी हुई हैं। दो खड्गासन तथा दोनों ओर दो-दो युगल मूर्तियाँ पद्मासन मुद्रा में। नृत्य-मुद्रा में चमरेन्द्र खड़े हैं। दोनों कोनों पर यक्ष और यक्षी हैं। दो सिंह बने हुए हैं। शेष भाग खण्डित है।

11. भगवान पार्श्वनाथ की 5 फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा। सिर पर फणावली, उसके ऊपर छत्र और भामण्डल सुशोभित हैं। ऊपर पार्श्वों में दोनों ओर गज बने हुए हैं। नीचे दोनों ओर दो-दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। अलंकरण में हिरण और देवियाँ उत्कीर्ण हैं।

12. पाँच फुट की खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा। उसके सिर के ऊपर छत्रत्रयी और पीछे भामण्डल सुशोभित हैं। ऊपर दोनों सिरों पर नभचारी गन्धर्व हैं। उनके नीचे दोनों ओर एक खड्गासन और एक पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। मूर्ति के दोनों किनारों पर अलंकरण हैं।

14. सात फुट के एक शिलाफलक पर भगवान ऋषभदेव की खड्गासन मूर्ति है। उसके दोनों ओर चार खड्गासन मूर्तियाँ हैं। उनके नीचे चमरवाहक चमर लिये हुए भगवान की सेवा में खड़े हैं। पादपीठ पर वृषभलांछन अंकित है।

15. पाँच फुट के शिलाफलक पर पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। बायीं ओर 9 लघु पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं, दायीं ओर का भाग खंडित है। शिलाफलक भी टूटा हुआ है।

16. भगवान अजितनाथ की खड्गासन प्रतिमा है। बायीं ओर तीन लघु खड्गासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दूसरी ओर का भाग खंडित है। पादपीठ पर गज का लांछन अंकित है।

17. पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा के ऊपर छत्र हैं। छत्र के ऊपर 3 पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। दायीं और बायीं ओर 2-2 पद्मासन और 1-1 खड्गासन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

18. सर्वतोभद्रिका प्रतिमा। एक स्तम्भ में चारों दिशाओं में चार पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

19. किसी मूर्ति का ऊपर का भाग, जिसमें केवल छत्र मध्य में और दो हाथी दोनों सिरों पर बने हुए हैं।

20. एक पद्मासन प्रतिमा। सिर कटा हुआ है।

21. कक्ष नं. 20 के सामने मैदान में एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति रखी है। उसके सिर के पीछे भामण्डल और सिर के ऊपर छत्रत्रयी है। दोनों पार्श्वों में दो पद्मासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। उनसे नीचे चमरेन्द्र चमर लिए हुए खड़े हैं। मूर्ति पर भव्य अलंकरण किया हुआ है।

कुछ मूर्तियाँ ऐसी हैं, जो अन्य कक्षों में रखी हुई हैं। उनमें एक है वदोह (विदिशा जिला) से प्राप्त तीर्थंकर माता की मूर्ति। माता पर्यंक पर लेटी हुई हैं। उनके बगल में सद्यःजात बाल तीर्थंकर लेटे हुए हैं। तीर्थंकर माता के सिर के पीछे भामण्डल है। उनके निकट इन्द्र द्वारा माता की सेवा के लिए भेजी गयी चार देवियाँ खड़ी हैं। उनके हाथों में चामर आदि वस्तुएँ हैं। ये चार देवियाँ कौन थीं अथवा क्या कर रही थीं, इसका समाधान हमें 'हरिवंश पुराण' से इस भाँति हो जाता है–

सहैव रुचकप्रभारुचकया तदाद्याभया परा च रुचकोज्ज्वला सकलविद्युदग्रेसराः।
दिशां च विजयादयो युवतश्चतस्रो वरा जिनस्य विदधुः परं सविधिजातकर्मश्रिताः।।38।37।

अर्थात् विद्युत्कुमारियों में प्रमुख रुचकप्रभा, रुचका, रुचकाभा और रुचकोज्ज्वला ये चार देवियाँ तथा दिक्कुमारियों में प्रमुख विजया आदि चार देवियाँ जिनेन्द्रदेव के जातकर्म करने में जुट गयीं।

मूर्ति को ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें बनी हुई चार देवियाँ हरिवंशपुराण में वर्णित चार विद्युत्कुमारियाँ हैं अथवा चार दिक्कुमारियाँ हैं। प्रतीक के रूप में मूर्ति में चार देवियाँ अंकित कर दी गयी हैं। निश्चय ही यह तीर्थंकर माता तथा सद्यःजात बालक तीर्थंकर की मूर्ति है तथा देवियाँ माता का जातकर्म करके माता की सेवा में खड़ी हुई हैं।

शिलालेख–शिलालेखों की दृष्टि से संग्रहालय अत्यन्त समृद्ध है। इसमें कुछ जैन शिलालेख भी हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। एक शिलालेख उदयगिरि (जिला विदिशा) गुहा से उपलब्ध हुआ है जो गुप्त संवत् 106 (सन् 425 ई.) का है। इसमें उल्लेख है कि कुरुदेश के शंकर स्वर्णकार ने कर्मारगण (स्वर्णकार संघ) के हित के लिए गुहा मंदिर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा का निर्माण कराया।

एक शिलालेख 13 वीं शताब्दी का है। यह यज्वपाल वंश के असल्लदेव का नरवर शिलालेख है जो विक्रम सं. 1319 (सन् 1262) का है। इसमें गोपगिरि दुर्ग के माथुर कायस्थ परिवार की वंशावली दी गयी है। सर्वप्रथम भुवनपाल का नाम है जो धार-नरेश भोज का मंत्री था। उसने जैन तीर्थंकर के मंदिर का निर्माण कराया, नागदेव ने उसमें तीर्थंकर प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायी और यह शिलालेख वास्तव्य कायस्थ (श्रीवास्तव) ने लिखा।

एक अन्य शिलालेख उपर्युक्त असल्लदेव के पुत्र गोपालदेव नरवर का है जिसमें आशादित्य कायस्थ द्वारा एक वापिका बनवाने और वृक्ष लगाये जाने का उल्लेख है।

ग्वालियर में तोमर राजवंश के काल में जैनधर्म–तोमर राजवंश प्राचीन भारतीय राजवंशों में अत्यन्त प्रतिष्ठित राजवंश माना जाता है। तोमरवंश ने अपनी वीरता, साहस और सूझबूझ से भारतीय इतिहास पर उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। तोमरवंश के राजा अनंगपाल ने दिल्ली को बसाया था, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसका समर्थन दिल्ली संग्रहालय में उपलब्ध निम्नलिखित श्लोक से होता है–

देशोऽस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः।
ढिल्लिकाख्यपुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता।।

यहाँ तोमरों से अभिप्राय अनंगपाल से है।

इसी तोमरवंश की एक शाखा ग्वालियर में शासन करती थी। इस वंश के शासनकाल में जैनधर्म को प्रगति करने का पूर्ण अवसर मिला। जैनधर्म के प्रति तोमरवंश के शासकों का व्यवहार उदार और सहानुभूतिपूर्ण रहा। इस वंश के कई राजा तो जैनधर्म के अनुयायी भी थे। कई राजाओं के मंत्री जैन थे। यहाँ के राजाओं पर भट्टारकों का बड़ा प्रभाव था और वे उनके शिष्य थे। इस कारण इस काल में ग्वालियर में अनेक मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ। अनेक प्रतिष्ठोत्सव हुए तथा अनेक जैन ग्रंथों का प्रणयन और प्रतिलिपि हुई।

महाराज वीरमदेव का मंत्री कुशराज था। वह जैसवाल जैन वंश में उत्पन्न हुआ था। इस मंत्री ने ग्वालियर में चन्द्रप्रभ जिनमंदिर बनवाया था और उसका प्रतिष्ठोत्सव बड़े समारोह के साथ किया था।

कुशराज ने पद्मनाभ नामक एक कायस्थ विद्वान् से यशोधरचरित्र नामक एक काव्य ग्रंथ लिखने का अनुरोध किया था। पद्मनाभ ने उनके अनुरोध को स्वीकार करके भट्टारक गुणकीर्ति के संरक्षण में इस संस्कृत काव्य ग्रन्थ की रचना की।

वीरमदेव के राज्यकाल में यहाँ अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ भी हुईं जो अब भी विभिन्न शास्त्र भण्डारों में मिलती

हैं। जैसे सं. 1460 में गोपाचल में साहू वरदेव के चैत्यालय में भट्टारक हेमकीर्ति के शिष्य मुनि धर्मचन्द्र ने सम्यक्त्व कौमुदी की प्रति आत्म-पठनार्थ लिखी, यह तेरहपंथी मंदिर जयपुर के शास्त्र भंडार में सुरक्षित है।

सं.1468 में भट्टारक गुणकीर्ति की आम्नाय में साहू मरुदेव की पुत्री देवसिरी ने 'पंचास्तिकाय' टीका की प्रति करवायी, जो कारंजा के शास्त्र भंडार में है।

सं. 1469 में आचार्य अमृतचंद कृत प्रवचनसार की तत्त्वदीपिका टीका लिखी गयी थी।

सं. 1479 में षट्कर्मोपदेश की प्रति लिखवाकर अर्जिका विमलमती को पूजा महोत्सव के साथ समर्पित की। यह प्रति आमेर के शास्त्र भंडार में विद्यमान है।

महाराज डूँगरसिंह की जैनधर्म में पूर्ण आस्था थी। वह कुशल राजनीतिज्ञ, अप्रतिम साहसी और पराक्रमी योद्धा था। नरवर को जीतकर उसने अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। नरवर के दुर्ग में उसने अपनी विजय के उपलक्ष्य में जयस्तम्भ भी बनवाया। गोपाचल दुर्ग की ऊबड़-खाबड़ चट्टानों में सम, सुडौल और विशाल प्रतिमाओं का निर्माण उसके शासनकाल में प्रारंभ हुआ। यह सिलसिला उसके पुत्र कीर्तिदेव के शासनकाल के अंत तक चला।

इनके शासनकाल में अनेक नये ग्रंथों का निर्माण हुआ। भट्टारक यशःकीर्ति ने संवत् 1497 में पाण्डवपुराण, 1500 में हरिवंशपुराण की रचना अपभ्रंश भाषा में की। जिनरात्रिकथा, रविव्रत कथा और चन्द्रप्रभ चरित आदि ग्रंथ भी इन्होंने बनाये। स्वयंभूदेव के हरिवंशपुराण की जीर्ण-शीर्ण प्रति का भी उद्धार इन्होंने कराया।

अपभ्रंश भाषा के महाकवि रइधू ग्वालियर के ही रहने वाले थे। महाराज डूँगरसिंह और उनके पुत्र महाराज कीर्तिसिंह दोनों ही नरेश इस महान् कवि के भक्त थे। रइधू ने अपनी रचनाओं में जो प्रशस्तियाँ लिखी हैं, वे ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें उन्होंने ग्वालियर, पद्मावती, उज्जयिनी, दिल्ली, हिसार आदि स्थानों की तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ भी दी हैं; अपने समकालीन राजाओं, सेठों, कवियों और भट्टारकों के भी परिचय दिये हैं।

महाराज कीर्तिसिंह के शासनकाल में संवत् 1521 में जैसवाल कुलभूषण उल्हा साहू के ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह ने 24 जिनालयों का निर्माण कराया और उनकी प्रतिष्ठा करायी। संवत् 1531 में इन्होंने महाकवि पुष्पदंत के आदिपुराण की प्रतिलिपि करायी। इस ग्रंथ के दानकर्ता की प्रशस्ति में लिखा है कि उन्होंने ग्रंथों की एक लाख प्रतिलिपियाँ कराकर विभिन्न मंदिरों में भेजीं।

भ.गुणभद्र ने यहाँ के श्रावकों की प्रेरणा से अनेक कथाओं का निर्माण कराया था।

संवत् 1521 में यहाँ के एक लुहाड़िया गोत्रीय खण्डेलवाल जैन ने 'पउमचरिउ' की प्रतिलिपि करायी।

महाराज डूँगरसिंह का शासन संवत् 1481 से 1510 तक रहा तथा महाराज कीर्तिसिंह का राज्यकाल संवत् 1510 से 1536 तक है। वस्तुतः ग्वालियर में जैनधर्म का यह स्वर्ण काल माना जाता है।

इनके पश्चात् महाराज मानसिंह के राज्यकाल में कुछ सांस्कृतिक कार्य होने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। संवत् 1558 में गोपाचल दुर्ग में भट्टारक सोमकीर्ति और भट्टारक विजयसेन के शिष्य ब्रह्मकला ने षट्कर्मोपदेश की प्रतिलिपि करायी। इसी संवत् में नागकुमार चरित की प्रति करायी गयी। संवत् 1569 में गोपाचल में श्रावक सिरीमल के पुत्र चतरु ने 44 पद्यों में नेमीश्वर गीत की रचना की।

इस प्रकार तोमरवंश के राज्यकाल में गोपाचल में जैनों के विविध सांस्कृतिक कार्य हुए। इस काल में निर्मित मूर्तियों के लेखों में गोपाचल के नरेशों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। जिन ग्रंथों का इस काल में निर्माण हुआ या प्रतिलिपि हुई, उनकी प्रशस्ति में भी इन नरेशों का उल्लेख सम्मान के साथ किया गया है।

इसी प्रकार माधवसेन के दूसरे शिष्य विजयसेन से दूसरी परम्परा प्रारंभ हुई। इस परम्परा में विजयसेन, नयसेन, श्रेयांससेन, अनंतकीर्ति, कमलकीर्ति, क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कमलकीर्ति हुए। कमलकीर्ति के दो शिष्य थे–शुभचंद्र और

कुमारसेन। शुभचंद्र ने अपनी पीठ सोनागिरि में स्थापित की। इनके शिष्य यशःसेन थे। कमलकीर्ति के दूसरे शिष्य कुमारसेन की शिष्य-परम्परा में हेमचंद, पद्मनन्दि, यशःकीर्ति हुए। यशःकीर्ति के पट्ट शिष्य दो हुए–गुणचंद्र और क्षेमकीर्ति। गुणचंद्र के शिष्य सकलचंद्र और उनके शिष्य महेन्द्रसेन हुए। यशःकीर्ति की शिष्य परम्परा में क्षेमकीर्ति और त्रिभुवनकीर्ति हुए। इनका पट्टाभिषेक हिसार में हुआ। इनकी परम्परा में सहस्रकीर्ति, महीचन्द्र, देवेन्द्रकीर्ति, जगत्कीर्ति, ललितकीर्ति, राजेन्द्रकीर्ति और मुनीन्द्रकीर्ति हुए।

इन भट्टारकों का अपने समय में राजा और प्रजा दोनों पर ही अद्भुत प्रभाव था। इन्होंने अनेक मंदिरों और मूर्तियों की प्रतिष्ठा की, अनेक भट्टारकों ने स्वयं शास्त्र लिखे तथा दूसरे विद्वानों को प्रेरणा देकर शास्त्र लिखवाये, शास्त्रों की प्रतिलिपि करायी। इन भट्टारकों में से जिन्होंने कुछ विशेष कार्य किये, उनका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जा रहा है–

विमलसेन–समय 14वीं शताब्दी का उत्तरार्ध। वि.सं.1414 में इनके द्वारा प्रतिष्ठित एक पद्मासन धातु चौबीसी जयपुर के पाटौदी मंदिर में विराजमान है। सं. 1428 में प्रतिष्ठित आदिनाथ की एक मूर्ति दिल्ली के नया मंदिर में विराजमान है।

धर्मसेन–समय विक्रम की 15वीं शताब्दी। इनके द्वारा प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ, अजितनाथ और धर्मनाथ तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ जैन मंदिर हिसार में विराजमान हैं।

गुणकीर्ति–इनके तप और चारित्र का प्रभाव तोमरवंश के शासकों पर पड़ा और वे जैनधर्म की ओर आकर्षित हुए। ये अत्यन्त प्रभावशील थे। राजा डूँगरसिंह के शासनकाल में जैन मूर्तियों के उत्कीर्णन का जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ, उसका श्रेय इन्हीं भट्टारक को है।

यशःकीर्ति–ये गुणकीर्ति के लघुभ्राता और शिष्य थे। वे बड़े विद्वान् थे। इनकी रचनाओं में पाण्डवपुराण, हरिवंशपुराण, आदित्यवारकथा और जिनरात्रिकथा मुख्य हैं। इन्होंने महाकवि स्वयम्भू के खंडित और जीर्ण-शीर्ण हरिवंशपुराण का उद्धार ग्वालियर के पास पनिहार जिन चैत्यालय में बैठकर किया था।

भट्टारक गुणभद्र–आप प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपने लोगों के आग्रह से 15 कथाओं की रचना की।

भानुकीर्ति–इनकी लिखी हुई रविव्रत कथा प्राप्त होती है।

कमलकीर्ति–इनके समय में कविवर रइधू ने चन्द्रवाड़ में भगवान चन्द्रप्रभ मूर्ति की प्रतिष्ठा की।

ग्वालियर में जैन मंदिर और वार्षिक मेले–ग्वालियर, लश्कर और मुरार इन तीनों भागों को मिलाकर ग्वालियर शहर कहलाता है। इनमें से ग्वालियर में 4 मंदिर और 4 चैत्यालय हैं, लश्कर में कुल 20 मंदिर और 3 चैत्यालय हैं, तथा मुरार में 2 मंदिर और 2 चैत्यालय हैं।

यहाँ जैन समाज की ओर से 26 जनवरी को रथयात्रा निकाली जाती है। आसौज कृष्ण 2 को ग्वालियर किले के उरवाही द्वार के नीचे पंचायती मेला होता है। आसौज कृष्ण 4 को दिगम्बर जैन जैसवाल मंदिर दानाओली से भगवान की प्रतिमा को एक पत्थर की बावड़ी पर ले जाकर विराजमान करते हैं और वहाँ मेला भरता है। आसौज अमावस्या को वासुपूज्य मंदिर ग्वालियर से श्रीजी की जलेव एक पत्थर की बावड़ी पर जाती है। यह मेला बड़ा होता है। इसके अतिरिक्त भगवान महावीर जन्मकल्याणक चैत्र सुदी 13 को, निर्वाण कल्याणक कार्तिक वदी 30 एवं भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक पौष वदी 11 व निर्वाणकल्याणक श्रावण सुदी सप्तमी को भी मेला लगता है।

जैन धर्मशालाएँ–यहाँ लश्कर में 9, ग्वालियर में 2 तथा मुरार में 1 जैन धर्मशाला है। इनमें नयी सड़क (लश्कर) में महावीर धर्मशाला अधिक सुविधाजनक है।

द्रोणगिरि के पार्श्वनाथ मंदिर

-जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

स्थिति और मार्ग–द्रोणगिरि मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में विजावर तहसील में स्थित है। द्रोणगिरि क्षेत्र पर्वत पर है। वहाँ पहुँचने के लिए 232 सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। सीढ़ियाँ पक्की बनी हुई हैं। पर्वत की तलहटी में सेंधपा नामक एक छोटा सा गाँव है। वहाँ पहुँचने के लिए मध्य रेलवे के सागर या हरपालपुर स्टेशन पर उतरना चाहिए। सुविधानुसार मऊ, महोबा या सतना भी उतर सकते हैं। प्रत्येक स्टेशन से क्षेत्र लगभग 100 कि.मी. पड़ता है।सभी स्थानों से पक्की सड़क गयी है। कानपुर-सागर रोड अथवा छतरपुर-सागर रोड पर मलहरा ग्राम है। मल्हरा से द्रोणगिरि 7 कि.मी. है। वहाँ तक पक्की सड़क है। सागर से मलहरा तक बसें चलती हैं। बस द्वारा मलहरा पहुँचकर वहाँ से नियमितबस द्वारा क्षेत्र तक जा सकते हैं। बस का टिकट सेंधपा के लिए लेना चाहिए। गाँव का नाम तो सेंधपा है, किन्तु पर्वत का नाम द्रोणगिरि है। सेंधपा के बस अड्डे से जैन धर्मशाला लगभग 100 गज दूर गाँव के भीतर है। वहीं गाँव का मंदिर औरगुरुदत्त संस्कृत विद्यालय है।

निर्वाण भूमि–द्रोणगिरि निर्वाण क्षेत्र है। प्राकृत निर्वाणकाण्ड में इस संबंध में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है–

फलहोडी बड़गामे, पच्छिम भायम्मि दोणगिरि सिहरे।
गुरुदत्तादि मुणिन्दा, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।

अर्थात्, फलहोडी बडगाँव के पश्चिम में द्रोणगिरि पर्वत है। उसके शिखर में गुरुदत्त आदि मुनिराज निर्वाण को प्राप्त हुए। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

संस्कृत निर्वाण भक्ति में केवल क्षेत्र का नाम द्रोणिमान् दिया हुआ है। उसका कोई परिचय अथवा वहाँ से मुक्त होने वाले मुनि का नाम नहीं दिया गया है।

निर्वाण काण्ड में द्रोणगिरि की पूर्व दिशा में जिस फलहोड़ी बड़गाँव का उल्लेख किया गया है, वह गाँव आजकल नहीं मिलता। वर्तमान द्रोणगिरि के निकट सेंधपा ग्राम है, जिसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। कल्पना की जाती है कि यहाँ प्राचीन काल में फलहोड़ी बड़गाँव रहा होगा और वह किसी कारणवश नष्ट हो गया होगा। वास्तव में सेंधपा गाँव विशेष प्राचीन प्रतीत नहीं होता। कहा तो यह जाता है कि जिस भूमि पर यह ग्राम बसा हुआ है, वह पहले निकटवर्ती ग्राम की श्मशान भूमि थी। इस गाँव के निकट किसी प्राचीन ग्राम के अवशेष प्राप्त होते हैं जो काफी बड़े क्षेत्र में फैले हुए हैं। पर्वत की तलहटी में इन्हीं अवशेषों के बीच एक भग्न प्राचीन जैन चैत्यालय अब भी खड़ा है, जिसे लोग बँगला कहते हैं। यदि यहाँ खुदाई की जाये तो यहाँ पर पुरातत्त्व की विपुल सामग्री मिलने की संभावना है।

निर्वाण काण्ड के उल्लेख से ज्ञात होता है कि यहाँ से न केवल गुरुदत्त मुनि ही मोक्ष पधारे हैं, अपितु अन्य मुनि भी मुक्त हुए हैं। भाषा कवियों ने इनकी संख्या साढ़े तीन कोटि दी है। वास्तव में तपोभूमि की उपयुक्त रमणीयता को देखते हुए प्राचीन काल में यहाँ तपस्या के लिए आना अधिक संभव था और अनेक मुनियों का यहाँ से निर्वाण प्राप्त करना असंभव नहीं था।

प्राचीन शास्त्रों में द्रोणगिरि का उल्लेख– निर्वाण काण्ड और निर्वाण भक्ति के अतिरिक्त द्रोणगिरि या द्रोणिमान् पर्वत का उल्लेख भगवती आराधना, आराधनासार, आराधना कथाकोष आदि ग्रंथों में आया है। भगवती आराधना में आचार्य शिवकोटि इस प्रकार वर्णन करते हैं–

हत्थिणपुर गुरुदत्तो, संवलिथालीव दोणिमंत्तम्मि।
उज्झंतो अधियासिय, पडिपण्णो उत्तमं अट्ठं।।1552।।

अर्थात्, हस्तिनापुर के निवासी गुरुदत्त मुनिराज द्रोणिमान् पर्वत के ऊपर सम्भलिथाली के समान जलते हुए उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

सम्भलिथाली का अर्थ है–एक बर्तन जिसमें घास-फूँस भरा हो, उसका मुख नीचे की ओर हो और सूखे पत्तों आदि

से ढँका हो तथा उसके चारों ओर अग्नि लगी हो। अग्नि लगने पर जिस प्रकार भीतर का घास-फूँस जलने लगता है, उसी प्रकार द्रोणिमान् पर्वत के ऊपर गुरुदत्त मुनिराज भी जलकर मुक्त हुए।

इसी प्रकार आराधनासार ग्रंथ में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया गया है–

वास्तव्यो हास्तिने धीरो, द्रोणीमति महीधरे।
गुरुदत्तो यतिः स्वार्थं, जग्राहानलवेष्टितः।।

अर्थात् हस्तिनापुर के निवासी गुरुदत्त मुनि ने द्रोणिमान् पर्वत पर अग्नि लगने पर आत्मा के प्रयोजन (स्वार्थ) को सिद्ध किया।

क्षेत्र दर्शन–द्रोणगिरि की तलहटी में सेंधपा गाँव बसा हुआ है। गाँव में एक जैन मंदिर है। यहीं जैन धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। धर्मशाला से दक्षिण की ओर दो फर्लांग दूर पर्वत है। पर्वत के दायें और बायें बाजू से काठिन और श्यामली नदियाँ सदा प्रवाहित रहती हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानों ये सदानीरा पार्वत्य सरिताएँ इस सिद्धक्षेत्र के चरणों को पखार रही हों। पर्वत विशेष ऊँचा नहीं है। पर्वत पर जाने के लिए 232 पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। चारों ओर वृक्षों और वनस्पतियों ने मिलकर क्षेत्र पर सौन्दर्य राशि बिखेर दी है।

पर्वत के ऊपर कुल 28 जिनालय बने हुए हैं। इनमें तिगोड़ा वालों का मंदिर सबसे प्राचीन है। इसे ही बड़ा मंदिर कहा जाता है। इसमें भगवान आदिनाथ की एक सातिशय प्रतिमा संवत् 1549 की विराजमान है। सम्मेदशिखर के समान यहाँ पर भी चन्द्रप्रभ टोंक, आदिनाथ टोंक, आदि टोंक हैं। यहाँ 13 फुट ऊँची एक प्रतिमा का भी निर्माण हुआ है। **अंतिम मंदिर पार्श्वनाथ स्वामी का है। उसके नीचे 3 गज ऊँची, 1 गज चौड़ी और 4-5 गज लम्बी एक गुफा बनी हुई है। इस गुफा के संबंध में विचित्र प्रकार की विविध किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती यह है कि सेंधपा गाँव का रहने वाला एक भील प्रतिदिन इस गुफा में जाया करता था और वहाँ से कमल का एक सुन्दर फूल लाया करता था। उसका कहना था कि गुफा के अंत में दीवार में एक छोटा छिद्र है। उसमें हाथ डालकर वह फूल तोड़कर लाता था। उस छिद्र में दूसरी ओर एक विशाल जलाशय है। उसमें कमल खिले हुए हैं। वहाँ अलौकिक प्रभापुंज है।** बिल्कुल इसी प्रकार की किंवदन्ती मांगीतुंगी क्षेत्र पर भी प्रचलित है।

एक दूसरी किंवदन्ती है कि गुफा 14-15 मील दूर भीमकुण्ड तक गयी है।

पर्वत की तलहटी से एक मील आगे जाने पर श्यामली नदी का भराव है, जिसे कुडी कहते हैं। वहाँ दो जलकुण्ड पास-पास में बने हुए हैं, जिनमें एक शीतल जल का है और दूसरा उष्ण जल का। यहाँ चारों ओर हर्र, बहेड़ा, आँवला आदि वनौषधियों का बाहुल्य है। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त आकर्षक है। इस वन में हरिण, नीलगाय आदि वन्य पशु निर्भयतापूर्वक विचरण करते हैं। कभी-कभी सिंह, तेंदुआ या रीछ भी इधर जल पीने आ जाते हैं।

पर्वत पर अनेक जिनालय हैं जिसमें पार्श्वनाथ जिनालयों का यहाँ मुख्य रूप से वर्णन है–

मंदिर नं. 3– पार्श्वनाथ मंदिर–पाषाण की कृष्णवर्ण, 2 फुट 7 इंच ऊँची, पद्मासन प्रतिमा। विक्रम संवत् 1918 माघ सुदी 5 चन्द्रवार को प्रतिष्ठित। इस प्रतिमा के ऊपर सहस्र फणा वाले भगवान पार्श्वनाथ सुशोभित हैं।

मंदिर नं. 9– पार्श्वनाथ मंदिर–मूँगिया वर्ण, पद्मासन प्रतिमा, 3 फुट 3 इंच अवगाहना, वि.सं. 1907 फागुन सुदी 10 शुक्रवार को प्रतिष्ठित। सप्त फणवाली है।

मंदिर नं. 10– पार्श्वनाथ मंदिर–शुक्ल वर्ण, पद्मासन प्रतिमा, 2 फुट 6 इंच अवगाहना। वि.सं. 1907 फागुन वदी 10 को प्रतिष्ठित। सप्त फणवाली है।

मंदिर नं. 11– पार्श्वनाथ मंदिर–प्रतिमा श्वेतवर्ण, पद्मासन, 2 फुट 8 इंच अवगाहना। लेख नहीं है। नौ फणवाली है।

मंदिर नं. 15– पार्श्वनाथ मंदिर–श्वेतवर्ण, पद्मासन, 1 फुट 10 इंच उत्तुंग प्रतिमा। वि.सं. 1545 में प्रतिष्ठित। दूसरी वेदी में भी पार्श्वनाथ हैं।

मंदिर नं. 22– पार्श्वनाथ मंदिर–कृष्णवर्ण, पद्मासन, 1 फुट 1 इंच अवगाहना वाली प्रतिमा। संवत् 1901 माघ सुदी 5 सोमवार को प्रतिष्ठित। जटाएँ कन्धों पर लहरा रही हैं।

मंदिर नं. 27– पार्श्वनाथ मंदिर–श्वेतवर्ण, पद्मासन, 10 इंच अवगाहना वाली प्रतिमा। सं. 1548 में प्रतिष्ठित। मूर्ति पर फण नहीं हैं। सर्प लांछन है।

मंदिर नं. 28–पार्श्वनाथ मंदिर के पास पर्वत पर जो गुफा है, उसके बायीं ओर संवत् 1996 में एक कमरे में 3 हाथ ऊँची और 4 हाथ चौड़ी देशी पाषाण की वेदी पर गुरुदत्त मुनिराज के चरण विराजमान थे। वे अब वहाँ से उठाकर मूर्तियों के आगे रख दिये गये हैं। इस कमरे में दलीपुर और गोलगंज ग्रामों से लायी हुई कुछ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं। इन मूर्तियों में मंदिर नं.2 की वह पार्श्वनाथ मूर्ति भी है, जिसे किसी अज्ञ ग्वाले ने लाठी से दायीं भुजा और कंधे को खंडित कर दिया था और मंदिर में इस मूर्ति के स्थान पर अन्य मूर्ति विराजमान कर दी थी। पार्श्वनाथ की यह मूर्ति कृष्णवर्ण, पद्मासन है और इसकी अवगाहना 3 फुट 7 इंच है।

निर्वाण गुफा–अन्तिम पार्श्वनाथ मंदिर के नीचे एक प्राकृतिक गुफा है। वह विशेष लम्बी चौड़ी नहीं है। उसकी गहराई जानने का कोई साधन भी नहीं है। गुफा के बाह्य भाग में गुरुदत्तादि मुनियों के चरण-चिन्ह विराजमान हैं। विश्वास किया जाता है कि इसी गुफा में तपस्या करते हुए उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई थी।

धर्मशालाएँ–क्षेत्र पर कुल 3 धर्मशालाएँ हैं, जिनमें कुल 3 कमरे बने हुए हैं। क्षेत्र पर बिजली है तथा जल के लिए कुएँ हैं। क्षेत्र पर गद्दे, रजाइयाँ, बर्तन,चारपाई आदि की व्यवस्था है तथा क्षेत्र से आटा, दाल आदि खाद्य वस्तुएँ भी मिल सकती हैं।

वार्षिक मेला–क्षेत्र पर प्रतिवर्ष फाल्गुन कृष्णा 1 से 5 तक वार्षिक मेला होता है।

क्षेत्र व्यवस्था–इस क्षेत्र की व्यवस्था निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती है।क्षेत्र की सारी व्यवस्था के अतिरिक्त क्षेत्र पर स्थित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय और मलहरा में स्थित जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की व्यवस्था भी यही समिति करती है। इनके अतिरिक्त क्षेत्र पर अन्य जो भी संस्थाएँ हैं, उनका भी संचालन यही समिति करती है। यहाँ पर एक धार्मिक एवं प्रबंधन शिक्षण संस्थान भी संचालित किया जाता है, जिसमें प्रतिवर्ष कई विद्यार्थियों को निःशुल्क धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ ऑफिस मैनेजमेंट एवं बहीखाते आदि की शिक्षा भी प्रदान की जाती है। विशेषरूप से यहाँ से अध्ययन प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को संस्थान द्वारा रोजगार दिलवाने का भी सफल प्रयास किया जाता है।

क्षेत्र पर शिकार-निषेध राजकीय आदेश–विजावर नरेश राजा भानुप्रताप (रियासतों के विलीनीकरण से पूर्व) के समय से इस तीर्थ पर शिकार आदि खेलना राज्य की ओर से निषिद्ध है। इससे संबंधित फरमान, जो राज दरबार से जारी किया गया था, इस प्रकार है–

''नकल हुकम दरवार विजावर इजलास जनाव येतमाहराम मुंशी शंकरदयाल साहब दीवान रियासत मुसवते दरख्वास्त जैन पंचान सभा सेंधपा जरिये दुलीचंद वैशाखिया अजना संरक्षक जैन सभा मारु जे 22 मई सन् 1931 (ईसवीय दरख्वास्त फर्माये जाने हुक्म न खेलने शिकार क्षेत्र द्रोणगिरि वाकै मौजा सेंधपा पर अनीज इसके कि विला इजाजत जैन सभा दीगर कौम के लोग क्षेत्र मजकूर पर न जा सकें हुक्मी इजलास खास रकम जदे 25 मई सन् 1931 ईसवीय ऐमाद कराये जाने मुश्तहरी कोई शख्स वगैर इजाजत जैन सभा पर्वत पर न जाये न शिकार खेले। (मुहर)

हुक्म हुआ जरिये परचा मुहकमा जंगल अ मुहकमा पुलिस के वास्ते तामील इत्तलदी जावे। तारीख 28 मई सन् 1931 ई।''

इस फरमान द्वारा द्रोणगिरि पर्वत पर जैन समाज का पूरा अधिकार माना गया है तथा जैन सभा की आज्ञा के बिना शिकार खेलने पर पाबन्दी लगा दी गयी है। यद्यपि रियासतों के समाप्त होने पर उनके कानून और आदेश भी समाप्त हो गये हैं किन्तु यह आदेश कानून के रूप में नहीं, परम्परा के रूप में अब भी प्रचलित और मान्य है।

सूरत का चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर

-पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज

मार्ग और अवस्थिति–सूरत पश्चिम रेलवे का प्रख्यात स्टेशन है। बम्बई नगर से यह 263 कि.मी. है। यह ताप्ती नदी के तट पर बसा हुआ है जबकि दूसरे तट पर रांदेर है। इसका अपरनाम सूर्यपुर भी मूर्ति लेखों और प्रशस्तियों में उपलब्ध होता है। प्राचीन काल में यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था और यहाँ जलमार्ग द्वारा बड़े पैमाने पर व्यापार होता था। तब से इस नगर की समृद्धि निरंतर बढ़ती गयी और अब यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बन गया है।

जैन मंदिर–सूरत में सात दिगम्बर जैन मंदिर और 6 चैत्यालय हैं। नवापुर में चार मंदिर हैं–मेवाड़ का, गुजरातियों का, चौपड़ा का और दांडिया का। एक दिगम्बर जैन मंदिर गोपीपुरा में है, जिसमें भट्टारकों की गद्दी है। चन्दावाड़ी के पास दो दिगम्बर जैन मंदिर हैं।

यहाँ पहले तीन मंदिर बहुत प्रसिद्ध थे–(1) चन्द्रप्रभ जिनालय, (2) आदिनाथ जिनालय और (3) वासुपूज्य जिनालय। इन जिनालयों के उल्लेख विभिन्न ग्रंथों, प्रशस्तियों और मूर्तिलेखों में भी मिलते हैं।

इन मंदिरों में एक छोटा किन्तु सबसे पुराना मंदिर गुजरातियों के मंदिर की शाखा खपाटिया चकला में चन्दाबाड़ी धर्मशाला के पास है। इस मंदिर में भोंयरा (गर्भगृह) भी है। इसमें सबसे प्राचीन मूर्ति पार्श्वनाथ भगवान की है जो संवत् 1234 वैशाख सुदी 10 को प्रतिष्ठित हुई थी। संवत् 1956 में मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ। प्रतिमाओं को भोंयरा में से ऊपर लाया गया और एक ऊँचा शिखरबन्द मंदिर बनवाया गया।

चन्दावाड़ी के पास दूसरा बड़ा मंदिर है। इस मंदिर में संवत् 1376 से 1899 तक की मूर्तियाँ हैं। मूलनायक प्रतिमा भगवान आदिनाथ की है। यह सं.1376 की है।

नवापुरा में चिन्तामणि पार्श्वनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है जो मेवाड़ जाति के लोगों ने बनवाया था। इस मंदिर के संबंध में एक बड़ी रोचक किंवदन्ती प्रचलित है। गोपीपुरा के भट्टारक के दो शिष्य थे–एक मूर्ख था और दूसरा विद्वान्। उन दोनों में आपस में झगड़ा हो गया। मूर्ख शिष्य को लज्जा आयी। वह विद्याध्ययन के लिए कर्नाटक चला गया और खूब विद्वान् बन गया तथा करमसद की गद्दी का भट्टारक बन गया। उसने सूरत आने का विचार किया। उसका गुरुबन्धु गोपीपुरा का भट्टारक हो गया था। गोपीपुरा के भट्टारक ने सूरत के नवाब से यह फर्मान निकलवा दिया कि करमसद के भट्टारक को नर्मदा के पार न उतरने दिया जाये। जब करमसद के भट्टारक सूरत के लिए प्रस्थान करके भड़ोंच (भृगुकच्छ) आए तो नाविकों ने उन्हें नर्मदा के पार उतारने से इनकार कर दिया। तब भट्टारक जी ने शतरंजी बिछा ली और मंत्र बल से नर्मदा के दूसरे तट पर आ गये। नाविकों ने भड़ोंच नवाब को इस अद्भुत घटना की सूचना दी। नवाब वहाँ आया और भट्टारक जी से क्षमा-याचना की। भट्टारक जी वहाँ से चलकर बरियाव आये और ताप्ती नदी पार करनी चाही किन्तु वहाँ भी नाविकों ने उन्हें पार उतारने से इन्कार कर दिया। भट्टारक जी पुनः मन्त्र बल से सूरत में बरियावी भागल द्वार पर आ गये। यहाँ उन्हें रोकने के लिए द्वार बंदकर दिये गये। तब वे मन्त्र शक्ति से आकाश मार्ग द्वारा नवापुरा में उस स्थान पर आये, जहाँ मेवाड़ का मंदिर बना हुआ है। यह घटना सुनकर सूरत का नवाब और श्रावक आये और नवाब ने अपनी भूल के लिए उनसे क्षमा माँगी। बाद में भट्टारक जी ने उसी स्थान पर यह मंदिर बनवाया। इन भट्टारक जी का नाम विजयकीर्ति था और इनके गुरु-भ्राता का नाम भट्टारक सकलकीर्ति था। इनके गुरु का नाम सुरेन्द्रकीर्ति था। विजयकीर्ति ने इस मंदिर के भोंयरे में अपने गुरु की चरण पादुका स्थापित करायी जो अब भी मौजूद है। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति जी का एक चित्र भी इस मंदिर में है जो उनके समय में ही बनाया गया था। पहले यहाँ मेवाड़ जाति के काफी घर थे किन्तु अब केवल 8-10 ही घर जैन हैं, शेष सब वैष्णव बन गये।

इस मंदिर में भगवान पार्श्वनाथ की एक पाषाण प्रतिमा का प्रतिष्ठाकाल उसकी चरण चौकी पर संवत् 1380 माघ

सुदी 12 रविवार अंकित है। पद्मावती की एक धातु प्रतिमा संवत् 1164 की[1], चौबीसी की एक धातु प्रतिमा सं. 1490 की और भगवान आदिनाथ की एक धातु प्रतिमा संवत् 1497 की है।

नवापुरा में चोपड़ा का एक जैन मंदिर है। इसमें पार्श्वनाथ की एक पाषाण प्रतिमा संवत् 1160 की है और पद्मावती की एक धातु प्रतिमा संवत् 1235 की है।

नवापुरा में तीसरा जैन मंदिर गुजराती मंदिर है। इसमें पाषाण फलक पर उत्कीर्ण चौबीसी है। उसके मूर्तिलेख में जो प्रतिष्ठाकाल दिया गया है, वह ठीक नहीं पढ़ा जाता किन्तु उसमें केवल तीन ही अंक हैं। पहला अंक पढ़ने में नहीं आया, उसके आगे 75 के अंक हैं। यहाँ धातु प्रतिमाएँ 1380, 1429, 1499, 1504, 1518 की हैं।

मुसलमानों के आगमन से पूर्व सूरत तथा रांदेर में जैन संख्या बहुत बड़ी थी। मुसलमानों ने मंदिरों को तोड़कर उन्हीं के मलवे से मस्जिदें बना लीं। सन् 1908 का गजेटियर बताता है कि रांदेर की जामा मस्जिद, मियाँ खरवा और मुंशी की मस्जिदें जैन मंदिरों को तोड़कर बनायी गयी हैं।

भट्टारक पीठ-सूरत में मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण के भट्टारकों का पीठ भट्टारक पद्मनंदी के शिष्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने स्थापित किया था। चन्दाबाड़ी के पास वाले बड़े मंदिर में मूलनायक आदिनाथ के पादपीठ पर जो मूर्तिलेख अंकित है, उससे ज्ञात होता है कि इस परम्परा में निम्नलिखित भट्टारक हुए–

देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानंदी, मल्लीभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र, वादीचन्द्र, महीचन्द्र, मेरुचन्द्र, जिनचन्द्र, विद्यानन्दी।

इसके पश्चात् निम्नलिखित भट्टारक हुए–देवेन्द्रकीर्ति, विद्याभूषण, धर्मचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, गुणचन्द्र, सुरेन्द्रकीर्ति।

सूरत में बलात्कारगण के भट्टारकों ने धर्म प्रभावना के अनेक कार्य किये, अनेक स्थानों पर मंदिर निर्माण कराए, मूर्ति प्रतिष्ठाएँ करायीं। इन भट्टारकों की समाधियाँ सूरत के निकट कतारगाँव में विद्यानन्दि क्षेत्र में बनी हुई हैं। यहाँ भट्टारक विद्यानन्दि के चरण-चिन्ह बने हुए हैं। विद्यानन्दि बड़े प्रभावशाली और चमत्कारी व्यक्ति थे। इस स्थान पर प्रथम समाधि इन्हीं की बनायी गयी थी। इसलिए इस स्थान का नाम ही विद्यानन्दि क्षेत्र हो गया।

विद्यानन्दि क्षेत्र–सूरत से 3 कि.मी. दूर कतारगाँव में विद्यानंदि क्षेत्र है। यहाँ 82 भट्टारकों और मुनियों के चरण चिन्ह हैं। चरण-चिन्ह अलग-अलग वेदियों में विराजमान हैं। ये वेदियाँ तीन पंक्तियों में बनी हुई हैं। ये सभी वेदियाँ श्वेत संगमरमर की हैं। चरण-चिन्हों के मध्य में आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की 1 फुट 1 इंच ऊँची और भट्टारक विद्यानंदि की 1 फुट 3 इंच ऊँची मूर्तियाँ विराजमान हैं। विद्यानंदि की मूर्ति की पृष्ठ-पंक्ति में उनके 1 फुट 3 इंच लम्बे चरण बने हुए हैं। भट्टारक विद्यानंदि अपने समय के बड़े प्रभावशाली और चमत्कारी पुरुष थे। वे मन्त्र-तन्त्र में निष्णात तपस्वी साधु थे। उनके चमत्कारों की अनेक कथाएँ समाज में प्रचलित हैं। एक प्रशस्ति के अनुसार राजाधिराज वज्रांग, गंग, जयसिंह, व्याघ्र आदि अनेक नरेश आपके भक्त थे। उनका स्वर्गवास मार्गशीर्ष वदी 10, संवत् 1537 को हुआ था।

चरण वेदिकाओं के निकट एक मानस्तम्भ भी बना हुआ है। ऊपर जाने के लिए 27 सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसकी शीर्ष-वेदिका में चारों दिशाओं की ओर मुख किये हुए चार तीर्थंकरों की मूर्तियाँ विराजमान हैं। यहाँ एक ओर सम्मेदशिखर की भव्य रचना निर्मित है।

धर्मशाला–यहाँ धर्मशाला बनी हुई है। विद्युत और जल की सुविधा है। स्थान अत्यन्त रमणीक है। यह पर्यटन और धर्मसाधन दोनों ही दृष्टियों से चित्ताकर्षक है। इसीलिए सूरत के जैनबन्धु समय-समय पर विशेषतः अवकाश के दिनों में यहाँ आते रहते हैं।

मेला–यहाँ वर्ष में कई बार मेले होते हैं–जैसे चैत्र शुक्ला पूर्णिमा, वैशाख शुक्ला पूर्णिमा और कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा। भट्टारक विद्यानंदि के समाधिमरण-दिवस मार्गशीर्ष कृष्णा 10 को भी मेला होता है।

---

1. सूरत में 12वीं शताब्दी की जिन प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है, वे कुछ वर्ष पूर्व वहाँ विद्यमान थीं। ऐसे प्रमाण मिलते हैं किन्तु अब वे वहाँ नहीं हैं।

अंकलेश्वर की अतिशय सम्पन्न पार्श्वनाथ प्रतिमा

-ब्र. कु. आस्था जैन (संघस्थ)

मार्ग–अंकलेश्वर पश्चिमी रेलवे के सूरत तथा बड़ौदा के मध्य स्टेशन है। स्टेशन से अंकलेश्वर ग्राम 1 कि.मी. है। यह गुजरात के भड़ोंच जिले में स्थित है।

अतिशय क्षेत्र–यह एक अतिशय क्षेत्र है। ग्राम में चार दिगम्बर जैन मंदिर हैं। यहाँ भोंयरे में पार्श्वनाथ स्वामी की एक प्राचीन अतिशयसम्पन्न मूर्ति है। यह चिन्तामणि पार्श्वनाथ के नाम से विख्यात है। लोगों की धारणा है कि इस मूर्ति के दर्शन करने से समस्त चिंताएँ दूर हो जाती हैं और मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जनता में इस मूर्ति के प्रति फैले हुए इस विश्वास के कारण ही जैन और जैनेतर लोग मनौती मानने के लिए भारी संख्या में यहाँ आते रहते हैं। इसके कारण ही यह स्थान तीर्थक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया है।

अंकलेश्वर का उल्लेख आचार्य पुष्पदंत और भूतबलि के प्रसंग में धवला आदि ग्रंथों में भी पाया जाता है। षट्खंडागम-धवला टीका भाग 1, पृ.67-71 में जिस कथानक अथवा इतिहास के प्रसंग में अंकलेश्वर का वर्णन आया है, वह कथानक अथवा इतिहास इस प्रकार है–

सौराष्ट्र देश के गिरिनगर नामक नगर की चन्द्रगुफा में रहने वाले अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचनवत्सल धरसेनाचार्य ने आगे अंगश्रुत का विच्छेद हो जाने की आशंका से महिमा नगरी में एकत्रित हुए दक्षिणापथवासी आचार्यों के पास एक लेख (पत्र) भेजा। लेख में लिखे गये धरसेनाचार्य के वचनों को अच्छी प्रकार समझकर उन आचार्यों ने शास्त्र के अर्थ को ग्रहण और धारण करने में समर्थ, विनय से विभूषित, उत्तम कुल और उत्तम जाति में उत्पन्न और समस्त कलाओं में पारंगत ऐसे दो साधुओं को आन्ध्रप्रदेश में बहनेवाली वेणा नदी के तट से भेजा। उनके पहुँचने पर धरसेनाचार्य ने उनकी परीक्षा की और सन्तुष्ट होने पर उन्होंने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वार में उन्हें पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार धरसेन भट्टारक से पढ़ते हुए उन्होंने आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के पूर्वाह्नकाल में ग्रंथ समाप्त किया।

धरसेनाचार्य ने ग्रंथ समाप्त होते ही उन्हें उसी दिन वहाँ से विदा कर दिया। इसी संदर्भ में धवलाकार ने लिखा है–''पुणो तद्दिवसे चेव पेसिदा संतो गुरुवयणमलंघणिज्जं इदि चिंतिऊणादेहि अंकुलेसरे वरिसा कालो कओ।'' अर्थात् उसी दिन वहाँ से भेजे गये उन दोनों ने 'गुरु के वचन अलंघनीय होते हैं' ऐसा विचार कर आते हुए अंकलेश्वर में वर्षाकाल बिताया।

अंकलेश्वर में वर्षावास करते हुए उन दोनों मुनियों ने श्रुत के प्रचार की योजना बनायी होगी। उसी योजना के अनुसार वर्षावास के पश्चात् पुष्पदंत तो वनवास देश को चले गये और भूतबलि द्रमिल देश को। तदनन्तर पुष्पदन्त ने जिनपालित को दीक्षा देकर सत्प्ररूपणा के बीस सूत्र (अधिकार) बनाये और उन्हें जिनपालित को पढ़ाया। पढ़ाकर उन्हें भूतबलि के पास भेजा। आचार्य भूतबलि ने द्रव्य प्रमाणानुगम से लेकर शेष पाँच खण्डों की रचना की। फिर षट्खंडागम की रचना को पुस्तकारूढ़ करके ज्येष्ठ शुक्ला 5 को चतुर्विध संघ के साथ श्रुत-पूजा की, जिससे श्रुतपंचमी पर्व का प्रचलन हो गया। फिर भूतबलि ने उस षट्खंडागम को जिनपालित के हाथ पुष्पदंत के पास भेजा। पुष्पदंत उसे देखकर अत्यन्त आनंदित हुए और उन्होंने भी चातुर्वर्ण संघ सहित सिद्धान्त की पूजा की।

इस प्रकार अंकलेश्वर उन महिमान्वित पुष्पदंत और भूतबलि आचार्यों की चरण-रज से पवित्र हुआ था।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी भी ईसवी सन् 1997 में अंकलेश्वर पधारीं और वहाँ आचार्य श्री पुष्पदंत भूतबली के संस्मरण मन में धारणकर षट्खण्डागम सूत्रों पर ''सिद्धान्तचिंतामणि'' नामक संस्कृत टीका का लेखन किया था। ज्ञातव्य यह है कि पूज्य माताजी ने सन् 1995 में (शरदपूर्णिमा के दिन) षट्खण्डागम सूत्रों पर यह सरल संस्कृत टीका लिखना प्रारंभ किया था और सन् 2007 में (वैशाख शु. 2 को) सोलहों पुस्तक की टीका लिखकर पूर्ण की है।

इसी मध्य चतुर्थ पुस्तक की टीका के कुछ पृष्ठ अंकलेश्वर में लिखे थे।

उपाध्याय धर्मकीर्ति ने संवत् 1657 में चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर में यशोधर-चरित की रचना की थी। यह स्थान काष्ठासंघ और मूलसंघ के भट्टारकों का प्रभाव क्षेत्र था। इनके भट्टारक समय-समय पर आकर कुछ समय के लिए यहाँ ठहरा करते थे। यहाँ के मंदिरों में उनकी गद्दियाँ बनी हुई हैं।

क्षेत्रदर्शन–अंकलेश्वर एक अच्छा नगर है। नगर में 4 दिगम्बर जैन मंदिर हैं–(1) चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर, (2) नेमिनाथ मंदिर, (3) आदिनाथ मंदिर, और (4) महावीर मंदिर। इनमें पार्श्वनाथ मंदिर के मूलनायक चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है।

1. चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर–मंदिर के भोंयरे में चिन्तामणि पार्श्वनाथ की कत्थई वर्ण की 4 फुट 10 इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। सिर के ऊपर सप्तफणावलि है। प्रतिमा का मूलवर्ण हलका गुलाबी है किन्तु प्रतिमा के ऊपर पालिश की हुई है।

इस मूर्ति का भी एक इतिहास है। अंकलेश्वर से लगभग एक मील दूर रासकुण्ड नामक एक कुण्ड है। इस कुण्ड में तीन मूर्तियाँ मिली थीं–पार्श्वनाथ की, शीतलनाथ की और नन्दी की। तीनों मूर्तियों को अलग-अलग गाड़ियों में रखकर अंकलेश्वर नगर की ओर ले जाने लगे। जब पार्श्वनाथ वाली गाड़ी अंकलेश्वर नगर के मध्य वर्तमान जैन मंदिर के स्थान पर पहुँची तो गाड़ी यहाँ आकर रुक गई। बहुत प्रयत्न करने पर भी गाड़ी आगे नहीं बढ़ी, तब पार्श्वनाथ प्रतिमा को यहीं उतारकर किसी प्राचीन मंदिर में विराजमान कर दिया। इसी प्रकार शीतलनाथ वाली गाड़ी अंकलेश्वर से 8 कि.मी. दूर सजोद जाकर अड़ गयी। तब वहीं पर शीतलनाथ का मंदिर बनवाया गया। दोनों ही मूर्ति भोंयरे में हैं। नन्दी वाली गाड़ी उसके वर्तमान स्थान पर रुकी थी। यह आश्चर्य की बात है कि तीनों ही मूर्तियाँ चमत्कारी हैं। लोग अपनी कामनाएँ लेकर वहाँ जाते हैं। कामनाएँ पूर्ण होने के कारण ही पार्श्वनाथ मूर्ति को चिन्तामणि पार्श्वनाथ कहा जाने लगा है और अब यह मूर्ति इसी नाम से विख्यात है। इस मूर्ति की पीठिका के ऊपर कोई लेख नहीं है किन्तु रचना शैली से यह मूर्ति 7-8वीं शताब्दी अथवा इससे कुछ पूर्व की प्रतीत होती है।

बायीं ओर 1 फुट 2 इंच ऊँची पार्श्वनाथ की श्वेतवर्ण की पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् 1548 में प्रतिष्ठित हुई थी। इसके प्रतिष्ठाकारक जीवराज पापड़ीवाल थे। इसके निकट धातु की एक चौबीसी है।

सीढ़ी के पास एक वेदी में मूलनायक पार्श्वनाथ की 1 फुट 2 इंच ऊँची नौ-फणावलीयुक्त श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है।प्रतिष्ठाकाल संवत् 1548 है। बायीं ओर 1 फुट 8 इंच ऊँची पद्मप्रभ भगवान की श्वेत वर्ण वाली पद्मासन प्रतिमा है। लेख नहीं है। इसके बगल में 1 फुट ऊँची पद्मप्रभ भगवान की एक और प्रतिमा है। दायीं ओर श्वेत पाषाण की 1 फुट 7 इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है किन्तु इसके पादपीठ पर लेख और लांछन नहीं है। इसके पार्श्व में आदिनाथ भगवान की 10 इंच अवगाहना वाली श्वेत वर्ण की पद्मासन प्रतिमा है।

व्यवस्था–उक्त चारों मंदिरों की व्यवस्था किसी एक प्रबन्ध समिति के अंतर्गत नहीं है। महावीर मंदिर और आदिनाथ मंदिर काष्ठासंघ के हैं। इन दोनों मंदिरों का एक ट्रस्ट है। चिन्तामणि पार्श्वनाथ और शीतलनाथ मंदिर सजोद–ये दोनों मंदिर मूलसंघ के हैं। इन दोनों मंदिरों की व्यवस्था एक ही ट्रस्ट के द्वारा होती है। नेमिनाथ मंदिर नवग्रह संघ का कहलाता है। इसका एक पृथक् ट्रस्ट है।

धर्मशाला–नगर में एक दिगम्बर जैन धर्मशाला है। उसमें यात्रियों के लिए आवास, नल और बिजली की सुविधा है।

मेला–महावीर स्वामी के मंदिर से क्वांर वदी 1 को जलयात्रा का जुलूस निकलता है। नेमिनाथ मंदिर से भाद्रपद शुक्ला 15 को एक जुलूस निकलता है। रामकुण्ड के पास मुनि-चरण बने हुए हैं। यह जलूस वहाँ जाता है।

मुक्तागिरि (मेंढागिरि) के अतिशायी पार्श्वनाथ जिनालय

-आर्यिका श्री अभयमती माताजी

क्षेत्र का नाम–मुक्तागिरि निर्वाण क्षेत्र अथवा सिद्धक्षेत्र है। ग्रंथों में इस क्षेत्र के कई नाम मिलते हैं। संस्कृत ग्रंथों में मेंढ्रकगिरि नाम दिया गया है। संस्कृत निर्वाणभक्ति में सिद्धक्षेत्रों में इसकी गणना करते हुए 'द्रोणीमति प्रबलकुण्डलमेंढ्रके च' यह पद दिया गया है। 'बोधपाहुड़' की 27 वीं गाथा की श्रुतसागरी टीका में भी इसका नाम मेंढ्रगिरि दिया है। प्राकृत निर्वाण-भक्ति में भी मेंढागिरि नाम मिलता है। भट्टारक गुणकीर्ति ने मराठी भाषा की तीर्थवन्दना में 'मेढगिरि आहूढ़ कोड़ि मुनि सिद्धि पावले त्या सिद्धासि नमस्कारू माझा' द्वारा मेंढगिरि के साढ़े तीन करोड़ सिद्धि प्राप्त मुनियों को नमस्कार किया है किन्तु ज्ञानसागर, सुमतिसागर, चिमणा पंडित, सोमसेन, जयसागर आदि ने भाषा ग्रन्थों में इस क्षेत्र का नाम मुक्तागिरि दिया है। इससे लगता है कि इस क्षेत्र का प्राचीन नाम मेंढ्रगिरि रहा होगा, बाद में इसे मुक्तागिरि कहने लगे।

इन नामों के संबंध में एक किंवदन्ती बहुत प्रचलित है। प्राचीन काल में एक मुनि मुक्तागिरि पर्वत के जलप्रपात के निकट बैठे तपस्या कर रहे थे। जलप्रपात के ऊपर एक मेंढ़ा चरता हुआ आया और पैर फिसल जाने से मुनि के निकट आ गिरा। मुनि ने मरणासन्न मेंढा को णमोकार मंत्र सुनाया। वह शांत भावों से मरकर देव हुआ। उस देव ने इस पर्वत पर मोतियों की वर्षा की। वर्षास्थल 40 वें मंदिर के निकट बताया जाता है। इसलिए उस मंदिर को मेंढसगिरि कहते हैं और मुक्ताओं की वर्षा हुई थी, इसलिए इस क्षेत्र को मुक्तागिरि कहते हैं।

उक्त घटना का संकेत मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि चिमणा पंडित ने 'तीर्थ वंदना' में इस प्रकार दिया है–'मेंढा उद्धरीला मुगता गिरीसी।' इनका समय 17 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। इससे इतना तो कहा ही जा सकता है कि आज से 300 वर्ष पूर्व भी उक्त किंवदन्ती प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त कवि राघव (18 वीं शताब्दी), कवीन्द्रसेवक (19 वीं शताब्दी) ने भी इस घटना का उल्लेख किया है।

निर्वाण क्षेत्र–मुक्तागिरि निर्वाण क्षेत्र या सिद्धक्षेत्र है। यहाँ से साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं, जैसा कि निर्वाण काण्ड में बताया है–

अच्चलपुरवरणयरे, ईसाणभाए य मेंढगिरि सिहरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं।।16।।

अर्थात् अचलपुर नगर की ईशान दिशा में स्थित मेंढ्रगिरि के शिखर से साढ़े तीन करोड़ मुनियों को मुक्ति प्राप्त हुई थी।

अतिशय–इस क्षेत्र पर प्राचीन काल में चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटित होती रही हैं। यहाँ के मंदिरों के संबंध में एक किंवदन्ती इस प्रकार प्रचलित है–'एक गड़रिया इस पहाड़ पर भेड़ें चराया करता था। उसके पास 1000 भेड़-बकरी थीं। एक दिन शाम को आधी भेड़ें चरकर आयीं, शेष नहीं आयीं। इसलिए गड़रिया उनकी खोज में निकला किन्तु बड़ी देर तक तो पहाड़ी पर चढ़ नहीं सका। जब बहुत प्रयत्न करने पर वह चढ़ा तो उसने देखा कि भेड़-बकरियाँ एक मंदिर के चारों ओर चर रही हैं। उसने मंदिर में जाकर सोने की एक मूर्ति देखी। उस समय तक उस मंदिर का पता किसी को नहीं था। जब जैनों को इस मंदिर का पता लगा तो उन्होंने यहाँ आना प्रारंभ किया और इसे तीर्थ मानना शुरु कर दिया। इसके बाद और भी मंदिर बनाये गये।[1]

लोग कहते हैं कि जो यूरोपियन अफसर मुक्तागिरि आता है, जिले में रहते हुए उसकी पदोन्नति बहुत जल्दी होजाती है।[2]

ऐसा भी कहा जाता है कि पहाड़ से कई बार रात्रि में जय-जयकार और गायन की मधुर ध्वनि धर्मशाला में रहने वालों को सुनाई पड़ती है। धर्मशाला के मध्य में जो मंदिर बना हुआ है, कई बार अर्धरात्रि में घण्टों की आवाज सुनाई

1-2. Central Provinces District Gazetteer. Betul District, Vol. A (Descriptive), edited by R.V. Russel I.C.S. 1907.

पड़ती है। इस प्रकार की अनुश्रुतियाँ अन्य अनेक तीर्थों के संबंध में भी प्रचलित हैं।

क्षेत्र की प्राचीनता–यह क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन है। साहित्यिक साक्ष्य हमें कुन्दकुन्दाचार्य तक ले जाते हैं। प्राकृत निर्वाण भक्ति में, जो आचार्य कुन्दकुन्द ने रची थी, इस क्षेत्र का उल्लेख है किन्तु ताम्रलेख और इतिहास से यह क्षेत्र इससे भी अधिक प्राचीन सिद्ध होता है। अचलापुरी में प्राप्त ताम्रपट से ज्ञात होता है कि इस पर्वतपर मगध सम्राट श्रेणिक बिम्बसार ने गुहा मंदिर का निर्माण कराया था। श्रेणिक का काल ढाई हजार वर्ष पूर्व है। वे भगवान महावीर के समयकालीन थे।

इसके पश्चात् ऐलिचपुर नरेश ऐल श्रीपाल ने इस क्षेत्र को पुनः प्रकाश में लाकर इसकी प्रसिद्धि की। उसने मंदिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी की।

इस पर्वत पर 52 जिनालय हैं। ये अधिकांशतः वि.सं. 1545 (सन् 1488) से वि.सं. 1950 (सन् 1813) के मध्य निर्मित हुए हैं।

क्षेत्र का स्वामित्व–यह क्षेत्र सम्पूर्णतः दिगम्बर जैन समाज का है। इस पर किसी भी अन्य सम्प्रदाय का अधिकार नहीं है। पहले यहाँ के जमींदार को मालगुजारी देनी पड़ती थी। सन् 1928 में श्री नत्थुसा पासुसा अमरावती ने बीस हजार रुपये, श्री मोती संगई अंजन गाँव ने दस हजार रुपये और श्री हीरालाल चम्पालाल ऐलिचपुर ने पन्द्रह हजार रुपये देकर यहाँ की जमींदारी अपने नामों से खरीद ली। श्री नत्थुसा और श्री मोती संगई ने अपना हक मुक्तागिरि क्षेत्र के नाम कर दिया। इसी प्रकार श्री हीरालाल चम्पालाल ने 1950 में अपने मालिकाना अधिकार क्षेत्र को दे दिये। तब से क्षेत्र की जमीन और पहाड़ के ऊपर यहाँ की ट्रस्ट कमेटी का सम्पूर्ण अधिकार है।

भट्टारक पद्मनंदी की समाधि–विक्रम संवत् 1876 में भट्टारक पद्मनंदी यात्रा के निमित्त यहाँ पधारे। यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य और शांति से आकर्षित होकर वे यहाँ कुछ दिन रहे और उन्होंने चक्रेश्वरी देवी की आराधना की। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर देवी ने वर माँगने के लिए कहा। भट्टारक जी ने कहा, "मुझे आपका दर्शन आपके वास्तविक रूप में चाहिए।" देवी ने कहा–"तुम और कुछ माँग लो। जो माँगोगे, वह मिलेगा। मेरा दर्शन तुम सहन नहीं कर सकोगे। मेरा तेज असह्य है।" किन्तु भट्टारक जी अपनी जिद पर अड़े रहे। फलतः देवी को दर्शन देने पड़े और भट्टारकजी का वहीं पर स्वर्गवास हो गया। उनकी स्मृति में खरपी नामक ग्राम में उनकी समाधि और चरण-चिन्ह बने हुए हैं। यहाँ मंदिर और धर्मशाला भी हैं जो सड़क के किनारे ही हैं। खरपी गाँव अचलपुर और मुक्तागिरि के मध्य में अवस्थित है।

क्षेत्र दर्शन–पर्वत पर चढ़ने और उतरने के अलग-अलग मार्ग हैं। पर्वत पर धर्मशाला के निकट नाले से चढ़ाई प्रारंभ होती है। 16-17 सीढ़ियाँ चढ़ने पर एक ऊँचे स्थान पर शिखरबद्ध गुमटी बनी है। इसमें मुनि महेन्द्रसागर की संवत् 1997 की पादुका है। 138 सीढ़ियाँ चढ़ने पर कुछ सपाट मार्ग, पश्चात् सीढ़ियाँ और पुनः सपाट मार्ग मिलता है। यहाँ 52 जिनालय हैं जिसमें से पार्श्वनाथ जिनालयों का यहाँ मुख्य रूप से वर्णन किया जा रहा है–

1. पार्श्वनाथ मंदिर–यहाँ चार स्तम्भों पर आधारित मण्डप में भगवान पार्श्वनाथ की कृष्ण पाषाण की 3 फीट उत्तुंग और संवत् 1967 में प्रतिष्ठित पद्मासन मूर्ति है। स्तम्भों में एक-एक पद्मासन मूर्ति उत्कीर्ण है।

मण्डप के पृष्ठ भाग में बायीं ओर की वेदी में देशी पाषाण की पार्श्वनाथ मूर्तिविराजमान है। फण अधूरा बना हुआ है। वक्ष पर श्रीवत्स नहीं है। मूर्ति सम्भवतः 7-8 वीं शताब्दी की है। दायीं ओर की वेदी में 1 फुट 9 इंच ऊँची सर्वतोभद्रिका है।

2. पार्श्वनाथ मंदिर–यहाँ 3 फीट ऊँचे पाषाण फलक में श्वेतवर्ण पार्श्वनाथ मूर्ति खड्गासन मुद्रा में अवस्थित है। परिकर परम्परागत है। एक दूसरी मूर्ति संवत् 1920 की इसी प्रकार की है। इसमें केवल फण नहीं है। दायीं ओर दीवाल में एक प्राचीन पद्मासन मूर्ति है।

4. पार्श्वनाथ मंदिर–थोड़ा ऊपर चलने पर पूर्वोत्तर कोण में पार्श्वनाथ की श्वेत वर्ण की संवत् 1548 में प्रतिष्ठित 1 फुट 3 इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है।

22. पार्श्वनाथ मंदिर–1 फुट 4 इंच ऊँची संवत् 1548 में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ की श्वेत वर्ण पद्मासन मूर्ति है।

23.मंदिर– मंदिर नं.22 की सीढ़ियों के बगल में बायीं ओर एक मंदरिया है जो केवल 3 फुट 5 इंच चौड़ी है। द्वार भी छोटा है। इसमें झुककर घुसते हैं। इसमें पार्श्वनाथ की एक फुट ऊँची, संवत् 1548 में प्रतिष्ठित पद्मासन मूर्ति है।

26. पार्श्वनाथ मंदिर–यह बड़ा या मुख्य मंदिर कहलाता है। मंदिर के मध्य में मण्डप बना हुआ है। सामने वेदी पर भगवान पार्श्वनाथ की कृष्ण वर्ण 4 फुट 3 इंच उत्तुंग भव्य मूर्ति है। फलक में मूर्ति के सिर पर छत्र है, दोनों ओर गज बने हुए हैं। दोनों पार्श्वों में 3-3 पद्मासन मूर्तियाँ हैं। माला हाथों में लिए हुए गन्धर्व और चमरेन्द्रों की पारम्परिक संयोजना है। मूर्ति का लेप कहीं-कहीं से छूट गया है। लेख नहीं है।

इसके आगे संवत् 1548 में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ की श्वेतवर्ण मूर्ति है। पीछे दीवार में 23 मूर्तियाँ हैं। बायीं और दायीं ओर दीवार में दो वेदियों में 4-4 पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं तथा मध्य दीवार वेदी में कृष्ण वर्ण के सहस्रफणा पार्श्वनाथ हैं। दो सर्प चरण चौकी से लम्बायमान होकर घुटनों तक अंकित हैं। दायीं ओर मध्य वेदी में चन्द्रप्रभ की संवत् 1602 की श्वेत वर्ण प्रतिमा है।

बायीं ओर की तीन दीवार वेदियों में क्रमशः प्राचीन मूर्ति, क्षेत्रपाल की 2 मूर्तियाँ विराजमान हैं। दायीं ओर की दीवार वेदी में संवत् 1546 में प्रतिष्ठित गेरुआ वर्ण की पार्श्वनाथ मूर्ति है। एक अन्य आले में क्षेत्रपाल आसीन हैं।

29. पार्श्वनाथ मंदिर–भगवान पार्श्वनाथ की 1 फुट 2 इंच ऊँची और संवत् 1548 में प्रतिष्ठित पद्मासन मूर्ति है।

45. रत्नत्रय मंदिर–यह मंदिर कलापूर्ण और प्राचीन है। यहाँ तीन वेदियाँ हैं। मध्य वेदी पर एक कृष्ण फलक में तीर्थंकर आदिनाथ की खड्गासन मूर्ति है। उसके तीन ओर 23 तीर्थंकरों की पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दोनों ओर चतुर्भुजी दो देवियाँ हैं। यह फलक 4 फुट 2 इंच है।

बायीं ओर की वेदी पर 3 फुट 6 इंच ऊँचे फलक में एक खड्गासन मूर्ति उत्कीर्ण है। फलक अलंकृत है। इसमें देव-देवियों का भव्य अंकन है। दायीं ओर की वेदी पर 3 फुट ऊँची पार्श्वनाथ की खड्गासन मूर्ति है। दोनों ओर यक्ष-यक्षी हैं। पृष्ठ भाग में सर्प-वलय बना है।

48. पार्श्वनाथ मंदिर–भगवान पार्श्वनाथ की 2 फुट 4 इंच उत्तुंग, संवत् 1548 में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है।

तलहटी के मंदिर–धर्मशाला के बीच में सीढ़ियाँ चढ़कर एक ही स्थान पर दो मंदिर हैं–आदिनाथ मंदिर और महावीर मंदिर।

आदिनाथ मंदिर–भगवान आदिनाथ की 3 फुट ऊँची, संवत् 1947 में प्रतिष्ठित श्वेत पद्मासन मूर्ति है। इसके दोनों पार्श्वों में नेमिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ की कृष्ण वर्ण मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त इस मंदिर में पाषाण की 12 और धातु की 14 मूर्तियाँ हैं।

महावीर मंदिर–पहले मंदिर के बगल में दूसरे कक्ष में भगवान महावीर की 4 फुट 4 इंच उन्नत वीर संवत् 2494 में प्रतिष्ठित पद्मासन मुद्रा में श्वेत वर्ण की मूर्ति है। इस वेदी के सामने चबूतरे पर दो सिंह बैठे हैं जो सम्भवतः भगवान महावीर के प्रतीक के रूप में बनाये गये हैं। इसी हॉल में बाहुबली स्वामी की 5 फुट 5 इंच उत्तुंग श्वेत वर्ण की खड्गासन मूर्ति एक अन्य वेदी में विराजमान है।

बायीं ओर तीन दर की वेदी है। उसमें भगवान पार्श्वनाथ पद्मासन मुद्रा में विराजमान हैं। मूर्ति का वर्ण श्वेत है। इसके अतिरिक्त इस वेदी में पाषाण की 7 और धातु की 1 मूर्तियाँ विराजमान हैं।

पीछे की ओर दीवार में 5 वेदियाँ हैं जिनमें क्रमशः 24 चरण, 3 श्वेत मूर्तियाँ, पार्श्वनाथ, 3 मूर्तियाँ और धातु की पद्मावती मूर्ति विराजमान हैं।

दायीं ओर तीन दर की वेदी में पार्श्वनाथ विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त इस वेदी में पाषाण की 6 और पीतल की 2 मूर्तियाँ हैं। दोनों मंदिरों के सामने विशाल सभामंडप है।

धर्मशाला–यहाँ 13 धर्मशालाएँ हैं जिनमें 130 कमरे हैं। यहाँ दो कुएँ हैं, जिनमें हैण्ड-पम्प लगे हुए हैं। यात्रियों के उपयोग के लिए क्षेत्र पर बर्तन भी हैं। अभी तक प्रयत्न करने पर भी क्षेत्र तक बिजली नहीं आ पायी। धर्मशाला के पीछे

पहाड़ी नाला बहता है। यहाँ कोई बस्ती और बाजार नहीं है।

मेला–क्षेत्र का वार्षिक मेला कार्तिक शुक्ला 13 से 14 तक होता है।

मार्ग और अवस्थिति–श्री मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेश के बैतूल जिले में अवस्थित है। अमरावती से परतवाड़ा 52 कि.मी. है और परतवाड़ा-बैतूल रोड पर परतवाड़ा से खरपी 6 कि.मी. और खरपी से मुक्तागिरि 6 कि.मी. है। खरपी से बायीं ओर एक सड़क क्षेत्र तक जाती है। खरपी से 3 कि.मी. तक का भाग महाराष्ट्र प्रान्त में है तथा उसके आगे 3 कि.मी.क्षेत्र तक का भाग मध्यप्रदेश में पड़ता है। परतवाड़ा से क्षेत्र तक के लिए टैम्पो, स्कूटर, ताँगे और साइकिल रिक्शा किराये पर चले जाते हैं। मुर्तिजापुर से अचलपुर तक रेलवे लाइन भी है। अचलपुर को ही परतवाड़ा कहते हैं।

यह विचित्रता है कि मुक्तागिरि क्षेत्र यद्यपि मध्यप्रदेश में है, किन्तु पोस्टल पते की दृष्टि से इसका जिला अमरावती (महाराष्ट्र) लिखा जाता है।

विशेषता–यहाँ पार्श्वनाथजी का पहला मंदिर शिल्पकला का सुन्दर उदाहरण है, प्रतिमा सप्तफण मण्डित एवं प्राचीन हैं। जनश्रुति के अनुसार यहाँ पर हर अष्टमी, चतुर्दशी को केसर-चंदन की वर्षा होती है, अधिकांश मंदिर 16वीं शताब्दी अथवा उसके बाद के बने हैं। मंदिर क्रमांक 10 मेढ़ागिरि के नाम से प्रसिद्ध है जो पहाड़ी के गर्भ में खुदा हुआ अति प्राचीन मंदिर है। इसकी नक्काशी, स्तंभों व छतों की रचना अपूर्व व दर्शनीय है। यहाँ एक रमणीक जल प्रपात है।

पारसनाथ का किला

-ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ)

पश्चिमी उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले में नगीना रेलवे स्टेशन से उत्तर-पूर्व की ओर 'बढ़ापुर' नामक एक कस्बा है। वहाँ से चार मील पूर्व की ओर कुछ प्राचीन अवशेष दिखाई पड़ते है। इन्हें ही 'पारसनाथ का किला' कहते हैं। इस स्थान का नामकरण तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के नाम पर हुआ लगता है।

इस किले के संबंध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक जनश्रुति के अनुसार पारस नामक किसी राजा ने यहाँ किला बनवाया था। उसने यहाँ कई जैनमंदिरों का भी निर्माण कराया था। इस समय यहाँ कोई मंदिर नहीं है, अपितु प्राचीन मंदिरों और किले के भग्नावशेष चारों ओर कई वर्गमील के क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं। इन अवशेषों का अब तक विधिवत् अध्ययन नहीं हुआ है। कुछ उत्खनन अवश्य हुआ है। समय-समय पर यहाँ जैन मूर्तियों या जैन मंदिरों से संबंधित अन्य सामग्री उपलब्ध होती रहती है। उपलब्ध सामग्री के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि प्राचीन काल में यह स्थान जैन का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ कई तीर्थंकरों के पृथक्-पृथक् मंदिर बने हुए थे। 'पारसनाथ का मंदिर' इन सबमें प्रमुख था। इसीलिए इस स्थान का नाम पारसनाथ पड़ गया।

निश्चय ही मध्यकाल में यहाँ एक महत्वपूर्ण मंदिर था। वह सुसम्पन्न और समृद्ध था। मंदिर के चारों ओर सुदृढ़ कोट बना हुआ था। इसी को पारसनाथ किला कहा जाता था। सन् 1952 से पूर्व तक इस स्थान पर बड़े भयानक जंगल थे। इसलिए यहाँ पहुँचना कठिन था। सन् 1952 में पंजाब से आये पंजाबी काश्तकारों ने जंगल साफ करके भूमि को कृषि योग्य बना लिया है और उस पर कृषि-कार्य कर रहे हैं। प्रारंभ में कृषकों को बहुत सी पुरातन सामग्री मिली थी। अब भी कभी-कभी मिल जाती है। अब तक जो सामग्री उपलब्ध हुई है, उसमें से कुछ का परिचय यहाँ दिया जा रहा है–

भगवान महावीर की बलुए श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा। अवगाहना लगभग पौने तीन फुट। यह प्रतिमा एक शिलाफलक पर है। महावीर की उक्त मूर्ति के दोनों ओर नेमिनाथ और चंद्रप्रभ भगवान की खड्गासन प्रतिमा है। इसका

अलंकरण दर्शनीय है। अलंकरण में तीनों प्रतिमाओं के प्रभामण्डल खिले हुए कमल की शोभा को धारण करते हैं। भगवान महावीर अशोकवृक्ष के नीचे विराजमान हैं। वृक्ष के पत्रों का अंकन कलापूर्ण है। प्रतिमा के मस्तक पर छत्रत्रयी सुशोभित है। मस्तक के दोनों ओर पुष्पमालाधारी विद्याधर हैं। उनके ऊपर गजराज दोनों ओर प्रदर्शित हैं। तीनों प्रतिमाओं के इधर-उधर पर चार चमरवाहक इंद्र खड़े हैं।

प्रतिमा के सिंहासन के बीच में धर्मचक्र है। उसके दोनों ओर सिंह अंकित हैं। चक्र के ऊपर कीर्तिमुख अंकित है। सिंहासन में एक ओर धन का देवता कुबेर भगवान की सेवा में उपस्थित है और दूसरी ओर गोद में बच्चा लिये हुए अम्बिकादेवी हैं।

सिंहासन पर ब्राह्मीलिपि में एक अभिलेख भी उत्कीर्ण है जो इस प्रकार पढ़ा गया है–

'श्री विरुद्धमनसमिदेवः। सं. 1067 राणलसुत्त भरथ प्रतिम प्रठपि' अर्थात् संवत् 1067 में राणल के पुत्र भरत ने श्री वर्धमान स्वामी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की।

भगवान पार्श्वनाथ की एक विशाल पद्मासन प्रतिमा बढ़ापुर गाँव के एक मुसलमान झोजे के घर से मिली थी, जिसे वह उक्त किले के सबसे ऊँचे टीले से उठा लाया था। इसको उलटा रखकर वह नहाने और कपड़े धोने आदि के कामों में लाता था। एक वर्ष के भीतर वह और उसका सारा परिवार नष्ट हो गया। घर फूट गया। लोगों का विश्वास है कि भगवान की अविनय का ही यह परिणाम है। यह खंडित कर दी गयी है। इसके हाथ, पैर और मुँह खंडित हैं। सर्प-कुण्डली के आसन पर भगवान विराजमान हैं। उनके सिर पर सर्पफण मंडल है। उनके अगल-बगल में नाग-नागिन अंकित हैं। चरणपीठ पर दो सिंह बने हुए हैं। जिस सातिशय मूर्ति के कारण इस किले को पारसनाथ का किला कहा जाता था,सम्भवतः वह मूर्ति यही रही हो।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ सिरदल-स्तम्भ आदि भी मिले हैं। एक सिरदल के मध्य में कमल-पुष्प और उनके ऊपर बैठे हुए दो सिंहों वाला सिंहासन दिखाई देता है। सिंहासन के ऊपर मध्य में पद्मासन मुद्रा में भगवान ध्यानलीन हैं। उनके दोनों ओर दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियों का अंकन किया गया है। फिर इन तीनों मूर्तियों के इधर-उधर भी इसी प्रकार की तीन-तीन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इन तीनों भागों के इधर-उधर एक-एक खड्गासन मूर्ति अंकित है।

कुछ द्वार-स्तम्भ भी मिले हैं। एक द्वार-स्तम्भ में मकरासीन गंगा और दूसरे स्तम्भ में कच्छपवाहिनी यमुना का कलात्मक अंकन है। इन देवियों के अगल-बगल में उनकी परिचारिकाएँ हैं। ये सभी स्तनहार, मेखला आदि अलंकरण धारण किये हुए हैं। स्तम्भ के ऊपर की ओर पत्रावली का मनोरम अंकन है। स्तम्भों पर गंगा-यमुना का अंकन गुप्तकाल से मिलता है।

कुछ स्तम्भ ऐसे भी प्राप्त हुए हैं, जिन पर दण्डधारी द्वारपाल बने हैं। देहली के भी कुछ भाग मिले हैं, जिन पर कल्पवृक्ष, मंगल कलश लिए हुए दो-दो देवता दोनों ओर बने हुए हैं। एक पाषाण फलक पर संगीत-सभा का दृश्य उत्कीर्ण है। इसमें अलंकरण के अतिरिक्त नृत्य करती हुई एक नर्तकी तथा मृदंग-मंजीरावादक पुरुष दिखाई पड़ते हैं।

किले से कुछ अलंकृत ईंटें भी मिली है। यहाँ के कुछ अवशेष और मूर्तियाँ नगीना और बिजनौर के दिगम्बर जैन मंदिरों में पहुँच गयी हैं। शेष अवशेष यहीं एक खेत में पड़े हुए हैं।

इन पुरातत्त्वावशेषों और अभिलिखित मूर्तियों से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि 9-10 वीं या उससे पूर्व की शताब्दियों में यह स्थान जैनधर्म का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहाँ जो व्यापक विध्वंस दिखाई पड़ता है, उसके पीछे किसका हाथ रहा है, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यदि यहाँ खुदाई करायी जाए तो संभव है, यहाँ से अनेक प्राचीन कलाकृतियाँ मिल सकें और यहाँ के इतिहास पर भी कुछ प्रकाश पड़ सके।

यह स्थान तथा इसके आसपास के नगर जैनधर्म के केन्द्र रहे हैं, इस बात के कुछ प्रमाण प्रकाश में आये हैं। यह स्थान नगीने के बिलकुल निकट है। नगीने में जैनमंदिर के पास का मुहल्ला 'यतियों का मुहल्ला' कहलाता है। यति जैन

त्यागी वर्ग का ही एक भेद था। इस नाम से ही इस नगर के इस भाग में जैन यतियों के प्रभाव का पता चलता है।

नगीने से 8 मील की दूरी पर नहटौर नामक एक कस्बा है। सन् 1905 में इस कस्बे के पास ताँबे का एक पिटारा निकला था जिसमें 24 तीर्थंकरों की मूर्तियाँ थीं। सम्भवतः ये मुस्लिम आक्रमणकारियों के भय से जमीन में दबा दी गयी होंगी। ये मूर्तियाँ अब नहटौर के जैन मंदिर में हैं। नहटौर के पास गांगन नाम की एक नदी है। उसमें से 1956-57 में एक पाषाण फलक निकला था। उसके ऊपर पाँच तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। यह जैनमंदिर भी नहटौर में स्थापित है।

नहटौर से तीन मील की दूरी पर पाडला गरीबपुर नाम का एक ग्राम है। उस ग्राम के बाहर एक टीले पर एक पद्मासन जैन प्रतिमा मिट्टी में दबी पड़ी थी। उसका कुछ भाग निकला हुआ था। ग्रामीण लोग इसे देवता मानकर पूजते थे। 1969-70 में जैनियों ने यहाँ की खुदाई करायी। खुदाई के फलस्वरूप भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा निकली। अब नहटौर की जैन समाज ने वहाँ मंदिर बनवा दिया है।

बिजनौर हस्तिनापुर से केवल 13 मील की दूरी पर गंगा नदी के दूसरे तट पर स्थित है। हस्तिनापुर के समीप होने और उपर्युक्त मूर्तियाँ निकलने से स्पष्ट है कि बिजनौर जिले में कुछ स्थान विशेषतः 'पारसनाथ का टीला' के आसपास का सारा प्रदेश जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र और प्रभाव-क्षेत्र रहा है।

श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पंचायती स्वर्ण मंदिर, ग्वालियर

-ब्र. कु. इन्दू जैन (संघस्थ)

श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पंचायती बड़ा मंदिर (पुरानी सहेली) मध्यप्रदेश के ग्वालियर शहर में स्थित है। ग्वालियर रेलवे स्टेशन व बस स्टैण्ड दोनों से इसकी दूरी 4 कि.मी. है। दिल्ली-मुम्बई, दिल्ली-चेन्नई मुख्य रेलमार्ग पर है।

स्वर्ण मंदिर के निर्माण में तत्कालीन श्रेष्ठियों ने 2 मन (80 किलो) सोने का उपयोग स्वर्ण चित्रकारी हेतु किया था जो इस मंदिर का वैशिष्ट्य है। ग्वालियर के इर्द-गिर्द 7वीं-8वीं शताब्दी से 14 वीं-15 वीं शताब्दी तक प्राचीन जिनालयों के दर्शन होते हैं। रियासतों के काल से श्री 1008 पार्श्वनाथ दि.जैन बड़ा मंदिर अपनी गौरवशाली संस्कृति समेटे हुए है एवं तेरहपंथी पंचायती मंदिर पुरानी सहेली के नाम से विख्यात है। इसका निर्माण भादों सुदी 2, सं. 1761 में हुआ। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा संवत् 1212 की प्रतिष्ठित है। इस मंदिर में 163 मूर्तियाँ हैं जो चाँदी, मूँगा, स्फटिक मणि, प्लेट, पाषाण, कसौटी, संगमरमर तथा श्यामश्वेत पाषाण की हैं। एक इंच से 5-6 फुट अवगाहना की खड्गासन तथा पद्मासन प्रतिमाएँ एवं त्रिकाल चौबीसी विराजमान हैं। एक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की श्यामवर्ण की फणयुक्त है। कुल 6 वेदियाँ हैं एवं कलापूर्ण समवसरण, जिसमें स्वर्ण चित्रकारी का काम सोने की कलम से बारीकी से किया गया है एवं कई अन्य दर्शनीय स्थल हैं।

समीपवर्ती तीर्थक्षेत्र श्री गोपाचल सिद्धक्षेत्र, सोनागिरि, 15 वीं एवं 16 वीं शताब्दी का ग्वालियर का दुर्ग तथा श्री सिंहोनिया सिद्धक्षेत्र हैं।

श्री भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, टिकैतनगर

-ब्र. कु. मंजू जैन (संघस्थ)

भगवार पार्श्वनाथ दि.जैन मंदिर टिकैतनगर अवधप्रांत के बाराबंकी जिले में स्थित है, यह स्थान लखनऊ से 80 कि.मी. एवं शाश्वत तीर्थक्षेत्र अयोध्या जी से 70 कि.मी. दूर है। समीपवर्ती अन्य तीर्थक्षेत्र धर्मनाथ जन्मभूमि रौनाही, भगवान सम्भवनाथ जन्मभूमि श्रावस्ती जी तीर्थक्षेत्र हैं। लखनऊ, बाराबंकी, भिटरिया, रामनगर आदि से सीधी बस सेवा उपलब्ध है।

यह स्थान जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की जन्मभूमि के नाम से विश्वविख्यात है। इस धर्मपरायण नगरी में आज भी त्यागी व्रती आत्मकल्याण करने हेतु गृहस्थ पंक कीचड़ से निकलकर मोक्षमार्ग में लग रहे हैं।

इस नगर में दो दिगम्बर जैन मंदिर हैं-श्री पार्श्वनाथ दि.जैन मंदिर एवं विश्वशांति भगवान महावीर दि.जैन मंदिर। **सैकड़ों वर्ष पुराने भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ प्रतिमा अतिशय चमत्कारी है।मूर्ति जीवराज पापड़ीवाल द्वारा संवत् 1548 की निर्मित है। इस मूर्ति के आगे सच्चे मन से जो कोई कामना की सिद्धि होती है। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के जीवन में घटित घटना है। 18 वर्ष की उम्र में जब कु.मैना (वर्तमान में ज्ञानमती माताजी) ने त्यागमार्ग पर कदम बढ़ाया उस समय उन्होंने इन्हीं भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन कर यह भावना भाई थी कि भगवन्! मैं त्यागमार्ग पर निकलकर शीघ्र ही दीक्षा लेकर आपका दर्शन करूँ। उनकी यह भावना शीघ्र ही फलित हुई और 1 वर्ष के भीतर ही उन्होंने त्याग मार्ग में प्रवेश कर क्षुल्लिका दीक्षा प्राप्त करके भगवान पार्श्वनाथ के पुनः दर्शन किए।**

यहाँ पौष कृष्णा एकादशी को भगवान पार्श्वनाथ की जन्मजयंती धूमधाम से मनाई जाती है और भक्तामर का अखंड पाठ (24 घंटे का) किया जाता है। लगभग 25 वर्ष पूर्व की बात है मंदिरजी की कुछ धातु की मूर्तियाँ चोरी चली गईं। जिसने चोरी की थी उसके परिवार का एक सदस्य 1-2 दिन बाद ही मर गया तो चोर वापिस मंदिर में मूर्ति रखकर चला गया। वहाँ आज भी यह मान्यता है कि जिनधर्म संबंधी अपवाद करने वाला कोई भी व्यक्ति वहाँ सानन्द व सुखी नहीं रह सकता। कुछ ही समय में घटना प्रत्यक्षगत हो स्पष्ट हो जाती है। भगवान पार्श्वनाथ के अतिशय के कारण ही वहाँ के विद्यालय का नाम श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय'' रखा गया जो वर्तमान में ''पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन इण्टर कॉलेज'' के रूप में वृद्धिंगत है।

भगवान पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती माता का भी यहाँ बहुत अतिशय है,प्रति शुक्रवार को यहाँ पद्मावती आराधना का वृहद् आयोजन होता है। नगर में आने वाली प्रत्येक नववधू सर्वप्रथम पद्मावती माता की आराधना अवश्य करती है। यह आयोजन प्रायः वृहद् रूप में ही होता है और नगर की 51 या 108 सुहागिन स्त्रियों की गोद भी मंदिर जी में भरी जाती है।

इसी मंदिर के बगल में सन् 2005 में निर्मित दूसरे ''विश्वशांति भगवान महावीर मंदिर'' में अवगाहना प्रमाण भगवान महावीर की प्रतिमा भी अतिशय चमत्कारी है जिसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी 2005 में सम्पन्न हुई है। मंदिर निर्माण एवं प्रतिमा विराजमान का बहुत बड़ा चमत्कार यहाँ घटित हुआ था। पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के संघ सानिध्य में होने वाली इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं प्रतिमा विराजमान होने के समय होने वाले चमत्कार का वर्णन आज भी वहाँ की जैन-अजैन जनता द्वारा सुना जा सकता है, जो कि सुनने वालों को रोमांचित कर देता है। उसका किंचित् वर्णन चारित्रचंद्रिका ग्रंथ में पठनीय है।

आने वाले धर्मानुरागी भाइयों के लिए यहाँ दर्शन के लिए दोनों मंदिरों के अतिरिक्त माताजी की जन्मभूमि विशेष है। नगर में प्रत्येक जैन बन्धु के घर में आदर-सत्कार का विशेष ध्यान रखा जाता है। नगर में आगन्तुक बन्धुओं के ठहरने के लिए दो धर्मशालाएँ हैं फिर भी जैन बन्धु आगत अतिथि को ठहराने आदि में पूर्ण रुचि रखते हैं।

यहाँ का निकटवर्ती रेवले स्टेशन 6 कि.मी. दूर दरियाबाद है। सम्मेदशिखर की ओर जाने वाली लगभग सभी ट्रेनें इस स्टेशन पर रूकतीं हैं। यहाँ से तांगा अथवा टैम्पो से यात्री टिकैतनगर पहुँचते हैं।

गुलाबवाड़ी मुम्बई का अतिशयकारी पार्श्वनाथ मंदिर

–श्रीमती लक्ष्मी जैन, मुम्बई
(अध्यक्षा-अ.भा.दि.जैन महिला संगठन, मुम्बई इकाई)

भारतवर्ष के भौतिकता में विख्यात मुम्बई महानगर के गुलाबवाड़ी में स्थित श्री 1008 पार्श्वनाथ दि. जैन देरासर (मंदिर) की स्थापना वीर नि.सं. 2350, ई.सन् 1825 में हुई थी। **यह मंदिर 179 साल प्राचीन है और यहाँ की मूलनायक 9 नाग फणों वाली, संगमरमर की लगभग पौने दो फुट ऊँची, चमत्कारी मनभावनी प्रतिमा तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी की है, जो 105 वर्ष प्राचीन है।** इसके साथ ही वेदी में भगवान आदिनाथ जी, भगवान चन्द्रप्रभु जी, भगवान शांतिनाथ जी और भगवान पद्मप्रभु जी की संगमरमर की करीब सवा फुट ऊँची प्रतिमाओं के साथ-साथ अन्य अनेक प्रतिमाएँ अष्ट धातु की विराजमान हैं। इन धातु की प्रतिमाओं में एक चौबीसी की धातु की प्रतिमा 525 वर्ष प्राचीन है। वेदी के दोनों ओर अष्ट धातु के ही बड़े-बड़े पंचमेरु स्थापित किये गये हैं। वेदी में ऊपर चारों ओर तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी के 10 पूर्व भव दर्शाये गये हैं। वेदी के द्वार शुद्ध चाँदी के बने हुए हैं। द्वार के दायें-बायें क्षेत्रपाल पद्मावती विराजमान हैं। मुम्बई का यह प्रथम शिखरयुक्त प्राचीन मंदिर है।

मंदिर तल मंजिल को मिलाकर चार मंजिल का बना हुआ है। तल मंजिल में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की पौने दो फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। इस तल मंजिल में मंदिर का कार्यालय है। मंदिर के मुख्य द्वार भी शुद्ध चाँदी के बने हुए हैं। प्रथम तल पर भगवान की वेदी और इस मुख्य वेदी से बाईं ओर लगी हुई एक काँच की वेदी कहें या अलमारी में नवरत्नों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। दीवारों पर आधुनिक पद्धति की काँच की सुन्दर चित्रकारी में नेमिनाथ जी की बारात और वैराग्य दृश्यों के चित्र, शिखरजी, गिरनार जी, पावापुरी जी इत्यादि सिद्धक्षेत्रों के बड़े-बड़े चित्र बने हुए हैं। दूसरे तल पर द्वादशांग जिनवाणी का विस्तृत भंडार और प्रवचन सभागृह है। सभागृह की चारों तरफ की दीवारें भी भक्तामर स्तोत्र के 48 पदों के 48 चित्र, काँच की ही चित्रकारी से सजी हुई हैं, जो भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। तीसरे तल पर मंदिरजी का शिखर और चारों ओर खुला स्थान है। ये मंदिर पहले चैत्यालय के रूप में था।

सन् 1825 में मंदिर जी की स्थापना के बाद सन् 1912 में उस समय के ट्रस्टी सेठ श्री धर्मचंद अमरचंद जी तथा सेठ श्री सौभाग्यचंद मेघराजजी ने समाज से रुपया एकत्र कर इसका जीर्णोद्धार करवाया था। उसके बाद सन् 1999 में मंदिर के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री रमणलाल कोदरलाल तथा अन्य ट्रस्टियों ने मिलकर समाज के उदारमना सहयोग से मंदिर को भव्य, आकर्षक, मनोहर रूप देकर उसकी उम्र असंख्य वर्षों की कर दी है। इस मंदिर में तीस दिन लगातार दर्शन, पूजन, अभिषेक, वंदन करने से भक्त की मनोकामना श्रद्धानुसार पूर्ण होती है।

भोगाँव का अतिशयपूर्ण पार्श्वनाथ जिनालय

–मनोज कुमार जैन, भोगाँव

उत्तरप्रदेश के जनपद मैनपुरी के उपनगर भोगाँव में स्थित देवाधिदेव श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ जिनालय बहुत ही भव्य एवं प्राचीन है। यह जिनालय लगभग 250-300 वर्ष प्राचीन माना जाता है और ऊपर टीले पर स्थित है। कुछ वर्षों पूर्व जब जिनालय के समीप एक नींव खोदी गई तो अनेक खण्डित मूर्तियाँ प्राप्त हुईं जो मंदिर में संग्रहीत हैं। एक जैन धर्मावलम्बी के यहाँ कुएँ की खुदाई में एक छोटी सी अरहन्त देव की मूर्ति प्राप्त हुई जो आज भी जिनालय में विराजमान है। जनश्रुति के अनुसार पूर्वनिर्मित जिनालय को मुगलकाल में आक्रमणकारियों ने तहस-नहस कर दिया था अतः पुराने जिनालय के स्थान पर पुनः नया जिनालय बनाया गया।

श्री पार्श्वनाथ जिनालय का भव्य सिंहद्वार जिनालय की भव्यता एवं प्राचीनता का अहसास प्रवेश से पूर्व ही करा देता है। जिनालय में प्रवेश करते ही मन एक अद्भुत लोक में पहुँच जाता है। यहाँ पर सिद्धालय जैसी शान्ति व समवसरण जैसा आनंद प्राप्त होने की सुखद अनुभूति होती है।

जिनालय की मुख्य वेदी पर 23वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की श्याम पाषाण की भव्य प्रतिमा विराजमान है। श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब के विशाल पंचकल्याणक सन् 1902 में सम्पन्न हुए थे। इस सुअवसर पर देश भर से धर्मप्रेमी बंधुवर पधारे थे। ब्रिटिश शासनकाल का मनोहर बैंड विशेष प्रयास से बुलाया गया था। ईसवी सन् 2002 में श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब के पंचकल्याणक के सौ वर्ष पूर्ण होने पर कण्डेसिया रिलीजियस एण्ड चेरिटेबल ट्रस्ट एवं समस्त जैन समाज, भोगाँव द्वारा पंचकल्याणक शताब्दी महोत्सव कार्यक्रम भी सम्पन्न हुआ।

श्री पार्श्वनाथ जिनबिंब पंचकल्याणक से पूर्व मुख्य वेदी पर श्री अजितनाथ भगवान की 700 वर्ष से अधिक प्राचीन प्रतिमा विराजमान थी परन्तु बाद में भगवान अजितनाथ की प्रतिमा को जिनालय की बायीं वेदी पर विराजमान कर दिया गया एवं मुख्य वेदी पर श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान की गई। दायीं वेदी पर देवाधिदेव श्री 1008 भगवान आदिनाथ की 500 वर्ष से भी अधिक प्राचीन एवं अतिशययुक्त प्रतिमा एवं अन्य भगवन्तों की बहुत प्राचीन-प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

श्री पार्श्वनाथ जिनालय में एक पुस्तकालय भी है जहाँ ताड़पत्रों पर स्वर्ण अक्षरों में लिखित एवं हस्तलिखित दुर्लभ जैन ग्रंथों का संग्रह है। इसके अतिरिक्त जैन दर्शन की नवीन पुस्तकें एवं सभी अनुयोगों के शास्त्र भी यहाँ उपलब्ध हैं। जिनालय के बाहर एक बड़ा खुला स्थान है जहाँ समय-समय पर धार्मिक आयोजन होते रहते हैं।

यह जिनालय चमत्कारिक दृष्टि से भी अछूता नहीं है। जिनालय में मुख्य वेदी के सम्मुख आँगन में एक निश्चित स्थान पर जैन व्रतों व पर्वों में जल-वृष्टि होती है जो जिनालय की महिमा को दर्शाती है।

भोगाँव नगर दिल्ली-कलकत्ता जी.टी. रोड पर कुरावली से 20 किमी. एवं मैनपुरी से मात्र 15 किमी. की दूरी पर स्थित है। दिल्ली एवं आगरा से कन्नौज, कानपुर, लखनऊ, अयोध्या, इलाहाबाद व बनारस जाने वाली सभी बसों का यहाँ स्टॉप है।

कालसर्पयोग निवारक भगवान पार्श्वनाथ, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र

-संजय जैन (कानपुर वाले), जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

राजधानी दिल्ली से 110 कि.मी. एवं मेरठ से 40 कि.मी. दूर स्थित श्री दिगम्बर तीर्थ जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर धरती का स्वर्ग (मानव द्वारा निर्मित) माना जाता है। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से निर्मित विश्वविख्यात जैन भूगोल की अद्वितीय रचना का निर्माण सन् 1974-1985 में हुआ। इस भव्य रचना के साथ-साथ यहाँ अनेक भव्य एवं अद्वितीय रचनाएँ हैं, जो स्वयं में अनूठी एवं प्रथम बार निर्मित हैं। कमल मंदिर, तीनमूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर (ह्रीं मंदिर), अष्टापद मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान 20 तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, शांति-कुंथ-अरनाथ मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, कीर्तिस्तम्भ एवं विशाल तेरहद्वीप जिनालय।

इन मंदिरों में तीनमूर्ति मंदिर में विराजमान हैं कालसर्पयोग निवारक, सातिशय सहस्रफणी चिन्तामणी भगवान श्री 1008 पार्श्वनाथ स्वामी। ये श्यामवर्णी पद्मासन सवा चार फुट ऊँची प्रतिमा कमलासन पर विराजमान है। सरोवर में खिले कमल के समान इसका कमल है तथा नीचे कमल की नाल में पार्श्वनाथ का चिन्ह सर्प भी बना है।

कालसर्पयोग एवं केतुग्रह से ग्रसित व्यक्ति यहाँ आकर चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान की 108 अथवा 1008 कलशों से महाभिषेक, आराधना, श्री पार्श्वनाथ विधान करके अपने ग्रह के अरिष्ट को दूरकर मनोकामना की सिद्धि करते देखे जाते हैं। इसी मंदिर में विराजमान हैं भगवान पार्श्वनाथ के शासन देव-देवी धरणेन्द्र देव एवं पद्मावती माता। संतान प्राप्ति और विवाहादि लौकिक सुखों की प्राप्ति हेतु अनेक सुहागिन महिलाएँ तथा कुमारी कन्याएँ आकर वृहद् रूप में पद्मावती माता की आराधना करके अपने इष्ट कार्य की सिद्धि करती हैं। अधिकांशतः प्रत्येक शुक्रवार एवं रविवार को यहाँ पद्मावती आराधना होती है तथा आगन्तुक यात्री अपनी सुविधानुसार कभी भी आकर आराधना करते हैं।

इन मंदिरों में सभी विशेष दर्शनीय एवं वंदनीय हैं। इनमें तेरहद्वीप जिनालय की रचना स्वर्णमयी है जिसकी छटा अद्भुत है जिसे देखकर मन तृप्त नहीं होता है। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोध पीठ का मुख्यालय है। यहाँ के जम्बूद्वीप पुस्तकालय में पंद्रह हजार ग्रंथ एवं शताधिक पाण्डुलिपियाँ हैं। पास का रेलवे स्टेशन मेरठ है जो 40 कि.मी. दूर है। दिल्ली, मेरठ एवं मुजफ्फरनगर से सीधी बस सेवा उपललब्ध है, जम्बूद्वीप क्षेत्र के मुख्य द्वार पर जाकर बस रुकती है। तिजारा जाने वाले यात्रियों के लिए जम्बूद्वीप स्थल से बस सेवा उपलब्ध है, रात्रि में यह बस क्षेत्र पर ही रुकती है और प्रातः 5:30 बजे तिजारा के लिए प्रस्थान करती है। यात्रियों के ठहरने हेतु यहाँ अनेकों कोठियाँ, 200 डीलक्स फ्लैट्स हैं, यहाँ एक साथ 2000-2500 यात्री ठहर सकते हैं। यह धार्मिक स्थल के साथ-साथ प्राकृतिक सुषमा एवं मनोरंजन का स्थल भी है-ऐरावत हाथी पर जम्बूद्वीप की परिक्रमा, लवण समुद्र में नौका विहार, बच्चों के लिए रेलगाड़ी, झूले, हँसी के गोल-गप्पे, लवण समुद्र के फव्वारे, प्राचीन इतिहास व तीर्थ से संबंधित सुंदर झाँकियाँ, लॉन, फुलवारी, बगीचे इत्यादि देखने योग्य हैं।

यात्रियों के भोजन हेतु सुंदर भोजनशाला है जो कि नियमित चलती है जिसमें 500 यात्री एक साथ भोजन कर सकते हैं। परिसर में ही जैन कैन्टीन, दुकानें आदि भी हैं। एस.टी.डी./पी.सी.ओ.भी है।

विशेष मेले- कार्तिक पूर्णिमा, होली, अक्षय तृतीया, भगवान शांतिनाथ निर्वाण मेला-ज्येष्ठ वदी चतुर्दशी, रक्षाबंधन, शरदपूर्णिमा, माघ कृष्णा चतुर्दशी (आदिनाथ निर्वाणोत्सव) तथा पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महोत्सव पर विशेष मेले का आयोजन होता है।

जम्बूद्वीप रचना के अन्दर सन् 1979 से 101 फुट ऊँचे सुमेरु पर्वत बनने के बाद अनेक बार देवताओं के आगमन और रात्रि में बाजे बजने तथा जय-जयकार करने के चमत्कार यात्रियों ने देखे हैं। सन् 1985 में परम तपस्विनी आर्यिका श्री रत्नमती माताजी (गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की गृहस्थावस्था की माँ एवं पूज्य आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज की दीक्षित शिष्या) की समाधि के पश्चात् प्रायः उनके समाधिस्थल पर जलता हुआ दीपक रात्रि में दिखाई देता है तथा उनके समाधिदिवस माघ कृ.नवमी को तो लगभग प्रतिवर्ष लोग अपूर्व जय-जयकार की ध्वनि (जम्बूद्वीप की जय, अकृत्रिम चैत्यालयों की जय आदि) सुनते हैं, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि रत्नमती माताजी ने सल्लेखना विधि से समाधिमरण करके देवपर्याय प्राप्त की है और वे अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना को जाते हुए हस्तिनापुर के जम्बूद्वीप की भी अदृश्यरूप से अवश्य वंदना करती हैं। पुनश्च तेरहद्वीप जिनालय की 2127 प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा के पश्चात् तो पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने स्वयं अपनी आँखों से अत्यंत सुन्दराकृति इन्द्र-इन्द्राणियों को आकाश से उतरकर आते हुए देखा है, जिसे देखकर उन्हें अपूर्व आल्हाद का अनुभव हुआ। तात्पर्य यह है कि ऐसी अकृत्रिम चैत्यालयों की शास्त्रीय रचना विश्व में प्रथम बार बनने से स्वर्गलोक में भी उनकी चर्चा चलती होगी और देवगण उनका दर्शन करने आते होंगे, इसमें कोई अतिश्योक्ति की बात नहीं है क्योंकि आज से 2600 वर्ष पूर्व तो साक्षात् ही देव-इन्द्र आदि पृथ्वी पर आकर भगवान के कल्याणक मनाते थे किन्तु अब मनुष्यों का पुण्य क्षीण हो जाने के कारण देवों का साक्षात् आगमन नहीं दिखता है किन्तु अनेक मंदिरों में अदृश्य चमत्कार तो आज भी देखे जाते हैं। उसी शृँखला में हस्तिनापुर तीर्थ के जम्बूद्वीप स्थल पर निर्मित इन भव्य रचनाओं में अद्‌भुत चमत्कार है। जम्बूद्वीप और तेरहद्वीप रचना की 108 प्रदक्षिणा करने वालों की मनोरथ सिद्धि एवं अनेक दुर्घटना टलने के अनेक उदाहरण लोग स्वयं मुख से बताते हैं।

वरुर के केतुग्रहारिष्ट निवारक भगवान पार्श्वनाथ

कर्नाटक के हुबली जिले में स्थित वरुर नगर में है-श्री नवग्रह तीर्थ। नवग्रह अरिष्ट निवारक नौ तीर्थंकर भगवान उन-उन वर्णों में वहाँ विराजमान हैं। अनादिकाल से सांसारिक प्राणी के साथ यह ग्रह लगे हुए हैं। यही ग्रह अगर उच्च श्रेणी में रहते हैं, तो प्राणी को सुफल प्रदान करते हैं और अगर यही ग्रह निम्न श्रेणी में हों तो वह प्राणी को दुख प्रदान करते हैं। इन भगवन्तों की आराधना कर प्राणी अपने ग्रह की शान्ति कर सकता है।

इन नौ तीर्थंकर प्रतिमाओं में सबसे विशाल प्रतिमा केतु ग्रहारिष्ट निवारक भगवान श्री पार्श्वनाथ की है जो 45 फुट खड्गासन है, इस प्रतिमा का फणा 10 फुट है, इस प्रकार कुल मिलाकर यह प्रतिमा 55 फुट है। इस तीर्थ का निर्माण 2-3 वर्ष पूर्व हुआ है। श्री गुणधरनन्दी महाराज एवं स्वस्ति श्री धर्मसेन भट्टारक जी की प्रेरणा से निर्मित इस तीर्थ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जनवरी 2007 में सम्पन्न हुई है। ग्रह शान्ति के इच्छुक प्राणी तीर्थ पर जाकर भगवन्तों की आराधना कर ग्रह शांति कर सकते हैं।

भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र — एक दृष्टि में

आन्ध्रप्रदेश

1. श्री 1008 विघ्नहरण पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कुलचारम (मेदक) आ.प्र.

बिहार

2. भगवान बाहुबली स्वामी महावीर दि. जैन अतिशय क्षेत्र, आरा (भोजपुर) बिहार
3. भगवान श्री वासुपूज्य जन्मभूमि दिगम्बर जैन बीसपंथी सिद्धक्षेत्र, चम्पापुर (भागलपुर) बिहार
4. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, गुणावाँजी (नवादा) बिहार
5. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, कमलदहजी (पटना) बिहार
6. भगवान महावीर जन्मभूमि, कुण्डलपुर (नालन्दा) बिहार
7. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, मन्दारगिर (बाँका) बिहार
8. भगवान महावीर निर्वाणभूमि पावापुरी जी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, पावापुरी (नालंदा) बिहार
9. भगवान मुनिसुव्रतनाथ जन्मभूमि राजगृही जी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, राजगिर (नालंदा) बिहार

गुजरात

10. श्री दिगम्बर जैन देवपुरी अतिशय क्षेत्र, दरोल-वाघेला (साबरकांठा) गुजरात
11. श्री दिगम्बर जैन मंदिर हूम्मड़ डेला, घोघा (भावनगर) गुजरात
12. भगवान नेमिनाथ निर्वाणभूमि गिरनार जी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, गिरनार जी (जूनागढ़) गुजरात
13. श्री 1008 विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, महुवा (सूरत) गुजरात
14. श्री पावागढ़ दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, पावागढ़ (पंचमहल) गुजरात
15. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, शत्रुंजयजी (भावनगर) गुजरात
16. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, तारंगाजी (मेहसाणा) गुजरात
17. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, उमता (मेहसाणा) गुजरात

हरियाणा

18. श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पुण्योदय तीर्थ, हाँसी (हिसार) हरियाणा
19. श्री 1008 महावीर स्वामी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कासनगाँव (गुड़गाँवा) हरियाणा
20. श्री 1008 भगवान आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र रानीला, (भिवानी) हरियाणा

झारखंड

21. श्री शीतलनाथ जन्मभूमि दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, भद्रिकापुरी (चतरा) झारखंड
22. भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि (शाश्वत निर्वाणभूमि)सम्मेदशिखरजी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, मधुवन (गिरिडीह) झारखंड

कर्नाटक

23. श्री 1008 सहस्रफणी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, बीजापुर (कर्नाटक)
24. श्री दिगम्बर जैन बाहुबली तीर्थक्षेत्र, धर्मस्थल (दक्षिण कन्नड़) कर्नाटक

25. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, हुंबुज पद्मावती (शिमोगा) कर्नाटक
26. श्री 1008 पार्श्वनाथ भगवान दि.जैन अतिशय क्षेत्र, कमठाण (बीदर) कर्नाटक
27. श्री कनकगिरि दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, कनकगिरि (चामराजनगर) कर्नाटक
28. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कारकल (उडुपि) कर्नाटक
29. श्री दिगम्बर जैन शांतिगिरि, कोथली (बेलगाम) कर्नाटक
30. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र जैन काशी, मूड़बिद्री (दक्षिण कन्नड) कर्नाटक
31. श्री 1008 भगवान नेमिनाथ दिगम्बर जैन सहस्रकूट, शंखबसदी (गदग) कर्नाटक
32. श्री गोम्मटेश्वर बाहुबली दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र, श्रवणबेलगोला (हासन) कर्नाटक
33. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, स्तवनिधी-बेलगाँव (कर्नाटक)
34. श्री बाहुबली दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, वेणूर (दक्षिण कन्नड़) कर्नाटक

मध्य प्रदेश

35. श्री संकटमोचन पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, आहूजी (धार) म.प्र.
36. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, अहार जी (टीकमगढ़) म.प्र.
37. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, अजयगढ़ (पन्ना) म.प्र.
38. गड़रमल दिगम्बर जैन मंदिर एवं चौबीसी दिगम्बर जैन वन मंदिर, बड़ोह (विदिशा) म.प्र.
39. णमोकार महामंत्र साधना केन्द्र, बही पार्श्वनाथ चौपाटी, बही (मंदसौर) म.प्र.
40. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बहोरीबंद (कटनी) म.प्र.
41. श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बजरंगगढ़ (गुना) म.प्र.
42. श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बंधाजी (टीकमगढ़) म.प्र.
43. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बनेड़िया जी (इन्दौर) म.प्र.
44. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बरेला (जबलपुर) म.प्र.
45. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बरही (वल्लभपुर) भिण्ड (म.प्र.)
46. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, बावनगजा (चूलगिरि) बड़वानी (म.प्र.)
47. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र शांतिनगर, भोजपुर (रायसेन) म.प्र.
48. श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, भौंरासा (विदिशा) म.प्र.
49. श्री 1008 चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बिजौरी (जबलपुर) म.प्र.
50. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बीनाजी (बारहा) सागर (म.प्र.)
51. श्री दिगम्बर जैन चौबीसी बड़ा मंदिर, चंदेरी (गुना) म.प्र.
52. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि, द्रोणगिरि (छतरपुर) म.प्र.
53. श्री 1008 शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, ईथुरवारा (सागर) म.प्र.
54. श्री 1008 दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, फलहोड़ी-बड़ागाँव (टीकमगढ़) म.प्र.
55. श्री संकटहरण गंधर्वपुरी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन तीर्थ, गंधर्वपुरी (देवास) म.प्र.
56. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री गोलाकोटजी-शिवपुरी (म.प्र.)
57. भगवान बाहुबली दिगम्बर जैन मंदिर, गोम्मटगिरि-इंदौर (म.प्र.)
58. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, गोपाचल पर्वत-ग्वालियर (म.प्र.)
59. श्री अभिनंदननाथ दिगम्बर जैन मंदिर, गूड़र (शिवपुरी) म.प्र.

60. श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चौबीसी मंदिर, ग्यारसपुर (विदिशा) म.प्र.
61. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, जामनेर (शाजापुर) म.प्र.
62. श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, जयसिंहपुरा (उज्जैन) म.प्र.
63. श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कैथूली (मंदसौर) म.प्र.
64. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, खजुराहो (छतरपुर) म.प्र.
65. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, खंदारगिरि (गुना) म.प्र.
66. श्री नंदीश्वर जैन मंदिर, खनियाँधाना (शिवपुरी) म.प्र.
67. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कुण्डलगिरि (कोनीजी) जबलपुर (म.प्र.)
68. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, कुण्डलपुर (दमोह) म.प्र.
69. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, लखनादौन (सिवनी) म.प्र.
70. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, मक्सी पार्श्वनाथ (शाजापुर) म.प्र.
71. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, मंगलगिरि (सागर) म.प्र.
72. श्री 1008 शांतिनाथ मनहरदेव दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, मनहरदेव (ग्वालियर) म.प्र.
73 . श्री दिगम्बर जैन मानतुंगगिरि तीर्थक्षेत्र, आमखेड़ा (धार) म.प्र.
74. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, मुक्तागिरि (बैतूल) म.प्र.
75. श्री 1008 दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, रेशंदीगिरि (नैनागिरि) छतरपुर (म.प्र.)
76. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, नेमावर (देवास) म.प्र.
77. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, आदीश्वरगिरि, नोहटा (दमोह) म.प्र.
78. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पचराईजी (शिवपुरी) म.प्र.
79. श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पजनारी (सागर) म.प्र.
80. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पनागर (जबलपुर) म.प्र.
81. श्री दिगम्बर जैन विजयंतीगिरि कलातिशय क्षेत्र, पानीगाँव (बिजवाड़) देवास (म.प्र.)
82. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पपौराजी (टीकमगढ़) म.प्र.
83. श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, पार्श्वगिरि बड़वानी (म.प्र.)
84. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पटेरिया (सागर) म.प्र.
85. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पटनागंज (सागर) म.प्र.
86. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पावई रत्नगिरि (भिण्ड) म.प्र.
87. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पिड़रूवा (सागर) म.प्र.
88. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, पिसनहारी मढ़िया जी (जबलपुर) म.प्र.
89. श्री दिगम्बर जैन तीर्थ, पुष्पगिरि, सोनकच्छ (देवास) म.प्र.
90. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, सिद्धवरकूट (खंडवा) म.प्र.
91. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, सिंहोनियाँ (मुरैना) म.प्र.
92. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नसियाँ जी, सिरोंज (विदिशा) म.प्र.
93. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, सोनागिरि जी (दतिया) म.प्र.
94. श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर (पुरानी सहेली) ग्वालियर (म.प्र.)
95. श्री तालनपुर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, तालनपुर (धार) म.प्र.

96. श्री दिगम्बर जैन चन्द्रोदय कलातिशय तीर्थक्षेत्र, तेजगढ़ (दमोह) म.प्र.
97. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, थुबोनजी (गुना) म.प्र.
98. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र पावागिरिजी , ऊन (खरगोन) म.प्र.
99. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, उरवाहा (शिवपुरी) म.प्र.
100. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र (पुरपट्टन) वरनेर, वरासोंजी (भिण्ड) म.प्र.

महाराष्ट्र

101. श्री 1008 चिंतामणि पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र आसेगाँव (हिंगोली) महा.
102. श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर अतिशय क्षेत्र, आष्टा (कासार) उस्मानाबाद(महा.)
103. श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ स्वामी दिगम्बर जैन संस्थान, अंतरिक्ष पार्श्वनाथ (वाशिम) महा.
104. श्री आदिनाथ स्वामी दि.जैन संस्थान (अतिशय क्षेत्र), भातकुली जैन (अमरावती) महा.
105. श्री सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कौडण्यपुर (अमरावती) महा.
106. श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम (जैन गुरुकुल), कारंजा (लाड़) वाशिम (महा.)
107. श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कचनेर (औरंगाबाद) महा.
108. श्री 1008 संकटहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, जटवाड़ा (औरंगाबाद) महा.
109. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, गजपंथा (नासिक) महा.
110. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन (पहाड़) मंदिर, एलोरा (वेरूल) औरंगाबाद (महा.)
111. श्री 1008 महावीर स्वामी दि.जैन अतिशय क्षेत्र संस्थान, दहिगाँव (सोलापुर) महा.
112. दिगम्बर जैन चैतन्यवन संस्थान, सोनगीर (धूलिया) महा.
113. श्री बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम तथा बाहुबली विद्यापीठ अतिशय क्षेत्र बाहुबली (कुम्भोज) कोल्हापुर (महा.)
114. श्री कलिकुंड पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन सिद्ध (अतिशय) क्षेत्र कुण्डल (सांगली) महा.
115. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, कुंथलगिरि (उस्मानाबाद) महा.
116. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कुन्थुगिरि, दहेमश्री नगर (कोल्हापुर) महा.
117 . श्री 1008 चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, मांडल (जलगांव) महा.
118. श्री मांगीतुंगी जी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, मांगीतुंगी (नासिक) महा.
119. श्री 1008 भगवान पार्श्वनाथ व पंचभैरव क्षेत्रपाल दि. जैन अतिशय क्षेत्र, नाईचाकुर (उस्मानाबाद) महा.
120. श्री 1008 नेमिनाथ भगवान दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, नवागढ़ (परभणी) महा.
121. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नेमगिरि संस्थान, नेमगिरि, जिंतूर (परभणी) महा.
122. श्री 1008 मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पैठण (औरंगाबाद) महा.
123. श्री आचार्य शांतिसागर स्मारक, श्री 1008 आदिनाथ बाहुबली दिगम्बर जैन मंदिर,तेनमूर्ति, पोदनपुर (मुम्बई) महा.
124. श्री 1008 शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, रामटेक (नागपुर) महा.
125. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, सावरगाँव (काटी) उस्मानाबाद (महा.)
126. श्री 1008 मल्लिनाथ दि.जैन अतिशय क्षेत्र, शिरड़ शहापुर (हिंगोली) महा.
127. श्री 1008 भगवान महावीर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, तेर (संस्थान) उस्मानाबाद (महा.)
128. श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, विजय गोपाल (वर्धा) महा.

उड़ीसा

129. श्री खंडगिरि-उदयगिरि दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, खंडगिरि (खुरड़ा) उड़ीसा

पश्चिम बंगाल

130. श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ जैन मंदिर , चिन्सुरा (हुगली) प. बंगाल
131. श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पाकबीरा (पुरुलिया) प.बंगाल

राजस्थान

132. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, अड़िन्दा पार्श्वनाथ (उदयपुर) राज.
133. श्री 1008 अन्देश्वर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, अन्देश्वर (बांसवाड़ा) राज.
134. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नसियाँ जी , अरथूना (बांसवाड़ा) राज.
135. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बिजौलिया (भीलवाड़ा) राज.
136. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, चमत्कारजी (सवाईमाधोपुर) राज.
137. श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, चाँदखेड़ी (झालावाड़) राज.
138. श्री दिगम्बर जैन चन्द्रप्रभु अतिशय क्षेत्र, चन्द्रगिरि (जयपुर) राज.
139. श्री चंवलेश्वर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, चंवलेश्वर पार्श्वनाथ (भीलवाड़ा) राज.
140. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री पार्श्वनाथ, चूलगिरि (जयपुर) राज.
141. श्री देबारी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर अतिशय क्षेत्र, देबारी (उदयपुर) राज.
142. श्री 1008 चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, देहरा-तिजारा (अलवर) राज.
143. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, झाझीरामपुरा (दौसा) राज.
144. श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, केशवरायपाटन (बूंदी) राज.
145. श्री कैलाशपर्वत रचना, खेरवाड़ा (उदयपुर) राज.
146. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, खन्डारजी (सवाईमाधोपुर) राज.
147. श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, खुणादरी (उदयपुर) राज.
148. श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (तीन देवरियाँ), मालपुरा (टोंक) राज.
149. श्री चन्दप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, मेहन्दवास (टोंक) राज.
150. श्री सम्मेदशिखर तीर्थ रचना, केकड़ी (राज.)
151. श्री देवाधिदेव 1008 नागफणी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, नागफणी (डूंगरपुर) राज.
152. श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र, किशनगढ़ (अजमेर) राज.
153. श्री दिगम्बर जैन सम्मेदशिखर पर्वत रचना नसिया जी, नौगामा (बांसवाड़ा) राज.
154. श्री ऋषभदेव दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, ऋषभदेव (श्री केशरियाजी) उदयपुर (राज.)
155. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, सांगानेर (जयपुर) राज.
156. श्री 1008 शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, सांरवना-टोंक (राज.)
157. श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, सरवाड़ (अजमेर) राज.
158. श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, शांतिनाथ (चित्तौड़) राज.
159. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी (करौली) राज.

160. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री पदमपुरा (बाड़ा) जयपुर (राज.)
161. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, वागोलजी (बांसवाड़ा) राज.

तमिलनाडु

162. आचार्य कुंदकुंद तपोभूमि पोन्नूरमलै अतिशय क्षेत्र, कुन्दकुन्दनगर (तिरूवन्नमलय) तमिलनाडु
163. श्री अरिहंतगिरि दिगम्बर जैन मंदिर, तिरूमलै (तिरूवण्णामलै) तमिलनाडु

उत्तरांचल

164. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, अष्टापद बद्रीनाथ (चमोली) उत्तरांचल

उत्तरप्रदेश

165. भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानकल्याणक तीर्थक्षेत्र, अहिच्छत्र पार्श्वनाथ (बरेली) उ.प्र.
166. शाश्वत जन्मभूमि अयोध्या दि.जैन तीर्थक्षेत्र, अयोध्या (फैजाबाद) उ.प्र.
167. श्री पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र, बड़ागाँव (बागपत) उ.प्र.
168. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बहसूमा (मेरठ) उ.प्र.
169. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बानपुर (ललितपुर) उ.प्र.
170. श्री सुपार्श्वनाथ जन्मभूमि दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, भदैनीजी, वाराणसी (उ.प्र.)
171. भगवान पार्श्वनाथ जन्मभूमि वाराणसी जी तीर्थक्षेत्र, भेलूपुर, वाराणसी (उ.प्र.)
172. प्राचीन दि.जैन तीर्थक्षेत्र, चन्द्रवाड़ (फिरोजाबाद) उ.प्र.
173. भगवान चन्द्रप्रभु जन्मभूमि दिगम्बर जैन तीर्थ (चंद्रपुरी), वाराणसी (उ.प्र.)
174. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, देवगढ़जी (ललितपुर) उ.प्र.
175. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, गिरारगिरिजी (ललितपुर) उ.प्र.
176. दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
177. श्री दिगम्बर जैन प्राचीन मंदिर, हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
178. श्री चन्द्रप्रभु दि. जैन अतिशय क्षेत्र, हुसैनपुर कलाँ (मुजफ्फरनगर) उ.प्र.
179. श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, कहाऊँ (देवरिया) उ.प्र.
180. भगवान श्री पुष्पदंतनाथ जन्मभूमि काकंदी जी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, (देवरिया-निकट गोरखपुर) उ.प्र.
181. भगवान श्री विमलनाथ जन्मभूमि दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, कम्पिलजी (फरूखाबाद) उ.प्र.
182. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सांवलिया पार्श्वनाथ, करगुवाँ जी (झाँसी) उ.प्र.
183. श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कारीटोरन (ललितपुर) उ.प्र.
184. भगवान पद्मप्रभु जन्मभूमि कौशाम्बी जी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, कौशाम्बी (उ.प्र.)
185. श्री दिगम्बर जैन अतिशय तीर्थक्षेत्र (ऋषभनगर), मरसलगंज (फिरोजाबाद) उ.प्र.
186. अंतिम केवली श्री 1008 जम्बूस्वामी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, मथुरा चौरासी (मथुरा) उ.प्र.
187. श्री 1008 दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, पावागिर जी (ललितपुर) उ.प्र.
188. श्री पद्मप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री प्रभासगिरि (पभौसा) कौशाम्बी (उ.प्र.)
189. तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग दि. जैन तीर्थ, इलाहाबाद-बनारस हाइवे, इलाहाबाद (उ.प्र.)
190. श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, राजमल (फिरोजाबाद) उ.प्र.

191. भगवान श्री धर्मनाथ जन्मभूमि दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, रत्नपुरी (फैजाबाद) उ.प्र.
192. श्री दिगम्बर जैन तीर्थ श्री ऋषभांचल-वर्द्धमानपुरम् (गाजियाबाद) उ.प्र.
193. ज्ञानस्थली दि. जैन तीर्थ, भूड़वराल (मेरठ) उ.प्र.
194. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र शांतिनाथ, सेरोनजी (ललितपुर) उ.प्र.
195. श्री 1008 भगवान ऋषभदेव दि.जैन अतिशय तीर्थक्षेत्र, सीरोनजी-मड़ावरा (ललितपुर) उ.प्र.
196. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, शांतिगिरि-मदनपुर (ललितपुर) उ.प्र.
197. भगवान नेमिनाथ जन्मभूमि शौरीपुर बटेश्वर दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, शौरीपुर बटेश्वर (आगरा) उ.प्र.
198. भगवान संभवनाथ जन्मभूमि श्रावस्ती जी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र, श्रावस्ती (सहेठ-महेठ) उ.प्र.
199. भगवान श्रेयांसनाथ जन्मभूमि सिंहपुरी जी दि. जैन तीर्थक्षेत्र, सारनाथ (वाराणसी) उ.प्र.
200. श्री दिगम्बर जैन अतिशय चमत्कारी क्षेत्र, टोड़ी-फतेहपुर (झाँसी) उ.प्र.
201. भगवान नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, त्रिलोकपुर (बाराबंकी) उ.प्र.
202. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र त्रिमूर्ति मंदिर, एत्मादपुर (आगरा) उ.प्र.
203. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बहलना (मुजफ्फरनगर) उ.प्र.



रविव्रत की विधि एवं कथा

आदित्यव्रते पार्श्वनाथार्कसंज्ञके आषाढमासे शुक्लपक्षे तत्प्रथमादित्यमारभ्य नवसु अर्कदिनेषु व्रतं कार्यं नववर्षं यावत्। प्रथमवर्षे नवोपवासः, द्वितीयवर्षे नवैकाशनाः, तृतीयवर्षे नवकाञ्जिकाः, चतुर्थवर्षे नवरूक्षाः, पञ्चमवर्षे नवनीरसाः, षष्ठवर्षे नवालवणाः, सप्तमवर्षे नवागोरसाः, अष्टमवर्षे नवोनोदराः, नवमवर्षे अलवणा ऊनोदराः नव। एवमेकाशीतिः कार्याः। व्रतदिने श्रीपार्श्वनाथस्याभिषेकं कार्ये पूजनं च। समाप्तावुद्यापनं च कार्यम्, ये भव्या इदं रविव्रतं विधिपूर्वकं कुर्वन्ति तेषां कण्ठे मुक्तिकामिनी कण्ठरत्नमाला पतिष्यति।

अर्थ–रविव्रत में आषाढ़ मास शुक्ल पक्ष में प्रथम रविवार पार्श्वनाथ संज्ञक होता है, इससे आरंभ कर नौ रविवार तक व्रत करना चाहिए। यह व्रत नौ वर्ष तक किया जाता है। प्रथम वर्ष में नौ रविवारों को उपवास, द्वितीय वर्ष में नौ रविवारों को एकाशन, तृतीय वर्ष में नव रविवारों को काञ्जी–छाछ या छाछ से बने महेरी आदि पदार्थ लेकर एकाशन, चतुर्थ वर्ष में नव रविवारों को बिना घी का रूक्ष भोजन, पंचम वर्ष में नौ रविवारों को नीरस भोजन, षष्ठ वर्ष में नौ रविवारों को बिना नमक का अलोना भोजन, सप्तम वर्ष में नौ रविवारों को बिना दूध, दही और घृत का भोजन, अष्टम वर्ष में नौ रविवारों को ऊनोदर एवं नवम वर्ष में नौ रविवारों को बिना नमक के नौ ऊनोदर किये जाते हैं। इस प्रकार 81 व्रत–दिन होते हैं। व्रत के दिन श्रीपार्श्वनाथ भगवान का अभिषेक और पूजन किया जाता है। जो विधिपूर्वक रविव्रत का पालन करते हैं,उनके गले में मोक्षलक्ष्मी के गले का हार पड़ता है। व्रत पूरा होने पर उद्यापन करना चाहिए।

रविव्रत की यह शास्त्रीय विधि है किन्तु वर्तमान में पूरे 9 वर्ष तक इसमें मात्र अलोना भोजन का एकाशन या उपवास करने की परम्परा भी दिगम्बर जैन समाज में पाई जाती है।

रविव्रत का फल

सुतं वन्ध्या समाप्नोति दरिद्रो लभते धनम्।
मूढः श्रुतमवाप्नोति रोगी मुञ्चति व्याधितः।।

अर्थ–रविवार का व्रत करने से वन्ध्या स्त्री पुत्र प्राप्त करती है, दरिद्री व्यक्ति धन प्राप्त करता है, मूर्ख व्यक्ति शास्त्रज्ञान एवं रोगी व्यक्ति व्याधि से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

कथा–काशी देश की बनारस नगरी का राजा महीपाल अत्यंत प्रजावत्सल और न्यायी था। उसी नगर में मतिसागर नाम का एक सेठ और गुणसुन्दरी नाम की उसकी स्त्री थी। इस सेठ के पूर्व पुण्योदय से उत्तमोत्तम गुणवान तथा रूपवान सात पुत्र उत्पन्न हुए।

उनमें छः का तो विवाह हो गया था, केवल लघु पुत्र गुणधर कुँवारे थे, सो गुप्तेश्वर किसी दिन वन में क्रीड़ा करते विचर रहे थे तो उनको गुणसागर मुनि के दर्शन हो गये। वहाँ मुनिराज का आगमन सुनकर और भी बहुत लोग वन्दनार्थ वन में आये थे, वह सब स्तुति वंदना करके यथास्थान बैठे। श्री मुनिराज उनको धर्मवृद्धि कहकर अहिंसादि धर्म का उपदेश करने लगे।

जब उपदेश हो चुका तब साहूकार की स्त्री गुणसुन्दरी बोली–स्वामी! मुझे कोई व्रत दीजिए। तब मुनिराज ने उसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत का उपदेश दिया और सम्यक्त्व का स्वरूप समझाया और पीछे कहा-बेटी! तू आदित्यवार का व्रत कर, सुन, इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि आषाढ़ मास में शुक्ल पक्ष में अंतिम रविवार (अन्य ग्रंथानुसार अंतिम रविवार है) से लेकर नव रविवारों तक यह व्रत करना चाहिए।

प्रत्येक रविवार के दिन उपवास करना या बिना नमक (मीठा) के अलोना भोजन एक बार (एकासना) करना, पार्श्वनाथ भगवान की पूजा अभिषेक करना। घर के सब आरंभ का त्यागकर विषय और कषाय भावों को दूर करना, ब्रह्मचर्य से रहना, रात्रि जागरण-भजनादि करना और **'ॐ ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथाय नमः'** इस मंत्र की 108 बार जाप करना।

नवधाभक्ति कर मुनिराज को भोजन कराना और नववर्ष पूर्ण होने पर उद्यापन करना। सो नव-नव उपकरण मंदिरों

में चढ़ाना, नव शास्त्र लिखवाना, नव श्रावकों को भोजन कराना, नव-नव फल श्रावकों को बांटना, समवसरण का पाठ पढ़ना, पूजन विधान करना आदि।

इस प्रकार गुणसुंदरी व्रत लेकर घर आई और सब कथा घर के लोगों को कह सुनाई तो घरवालों ने सुनकर इस व्रत की बहुत निंदा की। इसलिए उसी दिन से उस घर में दरिद्रता का वास हो गया। सब लोग भूखों मरने लगे, तब सेठ के सातों पुत्र सलाह करके परदेश को निकले। सो साकेत (अयोध्या) नगरी में जिनदत्त सेठ के घर जाकर नौकरी करने लगे और सेठ-सेठानी बनारस ही में रहे।

कुछ काल के पश्चात् बनारस में कोई अवधिज्ञानी मुनि पधारे, सो दरिद्रता से पीड़ित सेठ-सेठानी भी वंदना को गये और दीन भाव से पूछने लगे-हे नाथ! क्या कारण है कि हम लोग ऐसे रंक हो गये? तब मुनिराज ने कहा–तुमने मुनिप्रदत्त रविवारव्रत की निंदा की है इससे यह दशा हुई है।

यदि तुम पुनः श्रद्धा सहित इस व्रत को करो तो तुम्हारी खोई हुई सम्पत्ति तुम्हें फिर मिलेगी। सेठ-सेठानी ने मुनि को नमस्कार करके पुनः रविवार व्रत किया और श्रद्धा सहित पालन किया जिससे उनको फिर से धन-धान्यादि की अच्छी प्राप्ति होने लगी।

परन्तु इनके सातों पुत्र साकेतपुरी में कठिन मजदूरी करके पेट पालते थे तब एक दिन लघु भ्राता गुणधर वन में घास काटने को गया था, सो शीघ्रता से गट्ठा बांधकर घर चला आया और हंसिया (दरांत) वहीं भूल आया। घर आकर उसने भावज से भोजन माँगा। तब वह बोली–

लालजी! तुम हंसिया भूल आये हो, सो जल्दी जाकर ले आओ पीछे भोजन करना, अन्यथा हंसिया कोई ले जायेगा तो सब काम अटक जायेगा। बिना द्रव्य नया दांतड़ा कैसे आयेगा? यह सुनकर गुणधर तुरंत ही पुनः वन में गया सो देखा कि हंसिया पर बड़ा भारी साँप लिपट रहा है।

यह देखकर वह बहुत दुःखी हुआ कि दांतड़ा बिना लिये तो भोजन नहीं मिलेगा और दांतड़ा मिलना कठिन हो गया है तब वह विनीत भाव से सर्वज्ञ वीतराग प्रभु की स्तुति करने लगा सो उसके एकाग्रचित्त होकर स्तुति करने के कारण धरणेन्द्र का आसन हिला, उसने समझा कि अमुक स्थानों में पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के भक्त को कष्ट हो रहा है।

तब करुणा करके पद्मावती देवी को आज्ञा की कि तुम जाकर प्रभुभक्त गुणधर का दुःख निवारण करो। यह सुनकर पद्मावती देवी तुरंत वहाँ पहुँची और गुणधर से बोली–

हे पुत्र! तुम भय मत करो। यह सोने का दांतड़ा और रत्न का हार तथा रत्नमई पार्श्वनाथ प्रभु का बिंब भी ले जाओ, सो भक्तिभाव से पूजा करना, इससे तुम्हारा दुःख शोक दूर होगा।

गुणधर, देवी द्वारा प्रदत्त द्रव्य और जिनबिंब लेकर घर आया सो प्रथम तो उनके भाई ये देखकर डरे, कि कहीं यह चुराकर तो नहीं लाया है, क्योंकि ऐसा कौन सा पाप है जो भूखा नहीं करता है, परन्तु पीछे गणधर के मुख से सब वृत्तांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार दिनों-दिन उनका कष्ट दूर होने लगा और थोड़े ही दिनों में वे बहुत धनी हो गये। पश्चात् उन्होंने एक बड़ा मंदिर बनवाया, प्रतिष्ठा कराई, चतुर्विध संघ को चारों प्रकार का यथायोग्य दान दिया और बड़ी प्रभावना की।

जब यह सब वार्ता राजा ने सुनी, तब उन्होंने गुणधर को बुलाकर सब वृत्तांत पूछा और अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी परम सुन्दरी कन्या गुणधर को ब्याह दी तथा बहुत सा दान दहेज दिया। इस प्रकार बहुत वर्षों तक वे सातों भाई राज्यमान्य होकर सानंद वहीं रहे, पश्चात् माता-पिता का स्मरण करके अपने घर आये और माता-पिता से मिले। पश्चात् बहुत काल तक मनुष्योचित सुख भोगकर सन्यासपूर्वक मरणकर यथायोग्य स्वर्गादि गति को प्राप्त हुए और गुणधर उससे तीसरे भव में मोक्ष गये।

इस प्रकार व्रत के प्रभाव से मतिसागर सेठ का दरिद्र दूर हुआ और उत्तमोत्तम सुख भोगकर उत्तम-उत्तम गतियों को प्राप्त हुए। जो और भव्यजीव श्रद्धा सहित नौ वर्ष व्रतपूर्वक इस व्रत का पालन करेंगे,वे उत्तम गति पावेंगे।

सुखचिन्तामणि व्रत का स्वरूप

उच्यते, सुखचिन्तामणौ चतुर्दशी चतुर्दशकं, एकादश्येकादशकं, अष्टम्यष्टकं, पंचमी पंचकं तृतीया त्रिकमेवमुपवासाः एकचत्वारिंशत्। न कृष्णपक्षशुक्लपक्षगतो नियमः, केवलां तिथिं नियम्य भवन्तीति उपवासाः। अस्य व्रतस्य पञ्चभावनाः भवन्ति, प्रत्येकभावनयामभिषेको भवति।

अर्थ– सुखचिन्तामणि व्रत में चतुर्दशियों में चौदह उपवास, एकादशियों के ग्यारह उपवास, अष्टमियों के आठ, पंचमियों के पाँच उपवास, तृतीयाओं के तीन उपवास, इस प्रकार कुल 41 उपवास करना चाहिए। इस व्रत में कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष का कुछ भी नियम नहीं है, केवल तिथि का नियम है। उपवास के दिन व्रत की विधेय तिथि का होना आवश्यक है। इस व्रत की पाँच भावना होती हैं, प्रत्येक भावना में एक अभिषेक किया जाता है। अभिप्राय यह है कि चौदह चतुर्दशियों के व्रत के पश्चात् एक भावना, ग्यारह एकादशियों के व्रत के पश्चात् एक भावना, आठ अष्टमियों के व्रत के बाद एक भावना, पाँच पंचमियों के व्रत के पश्चात् एक भावना एवं तीन तृतीयाओं के व्रत के पश्चात् एक भावना करनी पड़ती है। प्रत्येक भावना के दिन भगवान का अभिषेक करना पड़ता है।

विवेचन– सुखचिंतामणि व्रत के लिए केवल तिथियों का विधान है। यह व्रत तृतीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी को किया जाता है। प्रथम इस व्रत का प्रारंभ चतुर्दशी से करते हैं, लगातार चौदह चतुर्दशी अर्थात् सात महीने की चतुर्दशियों में चतुर्दशीव्रत पूरा होता है। साथ ही चतुर्दशी व्रत के तीन उपवास हो जाने पर एकादशी व्रत प्रारंभ होता है। जिस एकादशी से व्रत आरंभ किया जाता है, उस दिन भगवान का अभिषेक करते हैं तथा व्रत की भावना भाते हैं। तीन चतुर्दशियों के व्रत के उपरांत एकादशी और चतुर्दशी दोनों व्रत अपनी-अपनी तिथि में साथ-साथ में किये जाते हैं।

तीन एकादशी व्रत हो जाने के पश्चात् अष्टमी व्रत प्रारंभ किया जाता है। जिस दिन अष्टमी व्रत प्रारंभ करते हैं, उस दिन भगवान का अभिषेक समारोहपूर्वक करते हैं। यह सदा स्मरण रखना होगा कि प्रत्येक व्रत के प्रारंभ में अभिषेक 108 कलशों से किया जाता है। तीन अष्टमी व्रत हो जाने के उपरांत पंचमी व्रत प्रारंभ करते हैं, इसके प्रारंभ करने की विधि पूर्ववत् ही है। चतुर्दशी, एकादशी, अष्टमी और पंचमी ये व्रत एक साथ चलते हैं। दो पंचमी व्रतों के हो जाने पर तृतीया व्रत आरंभ होता है, इस दिन भी वृहद् अभिषेक, पूजन-पाठ आदि धार्मिक कृत्य किये जाते हैं। ये सभी व्रत तीन पक्ष तक अर्थात् तीन तृतीया व्रतों के संपूर्ण होने तक साथ-साथ चलते हैं। तृतीया के दिन ही इन व्रतों की समाप्ति होती है। इस दिन वृहद् अभिषेक समारोहपूर्वक करना चाहिए। उपवास के दिनों में **''ॐ ह्रीं सर्वदुरितविनाशनाय श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः नमः।'** इस मंत्र का जाप प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल करना चाहिए। सुखचिंतामणि व्रत निश्चित तिथि में ही सम्पन्न किया जाता है। यदि व्रत की तिथि आगे-पीछे के दिनों में होती है तो व्रत आगे-पीछे किया जाता है। यह व्रत चिंतामणिरत्न के समान सभी प्रकार के सुखों को देने वाला है। भावना के दिन चिंतामणि भगवान पार्श्वनाथ की पूजा विशेष रूप से की जाती है तथा **'ॐ ह्रीं सर्वसिद्धिकराय श्री पार्श्वनाथाय नमः'** इस मंत्र का जाप किया जाता है।

इस व्रत में 14 चतुर्दशी, 11 एकादशी, 8 अष्टमी, 5 पंचमी एवं 3 तृतीया ऐसे 41 व्रत करने होते हैं। यहाँ पर कार्तिक से व्रत प्रारंभ करने पर क्रम से चार्ट दिया जा रहा है। यदि अन्य किसी माह से प्रारंभ करें तो उस माह से चार्ट बना लेवें।

विधि-कार्तिक से वैशाख तक करना है।

1. **कार्तिक कृष्णा 14**
2. **कार्तिक शुक्ला 14**
3. **मगसिर कृष्णा 14**
4. **मगसिर शुक्ला 11, 14**
5. **पौष कृष्णा 11, 14**
6. **पौष शुक्ला 11, 14**
7. **माघ कृष्णा 8, 11, 14**
8. **माघ शुक्ला 8, 11, 14**
9. **फाल्गुन कृष्णा 8, 11, 14**
10. **फाल्गुन शुक्ला 5, 8, 11, 14**
11. **चैत्र कृष्णा 5, 8, 11, 14**
12. **चैत्र शुक्ला 3, 5, 8, 11, 14**
13. **वैशाख कृष्णा 3, 5, 8, 11, 14**
14. **वैशाख शुक्ला 3, 5, 8, 11, 14**

इस व्रत को किसी भी माह से शुरू कर सकते हैं।

श्रुतस्कंध व्रत

विधि– भादों मास में भादों कृष्णा प्रतिपदा से लेकर आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक यह व्रत किया जाता है। इसमें एक महिने में उत्कृष्ट 16 उपवास, मध्यम 10 और जघन्य 8 उपवास करें। पारणा के दिन यथाशक्ति नीरस या एक-दो आदि रस छोड़कर एक बार भोजन (एकाशन) करें। 16 उपवास करने में प्रतिपदा से एक उपवास, एक पारणा ऐसे आश्विन कृ. प्रतिपदा तक 16 उपवास होंगे। ऐसे ही 10 उपवास में कृष्णपक्ष में दूज, पंचमी, अष्टमी, दशमी और चौदश तथा शुक्लपक्ष में भी 2,5,8,10 और 14 को उपवास करें। 8 उपवास में भी दो पंचमी, 2 अष्टमी, 2 दशमी और 2 चौदस ऐसे 8 उपवास करें। अथवा शक्ति अनुसार जैसे भी हो, वैसे ये उपवास करें।

प्रतिदिन जिनमंदिर में श्रुतस्कंध मंडल बनाकर श्रुतस्कंध विधान पूजन करें। इस व्रत में प्रतिदिन निम्नमंत्र का जाप्य करें– **''ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानेभ्यो नमः।''**

यह व्रत बारह वर्ष तक करें अथवा पांच वर्ष करें। व्रत पूर्ण कर उद्यापन करें। मंदिर में 12-12 उपकरण– घंटा, पूजा के बर्तन, छत्र, चंवर, चंदोवा, चौकी, वेष्टन आदि भेंट करें। शास्त्र छपाकर मंदिर में रखें और मुनि-आर्यिकाओं को तथा श्रावकों को भी शास्त्र भेंट करें। सरस्वती भवन का निर्माण कर श्रुतदेवी की प्रतिमा या श्रुतस्कंध यंत्र स्थापित करें। जिनवाणी के उपदेश आदि द्वारा जैनधर्म की प्रभावना करें। इस प्रकार इस व्रत के प्रभाव से भव्यों को श्रुतज्ञान की वृद्धि होती है और अगले भव में श्रुतकेवली होकर वे परंपरा से केवलज्ञान की प्राप्ति कर लेते हैं।

व्रत की कथा– जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखंड में अंग देश में पटना नगर है। उस नगर के राजा चंद्ररूचि की चन्द्रप्रभा रानी के श्रुतशालिनी नाम की एक कन्या थी। इसे आर्यिका जिनमती के पास विद्याध्ययन के लिए रखा गया। थोड़े ही दिनों में वह कन्या सर्वविद्या में निपुण हो गई। एक दिन श्रुतशालिनी ने एक चौकी पर श्रुतस्कंध मंडल बनाया। इसे देखकर आर्यिका जिनमती ने प्रसन्न होकर कन्या को विद्या में निष्णात समझकर राजा के यहाँ भेज दिया।

एक दिन उद्यान में पधारे वर्द्धमान मुनिराज की वंदना करके राजा ने पूछा– भगवन्! मेरी कन्या को इतने गुण और सुंदर रूप किस पुण्य से मिले हैं? मुनिराज ने कहा– राजन्! इसी जंबूद्वीप के पूर्वविदेह में पुष्कलावती देश में पुण्डरीकिणी नगरी है। वहाँ के राजा गुणभद्र और रानी गुणवती दोनों एक समय सपरिवार श्री सीमंधर भगवान की वंदना को गये। यथायोग्य भक्ति, पूजा करके मनुष्य के कोठे में बैठ गये। पुनः दिव्य उपदेश सुनने के बाद श्रुतस्कंधव्रत का स्वरूप पूछा– तब गणधर देव ने कहा– जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि निरक्षरी वाणी है, यह अनंत भव्यों के हितार्थ होती है। भगवान की दिव्यध्वनि को वहाँ पर बैठे सभी भव्य अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं। भगवान की वाणी सात सौ अठारह भाषा में खिरती है। इसे सुनकर चार ज्ञान के धारी गणधरदेव द्वादशांगरूप में गूंथ लेते हैं।

द्वादशांग के नाम– 1. आचारांग 2. सूत्रकृतांग 3. स्थानांग 4. समवायांग 5. व्याख्याप्रज्ञप्ति 6. ज्ञातृकथांग 7. उपासकाध्ययनांग 8. अंतकृत्दशांग 9. अनुत्तरौपपादिकदशांग 10. प्रश्नव्याकरणांग 11. सूत्रविपाकांग और 12. दृष्टिवादांग।

फिर इन्हीं के आधार से अनेक मुनिगण ग्रंथ रचना करते हैं। यह जिनेन्द्रवाणी समस्त लोक-अलोक के स्वरूप को और त्रिकालवर्ती पदार्थों को प्रदर्शित करने वाली है। समस्त प्राणियों का हित करने वाली है, मिथ्यामतों को दूरकर पूर्वापर विरोधी दोषों से रहित सच्चे धर्म का उपदेश देने वाली है।

अनेक प्रकार से उपदेश देकर श्रीगणधरदेव ने उन्हें श्रुतस्कंध व्रत की विधि बतलाई। राजा गुणभद्र और रानी गुणवती ने इस व्रत को वहीं समवसरण में गणधर गुरु से ग्रहण किया। पुनः विधिवत् इस व्रत को करके अंत में समाधिपूर्वक मरण कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र-इन्द्राणी हुए।

वहाँ से चयकर वह गुणवती रानी का जीव यहाँ तुम्हारी श्रुतशालिनी नाम की कन्या हुई है। इस प्रकार गुरुमुख

से अपने भवांतर सुनकर उस कन्या ने पुनः श्रुतस्कंध व्रत धारण किया। पश्चात् चारित्र के प्रभाव से अंत में समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेदकर इन्द्रपद प्राप्त कर लिया।

कालांतर में इस श्रुतशालिनी के जीव पश्चिम विदेह के कुमुदवती देश के अशोक नगर में राजा पद्मनाभ की रानी जितपद्मा के ''नयंधर'' नाम के तीर्थंकर हुए हैं। ये कामदेव और चक्रवर्ती भी हुए हैं। नयंधर तीर्थंकर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर शुक्लध्यान के द्वारा कर्मों को नष्ट कर केवली हो गये, तब देवों ने समवसरण की रचना कर दी। इन्होंने अनेक देशों में विहार कर भव्यजीवों को धर्मामृत से तर्पित कर अंत में अघातिकर्मों का नाश करके मोक्षपद प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार जो नर-नारी भावसहित इस व्रत का पालन करेंगे, वे अवश्य ही श्रुतज्ञान को पूर्ण कर केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे।

मेघमाला और षोडशकारण व्रतों की विधि

मेघमालाषोडशकारणञ्चैतद्द्वयं समानं प्रतिपद्दिनमेव द्वयोरारम्भं मुख्यतया करणीयम्। एतावान् विशेषः षोडषकारणे तु आश्विनकृष्णा प्रतिपदा एव पूर्णाभिषेकाय गृहीता भवति, इति नियमः। कृष्णपंचमी तु नाम्न एव प्रसिद्धा।

अर्थ—मेघमाला और षोडशकारण व्रत दोनों ही समान हैं। दोनों का आरंभ भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा से होता है। परन्तु षोडशकारण व्रत में इतनी विशेषता है कि इसमें पूर्णाभिषेक आश्विन-कृष्णा प्रतिपदा को होता है, ऐसा नियम है। कृष्णा पंचमी तो नाम से ही प्रसिद्ध है।

विवेचन-सोलहकारण व्रत प्रसिद्ध ही है। **मेघमाला व्रत** भादों बदी प्रतिपदा से लेकर आश्विन वदी प्रतिपदा तक 31 दिन तक किया जाता है। व्रत के प्रारंभ करने के दिन ही जिनालय के आँगन में सिंहासन स्थापित करें अथवा कलश को संस्कृत कर उसके ऊपर थाल रखकर, थाल में जिनबिम्ब स्थापित कर महाभिषेक और पूजन करे। श्वेत वस्त्र पहने, श्वेत ही चन्दोवा बांधे, मेघधारा के समान 1008 कलशों से भगवान का अभिषेक करे। पूजापाठ के पश्चात् **'ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः'** इस मंत्र का 108 बार जाप करना चाहिए।

मेघमाला व्रत में सात उपवास कुल किये जाते हैं और 24 दिन एकाशन करना होता है। तीनों प्रतिपदाओं के तीन उपवास, दोनों अष्टमियों के दो उपवास एवं दोनों चतुर्दशियों के दो उपवास इस प्रकार कुल सात उपवास किये जाते हैं। इस व्रत को पाँच वर्ष तक पालन करने के पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस व्रत की समाप्ति प्रतिवर्ष आश्विन कृष्णा प्रतिपदा को होती है। सोलहकारण का व्रत भी प्रतिपदा को समाप्त किया जाता है, परन्तु इतनी विशेषता है कि सोलहकारण का संयम और शील आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक पालन करना पड़ता है तथा पंचमी को ही इस व्रत की पूर्ण समाप्ति समझी जाती है। यद्यपि पूर्ण अभिषेक प्रतिपदा को ही हो जाता है, परन्तु नाममात्र के लिए पंचमी तक संयम का पालन करना पड़ता है।

मेघमाला व्रत कथा—वत्सदेश की कौशाम्बीपुरी में जब राजा भूपाल राज्य करते थे तब वहाँ पर एक वत्सराज नाम का श्रेष्ठी (सेठ) और उसकी पद्मश्री नाम की सेठानी रहती थी। पूर्वकृत अशुभ कर्म के उदय से उस सेठ के घर में दरिद्रता का वास रहा करता था इस पर भी इसके सोलह (16) पुत्र और (12) कन्याएँ थीं।

गरीबी की अवस्था में इतने बालकों का लालन-पालन करना और गृहस्थी का खर्च चलाना कैसा कठिन हो जाता है, इसका अनुभव उन्हीं को होता है जिन्हें कभी ऐसा प्रसंग आया हो या जिन्होंने अपने आसपास रहने वाले दीन दुखियों की ओर कभी अपनी दृष्टि डाली हो। परम स्नेह करने वाले माता-पिता ही ऐसे समय में अपने प्यारे बालकों को अनुचित और कठोर शब्दों में केवल सम्बोधन ही नहीं करने लगते हैं किन्तु उन्हें बिना मूल्य या मूल्य में बेच तक देते हैं।

प्राणों से प्यारी संतान कि जिसके लिए संसार के अनेकानेक मनुष्य लालायित रहते हैं और अनेक यंत्र-मंत्रादि

कराया करते हैं। हाय! उस दरिद्रावस्था में वह भी भाररूप हो पड़ती है। वत्सराज सेठ इसी चिंता में चिंतित रहता था।

जब ये बालक क्षुधातुर होकर माता से भोजन मांगते तो माता कठोरता से कहे दी-जाओ मरो, लंघन करो, चाहे भीख मांगो तुम्हारे लिए मैं कहाँ से भोजन दे दूँ? यहाँ क्या रखा है जो दे दूँ? सो वे नन्हें बालक झिड़की खाकर जब पिताजी के पास जाते, तब वहाँ से निराशा ही पल्ले पड़ती। हाय उस समय का करुणा क्रन्दन किसके हृदयको विदीर्ण नहीं कर देता है।

एक दिन भाग्योदय से एक चारणऋद्धिधारी मुनि वहाँ आये। उन्हें देखकर वत्सराज सेठ ने भक्तिसहित पड़गाहा और घर में जो रुखा सूखा भोजन शुद्धता से तैयार किया गया था, सो भक्ति सहित मुनिराज को दिया।

मुनिराज उस भक्तिपूर्वक दिये हुए स्वाद सहित भोजन को लेकर वन की ओर सिधार गये। तत्पश्चात् सेठ भी भोजन करके जहाँ श्री मुनिराज पधारे, वहाँ खोजते-खोजते पहुँचा और भक्तिपूर्वक वंदना करके बैठा। श्री गुरु ने इसे सम्यक्त्वादि धर्म का उपदेश दिया।

पश्चात् सेठ ने पूछा–हे दयानिधि! मेरे दरिद्रता होने का कारण क्या है? और अब यह कैसे दूर हो सकती है?

तब श्री गुरु बोले–हे वत्स, सुनो! कौशल देश की अयोध्या नगरी में देवदत्त नामक सेठ की देवदत्ता नाम की सेठानी रहती थी। वह धन कण और रूप लावण्य से संयुक्त तो थी परन्तु कृपण होने के कारण दान धर्म में धन लगाना तो दूर ही रहे किन्तु उल्टा दूसरे का धन हरण करने को तत्पर रहती थी।

एक दिन कहीं से एक गृहत्यागी ब्रह्मचारी जो अत्यन्त हीन शरीर था। सो भोजन के निमित्त उसके घर आ गये। उसे देख सेठानी ने अनेक दुर्वचन कहकर निकाल दिया। वह कृपणा कहने लगी–अरे जा जा, यहाँ से निकल, यहाँ तो घर के बच्चे भूखों मर रहे हैं, फिर दान कहाँ से करें? जो चाहे सो यही ही चला आता है।

इतने ही में उसका स्वामी सेठ भी आ गया और उसने अपनी स्त्री की हाँ में हाँ मिला दी। निदान कुछेक दिनों में वही हुआ, जैसी मनसा वैसी दशा हो गई। अर्थात् उसका सब धन चला गया और वे यथार्थ में भूखों मरने लगे। अति तीव्र पाप का फल कभी-कभी प्रत्यक्ष ही दिख जाता है।

वे सेठ-सेठानी आर्त ध्यान से मरे सो एक ब्राह्मण के घर महिष (भैंस) के पुत्र (पाडा-पाडी) हुए। सो वहाँ भी भूख प्यास की वेदना से पीड़ित हो पानी पीने के लिए एक सरोवर में घुसे थे कि कीच (कादव) में फंस गये और जब तड़फड़ाकर मरणोन्मुख हो रहे थे, उसी दयालु श्रावक ने आकर उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया और मिष्ट शब्दों में सम्बोधन किया।

सो वे पाडा-पाडी वहाँ से मरकर णमोकार मंत्र के प्रभाव से तुम मनुष्य भव को प्राप्त हुए, परन्तु पूर्व संचित पापकर्मों का शेषाँश रह जाने से अब तक दरिद्रता ने तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ा है।

ऐ वत्स! यह दान न देने और यति आदि महात्माओं से घृणा करने का फल है। इसलिए प्रत्येक गृहस्थ को सदैव यथाशक्ति दान धर्म में अवश्य ही प्रवर्तना चाहिए।

अब तुम सत्यार्थ देव अर्हंत, गुरु निर्ग्रंथ और दयामयी धर्म में श्रद्धान करो और श्रद्धापूर्वक मेघमाला व्रत का पालन करो तो सब प्रकार से इस लोक और परलोक संबंधी सुखों को प्राप्त होंगे।

यह व्रत भादो बदी प्रतिपदा से लेकर आश्विन बदी प्रतिपदा तक प्रति वर्ष एक-एक मास करके पाँच वर्ष तक किया जाता है अर्थात् भादों बदी प्रतिपदा से आसोज बदी प्रतिपदा तक (एक मास) श्री जिनालय के आंगन में (चौक में) सिंहासनादि स्थापन करे और उस पर श्री जिनबिम्ब स्थापन करके महाभिषेक और पूजन नित्य प्रति करे, श्वेत वस्त्र पहिने, श्वेत ही चंदोवा बंधावे, मेघ घारा के समान 1008 कलशों में महाभिषेक करके पश्चात् पूजा करे।

पाँच परमेष्ठी की 108 बार जाप करे पश्चात् संगीतपूर्वक जागरण भजन इत्यादि करे। भूमिशयन व ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे। यथाशक्ति चारों प्रकार दान देवे, हिंसादि पंच पापों का त्याग करे तथा एक मास पर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक एक भुक्त उपवास, बेला, तेला आदि शक्ति प्रमाण करे। निरन्तर षट्रसीव्रत पाले अर्थात् नित्य एक रस छोड़कर भोजन करे।

इस प्रकार जब पाँच वर्ष पूर्ण हो जावें तब शक्ति प्रमाण भाव सहित उद्यापन करे अर्थात् पाँच जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा

करावे, पाँच महान ग्रंथ लिखावे, पाँच प्रकार पकवान बनाकर श्रावकों के पाँच घर देवे। पाँच-पाँच घण्टा, झालर, चंदोवा, चमर, छत्र, अछार आदि उपकरण देवे। पाँच श्रावकों (विद्यार्थियों) को भोजन करावे, सरस्वतीभवन बनावे, पाठशाला चलावे इत्यादि और अनेकों प्रभावना बढ़ाने वाले कार्य करे।

इस प्रकार व्रत की विधि सुनकर सेठ-सेठानी ने श्रद्धापूर्वक इस व्रत को पालन किया, सो व्रत के प्रभाव से उनका सब दारिद्रय दूर हो गया और वे स्त्री-पुरुष सुख से काल व्यतीत करते हुए आयु के अंत में सन्यासपूर्वक मरण कर दूसरे स्वर्ग में देव हुए।

फिर वहाँ से चयकर वे पोदनपुर में विजयभद्र नाम के राजा और विजयावती नाम की रानी हुई, सो पूर्ण पुण्य के प्रभाव से धन, धान्य, पुत्र-पौत्रादि सम्पत्ति के अधिकारी हुए।

आयु के अंतिम भाग (वृद्धावस्था) में दोनों राजा और रानी अपने पुत्र को राज्य का अधिकार देकर आप जैनेश्वरी दीक्षा ले तप करने लगे सो तप के प्रभाव से आयु पूर्णकर राजा तो सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र हुआ और रानी भी स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुईं वहाँ से चयकर वे दोनों प्राणी मोक्षपद प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार मेघमाला व्रत के प्रभाव से देवदत्त और देवदत्ता नाम के कृपण सेठ और सेठानी भी मोक्ष पद पावेंगे सो यदि और नरनारी श्रद्धा सहित यह व्रत पालें तो अवश्य उत्तम फल पावेंगे।

षोडशकारण व्रत कथा

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के मगध (बिहार) प्रांत में राजगृही नगर है। वहाँ के राजा हेमप्रभ और रानी विजयावती थी। इस राजा के यहाँ महाशर्मा नामक नौकर था और उनकी स्त्री का नाम प्रियंवदा था। इस प्रियंवदा के गर्भ से कालभैरवी नामक एक अत्यन्त कुरुपी कन्या उत्पन्न हुई कि जिसे देखकर माता-पितादि सभी स्वजनों तक को घृणा होती थी।

एक दिन मतिसागर नामक चारणमुनि आकाशमार्ग से गमन करते हुए उसी नगर में आये, तो उस महाशर्मा ने अत्यन्त भक्ति सहित श्री मुनि को पड़गाह कर विधिपूर्वक आहार दिया और उनसे धर्मोपदेश सुना। पश्चात् जुगलकर जोड़कर विनययुक्त हो पूछा-हे नाथ! यह मेरी कालभैरवी नाम की कन्या किस पापकर्म के उदय से ऐसी कुरुपी और कुलक्षसी उत्पन्न हुई हैं, सो कृपाकर कहिए? तब अवधिज्ञान के धारी श्री मुनिराज कहने लगे, वत्स! सुनो-

उज्जैन नगरी में एक महिपाल नाम का राजा और उसकी वेगावती नाम की रानी थी। इस रानी से विशालाक्षी नाम की एक अत्यन्त सुन्दर रूपवान कन्या थी, जो कि बहुत रूपवान होने के कारण बहुत अभिमानिनी थी और इसी रूप के मद में उसने एक भी सद्गुण न सीखा। यथार्थ है–अहंकारी (मानी) नरों को विद्या नहीं आती है।

एक दिन वह कन्या अपनी चित्रसारी में बैठी हुई दर्पण में अपना मुख देख रही थी कि इतने में ज्ञानसूर्य नाम के महातपस्वी श्री मुनिराज उसके घर से आहार लेकर बाहर निकले, सो इस अज्ञान कन्या ने रूप के मद से मुनि को देखकर खिड़की से मुनि के ऊपर थूक दिया और बहुत हर्षित हुई।

परन्तु पृथ्वी के समान क्षमावान श्री मुनिराज तो अपनी नीची दृष्टि किये हुए ही चले गये। यह देखकर राजपुरोहित इस कन्या का उन्मत्तपना देख उस पर बहुत क्रोधित हुआ और तुरंत ही प्रासुक जल से श्री मुनिराज का शरीर प्रक्षालन करके बहुत भक्ति से वैयावृत्य कर स्तुति की। यह देखकर वह कन्या बहुत लज्जित हुई और अपने किये हुए नीच कृत्य पर पश्चाताप करके श्री मुनि के पास गई और नमस्कार करके अपने अपराध की क्षमा मांगी। श्री मुनिराज ने उसको धर्मलाभ कहकर उपदेश दिया। पश्चात् वह कन्या वहाँ से मरकर तेरे घर यह काल भैरवी नाम की कन्या हुई है। इसने जो पूर्वजन्म में मुनि की निंदा व उपसर्ग करके जो घोर पाप किया है उसी के फल से यह ऐसी कुरुपा हुई है, क्योंकि पूर्व संचित कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है। इसलिए अब इसे समभावों से भोगना ही कर्तव्य है और आगे को ऐसे कर्म न बंधे ऐसा समीचीन उपाय करना योग्य है। अब पुनः वह महाशर्मा बोला–हे प्रभो! आप ही कृपाकर

कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिससे वह कन्या अब इस दुःख से छूटकर सम्यक् सुखों को प्राप्त होवे तब श्री मुनिराज बोले – वत्स! सुनो –

संसार में मनुष्यों के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है, सो भला यह कितना सा दुःख है? जिनधर्म के सेवन से तो अनादिकाल से लगे हुए जन्म मरणादि दुःख भी छूटकर सच्चे मोक्षसुख की प्राप्ति होती है और दुःखों से छूटने की तो बात ही क्या है? वे तो सहज ही में छूट जाते हैं। इसलिए यदि यह कन्या षोडशकारण भावना भावे और व्रत पाले, तो अल्पकाल में ही स्त्रीलिंग छेदकर मोक्ष-सुख को पावेगी। तब वह महाशर्मा बोला – हे स्वामी! इस व्रत की कौन-कौन भावनाएं और विधि क्या है? सो कृपाकर कहिए। तब मुनिराज ने इन जिज्ञासुओं को निम्न प्रकार षोडशकारण व्रत का स्वरूप और विधि बताई।

इन 16 भावनाओं को यदि केवली-श्रुतकेवली के पादमूल के निकट अन्तःकरणसे चिन्तवन की जाये तथा तदनुसार प्रवर्तन किया जाये तो इनका फल तीर्थंकर नाम कर्म के आश्रव का कारण है। आचार्य महाराज **व्रत की विधि कहते हैं–**

भादों, माघ और चैत्र वदी 1 से कुंवार, फाल्गुन और वैशाख वदी 1 तक (एक वर्ष में तीन बार) पूरे एक-एक मास तक यह व्रत करना चाहिए।

इन दिनों तेला-बेला आदि उपवास करें अथवा नीरस वा एक, दो, तीन आदि रस त्यागकर ऊनोदरपूर्वक अतिथि या दीन दुःखी नर या पशुओं को भोजनादि दान देकर एकभुक्त करें। अंजन, मंजन, वस्त्रालंकार विशेष धारण न करे, शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) रखे, नित्य षोडशकारण भावना भावे और यंत्र बनाकर पूजाभिषेक करे, त्रिकाल सामायिक करे और **(ॐ ह्रीं दर्शन-विशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, उपाध्यायभक्ति (बहुश्रुतभक्ति), प्रवचनभक्ति आवश्यकापरिहाणि, मार्ग प्रभावना, प्रवचनवात्सल्यादि षोडशकारणेभ्यो नमः)।**

इस महामंत्र का दिन में तीन बार 108 बार जाप करे। इस प्रकार इस व्रत को उत्कृष्ट सोलह वर्ष, मध्यम 5 अथवा दो वर्ष और जघन्य 1 वर्ष करके यथाशक्ति उद्यापन करे अर्थात् सोलह-सोलह उपकरण श्री मंदिरजी में भेंट दे और शास्त्र व विद्यादान करे, शास्त्र भण्डार खोले, सरस्वती मंदिर बनावे, पवित्र जिनधर्म का उपदेश करे और करावे इत्यादि यदि द्रव्य खर्च करने की शक्ति न हो तो व्रत द्विगुणित करे।

इस प्रकार ऋषिराज के मुख से व्रत की विधि सुनकर कालभैरवी नाम की उसब्राह्मण कन्या ने षोडशकारण व्रत स्वीकार करके उत्कृष्ट रीति से पालन किया, भावना भायी और विधिपूर्वक उद्यापन किया, पीछे वह आयु के अंत में समाधिमरण द्वारा स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें (अच्युत) स्वर्ग में देव हुई। वहाँ से बाईस सागर आयु पूर्ण कर वह देव जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र संबंधी अमरावती देश के गंधर्व नगर में राजा श्रीमंदिर की रानी महादेवी के सीमंधरनाम का तीर्थंकर पुत्र हुआ सो योग्य अवस्था को प्राप्त होकर राज्योचित सुख भोग जिनेश्वरी दीक्षा ली और घोर तपश्चरण करकेवलज्ञान प्राप्त करके बहुत जीवों को धर्मोपदेश दिया तथा आयु के अंत में समस्त अघाति कर्मों का भी नाश कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

इस प्रकार इस व्रत को धारण करने से कालभैरवी नाम की ब्राह्मण कन्या ने सुर नर भवों के सुखों को भोगकर अक्षय अविनाशी स्वाधीन मोक्षसुख को प्राप्त कर लिया, तो जो अन्य भव्यजीव इस व्रत को पालन करेंगे उनको भी अवश्य ही उत्तम फल की प्राप्ति होवेगी।

जिनमुखावलोकन व्रत की विधि

किं नाम जिनमुखावलोकनं व्रतम्? को विधिः? जिनमुखदर्शनानन्तरमाहारो यस्मिन् तज्जिनमुखावलोकनं नामैतत् निरवधि व्रतम्। इदं व्रतं भाद्रपदमासे करणीयम्, प्रोषधोपवासानन्तरं पारणा पुनः प्रोषधोपवासः, एवमेव प्रकारेण मासान्तपर्यन्तमिति।

अर्थ–जिनमुखावलोकन व्रत किसे कहते हैं? इसकी विधि क्या है? आचार्य उत्तर देते हैं कि प्रातःकाल जिनेन्द्रमुख देखने के अनन्तर आहार ग्रहण करना जिनमुखावलोकन व्रत है। यह निरवधि व्रत होता है। यह व्रत भाद्रपद मास में किया जाता है। प्रथम प्रोषधोपवास, अनन्तर पारणा, पुनः प्रोषधोपवास पश्चात् पारणा, इसी प्रकार मासान्त तक उपवास और पारणा करते रहना चाहिए।

विवेचन-जिनमुखावलोकन व्रत के संबंध में दो मान्यताएँ प्रचलित हैं। प्रथम मान्यता इसे एक वर्ष पर्यन्त करने की है और दूसरी मान्यता एक मास तक करने की। प्रथम मान्यता के अनुसार यह व्रत भाद्रपद मास से आरंभ होकर श्रावण मास में पूरा होता है और द्वितीय मान्यता के अनुसार भाद्रपद मास की कृष्ण प्रतिपदा से आरंभ होकर इस मास की पूर्णिमा को समाप्त हो जाता है। एक वर्ष तक करने का विधान करने वालों के मत से वर्ष में कुल 36 उपवास और एक मास का विधान मानने वालों के मत से एक मास में 15 उपवास करने चाहिए।

प्रथम मान्यता बतलाती है कि भाद्रपद मास की प्रतिपदा को पहला उपवास करना चाहिए। पश्चात् इस मास में किन्हीं भी दो तिथियों को दो उपवास करने चाहिए। परन्तु इस बात का ध्यान सदा रखनाहोगा कि प्रत्येक मास में कृष्णपक्ष में दो उपवास और शुक्लपक्ष में एक उपवास करना पड़ता है। इस व्रत के लिए कोई तिथि निर्धारित नहीं की गई है। यह किसी भी तिथि को सम्पन्न किया जा सकता है। प्रथम मान्यता के अनुसार उपवास के दिन रातभर जागरण करते हुए प्रातःकाल श्री जिनेन्द्र प्रभु के मुख का अवलोकन करना चाहिए। रात को **'ॐ अर्हद्भ्यो नमः'** मंत्र का जाप करना चाहिए। जिन दिनों में उपवास नहीं करना है, उन दिनों में उपर्युक्त मंत्र का एक जाप अवश्य करना चाहिए। उपवास के दिन पंचाणुव्रतों का पालन करना, विशेष रूप से ब्रह्मचर्य धारण करना तथा पूजन-सामायिक करना आवश्यक है? जिस समय जिनमुखावलोकन किया जाता है, उस समय व्रत करने वाला भगवान के समक्ष दोनों घुटने पृथ्वी पर टेककर घुटनों के बल बैठ जाता है अथवा सुखासन लगाकर बैठता है। व्रती को भगवान के समक्ष बैठते हुए निम्न मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए।

'ॐ त्रैलोक्यवशंकराय केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीअर्हत्परमेष्ठिने नमः। 'ॐ संसारपरिभ्रमणविनाशनाय अभीष्टफलप्रदानाय धरणेन्द्रफणामण्डलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथस्वामिने नमः। 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा नमः सर्वसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।' इन तीनों मंत्रों का उच्चारण करते हुए अंतिम मंत्र का 108 बार जाप करना चाहिए। प्रोषधोपवास के दिन भी अंतिम मंत्र का तीनों संध्याओं में जाप करना चाहिए। उपवास के दूसरे दिन पारणा करते समय भोज्य वस्तुओं की संख्या निर्धारित कर लेनी चाहिए।

दूसरी मान्यता के अनुसार भी उपवास के दिन **'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौ ह्रः असि आ उ सा नमः सर्वसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।'** इस मंत्र का तीनों संध्याओं में जाप करना चाहिए। अन्य दिनों में दिन में एक बार इस मंत्र का जाप किया जाता है। जिनेन्द्र भगवान के दर्शन के अनन्तर अन्य कार्यों का प्रारंभ करना चाहिए। जिनमुखावलोकन व्रत निरवधि कहलाता है क्योंकि दोनों ही मान्यताओं में इस व्रत के लिए कोई तिथि निश्चित नहीं की गई है। आचार्य ने यहाँ पर दूसरी मान्यता को प्रधानता दी है।



दशलक्षण व्रत की विधि

दशलक्षणिकव्रते भाद्रपदमासे शुक्ले श्रीपंचमीदिने प्रोषधः कार्यः, सर्वगृहारम्भं परित्यज्य जिनालये गत्वा पूजार्चनादिकञ्च कार्यम्। चतुर्विंशतिकां प्रतिमां समारोप्य जिनास्पदे दशलाक्षणिकं यन्त्रं तदग्रे धियते, ततश्च स्नपनं कुर्यात्, भव्यः मोक्षाभिलाषी अष्टधापूजनद्रव्यैः जिनं पूजयेत्। पंचमीदिनमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्तं व्रतं कार्यम्, ब्रह्मचर्यविधिनास्थातव्यम्। इदं व्रतं दशवर्षपर्यन्तं करणीयम्, ततश्चोद्यापनं कुर्यात्। अथवा दशोपवासाः कार्याः। अथवा पंचमीचतुर्दश्योरुपवासद्वयं शेषमेकाशनमिति केषाञ्चिन्मतम्, तत्तु शक्तिहीनतयाङ्गीकृतं न तु परमो मार्गः।

अर्थ—दशलक्षण व्रत भाद्रपद मास में शुक्लपक्ष की पंचमी से आरंभ किया जाता है। पंचमी तिथि को प्रोषध करना चाहिए तथा समस्त गृहारम्भ का त्यागकर जिनमंदिर में जाकर, पूजन-अर्चन, अभिषेक आदि धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिए। अभिषेक के लिए चौबीस भगवान की प्रतिमाओं को स्थापन कर उनके आगे दशलक्षण यंत्र स्थापित करना चाहिए। पश्चात् अभिषेक क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। मोक्षाभिलाषी भव्य अष्ट द्रव्यों से भगवान जिनेन्द्र का पूजन करता है। यह व्रत भादों सुदी पंचमी से भादों सुदी चतुर्दशी तक किया जाता है। दसों दिन ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है।

इस व्रत को दस वर्ष तक पालन किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस व्रत की उत्कृष्ट विधि तो यही है कि दस उपवास लगातार अर्थात् पंचमी से लेकर चतुर्दशी तक दस उपवास करना चाहिए अथवा पंचमी और चतुर्दशी का उपवास तथा शेष दिनों में एकाशन करना चाहिए, परन्तु यह व्रत विधि शक्तिहीनों के लिए बतायी गई है, यह परममार्ग नहीं है।

विवेचन-दशलक्षण व्रत भादों, माघ और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में पंचमी से चतुर्दशी तक किया जाता है। परन्तु प्रचलित रूप में केवल भाद्रपद मास ही ग्रहण किया गया है। दशलक्षण व्रत के दस दिनों में त्रिकाल सामायिक, वंदना और प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं को सम्पन्न करना चाहिए। व्रतारंभ के दिन से लेकर व्रत समाप्ति तक जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के साथ दशलक्षण यंत्र का भी अभिषेक किया जाता है। नित्य नैमित्तिक पूजाओं के अनन्तर दशलक्षण पूजा की जाती है। पंचमी, षष्ठी, सप्तमी आदि दश तिथियों में क्रम से प्रत्येक तिथि को दशों धर्म के मंत्र का क्रम से जाप करना चाहिए। समस्त दिन स्वाध्याय, पूजन, सामायिक आदि कार्यों में व्यतीत करे, रात्रि जागरण करे और समस्त विकथाओं का त्याग कर आत्मचिंतन में लीन रहे। दसों दिन यथाशक्ति प्रोषध, बेला, तेला, एकाशन, ऊनोदर एवं रसपरित्याग करने चाहिए। स्वादिष्ट भोजन का त्याग करे तथा स्वच्छ और सादे वस्त्र धारण करने चाहिए। इस व्रत का पालन दस वर्ष तक किया जाता है।

कथा—धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में विशाल नाम का एक नगर है। वहाँ का प्रियंकर नाम का राजा अत्यंत नीतिनिपुण और प्रजावत्सल था। रानी का नाम प्रियंकरा था, और इसके गर्भ से उत्पन्न हुई कन्या का नाम मृगांकलेखा था।

इसी राजा के मंत्री का नाम मतिशेखर था। इस मंत्री के उसकी शशिप्रभा स्त्री के गर्भ से कमलसेना नाम की कन्या थी।

इसी नगर के गुणशेखर नामक एक सेठ के यहाँ उसकी शीलप्रभा नाम की सेठानी से एक कन्या मदनवेगा नाम की हुई थी और लक्षभट नामक ब्राह्मण के घर चन्द्रभागा भार्या से रोहिणी नाम की कन्या हुई थी।

ये चारों (मृगांकलेखा, कमलसेना, मदनवेगा और रोहिणी) कन्याएं अत्यंत रूपवान, गुणवान तथा बुद्धिमान थी। वे सदैव धर्माचरण में सावधान रहती थीं। एक समय बसंत ऋतु में ये चारों कन्याएँ अपने-अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर वनक्रीड़ा के लिए निकलीं, सो भ्रमण करती-करती कुछ दूर निकल गईं। जबकि ये वन की स्वाभाविक शोभा को देखकर आल्हादित हो रही थीं कि उसी समय उनकी दृष्टि उस वन में विराजमान श्री महामुनिराज पर पड़ी और वे विनयपूर्वक उनको नमस्कार करके वहाँ बैठ गईं और धर्मोपदेश सुनने लगीं। पश्चात् मुनि तथा श्रावकों का द्विविध प्रकार उपदेश सुनकर वे चारों कन्याएँ हाथ जोड़कर पूछने लगीं—हे नाथ! यह तो हमने सुना, अब दया करके हमको ऐसा मार्ग बताइये

कि जिससे इस पराधीन स्त्री पर्याय तथा जन्म-मरणादि के दुःखों से छुटकारा मिले। तब श्री गुरु बोले– बालिकाओं! सुनो–

यह जीव अनादिकाल से मोहभाव को प्राप्त हुए विपरीत आचरण करके ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों को बांधता है और फिर पराधीन हुवा संसार में नाना प्रकार के दुःख भोगता है। सुख यथार्थ में कहीं बाहर से नहीं आता है, न कोई भिन्न पदार्थ ही हैं, किन्तु वह (सुख) अपने निकट ही आत्मा में, अपने ही आत्मा का स्वभाव है, सो जब तीव्र उदय होता है, उस समय यह जीव अपने उत्तमक्षमादि गुणों को (जो यथार्थ में सुख-शांति स्वरूप ही है) भूलकर इनसे विपरीत क्रोधादि भावों को प्राप्त होता है और इस प्रकार स्व पर की हिंसा करता है। सो कदाचित् यह अपने स्वरूप का विचार करके अपने चित्त को उत्तमक्षमादि गुणों से रंजित करे, तो निःसंदेह इस भव और परभव में सुख भोगकर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है। स्त्री पर्याय से छुटना तो कठिन ही क्या है? इसलिए पुत्रियों! तुम मन, वचन, काय से इस उत्तम दशलक्षण रूप धर्म को धारण करके यथाशक्ति व्रत पालो, तो निःसंदेह मनवांछित (उत्तम) फल पाओगी।

भगवान ने 'उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः' अर्थात् उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य, इस प्रकार ये धर्म के दश लक्षण बताये हैं। ये वास्तव में आत्मा के ही निजभाव है। जो क्रोधादि से ढक रहे हैं।

उत्तम क्षमा, क्रोध के उपशम या क्षय होने से प्रगट होती है। इसी प्रकार उत्तम मार्दव मानके उपशम, क्षयोपशम व क्षय से होता है। उत्तम आर्जव, माया के नाश होने से होता है। सत्य, मिथ्यात्व (मोह) के नाश से होता है। शौच, लोभ के नाश से होता है। संयम, विषयानुराग कम व नाश होने से होता है। तप, इच्छाओं को रोकने (मन वश करने) से होता है। त्याग, ममत्व (राग) भाव कम या नाश करने से होता है। आकिंचन्य, निस्पृहता से उत्पन्न होता है और ब्रह्मचर्य काम विकार तथा उनके कारणों को छोड़ने से उत्पन्न होता है। इस प्रकार ये दशों धर्म अपने प्रति घातक दोषों के क्षय होने से प्रगट हो जाते हैं।

(1) क्षमावान् प्राणी कदापि किसी जीव से वैर विरोध नहीं करता है और न किसी को बुरा-भला कहता है। किन्तु दूसरों के द्वारा अपने ऊपर लगाये हुए दोषों को सुनकर अथवा आये हुए उपद्रवों पर भी विचलित चित्त नहीं होता है और उन दुःख देने वाले जीवों पर उल्टा करुणाभाव करके क्षमा देता है तथा अपने द्वारा किये हुए अपराधों की क्षमा मांग लेता है। इस प्रकार यह क्षमावान पुरुष सदा निर्बैर हुआ, अपना जीवन सुख-शांतिमय बनाता है।

(2) इसी प्रकार मार्दव धर्मधारी नर के क्षमा तो होती है किन्तु जाति, कुल, ऐश्वर्य, विद्या, तप और रूपादि समस्त प्रकार के मदों के नाश होने से विनयभाव प्रगट होता है अर्थात् वह प्राणी अपने से बड़ों में भक्ति व विनयभाव रखता है और छोटे में करुणा व नम्रता रखता है, सबसे यथायोग्य मिष्ट वचन बोलता है और कभी भी किसी से कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं करता है। इसी से यह मिष्टभाषी विनयी पुरुष सर्वप्रिय होता है और किसी से द्वेष न होने से सानंद जीवन यात्रा करता है।

(3) आर्जव धर्मधारी पुरुष, क्षमा और मार्दव धर्मपूर्वक ही आर्जवधर्म (सरलता) को धारण करता है। इसके जो कुछ बात मन में होती है, सो ही वचन से कहता है और कही हुई बात को पूरी करता है। इस प्रकार यह सरल परिणाम पुरूष निष्कपट होने के कारण निश्चिंत तथा सुखी होता है।

(4) सत्यवान पुरुष सदैव जो बात जैसी है, अथवा वह जैसी उसे जानता समझता है, वैसी ही कहता है, अन्यथा नहीं कहता, कहे हुए वचनों को नहीं बदलता और न कभी किसी को हानि व दुःख पहुँचाने वाले वचन बोलता है। वह तो सदैव अपने वचनों पर दृढ़ रहता है। इसके उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव ये तीनों धर्म अवश्य ही होते हैं। यह पुरुष अन्यथा प्रलोपी न होने से विश्वासपात्र होता है और संसार में सन्मान व सुख को प्राप्त होता है।

(5) शौचवान नर उपर्युक्त चारों धर्मों को पालता हुआ अपनी आत्मा को लोभ से बचाता है और जो पदार्थ न्यायपूर्वक उद्योग करने से उसके क्षयोपशम के अनुसार उसे प्राप्त होते हैं वह उसमें संतोष करता है और कभी स्वप्न में भी परधन

हरण करने के भाव इनके नहीं होते हैं। यदि अशुभ कर्म के उदय से इसे किसी प्रकार का भी घाटा जो जाये अथवा और किसी प्रकार का द्रव्य चला जाये, तो भी यह दुखी नहीं होता और अपने कर्मों का विपाक समझकर धैर्य धारण करता है, परन्तु अपने घाटे की पूर्ति के लिए कभी किसी दूसरे को हानि पहुँचाने की चेष्टा नहीं करता है। इसको तृष्णा न होने के कारण सदा आनंद में रहता है और इसलिए कभी किसी से ठगाया भी नहीं जाता है।

(6) संयमी पुरुष भी उक्त पाँचों व्रतों को पालता हुआ अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से रोकता है। ऐसी अवस्था में इसे कोई पदार्थ इष्ट व अनिष्ट प्रतीत नहीं होते हैं। क्योंकि विषयानुरागता के ही कारण अपने ग्रहण योग्य पदार्थ इष्ट और आरोचक व ग्रहण न करने योग्य अनिष्ट माने जाते हैं, सो इष्टानिष्ट कल्पना न रहने के कारण उनमें हेयोपादेय कल्पना भी नहीं रहती है, तब समभाव होता है। इसी से यह समरसी आनंद को प्राप्त करता है।

(7) तपस्वी पुरुष इन्द्रियों को वश करता हुआ भी मन को पूर्ण रीति से वश करता है और उसे यत्र तत्र दौड़ने से रोकता है। किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न नहीं होने देता है। जब इच्छा ही नहीं रहती तो आकुलता किस बात की? यह अपने ऊपर आने वाले सब प्रकार के उपसर्गों को धीरतापूर्वक सहन करने में उद्यमी व समर्थ होता है। वास्तव में ऐसा कोई भी सुर-नर व पशु संसार में नहीं जन्मा है, जो इस परम तपस्वी को उसके ध्यान से किंचित्मात्र भी डिगा सके। इसलिए ही इस महापुरुष के एकाग्रचिंतानिरोध रूप धर्म व शुक्लध्यान होता है जिससे यह अनादि से लगे हुए कठिन कर्मों का अल्प समय में नाश करके सच्चे सुखों का अनुभव करता है।

(8) त्यागी पुरुष के उक्त सातों व्रत तो होते ही हैं किन्तु उस पुरुष का आत्मा बहुत उदार हो जाता है। यह अपने आत्मा से रागद्वेषादि भावों को दूर करने तथा स्वपर उपकार के निमित्त आहारादि चारों दान देता है और दान देकर अपने आपको धन्य व स्वसम्पत्ति को सफल हुई समझता है। यह कदापि स्वप्न में भी अपनी ख्याति व यश नहीं चाहता और न दान देकर उसे स्मरण रखता है अथवा न कभी किसी पर प्रगट ही करता है। वास्तव में दान देकर भूल जाना ही दानी का स्वभाव होता है। इससे यह पुरुष सदा प्रसन्नचित्त रहता है और मृत्यु का समय उपस्थित होने पर भी निराकुल रहता है। इसका चित्त धनादि में फंसकर आर्त रौद्ररूप कभी नहीं होता है और उसका आत्मा सद्गति को प्राप्त होता है।

(9) आकिंचन्य–बाह्य आभ्यंतर समस्त प्रकार के परिग्रहों से ममत्व भावों को छोड़ देने वाला पुरुष सदैव निर्भय रहता है, उसे न कुछ सम्हालना और न रक्षा करनी पड़ती है। यहाँ तक कि वह अपने शरीर तक से निस्पृह रहता है, तब ऐसे महापुरुष को कौन पदार्थ आकुलित कर सकता है, क्योंकि वह अपनी आत्मा के सिवाय समस्त परभावों या विभावों को हेय अर्थात् त्याज्य समझता है। इसी से कुछ भी ममत्व शेष नहीं रह जाता और समय-समय असंख्यात व अनन्तगुणी कर्मों की निर्जरा होती रहती है इसी से यह सुखी रहता है।

(10) ब्रह्मचर्यधारी महाबलवान योद्धा सदैव उक्त नव व्रतों को धारण करता हुआ, निरंतर अपनी आत्मा में ही रमण करता है वह बाह्य स्त्री आदि से विरक्त होता है उसकी दृष्टि में सब जीव संसार में एक समान प्रतीत होते हैं और स्त्री, पुरुष व नपुसंकादि का भेद कर्म की उपाधि जानता है। यह सोचता है कि यह देह हाड, मांस, मल, मूत्र, रुधिर, पीव आदि रागी जीवों को सुहावना सा लगता है। यदि वह चाम की चादर हटा दी जाये अथवा वृद्धावस्था आ जाये तो फिर इसकी ओर देखने को भी जी न चाहे इत्यादि, ऐसे घृणित शरीर में क्रीड़ा करना क्या है? मानो विष्टा (मल) के क्रीड़ावत उसमें अपने आपको फंसाकर चतुर्गति के दुःखों में डालता है। इस प्रकार यह सुभट काम के दुजय किले को तोड़कर अपने अनंत सुखमई आत्मा में ही विहार करता है। ऐसे महापुरुषों का आदर सब जगह होता है और तब कोई भी कार्य संसार में ऐसा नहीं रह जाता है कि जिसे वह अखण्ड ब्रह्मचारी न कर सके। तात्पर्य वह सब कुछ करने को समर्थ होता है।

इस प्रकार इन दश धर्मों का संक्षिप्त स्वरूप कहा सो तुमको निरन्तर इन धर्मों को अपनी शक्ति अनुसार धारण करना चाहिए। अब इस दशलक्षण व्रत की विधि कहते हैं–

भादों, माघ और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में पंचमी से चतुर्दशी तक 10 दिन पर्यंत व्रत किया जाता है। दशों दिन

त्रिकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, वंदना, पूजन, अभिषेक, स्तवन, स्वाध्याय तथा धर्मचर्चा आदि कर और क्रम से पंचमी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमल समुद्गताय उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः''** इस मंत्र का 108 बार एक-एक समय इस प्रकार दिन में 324 बार तीन काल सामायिक के समय जाप्य करे और इस उत्तम क्षमा गुण की प्राप्ति के लिए भावना भावे तथा उसके स्वरूप का बारम्बार चिन्तवन करे। इसी प्रकार–

छठमी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः''**
सप्तमी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमआर्जवधर्माङ्गाय नमः''**
अष्टमी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसत्यधर्माङ्गाय नमः''**
नवमी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमशौचधर्माङ्गाय नमः''**
दशमी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसंयमधर्माङ्गाय नमः''**
एकादशी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमतपधर्माङ्गाय नमः''**
द्वादश को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमत्यागधर्माङ्गाय नमः''**
त्रयोदशी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमआकिंचन्यधर्माङ्गाय नमः''**
चतुर्दशी को **''ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः''**
इत्यादि मंत्रों का जाप करके भावना भावे।

समस्त दिन स्वाध्याय पूजादि धर्मकार्यों में बिताये, रात्रि को जागरण भजन करे सब प्रकार के राग द्वेष व क्रोधादि कषाय तथा इन्द्रिय विषयों को बढ़ाने वाली विकथाओं का तथा व्यापारादि समस्त प्रकार के आरंभों का सर्वथा त्याग करे।

दसों दिन यथाशक्ति प्रोषध (उपवास), बेला, तेला आदि करे अथवा ऐसी शक्ति नहो तो एकाशन, उनोदर तथा रस त्याग करके करे, परन्तु कामोत्तेजक, सचिक्कण, मिष्ट-गरिष्ठ (भारी) और स्वादिष्ट भोजनों का त्याग करे तथा अपना शरीर स्वच्छ खादी के कपड़ों से ही ढ़के। बढ़िया वस्त्रालंकार न धारण करे और रेशम, ऊन तथा फैन्सी परदेशी व मिलों के बने वस्त्र तो छुए भी नहीं, क्योंकि वे अनंत जीवों के घात से बनते हैं और कामादिक विकारों को बढ़ाने वाले होते हैं।

इस कारण यह व्रत दश वर्ष तक पालन करने के पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे अर्थात् छत्र, चमर आदि मंगल द्रव्य, जपमाला, कलश, वस्त्रादि धर्मोपकरण प्रत्येक दश-दश श्रीमंदिर जी में पधराना चाहिए तथा पूजा, विधानादि महोत्सव करना चाहिए, दुखित, भुखितों को भोजनादि दान देना चाहिए।

वाचनालय, विद्यालय, छात्रालय, औषधालय, अनाथालय, पुस्तकालय तथा दीन प्राणीरक्षक संस्थाएं आदि स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार द्रव्य खर्च करने में असमर्थ हो तो शक्ति प्रमाण प्रभावनांग को बढ़ाने वाला उत्सव करे अथवा सर्वथा असमर्थ हो तो द्विगुणित वर्षों प्रमाण (20 वर्ष) व्रत करे। इस व्रत का फल स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यह उपदेश व व्रत की विधि सुन उन चारों कन्याओं ने मुनिराज की साक्षीपूर्वक इस व्रत को स्वीकार किया और निज घरों को गईं। पश्चात् दश वर्ष तक उन्होंने यथाशक्ति व्रत पालन कर उद्यापन किया सो उत्तमक्षमादि धर्मों का अभ्यास हो जाने से उन चारों कन्याओं का जीवन सुख और शांतिमय हो गया। वे चारों कन्याएं इस प्रकार सर्व स्त्री समाज में मान्य हो गई। पश्चात् वे अपनी आयु पूर्ण कर अंत समय समाधिमरण करके महाशुक्र नामक दशवें स्वर्ग में अमरगिरि, अमरचूल देवप्रभु और पद्मसारथी नामक महर्द्धिक देव हुए।

वहाँ पर अनेक प्रकार के सुख भोगते हुए अकृत्रिम जिनचैत्यालयों की भक्ति-वंदना करते हुए अपनी आयु पूर्ण कर वहाँ से चले, सो जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मालवा प्रांत के उज्जैन नगर में मूलभद्र राजा के घर लक्ष्मीमती नाम की रानी के गर्भ से पूर्णकुमार, देवकुमार, गुणचन्द्र और पद्मकुमार नाम के रूपवान व गुणवान पुत्र हुए और भले प्रकार बाल्यकाल व्यतीत करके कुमारकाल में सब प्रकार की विद्याओं में निपुण हुए। पश्चात् इन चारों का ब्याह नन्दननगर के राजा इण तथा उनकी पत्नी तिलकसुन्दरी के गर्भ से उत्पन्न कलावती, ब्राह्मी, इन्दुगात्री और कंकू नाम की चार अत्यंत रूपवान तथा

गुणवान कन्याओं के साथ हुआ और ये दम्पत्ति प्रेमपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक दिन राजा मूलभद्र ने आकाश में बादलों को बिखरे देखकर संसार के विनाशीक स्वरूप का चिन्तवन किया और द्वादशानुप्रेक्षा भायी। पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र को राज्यभार सौंपकर आप परम दिगम्बर मुनि हो गये। इन चारों पुत्रों ने यथायोग्य प्रजा का पालन व मनुष्योचित भोग भोगकर कोई एक कारण पाकर जिनेश्वरी दीक्षा ली और महान तपश्चरण करके केवलज्ञान को प्राप्त हो, अनेक देशों में विहार करके धर्मोपदेश दिया। फिर शेष अघातिया कर्मों का भी नाशकर आयु के अंत में योग निरोध करके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हो गये।

इस प्रकार उक्त चारों कन्याओं ने विधिपूर्वक इस व्रत को धारण करके स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग तथा मनुष्यगति के सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया। इसी प्रकार जो और भव्य जीव मन, वचन, काय से इस व्रत को पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त होंगे।

अनन्त चौदश व्रत विधि

अनन्तव्रते तु एकादश्यामुपवासः द्वादश्यामेकभक्तं त्रयोदश्यां काञ्जिकं चतुर्दश्यामुपवासस्तदभावे यथा शक्तिस्तथा कार्यम्। दिनहानिवृद्धौ स एव क्रमः स्मर्त्तव्यः।

अर्थ–अनन्त व्रत में भाद्रपद शुक्ला एकादशी को उपवास, द्वादशी को एकाशन, त्रयोदशी को कांजी–छाछ अथवा छाछ में जौ, बाजरा के आटे को मिलाकर महेरी–एक प्रकार की कढ़ी बनाकर लेना और चतुर्दशी को उपवास करना चाहिए। यदि इस विधि के अनुसार व्रत पालन करने की शक्ति न हो तो शक्ति के अनुसार व्रत करना चाहिए। तिथि-हानि या तिथि-वृद्धि होने पर पूर्वोक्त क्रम ही अवगत करना चाहिए अर्थात् तिथि-हानि में एक दिन पहले से और तिथि-वृद्धि में एक दिन अधिक व्रत करना होता है।

विवेचन–अनन्तव्रत भादों सुदी एकादशी से आरंभ किया जाता है। प्रथम एकादशी को उपवास कर द्वादशी को एकाशन करे अर्थात् मौन सहित स्वाद रहित प्रासुक भोजन ग्रहण करे, सात प्रकार के गृहस्थों के अन्तराय का पालन करे। त्रयोदशी को जिनाभिषेक, पूजन-पाठ के पश्चात् छाछ या छाछ में जौ, बाजरा के आटे से बनाई गई महेरी–एक प्रकार की कढ़ी का आहार ले। चतुर्दशी के दिन प्रोषध करे तथा सोना, चाँदी या रेशम-सूत का अनन्त बनाये, जिसमें चौदह गाँठ लगाये।

प्रथम गाँठ पर ऋषभनाथ से लेकर अनन्तनाथ तक चौदह तीर्थंकरों के नामों का उच्चारण, दूसरी गाँठ पर सिद्धपरमेष्ठी के चौदह[1] गुणों का चिन्तन, तीसरी पर उन चौदह मुनियों का नामोच्चारण जो मति-श्रुत-अवधिज्ञान के धारी हुए हैं, चौथी पर अर्हन्त भगवान के चौदह देवकृत अतिशयों का चिन्तन, पाँचवीं पर जिनवाणी के चौदह पूर्वों का चिन्तन, छठवीं पर चौदह गुणस्थानों का चिन्तन, सातवीं पर चौदह मार्गणाओं का स्वरूप, आठवीं पर चौदह जीवसमासों का स्वरूप, नौवीं पर गंगादि चौदह नदियों का उच्चारण, दसवीं पर चौदह राजू प्रमाण ऊँचे लोक का स्वरूप, ग्यारहवीं पर चक्रवर्ती के चौदह रत्नों[2] का, बारहवीं पर चौदह स्वरों का, तेरहवीं पर चौदह तिथियों का एवं चौदहवीं गाँठ पर आभ्यन्तर

1. तपसिद्धि, विनयसिद्धि, संयमसिद्धि, चारित्रसिद्धि, श्रुताभ्यास, निश्चयात्मक भाव, ज्ञान, बल, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व।

2. गृहपति, सेनापति, शिल्पी, पुरोहित, स्त्री, हाथी, घोड़ा, चक्र, असि (तलवार), छत्र, दण्ड, मणि, चर्म, कांकिणी। कांकिणी रत्न की विशेषता यह होती है कि इससे कठोर से कठोर वस्तु पर भी लिखा जा सकता है, इससे सूर्य के प्रकाश से भी तेज प्रकाश निकलता है।

चौदह प्रकार के परिग्रह से रहित मुनियों का चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार अनन्त का निर्माण करना चाहिए।

पूजा करने की विधि यह है कि शुद्ध कोरा घड़ा लेकर उसका प्रक्षाल करना चाहिए। पश्चात् उस घड़े पर चंदन, केशर आदि सुगंधित वस्तुओं का लेप करना तथा उसके भीतर सोना, चाँदी या ताँबे के सिक्के रखकर सफेद वस्त्र से ढक देना चाहिए। घड़े पर पुष्पमालाएँ डालकर उसके ऊपर थाली प्रक्षाल करके रख देनी चाहिए। थाली में अनन्त व्रत का माड़ना और यंत्र लिखना, पश्चात् चौबीसी एवं पूर्वोक्त विधि से गाँठ दिया हुआ अनन्त विराजमान करना होता है। अनन्त का अभिषेक कर चंदनकेशर का लेप किया जाता है। पश्चात् आदिनाथ से लेकर अनन्तनाथ तक चौदह भगवानों की स्थापना यंत्र पर की जाती है। अष्ट द्रव्य से पूजा करने के उपरांत **'ॐ ह्रीं अर्हन्नमः अनन्तकेवलिने नमः'** इस मंत्र को 108 बार पढ़कर पुष्प चढ़ाना चाहिए अथवा पुष्पों से जाप करना चाहिए। पश्चात् **'ॐ झीं क्ष्वीं हं स अमृतवाहिने नमः'**, **अनेन मंत्रेण सुरभिमुद्रां धृत्वा उत्तमगन्धोदकप्रोक्षणं कुर्यात्'** अर्थात् **'ॐ झीं क्ष्वीं हं स अमृतवाहिने नमः'** इस मंत्र को तीन बार पढ़कर सुरभि मुद्रा द्वारा सुगंधित जल से अनन्त का सिंचन करना चाहिए। अनन्तर चौदहों भगवानों की पूजा करनी चाहिए।

'ॐ ह्रीं अनन्ततीर्थंकराय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसा नमः सर्वशांतिं तुष्टिं सौभाग्यमायुरारोग्यैश्वर्यमष्टसिद्धिं कुरु कुरु सर्वविघ्नविनाशनं कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्र से प्रत्येक भगवान की पूजा के अनन्तर अर्घ्य चढ़ाना चाहिए। **'ॐ ह्रीं हं स अनन्तकेवलीभगवान् धर्मश्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा'** इस मंत्र को पढ़कर अनन्त पर चढ़ाये हुए पुष्पों की आशिका एवं **'ॐ ह्रीं अर्हन्नमः सर्वकर्मबंधनविमुक्ताय नमः स्वाहा'** इस मंत्र को पढ़कर शांति जल की आशिका लेनी चाहिए। इस व्रत में **'ॐ ह्रीं अर्हं हं स अनन्तकेवलिने नमः'** मंत्र का जाप करना चाहिए। पूर्णिमा को पूजन के पश्चात् अनन्त को गले या भुजा में धारण करे।

कथा—इसी जम्बूद्वीप के आर्यखण्डों में कौशल देश है। उसमें अयोध्या नगरी के पास पद्मखण्ड नाम का ग्राम था। उस ग्राम में सोमशर्मा नाम का एक अति दरिद्र ब्राह्मण अपनी सोमा नाम की स्त्री और बहुत सी पुत्रियों सहित रहता था। वह (ब्राह्मण) विद्याहीन और दरिद्र होने के कारण भिक्षा मांगकर उदर पोषण करता था, तो भी भरपेट खाने को नहीं पाता था।

तब एक दिन अपनी स्त्री की सम्मति से उसने सहकुटुम्ब प्रस्थान किया तो चलते समय मार्ग में शुभ शकुन हुए अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियाँ सन्मुख मिलीं। कुछ और आगे चला तो क्या देखता है कि हजारों नर-नारी किसी स्थान को जा रहे हैं, पूछने से विदित हुआ कि वे सब अनन्तनाथ भगवान के समवसरण में वंदना के लिए जा रहे हैं।

यह जानकर यह ब्राह्मण भी उनके पीछे हो लिया और समवसरण में गया। वहाँ प्रभु की वंदना कर तीन प्रदक्षिणा दी और नर कोठे में यथास्थान जा बैठा, जहाँ समवसरण में दिव्यध्वनि सुनकर उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई।

पश्चात् चारित्र का कथन सुनकर उसने जुआ, माँस, मद्य, वेश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्रीसेवन ये सात व्यसन त्याग किये। पंच उदुम्बर और तीन मकार त्याग ये अष्ट मूलगुण भी धारण किये। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और अतिशय लाभ इन पंच पापों का एकदेश त्यागरूप अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी ग्रहण किये। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित बारह व्रत लिए। पश्चात् कहने लगा—

हे नाथ! मेरी दरिद्रता किस प्रकार से मिटे तो कृपा करके कहिए।

तब भगवान ने उसे अनन्त चौदस का व्रत करने को कहा। इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी 11 का उपवास कर 12 और 13 को एकाशन करे अर्थात् एकाशन से मौन सहित स्वादरहित प्रासुक भोजन करे, सात प्रकार गृहस्थों के अन्तराय पाले, पश्चात् चतुर्दशी के दिन उपवास करे तथा चारों दिन ब्रह्मचर्य रखे, भूमि पर शयन करे व्यापार आदि गृहारंभ न करे। मोहादि रागद्वेष तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्यादिक कषायों को छोड़े, सोना, चाँदी या रेशम, सूत आदि का अनन्त बनाकर, इसमें प्रत्येक गाँठ पर 14 गुणों का चिन्तवन करके 14 गांठ लगाना।

प्रथम गाँठ पर ऋषभनाथ भगवान से अनन्तनाथ भगवान तक 14 तीर्थंकरों के नाम उच्चारण करे।

दूसरी गाँठ पर सिद्ध परमेष्ठी के 14 गुण चिन्तवन करे। तीसरी पर 14 मुनि जो मति, श्रुत, अवधिज्ञान युक्त हो

गये हैं उनके नाम उच्चारण करे।

चौथी पर केवली भगवान के 14 अतिशय केवलज्ञान कृत स्मरण करे। पाँचवी पर जिनवाणी में जो 14 पूर्व हैं उनका चिन्तवन करे।

छठवीं पर चौदह गुणस्थानों का विचार करे। सातवीं पर चौदह मार्गणाओं का स्वरूप विचारे।

आठवीं पर 14 जीवसमासों का विचार करे, नवमीं पर गंगादि 14 नदियों का नामोच्चारण करे। दशवीं पर तीन लोक जो 14 राजू प्रमाण ऊँचा है उसका विचार करे।

ग्यारहवीं पर चक्रवर्ती के चौदह रत्नों का चिन्तवन करे। बारहवीं पर 14 स्वर (अक्षर) का चिन्तवन करे। तेरहवीं पर चौदह तिथियों का विचार करे। चौदहवीं गाँठ पर मुनि के मुख्य 14 दोष टालकर जो आहार लेते हैं, उनका विचार करे। इस प्रकार 14 गाँठ लगाकर मेरु के ऊपर स्थापित प्रतिमा के सन्मुख इस अनन्त को रखकर अभिषेक करे। अनन्त प्रभु की पूजन करे फिर नीचे लिखा मंत्र 108 बार जपे–

मंत्र–(1) ॐ ह्रीं अर्हं हं स अनन्तकेवलिने नमः।

मंत्र–(2) ॐ नमोऽर्हते भगवते अणंताणंतसिज्झधम्मे भगवदो महाविज्जा-महाविज्जा अणंताणंतकेवलिए अणंतकेवलणाणे अणंतकेवलदंसणे अणुपुज्जवासणे अणंते अणंतागमकेवली स्वाहा।

इस प्रकार चारों दिन अभिषेक, जप और जागरण, भजन, पूजनादि करे। फिर पूनम के दिन उस अनन्त को दाहिनी भुजा पर या गले में बांधे।

पश्चात् उत्तम मध्यम या जघन्य पात्रों में से जो समय पर मिल सके आहार आदि दान देकर आप पारणा करे। इस प्रकार 14 वर्ष तक करे। पश्चात् उद्यापन करे, तब 14 प्रकार के उपकरण मंदिर में देवे जैसे-शास्त्र, चमर, छत्र, चौकी आदि। चार प्रकार संघों को आमंत्रण करके धर्म की प्रभावना करे। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

इस प्रकार श्रीमुख से व्रत की विधि और उत्तम फल सुनकर उन ब्राह्मण ने स्त्री सहित यह व्रत लिया तथा और भी बहुत लोगों ने यह व्रत लिया।

पश्चात् नमस्कार करके वह ब्राह्मण अपने ग्राम में आया और भाव सहित 14 वर्ष व्रत को विधियुक्त पालन करके उद्यापन किया। इससे दिनोंदिन उसकी बढ़ती होने लगी। इसके साथ रहने से और भी बहुत लोग धर्म-मार्ग में लग गये। क्योंकि लोग जब उसकी इस प्रकार बढ़ती देखकर उससे इसका कारण पूछते तो वह अनन्त व्रत आदि व्रतों की महिमा और जिनभाषित धर्म के स्वरूप का कथन कह सुनाता। इससे बहुत लोगों की श्रद्धा उस पर हो जाती और वे उसे गुरु मानने लगते।

इस प्रकार वह ब्राह्मण भले प्रकार सांसारिक सुखों को भोगकर अन्त में सन्यास मरण कर स्वर्ग में देव हुआ। उसकी स्त्री भी समाधि से मरकर उसी स्वर्ग में उसकी देवी हुई। वहाँ अपनी पूर्व-पर्याय का अवधि से विचारकर धर्मध्यान सेवन करके वहाँ से चये, सो वह ब्राह्मण का जीव अनन्तवीर्य नाम का राजा हुआ और ब्राह्मणी उसकी पट्टरानी हुई।

ये दोनों दीक्षा लेकर अनन्तवीर्य तो इसी भव से मोक्ष को प्राप्त हुए और श्रीमती स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्ग में देव हुई। वहाँ से चयकर मध्यलोक में मनुष्य भव धारण कर संयम ले मोक्ष जावेगी।

इस प्रकार एक दरिद्र ब्राह्मणी अनन्त व्रत पालकर सद्गति को पाकर उत्तमोत्तम गति को प्राप्त हुई। यदि अन्य भव्य जीव यह व्रत पालेंगे तो वे भी सद्गति पावेंगे।

सुगंधदशमी व्रत

जम्बूद्वीप के विजयार्ध पर्वत की उत्तरश्रेणी में शिवमंदिर नाम का एक नगर है। वहाँ का राजा प्रियंकर और रानी मनोरमा थी सो वे अपने धन, यौवन आदि के ऐश्वर्य में मदोन्मत्त हुए जीवन के दिन पूरे करते थे। धर्म किसे कहते हैं, वह उन्हें मालूम भी न था।

एक समय सुगुप्त नाम के मुनिराज कृश शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहार के निमित्त बस्ती में आये, उन्हें देखकर रानी ने अत्यंत घृणापूर्णक उनकी निंदा की और पान की पीक मुनि पर थूंक दी। सो मुनि तो अन्तराय होने के कारण बिना ही आहार लिए पीछे वन में चले गये और कर्मों की विचित्रता पर विचार कर समभाव धारण कर ध्यान में निमग्न हो गये।

परन्तु थोड़े दिन पश्चात् रानी मरकर गधी हुई, फिर सूकरी हुई, फिर कूकरी हुई, फिर वहाँ से मरकर मगध देश के बसंततिलका नगर में विजयसेन राजा की रानी चित्रलेखा की दुर्गन्धा नाम की कन्या हुई। सो इसके शरीर से अत्यन्त दुर्गन्ध निकला करती थी।

एक समय राजा अपनी सभा में बैठा था कि धनपाल ने आकर समाचार दिया कि हे राजन्! आपके नगर के वन में सागरसेन नाम के मुनिराज चतुर्विध संघ सहित पधारे हैं।

यह समाचार सुनकर राजा प्रजा सहित वन्दना को गया और भक्तिपूर्वक नतमस्तक हो राजा ने स्तुति, वंदना की। पश्चात् मुनि तथा श्रावक के धर्मों के उपदेश सुनकर सबने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। किसी ने सम्यक्त्व ही अंगीकार किया। इस प्रकार उपदेश सुनने के अनन्तर राजा ने नम्रतापूर्वक पूछा–

हे मुनिराज! यह मेरी कन्या दुर्गन्धा किसी पाप के उदय से ऐसी हुई है सो कृपाकर कहिए। तब श्री गुरु ने उसके पूर्व भवों का समस्त वृत्तांत मुनि की निंदादिक कह सुनाया, जिसको सुनकर राजा और कन्या सभी को पश्चाताप हुआ। निदान राजा ने पूछा–प्रभो! इस पाप से छूटने का कौन सा उपाय है? तब श्री गुरु ने कहा–

समस्त धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन है, सो अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनभाषित धर्म में श्रद्धा करके उनके सिवाय अन्य रागी-द्वेषी देव-भेषी गुरु, हिंसामय धर्म का परित्याग, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण इन पाँच व्रतों को अंगीकार करे और सुगंध दशमी का व्रत पालन करे जिससे अशुभ कर्म का क्षय होवे।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है–**कि भादों सुदी दशमी के दिन चारों प्रकार के आहारों को त्यागकर समस्त गृहारम्भ का त्याग करे और परिग्रह का भी प्रमाणकर जिनालय में जाकर श्री जिनेन्द्रदेव की भाव सहित अभिषेकपूर्वक पूजा करे।** सामायिक स्वाध्याय करे। धर्म कथा के सिवाय अन्य विकथाओं का त्याग करे, रात्रि में भजनपूर्वक जागरण करे। पश्चात् दूसरे दिन चौबीस तीर्थंकरों की अभिषेकपूर्वक पूजा करके अतिथियों (मुनि व श्रावक) को भोजन कराकर आप पारणा करे। चारों प्रकार के दान देवे। इस प्रकार दश वर्ष तक यह व्रत पालन कर पश्चात् उद्यापन करे।

अर्थात् चमर, छत्र, घण्टा, झारी, ध्वजा आदि दश-दश उपकरण जिनमंदिरों में भेंट देवे और दश प्रकार के श्रीफल आदि फल दश घर के श्रावकों को बांटे। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे, तो दूना व्रत करे।

उत्तम व्रत उपवास करने से, मध्यम कांजी आहार और जघन्य एकाशन करने से होता है।

इस व्रत के दिन श्री शीतलनाथ भगवान की पूजा करें एवं **''ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्री शीतलनाथ जिनेंद्राय नमः''** मंत्र का जाप्य करें।

इस प्रकार राजा प्रजा सबने व्रत की विधि सुनकर अनुमोदना की और स्वस्थान को गये। दुर्गन्धा कन्या ने मन, वचन-काय से सम्यक्त्वपूर्वक व्रत को पालन किया। एक समय दसवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवान के कल्याणक के समय देव तथा इन्द्रों का आगमन देखकर उस दुर्गन्धा कन्या ने निदान किया कि मेरा जन्म स्वर्ग में होवे, सो निदान के

प्रभाव से यह राजकन्या स्वर्ग में अप्सरा हुई और उसका पिता राजा मरकर दसवें स्वर्ग में देव हुआ।

यह दुर्गन्धा कन्या अप्सरा के भव से आकर मगध देश के पृथ्वीतिलक नगर में राजा महिपाल की रानी मदनसुन्दरी के मदनावती नाम की कन्या हुई, सो अत्यन्त रूपवान और सुगंधित शरीर हुई और कौशाम्बी नगरी के राजा अरिनंदन के पुत्र पुरुषोत्तम के साथ इस मदनावती का ब्याह हुआ। इस प्रकार वे दम्पत्ति सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक समय वन में सुगुप्ताचार्य नाम के आचार्य संघ सहित आये सो वह राजकुमार पुरुषोत्तम अपनी स्त्री सहित वंदना को गया तथा और भी नगर के लोग वंदना को गये सो स्तुति, नमस्कार आदि करने के अनन्तर श्रीगुरु के मुख से जीवादि तत्त्वों का उपदेश सुना। पश्चात् पुरुषोत्तम ने कहा-

हे स्वामी! मेरी यह मदनावती स्त्री किस कारण से ऐसी रूपवान और अति सुगंधित शरीर है? तब श्री गुरु ने मदनावती के पूर्व भवांतर कहे और सुगंधदशमी के व्रत का माहात्म्य बताया तो पुरुषोत्तम और मदनावती दोनों अपने भवांतर की कथा सुनकर संसार, देह भोगों से विरक्त हो दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगे।

इस प्रकार तपश्चरण के प्रभाव से मदनावती स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुई। वहाँ बाईस सागर सुख से आयु पूर्ण करके अंत समय चयकर मगध देश के वसुंधा नगरी में मकरकेतु राजा के यहाँ देवी पट्टरानी के कनककेतु नाम का सुन्दर गुणवान पुत्र हुआ।

पिता के दीक्षा ले लेने पर कितने काल राज्य करके वह भी अपने मकरध्वज पुत्र को राज्य दे दीक्षा लेकर तपश्चरण करक और देश-विदेशों में विहार करके अनेक जीवों को धर्म के मार्ग में लगाने लगे। इस प्रकार कितने काल कनककेतु मुनिनाथ को केवलज्ञान हुआ और बहुत काल तक उपदेशरूपी अमृत की वृष्टि करके शेष अघाति कर्मों का नाशकर परम पद मोक्ष को प्राप्त हुए।

इस प्रकार सुगंधदशमी का व्रत पालकर दुर्गन्धा भी अनुक्रम से मोक्ष को प्राप्त हुई तो भव्य जीव यदि यह व्रत पालें तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखों को पावें।

रत्नत्रय व्रत विधि

रत्नत्रयं तु भाद्रपदचैत्रमाघशुक्लपक्षे च द्वादश्यां धारणं चैकभक्तं च त्रयोदश्यादिपूर्णिमान्तमष्टमं कार्यम्, तदभावे यथाशक्ति काञ्जिकादिकं, दिनवृद्धौ, तदधिकतया कार्यम्, दिनहानौ तु पूर्वबिमारभ्य तदन्तं कार्यमिति पूर्वक्रमो ज्ञेयः।

अर्थ—रत्नत्रय व्रत भाद्रपद, चैत्र और माघ मास में किया जाता है। इन महीनों के शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि को व्रत धारण करना चाहिए तथा एकाशन करना चाहिए। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा का उपवास करना, तीन दिन का उपवास करने की शक्ति न हो तो कांजी आदि लेना चाहिए। रत्नत्रय व्रत के दिनों में किसी तिथि की वृद्धि हो तो एक दिन अधिक व्रत करना एवं एक तिथि की हानि होने पर एक दिन पहले से लेकर व्रत समाप्ति पर्यंत उपवास करना चाहिए। यहाँ पर भी तिथि हानि और तिथि वृद्धि में पूर्व क्रम ही समझना चाहिए।

विवेचन—रत्नत्रय व्रत के लिए सर्वप्रथम द्वादशी को शुद्ध भाव से स्नानादि क्रिया करके स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कर जिनेन्द्र भगवान का पूजन-अभिषेक करे। द्वादशी को इस व्रत की धारणा और प्रतिपदा को पारणा होती है। अतः द्वादशी को एकाशन के पश्चात् चारों प्रकार के आहार का त्याग कर, विकथा और कषायों का त्याग करे। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को प्रोषध तथा प्रतिपदा को जिनाभिषेकादि के अनन्तर किसी अतिथि या किसी दुःखित-बुभुक्षित को भोजन कराकर एक बार आहार ग्रहण करे। अपने घर में ही अथवा चैत्यालय में जिनबिम्ब के निकट रत्नत्रय यंत्र की भी स्थापना करे।

द्वादशी से लेकर प्रतिपदा तक पाँचों ही दिनों को विशेषरूप से धर्मध्यानपूर्वक व्यतीत करें। प्रतिदिन त्रैकालिक सामायिक और रत्नत्रय विधान करना चाहिए। प्रतिदिन प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल में **'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः'** इस मंत्र का जाप करना चाहिए। इस व्रत को 13 वर्ष तक पालने के उपरांत उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रत की उत्कृष्ट विधि है, इतनी शक्ति न हो तो बेला करे तथा आठ वर्ष व्रत करके उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रत की मध्यम विधि है। यदि इस मध्यम विधि को सम्पन्न करने की भी शक्ति न हो तो त्रयोदशी और पूर्णिमा को एकाशन एवं चतुर्दशी को प्रोषध करना चाहिए। यह जघन्य विधि है, इस विधि से किये गये व्रत का तीन या पाँच वर्ष के बाद उद्यापन कर देना चाहिए। इस व्रत में पाँच दिन तक शीलव्रत का पालन करना आवश्यक है।

कथा–जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में कक्ष नाम का एक देश और वीतशोकपुर नाम का एक नगर है। वहाँ एक अत्यन्त पुण्यवान वैश्रवण नाम का राजा रहता था, जो कि पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन करता था।

एक दिन वह (वैश्रवण) राजा बसंत ऋतु में क्रीड़ा के निमित्त उद्यान में यत्र-तत्र सानंद विचर रहा था कि इतने ही में उसकी दृष्टि एक शिला पर विराजमान ध्यानस्थ श्री मुनिराज पर पड़ी। सो तुरंत ही हर्षित होकर वह राजा श्री मुनिराज के समीप आया और विनययुक्त नमस्कार करके बैठ गया। श्री मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो उन्होंने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे–

यह जीव अनादिकाल से मोहकर्मवश मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करता हुआ पुनः-पुनः कर्मबंध करता और संसार में जन्म-मरणादि अनेक प्रकार दुःखों को भोगता है इसलिए जब तक इस रत्नत्रय (जो कि आत्मा का निज स्वभाव है) की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक यह यह (जीव) दुःखों से छूटकर निराकुलता स्वरूप सच्चे सुख व शांति की प्राप्ति नहीं हो सकती, जो कि वास्तव में इस जीव को हितकारी है। इसलिए भगवान ने "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग कहा है और सच्चा सुख मोक्ष अवस्था ही में मिलता है, इसलिए मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करना मुमुक्षु जीवों का परम कर्तव्य है।

(1) पुद्गलादि परद्रव्यों से भिन्न निज स्वरूप का श्रद्धान (स्वानुभव) तथा उसके कारणस्वरूप सप्त तत्त्वों और सत्यार्थ देव, गुरु व शास्त्र का श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन अष्ट अंग सहित और 25 मल दोष रहित धारण करना चाहिए अर्थात् जिन भगवान के कहे हुए वचनों में शंका नहीं करना, संसार के विषयों की अभिलाषा न करना, मुनि आदि साधर्मियों के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि न करना, धर्मगुरु के सत्यार्थ तत्त्वों की यथार्थ पहचान करना अर्थात् कुगुरु (रागीद्वेषी भेषी परिग्रही साधु गृहस्थ) कुदेव (रागीद्वेषी भयंकर देव कुधर्म हिंसापोषक क्रियाओं) की प्रशंसा भी न करना, धर्म पर लगते हुए मिथ्या आक्षेपों को दूर करना और अपनी बड़ाई व परनिंदा का त्याग करना, सम्यक् श्रद्धान और चारित्र से डिगते हुए प्राणियों को धर्मोपदेश तथा द्रव्यादि देकर किसी प्रकार स्थिर करना और धर्म और धर्मात्माओं में निष्कपट भाव से प्रेम करना और सर्वोपरि सर्व हितकारी श्री दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा बताये हुए श्री पवित्र जिनधर्म का यथार्थ प्रभाव सर्वोपरि प्रकट कर देना ये ही अष्ट अंग है।

इनसे विपरीत शंकादि आठ दोष–1. जाति 2. कुल 3. बल 4. ऐश्वर्य 5. धन 6. रूप 7. विद्या और 8. तप इन आठ के आश्रित हो गर्व करना सो आठ मद, कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु सेवक, सुदेव आधारक और कुधर्म धारक, ये छः अनायतन और 1 लोकमूढ़ता (लौकिक चमत्कारों के कारण लोभ में फंसकर रागी द्वेषी देवों को पूजना) और तीन पाखण्डी मूढ़ता (कुलीन आडम्बरधारी गुरुओं की सेवा करना) इस प्रकार ये पच्चीस सम्यक्त्व के दूषण हैं। इससे सम्यक्त्व का एकदेश घात होता है इसलिए इन्हें त्याग देना चाहिए।

(2) पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय आदि दोषों से रहित जानना सो सम्यग्ज्ञान है।

(3) आत्मा की निज परिणति (जो वीतराग रूप है) में ही रमण करता है अर्थात् रागद्वेषादि विभाव भावों, क्रोधादि कषायों से आत्मा को अलग करने व बचाने के लिए व्रत, संयम, तपादिक करना सो सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार इस

रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग को समझकर और उसे स्वशक्ति अनुसार धारण करके जो कोई भव्यजीव बाह्य तपाचरण धारण करता है वही सच्चे (मोक्ष) सुख को प्राप्त होता है।

इस प्रकार रत्नत्रय का स्वरूप कहकर अब बाह्य व्रत पालने की विधि कहते हैं–

भादो, माघ और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में, तेरस चौदस और पूनम इस प्रकार तीन दिन यह व्रत किया जाता है और 12 को व्रत की धारणा तथा प्रतिपदा को पारणा किया जाता है अर्थात् 12 को श्री जिन भगवान की पूजनाभिषेक करके एकाशन (एकभुक्त) करे और फिर मध्यान्हकाल की सामायिक करके उसी समय से चारों प्रकार के (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय) आहार तथा विकथाओं और सब प्रकार के आरंभों का त्याग करें। इस प्रकार तेरस, चौदस और पूनम तीन प्रोषध दिन (प्रोषध उपवास) करे और प्रतिपदा (पडवा) को श्री जिनदेव के अभिषेक पूजन के अनन्तर सामायिक करके तथा किसी अतिथि वा दुःखित–भूखित को भोजन कराकर भोजन करे, इस दिन भी एकभुक्त ही करना चाहिए।

इन व्रतों के पाँचों दिनों में समस्त सावद्य (पाप बढ़ाने वाले) आरंभ और विशेष परिग्रह का त्याग करके अपना समय सामायिक, पूजा, स्वाध्यायादि धर्मध्यान में बितावे। इस प्रकार यह व्रत 12 वर्ष तक करके पश्चात् उद्यापन करे और यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे, यह उत्कृष्ट व्रत की विधि है।

यदि इतनी भी शक्ति न होवे तो बेला करे या कांजी आहार करे तथा आठ वर्ष करके उद्यापन करे यह मध्यम विधि है और जो इतनी शक्ति न होवे तो एकासना करके करे और तीन ही वर्ष या पाँच वर्ष तक करके उद्यापन करे, यह जघन्य विधि है। सो स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण कर पालन करे। नित्य प्रतिदिन में त्रिकाल सामायिक तथा रत्नत्रय पूजन विधान करे और तीन बार इस व्रत का जाप्य जपे अर्थात् **'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः'**, इस मंत्र की 108 बार जाप जपे, तब एक जाप्य होती है।

इस प्रकार व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन करे अर्थात् श्री जिनमंदिर में जाकर महोत्सव करे। छत्र, चमर, झारी, कलश, दर्पण, पंखा, ध्वजा और ठमनी आदि मंगल द्रव्य चढ़ावे, चन्दोवा बंधावे और कम से कम तीन शास्त्र मंदिर में पधरावे, प्रतिष्ठा करे, उद्यापन के हर्ष में विद्यादान करे, पाठशाला, छात्रावास, अनाथालय, पुस्तकालय आदि संस्थाएं ध्रौव्यरूप से स्थापित करे और निरन्तर रत्नत्रय की भावना भाता रहे।

इस प्रकार श्री मुनिराज ने राजा वैश्रवण को उपदेश दिया सो राजा ने सुनकर श्रद्धापूर्वक इस व्रत को यथाविधि पालन कर किया, पूर्ण अवधि होने पर उत्साह सहित उद्यापन किया।

पश्चात् एक दिन वह राजा एक बहुत बड़े बड़ के वृक्ष को जड़ से उखड़ा हुआ देखकर वैराग्य को प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर अंत समय समाधिमरण कर अपराजित नामक विमान में अहमिन्द्र हुआ और फिर वहाँ से चयकर मिथिलापुरी में महाराजा कुंभराय के यहाँ, सुप्रभावती रानी के गर्भ से मल्लिनाथ तीर्थंकर हुए सो पंचकल्याणक को प्राप्त होकर अनेक भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में लगाकर आप परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

इस प्रकार वैश्रवण राजा ने व्रत पालन कर स्वर्ग के, मनुष्यों के सुख को प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया और सदा के लिए जन्म-मरणादि दुखों से छुटकारा पाकर अविनाशी स्वाधीन सुखों को प्राप्त हुए। इसलिए जो नर-नारी मन, वचन, काय से इस व्रत की भावना भाते हैं अर्थात् रत्नत्रय को धारण करते हैं। वे भी राजा वैश्रवण के समान स्वर्गादि मोक्षसुख को प्राप्त होते हैं।

मुकुटसप्तमी व्रत और निर्दोषसप्तमी व्रतों का स्वरूप

मुकुटसप्तमी तु श्रावणशुक्लसप्तम्येव ग्राह्या, नान्या तस्याम् आदिनाथस्य वा पार्श्वनाथस्य मुनिसुव्रतस्य च पूजां विधाय कण्ठे मालारोपः। शीर्षमुकुटश्च कथितभागमे। भाद्रपदशुक्लासप्तमीव्रतमागमे निर्दोषसप्तमीव्रतं कथियम्। सप्तवर्षावधिर्यावत् अनयोः व्रतयोः विधानं कार्यम्।

मुकुट सप्तमी व्रत

अर्थ—श्रावणशुक्ला सप्तमी को ही मुकुट सप्तमी कहा जाता है, अन्य किसी महीने की सप्तमी का नाम मुकुट सप्तमी नहीं है। इसमें आदिनाथ अथवा पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथ का पूजन कर जयमाला को भगवान् का आशीर्वाद समझकर गले में धारण करना चाहिए। इस व्रत को आगम में शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत भी कहा गया है।

भाद्रपद शुक्ला सप्तमी के व्रत को आगम में निर्दोष सप्तमी व्रत कहा जाता है। इस व्रत में भी भगवान् पार्श्वनाथ की पूजा करनी चाहिए। सात वर्ष तक इन दोनों व्रतों का अनुष्ठान करना चाहिए। पश्चात् उद्यापन करना चाहिए।

विवेचन—आगम में श्रावण शुक्ला सप्तमी और भाद्रपद शुक्ला सप्तमी इन दोनों तिथियों के व्रत का विधान मिलता है। श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथि के व्रत को **मुकुटसप्तमी या शीर्षमुकुट सप्तमी** कहा गया है। इस तिथि को व्रत करने वाले को षष्ठी तिथि से ही संयम ग्रहण करना चाहिए। षष्ठी तिथि को प्रातःकाल भगवान् की पूजा, अभिषेक करके एकाशन करना चाहिए, मध्याह्नकाल के सामायिक के पश्चात् भगवान् की प्रतिमा या गुरु के सामने जाकर संयमपूर्वक व्रत करने का संकल्प करना चाहिए।चारों प्रकार के आहार का त्याग सोलह प्रहर के लिए भोजन के समय ही कर देना चाहिए।

सप्तमी को प्रातःकाल सामायिक करने के पश्चात् नित्यक्रियाओं से निवृत्त होकर पूजा-पाठ, स्वाध्याय, अभिषेक आदि क्रियाओं को करना चाहिए। पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथ की पूजा करने के उपरांत जयमाला (फूलमाला) को अपने गले में धारण करना चाहिए। मध्याह्न में पुनः सामायिक करना चाहिए। अपराह्न में चिंतामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। संध्याकाल में सामायिक, आत्मचिंतन और देवदर्शन आदि क्रियाओं को सम्पन्न करना चाहिए। तीनों बार की सामायिक क्रियाओं के अनंतर **''ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथाय नमः, ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथाय नमः''** इन दोनों मंत्रों का जाप करना आवश्यक है। इस प्रकार मंत्र का रात में भी एक जाप करना चाहिए। अष्टमी को पूजन, अभिषेक और स्वाध्याय के अनंतर उपर्युक्त मंत्रों का जाप कर एकाशन करना चाहिए। इस प्रकार सात वर्षों तक मुकुटसप्तमी व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर व्रत की समाप्ति करनी चाहिए।

कथा– जम्बूद्वीप के कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नगर है। वहाँ के राजा विजयसेन की रानी विजयावती से मुकुटशेखरी और विधिशेखरी नाम की दो कन्याएँ थीं। इन दोनों बहनों में परस्पर ऐसी प्रीति थी कि एक दूसरी के बिना क्षण भर भी नहीं रह सकती थी। निदान राजा ने ये दोनों कन्याएँ अयोध्या के राजपुत्र त्रिलोकमणि को ब्याह दी।

एक दिन बुद्धिसागर और सुबुद्धिसागर नाम के दो चारणऋषि आहार के निमित्त नगर में आये। सो राजा ने उन्हें विधिपूर्वक पड़गाहकर आहार दिया और धर्मोपदेश श्रवण करने के अनंतर राजा ने पूछा-हे नाथ! मेरी इन दोनों पुत्रियों में परस्पर इतना विशेष प्रेम होने का कारण क्या है?

तब श्री ऋषिराज बोले–इसी नगर में धनदत्त नामक एक सेठ था, उनके जिनवती नाम की एक कन्या थी और वहीं एक माली की वनमती कन्या भी थी सो इन दोनों कन्याओं ने मुनि के द्वारा धर्मोपदेश सुनकर मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया था। एक समय ये दोनों कन्याएँ उद्यान में खेल रही थीं (मनोरंजन कर रही थीं) कि इन्हें सर्प ने

काट खाया सो नवकार मंत्र का आराधन करके देवी हुईं और वहाँ से चयकर तुम्हारी पुत्री हुई हैं। सो इनका यह स्नेह भवांतर से चला आ रहा है। इस प्रकार भवांतर की कथा सुनकर दोनों कन्याओं ने प्रथम श्रावक के पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह व्रत लिए और पुनः मुकुटसप्तमी व्रत धारण किया। सो प्रतिवर्ष श्रावण सुदी सप्तमी को प्रोषध करतीं और 'ॐ ह्रीं श्री वृषभतीर्थंकरेभ्यो नमः' इस मंत्र का जाप्य करतीं तथा अष्टद्रव्य से श्री जिनालय में जाकर भाव सहित जिनेन्द्र की पूजा करती थीं।

इस प्रकार यह व्रत उन्होंने सात वर्ष तक विधिपूर्वक किया पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करके सात-सात उपकरण जिनालय में भेंट किये। इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और अंत में समाधिमरण करके सोलहवें स्वर्ग में स्त्रीलिंग छेदकर इंद्र और प्रतीन्द्र हुईं। वहाँ पर देवोचित सुख भोगे और धर्मध्यान में विशेष समय बिताया।

पश्चात् वहाँ से चयकर ये दोनों इन्द्र-प्रतीन्द्र मनुष्य होकर कर्म काट कर मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार सेठ जी तथा माली की कन्याओं ने व्रत (मुकुटसप्तमी) पालकर स्वर्गों के अपूर्व सुख भोगे। अब वहाँ से चयकर मनुष्य हो मोक्ष जावेंगे। धन्य है! जो और भव्य जीव, भाव सहित यह व्रत धारण करें, तो वे भी इसी प्रकार सुखों को प्राप्त होवेंगे।

निर्दोष सप्तमी व्रत

निर्दोष सप्तमी व्रत भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को करना चाहिए। इस व्रत में षष्ठी तिथि से संयम ग्रहण करना चाहिए। इस व्रत की समस्त विधि मुकुटसप्तमी के ही समान है, अंतर इतना है कि इसमें रात भी जागरणपूर्वक व्यतीत की जाती है अथवा रात के पिछले प्रहर में अल्प निद्रा लेनी चाहिए। **'ॐ ह्रीं सर्वविघ्ननिवारकाय श्री शांतिनाथस्वामिने नमः स्वाहा'** इस मंत्र का जाप करना होगा। कषाय, राग-द्वेष-मोह आदि विकारों का भी त्याग करना अनिवार्य है, इस व्रत को इस प्रकार करना चाहिए जिससे किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगे। आत्मपरिणामों को निर्मल और विशुद्ध रखने का प्रयास करना चाहिए। इस व्रत की अवधि भी सात वर्ष है, पश्चात् उद्यापन कर छोड़ देना चाहिए।

कथा—मगध देश के पाटली पुत्र (पटना) नगर में पृथ्वीराज राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मदनावती था। उसी नगर में अर्हदास नाम का एक सेठ रहता था जिसकी लक्ष्मीमती नाम की स्त्री थी और दूसरा सेठ धनपति जिसकी स्त्री का नाम नंदनी था, नंदनी सेठानी के मुरारी नाम का एक पुत्र था, सो सांप के काटने से मर गया इसलिए नंदनी तथा उसके घर के लोग अत्यंत करुणाजनक विलाप करते थे अर्थात् सब ही शोक में निमग्न थे।

नंदनी तो बहुत शोकाकुल रहती थी। उसे ज्यों-ज्यों समझाया जाता था त्यों-त्यों अधिकाधिक शोक करती थी। एक दिन नंदनी के रुदन (जिसमें पुत्र के गुणगान करती हुई रोती थी) को सुनकर लक्ष्मीमती सेठानी ने समझा कि नंदनी के घर गायन हो रहा है, तब वह सोचने लगी कि नंदनी के घर तो कोई मंगल कार्य नहीं है अर्थात् ब्याह व पुत्र जन्मादि उत्सव तो कुछ भी नहीं है तब किस कारण गायन हो रहा है? अच्छा चलकर पूछूं तो सही क्या बात है?

ऐसा विचार कर लक्ष्मीमती सहज स्वभाव से हँसती हुई नंदनी के घर गई और नंदनी से हँसते हुए पूछा—ऐ बहिन! तुम्हारे घर कोई मंगल कार्य है ऐसा तो सुना ही नहीं गया, तब यह गायन किसलिए होता रहता है, कृपया बताओ।

तब नंदनी गुस्सा करके बोली—अरी बाई! तुझे हँसी की पड़ी है और मुझपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है, मेरा कुल का दीपक प्यारा, आँखों का तारा पुत्र सर्प के काटने से मर गया है, इसी से मेरी नींद और भूख प्यास सब चली गई है, मुझे संसार में अंधेरा लगता है।

दुःखियों ने दुःख रोया, सुखियों ने हँस दिया। मुझे रोना आता है और तुझे हँसना। जा जा! अपने घर। एक दिन तुझे भी अतुल दुःख आवेगा, तब जानेगी कि दूसरे का दुःख कैसा होता है?

इस पर लक्ष्मीमती अपने घर चली गई और नंदनी उससे निःकारण वैर का सांप मँगाया, और एक घड़े में घर जाकर लक्ष्मीमती के घर भिजवा दिया, और कहला दिया कि इस घड़े में सुंदर हार रखा है सो तुम पहनो।

नंदनी का अभिप्राय था कि जब लक्ष्मीमती घड़े में हाथ डालेगी तो सांप इसे काटेगा और वह दुःखियों की हँसी करने का फल पावेगी।

जब दासी लक्ष्मीमती के घर वह विषैला सांप का घड़ा लेकर गई और यथायोग्य सुश्रूषा के वचन कहकर घड़ा भेंट कर दिया, तब लक्ष्मीमती दासी को पारितोषिक देकर विदा किया और अपने घड़े को उघाडकर उसमें से हार निकालकर पहन लिया। (लक्ष्मीमती के पुण्य के प्रभाव से सांप का हार हो गया है) और हर्ष सहित जिनालय की वंदना निमित्त गई। सो मदनावती रानी ने उसे देख लिया और राजा ने लक्ष्मीमती जैसा हार मंगा देने के लिये हठ करने लगी।

इस पर राजा ने अर्हदास सेठ को बुलाकर कहा–हे सेठ! जैसा हार तुम्हारी सेठानी का है वैसा ही रानी के लिए बनवा दो, और जो द्रव्य लगे भंडार से ले जाओ। अब अर्हदास श्रेष्ठी ने सेठानी से लेकर वही हार राजा को दिया, सो राजा के हाथ पहुँचते ही हार का पुनः सर्प हो गया।

इस प्रकार वह सांप अर्हदास के हाथ में हार और राजा के हाथ में सांप हो जाता था। यह देखकर राजा और सभाजन सभी आश्चर्ययुक्त हो हार का वृत्तांत पूछने लगे परंतु सेठ कुछ भी कारण न बता सका।

भाग्योदय से वहाँ मुनि संघ आया सो राजा और प्रजा सभी वंदना को गये। वंदना कर धर्मोपदेश सुना और अंत में राजा ने वह हार और सांप वाली आश्चर्य की बात पूछी तब मुनिराज ने कहा–हे राजा! इस सेठ ने पूर्व भव में निर्दोष सप्तमी का व्रत किया है, उसी के पुण्य फल से यह सांप का हार बन जाता है।

और तो बात ही क्या है, इस व्रत के फल से स्वर्ग और अनुक्रम से मोक्षपद भी प्राप्त होता है, और इस व्रत की विधि इस प्रकार है सो सुनो–

भादो सुदी 7 को आवश्यक वस्त्रादि परिग्रह रख शेष समस्त आरंभ व परिग्रह का त्याग करके श्री जिनमंदिर में जावे और प्रभु का अभिषेक आरंभ करे अर्थात् वहाँ पर दूध का कुण्ड भरकर उसमें प्रतिमा स्थापित करे और पंचामृत का अभिषेक करने के पश्चात् अष्टद्रव्य से भाव सहित पूजन करे और स्वाध्याय करे।

इस प्रकार धर्मध्यान में बितावे। पश्चात् दूसरे दिन हर्षोत्सव सहित जिनदेव का पूजन अर्चन करके अतिथि को भोजन कराकर और दीन दुःखियों को यथावश्यक दान देकर आप भोजन करे। इस प्रकार सात वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करे और यदि उद्यापन की शक्ति न हो, तो दूने वर्षों तक व्रत करे।

उद्यापन इस प्रकार करे–बारह प्रकार का पकवान और बारह प्रकार के फल तथा मेवा श्रावकों को बाँटे। बारह-बारह कलश, झारी, चन्दोवा आदि समस्त उपकरण जिनमंदिर में चढ़ावे। बारह शास्त्र लिखाकर पधरावे और चतुर्विध दान करे।

राजा ने यह सब व्रत विधान सुनकर स्वशक्ति अनुसार श्रद्धा सहित इस व्रत को पालन किया और अंत में आयु पूर्ण कर (समाधिमरण कर) सातवें स्वर्ग में देव हुआ। और भी जो भव्य जीव श्रद्धा सहित इस व्रत को पालेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त होंगे।



श्री आकाशपंचमी व्रत कथा

आर्यखण्ड के सोरठ देश में तिलकपुर नाम का एक विशाल नगर था। वहाँ महीपाल नाम का राजा और विचक्षणा नामक रानी थी। उसी नगर में भद्रशाल नाम का व्यापारी रहता था उसकी नन्दा नाम की स्त्री से विशाला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई।

यद्यपि वह कन्या अत्यन्त रूपवान थी, तथापि इसके मुख पर सफेद कोढ़ हो जाने से सारी सुन्दरता नष्ट हो गई थी। इसलिए उसके माता-पिता तथा वह कन्या स्वयं भी रोया करती थी, परन्तु कर्मों से क्या वश है? निदान माता का उपदेश से पुत्री धर्मध्यान में रत रहने लगी, जिससे कुछ दुःख कम हुआ।

एक दिन एक वैद्य आया और उसने सिद्धचक्र की आराधना करके औषधि दी जिससे उस कन्या का रोग दूर हो गया। तब उस भद्रशाल ने अपनी कन्या उसी वैद्य को ब्याह दी। पश्चात् वह पिंगल वैद्य इस विशाला नाम की वणिक पुत्री के साथ कितने ही दिन पीछे देशाटन करता हुआ, चित्तौड़गढ़ की ओर आया, वहाँ पर भीलों ने उसे मारकर सब धन लूट लिया।

निदान विशाला वहाँ से पति और द्रव्य रहित हुई नगर के जिनालय में गई और जिनराज के दर्शन करके वहाँ तिष्ठे हुए श्री गुरु को नमस्कार करके बोली– प्रभु! मैं अनाथनी हूँ, मेरा सर्वस्व खो गया, पति भी मारा गया और द्रव्य भी लूट गया। अब मुझे कुछ भी नहीं सूझता है कि क्या करूँ, कृपाकर कुछ कल्याण का मार्ग बताइये।

तब मुनिराज ने कहा-बेटी सुनो, यह जीव सदैव अपने ही पूर्वकृत कर्मों का शुभाशुभ फल भोगता है। तू प्रथम जन्म में इसी नगर में वेश्या थी। तू रूपवान तो थी ही, परन्तु गायन विद्या में भी निपुण थी।

एक समय सोमदत्त नाम के मुनिराज यहाँ आये। यह सुनकर नगर के लोग वंदना को गये और बहुत उत्साह से उत्सव किया सो जैसे सूर्य का प्रकाश उल्लू को अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार कुछ मिथ्यात्वी विधर्मी लोगों ने मुनि से वाद-विवाद किया और अन्त में हारकर वेश्या (तुझे ही) को मुनि के पास ठगने के लिए (भ्रष्ट करने को) भेजा तो तूने पूर्ण स्त्री चरित्र फैलाया, सब प्रकार रिझाया, शरीर का आलिंगन भी किया, परन्तु जैसे सूर्य पर धूल फेंकने से सूर्य का कुछ बिगड़ता ही नहीं किन्तु फेंकने वाले ही का उल्टा बिगाड़ होता है उसी प्रकार मुनिराज तो अचल मेरुवत स्थिर रहे और तू हार मानकर लौट आई।

इससे इन मिथ्यात्वी अधर्मियों को बड़ा दुःख हुआ और तुझे भी बहुत पश्चाताप हुआ। अन्त में तुझे कोढ़ हो गया सो दुःखित अवस्था में मरकर तू चौथे नर्क गई। वहाँ से आकर तू यहाँ वणिक के घर पुत्री हुई है। यहाँ भी तुझे सफेद कोढ़ हुआ था। सो पिंगल वैद्य ने तुझे अच्छा किया और उसी से तेरा पाणिग्रहण भी हुआ था।

पश्चात् पूर्व पाप के उदय से चोरों ने उसे मार डाला और तू उससे बचकर यहाँ तक आई है। अब यदि तू कुछ धर्माचरण धारण करेगी, तो शीघ्र ही इस पाप से छूटेगी इसलिए सबसे प्रथम तू सम्यग्दर्शन को स्वीकार कर अर्थात् श्री अर्हन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी जिन भगवान के कहे हुए धर्मशास्त्र के सिवाय अन्य मिथ्या देव, गुरु और धर्म को छोड़ जीवादिक सात तत्त्वों का श्रद्धान कर और सम्यग्दर्शन के निःशंकित आदि आठ अंगों का पालन करके उसके 25 मल दोषों का त्यागकर, तब निर्मल सम्यग्दर्शन सधेगा। इस प्रकार सम्यक्त्वपूर्वक श्रावक के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि 12 व्रत को पालन करते हुए आकाशपंचमी व्रत को भी पालन कर।

यह व्रत भादों सुदी 5 को किया जाता है। इस दिन चार प्रकार का आहार त्यागकर उपवास धारण करे और अष्ट प्रकार के द्रव्य से श्रीजिनालय में जाकर भगवान का अभिषेकपूर्वक पूजन करें। पश्चात् रात्रि के समय खुले मैदान में या छत (अगासी) पर बैठकर भजनपूर्वक जागरण करे तथा वहाँ भी सिंहासन रखकर श्री चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमा स्थापन करे और प्रत्येक प्रहर में अभिषेक करके पूजन करे और यदि उस समय उस स्थान पर वर्षा आदि के कारण कितने ही उपसर्ग आवें तो सब सहन करे परन्तु स्थान को न छोड़े।

तीनों समय महामंत्र नवकार के 108 जाप करे। इस प्रकार 5 वर्ष तक करे। जब व्रत पूरा हो जावे तो उत्साह सहित उद्यापन करे।

परम्परा में भगवान सुमतिनाथ की पूजा एवं जाप्य करते हैं– **ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय नमः।**

छत्र, चमर, सिंहासन, तोरण, पूजन के बर्तन आदि प्रत्येक 5 (पांच) नंग मंदिर में भेंट करे और कम से कम पांच शास्त्र पधरावे। चार प्रकार के संघ को चारों प्रकार का दान देवे और भी विशेष प्रभावना करे। इस प्रकार विशाला कन्या ने श्रद्धापूर्वक बारह व्रत स्वीकार किये और इस आकाशपंचमी व्रत को भी विधि सहित पालन किया। पश्चात् समाधिमरण कर वह चौथे स्वर्ग में मणिभद्र नाम का देव हुआ।

वहाँ उसने देवाँगनाओं सहित क्रीड़ा करते हुए अनेक तीर्थों के दर्शन, पूजा, वंदना तथा समवसरण आदि की वंदना की। इस प्रकार सात सागर की आयु पूर्ण कर उज्जैन नगर में प्रियंगुसुन्दर नामक राजा के यहाँ तारामती नामक रानी से सदानंद नामक पुत्र हुआ, सो कितने काल राज्योचित सुख भोगे।

पश्चात् एक दिन नगर के बाहर वन में मुनिराज के दर्शन कर और उनके मुख से संसार से पार उतारने वाला धर्म का उपदेश सुनकर उसने वैराग्य को प्राप्त होकर जिनदीक्षा अंगीकार की और शुक्लध्यान के बल से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस प्रकार विशाला नाम की वणिक कन्या ने व्रत के प्रभाव से स्वर्ग और मोक्षपद प्राप्त किया, तो यदि श्रद्धा सहित अन्य जीव यह व्रत पालेंगे तो क्यों न उत्तम सुखों को प्राप्त होवेंगे? अवश्य होंगे।



सप्तपरमस्थान व्रत विधि

सज्जातिः सद्गार्हस्थ्यं पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता।
साम्राज्यं परमार्हन्त्यं परिनिर्वाणमित्यपि।।

सज्जाति, सद्गार्हस्थ्य, पारिव्राज्य, सुरेन्द्रता, साम्राज्य, आर्हन्त्य और निर्वाण ये सात परम-सर्वोत्तम स्थान माने गये हैं। माता-पिता के वंश परम्परा की शुद्धि सज्जाति है। श्रावकाचार क्रियायुक्त श्रावक सद्गृहस्थ है। रत्नत्रय की पूर्ति हेतु जैनेश्वरी दीक्षा लेना पारिव्राज्य स्थान है। पंडितमरण से समाधिपूर्वक मरण कर देवेन्द्र होना सुरेन्द्रत्व परम स्थान है। वहाँ से च्युत होकर चक्रवर्ती के वैभव को प्राप्त करना साम्राज्य स्थान है। तीर्थंकर पद को प्राप्त करना आर्हन्त्य स्थान हैं। अनंतर संपूर्ण कर्मों से छूटकर सिद्धपद प्राप्त कर लेना निर्वाण परम स्थान है।

यह व्रत श्रावण सुदी प्रतिपदा से श्रावण सुदी सप्तमी तक किया जाता है। व्रत के दिन अभिषेक, जाप्य, कथा श्रवण, दान आदि कार्यों को करना चाहिए। सातों दिन एक ही वस्तु का सेवन किया जाता है। विधिवत् व्रत करने के उपरांत उद्यापन किया जाता है।

इस व्रत का फल उत्तम जाति, ऐश्वर्य, गार्हस्थ्य, उत्तम तप, इन्द्र पद, चक्रवर्ती पद, अर्हंत पद की प्राप्ति होती है। संसार में निर्वाण ही श्रेष्ठ पद है। इस व्रत से यह सातवाँ परमपद भी प्राप्त हो जाता है। यह व्रत लौकिक अभ्युदय के साथ-साथ निर्वाण पद को भी देने वाला है।

प्रतिपदा से लेकर सप्तमी तक निम्नलिखित जाप्य क्रम से करना चाहिए।

1. ॐ ह्रीं अर्हं सज्जातिपरमस्थानप्राप्तये श्री ऋषभजिनेन्द्राय नमः।

2. ॐ ह्रीं अर्हं सद्गृहस्थपरमस्थानप्राप्तये श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः।

3. ॐ ह्रीं अर्हं पारिव्राज्यपरमस्थानप्राप्तये श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं सुरेन्द्रपरमस्थानप्राप्तये श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं साम्राज्यपरमस्थानप्राप्तये श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं आर्हन्त्यपरमस्थानप्राप्तये श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं निर्वाणपरमस्थानप्राप्तये श्री महावीरजिनेन्द्राय नमः।

व्रत के लिए उत्तम तो उपवास ही है, यदि शक्ति न हो तो एक वस्तु का भोजन करना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक-पूजन करके सप्तपरमस्थान पूजन करना चाहिए। रात्रि में जागरण आदि करते हुए धर्मध्यान में सारा समय व्यतीत करना चाहिए।

कथा–जम्बूद्वीप के अन्तर्गत इसी भरतक्षेत्र के कांभोज नाम का एक देश है। उसमें भूमितिलक नगर है। वहाँ पर देवपाल राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। यहाँ के राजश्रेष्ठी धनदत्त थे और उनकी सेठानी का नाम धनश्री था। एक समय जिनमंदिर में पूजन करके सेठ दम्पती ज्ञानसागर मुनि के पास पहुँचे, उन्हें नमोस्तु-वंदना आदि करके धर्मोपदेश सुना। पुनः बोले–हे भगवन्! मुझे संसार समुद्र से पार होने के लिए कोई एक व्रत दीजिए। मुनिराज ने सप्तपरमस्थान व्रत की विधि समझाकर व्रत दिया। पुनः वे बोले–हे गुरुदेव! पूर्व में यह किसने किया है। मुनिराज ने इस पर एक कथा सुनाई।

इसी भरतक्षेत्र के अन्तर्गत नेपाल देश में ललितपुर नामक एक नगर है। वहाँ पर भूपाल नामक राजा की रानी का नाम विशाला था। संतान न होने से ये हमेशा खिन्न रहा करते थे। एक समय देशभूषण महामुनि के दर्शन करके धर्मोपदेश सुना। पुनः प्रश्न किया–हे भगवन्! हमारे पुत्र संतान होगी या नहीं? महामुनि ने कहा–तुम्हारे महापुण्यशाली एक पुत्र होने वाला है। राजा ने कहा–भगवन्! उसने पूर्व में क्या पुण्य किये हैं। मुनिनाथ ने कहा–सुनो.....

हस्तिनापुर नगर में रुद्रदत्त नाम का एक धर्मात्मा सेठ रहता था। उसकी भार्या का नाम रुद्रदत्ता था। इनके सोलह पुत्र थे। सेठ ने पुत्रों का विवाह करके प्रत्येक को 18-18 करोड़ द्रव्य दिया और अपनी पत्नी को दान-पूजन आदि के लिए 8 करोड़ द्रव्य दे दिया। आप स्वयं 32 करोड़ द्रव्य से जिनमंदिर, जिनप्रतिमाएं बनवाकर प्रतिष्ठा करवाईं, तीर्थयात्रा, ग्रंथलेखन, नित्य पूजन और जीर्णोद्धार आदि में सब द्रव्य खर्च करके आप जैनेश्वरी दीक्षा लेकर अंत में मरणकर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गये।

इधर इनके सोलह पुत्रों में से सातवाँ पुत्र नागसेन था। उसने अपने धन को सप्तव्यसनों में लगाकर दरिद्रावस्था प्राप्त कर ली। पुनः मर्कट वैराग्य से दीक्षित हो गया। फिर भी संयम से भ्रष्ट होकर संघ विरोधी, कलहप्रिय, स्वेच्छाचारी हो गया। आर्त-रौद्रध्यान से मरकर चौथे नरक में चला गया, वहाँ से आकर कुत्ता हुआ, जिसके सारे शरीर में कीड़े पड़ गये और बहुत ही दुर्गन्धि आती थी। कदाचित् पाप के कुछ मन्द होने से हस्तिनापुर में व्यास नाम के मिथ्यातापसी की विमलगंगा पत्नी से जन्म लेकर मनोहर नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी शहर के कुबेरकान्त सेठ और कनकमाला सेठानी के धनदेव नाम का एक पुत्र था। इन दोनों में मित्रता हो गई। दोनों एक गुरु के पास जैन शास्त्रों का अभ्यास करने लगे।

एक दिन नगर के नन्दनवन में ज्ञानसागर नामक दिगम्बर मुनि आये हुए थे। इनके पास पहुँचकर दोनों यथोचित वंदना भक्ति करके वहाँ उपदेश सुनने लगे। मुनिराज सप्तपरमस्थान का महत्व और उसके व्रत की विधि समझा रहे थे। उस समय वहाँ पर बहुतों ने यह व्रत ग्रहण किया। तापसी पुत्र मनोहर ने भी यह व्रत ले लिया और उसका विधिवत् पालन किया। इस व्रत के फल से वही जीव तुम्हारी भार्या के गर्भ में आने वाला है।

कुछ दिन बाद विशालारानी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया, उसका 'श्रीपाल' नामकरण हुआ। श्रीपाल ने अपने जीवन में पुनरपि इसी व्रत का पालन किया। आगे व्रत के माहात्म्य से सप्तपरमस्थान के ऐश्वर्य को प्राप्त करते हुए अन्त में निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया।

मंगल त्रयोदशी (धनतेरस) व्रत विधि एवं कथा

व्रतविधि—कार्तिक कृष्णा 12 के दिन इन व्रतिकों को एक भुक्ति करना चाहिए। त्रयोदशी को प्रातःकाल में शुचिजल से अभ्यंग स्नान (शिर से स्नान) करके नवधौतवस्त्र धारण करना चाहिए। सब पूजाद्रव्य हाथ में लेकर मंदिर में जाकर जिनालय की तीन प्रदक्षिणा देकर ईर्यापथशुद्धिपूर्वक श्रीजिनेन्द्र की भक्ति से वंदना करना, वेदी पर श्री विमलनाथ तीर्थंकर की प्रतिमा पातालयक्ष और वैरोटी यक्षी सह स्थापित करके उनका पंचामृत से अभिषेक करना। एक पाटे पर क्रम से 13 पान रखकर उस पर अक्षत, फल, फूल रखकर श्री आदिनाथ से विमलनाथ तक 13 तीर्थंकरों की अष्टद्रव्य से अर्चना करना। श्रुत और गणधर उनकी पूजा करके यक्ष यक्षी की अर्चना करना। क्षेत्रपाल को तैलाभिषेक करके सिंदूर लगाना। उसके आगे पाँच पान रखकर इस पर अक्षत, फल, फूल रखकर गंध, पुष्प की माला, वस्त्र, खोपरे की कटोरी (गरी का गोला आधा लेना), गुड़, लड्डू, वगैरह अर्पण करना। अष्टक, स्तोत्र, जयमाला क्रम से बोलकर यथाविधि अर्चन करना चाहिए। तेल की पाँच-पाँच पूरन पूरी के पाँच नैवेद्य चढ़ाना। बाद में **''ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं विमलनाथ तीर्थंकराय पाताल यक्ष वैरोटी यक्षी सहिताय नमः स्वाहा।''** इस मंत्र से 108 पुष्प चढ़ाना। णमोकार मंत्र का 108 बार जप करना, यह व्रत कथा पढ़ना। एक थाली में तेरह पान रखकर उस पर अष्टद्रव्य, श्रीफल रखना और महार्घ्य से जिनालय की तीन प्रदक्षिणा करके मंगल आरती उतारना। इस दिन उपवास करके ब्रह्मचर्यपूर्वक धर्मध्यान में समय बिताना। सत्पात्र को आहारदान देना। उपवास करने की शक्ति नहीं है तो तीन वस्तु का नियम लेकर एकभुक्ति करना। इस प्रकार 13 मास तक उस तिथी में पूजा करके अंत में उसका उद्यापन करना। उस समय श्री विमलनाथ तीर्थंकर विधान महाभिषेक से करना। चतुःसंघ को चतुर्विध दान देना। ऐसी इस व्रत की पूरी विधि है।

कथा—इस जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड है। उसमें मालव देश में उज्जयिनी नामक एक रमणीय पट्टण है। वहाँ बहुत दिन के पहले गुणमाल नामक महादरिद्री परन्तु सदाचारी श्रेष्ठी रहता था। उसकी गुणवती नाम की एक लावण्यवती और सुशीला धर्मपत्नी थी। उनके गुणवंत नामक एक सुन्दर सद्गुणी पुत्र था। इनको दुर्दैव से दारिद्रावस्था प्राप्त होने से वे मजदूरी से गुजारा करते थे।

नगर में बार-बार मुनीश्वर आहार के लिए आते थे। उनको बहुत श्रावक-श्राविकाएँ बड़ी भक्ति से आहारदान देते थे। यह देखकर उस गुणपाल श्रेष्ठी के मन में मुनीश्वर को आहारदान देने की इच्छा होती थी। मगर दान देने की ताकत न होने से वह चिंताकुल होता था।

एक दिन सोमचंद्र नामक सप्तऋद्धिसंपन्न एक निर्ग्रंथ मुनीश्वर जिनमंदिर में आये थे। यह देखकर वह गुणपाल श्रेष्ठी अपनी स्त्री से बोला—''इस नगरी में बहुत भाविक श्रावक-श्राविकाएँ मुनी महाराज को आहारदान देकर पुण्य संचय करते हैं। हम भी आहारदान करके पुण्यसंचय करें, ऐसी मेरी प्रबल इच्छा है। इस विषय में तुम्हारी क्या राय है। तब वह उनको बोली—हे प्राणनाथ! मुनीश्वर को दान देने की अपनी शक्ति नहीं है। तो भी अपने को एक-एक दिन उपवास करके उदरनिर्वाह साधन में से आहारदान देना चाहिए। फिर वे दोनों जिनमंदिर में गये। जिनेश्वर को भक्ति से वंदन करके सोमचंद्र मुनीश्वर को वंदना करके उनके समीप जाकर बैठे। कुछ समय उनके मुख से धर्मोपदेश सुनकर वह गुणपाल श्रेष्ठी अपने दोनों हाथ विनय से जोड़कर उनको बोला-हे दयानिधे स्वामिन्! हम दारिद्र्य से बहुत पीड़ित हुए हैं। उसके परिहार के लिए कुछ व्रत विधान कहो। आप चातुर्मास भी यहाँ कीजिए ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है। उनका यह वचन सुनकर वे मुनिवर्य दयार्द्र बुद्धि से बोले—हे भाग्योत्तम! तुम **'मंगलत्रयोदशी'** यह व्रत पालन करना। इससे तुम्हारा दारिद्र्य नष्ट होकर तुम सब तरह से अवश्य सुखी होगे। ऐसा कहकर उन्होंने चातुर्मास की सम्मति दे दी। फिर यह दंपती उस व्रत की विधी पूछकर व्रत ग्रहण करके वंदन करके घर में आ गये।

आगे चातुर्मास प्रारंभ हो गया। फिर वह गुणपाल श्रेष्ठी और उनकी धर्मपत्नी एक दिन के बाद उपवास करने लगे। उपवास के दिन आहारदान की तैयारी करके उन मुनीश्वर को आहारदान देने लगे।

इस प्रकार चार मास आहारदान देने का निश्चय किया। इस प्रकार चातुर्मास में आहार देते-देतेकार्तिक कृ. 13 के दिन

उन्होंने व्रत पूजा-विधान करके उन सोमचंद्र मुनीश्वर को महाभक्ति से आहारदान दिया। बाद में उनको भेजने के लिए वह गुणपाल श्रेष्ठी उनके साथ उद्यान की ओर निकला, उस समय वे मुनिराज उनको बोले-हे भव्योत्तम! अब हम जाते हैं। तुम यहाँ से घर वापिस जावो। तब वह बोला–हे दयालु मुनिवर्य! आपकी आज्ञा से घर जाता हूँ। ऐसा कहकर उसने मुनि को नमस्कार किया। उन्होंने उसको 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' ऐसा आशीष देकर अपना पादस्पर्शित एक पत्थर प्रदान दिया। तब वह पत्थर गुणपाल बड़े आदर से लेकर आया। यह पत्थर गुरुकृपा से मिला है। इसलिए मुझे पूज्य है। ऐसा कहकर उसने उसकी पूजा की, इतने में उस श्रेष्ठी का गुणवंत नाम का कुमार अपने हाथ में खुरपा लेकर खेलते-खेलते उधर आ गया। उसी समय वह खुरपा उसके हाथ से उस पत्थर पर गिरा। वह खुरपा सुवर्णमय बन गया। यह उचित हीहै। यह पत्थर सप्तऋद्धिसंपन्न मुनीश्वर के हाथ से मिलने से उसमें पारस का गुण क्यों नहीं होगा? उसके संपर्क से लोहे का सोना क्यों नहीं बनेगा? अवश्य होगा, यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ। 'यह पत्थर ब्रह्मज्ञानी मुनीश्वर ने दिया है। इसलिए पारस-पत्थर का गुण आया है" ऐसा उसके मन में विश्वास हो गया। यह वार्ता नगर में शीघ्र ही चारों तरफ फैल गई। नगरवासी इकट्ठे हो गये। प्रत्यक्ष सब चमत्कार जानकर लोगों को जैनधर्म का महत्व जँचा। सब लोगों ने श्रेष्ठी की बहुत प्रशंसा की। वह दिन कार्तिक कृ. 13 रहने से तथा मंगलवार होने से उसको "मंगल त्रयोदशी" ऐसा लोग कहने लगे। उस समय सेही 'धनत्रयोदशी' नाम भी प्रचार में आया है। आगे वह गुणपाल श्रेष्ठी बड़ा श्रीमान होकर दान पूजादि क्रिया करते-करते आनंद से काल बिताने लगा।

इस प्रकार उन श्रेष्ठी ने चातुर्मास के बारे में लिया हुआ नियम यथावत् पालन कर उसका उद्यापन किया। इससे उनको उत्तम सौख्य प्राप्त हुआ।

वृहत्पल्य व्रतविधि

जिस[1] किसी ने मनुष्य जन्म प्राप्त करके यदि पल्य विधान नाम का व्रत किया है, वह भव्य है, यह बात निश्चित है। यह व्रत श्रवण मात्र से ही असंख्यात भवों के पापों का नाश कर देता है और तत्काल ही स्वर्गमोक्ष को भी देने वाला है। वृषभदेव भगवान ने पहले इस पल्य विधान का कथन किया है। उसी प्रकार वीर जिनेन्द्र के निकट में गौतम आदि महर्षियों ने भी इसे कहा है। इस विधान के पढ़ने से सहस्रगुणा फल होता है और इसका अनुष्ठान करने से उत्तम अनन्त केवलज्ञान प्राप्त होता है। इस व्रत के अनुषंगिक फल चक्रीपद और इन्द्रपद भी प्राप्त होते हैं किन्तु मुख्यरूप से इसका फल निर्मल तीर्थंकर पद प्राप्त करना ही है।'

वृहत्पल्य व्रत की तिथियाँ, व्रतों के नाम एवं माहात्म्य

तिथि	व्रत का नाम	फल
आश्विन सुदी 6	सूर्यप्रभा	एक पल्य उपवास
आश्विन सुदी 13	चन्द्रप्रभा	दो पल्य उपवास
कार्तिक कृष्णा 5	कुमारसंभव	चार पल्य उपवास
कार्तिक कृष्णा 11	षडशीति	आठ पल्य उपवास
कार्तिक कृष्णा 14	पुष्पोत्तर	एक हजार पल्य उपवास
कार्तिक सुदी 12	नंदीश्वर	दो हजार पल्य उपवास
मगसिर कृष्णा 12	प्रातिहार्य	चार हजार पल्य उपवास
मगसिर सुदी 11	जितेन्द्रिय	पाँच पल्य उपवास
पौष कृष्णा 3	पंक्तिमान	छह पल्य उपवास

1.वृहत्पल्यव्रत पूजन से उद्धृत।

पौष कृष्णा 12	सूर्य	सात पल्य उपवास
पौष सुदी 5	पराक्रम	नौ पल्य उपवास
पौष सुदी 11	जयपृथु	दस पल्य उपवास
माघ कृष्णा 2	अजित	आठ पल्य उपवास
माघ कृष्णा 5	स्वयंप्रभ	ग्यारह पल्य उपवास
माघ कृष्णा 15	रत्नप्रभ	बारह पल्य उपवास
माघ सुदी 4	चतुर्मुख	तेरह पल्य उपवास
माघ सुदी 7	शील	चौदह पल्य उपवास
माघ सुदी 11	पंचाशीति	पन्द्रह पल्य उपवास

फाल्गुन वदी 3, 8, 14 को उपवास करने से क्रमशः सोलह, सतरह, अठारह पल्य उपवास का फल होता है। ऐसे ही फाल्गुन सुदी 5, 11 को उपवास करना चाहिए। चैत्र कृष्णा 3, 8, 11, चैत्र सुदी 1, 5, 8, 11, वैशाख वदी 3, 8, 14, वैशाख सुदी 1, 5, 8, 11, ज्येष्ठ वदी 3, 8, 14, ज्येष्ठ सुदी 5, 8, 10, आषाढ़ वदी 8, 14, आषाढ़ सुदी 1, 5, 8, 14, श्रावण वदी 1, 5, 8, 14, श्रावण-सुदी 3, 5, 8, 14, भाद्रपद वदी 5, 8, 14, भाद्रपद सुदी 5, 11, 14, आश्विन वदी 5, 2, 14 इन उपर्युक्त तिथियों में उपवास करना। इस व्रत में छियासठ उपवास होते हैं। यह व्रत एक वर्ष में समाप्त होता है, बहुत ही उत्कृष्ट है। व्रत पूर्ण होने के बाद शक्ति के अनुसार उद्यापन करके पूर्ण करना चाहिए। व्रत के दिन पंचपरमेष्ठी की निम्नलिखित जाप्य करना चाहिए–

ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

तथा जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करके नित्यपूजन और पंचपरमेष्ठी की पूजन करना चाहिए।



चक्रवाल व्रत विधि

व्रतविधि–फाल्गुन महिने में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र जिस तिथि को पूरा होगा। इस व्रत धारकों को शुचिजल से अभ्यंग स्नान करके शुभ्र वस्त्र पहनना। बाद में सब पूजा सामग्री अपने हाथ में लेकर जिनालय में जाना। वहाँ जाकर मंदिर की तीन प्रदक्षिणा करके ईर्यापथ शुद्धि आदि क्रियापूर्वक श्री जिनेन्द्र की भक्ति से वंदना करना। अखण्डदीप लगाना। वेदी पर श्री आदिनाथ तीर्थंकर की प्रतिमा गोमुखयक्ष चक्रेश्वरी यक्षी सहित स्थापित करके उनका पंचामृत से अभिषेक करना। पूजन, स्तोत्र, जयमाला सहित पूजा करना। सरस्वती और गुरु की पूजा करना। यक्ष, यक्षी और क्षेत्रपाल की भी अर्चना करना।

ॐ ह्रीं अर्हं गोमुखयक्षचक्रेश्वरीयक्षीसहिताय श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नमः।

इस मंत्र से 108 फूल चढ़ाना। णमोकार मंत्र का 108 बार जाप करना। श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्र पढ़कर श्री आदिनाथ चरित्र पढ़ना। बाद में एक पात्र में महार्घ्य करके आरती उतारते हुए तीन प्रदक्षिणा देकर मंगल आरती करना। उस दिन उपवास करके धर्मध्यान में समय बिताना। सत्पात्र को आहारादि दान करना। ब्रह्मचर्य पालना। दूसरे दिन पारणा करना।

इस तरह फाल्गुन महिने में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र को पूजा करके किए हुए उपवास को 'पंचकल्याण' कहते हैं। इस उपवास के योग से एक लाख उपवास का फल मिलता है।

उसी प्रकार चैत्र मास में चित्रा नक्षत्र को पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस दिन किए हुए उपवास का 'अष्टमहाविभूति' यह नाम है। इस उपवास से दो लाख उपवास का फल मिलता है।

वैशाख महीने में विशाखा नक्षत्र को पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस दिन किए हुए उपवास का 'जिनदर्शन' यह नाम है। इस उपवास से चार लक्ष उपवास का फल मिलता है।

ज्येष्ठ मास में 'ज्येष्ठा' नक्षत्र को पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस दिन किए हुए उपवास का 'चतुर्विंशति तीर्थंकर' यह नाम है। इस उपवास से आठ लाख उपवास का फल मिलता है।

आषाढ़ मास में ''पूर्वाषाढा'' नक्षत्र को पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। उस दिन किए हुए उपवास को 'अनंत श्रीवर्धन' यह नाम है। इस उपवास से सोलह लक्ष उपवास का फल मिलता है।

श्रावण मास में श्रवण नक्षत्र को पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस दिन किए हुए उपवास को 'धर्मानंद' यह नाम है। इस उपवास से बत्तीस लक्ष उपवास का फल मिलता है।

भादों मास में उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र को पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस उपवास को 'आयुर्वर्धन' ऐसा नाम है। इस उपवास से चौंसठ लाख उपवास का फल मिलता है।

आश्विन मास में आश्विनी नक्षत्र को पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस उपवास को 'श्रीवर्धमान' कहते हैं। इस उपवास से एक करोड़ 28 लाख उपवास का फल मिलता है।

कार्तिक मास में कृत्तिका नक्षत्र पर पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस उपवास का 'आरोग्यज्ञानवर्धन' यह नाम है। इस उपवास से 2 करोड़ 56 लाख उपवास का फल मिलता है।

मगसिर मास में 'मृगशिरा' नक्षत्र में पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस उपवास का ''परमैश्वर्यवर्धन'' नाम है। इस व्रत से पाँच करोड़ बारह लाख उपवास का फल प्राप्त होता है।

पौष मास में 'पुष्य' नक्षत्र में पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इसका नाम ''पंचालंकार'' है। इस उपवास से दश करोड़, चौबीस लाख उपवास का फल प्राप्त होता है।

माघ मास में 'मघा' नक्षत्र पर पूर्ववत् पूजा करके उपवास करना। इस उपवास का 'धनवर्धन' यह नाम है। इससे 20 करोड़ 48 लाख उपवास का फल मिलता है।

इस क्रम से 3 वर्ष तीन महीने यह व्रत पूजा और उपवास जो करना। ऐसे कुल 39 दिन पूजा और उपवास करना। इस 39 उपवास से 40 करोड़ 95 लाख उपवास का फल प्राप्त होता है। इस प्रकार सब पूजा और उपवास पूरे होने के बाद इस व्रत का उद्यापन करना। उसी समय श्रीआदिनाथ तीर्थंकर की नूतन सुवर्णमयी गोमुख यक्ष चक्रेश्वरी यक्षी सहित मूर्ति निर्माण कराके उसकी पंचकल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कराना। चतुःसंघ को चतुर्विध दान करना। इस प्रकार इस व्रत की विधि है।

यह व्रत श्रीगुरु के पास ग्रहण करके जो भव्यात्मा यथाविधि पालन करते हैं, उनको अपार पुण्यबंध होता है। इस पुण्ययोग से उनको सब अभ्युदय सुख प्राप्त होकर पुनः क्रम से मुक्तिसुख प्राप्त होता है। इस प्रकार से व्रत का प्रभाव है।

कथा—जिन्होंने क्षुधादि अठारह दोष नष्ट किये हैं। जिनको लोकालोक को प्रकाशित करने वाले ज्ञान की प्राप्ति हुई है। जो नरेन्द्र, नागेंद्रादि सौ इंद्रों से वंद्य हुए हैं। जो परमागम के अधिपति हुए हैं। ऐसे श्री महावीर तीर्थंकर, केवलज्ञान से सम्पन्न होकर समवसरण के साथ आर्यखण्ड में देश-देश में भव्यजन को उपदेश देते हुए विहार करते थे। एक दिन बुद्धायन राजा अपनी धर्मपत्नी इंद्रायिणी और अपने जनसमूह के साथ बड़े आदर से भगवंत के समवसरण में प्रवेश करके उनका त्रिप्रदक्षिणापूर्वक दर्शन, पूजन, स्तवन आदि करके मानव की सभा में जाकर बैठे। कुछ समय दिव्यध्वनि से तत्वोपदेश श्रवण करने के बाद इंद्रायिणी रानी अपने करकमल जोड़कर विनय से गौतम गणधर को बोली—भो! भवसिंधुतारक जगद्गुरो! आज आप हमारे लिए सब प्रकार के पापनाशक और सर्वसुखप्रद ऐसा व्रत विधान कहो। इनके इस विनयपूर्वक वचन को सुनकर वे गणेन्द्र इनको बोले—हे भव्यगुणमणि पुत्रि! चक्रवालव्रत पालन करने से सभी सुख प्राप्त होते हैं। ऐसा कहकर उन्होंने व्रत की सब विधि उसको कही। यह सब सुनकर इंद्रायिणी आदि सब लोगों को बहुत आनंद हुआ। बाद में उन्होंने गणधर की वंदना करके यह व्रत भक्तिभाव से उनके पास ग्रहण किया। फिर सब जन भगवान को और समस्त मुनिगणों को नमस्कार करके अपनी नगरी में वापस आ गये। आगे कालक्रम से इंद्रायिणी ने यह व्रत यथाविधि धारण करके उसका उद्यापन किया। इस योग से वह अंत में सन्यासविधि से मरकर स्त्रीलिंग छेद करके स्वर्ग में देव हुई और कुछ भव में ही मोक्ष प्राप्त करेंगी।

द्वादशकल्प व्रत (मुष्टि तंदुल व्रत)

जैन परम्परा में तपश्चरण को कर्म-निर्जरा में प्रमुख कारण माना है, यही कारण है कि जैनसाधु एवं श्रावक विविध प्रकार के व्रतों का समय-समय पर अनुष्ठान करते हुए देखे जाते हैं। इन्हीं व्रतों में से महान फलदायी व्रत है-द्वादशकल्प व्रत अथवा मुष्टि तंदुल व्रत।

इस व्रत को गृहस्थ श्रावक-श्राविकाएं ही करते हैं। यह व्रत कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष से प्रारंभ करके एक वर्ष तक किया जाता है।

उदाहरणार्थ, कार्तिक शुक्ला एकम् से इस व्रत को प्रारंभ किया, प्रातःकाल जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक तथा अर्हन्त भगवान या चौबीस तीर्थंकर भगवान की पूजा करें एवं एक पात्र में एक मुट्ठी चवल (तंदुल) निकाल दें, दिन में नियमपूर्वक दो या तीन बार भोजन कर सकते हैं पर रात्रि में चतुराहार का त्याग रखें, पुनः कार्तिक शुक्ला द्वितीया से चतुर्दशी तक पूर्वोक्त विधि से प्रतिदिन एक-एक मुट्ठी चावल निकालते हुए कुल 14 मुट्ठी चावल एकत्रित हो जायेगा। अब, कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को उपवास रखते हुए अभिषेक करें और पूजन में इन 14 मुट्ठी चावल का नैवेद्य-लड्डू इत्यादि बनाकर भगवान के समक्ष चढ़ावें। पुनः मगसिर कृष्णा एकम् से मगसिर कृष्णा चतुर्दशी तक 14 मुट्ठी चावल निकालें तथा मगसिर कृष्णा अमावस्या को उपवास करके इस एकत्रित चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान की पूजा में चढ़ावें। इस प्रकार प्रत्येक पक्ष में एक उपवास अर्थात् एक माह में दो उपवास करके इस व्रत को किया जाता है। प्रत्येक उपवास में निम्न मंत्र का जाप्य करें-**''ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं परब्रह्मणे अनंतानंतज्ञानशक्तये अर्हत्परमेष्ठिने यक्षयक्षी सहिताय नमः स्वाहा।''** मात्र दो उपवास करने पर भी हजारों उपवास का फल प्रदान करने वाले इस व्रत को निम्न तालिका से आप आसानी से समझ सकते हैं-

क्र.स.	प्रत्येक माह की व्रत विधि	व्रत का नाम	उपवास का फल
1.	कार्तिक शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः मगसिर कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	सौधर्मकल्पव्रत	12000 उपवास
2.	मगसिर शु. एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः पौष कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	ईशानकल्पव्रत	16000 उपवास
3.	पौष शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः माघ कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	सानतकुमार कल्पव्रत	20000 उपवास
4.	माघ शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर	माहेन्द्रकल्पव्रत	22000 उपवास

भगवान को चढ़ायें, पुनः फाल्गुन कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।			
5. फाल्गुन शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः चैत्र कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	ब्रह्मकल्पव्रत	30000	उपवास
6. चैत्र शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः वैशाख कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	लांतवकल्पव्रत	32000	उपवास
7. वैशाख शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः ज्येष्ठ कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	महाशुक्रकल्पव्रत	34000	उपवास
8. ज्येष्ठ शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः आषाढ़ कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	सहस्रारकल्पव्रत	36000	उपवास
9. आषाढ़ शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः श्रावण कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	आनतकल्पव्रत	38000	उपवास
10. श्रावण शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः भाद्रपद कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।	प्राणतकल्पव्रत	40000	उपवास
11. भाद्रपद शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः आश्विन कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल	आरणकल्पव्रत	42000	उपवास

प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें।

12. आश्विन शुक्ला एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें, पूर्णिमा को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें, पुनः कार्तिक कृष्णा एकम् से चतुर्दशी तक एक-एक मुट्ठी चावल प्रतिदिन निकालें और अमावस्या को उपवास करके इस चावल का नैवेद्य बनाकर भगवान को चढ़ायें। — अच्युतकल्पव्रत — 60000 उपवास

उद्यापन विधि—एक वर्ष तक विधि अनुसार इस व्रत का परिपालन करके इसका उद्यापन किया जाता है, जिसमें यथाशक्ति अर्हन्त भगवान की प्रतिमा या चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बनवाकर प्रतिष्ठा कराकर मंदिर जी में विराजमान करें। बारह प्रकार के उपकरण मंदिर जी में दान करें। अपनी शक्ति अनुसार ग्रंथ छपाकर भेंट करें। साधुगणों को पिच्छी-कमण्डलु-शास्त्र इत्यादि प्रदान करें एवं आर्यिकाओं को वस्त्र आदि देवें।

यदि किसी पक्ष में एक तिथि बढ़ जाती है तो 15 मुट्ठी चावल एकत्रित हो जायेगा और यदि किसी पक्ष में एक तिथि घट जाती है तो चतुर्दशी को दो मुट्ठी चावल निकालना होगा।

इस व्रत का अनुष्ठान करने वालों के व्यापार-धन-धान्य आदि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, अक्षय भण्डार भरता है, सब प्रकार से सुख-शांति-संपत्ति-सन्तति आदि की प्राप्ति होती है तथा परम्परा से स्वर्ग-मोक्ष के सुखों की प्राप्ति होती है।

नंदीश्वर पंक्ति व्रत विधि

इस व्रत में 56 उपवास और 52 पारणाएं होती हैं तथा 108 दिन में पूर्ण होता है। इसमें दधिमुख पर्वत संबंधी एक उपवास 1 पारणा के क्रम से 4 उपवास 4 पारणा होने पर अंजनगिरि संबंधी बेला होता है। पुनः पारणा करके 8 रतिकर संबंधी 8 उपवास एकांतर से होते हैं। यह पूर्वदिक संबंधी विधि है, इसी प्रकार से 4 एकांतर पुनः बेला व 8 एकांतर दक्षिण दिक् संबंधी, तथैव पश्चिम व उत्तर दिक् संबंधी करने होते हैं। इस तरह 4 बेला, 48 उपवास व 42 पारणाएं होती हैं। जिन्हें 1 उपवास 1 पारणा के क्रम से व्रत करने की शक्ति नहीं है, वे अपनी शक्ति के अनुसार कभी भी 4 उपवास, पुनः बेला पुनः 8 उपवास अर्थात् 1-1 उपवास करके 1 महीने में 4 किये, नंतर बेला किया, नंतर 8 किये, ऐसे 48 उपवास व 4 बेला की संख्या को समयानुसार भी पूर्ण करके व्रत कर सकते हैं, ऐसा हरिवंश पुराण में एक श्लोक में संकेत आया है। इसका फल चक्रवर्ती व तीर्थंकर पद प्राप्त होना है।

प्रति उपवास की जाप्य—सुगंधित पुष्पों से 108 जाप्य करना।

समुच्चय मंत्र—**ॐ ह्रीं नंदीश्वर द्वीपसंबंधि-अकृत्रिमजिनालयस्थ सर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र—

पूर्वदिक् संबंधी जाप्य मंत्र—ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधिप्रथमदधिमुखपर्वतस्थितजिनालयस्थ सर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपस्थपूर्वदिक् संबंधिद्वितीयदधिमुख पर्वतस्थितजिनालयस्थ सर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपस्थपूर्वदिक् संबंधितृतीयदधिमुख पर्वतस्थितजिनालयस्थ सर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक् संबंधिचतुर्थदधिमुख पर्वतस्थितजिनालयस्थ सर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक् संबंध्यंजनपर्वतस्थित जिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः (बेला में दो दिन यही जाप्य)

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधिप्रथमरतिकर पर्वतस्थितजिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।
ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि द्वितीयरतिकर पर्वतस्थितजिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।
ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि तृतीयरतिकरपर्वतस्थितजिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।
ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि चतुर्थरतिकरपर्वतस्थितजिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।
ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक् संबंधिपंचमरतिकरपर्वतस्थितजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नमः।
ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक् संबंधिषष्ठरतिकरपर्वतस्थितजिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।
ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक् संबंधिसप्तमरतिकरपर्वतस्थितजिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।
ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक् संबंधिअष्टमरतिकरपर्वतस्थितजिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो नमः।

इसी तरह ''पूर्वदिक्'' की जगह दक्षिणदिक् लगाकर 13 जाप्य होंगी, तथैव ''पूर्वदिक्'' के स्थान पर पश्चिमदिक् लगाकर 13, तथैव उत्तरदिक् लगाकर 13, कुल जाप्य 52 ही होंगी। व्रत के दिन नंदीश्वर, पूजन करना चाहिए। इस प्रकार व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन में 52 प्रतिमा सहित नंदीश्वर की प्रतिमा बनवाकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराना चाहिए अथवा शक्ति के अनुसार 52-52 उपकरण, शास्त्र आदि मंदिर में भेंट करके नंदीश्वर उद्यापन विधान का मंडल बनाकर पूजन आदि से धर्मप्रभावना करते हुए उद्यापन करना चाहिए।

मेरु पंक्ति व्रत विधि

पाँच मेरु संबंधी 80 चैत्यालयों के व्रत मेरू पंक्ति व्रत में किये जाते हैं, इस व्रत का प्रारंभ श्रावण मास से माना जाता है। युग या वर्ष का प्रारंभ प्राचीन भारत में इसी दिन से होता है। श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से प्रारंभ कर लगातार 220 दिन तक यह व्रत किया जाता है।

इसकी विधि—पहले चार उपवास सुदर्शन मेरू के भद्रशालवन के चारों मंदिर संबंधी करने चाहिए, एक उपवास 1 पारणा के क्रम से इसमें 8 दिन लगेंगे। पुनः भद्रशाल वन का 1 वेला अर्थात् दो उपवास करना चाहिए। पुनः पारणा करके नंदनवन के चारों मंदिर संबंधी चार उपवास, चार पारणाएं व नंदनवन का बेला तथा पारणा होती है।

पुनः सौमनसवन के 4 मंदिर संबंधी 4 उपवास, पारणाएं व 1 बेला 1 पारणा तथैव पांडुकवन संबंधी 4 मंदिर के 4 उपवास व पारणाएं तथा बेला पारणा होती है। इस क्रम से प्रथम सुदर्शनमेरु संबंधी-

उपवास	पारणा	बेला	पारणा
4	4	1	1
4	4	1	1
4	4	1	1
4	4	1	1

(16 उपवास 4 बेला व 20 पारणाएं 44 दिन में हुई)

ऐसे ही द्वितीय विजयमेरु संबंधी भी उपवास विधि समझनी चाहिए। तथैव तृतीय अचलमेरु संबंधी चतुर्थ मंदर मेरुसंबंधी व पंचम विद्युन्माली मेरु संबंधी उपवास क्रम होता है। सभी मिलकर 80 प्रोषधोपवास, 20 बेलाएं और 100 पारणाएं की जाती हैं। पंचमेरु संबंधी दिनसंख्या-44×5=220 होती हैं। जिन्हें उपर्युक्त विधि से व्रत करने की शक्ति नहीं है। वे यथाशक्ति इन 80 उपवास व 20 बेलाओं को कभी भी करके संख्या पूरी करके व्रत के फल को प्राप्त कर सकते

हैं। इस व्रत के पूजन में मेरु की स्थापना करके विधिवत् पंचामृताभिषेक व पंचमेरू पूजनादि करके प्रत्येक मेरू संबंधी जाप्य करना चाहिए। इसका फल मेरु पर्वत पर अभिषेक प्राप्त करना अर्थात् तीर्थंकर पद प्राप्त करना बताया है। यह व्रत पूर्वोक्त विधि से करने से 7 महीने 10 दिन तक करना पड़ता है, इसमें तिथि वृद्धि व तिथिक्षय से कोई बाधा नहीं आती है। सुगंधित पुष्पों से जाप्य करना चाहिए। **जाप्य**–प्रथम मेरु संबंधी व्रतों के दिनों में **''ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरु संबंधि षोडशजिनालयेभ्यो नमः।''** इस मंत्र का त्रिकाल जाप्य देना चाहिए। द्वितीय मेरू संबंधी व्रतों के दिनों में–

ॐ ह्रीं विजयमेरुसंबंधिषोडशजिनालयेभ्यो नमः। तृतीय मेरू संबंधी व्रतों के दिनों में–

ॐ ह्रीं अचलमेरुसंबंधि षोडश जिनालयेभ्यो नमः। चतुर्थ मेरुव्रत में **ॐ ह्रीं मंदरमेरुसंबंधिषोडशजिनालयेभ्यो नमः।** पंचममेरुव्रत में-**ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरुसंबंधिषोडशजिनालयेभ्यो नमः।**

विशेष–पारणा के दिनों में एक अनाज का ही प्रयोग करना चाहिए। फलों में सेब, नारियल, नारंगी आदि भी उपयोग कर सकते हैं। पूजन में नित्यपूजन, त्रिकाल चौबीसी, पंचमेरु, विद्यमान बीस तीर्थंकर, पंचपरमेष्ठी पूजन भी करें व रात्रि जागरण भी करना चाहिए तथा व्रत पूर्ण होने तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना चाहिए। यह विशेषविधि व्रततिथि निर्णय से उद्धृत की है।

उद्यापन में सोलह-सोलह प्रतिमा सहित पांचमेरु की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराना चाहिए अथवा 5-5 उपकरण आदि यथाशक्ति मंदिर में भेंट करके पंचमेरु का मंडलविधान करके व्रत पूर्ण करना चाहिए।

जिनगुणसंपत्ति व्रत विधि एवं कथा

धातकी द्वीप के अन्तर्गत पूर्वमेरु संबंधी पश्चिम विदेह क्षेत्र में गंधिल नामक देश है। उसमें एक पाटलिपुत्र नाम का नगर है। उस नगर में एक नागदत्त सेठ रहते थे, उनकी भार्या का नाम सुमति था। वे दंपति धनहीन होने से अत्यंत दुःखी थे। दोनों ही जंगल से लकड़ी आदि लाकर उसे बेचकर अपना पेट पालन करते थे। एक दिनबेचारी सुमति भूख-प्यास से घबराकर एक वृक्ष की छाया में बैठी थी, इतने में बहुत से नर-नारियों को उत्साह के साथजाते हुए देखकर पूछा–बंधु और बहनों! आप लोग आज कहाँ जा रहे हैं? तब किसी ने कहा–बहन! इस अंबरतिलक पर्वत पर पिहितास्रव नाम के महामुनि आये हुए हैं, उनके दर्शन पूजन के लिए हम लोग जा रहे हैं।

सुमति[1] भी उन लोगों के साथ गुरु के दर्शनार्थ वहाँ चली गई। मुनिराज से षट्कर्म और बाहर व्रतों का उपदेश सुनकर अवसर पाकर उसने प्रश्न किया–हे भगवन्! किस पाप के उदय से मैं महान् दरिद्र हुई हूँ? मुनिराज ने कहा–पुत्री! पलासकूट ग्राम में दिविलह राजा की सुमति रानी से तू धनश्री नाम की कन्या हुई थी। एक दिन सखियों के साथ वन में क्रीड़ा करते हुए वृक्ष के नीचे ध्यान में मग्न समाधिगुप्त मुनिराज को देखा, रूप- यौवन के गर्व से उन्मत्त होकर तूने उनके ऊपर कुत्ते के द्वारा उपसर्ग कर दिया किन्तु मुनिराज ने शांत भाव से उपसर्ग सहन कर लिया। मुनि-उपसर्ग के पाप के कारण आयु पूर्णकर मरकर तू सिंहनी हुई। वहाँ से आकर तू धनहीन घर में उत्पन्न हुई है।

पुनः सुमति बोली–हे भगवन्! कोई ऐसा व्रत बतलाइये कि जिससे इस पाप से छुटकारा मिले। मुनि ने कहा–पुत्री! तुम सम्यग्दर्शनपूर्वक जिनगुणसम्पत्ति व्रत करो, जिससे तुम्हारे मनवांछित कार्यों की सिद्धि होगी। इस व्रत की विधि इस प्रकार है–सोलहकारण भावनाओं के 16 उपवास, पंचकल्याणक के 5, अष्ट प्रातिहार्य के 8 और चौंतीस अतिशयों के 34, इस प्रकार कुल मिलाकर 63 उपवास या प्रोषध (एक भुक्ति) करें।

---

1. आदिपुराण में–वणिक् की पुत्री निर्नामिका ने यह व्रत पिहितास्रव मुनि से लेकर किया और पुनः क्रम से प्रभादेवी आदि पदों को प्राप्त करते हुए राजा श्रेयांस हो गया, ऐसा कथन है।

[1]व्रतविधि निर्णय में "प्रतिपदा के 16, पंचमी के 5, अष्टमी के 8, दशमी के 20 और चौदस के 14 ऐसे तिथि से उपवास माने हैं।" व्रत के दिन पंचामृत अभिषेक करके पूजन करें, पुनः जाप्य करें। व्रत की कथा पढ़ें, स्वाध्याय आदि करते हुए दिन भर धर्मध्यान में व्यतीत करें। व्रत के दिन जिनगुणसम्पत्ति मंत्रों में से जिस मंत्र का दिन हो, उस मंत्र का जाप्य करें।

व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन करें। उद्यापन की शक्ति न होने से व्रत दूना करें। उद्यापन में मंदिर में मंडल माँडकर बड़े समारोह के साथ भगवान् की सम्मानपूर्वक पूजा करें, पात्रदान देवें, आम, केले, नारंगी, श्रीफल, अखरोट, खारिक, बादाम इत्यादि त्रेसठ-त्रेसठ फल अनेक प्रकार के नैवेद्य सहित भगवान् की पूजा करें, मंदिर में चंदोवा, छत्र, चंवर, झालर, घंटा आदि उपकरण भेंट करें। ज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थ श्रावक-श्राविकाओं को 63 ग्रंथ बाँटें।

सुमति (निर्नामिका) ने गुरु से व्रत ग्रहण कर विधिवत् पालन किया, अंत में समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्ग में ललितांग देव की स्वयंप्रभा नाम की महादेवी हुई। वहाँ से चलकर जंबूद्वीप के पूर्वविदेह संबंधी पुष्कलावती देश के अन्तर्गत पुंडरीकिणी नगरी में वज्रदंत चक्रवर्ती की लक्ष्मीमती नाम की महारानी से श्रीमती नाम की पुत्री हुई, जो कि वज्रजंघ महाराज को विवाही गई। किसी समय इन दम्पत्ति ने मुनियुगल को आहारदान देकर महान् पुण्य संचय किया। वहाँ से मरकर उत्तम भोगभूमि में दोनों पति-पत्नी हुए। वहाँ पर चारण मुनियों के उपदेश से दोनों ने सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया। वहाँ से मरकर ऐशान स्वर्ग में वज्रजंघ आर्य श्रीधर देव हो गये और श्रीमती आर्या स्वयंप्रभ देव हो गईं। सम्यक्त्व के प्रभाव से श्रीमती को स्त्रीपर्याय से छुटकारा मिल गया। स्वर्ग से च्युत होकर विदेह क्षेत्र में श्रीधर देव तो राजा सुविधि हुआ और उसकी मनोरमा रानी से यह स्वयंप्रभ देव का जीव केशव नाम का प्यारा पुत्र हुआ। पुनः दीक्षित होकर ये सुविधि सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र हुए एवं केशव वहीं पर प्रतीन्द्र हुआ। पुनः यह इन्द्र स्वर्ग से आकर पूर्वविदेह में वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ और प्रतीन्द्र का जीव चक्रवर्ती व चौदह रत्नों में से गृहपति नाम का रत्न हुआ, जिसका नाम धनदेव था। अनन्तर वज्रनाभि चक्रीश ने दीक्षा लेकर सोलहकारण भावनाओं से तीर्थंकर प्रकृति को बाँध लिया और श्रेणी में मरणकर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गये। धनदेव भी दीक्षित होकर अंत में मरणकर ध्यान के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र हो गये। वहाँ से चलकर वज्रनाभि का जीव अहमिंद्र तो भगवान् ऋषभदेव हुआ है और धनदेव का जीव कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर में राजा सोमप्रभ का भाई श्रेयांस कुमार हुआ है।

भगवान् ऋषभदेव को जब एक वर्ष तक आहार का लाभ नहीं हुआ, तब हस्तिनापुर में आने पर उनके दर्शन से राजा श्रेयांस को श्रीमती के भव में दिये गये आहारदान का जातिस्मरण हो जाने से आहारदान की विधि का ज्ञान हो गया। उसी समय उन्होंने भगवान को इक्षुरस का आहार देकर अक्षय पुण्य सम्पादन किया, आज भी वह दिवस अक्षयतृतीया के नाम से जगत् में पूज्य हो रहा है।

राजा श्रेयांस भगवान के केवलज्ञान के अनन्तर उनके समवसरण में अपने भाई के साथ दीक्षित होकर भगवान के गणधर हो गये। पुनः अन्त में कर्मों का नाश कर मुक्ति पद को प्राप्त हो गये। अहो! निर्नामिका ने एक जिनगुणसम्पत्ति व्रत का पालन किया, जिसके प्रसाद से उत्तम सुखों को भोगकर अन्त में राजा श्रेयांस होकर निर्वाणपद को प्राप्त कर वहाँ पर अनन्त-अनन्त काल के लिए पूर्ण सुखी हो चुके हैं।

जिनगुणसंपत्ति के मंत्र

प्रतिपदा की 16 जाप्य

1. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा दर्शनविशुद्धिभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
2. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा विनयसंपन्नताभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
3. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा शीलव्रतेष्वनतिचारभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।

1. व्रत तिथि निर्णय, पृ. 264

4. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अभीक्ष्णज्ञानोपयोगभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
5. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा संवेगभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
6. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा शक्तितस्त्यागभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
7. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा शक्तितस्तपोभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
8. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा साधुसमाधिभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
9. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा वैयावृत्यकरणभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
10. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अर्हद्भक्तिभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
11. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा आचार्यभक्तिभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
12. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा बहुश्रुतभक्तिभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
13. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा प्रवचनभक्तिभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
14. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा आवश्यकापरिहाणिभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
15. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा मार्गप्रभावनाभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
16. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा प्रवचनवत्सलत्वभावनायै जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।

पंचमी की 5 जाप्य

1. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा स्वर्गावतरणगर्भकल्याणकजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
2. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा जन्माभिषेककल्याणकजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
3. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा परिनिष्क्रमणकल्याणकजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
4. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा केवलज्ञानकल्याणकजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
5. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा निर्वाणकल्याणकजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।

अष्टमी के 8 जाप्य

1. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अशोकवृक्षमहाप्रातिहार्यजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
2. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सुरपुष्पवृष्टिमहाप्रातिहार्यजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
3. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा दिव्यध्वनिमहाप्रातिहार्यजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
4. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा चतुष्षष्टिचामरमहाप्रातिहार्य-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
5. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सिंहासनमहाप्रातिहार्यजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
6. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा भामंडलमहाप्रातिहार्यजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
7. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा देवदुन्दुभिमहाप्रातिहार्यजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
8. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा छत्रत्रयमहाप्रातिहार्यजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।

दशमी की 20 जाप्य

1. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा निःस्वेदत्वसहजातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
2. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा निर्मलत्वसहजातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
3. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा क्षीरगौररुधिरत्वसहजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
4. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा समचतुरस्रसंस्थानसहजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
5. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा वज्रवृषभनाराचसंहननसहजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
6. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सौरूप्यसहजातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।

7. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सौगंध्यसहजातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायैनमः।
8. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सौलक्षण्यसहजातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
9. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अप्रमितवीर्यसहजातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
10. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा प्रियहितवादित्वसहजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
11. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षत्वघातिक्षय-जातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
12. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा गगनगमनत्वघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
13. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अप्राणिवधत्वघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
14. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा भुक्त्यभावघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
15. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा उपसर्गाभावघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
16. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा चतुर्मुखत्वघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
17. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सर्वविद्येश्वरघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
18. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अच्छायत्वघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
19. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अपक्ष्मस्पंदत्वघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
20. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा समाननखकेशत्वघातिक्षयजातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।

चतुर्दशी की 14 जाप्य

1. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सर्वार्धमागधीयभाषादेवोपनीतातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
2. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सर्वजनमैत्रीभावदेवोपनीतातिशय-जिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
3. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सर्वर्तुफलादिशोभिततरुपरिणामदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
4. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा आदर्शतलप्रतिमारत्नमयीमहीदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
5. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा विहरणमनुगतवायुत्वदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
6. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सर्वजनपरमानन्दत्वदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
7. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा वायुकुमारोपशमितधूलिकंटकादिदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
8. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा मेघकुमारकृतगन्धोदकवृष्टिदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
9. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा पादन्यासे कृतपद्मादिदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
10. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा फलभारनम्रशालिदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
11. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा शरत्कालवन्निर्मलगगनत्वदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
12. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा शरन्मेघवन्निर्मलदिग्भावत्वदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
13. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा एतैतेतिचतुर्निकायामरपरापराह्वानदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।
14. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा धर्मचक्रचतुष्टयदेवोपनीतातिशयजिनगुणसंपदे मुक्तिपदकारणस्वरूपायै नमः।

रोहिणी व्रत विधि एवं कथा

जम्बूद्वीप के इसी भरत क्षेत्र में कुरुजांगल देश है, इसमें हस्तिनापुर नाम का सुन्दर नगर है। किसी समय यहाँ वीतशोक राजा राज्य करते थे। इनकी रानी का नाम विद्युत्प्रभा था। इन दोनों के एक अशोक नाम का पुत्र था।

इसी समय अंग देश की चम्पा नगरी में मघवा नाम के राजा राज्य करते थे, इनकीश्रीमती नाम की रानी थी। श्रीमती के आठ पुत्र और रोहिणी नाम की एक कन्या थी। यौवन को प्राप्त हुई रोहिणी ने एक समयआष्टान्हिक पर्व में उपवास करके मंदिर में पूजा करके सभा भवन में बैठे हुए माता-पिता को शेषा दी। पिता ने पुत्री को युवती देखकरकुछ क्षण मंत्रशाला में मंत्रियों से मंत्रणा की, पुनः स्वयंवर की व्यवस्था की। स्वयंवर में रोहिणी ने हस्तिनापुर के राजकुमार के गले में वरमालाडाल दी।

कालांतर में वीतशोका महाराज ने दीक्षा ले ली और अशोक महाराज बहुत न्यायनीति से राज्य का संचालन कर रहे थे। रोहिणी महादेवी के आठ पुत्र और चार पुत्रियाँ थीं। किसी समय महाराज अशोक महादेवी रोहिणी के साथ महल की छत पर बैठे हुए विनोद गोष्ठी कर रहे थे। पास में वसंततिलका धाय बैठी हुई थी। जिसकी गोद में रोहिणी का छोटा बालक लोकपाल खेल रहा था। इसी समय रोहिणी ने देखा कि कुछ स्त्रियाँ गली में अपने बालों को बिखेरे हुए एक बालक को लिए छाती, सिर, स्तन और भुजाओं को कूटती-पीटती हुई चिल्ला-चिल्ला कर रो रही हैं। तब रोहिणी ने अपनी वसंततिलका धात्री से कुतूहलवश पूछा–हे माता! नृत्यकला में विशारद लोग सिग्नटक, भानी, छत्र, रास और दुंबिली इन पाँच प्रकारों के नाटकों का अभिनय करते हैं। भरत महाराज द्वारा प्रणीत इन पाँच प्रकारों के नाटकों के सिवाय ये स्त्रियाँ सादिकुट्टन रूप इसकौन से नृत्य का अभिनय कर रही हैं। इस नाटक में सात स्वर, भाषा और मूर्च्छनाओं का भी पता नहीं चल रहा है। तुम इस नाटक कानाम तो मुझे बताओ।

रोहिणी के इस भोलेपन के प्रश्न को सुनकर धाय बोली–पुत्री! कुछ दुःखी स्त्रियाँ महान् शोक और दुःख मना रही हैं।

रोहिणी ने जब धात्री के मुख से 'शोक' और 'दुख' ये दो शब्द सुने, तब उसने पूछा–अम्ब! यह बताओ कि यह 'शोक' और 'दुख' क्या वस्तु है?

तब धात्री ने रुष्ट होकर जवाब दिया-सुन्दरि! क्या तुम्हें उन्माद हो गया? पाण्डित्य और ऐश्वर्य क्या ऐसा ही होता है? क्या रूप से पैदा हुआ गर्व यही है? जो कि तुम 'शोक' और 'दुख' को नहीं जानती हो और रुदन को नाटक-नाटक बक रही हो? क्या तुमने इसी क्षण जन्म लिया है?

क्रोधपूर्ण बात सुनकर रोहिणी बोली–भद्रे! आप मेरे ऊपर क्रोध मत कीजिए। मैं गन्धर्वविद्या, गणितविद्या, चित्र, अक्षर, स्वर और चौंसठ विज्ञानों तथा बहत्तर कलाओं को ही जानती हूँ। मैंने आज तक इस प्रकार का कलागुण न देखा है और न मुझसे किसी ने कहा है। यह आज मेरे लिए अदृष्ट और अश्रुतपूर्व है। इसीलिए मैंने आपसे यह पूछा है। इसमें अहंकार और पांडित्य की कोई बात नहीं।

पुनः धात्री बोली–वत्से! न यह नाटक का प्रयोग है और न किसी संगीत भाषा का स्वर है। किन्तु किसी इष्ट बंधु की मृत्यु से रोने वालों का जो दुःख है, वही शोक कहलाता है।

धात्री की बात सुनकर रोहिणी पुनः बोली–भद्रे! यह ठीक है, परन्तु मैं रोने का भी अर्थ नहीं जानतीं, सो उसे भी बताइये।

रोहिणी के इस प्रश्न के पूरे होते ही राजा अशोक बोला–प्रिये! शोक से जो रुदन किया जाता है, उसका अर्थ मैं बतलाता हूँ। इतना कहकर राजा ने लोकपाल कुमार को रोहिणी की गोद से लेकर देखते हीदेखते राजभवन के शिखर के नीचे फेंक दिया।

लोकपाल कुमार अशोक वृक्ष की चोटी पर गिरा, उसी समय नगर देवताओं ने आकर दिव्य सिंहासन पर उस बालक को बिठाया और क्षीरसागर से भरे हुए एक सौ कलशों से उसका अभिषेक किया और उसे आभरणों से भूषित कर दिया। अशोक महाराज और रोहिणी ने जैसे ही नीचे नजर डाली तो बहुत ही विस्मित हुए। उस समय सभी लोगों ने इसे रोहिणी के पूर्वकृत पुण्य का ही फल समझा।

हस्तिनापुर के बाहर अशोकवन में अतिभूतितिलक, महाभूतितिलक, विभूतितिलक और अंबरतिलक नामक चार जिनमंदिर क्रमशः चारों दिशाओं में थे। एक बार रूपकुंभ और स्वर्णकुंभ नाम के दो चारण मुनि विहार करते हुए हस्तिनापुर में आकर पूर्व दिशा के जिनमंदिर में ठहर गये। वनपाल द्वारा मुनि आगमन का समाचार ज्ञात होने पर परिजन और पुरजन सहित अशोक महाराज मुनिराज की वंदना के लिए वहाँ पहुँचे। वंदना भक्ति के अनंतर राजा ने प्रश्न किया कि हे भगवन्! मैंने और मेरी पत्नी रोहिणी ने पूर्वजन्म में कौन सा पुण्य विशेष किया है, सो कृपा कर बतलाइये।

मुनिराज ने कहा– हे राजन्! इसी जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरत क्षेत्र में सौराष्ट्र देश है। इसमेंऊर्जयंतगिरि के पश्चिम में एक गिरि नाम का नगर है। इस नगर के राजा का नाम भूपाल और रानी का नाम स्वरूपा था। राजा के एक गंगदत्त राजश्रेष्ठी था, जिसकी पत्नी का नाम सिंधुमती था, इसे अपने रूप का बहुत ही घमण्ड था। किसी समय राजा के साथ वनक्रीड़ा के लिए जाते हुए गंगदत्त ने नगर में आहारार्थ प्रवेश करते हुए मासोपवासी समाधिगुप्त मुनिराज को देख और सिंधुमती से बोला– प्रिये! अपने घर की तरफ जाते हुए मुनिराज को आहार देकर तुम पीछे से आ जाना। सिंधुमती पति कीआज्ञा से लौट आई किन्तु मुनिराज के प्रति तीव्र क्रोध भावना हो जाने से उसने कड़वी तूमड़ी का आहार मुनि को दे दिया। मुनिराजने हमेशा के लिए प्रत्याख्यान ग्रहण कर सल्लेखनापूर्वक शरीर का त्याग कर स्वर्गपद को प्राप्त कर लिया।

जब राजा वन से वापस लौट रहे थे कि विमान में स्थित कर मुनि को ले जाते हुए देखकर मृत्यु का कारण पूछा। तब किसी व्यक्ति ने सारी घटना राजा को सुना दी। उस समय राजा ने सिंधुमती का मस्तक मुण्डवाकर उस पर पाँच बेल बंधवाये, गधे पर बिठाकर उसके अनर्थ की सूचना नगर में दिलाते हुए उसे बाहर निकाल दिया। उसके बाद उसे उदुम्बर कुष्ठ हो गया और भयंकर वेदना से सातवें दिन ही मरकर बाईस सागर पर्यन्त आयु धारण कर छठे नरक में उत्पन्न हुई। यह पापिनी क्रम से सातों ही नरकों में भ्रमण करते हुए कदाचित् तिर्यंचगति में आकर दो बार कुत्ती हुई, सूकरी, श्रृगाली, चुहिया, गोंच, हथिनी, गधी और गौणिका हुई। अनंतर इसी हस्तिनापुर के राजश्रेष्ठी धनमित्र की पत्नी धनमित्रा से पूतिगंधा पुत्री के रूप में जन्मी, दुर्गंधा के समान उसके शरीर से भयंकर दुर्गंधि आ रही थी जिससे कि उसके पास किसी का भी बैठना कठिन था।

उसी शहर के वसुमित्र सेठ का एक श्रीषेण पुत्र था, जो सप्त व्यसनी था। एक दिन चोरी कर्म से कोतवाल के द्वारा पकड़ा जाकर शहर से बाहर निकाला जा रहा था। उस समय धनमित्र ने कहा कि– श्रीषेण! यदि तुम मेरी कन्या के साथ विवाह करना मंजूर करो तो मैं तुम्हें इस बंधन से मुक्त करा सकता हूँ। उसके मंजूर करने पर सेठ ने उसे बंधनमुक्त कराकर उसके साथ अपनी दुर्गन्धा कन्या का विवाह कर दिया। किन्तु विवाह के बाद जैसे-तैसे एक रात दुर्गन्धा के पास बिताकर मारे दुर्गन्ध के घबराकर वह श्रीषेण अन्यत्र भाग गया। बेचारी दुर्गन्धा पुनः पिता के घर पर ही रहते हुए अपनी निंदा करते हुए दिन व्यतीत कर रही थी। एक दिन उसने सुव्रता आर्यिका को अपने पितृगृह में आहार दिया। अनन्तर पिहितास्रव नामक चारणमुनि अमितास्रव मुनिराज के साथ वन में आये। वहाँ पर सभी श्रावकों ने गुरु वंदना करके उपदेश सुना। पूतिगन्धा ने भी गुरु का उपदेश सुनकर कुछ क्षण बाद प्रश्न किया– हे भगवान्! मैंने पूर्वजन्म में कौन सा पाप किया है जिससे मेरा शरीर महा दुर्गन्धियुक्त है।

मुनिराज ने कहा– पुत्री! सुनो, तुमने सिंधुमती सेठानी की अवस्था में मुनिराज को कड़वी तूमड़ी का आहार दिया था। उसके फलस्वरूप बहुत काल तक नरक और तिर्यंचों के दुख भोगे हैं और अभी भी पाप के शेष रहने से यह स्थिति हुई है। सारी घटना सुनकर पूतिगंधा ने कहा– हे गुरुदेव! अब मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे पापों का क्षय हो। मुनिराज ने कहा-पुत्री! अब तुम सभी पापों से मुक्त होने के लिए रोहिणी व्रत करो।

रोहिणी व्रत विधि–जिस दिन चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में हो उस दिन चतुराहार त्यागकर उपवास करना चाहिए और वासुपूज्य जिनेन्द्र की पूजा करके उनका जाप करना चाहिए। **ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय नमः।** यह रोहिणी नक्षत्र सत्ताईस दिन में आता है। इस तरह सत्ताइसवें दिन उपवास करते हुए पाँच वर्ष और नव दिन में सरसठ उपवास हो जाते हैं। अनन्तर उद्यापन में वासुपूज्य भगवान की महापूजा कराके रोहिणी व्रत संबंधी पुस्तक लिखाकर (छपाकर) और भी अन्य ग्रंथों का भी भव्य जीवों में वितरण करना चाहिए। ध्वजा, कलश, घण्टा, घण्टिका, दर्पण, स्वस्तिक आदि से मंदिर को भूषित करके महापूजा के अनंतर चतुर्विध संघ को आहार आदि चार प्रकार का दान और आर्यिकाओं के लिए वस्त्र का दान देना चाहिए।

इस तरह गुरुमुख से सुनकर विधिवत् व्रत ग्रहणकर पूतिगंधा ने उसका पालन किया। श्रावक व्रत पालन करते हुए अंत में समाधिपूर्वक मरण करके वह अच्युत नामक सोलहवें स्वर्ग में महादेवी हो गई वहाँ से च्युत होकर यह तुम्हारी वल्लभा रोहिणी हुई है। राजन्! यह रोहिणी व्रत का ही माहात्म्य है जो कि यह 'शोक' और 'दुःख'को नहीं समझ पाई है।

अनन्तर मुनिराज ने अशोक से कहा– अब मैं तुम्हारे पूर्वजन्म सुनाता हूँ सो एकाग्रचित्त होकर सुनो।

कलिंग देश के निकट विंध्याचल पर्वत पर अशोक वन में स्तंबकारी और श्वेतकारी नाम के दो मदोन्मत्त हाथी थे। किसी एक दिन नदी में जल के लिए घुसे और आपस में लड़कर मर गये। वे बिलाव और चूहा हुए, पुनः साँप-नेवला और बाज–बगुला हुए, पुनः दोनों ही कबूतर हुए। अनन्तर कनकपुर के राजा सोमप्रभ के पुरोहित सोमभूमि की पत्नी सोमिला से सोमशर्मा और सोमदत्त नाम के पुत्र हो गये।

राजा सोमप्रभ ने सोमभूमि के मरने के बाद पुरोहित पद सोमदत्त नामक उनके छोटे पुत्र को दे दिया। किसी समय सोमदत्त को यह मालूम हुआ कि मेरा बड़ा भाई मेरी पत्नी के साथ दुराचार करता है, तब उसने विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। इधर राजा ने पुरोहित पद सोमशर्मा को दे दिया।

एक बार सोमप्रभ राजा ने हाथी के लिए शकट देश के अधिपति वसुपाल के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर दिया। उस समय सोमदत्त मुनि के दर्शन होने से सोमशर्मा ने कहा–महाराज! आपको अपशकुन हो गया है अतः इन मुनि को मारकर इनके खून को दशों दिशाओं में क्षेपण कर शांतिकर्म करना चाहिए। यह सुनकर राजा ने अपने कान दोनों हाथों से ढ़क लिए। तब विश्वसेन नामक निमित्तज्ञानी ने आकर बतलाया–राजन्! आपको आज बहुत ही उत्तम शकुन हुआ है। देखिए! "यति, घोड़ा, हाथी, बैल, कुम्भ, ये चीजें प्रस्थान और प्रवेश में सिद्धिसूचक मानी गई हैं।"

अन्यत्र भी कहा है–

आरुरोह रथं पार्थ! गांडीवं चापि धारय! निर्जितां मेदिनां मन्ये निर्ग्रन्थो यतिरग्रतः।।

महाभारत में लिखा है–कि श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–हे अर्जुन! तुम रथ पर चढ़ जाओ और धनुष धारण कर लो। सामने निर्ग्रन्थ मुनिराज के दर्शन हो रहे हैं, इसलिए मैं समझता हूँ कि अब हमने पृथ्वी जीत ली। हमारी विजय निश्चित है। ज्योतिष शास्त्र में भी एक सुभाषित है–

पद्मिन्यो राजहंसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः। यद्देशमभिगच्छन्ति तद्देशे शुभमादिशेत्।

पद्मिनी स्त्रियां, राजहंस और निर्ग्रन्थ तपस्वी जिस प्रदेश में रहते हैं, उस प्रदेश में सर्वत्र मंगल रहता है। अन्यत्र धर्मग्रन्थों में भी 'साधु के दर्शन से पापों का नाश हो जाता है' ऐसा कहा गया है।

राजन्! आप देखिए, प्रातः ही राजा वसुपाल त्रिलोकसुन्दर हाथी लाकर आपको भेंट करेगा। विश्वसेन के वचनों से राजा का मन शान्त हो गया। पुनः प्रातःकाल स्वयं वसुपाल राजा ने आकर वह हाथी सहर्ष भेंट कर दिया।

इधर सोमशर्मा ने पूर्व वैर के कारण रात्रि में सोमदत्त मुनि की हत्या कर दी। जब राजा को इस बात का पता चला तब पाँच प्रकार के दण्डों से दण्डित किया। मुनि हत्या के पास से सोमशर्मा को कुष्ठ रोगहो गया और वह मरकर सातवें नरक पहुँच गया।

वहाँ से निकलकर महामत्स्य हुआ, छठे नरक गया, सिंह हुआ, पाँचवे नरक गया, सर्प हुआ, चतुर्थ नरक गया, पक्षी हुआ, द्वितीय नरक गया-बगुला हुआ, पुनः प्रथम नरक गया। वहाँ से निकलकर सिंहपुर के राजा सिंहसेन की रानी से पूतिगंध नाम का महादुर्गन्ध शरीरधारी पुत्र हुआ।

किसी समय विमलमदन जिनराज को केवलज्ञान होने पर देवों के आगमन को देखकर पूतिगंध मूर्च्छित हो गया। पुनः होश में आने पर उसे जातिस्मरण हो गया। वह पिता के साथ केवली भगवान का दर्शन करके मनुष्यों की सभा में बैठ गया। राजा ने पूतिगंध के पूर्व भव पूछे और पूर्वोक्त प्रकार विशेष स्पष्टतया जिनेन्द्र की वाणी से अपने भवांतरों को सुनकर पूतिगंध ने कहा–प्रभो! अब मुझे दुःखों से छूटने के लिए कोई व्रतादि बतलाइये, तब भगवान ने उसे रोहिणी व्रतका उपदेश दिया। इस व्रत में तीन साल में चालीस उपवास होते हैं और पाँच वर्ष नव दिन में सरसठ उपवास होते हैं। अनंतर विधिवत् उद्यापन करना चाहिए।

पूतिगंध राजकुमार इस व्रत और अणुव्रत आदि के प्रभाव से उसी भव में सुगंध शरीर वाला हो गया। अनंतर एक महीने में ही सल्लेखना विधि से मरण करके प्राणत नामक स्वर्ग में महर्द्धिक देव हो गया। वहाँ से च्युत होकर पूर्वविदेह में पुंडरीकिणी नगरी के विमलकीर्ति राजा की श्रीमती रानी से अर्ककीर्ति नाम का पुत्र हो गया। आगे जाकर अककीर्ति ने महावैभव स्वरूप चक्रवर्ती के पद को प्राप्त किया, अमित सुखों का अनुभव करके विरक्त हो जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। अंत में मरणकर सोलहवें स्वर्ग में देवपद को प्राप्त किया। उस समय पूतिगंधा का जीव जो कि रोहिणी व्रत के प्रभाव से स्वर्ग में देवी हुई थी, वह इस देव की प्रिय देवी हुई। वहाँ से च्युत होकर आप अशोक राजा हुए हैं।

इस प्रकार मुनिराज के मुख से भवांतरों को सुनकर राजा-रानी अति प्रसन्न हुए और सभी पुत्र-पुत्रियों के भव पूछकर हर्षितमना अपने शहर वापस आ गये। एक समय श्वेत केश को देखकर विरक्त होकर राजा अशोक ने वासुपूज्य भगवान के समवसरण में जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और सात ऋद्धि से सम्पन्न हुए भगवान के गणधर हो गये। अनन्तर मोक्ष को पधार गये। रोहिणी भी सुमति आर्यिका के समीप आर्यिका दीक्षा लेकर स्त्री पर्याय को छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव हो गई।

इस प्रकार से रोहिणी व्रत का माहात्म्य अचिंत्य है। इस व्रत में हर उपवास के दिन भगवान वासुपूज्य का अभिषेक करके पूजन करना चाहिए, पुनः यह जाप्य करना चाहिए–**ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय नमः।**

चारित्रशुद्धि व्रत विधि

प्रस्तुति -गणिनी ज्ञानमती

आवश्यक पठितव्य—

मुनियों के तेरह प्रकार के चारित्र प्रसिद्ध हैं। पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति। पाँच महाव्रत के अनंतर रात्रिभोजन त्यागरूप में छठा अणुव्रत भी माना है। मूलाचार में एवं श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से निर्गत मुनि, आर्यिकाओं के दैवसिक-रात्रिक एवं पाक्षिक प्रतिक्रमण में इस छठे अणुव्रत का बहुत बार उल्लेख आता है। टीकावारों ने स्पष्ट किया है कि महाव्रत पाँच ही होते हैं। चूंकि साधु दिन में एक बार ही भोजन करते हैं अतः यह रात्रिभोजन त्याग छठा अणुव्रत ही है, महाव्रत नहीं है।

इन चारित्रशुद्धिव्रत के मंत्रों में इन तेरह विध चारित्र के भेदों में मन, वचन, काय को कृत, कारित, अनुमोदना से गुणित करने पर नव भेद हो जाते हैं अतः हरिवंशपुराण ग्रंथ के आधार से ये मंत्र 1234 हो जाते हैं।

अन्यत्र छपी पुस्तकों में मंत्रों में समिति और गुप्ति के मंत्रों में भी महाव्रत लगाया है सो अनुचित है चूंकि 'सर्वदोष प्रायश्चित्त विधि' मंत्र 33 हैं उनमें भी समिति और गुप्ति में महाव्रत शब्द का प्रयोग नहीं है। (आगे देखें)

इस 1234 व्रत को करने की परंपरा उपवास या अल्पाहार आदि से मुनियों में आर्यिकाओं में तो है ही, श्रावक-श्राविकाओं में भी प्रचलित है।

इसी प्रकार से जो ब्रह्मचर्य व्रत के 180 मंत्र हैं उनमें पुरुषवर्ग के लिए करने योग्य मंत्र हैं। यथा—

ॐ ह्रीं मनसाकृत नरस्त्रीस्पर्शनेन्द्रिय विषयाब्रह्मविरति महाव्रत-प्रोषधोद्योतनाय नमः। महिलाओं के प्रश्न आते हैं कि आप हमें ब्रह्मचर्यव्रत देते समय पुरुष के साथ संपर्क त्याग का नियम देते हैं न कि महिलाओं के संपर्क त्याग का, अतः ब्रह्मचर्यव्रत की भावना या शुद्धि हेतु ये मंत्र कैसे जपना? आदि।

मैंने इन 180 मंत्रों में से 'स्त्रीवाचक' शब्द निकाल कर जपने को लिखा है। अतः ये 180 मंत्र पुनः जोड़े हैं सभी आचार्य, मुनि और आर्यिकाएं इस विषय पर ध्यान दें और स्वयं आगे छपाने में स्त्रियों के लिए ऐसे मंत्र अवश्य जोड़ें तथा समिति और गुप्ति के मंत्रों से मैंने 'महाव्रत' शब्द निकाल दिया है, 'सर्वदोषप्रायश्चित्तविधि' मंत्रों के आधार से एवं महाव्रत पांच ही हैं। इस कथन के अनुसार ही संशोधन किया है।

इसी प्रकार सत्यमहाव्रत के मंत्रों में भी हरिवंशपुराण के आधार से श्लोक में नाम अलग हैं और आगे मंत्रों में कुछ अंतर है वह भी विचारणीय था अतः सुधारा है।

यथा—**'भीर्ष्या-स्वपक्ष-पैशून्य-क्रोध-लोभात्मशंसनैः। द्वासप्ततिर्नवघ्नैस्ते परनिन्दान्वितैरिति।।101।।'** (विधि-चारित्रशुद्धि पृ. 3)

असत्य भाषण 8 प्रकार से होता है, जैसे-भी-भय, ईर्ष्या, स्वपक्ष-समर्थन, चुगुलखोरी, क्रोध, लोभ, आत्मप्रशंसा और पर की निन्दा।

मंत्र इस प्रकार है—**''ॐ ह्रीं मनसा कृताभिख्यासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।''**

यहां 'अभिख्यासत्य' का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया है। मैंने मंत्र दिया है—

''ॐ ह्रीं मनसा कृतभयनिमित्तासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।''

आगे 'ईर्ष्या' का मंत्र इसमें नहीं है उस जगह पर परपक्ष- असत्य है तथा परनिंदा असत्य की जगह 'पराप्रशंसनासत्य' है। अतः ये मंत्र भी मैंने संशोधित किये हैं। यथा—

अन्यत्र से छपी हुई 'चारित्रशुद्धिव्रत' पुस्तक में छपे मंत्र-

ॐ ह्रीं मनसा कृताभिख्यासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
ॐ ह्रीं मनसाकृत स्वपक्षासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
ॐ ह्रीं मनसाकृत परपक्षासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
ॐ ह्रीं मनसाकृत पैशुन्यासत्यसत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
ॐ ह्रीं मनसाकृत क्रोधासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
ॐ ह्रीं मनसाकृत लोभासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
ॐ ह्रीं मनसा कृतात्मप्रशंसासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।

ॐ ह्रीं मनसाकृत पराप्रशंसासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।

मैंने जो मंत्र संशोधित किए हैं-उनमें एक-एक नमूने यहाँ दिये हैं।

1. ॐ ह्रीं मनसा कृतभयनिमित्तासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
2. ॐ ह्रीं मनसा कृतेर्ष्यानिमित्तासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
3. ॐ ह्रीं मनसा कृतस्वपक्षपुष्टि-असत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधो-द्योतनाय नमः।
4. ॐ ह्रीं मनसा कृतपैशुन्यासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
5. ॐ ह्रीं मनसा कृतक्रोधासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
6. ॐ ह्रीं मनसा कृतलोभासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
7. ॐ ह्रीं मनसा कृतात्मप्रशंसासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।
8. ॐ ह्रीं मनसा कृतपरनिन्दासत्यविरतिमहाव्रतप्रोषधोद्योतनाय नमः।

ऐसे ही अन्यत्र से छपी पुस्तक में अचौर्यव्रत में 'उपधि अदत्तविरति' छूटा है अतः 'पानादत्तग्रहणविरति' के स्थान पर 'उपधिअदत्तविरति' मंत्र दिया है।

इसी प्रकार एषणासमिति में 46 दोषों में 'व्यपनिक' और 'चित्रयोग' दोष आये हैं। उनके स्थान पर मूलाचार के अनुसार 'वनीपक' और 'चूर्णदोष' के मंत्र दिये हैं तथा 'सर्वदोष प्रायश्चित्त विधि' के 33 मंत्रों में महाव्रत के बाद पाँच समितियों को पुनः तीनगुप्तियों को लिया है। इसी क्रम से मैंने इन मंत्रों को रखा है अतः इस संशोधित ग्रंथ के अनुसार ही 1234 व्रत करने वाले सभी साधुवर्ग-मुनिगण-आर्यिकागण और श्रावक-श्राविकागण जाप्य करें, ऐसी मेरी प्रेरणा है। जो रत्नत्रय में अनुरागी मुमुक्षुवर्ग सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित इन तेरह प्रकार के चारित्र का व्रत करेंगे वे निश्चित हीअपनी आत्मा को परमात्मा बनाने में सफल होंगे। यह व्रत सभी के स्वात्मसिद्धि में निमित्त बनें, यही मेरी मंगल कामना है।

हरिवंशपुराण के आधार से–

अनुष्टुप् – **चतुर्दशस्वहिंसार्थं जीवस्थानेषु भावितः। त्रियोगनवकोटिघ्ना, ते षड्विंशं शतं स्फुटम्।।100।।**
भीर्ष्यास्वपक्षपैशुन्यक्रोधलोभात्मशंसनैः। द्वासप्ततिर्नवघ्नैस्ते परनिन्दान्वितैरिति।।101।।
ग्रामारण्यखलैकान्तैरन्यत्रोपध्यभुक्तकैः। सपुष्टग्रहणैः प्राग्वद्द्वासप्ततिरमी मताः।।102।।
नृदेवाचित्ततिर्यक्स्त्रीरूपैः पञ्चेन्द्रियाहतैः। नवघ्नैः ब्रह्मचर्यैः स्युः, शतं तेऽशीतिमिश्रितम्।।103।।

उपजातिः – **चतुष्कषाया नव नोकषाया, मिथ्यात्वमेते द्विचतुःपदे च।**
क्षेत्रं च धान्यं च हि कुप्यभाण्डे, धनं च यानं शयनासनं च।।104।
अन्तर्बहिर्भेदपरिग्रहास्ते, रन्धैश्चतुर्विंशतिराहतास्तु।
ते द्वे शते षोडशसंयुते स्युर्महाव्रते स्यादुपवासभेदाः।।105।।

अनुष्टुप् – **षष्ठे दशोपवासाः स्युरनिच्छा नव कोटिभिः। प्रत्येकं नव विज्ञेया, त्रिगुप्तिसमितित्रिके।।106।।**

आर्या – **भावोपमाव्यवहारप्रतीत्यसंभावनासुभाषायाम्। जनपदसंवृतिनामस्थापनारूपा दश नवघ्नाः।।107।।**

अनुष्टुप् – **षट्चत्वारिंशद्दोषानेषणासमितौ मतान् । नवघ्नान् विघ्नितुं कार्यास्तावन्त उपवासकाः।।108।।**
त्रयोदशविधस्यैव चारित्रस्य विशुद्धये। विधौ चारित्रशुद्धौ स्युरुपवासाः प्रकीर्तिताः।।109।।

पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समिति के भेद से चारित्र के तेरह भेद हैं। चारित्रशुद्धि विधि में इन सबकी शुद्धि के लिए पृथक्-पृथक् उपवास करने की प्रेरणा दी गई है। प्रथम ही अहिंसा महाव्रत है सो 1. बादरएकेन्द्रियपर्याप्तक 2. बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक 3. सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक 4. सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक 5. द्वीन्द्रिय पर्याप्तक 6. द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक 7. त्रीन्द्रिय पर्याप्तक 8. त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक 9. चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक 10. चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक 11. असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक 12. असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक 13. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और 14. संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक।इन चौदह प्रकार के जीवस्थानों की हिंसा का त्याग मन-वचन-काययोग तथा कृत्कारित- अनुमोदना इन नौ कोटियों से करना चाहिए। इस अभिप्राय को लेकर प्रथम अहिंसा व्रत के एक सौ छब्बीस उपवास होते हैं और एक-एक उपवास के बाद एक-एक पारणा होने से एव सौ छब्बीस ही पारणाएँ होती हैं।।100।।

दूसरा सत्य महाव्रत है सो 1. भय 2. ईर्ष्या 3. स्वपक्ष पुष्टि 4. पैशुन्य 5. क्रोध 6. लोभ 7. आत्मप्रशंसा और 8. परनिन्दा। इन आठ निमित्तों से बोले जाने वाले असत्य का पूर्वोक्त नौ कोटियों से त्याग करनाचाहिए। इस अभिप्राय को लेकर द्वितीय सत्य महाव्रत के बहत्तर

उपवास होते हैं तथा उपवास के बाद एक-एक पारणा होने से बहत्तर ही पारणाएँ होंताहैं।।101।।

तीसरा अचौर्य महाव्रत है सो 1. ग्राम 2. अरण्य 3. खलिहान 4. एकान्त 5. अन्यत्र 6. उपधि 7. अभुक्तक और 8. सपुष्टग्रहण। इन आठ भेदों से होने वाली चोरी का पूर्वोक्त नौ कोटियों से त्याग करना चाहिएइस अभिप्राय को लेकर तृतीय अचौर्य महाव्रत में बहत्तर उपवास होते हैं तथा प्रत्येक उपवास की एक-एक पारणा होने से बहत्तर ही पारणाएँहोती हैं।।102।।

चौथा ब्रह्मचर्य महाव्रत है सो मनुष्य, देव, अचित्त और तिर्यंच इन चार प्रकार की स्त्रियों का प्रथम ही स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियों और तदनन्तर पूर्वोक्त नौ कोटियों से त्याग करना चाहिए। इस अभिप्राय को लेकर 5×4=20×9=180 एक सौ अस्सी उपवास होते हैं और इतनी ही पारणाएँ होती हैं।।103।।

पाँचवाँ परिग्रह त्याग महाव्रत है। सो चार कषाय, नौ नो कषाय और एक मिथ्यात्व इन चौदह प्रकार के अन्तरंग और दोपाये, (दासी-दास आदि) चौपाये, (हाथी-घोड़ा आदि) खेत, अनाज, वस्त्र, बर्तन, सुवर्णादि धन, यान (सवारी), शयन और आसन-इन दस प्रकार के बाह्य, दोनों मिलाकर चौबीस प्रकार के परिग्रह का नौ कोटियों से त्याग करना चाहिए। इस अभिप्राय को लेकर परिग्रहत्याग महाव्रत में दो सौ सोलह उपवास होते हैं और इतनी ही पारणाएँ होतीहैं।।104-105।।

छठा रात्रिभोजन त्याग अणुव्रत यद्यपि तेरह प्रकार के चारित्रों में परिगणित नहीं है तथापि गृहस्थ के संबंध से मुनियों पर भी असर आ सकता है अर्थात् गृहस्थ द्वारा रात्रि में बनायी हुई वस्तु को मुनि जानबूझकर ग्रहण करे तो उन्हें रात्रिभोजन का दोष लग सकता है। इस प्रकार के रात्रिभोजन का नौ कोटियों से त्याग करना चाहिए तथाअनिच्छा – दूसरे की जबर्दस्ती से भी रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। इस भावना को लेकर रात्रिभोजन त्याग व्रत में दश उपवास होते हैं और दश ही पारणाएँ होती हैं। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन तीन गुप्तियों तथा ईर्या, आदान-निक्षेपण औरप्रतिष्ठापन समिति इन तीन समितियों में प्रत्येक के नौ कोटियों की अपेक्षा नौ-नौ उपवास होते हैं अर्थात् तीन गुप्तियों के सत्ताईसउपवास और सत्ताईस पारणाएँ हैं तथा उपरिकथित तीन समितियों के भी सत्ताईस उपवास और सत्ताईस पारणाएँ जाननी चाहिए।।106।।

भाषा समिति में 1. भाव सत्य 2. उपमा सत्य 3. व्यवहार सत्य 4. प्रतीत सत्य 4. सम्भावना सत्य 6. जनापद सत्य 7. संवृत्ति सत्य 8. नाम सत्य 9. स्थापना सत्य और 10. रूप सत्य इन दश प्रकार के सत्य वचनों का नौ कोटियों से पालन करना पड़ता है। इस अभिप्राय को लेकर भाषा समिति में नब्बे उपवास होते हैं तथा इतनी ही पारणाएँ होती हैं।।107।।

और एषणा समिति में नौ कोटियों से लगने वाले छियालिस दोषों को नष्ट करने के लिए चार सौ चौदह उपवास होते हैं तथा उतनी ही पारणाएँ होती हैं।।108।।

इस प्रकार तेरह प्रकार के चारित्र को शुद्ध रखने के लिए चारित्रशुद्धि व्रत में सब मिलाकर एक हजार दो सौ चौंतीस उपवास कहे हैं तथा इतनी ही पारणाएँ कही गई हैं। इस व्रत में छह वर्ष दश माह आठ दिन लगते हैं।।109।।

विशेष – उपवासों की संख्या इस यंत्र से स्पष्ट जानना चाहिए –

कुल व्रतों का जोड़ - 676

अहिंसा महाव्रत	14×9=	126
सत्य महाव्रत	8×9=	72
अचौर्य महाव्रत	8×9=	72
ब्रह्मचर्य महाव्रत	20×9=	180
अपरिग्रह महाव्रत	24×9=	216
रात्रिभोजन त्याग अणुव्रत	1×9=9+1=	10
		676

ईर्यासमिति	1×9=	9
भाषा समिति	10×9=	90
एषणा समिति	46×9=	414
आदाननिक्षेपण समिति	1×9=	9
प्रतिष्ठापना समिति	1×9=	9
मनोगुप्ति	1×9=	9
वचनगुप्ति	1×9=	9
कायगुप्ति	1×9=	9
		1234

इस प्रकार 1234 उपवास व इतने ही पारणे होते हैं।

विधि – प्रथम उपवास प्रथम पारणा, द्वितीय उपवास द्वितीय पारणा, तीसरा उपवास तीसरा पारणा, इस प्रकार आगे-आगे करते रहने से यह व्रत 6 वर्ष 10 महीने और 8 दिन में पूर्ण होता है और महीने में 10 उपवासकरने पर 10 वर्ष साढ़े तीन मास में पूर्ण होते हैं।

कदाचित् ऐसी शक्ति न हो तो बीच-बीच में भी उपवास किये जा सकते हैं और 25-30 वर्ष में समाप्त किये जा सकते हैं पर उपवासों की संख्या कुल 1234 होनी चाहिए।

जो महानुभाव इस व्रत को निरतिचार पालन करते हैं उनके 13 प्रकार का निर्मल चारित्र पलता है। इस व्रत का विधान हरिवंशपुराण के 34वें सर्ग से लिया गया है।

कथा–मगध देश में राजगृही नगर का स्वामी राजा श्रेणिक न्यायपूर्वक राज्य शासन करता था। उसकी परम सुन्दरी और जिनधर्मपरायण श्रीमती चेलना पट्टरानी थी, सो जब विपुलाचल पर महावीर भगवान का समवसरण आया, तब राजा प्रजा सहित वंदना को गया और वंदना-स्तुति करके मनुष्यों की सभा में बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगा।

पश्चात् राजा ने पूछा–हे प्रभु! षोडशकारण व्रत से तो तीर्थंकर पद मिलता ही है, परन्तु क्या अन्य प्रकार से भी मिल सकता है, सो कृपाकर कहिए। तब गौतम स्वामी ने कहा–राजन् सुनो! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में अवन्ती देश है, वहाँ उज्जयिनी नगरी है, जहाँ हेमवर्मा राजा अपनी शिवसुन्दरी रानी सहित राज्य करता था।

एक दिन राजा वनक्रीड़ा करने को वन में गया था और वहाँ चारण मुनिराज को देखकर नमस्कार किया तथा मन में समताभाव धरकर विनय सहित पूछने लगा–भगवन्! कृपा करके बताइये कि मैं किस प्रकार तीर्थंकर पद प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करूँ? तब श्री गुरु ने कहा–राजन्! तुम बारह सौ चौंतीस व्रत करो। यह व्रत भादों सुदी 1 से प्रारंभ होता है इसमें 1234 उपवास करना चाहिए। एक महीने में 10 उपवास करने पर यह व्रत दश वर्ष और साढ़े तीन माह में पूरा होता है। व्रत के दिन आरंभ परिग्रह का त्याग कर भक्ति और पूजन में निमग्न रहे और **'ॐ ह्रीं असिआउसा चारित्रशुद्धिव्रतेभ्यो नमः'** इस मंत्र का 108 बार जाप करें। जब व्रत पूरा हो जावे, तब उद्यापन करें।

झारी, थाली, कलश आदि उपकरण चैत्यालय में भेंट करें, चौंसठ ग्रंथ बांटे, चार प्रकार का दान करे तथा 1234 लाडू श्रावकों के घर बांटे, पाठशालादि स्थापन करे इत्यादि और यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें।

इस प्रकार राजा ने व्रत की विधि सुनकर उसे यथाविधि पालन किया व उद्यापन भी किया।

अन्त में समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से चयकर वह विदेह क्षेत्र के विजयापुरी में धनंजय राजा के चन्द्रभानु नाम का तीर्थंकर पदधारी पुत्र हुआ। उसके गर्भादिक पाँच कल्याणक हु।

इस प्रकार राजा हेमवर्मा स्वर्ग के सुख भोगकर तीर्थंकर पद प्राप्त करके इस व्रत के प्रभाव से मोक्ष गया। इसलिए हे श्रेणिक! तीर्थंकर पद प्राप्त करने के लिए यह व्रत भी एक साधन है।

यह सुनकर राजा श्रेणिक ने भी श्रद्धासहित इस व्रत को धारण किया और षोडशकारण भावनाएँ भी भायीं सो तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया। अब आगामी चौबीसी में वे प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार और भी जो भव्य जीव इस व्रत का पालन करेंगे, वे भी उत्तमोत्तम सुखों को पाकर मोक्षपद प्राप्त करेंगे।

चारित्रशुद्धिव्रत की 1234 पृथक्-पृथक् जाप्य-



कर्मदहन व्रत विधि

ज्ञानावरणादि 8 कर्मों की 148 प्रकृतियों को नाश करने के लिए और आत्मशुद्धि के लिए कर्मदहन व्रत करने की और उसका विधान करने की प्रथा दिगम्बर जैन समाज में प्रचलित है।

इस कर्मदहन व्रत के 156 उपवास करने पड़ते हैं अर्थात् कर्म की 148 प्रकृतियों के 148 उपवास और कर्म नाश होने के बाद सिद्धों के जो आठ गुण प्राप्त होते हैं उनके 8 उपवास करने पड़ते हैं। ये उपवास चाहे जिस दिन नहीं करने चाहिए। निम्न तिथियों में ये 156 उपवास पूर्ण करने चाहिए।

1. चौथे गुणस्थान में 7 प्रकृतियों का नाश होता है, इसलिए चतुर्थी के 7 उपवास करें।
2. सातवें गुणस्थान में 3 प्रकृतियों का नाश होता है, इसलिए सप्तमी के 3 उपवास करें।
3. नौवें गुणस्थान में 36 प्रकृतियों का नाश होता है, इसलिए नवमी के 36 उपवास करें।
4. दसवें गुणस्थान में 1 प्रकृति का नाश होता है, इसलिए दशमी का 1 उपवास करें।
5. बारहवें गुणस्थान में 16 प्रकृतियों का नाश होता है, इसलिए बारस के 16 उपवास करें।
6. चौदहवें गुणस्थान में 85 प्रकृतियों का नाश होता है, इसलिए चौदश के 85 उपवास करें।
7. सिद्धों के अष्टगुणों के कारण अष्टमी के 8 उपवास करें।

इस प्रकार 7+3+36+1+16+85+8=156 उपवास कर्मदहन व्रत के करने चाहिए तथा हर एक उपवास के दिन गृहारम्भ का त्याग करके ब्रह्मचर्य धारण कर स्नानादि क्रिया से शरीर तथा वस्त्र की शुद्धि करके श्री जिनालय में आकर श्री अर्हंत भगवान का पंचामृताभिषेक करके देव-शास्त्र-गुरुपूर्वक श्री सिद्धपूजा करें। फिर 108 जाप्य देवें। कुल 156 जाप्य हैं। उनमें हर एक उपवास के दिन क्रमशः एक-एक जाप्य को 108 बार जपना चाहिए।

ये उपवास प्रोषधोपवास ही करने चाहिए अर्थात् पहले दिन एकाशन करके उपवास करें और फिर दूसरे दिन एकाशन करें। इसको प्रोषधोपवास कहते हैं।

यह कर्मदहनव्रत (156 उपवास) पूर्ण होने पर फिर उद्यापन करें। उसमें श्री जिनमंदिर में यथाशक्ति अष्ट मंगल द्रव्य और उपकरणादि चढ़ावें तथा मांडना मांड कर वृहत् अभिषेक, जलशुद्धि व सकलीकरणादि को विधिपूर्वक करके यह कर्मदहन व्रत विधान मंगलाष्टक, पुण्याहवाचन व शांतिविसर्जनपूर्वक करें, फिर यथाशक्ति चारों प्रकार का दान करें। उनमें खास करके जैन संस्थाओं के लिए अच्छी रकम विद्यादान में अवश्य निकालें तथा कम से कम 156 शास्त्रों का दान करें। यदि उद्यापन करने की शक्ति न हो तो यह व्रत दूना करना चाहिए।

चतुर्थी के 7 उपवास के सात मंत्र

1. ॐ ह्रीं मिथ्यात्व-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
2. ॐ ह्रीं सम्यक्मिथ्यात्व-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
3. ॐ ह्रीं मिश्र-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
4. ॐ ह्रीं अनन्तानुबंधिक्रोध-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अनन्तानुबंधिमान-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अनन्तानुबंधिमाया-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
7. ॐ ह्रीं अनन्तानुबंधिलोभ-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

सप्तमी के 3 उपवास के तीन मंत्र

1. ॐ ह्रीं नारकायुष्कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
2. ॐ ह्रीं तिर्यगायुष्कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
3. ॐ ह्रीं देवायुष्कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

नवमी के 36 उपवास के छत्तीस मंत्र

1. ॐ ह्रीं निद्रानिद्रा-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
2. ॐ ह्रीं प्रचलाप्रचला-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
3. ॐ ह्रीं स्त्यानगृद्धि-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
4. ॐ ह्रीं नरकगति-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
5. ॐ ह्रीं तिर्यग्गति-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
6. ॐ ह्रीं नरकगत्यानुपूर्वी-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
7. ॐ ह्रीं तिर्यग्गत्यानुपूर्वी-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
8. ॐ ह्रीं एकेन्द्रिय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
9. ॐ ह्रीं द्विन्द्रिय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
10. ॐ ह्रीं त्रीन्द्रिय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
11. ॐ ह्रीं चतुरिन्द्रिय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
12. ॐ ह्रीं स्थावर-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
13. ॐ ह्रीं आतप-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
14. ॐ ह्रीं उद्योत-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
15. ॐ ह्रीं परघात-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
16. ॐ ह्रीं सूक्ष्म-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
17. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावरणक्रोध-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

18. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावरणमान-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
19. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावरणमाया-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
20. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावरणलोभ-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
21. ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यानावरणक्रोध-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
22. ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यानावरणमान-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
23. ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यानावरणमाया-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
24. ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यानावरणलोभ-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
25. ॐ ह्रीं नपुंसकवेद-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
26. ॐ ह्रीं स्त्रीवेद-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
27. ॐ ह्रीं पुरुषवेद-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
28. ॐ ह्रीं हास्य-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
29. ॐ ह्रीं रति-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
30. ॐ ह्रीं अरति-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
31. ॐ ह्रीं शोक-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
32. ॐ ह्रीं भय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
33. ॐ ह्रीं जुगुप्सा-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
34. ॐ ह्रीं संज्वलनक्रोध-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
35. ॐ ह्रीं संज्वलनमान-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
36. ॐ ह्रीं संज्वलनमाया-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

दशमी के 1 उपवास के एक मंत्र

1. ॐ ह्रीं संज्जवलनलोभ-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

बारस के 16 उपवास के सोलह मंत्र

1. ॐ ह्रीं निद्रा-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
2. ॐ ह्रीं प्रचला-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
3. ॐ ह्रीं मतिज्ञानावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्रुतज्ञानावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अवधिज्ञानावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
6. ॐ ह्रीं मनःपर्ययज्ञानावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
7. ॐ ह्रीं केवलज्ञानावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
8. ॐ ह्रीं चक्षुर्दर्शनावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
9. ॐ ह्रीं अचक्षुर्दर्शनावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
10. ॐ ह्रीं अवधिदर्शनावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
11. ॐ ह्रीं केवलदर्शनावरण-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
12. ॐ ह्रीं दानांतराय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
13. ॐ ह्रीं लाभान्तराय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

14. ॐ ह्रीं भोगान्तराय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
15. ॐ ह्रीं उपभोगान्तराय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
16. ॐ ह्रीं वीर्यान्तराय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

चौदस के 85 उपवास के 85 मंत्र

1. ॐ ह्रीं असातावेदनीय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
2. ॐ ह्रीं औदारिकशरीर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
3. ॐ ह्रीं वैक्रियिकशरीर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
4. ॐ ह्रीं आहारकशरीर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
5. ॐ ह्रीं तैजसशरीर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
6. ॐ ह्रीं कार्मणशरीर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
7. ॐ ह्रीं औदारिकबंधन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
8. ॐ ह्रीं वैक्रियिकबंधन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
9. ॐ ह्रीं आहारकबंधन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
10. ॐ ह्रीं तैजसबंधन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
11. ॐ ह्रीं कार्मणबंधन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
12. ॐ ह्रीं औदारिकसंघात-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
13. ॐ ह्रीं वैक्रियिकसंघात-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
14. ॐ ह्रीं आहारसंघात-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
15. ॐ ह्रीं तैजससंघात-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
16. ॐ ह्रीं कार्मणसंघात-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
17. ॐ ह्रीं औदारिकाङ्गोपाङ्ग-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
18. ॐ ह्रीं वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
19. ॐ ह्रीं आहारकाङ्गोपाङ्ग-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
20. ॐ ह्रीं समचतुरस्रसंस्थान-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
21. ॐ ह्रीं न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
22. ॐ ह्रीं स्वातिसंस्थान-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
23. ॐ ह्रीं वामनसंस्थान-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
24. ॐ ह्रीं कुब्जकसंस्थान-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
25. ॐ ह्रीं हुण्डकसंस्थान-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
26. ॐ ह्रीं वज्रवृषभनाराचसंहनन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
27. ॐ ह्रीं वज्रनाराचसंहनन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
28. ॐ ह्रीं नाराचसंहनन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
29. ॐ ह्रीं अर्धनाराचसंहनन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
30. ॐ ह्रीं कीलकसंहनन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
31. ॐ ह्रीं असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
32. ॐ ह्रीं श्यामवर्ण-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

33. ॐ ह्रीं हरिद्वर्ण-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
34. ॐ ह्रीं पीतवर्ण-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
35. ॐ ह्रीं अरुणवर्ण-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
36. ॐ ह्रीं श्वेतवर्ण-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
37. ॐ ह्रीं तिक्तरस-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
38. ॐ ह्रीं कडुकरस-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
39. ॐ ह्रीं मधुरस-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
40. ॐ ह्रीं आम्लरस-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
41. ॐ ह्रीं कषायरस-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
40. ॐ ह्रीं मुदुस्पर्श-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
43. ॐ ह्रीं कठोरस्पर्श-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
44. ॐ ह्रीं शीतस्पर्श-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
45. ॐ ह्रीं उष्णस्पर्श-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
46. ॐ ह्रीं रुक्षस्पर्श-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
47. ॐ ह्रीं स्निग्धस्पर्श-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
48. ॐ ह्रीं गुरुस्पर्श-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
49. ॐ ह्रीं लघुस्पर्श-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
50. ॐ ह्रीं सुगंध-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
51. ॐ ह्रीं दुर्गन्ध-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
52. ॐ ह्रीं देवगत्यानुपूर्वी-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
53. ॐ ह्रीं अगुरु-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
54. ॐ ह्रीं लघु-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
55. ॐ ह्रीं उच्छवास-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
56. ॐ ह्रीं उपघात-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
57. ॐ ह्रीं शुभविहायोगति-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
58. ॐ ह्रीं अशुभविहायोगति-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
59. ॐ ह्रीं अपर्याप्त-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
60. ॐ ह्रीं स्थिर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
61. ॐ ह्रीं अस्थिर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
62. ॐ ह्रीं शुभ-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
63. ॐ ह्रीं अशुभ-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
64. ॐ ह्रीं दुर्भग-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
65. ॐ ह्रीं सुस्वर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
66. ॐ ह्रीं दुःस्वर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
67. ॐ ह्रीं अनादेय-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
68. ॐ ह्रीं अयशो-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

69. ॐ ह्रीं यशो-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
70. ॐ ह्रीं निर्माण-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
71. ॐ ह्रीं नीचगोत्र-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
72. ॐ ह्रीं देवगति-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
73. ॐ ह्रीं सातावेदनीय-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
74. ॐ ह्रीं मनुष्यायुः-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
75. ॐ ह्रीं मनुष्यगति-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
76. ॐ ह्रीं मनुष्यगत्यानुपूर्वी-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
77. ॐ ह्रीं पंचेन्द्रियजाति-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
78. ॐ ह्रीं त्रस-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
79. ॐ ह्रीं बादर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
80. ॐ ह्रीं पर्याप्ति-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
81. ॐ ह्रीं सुभग-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
82. ॐ ह्रीं आदेय-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
83. ॐ ह्रीं उच्चगोत्र-कर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
84. ॐ ह्रीं यशो-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।
85. ॐ ह्रीं तीर्थंकर-नामकर्मरहिताय सिद्धाय नमः।

इस प्रकार 148 कर्म-प्रकृतियों का क्षय कर आत्मा मोक्ष को चला जाता है। फिर वह संसार में कभी नहीं आता है। मुक्त आत्मा को सिद्ध कहते हैं सिद्ध अवस्था में उसके अनन्त गुण प्रगट होते हैं उनमें आठ गुण मुख्य हैं। इन आठ गुणों के अष्टमी के आठ उपवास कर प्रत्येक दिन क्रम से नीचे लिखे आठ मंत्रों की जाप देनी चाहिए।

अष्टमी के आठ उपवास के 8 मंत्र

1. ॐ ह्रीं सम्यक्त्व-गुणसहिताय सिद्धाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अनन्तदर्शन-गुणसहिताय सिद्धाय नमः।
3. ॐ ह्रीं अनन्तज्ञान-गुणसहिताय सिद्धाय नमः।
4. ॐ ह्रीं अनन्तवीर्य-गुणसहिताय सिद्धाय नमः।
5. ॐ ह्रीं सूक्ष्मत्व-गुणसहिताय सिद्धाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अमूर्त्तिक-गुणसहिताय सिद्धाय नमः।
7. ॐ ह्रीं अगुरुलघु-गुणसहिताय सिद्धाय नमः।
8. ॐ ह्रीं अव्याबाध-गुणसहिताय सिद्धाय नमः।



णमोकार व्रत विधि

नमस्कारपञ्चत्रिंशत्कायां सप्तम्यां सप्त पञ्चम्याः पञ्चचतुर्दश्याश्चतुर्दश नवम्याः नवोपवासाः कथिताः। एतन्नमोकारपञ्चत्रिंशत्कमेतदक्षरसमुदायं विभज्यैकैकाक्षरस्योपवासः करणीयः। अस्मिन् व्रते न मासतिथ्यादिको नियमः, केवलां तिथिं प्रपद्य भवतीति तिथिसावधिकानि व्रतानि।

अर्थ—नमस्कारपञ्चत्रिंशत्—नमस्कार पैंतीसी व्रत में सप्तमी के सात उपवास, पंचमी के पाँच उपवास, चतुर्दशी के चौदह उपवास और नवमी के नौ उपवास बताये गये हैं। णमोकार मंत्र में पैंतीस अक्षर होते हैं, एक-एक अक्षर का एक-एक उपवास किया जाता है। इस व्रत के आरंभ करने में किसी मास की किसी विशेष तिथि का नियम नहीं है। केवल तिथि के अनुसार ही व्रत किया जाता है। इस प्रकार तिथि सावधिक व्रतों का कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—णमोकार मंत्र की विशेष आराधना के लिए नमस्कार पैंतीसी व्रत किया जाता है। इस व्रत में 35 उपवास करने का विधान है। सप्तमी तिथि के सात उपवास, पंचमी तिथि के पाँच उपवास, चतुर्दशी तिथि के चौदह उपवास एवं नवमी तिथि के नौ उपवास किये जाते हैं। इस व्रत में उपवास के दिन पंचपरमेष्ठी का पूजन और अभिषेक करना होता है तथा **जाप्य– 'ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं', ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं, ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं, ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं, ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं''** इस मंत्र का जाप किया जाता है। उपवास के पहले और पिछले दिन एकाशन करनाहोता है।

श्रावक त्रेपनक्रिया व्रत विधि

श्रावकों के लिए त्रेपन क्रियाओं का रयणसार आदि ग्रंथों में विधान है। इनके व्रत की विधि व्रत तिथि निर्णय में कही गई है। इसमें 8 मूलगुण, 1 रात्रिभोजन त्याग, 1 जलगालन, 1 साम्यभाव, 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत, 4 दान, 11 प्रतिमा, 12 तप और 3 रत्नत्रय, ऐसे त्रेपन क्रियाओं के त्रेपन व्रत माने हैं। इनकी तिथियाँ निम्न प्रकार हैं–

आठ मूलगुण के	अष्टमी के 8 व्रत
रात्रिभोजन त्याग का	प्रतिपदा का 1 व्रत
जलगालन का	प्रतिपदा का 1 व्रत
साम्यभाव का	प्रतिपदा का 1 व्रत
पाँच अणुव्रत के	पंचमी के 5 व्रत
तीन गुणव्रत के	तृतीया के 3 व्रत
चार शिक्षाव्रत के	चतुर्थी के 4 व्रत
चार दान के	चतुर्थी के 4 व्रत
ग्यारह प्रतिमा के	एकादशी के 11 व्रत
बारह तप के	द्वादशी के 12 व्रत
तीन रत्नत्रय के	तृतीया के 3 व्रत

इस प्रकार त्रेपन व्रत किये जाते हैं। इनमें उत्कृष्ट व्रत तो उपवास से किया जाता है मध्यम व्रत जल, फल, मेवा, दूध आदि अल्प आहार से किया जाता है तथा जघन्य व्रत एक बार शुद्ध भोजन करके 'एकाशन' से भी किया जाता है।

यदि तिथि से व्रत नहीं कर सकते, तो खुले व्रत अर्थात् अष्टमी, चतुर्दशी आदि को कभी भी 53 व्रत कर सकते हैं। इस व्रत की पूजा तथा जाप्य के 53 मंत्र व समुच्चय मंत्र आगे दिये हैं। प्रत्येक व्रत में चौबीस भगवान की प्रतिमा का या किन्हीं भी तीर्थंकर की प्रतिमा का अभिषेक करके चौबीसी पूजा और व्रत की पूजा करें एवं प्रत्येक व्रत में समुच्चय मंत्र की 1 माला जपकर प्रत्येक मंत्रों में से 1-1 मंत्र की क्रम से जाप्य करें, ऐसे त्रेपन व्रतों को पूर्ण करें। इन त्रेपन क्रिया के मंत्रों में गुणव्रत एवं शिक्षाव्रतों को श्री गौतम स्वामी द्वारा कथित पाक्षिकयतिप्रतिक्रमण से लिया गया है। व्रत पूर्ण कर शक्ति के अनुसार उद्यापन में जिनप्रतिमा प्रतिष्ठा, ग्रंथ प्रकाशन आदि कराके त्रेपन-त्रेपन वस्तुओं को – छत्र, चँवर आदि को मंदिर में देवें एवं त्रेपन-त्रेपन फल चढ़ाकर पूजा करके व्रत पूर्ण करें।

इस व्रत से श्रावक धर्म, जो कि मुनिधर्म का छोटा भाई है, इस धर्म की पूर्णता होती है एवं वह उत्तम श्रावक मुनि बनकर मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है अर्थात् इस व्रत का फल परंपरा से मोक्ष को प्राप्त कराने वाला है।

श्रावक त्रेपन क्रिया व्रत पूजा एवं जाप्य

– स्थापना –

ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

– अथाष्टक मंत्र –

ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

उदक चंदन तंदुल पुष्पकैश्चरूसुदीपसुधूपफलार्घ्य कैः।
धवलमंगलगानरवाकुले, जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे।।9।।

ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। पुष्पांजलिः।

समुच्चय मंत्र

जाप्य – **ॐ ह्रीं श्रावकत्रिपञ्चाशत्क्रियाविशुद्धये श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**

प्रत्येक मंत्र 53 –

1. **ॐ ह्रीं मद्यत्यागमूलगुणक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**
2. **ॐ ह्रीं पलत्यागमूलगुणक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**
3. **ॐ ह्रीं मधुत्यागमूलगुणक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**
4. **ॐ ह्रीं वटफलत्यागमूलगुणक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**

5. ॐ ह्रीं पिप्पलफलत्यागमूलगुणक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं उदुम्बरफलत्यागमूलगुणक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं प्लक्षफलत्यागमूलगुणक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं फल्गुफलत्यागमूलगुणक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं रात्रिभोजनत्यागक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
10. ॐ ह्रीं जलगालनक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं साम्यभावनाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं अहिंसाणुव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं सत्याणुव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं अचौर्याणुव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्याणुव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं परिग्रहपरिमाणाणुव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं दिग्विदिक्परिमाणगुणव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं विविधानर्थदण्डत्यागगुणव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं भोगोपभोगपरिमाणगुणव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं सामायिकशिक्षाव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं प्रोषधोपवासशिक्षाव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं अतिथिसंविभागशिक्षाव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
23. ॐ ह्रीं पश्चिमसल्लेखनाशिक्षाव्रतक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
24. ॐ ह्रीं आहारदानक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
25. ॐ ह्रीं औषधिदानक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
26. ॐ ह्रीं शास्त्रदानक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
27. ॐ ह्रीं अभयदानक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
28. ॐ ह्रीं दर्शनप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
29. ॐ ह्रीं व्रतप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
30. ॐ ह्रीं सामायिकप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
31. ॐ ह्रीं प्रोषधोपवासप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
32. ॐ ह्रीं सचित्तत्यागप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
33. ॐ ह्रीं रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
34. ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
35. ॐ ह्रीं आरंभत्यागप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
36. ॐ ह्रीं परिग्रहत्यागप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
37. ॐ ह्रीं अनुमतित्यागप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
38. ॐ ह्रीं उद्दिष्टत्यागप्रतिमाक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
39. ॐ ह्रीं अनशनतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
40. ॐ ह्रीं अवमौदर्यतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

41. ॐ ह्रीं वृत्तपरिसंख्यानतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
42. ॐ ह्रीं रसपरित्यागतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
43. ॐ ह्रीं विविक्तशयनासनतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
44. ॐ ह्रीं कायक्लेशतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
45. ॐ ह्रीं प्रायश्चित्ततपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
46. ॐ ह्रीं विनयतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
47. ॐ ह्रीं वैयावृत्यतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
48. ॐ ह्रीं स्वाध्यायतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
49. ॐ ह्रीं व्युत्सर्गतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
50. ॐ ह्रीं ध्यानतपःक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
51. ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
52. ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
53. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रक्रियाविशुद्धये श्रावकक्रियोपदेशकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

यह व्रत भव्यों के लिए सांसारिक सर्वसुख प्रदान कर अंत में सर्वोत्तम परमात्मपद प्राप्त करावे, यही मंगल कामना है।



श्री जिनसहस्रनाम व्रत विधि (लघु)

किसी भी महिने में अष्टमी चतुर्दशी व पंचमी आदि किसी भी तिथि को यह व्रत किया जा सकता है, व्रत करने की उत्तम विधि उपवास, मध्यम नीरस पेय (कांजी आदि) लेना, जघन्य एकाशन है। व्रत के दिन श्री जिनेन्द्र भगवान का पंचामृताभिषेक करना व कराना चाहिए तथा श्री जिनसहस्रनाम पूजा मंत्र आदि करके 108 सुगंधित व लवंग से अथवा माला से 1 जाप करें। इस तरह 11 व्रत करें व क्रमशः नीचे लिखे जाप करें व णमोकार मंत्र की जाप करें।

1. ॐ ह्रीं श्रीमदादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री दिव्यादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री स्थविष्ठादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री महाशोक ध्वजादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्रीवृक्षादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री महामुन्यादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री असंस्कृतादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री बृहदादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री त्रिकालदर्श्यादिशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री दिग्वासाद्यष्टाधिकशतनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्रीमदाद्यष्टाधिकसहस्रनामधारकाय श्रीजिनेन्द्राय नमः।



श्री जिनसहस्रनाम व्रतविधि (वृहत्)

चैत्र, वैशाख आदि महिनों में से किसी भी महीने में यह व्रत किया जा सकता है, व्रत के दिन श्री आदिनाथ भगवान का पंचामृत अभिषेक तथा पूजन करना चाहिए, साथ ही निम्न मंत्र जाप्य करें–

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेवाय गोमुख यक्ष चक्रेश्वरी यक्षी सहिताय नमः।

पुनः सहस्रनाम पूजा व सहस्रनाम के 1008 मंत्र करें, 1008 मंत्रों में पुष्पांजलि क्षेपण कर सकते हैं अथवा लौंग या पुष्पों से भी 1008 मंत्रों से आराधना कर सकते हैं।

प्रत्येक व्रत में कम से कम 1-1 मंत्र की पूजा एवं जाप्य करें।

जैसे- ॐ ह्रीं श्रीमज्जिनेन्द्र! अत्र एहि एहि संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीमज्जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीमज्जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।
ॐ ह्रीं श्रीमते नमः जलं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीमते नमः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं श्रीमते नमः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीमते नमः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीमते नमः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीमते नमः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीमते नमः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीमते नमः फलं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीमते नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य–ॐ ह्रीं श्रीमते नमः। "यह जाप्य करें।"

इसी प्रकार क्रम से प्रत्येक व्रत से एक-एक नाम की पूजा और जाप्य करें। अनंतर णमोकार मंत्र की भी 1 जाप्य करें और श्रुतपूजा, गुरुपूजा करके शासन देव-देवी को यथायोग्य अर्घ्य समर्पित करें, पुनः मंगल आरती करें। व्रतों के दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालना चाहिए। उत्तम विधि उपवास, मध्यम विधि नीरस पेय, कांजी आदि ग्रहण करना तथा जघन्य विधि एकाशन है। 1008 व्रतों के पूर्ण होने के बाद यथाशक्ति उद्यापन करें। सहस्रनाम विधान करके 1008 नैवेद्य व 1008 कमल पुष्प चढ़ावें तथा 1008 कलशों से महाभिषेक करें। चतुर्विध संघ को चतुर्विध दान देवें।

1008 व्रतों के पृथक्-पृथक् 1008 जाप्य-

1. ॐ ह्रीं श्रीमते नमः
2. ॐ ह्रीं स्वयंभुवे नमः
3. ॐ ह्रीं वृषभाय नमः
4. ॐ ह्रीं शंभवाय नमः
5. ॐ ह्रीं शंभवे नमः
6. ॐ ह्रीं आत्मभुवे नमः
7. ॐ ह्रीं स्वयंप्रभाय नमः
8. ॐ ह्रीं प्रभवे नमः
9. ॐ ह्रीं भोक्त्रे नमः
10. ॐ ह्रीं विश्वभुवे नमः
11. ॐ ह्रीं अपुनर्भवाय नमः
12. ॐ ह्रीं विश्वात्मने नमः
13. ॐ ह्रीं विश्वलोकेशाय नमः
14. ॐ ह्रीं विश्वतश्चक्षुषे नमः
15. ॐ ह्रीं अक्षराय नमः
16. ॐ ह्रीं विश्वविदे नमः
17. ॐ ह्रीं विश्वविद्येशाय नमः
18. ॐ ह्रीं विश्वयोनये नमः
19. ॐ ह्रीं अनश्वराय नमः
20. ॐ ह्रीं विश्वदृश्वने नमः
21. ॐ ह्रीं विभवे नमः
22. ॐ ह्रीं धात्रे नमः
23. ॐ ह्रीं विश्वेशाय नमः
24. ॐ ह्रीं विश्वलोचनाय नमः
25. ॐ ह्रीं विश्वव्यापिने नमः
26. ॐ ह्रीं विधये नमः
27. ॐ ह्रीं वेधसे नमः
28. ॐ ह्रीं शाश्वताय नमः
29. ॐ ह्रीं विश्वतोमुखाय नमः
30. ॐ ह्रीं विश्वकर्मणे नमः
31. ॐ ह्रीं जगज्जेष्ठाय नमः
32. ॐ ह्रीं विश्वमूर्त्तये नमः
33. ॐ ह्रीं जिनेश्वराय नमः
34. ॐ ह्रीं विश्वदृशे नमः
35. ॐ ह्रीं विश्वभूतेशाय नमः
36. ॐ ह्रीं विश्वज्योतिषे नमः
37. ॐ ह्रीं अनीश्वराय नमः
38. ॐ ह्रीं जिनाय नमः
39. ॐ ह्रीं जिष्णवे नमः
40. ॐ ह्रीं अमेयात्मने नमः
41. ॐ ह्रीं विश्वरीशाय नमः
42. ॐ ह्रीं जगत्पतये नमः
43. ॐ ह्रीं अनंतजिते नमः
44. ॐ ह्रीं अचिंत्यात्मने नमः
45. ॐ ह्रीं भव्यबंधवे नमः
46. ॐ ह्रीं अबंधनाय नमः
47. ॐ ह्रीं युगादिपुरुषाय नमः
48. ॐ ह्रीं ब्रह्मणे नमः
49. ॐ ह्रीं पंचब्रह्ममयाय नमः
50. ॐ ह्रीं शिवाय नमः
51. ॐ ह्रीं पराय नमः
52. ॐ ह्रीं परतराय नमः
53. ॐ ह्रीं सूक्ष्माय नमः
54. ॐ ह्रीं परमेष्ठिने नमः
55. ॐ ह्रीं सनातनाय नमः
56. ॐ ह्रीं स्वयंज्योतिषे नमः
57. ॐ ह्रीं अजाय नमः
58. ॐ ह्रीं अजन्मने नमः
59. ॐ ह्रीं ब्रह्मयोनये नमः
60. ॐ ह्रीं अयोनिजाय नमः
61. ॐ ह्रीं मोहारिविजयिने नमः
62. ॐ ह्रीं जेत्रे नमः
63. ॐ ह्रीं धर्मचक्रिणे नमः

64. ॐ ह्रीं दयाध्वजाय नमः
65. ॐ ह्रीं प्रशान्तारये नमः
66. ॐ ह्रीं अनंतात्मने नमः
67. ॐ ह्रीं योगिने नमः
68. ॐ ह्रीं योगीश्वरार्चिताय नमः
69. ॐ ह्रीं ब्रह्मविदे नमः
70. ॐ ह्रीं ब्रह्मतत्त्वज्ञाय नमः
71. ॐ ह्रीं ब्रह्मोद्याविदे नमः
72. ॐ ह्रीं यतीश्वराय नमः
73. ॐ ह्रीं शुद्धाय नमः
74. ॐ ह्रीं बुद्धाय नमः
75. ॐ ह्रीं प्रबुद्धात्मने नमः
76. ॐ ह्रीं सिद्धार्थाय नमः
77. ॐ ह्रीं सिद्धशासनाय नमः
78. ॐ ह्रीं सिद्धाय नमः
79. ॐ ह्रीं सिद्धांतविदे नमः
80. ॐ ह्रीं ध्येयाय नमः
81. ॐ ह्रीं सिद्धसाध्याय नमः
82. ॐ ह्रीं जगद्धिताय नमः
83. ॐ ह्रीं सहिष्णवे नमः
84. ॐ ह्रीं अच्युताय नमः
85. ॐ ह्रीं अनंताय नमः
86. ॐ ह्रीं प्रभविष्णवे नमः
87. ॐ ह्रीं भवोद्भवाय नमः
88. ॐ ह्रीं प्रभूष्णवे नमः
89. ॐ ह्रीं अजराय नमः
90. ॐ ह्रीं अजर्याय नमः
91. ॐ ह्रीं भ्राजिष्णवे नमः
92. ॐ ह्रीं धीश्वराय नमः
93. ॐ ह्रीं अव्ययाय नमः
94. ॐ ह्रीं विभावसवे नमः
95. ॐ ह्रीं असंभूष्णवे नमः
96. ॐ ह्रीं स्वयंभूष्णवे नमः
97. ॐ ह्रीं पुरातनाय नमः
98. ॐ ह्रीं परमात्मने नमः
99. ॐ ह्रीं परंज्योतिषे नमः
100. ॐ ह्रीं त्रिजगत्परमेश्वराय नमः

(2)

1. ॐ ह्रीं दिव्यभाषापतये नमः
2. ॐ ह्रीं दिव्याय नमः
3. ॐ ह्रीं पूतवाचे नमः
4. ॐ ह्रीं पूतशासनाय नमः
5. ॐ ह्रीं पूतात्मने नमः
6. ॐ ह्रीं परमज्योतिषे नमः
7. ॐ ह्रीं धर्माध्यक्षाय नमः
8. ॐ ह्रीं दमीश्वराय नमः
9. ॐ ह्रीं श्रीपतये नमः
10. ॐ ह्रीं भगवते नमः
11. ॐ ह्रीं अर्हते नमः
12. ॐ ह्रीं अरजसे नमः
13. ॐ ह्रीं विरजसे नमः
14. ॐ ह्रीं शुचये नमः
15. ॐ ह्रीं तीर्थकृते नमः
16. ॐ ह्रीं केवलिने नमः
17. ॐ ह्रीं ईशानाय नमः
18. ॐ ह्रीं पूजार्हाय नमः
19. ॐ ह्रीं स्नातकाय नमः
20. ॐ ह्रीं अमलाय नमः
21. ॐ ह्रीं अनंतदीप्तये नमः
22. ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः
23. ॐ ह्रीं स्वयंबुद्धाय नमः
24. ॐ ह्रीं प्रजापतये नमः
25. ॐ ह्रीं मुक्ताय नमः
26. ॐ ह्रीं शक्ताय नमः
27. ॐ ह्रीं निराबाधाय नमः
28. ॐ ह्रीं निष्कलाय नमः
29. ॐ ह्रीं भुवनेश्वराय नमः
30. ॐ ह्रीं निरंजनाय नमः
31. ॐ ह्रीं जगज्ज्योतिषे नमः
32. ॐ ह्रीं निरूक्तोक्तये नमः
33. ॐ ह्रीं अनामयाय नमः
34. ॐ ह्रीं अचलस्थितये नमः
35. ॐ ह्रीं अक्षोभ्याय नमः
36. ॐ ह्रीं कूटस्थाय नमः
37. ॐ ह्रीं स्थाणवे नमः
38. ॐ ह्रीं अक्षयाय नमः
39. ॐ ह्रीं अग्रण्ये नमः
40. ॐ ह्रीं ग्रामण्ये नमः
41. ॐ ह्रीं नेत्रे नमः
42. ॐ ह्रीं प्रणेत्रे नमः
43. ॐ ह्रीं न्यायशास्त्रकृते नमः
44. ॐ ह्रीं शास्त्रे नमः
45. ॐ ह्रीं धर्मपतये नमः
46. ॐ ह्रीं धर्म्याय नमः
47. ॐ ह्रीं धर्मात्मने नमः
48. ॐ ह्रीं धर्मतीर्थकृते नमः
49. ॐ ह्रीं वृषध्वजाय नमः
50. ॐ ह्रीं वृषाधीशाय नमः
51. ॐ ह्रीं वृषकेतवे नमः
52. ॐ ह्रीं वृषायुधाय नमः
53. ॐ ह्रीं वृषाय नमः
54. ॐ ह्रीं वृषपतये नमः
55. ॐ ह्रीं भर्त्रे नमः
56. ॐ ह्रीं वृषभाङ्काय नमः
57. ॐ ह्रीं वृषोद्भवाय नमः
58. ॐ ह्रीं हिरण्यनाभये नमः
59. ॐ ह्रीं भूतात्मने नमः
60. ॐ ह्रीं भूतभृते नमः

61. ॐ ह्रीं भूतभावनाय नमः
62. ॐ ह्रीं प्रभवाय नमः
63. ॐ ह्रीं विभवाय नमः
64. ॐ ह्रीं भास्वते नमः
65. ॐ ह्रीं भवाय नमः
66. ॐ ह्रीं भावाय नमः
67. ॐ ह्रीं भवान्तकाय नमः
68. ॐ ह्रीं हिरण्यगर्भाय नमः
69. ॐ ह्रीं श्रीगर्भाय नमः
70. ॐ ह्रीं प्रभूतविभवाय नमः
71. ॐ ह्रीं अभवाय नमः
72. ॐ ह्रीं स्वयंप्रभवे नमः
73. ॐ ह्रीं प्रभूतात्मने नमः
74. ॐ ह्रीं भूतनाथाय नमः
75. ॐ ह्रीं जगत्पतये नमः
76. ॐ ह्रीं सर्वादये नमः
77. ॐ ह्रीं सर्वदिशे नमः
78. ॐ ह्रीं सार्वाय नमः
79. ॐ ह्रीं सर्वज्ञाय नमः
80. ॐ ह्रीं सर्वदर्शनाय नमः
81. ॐ ह्रीं सर्वात्मने नमः
82. ॐ ह्रीं सर्वलोकेशाय नमः
83. ॐ ह्रीं सर्वविदे नमः
84. ॐ ह्रीं सर्वलोकजिते नमः
85. ॐ ह्रीं सुगतये नमः
86. ॐ ह्रीं सुश्रुताय नमः
87. ॐ ह्रीं सुश्रुते नमः
88. ॐ ह्रीं सुवाचे नमः
89. ॐ ह्रीं सूरये नमः
90. ॐ ह्रीं बहुश्रुताय नमः
91. ॐ ह्रीं विश्रुताय नमः
92. ॐ ह्रीं विश्वतः पादाय नमः
93. ॐ ह्रीं विश्वशीर्षाय नमः
94. ॐ ह्रीं शुचिश्रवसे नमः
95. ॐ ह्रीं सहस्रशीर्षाय नमः
96. ॐ ह्रीं क्षेत्रज्ञाय नमः
97. ॐ ह्रीं सहस्राक्षाय नमः
98. ॐ ह्रीं सहस्रपदे नमः
99. ॐ ह्रीं भूतभव्यभवद्भर्त्रे नमः
100. ॐ ह्रीं विश्वविद्यामहेश्वराय नमः

(3)

1. ॐ ह्रीं स्थविष्ठाय नमः
2. ॐ ह्रीं स्थविराय नम
3. ॐ ह्रीं ज्येष्ठाय नमः
4. ॐ ह्रीं प्रष्ठाय नमः
5. ॐ ह्रीं प्रेष्ठाय नमः
6. ॐ ह्रीं वरिष्ठधिये नमः
7. ॐ ह्रीं स्थेष्ठाय नमः
8. ॐ ह्रीं गरिष्ठाय नमः
9. ॐ ह्रीं बंहिष्ठाय नमः
10. ॐ ह्रीं श्रेष्ठाय नमः
11. ॐ ह्रीं अणिष्ठाय नमः
12. ॐ ह्रीं गरिष्ठगिरे नमः
13. ॐ ह्रीं विश्वभृते नमः
14. ॐ ह्रीं विश्वसृजे नमः
15. ॐ ह्रीं विश्वेशे नमः
16. ॐ ह्रीं विश्वभुजे नमः
17. ॐ ह्रीं विश्वनायकाय नमः
18. ॐ ह्रीं विश्वाशिषे नमः
19. ॐ ह्रीं विश्वरूपात्मने नमः
20. ॐ ह्रीं विश्वजिते नमः
21. ॐ ह्रीं विजितान्तकाय नमः
22. ॐ ह्रीं विभवाय नमः
23. ॐ ह्रीं विभयाय नमः
24. ॐ ह्रीं वीराय नमः
25. ॐ ह्रीं विशोकाय नमः
26. ॐ ह्रीं विजराय नमः
27. ॐ ह्रीं अजरते नमः
28. ॐ ह्रीं विरागाय नमः
29. ॐ ह्रीं विरताय नमः
30. ॐ ह्रीं असङ्गाय नमः
31. ॐ ह्रीं विविक्ताय नमः
32. ॐ ह्रीं वीतमत्सराय नमः
33. ॐ ह्रीं विनेयजनताबन्धवे नमः
34. ॐ ह्रीं विलीनाशेषकल्मषाय नमः
35. ॐ ह्रीं वियोगाय नमः
36. ॐ ह्रीं योगविदे नमः
37. ॐ ह्रीं विदुषे नमः
38. ॐ ह्रीं विधात्रे नमः
39. ॐ ह्रीं सुविधये नमः
40. ॐ ह्रीं सुधिये नमः
41. ॐ ह्रीं क्षांतिभाजे नमः
42. ॐ ह्रीं पृथिवीमूर्त्तये नमः
43. ॐ ह्रीं शांतिभाजे नमः
44. ॐ ह्रीं सलिलात्मकाय नमः
45. ॐ ह्रीं वायुमूर्त्तये नमः
46. ॐ ह्रीं असंगात्मने नमः
47. ॐ ह्रीं वन्हिमूर्तये नमः
48. ॐ ह्रीं अधर्मदहे नमः
49. ॐ ह्रीं सुयज्वने नमः
50. ॐ ह्रीं यजमानात्मने नमः
51. ॐ ह्रीं सुत्वने नमः
52. ॐ ह्रीं सुत्रामपूजिताय नमः
53. ॐ ह्रीं ऋत्विजे नमः
54. ॐ ह्रीं यज्ञपतये नमः
55. ॐ ह्रीं याज्याय नमः
56. ॐ ह्रीं यज्ञाङ्गाय नमः
57. ॐ ह्रीं अमृताय नमः
58. ॐ ह्रीं हविषे नमः
59. ॐ ह्रीं व्योममूर्तये नमः
60. ॐ ह्रीं अमूर्तात्मने नमः
61. ॐ ह्रीं निर्लेपाय नमः
62. ॐ ह्रीं निर्मलाय नमः
63. ॐ ह्रीं अचलाय नमः

64. ॐ ह्रीं सोममूर्तये नमः
65. ॐ ह्रीं सुसौम्यात्मने नमः
66. ॐ ह्रीं सूर्यमूर्तये नमः
67. ॐ ह्रीं महाप्रभाय नमः
68. ॐ ह्रीं मंत्रविदे नमः
69. ॐ ह्रीं मंत्रकृते नमः
70. ॐ ह्रीं मंत्रिणे नमः
71. ॐ ह्रीं मंत्रमूर्तये नमः
72. ॐ ह्रीं अनंतगाय नमः
73. ॐ ह्रीं स्वतंत्राय नमः
74. ॐ ह्रीं तंत्रकृते नमः
75. ॐ ह्रीं स्वंताय नमः
76. ॐ ह्रीं कृतांतांताय नमः
77. ॐ ह्रीं कृतान्तकृते नमः
78. ॐ ह्रीं कृतिने नमः
79. ॐ ह्रीं कृतार्थाय नमः
80. ॐ ह्रीं सत्कृत्याय नमः
81. ॐ ह्रीं कृतकृत्याय नमः
82. ॐ ह्रीं कृतक्रतवे नमः
83. ॐ ह्रीं नित्याय नमः
84. ॐ ह्रीं मृत्युंजयाय नमः
85. ॐ ह्रीं अमृत्यवे नमः
86. ॐ ह्रीं अमृतात्मने नमः
87. ॐ ह्रीं अमृतोद्भवाय नमः
88. ॐ ह्रीं ब्रह्मनिष्ठाय नमः
89. ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः
90. ॐ ह्रीं ब्रह्मात्मने नमः
91. ॐ ह्रीं ब्रह्मसंभवाय नमः
92. ॐ ह्रीं महाब्रह्मपतये नमः
93. ॐ ह्रीं ब्रह्मेजे नमः
94. ॐ ह्रीं महाब्रह्मपदेश्वराय नमः
95. ॐ ह्रीं सुप्रसन्नाय नमः
96. ॐ ह्रीं प्रसन्नात्मने नमः
97. ॐ ह्रीं ज्ञानधर्मदमप्रभवे नमः
98. ॐ ह्रीं प्रशमात्मने नमः
99. ॐ ह्रीं प्रशान्तात्मने नमः
100. ॐ ह्रीं पुराणपुरुषोत्तमाय नमः

(4)

1. ॐ ह्रीं महाशोकध्वजाय नमः
2. ॐ ह्रीं अशोकाय नम
3. ॐ ह्रीं काय नमः
4. ॐ ह्रीं स्रष्ट्रे नमः
5. ॐ ह्रीं पद्मविष्टराय नमः
6. ॐ ह्रीं पद्मेशाय नमः
7. ॐ ह्रीं पद्मसंभूतये नमः
8. ॐ ह्रीं पद्मनाभये नमः
9. ॐ ह्रीं अनुत्तराय नमः
10. ॐ ह्रीं पद्मयोनये नमः
11. ॐ ह्रीं जगद्योनये नमः
12. ॐ ह्रीं इत्याय नमः
13. ॐ ह्रीं स्तुत्याय नमः
14. ॐ ह्रीं स्तुतीश्वराय नमः
15. ॐ ह्रीं स्तवनार्हाय नमः
16. ॐ ह्रीं हृषीकेशाय नमः
17. ॐ ह्रीं जितजेयाय नमः
18. ॐ ह्रीं कृतक्रियाय नमः
19. ॐ ह्रीं गणाधिपाय नमः
20. ॐ ह्रीं गणज्येष्ठाय नमः
21. ॐ ह्रीं गण्याय नमः
22. ॐ ह्रीं पुण्याय नमः
23. ॐ ह्रीं गणाग्रण्ये नमः
24. ॐ ह्रीं गुणाकराय नमः
25. ॐ ह्रीं गुणांभोधये नमः
26. ॐ ह्रीं गुणज्ञाय नमः
27. ॐ ह्रीं गुणनायकाय नमः
28. ॐ ह्रीं गुणादरिणे नमः
29. ॐ ह्रीं गुणोच्छेदिने नमः
30. ॐ ह्रीं निर्गुणाय नमः
31. ॐ ह्रीं पुण्यगिरे नमः
32. ॐ ह्रीं गुणाय नमः
33. ॐ ह्रीं शरण्याय नमः
34. ॐ ह्रीं पुण्यवाचे नमः
35. ॐ ह्रीं पूताय नमः
36. ॐ ह्रीं वरेण्याय नमः
37. ॐ ह्रीं पुण्यनायकाय नमः
38. ॐ ह्रीं अगण्याय नमः
39. ॐ ह्रीं पुण्यधिये नमः
40. ॐ ह्रीं गुण्याय नमः
41. ॐ ह्रीं पुण्यकृते नमः
42. ॐ ह्रीं पुण्यशासनाय नमः
43. ॐ ह्रीं धर्मारामाय नमः
44. ॐ ह्रीं गुणग्रामाय नमः
45. ॐ ह्रीं पुण्यापुण्यनिरोधकाय नमः
46. ॐ ह्रीं पापापेताय नमः
47. ॐ ह्रीं विपापात्मने नमः
48. ॐ ह्रीं विपाप्मने नमः
49. ॐ ह्रीं वीतकल्मषाय नमः
50. ॐ ह्रीं निर्द्वंद्वाय नमः
51. ॐ ह्रीं निमर्दाय नमः
52. ॐ ह्रीं शांताय नमः
53. ॐ ह्रीं निर्मोहाय नमः
54. ॐ ह्रीं निरुपद्रवाय नमः
55. ॐ ह्रीं निर्निमेषाय नमः
56. ॐ ह्रीं निराहाराय नमः
57. ॐ ह्रीं निष्क्रियाय नमः
58. ॐ ह्रीं निरुपप्लवाय नमः
59. ॐ ह्रीं निष्कलंकाय नमः
60. ॐ ह्रीं निरस्तैनसे नमः
61. ॐ ह्रीं निर्धूतागसे नमः
62. ॐ ह्रीं निरास्रवाय नमः
63. ॐ ह्रीं विशालाय नमः

64. ॐ ह्रीं विपुलज्योतिषे नमः
65. ॐ ह्रीं अतुलाय नमः
66. ॐ ह्रीं अचिंत्यवैभवाय नमः
67. ॐ ह्रीं सुसंवृताय नमः
68. ॐ ह्रीं सुगुप्तात्मने नमः
69. ॐ ह्रीं सुभुजे नमः
70. ॐ ह्रीं सुनयतत्त्वविदे नमः
71. ॐ ह्रीं एकविद्याय नमः
72. ॐ ह्रीं महाविद्याय नमः
73. ॐ ह्रीं मुनये नमः
74. ॐ ह्रीं परिवृढ़ाय नमः
75. ॐ ह्रीं पत्ये नमः
76. ॐ ह्रीं धीशाय नमः
77. ॐ ह्रीं विद्यानिधये नमः
78. ॐ ह्रीं साक्षिणे नमः
79. ॐ ह्रीं विनेत्रे नमः
80. ॐ ह्रीं विहतान्तकाय नमः
81. ॐ ह्रीं पित्रे नमः
82. ॐ ह्रीं पितामहाय नमः
83. ॐ ह्रीं पात्रे नमः
84. ॐ ह्रीं पवित्राय नमः
85. ॐ ह्रीं पावनाय नमः
86. ॐ ह्रीं गतये नमः
87. ॐ ह्रीं त्रात्रे नमः
88. ॐ ह्रीं भिषग्वराय नमः
89. ॐ ह्रीं वर्याय नमः
90. ॐ ह्रीं वरदाय नमः
91. ॐ ह्रीं परमाय नमः
92. ॐ ह्रीं पुंसे नमः
93. ॐ ह्रीं कवये नमः
94. ॐ ह्रीं पुराणपुरुषाय नमः
95. ॐ ह्रीं वर्षीयसे नमः
96. ॐ ह्रीं वृषभाय नमः
97. ॐ ह्रीं पुरवे नमः
98. ॐ ह्रीं प्रतिष्ठाप्रसवाय नमः
99. ॐ ह्रीं हेतवे नमः
100. ॐ ह्रीं भुवनैकपितामहाय नमः

(5)

1. ॐ ह्रीं श्रीवृक्षलक्षणाय नमः
2. ॐ ह्रीं श्लक्ष्णाय नमः
3. ॐ ह्रीं लक्षण्याय नमः
4. ॐ ह्रीं शुभलक्षणाय नमः
5. ॐ ह्रीं निरक्षाय नमः
6. ॐ ह्रीं पुंडरीकाक्षाय नमः
7. ॐ ह्रीं पुष्कलाय नमः
8. ॐ ह्रीं पुष्करेक्षणाय नमः
9. ॐ ह्रीं सिद्धिदाय नमः
10. ॐ ह्रीं सिद्धसंकल्पाय नमः
11. ॐ ह्रीं सिद्धात्मने नमः
12. ॐ ह्रीं सिद्धसाधनाय नमः
13. ॐ ह्रीं बुद्धबोध्याय नमः
14. ॐ ह्रीं महाबोधये नमः
15. ॐ ह्रीं वर्द्धमानाय नमः
16. ॐ ह्रीं महर्द्धिकाय नमः
17. ॐ ह्रीं वेदांगाय नमः
18. ॐ ह्रीं वेदविदे नमः
19. ॐ ह्रीं वेद्याय नमः
20. ॐ ह्रीं जातरूपाय नमः
21. ॐ ह्रीं विदांवराय नमः
22. ॐ ह्रीं वेदवेद्याय नमः
23. ॐ ह्रीं स्वसंवेद्याय नमः
24. ॐ ह्रीं विवेदाय नमः
25. ॐ ह्रीं वदतांवराय नमः
26. ॐ ह्रीं अनादिनिधनाय नमः
27. ॐ ह्रीं व्यक्ताय नमः
28. ॐ ह्रीं व्यक्तवाचे नमः
29. ॐ ह्रीं व्यक्तशासनाय नमः
30. ॐ ह्रीं युगादिकृते नमः
31. ॐ ह्रीं युगाधाराय नमः
32. ॐ ह्रीं युगादये नमः
33. ॐ ह्रीं जगदादिजाय नमः
34. ॐ ह्रीं अतींद्राय नमः
35. ॐ ह्रीं अतीन्द्रियाय नमः
36. ॐ ह्रीं धींद्राय नमः
37. ॐ ह्रीं महेन्द्राय नमः
38. ॐ ह्रीं अतीन्द्रियार्थदृशे नमः
39. ॐ ह्रीं अनिन्द्रियाय नमः
40. ॐ ह्रीं अहमिंद्रार्च्याय नमः
41. ॐ ह्रीं महेन्द्रमहिताय नमः
42. ॐ ह्रीं महते नमः
43. ॐ ह्रीं उद्भवाय नमः
44. ॐ ह्रीं कारणाय नमः
45. ॐ ह्रीं कर्त्रे नमः
46. ॐ ह्रीं पारगाय नमः
47. ॐ ह्रीं भवतारकाय नमः
48. ॐ ह्रीं अग्राह्याय नमः
49. ॐ ह्रीं गहनाय नमः
50. ॐ ह्रीं गुह्याय नमः
51. ॐ ह्रीं पराघ्र्याय नमः
52. ॐ ह्रीं परमेश्वराय नमः
53. ॐ ह्रीं अनंतर्द्धये नमः
54. ॐ ह्रीं अमेयर्द्धये नमः
55. ॐ ह्रीं अचिंत्यर्द्धये नमः
56. ॐ ह्रीं समग्रधिये नमः
57. ॐ ह्रीं प्राग्रयाय नमः
58. ॐ ह्रीं प्राग्रहराय नमः
59. ॐ ह्रीं अभ्यग्राय नमः
60. ॐ ह्रीं प्रत्यग्राय नमः
61. ॐ ह्रीं अग्राय नमः
62. ॐ ह्रीं अग्रिमाय नमः
63. ॐ ह्रीं अग्रजाय नमः
64. ॐ ह्रीं महातपसे नमः
65. ॐ ह्रीं महातेजसे नमः
66. ॐ ह्रीं महोदर्काय नमः

67. ॐ ह्रीं महोदयाय नमः
68. ॐ ह्रीं महायशसे नमः
69. ॐ ह्रीं महाधाम्ने नमः
70. ॐ ह्रीं महासत्त्वाय नमः
71. ॐ ह्रीं महाधृतये नमः
72. ॐ ह्रीं महाधैर्याय नमः
73. ॐ ह्रीं महावीर्याय नमः
74. ॐ ह्रीं महासंपदे नमः
75. ॐ ह्रीं महाबलाय नमः
76. ॐ ह्रीं महाशक्तये नमः
77. ॐ ह्रीं महाज्योतिषे नमः
78. ॐ ह्रीं महाभूतये नमः
79. ॐ ह्रीं महाद्युतये नमः
80. ॐ ह्रीं महामतये नमः
81. ॐ ह्रीं महानीतये नमः
82. ॐ ह्रीं महाक्षांतये नमः
83. ॐ ह्रीं महादयाय नमः
84. ॐ ह्रीं महाप्राज्ञाय नमः
85. ॐ ह्रीं महाभागाय नमः
86. ॐ ह्रीं महानंदाय नमः
87. ॐ ह्रीं महाकवये नमः
88. ॐ ह्रीं महामहसे नमः
89. ॐ ह्रीं महाकीर्तये नमः
90. ॐ ह्रीं महाकांतये नमः
91. ॐ ह्रीं महावपुषे नमः
92. ॐ ह्रीं महादानाय नमः
93. ॐ ह्रीं महाज्ञानाय नमः
94. ॐ ह्रीं महायोगाय नमः
95. ॐ ह्रीं महागुणाय नमः
96. ॐ ह्रीं महामहपतये नमः
97. ॐ ह्रीं प्राप्तमहाकल्याणपंचकाय नमः
98. ॐ ह्रीं महाप्रभवे नमः
99. ॐ ह्रीं महाप्रातिहार्याधीशाय नमः
100. ॐ ह्रीं महेश्वराय नमः

(6)

1. ॐ ह्रीं महामुनये नमः
2. ॐ ह्रीं महामौनिने नमः
3. ॐ ह्रीं महाध्यानाय नमः
4. ॐ ह्रीं महादमाय नमः
5. ॐ ह्रीं महाक्षमाय नमः
6. ॐ ह्रीं महाशीलाय नमः
7. ॐ ह्रीं महायज्ञाय नमः
8. ॐ ह्रीं महामखाय नमः
9. ॐ ह्रीं महाव्रतपतये नमः
10. ॐ ह्रीं मह्याय नमः
11. ॐ ह्रीं महाकांतिधराय नमः
12. ॐ ह्रीं अधिपाय नमः
13. ॐ ह्रीं महामैत्रीमयाय नमः
14. ॐ ह्रीं अमेयाय नमः
15. ॐ ह्रीं महोपायाय नमः
16. ॐ ह्रीं महोमयाय नमः
17. ॐ ह्रीं महाकारुणिकाय नमः
18. ॐ ह्रीं मंत्रे नमः
19. ॐ ह्रीं महामंत्राय नमः
20. ॐ ह्रीं महायतये नमः
21. ॐ ह्रीं महानादाय नमः
22. ॐ ह्रीं महाघोषाय नमः
23. ॐ ह्रीं महेज्याय नमः
24. ॐ ह्रीं महसांपतये नमः
25. ॐ ह्रीं महाध्वरधराय नमः
26. ॐ ह्रीं धुर्याय नमः
27. ॐ ह्रीं महोदार्याय नमः
28. ॐ ह्रीं महिष्ठवाचे नमः
29. ॐ ह्रीं महात्मने नमः
30. ॐ ह्रीं महसांधाम्ने नमः
31. ॐ ह्रीं महर्षये नमः
32. ॐ ह्रीं महितोदयाय नमः
33. ॐ ह्रीं महाक्लेशांकुशाय नमः
34. ॐ ह्रीं शूराय नमः
35. ॐ ह्रीं महाभूतपतये नमः
36. ॐ ह्रीं गुरवे नमः
37. ॐ ह्रीं महापराक्रमाय नमः
38. ॐ ह्रीं अनंताय नमः
39. ॐ ह्रीं महाक्रोधरिपवे नमः
40. ॐ ह्रीं वशिने नमः
41. ॐ ह्रीं महाभवाब्धिसंतारिणे नमः
42. ॐ ह्रीं महामोहाद्रिसूदनाय नमः
43. ॐ ह्रीं महागुणाकराय नमः
44. ॐ ह्रीं क्षांताय नमः
45. ॐ ह्रीं महायोगीश्वराय नमः
46. ॐ ह्रीं शमिने नमः
47. ॐ ह्रीं महाध्यानपतये नमः
48. ॐ ह्रीं ध्यानमहाधर्मणे नमः
49. ॐ ह्रीं महाव्रताय नमः
50. ॐ ह्रीं महाकर्मारिघ्ने नमः
51. ॐ ह्रीं आत्मज्ञाय नमः
52. ॐ ह्रीं महादेवाय नमः
53. ॐ ह्रीं महेशित्रे नमः
54. ॐ ह्रीं सर्वक्लेशापहाय नमः
55. ॐ ह्रीं साधवे नमः
56. ॐ ह्रीं सर्वदोषहराय नमः
57. ॐ ह्रीं हराय नमः
58. ॐ ह्रीं असंख्येयाय नमः
59. ॐ ह्रीं अप्रमेयात्मने नमः
60. ॐ ह्रीं शमात्मने नमः
61. ॐ ह्रीं प्रशमाकराय नमः
62. ॐ ह्रीं सर्वयोगीश्वराय नमः
63. ॐ ह्रीं अचिंत्याय नमः
64. ॐ ह्रीं श्रुतात्मने नमः
65. ॐ ह्रीं विष्टरश्रवसे नमः
66. ॐ ह्रीं दान्तात्मने नमः
67. ॐ ह्रीं दमतीर्थेशाय नमः
68. ॐ ह्रीं योगात्मने नमः
69. ॐ ह्रीं ज्ञानसर्वगाय नमः

70. ॐ ह्रीं प्रधानाय नमः
71. ॐ ह्रीं आत्मने नमः
72. ॐ ह्रीं प्रकृतये नमः
73. ॐ ह्रीं परमाय नमः
74. ॐ ह्रीं परमोदयाय नमः
75. ॐ ह्रीं प्रक्षीणबन्धाय नमः
76. ॐ ह्रीं कामारये नमः
77. ॐ ह्रीं क्षेमकृते नमः
78. ॐ ह्रीं क्षेमशासनाय नमः
79. ॐ ह्रीं प्रणवाय नमः
80. ॐ ह्रीं प्रणताय नमः
81. ॐ ह्रीं प्राणाय नमः
82. ॐ ह्रीं प्राणदाय नमः
83. ॐ ह्रीं प्रणतेश्वराय नमः
84. ॐ ह्रीं प्रमाणाय नमः
85. ॐ ह्रीं प्रणिधये नमः
86. ॐ ह्रीं दक्षाय नमः
87. ॐ ह्रीं दक्षिणाय नमः
88. ॐ ह्रीं अध्वर्यवे नमः
89. ॐ ह्रीं अध्वराय नमः
90. ॐ ह्रीं आनंदाय नमः
91. ॐ ह्रीं नंदनाय नमः
92. ॐ ह्रीं नंदाय नमः
93. ॐ ह्रीं वंद्याय नमः
94. ॐ ह्रीं अनिंद्याय नमः
95. ॐ ह्रीं अभिनंदनाय नमः
96. ॐ ह्रीं कामघ्ने नमः
97. ॐ ह्रीं कामदाय नमः
98. ॐ ह्रीं काम्याय नमः
99. ॐ ह्रीं कामधेनवे नमः
100. ॐ ह्रीं अरिञ्जयाय नमः

(7)

1. ॐ ह्रीं असंस्कृतसुसंस्काराय नमः
2. ॐ ह्रीं प्राकृताय नमः
3. ॐ ह्रीं वैकृतांतकृते नमः
4. ॐ ह्रीं अंतकृते नमः
5. ॐ ह्रीं कांतिगवे नमः
6. ॐ ह्रीं कांताय नमः
7. ॐ ह्रीं चिंतामणये नमः
8. ॐ ह्रीं अभीष्टदाय नमः
9. ॐ ह्रीं अजिताय नमः
10. ॐ ह्रीं जितकामारये नमः
11. ॐ ह्रीं अमिताय नमः
12. ॐ ह्रीं अमितशासनाय नमः
13. ॐ ह्रीं जितक्रोधाय नमः
14. ॐ ह्रीं जितामित्राय नमः
15. ॐ ह्रीं जितक्लेशाय नमः
16. ॐ ह्रीं जितान्तकाय नमः
17. ॐ ह्रीं जिनेन्द्राय नमः
18. ॐ ह्रीं परमानंदाय नमः
19. ॐ ह्रीं मुनीन्द्राय नमः
20. ॐ ह्रीं दुंदुभिस्वनाय नमः
21. ॐ ह्रीं महेंद्रवंद्याय नमः
22. ॐ ह्रीं योगीन्द्राय नमः
23. ॐ ह्रीं यतीन्द्राय नमः
24. ॐ ह्रीं नाभिनंदनाय नमः
25. ॐ ह्रीं नाभेयाय नमः
26. ॐ ह्रीं नाभिजाय नमः
27. ॐ ह्रीं अजाताय नमः
28. ॐ ह्रीं सुव्रताय नमः
29. ॐ ह्रीं मनवे नमः
30. ॐ ह्रीं उत्तमाय नमः
31. ॐ ह्रीं अभेद्याय नमः
32. ॐ ह्रीं अनत्याय नमः
33. ॐ ह्रीं अनाश्वते नमः
34. ॐ ह्रीं अधिकाय नमः
35. ॐ ह्रीं अधिगुरवे नमः
36. ॐ ह्रीं सुधिये नमः
37. ॐ ह्रीं सुमेधसे नमः
38. ॐ ह्रीं विक्रमिणे नमः
39. ॐ ह्रीं स्वामिने नमः
40. ॐ ह्रीं दुराधर्षाय नमः
41. ॐ ह्रीं निरुत्सुकाय नमः
42. ॐ ह्रीं विशिष्टाय नमः
43. ॐ ह्रीं शिष्टभुजे नमः
44. ॐ ह्रीं शिष्टाय नमः
45. ॐ ह्रीं प्रत्ययाय नमः
46. ॐ ह्रीं कामनाय नमः
47. ॐ ह्रीं अनघाय नमः
48. ॐ ह्रीं क्षेमिने नमः
49. ॐ ह्रीं क्षेमंकराय नमः
50. ॐ ह्रीं अक्षय्याय नमः
51. ॐ ह्रीं क्षेमधर्मपतये नमः
52. ॐ ह्रीं क्षमिने नमः
53. ॐ ह्रीं अग्राह्याय नमः
54. ॐ ह्रीं ज्ञाननिग्राह्याय नमः
55. ॐ ह्रीं ध्यानगम्याय नमः
56. ॐ ह्रीं निरुत्तराय नमः
57. ॐ ह्रीं सुकृतिने नमः
58. ॐ ह्रीं धातवे नमः
59. ॐ ह्रीं इज्यार्हाय नमः
60. ॐ ह्रीं सुनयाय नमः
61. ॐ ह्रीं चतुराननाय नमः
62. ॐ ह्रीं श्रीनिवासाय नमः
63. ॐ ह्रीं चतुर्वक्त्राय नमः
64. ॐ ह्रीं चतुरास्याय नमः
65. ॐ ह्रीं चतुर्मुखाय नमः
66. ॐ ह्रीं सत्यात्मने नमः
67. ॐ ह्रीं सत्यविज्ञानाय नमः
68. ॐ ह्रीं सत्यवाचे नमः
69. ॐ ह्रीं सत्यशासनाय नमः
70. ॐ ह्रीं सत्याशिषे नमः
71. ॐ ह्रीं सत्यसंधानाय नमः
72. ॐ ह्रीं सत्याय नमः

73. ॐ ह्रीं सत्यपरायणाय नमः
74. ॐ ह्रीं स्थेयसे नमः
75. ॐ ह्रीं स्थवीयसे नमः
76. ॐ ह्रीं नेदीयसे नमः
77. ॐ ह्रीं दवीयसे नमः
78. ॐ ह्रीं दूरदर्शनाय नमः
79. ॐ ह्रीं अणोरणीयसे नमः
80. ॐ ह्रीं अनणवे नमः
81. ॐ ह्रीं गरीयसामाद्यगुरवे नमः
82. ॐ ह्रीं सदायोगाय नमः
83. ॐ ह्रीं सदाभोगाय नमः
84. ॐ ह्रीं सदातृप्ताय नमः
85. ॐ ह्रीं सदाशिवाय नमः
86. ॐ ह्रीं सदागतये नमः
87. ॐ ह्रीं सदासौख्याय नमः
88. ॐ ह्रीं सदाविद्याय नमः
89. ॐ ह्रीं सदोदयाय नमः
90. ॐ ह्रीं सुघोषाय नमः
91. ॐ ह्रीं सुमुखाय नमः
92. ॐ ह्रीं सौम्याय नमः
93. ॐ ह्रीं सुखदाय नमः
94. ॐ ह्रीं सुहिताय नमः
95. ॐ ह्रीं सुहृते नमः
96. ॐ ह्रीं सुगुप्ताय नमः
97. ॐ ह्रीं गुप्तिभृते नमः
98. ॐ ह्रीं गोप्त्रे नमः
99. ॐ ह्रीं लोकाध्यक्षाय नमः
100. ॐ ह्रीं दमीश्वराय नमः

(8)

1. ॐ ह्रीं बृहद्बृहस्पतये नमः
2. ॐ ह्रीं वाग्मिने नमः
3. ॐ ह्रीं वाचस्पतये नमः
4. ॐ ह्रीं उदारधिये नमः
5. ॐ ह्रीं मनीषिणे नमः
6. ॐ ह्रीं धिषणाय नमः
7. ॐ ह्रीं धीमते नमः
8. ॐ ह्रीं शेमुषीशाय नमः
9. ॐ ह्रीं गिरांपतये नमः
10. ॐ ह्रीं नैकरूपाय नमः
11. ॐ ह्रीं नयोत्तुङ्गाय नमः
12. ॐ ह्रीं नैकात्मने नमः
13. ॐ ह्रीं नैकधर्मकृते नमः
14. ॐ ह्रीं अविज्ञेयाय नमः
15. ॐ ह्रीं अप्रतर्क्यात्मने नमः
16. ॐ ह्रीं कृतज्ञाय नमः
17. ॐ ह्रीं कृतलक्षणाय नमः
18. ॐ ह्रीं ज्ञानगर्भाय नमः
19. ॐ ह्रीं दयागर्भाय नमः
20. ॐ ह्रीं रत्नगर्भाय नमः
21. ॐ ह्रीं प्रभास्वराय नमः
22. ॐ ह्रीं पद्मगर्भाय नमः
23. ॐ ह्रीं जगद्गर्भाय नमः
24. ॐ ह्रीं हेमगर्भाय नमः
25. ॐ ह्रीं सुदर्शनाय नमः
26. ॐ ह्रीं लक्ष्मीवते नमः
27. ॐ ह्रीं त्रिदशाध्यक्षाय नमः
28. ॐ ह्रीं द्रढीयसे नमः
29. ॐ ह्रीं इनाय नमः
30. ॐ ह्रीं ईशित्रे नमः
31. ॐ ह्रीं मनोहराय नमः
32. ॐ ह्रीं मनोज्ञांगाय नमः
33. ॐ ह्रीं धीराय नमः
34. ॐ ह्रीं गंभीरशासनाय नमः
35. ॐ ह्रीं धर्मयूपाय नमः
36. ॐ ह्रीं दयायागाय नमः
37. ॐ ह्रीं धर्मनेमये नमः
38. ॐ ह्रीं मुनीश्वराय नमः
39. ॐ ह्रीं धर्मचक्रायुधाय नमः
40. ॐ ह्रीं देवाय नमः
41. ॐ ह्रीं कर्मघ्ने नमः
42. ॐ ह्रीं धर्मघोषणाय नमः
43. ॐ ह्रीं अमोघवाचे नमः
44. ॐ ह्रीं अमोघाज्ञाय नमः
45. ॐ ह्रीं निर्मलाय नमः
46. ॐ ह्रीं अमोघशासनाय नमः
47. ॐ ह्रीं सुरूपाय नमः
48. ॐ ह्रीं सुभगाय नमः
49. ॐ ह्रीं त्यागिने नमः
50. ॐ ह्रीं समयज्ञाय नमः
51. ॐ ह्रीं समाहिताय नमः
52. ॐ ह्रीं सुस्थिताय नमः
53. ॐ ह्रीं स्वास्थ्यभाजे नमः
54. ॐ ह्रीं स्वस्थाय नमः
55. ॐ ह्रीं नीरजस्काय नमः
56. ॐ ह्रीं निरुद्धवाय नमः
57. ॐ ह्रीं अलेपाय नमः
58. ॐ ह्रीं निष्कलंकात्मने नमः
59. ॐ ह्रीं वीतरागाय नमः
60. ॐ ह्रीं गतस्पृहाय नमः
61. ॐ ह्रीं वश्येन्द्रियाय नमः
62. ॐ ह्रीं विमुक्तात्मने नमः
63. ॐ ह्रीं निःसपत्नाय नमः
64. ॐ ह्रीं जितेन्द्रियाय नमः
65. ॐ ह्रीं प्रशान्ताय नमः
66. ॐ ह्रीं अनंतधामर्षये नमः
67. ॐ ह्रीं मंगलाय नमः
68. ॐ ह्रीं मलघ्ने नमः
69. ॐ ह्रीं अनघाय नमः
70. ॐ ह्रीं अनीदृशे नमः
71. ॐ ह्रीं उपमाभूताय नमः
72. ॐ ह्रीं दिष्टये नमः

73. ॐ ह्रीं दैवाय नमः
74. ॐ ह्रीं अगोचराय नमः
75. ॐ ह्रीं अमूर्त्ताय नमः
76. ॐ ह्रीं मूर्तिमते नमः
77. ॐ ह्रीं एकाय नमः
78. ॐ ह्रीं नैकाय नमः
79. ॐ ह्रीं नानैकतत्त्वदृशे नमः
80. ॐ ह्रीं अध्यात्मगम्याय नमः
81. ॐ ह्रीं अगम्यात्मने नमः
82. ॐ ह्रीं योगविदे नमः
83. ॐ ह्रीं योगिवंदिताय नमः
84. ॐ ह्रीं सर्वत्रगाय नमः
85. ॐ ह्रीं सदाभाविने नमः
86. ॐ ह्रीं त्रिकालविषयार्थदृशे नमः
87. ॐ ह्रीं शंकराय नमः
88. ॐ ह्रीं शंवदाय नमः
89. ॐ ह्रीं दान्ताय नमः
90. ॐ ह्रीं दमिने नमः
91. ॐ ह्रीं क्षांतिपरायणाय नमः
92. ॐ ह्रीं अधिपाय नमः
93. ॐ ह्रीं परमानंदाय नमः
94. ॐ ह्रीं परात्मज्ञाय नमः
95. ॐ ह्रीं परापराय नमः
96. ॐ ह्रीं त्रिजगद्वल्लभाय नमः
97. ॐ ह्रीं अभ्यर्च्याय नमः
98. ॐ ह्रीं त्रिजगन्मंगलोदयाय नमः
99. ॐ ह्रीं त्रिजगत्पतिपूजांघ्रये नमः
100. ॐ ह्रीं त्रिलोकाग्रशिखामणये नमः

(9)

1. ॐ ह्रीं त्रिकालदर्शिने नमः
2. ॐ ह्रीं लोकेशाय नमः
3. ॐ ह्रीं लोकधात्रे नमः
4. ॐ ह्रीं दृढव्रताय नमः
5. ॐ ह्रीं सर्वलोकातिगाय नमः
6. ॐ ह्रीं पूज्याय नमः
7. ॐ ह्रीं सर्वलोकैकसारथये नमः
8. ॐ ह्रीं पुराणाय नमः
9. ॐ ह्रीं पुरुषाय नमः
10. ॐ ह्रीं पूर्वाय नमः
11. ॐ ह्रीं कृतपूर्वांगविस्तराय नमः
12. ॐ ह्रीं आदिदेवाय नमः
13. ॐ ह्रीं पुराणाद्याय नमः
14. ॐ ह्रीं पुरुदेवाय नमः
15. ॐ ह्रीं अधिदेवतायै नमः
16. ॐ ह्रीं युगमुख्याय नमः
17. ॐ ह्रीं युगज्येष्ठाय नमः
18. ॐ ह्रीं युगादिस्थितिदेशकाय नमः
19. ॐ ह्रीं कल्याणवर्णाय नमः
20. ॐ ह्रीं कल्याणाय नमः
21. ॐ ह्रीं कल्याय नमः
22. ॐ ह्रीं कल्याणलक्षणाय नमः
23. ॐ ह्रीं कल्याणप्रकृतये नमः
24. ॐ ह्रीं दीप्रकल्याणात्मने नमः
25. ॐ ह्रीं विकल्मषाय नमः
26. ॐ ह्रीं विकलंकाय नमः
27. ॐ ह्रीं कलातीताय नमः
28. ॐ ह्रीं कलिलघ्नाय नमः
29. ॐ ह्रीं कलाधराय नमः
30. ॐ ह्रीं देवदेवाय नमः
31. ॐ ह्रीं जगन्नाथाय नमः
32. ॐ ह्रीं जगद्बंधवे नमः
33. ॐ ह्रीं जगद्विभवे नमः
34. ॐ ह्रीं जगद्धितैषिणे नमः
35. ॐ ह्रीं लोकज्ञाय नमः
36. ॐ ह्रीं सर्वगाय नमः
37. ॐ ह्रीं जगदग्रजाय नमः
38. ॐ ह्रीं चराचरगुरवे नमः
39. ॐ ह्रीं गोप्याय नमः
40. ॐ ह्रीं गूढात्मने नमः
41. ॐ ह्रीं गूढगोचराय नमः
42. ॐ ह्रीं सद्योजाताय नमः
43. ॐ ह्रीं प्रकाशात्मने नमः
44. ॐ ह्रीं ज्वलज्वलनसप्रभाय नमः
45. ॐ ह्रीं आदित्यवर्णाय नमः
46. ॐ ह्रीं भर्माभाय नमः
47. ॐ ह्रीं सुप्रभाय नमः
48. ॐ ह्रीं कनकप्रभाय नमः
49. ॐ ह्रीं सुवर्णवर्णाय नमः
50. ॐ ह्रीं रुक्माभाय नमः
51. ॐ ह्रीं सूर्यकोटिसमप्रभाय नमः
52. ॐ ह्रीं तपनीयनिभाय नमः
53. ॐ ह्रीं तुंगाय नमः
54. ॐ ह्रीं बालार्काभाय नमः
55. ॐ ह्रीं अनलप्रभाय नमः
56. ॐ ह्रीं संध्याभ्रबभ्रवे नमः
57. ॐ ह्रीं हेमाभाय नमः
58. ॐ ह्रीं तप्तचामीकरच्छवये नमः
59. ॐ ह्रीं निष्टप्तकनकच्छायाय नमः
60. ॐ ह्रीं कनत्कांचनसन्निभाय नमः
61. ॐ ह्रीं हिरण्यवर्णाय नमः
62. ॐ ह्रीं स्वर्णाभाय नमः
63. ॐ ह्रीं शातकुंभनिभप्रभाय नमः
64. ॐ ह्रीं द्युम्नाभाय नमः
65. ॐ ह्रीं जातरूपाभाय नमः
66. ॐ ह्रीं तप्तजांबूनदद्युतये नमः
67. ॐ ह्रीं सुधौतकलधौतश्रिये नमः
68. ॐ ह्रीं प्रदीप्ताय नमः
69. ॐ ह्रीं हाटकद्युतये नमः
70. ॐ ह्रीं शिष्टेष्टाय नमः
71. ॐ ह्रीं पुष्टिदाय नमः
72. ॐ ह्रीं पुष्टाय नमः
73. ॐ ह्रीं स्पष्टाय नमः
74. ॐ ह्रीं स्पष्टाक्षराय नमः
75. ॐ ह्रीं क्षमाय नमः

76. ॐ ह्रीं शत्रुघ्नाय नमः
77. ॐ ह्रीं अप्रतिघाय नमः
78. ॐ ह्रीं अमोघाय नमः
79. ॐ ह्रीं प्रशास्त्रे नमः
80. ॐ ह्रीं शासित्रे नमः
81. ॐ ह्रीं स्वभुवे नमः
82. ॐ ह्रीं शांतिनिष्ठाय नमः
83. ॐ ह्रीं मुनिज्येष्ठाय नमः
84. ॐ ह्रीं शिवतातये नमः
85. ॐ ह्रीं शिवप्रदाय नमः
86. ॐ ह्रीं शांतिदाय नमः
87. ॐ ह्रीं शांतिकृते नमः
88. ॐ ह्रीं शांतये नमः
89. ॐ ह्रीं कांतिमते नमः
90. ॐ ह्रीं कामितप्रदाय नमः
91. ॐ ह्रीं श्रेयोनिधये नमः
92. ॐ ह्रीं अधिष्ठानाय नमः
93. ॐ ह्रीं अप्रतिष्ठाय नमः
94. ॐ ह्रीं प्रतिष्ठिताय नमः
95. ॐ ह्रीं सुस्थिराय नमः
96. ॐ ह्रीं स्थावराय नमः
97. ॐ ह्रीं स्थास्नवे नमः
98. ॐ ह्रीं प्रथीयसे नमः
99. ॐ ह्रीं प्रथिताय नमः
100. ॐ ह्रीं पृथवे नमः

(10)

1. ॐ ह्रीं दिग्वाससे नमः
2. ॐ ह्रीं वातरशनाय नमः
3. ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थेशाय नमः
4. ॐ ह्रीं निरंबराय नमः
5. ॐ ह्रीं निष्किंचनाय नमः
6. ॐ ह्रीं निराशंसाय नमः
7. ॐ ह्रीं ज्ञानचक्षुषे नमः
8. ॐ ह्रीं अमोमुहाय नमः
9. ॐ ह्रीं तेजोराशये नमः
10. ॐ ह्रीं अनंतौजसे नमः
11. ॐ ह्रीं ज्ञानाब्धये नमः
12. ॐ ह्रीं शीलसागराय नमः
13. ॐ ह्रीं तेजोमयाय नमः
14. ॐ ह्रीं अमितज्योतिषे नमः
15. ॐ ह्रीं ज्योतिमूर्तये नमः
16. ॐ ह्रीं तमोपहाय नमः
17. ॐ ह्रीं जगच्चूड़ामणये नमः
18. ॐ ह्रीं दीप्ताय नमः
19. ॐ ह्रीं शंवदे नमः
20. ॐ ह्रीं विघ्नविनायकाय नमः
21. ॐ ह्रीं कलिघ्नाय नमः
22. ॐ ह्रीं कर्मशत्रुघ्नाय नमः
23. ॐ ह्रीं लोकालोकप्रकाशकाय नमः
24. ॐ ह्रीं अनिद्रालवे नमः
25. ॐ ह्रीं अतन्द्रालवे नमः
26. ॐ ह्रीं जागरूकाय नमः
27. ॐ ह्रीं प्रमामयाय नमः
28. ॐ ह्रीं लक्ष्मीपतये नमः
29. ॐ ह्रीं जगज्ज्योतिषे नमः
30. ॐ ह्रीं धर्मराजाय नमः
31. ॐ ह्रीं प्रजाहिताय नमः
32. ॐ ह्रीं मुमुक्षवे नमः
33. ॐ ह्रीं बंधमोक्षज्ञाय नमः
34. ॐ ह्रीं जिताक्षाय नमः
35. ॐ ह्रीं जितमन्मथाय नमः
36. ॐ ह्रीं प्रशांतरसशैलूषाय नमः
37. ॐ ह्रीं भव्यपेटकनायकाय नमः
38. ॐ ह्रीं मूलकर्त्रे नमः
39. ॐ ह्रीं अखिलज्योतिषे नमः
40. ॐ ह्रीं मलघ्यान नमः
41. ॐ ह्रीं मूलकारणाय नमः
42. ॐ ह्रीं आप्ताय नमः
43. ॐ ह्रीं वागीश्वराय नमः
44. ॐ ह्रीं श्रेयसे नमः
45. ॐ ह्रीं श्रायसोक्तये नमः
46. ॐ ह्रीं निरुक्तवाचे नमः
47. ॐ ह्रीं प्रवक्त्रे नमः
48. ॐ ह्रीं वचसामीशाय नमः
49. ॐ ह्रीं मारजिते नमः
50. ॐ ह्रीं विश्वभावविदे नमः
51. ॐ ह्रीं सुतनवे नमः
52. ॐ ह्रीं तनुनिर्मुक्ताय नमः
53. ॐ ह्रीं सुगताय नमः
54. ॐ ह्रीं हतदुर्नयाय नमः
55. ॐ ह्रीं श्रीशाय नमः
56. ॐ ह्रीं श्रीश्रितपादाब्जाय नमः
57. ॐ ह्रीं वीतभिये नमः
58. ॐ ह्रीं अभयंकराय नमः
59. ॐ ह्रीं उत्सन्नदोषाय नमः
60. ॐ ह्रीं निर्विघ्नाय नमः
61. ॐ ह्रीं निश्चलाय नमः
62. ॐ ह्रीं लोकवत्सलाय नमः
63. ॐ ह्रीं लोकोत्तराय नमः
64. ॐ ह्रीं लोकपतये नमः
65. ॐ ह्रीं लोकचक्षुषे नमः
66. ॐ ह्रीं अपारधिये नमः
67. ॐ ह्रीं धीरधिये नमः
68. ॐ ह्रीं बुद्धसन्मार्गाय नमः
69. ॐ ह्रीं शुद्धाय नमः
70. ॐ ह्रीं सूनृतपूतवाचे नमः
71. ॐ ह्रीं प्रज्ञापारमिताय नमः
72. ॐ ह्रीं प्राज्ञाय नमः
73. ॐ ह्रीं यतये नमः
74. ॐ ह्रीं नियमितेंद्रियाय नमः
75. ॐ ह्रीं भदन्ताय नमः

76. ॐ ह्रीं भद्रकृते नमः
77. ॐ ह्रीं भद्राय नमः
78. ॐ ह्रीं कल्पवृक्षाय नमः
79. ॐ ह्रीं वरप्रदाय नमः
80. ॐ ह्रीं समुन्मूलितकर्मारये नमः
81. ॐ ह्रीं कर्मकाष्ठाशुशुक्षणये नमः
82. ॐ ह्रीं कर्मण्याय नमः
83. ॐ ह्रीं कर्मठाय नमः
84. ॐ ह्रीं प्रांशवे नमः
85. ॐ ह्रीं हेयादेयविचक्षणाय नमः
86. ॐ ह्रीं अनंतशक्तये नमः
87. ॐ ह्रीं अच्छेद्याय नमः
88. ॐ ह्रीं त्रिपुरारये नमः
89. ॐ ह्रीं त्रिलोचनाय नमः
90. ॐ ह्रीं त्रिनेत्राय नमः
91. ॐ ह्रीं त्र्यंबकाय नमः
92. ॐ ह्रीं त्र्यक्षाय नमः
93. ॐ ह्रीं केवलज्ञानवीक्षणाय नमः
94. ॐ ह्रीं समंतभद्राय नमः
95. ॐ ह्रीं शांतारये नमः
96. ॐ ह्रीं धर्माचार्याय नमः
97. ॐ ह्रीं दयानिधये नमः
98. ॐ ह्रीं सूक्ष्मदर्शिने नमः
99. ॐ ह्रीं जितानंगाय नमः
100. ॐ ह्रीं कृपालवे नमः
101. ॐ ह्रीं धर्मदेशकाय नमः
102. ॐ ह्रीं शुभंयवे नमः
103. ॐ ह्रीं सुखसाद्भूताय नमः
104. ॐ ह्रीं पुण्यराशये नमः
105. ॐ ह्रीं अनामयाय नमः
106. ॐ ह्रीं धर्मपालाय नमः
107. ॐ ह्रीं जगत्पालाय नमः
108. ॐ ह्रीं धर्मसाम्राज्यनायकाय नमः

इति सहस्रनाममंत्राः

ज्ञान पचीसी व्रत विधि

ज्ञान पचीसी व्रत में ग्यारस के ग्यारह उपवास और चौदश के चौदह उपवास ऐसे कुल पचीस व्रत होते हैं। यह व्रत ग्यारह अंग और चौदह पूर्वरूप ज्ञान की आराधना के लिए किया जाता है। इसको श्रावणसुदी चतुर्दशी से करने का विधान है।

मतांतर से इस व्रत में दशमी के दश उपवास और पूर्णिमा के पंद्रह उपवास करने का भी विधान है।

इस व्रत में प्रधानरूप से श्रुतस्कंध यंत्र का अभिषेक एवं श्रुतज्ञान (सरस्वती) की पूजा करना चाहिए।

प्रत्येक व्रत की उत्तम विधि तो उपवास ही है। मध्यम एवं जघन्य विधि में शक्ति के अनुसार अल्पाहार या एकाशन करके भी व्रत किया जा सकता है। व्रत के दिन जिनेन्द्रदेव एवं श्रुतस्कंध यंत्र अथवा सरस्वती की मूर्ति का पंचामृत अभिषेक करके पूजा करें, पुनः सरस्वती के 108 नामों को पढ़ते हुए एक-एक मंत्रों का उच्चारण कर सुगंधित पुष्प, लवंग या पीले चावलों को चढ़ावें। अनंतर समुच्चय मंत्र से एक जाप्य करें।

समुच्चय जाप्य–ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगाय नमः।

ग्यारह अंग और चौदह पूर्वसंबंधी व्रतों में पृथक्-पृथक् एक-एक जाप्य करना चाहिए।

ग्यारह अंग की 11 जाप्य–

1. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-आचारांगाय नमः।
2. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-सूत्रकृतांगाय नमः।
3. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-स्थानांगाय नमः।
4. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-समवायांगाय नमः।
5. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-व्याख्याप्रज्ञप्तिअंगाय नमः।
6. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-नाथधर्मकथांगाय नमः।
7. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-उपासकाध्ययनांगाय नमः।

8. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-अंतकृत्दशांगाय नमः।
9. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-अनुत्तरोपपादिकदशांगाय नमः।
10. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-प्रश्नव्याकरणांगाय नमः।
11. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-विपाकसूत्रांगाय नमः।

चौदह पूर्वों की 14 जाप्य–

1. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-उत्पादपूर्वाय नमः।
2. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-अग्रायणीयपूर्वाय नमः।
3. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-वीर्यानुप्रवादपूर्वाय नमः।
4. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वाय नमः।
5. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-ज्ञानप्रवादपूर्वाय नमः।
6. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-सत्यप्रवादपूर्वाय नमः।
7. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-आत्मप्रवादपूर्वाय नमः।
8. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-कर्मप्रवादपूर्वाय नमः।
9. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-प्रत्याख्यानपूर्वाय नमः।
10. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-विद्यानुप्रवादपूर्वाय नमः।
11. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-कल्याणप्रवादपूर्वाय नमः।
12. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-प्राणावायप्रवादपूर्वाय नमः।
13. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-क्रियाविशालपूर्वाय नमः।
14. ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत-लोकबिंदुसारपूर्वाय नमः।

इस व्रत के 25 उपवास एक वर्ष में करें। ऐसे एक वर्ष तक या बारह वर्ष तक भी यह व्रत किया जाता है। व्रत पूर्ण करके यथाशक्ति उद्यापन करना चाहिए।

इस व्रत के प्रसाद से मनुष्य श्रुतज्ञान को प्राप्त कर अगले भव में श्रुतकेवली होकर परम्परा से केवलज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हो जावेगा।



श्रुतज्ञान व्रत

(1) पहली विधि– श्रुतविधि उपवास में मतिज्ञान के 28, ग्यारह अंगों के 11, परिकर्म के 2, सूत्र के 88, प्रथमानुयोग का 1, चौदह पूर्वों के 14, पाँच चूलिका के 5, अवधिज्ञान के 6, मनः पर्ययज्ञान के 2 और केवलज्ञान का 1, ऐसे 158 उपवास करने होते हैं। एक-एक उपवास के बाद एक-एक पारणा होती है[1]।

(2) दूसरी विधि– श्रुतज्ञान व्रत में सोलह प्रतिपदाओं के 16 उपवास, तीन तृतीयाओं के 3, चार चतुर्थी के 4, पांच पंचमी के 5, छह षष्ठी के 6, सात सप्तमी के 7, आठ अष्टमी के 8, नौ नवमी के 9, बीस दशमी के 20, ग्यारह एकादशी के 11, बारह द्वादशी के 12, तेरह त्रयोदशी के 13, चौदह चतुर्दशी के 14, पंद्रह पूर्णिमासी के 15 एवं पंद्रह अमावस्या के 15 उपवास किये जाते हैं।[2] यथा–)

16+3+4+5+6+7+8+9+20+11+12+13+14+15+15 = 158

(3) तृतीय विधि[3]–

अट्ठाईस मतिज्ञान के	–	प्रतिपदा के 28 उपवास
ग्यारह अंग श्रुतज्ञान के	–	ग्यारस के 11 उपवास
दो परिकर्म श्रुतज्ञान के	–	द्वितीया के 2 उपवास
अट्ठासी सूत्र श्रुतज्ञान के	–	अष्टमी के 88 उपवास
एक प्रथमानुयोग श्रुतज्ञान का	–	दशमी का 1 उपवास
चौदह पूर्वश्रुतज्ञान के	–	चतुर्दशी के 14 उपवास
पांच चूलिका श्रुतज्ञान के	–	पंचमी के 5 उपवास
छह अवधिज्ञान के	–	षष्ठी के 6 उपवास
दो मनःपर्ययज्ञान के	–	द्वितीया के 2 उपवास
एक केवलज्ञान का	–	नवमी का 1 उपवास

इन व्रतों के मंत्र निम्नलिखित हैं–

समुच्चय जाप्य–**ॐ ह्रीं श्रीमानसावग्रहादिकेवलज्ञानान्त्य-अष्टपंचाशदुत्तरशत प्रमाणज्ञानेभ्यो नमः।**

मतिज्ञान के 28 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं मानस-अवग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं मानस-ईहा-मतिज्ञानाय नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं मानस-अवाय-मतिज्ञानाय नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं मानस-धारणा-मतिज्ञानाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं स्पर्शनज-अवग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं स्पर्शनज-ईहा-मतिज्ञानाय नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं स्पर्शनज अवाय-मतिज्ञानाय नमः।
8. ॐ ह्रीं अर्हं स्पर्शनज-धारणा-मतिज्ञानाय नमः।
9. ॐ ह्रीं अर्हं रसनज-अवग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
10. ॐ ह्रीं अर्हं रसनज-ईहा-मतिज्ञानाय नमः।
11. ॐ ह्रीं अर्हं रसनज-अवाय-मतिज्ञानाय नमः।
12. ॐ ह्रीं अर्हं रसनज-धारणा-मतिज्ञानाय नमः।
13. ॐ ह्रीं अर्हं घ्राणज-अवग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
14. ॐ ह्रीं अर्हं घ्राणज-ईहा-मतिज्ञानाय नमः।
15. ॐ ह्रीं अर्हं घ्राणज-अवाय-मतिज्ञानाय नमः।
16. ॐ ह्रीं अर्हं घ्राणज-धारणा-मतिज्ञानाय नमः।
17. ॐ ह्रीं अर्हं चाक्षुष-अवग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
18. ॐ ह्रीं अर्हं चाक्षुष-ईहा-मतिज्ञानाय नमः।

1. हरिवंशपुराण सर्ग 34, श्लोक 97। 2. व्रततिथि निर्णय पृ. 257। 3. ये श्रुतज्ञानव्रत विधि की तिथियाँ अन्य पुस्तक से प्राप्त हुई हैं। यदि उपवास की शक्ति न हो तो एक बार अल्पाहार या एकाशन से भी व्रत कर सकते हैं।

19. ॐ ह्रीं अर्हं चाक्षुष-अवाय-मतिज्ञानाय नमः।
20. ॐ ह्रीं अर्हं चाक्षुष-धारणा-मतिज्ञानाय नमः।
21. ॐ ह्रीं अर्हं श्रोत्रज-अवग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
22. ॐ ह्रीं अर्हं श्रोत्रज-ईहा-मतिज्ञानाय नमः।
23. ॐ ह्रीं अर्हं श्रोत्रज-अवाय-मतिज्ञानाय नमः।
24. ॐ ह्रीं अर्हं श्रोत्रज-धारणा-मतिज्ञानाय नमः।
25. ॐ ह्रीं अर्हं स्पर्शनेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
26. ॐ ह्रीं अर्हं रसनेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
27. ॐ ह्रीं अर्हं घ्राणेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह-मतिज्ञानाय नमः।
28. ॐ ह्रीं अर्हं श्रोत्रेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह-मतिज्ञानाय नमः।

11 अंगरूप श्रुतज्ञान के 11 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं आचारांग-श्रुतज्ञानाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं सूत्रकृतांग-श्रुतज्ञानाय नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं स्थानांग-श्रुतज्ञानाय नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं समवायांग-श्रुतज्ञानाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं व्याख्याप्रज्ञप्ति-अंग-श्रुतज्ञानाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञातृधर्मकथांग-श्रुतज्ञानाय नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं उपासकाध्ययन-अंग-श्रुतज्ञानाय नमः।
8. ॐ ह्रीं अर्हं अंतकृत्-दशांग-श्रुतज्ञानाय नमः।
9. ॐ ह्रीं अर्हं अनुत्तरौपपादिक-दशांग-श्रुतज्ञानाय नमः।
10. ॐ ह्रीं अर्हं प्रश्नव्याकरणांग-श्रुतज्ञानाय नमः।
11. ॐ ह्रीं अर्हं विपाकसूत्रांग-श्रुतज्ञानाय नमः।

परिकर्म के 2 भेद के 2 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं दृष्टिवादप्रथम-अवयवपरिकर्मणे नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं परिकर्म-अंतर्गत-चंद्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति-जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिद्वीपसागरप्रज्ञप्ति-व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम-पंचविध-परिकर्म-श्रुतज्ञानेभ्यो नमः।

सूत्र के 88 भेद के 88 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यपापकर्तृत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यपापफलभोक्तृत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वगतत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं चेतनत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं अमूर्त्तत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं मूर्त्तत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं अशब्दत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
8. ॐ ह्रीं अर्हं अगंधत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
9. ॐ ह्रीं अर्हं अरूपत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
10. ॐ ह्रीं अर्हं अस्पर्शत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
11. ॐ ह्रीं अर्हं अरसत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
12. ॐ ह्रीं अर्हं जीवहेतुत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
13. ॐ ह्रीं अर्हं स्वीकृतदेहप्रमाणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
14. ॐ ह्रीं अर्हं असंसारत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
15. ॐ ह्रीं अर्हं सिद्धत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
16. ॐ ह्रीं अर्हं ऊर्ध्वगतिशीलत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
17. ॐ ह्रीं अर्हं पारिणामिकत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
18. ॐ ह्रीं अर्हं बहिरात्मप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
19. ॐ ह्रीं अर्हं अंतरात्मप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
20. ॐ ह्रीं अर्हं परमात्मप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
21. ॐ ह्रीं अर्हं पंचब्रह्ममयत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
22. ॐ ह्रीं अर्हं ज्योतिरूपत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
23. ॐ ह्रीं अर्हं उपयोगधर्मप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
24. ॐ ह्रीं अर्हं उपयोगित्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
25. ॐ ह्रीं अर्हं त्रैरूप्यधर्मप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
26. ॐ ह्रीं अर्हं जीवास्तित्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
27. ॐ ह्रीं अर्हं जीवनास्तित्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
28. ॐ ह्रीं अर्हं जीवैकत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
29. ॐ ह्रीं अर्हं जीवानेकत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
30. ॐ ह्रीं अर्हं जीवनित्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
31. ॐ ह्रीं अर्हं जीवानित्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
32. ॐ ह्रीं अर्हं वाच्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
33. ॐ ह्रीं अर्हं अवाच्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
34. ॐ ह्रीं अर्हं हेतुत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
35. ॐ ह्रीं अर्हं अहेतुत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
36. ॐ ह्रीं अर्हं कार्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
37. ॐ ह्रीं अर्हं अकार्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
38. ॐ ह्रीं अर्हं वस्तुत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
39. ॐ ह्रीं अर्हं अवस्तुत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।

40. ॐ ह्रीं अर्हं द्रव्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
41. ॐ ह्रीं अर्हं अद्रव्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
42. ॐ ह्रीं अर्हं बंधत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
43. ॐ ह्रीं अर्हं अबंधत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
44. ॐ ह्रीं अर्हं मुक्तत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
45. ॐ ह्रीं अर्हं अमुक्तत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
46. ॐ ह्रीं अर्हं भव्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
47. ॐ ह्रीं अर्हं अभव्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
48. ॐ ह्रीं अर्हं प्रमेयत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
49. ॐ ह्रीं अर्हं अप्रमेयत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
50. ॐ ह्रीं अर्हं प्रमाणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
51. ॐ ह्रीं अर्हं अप्रमाणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
52. ॐ ह्रीं अर्हं प्रमातृत्त्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
53. ॐ ह्रीं अर्हं अप्रमातृत्त्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
54. ॐ ह्रीं अर्हं प्रमितित्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
55. ॐ ह्रीं अर्हं अप्रमितित्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
56. ॐ ह्रीं अर्हं कर्तृत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
57. ॐ ह्रीं अर्हं अकर्तृत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
58. ॐ ह्रीं अर्हं कर्मत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
59. ॐ ह्रीं अर्हं अकर्मत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
60. ॐ ह्रीं अर्हं करणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
61. ॐ ह्रीं अर्हं अकरणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
62. ॐ ह्रीं अर्हं संप्रदानत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
63. ॐ ह्रीं अर्हं असंप्रदानत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
64. ॐ ह्रीं अर्हं अपादानत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
65. ॐ ह्रीं अर्हं अनपादानत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
66. ॐ ह्रीं अर्हं संबंधत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
67. ॐ ह्रीं अर्हं असंबंधत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
68. ॐ ह्रीं अर्हं अधिकरणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
69. ॐ ह्रीं अर्हं अनधिकरणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
70. ॐ ह्रीं अर्हं क्रियात्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
71. ॐ ह्रीं अर्हं अक्रियात्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
72. ॐ ह्रीं अर्हं विशेषणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
73. ॐ ह्रीं अर्हं अविशेषणत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
74. ॐ ह्रीं अर्हं विशेष्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
75. ॐ ह्रीं अर्हं अविशेष्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
76. ॐ ह्रीं अर्हं भावस्य भावशक्तित्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
77. ॐ ह्रीं अर्हं भावस्याभावशक्तित्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
78. ॐ ह्रीं अर्हं भूत कार्यत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
79. ॐ ह्रीं अर्हं अव्यापकत्वनिषेधप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
80. ॐ ह्रीं अर्हं व्यापकत्वनिषेधप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
81. ॐ ह्रीं अर्हं अचेतनत्वनिषेधप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
82. ॐ ह्रीं अर्हं अंगुष्ठमात्रकत्वनिषेधप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
83. ॐ ह्रीं अर्हं श्यामकप्रमाणनिषेधकत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
84. ॐ ह्रीं अर्हं कूटस्थत्वप्रमाणनिषेधकत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
85. ॐ ह्रीं अर्हं निरन्वय-क्षणिकनिषेधकत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
86. ॐ ह्रीं अर्हं अद्वैत-एकान्त-निषेधकत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
87. ॐ ह्रीं अर्हं असर्वज्ञत्वप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।
88. ॐ ह्रीं अर्हं क्रम-अक्रम-अनेकांतप्रकाशक-सूत्र-श्रुतज्ञानाय नमः।

प्रथमानुयोग का 1 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं प्रथमानुयोग-श्रुतज्ञानाय नमः।

चौदह पूर्व के 14 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं उत्पादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं अग्रायणीयपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं वीर्यानुप्रवादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानप्रवादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं सत्यप्रवादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं आत्मप्रवादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
8. ॐ ह्रीं अर्हं कर्मप्रवादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
9. ॐ ह्रीं अर्हं प्रत्याख्यानपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
10. ॐ ह्रीं अर्हं विद्यानुवादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
11. ॐ ह्रीं अर्हं कल्याणानुप्रवादपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
12. ॐ ह्रीं अर्हं प्राणावायपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
13. ॐ ह्रीं अर्हं क्रियाविशालपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।
14. ॐ ह्रीं अर्हं लोकविंदुसारपूर्व-श्रुतज्ञानाय नमः।

पांच चूलिका के 5 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं जलगताचूलिका-श्रुतज्ञानाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं स्थलगताचूलिका-श्रुतज्ञानाय नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं मायागताचूलिका-श्रुतज्ञानाय नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं रूपगताचूलिका-श्रुतज्ञानाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं आकाशगताचूलिका-श्रुतज्ञानाय नमः।

अवधिज्ञान के 6 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं वर्धमान-अवधिज्ञानाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं हीयमान-अवधिज्ञानाय नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं अवस्थित-अवधिज्ञानाय नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं अनवस्थित-अवधिज्ञानाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं अनुगामि-अवधिज्ञानाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं अननुगामि-अवधिज्ञानाय नमः।

मनः पर्ययज्ञान के 2 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानाय नमः।

केवलज्ञान का 1 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं केवलज्ञानाय नमः।

पांच ज्ञानों के पृथक्-पृथक् मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं अष्टाविंशतिमतिज्ञानेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं द्विविधपरिकर्मभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं अष्टाशीतिसूत्रेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं प्रथमानुयोगाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं चतुर्दशपूर्वेभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं पंचचूलिकाभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं षड्विध अवधिज्ञानेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं अर्हं द्विविध मनःपर्ययज्ञानेभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं अर्हं केवलज्ञानाय नमः।



चौंसठ ऋद्धि व्रत विधि

चौंसठ ऋद्धि मंत्र की अपेक्षा चौंसठ व्रत करना चाहिए। व्रत के दिन उपवास करना उत्तम, अल्पाहार फल, दूध, मेवा या जल आदि लेना मध्यम और एक बार शुद्ध भोजन करना जघन्य विधि है। प्रत्येक माह में अष्टमी, चतुर्दशी आदि किसी भी दिन व्रत कर सकते हैं। व्रत पूर्ण कर 'चौंसठ ऋद्धि मंडल विधान' करके शक्ति के अनुसार चौंसठ शास्त्र, उपकरण आदि मंदिर में रखें। अनेक प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि को प्राप्त करना, अनेक प्रकार के रोग, शोक, दुःख, दारिद्र्य से छुटकारा पाना यह इसका फल है।

प्रत्येक व्रत का समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यो नमः।**

चौंसठ व्रतों के 64 मंत्र

चौंसठ ऋद्धि के 18 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अवधिज्ञानबुद्धिऋद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं मनःपर्ययज्ञानबुद्धिऋद्धये नमः।
3. ॐ ह्रीं केवलज्ञानबुद्धिऋद्धये नमः।
4. ॐ ह्रीं बीजबुद्धिऋद्धये नमः।
5. ॐ ह्रीं कोष्ठबुद्धिऋद्धये नमः।
6. ॐ ह्रीं पदानुसारिणीबुद्धिऋद्धये नमः।
7. ॐ ह्रीं संभिन्नश्रोतृत्वबुद्धिऋद्धये नमः।

8. ॐ ह्रीं दूरास्वादित्वबुद्धिऋद्धये नमः।
9. ॐ ह्रीं दूरस्पर्शत्वबुद्धिऋद्धये नमः।
10. ॐ ह्रीं दूरघ्राणत्वबुद्धिऋद्धये नमः।
11. ॐ ह्रीं दूरश्रवणत्वबुद्धिऋद्धये नमः।
12. ॐ ह्रीं दूरदर्शित्वबुद्धिऋद्धये नमः।
13. ॐ ह्रीं दशपूर्वित्वबुद्धिऋद्धये नमः।
14. ॐ ह्रीं चतुर्दशपूर्वित्वबुद्धिऋद्धये नमः।
15. ॐ ह्रीं अष्टांगमहानिमित्तबुद्धिऋद्धये नमः।
16. ॐ ह्रीं प्रज्ञाश्रमणबुद्धिऋद्धये नमः।
17. ॐ ह्रीं प्रत्येकबुद्धिऋद्धये नमः।
18. ॐ ह्रीं वादित्वबुद्धिऋद्धये नमः।

विक्रिया के 11 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अणिमाविक्रियाऋद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं महिमाविक्रियाऋद्धये नमः।
3. ॐ ह्रीं लघिमाविक्रियाऋद्धये नमः।
4. ॐ ह्रीं गरिमाविक्रियाऋद्धये नमः।
5. ॐ ह्रीं प्राप्तिविक्रियाऋद्धये नमः।
6. ॐ ह्रीं प्राकाम्यविक्रियाऋद्धये नमः।
7. ॐ ह्रीं ईशत्वविक्रियाऋद्धये नमः।
8. ॐ ह्रीं वशित्वविक्रियाऋद्धये नमः।
9. ॐ ह्रीं अप्रतिघातविक्रियाऋद्धये नमः।
10. ॐ ह्रीं अंतर्धानविक्रियाऋद्धये नमः।
11. ॐ ह्रीं कामरूपविक्रियाऋद्धये नमः।

चारणऋद्धि के 9 मंत्र

1. ॐ ह्रीं नभस्तलगामित्वचारणक्रियाऋद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं जलचारणक्रियाऋद्धये नमः।
3. ॐ ह्रीं जंघाचारणक्रियाऋद्धये नमः।
4. ॐ ह्रीं फलपुष्पपत्रचारणक्रियाऋद्धये नमः।
5. ॐ ह्रीं अग्निधूमचारणक्रियाऋद्धये नमः।
6. ॐ ह्रीं मेघधाराचारणक्रियाऋद्धये नमः।
7. ॐ ह्रीं तंतुचारणक्रियाऋद्धये नमः।
8. ॐ ह्रीं ज्योतिश्चारणक्रियाऋद्धये नमः।
9. ॐ ह्रीं मरुच्चारणक्रियाऋद्धये नमः।

तपऋद्धि के 7 मंत्र

1. ॐ ह्रीं उग्रतपःऋद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं दीप्ततपःऋद्धये नमः।
3. ॐ ह्रीं तप्ततपःऋद्धये नमः।
4. ॐ ह्रीं महातपःऋद्धये नमः।
5. ॐ ह्रीं घोरतपःऋद्धये नमः।
6. ॐ ह्रीं घोरपराक्रमतपःऋद्धये नमः।
7. ॐ ह्रीं अघोरब्रह्मचारित्वतपःऋद्धये नमः।

बलऋद्धि के 3 मंत्र

1. ॐ ह्रीं मनोबलऋद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं वचनबलऋद्धये नमः।
3. ॐ ह्रीं कायबलऋद्धये नमः।

औषधिऋद्धि के 8 मंत्र

1. ॐ ह्रीं आमर्शौषधिऋद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं क्ष्वेलौषधिऋद्धये नमः।
3. ॐ ह्रीं जल्लौषधिऋद्धये नमः।
4. ॐ ह्रीं मलौषधिऋद्धये नमः।
5. ॐ ह्रीं विप्रुषौधिऋद्धये नमः।
6. ॐ ह्रीं सर्वौषधिऋद्धये नमः।
7. ॐ ह्रीं मुखनिर्विषऋद्धये नमः।
8. ॐ ह्रीं दृष्टिनिर्विषऋद्धये नमः।

रसऋद्धि के 6 मंत्र

1. ॐ ह्रीं आशीर्विषऋद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं दृष्टिविषऋद्धये नमः।
3. ॐ ह्रीं क्षीरस्राविरसऋद्धये नमः।
4. ॐ ह्रीं मधुस्राविरसऋद्धये नमः।
5. ॐ ह्रीं अमृतस्राविरसऋद्धये नमः।
6. ॐ ह्रीं सर्पिस्राविरसऋद्धये नमः।

अक्षीणऋद्धि के 2 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अक्षीणमहानसऋद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं अक्षीणमहालयऋद्धये नमः।

पंचपरमेष्ठी व्रत विधि

पंचपरमेष्ठी के मूलगुणों की आराधना करते हुए यह व्रत किया जाता है। इसमें अरहंत परमेष्ठी के 46 व्रत हैं, सिद्ध परमेष्ठी के 8, आचार्य के 36, उपाध्याय के 25 एवं साधु के 28 गुणों के मंत्रों की जाप्य की जाती है। 46+8+36+25+28=143 व्रत, 143 मूलगुणों के लिये किए जाते हैं।

व्रत की उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य एकाशन करना है। व्रत के दिन पंचपरमेष्ठी प्रतिमा का अभिषेक करके समुच्चय पूजा करके क्रमशः एक-एक मंत्र का जाप्य करना चाहिये।

इस व्रत को जो छोटे रूप में करना चाहें तो अरिहंत परमेष्ठी के पृथक्रूप से 46 व्रत कर सकते हैं। ऐसे ही सिद्ध परमेष्ठी के आठ व्रत कर सकते हैं। इसी प्रकार आचार्य परमेष्ठी के 36 व्रत पृथक् से भी किये जाते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी के 25 व्रत एवं साधु परमेष्ठी के 28 व्रत भी किये जाते हैं।

इस व्रत के प्रसाद से भव्यात्मा साधु, आचार्य आदि के व्रतों को धारण करने में समर्थ होकर कालांतर में अर्हंत, सिद्ध पद को प्राप्त करने के अधिकारी बनेंगे। इस व्रत को पूर्ण कर उद्यापन में पंचपरमेष्ठी विधान करें। पंचपरमेष्ठी की प्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठा करावें। ग्रंथ प्रकाशन, गुरुजनों को पिच्छी-कमंडलु एवं यथायोग्य वस्त्रादि के दान देवें। 5-5 उपकरण मंदिर में भेंट करके आदि पूर्वक उद्यापन पूर्ण करें।

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।**

प्रत्येक व्रत की पृथक्-पृथक् जाप्य–

अर्हंत परमेष्ठी के 46 मंत्र

1. **ॐ ह्रीं स्वेदरहित सहजातिशयधारक अर्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
2. **ॐ ह्रीं निर्मलत्व सहजातिशयधारक अर्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
3. **ॐ ह्रीं क्षीरगौर रुधिरत्व सहजातिशय सहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
4. **ॐ ह्रीं समचतुरस्रसंस्थान सहजातिशय सहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
5. **ॐ ह्रीं वज्रवृषभनाराचसंहनन सहजातिशय सहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
6. **ॐ ह्रीं अतिशयरूप सहजातिशयसमन्वितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
7. **ॐ ह्रीं सौगन्ध्य शरीर सहजातिशयसमन्वितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
8. **ॐ ह्रीं अष्टोत्तरसहस्रशुभलक्षणसहितशरीरसहजातिशयधारकार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
9. **ॐ ह्रीं अप्रमितवीर्यसहजातिशयसमन्वितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
10. **ॐ ह्रीं प्रियहितवादित्वसहजातिशयसमन्वितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
11. **ॐ ह्रीं गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
12. **ॐ ह्रीं आकाशगमनघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
13. **ॐ ह्रीं अदयाऽभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
14. **ॐ ह्रीं कवलाहाराभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
15. **ॐ ह्रीं उपसर्गाभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
16. **ॐ ह्रीं चतुर्मुखत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
17. **ॐ ह्रीं सर्वविद्येश्वरत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
18. **ॐ ह्रीं छायारहितघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
19. **ॐ ह्रीं पक्ष्मस्पंदरहितघातिक्षयजातिशयसमन्वितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**

20. ॐ ह्रीं समाननखकेशत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं सर्वार्धमागधीयभाषादेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं सर्वजीवमैत्रीभावदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
23. ॐ ह्रीं सर्वर्तुपुष्पफलादिशोभिततरुपरिणामदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
24. ॐ ह्रीं आदर्शतलप्रतिमारत्नमयीमहीदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
25. ॐ ह्रीं सुगंधितविहरणमनुगतवायुत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
26. ॐ ह्रीं सर्वजनपरमानन्दत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
27. ॐ ह्रीं वायुकुमारोपशमित धूलिकंटकादिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
28. ॐ ह्रीं मेघकुमारकृत गंधोदकवृष्टिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
29. ॐ ह्रीं चरणकमलतलरचितस्वर्णकमलदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
30. ॐ ह्रीं फलभारनम्रशालिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः ।
31. ॐ ह्रीं शरत्कालवन्निर्मलगगनदिग्भागत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
32. ॐ ह्रीं एतैतेति चतुर्णिकायामरपरापराह्वानदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
33. ॐ ह्रीं धर्मचक्रचतुष्टयदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
34. ॐ ह्रीं अष्टमंगलद्रव्यदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
35. ॐ ह्रीं अशोकवृक्षमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः ।
36. ॐ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
37. ॐ ह्रीं दिव्यध्वनिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
38. ॐ ह्रीं चतुःषष्टिचामरमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
39. ॐ ह्रीं सिंहासनमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
40. ॐ ह्रीं भामंडलमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
41. ॐ ह्रीं सुरदुंदुभिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
42. ॐ ह्रीं छत्रत्रयमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
43. ॐ ह्रीं अनंतज्ञानसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
44. ॐ ह्रीं अनंतदर्शनसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
45. ॐ ह्रीं अनंतसौख्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
46. ॐ ह्रीं अनन्तवीर्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।

सिद्ध परमेष्ठी के 8 मंत्र

47. ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मरहितसम्यक्त्वगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
48. ॐ ह्रीं ज्ञानावरणकर्मरहितानंतज्ञानगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
49. ॐ ह्रीं दर्शनावरणकर्मरहितानंतदर्शनगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
50. ॐ ह्रीं अंतरायकर्मरहितानंतवीर्यगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
51. ॐ ह्रीं नामकर्मरहितसूक्ष्मत्वगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
52. ॐ ह्रीं आयुकर्मरहितावगाहनगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
53. ॐ ह्रीं गोत्रकर्मरहितागुरुलघुगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
54. ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मरहिताव्याबाधसुखसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।

आचार्य परमेष्ठी के 36 मंत्र

55. ॐ ह्रीं ज्ञानाचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
56. ॐ ह्रीं दर्शनाचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
57. ॐ ह्रीं चारित्राचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
58. ॐ ह्रीं तपाचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
59. ॐ ह्रीं वीर्याचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
60. ॐ ह्रीं उत्तमक्षमागुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
61. ॐ ह्रीं उत्तममार्दवगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
62. ॐ ह्रीं उत्तमार्जवगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
63. ॐ ह्रीं उत्तमसत्यगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
64. ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
65. ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
66. ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
67. ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
68. ॐ ह्रीं उत्तमार्किंचन्यधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
69. ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
70. ॐ ह्रीं अनशनतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
71. ॐ ह्रीं अवमौदर्यतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
72. ॐ ह्रीं वृत्तपरिसंख्यानतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
73. ॐ ह्रीं रसपरित्यागतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
74. ॐ ह्रीं विविक्तशयनासनतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
75. ॐ ह्रीं कायक्लेशतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
76. ॐ ह्रीं प्रायश्चित्ततपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
77. ॐ ह्रीं विनयतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
78. ॐ ह्रीं वैयावृत्तितपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
79. ॐ ह्रीं स्वाध्यायतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
80. ॐ ह्रीं व्युत्सर्गतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
81. ॐ ह्रीं ध्यानतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
82. ॐ ह्रीं समतावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
83. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिस्तवावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
84. ॐ ह्रीं वंदनावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
85. ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
86. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
87. ॐ ह्रीं कायोत्सर्गावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
88. ॐ ह्रीं मनोगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
89. ॐ ह्रीं वचोगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
90. ॐ ह्रीं कायगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।

ऊपाध्याय परमेष्ठी के 25 मंत्र

91. ॐ ह्रीं आचारांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
92. ॐ ह्रीं सूत्रकृतांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
93. ॐ ह्रीं स्थानांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
94. ॐ ह्रीं समवायांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
95. ॐ ह्रीं व्याख्याप्रज्ञप्तिअंगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
96. ॐ ह्रीं ज्ञातृधर्मकथांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
97. ॐ ह्रीं उपासकाध्ययनांगधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
98. ॐ ह्रीं अतंकृद्दशांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
99. ॐ ह्रीं अनुत्तरोपपादिकदशांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
100. ॐ ह्रीं प्रश्नव्याकरणांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
101. ॐ ह्रीं विपाकसूत्रांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
102. ॐ ह्रीं उत्पादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
103. ॐ ह्रीं अग्रायणीयपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
104. ॐ ह्रीं वीर्यानुप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
105. ॐ ह्रीं अस्तिनास्तिप्रवादज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
106. ॐ ह्रीं ज्ञानप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
107. ॐ ह्रीं सत्यप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
108. ॐ ह्रीं आत्मप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
109. ॐ ह्रीं कर्मप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
110. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
111. ॐ ह्रीं विद्यानुवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
112. ॐ ह्रीं कल्याणवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
113. ॐ ह्रीं प्राणावायपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
114. ॐ ह्रीं क्रियाविशालपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः
115. ॐ ह्रीं लोकविंदुसारपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।

साधु परमेष्ठी के 28 मंत्र

116. ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
117. ॐ ह्रीं सत्यमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
118. ॐ ह्रीं अचौर्यमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
119. ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
120. ॐ ह्रीं अपरिग्रहमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
121. ॐ ह्रीं ईर्यासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
122. ॐ ह्रीं भाषासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
123. ॐ ह्रीं एषणासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
124. ॐ ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
125. ॐ ह्रीं उत्सर्गसमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।

126. ॐ ह्रीं स्पर्शनेंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
127. ॐ ह्रीं रसनेंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
128. ॐ ह्रीं घ्राणेंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
129. ॐ ह्रीं चक्षुइंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
130. ॐ ह्रीं श्रोत्रेंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
131. ॐ ह्रीं समतावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
132. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिस्तवावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
133. ॐ ह्रीं वंदनावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
134. ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
135. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
136. ॐ ह्रीं कायोत्सर्गावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
137. ॐ ह्रीं केशलोंचगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
138. ॐ ह्रीं आचेलक्यगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
139. ॐ ह्रीं अस्नानगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
140. ॐ ह्रीं क्षितिशयनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
141. ॐ ह्रीं अदंतधावनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
142. ॐ ह्रीं स्थितिभोजनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।
143. ॐ ह्रीं एकभक्तगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।

अरिहंत परमेष्ठी व्रत विधि

अरिहंत परमेष्ठी के–तीर्थंकर भगवान के जन्म के 10 अतिशय, केवलज्ञान के 10 अतिशय, देवकृत 14 अतिशय, 8 प्रातिहार्य और 4 अनंत चतुष्टय ऐसे 10+10+14+8+4=46 गुण तीर्थंकर भगवान के–श्री अरिहंत परमेष्ठी के होते हैं। व्रत के दिन अरिहंत परमेष्ठी की प्रतिमा या किन्हीं तीर्थंकर प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके अरिहंत परमेष्ठी की पूजा करके क्रम से 1-1 मंत्र की जाप्य करें।

समुच्चय मंत्र - **ॐ ह्रीं षट्चत्वारिंशद्गुणसमन्वितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं स्वेदरहित सहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
2. **ॐ ह्रीं निर्मलत्व सहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
3. **ॐ ह्रीं क्षीरगौर रुधिरत्व सहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
4. **ॐ ह्रीं समचतुरस्रसंस्थान सहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
5. **ॐ ह्रीं वज्रवृषभनाराचसंहनन सहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
6. **ॐ ह्रीं अतिशयरूप सहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
7. **ॐ ह्रीं सौगन्ध्य शरीर सहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**
8. **ॐ ह्रीं अष्टोत्तरसहस्रशुभलक्षणसहितशरीरसहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।**

9. ॐ ह्रीं अप्रमितवीर्यसहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
10. ॐ ह्रीं प्रियहितवादित्वसहजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं आकाशगमनघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं अदयाऽभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं कवलाहाराभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं उपसर्गाभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं चतुर्मुखत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं सर्वविद्येश्वरत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं छायारहितघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं पक्ष्मस्पंदरहितघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं समाननखकेशत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं सर्वार्धमागधीयभाषादेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं सर्वजीवमैत्रीभावदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
23. ॐ ह्रीं सर्वर्तुफलादिशोभिततरुपरिणामदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
24. ॐ ह्रीं आदर्शतलप्रतिमारत्नमयीमहीदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
25. ॐ ह्रीं सुगंधितविहरणमनुगतवायुत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
26. ॐ ह्रीं सर्वजनपरमानन्दत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
27. ॐ ह्रीं वायुकुमारोपशमित धूलिकंटकादिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
28. ॐ ह्रीं मेघकुमारकृत गंधोदकवृष्टिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
29. ॐ ह्रीं चरणकमलतलरचितस्वर्णकमलदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
30. ॐ ह्रीं फलभारनम्रशालिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः ।
31. ॐ ह्रीं शरत्कालवन्निर्मलगगनदिग्भागत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
32. ॐ ह्रीं एतैतेति चतुर्णिकायामरपरापराह्वानदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
33. ॐ ह्रीं धर्मचक्रचतुष्टयदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
34. ॐ ह्रीं अष्टमंगलद्रव्यदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
35. ॐ ह्रीं अशोकवृक्षमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः ।
36. ॐ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
37. ॐ ह्रीं दिव्यध्वनिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
38. ॐ ह्रीं चतुःषष्टिचामरमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
39. ॐ ह्रीं सिंहासनमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
40. ॐ ह्रीं भामंडलमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
41. ॐ ह्रीं सुरदुंदुभिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
42. ॐ ह्रीं छत्रत्रयमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
43. ॐ ह्रीं अनंतज्ञानसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
44. ॐ ह्रीं अनंतदर्शनसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
45. ॐ ह्रीं अनंतसौख्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
46. ॐ ह्रीं अनन्तवीर्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।

सिद्धपरमेष्ठी व्रत विधि

सिद्धपरमेष्ठी के 8 गुणों के आठ व्रत करना चाहिये। व्रत के दिन सिद्धपूजा करके क्रम से 1-1 जाप्य करके व्रत पूर्ण करें। उद्यापन विधि पूर्ववत् करना चाहिए।

समुच्चय मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टगुणान्वितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मरहितसम्यक्त्वगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
2. **ॐ ह्रीं ज्ञानावरणकर्मरहितानंतज्ञानगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
3. **ॐ ह्रीं दर्शनावरणकर्मरहितानंतदर्शनगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
4. **ॐ ह्रीं अंतरायकर्मरहितानंतवीर्यगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
5. **ॐ ह्रीं नामकर्मरहितसूक्ष्मत्वगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
6. **ॐ ह्रीं आयुकर्मरहितावगाहनगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
7. **ॐ ह्रीं गोत्रकर्मरहितागुरुलघुगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
8. **ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मरहिताव्याबाधसुखसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।**



आचार्य परमेष्ठी व्रत विधि

आचार्यों के 36 मूलगुण होते हैं–आचार 5, धर्म 10, तप 12, आवश्यक क्रिया 6 और गुप्ति 3 ये 5+10+12+6+3=36 गुण हैं। इनकी आराधना करते हुए व्रत किया जाता है। व्रत के दिन पंचपरमेष्ठी की प्रतिमा का अभिषेक, पूजा आदि करके क्रम से 1-1 मंत्र की जाप्य करें। यथाशक्ति उद्यापन करें। यह व्रत एक दिन अवश्य ही आचार्य के गुणों को प्राप्त करायेगा।

समुच्चय मंत्र- ॐ ह्रीं षट्त्रिंशद्गुणसमत्विताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं ज्ञानाचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
2. **ॐ ह्रीं दर्शनाचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
3. **ॐ ह्रीं चारित्राचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
4. **ॐ ह्रीं तपाचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
5. **ॐ ह्रीं वीर्याचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
6. **ॐ ह्रीं उत्तमक्षमागुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
7. **ॐ ह्रीं उत्तममार्दवगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
8. **ॐ ह्रीं उत्तमार्जवगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
9. **ॐ ह्रीं उत्तमसत्यगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।**

10. ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं उत्तमार्किंचन्यधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं अनशनतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं अवमौदर्यतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं वृत्तपरिसंख्यानतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं रसपरित्यागतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं विविक्तशयनासनतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं कायक्लेशतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं प्रायश्चित्ततपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
23. ॐ ह्रीं विनयतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
24. ॐ ह्रीं वैयावृत्तितपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
25. ॐ ह्रीं स्वाध्यायतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
26. ॐ ह्रीं व्युत्सर्गतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
27. ॐ ह्रीं ध्यानतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
28. ॐ ह्रीं समतावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
29. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिस्तवावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
30. ॐ ह्रीं वंदनावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
31. ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
32. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
33. ॐ ह्रीं कायोत्सर्गावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
34. ॐ ह्रीं मनोगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
35. ॐ ह्रीं वचोगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।
36. ॐ ह्रीं कायगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः।



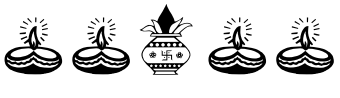
उपाध्याय परमेष्ठी व्रत विधि

उपाध्याय परमेष्ठी के 11 अंग, 14 पूर्व के पठन-पाठन की अपेक्षा 25 गुण हैं। इनके व्रतों के दिन पंचपरमेष्ठी प्रतिमा की अभिषेक पूजा आदि करके 'समुच्चय' जाप करें, पुनः क्रम से एक-एक जाप्य करें।

समुच्चय मंत्र- ॐ ह्रीं पंचविंशतिगुणसमन्वितोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. ॐ ह्रीं आचारांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं सूत्रकृतांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं स्थानांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं समवायांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं व्याख्याप्रज्ञप्तिअंगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं ज्ञातृधर्मकथांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं उपासकाध्ययनांगधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं अतंकृद्दशांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं अनुत्तरोपपादिकदशांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
10. ॐ ह्रीं प्रश्नव्याकरणांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं विपाकसूत्रांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं उत्पादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं अग्रायणीयपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं वीर्यानुप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं अस्तिनास्तिप्रवादज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं ज्ञानप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं सत्यप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं आत्मप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं कर्मप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं विद्यानुवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं कल्याणवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
23. ॐ ह्रीं प्राणावायपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
24. ॐ ह्रीं क्रियाविशालपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।
25. ॐ ह्रीं लोकविंदुसारपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः।



साधु परमेष्ठी व्रत विधि

मुनियों के 28 मूलगुण माने हैं। उनकी अपेक्षा करके व्रत करना है। व्रत के दिन पंचपरमेष्ठी प्रतिमा का अभिषेक पूजन करके समुच्चय जाप्य करें एवं क्रम से एक-एक मंत्र करके 28 व्रत करें। पंच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इंद्रिय निरोध, छह आवश्यक क्रिया, 1 अस्नान, 1 आचेलक्य, 1 अदंतधावन, 1 केशलोंच, 1 भूमिशयन, 1 स्थिति भोजन और 1 एक भक्त ये अट्ठाईस मूलगुण हैं।

समुच्चय मंत्र–ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिगुणसमन्वित साधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
2. **ॐ ह्रीं सत्यमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
3. **ॐ ह्रीं अचौर्यमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
4. **ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
5. **ॐ ह्रीं अपरिग्रहमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
6. **ॐ ह्रीं ईर्यासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
7. **ॐ ह्रीं भाषासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
8. **ॐ ह्रीं एषणासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
9. **ॐ ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
10. **ॐ ह्रीं उत्सर्गसमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
11. **ॐ ह्रीं स्पर्शनेंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
12. **ॐ ह्रीं रसनेंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
13. **ॐ ह्रीं घ्राणेंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
14. **ॐ ह्रीं चक्षुइंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
15. **ॐ ह्रीं श्रोत्रेंद्रियनिरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
16. **ॐ ह्रीं समतावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
17. **ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिस्तवावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
18. **ॐ ह्रीं वंदनावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
19. **ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
20. **ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
21. **ॐ ह्रीं कायोत्सर्गावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
22. **ॐ ह्रीं केशलोंचगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
23. **ॐ ह्रीं आचेलक्यगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
24. **ॐ ह्रीं अस्नानगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
25. **ॐ ह्रीं क्षितिशयनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
26. **ॐ ह्रीं अदंतधावनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
27. **ॐ ह्रीं स्थितिभोजनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**
28. **ॐ ह्रीं एकभक्तगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः।**

सम्यक्त्व पचीसी व्रत

व्रत की विधि–सम्यग्दर्शन की प्राप्ति और विशुद्धि के लिए यह व्रत किया जाता है। आठ अंगपूर्वक सम्यक्त्व को धारण करके शंकादि 8 दोष, 8 मद, 6 अनायतन और 3 मूढ़ता से दूर रहना ही इसका फल है। यह व्रत नियम से एक दिन क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करायेगा और मोक्ष की प्राप्ति में मूल कारण बनेगा। इस में 25 व्रत होते हैं। इनकी उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य एकाशन है।

समुच्चय मंत्र–ॐ ह्रीं पंचविंशति मलदोषविरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. ॐ ह्रीं शंकादोषरहित निःशंकितांगसमन्वित सम्यग्दर्शनाय नमः।
2. ॐ ह्रीं कांक्षादोषरहित निःकांक्षितांगसमन्वित सम्यग्दर्शनाय नमः।
3. ॐ ह्रीं जुगुप्सादोषरहित निर्विचिकित्सांगसमन्वित सम्यग्दर्शनाय नमः।
4. ॐ ह्रीं मूढ़दृष्टिदोषरहित अमूढदृष्टि-अंगसमन्वित सम्यग्दर्शनाय नमः।
5. ॐ ह्रीं अनुपगूहनदोषरहित उपगूहनांगसमन्वित सम्यग्दर्शनाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अस्थितिकरणदोषरहित स्थितीकरणांगसमन्वित सम्यग्दर्शनाय नमः।
7. ॐ ह्रीं अवात्सल्यदोषरहित वात्सल्यांगसमन्वित सम्यग्दर्शनाय नमः।
8. ॐ ह्रीं अप्रभावनादोषरहित प्रभावनांगसमन्वित सम्यग्दर्शनाय नमः।
9. ॐ ह्रीं ज्ञानमदरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
10. ॐ ह्रीं पूजामदरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
11. ॐ ह्रीं कुलमदरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
12. ॐ ह्रीं जातिमदरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
13. ॐ ह्रीं बलमदरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
14. ॐ ह्रीं ऐश्वर्यमदरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
15. ॐ ह्रीं तपोमदरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
16. ॐ ह्रीं रूपमदरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
17. ॐ ह्रीं मिथ्यादर्शनानायतनविरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।[1]
18. ॐ ह्रीं मिथ्याज्ञानानायतनरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
19. ॐ ह्रीं मिथ्याचारित्रानायतनरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
20. ॐ ह्रीं मिथ्यादर्शनसहितजन-अनायतनरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
21. ॐ ह्रीं मिथ्याज्ञानसहितजन-अनायतनरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
22. ॐ ह्रीं मिथ्याचारित्रसहितजन-अनायतनरहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
23. ॐ ह्रीं देवमूढ़तारहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
24. ॐ ह्रीं गूरुमूढ़तारहित सम्यग्दर्शनाय नमः।
25. ॐ ह्रीं पाखंडिमूढ़तारहित सम्यग्दर्शनाय नमः।

1. ये छह अनायतन श्री उमास्वामी श्रावकाचार के आधार से हैं।

तीर्थंकर पंचकल्याणक तिथि व्रत विधि

विधि—यह पंचकल्याणक व्रत एक वर्ष में करने से 91 तिथियों में पूर्ण होगा एवं पाँच वर्ष में करने से प्रत्येक वर्ष में क्रम से गर्भकल्याणक की चौबीस तिथियाँ, जन्मकल्याणक की चौबीस तिथियाँ, दीक्षाकल्याणक की चौबीस तिथियाँ, केवलज्ञानकल्याणक की चौबीस तिथियाँ और निर्वाणकल्याणक की चौबीस तिथियाँ की जायेंगी।

इसमें भी पौषकृष्णा एकादशी को चन्द्रप्रभ एवं पार्श्वनाथ के जन्मकल्याणक एक ही तिथि में होने से 23 तिथियाँ ही रहेंगी तथा दीक्षाकल्याणक में श्री चन्द्रप्रभ एवं पार्श्वनाथ की पौष कृष्णा एकादशी की एक ही तिथि होने से 23 तिथियाँ रहेंगी तथा ऐसे ही चैत्र कृष्णा अमावस्या को अनन्तनाथ एवं अरनाथ का निर्वाणकल्याणक होने से 23 ही तिथियाँ रहेंगी।

इस प्रकार तीन तिथियाँ कम हो जाने से 117 दिन में यह व्रत पूर्ण होगा।

नोट-प्रत्येक व्रत के दिनों में उन-उन तीर्थंकरों की पूजा एवं उन तीर्थंकरों के कल्याणकों के मंत्र जपने चाहिए। पंचकल्याणक तिथि दर्पण में मगसिर शुक्ला 11-11 दो बार, फाल्गुन कृ. 7-7 दो बार, फाल्गुन कृ. 11-11 दो बार, चैत्र कृष्णा अमावस्या-अमावस्या दो बार आ गये हैं।

समुच्चय मंत्र– **1. ॐ ह्रीं पंचकल्याणकप्राप्त श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**

अथवा **2. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणकेभ्यो नमः।**

पंचकल्याणक तिथियों के पृथक्-पृथक् मंत्र–

आषाढ़ कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री ऋषभदेवाय नमः।।1।।
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाषष्ठ्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः।।2।।
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाष्टम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।3।।
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णादशम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।4।।
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णादशम्यां तपःकल्याणक प्राप्ताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।5।।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लाषष्ठ्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।।6।।
ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लासप्तम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।7।।

श्रावण कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णाद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।8।।
ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णादशम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्राय नमः।।9।।

श्रावण शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।10।।
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।11।।
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।12।।
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।13।।
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लापूर्णिमायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमः।।14।।

भाद्रपद कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णासप्तम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।15।।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लाषष्ठ्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।16।।
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लाष्टम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।17।।
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लाचतुर्दश्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः।।18।।

आश्विन कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं आश्विनकृष्णाद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।19।।

आश्विन शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाप्रतिपदायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।20।।
ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाष्टम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।21।।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाप्रतिपदि गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।22।।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाचतुर्थ्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमः।।23।।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णात्रयोदश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय नमः।।24।।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णात्रयोदश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय नमः।।25।।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।।26।।

कार्तिक शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लाद्वितीयायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री पुष्पदन्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।।27।।
ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लाषष्ठ्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।28।।
ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लाद्वादश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।।29।।
ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लापूर्णिमायां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमः।।30।।

मगसिर कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णादशम्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।।31।।

मगसिर शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लाप्रतिपदायां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।32।।
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लाप्रतिपदायां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।33।।
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लादशम्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।।34।।
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला-एकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।35।।
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला-एकादश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।36।।
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला-एकादश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।37।।
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लाचतुर्दश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।।38।।
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लापूर्णिमायां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री संभवनाथजिनेन्द्राय नमः।।39।।

पौष कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं पौषकृष्णद्वितीयायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।40।।
ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्राय नमः।।41।।
ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्राय नमः।।42।।
ॐ ह्रीं पौषकृष्णा-एकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।43।।
ॐ ह्रीं पौषकृष्णा-एकादश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।44।।
ॐ ह्रीं पौषकृष्णाचतुर्दश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।45।।

पौष शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं पौषशुक्लादशम्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।46।।
ॐ ह्रीं पौषशुक्ला-एकादश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नमः।।47।।
ॐ ह्रीं पौषशुक्लाचतुर्दश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।।48।।
ॐ ह्रीं पौषशुक्लापूर्णिमायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।।49।।

माघ कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं माघकृष्णाषष्ठ्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय नमः।।50।।
ॐ ह्रीं माघकृष्णाद्वादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।51।।
ॐ ह्रीं माघकृष्णाद्वादश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।52।।
ॐ ह्रीं माघकृष्णाचतुर्दश्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री ऋषभदेवाय नमः।।53।।
ॐ ह्रीं माघकृष्णामावस्यायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमः।।54।।

माघ शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं माघशुक्लाद्वितीयायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः।।55।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लाचतुर्थ्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।56।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लाचतुर्थ्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।57।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लाषष्ठ्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।58।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लानवम्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नमः।।59।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लादशम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नमः।।60।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लाद्वादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री अभिनंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।।61।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लाद्वादश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।।62।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लात्रयोदश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।।63।।
ॐ ह्रीं माघशुक्लात्रयोदश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।।64।।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णातृतीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।।65।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्थ्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय नमः।।66।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाषष्ठ्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।67।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णासप्तम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।68।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णासप्तम्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः।।69।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णानवम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।70।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाएकादश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय नमः।।71।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाएकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमः।।72।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाएकादश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमः।।73।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाद्वादश्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।74।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचर्तुदश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः।।75।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः।।76।।

फाल्गुन शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लापंचम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।77।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लासप्तम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः।।78।।
ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लाष्टम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमः।।79।।

चैत्र कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णापंचम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः।।80।।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाष्टम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।81।।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णानवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय नमः।।82।।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णानवम्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय नमः।।83।।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्दश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।84।।

अथवा

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थ्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।84।।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।।85।।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।86।।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।।87।।

चैत्र शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लाप्रतिपदायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।88।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लातृतीयायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्राय नमः।।89।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लापंचम्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नमः।।90।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लाषष्ठ्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमः।।91।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लाएकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय नमः।।92।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ला-एकादश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।93।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ला-एकादश्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।94।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।।95।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लापूर्णिमायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय नमः।।96।।

वैशाख कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णाद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।97।।
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णानवम्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।98।।
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णादशम्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।99।।
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णाद्वादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।100।।
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णाचतुर्दश्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।101।।

वैशाख शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लाप्रतिपदायां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्राय नमः।।102।।
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लाप्रतिपदायां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्राय नमः।।103।।
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लाप्रतिपदायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्राय नमः।।104।।
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लाषष्ठ्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।।105।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लाषष्ठ्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।।106।।
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लानवम्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।107।।
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लादशम्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।।108।।
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लात्रयोदश्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।।109।।

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाषष्ठ्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमः।।110।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णादशम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।।111।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाद्वादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।।112।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाद्वादश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।।113।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।114।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।115।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।116।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णा-अमावस्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नमः।।117।।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लाचतुर्थ्यां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।।118।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लाद्वादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।119।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लाद्वादश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।।120।।



नवरात्रि व्रत

व्रतविधि–नवरात्रि व्रत आश्विन शु. एकम से आश्विन शुक्ला नवमी तक किया जाता है। प्रातः स्नानादि कर शुद्ध वस्त्र पहनकर शुद्ध द्रव्य लेकर जिनालय में जाएँ, वहाँ जिनालय की तीन प्रदक्षिणा देकर ईर्यापथ शुद्धिपूर्वक आदिनाथ भगवान की प्रतिमा का पंचामृताभिषेक करें, अष्टद्रव्य से पूजन करें पुनः श्रुत और गणधर की पूजा कर चक्रेश्वरी व गोमुखयक्ष की अर्चना करें।

''ॐह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं आदिनाथ तीर्थंकराय गोमुखयक्ष-चक्रेश्वरी यक्षी सहिताय नमः स्वाहा।।'' इस मंत्र की 108 पुष्पों से जाप्य करें। श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्र पढ़कर णमोकार मंत्र की भी जाप्य करना चाहिए, साथ ही आदिनाथ चरित्र और कथा भी पढ़ना चाहिए। यथाशक्ति उपवास आदि करें। व्रत की उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार व जघन्य एकाशना है। इस प्रकार नौ दिन पूजा करके दसवें दिन विसर्जन करें तथा दस दिन ब्रह्मचर्य का पालन करें। रात्रि जागरण करते हुए समय को व्यतीत करें। पुनः सत्पात्र को आहार दानादि देकर पारणा करें। 9 वर्ष तक इस व्रत को करने के पश्चात् यथाशक्ति उद्यापन करें। उद्यापन में आदिनाथ भगवान की यक्ष-यक्षी सहित प्रतिमा बनवाकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करें, चतुर्विध संघ को चार प्रकार का दान देवें, नूतन जिनमंदिर बनवावें, पुराण-ग्रंथों का जीर्णोद्धार करावें और गरीबों को भोजनादि अभयदान देवें। इस प्रकार यह व्रत की विधि है।

कथा–भरतक्षेत्र के अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी दोनों काल सर्वदा प्रचलित हैं। अवसर्पिणी काल में सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा और दुषमा-दुषमा ऐसे छः भेद हैं और उत्सर्पिणी के इनसे उल्टे भेद हैं। अनेकों

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी के बीत जाने पर एक कल्पकाल आता है। भरतक्षेत्र में अवसर्पिणी काल में प्रथम तीन काल में भोगभूमि होती है जिसमें प्राणी के शरीर की कांति, शक्ति आदि कालानुसार क्रम से ह्रास को प्राप्त होते हैं, तीसरे काल में 14 मनु होते हैं, जो प्राणियों को जीवनोपयोगी मार्ग दिखाते हैं इन्हें कुलकर भी कहते हैं, चौथे काल के प्रारंभ में चौदहवें कुलकर होते हैं तब कर्मभूमि प्रारंभ होती है। तब इंद्र की आज्ञा से कुबेर ग्राम, नगर, पुर, पट्टण आदि की रचना करता है और अयोध्या नामक सुन्दर नगर की रचना करता है। उसमें चौदहवें कुलकर महाराजा नाभिराय अपनी महारानी मरुदेवी के साथ सुखपूर्वक काल व्यतीत करते थे।

एक दिवस रात्रि के पिछले प्रहर में मरुदेवी ने सोलह शुभ स्वप्न देखे और शुभ तिथि में उनके गर्भ में आदिनाथ तीर्थंकर के जीव ने स्वर्ग से अवतार लिया। प्रातः पति से उन स्वप्नों का फल जानकर महारानी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। 9 माह पूर्ण होने पर आदिनाथ तीर्थंकर ने जन्म लिया, उस समय चारों निकाय के देवों ने आकर भगवान का जन्मोत्सव मनाया, 20 लाख वर्ष का भगवान का कुमार काल था पुनः यौवनावस्था में आने पर जब कल्पवृक्ष लुप्त होने लगे तब राजा नाभिराय के कहने पर प्रजा ऋषभकुमार के पास पहुँची तब उन्होंने विदेह क्षेत्र में जैसी व्यवस्था थी, अवधिज्ञान से जानकर प्रजा को षट्क्रिया आदि का उपदेश दिया, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तीन वर्णों की स्थापना की। महाराजा नाभिराय ने उनका विवाह यशस्वती और सुनन्दा नामक दो कन्याओं से कराकर सारा राज्यभार उन्हें सौंप दिया और शुभ मुहूर्त में उनका राज्याभिषेक कर दिया। उनकी यशस्वती रानी से 100 पुत्र और एक पुत्री तथा सुनन्दा रानी से बाहुबली पुत्र व सुंदरी पुत्री ने जन्म लिया।

एक दिवस राज्यसभा में नीलांजना के नृत्य को देखकर भगवान को संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो गया तब तत्काल ही लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य की अनुमोदना और प्रशंसा की। भगवान ने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्यपट्ट पर अभिषिक्त कर बाहुबली पुत्र को युवराज पद पर सुशोभित किया और चार हजार राजाओं के साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली, उस समय देवों ने दीक्षाकल्याणक उत्सव मनाया, भगवान ने घोर तपश्चर्या करके चार घातिया कर्मों का नाश कर लिया तब देवों ने आकर केवलज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया। उसी समय अयोध्या में भरत को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। यह तीनों ही समाचार जब एक साथ भरत के पास पहुँचे तब उन्होंने सर्वप्रथम आदिनाथ भगवान के केवलज्ञान कल्याणक की पूजा की, उनकी स्तुति, पूजा, वंदना करके धर्मोपदेश सुना और वहाँ से आकर पुत्र जन्मोत्सव मनाकर पुनः आयुधशाला में जाकर चक्ररत्न की पूजा की। दिग्विजय के लिए प्रस्थान करने के पूर्व उन्होंने 9 दिन तक व्रत करके विधिवत् अनुष्ठान किया और दशवें दिन प्रस्थान किया तभी से वह दिवस "विजयादशमी" के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

नव दिन व्रत करने से तथा चौबीस घंटे धर्मध्यान करने से और रात्रि में जागरण पूर्वक भगवान की भक्ति करने से ही इसे "नवरात्रि" व्रत कहते हैं।

सम्राट भरत ने इस व्रत के उद्यापन में नूतन जिनमंदिर बनवाए, नूतन जिनप्रतिमा निर्माण करवाकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई। 9 हजार मुनियों और आर्यिकाओं को आहारदान दिया। इस प्रकार विधिवत् व्रत का पालन किया तथा बहुत समय तक राजाधिराज चक्रवर्ती के पद पर सुशोभित रहकर सुखपूर्वक राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया।

भगवान आदिनाथ का समवसरण अनेक देशों में विहार कर भव्यात्माओं को धर्मोपदेश दिया और कैलाशपर्वत पर जाकर उनका निर्वाणकल्याणक मनाया, आगे इन्होंने भी दीक्षा लेकर अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ऐसी इस व्रत की अचिन्त्य महिमा है। इस व्रत को करने से सांसारिक सुख, यश-कीर्ति के साथ-साथ पारलौकिक सुख भी प्राप्त होता है।

नवदेवता व्रत (रूपार्थवल्लरी व्रत)

व्रतविधि–नवदेवता व्रत का दूसरा नाम रूपार्थवल्लरी व्रत है। यह आश्विन शुक्ला एकम से आश्विन शुक्ला नवमी तक किया जाता है, पुनः दशमी को पूजा करके आहार दानादि देकर व्रत का समापन करें, इस प्रकार 9 वर्ष तक यह व्रत किया जाता है।

''श्री जैनेन्द्र व्रत कथा संग्रह (मराठी)'' के अनुसार यह व्रत है। इसमें स्नान आदि कर शुद्ध वस्त्र पहनकर मंदिर जावें, वहाँ मंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान को पंचांग नमस्कार करें। पुनः नवदेवता की प्रतिमा की पंचामृत अभिषेक, पूजा करके, श्रुत, गणधर की पूजा एवं क्षेत्रपाल-पद्मावती की अर्चना करें। भगवान को 9 प्रकार के नैवेद्य चढ़ावें, 108 पुष्पों से मंत्र जाप्य करें, ब्रह्मचर्यपूर्वक दिवस बितावें, दूसरे दिन पूजा-दानादि करके पारणा करें।

इस प्रकार 9 दिन पूजा करके दशवें दिन जिनपूजा करके पूजा का विसर्जन करें। 9 वर्ष करके यथाशक्ति उद्यापन करें, चतुर्विध संघ को चार प्रकार का दान देवें। उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार व जघन्य विधि एकाशन (एक बार शुद्ध भोजन) है। इस व्रत को करने से पुत्रसुखप्राप्ति, धन की वृद्धि, यश-कीर्ति की प्राप्ति होकर पर भव में मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

व्रत की जाप्य–

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्म जिनागम जिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो नमः।**

प्रत्येक व्रत के अलग-अलग मंत्र–

1. ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं आचार्य परमेष्ठिभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं उपाध्याय परमेष्ठिभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वसाधु परमेष्ठिभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं जिनधर्मेभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं जिनागमेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं अर्हं जिनचैत्येभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं अर्हं जिनचैत्यालयेभ्यो नमः।



कर्मनिर्जरा व्रत विधि एवं कथा

व्रतविधि–आश्विन सुदी 5 के दिन इन व्रतिकों को प्रासुक जल से अभ्यंगस्नान करके नया धौतवस्त्र पहनना चाहिए। सब पूजा-सामग्री हाथ में लेकर चैत्यालय में जाकर मंदिर की तीन प्रदक्षिणा करके ईर्यापथशुद्धि वगैर क्रिया करके श्री जिनेन्द्र को भक्ति से साष्टांग नमस्कार करना चाहिए। पुनः भूमि शुद्धि करके उस पर पंचवर्ण का अष्टदल यंत्र बनाकर चारों तरफ चतुरस्र पंचमंडल बनाकर उसके पास अष्ट मंगल कुंभ आदि आठ प्रातिहार्य रखें। बीच में सुशोभित कुंभ रखें और एक थाली में पाँच नागरबेली के पान, फल, आदि रखकर वह थाली कुंभ पर रखें। श्रीवेदी पर पंचपरमेष्ठी की प्रतिमा यक्ष-यक्षी सहित स्थापित करके उनका पंचामृत से मंत्रपूर्वक अभिषेक करें। मूर्ति के सामने एक पाटे पर पाँच स्वस्तिक बनाकर उसमें पाँच पान,गंधाक्षत, फल, पुष्प आदि द्रव्य रखकर फिर **पंचपरमेष्ठी की प्रतिमा इस मध्य कुंभ की थाली में स्थापित करें और अष्टद्रव्य से उनकी पूजन करें।** पुनः यक्ष, यक्षी की अर्चना करें। पंच पकवानों के पाँच नैवेद्य बनाकर चढ़ावें और **''ॐ ह्रीं अर्हं अनंतचतुष्टकात्मकेभ्यो नवकेवललब्धिसमन्वितेभ्यो अर्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः स्वाहा।।1।।ॐ ह्रीं अर्हं अष्टकर्मविनिर्मुक्तेभ्यो अष्टगुणसंयुक्तेभ्यः सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः स्वाहा।।2।।ॐ ह्रीं अर्हं पंचेंद्रियविषयरहितेभ्यः पंचाचारनिरतेभ्यः सूरिपरमेष्ठिभ्यो नमः स्वाहा।।3।। ॐ ह्रीं अर्हं व्रतसमितिगुप्तिसहितेभ्यः कषायदुरितरहितेभ्यः पाठकपरमेष्ठिभ्यो नमः स्वाहा।।4।। ॐ ह्रीं अर्हं मूलोत्तरगुणाढ्येभ्यः सर्वसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः स्वाहा।।5।।** इस पंच मंत्र में से प्रत्येक मंत्र से अलग अलग अर्घ्य चढ़ाकर 108-108 बार सुगंधितपुष्प से इन मंत्रों से जप करना चाहिए। इस क्रम से पंचपरमेष्ठी की पूजन करें। बाद में एक पात्र में पाँच पान और उस पर अष्टद्रव्य और एक नारियल रखकर **''ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः असिआउसा पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः स्वाहा।।'' इस मंत्र से पूर्णार्घ्य करें।** श्री जिनसहस्रनाम स्त्रोत पढ़कर व्रत की कथा पढ़ें। साथ ही णमोकार मंत्र का 108 बार जाप भी करें। उस दिन उपवास करें। यदि शक्ति नहीं है तो अल्पाहार या एकाशन करें। यह दिन धर्मध्यान में लगावें। ब्रह्मचर्य का पालन करें। मुनि, आर्यिका आदि चतुर्विध संघ को आहारादि दान देकर पारणा करें। इस प्रकार यह व्रत पाँच वर्ष करके फिर उसका उद्यापन करें। उसी समय श्री पंचपरमेष्ठी की नयी प्रतिमा बनाकर पंचकल्याणक विधिपूर्वक इसकी प्रतिष्ठा करें। नये नौ पात्र में और नौ कटोरी में दूध की खीर, अंबील करंज्या (गुझिया), लड्डू आदि पकवान रखकर मूर्ति के सामने रखते समय यह मंत्र बोलें-**''ॐ ह्रीं अर्हं नमोऽर्हते पंचकल्याणकसंपूर्णाय नवकेवललब्धिसमन्विताय स्वाहा''।।** इस मंत्र से वायने मूर्ति के पास रखें और **''ॐ नमोऽर्हते भगवते सर्वकर्मनिर्जरां कुरू कुरू स्वाहा''।।** इस मंत्र से चढ़ावें। चतुःसंघ को आहारादि दान देवें। ऐसी इस व्रत की पूर्ण विधि है।

कथा–उज्जयिनी नगर के समीप एक छोटा सा देहात था। वहाँ पहले बलभद्र नाम के सेठ रहते थे। उनके सात लड़के थे। सातों के सात भार्या थीं। वह उनके साथ आनंद से रहते थे। किसी दिन एक महातपस्वी उस गाँव के परकोटे के सन्निध कायोत्सर्ग से ध्यान में बैठे थे। उस सेठ की यशोमति नाम की एक छोटी बहू थी। उस बहू ने उषाकाल में जानवरों का गोबर इकट्ठा करके परकोटे के बाहर फेंक दिया। वह गोबर उन मुनीश्वर के ऊपर पड़ा। सुबह हो गयी। लोग इधर-उधर जा रहे थे। बलभद्र सेठ बहिर्दिशा (शौच) को गये थे। जब उन्होंने देखा कि मुनीश्वर के ऊपर गोबर है तब उन्होंने घर से उष्ण जल मंगवाया और उनका सब बदन अच्छी तरह से साफ किया। मुनि ने ध्यान का विसर्जन किया फिर सेठ ने उनको भक्तिपूर्वक वंदन किया और विनय से बोला ''हे मुनिराज! मेरी छोटी बहू ने अज्ञान से बिना जाने आपके बदन पर गोबर फेंक दिया इसलिये हमें क्षमा करो।'' तब मुनि बोले–'हे भद्रपुरूष! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, मेरा ही पूर्व भव का कर्मोदय है। यह कहकर मुनि ने उनको 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' ऐसा आशीर्वाद दिया और वहाँ से वन में विहार कर गये।

इधर वह यशोमति स्त्री, उन मुनीश्वर के ऊपर गोबर अज्ञान से डालने के पाप के कारण दुर्धर रोग से ग्रस्त होकर मर गयी। फिर वह उज्जयिनी में वैश्यसुत के घर में जन्मी। जन्मते ही माँ-बाप मर गये। तो एक गृहस्थ ने उसका पालन पोषण किया। पाँच बरस की होते ही वो भी मर गया। पुनः श्रीमती नामक एक आर्यिका उस लड़की का पालन-पोषण करने लगी। लोग उस लड़की को 'कर्मी' नाम से पुकारते थे। एक दिन उस गाँव के जिनमंदिर में श्रुतसागर नाम के चारणऋद्धिधारी मुनीश्वर आये थे। उनके दर्शन के लिए नगर के श्रावक-श्राविकाजन गये थे। उस समय वह कर्मी भी गयी थी। सब लोगों ने उन मुनि की तीन प्रदक्षिणा देकर भक्ती से दर्शनादि करके उनके समीप जाकर बैठ गए, उस समय मुनिराज ने मधुर वचनों से धर्मोपदेश दिया। उपदेश सुनकर वह कर्मी कुमारी बहुत दुःखाकुल होकर अपने नेत्रों से अश्रु गिराने लगी और उन मुनीश्वर के चरणों में पड़ गई, तब मुनीश्वर ने अपने अवधिज्ञान से उस लड़की का पूर्वभव जान लिया और अत्यंत करूणायुक्त अंतःकरण से बोले–हे कन्यके! तूने पहले भव में एक तपस्वी के ऊपर अज्ञान से गोबर फेंक दिया था। उस पातक के कारण अब तुझे दुःखदाई ये दरिद्रावस्था प्राप्त हुई है और उस दुर्दैव के कारण तुम्हारे माता-पिता और वो पालनकर्ता भी मर गये हैं। अब तू उस कर्म की निर्जरा करने के लिए कर्मनिर्जराव्रत यथोचित पालन करके उसका उद्यापन कर, तब तुझे इस योग से आगे ऐहिक और पारमार्थिक सुख मिलेगा। ऐसा कहकर उन्होंने उस व्रत की विधि बतायी। तब उस कर्मी कुमारी ने वह व्रत उनके पास ग्रहण किया।

तदनंतर उस कर्मी कुमारी ने वहाँ के श्रावक-श्राविकाओं की सहायता से काल के अनुसार यह व्रत करना आरंभ किया। कुछ दिन के बाद उस उज्जयिनी नगर का एक श्रियंकर राजपुत्र सर्पदंश से अकस्मात मर गया। उस समय उसका विवाह नहीं हुआ था। इसलिए माता को बहुत दुःख हो गया। वह अपने पति को बोली–''हे प्राणनाथ! अपने लड़के का विवाह-संस्कार किए बिना दहन क्रिया मत करो''। रानी के यह वचन सुनकर राजा ने प्रधान को कहा, हे प्रधानगणों! हमारे लड़के का विवाह संस्कार करने के बाद दहन क्रिया करनी है। अतः कन्या मिलाने के लिए आप कही से भी शीघ्र उपाय करिये। तब मरे हुये पुत्र को कन्या कौन देगा, इस विचार से सब चिंताग्रस्त हो गये। फिर मंत्रीजनों ने एक युक्ति की। बहुत सुवर्णादि धन एक गाड़ी में भरकर नगर में एक ढिंढ़ोरा पिटवाया कि हमारे मृत राजपुत्र को जो कन्या देगा उसे ये सब धन दिया जायेगा। जिसकी इच्छा है वह संतोष से अपनी कन्या देकर ये सब धन ले ले। ऐसा घोष उच्चस्वर से करते-करते उस धनपूर्ण गाड़ी के साथ वे राजसेवक जिनमंदिर के पास गये। तब वह कर्मी कुमारी उन श्रीमती नामक माताजी से कहती है–'हे आर्याम्बिके! अगर मैं मेरा शरीर उस मृतक राजपुत्र को देकर वो सब धन ले लूँ तो उस धन से जिनमंदिर पूजादिक करके पुण्यलाभ होगा क्या?

उस कन्या की चतुरता और धूर्तता का भाषण सुनकर वह आर्यिका बोली ''हे कुमारि! अगर तुम्हारे दिल में धैर्य और उत्साह हो तो वह द्रव्य लेने की कोई भी मनाही नहीं है। आर्यिका के वाक्य सुनते ही वह दौड़कर उन राजसेवकों की ओर गयी और बोली–हे राजसेवक! मैं इस मृतक राजपुत्र के साथ शादी करने के लिए तैयार हूँ, अतः यह सब द्रव्य मंदिर जी के निकट धरो। तब मैं तुम्हारे साथ तत्काल इस गाड़ी में आऊँगी।

''ठीक है चलो! ऐसा कहते ही उस राजसेवक ने सब धन गाड़ी से निकालकर उस मंदिर के निकट धर दिया और उस कन्या को गाड़ी में बिठाकर राजवाडे की तरफ बड़े ही ठाट से ले गये। तब राजा, रानी, मंत्री आदि सब लोगों को महदाश्चर्य हुआ। उन्होंने उस ही क्षण एक सुंदर मंडप बनवाया और समारंभ से उस राजपुत्र का उस कर्मी लड़की के साथ विवाह किया। तदनंतर उस मृतक राजपुत्र की शवयात्रा निकली, वह श्मशान के पास पहुँची भी नहीं कि मेघकुमार ने अकस्मात भयंकर मेघवर्षा शुरु कर दी। उस समय पास में एक बड़ा बरसाती नाला था। वह अचानक भर गया और जोर से बहने लगा। ऐसी भीषण परिस्थिति में सब लोगों ने विचार करके वह शव सुरक्षित

स्थान पर रखा और उसके रक्षणार्थ किंकरों को नियुक्त कर दिया और वे सभी लोग राजवाड़े की ओर चले गये। मात्र वो कर्मी अपने पति की सेवा करने के लिए वहाँ ही रही। वह दिन कर्मनिर्जरा व्रत का है ऐसा उसके ध्यान में आया। तब कर्मी ने उस जलप्रवाह के समीप जाकर और अंतरंग शुद्धि करके पंचपरमेष्ठी के मंत्र से सिर्फ पानी और बालू लेकर भाव पूजा बड़ी भक्ति से करना शुरू किया। उस लड़की की दृढ़ भक्ति देखकर पद्मावती माता का आसन कम्पायमान हुआ। पद्मावती माता ने अवधिज्ञान से उस भाविक कन्या की सब परिस्थिति जान ली और तत्काल वहाँ आयीं। उन्होंने अपना दिव्य रूप प्रगट किया और बोलीं–हे दीनबालिके! पूजाद्रव्य न होने पर भी तूने ये मिथ्या पूजा को क्यों आरंभ किया। बालू और पानी से पूजा करने से किसी भी फल की प्राप्ति नहीं होगी। भाषण सुनकर वह लड़की बोली-हे भगवति! आप कौन हो? कहाँ से और क्यों आई हो। ऐसा सुनते ही वह पद्मावती माता बोलीं–हे कन्या! तुम मुझे देखकर मत डरो। मैं पद्मावती देवी हूँ। तुम्हारी पंचपरमेष्ठी पर जो दृढ़ भक्ति है वह देखकर मैं आयी हूँ। अब मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो वर चाहिए, माँगो। तब वह कर्मी बोली–हे महादेवी! मैंने राजा की प्रकट आज्ञा को सुनकर द्रव्य के लोभ से उनके मृत पुत्र के साथ शादी की है। वह राजपुत्र आज सबेरे ही सर्पदंश से मरा है। उनका दाहकर्म करने के लिए यहाँ श्मशान में लाया गया है और आज मेरे व्रतविधान का भी दिन है। इसलिए मैं द्रव्यभाव से भाव पूजा कर रही हूँ। फिर वह पद्मावती माता उस कन्या के साथ उस मृतक राजपुत्र के पास गयीं और उसको निर्विष करके अपने स्थान पर चली गयीं। ध्यान रहे कि सर्पदंश से वह राजपुत्र मृतकवत् हो गया था इसलिए देवी ने उसे विष रहित करके जीवित कर दिया। यदि प्राण निकल गये होते तो कर्मसिद्धांत के अनुसार प्राण वापस नहीं आ सकते थे। उस वक्त वह राजपुत्र गाढ़ निद्रा से जागृत होने के समान दिखा और उठ बैठा। वह भयचकित होकर बोला–''यह क्या है? मुझे यहाँ कौन लाया? और क्यों लाया? ऐसी प्रतिध्वनि उसके मुख से निकलने लगी। यह सुनकर उस कर्मी युवराज्ञी ने अपना सब वृत्तान्त उसको बता दिया। यह सब चमत्कार देखकर वहाँ के सब रक्षक लोग राजा की ओर दौड़ते-दौड़ते गये और सब देखी हुई बातें राजा को बतायीं।

ये सब बातें सुनकर उन सब लोगों को महद्आश्चर्य हुआ। तत्क्षण वृषभसेन राजा, गुणसेना रानी, मंत्री इत्यादि बहुत लोग उस राजपुत्र के पास गये। तब अपने पुत्र को देखते ही उनको परमानंद हो गया। सब लोग भी हर्षित हो गये। राजा ने अपनी कर्मी बहू से सब वृत्तान्त पूछा, तब कर्मी ने सब बता दिया। उसे सुनकर उस 'कर्मनिर्जरा' व्रत के बारे में और जैन धर्म के बारे में सब लोगों के अंतःकरण में बहुत दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न हुई। सब लोग कहने लगे कि ''यह स्त्री महातपस्वी है'' इत्यादि शब्दों से उस कर्मी की स्तुति करने लगे। पुनः सभी उन श्रियंकर राजपुत्र को और उस कर्मी युवराज्ञी को हाथी पर बिठाकर सब लोगों के साथ बड़े उत्साह से राजमंदिर की ओर लेकर गये। पश्चात् वृषभसेन राजा परिवार के साथ सुख से कालयापन करने लगा। उस कर्मी कन्या ने जो धन-सम्पत्ति मंदिर के निकट रखवाई थी उससे मंदिर निर्माण आदि अनेक उत्तम कार्य सम्पन्न करा दिये।

कालान्तर में सब लोग क्रम-क्रम से जिनदीक्षा लेकर अंत में समाधिपूर्वक मरकर अच्युत स्वर्ग में देव हो गये। और वहाँ वे चिरकाल तक बहुत सुख भोगने लगे।

नवग्रहशांति व्रत

विधि–वर्ष में तीन बार आष्टान्हिक पर्व आता है। उन्हीं पर्वों में एक दिन पहले से यह व्रत किया जाता है जैसे कि आषाढ़ शुक्ला सप्तमी से आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा तक। कार्तिक शु. सप्तमी से पूर्णिमा तक एवं फाल्गुन शु.7 से पूर्णिमा तक ऐसे वर्ष में तीन बार यह व्रत करना चाहिए। अधिकतम यह व्रत नौ वर्ष तक (27 बार), मध्यम में 7 वर्ष तक (18 बार) एवं कम से कम तीन वर्ष 3×3=9 बार किया जाता है। इस व्रत में पूर्व में कहे गए मंत्रों की क्रम से जाप्य करना चाहिए एवं 'नवग्रह पूजा विधान' से एक-एक पूजाएँ करना चाहिए। व्रत पूर्ण होने पर यथाशक्ति उद्यापन करना चाहिए।

व्रत की जाप्य–**ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्ट निवारक श्री नवतीर्थंकरेभ्यो नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र—

1. **ॐ ह्रीं सूर्यग्रहारिष्टशांतिकराय श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं सोमग्रहारिष्टशांतिकराय श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं मंगलग्रहारिष्टशांतिकराय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं बुधग्रहारिष्टशांतिकराय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
5. **ॐ ह्रीं गुरुग्रहारिष्टशांतिकराय श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।**
6. **ॐ ह्रीं शुक्रग्रहारिष्टशांतिकराय श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
7. **ॐ ह्रीं शनिग्रहारिष्टशांतिकराय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
8. **ॐ ह्रीं राहुग्रहारिष्टशांतिकराय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
9. **ॐ ह्रीं केतुग्रहारिष्टशांतिकराय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।**

इस प्रकार जो इन नवग्रहों की शांति के लिए जाप्य, पूजा एवं व्रत आदि करते हैं वे निश्चित ही अपने सर्व ग्रहों को अनुकूल, सिद्धिकारक बनाकर संसार के सर्व सुखों को प्राप्त कर परम्परा से मोक्ष को भी प्राप्त करेंगे।



तत्त्वार्थसूत्र व्रत विधि

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ जिसका दूसरा नाम मोक्षशास्त्र भी है। इसमें दश अध्याय हैं। दिगम्बर जैन परंपरा में संस्कृत भाषा में यह पहला सूत्रग्रंथ है। एक-एक अध्याय को आश्रित करके इसके 10 व्रत किये जाते हैं। व्रत में भगवान का पंचामृत अभिषेक करके पूजन करें। सरस्वती प्रतिमा या श्रुतस्कंध यंत्र या सरस्वतीयंत्र का पंचामृत अभिषेक करके तत्त्वार्थ सूत्र की पूजा करें।

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं दशाध्यायसहिततत्त्वार्थसूत्रमहाशास्त्रेभ्यो नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रप्रथमाध्यायस्य सम्यग्दर्शनादित्रयस्त्रिंशत्सूत्रेभ्यो नमः।**
2. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रद्वितीयाध्यायस्य औपशमिकादित्रिपंचाशत्सूत्रेभ्यो नमः।**
3. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रतृतीयाध्यायस्य रत्नशर्करादि-एकोनचत्वारिंशत्सूत्रेभ्यो नमः।**
4. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रचतुर्थाध्यायस्य देवाश्चतुर्णिकाया आदि द्विचत्वारिंशत्सूत्रेभ्यो नमः।**
5. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रपंचमाध्यायस्य अजीवकायादि द्विचत्वारिंशत्सूत्रेभ्यो नमः।**

6. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रषष्ठाध्यायस्य कायवाङ्मनःकर्मयोगइत्यादि सप्तविंशतिसूत्रेभ्यो नमः।**
7. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रसप्तमाध्यायस्य हिंसानृतस्तेयादि एकोनचत्वारिंशत्सूत्रेभ्यो नमः।**
8. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्राष्टमाध्यायस्य मिथ्यादर्शनाविरत्यादि-षड्विंशतिसूत्रेभ्यो नमः।**
9. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रनवमाध्यायस्य आस्रवनिरोधःसंवर आदिसप्तचत्वारिंशत्सूत्रेभ्यो नमः।**
10. **ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रदशमाध्यायस्य मोहक्षयाज्ज्ञानादि नवसूत्रेभ्यो नमः।**

इस व्रत को पूर्ण कर उद्यापन में तत्त्वार्थसूत्र की पूजा व श्रुतस्कंध विधान करके तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ छपाकर ज्ञानदान में चतुर्विध संघ को प्रदान करें। दश-दश उपकरणादि मंदिर जी में भेंट देवें। यथाशक्ति व्रत पूर्णकर श्रुतज्ञान की वृद्धि करके केवलज्ञान को प्राप्त करने में अपनी आत्मा को सफल बनावें।

सर्वदोषप्रायश्चित्त व्रत विधि

यह व्रत 33 प्रकार की अत्यासादना को दूर करके आत्मशुद्धि के लिए किया जाता है। इसमें 33 व्रत होते हैं।

प्रथमतः समुच्चय मंत्र है–

पुनः पाँच महाव्रत के 5, पाँच समिति के 5, तीनगुप्ति के 3 ऐसे 13 व्रत हैं। पाँच अस्तिकाय के 5, छह षट्कायिक जीव के 6 और नव पदार्थ के 9 ऐसे कुल–

5+5+3+5+6+9=33 व्रत हुये हैं।

इनकी उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य एकाशन है। इस व्रत का फल चारित्र की प्राप्ति और परंपरा से मोक्ष की प्राप्ति है।

समुच्चय मंत्र-

ॐ ह्रीं अर्हं असिआउसा त्रयस्त्रिंशदत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।1।।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं अहिंसामहाव्रतस्यात्यासादना-त्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।1।।
ॐ ह्रीं अर्हं सत्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।2।।
ॐ ह्रीं अर्हं अचौर्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।3।।
ॐ ह्रीं अर्हं ब्रह्मचर्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।4।।
ॐ ह्रीं अर्हं अपरिग्रहमहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।5।।
ॐ ह्रीं अर्हं ईर्यासमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।6।।
ॐ ह्रीं अर्हं भाषासमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।7।।
ॐ ह्रीं अर्हं एषणासमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।8।।
ॐ ह्रीं अर्हं आदाननिक्षेपणसमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।9।।
ॐ ह्रीं अर्हं उत्सर्गसमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।10।।
ॐ ह्रीं अर्हं मनोगुप्ते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।11।।
ॐ ह्रीं अर्हं वचोगुप्ते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।12।।

ॐ ह्रीं अर्हं कायगुप्ते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।13।।
ॐ ह्रीं अर्हं जीवास्तिकायस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।14।।
ॐ ह्रीं अर्हं पुद्गलास्तिकायस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।15।।
ॐ ह्रीं अर्हं धर्मास्तिकायस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।16।।
ॐ ह्रीं अर्हं अधर्मास्तिकायस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।17।।
ॐ ह्रीं अर्हं आकाशास्तिकायस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।18।।
ॐ ह्रीं अर्हं पृथ्वीकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।19।।
ॐ ह्रीं अर्हं अप्कायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।20।।
ॐ ह्रीं अर्हं तेजःकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।21।।
ॐ ह्रीं अर्हं वायुकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।22।।
ॐ ह्रीं अर्हं वनस्पतिकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।23।।
ॐ ह्रीं अर्हं त्रसकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।24।।
ॐ ह्रीं अर्हं जीवपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।25।।
ॐ ह्रीं अर्हं अजीवपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।26।।
ॐ ह्रीं अर्हं आस्रवपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।27।।
ॐ ह्रीं अर्हं बंधपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।28।।
ॐ ह्रीं अर्हं संवरपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।29।।
ॐ ह्रीं अर्हं निर्जरापदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।30।।
ॐ ह्रीं अर्हं मोक्षपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।31।।
ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।32।।
ॐ ह्रीं अर्हं पापपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।33।।
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्दर्शनाय नमः।।1।।
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्ज्ञानाय नमः।।2।।
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यक्चारित्राय नमः।।3।।



तीस चौबीसी व्रत विधि

व्रत की विधि– मध्यलोक में ढाई द्वीप तक पाँच भरत एवं पाँच ऐरावत क्षेत्र हैं। जंबूद्वीप में एक भरत, एक ऐरावत ऐसे दो क्षेत्र हैं। धातकी खंड में पूर्वधातकी खंड में एक-एक भरत, ऐरावत एवं पश्चिम धातकीखंड में एक भरत, एक ऐरावत ऐसे दो भरत और दो ऐरावत क्षेत्र हैं। इसी प्रकार पूर्वपुष्करार्ध द्वीप में भी पूर्व पुष्करार्ध में एक भरत, एक ऐरावत और पश्चिमपुष्करार्ध द्वीप में भी एक भरत, एक ऐरावत ऐसे दो भरत और दो ऐरावत क्षेत्र हैं। इन पाँचों भरत एवं पाँचों ऐरावत क्षेत्रों के आर्यखंडों में षट्काल परिवर्तन होता रहता है। इनमें चतुर्थ काल में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते रहते हैं। इस प्रकार यद्यपि भूतकाल की अपेक्षा अनंत चौबीसी हो चुकी हैं और भविष्यत् काल में भी अनंत चौबीसी होवेंगी, फिर भी एक-एक भूतकालीन एक-एक वर्तमानकालीन और एक-एक भविष्यत्कालीन के ऐसे पाँच भरत, पाँच ऐरावत के त्रिकाल संबंधी तीस चौबीसी तीर्थंकर भगवंतों के नाम ग्रंथों में मिलते हैं।

इन चौबीसी के तीर्थंकरों के मंत्रों को जपते हुये ''तीस चौबीसी व्रत'' करने की परम्परा चली आ रही है। चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने तथा और भी अनेक मुनि, आर्यिकाओं एवं श्रावक-श्राविकाओं ने यह व्रत किया है और कर रहे हैं। इन व्रतों में उत्कृष्ट विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य एकाशन है। इसमें तिथियों का कोई नियम नहीं है। व्रत के दिन पंचामृत अभिषेक करके तीस चौबीसी की समुच्चय पूजा करें। 720 भगवंतों के नाम या मंत्र पढ़ें। उद्यापन में जिनप्रतिमा विराजमान करके तीस ग्रंथों का दान आदि करके व्रत पूर्ण करें एवं तीस चौबीसी विधान करके सम्मेदशिखर या अहिच्छत्र तीर्थ पर जाकर तीस चौबीसी भगवंतों का दर्शन पूजन आदि संपन्न करें।

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं श्री त्रिंशच्चतुर्विंशति–तीर्थंकरेभ्यो नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र निम्न प्रकार हैं–

(1)

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के भूतकालीन चौबीस तीर्थंकर

1. **ॐ ह्रीं श्री निर्वाणनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं श्री सागरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं श्री महासाधुनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं श्री विमलप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
5. **ॐ ह्रीं श्री श्रीधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
6. **ॐ ह्रीं श्री सुदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
7. **ॐ ह्रीं श्री अमलप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
8. **ॐ ह्रीं श्री उद्धरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
9. **ॐ ह्रीं श्री अंगिरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
10. **ॐ ह्रीं श्री सन्मतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
11. **ॐ ह्रीं श्री सिंधुनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
12. **ॐ ह्रीं श्री कुसुमांजलिनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
13. **ॐ ह्रीं श्री शिवगणनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
14. **ॐ ह्रीं श्री उत्साहनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
15. **ॐ ह्रीं श्री ज्ञानेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
16. **ॐ ह्रीं श्री परमेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
17. **ॐ ह्रीं श्री विमलेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
18. **ॐ ह्रीं श्री यशोधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
19. **ॐ ह्रीं श्री कृष्णमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
20. **ॐ ह्रीं श्री ज्ञानमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
21. **ॐ ह्रीं श्री शुद्धमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
22. **ॐ ह्रीं श्री भद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
23. **ॐ ह्रीं श्री अतिक्रांतनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
24. **ॐ ह्रीं श्री शांतनाथ जिनेन्द्राय नमः।**

(2)

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकर

1. **ॐ ह्रीं श्री ऋषभनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।**

5. ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।

(3)

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के भविष्यत्कालीन चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री महापद्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री सुरदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री स्वयंप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री सर्वात्मभूतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री देवपुत्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री कुलपुत्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री उदंकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री प्रोष्ठिलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री जयकीर्तिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री निष्पापनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री निष्कषायनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री विपुलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री निर्मलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री चित्रगुप्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री समाधिगुप्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री स्वयंभूनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री अनिवर्तकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री जयनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री देवपालनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री अनंतवीर्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(4)

जम्बूद्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भूतकालीन चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री पंचरूपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री जिनधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री सांप्रतिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री ऊर्जयंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री आधिक्षायिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री रत्नसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री रामेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री अनंगोज्झितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री विन्यासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री अशेषनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री सुविधाननाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री प्रदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री कुमारनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री सर्वशैलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री प्रभंजननाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री सौभाग्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री व्रतविंदुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री सिद्धकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री ज्ञानशरीरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री कल्पद्रुमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री तीर्थफलेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री दिनकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री वीरप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(5)

जम्बूद्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री बालचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री सुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री अग्निसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री नंदिसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री श्रीदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री व्रतधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री सोमचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री धृतदीर्घनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री शतायुष्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री विवसितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री श्रेयोनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री विश्रुतजलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री सिंहसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री उपशांतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री गुप्तशासननाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री अनंतवीर्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री अभिधाननाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री मरुदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री श्रीधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री शामकंठनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री अग्निप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री अग्निदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री वीरसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।

(6)

जम्बूद्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भविष्यत्कालीन चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री सिद्धार्थनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री जयघोषनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री नंदिसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री स्वर्गमंगलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री वज्राधारीनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री निर्वाणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री धर्मध्वजनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री सिद्धसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री महासेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री रविमित्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री सत्यसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री चंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री महीचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री श्रुतांजननाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री देवसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री सुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री जिनेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री सुकौशलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री अमृतसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री अग्निदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(7)

पूर्वधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री रत्नप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री अमितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री अकलंकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री चंद्रस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री शुभंकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री तत्त्वनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री सुंदरस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री पुरंधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री स्वामिदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री देवदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री वासवदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री श्रेयोनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री विश्वरूपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री तपस्तेजोनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री श्रीपतिबोधदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री सिद्धार्थदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री संयमनाथ जिनेन्द्राय नमः।

19. ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री देवेन्द्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री प्रवरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री विश्वसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री मेघनंदिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री त्रिजेतृकनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(8)

पूर्वधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री युगादिदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री सिद्धांतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री महेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री परमार्थनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री समुद्धरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री भूधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री उद्योतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री आर्जवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री अभयनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री अप्रकंपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री पद्मनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री पद्मनंदिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री प्रियंकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री सुकृतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री भद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री मुनिचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री पंचमुष्टिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री त्रिमुष्टिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री गांगिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री गणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री सर्वांगदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री इंद्रदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री नायकनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(9)

पूर्वधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री श्रीसिद्धार्थनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री सम्यग्गुणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्रदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री संपन्ननाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री सर्वस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री मुनिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री विशिष्टदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री अमरनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मशांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री पर्वनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री अकामुकदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री ध्याननाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री श्रीकल्पनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री संवरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री स्वास्थ्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री आनंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री रविप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री सुनंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री सुकर्णदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री सुकर्मदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री अममदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री शाश्वतनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(10)

पूर्वधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री वज्रस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री उदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री सूर्यस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री पुरुषोत्तमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री शरणस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री अवबोधनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री विक्रमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री निर्घंटिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री हरीन्द्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री परित्रेरितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री निर्वाणसूरिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री धर्महेतुनाथ जिनेन्द्राय नमः।

13. ॐ ह्रीं श्री चतुर्मुखनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री सुकृतेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री श्रुताम्बुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री विमलार्कनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री देवप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री धरणेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री सुतीर्थनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री उदयानंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री सर्वार्थदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री धार्मिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री क्षेत्रस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री हरिचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(11)

पूर्वधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री अपश्चिमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री अर्हदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री चरित्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री सिद्धानंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री नंदगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री पद्मकूपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री उदयनाभिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री रुकमेंदुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री कृपालुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री प्रौष्ठिलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री सिद्धेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री अमृतेंदुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री स्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री भुवनलिंगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री सर्वरथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री मेघनंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री नंदिकेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री हरिनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री अधिष्ठनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री शांतिकदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री नंदीस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री कुंदपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री विरोचननाथ जिनेन्द्राय नमः।

(12)

पूर्वधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री प्रवरवीरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री विजयप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री सत्पदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री महामृगेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री चिंतामणिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री अशोकिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री मृगेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री उपवासिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री पद्मचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री बोधकेंदुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री चिंताहिमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री उत्साहिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री अपाशिवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री देवजलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री नारिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री अनघनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री नागेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री नीलोत्पलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री अप्रकंपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री पुरोहितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री भिंदकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री निर्वाचनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री विरोषिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(13)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री प्रियमित्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री सुमितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री अतिव्यक्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।

7. ॐ ह्रीं श्री कलासेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री कर्मजित्नाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री प्रबुद्धनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री प्रव्रजित्नाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री सुधर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री तमोदीपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री व्रजनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री बुद्धनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री प्रबंधदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री अतीतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री प्रमुखनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री पल्योपमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री अकोपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री निष्ठितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री मृगनाभिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री देवेन्द्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री पदस्थनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री शिवनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(14)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री विश्वचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री कपिलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री वृषभदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री प्रियतेजोनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री प्रशमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री विषमाँगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री चारित्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री प्रभादित्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री मुंजकेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री वीतवासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री सुराधिपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री दयानाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री सहस्रभुजनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री जिनसिंहनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री रैवतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री बाहुस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री श्रीमालिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री अयोगदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री अयोगिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री कामरिपुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री आरंभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री गर्भज्ञातिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री एकार्जितनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(15)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री रक्तकेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री चक्रहस्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री कृतनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री परमेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री सुमूर्तिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री मुक्तिकांतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री निकेशिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री प्रशस्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री निराहारनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री अमूर्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री द्विजनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री श्रेयोगतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री अरुजनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री देवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री दयाधिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री पुष्पनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री नरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री प्रतिभूतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री नागेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री तपोधिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री दशाननाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री आरण्यकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री दशानीकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री सात्विकनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(16)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री सुमेरुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री जिनकृतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री कैटभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री प्रशस्तदायकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री निर्दमननाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री कुलकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री वर्धमाननाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री अमृतेंदुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री संख्यानंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री कल्पकृतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री हरिनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री बाहुस्वानाथमि जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री भार्गवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री भद्रस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री पविपाणिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री विपोषितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचारिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री असाक्षिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री चारित्रेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री पारिणामिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री शाश्वतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री निधिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री कौशिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री धर्मेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(17)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री साधितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री जिनस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री स्तमितेन्द्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री अत्यानंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री पुष्पोत्फुल्लनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री मंडितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री प्रहतदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री मदनसिद्धनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री हसदिंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री चंद्रपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री अब्जबोधनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री जिनबल्लभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री सुविभूतिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री ककुद्दासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री सुवर्णनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री हरिवासकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री प्रियमित्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री धर्मदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री प्रियरतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री नंदिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री अश्वानीकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री पर्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री चित्रह्रदयनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(18)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री रवीन्दुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री सौकुमारनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री पृथ्वीवान्नाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्रीकुलरत्ननाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री सोमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री वरुणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री सर्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री सुदृष्टिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री शिष्टनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री सुधन्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री सोमचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री क्षेत्राधीशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री सदंतिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री जयंतदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री तमोरिपुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री निर्मितदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।

19. ॐ ह्रीं श्री कृतपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री बोधिलाभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री बहुनंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री सुदृष्टिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री कुंकुमनाभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री वक्षेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(19)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री दमनेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री मूर्तस्वानाथ मिजिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री विरागस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री प्रलंबनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री पृथ्वीपतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री चारित्रनिधिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री अपराजितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री सुबोधकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री बुद्धीशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री वैतालिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री त्रिमुष्टिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री मुनिबोधनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री तीर्थस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री धर्मधीशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री धरणेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री प्रभवदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री अनादिदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री अनादिप्रभुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री सर्वतीर्थनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री निरुपमदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री कौमारिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री विहारगृहनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री धरणीश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री विकासदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(20)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री जगन्नाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री प्रभासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री स्वरस्वामीनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री भरतेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री दीर्घाननानाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री विख्यातकीर्तिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री अवसानिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री प्रबोधनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री तपोनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री पावकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री त्रिपुरेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री सौगतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री वासवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री मनोहरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री शुभकर्मईशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री इष्टसेवितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री विमलेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री धर्मवासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री प्रसादनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री प्रभामृगांकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री उज्झितकलंकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री स्फटिकप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री गजेन्द्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री ध्यानजयनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(21)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री वसंतध्वजनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री त्रिजयंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री त्रिस्तंभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री परब्रह्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री अबालिशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री प्रवादिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री भूमानंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री त्रिनयननाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री विद्धाननाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री परमात्मप्रसंगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री भूमींद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री गोस्वामीनाथ जिनेन्द्राय नमः।

13. ॐ ह्रीं श्री कल्याणप्रकाशितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री मंडलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री महावसुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री उदयवाननाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री दिव्यज्योतिनाथ र्जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री प्रबोधेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री अभयांकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री प्रमितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री दिव्यस्फारकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री व्रतस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री निधाननाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री त्रिकर्मानाथ जिनेन्द्राय नमः

(22)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री कृतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री उपविष्टनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री देवादित्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री आस्थानिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री प्रचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री वेषिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री त्रिभानुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री वज्रांगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री अविरोधीनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री अपापनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री लोकोत्तरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री जलधिशेषनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री विद्योतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री सुमेरुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री विभावितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री वत्सलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री जिनालयनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री तुषारनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री भुवनस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री सुकायनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री देवाधिदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री अकारिमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री बिंबितनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(23)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री शंकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री अक्षवासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री नग्ननाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री नग्नाधिपतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री नष्टपाखंडनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री स्वप्नवेदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री तपोधननाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री पुष्पकेतुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री धार्मिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री चंद्रकेतुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री अनुरक्तज्योतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री वीतरागनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री उद्योतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री तमोपेक्षनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री मधुनादनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री मरुदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री दमनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री वृषभस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री शिलातननाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री विश्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री महेन्द्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री नंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री तमोहरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मजनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(24)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री यशोधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री सुकृतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री अभयघोषनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री निर्वाणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री व्रतवासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री अतिराजनाथ जिनेन्द्राय नमः।

7. ॐ ह्रीं श्री अश्वदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री अर्जुननाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री तपश्चंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री शारीरिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री महेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री सुग्रीवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री दृढप्रहारनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री अम्बरीकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री दयातीतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री तुंबरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री सर्वशीलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री प्रतिजातनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री जितेन्द्रियनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री तपादित्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री रत्नाकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री देवेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री लांछननाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री सुप्रदेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(25)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री पद्मचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री रत्नांगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री अयोगिकेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री सर्वार्थनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री ऋषिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री हरिभद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री गुणाधिपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री पारत्रिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री मुनीन्द्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री दीपकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री राजर्षिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री विशाखदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री अनिंदितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री रविस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री सोमदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री जयस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री मोक्षनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री अग्रभासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री धनुःसंगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री रोमांचकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री मुक्तिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री प्रसिद्धनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री जितेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(26)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री सर्वांगस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री पद्माकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री प्रभाकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री बलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री योगीश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री सूक्ष्मांगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री व्रतचलातीतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री कलंबकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री परित्यागनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री निषेधिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री पापापहारिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री सुस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री मुक्तिचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री अप्राशिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री जयचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री मलाधारिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री सुसंयतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री मलयसिंधुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री अक्षधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री देवधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री देवगणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री आगमिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री विनीतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री रतानंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(27)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री प्रभावकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री विनतेंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री सुभावकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री दिनकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री अगस्त्येजोनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री धनदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री पौरवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री जिनदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री मुनिसिंधुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री आस्तिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री भवानीकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री नृपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री नारायणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री प्रशमौकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री भूपतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री सुदृष्टिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री भवभीरुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री नंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री भार्गवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री सुवसुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री परावशनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री वनवासीकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री भरतेशनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(28)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री उपशांतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री फाल्गुणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री पूर्वासनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री सौधर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री गौरिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री त्रिविक्रमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री नरसिंहनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री मृगवसुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री सोमेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री सुधासुरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री अपापमल्लनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री विबाधनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री संधिकस्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री मान्धात्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री अश्वतेजोनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री विद्याधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री सुलोचननाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री मौननिधिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री पुंडरीकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री चित्रगणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री मणिरिन्द्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री सर्वकालनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री भूरिश्रवणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री पुण्यांगनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(29)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री गांगेयकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री नल्लवासवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री भीमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री दयाधिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री सुभद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री स्वामिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री हनिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री नंदिघोषनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री रूपबीजनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री वज्रनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री संतोषनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री सुधर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री फणीश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री वीरचंद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री मेधानिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री स्वच्छनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री कोपक्षयनाथ जिनेन्द्राय नमः।

18. ॐ ह्रीं श्री अकामनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री धर्मधामनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री सूक्तिसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री क्षेमंकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री दयानाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री कीर्तिपनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री शुभंकरनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(30)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री अदोषिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री वृषभदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री विनयानंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री मुनिभारतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री इंद्रकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री चंद्रकेतुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री ध्वजादित्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री वसुबोधनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री मुक्तिगतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री धर्मबोधनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री देवांगनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री मारीचिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री सुजीवननाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री यशोधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री गौतमनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री मुनिशुद्धिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री प्रबोधिकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री सदानीकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री चारित्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री शतानंदनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री वेदार्थनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री सुधानीकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री ज्योतिर्मुखनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री सुरार्घनाथ जिनेन्द्राय नमः।

तीन चौबीसी व्रत विधि

व्रत विधि– जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के वर्तमानकालीन तीर्थंकर श्री ऋषभदेव से लेकर श्रीमहावीर पर्यंत 24 हैं। ऐसे ही भूतकालीन श्री निर्वाणनाथ से लेकर श्री शांतिनाथ पर्यंत 24 हैं, पुनः भविष्यकालीन श्रीमहापद्म से लेकर अनंतवीर्य पर्यंत चौबीस हैं। ये 24+24+24=72 तीर्थंकर के 72 व्रत करने होते हैं। व्रतों की उत्कृष्ट विधि उपवास, मध्यम विधि अल्पाहार और जघन्यविधि एकाशन है। व्रत के दिन तीर्थंकर प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके तीन चौबीसी पूजा करें। व्रत पूर्ण कर यथाशक्ति तीन चौबीसी की प्रतिमा विराजमान करावें। 72 ग्रंथ आदि का दान देवें। ग्रंथ प्रकाशित करावें। जहाँ तीन चौबीसी विराजमान हैं, ऐसे 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली' प्रयाग (इलाहाबाद), अयोध्या, हस्तिनापुर जम्बूद्वीप आदि तीर्थों की वंदना करें।

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं श्रीत्रैकालिकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**

मंत्र जपें पुनः व्रत के दिन क्रमशः एक-एक तीर्थंकरों का मंत्र जपें।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

(1)

भूतकालीन चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री निर्वाणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री सागरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री महासाधुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री विमलप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री श्रीधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री सुदत्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री अमलप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री उद्धरनाथ जिनेन्द्राय नमः।

9. ॐ ह्रीं श्री अंगिरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री सन्मतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री सिंधुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री कुसुमांजलिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री शिवगणनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री उत्साहनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री ज्ञानेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री परमेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री विमलेश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री यशोधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री कृष्णमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री ज्ञानमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री शुद्धमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री भद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री अतिक्रांतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री शांतनाथ जिनेन्द्राय नमः।

(2)

वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री ऋषभनाथजिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।

(3)

भविष्यत्कालीन चौबीस तीर्थंकर

1. ॐ ह्रीं श्री महापद्मनाथ जिनेन्द्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री सुरदेवनाथ जिनेन्द्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री स्वयंप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री सर्वात्मभूतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री देवपुत्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री कुलपुत्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री उदंकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री प्रोष्ठिलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्री जयकीर्तिनाथ जिनेन्द्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्री निष्पापनाथ जिनेन्द्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्री निष्कषायनाथ जिनेन्द्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्री विपुलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्री निर्मलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्री चित्रगुप्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं श्री समाधिगुप्तनाथ जिनेन्द्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्री स्वयंभूनाथ जिनेन्द्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्री अनिवर्तकनाथ जिनेन्द्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्री जयनाथनाथ जिनेन्द्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्री देवपालनाथ जिनेन्द्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्री अनंतवीर्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।

विद्यमान बीस तीर्थंकर व्रत विधि

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में सीमंधर स्वामी और युगमंधर स्वामी आज भी समवसरण में विराजमान हैं अतः इन्हें विद्यमान या विहरमाण कहते हैं। जंबूद्वीप के पश्चिम विदेह में बाहुस्वामी और सुबाहुस्वामी हैं। पूर्वधातकी के विदेहों में क्रमशः चार तीर्थंकर एवं पश्चिम धातकी खंड के विदेहों में क्रमशः आगे के चार तीर्थंकर इसी प्रकार पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के विदेहों में आगे के चार तीर्थंकर एवं पश्चिम पुष्करार्ध के विदेह क्षेत्रों में चार तीर्थंकर ऐसे बीस तीर्थंकर आज भी विद्यमान हैं। इनके मंत्रों का जाप्य करके व्रत विधि संपन्न होती है। इसमें भी तिथि का कोई नियम नहीं है। उत्कृष्ट विधि उपवास, मध्यम विधि अल्पाहार और जघन्य विधि एकाशन है।

व्रत के दिन तीर्थंकर प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक, विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजा आदि करके व्रत के उद्यापन में बीस तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान कराना, 20-20 ग्रंथ आदि दान देना, 20-20 फल आदि बीस श्रावकों को देना आदि यथाशक्ति दान देकर व्रत समापन करें। व्रत की पूर्णता पर जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर, दहीगाँव आदि जाकर बीस तीर्थंकर भगवंतों का दर्शन पूजन करके जीवन धन्य करें।

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं श्रीविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**

प्रत्येक मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं श्री सीमंधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं श्रीयुगमंधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं श्री बाहुनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं श्री सुबाहुनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
5. **ॐ ह्रीं श्री संजातकनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
6. **ॐ ह्रीं श्री स्वयंप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
7. **ॐ ह्रीं श्री ऋषभाननाथ जिनेन्द्राय नमः।**
8. **ॐ ह्रीं श्री अनंतवीर्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
9. **ॐ ह्रीं श्री सूरिप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
10. **ॐ ह्रीं श्री विशालकीर्तिनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
11. **ॐ ह्रीं श्री वज्रधरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
12. **ॐ ह्रीं श्री चंद्राननाथ जिनेन्द्राय नमः।**
13. **ॐ ह्रीं श्री चंद्रबाहुनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
14. **ॐ ह्रीं श्री भुजंगमनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
15. **ॐ ह्रीं श्री ईश्वरनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
16. **ॐ ह्रीं श्री नेमीप्रभनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
17. **ॐ ह्रीं श्री वीरसेननाथ जिनेन्द्राय नमः।**
18. **ॐ ह्रीं श्री महाभद्रनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
19. **ॐ ह्रीं श्री देवयशोनाथ जिनेन्द्राय नमः।**
20. **ॐ ह्रीं श्री अजितवीर्यनाथ जिनेन्द्राय नमः।**

कल्याण मंदिर व्रत विधि

कल्याण मंदिर स्तोत्र भगवान पार्श्वनाथ का स्तोत्र है। इसमें भी आदि में ''कल्याणमंदिरमुदारमवद्यवेदि-''

'कल्याण मंदिर' पद आ जाने से इसका कल्याणमंदिर स्तोत्र यह सार्थक नाम हो गया है। इसमें 44 काव्य हैं। अतः 44 व्रत किये जाते हैं। व्रत के दिन श्री पार्श्वनाथ का अभिषेक करके कल्याण मंदिर यंत्र का भी अभिषेक करें और कल्याण मंदिर की पूजा या श्री पार्श्वनाथ की पूजा करें।

इसकी समुच्चय जाप्य निम्न प्रकार है-

ॐ ह्रीं कमठोपसर्गजिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

प्रत्येक 44 मंत्र - (एक-एक व्रत के दिन क्रम से 1-1 मंत्र की माला फेरें।)

1. **ॐ ह्रीं भवसमुद्रतरणे पोतायमानकल्याणमंदिरस्वरूपाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं कमठस्य धूमकेतूपमाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं त्रैलोक्यधीशाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं सर्वपीड़ानिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
5. **ॐ ह्रीं सुखविधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
6. **ॐ ह्रीं अव्यक्तगुणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
7. **ॐ ह्रीं भवाटवीनिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
8. **ॐ ह्रीं कर्माहिबन्धमोचनाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
9. **ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवहरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
10. **ॐ ह्रीं भवोदधितारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
11. **ॐ ह्रीं हुतभुग्भयनिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
12. **ॐ ह्रीं हृदयधार्यमाणभव्यगणतारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
13. **ॐ ह्रीं कर्मचौरविध्वंसकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
14. **ॐ ह्रीं हृदयाम्बुजान्वेषिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
15. **ॐ ह्रीं जन्ममरणरोगहराय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
16. **ॐ ह्रीं विग्रहनिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
17. **ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
18. **ॐ ह्रीं परवादिदेवस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
19. **ॐ ह्रीं अशोकप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
20. **ॐ ह्रीं पुष्पवृष्टिप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
21. **ॐ ह्रीं अजरामरदिव्यध्वनिप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
22. **ॐ ह्रीं चामरप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
23. **ॐ ह्रीं सिंहासनप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
24. **ॐ ह्रीं भामण्डलप्रातिहार्यप्रभास्वते श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
25. **ॐ ह्रीं दुन्दुभिप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
26. **ॐ ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यविराजिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**
27. **ॐ ह्रीं वप्रत्रयविराजिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।**

28. ॐ ह्रीं पुष्पमालानिषेवितचरणाम्बुजाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
29. ॐ ह्रीं श्री संसारसागरतारकाय पार्श्वनाथाय नमः।
30. ॐ ह्रीं अद्भुतगुणविराजितरूपाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
31. ॐ ह्रीं श्री रजोवृष्ट्यक्षोभ्याय पार्श्वनाथाय नमः।
32. ॐ ह्रीं कमठदैत्यमुक्तवारिधाराक्षोभ्याय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
33. ॐ ह्रीं कमठदैत्यप्रेषितभूतपिशाचाद्यक्षोभ्याय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
34. ॐ ह्रीं त्रिकालपूजनीयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
35. ॐ ह्रीं आपन्निवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
36. ॐ ह्रीं सर्वपराभवहरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
37. ॐ ह्रीं सर्वमनर्थमथनाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
38. ॐ ह्रीं सर्वदुःखहराय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
39. ॐ ह्रीं जगज्जीवदयालवे श्री पार्श्वनाथाय नमः।
40. ॐ ह्रीं सर्वशांतिकराय श्रीजिनचरणाम्बुजाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
41. ॐ ह्रीं जगन्नायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
42. ॐ ह्रीं अशरणशरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
43. ॐ ह्रीं चित्तसमाधि सुसेविताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
44. ॐ ह्रीं परमशांतिविधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

सम्मेदशिखर व्रतविधि

सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र शाश्वत तीर्थ है। यहाँ से हमेशा चतुर्थकाल में तीर्थंकर भगवान एवं असंख्यातों मुनिगण मोक्ष प्राप्त करते रहे हैं और आगे भी मोक्ष प्राप्त करते रहेंगे। इस सिद्धक्षेत्र के 25 व्रत हैं।

इस बार चतुर्थकाल में हुण्डावसर्पिणी के निमित्त से सम्मेदशिखर पर्वत से 20 तीर्थंकर ही मोक्ष गये हैं, शेष चार तीर्थंकर अन्यत्र स्थलों से मोक्ष गए हैं फिर भी वहां पर इन चारों की भी टोंके बनाई गई हैं अतः चौबीस तीर्थंकरों के 24 व्रत तथा गौतम गणधर की टोंक का 1, इस प्रकार 25 व्रत करना है। प्रथमतः अजितनाथ तीर्थंकर के सिद्धकूट से व्रत प्रारंभ कर भगवान पार्श्वनाथ के सुवर्णभद्रकूट तक व्रत करना है पुनः ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और महावीर स्वामी के टोंकों का व्रत करना चाहिए।

इस व्रत के दिन मंदिर में तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके सम्मेदशिखर पूजन विधान करना है पुनः समुच्चय जाप्य करके एक-एक व्रतों के दिन क्रम से एक-एक जाप्य करना है।

इस व्रत का फल नाना प्रकार के रोग, शोक, दुःख, संकट को दूर कर सम्पूर्ण मनोरथों को सफल करना है। जो यह व्रत करेंगे, वे सम्मेदशिखर की वंदना के समान अनेकों उपवासों का फल प्राप्त कर परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

समुच्चय मंत्र -1. ॐ ह्रीं अर्हं सम्मेदशिखरशाश्वतसिद्धक्षेत्राय नमः।

अथवा

2. ॐ ह्रीं अर्हं अनंतानंतप्रमसिद्धेभ्यो नमो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. ॐ ह्रीं सिद्धवरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीअजितनाथ तीर्थंकराय नमः।
2. ॐ ह्रीं धवलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीसंभवनाथतीर्थंकराय नमः।
3. ॐ ह्रीं आनंदकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीअभिनंदननाथतीर्थंकराय नमः।
4. ॐ ह्रीं अविचलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीसुमतिनाथतीर्थंकराय नमः।
5. ॐ ह्रीं मोहनकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीपद्मप्रभनाथतीर्थंकराय नमः।
6. ॐ ह्रीं प्रभासकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीसुपार्श्वनाथतीर्थंकराय नमः।
7. ॐ ह्रीं ललितकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीचंद्रप्रभनाथतीर्थंकराय नमः।
8. ॐ ह्रीं सुप्रभकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीपुष्पदंतनाथतीर्थंकराय नमः।
9. ॐ ह्रीं विद्युत्वरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीशीतलनाथतीर्थंकराय नमः।
10. ॐ ह्रीं संकुलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीश्रेयांसनाथतीर्थंकराय नमः।
11. ॐ ह्रीं सुवीरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीविमलनाथतीर्थंकराय नमः।
12. ॐ ह्रीं स्वयंभूकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीअनंतनाथतीर्थंकराय नमः।
13. ॐ ह्रीं सुदत्तकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीधर्मनाथतीर्थंकराय नमः।
14. ॐ ह्रीं कुंदप्रभकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीशांतिनाथतीर्थंकराय नमः।
15. ॐ ह्रीं ज्ञानधरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीकुंथुनाथतीर्थंकराय नमः।
16. ॐ ह्रीं नाटककूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीअरहनाथतीर्थंकराय नमः।
17. ॐ ह्रीं संबलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीमल्लिनाथतीर्थंकराय नमः।
18. ॐ ह्रीं निर्जरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीमुनिसुव्रतनाथतीर्थंकराय नमः।
19. ॐ ह्रीं मित्रधरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीनमिनाथतीर्थंकराय नमः।
20. ॐ ह्रीं सुवर्णभद्रकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकराय नमः।
21. ॐ ह्रीं कैलाशपर्वतात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीआदिनाथतीर्थंकराय नमः।
22. ॐ ह्रीं चंपापुरीक्षेत्रात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीवासुपूज्यतीर्थंकराय नमः।
23. ॐ ह्रीं ऊर्जयंतगिरिक्षेत्रात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीनेमिनाथतीर्थंकराय नमः।
24. ॐ ह्रीं पावापुरीसरोवरात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित–श्रीमहावीरतीर्थंकराय नमः।
25. ॐ ह्रीं वृषभसेनादिगौतमान्त्य–सर्वगणधरचरणेभ्यो नमः।



विषापहार व्रतविधि

विषापहार स्तोत्र श्री ऋषभदेव स्तोत्र है। यह श्री धनंजय कवि की रचना है। इस स्तोत्र के रचते ही उनके पुत्र का सर्पविष उतर गया था। इसलिए विषापहार यह इसका सार्थक नाम है। इसमें 40 व्रत किए जाते हैं भक्तामर के समान इन व्रतों को करना चाहिए।

समुच्चय मंत्र - **ॐ ह्रीं अर्हं सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् 40 मंत्र -

1. **ॐ ह्रीं अर्हं स्वात्मस्थिताय केवलज्ञानकिरणैर्लोकालोकव्याप्ताय सर्वविषापहारिणेआदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं अर्हं युगारंभे युगादिब्रह्मणे वृषभनामप्राप्ताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं अर्हं भाक्तिकस्योपरि कृपादृष्टिधारकाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं अर्हं परमस्तुत्यगुणसमन्विताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
5. **ॐ ह्रीं अर्हं हिताहितविवेकशून्यप्राणिनां बालवैद्याय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
6. **ॐ ह्रीं अर्हं विनतजनाभिमतफलप्रदायकाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
7. **ॐ ह्रीं अर्हं रागद्वेषादिविरहितैकरूपादर्शवद् वीतरागाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
8. **ॐ ह्रीं अर्हं गंभीरोत्तुंगविशालगुणविभूषिताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
9. **ॐ ह्रीं अर्हं पुनरागमनविरहिताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
10. **ॐ ह्रीं अर्हं कामदेवभस्मसात्करणाय सर्वकालजाग्रते सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
11. **ॐ ह्रीं अर्हं समुद्रवत्स्वाभाविमहिमोपेताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
12. **ॐ ह्रीं अर्हं संसारसागरतरणोपायप्रदर्शकाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
13. **ॐ ह्रीं अर्हं मूढजनहितोपदेशिने सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
14. **ॐ ह्रीं अर्हं विषापहारमण्यौषध-मंत्र-रसायनस्वरूपपर्यायवाचिनामधारकाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
15. **ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजगद्हस्तकृतसामर्थ्यप्रापकाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
16. **ॐ ह्रीं अर्हं त्रिकाल-त्रैलोक्यज्ञानस्वामिने सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
17. **ॐ ह्रीं अर्हं इन्द्रकृतप्रभुभक्तिस्वोपकारिगुणसमन्विताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
18. **ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजगत्प्रियत्वगुणसमन्विताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
19. **ॐ ह्रीं अर्हं स्वभक्तजनसर्ववांछितफलदानसमर्थाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
20. **ॐ ह्रीं अर्हं तीर्थंकरप्रकृतिनिमित्तप्राप्तविभवाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
21. **ॐ ह्रीं अर्हं मोहान्धकारत्रस्तजनहितोपदेशप्रकाशप्रदायिने सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
22. **ॐ ह्रीं अर्हं मूढजनप्रतिबोधकाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
23. **ॐ ह्रीं अर्हं स्वयमनन्तगुणादिस्वरूपमाहात्म्यप्राप्ताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
24. **ॐ ह्रीं अर्हं त्रिभुवनविजयिमोहराजप्रभावमूलोन्मूलिने सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
25. **ॐ ह्रीं अर्हं केवलैकमोक्षमार्गदर्शिने सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
26. **ॐ ह्रीं अर्हं स्वयंविपक्षगणरहिताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
27. **ॐ ह्रीं अर्हं ईप्सितफलप्रापकसमर्थाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**
28. **ॐ ह्रीं अर्हं सत्यमार्गप्रतिबोधकाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।**

29. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वहितकरस्याद्वादवचनोपदेशिने सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
30. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजनहितकरदिव्यध्वनिप्रकटितकरणाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
31. ॐ ह्रीं अर्हं अनंतगुणस्वामिने सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
32. ॐ ह्रीं अर्हं अभिमतफलप्राप्त्यर्थं प्रयत्नतत्परभाक्तिकजनमनोरथपूर्णीकराय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
33. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यपापविरहितपरपुण्यहेतवे सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
34. ॐ ह्रीं अर्हं शब्द-गंध-स्पर्श-रूप-रसविरहिताय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
35. ॐ ह्रीं अर्हं अदृष्टपारविश्वपारंगताय जिनपतये सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
36. ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यदीक्षागुरवे सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
37. ॐ ह्रीं अर्हं कालकलामतीताय विभवे सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
38. ॐ ह्रीं अर्हं स्तुतिकर्त्रे याचनाविरहितायापि सर्वाभीप्सितफलप्रदायिने सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
39. ॐ ह्रीं अर्हं आत्मपोष्यशिष्याचार्याय परमकृपालवे सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।
40. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वसौख्यं यशो धनं जयं दातुं समर्थाय सर्वविषापहारिणे आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेवाय नमः।



भक्तामर व्रत विधि

विधि—जैन समाज में भक्तामर स्तोत्र सबसे अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त है। इसकी महिमा के विषय में सभी लोग जानते हैं कि श्री मानतुंगमहामुनि ने इस स्तोत्र की रचना की है, एक-एक काव्य के प्रभाव से एक-एक ऐसे अड़तालीस ताले टूट गये हैं और अतिशय चमत्कार हुआ है। यह श्री आदिनाथ भगवान का स्तोत्र है, प्रारंभ में ''भक्तामरप्रणत' आदि श्लोक में ''भक्तामर' पद के आने से इसका ''भक्तामर स्तोत्र'' नाम प्रसिद्ध हो गया है।

इसके 48 व्रत होते हैं। एक-एक काव्य को आधार बनाकर 48 व्रत किये जाते हैं। व्रत के दिन भक्तामर पूजा या ऋषभदेव की प्रतिमा का पंचामृताभिषेक कर श्री ऋषभदेव की पूजा करना चाहिए। पुनः एक-एक व्रत के दिनों में क्रम से एक-एक मंत्र का जाप्य करना चाहिए। मंत्र निम्न प्रकार हैं–

कोई-कोई भक्तामर स्तोत्र में छपे ऋद्धि-मंत्र का जाप्य करते हैं। वैसे भक्तामर के एक-एक काव्य का भी 108 बार जाप्य कर सकते हैं। व्रत विधि पूर्णकर उद्यापन में श्री ऋषभदेव प्रतिमा विराजमान कराना, भक्तामर स्तोत्र छपाकर वितरित करना चाहिए। यथाशक्ति दान आदि करके भक्तामर विधान करके व्रत पूर्ण करना चाहिए।

समुच्चय मंत्र–

1. ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवृषभनाथतीर्थंकराय नमः।

अथवा

2. ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्रीवृषभनाथ तीर्थंकराय नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

ॐ ह्रीं प्रणतदेवसमूह मुकुटाग्रमणिद्योतकाय महापापान्धकार विनाशनाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।1।।

ॐ ह्रीं गणधर-चारणसमस्त-ऋषीन्द्र-चन्द्रादित्य-सुरेन्द्र-नरेन्द्र- व्यंतरेन्द्र-नागेन्द्र-चतुर्विध मुनीन्द्रस्तुत चरणारविंदाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।2।।

ॐ ह्रीं विगतबुद्धि गर्वापहार सहित श्रीमन्मानतुंगाचार्य भक्तिसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।3।।
ॐ ह्रीं त्रिभुवनगुणसमुद्र चन्द्रकान्तिमणितेजशरीर समस्त- सुरनाथस्तुत श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।4।।
ॐ ह्रीं समस्तगणधरादि-मुनिवरप्रतिपालक मृगबालवत् श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।5।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रचन्द्रभक्ति सर्वसौख्य तुच्छभक्ति बहुसुखदायकाय जिनेन्द्राय जिनादिपरमेश्वराय नमः।।6।।
ॐ ह्रीं अनंतभव-पातक सर्व विनाशकाय तवस्तुति सौख्यदायकाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।7।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रस्तवन सत्पुरुष चिच्चमत्काराय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।8।।
ॐ ह्रीं श्रीजिनपूजन-स्तवन-कथाश्रवणेन जगत्त्रयभव्यजीव समस्तपापौघविनाशनाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।9।।
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यानुपमगुणमंडित समस्तोपमासहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।10।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदर्शन अनंतभवसंचित अघसमूहविनाशनाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।11।।
ॐ ह्रीं त्रिभुवनशान्तिस्वरूपगुण त्रिभुवनतिलकाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।12।।
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यविजयी रूपातिशय अनंतचन्द्रतेजोजितृ सदातेज-पुंजायमान श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।13।।
ॐ ह्रीं शुभ्रगुणातिशयरूप त्रिभुवन जिनजिनेन्द्रगुण विराजमानाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।14।।
ॐ ह्रीं मेरुवद्अचल शीलशिरोमणये चतुर्विधवनितावि‌कार‌रहित शीलसमुद्राय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।15।।
ॐ ह्रीं धूमस्नेहवर्त्यादिविघ्नरहित त्रैलोक्य परमकेवलदीपकाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।16।।
ॐ ह्रीं राहुचन्द्रपूजित निरावरणज्योतिरूप लोकालोकित सदोदयाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।17।।
ॐ ह्रीं नित्योदयरूप अगम्य राहु त्रिभुवनसर्वकलासहित विराजमानाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।18।।
ॐ ह्रीं चन्द्रसूर्योदयास्त रजनी-दिवारहित परमकेवलोदय सदा दीप्तिविराजमानाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।19।।
ॐ ह्रीं हरिहरादिज्ञानरहित परमज्योतिकेवलज्ञानसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।20।।
ॐ ह्रीं त्रिभुवनमनोमोहन जिनेन्द्ररूपान्यदृष्टान्तरहित परम मंडिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।21।।
ॐ ह्रीं श्रीजिनवरमाताजनित जिनेन्द्रपूर्वदिग्भास्कर केवलज्ञान भास्कराय श्रीआदिब्रह्मजिनाय नमः।।22।।
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यपावनादित्यवर्ण परमअष्टोत्तरशतलक्षण नवशत व्यंजनाय समुदाय एकसहस्रअष्टमंडिताय श्रीआदिजिनेन्द्राय नमः।।23।।
ॐ ह्रीं ब्रह्मा-विष्णु-श्रीकंठ-गणपति त्रिभुवनदेवत्वसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।24।।
ॐ ह्रीं बुद्धशंकरशेषधरब्रह्मानाम् सहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।25।।
ॐ ह्रीं अधोलोक-मध्यलोक-ऊर्ध्वलोकत्रय कृताहोरात्रिनमस्कार समस्तार्तरौद्रविनाशक त्रिभुवनेश्वराय भवदधितरणतारणसमर्थाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।26।।
ॐ ह्रीं श्री परमगुणाश्रितावगुणानाश्रित श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।27।।
ॐ ह्रीं अशोकवृक्ष प्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।28।।
ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।29।।
ॐ ह्रीं श्री चतुःषष्टिचामर प्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।। 30।।
ॐ ह्रीं श्री छत्रत्रयप्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।31।।
ॐ ह्रीं अष्टादशकोटिवादित्र प्रातिहार्यसहिताय श्रीपरमादिपरमेश्वराय नमः।।32।।
ॐ ह्रीं समस्त पुष्पजातिवृष्टिप्रतिहार्यसहिताय श्रीपरमादिपरमेश्वराय नमः।।33।।
ॐ ह्रीं श्री कोटिभास्करप्रभामण्डित भामण्डलप्रातिहार्यसहिताय श्रीपरमादिपरमेश्वराय नमः।।34।।
ॐ ह्रीं जलधरपटल गर्जित ध्वनियोजनप्रमाणप्रातिहार्यसहिताय श्रीपरमादिपरमेश्वराय नमः।।35।।
ॐ ह्रीं हेमकमलोपरिकृतगमन देवकृतातिशयसहिताय श्रीपरमादिपरमेश्वराय नमः।।36।।

ॐ ह्रीं धर्मोपदेशसमये समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीपरमादिपरमेश्वराय नमः।।37।।
ॐ ह्रीं मस्तक गलितमद सुरगजेन्द्रमहादुद्धर भयविनाशकाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।38।।
ॐ ह्रीं आदिदेव प्रसादान्महासिंहभयविनाशकाय श्रीयुगादिदेवपरमेश्वराय नमः।।39।।
ॐ ह्रीं श्रीविश्वभक्षणसमर्थ महावन्हिविनाशकाय जिननामजलाय श्रीआदिब्रह्मणे नमः।।40।।
ॐ ह्रीं रक्तनयन सर्प जिननामनागदमन्यौषधये समस्तभय-विनाशकाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।41।।
ॐ ह्रीं महासंग्रामभयविनाशकाय सर्वांगरक्षणकराय श्रीप्रथमजिनेन्द्राय नमः।।42।।
ॐ ह्रीं महारिपुयुद्धे जय-विजयप्राप्तकाय श्रीआदिवृषभेश्वराय नमः।।43।।
ॐ ह्रीं महासमुद्रचलितवात महादुर्जयभयविनाशकाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।44।।
ॐ ह्रीं दशताप-जलंधराष्टदश-कुष्टसन्निपातमहारोगविनाशकाय परमकामदेवरूपलक्ष्मीदायकादि जिनेश्वराय नमः।।45।।
ॐ ह्रीं महाबंधन आपादकंठपर्यन्त बैरीकृतोपद्रवभयविघाताय श्री आदिपरमेश्वराय नमः।।46।।
ॐ ह्रीं सिंह-गजेन्द्रराक्षसभूतपिशाचशाकिनीरिपु परमोपद्रवविनाशकाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।47।।
ॐ ह्रीं पठन-पाठन श्रोतव्य श्रद्धावनत मानतुंगाचार्यादि समस्तजीव कल्याणदाय श्रीआदिपरमेश्वराय नमः।।48।।

श्रुतपंचमी व्रत (श्रुतावतार व्रत)

व्रतविधि–ज्येष्ठ शु. एकम से इस व्रत को ग्रहण करें, प्रातःकाल शुद्ध वस्त्र पहनकर सामग्री लेकर जिनमंदिर में जावें। मंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्र भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके पंचपरमेष्ठी भगवान एवं श्रुतस्कंध यंत्र का पंचामृत अभिषेक करें, पुनः अष्टद्रव्य से पंचपरमेष्ठी, द्वादशांग श्रुतदेवी एवं गणधर देव एवं षट्खण्डागम की पूजा करें, साथ ही यक्ष-यक्षी को अर्घ्य समर्पित करें। निम्न मंत्र की पीले पुष्पों से 108 बार जाप्य करें–

जाप्य–**ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः अर्हं असिआउसा अनाहतविद्यायै नमः स्वाहा।**

जाप्य के पश्चात् तत्त्वार्थसूत्र का पाठ करके णमोकार मंत्र की एक जाप्य करें।

शक्ति के अनुसार उपवासादि करें। व्रत की उत्तम विधि उपवास, मध्यम विधि फलाहार एवं जघन्य विधि एकाशन है। ब्रह्मचर्यपूर्वक धर्मध्यान में दिन व्यतीत करें।

इस प्रकार चार दिन लगातार पूजा-पाठ करके एकाशन करें एवं पाँचवे दिन ज्येष्ठ शु. पंचमी को उपवास करें। श्रुत भंडार के शास्त्रों को ठीक करके उन पर वस्त्र चढ़ावें। जिनमंदिर में श्रुतस्कंध यंत्रदल बनाकर श्रुतस्कंध की आराधना करें और उपवासपूर्वक समय बितावें। छठवें दिन मुनि, आर्यिका आदि चतुर्विध संघ को आहारदान देकर व्रत को पूर्ण करें। यह व्रत 12 वर्ष तक किया जाता है। व्रतोद्यापन में श्रुतस्कंध यंत्र बनवाकर उसकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करें। चतुर्विध संघ को चार प्रकार का दान देवें और मंदिर में आवश्यक उपकरण रखें।

इसकी **दूसरी विधि** यह है कि श्रुतपंचमी–ज्येष्ठ शु.पंचमी के दिन ही उपवास करके पाँच वर्ष तक यह व्रत कर सकते हैं।

यह विधि "जैनेन्द्रव्रत कथा संग्रह" मराठी पुस्तक से दी गई है। इस दिन षट्खंडागम की पूर्णता पर चतुर्विध संघ ने विधिवत्–इन सूत्र ग्रंथों की पूजा की थी। अतः वर्तमान में यह 'श्रुतपंचमी' नाम से प्रसिद्ध है।

जाप्य- **1. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खंडागमजिनागमेभ्यो नमः।**
2. ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानेभ्यो नमः।

श्री अक्षयतृतीया व्रत कथा

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के अंदर राजगृह नामकी एक सुंदर नगरी है। वहाँ मेघनाद नामका महा मंडलेश्वर राजा राज्य करता था। वह रूप लावण्य से अत्यन्त संदर था वह रूपवान के साथ-साथ बलवान एवं योद्धा भी था। उसकी पट्टरानी का नाम पृथ्वीदेवी था। वह अति रूपवान व जैनधर्म रत थी। उसे जैन धर्म पर पक्का श्रद्धान था। राजा मेघनाद के राज्य में सारी प्रजा प्रसन्न थी। राजा बड़े विनोद के साथ राज्य कर रहा था।

एक दिन पट्टरानी पृथ्वीदेवी अपनी अन्य सहेलियों के साथ अपने महल की सातवीं मंजिल से दिशावलोकन कर रही थी। आनंद से बैठी-बैठी विनोद की बातें कर रही थी तब उसने देखा कि बहुतसे विद्यार्थी विद्या पढ़कर अपने घर आ रहे थे जो खेलने कुदने में इतने मग्न थे कि उनका सारा बदन धूल से सना हुआ था। अकों अंग खेलने में क्रियारत थे।

रानी ने बालको की सारी क्रिया देखी तो उसका चित्त विचारमग्न हो गया। रानी को कोई पुत्र नहीं था। बालकों का अभिनय देखकर उसे अपने पुत्र न होने का दुःख हुआ। दिल में विचार किया कि जिस स्त्री के कुख में पुत्र जन्म नहीं होता उसका जीना इस संसार में वृथा है। इन्हीं विचारधाराओं के साथ वह नीचे आई तथा चिंता का शरीर बनाकर शयनकक्ष में जाकर सो गई। कुछ समय पश्चात् राजा उधर आया तो उसने रानी को इस तरह देखकर विस्मितता प्रगट की।

रानी से पूछा-प्रिये! आज आप इतनी चिंतित क्यों हो? रानी चुप रही। पुनः राजा ने प्रश्न किया, अनेकबार राजा के प्रश्न करने पर उसने जवाब दिया, हे राजन्! अपने कोई संतान नहीं हैं और यह समस्त राज वैभव संतान के अभाव में व्यर्थ है।

राजा ने उसे धैर्य बंधाते हुए जबाद दिया-इसमें किस के हाथ की बात है जो होनहार होता है वह होता है। हमारे अशुभ कार्मों का उदय है इसमें चिंता करने से क्या हो! यदि भाग्य में होगा तो अवश्य-किन्तु!

होनहार होगा वही, विधिने दिया रचाय।
'विमल' पुण्य प्रभाव से, सुख सम्पत्ति बहु पाय।।

कुछ समय बीता, नगर के बाहर उद्यान में सिद्धवरकूट चैत्यालय की वंदना हेतु पूर्व विदेह क्षेत्र में सुप्रभ नाम के चारणऋद्धिधारी मुनिश्वर आकाश मार्ग से पधारे। वनमाली यह सब देख अत्यंत प्रफुल्लित हुआ और वह गया फूलवारी के पास और अनेक प्रकार के फलफूल आदि से डाली सजाकर प्रसन्न चित्त से राजा के पास जाकर निवेदन किया–

हे राजन्! श्रीमान के उद्यान में सुप्रभ चारण ऋद्धिधारी मुनिराज पधारे हैं।

राजा सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसी समय सिंहासन से उतरकर 10 कदम आगे बढ़ मुनिराज को साष्टांग परोक्ष प्रमाण किया। तथा प्रसन्नचित्त हो वनमाली को वस्त्राभूषण धनादि ईनाम देकर प्रसन्न किया।

सारे नगर में आनंद मेरी बजवाई। आनंद भेरी सुनकर सब नगर निवासियों ने राजा के साथ चारण ऋद्धिधारी मुनि को वंदना को प्रस्थान किया।

राजा ने अपने साथ में अत्यंत सुंदर अष्ट द्रव्य मुनि पूजा हेतु लिये और अनेक गाजे बाजे दुन्दुभि के साथ पहुँचा, वहाँ पहुँचकर चैत्यालय की वंदना की, सर्व प्रथम चैत्यालय को तीन प्रदक्षिणा दी तथा भगवान की स्तुति स्तवन रूप स्तवन वा गुण स्तवन करता हुआ साष्टांग नमस्कार किया।

फिर भगवान को मणिमय सिंहासन पर विराजमान कर बड़े उत्साह से साथ पंचामृत कलशाभिषेक किया व अष्ट द्रव्यों से पूजा की। भगवत् आराधना के पश्चात् राजा मुनिराज के पास पहुँचा व नमस्कार कर चरण समीप बैठ गया और मुनिराज से प्रार्थना की- हे मुनिवर! कृपाकर धर्म श्रवण कराओ।

उधर रानी पृथ्वीदेवी (राजा की पट्टरानी ने) दोनों कर जोड़े विनम्र निवेदन किया कि हे मुनिवर! इस भव में मुझे सब सुख प्राप्त है, परन्तु संतान के अभाव में मेरा जन्म निरर्थक है।

कुछ क्षण रूककर मुनिराज ने जवाब दिया कि हे देवी! तुम्हारे अंतराय कर्म का उदय है, अस्तु तुम्हारे कोई संतान

नहीं है। रानी ने पुनः निवेदन किया किह हे महाराज! ऐसा कोन सा पूर्वभव का उदय है, कृपाकर समझाइये, अर्थात् मेरे अंतराय कर्म होने का पूर्व भव सुनाइये-

भरतक्षेत्र में काश्मीर नाम का एक विशाल देश हैं जिसमें रत्नसंचपुर नामका एक सुंदर नगर है। वहाँ एक वैश्य कुल में उत्पन्न श्रीवत्स नामका राजा सेठ रहता था। जिसकी सेठानी का नाम श्रीमती था। वह अत्यंत सुंदर एवं गुणवान थी। दोनों सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। तब इसी नगर में चैत्यालय की वंदना हेतु मुनिगुप्त नाम के दिव्यज्ञान धारी अन्य 500 मुनियों के साथ पधारे।

मुनिगण के दर्शन पाकर राजा सेठ अत्यंत प्रसन्न हुआ और अपना जन्म सफल समझा। उसने मुनि महाराज को नमोस्तु कर मुनिसंघ को अपने उद्यान में ले गया। घर जाकर अपनी स्त्री श्रीमती से कहा कि तुम आहार की व्यवस्था शीघ्र करो, आज हमारा पुण्योदय हैं जिससे विशाल मुनि संघ का आगमन हुआ है।

किन्तु सेठानी ने सुनी अनसुनी कर दी और कोई व्यवस्था नहीं की। सेठ स्वयं आया और शुद्धतापूर्वक बहुत से पकवान तैयार कर सात गुणों से नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। सबके निरंतराय आहार से वह बहुत संतुष्ट हुआ। महाराज ने सेठ को 'अक्षयदानमस्तु' नाम का आशीर्वाद दे विहार किया।

इधर सेठानी श्रीमती अत्यंत क्रोधित हुई और अंतराय कर्म का बन्ध हो गया, उसी अंतराय कर्म से तेरे इस भव से संतान नहीं है।

रानी ने मुनि महाराज के मुँह से अपना पूर्व भव सुना तो वह अपने कुकृत्य पर अत्यंत दुःखी हुई और प्रार्थना की कि है मुनिराज! अंतराय कर्म नष्ट हो इसके लिए कोई उपाय बताओ जिससे मुझे संतान-सुख की प्राप्ती हो।

मुनि ने कहा-हे महादेवी! तुम अपने कर्मों का क्षय करने हेतु अक्षयतृतीया व्रत विधि पूर्वक करो। यह व्रत सर्व सुख को देने वाला तथा अपनी इष्ट पूर्ति करने वाला है।

रानी ने प्रश्न किया-हे मुनिश्वर! यह व्रत पहले किसने किया और क्या फल आया? इसकी कथा सुनाईये-

मुनिराज ने कहा कि रानी! इसकी भी पूर्वकथा सुनो-

विशाल जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र क विषे मगधदेश नामका एक देश हैं। उसी देश में एक नदी के किनारे सहस्त्रकूट नामका चैत्यालय स्थित है। उस चैत्यालय की वंदना हेतु एक धनिक नाम का वैश्य अपनी सुंदरी नामा स्त्री सहित गया। वहाँ कुण्डल पंडित नामका एक विद्याधर अपनी स्त्री मनोरमा देवी सहित उक्त व्रत (अक्षय तीज व्रत) का विधान कर रहे थे। उस समय (पति पत्नी) धनिक सेठ व सुंदरी नामा स्त्री ने विद्याधर युगल से पूछा कि यह आप क्या कर रहे हो-अर्थात् यह किस व्रत का विधान है?

विद्याधर ने जबाद दिया कि इस अवसर्पिणीकाल में अयोध्या नगरी में पहिले नाभिराय नाम के अंतिम मनु हुए। उनके मरुदेवी नामकी पट्टरानी थी। रानी के गर्भ में जब प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ आये तब गर्भकल्याणक उत्सव देवों ने बड़े ठाठ से मनाया और जन्म होने पर जन्मकल्याणक मनाया। फिर दीक्षाकल्याणक होने के बाद आदिनाथ जी ने छः मास तक घोर तपस्या की। छः माह के बाद चर्चा (आहार) विधि के लिए आदिनाथ भगवान ने अनेक ग्राम के नगर शहर में विहार किया किन्तु जनता वे राजलोगों को आहार की विधि मालूम न होने के कारण भगवान को धन, कन्या, पैसा, सवारी आदि अनेक वस्तु भेंट की। भगवान के यह सब अंतराय का कारण जानकर पुनः वन में पहुँच छः माह की तपश्चरण योग धारण कर लिया।

अवधि पूर्ण होने के बाद पारणा करने के लिए चर्या मार्ग से इर्यापथ शुद्ध करते हुए ग्राम नगर में भ्रमण करते करते कुरुजंगल नामक देश में पधारे। वहाँ हस्तिनापुर नामके नगर में कुरुवंश का शिरोमणि महाराजा सोम राज्य करते थे। उनके श्रेयांस नाम का एक भाई था उसने सर्वार्थसिद्धि नामक स्थान से चयकर यहाँ जन्म लिया था।

एक दिन रात्रि के समय सोते हुए उसे रात्रि के अखिरी भाग में कुछ स्वप्न आये। उन स्वप्नों में मंदिर, कल्पवृक्ष

सिंह, वृषभ, चंद्र, सूर्य, समुद्र, आग, मंगल, द्रव्य, यह अपने राजमहल के समक्ष स्थित हैं ऐसा उस स्वप्न में देखा तदनंतर प्रभातवेला में उठकर उक्त स्वप्न अपने ज्येष्ठ भ्राता से कहा-तब ज्येष्ठ भ्राता सोमप्रभ ने अपने विद्वान पुरोहित को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। पुरोहित ने जवाब दिया हे राजन्! आपके घर श्री आदिनाथ भगवान पारणा के लिए पधारेंगे, इससे सबको आनंद हुआ।

इधर भगवान आहार हेतु इर्या समितिपूर्वक भ्रमण करते हुए उस नगर में राजमहल के सामने पधारे तब सिद्धार्थ नाम का कल्पवृक्ष ही मानो अपने सामने आया है-ऐसा सबको भास हुआ। राजा श्रेयांस को आदिनाथ भगवान का श्रीमुख देखते ही उसी क्षण अपने पूर्वभव में श्रीमती वज्र जंघ की अवस्था में एक सरोवर के किनारे दो चारण मुनियों को आहार दिया था-उसका जातिस्मरण हो गया। अतः आहार दान की समस्त विधि जानकर श्री आदिनाथ भगवान को तीन प्रदक्षिणा देकर पडगाहन किया वा भोजनगृह में ले गये।

'प्रथम दान विधि कर्ता' ऐसा वह दाता श्रेयांस राजा और उनकी धर्मपत्नी सुमतीदेवी व ज्येष्ठ बंधु सोमप्रभ राजा अपनी पत्नी लक्ष्मीमती सहित आदि सबों ने मिलकर श्री आदिनाथ भगवान को सुवर्ण कलशों द्वारा तीन खंडी (बंगाली तोल) इक्षुरस नवधा भक्तिपूर्वक आहार में दिया। तीन खंडों में से एक खंडी इक्षुरस तो अंजूली में होकर निकल गया और दो खंडीरस पेट में गया।

इस प्रकार भगवान आदिनाथ की आहार चर्या निरंतराय सम्पन्न हुई। इस कारण उसी वक्त स्वर्ग के देवों ने अत्यंत हर्षित होकर पंचाश्चर्य (रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि गंधोदक वृष्टि देव दुंदुभि, बाजों का बजना व जय जयकार शब्द का होना) दृष्टि हुई और सबों ने मिलकर अत्यंत प्रसन्नता मनाई।

आहार चर्या करके वापिस जाते हुए भगवान आदिनाथ ने सब दाताओं 'अक्षयदानस्तु' अर्थात् दान इसी प्रकार कायम रहे। इस आशय का आशीर्वाद दिया, यह आहार वैशाख सुदी तीज को सम्पन्न हुआ था।

जब आदिनाथ निरन्तराय आहार करके वापिस विहार कर गये। उसी समय से अक्षयतीज नाम का पुण्य दिवस प्रारंभ ह ुआ। (इसी को आखा तीज भी कहते हैं) यह दिन हिन्दु धर्म में भी बहुत पवित्र माना जाता है। इस रोज शादी विवाह प्रचुर मात्रा में होते हैं।

श्रेयांस राजा ने आदि तीर्थंकर को आहार देकर दान की उन्नति की दान को प्रारंभ किया। इस प्रकार दान की उन्नति व महिमा समझकर भरतचक्रवर्ती, अकम्पन आदि राजपुत्र व सपरिवारसहित श्रेयांस व उनके सह राजाओं का आदर से साथ सत्कार किया। प्रसन्नचित्त हो अपने नगर को वापिस आये।

उक्त सर्व वृतांत (कथा) सुप्रभनाम के चारण मुनि के मुख से पृथ्वीदेवी ने एकाग्र चित्त से श्रवण किया। वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने मुनि को नमस्कार किया। तथा उक्त अक्षयतीज व्रत को ग्रहण करके सर्व जन परिजन सहित अपने नगर को वापिस आये। पृथ्वीदेवी ने (समयानुसार) उस व्रत की विधि अनुसार सम्पन्न किया। पश्चात् यथाशक्य उद्यापन किया। चारों प्रकार के दान चारों संघको बांटे। मंदिरों में मूर्तियाँ विराजमान की। चमर, छत्र आदि बहुत से वस्त्राभूषण मंदिर जी को भेंट चढ़ाये।

उक्त व्रत के प्रभाव से उसने 32 पुत्र और 32 कन्याओं को जन्म दिया। साथ ही बहुत्सा वैभव और धन कंचन प्राप्त कराया आदि ऐश्वर्य से समृद्ध होकर बहुत काल तक अपने पति सहित राज्य का भोग किया और अनंत ऐश्वर्य को प्राप्त किया।

पश्चात् वह दम्पति वैराग्य प्रवर होकर जिनदीक्षा धारण करके 'तपश्चर्या' करने लगे। और तपोबल से मोक्ष सुख को प्राप्त किया। अस्तु! हे भविकजनों! तुम भी इस प्रकार अक्षय तृतीया व्रत को विधिपूर्वक पालन कर यथाशक्ति उद्यापन कर अक्षय सुख प्राप्त करो। यह व्रत सब सुखों को देने वाला है व क्रमशः मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है-

यह व्रत वैशाख सुदी तीज से प्रारंभ होता है। और वैशाख सुदी सप्तमी तक (5 दिन पर्यंत) किया जाता है। पाँचों दिन शुद्धतापूर्वक एकाशन करे या 2 उपवास और 3 एकाशन करें।

इसकी विधि यह है कि व्रत की अवधि प्रातः नैमित्तिक क्रिया से निवृत्त होकर मंदिर जी को जावें। मंदिर जी में जाकर शुद्ध भावों से भगवान की दर्शन स्तुति करें। पश्चात् भगवान को (आदिनाथ भगवान की प्रतिमा) सिंहासन पर विराजमान कर कलशाभिषेक करें। नित्य-नियम पूजा, भगवान आदि तीर्थंकर (आदिनाथ जी) की पूजा एवं पंचकल्याणक मण्डल जी बनवाकर मण्डल की पूजा करें। तीनों काल (प्रातः मध्यान्ह, सायं) निम्नलिखित मंत्र का जाप्य (माला) करें वह सामायिक करें।

मंत्र-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं आदिनाथ तीर्थंकराय गोमुख चक्रेश्वरी यक्ष यक्षी सहिताय नमः स्वाहा। प्रातः सायं-णमोकार मंत्र का शुद्धोचारण करते हुए जाप्य करें।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

व्रत के समय में गृहादि समस्त क्रियाओं से दूर रहकर स्वाध्याय, भजन, कीर्तन आदि में समय यापन करें। रात्रि में जागरण करे। दिन भर जिनचैत्यालय में ही रहें। व्रत अवधि में ब्रह्मचर्य से रहे। हिंसादि पाँचों पापों का अणुव्रत रूप से त्याग करें। क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायों को शमन करें।

पूजनादि के पश्चात् प्रतिदिन मुनिश्वरादि चार प्रकार के संघ को चारों प्रकार का दान देवें, आहार करावें, फिर स्वयं पारणा करें। प्रतिदिन अक्षय तीज व्रत की कथा सुनें व सुनावें।

(नोट-व्रत के समय स्त्री यदि रजस्वला हो जावे तो प्रतिदिन (एक) रस छोड़कर पारणा करें।)

इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत को 5 वर्ष करें। व्रत पूर्ण होने पर यथाशक्ति उद्यापन करें। भगवान आदिनाथ की प्रतिमा मंदिरजी में स्थापित करें तथा चार संघ को चार प्रकार का दान देवें।

इस प्रकार शुद्धतापूर्वक विधिवत् व्रत करने से सर्व सुख की प्राप्ति होती है। तथा साथ ही क्रम से अक्षय सुख अर्थात् मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है।



कालसर्पयोग निवारक

श्री पार्श्वनाथ व्रत

इस व्रत में 108 उपवास या एकाशन करना है। इसमें तिथि का कोई नियम नहीं है अथवा प्रत्येक रविवार को भी यह व्रत कर सकते हैं।

व्रत के दिन भगवान पार्श्वनाथ का अभिषेक एवं पूजा करके प्रथम समुच्चय जाप्य करना पुनः एक-एक मंत्र की जाप्य करना। 108 व्रतों में क्रम से एक-एक जाप्य करना है। यह मंत्र सर्व मनोरथों को सफल करने वाला है। धन की वृद्धि, पुत्र की प्राप्ति आदि जिस भावना को लेकर यह व्रत किया जावेगा, वही भावना पूर्ण होगी।

व्रत पूर्णकर उद्यापन में भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान कराना, 108 ग्रंथ दान देना, मुनि, आर्यिका आदि को पिच्छी-कमण्डलु आदि देना चाहिए।

समुच्चय जाप्य–

1. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं धरणेन्द्रपद्मावतीसेवितचरणकमलाय श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय नमः।

अथवा

2. ॐ ह्रीं अर्हं धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

अथवा

3. ॐ ह्रीं कमठोपसर्गविजयिने श्रीपार्श्वनाथस्वामिने नमः कालसर्पयोगनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

108 व्रतों में प्रत्येक व्रत के 108 मंत्र–

ॐ ह्रीं अर्हं अन्तरंगानन्तचतुष्टय-बहिरंगाष्टमहाप्रातिहार्यलक्ष्मीसमन्विताय 'श्रीमान्' इति नाम विभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं अन्तरङ्ग-बहिरंगपरिग्रहविरहितदिगम्बरमुद्रांकितमुनिगणस्वामिने 'निर्ग्रन्थराट्' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं स्वज्ञादिगुणस्वरूपधनयुक्ताय 'स्वामी' इति गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं द्वादशसभारूपगणाधिपतये 'गणेश' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजगत्स्वामिने 'विश्वनायक' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं स्वयंस्वपुरुषार्थेन अर्हत्पदप्राप्ताय 'स्वयंभू' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं वृषनामधर्मेण शोभिताय 'वृषभ' गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं हितोपदेशेन समस्तजीवपोषणाय अनन्तगुणधारकाय 'भर्ता' इति गुणविशिष्टाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं समस्तपदार्थस्वस्मिन् प्रतिबिंबीकरणाय 'विश्वात्मा' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।9।।

ॐ ह्रीं अर्हं पुनर्जन्मरहिताय 'अपुनर्भव' गुणविशिष्टाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।10।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वपदार्थावलोकिने 'सर्वदर्शी' इति गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।11।।

ॐ ह्रीं अर्हं त्रिभुवनस्वामिने 'जगन्नाथ' गुणविशिष्टाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्रनाय नमः।।12।।

ॐ ह्रीं अर्हं धर्मस्वरूपात्मने 'धर्मात्मा' इति नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।13।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजनहितकारिणे 'धर्मबान्धव' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।14।।

ॐ ह्रीं अर्हं धर्मप्राणस्वरूपाय 'धर्ममूर्ति' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।15।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वोत्कृष्टधर्मकारकाय 'महाधर्मकर्ता' इति नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।16।।

ॐ ह्रीं अर्हं परमधर्मदात्रे 'धर्मप्रद' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।17।।

ॐ ह्रीं अर्हं विशिष्टैश्वर्यसहिताय 'विभु' गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।18।।

ॐ ह्रीं अर्हं स्पर्शरसगंधवर्ण स्वरूपमूर्तगुणविरहिताय 'अमूर्त' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।19।।

ॐ ह्रीं अर्हं परमोत्कृष्टपुण्यस्वरूपाय 'अत्यन्त पुण्यात्मा' इति नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।20।।

ॐ ह्रीं अर्हं अन्तविरहिताय 'अनन्त' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।21।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनन्तवीर्यसहिताय 'अनन्तशक्तिमान्' इति नामधेयाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।22।।

ॐ ह्रीं अर्हं भव्यजनशरणदानकुशलाय 'शरण्य' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।23।।

ॐ ह्रीं अर्हं अखिललोकहितंकरस्वामिने 'विश्वलोकेश' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।24।।

ॐ ह्रीं अर्हं परमकारुणिकगुणान्विताय 'दयामूर्ति' गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।25।।

ॐ ह्रीं अर्हं महत्पदप्रदानसमर्थमहाव्रतसहिताय 'महाव्रती' इति गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।26।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वश्रेष्ठप्रशस्तवचनसहिताय 'वाग्मी' इति नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।27।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणसभायां चतुर्दिग्मुखप्रदर्शिताय 'चतुर्मुख' नामप्रसिद्धाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।28।।

ॐ ह्रीं अर्हं स्वकीयगुणवृद्धिंकराय 'ब्रह्मा' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।29।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वकर्मविप्रमुक्ताय 'निष्कर्मा' इति नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।30।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वप्रकारेण पञ्चेन्द्रियमनोविजयिने 'निर्जितेन्द्रिय' गुणसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।31।।

ॐ ह्रीं अर्हं कामदेवमल्लविजयिने 'मारजित्' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।32।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनन्तसंसारमूलकारणमिथ्यात्वविजयिने 'जितमिथ्यात्व' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।33।।
ॐ ह्रीं अर्हं घातिकर्मविघातकाय 'कर्मघ्न' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।34।।
ॐ ह्रीं अर्हं मृत्युमहामल्लस्यान्तकरणकुशलाय 'यमान्तक' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।35।।
ॐ ह्रीं अर्हं दिग्वस्त्रधारकनिर्विकारनग्नमुद्रांकिताय 'दिगम्बर' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।36।।
ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानेन त्रिभुवनज्ञायकगुणान्विताय 'जगद्व्यापी' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।37।।
ॐ ह्रीं अर्हं अखिलभव्यजनहितकारिणे 'भव्यबंधु' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।38।।
ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यगौरवपदप्राप्ताय 'जगद्गुरु' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।39।।
ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजनमनोरथपूर्णकरणनिपुणाय 'कामद' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।40।।
ॐ ह्रीं अर्हं जगज्जयिमदनरिपुमर्दकाय 'कामहंता' इति गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।41।।
ॐ ह्रीं अर्हं त्रिभुवनजनातिप्रियसौंदर्यप्राप्ताय 'सुन्दर' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।42।।
ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजनताल्हादनकराय 'आनन्ददायक' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।43।।
ॐ ह्रीं अर्हं कर्मशत्रुविजयिनामपि वर्याय 'जिनेन्द्र' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।44।।
ॐ ह्रीं अर्हं अनन्तानुबंध्यादिकर्मविजयिस्वामिने 'जिनराट्' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।45।।
ॐ ह्रीं अर्हं संपूर्णकेवलज्ञानापेक्षया सर्वत्र विश्वव्यापकाय 'विष्णु' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।46।।
ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यपूज्यपरमपदे स्थिताय 'परमेष्ठी' इति नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।47।।
ॐ ह्रीं अर्हं अनादिकालाद् ज्ञानस्वभावाय 'पुरातन' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।48।।
ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानैकज्योतिर्मयाय 'ज्ञानज्योतिः' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।49।।
ॐ ह्रीं अर्हं परमपावनस्वभावाय 'पूतात्मा' इति नामविशिष्टाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।50।।
ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजगत्प्रसिद्धहरिहरादिष्वपि श्रेष्ठाय 'महान्' इति नामविशिष्टाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।51।।
ॐ ह्रीं अर्हं संसारिजन-इन्द्रियैरग्राह्याय 'सूक्ष्म' गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।52।।
ॐ ह्रीं अर्हं त्रिजगत्स्वामिने 'जगत्पति' नाम विभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।53।।
ॐ ह्रीं अर्हं सर्वोदयीपरम-अहिंसामयी धर्मचक्रप्रवर्तकाय 'धर्मचक्रि' गुणविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।54।।
ॐ ह्रीं अर्हं अत्यन्तशान्तस्वभावपरिणताय 'प्रशान्तात्मा' इति गुणसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।55।।
ॐ ह्रीं अर्हं कर्माञ्जनलेपविरहिताय 'निर्लेप' गुणसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।56।।
ॐ ह्रीं अर्हं द्रव्यस्वभावापेक्षया कल–शरीरविरहिताय 'निष्कल' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।57।।
ॐ ह्रीं अर्हं मृत्युमहामल्लविजयिने 'अमर' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।58।।
ॐ ह्रीं अर्हं शुद्धबुद्धस्वभाव-स्वात्मोपलब्धिस्वरूपाय 'सिद्ध' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।59।।
ॐ ह्रीं अर्हं परिपूर्णकेवलज्ञानयुक्ताय 'बुद्ध' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।60।।
ॐ ह्रीं अर्हं जगत्ख्यातिप्राप्तात्मने 'प्रसिद्धात्मा' इति गुणविशिष्टाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।61।।
ॐ ह्रीं अर्हं अन्तरंग-बहिरंगविभूतिधारकत्रिजगत्पूज्याय 'श्रीपति' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।62।।
ॐ ह्रीं अर्हं प्रसिद्धपुरुषाणामपि श्रेष्ठपदप्राप्ताय 'पुरुषोत्तम' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।63।।
ॐ ह्रीं अर्हं सर्वभाषामयीदिव्यध्वनिस्वामिने 'दिव्यभाषापति' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।64।।
ॐ ह्रीं अर्हं स्वयंप्रकाशपुञ्जसुंदराय 'दिव्य' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।65।।
ॐ ह्रीं अर्हं स्वकीयशुद्धबुद्धनित्यनिरंजनस्वभावात् च्यवनविरहिताय 'अच्युत' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।66।।

ॐ ह्रीं अर्हं दिव्यैश्वर्यसमन्वितशतेन्द्रनम्रीभूतकरणसमर्थ-परमैश्वर्यविभूषिताय 'परेश्वर' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।67।।

ॐ ह्रीं अर्हं अन्तरंगबहिरंगतपश्चरणबलेन तपनशीलात्मस्वभावाय 'महातपा' इति नामसहिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।68।।

ॐ ह्रीं अर्हं कोटिसूर्यचन्द्रातिशायिप्रकाशसहिताय 'महातेजा' इति नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।69।।

ॐ ह्रीं अर्हं अन्तिमशुक्लध्यानपरिणतस्वभावाय 'महाध्यानी' इति गुणसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।70।।

ॐ ह्रीं अर्हं द्रव्यकर्मभावकर्मनोकर्मरूपाञ्जनविरहिताय 'निरञ्जन' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।71।।

ॐ ह्रीं अर्हं अहिंसामयीपरमधर्माम्नायकर्त्रे 'तीर्थकर्ता' इति नामविशिष्टाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।72।।

ॐ ह्रीं अर्हं हेयोपादेयविचारविज्ञाय 'विचारज्ञ' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।73।।

ॐ ह्रीं अर्हं स्वपरभेदविज्ञानबलेन सर्वोत्तमज्ञानप्राप्ताय 'विवेकी' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।74।।

ॐ ह्रीं अर्हं अष्टादशसहस्रशीलगुणविभूषिताय 'शीलभूषण' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।75।।

ॐ ह्रीं अर्हं अपरिमितमाहात्म्यसमन्विताय 'अनन्तमहिमा' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।76।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वभव्यजीवहितकरणसमर्थाय 'दक्ष' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।77।।

ॐ ह्रीं अर्हं शरीरालंकरणकारणनानाभूषणविरहिताय 'निर्भूष' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।78।।

ॐ ह्रीं अर्हं शत्रुनिवारणहेतुनानाविधायुध-शस्त्रविरहिताय 'विगतायुध' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।79।।

ॐ ह्रीं अर्हं लोकालोकज्ञायकाय 'सर्वज्ञ' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।80।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वचराचरजगदवलोकनकराय 'सर्वदृक्' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।81।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजनहितैषिणे 'सार्व' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।82।।

ॐ ह्रीं अर्हं अत्यन्तसौम्यस्वभावाय 'सुसौम्यात्मा' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।83।।

ॐ ह्रीं अर्हं कर्मशत्रुविजयिजिनानां मुख्याय 'जिनाग्रणी' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।84।।

ॐ ह्रीं अर्हं अपराजितादिचतुरशीतिलक्षमंत्रस्वरूपाय 'मंत्रमूर्ति' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।85।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वदेवेषु श्रेष्ठमहापूजाप्राप्ताय 'महादेव' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय नमः।।86।।

ॐ ह्रीं अर्हं चतुर्णिकायदेवानामुपरि श्रेष्ठपरमोत्तमदेवपदप्राप्ताय 'देवदेव' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।87।।

ॐ ह्रीं अर्हं अत्यन्तस्वच्छपवित्रहृदयाय 'अतिनिर्मल' नामप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।88।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वकार्यपूर्णीकृताय 'कृतकृत्य' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।89।।

ॐ ह्रीं अर्हं अष्टादशमहादोषविरहिताय 'अतिनिर्दोष' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।90।।

ॐ ह्रीं अर्हं जगत्पालकस्वरूपाय 'परंब्रह्मा' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।91।।

ॐ ह्रीं अर्हं अतिशयगुणधारकाय 'महागुणी' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।92।।

ॐ ह्रीं अर्हं दिव्य-परमौदारिकदेहसमन्विताय 'दिव्यदेह' विभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।93।।

ॐ ह्रीं अर्हं अतिशयसौंदर्यगुणसमन्विताय 'महारूप' नामधारकाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।94।।

ॐ ह्रीं अर्हं स्वभावदृष्ट्या विनाशविरहिताय 'नित्य' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।95।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वशक्तिमद्मृत्युमल्लविजयिने 'मृत्युंजय' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।96।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वकार्यकरणसमर्थाय 'कृती' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।97।।

ॐ ह्रीं अर्हं मोक्षपदप्रापणकारणसर्वयम-नियमसमन्विताय 'यमी' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।98।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रेण्यारोहणसमर्थयतीनामीश्वराय 'यतीश्वर' नामविशिष्टाय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।99।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्कर्मरूपजगत्सृष्टि-उपदेशकाय 'स्रष्टा' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।100।।

ॐ ह्रीं अर्हं त्रिभुवनभव्यजनस्तुतियोग्याय 'स्तुत्य' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।101।।

ॐ ह्रीं अर्हं अन्तरंगकर्ममलबहिरंगशरीरादिमलविरहितपवित्राय 'पूत' नामविशिष्टायश्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।102।।

ॐ ह्रीं अर्हं चतुर्विधदेवगणशतेन्द्रपूजिताय 'अमरार्चित' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।103।।

ॐ ह्रीं अर्हं समस्तविद्यानां स्वामिने 'विद्येश' नामसमन्विताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।104।।

ॐ ह्रीं अर्हं मनोवचनकाययोगनिमित्तात्मप्रदेश-परिष्पंदनक्रियाविरहिताय 'निष्क्रिय' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।105।।

ॐ ह्रीं अर्हं दशलक्षण-रत्नत्रय-दयामय-वस्तुस्वभावरूपधर्मसमन्विताय 'धर्मी' इति नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।106।।

ॐ ह्रीं अर्हं सद्योजातबालकवन्निर्विकाररूपधारकाय 'जातरूप' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।107।।

ॐ ह्रीं अर्हं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सयोग्ययोगिकेवलिनामपिश्रेष्ठतमाय भव्यभाक्तिकजनानां ईप्सितकेवलज्ञान-लक्ष्मीप्रदानकुशलाय 'विदांवर' नामविभूषिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः।।108।।

त्रैलोक्य जिनालय व्रत

तीनलोक में अकृत्रिम–शाश्वत जिनमंदिर आठ कोटि–करोड़, छप्पनलाख, सत्तानवे हजार, चार सौ इक्यासी होते हैं। इनमें से अधोलोक में 7 करोड़ 72 लाख जिनमंदिर हैं। मध्यलोक में 458 जिनमंदिर हैं और ऊर्ध्वलोक में 84 लाख 97 हजार 23 जिनमंदिर हैं। व्यन्तर देवों के असंख्यात जिनमंदिर हैं एवं ज्योतिर्वासी देवों के भी असंख्यात जिनमंदिर हैं। इन दोनों की संख्या न कर सकने से उपर्युक्त मंदिरों की गणना में इनकी संख्या नहीं आ पाती है।

यहाँ तीनों लोकों के अकृत्रिम जिनमंदिरों के 48 व्रत हैं। उत्कृष्ट विधि उपवास है एवं जघन्यविधि एकाशन–एक बार शुद्ध भोजन करके व्रत करने की है। इस व्रत में तिथि का कोई नियम नहीं है।

व्रत के दिन जिनप्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके तीन लोक यंत्र का अभिषेक करके त्रैलोक्य पूजा करना चाहिए। व्रत पूर्णकर उद्यापन में जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा कराना, 48 ग्रंथ मुनि, आर्यिका आदि को देना आदि यथाशक्ति दान करना चाहिए।

इनमें अधोलोक के भवनवासी देवों के दश भेदों की अपेक्षा दश व्रत हैं। मध्यलोक के 12 व्रत एवं व्यन्तर देवों के 8 भेदों की अपेक्षा 8 व्रत हैं। ज्योतिषीदेवों के 5 भेदों की अपेक्षा 5 व्रत हैं। ऊर्ध्वलोक के 12 व्रत हैं एवं एक सिद्धशिला का ऐसे 10+12+8+5+12+1=48 हो जाते हैं। इनका स्पष्टीकरण–

भवनवासी के असुरकुमारेन्द्र के 64 लाख जिनमंदिर का –1
नागकुमार के 84 लाख मंदिर का –1
सुपर्णकुमार के 72 लाख मंदिर का –1
उदधिकुमार के 76 लाख मंदिर का –1
स्तनित कुमार के 76 लाख मंदिर का –1
विद्युत्कुमार के 76 लाख मंदिर का –1
दिक्कुमार के 76 लाख मंदिर का –1
अग्नि कुमार के 76 लाख मंदिर का –1
वायु कुमार के 96 लाख मंदिर का –1 = 10 हो गये।

मध्यलोक के 458 में–

पाँच मेरु के 80 जिनमंदिर का	–1
बीस गजदंत के 20 जिनमंदिर का	–1
दश जंबूवृक्षादि वृक्षों के 20 जिनमंदिर का	–1
अस्सी वक्षार के 80 जिनमंदिर का	–1
एक सौ सत्तर विजयार्ध के 170 जिनमंदिर का	–1
तीस कुलाचल के 30 जिनमंदिर का	–1
चार इष्वाकार के 4 जिनमंदिर का	–1
मानुषोत्तर के 4 जिनमंदिर का	–1
नंदीश्वर द्वीप के 52 जिनमंदिर का	–1
कुंडलगिरि के 4 जिनमंदिर का	–1
रुचकगिरि के 4 जिनमंदिर का	–1
ढाई द्वीप संबंधी कृत्रिम जिनमंदिरों का	–1 = 12 हुए।

व्यन्तर देवों के 8 भेदों के मंदिरों के 8–

किन्नर देवों के जिनमंदिरों का	–1
किंपुरुष देवों के जिनमंदिरों का	–1
महोरग देवों के जिनमंदिरों का	–1
गंधर्व देवों के जिनमंदिरों का	–1
यक्ष देवों के जिनमंदिरों का	–1
राक्षस देवों के जिनमंदिरों का	–1
भूत देवों के जिनमंदिरों का	–1
पिशाच देवों के जिनमंदिरों का	–1= 8 हो गये।

ज्योतिर्वासी के 5 भेदों के जिनमंदिरों के 5–

चन्द्रमा देवों के जिनमंदिरों का	–1
सूर्य देवों के जिनमंदिरों का	–1
ग्रह देवों के जिनमंदिरों का	–1
नक्षत्र देवों के जिनमंदिरों का	–1
तारा देवों के जिनमंदिरों का	–1 = 5 हो गये।

ऊर्ध्वलोक देवों के 12 व्रत–

सौधर्मेन्द्र के 32 लाख जिनमंदिरों का	–1
ईशानेन्द्र के 28 लाख जिनमंदिरों का	–1
सानत्कुमारेन्द्र के 12 लाख जिनमंदिरों का	–1
माहेन्द्रेन्द्र के 8 लाख जिनमंदिरों का	–1
ब्रह्मयुगल के 4 लाख जिनमंदिरों का	–1
लांतवयुगल के 50 हजार जिनमंदिरों का	–1
शुक्रयुगल के 40 हजार जिनमंदिरों का	–1

शतारयुगल के 6 हजार जिनमंदिरों का —1
आनत-प्राणत, आरण—अच्युत के 700 जिनमंदिरों का —1
नवग्रैवेयक के 309 जिनमंदिरों का —1
नवअनुदिश के 9 जिनमंदिरों का —1
पंचअनुत्तर के 5 जिन मंदिरों का —1 = 12

एवं सिद्धशिला का 1—

ऐसे 10 +12+8+5+12+1=48 व्रत हुए हैं।

इनके मंत्र निम्न प्रकार हैं—

समुच्चय जाप्य – ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यशाश्वतजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

अथवा –ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यसंबंधि-कृत्रिमाकृत्रिमसर्वजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

यह समुच्चय जाप्य-प्रत्येक व्रत में करनी चाहिए।

भवनवासी के जिनमंदिरों के 10 मंत्र

1. ॐ ह्रीं असुरकुमारदेवभवनस्थितचतुःषष्टिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं नागकुमारदेवभवनस्थितचतुरशीतिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं सुपर्णकुमारदेवभवनस्थितद्वासप्ततिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं द्वीपकुमारदेवभवनस्थितषट्सप्ततिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं उदधिकुमारदेवभवनस्थितषट्सप्ततिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं स्तनितकुमारदेवभवनस्थितषट्सप्ततिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नम;।
7. ॐ ह्रीं विद्युत्कुमारदेवभवनस्थितषट्सप्ततिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं दिक्कुमारदेवभवनस्थितषट्सप्ततिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं अग्निकुमारदेवभवनस्थितषट्सप्ततिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
10. ॐ ह्रीं वायुकुमारदेवभवनस्थितषण्णवतिलक्षजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।

मध्यलोक के जिनमंदिरों के 12 मंत्र

11. ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं गजदन्तसंबंधि-विंशतिजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं जंबूवृक्षादिसंबंधि-दशजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं वक्षारपर्वतसंबंधि-अशीतिजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं विजयार्धपर्वतसंबंधि-सप्तत्यधिकशतजिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं कुलाचलपर्वतसंबंधि-त्रिंशद्जिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं इष्वाकारपर्वतसंबंधि-चतुर्जिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वतसंबंधि-चतुर्जिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपसंबंधि-द्वापंचाशद्जिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं कुंडलवरपर्वतसंबंधि-चतुर्जिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं रुचकवरपर्वतसंबंधि-चतुर्जिनालय जिनबिंबेभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधिपंचदशकर्मभूमिस्थितकृत्रिमजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

व्यंतर देव जिनालयों के 8 मंत्र

23. ॐ ह्रीं मध्यलोके अंजनकद्वीपस्थितकिन्नरजातिव्यंतरदेवभवन-भवनपुरावाससंबंधि-संख्यातीतजिनालय-जिनबिंबेभ्यो नमः।

24. ॐ ह्रीं मध्यलोके वज्रधातुकद्वीपस्थितकिंपुरुषजातिव्यंतरदेवभवन-भवनपुरावाससंबंधि-असंख्यात-जिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

25. ॐ ह्रीं मध्यलोके सुवर्णद्वीपस्थितमहोरगजातिव्यंतरदेवभवनादिसंबंधि-असंख्यात-जिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

26. ॐ ह्रीं मध्यलोके मनःशिलकद्वीपस्थितगंधर्वजातिव्यंतरदेवभवनादिसंबंधि-असंख्यात-जिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

27. ॐ ह्रीं मध्यलोके वज्रद्वीपस्थितयक्षजातिव्यंतरदेवभवनादिसंबंधि-असंख्यातजिनालय-जिनबिंबेभ्यो नमः।

28.ॐ ह्रीं अधोमध्यलोके पंकभागस्थितराक्षसजातिव्यंतरदेवभवन-रजतद्वीपस्थितभवन-भवनपुरनानास्थल-स्थितावाससंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

29. ॐ ह्रीं अधोमध्यलोके खरभागस्थितभूतजातिव्यंतरदेवभवन-हिंगुलकद्वीपस्थितभवन-भवनपुरनानास्थल-स्थितावाससंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

30. ॐ ह्रीं मध्यलोके हरितालद्वीपस्थितपिशाचजातिव्यंतरदेवभवनादिसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

अथवा व्यंतरदेव जिनालयों के सरल 8 मंत्र

[23. ॐ ह्रीं किन्नरजातिव्यंतरदेवसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

24. ॐ ह्रीं किंपुरुषजातिव्यंतरदेवसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

25. ॐ ह्रीं महोरगजातिव्यंतरदेवसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

26. ॐ ह्रीं गंधर्वजातिव्यंतरदेवसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

27. ॐ ह्रीं यक्षजातिव्यंतरदेवसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

28. ॐ ह्रीं राक्षसजातिव्यंतरदेवसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

29. ॐ ह्रीं भूतजातिव्यंतरदेवसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

30. ॐ ह्रीं पिशाचजातिव्यंतरदेवसंबंधि-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।]

ज्योतिष्कदेव जिनालयों के 5 मंत्र

31. ॐ ह्रीं मध्यलोके चन्द्रविमानस्थित-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

32. ॐ ह्रीं मध्यलोके सूर्यविमानस्थित-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

33. ॐ ह्रीं मध्यलोके ग्रहविमानस्थित-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

34. ॐ ह्रीं मध्यलोके नक्षत्रविमानस्थित-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

35. ॐ ह्रीं मध्यलोके प्रकीर्णकताराविमानस्थित-असंख्यातजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

वैमानिकदेव जिनमंदिरों के 12 मंत्र

36. ॐ ह्रीं सौधर्मेन्द्रसंबंधि-द्वात्रिंशद्लक्षजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

37. ॐ ह्रीं ईशानेन्द्रसंबंधि-अष्टाविंशतिलक्षजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

38. ॐ ह्रीं सानत्कुमारेन्द्रसंबंधि-द्वादशलक्षजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

39. ॐ ह्रीं माहेन्द्र-इन्द्रसंबंधि-अष्टलक्षजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

40. ॐ ह्रीं ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरस्वर्गसंबंधि-चतुर्लक्षजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

41. ॐ ह्रीं लांतवकापिष्ठस्वर्गसंबंधि-पंचाशत्सहस्रजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

42. **ॐ ह्रीं शुक्रमहाशुक्रस्वर्गसंबंधि-चत्वारिंशत्सहस्रजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।**
43. **ॐ ह्रीं शतारसहस्रारस्वर्गसंबंधि-षट्सहस्रजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।**
44. **ॐ ह्रीं आनतप्राणत-आरणाच्युतस्वर्गसंबंधि-सप्तशतकजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।**
45. **ॐ ह्रीं नवग्रैवेयकसंबंधि-नवोत्तरत्रिशतकजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।**
46. **ॐ ह्रीं नवानुदिशसंबंधि-नवजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।**
47. **ॐ ह्रीं पञ्चानुत्तरसंबंधि-पञ्चजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।**

सिद्धशिला का एक मंत्र

48. **ॐ ह्रीं सिद्धशिलोपरिविराजमान-अनन्तानन्तसिद्धेभ्यो नमो नमः।**

यह त्रैलोक्यजिनालय व्रत विधि पूर्ण हुई।

मनोकामना सिद्धि महावीर व्रत एवं मंत्र

व्रत विधि–जैनशासन में पर्वों की भांति ही अनादिकाल से व्रतों की परम्परा भी चली आ रही है जिनमें दो प्रकार के व्रत प्रचलित हैं-1. सोलहकारण, दशलक्षण, पंचमेरु, आष्टान्हिका, रत्नत्रय आदि पर्वों में किये जाने वाले व्रत अनादि कहलाते हैं तथा रोहिणी, रविव्रत, पंचकल्याणक आदि व्रत सादि कहलाते हैं। इनमें ही अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के नाम से मनोकामना सिद्धि महावीर व्रत भी विशेष महिमाशाली व्रत है। पुत्रप्राप्ति तथा अन्य इच्छित फल की प्राप्ति हेतु इस व्रत को किया जाता है। इस व्रत में 108 उपवास किये जाते हैं तथा व्रत वाले दिन 1-1 मंत्र की जाप दिन में तीन बार करना चाहिए। व्रत की उत्तम विधि उपवासपूर्वक है, मध्यम में जल आदि पेय वस्तु दिन में एक बार ली जाती है तथा दिन में एक बार शुद्ध भोजन करना एकाशन कहलाता है यह जघन्यविधि है।

इस व्रत को करने में तिथि का कोई बंधन नहीं है अपनी सुविधा के अनुसार महीने में कम से कम एक व्रत अवश्य करें तथा अधिक से अधिक जितने व्रत चाहें, कर सकते हैं।

व्रत को स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ सभी को अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिए। व्रत वाले दिन भगवान महावीर का अभिषेक-पूजन करें तथा भगवान महावीर का संक्षिप्त जीवनदर्शन आदि पढ़कर धर्मध्यान में दिन को व्यतीत करना चाहिए।

व्रत के उद्यापन में भगवान महावीर की प्रतिमा बनवाकर मंदिर में विराजमान करें, विश्वशांति महावीर विधान का आयोजन करें, मंदिर में यथोचित उपकरण आदि दान दें, भगवान महावीर से संबंधित साहित्य छपाकर वितरित करें तथा 108 लोगों को या कम से कम 24 लोगों को 3-3 फल वितरित करें।

इस व्रत की जाप्य निम्न प्रकार है–

समुच्चय जाप्य–**ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय विश्वशांतिकराय सर्वसौख्यं कुरु कुरु ह्रीं नमः।**

(प्रत्येक व्रत में निम्न मंत्रों की क्रम-क्रम से 1-1 जाप्य करें)

1. ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धिभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
2. ॐ ह्रीं विनयसंपन्नताभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
3. ॐ ह्रीं शीलव्रतेषु अनतिचारभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।

4. ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
5. ॐ ह्रीं संवेगभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
6. ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
7. ॐ ह्रीं शक्तितस्तपोभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
8. ॐ ह्रीं साधुसमाधिभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
9. ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
10. ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तिभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
11. ॐ ह्रीं आचार्यभक्तिभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
12. ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तिभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
13. ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तिभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
14. ॐ ह्रीं आवश्यक-अपरिहाणिभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
15. ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनाभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
16. ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वभावनाबलेन तीर्थंकरपदप्राप्त श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
17. ॐ ह्रीं मातुः ऐरावतहस्तिस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
18. ॐ ह्रीं मातुः महावृषभस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
19. ॐ ह्रीं मातुः सिंहस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
20. ॐ ह्रीं मातुः मालायुगलस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
21. ॐ ह्रीं मातुः लक्ष्मीस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
22. ॐ ह्रीं मातुः चन्द्रस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
23. ॐ ह्रीं मातुः सूर्यस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
24. ॐ ह्रीं मातुः कलशयुगलस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
25. ॐ ह्रीं मातुः मीनयुगलस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
26. ॐ ह्रीं मातुः सरोवरस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
27. ॐ ह्रीं मातुः समुद्रस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
28. ॐ ह्रीं मातुः सिंहासनस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
29. ॐ ह्रीं मातुः देवविमानस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
30. ॐ ह्रीं मातुः धरणेंद्रभवनस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
31. ॐ ह्रीं मातुः रत्नराशिस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
32. ॐ ह्रीं मातुः निर्धूम-अग्निस्वप्नप्रदर्शकाय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
33. ॐ ह्रीं स्वेदरहितजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
34. ॐ ह्रीं मलरहितजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
35. ॐ ह्रीं क्षीरसमरुधिरजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
36. ॐ ह्रीं वज्रऋषभनाराचसंहननजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
37. ॐ ह्रीं समचतुरस्रसंस्थानजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
38. ॐ ह्रीं अनुपमरूपजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
39. ॐ ह्रीं सुगंधशरीरजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।

40. ॐ ह्रीं अष्टोत्तरसहस्रलक्षणजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
41. ॐ ह्रीं अनंतबलजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
42. ॐ ह्रीं प्रियहितमधुरवचनजन्मातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
43. ॐ ह्रीं गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षताकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
44. ॐ ह्रीं आकाशगमनकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
45. ॐ ह्रीं प्राणिवधाभावकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
46. ॐ ह्रीं कवलाहाराभावकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
47. ॐ ह्रीं उपसर्गाभावकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
48. ॐ ह्रीं चतुर्मुखकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
49. ॐ ह्रीं छायारहितकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
50. ॐ ह्रीं नेत्रनिमीलनरहितकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
51. ॐ ह्रीं सर्वविद्यास्वामिकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
52. ॐ ह्रीं नखकेशवृद्धिरहितकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
53. ॐ ह्रीं दिव्यध्वनिकेवलज्ञानातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
54. ॐ ह्रीं सर्व-ऋतुफलपुष्पादिदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
55. ॐ ह्रीं धूलिकंटकादिनिवारणदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
56. ॐ ह्रीं सर्वजनमैत्रीभावदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
57. ॐ ह्रीं रत्नमयीभूमिदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
58. ॐ ह्रीं गंधोदकवृष्टिदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
59. ॐ ह्रीं फलभारनम्रशालिदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
60. ॐ ह्रीं सर्वजनपरमानंददेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
61. ॐ ह्रीं अनुकूलवायुदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
62. ॐ ह्रीं जलभरितकूपादिदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
63. ॐ ह्रीं निर्मलाकाशदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
64. ॐ ह्रीं सर्वजनरोगशोकबाधारहितदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
65. ॐ ह्रीं धर्मचक्रचतुष्टयदेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
66. ॐ ह्रीं चरणकमलतलस्वर्णकमलरचनादेवकृतातिशयसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
67. ॐ ह्रीं अशोकवृक्षप्रातिहार्यसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
68. ॐ ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
69. ॐ ह्रीं सिंहासनप्रातिहार्यसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
70. ॐ ह्रीं द्वादशगणवेष्टितप्रातिहार्यसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
71. ॐ ह्रीं देवदुंदुभिप्रातिहार्यसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
72. ॐ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टिप्रातिहार्यसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
73. ॐ ह्रीं भामंडलप्रातिहार्यसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
74. ॐ ह्रीं चतुःषष्टिचामरप्रातिहार्यसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
75. ॐ ह्रीं अनंतज्ञानगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।

76. ॐ ह्रीं अनंतदर्शनगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
77. ॐ ह्रीं अनंतसौख्यगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
78. ॐ ह्रीं अनंतवीर्यगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
79. ॐ ह्रीं क्षुधामहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
80. ॐ ह्रीं तृषामहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
81. ॐ ह्रीं भयमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
82. ॐ ह्रीं क्रोधमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
83. ॐ ह्रीं चिंतामहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
84. ॐ ह्रीं जरामहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
85. ॐ ह्रीं रागमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
86. ॐ ह्रीं मोहमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
87. ॐ ह्रीं रोगमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
88. ॐ ह्रीं मृत्युमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
89. ॐ ह्रीं स्वेदमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
90. ॐ ह्रीं विषादमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
91. ॐ ह्रीं मदमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
92. ॐ ह्रीं रतिमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
93. ॐ ह्रीं विस्मयमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
94. ॐ ह्रीं निद्रामहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
95. ॐ ह्रीं जन्ममहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
96. ॐ ह्रीं अरतिमहादोषरहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
97. ॐ ह्रीं इन्द्रकृतवीर-वर्द्धमाननामप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
98. ॐ ह्रीं मुनिद्वयकृतसन्मतिनामप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
99. ॐ ह्रीं संगमदेवकृतमहावीरनामप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
100. ॐ ह्रीं रूद्रकृतमहतिमहावीरनामप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
101. ॐ ह्रीं महायोगीश्वरगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
102. ॐ ह्रीं द्रव्यसिद्धगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
103. ॐ ह्रीं अदेहगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
104. ॐ ह्रीं अपुनर्भवगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
105. ॐ ह्रीं ज्ञानैकचिद्गुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
106. ॐ ह्रीं जीवघनगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
107. ॐ ह्रीं स्वात्मोपलब्धिरूपसिद्धनामसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।
108. ॐ ह्रीं लोकाग्रगामुकगुणसहिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय नमः।



तीर्थंकर पंचकल्याणक तीर्थ व्रत विधि

चौबीसों तीर्थंकर के गर्भ-जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक, केवलज्ञानकल्याणक एवं निर्वाण-कल्याणक के तेईस तीर्थ हैं। यह उन्हीं तेईस तीर्थों के व्रत करने की विधि है एवं एक चौबीसवाँ व्रत अन्य महापुरुषों की निर्वाणभूमि एवं अतिशय क्षेत्रों का समूहरूप है। उनका स्पष्टीकरण–

1. प्रथम तीर्थ अयोध्या–प्रथम तीर्थंकर के 2 कल्याणक, अजित, अभिनंदन, सुमति और अनंतनाथ के 4-4 कल्याणक हुए हैं। यह शाश्वत तीर्थ है।

2. श्रावस्ती–यहाँ संभवनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं।

3. कौशाम्बी–यहाँ पद्मप्रभुनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं, यहाँ प्रभासगिरि पर्वत पर दीक्षा एवं केवलज्ञान माने हैं यह पर्वत कौशाम्बी में ही माना है।

4. वाराणसी–सुपार्श्वनाथ के 4 कल्याणक एवं पार्श्वनाथ के तीन कल्याणक हुए हैं।

5. चंद्रपुरी–यहाँ चन्द्रप्रभनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं।

6. काकंदी–यहाँ पुष्पदंतनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं।

7. भद्रिकावती–इसे 'भद्दिलपुर' भी कहते हैं यहाँ शीतलनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं।

8. सिंहपुरी–इसे सारनाथ कहते हैं, यहाँ श्रेयांसनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं।

9. चंपापुरी–यहाँ वासुपूज्य के पाँचों कल्याणक हुए हैं। यहाँ से कुछ दूर 'मंदारगिरि' पर्वत से मोक्ष माना है। यह पर्वत चंपापुरी के अन्तर्गत ही है। इस जन्मभूमि तीर्थ व्रत के साथ ही निर्वाणभूमि का व्रत भी हो जाता है। इसीलिए चंपापुरी को अलग से निर्वाणभूमि के व्रत में नहीं लिया है।

10. कंपिलाजी–इसे कांपिल्यपुरी भी कहते हैं, यहाँ विमलनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं।

11. रत्नपुरी–इसे नौराही या रौनाही भी कहते हैं, यहाँ धर्मनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं।

12. हस्तिनापुर–यहाँ भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ के चार-चार कल्याणक हुए हैं। ये तीनों तीर्थंकर, चक्रवर्ती एवं कामदेव पद के धारक भी हुए हैं।

13. मिथिलापुरी–यहाँ मल्लिनाथ एवं नमिनाथ के चार-चार कल्याणक हुए हैं।

14. राजगृही–यहाँ पर श्रीमुनिसुव्रतनाथ भगवान के चार कल्याणक हुए हैं।

15. शौरीपुर–यहाँ पर श्री नेमिनाथ के गर्भ-जन्म ये दो कल्याणक हुए हैं।

16. कुण्डलपुर–यहाँ महावीर स्वामी के गर्भ, जन्म एवं दीक्षा ऐसे तीन कल्याणक हुए हैं।

यहाँ तक जन्मभूमियाँ हो चुकी हैं। अब दीक्षा भूमि एवं केवलज्ञान भूमि को बताते हैं।

17. प्रयाग–यहाँ भगवान ऋषभदेव ने वटवृक्ष के नीचे दीक्षा ली थी। पुनः इसी वटवृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त किया था। महापुराण में इसे 'पुरिमतालपुर' का उद्यान कहा है।

18. अहिच्छत्र–यहाँ भगवान पार्श्वनाथ को केवलज्ञान हुआ है। शंबर नाम के ज्योतिषी देव जो कि 10वें भव पूर्व के 'कमठ' नाम से जाना जाता है, उसने प्रभु पर उपसर्ग किया था। पुनः धरणेन्द्र देव और उनकी पद्मावती देवी ने आकर प्रभु को मस्तक पर धारण कर पुनः मस्तक पर फणा का छत्र फैलाया था। तभी उपसर्ग दूर होते ही प्रभु को केवलज्ञान हो गया था।

19. जृंभिकाग्राम–इसे 'जमुई' भी कहते हैं। यहाँ ऋजुकूला नदी के किनारे महावीर स्वामी को केवलज्ञान हुआ है।

अब निर्वाणभूमि को कहते हैं–

20. कैलाशपर्वत—इसे अष्टापद भी कहते हैं। यहाँ से श्री ऋषभदेव ने निर्वाण प्राप्त किया है। भरत-बाहुबली आदि अनेक महापुरुषों ने भी मोक्ष प्राप्त किया है।

21. सम्मेदशिखर—यहाँ से अजितनाथ आदि बीस तीर्थंकरों ने मोक्ष प्राप्त किया है। यह शाश्वत तीर्थ है।

22. गिरनार पर्वत—यहाँ पर भगवान नेमिनाथ ने दीक्षा ली है। वह 'सिरसावन' नाम से प्रसिद्ध है। पुनः यहीं केवलज्ञान प्राप्त किया है। अनंतर यहीं से मोक्ष प्राप्त किया है। इस पर्वत के 'ऊर्जयंतगिरि' एवं 'रैवतकगिरि' नाम भी हैं। यहाँ निर्वाणस्थल पर इन्द्र ने वज्र से चरणचिन्ह उत्कीर्ण किये थे, ऐसा वर्णन शास्त्रों में आया है।

23. पावापुरी—यहाँ से भगवान महावीर स्वामी ने सरोवर के मध्य में स्थित शिला से मोक्ष प्राप्त किया है। यहाँ का कमल सहित सरोवर शास्त्रों में प्रसिद्ध है।

24. मांगीतुंगी आदि सिद्धक्षेत्र तथा महावीर जी आदि अतिशय क्षेत्रों का चौबीसवां व्रत है।

इस प्रकार इन चौबीस व्रतों को करना है।

व्रत विधि—प्रत्येक व्रत में उत्तम विधि उपवास है, मध्यम विधि अल्पाहार है और जघन्य विधि एक बार शुद्ध भोजन-एकाशन है। व्रत के दिन भगवान का अभिषेक-पूजन करके इस पुस्तक में वर्णित पंचकल्याणक तीर्थ पूजा करना चाहिए। पुनः क्रम से एक-एक व्रत में एक-एक मंत्र की माला फेरना चाहिए।

इस 'पंचकल्याणक तीर्थ व्रत' को करने वाले उन-उन तीर्थों की वंदना कर सैकड़ों-हजारों आदि उपवासों का फल प्राप्त करते हैं। इस जन्म में रोग, शोक, दुःख, दारिद्रय आदि को दूर कर सुख, शांति, संपत्ति, सन्तति आदि को प्राप्त करते हैं। पुनः परम्परा से स्वर्गादि वैभव को प्राप्त करते हुए पंचकल्याणक के स्वामी तीर्थंकर पद को भी प्राप्त कर सकते हैं। इन व्रतों का फल परम्परा से निर्वाण तो निश्चित ही है। यह व्रत आप सबके लिएउत्तम फलदायी हो, यही मंगल कामना है।

तीर्थंकर पंचकल्याणक तीर्थ व्रत के चौबीस मंत्र

समुच्चय जाप्य—**ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणक-पवित्र अयोध्यादिपावापुरीपर्यंततीर्थ-क्षेत्रेभ्यो नमो नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र—

1. ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवतीर्थंकर-गर्भजन्म-कल्याणक-अजित-अभिनंदन-सुमति-अनन्तनाथ गर्भ-जन्म-दीक्षा-केवलज्ञान कल्याणकपवित्र शाश्वत अयोध्या-तीर्थक्षेत्राय नमः।

2. ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणकपवित्र श्रावस्तीतीर्थक्षेत्राय नमः।

3. ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणकपवित्र कौशाम्बी-प्रभासगिरितीर्थक्षेत्राय नमः।

4. ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणक-पार्श्वनाथ-गर्भजन्मदीक्षाकल्याणकपवित्र वाराणसी तीर्थक्षेत्राय नमः।

5. ॐ ह्रीं श्रीचंद्रप्रभतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणकपवित्र चन्द्रपुरीतीर्थक्षेत्राय नमः।

6. ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणकपवित्र काकंदीतीर्थक्षेत्राय नमः।

7. ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणक-पवित्र भद्रिकावतीतीर्थक्षेत्राय नमः।

8. ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणक-पवित्र सिंहपुरीतीर्थक्षेत्राय नमः।

9. ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-निर्वाणकल्याणक-पवित्र चंपापुरी-मंदारगिरि-सिद्धक्षेत्राय नमः।

10. ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथतीर्थंकर-गर्भ-जन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणकपवित्र कंपिलापुरीतीर्थक्षेत्राय नमः।

11. ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणकपवित्र रत्नपुरीतीर्थक्षेत्राय नमः।

12. ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरनाथ तीर्थंकरगर्भजन्म-दीक्षा-केवलज्ञान चतुश्चतुःकल्याणकपवित्र हस्तिनापुरी-तीर्थक्षेत्राय नमः।

13. ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथ-नमिनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षा-केवलज्ञानकल्याणकपवित्र मिथिलापुरीतीर्थक्षेत्राय नमः।

14. ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-कल्याणकपवित्र राजगृहीतीर्थक्षेत्राय नमः।

15. ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथतीर्थंकर-गर्भजन्मकल्याणकपवित्र शौरीपुरीतीर्थक्षेत्राय नमः।

16. ॐ ह्रीं श्रीमहावीरतीर्थंकर-गर्भजन्मदीक्षा-कल्याणकपवित्र कुण्डलपुरीतीर्थक्षेत्राय नमः।

17. ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवतीर्थंकर-दीक्षाकेवलज्ञानकल्याणक-पवित्र प्रयागतीर्थक्षेत्राय नमः।

18. ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथतीर्थंकर-केवलज्ञानकल्याणकपवित्र अहिच्छत्रतीर्थक्षेत्राय नमः।

19. ॐ ह्रीं श्रीमहावीरतीर्थंकर-केवलज्ञानकल्याणक-पवित्र जृंभिकाग्रामतीर्थक्षेत्राय नमः।

20. ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवतीर्थंकर-निर्वाणकल्याणकपवित्र कैलाश-गिरिसिद्धक्षेत्राय नमः।

21. ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथतीर्थंकर-दीक्षा-केवलज्ञान-निर्वाण-कल्याणकपवित्र गिरनारसिद्धक्षेत्राय नमः।

22. ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ-संभवनाथ-अभिनंदननाथ-सुमतिनाथ-पद्मप्रभु-सुपार्श्व-चंद्रप्रभ-पुष्पदंत-शीतल-श्रेयांस-विमल-अनंत-धर्म-शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरनाथ-मल्लिनाथ-मुनिसुव्रतनाथ-नमिनाथ-पार्श्वनाथ-नामविंशतितीर्थंकर निर्वाण-कल्याणकपवित्र श्रीसम्मेदशिखर शाश्वतसिद्धक्षेत्राय नमः।

23. ॐ ह्रीं श्रीमहावीरतीर्थंकर-निर्वाणकल्याणकपवित्र पावापुरी-सिद्धक्षेत्राय नमः।

24. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि भरतक्षेत्रस्थित मांगीतुंगीपर्वतादि-सिद्धक्षेत्र-महावीरजीपद्मपुरादि-अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः।

जम्बूद्वीप व्रत विधि

जम्बूद्वीप के सुदर्शमेरु के 16 जिनमंदिर, गजदंत के 4, जंबू शाल्मली वृक्ष के 2,सोलहवक्षार पर्वत के 16, चौंतीस विजयार्ध पर्वत के 34 और छह कुलाचल के 6 ऐसे 16+4+2+16+34+6=78 अठत्तर अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। इनको लक्ष्य करके 78 उपवास करना उत्तम है, अल्पाहार करना मध्यम है और एक बार शुद्ध भोजन-एकाशन करना जघन्य व्रत है।

इस व्रत को तिथि से करने पर सुदर्शमेरु के 16 प्रतिपदा के 16, दो वृक्ष के द्वितीया के 2, चार गजदंत के चतुर्थी के 4, षट् कुलाचल के षष्ठी के 6, सोलह वक्षार के 16 अष्टमी के 16, चौंतीस विजयार्ध के 34 चौदश के 34 इस प्रकार इन तिथियों में व्रत कर सकते हैं। यदि बिना तिथि के करना है तो अष्टमी, चतुर्दशी आदि तिथियों में व्रतों को करके 78 व्रत पूरे करने चाहिए। पुनः जंबूद्वीप विधान करके उद्यापन करे, शक्ति के अनुसार जिनप्रतिमा निर्माण कराकर जिनमंदिर बनवाकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, शास्त्रदान, 78-78 उपकरण दान आदि करके व्रत का उद्यापन पूर्ण करना चाहिए। व्रत के दिन जंबूद्वीप की पूजा करना चाहिए। यह पूजा इसी ग्रंथ में छपी है।

प्रत्येक व्रत में समुच्चय जाप्य निम्न प्रकार है–

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिअष्टसप्ततिजिनालयजिनबिंबेभ्यो नमः।

जम्बूद्वीप जिनमंदिर के 78 व्रत के 78 पृथक्-पृथक् मंत्र–

सुदर्शन मेरु के 16 जिनमंदिर के 16 मंत्र–

1. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुभद्रशालवनस्थितपूर्वदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुभद्रशालवनस्थितदक्षिणदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुभद्रशालवनस्थितपश्चिमदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुभद्रशालवनस्थितउत्तरदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।

5. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुनंदनवनस्थितपूर्वदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुनंदनवनस्थितदक्षिणदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुनंदनवनस्थितपश्चिमदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुनंदनवनस्थितउत्तरदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुसौमनसवनस्थितपूर्वदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
10. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुसौमनसवनस्थितदक्षिणदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुसौमनसवनस्थितपश्चिमदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुसौमनसवनस्थितउत्तरदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुपांडुकवनस्थितपूर्वदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुपांडुकवनस्थितदक्षिणदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुपांडुकवनस्थितपश्चिमदिग्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुपांडुकवनस्थितउत्तरदिग्जिनालय- जिनबिम्बेभ्यो नमः।

चार गजदंतपर्वत जिनमंदिर के 4 मंत्र–

1. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-माल्यवद्गजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महासौमनसगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-विद्युत्प्रभगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-गंधमादनगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।

दो वृक्षों के जिनमंदिर के 2 मंत्र–

1. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-जंबूवृक्षस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-शाल्मलिवृक्षस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।

षट् कुलाचल जिनमंदिर के 6 मंत्र–

1. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-हिमवत्पर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महाहिमवत्पर्वतस्थित-जिनालयाजिनबिम्बेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-निषधपर्वतस्थित-जिनालयाजिनबिम्बेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-नीलपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-रूक्मिपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-शिखरिपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।

सोलह वक्षार पर्वत जिनमंदिर के 16 मंत्र–

1. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-चित्रकूटवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-नलिनकूटवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पद्मकूटवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-एकशैलकूटवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-त्रिकूटवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वैश्रवणवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-अंजनवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-आत्मांजनवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।

9. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-श्रद्धावद्वक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
10. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-विजटावद्वक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-आशीविषवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुखावहवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-चन्द्रमालवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सूर्यमालवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-नागमालवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-देवमालवक्षारपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।

34 विजयार्ध के 34 मंत्र–

1. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-आवर्ताविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
10. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुरम्यकाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महापद्माविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-नलिनाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
23. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-कुमुदविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
24. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सरित्विदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
25. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
26. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
27. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।

28. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
29. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
30. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
31. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
32. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
33. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।
34. ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।



चौबीस तीर्थंकर गणधर व्रत

चौबीस तीर्थंकरों के चौदह सौ उनसठ गणधर हैं। अन्य ग्रंथों में चौदह सौ बावन माने हैं। इन चौबीसों तीर्थंकरों के एक-एक प्रमुख गणधरों के नाम प्रसिद्ध हैं। उनके ये 24 व्रत हैं। इन व्रतों के प्रभाव से अंतरंग ऋद्धियाँ एवं बहिरंग ऋद्धि-सुख-संपत्ति-सन्तति आदि को प्राप्त करते हैं एवं रोग, शोक, दरिद्रता को दूर करते हैं तथा परम्परा से गणधरदेव आदि की विभूति को प्राप्त कर नियम से मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

इस व्रत को तीर्थंकरों के केवलज्ञानकल्याणक के दिन करने से अति उत्तम है अथवा कभी भी किन्हीं भी तिथि में कर सकते हैं।

व्रतविधि – व्रत के दिन उपवास करना उत्तम है। अल्पाहार मध्यम है और एक बार शुद्ध भोजन लेकर एकाशन करना जघन्य है। प्रत्येक व्रत के दिन तीर्थंकर भगवान का अभिषेक करके गणधर अथवा गणधरवलययंत्र का अभिषेक करना चाहिए एवं तीर्थंकरों की पूजन करके गणधरदेव की पूजा करना चाहिए। इनके चौबीस मंत्र दिये हैं। क्रम से एक-एक व्रत में एक-एक मंत्र की माला करना चाहिए। यह व्रत आप सबको स्वस्थता प्रदान कर ऋद्धि-सिद्धि से भरपूर सर्वसुख प्रदान करे, यही मंगल कामना है।

24 मंत्र

समुच्चय मंत्र – **ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकर श्रीऋषभसेनादिप्रमुख-एकोनषष्ट्यधिकचतुर्दशशतगणधरदेवेभ्यो नमो नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवस्य श्रीऋषभसेनगणधरप्रमुख-चतुरशीतिगणधरदेवेभ्यो नमः।**
2. **ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथस्य श्रीकेशरीसेनगणधरप्रमुख-नवतिगणधरदेवेभ्यो नमः।**
3. **ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथस्य श्रीचारुदत्तगणधरप्रमुख-पंचोत्तरशतगणधरदेवेभ्यो नमः।**
4. **ॐ ह्रीं श्रीअभिनंदननाथस्य श्रीवज्रचामरगणधरप्रमुख-त्र्युत्तरशतगणधरदेवेभ्यो नमः।**
5. **ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथस्य श्रीवज्रगणधरप्रमुख-षोडशोत्तरशतगणधरदेवेभ्यो नमः।**
6. **ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभनाथस्य श्रीचमरगणधरप्रमुख-एकादशोत्तरशतगणधरदेवेभ्यो नमः।**
7. **ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथस्य श्रीबलदत्तगणधरप्रमुख-पंचनवतिगणधरदेवेभ्यो नमः।**
8. **ॐ ह्रीं श्रीचंद्रप्रभनाथस्य श्रीवैदर्भगणधरप्रमुख-त्रिनवतिगणधरदेवेभ्यो नमः।**
9. **ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतनाथस्य नागमुनिगणधरप्रमुख-अष्टाशीतिगणधरदेवेभ्यो नमः।**

10. ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथस्य श्रीकुंथुगणधरप्रमुख-सप्ताशीतिगणधरदेवेभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथस्य श्रीधर्मगणधरप्रमुख-सप्तसप्ततिगणधरदेवेभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यनाथस्य श्रीमंदरगणधरप्रमुख-षट्षष्टिगणधरदेवेभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथस्य श्रीजयमुनिगणधरप्रमुख-पंचपंचाशत्गणधरदेवेभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथस्य श्रीअरिष्टगणधरप्रमुख-पंचाशत्गणधरदेवेभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथस्य श्रीअरिष्टसेनगणधरप्रमुख-त्रिचत्वारिंशत्गणधरदेवेभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथस्य श्रीचक्रायुधगणधरप्रमुख-षट्त्रिंशद्गणधरदेवेभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथस्य श्रीस्वयंभूगणधरप्रमुख-पंचत्रिंशद्गणधरदेवेभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं श्रीअरनाथस्य श्रीकुंभगणधरप्रमुख-त्रिंशद्गणधरदेवेभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथस्य श्रीविशाखगणधरप्रमुख-अष्टाविंशतिगणधरदेवेभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथस्य श्रीमल्लिगणधरप्रमुख-अष्टादशगणधरदेवेभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथस्य श्रीसुप्रभगणधरप्रमुख-सप्तदशगणधरदेवेभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथस्य श्रीवरदत्तगणधरप्रमुख-एकादशगणधरदेवेभ्यो नमः।
23. ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथस्य श्रीस्वयंभूगणधरप्रमुख-दशगणधरदेवेभ्यो नमः।
24. ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिनः श्रीइन्द्रभूतिगणधरप्रमुख-एकादशगणधरदेवेभ्यो नमः।

अथवा 24 लघु मंत्र

समुच्चय मंत्र– ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरगणधरप्रमुखश्रीऋषभसेनादिगौतमान्त्यगणधरदेवेभ्यो नमो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवस्य श्रीऋषभसेनगणधरदेवाय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथस्य श्रीकेशरीसेनगणधरदेवाय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथस्य श्रीचारुदत्तगणधरदेवाय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्रीअभिनंदननाथस्य श्रीवज्रचमरगणधरदेवाय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथस्य श्रीवज्रगणधरदेवाय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभनाथस्य श्रीचमरगणधरदेवाय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथस्य श्रीबलदत्तगणधरदेवाय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभनाथस्य श्रीवैदर्भगणधरदेवाय नमः।
9. ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतनाथस्य श्रीनागमुनिगणधरदेवाय नमः।
10. ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथस्य श्रीकुंथुगणधरदेवाय नमः।
11. ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथस्य श्रीधर्मगणधरदेवाय नमः।
12. ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यनाथस्य श्रीमंदरगणधरदेवाय नमः।
13. ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथस्य श्रीजयमुनिगणधरदेवाय नमः।
14. ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथस्य श्रीअरिष्टगणधरदेवाय नमः।
15. ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथस्य श्रीअरिष्टसेनगणधरदेवाय नमः।
16. ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथस्य श्रीचक्रायुधगणधरदेवाय नमः।
17. ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथस्य श्रीस्वयंभूगणधरदेवाय नमः।

18. ॐ ह्रीं श्रीअरनाथस्य श्री कुंभगणधरदेवाय नमः।
19. ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथस्य श्रीविशाखगणधरदेवाय नमः।
20. ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथस्य श्रीमल्लिगणधरदेवाय नमः।
21. ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथस्य श्रीसुप्रभगणधरदेवाय नमः।
22. ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथस्य श्रीवरदत्तगणधरदेवाय नमः।
23. ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथस्य श्रीस्वयंभूगणधरदेवाय नमः।
24. ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिनः श्रीइन्द्रभूतिगौतमगणधरदेवाय नमः।

अट्ठाईस मूलगुण व्रत

व्रतविधि– साधु के 28 मूलगुणों के 28 व्रत किये जाते हैं। इन व्रतों में उपवास या एकाशन जैसी भी शक्ति हो, कर सकते हैं।

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय अष्टाविंशतिमूलगुणेभ्यो नमः।**

पृथक्-पृथक् व्रत के मंत्र–

1. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय अहिंसामहाव्रताय नमः।
2. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय सत्यमहाव्रताय नमः।
3. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय अचौर्यमहाव्रताय नमः।
4. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय ब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
5. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय अपरिग्रहमहाव्रताय नमः।
6. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय ईर्यासमितये नमः।
7. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय भाषासमितये नमः।
8. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय एषणासमितये नमः।
9. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय आदाननिक्षेपणसमितये नमः।
10. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय उत्सर्गसमितये नमः।
11. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय स्पर्शनेन्द्रियनिरोधव्रताय नमः।
12. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय रसनेन्द्रियनिरोधव्रताय नमः।
13. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय घ्राणेन्द्रियनिरोधव्रताय नमः।
14. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय चक्षुरिन्द्रियनिरोधव्रताय नमः।
15. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय श्रोत्रेन्द्रियनिरोधव्रताय नमः।
16. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय समतावश्यकक्रियायै नमः।
17. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय चतुर्विंशतिस्तवाश्यकक्रियायै नमः।
18. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय वंदनावश्यकक्रियायै नमः।
19. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय प्रतिक्रमणावश्यकक्रियायै नमः।
20. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय प्रत्याख्यानावश्यकक्रियायै नमः।
21. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय कायोत्सर्गावश्यकक्रियायै नमः।
22. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय केशलोंचमूलगुणाय नमः।
23. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय आचेलक्यमूलगुणाय नमः।
24. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय अस्नानमूलगुणाय नमः।
25. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय क्षितिशयनमूलगुणाय नमः।
26. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय अदंतधावनमूलगुणाय नमः।
27. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय स्थितिभोजनमूलगुणाय नमः।
28. ॐ ह्रीं सकलचारित्रलाभाय एकभक्तमूलगुणाय नमः।

चारित्रलब्धिव्रत

व्रत विधि– यह मुनियों के तेहर प्रकार के चारित्र की लब्धि-प्राप्ति के लिये किया जाता है। इसमें पाँचमहाव्रत, एक छठा अणुव्रत पाँच समिति और तीन गुप्ति के भेदों से यह व्रत 137 भेद से 137 व्रत रूप किया जाता है।

पाँच महाव्रत में अहिंसा महाव्रत के 14 भेद हैं। सत्य महाव्रत के 8, अचौर्य महाव्रत के 8, ब्रह्मचर्य महाव्रत के 20, परिग्रह त्याग महाव्रत के 24 भेद होते हैं। रात्रिभोजन त्याग छठा अणुव्रत 1 है। ईर्या समिति एक है। भाषा समिति के 10 भेद हैं। एषणासमिति के 46 भेद हैं। आदाननिक्षेपण समिति, उत्सर्ग समिति 1-1 हैं। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कार्यगुप्ति भी एक-एक हैं। अतः 14+8+8+20+24+1+1+10+46+1+1+1+1+1=137 भेद होते हैं।

इनमें आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिए ब्रह्मचर्य व्रत के मंत्रों के अंतर है उसे देकर मंत्र जपना चाहिए।

इस व्रत की उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य एक बार शुद्धभोजन लेकर एकाशन करना है। व्रत के दिन मंदिर में तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके चारित्र लब्धि व्रत की पूजा करें और क्रम से एक-एक मंत्र का जाप्य करें। व्रत की पूर्णता पर श्रावक-श्राविकायें चारित्रलब्धि विधान या रत्नत्रय विधान करके यथाशक्ति ग्रंथदान आदि देकर उद्यापन संपन्न करें। इस व्रत का फल नियम से इस भव में आगे भव मुनियों के चारित्र को ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त करना है और परम्परा से संपूर्ण सांसारिक सुख भी प्राप्त होंगे।

(137 व्रतों के मंत्र)

समुच्चय मंत्र–ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

अहिंसा महाव्रत के 14 मंत्र

1. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये बादरैकेन्द्रियपर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
2. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये बादरैकेन्द्रियापर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
3. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
4. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
5. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये द्वीन्द्रियपर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
6. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये द्वीन्द्रियापर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
7. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये त्रीन्द्रियपर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
8. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये त्रीन्द्रियापर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
9. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये चतुरिन्द्रियपर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
10. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये चतुरिन्द्रियापर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
11. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
12. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये असंज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
13. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः।
14. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये संज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तजीवदयास्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाहिंसामहाव्रताय नमः

सत्यमहाव्रत के 8 मंत्र

15. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये भयनिमित्त-असत्यविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्ध-सत्यमहाव्रताय नमः।
16. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये ईर्ष्यानिमित्त-असत्यविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्ध-सत्यमहाव्रताय नमः।

17. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये स्वपक्षपुष्टि-असत्यविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्ध-सत्यमहाव्रताय नमः।
18. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पैशुन्य-असत्यविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्ध-सत्यमहाव्रताय नमः।
19. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये क्रोधनिमित्त-असत्यविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्ध-सत्यमहाव्रताय नमः।
20. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये लोभनिमित्त-असत्यविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धसत्यमहाव्रताय नमः।
21. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये आत्मप्रशंसा-असत्यविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्ध-सत्यमहाव्रताय नमः।
22. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये परनिंदा-असत्यविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्ध-सत्यमहाव्रताय नमः।

अचौर्य महाव्रत के 8 मंत्र

23. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये ग्रामादत्तग्रहणविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाचौर्यमहाव्रताय नमः।
24. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अरण्यादत्तग्रहणविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाचौर्यमहाव्रताय नमः।
25. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये खलादत्तग्रहणविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाचौर्यमहाव्रताय नमः।
26. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये एकान्तादत्तग्रहणविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाचौर्यमहाव्रताय नमः।
27. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अन्यत्रादत्तग्रहणविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाचौर्यमहाव्रताय नमः।
28. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये उपधि-अदत्तग्रहणविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाचौर्यमहाव्रताय नमः।
29. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये आहारपानादत्तग्रहणविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाचौर्यमहाव्रताय नमः।
30. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पृष्ठग्रहणादत्तग्रहणविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाचौर्यमहाव्रताय नमः।

ब्रह्मचर्यमहाव्रत के 20 मंत्र (पुरुषों के लिए मंत्र)

31. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मानुषीस्पर्शनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
32. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मानुषीरसनेंद्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
33. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मानुषीघ्राणेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
34. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मानुषीचक्षुरिन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
35. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मानुषीकर्णेंद्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
36. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवांगनास्पर्शनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
37. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवांगनारसनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्य महाव्रताय नमः।
38. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवांगनाघ्राणेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
39. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवांगनाचक्षुरिन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
40. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवांगनाकर्णेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
41. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिर्यक्स्त्रीस्पर्शनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
42. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिरश्चीरसनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
43. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिरश्चीघ्राणेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
44. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिरश्चीचक्षुरिन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
45. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिरश्चीकर्णेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
46. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तस्त्रीस्पर्शनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
47. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तस्त्रीरसनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
48. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तस्त्रीघ्राणेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
49. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तस्त्रीचक्षुरिन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
50. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तस्त्रीकर्णेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।

ब्रह्मचर्यव्रत के महिलाओं के लिए 20 मंत्र

ब्रह्मचर्यमहाव्रत के 20 मंत्र

31. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पुरुषस्पर्शनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
32. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पुरुषरसनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
33. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पुरुषघ्राणेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
34. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पुरुषचक्षुरिन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
35. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पुरुषकर्णेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
36. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवस्पर्शनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
37. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवरसनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
38. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवघ्राणेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
39. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवचक्षुरिन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
40. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये देवकर्णेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
41. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिर्यक्स्पर्शनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
42. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिर्यक्रसनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
43. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिर्यग्घ्राणेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
44. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिर्यक्चक्षुरिन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
45. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये तिर्यक्कर्णेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
46. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तपुरुषस्पर्शनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
47. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तपुरुषरसनेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
48. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तपुरुषघ्राणेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
49. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तपुरुषचक्षुरिन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।
50. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अचित्तपुरुषकर्णेन्द्रियविषयाब्रह्मविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः।

परिग्रहत्याग महाव्रत के 24 मंत्र

51. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मिथ्यात्वाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
52. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये क्रोधकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्ध-अपरिग्रहमहाव्रताय नमः।
53. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मानकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
54. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मायाकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
55. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये लोभकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
56. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये हास्यनोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
57. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये रतिनोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
58. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अरतिनोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
59. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये शोकनोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
60. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये भयनोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
61. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये जुगुप्सानोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
62. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये स्त्रीवेदनोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
63. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पुंवेदनोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।

64. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नपुंसकवेदनोकषायाभ्यन्तरपरिग्रहविरतिस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
65. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये द्विपदबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
66. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये चतुष्पदबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
67. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये क्षेत्रबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
68. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये धान्यबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
69. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये कुप्यबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
70. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये भांडबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
71. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये धनबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
72. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये यानबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
73. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये शयनबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।
74. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये आसनबाह्यपरिग्रहत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धापरिग्रहमहाव्रताय नमः।

रात्रिभोजन त्याग अणुव्रत का 1 मंत्र

75. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये रात्रिभोजनत्यागस्वरूपाय नवकोटिविशुद्धाणुव्रताय नमः।

ईर्यासमिति का 1 मंत्र

76. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-ईर्यासमितये नमः।

भाषा समिति के 10 मंत्र

77. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-भावसत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
78. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-उपमासत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
79. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-व्यवहारसत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
80. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-प्रतीत्यसत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
81. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-संभावनासत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
82. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-जनपदसत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
83. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-संवृतिसत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
84. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-नामसत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
85. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-स्थापनासत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।
86. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-रूपसत्यस्वरूपभाषासमितये नमः।

एषणासमिति के 46 मंत्र

87. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये औद्देशिकनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धएषणासमितये नमः।
88. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अध्यधिनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धएषणासमितये नमः।
89. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पूतिनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धएषणासमितये नमः।
90. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मिश्रनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धएषणासमितये नमः।
91. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये स्थापितनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
92. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये बलिनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
93. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये प्रावर्तितनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
94. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये प्राविष्करणनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
95. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये क्रीतनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।

96. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये प्रामृष्यनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
97. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये परिवर्तनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
98. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अभिघटनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
99. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये उद्भिन्ननामोद्गमदोषरहित -नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
100. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मालारोहणनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
101. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये आच्छेद्यनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
102. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अनीशार्थनामोद्गमदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।

(उत्पादन दोष रहित के 10 मंत्र)

103. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये धात्रीनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
104. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये दूतनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
105. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये निमित्तनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
106. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये आजीवनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
107. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये वतीपकनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
108. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये चिकित्सानामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
109. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये क्रोधकषायनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
110. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मानकषायनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
111. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मायाकषायनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
112. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये लोभकषायनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
113. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पूर्वसंस्तुतिनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
114. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पश्चात्संस्तुतिनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
115. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये विद्यानामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
116. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मंत्रनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
117. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये चूर्णनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
118. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये मूलकर्मनामोत्पादनदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।

एषणा संबंधि 10 दोष रहित के 10 मंत्र

119. 103. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये शंकितनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
120. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये भ्रक्षितनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
121. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये निक्षिप्तनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
122. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये पिहितनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
123. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये संव्यवहरणनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
124. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये दायकनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
125. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये उन्मिश्रनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
126. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अपरिणतनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
127. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये लिप्तनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
128. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये छोप्तिनामैषणादोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।

संयोजनादि 4 दोष रहित के 4 मंत्र

129. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये संयोजनानामदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
130. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अप्रमाणनामदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
131. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये अंगारनामदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।
132. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये धूमनामदोषरहित-नवकोटिविशुद्धैषणासमितये नमः।

आदाननिक्षेपण समिति का 1 मंत्र

133. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्धआदाननिक्षेपणसमितये नमः।

प्रतिष्ठापन समिति का 1 मंत्र

134. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्धप्रतिष्ठापन समितये नमः।

तीनगुप्ति के 3 मंत्र

135. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-मनोगुप्तये नमः।
136. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-वचनगुप्तये नमः।
137. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रलब्धये नवकोटिविशुद्ध-कायगुप्तये नमः।



तेरहद्वीप जिनालय व्रत (मध्यलोक जिनालय व्रत)

इस व्रत में 458 उपवास या एकाशन करना है। इसमें तिथि का कोई नियम नहीं है।

व्रत के दिन तेरहद्वीप के अकृत्रिम जिनमंदिर की पूजा करके प्रथम समुच्चय जाप्य करना, पुनः एक-एक मंत्र की जाप्य करना। 458 व्रतों में क्रम से एक-एक जाप्य करना है। यह मंत्र सर्व मनोरथों को सफल करने वाला है। धन की वृद्धि, पुत्र की प्राप्ति आदि जिस भावना को लेकर यह व्रत किया जावेगा, वही भावना पूर्ण होगी।

समुच्चय जाप्य-ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा त्रयोदशद्वीप संबंधिचतुःशताष्टपंचाशत्श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो नमः। अथवा—

ॐ ह्रीं अर्हं त्रयोदशद्वीपसंबंधि-चतुःशताष्टपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।

अथवा–

ॐ ह्रीं अर्हं मध्यलोकद्वीपसंबंधि-चतुशताष्टपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।

जम्बूद्वीप जिनालय के 78 मंत्र

सुदर्शन मेरु के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुभद्रशालवनस्थितपूर्वदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।1।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुभद्रशालवनस्थितदक्षिणदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।2।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुभद्रशालवनस्थितपश्चिमदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।3।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुभद्रशालवनस्थितउत्तरदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।4।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुनंदनवनस्थितपूर्वदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।5।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुनंदनवनस्थितदक्षिणदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।6।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुनंदनवनस्थितपश्चिमदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।7।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुनंदनवनस्थितउत्तरदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।8।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुसौमनसवनस्थितपूर्वदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।9।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुसौमनसवनस्थितदक्षिणदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।10।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुसौमनसवनस्थितपश्चिमदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।11।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुसौमनसवनस्थितउत्तरदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।12।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुपांडुकवनस्थितपूर्वदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।13।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुपांडुकवनस्थितदक्षिणदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।14।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुपांडुकवनस्थितपश्चिमदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।15।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुदर्शनमेरुपांडुकवनस्थितउत्तरदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।16।।

चार गजदंतपर्वत के 4 जिनालय के 4 मंत्र –

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-माल्यवद्गजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।17।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महासौमनसगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।18।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-विद्युत्प्रभगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।19।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-गंधमादनगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।20।।

जम्बू-शाल्मलि दो वृक्षों के 2 जिनालय के 2 मंत्र –

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-जंबूवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।21।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-शाल्मलिवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।22।।

षट् कुलाचल के 6 जिनालय के 6 मंत्र –

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-हिमवत्पर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।23।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महाहिमवत्पर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।24।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-निषधपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।25।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-नीलपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।26।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-रूक्मिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।27।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-शिखरिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।28।।

सोलह वक्षार पर्वत के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-चित्रकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।29।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-नलिनकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।30।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पद्मकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।31।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-एकशैलकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।32।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-त्रिकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।33।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वैश्रवणवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।34।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-अंजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।35।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-आत्मांजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।36।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-श्रद्धावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।37।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-विजटावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।38।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-आशीविषवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।39।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुखावहवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।40।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-चन्द्रमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।41।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सूर्यमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।42।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-नागमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।43।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-देवमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।44।।

34 विजयार्ध के 34 जिनालय के 34 मंत्र –

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।45।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।46।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।47।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।48।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-आवर्ताविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।49।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।50।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।51।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।52।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।53।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।54।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।55।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।56।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।57।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुरम्यकाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।58।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।59।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।60।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।61।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।62।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महापद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।63।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।64।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।65।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-नलिनाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।66।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-कुमुदविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।67।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सरित्विदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।68।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।69।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।70।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।71।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।72।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।73।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।74।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।75।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।76।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।77।।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रस्थितविजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।78।।

पूर्व धातकीखण्ड द्वीप जिनालय मंत्र

धातकी खण्डद्वीप के 2 इष्वाकार पर्वत जिनालय के 2 मंत्र –

ॐ ह्रीं धातकीखण्डद्वीपसंबंधि-दक्षिणदिग्-इष्वाकारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।79।।
ॐ ह्रीं धातकीखण्डद्वीपसंबंधि-उत्तरदिग्-इष्वाकारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।80।।

विजयमेरू के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुभद्रशालवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।81।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुभद्रशालवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।82।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुभद्रशालवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।83।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुभद्रशालवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।84।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुनंदनवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।85।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुनंदनवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।86।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुनंदनवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।87।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुनंदनवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।88।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुसौमनसवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।89।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुसौमनसवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।90।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुसौमनसवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।91।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुसौमनसवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।92।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुपांडुकवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।93।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुपांडुकवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।94।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुपांडुकवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।95।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजयमेरुपांडुकवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।96।।

चार गजदंत के 4 जिनालय के 4 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-माल्यवद्गजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।97।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महासौमनसगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।98।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विद्युत्प्रभगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।99।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधमादनगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।100।।

धातकी-शाल्मलि दो वृक्षों के 2 जिनालय के 2 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-धातकीवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।101।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-शाल्मलिवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।102।।

छह कुलाचलों के 6 जिनालयों के 6 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-हिमवत्पर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।103।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महाहिमवत्पर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।104।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-निषधपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।105।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नीलपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।106।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रूक्मिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।107।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-शिखरिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।108।।

सोलह वक्षार पर्वत के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-चित्रकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।109।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नलिनकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।110।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्मकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।111।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-एकशैलकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयाजिनबिम्बेभ्यो नमः।।112।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-त्रिकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।113।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वैश्रवणवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।114।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अंजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।115।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-आत्मांजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।116।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-श्रद्धावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।117।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजटावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।118।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-आशीविषवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।119।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुखावहवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।120।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-चन्द्रमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।121।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सूर्यमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।122।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नागमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।123।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-देवमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।124।।

34 विजयार्ध के 34 जिनालय के 34 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।125।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।126।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहस्थित-विजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।127।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।128।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-आवर्ताविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।129।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।130।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।131।।

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।132।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वत्सावितेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।133।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुवत्सावितेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।134।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महावत्सावितेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।135।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।136।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।137।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुरम्यकाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।138।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।139।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।140।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।141।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।142।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महापद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।143।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।144।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।145।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नलिनाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।146।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कुमुदविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।147।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सरित्विदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।148।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।149।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।150।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।151।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।152।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।153।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।154।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।155।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।156।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।157।।
ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।158।।

पश्चिम धातकीखंड द्वीप जिनालय मंत्र

अचलमेरु के 16 जिनमंदिर के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुभद्रशालवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।159।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुभद्रशालवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।160।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुभद्रशालवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।161।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुभद्रशालवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।162।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुनंदनवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।163।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुनंदनवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।164।।

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुनंदनवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।165।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुनंदनवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।166।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुसौमनसवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।167।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुसौमनसवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।168।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुसौमनसवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।169।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुसौमनसवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।170।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुपांडुकवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।171।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुपांडुकवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।172।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुपांडुकवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।173।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अचलमेरुपांडुकवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।174।।

चार गजदंतपर्वत के 4 जिनालय के 4 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-माल्यवद्गजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।175।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महासौमनसगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।176।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विद्युत्प्रभगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।177।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधमादनगजदंतपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।178।।

धातकी-शाल्मलि दो वृक्षों के 2 जिनालय के 2 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-धातकीवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।179।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-शाल्मलिवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।180।।

षट् कुलाचल के 6 जिनालय के 6 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-हिमवत्पर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।181।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महाहिमवत्पर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।182।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-निषधपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।183।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नीलपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।184।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रूक्मिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।185।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-शिखरिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।186।।

सोलहवक्षार पर्वत के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-चित्रकूटवक्षारपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।187।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नलिनकूटवक्षारपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।188।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्मकूटवक्षारपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।189।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-एकशैलकूटवक्षारपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।190।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-त्रिकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।191।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वैश्रवणवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।192।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अंजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।193।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-आत्मांजनवक्षारपर्वतस्थित- जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।194।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-श्रद्धावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।195।।

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-विजटावद्वक्षारपर्वतस्थित- जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।196।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-आशीविषवक्षारपर्वतस्थित- जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।197।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुखावहवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।198।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-चन्द्रमालवक्षारपर्वतस्थित- जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।199।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सूर्यमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।200।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नागमालवक्षारपर्वतस्थित- जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।201।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-देवमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।202।।

34 विजयार्ध के 34 जिनालय के 34 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।203।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।204।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।205।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहस्थित-विजयार्धपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।206।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-आवर्ताविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।207।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।208।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।209।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।210।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।211।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।2121।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।213।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।214।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।215।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुरम्यकाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।216।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।217।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।218।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।219।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।220।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महापद्माविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।221।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।222।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।223।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नलिनाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।224।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कुमुदविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।225।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सरित्विदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।226।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।227।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।228।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।229।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।230।।

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।231।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।232।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।233।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।234।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।235।।
ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रस्थितविजयार्ध-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।236।।

पूर्व पुष्करार्ध द्वीप जिनालय मंत्र

पुष्करार्धद्वीप के दो इष्वाकारपर्वत जिनालय के 2 मंत्र –

ॐ ह्रीं पुष्करार्धद्वीपसंबंधि-दक्षिणदिग्-इष्वाकारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।237।।
ॐ ह्रीं पुष्करार्धद्वीपसंबंधि-उत्तरदिग्-इष्वाकारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।238।।

मन्दरमेरू के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुभद्रशालवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।239।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुभद्रशालवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।240।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुभद्रशालवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।241।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुभद्रशालवनस्थितउत्तर-दिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।242।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुनंदनवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।243।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुनंदनवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।244।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुनंदनवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।245।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुनंदनवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।246।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुसौमनसवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।247।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुसौमनसवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।248।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुसौमनसवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।249।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुसौमनसवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।250।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुपांडुकवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।251।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुपांडुकवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।252।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुपांडुकवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।253।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मन्दरमेरुपांडुकवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।254।

चार गजदंत पर्वत के 4 जिनालय के 4 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-माल्यवद्गजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।255।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महासौमनसगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।256।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युत्प्रभगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।257।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधमादनगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।258।।

पुष्कर-शाल्मलि दो वृक्षों के 2 जिनालय के 2 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्करवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।259।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-शाल्मलिवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।260।।

षट्कुलाचल के 6 जिनालय के 6 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-हिमवत्पर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।261।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महाहिमवत्पर्वस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।262।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-निषधपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।263।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नीलपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।264।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रुक्मिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।265।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-शिखरिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।266।।

सोलह वक्षारपर्वत के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-चित्रकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।267।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नलिनकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।268।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्मकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।269।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-एकशैलकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।270।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-त्रिकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।271।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वैश्रवणवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।272।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-अंजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।273।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-आत्मांजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।274।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-श्रद्धावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।275।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विजटावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।276।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-आशीविषवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।277।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुखावहवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।278।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-चन्द्रमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।279।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सूर्यमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।280।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नागमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।281।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-देवमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।282।।

34 विजयार्ध के 34 जिनालय के 34 मंत्र –

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।283।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।284।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।285।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।286।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-आवर्ताविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।287।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।288।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।289।।

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।290।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।291।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।292।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।293।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।294।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।295।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुरम्यकाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।296।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।297।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।298।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।299।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।230।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महापद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।301।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।302।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।303।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नलिनाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।304।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कुमुदविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।305।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सरित्विदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।306।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।307।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।308।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।309।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।310।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।311।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।312।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।313।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।314।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।315।।
ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।316।।

पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप जिनालय मंत्र

पाँचवे विद्युन्माली मेरु के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुभद्रशालवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।317।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुभद्रशालवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।318।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुभद्रशालवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।319।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुभद्रशालवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।320।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुनंदनवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।321।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुनंदनवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।322।।

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुनंदनवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।323।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुनंदनवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।324।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुसौमनसवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।325।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुसौमनसवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।326।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुसौमनसवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।327।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुसौमनसवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।328।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुपांडुकवनस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।329।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुपांडुकवनस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।330।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुपांडुकवनस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।331।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युन्मालिमेरुपांडुकवनस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।332।।

चार गजदंत पर्वत के 4 जिनालय के 4 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-माल्यवद्गजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।333।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महासौमनसगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।334।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विद्युत्प्रभगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।335।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधमादनगजदंतपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।336।।

पुष्कर-शाल्मलि दो वृक्षों के 2 जिनालय के 2 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्करवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।337।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-शाल्मलिवृक्षस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।338।।

षट् कुलाचल के 6 जिनालय के 6 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-हिमवत्पर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।339।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महाहिमवत्पर्वस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।340।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-निषधपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।341।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नीलपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।342।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रूक्मिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।343।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-शिखरिपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।344।।

सोलह वक्षार पर्वत के 16 जिनालय के 16 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-चित्रकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।345।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नलिनकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।346।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्मकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।347।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-एकशैलकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।348।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-त्रिकूटवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।349।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वैश्रवणवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।350।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-अंजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।351।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-आत्मांजनवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।352।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-श्रद्धावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।353।।

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-विजटावद्वक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।354।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-आशीविषवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।355।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुखावहवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।356।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-चन्द्रमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।357।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सूर्यमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।358।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नागमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।359।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-देवमालवक्षारपर्वतस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।360।।

34 विजयार्ध के 34 जिनालय के 34 मंत्र –

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।361।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।362।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।363।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।364।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-आवर्ताविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।365।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।366।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।367।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।368।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।369।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।370।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।371।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।372।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।373।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुरम्याविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।374।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।375।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।376।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।377।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।378।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महापद्माविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।379।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।380।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।381।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नलिनाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।382।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कुमुदविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।383।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सरित्विदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।384।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।385।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।386।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।387।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।388।।

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।389।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।390।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।391।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहस्थितविजयार्धपर्वत-जिनाल्यजिनबिम्बेभ्यो नमः।।392।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।393।।
ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रस्थितविजयार्धपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।394।।

मानुषोत्तर पर्वत के चार जिनालय के 4 मंत्र

ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वतसंबंधि-पूर्वदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।395।।
ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वतसंबंधि-दक्षिणदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।396।।
ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वतसंबंधि-पश्चिमदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।397।।
ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वतसंबंधि-उत्तरदिग्जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।398।।

नंदीश्वर द्वीप जिनालय मंत्र

नंदीश्वरद्वीप के पूर्व दिशा के 13 जिनालय के 13 मंत्र –

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।399।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदावतीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।400।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदोत्तरावापीमध्यस्थितदधिमुख-पर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।401।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदिघोषावापीमध्यस्थितदधिमुख-पर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।402।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदावापीईशानकोणस्थितरतिकर-पर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।403।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदावापीआग्नेयकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।404।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदावतीवापीआग्नेयकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।405।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदावतीवापीनैऋत्यकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।406।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदोत्तरावापीनैऋत्यकोण-स्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।407।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदोत्तरावापीवायव्यकोणस्थित-रतिकर पर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।408।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदिघोषावापीवायव्यकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।409।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-नंदिघोषावापीईशानकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।410।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थपूर्वदिक्संबंधि-अंजनगिरिस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।411।।

नंदीश्वरद्वीप में दक्षिणदिशा के 13 जिनालय के 13 मंत्र –

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-अरजावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।412।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-विरजावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।413।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-अशोकावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।414।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-वीतशोकावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।415।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-अरजावापीईशानकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।416।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-अरजावापीआग्नेयकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।417।।

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-विरजावापीआग्नेयकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।418।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-विरजावापीनैऋत्यकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।419।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-अशोकावापीनैऋत्यकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।420।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-अशोकावापीवायव्यकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।421।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-वीतशोकावापीवायव्यकोण-स्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।422।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-वीतशोकावापीईशानकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।423।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थदक्षिणदिक्संबंधि-अंजनगिरिस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।424।।

नंदीश्वरद्वीप में पश्चिम दिशा के 13 जिनालय के 13 मंत्र –

ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-विजयावापीमध्यस्थितदधि-मुखपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।425।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-वैजयंतीवापीमध्यस्थित-दधिमुखपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।426।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-जयंतीवापीमध्यस्थित-दधिमुखपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।427।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-अपराजितावापीमध्यस्थित-दधिमुखपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।428।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-विजयावापीईशानकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।429।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-विजयावापी आग्नेयकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।430।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-वैजयंतीवापीआग्नेयकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।431।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-वैजयंतीवापीनैऋत्यकोण-स्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।432।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-जयंतीवापीनैऋत्यकोण-स्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।433।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-जयंतीवापीवायव्य-कोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।434।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-अपराजितावापीवायव्यकोण-स्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।435।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-अपराजितावापीईशानकोण-स्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।436।।
ॐ ह्री नंदीश्वरद्वीपस्थ-पश्चिमदिक्संबंधि-अंजनगिरिस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।437।।

नंदीश्वरद्वीप में उत्तर दिशा के 13 जिनालय के 13 मंत्र –

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-रम्यावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।438।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-रमणीयावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।439।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-सुप्रभावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।440।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-सर्वतोभद्रावापीमध्यस्थितदधिमुखपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।441।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-रम्यावापीईशानकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।442।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-रम्यावापीआग्नेयकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।443।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-रमणीयावापीआग्नेयकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।444।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-रमणीयावापीनैऋत्य-कोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।445।।
ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-सुप्रभावापीनैऋत्य-कोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।446।।

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-सुप्रभावापीवायव्यकोणस्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।447।।

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-सर्वतोभद्रावापीवायव्यकोण-स्थितरतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।448।।

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-सर्वतोभद्रावापीईशानकोणस्थित-रतिकरपर्वत-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।449।।

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-उत्तरदिक्संबंधि-अंजनगिरिस्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।450।।

कुण्डलवर पर्वत के 4 जिनालय के 4 मंत्र

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपसंबंधि-कुण्डलवरपर्वतस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।451।।

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपसंबंधि-कुण्डलवरपर्वतस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।452।।

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपसंबंधि-कुण्डलवरपर्वतस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।453।।

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपसंबंधि-कुण्डलवरपर्वतस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।454।।

रूचकवरपर्वत के 4 जिनालय के 4 मंत्र

ॐ ह्रीं रुचकवरद्वीपसंबंधि-रुचकवरपर्वतस्थितपूर्वदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।455।।

ॐ ह्रीं रुचकवरद्वीपसंबंधि-रुचकवरपर्वतस्थितदक्षिणदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।456।।

ॐ ह्रीं रुचकवरद्वीपसंबंधि-रुचकवरपर्वतस्थितपश्चिमदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।457।।

ॐ ह्रीं रुचकवरद्वीपसंबंधि-रुचकवरपर्वतस्थितउत्तरदिग्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।।458।।

गणधरवलय व्रत विधि

व्रत विधि–गणधरवलय मंत्र श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से निकले हुए अत्यधिक महिमाशाली मंत्र हैं, ये संपूर्ण ऋद्धि-सिद्धि को देने वाले और सर्व रोगों को तथा सर्वसंकटों को हरने वाले हैं। ये 48 मंत्र हैं। इनके 48 व्रत होते हैं। उत्तम विधि उपवास एवं जघन्य एकाशन है। व्रत के दिन भगवंतों की प्रतिमा का अभिषेक करके गणधरवलय यंत्र का अभिषेक करें। पुनः गणधरवलय पूजा करके क्रम से 1-1 मंत्र का जाप्य करें। यह व्रत संपूर्ण मनोरथ वो पूर्ण करने वाला है।

समुच्चय मंत्र-**ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं असि आ उसा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो जिणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
2. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
3. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
4. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
5. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
6. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो कोट्ठबुद्धीणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
7. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
8. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो पादाणुसारीणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
9. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो संभिण्णसोदाराणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
10. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धाणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
11. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धाणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
12. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहियबुद्धाणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
13. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो उजुमदीणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
14. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
15. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीणं झ्रौं झ्रौं नमः।**
16. **ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं झ्रौं झ्रौं नमः।**

17. ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
18. ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं झ्रौं झ्रौं नमः।
19. ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं झ्रौं झ्रौं नमः।
20. ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
21. ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
22. ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
23. ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
24. ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
25. ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
26. ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
27. ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्ततवाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
28. ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
29. ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
30. ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
31. ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर परक्कमाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
32. ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणबंभयारीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
33. ॐ ह्रीं अर्हं णमो आमोसहिपत्ताणं झ्रौं झ्रौं नमः।
34. ॐ ह्रीं अर्हं णमो खेल्लोसहिपत्ताणं झ्रौं झ्रौं नमः।
35. ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं झ्रौं झ्रौं नमः।
36. ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं झ्रौं झ्रौं नमः।
37. ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं झ्रौं झ्रौं नमः।
38. ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
39. ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचिबलीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
40. ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
41. ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
42. ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
43. ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
44. ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमियसवीणं झ्रौं झ्रौं नमः।
45. ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
46. ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
47. ॐ ह्रीं अर्हं णमो सिद्धायदणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।
48. ॐ ह्रीं अर्हं णमो भयवदो महदिमहावीरवड्ढमाणाणं झ्रौं झ्रौं नमः।

षट्खण्डागम व्रत विधि

युग की आदि में भगवान ऋषभदेव ने अयोध्या में जन्म लिया। प्रजा को असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ऐसी षट् क्रियाओं का उपदेश देकर जीने की कला सिखाई, अनन्तर किसी समय वैराग्य को प्राप्त होकर इन्द्रों द्वारा लायी गई पालकी में बैठकर प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे जैनेश्वरी दीक्षा लेकर एक हजार वर्ष के तपश्चरण के बाद प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे दिव्य केवलज्ञान प्राप्त किया, भगवान की दिव्यध्वनि खिरी जो कि सात सौ अट्ठारह भाषाओं में प्रसिद्ध है। प्रभु ऋषभदेव के समवसरण में उन्हीं के तृतीय पुत्र ऋषभसेन प्रथम गणधर हुए हैं, प्रथम पुत्र सम्राट् भरत चक्रवर्ती मुख्य श्रोता थे तथा पुत्री ब्राह्मी आर्यिकाओं में प्रधान गणिनी थीं। तभी से द्वादशांगरूप श्रुत अवतरित हुआ है।

यद्यपि यह द्वादशांगश्रुत विदेहक्षेत्र की अपेक्षा अनादि अनंत है तथापि भरत-ऐरावत क्षेत्र में चतुर्थकाल में तीर्थंकरों से अवतरित होने से सादि-सान्त भी है।

जब चतुर्थकाल में तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष थे, तभी अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी पावापुरी से कार्तिक कृष्णा अमावस्या को प्रातः प्रत्यूष बेला में निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। उस दिन देवों ने निर्वाणकल्याणक महोत्सव मनाकर अगणित दीप प्रज्ज्वलित करके दीपमालिका पर्व मनाया है पुनः उसी दिन सायंकाल में श्री गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। आज यह वीर निर्वाण संवत् 2534वाँ चल रहा है।

इससे पूर्व तीस वर्ष पहले भगवान महावीर को जृंभिका ग्राम के निकट ऋजुकूला नदी के किनारे दिव्य केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। फिर भी भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरी थी पुनः राजगृही में विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर के समवसरण

में युक्ति के द्वारा लाये गये गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण ने भगवान के शिष्यत्व को स्वीकार कर मुनि बनकर गणधर पद प्राप्त किया था, उसी क्षण भगवान की दिव्यध्वनि खिरी थी वह श्रावण कृष्णा प्रतिपदा का दिवस था, जो कि प्रथम देशना के रूप में ''वीर शासन जयंती पर्व'' के नाम से प्रसिद्ध है। उसी दिन श्री गौतमस्वामी ने द्वादशांग की रचना की थी।

इसलिए भावश्रुत और अर्थपदों के कर्ता तीर्थंकर महावीर स्वामी हैं और श्रुत पर्याय से परिणत श्री गौतम स्वामी द्रव्यश्रुत के कर्ता हैं। इन प्रथम गणधर ने संपूर्ण श्रुतज्ञान लोहार्य महामुनि को दिया। इन्होंने श्री जम्बूस्वामी को दिया। परिपाटी के क्रम से ये तीनों ही सकलश्रुत के धारक हुए हैं। क्रम-क्रम से इन तीनों के मोक्ष प्राप्ति के बाद विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी से चौदह पूर्व के धारी श्रुतकेवली हुए हैं।

तदनंतर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल आदि ग्यारह महामुनि परिपाटी क्रम से ग्यारह अंग और दश पूर्वों के ज्ञाता तथा शेष चारों पूर्वों के एकदेश ज्ञाता हुए हैं।

इसके बाद नक्षत्राचार्य आदि पाँच आचार्य ग्यारह अंगों और चौदह पूर्वों के एकदेश धारी हुए हैं। तदनंतर श्रीसुभद्र यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारों ही आचार्य संपूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंग तथा पूर्वों के एकदेश के धारक हुए हैं।

इसके बाद सभी अंग और पूर्वों का एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परा से श्रीधरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ है।

सौराष्ट्र-गुजरात-कठियावाड़ देश के गिरिनगर के निकट ऊर्जयंत पर्वत की चन्द्रगुफा में रहने वाले, अष्टांग महानिमित्त के पारगामी प्रवचन वत्सल ये श्रीधरसेनाचार्य द्वितीय अग्राणयीय पूर्व की पंचम वस्तु के चतुर्थ महाकर्म प्रकृति प्राभृत के ज्ञाता थे।[1] ''ऊर्जयंतगिरि की गुफा में'' यह वर्णन इंद्रनंदिकृत श्रुतावतार में वर्णित है। यथा–

देशे ततः सुराष्ट्रे गिरिनगरपुरान्तिकोर्जयंतगिरौ।
चन्द्रगुहाविनिवासी महातपाः परममुनिमुख्या[2]।।

इन धरसेनाचार्य को एक समय यह चिंता हुई कि आगे इन अंग-पूर्व के अंश के ज्ञान का विच्छेद हो जावेगा अतः इस ज्ञान को किन्हीं योग्य शिष्यों को देना चाहिए। उन दिनों दक्षिण देश में वेणाक नदी के निकट जैन साधुओं का पंचवर्षीय महासम्मेलन था। वहाँ पत्र देकर एक ब्रह्मचारी को भेजा। वहाँ उपस्थित आचार्यों ने श्री धरसेनाचार्य द्वारा प्रेषित पत्र को पढ़कर श्री धरसेनाचार्य के अभिप्राय को समझकर अच्छी तरह निर्णय करके दो योग्य शिष्यों को भेजा। ये दोनों मुनिराज श्रीधरसेन गुरु के पास आये, विधिवत् गुरुवंदना आदि करके अपने आने का हेतु बताया। श्री आचार्यदेव ने इनकी यथायोग्य परीक्षा करके उन्हें शुभ मुहूर्त में अध्ययन कराना प्रारंभ किया और कुछ ही दिनों में आषाढ़ शुक्ला एकादशी को ग्रंथ पूर्ण किया। तभी व्यंतर देवों ने आकर इन गुरु की और दोनों शिष्यों-मुनियों की भी विशेष पूजा की। इस देवों द्वारा की गई पूजा के अनंतर श्री आचार्यदेव ने एक मुनि का 'पुष्पदंत' एवं दूसरे मुनि का 'भूतबलि' नाम घोषित किया। इसके पूर्व इनके नाम 'सुबुद्धि' और 'नरवाहन' थे, ऐसा विवुधश्रीधर के श्रुतावतार में आया है।

पुनः गुरुदेव ने दोनों को वहाँ से विहार का आदेश दे दिया। 'गुरु आज्ञा अलंघनीय होती है' ऐसा सोचकर वे वहाँ से प्रस्थान कर अंकलेश्वर गुजरात में पहुँचे, वहाँ वर्षायोग धारण किया। अनंतर श्री पुष्पदंत मुनि ने बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणा सूत्र 177 सूत्रों को लिखकर अपने शिष्य जिनपालित को पढ़ाकर पुनः उन सूत्रों को देकर जिनपालित मुनि को श्री भूतबलि महामुनि के पास भेजा।

श्री पुष्पदंताचार्य भी अल्पायु हैं, ऐसा जानकर एवं उन सत्प्ररूपणा सूत्रों को देखकर अति प्रसन्न होकर श्री भूतबलि आचार्य ने ''महाकर्म प्रकृति प्राभृत'' का विच्छेद न हो, इस भावना से आगे 'द्रव्यप्रमाणानुगम' को आदि लेकर ग्रंथ रचना प्रारंभ कर दी। अतएव इस खण्ड सिद्धांत की अपेक्षा श्री पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य भी श्रुत के कर्ता कहे गये हैं।[3]

जब यह षट्खण्डागम ग्रंथ सूत्ररूप में लिपिबद्ध होकर पूर्ण हुआ, तभी चतुर्विध संघ ने मिलकर बहुत ही

1. षट्खण्डागम, धवला टीका समन्वित, पुस्तक 1, पृ. 68। 2. इन्द्रनंदि कृत श्रुतावतार-103। 3. षट्खण्डागम धवलाटीका सहित, पु. 1, पृ. 72।

महोत्सवपूर्वक श्रुत की महापूजा की थी। वह तिथि ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी थी, जो कि आज भी जैनसमाज में श्रुतपंचमी के नाम से प्रसिद्ध है और सभी जैन बंधु-स्त्री, पुरुष भक्तिभाव से शास्त्रों की पूजा करते हैं।

षट्खण्डागम व्रत

यह षट्खण्डागम ग्रंथ छह खण्डों में विभक्त है– 1. जीवस्थान 2. क्षुद्रकबंध 3. बंधस्वामित्व विचय 4. वेदनाखण्ड 5. वर्गणाखण्ड और 6. महाबंध।

प्रारंभ के पाँच खण्डों पर श्रीवीरसेनाचार्यवर्य ने धवला टीका लिखी है तथा महाबंध ग्रंथराज पर 'महाधवला' नाम से टीका प्रसिद्ध है।

इससे पूर्व श्रीकुंदकुंददेव आदि अनेक आचार्यों ने टीकाएँ लिखी हैं ऐसा ग्रंथों में ही उल्लेख है, आज वे टीकाएँ हमें उपलब्ध नहीं हो रही हैं। इन धवला टीका समन्वित पाँच खण्डों का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन सोलह ग्रंथों में छप चुका है।

इसी धवला टीका को आधार बना करके तथा इस टीका के ही कुछ सार अंशों को ग्रहण कर एवं अन्य ग्रंथों के भी आधार लेकर मैंने सिद्धान्त चिन्तामणि टीका नाम से संस्कृत टीका लिखी है पुनः उनके व्रत को करना प्रारंभ किया है। आप सभी जिनागम भक्ति में ओतप्रोत भव्यों के लिए यह व्रत और उनके मंत्रों को यहाँ दिया जा रहा है।

व्रत विधि एवं मंत्र

प्रथम जीवस्थान खण्ड के नव व्रत हैं, उनके नव मंत्र हैं–

1. सत्प्ररूपणा 2. द्रव्यप्रमाणानुगम 3. क्षेत्रानुगम 4. स्पर्शनानुगम 5. कालानुगम 6. अन्तरानुगम 7. भावानुगम 8. अल्पबहुत्वानुगम और 9. नव चूलिका। यह प्रथम खण्ड छह ग्रंथों– पुस्तकों में वर्णित है।

द्वितीय खण्ड क्षुद्रकबंध के 13 व्रत हैं–

1. बंधकसत्त्वप्ररूपणा 2. स्वामित्वानुगम 3. एकजीवापेक्षयाकालानुगम 4. एक जीवापेक्षयान्तरानुगम 5. नानाजीवापेक्षया भंगविचयानुगम 6. द्रव्यप्रमाणानुगम 7. क्षेत्रानुगम 8. स्पर्शनानुगम 9. नाना जीवापेक्षया कालानुगम 10. नाना जीवापेक्षयान्तरानुगम 11. भागाभागानुगम 12. अल्पबहुत्वानुगम 13. महादण्डक।

यह द्वितीय खण्ड केवल 7वें ग्रंथ में– सातवीं पुस्तक में वर्णित है।

तृतीय खण्ड बंधस्वामित्वविचय के 15 व्रत हैं–

1. गुणस्थान संबंधि-बंधस्वामित्वविचय 2. गतिमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 3. इन्द्रियमार्गणा संबंधि बंधस्वामित्वविचय 4. कायमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 5. योगमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 6. वेदमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 7. कषायमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 8. ज्ञानमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 9. संयममार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 10. दर्शनमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 11. लेश्यामार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 12. भव्यत्वमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 13. सम्यक्त्वमार्गणा-संबंधि बंधस्वामित्वविचय 14. संज्ञिमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय 15. आहारमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचय।

यह तृतीय खण्ड भी 8वें ग्रंथ– पुस्तक में निबद्ध है।

चतुर्थ वेदनाखण्ड के 17 व्रत हैं–

1. कृति अनुयोगद्वार 2. वेदना निक्षेपानुयोगद्वार 3. वेदनानयविभाषणता 4. वेदना नामविधान 5. वेदना द्रव्यविधान 6. वेदना क्षेत्रविधान 7. वेदना कालविधान 8. वेदना भावविधान 9. वेदना प्रत्ययविधान 10. वेदना स्वामित्वविधान 11. वेदना वेदनाविधान 12. वेदना गतिविधान 13. वेदनानन्तर विधान 14. वेदना सन्निकर्षविधान 15. वेदना परिमाणविधान 16. वेदना भागाभागविधान और 17. वेदनाल्पबहुत्वानुयोगद्वार।

अग्रायणीय पूर्व की पंचम वस्तु के चतुर्थ प्राभृत का नाम कर्मप्रकृति है– जिनके कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति आदि 24 अनुयोगद्वार हैं। चतुर्थ खण्ड में 9, 10, 11 और 12 ये 4 ग्रंथ– पुस्तक हैं। नवमें ग्रंथ में मात्र कृत्यनुयोगद्वार का वर्णन है। 10, 11, 12वें ग्रंथ में वेदनानुयोगद्वार के 16 भेद विस्तार से वर्णित हैं।

पंचम वर्गणा खण्ड के 22 व्रत हैं–

1. स्पर्शानुयोगद्वार 2. कर्मानुयोगद्वार 3. प्रकृति 4. बंधन 5. निबंधन 6. प्रक्रम 7. उपक्रम 8. उदय 9. मोक्ष 10. संक्रम 11. लेश्या 12. लेश्याकर्म 13. लेश्यापरिणाम 14. सातासात 15. दीर्घ-ह्रस्व 16. भवधारणीय 17. पुद्गलात्त 18. निधत्तानिधत्त 19. निकाचितानिकाचित 20. कर्मस्थिति 21. पश्चिमस्कंध और 22. अल्पबहुत्वानुयोगद्वार। इस पंचमखण्ड में 13, 14, 15 और 16 इन चार ग्रंथों– पुस्तकों में स्पर्शानुयोगद्वार आदि 22 अनुयोगद्वार वर्णित हैं।

छठे खण्ड महाबंध का 1 व्रत है–

1. महाबंध

कषायप्राभृत ग्रंथ का 1 व्रत है–

1. कषायप्राभृत।

इस प्रकार ये व्रत 9+13+15+17+22+1+1=78 हैं।

विधि– इन व्रतों को अष्टमी, चतुर्दशी आदि किन्हीं भी तिथि में कर सकते हैं। उत्तम विधि उपवास, मध्यम विधि अल्पाहार और जघन्य विधि एक बार शुद्ध भोजन करना है तथा आगे लिखे मंत्रों की जाप्य करना है। समुच्चय मंत्र तो प्रत्येक व्रत में जपना ही है पुनः एक-एक व्रत में 1-1 मंत्रों का जाप्य करना है।

श्रावक-श्राविकाओं को प्रत्येक व्रतों के दिन श्रुतस्कंध यंत्र का अभिषेक करके षट्खण्डागम ग्रंथ की पूजा करना है। इस व्रत को करने वाले श्रुतज्ञान की वृद्धि करके नियम से आगे भवों में श्रुतकेवली पद को प्राप्त करें।

षट्खण्डागम व्रत के 78 मंत्र

समुच्चय मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमजिनागमेभ्यो नमः।

प्रथम खण्ड के 9 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-सप्तसप्तत्यधिकशतसूत्रसमन्वित-सत्प्ररूपणानामजीवस्थानेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-द्विनवत्यधिकशतसूत्रसमन्वित-द्रव्यप्रमाणानुगमनामजीवस्थानेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-द्विनवतिसूत्रसमन्वित-क्षेत्रानुगमनामजीवस्थानेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-पंचाशीत्यधिकशतसूत्रसमन्वित-स्पर्शनानुगमनामजीवस्थानेभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-द्विचत्वारिंशदधिकत्रिशतसूत्रसमन्वित-कालानुगमनामजीवस्थानेभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-सप्तनवत्यधिकत्रिशतसूत्रसमन्वित-अन्तरानुगमनामजीवस्थानेभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-त्रिनवतिसूत्रसमन्वित-भावानुगमनामजीवस्थानेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-द्वयशीत्यधिकत्रिशतसूत्रसमन्वित-अल्पबहुत्वानुगमनामजीवस्थानेभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडान्तर्गत-पञ्चदशाधिकपञ्चशतसूत्रसमन्वित-नवचूलिकानामजीवस्थानेभ्यो नमः।

द्वितीय खण्ड के 13 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-त्रिचत्वारिंशत्सूत्रसमन्वित-बन्धकसत्त्वप्ररूपणानामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-एकनवतिसूत्रसमन्वित-स्वामित्वानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-षोडशोत्तरद्विशतसूत्रसमन्वित-एकजीवापेक्षाकालानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

4. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-एकपंचाशदधिकशतसूत्रसमन्वित-एकजीवापेक्षान्तरानुगमनाम-क्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

5. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-त्रयोविंशतिसूत्रसमन्वित-नानाजीवापेक्षाभंगविचयानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

6. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-एकसप्तत्यधिकशतसूत्रसमन्वित-द्रव्यप्रमाणानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

7. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-चतुर्विंशत्यधिकशतसूत्रसमन्वित-क्षेत्रानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

8. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-एकोनाशीत्यधिकद्विशतसूत्रसमन्वित-स्पर्शनानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

9. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-पंचपंचाशतसूत्रसमन्वित-नानाजीवापेक्षाकालानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

10. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-अष्टषष्टिसूत्रसमन्वित-नानाजीवापेक्षान्तरानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

11. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-अष्टाशीतिसूत्रसमन्वित-भागाभागानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

12. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-षडुत्तरद्विशतसूत्रसमन्वित-अल्पबहुत्वानुगमनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

13. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडान्तर्गत-एकोनाशीतिसूत्रसमन्वित-महादण्डकनामक्षुद्रकबंधेभ्यो नमः।

तृतीय खण्ड के 15 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-द्विचत्वारिंशत्सूत्रसमन्वित-गुणस्थानसंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

2. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-एकोनषष्टिसूत्रसमन्वित-गतिमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

3. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-पंचत्रिंशत्सूत्रसमन्वित-इन्द्रियमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

4. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-त्रिसूत्रसमन्वित-कायमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

5. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-एकोनत्रिंशत्सूत्रसमन्वित-योगमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

6. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-एकोनविंशतिसूत्रसमन्वित-वेदमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

7. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-एकोनविंशतिसूत्रसमन्वित-कषायमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

8. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-अष्टादशसूत्रसमन्वित-ज्ञानमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

9. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-अष्टाविंशतिसूत्रसमन्वित-संयममार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

10. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-पंचसूत्रसमन्वित-दर्शनमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

11. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-सप्तदशसूत्रसमन्वित-लेश्यामार्गणासंबंधि-बंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

12. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-त्रिसूत्रसमन्वित-भव्यत्वमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

13. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-द्विचत्वारिंशत्सूत्रसमन्वित-सम्यक्त्वमार्गणासंबंधि बंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

14. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-त्रिसूत्रसमन्वित-संज्ञिमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

15. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डान्तर्गत-द्विसूत्रसमन्विताहारमार्गणासंबंधिबंधस्वामित्वविचयेभ्यो नमः।

चतुर्थ खण्ड के 17 मंत्र

कृतिअनुयोगद्वार का 1 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-णमोजिणाणमित्यादिगणधरमंत्रयुत सप्तभेदसहित षट्सप्ततिसूत्रसमन्वित कृति-अनुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

वेदना के 16 भेद के 16 मंत्र

2. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-त्रिसूत्रसमन्वित-वेदनानिक्षेपानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

3. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-चतुस्सूत्रसमन्वित-वेदनानयविभाषणानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

4. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-चतुःसूत्रसमन्वित-वेदनानामविधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

5. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-चूलिकासमेतत्रयोदशोत्तरद्विशतसूत्रसमन्वित-वेदनाद्रव्य-विधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

6. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-नवनवतिसूत्रसमन्वित-वेदनाक्षेत्रविधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

7. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-द्वयचूलिकासमेत-एकोनाशीत्यधिक द्विशतसूत्रसमन्वित-वेदनाकालविधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

8. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-त्रिचूलिकासमेत-चतुर्दशोत्तरत्रिशत्सूत्रसमन्वित-वेदनाभावविधानानुयोग-द्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

9. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-षोडशसूत्रसमन्वित-वेदनाप्रत्ययविधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

10. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-पंचदशसूत्रसमन्वित-वेदनास्वामित्वविधानानुयोगद्वार-नामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

11. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-अष्टपंचाशत्सूत्रसमन्वित-वेदनावेदनविधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

12. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-द्वादशसूत्रसमन्वित-वेदनागतिविधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

13. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-एकादशसूत्रसमन्वित-वेदनानन्तरविधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

14. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-विंशत्युत्तरत्रिशतसूत्रसमन्वितवेदनासन्निकर्ष- विधानानुयोगद्वार-नामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

15. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-त्रिपंचाशत्सूत्रसमन्वित-वेदनापरिमाणविधानानुयोगद्वारनामवेदना-खण्डेभ्यो नमः।

16. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-एकविंशतिसूत्रसमन्वित-वेदनाभागाभागविधानानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

17. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-सप्तविंशतिसूत्रसमन्वित-वेदनाल्पबहुत्वानुयोगद्वारनामवेदनाखण्डेभ्यो नमः।

पाँचवें खण्ड के 22 मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-त्रयस्त्रिंशत्सूत्रसमन्वित-स्पर्शानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

2. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-एकत्रिंशत्सूत्रसमन्वित-कर्मानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

3. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-द्विचत्वारिंशदधिकशतसूत्रसमन्वित-प्रकृत्यनुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

4. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-चूलिकायुत बंध-बंधक-बंधनीयसमेत-सप्तनवत्यधिक-सप्तशतसूत्रसमन्वित-बंधनानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

5. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-विंशतिसूत्रसमन्वित-निबंधनानुयोगद्वारनामवर्गणा-खण्डेभ्यो नमः।

6. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-प्रक्रमानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

7. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-उपक्रमानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

8. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-उदयानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

9. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-मोक्षानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

10. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-संक्रमानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

11. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-लेश्यानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

12. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-लेश्याकर्मानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

13. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-लेश्यापरिणामानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

14. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-सातासातानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

15. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-दीर्घह्रस्वानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

16. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-भवधारणीयानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-पुद्गलात्तानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-निधत्तानिधत्तानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-निकाचितानिकाचितानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-कर्मस्थित्यनुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-पश्चिमस्कन्धानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।
22. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य पंचमखण्डान्तर्गत-अल्पबहुत्वानुयोगद्वारनामवर्गणाखण्डेभ्यो नमः।

छठे महाबंध नाम षट्खण्डागम का मंत्र–

1. ॐ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमस्य षष्ठखण्डान्तर्गत-चत्वारिंशत्सहस्रसूत्रसमन्वित-महाबन्धेभ्यो नमः।

कषायप्राभृत ग्रंथ का मंत्र–

1. ॐ ह्रीं अर्हं चूर्णिसूत्रसमन्वितत्र्यशीतिगाथासूत्रस्वरूप-कषायप्राभृतेभ्यो नमः।।



पुण्यास्रव व्रत विधि

संसार में प्रत्येक अच्छे या बुरे कार्यों को करने में सर्वप्रथम संरंभ, समारंभ और आरंभ क्रियायें होती हैं। मन, वचन और काय से प्रवृत्ति होती है जो कि कृत, कारित और अनुमोदना रूप से ही होती है। प्रत्येक के साथ क्रोध, मान, माया और लोभ ये कषायें अवश्य ही रहती हैं। इसलिये प्रथम ही संरंभ आदि तीन को मन आदि तीन से गुणा करके–3×3=9 भेद हुये पुनः इन नव को कृत आदि से गुणा किये तो 9×3=27 भेद हुए, अनंतर चार कषाय से गुणा करने से 27×4=108 भेद हो जाते हैं। इन्हीं पापास्रवों को रोकने एवं पुण्यास्रव को बढ़ाने हेतु माला में 108 दाने होते हैं। इन 108 व्रतों को करने से महान सातिशय पुण्य कर्मों का आस्रव होता है पुनः परंपरा से संपूर्ण आस्रव का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है। लौकिक फल तो संसार के चक्रवर्ती आदि के वैभव, इंद्र पद आदि तो सहज ही संभव हैं। अतः यह व्रत अवश्य ही करना चाहिए।

व्रत के दिन अर्हंत भगवान का या चौबीसी प्रतिमा का या किन्हीं भी तीर्थंकर का पंचामृत अभिषेक करके चौबीसी पूजा और पुण्यास्रव पूजा अवश्य करना चाहिए। उद्यापन में यथाशक्ति प्रतिमा विराजमान करना, 108 ग्रंथों का दान देना आदि करना चाहिए तथा पुण्यास्रव विधान करना चाहिए।

संरंभ–हिंसादि करने का मन में विचार करना।
समारंभ–हिसादि कर्मों के करने का अभ्यास करना।
आरंभ–हिंसादि क्रियाओं को प्रारंभ कर देना।
कृत–स्वयं करना।
कारित–दूसरों से कराना।
अनुमोदना या अनुमति–दूसरों के द्वारा हिंसादि क्रियाओं के करने को अच्छा कहना–समर्थन करना।
आगे मन, वचन, काय और क्रोध, मान, माया और लोभ के अर्थ स्पष्ट हैं।

इसका समुच्चय मंत्र निम्न प्रकार है–

जाप्य–ॐ ह्रीं कर्मास्रवरहितानन्तकेवलिभ्यो नमः।

यह व्रत इच्छानुसार अष्टमी-चतुर्दशी आदि किन्हीं भी तिथि को किया जा सकता है। इसमें 108 व्रत करने होते हैं। उत्तम विधि उपवास, मध्यम एक बार अल्पाहार और जघन्य में एक बार शुद्ध भोजन करना चाहिए।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. ॐ ह्रीं क्रोधकृतमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
2. ॐ ह्रीं क्रोधकारितमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
3. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
4. ॐ ह्रीं क्रोधकृतमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
5. ॐ ह्रीं क्रोधकारितमनःसमारंभमुक्तायअर्हत्परमेष्ठिने नमः।
6. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
7. ॐ ह्रीं क्रोधकृतमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
8. ॐ ह्रीं क्रोधकारितमनःआरंभमुक्तायअर्हत्परमेष्ठिने नमः।
9. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
10. ॐ ह्रीं मानकृतमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
11. ॐ ह्रीं मानकारितमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
12. ॐ ह्रीं मानानुमतमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
13. ॐ ह्रीं मानकृतमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
14. ॐ ह्रीं मानकारितमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
15. ॐ ह्रीं मानानुमतमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
16. ॐ ह्रीं मानकृतमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
17. ॐ ह्रीं मानकारितमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
18. ॐ ह्रीं मानानुमतमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
19. ॐ ह्रीं मायाकृतमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
20. ॐ ह्रीं मायाकारितमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
21. ॐ ह्रीं मायानुमतमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
22. ॐ ह्रीं मायाकृतमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
23. ॐ ह्रीं मायाकारितमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
24. ॐ ह्रीं मायानुमतमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
25. ॐ ह्रीं मायाकृतमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिन नमः।
26. ॐ ह्रीं मायाकारितमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
27. ॐ ह्रीं मायानुमतमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
28. ॐ ह्रीं लोभकृतमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
29. ॐ ह्रीं लोभकारितमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
30. ॐ ह्रीं लोभानुमतमनःसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
31. ॐ ह्रीं लोभकृतमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
32. ॐ ह्रीं लोभकारितमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
33. ॐ ह्रीं लोभानुमतमनःसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
34. ॐ ह्रीं लोभकृतमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
35. ॐ ह्रीं लोभकारितमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
36. ॐ ह्रीं लोभानुमतमनःआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
37. ॐ ह्रीं क्रोधकृतवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
38. ॐ ह्रीं क्रोधकारितवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
39. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
40. ॐ ह्रीं क्रोधकृतवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
41. ॐ ह्रीं क्रोधकारितवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
42. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
43. ॐ ह्रीं क्रोधकृतवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।।
44. ॐ ह्रीं क्रोधकारितवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
45. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
46. ॐ ह्रीं मानकृतवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
47. ॐ ह्रीं मानकारितवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
48. ॐ ह्रीं मानानुमतवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
49. ॐ ह्रीं मानकृतवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
50. ॐ ह्रीं मानकारितवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
51. ॐ ह्रीं मानानुमतवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
52. ॐ ह्रीं मानकृतवचनआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
53. ॐ ह्रीं मानकारितवचनआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
54. ॐ ह्रीं मानानुमतवचनआरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
55. ॐ ह्रीं मायाकृतवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
56. ॐ ह्रीं मायाकारितवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
57. ॐ ह्रीं मायानुमतवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
58. ॐ ह्रीं मायाकृतवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।

59. ॐ ह्रीं मायाकारितवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
60. ॐ ह्रीं मायानुमतवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
61. ॐ ह्रीं मायाकृतवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
62. ॐ ह्रीं मायाकारितवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
63. ॐ ह्रीं मायानुमतवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
64. ॐ ह्रीं लोभकृतवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
65. ॐ ह्रीं लोभकारितवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
66. ॐ ह्रीं लोभानुमतवचनसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
67. ॐ ह्रीं लोभकृतवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
68. ॐ ह्रीं लोभकारितवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
69. ॐ ह्रीं लोभानुमतवचनसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
70. ॐ ह्रीं लोभकृतवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
71. ॐ ह्रीं लोभकारितवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
72. ॐ ह्रीं लोभानुमतवचनारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
73. ॐ ह्रीं क्रोधकृतकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
74. ॐ ह्रीं क्रोधकारितकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
75. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
76. ॐ ह्रीं क्रोधकृतकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
77. ॐ ह्रीं क्रोधकारितकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
78. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
79. ॐ ह्रीं क्रोधकृतकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
80. ॐ ह्रीं क्रोधकारितकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
81. ॐ ह्रीं क्रोधानुमतकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
82. ॐ ह्रीं मानकृतकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
83. ॐ ह्रीं मानकारितकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
84. ॐ ह्रीं मानानुमतकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
85. ॐ ह्रीं मानकृतकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
86. ॐ ह्रीं मानकारितकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
87. ॐ ह्रीं मानानुमतकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
88. ॐ ह्रीं मानकृतकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
89. ॐ ह्रीं मानकारितकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
90. ॐ ह्रीं मानानुमतकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
91. ॐ ह्रीं मायाकृतकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
92. ॐ ह्रीं मायाकारितकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
93. ॐ ह्रीं मायानुमतकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
94. ॐ ह्रीं मायाकृतकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
95. ॐ ह्रीं मायाकारितकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
96. ॐ ह्रीं मायानुमतकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
97. ॐ ह्रीं मायाकृतकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
98. ॐ ह्रीं मायाकारितकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
99. ॐ ह्रीं मायानुमतकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
100. ॐ ह्रीं लोभकृतकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
101. ॐ ह्रीं लोभकारितकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
102. ॐ ह्रीं लोभानुमतकायसंरंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
103. ॐ ह्रीं लोभकृतकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
104. ॐ ह्रीं लोभकारितकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
105. ॐ ह्रीं लोभानुमतकायसमारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
106. ॐ ह्रीं लोभकृतकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
107. ॐ ह्रीं लोभकारितकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।
108. ॐ ह्रीं लोभानुमतकायारंभमुक्ताय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।

समवसरण व्रत (लघु)

विधि—समवसरण का व्रत समवसरण की आठ भूमि, तीन कटनी आदि को लक्षित कर दिया जाता है। इसमें 24 व्रत हैं। व्रत के दिन तीर्थंकर प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक, समवसरण पूजा करके उपवास करें। उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार एवं जघन्य एकाशन है। व्रत पूर्ण करके उद्यापन में समवसरण रचना बनवाकर प्रतिष्ठा कराना अथवा समवसरण मंडल विधान करना। 24 ग्रंथ आदि का दान देना। जहाँ-जहाँ प्रभु के समवसरण की रचना बनी हुई हैं उनके दर्शन करना। इस व्रत का फल तत्काल में संपूर्ण मनोरथों की सिद्धि, परम्परा से समवसरण के दर्शन का लाभ और तीर्थंकर पद की प्राप्ति आदि भी संभव है।

समुच्चय मंत्र-

1. ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनाय सकलगुणकरण्डाय श्रीसर्वज्ञाय अर्हत्परमेष्ठिने नमः।

अथवा—

2. ॐ ह्रीं समवसरणपद्मसूर्यवृषभादिवर्धमानान्तेभ्यो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र—

1. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणसंबंधि-मानस्तंभस्थितसर्वजिनप्रतिमाभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणसंबंधि-चैत्यप्रासादस्थितसर्वजिनप्रतिमाभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं खातिकाभूमिवैभवमंडितसमवसरणस्थित चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं लताभूमिवैभवमंडितसमवसरणस्थित चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणसंबंधि-उपवनभूमिचतुर्दिक् चैत्यवृक्षस्थितसर्वजिनप्रतिमाभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं ध्वजभूमिवैभवमंडितसमवसरणस्थितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणसंबंधि-कल्पवृक्षभूमिचतुर्दिक्सिद्धार्थवृक्षस्थितसिद्धप्रतिमाभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणसंबंधि-भवनभूमिस्थितनवनवस्तूपमध्यविराजमानसर्वजिनप्रतिमाभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं श्रीमंडपभूमिमंडितसमवसरणविभूतिधारक चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
10. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणसंबंधि-प्रथमकटनीस्थितयक्षेन्द्रमस्तकोपरिविराजमान धर्मचक्रेभ्यो नमः।
11. ॐ ह्रीं द्वितीयकटनीउपरि-अष्टमहाध्वजावैभवधारकचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
12. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणसंबंधितृतीयपीठोपरिस्थितगंधकुटीभ्यो नमः।
13. ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
14. ॐ ह्रीं अष्टमहाप्रातिहार्यसमन्वितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
15. ॐ ह्रीं अनन्तज्ञानगुणसमन्वितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
16. ॐ ह्रीं अनन्तदर्शनगुणसमन्वितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
17. ॐ ह्रीं अनन्तसौख्यगुणसमन्वितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
18. ॐ ह्रीं अनन्तवीर्यगुणसमन्वितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
19. ॐ ह्रीं अष्टादशमहादोषविरहितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।
20. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणस्थित-एकोनषष्ट्यधिकचतुर्दश शतगणधरादिअष्टाविंशतिलक्ष-अष्टचत्वारिंशत-सहस्रसर्व मुनिभ्यो नमः।
21. ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरसमवसरणस्थित-ब्राह्मीगणिनीप्रमुख-पंचाशल्लक्ष-पंचाशत्सहस्र-द्वयशतपंचाशत् आर्यिकाभ्यो नमः।

अथवा

21. ॐ ह्रीं समवसरणस्थितब्राह्मीगणिनीप्रमुखपंचाशल्लक्ष-पंचाशत्सहस्र-द्वयशतपंचाशदार्यिकावंदितचरणकमल-चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

22. ॐ ह्रीं समवसरणस्थित-असंख्यातदेवदेवीवंदितचरणकमलचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

23. ॐ ह्रीं समवसरणस्थित-संख्यातमनुष्यगण-श्रावकश्राविकावंदितचरणकमल चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

24. ॐ ह्रीं समवसरणस्थित परस्परविरोध विवर्जित संख्यातितिर्यग्गणवंदितचरणकमल चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

समवसरण व्रत विधि (वृहत् समवसरण व्रत १७० हैं)

ढाई द्वीप में 170 कर्मभूमियों में यदि एक साथ अधिकतम तीर्थंकर होवें तो 170 हो सकते हैं। एक साथ नहीं भी हों तो भी इन 170 कर्मभूमियों में तीर्थंकर होते रहते हैं। उन 170 कर्मभूमियों के तीर्थंकरों के 170 व्रत किये जाते हैं। इनमें तिथियों का कोई नियम नहीं है। अपनी सुविधा के अनुसार किन्हीं भी तिथियों में यह व्रत करें। मंदिर में तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके समवसरण पूजा करें। उत्कृष्ट विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य विधि एकाशन करना है। व्रत पूर्ति के अनंतर किन्हीं भी तीर्थंकर का समवसरण बनवाकर प्रतिष्ठा करावें या जहाँ-जहाँ समवसरण बने हैं उन की वंदना करके समवसरण विधान करके व्रत का उद्यापन करें।

समवसरण व्रत का समुच्चय मंत्र - **ॐ ह्रीं सर्वकर्मभूमिस्थितसप्तत्यधिकशतसमवसरणमध्यविराजमाना-चिन्त्यविभूतिसहित तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

जम्बूद्वीप के 34 समवसरण के 34 मंत्र

1. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
5. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
6. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
7. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-आवर्ताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः**
8. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
9. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
10. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
11. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
12. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
13. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
14. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**
15. **ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**

16. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-सुरम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
17. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
18. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
19. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-पद्मादिदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
20. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
21. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-महापद्मादिदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
22. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
23. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
24. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-नलिनीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
25. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-कुमुदाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
26. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-सरिताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
27. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
28. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
29. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
30. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
31. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
32. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
33. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
34. ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

पूर्वधातकीखण्डद्वीप के 34 समवसरण के 34 मंत्र

1. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
2. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
3. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
4. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
5. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
6. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
7. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपासंबंधि-आवर्तविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः
8. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
9. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
10. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
11. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
12. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
13. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
14. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
15. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
16. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुरम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

17. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
18. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
19. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
20. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
21. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महापद्माविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
22. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
23. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
24. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नलिनीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
25. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कुमुदाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
26. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सरिताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
27. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
28. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
29. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
30. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वल्गावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
31. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
32. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
33. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
34. ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

पश्चिमधातकीखण्डद्वीप के 34 समवसरण के 34 मंत्र

1. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
2. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
3. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
4. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
5. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
6. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
7. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपासंबंधि-आवर्ताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः
8. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
9. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
10. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
11. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
12. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
13. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
14. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
15. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
16. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुरम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
17. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

18. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
19. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
20. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुपद्माविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
21. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महापद्माविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
22. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
23. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
24. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-नलिनीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
25. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-कुमुदाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
26. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सरिताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
27. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
28. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
29. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
30. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
31. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
32. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
33. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
34. ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

पूर्वपुष्करार्धद्वीप के 34 समवसरण के 34 मंत्र

1. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
2. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
3. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
4. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
5. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
6. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
7. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपासंबंधि-आर्तविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः
8. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
9. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
10. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
11. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
12. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुवत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
13. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महावत्साविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
14. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
15. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
16. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुरम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
17. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
18. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
19. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्माविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

20. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुपद्मावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
21. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महापद्मावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
22. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीवितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
23. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-शंखावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
24. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नलिनीवितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
25. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कुमुदावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
26. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सरितावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
27. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वप्रावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
28. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुवप्रावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
29. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महावप्रावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
30. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वप्रकावतीवितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
31. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
32. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुगंधावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
33. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधिलावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
34. ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीवितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

पश्चिमपुष्करार्धद्वीप के 34 समवसरण के 34 मंत्र

1. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-भरतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
2. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-ऐरावतक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
3. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
4. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
5. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महाकच्छाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
6. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कच्छकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
7. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपासंबंधि-आवर्ताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः
8. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-लांगलावर्ताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
9. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्कलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
10. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पुष्कलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
11. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वत्सावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
12. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुवत्सावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
13. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महावत्सावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
14. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वत्सकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
15. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
16. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुरम्याविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
17. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-रमणीयाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
18. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-मंगलावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
19. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्मावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
20. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुपद्मावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
21. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महापद्मावितेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

22. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-पद्मकावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
23. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-शंखाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
24. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-नलिनीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
25. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-कुमुदाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
26. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सरिताविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
27. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
28. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुवप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
29. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-महावप्राविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
30. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-वल्गावतीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
31. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
32. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-सुगंधाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
33. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधिलाविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
34. ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-गंधमालिनीविदेहक्षेत्रार्यखण्डे अचिन्त्यसमवसरणविभूतिसहिताय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

श्री संपत-शुक्रवार व्रत विधि एवं कथा (पद्मावती व्रत)

मगध देश में राजगृह नगर के पास विपुलाचल पर्वत पर श्री महावीर स्वामी का समवसरण आने का समाचार महाराज श्रेणिक ने वनपाल के मुख से सुना और हर्षित होकर महारानी चेलना के साथ सपरिवार वहाँ पहुँचे। बड़ी भक्ति-भाव से जयजयकार करके तीन प्रदक्षिणाएँ देकर श्री वीर प्रभु को त्रिबार नमोऽस्तु किया। बाद में बाहर सभा के मनुष्यों के कोठे में बैठ गये। भगवान की दिव्य-ध्वनि श्री गौतम गणधर की वाणी द्वारा सुनकर राजा रानी ने भक्तिभाव से आनन्दित होकर विनती की कि हे भगवन्! संसार में दम्पत्ति को अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए? इस विषय में कोई एक कथा हमको सुनाइये। तब संघ के भट्टारक श्री विजयाभिनन्दन जी के मुख से वाणी निकली, वह कथा इस प्रकार है–

प्राचीन काल में सौराष्ट्र देश में पारिभद्रपुरी नाम का एक नगर था। वहाँ का विकारमाप्ता नाम का तेजस्वी, महापराक्रमी, न्यायी और धर्म व प्रजावत्सल राजा था। उसके बहुत रानियाँ थीं। उनमें भूमि पूजा देवी पट्टरानी पतिव्रता, चतुर व कार्यकुशल थी और वह राजा को मंत्री की तरह सहायता देती थी। दोनों ने अपने राज्य में महती धर्म प्रभावना की। उनकी नगरी में श्रुणुयात नाम का एक दरिद्र व्यापारी था। उसकी पत्नी का नाम रुक्मावती था। उसकी जैनधर्म पर बहुत श्रद्धा भक्ति थी। पाप के डर से उससे कोई बुरे कार्य नहीं होते थे। घर में दरिद्रता के कारण वह दुःखी थी, इसलिए उसे किसी के पास जाकर बैठना बुरा लगता था और अपने घर में जो था उसी में संतुष्ट थी। अपनी बुरी स्थिति के कारण वह किसी से नहीं बोलती थी। अधिक संतान होने के कारण उनकी देख-भाल में उसका सारा दिन बीत जाता था। उनकी इच्छा पूर्ति व पालन-पोषण में असमर्थ थी। इस दुःख से छुटकारा पाने की रात दिन उसे चिन्ता रहती थी। इससे उसका शरीर दुर्बल हो गया था। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ उसे कुछ समझ में नहीं आता था। एक दिन पड़ोसी स्त्री ने उसे आकर समझाया। देखो आज भाग्य का दिन निकला है। गाँव के बाहर बगीचे में भट्टारक श्री विजयाभिनन्दन महाराज पधारे हैं, उनके दर्शनों के लिए गाँव के स्त्री व पुरुषों की भीड़ लग रही है। वे बहुत ज्ञानी हैं तथा भक्तों को हित का उपदेश

देते हैं। सो अपन भी उनके दर्शनों का लाभ लेवें और इहलोक-परलोक के हित को साधकर सद्गति प्राप्त कर लें। इसलिए मैं तुझे बुलाने आई हूँ। तेरी इच्छा हो तो मेरे साथ चल। यह सुनकर रुक्मावती को अत्यन्त हर्ष हुआ। चिन्तित मन में शांति हुई घरेलू दुःखों से छूटने का मार्ग मिले और शांति-सुख की प्राप्ति हो, इस भावना से वह उस स्त्री के साथ जाने को निकली। वहाँ पहुँच कर देखा कि क्या चमत्कार है। दर्शनों की प्रतीक्षा में अपार जनसमुदाय श्री विजयाभिनन्दन महाराज के सामने जयजयकार कर रहा है। विमान से पुष्प वृष्टि हो रही है। यह दृश्य देखकर रुक्मावती का मन प्रफुल्लित हो गया। उसने भट्टारक जी को विनयपूर्वक सादर नमस्कार किया और श्राविकाओं की सभा में जाकर बैठी। भट्टारक जी ने उपदेश प्रारंभ किया। उसे सुनकर वह इतनी गद्गद् व प्रसन्न हुई कि अपने बाल बच्चों, घरबार व संसार को भूल गई। भट्टारक जी ने अपनी अमृतवाणी से सात तत्त्वों का निरूपण किया। जीव तत्त्व का महत्त्व समझाया, अनादि संसार के सुख दुःख का वर्णन किया और जीवों के हित का मार्ग बतलाया। उन्होंने अखण्ड सौभाग्य बढ़ाने वाली व अत्यन्त सुख देने वाली संपत शुक्रवार व्रत की क्रिया बतलाई। वह क्रिया रुक्मावती ने ध्यानपूर्वक सुनी। वह क्रिया इस प्रकार है–

संपत् शुक्रवार व्रत विधि–श्रावण महीने में प्रत्येक शुक्रवार को उपवास अथवा एकासना करें, शक्ति अनुसार पूजा सामग्री साथ लेकर श्री जिनमंदिर में जाकर दर्शन स्तुति, स्तोत्रादि द्वारा भगवान की पूजा भक्ति करें और धरणेन्द्र- पद्मावती सहित श्री 1008 पार्श्वनाथ भगवान का पंचामृत अभिषेक पूजा करके श्री पद्मावती देवी की मूर्ति को दूसरे एक ऊँचे आसन पर विराजमान करें। नाना प्रकार के वस्त्रालंकारों से उनका शृँगार करें। दीप, धूप, फूलों के हार, केला के खम्भ इत्यादि साधनों से मंडप सजावे। हल्दी, कुमकुम, भीगे हुए चने आदि लेकर पंचोपचार पूजा करें। बाद में श्री पद्मावती महादेवी को मणिमंगल सूत्र आदि आभूषण पहनावे। बाद में आटे के दो दीपक सहित जयमाला बोलकर तीन प्रदक्षिणाएं देकर पूर्णार्घ्य चढ़ावें *(इसी ग्रंथ के खण्ड 2 में पद्मावती पूजा दी गई है)*। फिर महादेवी की मंगल आरती करके शांति भक्तिपूर्वक विसर्जन करें। बाद में ध्यानपूर्वक शुक्रवार की व्रत कथा सुनें। श्री पद्मावती देवी के सहस्रनाम के प्रत्येक बीजाक्षर मंत्रों को बोलते हुए एक-एक चुटकी कुमकुम या लवंग पुष्प चढ़ावें, प्रत्येक शतक में अर्घ्य चढ़ावें, गंधोदक सिंचन करें और **''ॐ आं क्रों ह्रीं ऐं क्लीं ह्र सौं श्री पद्मावतीदेव्यै नमः मम सर्व-विघ्नोपशांतिं कुरु-कुरु स्वाहाः''** अथवा-**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्री पद्मावतीदेव्यै नमः मम ईप्सितं कुरु कुरु स्वाहा।** इस मंत्र का लाल कनेर के फूलों से जाप्य करें। यदि कनेर के फूल उपलब्ध न हों तो गुलाब आदि के पुष्पों से जाप करें। आखिरी शुक्रवार को ऊपर कही हुई सारी क्रिया परिपूर्ण करके श्री पद्मावती माता को साड़ी पहनावें, षोडशालंकार से शृँगार करावें और नीचे लिखी सामग्री लेकर गोद भरें-

पाँच हरी चूड़ियाँ, पाँच हल्दी की गाँठ, पाँच खोपरा, पाँच चोपड़े, पाँच नींबू, पाँच केले, पाँच छुहारे, पाँच मखाना, पताशा आदि इस प्रमाण लेकर उत्तम नारियल तथा चोली का वस्त्र लेकर गहूँ या चावल से पाँच सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा गोद भरावें। गोद भरते समय अग्रिम श्लोक पढ़ें–

जय स्फटिक रूपद भामिनी, श्री पद्मावती अघहारिणी।
धरणेन्द्रराज कुलयक्षिणी, दीर्घ आयुरारोग्य रक्षिणी।।

उसके बाद अपने कुटुम्बीजनों को भीगे चने, हल्दी, कुमकुम, मखाना, पताशा, गुड़, खोपरा, पान, सुपारी इत्यादि गोद का प्रसाद बोलकर बांटे। एकत्रित सौभाग्यवती स्त्रियों को हल्दी कुमकुम लगावें। बाद में जयजयकार करके मंगल गीत गाजे-बाजे के साथ घर वापस आवें। इस प्रकार पाँच वर्ष पर्यन्त यह व्रत विधिपूर्ण होने पर बाद में उद्यापन करें।

उद्यापन विधि इस प्रकार है–पाँच कोणों पर कुम्भों की स्थापना करें, पाँच कलश स्थापित करें, पंचवर्णी रेशमी सूत बांधकर पाँचों कोणे तैयार करें। चारों दिशाओं में केले के खम्भ खड़े करें। खम्भों के पास दीपकों की रोशनी तथा हांडी, गोला, झाड़ आदि से सजावट करें, आटे के दीपक से आरती करें, चंवर ढुरावें, कुमकुम मिश्रित अक्षत एवं फूलों

की वृष्टि करें। श्री पद्मावती देवी का विधान करें। पाँच पकवान के पाँच नैवेद्य अर्पण करें। पद्मावती देवी के समक्ष फूल और फूलों पर कुमकुम रख कर और मोती रखकर चढ़ावें और सौभाग्यवती स्त्रियों को देवें। पाँच-पाँच मंगल वस्तुएं श्री जिनमंदिर में चढ़ावें। आर्यिका को आहारदान तथा वस्त्रदान देवें। पाँच दम्पत्ति को इच्छित भोजन करावें। यदि इस प्रकार से उद्यापन करने की शक्ति न हो तो दुगुणा व्रत करें। इस व्रत का फल कहते हैं-

माँ, बाप, बहिन, भाई, नणद, देवर, जेठानी, सास, ससुर सबके आशीर्वाद से जीकर पति परमेश्वर का आखिर तक अच्छा सहवास मिले। सुसंतान सहित सुखी संसार बने, आनन्द से समय बीते, धन संतान की वृद्धि, लक्ष्मी की प्राप्ति, आरोग्यता, दीर्घायु एवं भूतपिशाचादि का नाश इत्यादि सुखों की प्राप्ति होकर चारों तरफ कीर्ति फैलती है। इस व्रत की महिमा अपरम्पार है। श्री जिनधर्म पर श्रद्धा भक्ति रखें। जीवन पर्यन्त श्री पद्मावती माताजी की यथायोग्य सेवा नियमित रूप से करते रहने से अखण्ड सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

स्त्रियों के लिए कुमारी अवस्था में आत्म कुमकुम (हल्दी) और यौवनावस्था में संपत कुमकुम (कुमकुम) निश्चय से दुर्गति निवारक हैं। परन्तु इस जन्म में भी–

''कज्जलं कुमकुम काचं कबरी कर्णशेखरम्।
एवं पंच प्रकीर्त्यानि ककाराणि पुरन्ध्रीणाम्।।''

अर्थात् काजल, कुमकुम, काँच, चोटी व कर्णफूल ये पति-पुत्रवती (सौभाग्यवती) स्त्री के पाँच ककार कहे गये हैं। सौभाग्यवती कहलाने वाली महाभाग्यवती को ऊपर कहे पाँच ककारों को जीवन के अखिर तक प्राप्ति होकर अखण्ड सौभाग्यवती कहलाकर बड़े गौरव से उसका आयुपर्यन्त यश फैलता है। आत्म कुमकुम और संपत कुमकुम इन व्रतों के महत्व का वर्णन श्री धरणेन्द्र देवराज की चंचल जिव्हा द्वारा भी किया जाना अति कठिन है, यह महाकल्याणकारी है। बरसाती तुच्छ नदी प्रवाह के समान क्षणभंगुर जीवन को निस्सार समझकर संसार बढ़ाना मूर्खपन है। इस भवसागर से पार होने के लिए विचारशील को यह व्रत करणीयभूत है। इसलिए महिलागण इस व्रत को पालन करने में दृढ़ बनें, अबला की तरह अति कोमल न होवें। स्त्री जन्म को इसी भव में सार्थक कर लेवें, क्योंकि अगला जन्म उच्च कुल में ही होगा, ऐसा निश्चित नहीं कहा जा सकता। इसीलिए नर से नारायण बनने का यही उत्तम साधन है। इसलिए जागरूक होकर उत्साह व प्रसन्नता से व्रत धारण करें, उससे दुःख में सुख की प्राप्ति होगी। इस प्रकार रुक्मावती ने उन भट्टारक जी के मुख से व्रत का महात्म्य, विधि और फल सुनकर अपनी दरिद्रता की बिना परवाह किये महाराज के पास व्रत लेने का मन में निश्चय किया। उसने भट्टारक जी को नमोऽस्तु करके अपने भाव व्यक्त किये। उन्होंने पंचपरमेष्ठी की साक्षी से उसको व्रत दिया। रुक्मावती महाराज से व्रत लेकर घर गई और शक्य सामग्री से व्रत शुरू किया।

उसी गाँव में रुक्मावती का गुरुदेव नाम का भाई रहता था। वह बड़ा धनाढ्य था। उसने अपने पुत्र के यज्ञोपवीत संस्कार के निमित्त गाँव के सारे नागरिकों को एक सप्ताह पर्यन्त इच्छित भोजन कराकर संतुष्ट करने के भाव से घर-घर निमंत्रण दिया। मगर अपनी बहिन को निमंत्रण मात्र भी नहीं भेजा, क्योंकि वह दरिद्रा थी, अगर वह आयेगी तो देखकर लोक में निंदा होगी, यह सोचकर उसे याद तक नहीं किया। गाँव के छोटे-बड़े सब लोग खा-पीकर ताव देकर डकार लेते हुए उसी के दरवाजे के सामने से जाने लगे तब उसको एक प्रकार का आश्चर्य हुआ और सोचने लगी कि मैं और मेरा भाई एक ही हाड़, माँस, रक्त, पिंड के होते हुए देखो उसने सब लोगों को संतुष्ट किया है, मैंने उसका ऐसा क्या बिगाड़ किया है। फिर सोचा शायद कामकाज की धांधली में भूल हो गई होगी। इसलिए बेकार उस पर रोष करके मुझे मेरे सोने जैसे भाई को दोष देना ठीक नहीं। निमंत्रण नहीं भेजा तो क्या हुआ? भाई ही का तो घर है, जाने में क्या हरज है। ऐसा विचार करके वह बाल-बच्चों सहित जीमने गई। बच्चों को सामने लेकर स्त्रियों की पंगत में बैठ गई। थोड़ी देर बाद उसका भाई कौन आया, कौन रहा, यह जानने के लिए वहाँ घूम रहा था, उसका ध्यान अपनी बहिन की तरफ गया तो पास आया और गुस्से से बोला, ''बहिन तू आज यहाँ कैसे आई? तेरी गरीबी के कारण ही तो मैंने तुझे

जानबूझकर नहीं बुलाया, तेरे पास न अच्छे कपड़े हैं न गहने। तुझे ऐसी दरिद्र देखकर लोग मुझ पर हसेंगे। इसलिए आज तो आई सो आई मगर कल मत आना, समझी! बहिन बेचारी लज्जित होकर नीची गर्दन कर खा-पीकर बच्चों को लेकर घर गई। दूसरे दिन भी बच्चे कहने लगे माँ अपन आज भी मामा के यहाँ खाने को जायेंगे, यह सुनकर माँ के पेट में खलबची मची। उसने बच्चों को बहुत डांटा मगर वे माने नहीं, उनके हठ के कारण फिर मन में विचार किया कि कैसा भी हो अपना भाई ही तो है, बोला तो क्या हुआ, अपनी गरीबी है तो सुनना ही पड़ेगा, मगर आज का निर्वाह तो होगा। ऐसा सोचकर दूसरे दिन भी बच्चों को लेकर भाई के घर गई और खाने को बैठी। कल की तरह आज भी भाई की सवारी पंगत में आने पर उसने उसे देखा और बोला-''बहिन तू कैसी भिखारिन है। कल तुझे मना किया था तो भी आज फिर सुअरी जैसी बच्चों को लेकर आ गई? तुझे शर्म कैसे नहीं आई? आज आई तो आई अगर कल फिर आई तो हाथ पकड़कर निकाल दूँगा।'' उस बेचारी ने चुपचाप यह सुन लिया और खाने के बाद उठकर अपने घर चली गई। तीसरे दिन भी इसी प्रकार हुआ तब भाई को खूब गुस्सा आया और उसने उसको धक्का देकर बाहर निकाल दिया। तब उसे बहुत दुःख हुआ, घर जाकर बहुत फूट-फूटकर रोई। उसके मन में विचार आया कि कौन जन्म में कौन-सा घोर पाप किया जिससे इस जन्म में मुझे घोर दरिद्रता की मार पड़ रही है। सच है अनन्त जन्मों के पाप की राशि इस दरिद्रता का मुख्य कारण है। इसकी अपेक्षा तो मुझे नरक के दुःखों से भुन जाना ही अच्छा होता, अब यह यम-यातना सही नहीं जाती, इससे तो मरण अच्छा। क्योंकि वह तो एक बार ही भुगतना पड़ता है परन्तु दरिद्रता का दुःख जीवन पर्यन्त भोगना पड़ेगा। धिक्कार है मेरे इस जीने को। हे देवी पद्मावती! हे अम्बिका माता! तू ही मेरी सहायता कर माँ! मुझे जगत में किसी का आधार नहीं, तू तो आसरा दे माता! इस प्रकार करुण क्रन्दन करके वह खूब रोई, रोते-रोते उसे नींद आ गई। नींद में उसे स्वप्न आया। उसके रोने की ध्वनि पद्मावती देवी के कानों पर जा टकराई, महादेवी तत्काल मुकुट, कुण्डल हार जवाहरात आदि पहनकर एक हाथ में धर्मचक्र लिए जगमगाती पोशाक पहने उसके पास आकर खड़ी हो गई और कहने लगी कि ''हे महाभागे! तू दुःखी होना नहीं, बिल्कुल घबराना नहीं, तू जो आचरण कर रही है उस संपत शुक्रवार व्रत को मैं अच्छी तरह जानती हूँ। आज तुझे दरिद्रता संबंधी महान दुःख हुआ है तथापि तेरे कष्ट अत्यन्त तेज से युक्त है, कारण–

कष्टाधीन ही दैवचि, देवाधीन सुकृतफल तदाधीव।
सुज्ञावाक्याचरिता भुक्ति मुक्ति मिले तदाधीन।।

कष्टाधीन दैवयोग है। दैवाधीन ही पुण्य का फल है। इसलिए महान पुरुषों के द्वारा कथित मार्ग पर चलना चाहिए उसके आधीन संसार के भोग व मुक्ति है।

''तू ध्यान दे और एक निष्ठापन से श्री जिन परमात्मा का चिन्तन कर। उससे तेरा कल्याण होगा।'' ऐसा कहकर वह देवी अदृश्य हो गई। रुक्मावती ने नींद से जागकर देखा तो वहाँ कोई नहीं दिखा। यह क्या चमत्कार है? कह कर वह उठ बैठी, मगर उसका मस्तक शून्य हो गया, उसे कुछ भी नहीं सूझा तो फिर वह श्री जिनमंदिर में जाकर शान्त चित्त से श्री पद्मावती महादेवी का मुख कमल देखने लगी। तब उसे वह मूर्ति हँसती हुई दिखाई दी। उस वक्त रुक्मावती दोनों हाथ जोड़कर विनती करने लगी कि ''हे देवी! महामाते! अम्बिका! पद्मावती माता! मैं अनाथ हूँ, मैंने तुम्हारी शरण को पाया है, मुझ गरीब की रक्षा करो, मुझे सन्मार्ग पर लगावो। तुम्हारी लड़की घोर संकट में है। इस जगत में मेरा कोई रक्षक नहीं रहा। भाई भाई कहती हुई अब कहाँ जाऊँ, मैंने तुम्हें ही अपने मन में धारण किया है।''

इस प्रकार कहते-कहते आँखों से अश्रुओं की धारा बह निकली और बहुत देर तक प्रार्थना व भक्ति करने के बाद उसे भान हुआ कि घर में बच्चे भूख से व्याकुल होंगे, सोचकर ध्यान से उठी और घर को चली। घर आकर क्या देखती है कि उसे अपने बच्चे कामदेव के अवतार के समान दिख रहे हैं। घर में धन-धान्य की भरमार होने लग गई है। हर काम में यशवृद्धि हो रही है। जगह-जगह वैभव फैलता जा रहा है और सामने नवीन हवेली बनकर तैयार है। घर में लक्ष्मी

की बाढ़ सी आई हुई है कि शायद श्रावण मास में बहने वाली नदी का प्रवाह भी उससे कम ही होगा। यहाँ-तहाँ आनन्द ही आनन्द है। सच देखा जाये तो जहाँ उसे दो वक्त खाने की भी मारामार थी वहाँ अब नये-नये पकवान की थालियाँ भरी दिखने लगी हैं। अनेक प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त हैं। सब तरह से घर भरपूर है, उसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई है। यह कीर्ति सुनकर उसका भाई गुरुदेव आश्चर्य चकित हो गया। अपनी बहिन का आदर सत्कार करना चाहिए ऐसा विचार कर वह स्वयं अपनी बहिन के घर आया और बहन से बोला-''बड़ी बहन! तुम कल मेरे घर खाने को आना। ना करना नहीं, तुम आओगी तब ही मैं खाना खाऊँगा, नहीं तो मैं भी खाना खाऊँगा नहीं, समझीं।'' बहिन ने सोचा, चलो अपना भाई बड़े सम्मान से बुलाता है, अब हम श्रीमंत हुए तो एक साथ गर्व नहीं करना चाहिए। इसका इस समय अपमान करना ठीक नहीं। सिर्फ इसको अपने किए हुए का पश्चाताप होवे और सन्मार्ग प्रवर्तक होकर अहंकार छोड़े ऐसा विचार कर वह अच्छे-अच्छे गहने तथा बढ़िया ओढ़नी पहन उत्तम शृँगार करके सम्मान से भाई के घर गई। भाई बड़ी आस्था से राह देख रहा था, उसके आने के साथ उसे पाँव धोने को गर्म जल दिया, पाँव पोंछने को रुमाल दिया। थाली परोसने पर दोनों बहन-भाई बड़े प्रेम से पास-पास खाने को बैठे। बैठे हुए पाटे पर उसने बदन पर से ओढ़नी उतारकर रख दी, भाई ने समझा गर्मी लगती होगी बाद में उसने शरीर पर से गहने निकालकर रखे, भाई ने सोचा अपनी कोमल बहिन को बोझा लगता होगा सो खाना खाने के वक्त तक के लिए निकाला है। परन्तु उसके बहिन ने पहला चावल का ग्रास उठाया और ओढ़नी पर रखा। जलेबी उठाई और मोती के कंगन पर रखी। पूरण पोली उठाई और हार पर रखी, भाजी उठाई और कंठी पर रखी। लाडू उठाया और भुजबंध पर रखा। यह देखकर भाई ने पूछा बड़ी बहन तुम यह क्या कर रही हो? तो बहिन ने शान्त मुद्रा से कहा मैं जो करती हूँ वह ठीक है, जिनको तुमने खाने को बुलाया है उनको मैं खाना दे रही हूँ। उसकी कुछ समझ में नहीं आया, फिर उसने विनती की कि बहिन अब तो तुम खाना खावो। तब बहिन ने कहा कि हे भाई साहब! आज खाना मेरा नहीं है, इस लक्ष्मी बहन का है। मेरा खाना मैं पहले ही खा चुकी हूँ। ऐसा सुनते ही भाई के मन में पश्चाताप हुआ। उसने बहन के पाँव पकड़े और बीती हुई गलती की क्षमा मांगी। बहिन भी उस समय बहुत दुःखी हुई और दोनों आपस में गले मिले और बाद में दोनों आनंद से खाने को बैठे, मन में जो शल्य था उसे निकाल दिया। जिनकी कृपा के प्रसाद से अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई उन पद्मावती माताजी की दोनों कुल के छोटे बड़े सभी कुटुम्बीजन सेवा करने लगे और अपनी अगणित सम्पत्ति का उपयोग अनेक व्रत उद्यापन चतुर्विध संघ को दान, जिनमंदिर जीर्णोद्धार, जिनवाणी प्रचार, सिद्धक्षेत्र यात्रा आदि धर्म कार्यों में करने लगे। सहस्रनाम मंत्र का क्रम से कुमकुम अर्चन करने लगे। इन सब परिणामों को देखकर वहाँ के राजा ने भी भक्ति में दृढ़ होकर जिनधर्म की खूब ठाठबाट से प्रभावना की। बाद में थोड़े ही समय में सर्व कुटुम्बीजनों ने राजा सहित जिन दीक्षा धारण कर घोर तप किया और वे चतुर्गति का नाशकर अन्त में मोक्ष गये।

कवलचान्द्रायण व्रत विधि एवं पूजा

योऽमावास्योपवासी प्रतिपदि कवलाहारमात्रः पुरस्तात्।
तद्वृद्ध्या पौर्णमासीमुपवनयुतो ऱ्हासयन्ग्रासमग्रे।।
सामावास्योपवासः स भजति तपसश्चंद्रगत्यानुपूर्व्या।
चार्व्या चांद्रायणस्य प्रविततयशसः कर्तृणः कर्तृभावं।।8।।

(जिनसेनाचार्य विरचित हरिवंश पु. सर्ग 34)

अर्थ–इस कवल चांद्रायण व्रत की विधि को जिनसेन स्वामी ने हरिवंश पुराण में इस प्रकार बताई है कि–अमावस्या को उपवास करके शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को एक ग्रास, द्वितीया को दो ग्रास क्रमशः बढ़ते हुए चतुर्दशी को 14 ग्रास व पूर्णमासी को उपवास करके कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को 14 ग्रास दूज को 13 ऐसे चतुर्दशी को 1 ग्रास लेवें व अमावस्या को उपवास करके प्रतिपदा को पारणा करें इस प्रकार चंद्र की कला के समान ग्रास की वृद्धि व हानिपूर्वक इस व्रत को करने वाले का चंद्रमा के समान यश वृद्धिंगत होता है।

''व्रततिथि निर्णय में व किशनसिंहकृत क्रियाकोश में इस व्रत की विधि में कुछ अंतर है अर्थात् –अमावस्या को उपवास करके एकम से एक ग्रास से बढ़ते हुये पूर्णमासी को 15 ग्रास लेवे पुनः एकम को 14 ऐसे घटते हुए चतुर्दशी को 1 ग्रास व अमावस्या को पारणा करें, व्रतों के दिन श्री चंद्रप्रभ भगवान का पंचामृताभिषेक करके नित्य पूजन, चंद्रप्रभ पूजन एवं जाप्य आदि करें। ऐसे ही दीप चान्द्रायण, धूप चान्द्रायण, फल व नैवेद्य चान्द्रायण भी होते हैं। अर्थात् 1-1 दीप, धूप, फल व नैवेद्य के द्वारा वृद्धि करते हुए पूजन करें। जैसे–प्रतिपदा को 1 दीपक से दूज को दो दीपक से पूजन करें, इसी तरह वृद्धि व नंतर क्रमशः हानि करें। इस व्रत में जाप्य चन्द्रप्रभु भगवान की करें।

व्रत पूर्ण करके उद्यापन करें–इस कवल चांद्रायण का मंडल मांडकर सकलीकरण आदिपूर्वक विधिवत् अभिषेक करके मंडल पर जिनबिंब विराजमान करके उद्यापन पूजन करें, पूर्णार्घ्य के नंतर संकल्प, पुण्याहवाचन, शांति और विसर्जन करें व मंदिर में चंद्रोपक, शास्त्र, छत्र, चामर आदि उपकरण दान देवें और 30 श्रावकों को भोजन करावें तथा 30 श्रावकों के घर फल, मिष्ठान्न आदि बांटें और भी अपनी शक्ति के अनुसार रथयात्रा, पालकी, जलयात्रा आदि उत्सवों के द्वारा धर्मप्रभावना करें, चतुर्विध संघ का यथोचित पूजन दान आदि के द्वारा सत्कार करें।

यही उद्यापन की पूजन नित्य प्रति भी करते हैं, 30 अर्घ्यों में एकम के दिन 1 अर्घ, दूज के दो ऐसे एक–एक बढ़ाते हुये 30 दिन तक 30 अर्घ्य पूर्ण होते हैं।

चांद्रायण व्रतोद्यापन की समुच्चय पूजा

रचयिता–भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्ति

सकलगुणसमुद्रं देवदेवेन्द्रवंद्यम्।
विमलवपुषि पीठे तीर्थतोयैश्च धौते।।
वसुमितजिनदेवं चंद्रधौतं नमामि।
सकलदुरतिव्यूहं हर्तुकामो भजेऽहम्।।1।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्र श्री चंद्रप्रभदेव! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्र श्री चंद्रप्रभदेव! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्र श्री चंद्रप्रभदेव! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

गंगादि तीर्थोद्भवनीरपूरैः, काश्मीरकर्पूरसुगन्धमिश्रैः।
ग्रासादिदीपोद्गमपूजनार्थं, चंद्रेशदेवं सततं यजामि।।1।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखंड काश्मीर सुगंध मिश्रैः, सौगंध्यसंवासितदिग्विभागैः।
ग्रासादिदीपोद्गमपूजनार्थं, चंद्रेशदेवं सततं यजामि।।2।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चंद्रांशुगौरैः सदकैर्मनोज्ञैर्हृद्घ्राणनेत्रप्रियदैः समक्षतैः।
ग्रासादिदीपोद्गमपूजनार्थं, चंद्रेशदेवं सततं यजामि।।3।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मंदारजाती बकुलादिपुष्पैः, सौगंधिकैः कृष्टमधुव्रतौघैः।
ग्रासादिदीपोद्गमपूजनार्थं, चंद्रेशदेवं सततं यजामि।।4।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्पिः पयोजन्यसुभक्ष्यजातैः, शाल्यादिपूपप्रमुखैर्निवेद्यैः।
ग्रासादिदीपोद्गमपूजनार्थं, चंद्रेशदेवं सततं यजामि।।5।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपोत्करैर्ध्वस्तमोवितानैः, कर्पूरजैर्मोहविनाशनाय।
ग्रासादिदीपोद्गमपूजनार्थं, चंद्रेशदेवं सततं यजामि।।6।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सिल्हारकृष्णागरुधूपवर्गैः, संवासिताशेषनभोविभागैः।
ग्रासादिदीपोद्गमपूजनार्थं, चंद्रेशदेवं सततं यजामि।।7।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नारंगपूगादिफलैर्मनोज्ञैर्जंबीरजातीफलकेलिजातैः।
ग्रासादिदीपोद्गमपूजनार्थं, चंद्रेशदेवं सततं यजामि।।8।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीराद्रिव्याष्टकदर्भदूर्वा-सिद्धार्थमांगल्यवरप्रदानैः।
अर्घ्यं ददेऽभीष्टफलाय नित्यं, चंद्राभदेवाय सुशर्मदाय।।9।।

ॐ ह्रीं शशांकगोक्षीरधवलगात्राय श्री चंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ प्रत्येक पूजा

एकात्मध्यानसंलीनं,सर्वदोषविवर्जितम्।
चंद्रप्रभं प्रभुं चाये, सर्वदोषप्रशांतये।।1।।

ॐ ह्रीं श्री एकात्मध्यानसंलीन श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रागद्वेषविनिर्मुक्तं, मुक्ति श्री संगतत्परम्।
सर्वकामप्रदं नित्यं, चर्चे तीर्थकरं विभुम्।।2।।

ॐ ह्रीं रागद्वेषरहित श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयमयं शुद्धं, तद्गुणप्राप्तयेऽनिशम्।
मनोवाक्काय संशुद्ध्या, भजे चंद्रप्रभं विभुम्।।3।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयरूपाय श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुःकषायनिर्मुक्तं, संसारांभोधिपारगम्।
चतुरास्रवहंतारं, सेवे दुःखौघहानये।।4।।

ॐ ह्रीं चतुःकषायरहित श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाव्रतधरं धीरं, पंचसमितिराजितम्।
भवाब्धेः पारगं वंदे, लोकशिखरवासिनम्।।5।।

ॐ ह्रीं पंचसमितिधारकाय श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्द्रव्याणां तु ज्ञातारं, षट्कायरक्षणोद्यतं।
चंद्रप्रभजिनं चर्चे, भावशुद्ध्या निरंतरं।।6।।

ॐ ह्रीं षट्द्रव्यप्रकाशकाय श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जात्यादिमदसंत्यक्तं, गुणाष्टकविभूषितं।
श्रीजिनं प्रत्यहं वंदे, पापशत्रुप्रहाणये।।8।।

ॐ ह्रीं अष्टमदवर्जिताय श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नयानां भेदवक्तारं, पदार्थनवसूचकं।
संसारदुःखनाशाय, चर्चेऽहं सारवस्तुभिः।।9।।

ॐ ह्रीं नवतत्वप्रकाशकाय श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशधर्म युतं धर्मध्यानदशकख्यापकं।
मोहमल्ल-विजेतारं, पूजयामि जिनेश्वरं।।10।।

ॐ ह्रीं दशधर्मप्रकाशकाय श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकादशांग वक्तारं, नेतारं श्रावकाय च।
एकादश प्रमाणायाः, प्रतिमायास्तमर्चये।।11।।

ॐ ह्रीं एकादशांगप्ररूपकाय श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तपो द्वादशधा प्रोक्तं, येन तीर्थेन स्वामिना।
तं चाये श्रीप्रभुं नित्यमष्टमं श्रीसुखाकरम्।।12।।

ॐ ह्रीं द्वादशविधतपख्यापकाय श्रीचंद्रजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चरितं येन चारित्रम्, त्रयोदशविधं शुभम्।
तं जिनं प्रत्यहं वंदे, मृगांकतनुससन्निभं।।13।।

ॐ ह्रीं त्रयोदश चारित्र-चरिताय श्रीचंद्रप्रभजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्गणाख्यापकं धीरं, गुणस्थान-प्ररूपकम्।
जलगंधादिभिश्चर्चे, श्रीजिनं सुदयापरम्।।14।।

ॐ ह्रीं चतुदर्शगुणस्थान निरूपकाय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यैः प्रमादैरहो जन्तुः, संसारे भ्रमति स्वयं।
तैस्त्यक्तं श्रीजिनं वंदे, मोहमल्लविमर्द्दकं।।15।।

ॐ ह्रीं पंचदशप्रमादरहिताय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दृष्ट्यादिभावनाः पूर्व, जन्मनि भाविताः स्फुटं।
येन भव्येन जीवेन, तं जिनं प्रार्चयेऽनिशम्।।16।।

ॐ ह्रीं षोडषभावना भावितात्मने श्रीचंद्रप्रभजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रकारैः सप्तदशकैः, संयमः प्रतिपालितः।
तं ध्यायामि प्रभुं नित्यं मोक्षसौख्याभिलाषुकः।।17।।

ॐ ह्रीं सप्तदशविधसंयमपालकाय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधादिदोषकैरष्टादशभिरनुपद्रतं।
नवलब्धियुतं सार्वं सर्वज्ञं संस्तुवे सदा।।18।।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषनिवारकाय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकोनविंश प्रमित-समासानां प्रभेदकाः।
ख्यापिता येन तीर्थेन, तं ध्यायामि निरंतरम्।।19।।

ॐ ह्रीं एकोनविंशति जीवसमासप्ररूपकाय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशद्विगुणिताः ख्याताः, प्ररूपणा जिनैः स्मृताः।
जानन्नपि स संयाति, मोक्षं तद्वचसा ननु।।20।।

ॐ ह्रीं विंशतिप्ररूपणाप्ररूपकाय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हिंसादि पंचदुरित-प्रमुखा विंशकाधिकाः।
चंद्रेण दोषाः संत्यक्तास्तं विभुं नित्यमर्चये।।21।।

ॐ ह्रीं हिंसादिएकविंशति–दोषरहिताय श्रीजिनचंद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परीषहा द्वाविंशतिर्मर्षिता येन स्वामिना।
तं देवं प्रत्यहं वंदे, मनोवाक्कायशुद्धितः।।22।।

ॐ ह्रीं द्वाविंशतिपरीषहमर्षिताय श्रीचंद्रप्रभजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रयोविंशप्रमाः प्रोक्ता, जिनेन पुद्गलाणवः।
येन देवेशचंद्रेण, तं ध्यायामि निरंतरं।।23।।

ॐ ह्रीं त्रयोविंशति पुद्गलाणुप्रकाशकाय श्रीचंद्रप्रभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्विंशप्रमाः ख्याताः, सिद्धांते च परिग्रहाः।
येन त्यक्ताः प्रभुं तं च, भजे शुद्धैकचेतसा।।24।

ॐ ह्रीं चतुविंशतिपरिग्रहरहिताय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

व्रतानां भावनाः प्रोक्ताः, पंचविंशति सम्मिताः।
भाविता ध्यानसमये, तं देवं सततं स्तुवे।।25।।

ॐ ह्रीं पंचविंशतिभावनाभाविताय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दृष्ट्यादिभावनाः, सप्त-नवभिरधिका बराः।
वृषा दश स्फुटं येन, प्रणीतास्तं स्तुवे जिनं।।26।।

ॐ ह्रीं षड्विंशतिवृषभावनाप्ररूपकाय श्रीचंद्रप्रभ-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिधा स्त्रियो जिनैः ख्यातास्तास्त्यक्ताः शुद्धभावतः।
मनोवाक्काययोगेन कृतकारितसम्मतैः।।27।।

ॐ ह्रीं मनोवाक्कायादिसप्तविंशतिदोषनिवारकाय श्रीचंद्रप्रभजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनीनां ध्यानलीनानामष्टाविंशतिसम्मिता।
प्रोक्ता मूलगुणा येन, तमधीशं स्तुवेऽनिशम्।।28।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणप्रकाशकाय श्रीचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयगुणाः प्रोक्ता येन तीर्थेशिना वराः।
एकोनत्रिंशत्प्रमितास्तं ध्याये सततं हृदि।।29।।

ॐ ह्रीं एकोनत्रिंशद्रत्नत्रयगुणप्रख्यापकाय श्रीजिनचंद्रप्रभाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशभिः सहिताः पंचद्विगुणाः परिकीर्तिताः।
समासाः सर्वसत्वानां, येन तं चर्चये जिनं।।30।

ॐ ह्रीं त्रिंशत्जीवसमास प्रकाशकाय श्रीचंद्रप्रभजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अमितगुणयुतानां श्रीजिनानां पुरस्ता-
द्बहुविधबहुभक्त्या स्वर्णपात्रे निधाय।
कलरववर-तूर्यैर्गीतनृत्यादि युक्तै-
र्वसुमितवरद्रव्यैश्चार्घ्यमुत्तारयामि।।31।।

ॐ ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

यख्यामले ज्ञानमये सुदर्शे, प्रकाशतामेति जगत्स्वरूपं।
चराचराख्यं क्षितिपैर्नतं तं, चंद्रप्रभं देवमहं स्तवीमि।।1।।

सतो गुणांस्तस्य प्रभुर्न वक्तुं, क्षोणीतले कोऽपि नरोऽमरो वा।
चतुष्टयानंतसमुद्भवं तं, चंद्रप्रभं देवमहं स्तवीमि।।2।।

देवा असंख्यातमिता जगत्यां, संतीह ये दोषशतैरूपेताः।
न ते नृणां मोदकरा अतस्तं, चंद्रप्रभं देवमहं स्तवीमि।।3।।

क्षमो भवान्काममतंगजस्य, मदं प्रमार्ष्टुं सकलावशस्य।
अपूर्वकंठीरवतां दधानं, चंद्रप्रभं देवमहं स्तवीमि।।4।।

अमेय सद्बोध कलासु भासुरं, दयोदयोद्भूतकलंकवर्जितं।
चंद्रोऽप्यभद्रस्तुलयेत्कथं त्वां, चंद्रप्रभं देवमहं स्तवीमि।।5।।

नागेन्द्र-देवेन्द्र-नरेन्द्र-मुख्यै, र्दक्षैरलक्ष्योऽसि गुणान्गृणद्भिः।
अतो गुणातीतमतः समेषां, तमष्टमं तीर्थकरं प्रवंदे।।6।।

सद्भक्तियुक्ता मनुजा गुणाढ्या, यमर्चयन्त्यष्टविधोपचारैः।
ते प्राप्नुवंतीह सुखानि नित्यं, वंदेऽहकं कांतगुणं जिनेशं।।7।।

विशुद्धबोधं दृढभाक्तिकाय, प्रदेहि मे त्वद्गुणरंजिताय।
कारुण्यबुद्ध्या प्रभुणा हि भाव्यं, विश्वेषु मत्वेति जिनेशदेवम्।।8।।

–घत्ता–

अमितगुणगरिष्ठं नष्टकर्मारिकष्टं।
सकलभुवननाथ सर्वदोषप्रमाथं।।
सुरवरपतिसेव्यं चाष्टमं श्री जिनेशं।
प्रणयचयनियुक्तः स्तौति देवेंद्रकीर्तिः।।9।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभदेवाय जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। इति श्री चंद्रप्रभ–जिनजयमाला समाप्ता ।।

नवदेवता पूजन

गीता छन्द – अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु त्रिभुवन वंद्य हैं।
जिनधर्म जिनआगम जिनेश्वर, मूर्ति जिनगृह वंद्य हैं।।
नव देवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें।
आह्वान कर थापें यहाँ, मन में अतुल श्रद्धा धरें।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथाष्टक –

गंगानदी का नीर निर्मल, बाह्य मल धोवे सदा।
अंतर मलों के क्षालने को, नीर से पूजूँ मुदा।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर मिश्रित गंध चंदन, देह ताप निवारता।
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरतहिं वारता।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षीरोदधी के फेन सम सित, तंदुलों को लायके।
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नवसु चढ़ायके।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।3।।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चम्पा चमेली केवड़ा, नाना सुगन्धित ले लिये।
भव के विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।4।।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में।
निज आत्म अमृत सौख्य हेतू, पूजहूँ नत भाल मैं।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।5।।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर ज्योति जगमगे, दीपक लिया निज हाथ में।
तुम आरती तम वारती, पाऊँ सुज्ञान प्रकाश मैं।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।6।।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंधधूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊँ सदा।
निज आत्मगुण सौरभ उठे, हों कर्म सब मुझसे विदा।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।7।।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगूर अमरख आम्र अमृत, फल भराऊँ थाल में।
उत्तम अनूपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूँ आज मैं।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।8।।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत पुष्प चरु, दीपक सुधूप फलार्घ्य ले।
वर रत्नत्रय निधि लाभ यह, बस अर्घ्य से पूजत मिले।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।9।।
ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा –

जलधारा से नित्य मैं, जग की शांति हेत।
नवदेवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत।।10।।
शांतये शांतिधारा।

नानाविध के सुमन ले, मन में बहु हरषाय।
मैं पूजूँ नव देवता, पुष्पांजली चढ़ाय।।11।।
दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य – **ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्मजिनागम जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः।**

जयमाला

–सोरठा –

चिच्चिंतामणिरत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हों।
गाऊँ गुणमणिमाल, जयवंते वर्तो सदा।।1।।

(चाल-हे दीनबन्धु श्रीपति.....)

जय जय श्री अरिहंत देवदेव हमारे।
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे।।
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूँ।
जय अष्ट कर्ममुक्त की मैं अर्चना करूँ।।2।।

आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं।
दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं।।
जैवंत उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी।
सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करें घनी।।3।।

जय साधु अठाईस गुणों को धरें सदा।
निज आत्मा की साधना से च्युत न हों कदा।।
ये पंचपरमदेव सदा वंद्य हमारे।
संसार विषम सिंधु से हमको भी उबारें।।4।।

जिनधर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा।
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा।।
जिन की ध्वनि पीयूष का जो पान करेंगे।
भव रोग दूर कर वे मुक्ति कांत बनेंगे।।5।।
जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं।
वे चित्स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं।।
कृत्रिम व अकृत्रिम जिनालयों को जो भजें।
वे कर्मशत्रु जीत शिवालय में जा बसें।।6।।
नव देवताओं की जो नित आराधना करें।
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करें।।
मैं कर्मशत्रु जीतने के हेतु ही जजूँ।
सम्पूर्ण ''ज्ञानमती'' सिद्धि हेतु ही भजूँ।।7।।

–दोहा–

नवदेवों को भक्तिवश, कोटि कोटि प्रणाम।
भक्ती का फल मैं चहूँ, निजपद में विश्राम।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्म-जिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं.....।
शांतिधारा, पुष्पांजलिः।

–गीता छंद–

जो भव्य श्रद्धाभक्ति से, नवदेवता पूजा करें।
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें।।
नवनिधि अतुल भंडार ले, फिर म ठु ोक्ष सुख भी पावते।
सुखसिंधु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते।।9।।

।। इत्याशीर्वादः ।।

श्री पंचपरमेष्ठी पूजा

<<vfMY;y NUn >>

vgZfRl¼kpk;Z] mikè;k; lk/kqgSaA
dgsiapijes'Bh] xq.kef.k lk/kqgSaAA
HkfDrHkko lsd:¡] ;gk¡ ijEkkiukA
iwtw¡ J¼k /kj] d:¡ fgr vkiukAA1AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k; loZlk/qlewg! v=k vorj vorj ladS''kV~A
¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k; loZlk/qlewg! v=k fr''B fr''B B%B% LFkkiuaA
¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k; loZlk/qlewg! v=k ee lfUugrks HkoHko o''kV~ lfUu/hdj.kaA

vFkk''Vda (pky&UUnh'oj Jh ftu/ke——)

lqjlfjrk dk tyLoEN] dapuHk`axHk:¡A
Hkor``''kkdkSpkou gsrq] rqe in /kj d:¡AA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkrkA
HkoHkze.kiapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA1AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k; loZlk/qH;ks tUetjke`R;qfoukk'kuk; tya fuoZikehfr ldkgkA

ey;t panu diwZj] xa/ lqxa/ d:¡A
Hkor nkg djks lc nwj] pj.ku ppZ d:¡AA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkrkA
HkoHkze.kiapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA2AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k; loZlk/qH;ks lalkjrkifouk'kuk; panu fuoZikehfr ldkgkA

i;lkxj iQsu leku] v{kr /ks; fy;kA
v{k; xq.kikus gsrq] iqatp<+k; fn;kAA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkrkA
HkoHkze.kiapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA3AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k; loZlk/qH;ks v{k;inizkIr;s v{kra fuoZikehfr ldkgkA

epdpandeyodbykfn] lqjfHkkr iq"i fy;kA
enukfjt;h indat] iwtr lkS[; fy;kAA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkA
HkoHkze.k iapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA4AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k;loZlk/qH;ksdkeck.kfoèoaluk;
iq"ia fuoZikehfrIodgkA

?ksoj iQsuh jl iw.kZ] eksnd 'kq¼ fy;kA
ee {kq/k jksxdjpw.kZ] rqe iniwt fd;kAA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkA
HkoHkze.k iapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA5AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k;loZlk/qH;ks {kq/kjksxfuokj.kk;
u8os|a fuoZikehfrIodgkA

rhidchT;ksfr izdk'k] n'kfn'k èdkargjsA
rqe iwtr eu dks eksg] gj fodku Hkjs AA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkA
HkoHkze.k iapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA6AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k;loZlk/qH;ks eksgja/dkjfouk'kuk;
rhia fuoZikehfrIodgkA

n'kxa/ lqxaf/r /wi] [ksor deZ tjasA
lc deZ dyad fonwj] vkre 'kq¼ djsaAA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkA
HkoHkze.k iapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA7AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k;loZlk/qH;ks v'VdeZfoèoaluk;
/wia fuoZikehfrIodgkA

vaxwj vukj [ktwj] iQy ds Fkky Hkjs A
rqe in vpZr Hko nwj] f'koiQy izkIr djsAA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkA
HkoHkze.k iapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA8AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k;loZlk/qH;ks eks{kiQy izkIr;s
iQya fuoZikehfrIodgkA

ty panu v{kr iq"i] usot nhi fy;kA
oj /wi iQyksa ls iw.kZ] rqe in v?;Z fd;kAA
Jh iapijexq#nso] iapexfr nkrkA
HkoHkze.k iapgjyso] iwtw¡ in=kkrkAA9AA

¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k;loZlk/qH;ks vu?;Zinizkir;s
v?;± fuoZikehfrIodgkA

&lksyg&

iapijexq# ds pj.k] ty dh /kjk nsrA
futeu 'khryxsrqvj] frgqa tx 'kakfrxsrAA10AA
'kkars'kkafr/kjkA

odqy efYyydk flr dey] iq"i lqxaf/r yk;A
iq"ikatfydj fuupj.k] iwtw¡ eu gj"kk;AA11AA
fnO; iq"ikatfy½A

tkI;&¬ßha vgZfRl¼kpk;ksZikè;k; loZlk/qH;ks ue%
(108 lqxaf/r iq"i ;k yoax ls tkI; djukA)

t;ekyk

&lksjBk&

Hkoty fu/h ftgkt] iapije xq# txr esaA
fnuh xq.kef.keky] xkÅ¡ HkfDr o'k lgAA1AA

(pkj&gs rhudU/q——A)

tSoar vfjgar nso] fl¼ vuarkA
tSoar lwfj mikè;k; lk/q egarkAA
tSoar rhu yksdesa ;s iapxq# gSaA
tSoar rhu cky ds Hkh iapxq# gSaAA1AA
vgaZr nso ds gSa fN;kyhl xq.k dgsA
ftuuke ek=k ls gh iki 'ks'k uk jgsAA
n'ktUe ds vfr'k; gSa peRdkj ls HkjsA
dSoY;Kku gksr gh vfr'k; tqn'k /jsaAA2AA
pkSng dgs vfr'k; gSa nso jfpr crk;sA
rhFkZadjksa ds ;s lHkh pkSarhl gSa xk;sAA
gSa vkB izkfrgk;Z tks o Hkofo'ks'k gSaA
vkuar prq'V; lqpkj lo Z Js'B gSaAA3AA
tks tUe ej.k vkfn nks"k vkBn'k dgsA
vgZar esa ugksa vr% fuksZ"kos jgsAA
lo Z K dh rjax fgr ds 'kkUrk gSa tks A
gS ckj ckj canuk vfjgar nso ks AA4AA
fl¼ksa ds vkB xq.k iz/ku :i ls xk;sA
tks vkB deZ ds fouk'k ls gSa crk;sAA
;ksa rks vuar xq.k leqe lo Z fl¼ gSaA
mudks gS canuk tks flf¼esa fuokl gSaAA5AA

vkpk;Z nso ds izeq[k NÙkh l xq.k dgsA
rh{kkf.k nspa mla?k ds uk;d xq# jgsaAA
iBh l xq.kksa als ;qDr mikè;k; xq# gSaA
tks ek=k iBu ikBu fd;k esa gh fujr gSaAA6AA

tks vkRek dh l k/uk esa yhu jgs gSaA
os ewy xq.k vkB Bkbl ksa als l k/q dgs gSaAA
vkjk/uk lqpkj dh vkjk/uk djsaA
ge bu f=kHkqu l k/q dh mikluk djsaAA7AA

vfjgar fl¼ nks l nk vkjkè; xq# dgsA
=k;fo/ eq[k vkjk/dksa ds dksfV esa jgsaAA
vgZr fl¼ nso gSa 'kq¼krek dgsA
'kq¼kRe vkjk/ dgSa l wfj ldkRek ygsaAA8AA

xq# nso mikè;k; izfrikndksa esa gSaA
'kq¼kreksa ds l k/dksa dks l k/q dgs gSaAA
iakpksa ;s ije inesa l nk fr'B jgs gSaA
bl gsrq l s ijes'Bh ;s uke ygs gSaAA9AA

bu ik¡p ds gSa bd l kS fnd~kyh l xq.k dgsA
bu ewy xq.kksa als Hkh la[;kdh xq.k jgsaAA
mÙkj xq.kksa als ;qDr ik¡p lqi# gSa jsA
fuu dlqu esa=k Hkdksa nf/ l s mdjsAA10AA

gs ukFk! blh gsrq l s rqe ikl esa vk;kA
lE;DRo fu/h ik; ds rqe dh fnZ dks xk;kAA
cl ,d fourth is esjh è;ku nhft;sA
dSoY; ^Kkuerh* dk gh nku nhft,AA11AA

&Sfgjk&

f=kHkqu ds pwM+kef.k] vgZr fl¼ egkuA
lwjh Bdl k/qdks] uew¡ uew¡ xq.k[kuAA12AA

¬ßha vgZfR¼ipk;ksZ ilè;k;ksZ l oZl k/q H;ks t;ekykiw.kk ZH;%± fuoZ ikehfr ldkgkA

'kkar;s 'kkafr/kjk ifjiq"Vkatfy%A

&Sfgjk&

iapijes"Bh dh 'kj.k tks ysrs Hkfo/kjA
jRu=k; fuf/ ik; ds Hkks xsa l kS[; l nhoAA13AA

AAdR;k'khokZn%AA



अर्हन्त परमेष्ठी पूजा

&Sfdkiuk&xhrkNUh&

vfjgar izHkq us ?kkfr;k dks] ?kkr fut lq[k ik fy;kA
N~;kyh l xq.k ds ukFk vBjg] nks"k dk lc {k; fd;kAA
'kr bUæ fur iwtsa mUgsa] x.k/j equh oanu djsaA
ge Hkh izHkks! rqe vpZuk] ds gsrq vfHkuanu djsaAA14AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZr~ijesf"B lewg! v=k vorj vorj lackS"kV~ vkàkuaA
¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZr~ijesf"B lewg! v=k fr'B fr'B IFkkiuaA
¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZr~ijesf"B lewg! v=k ee lfUufgrks Hko Hko o"kV~ lfUu/hdj.kaA

vFkk'Vdaz ÏfX.khNan

lk/q ds fpÙk le LoPN ty ys fy;kA
deZey {kkyus rhu /kjk fd;kAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr l sA
deZ vfj ks guw¡ HkfDr ch ;qfDr lsAA1AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks tUetjke`R;qfouk'kuk; tya fuoZ ikehfr lOkkgkA

xa/ lkSxaè; ls ukFk dks iwtrsA
loZ l arki ls HkO;tu NwVrsAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr l sA
deZ vfj ks guw¡ HkfDr ch ;qfDr lsAA2AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks l alkjrkifouk'kuk; pan a fuoZ ikehfr lOkkgkA

/kSr v{kr fy;s Lo.kZ ds Fkky esaA
iqat /j ds ttwa uk; ds Hkky eSaAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr lsA
deZ vfj dks guw¡ HkfDr dh ;qfDr lsAA3AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks v{k;inizkIr;s v{kra fuoZikehfrIOkkgkA

dsrdh dqan epdqan csyk fy;sA
dkegj ukFk ds ikn viZ.k fd;sAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr lsA
deZ vfj dks guw¡ HkfDr dh ;qfDr lsAA4AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks dkeck.kfouk'kuk; icq"ia fuoZikehfrIOkkgkA

eqDr&x eksnd bejrh Hkjs Fkky esaA
vkRe lq[k gsrq eSa vfiZgw¡ gky esaAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr lsA
deZ vfj dks guw¡ HkfDr dh ;qfDr lsAA5AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks {kq/ kjks&fouk'kuk; u&os|a fuoZikehfrIOkkgkA

Lo.kZ ds nhi esa T;ksfr diwZj dhA
ukFk in iwtrs eksg re pwjrhAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr lsA
deZ vfj dks guw¡ HkfDr dh ;qfDr lsAA6AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks eksgkU/ dkjfouk'kuk; rhia fuoZikehfrIOkkgkA

/wi dks vfXu esa [ksors 'kh?kz ghA
deZ 'k=kw tyse lkS[; gks 'kh?kz ghAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr lsA
deZ vfj dks guw¡ HkfDr dh ;qfDr lsAA7AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks v"VkgZnguk; /wia fuoZikehfrIOkkgkA

lso v¡xwj nkfM+e vuUukl ysA
eks{k iQy gsrq ftu ikn iwtw¡ HkysAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr lsA
deZ vfj dks guw¡ HkfDr dh ;qfDr lsAA8AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks eks{kiQy izkIr;s iQya fuoZikehfrIOkkgkA

v?;Z ysdj ttw¡ ukFk dks vkt eSaA
lokRe laifÙk dk ikÅ¡ lkezkt eSaAA
loZ vfjgar dks iwtgw¡ HkfDr lsA
deZ vfj dks guw¡ HkfDr dh ;qfDr lsAA9AA

¬ßha .keks vfjgark.ka Jh vgZRijesf"BH;ks vu?;Zinizkir;s v?;± fuoZikehfrIOkkgkA

&ksjk&

ftu in esa /kjk d:¡] pmla?k 'kkarh gsrA
'kkarh/kjk tx esa] vkR;fÙkd lq[k nsrAA10AA
'kkar;s 'kkafr/kjkA

paid gjflaxkj cgq] icq'i lqxaf/r lkjA
icq'ikatfy ls iwtrs] gksos lkS[; vikjAA11AA
frO; icq'ikatfy%A

tkI;&¬ßha vgZRijesf"BH;ks ue%A

t;eykA

&ksjk&

Jh vfjgar ftusUæ dk] /:¡ âu; esa è;kuA
xkÅ¡ xq.kef.kekfyd] g:¡ ldy vièkuAA1AA

&ekSfDrdiq"ian&

t; t; izHkq rhFkdj ftuoj] rqe leksj.k esa jkt jgsA
t; t; vgZr~ y{eh ikdj] fut vkre esa gh vki jgsAA
tUer gh n'k vfr'k; gksrs] nq esa u ilso ue yvkrhA
i;le flr #f/j lq lqeqrh d] laLFkku lq ugS vkrhAA1AA
vfr'k; lq:i] lqjfHkr rqgS] 'kq)ky{k.k lgl vkBksa gsA
vqfyr cq)fiz;fgr quizHkks] ;sn'k vfr'k; tue eks gsaAA
dsoy jfo izkfVr gksrs gh n'k] vfr'k; vn Hkqr gh ekuksa A
pkjsa fn'kkvksa dsturd] lqfHk{k jgs ;g lj/kuksAA2AA
gks&xu eu] ufga izk.kh o/] ufga Hkksu ufga mi&Zrq Fkgsa A
puq[krh [ks lcfo|kifr] ufga Nk;k ufga fVdus rq Fkgsa AA
ufga u[k vkSds'kks<sa izHkqds] ;sn'k vfr'k; lq[kdk jgSa A
lqjd`rqdSs gvfr'k; eqj] tks HkO;ksa dks fgrdkjh gSaAA3AA
lkdZ/Zeks/h;kHkk'kk] lc izk.kh eS=h Hkko /jsa A
lc&rqds iQy vkSj iQy f[kysa] niZ.kor~ Hkwe yHk~ /jsaAA

vuqdwy lqxaf/r iou pys] lc tu eu ijekuUn Hkjsa A
jtdkWdfojfjgr Hkwfe lcRN] xa/ksnks o`"Vh nso djsa AA49AA

izHkqinu rydeyf[kysa lqjnj] 'kkyhvkfndogq/kU; iQysa A
fuesZy vkok'k fn'kk fuesZy] lqjx.k feyt; t;dkj djsa AA
vfjgar nso dk Jhfogkj] oj /eZpØ pyrk vkxsa A
olqeaxya0; jgsa vkos] ;gfoHko feyk txdsR;kos AA5AA
r#kojv'kksdlqjiq'io`f"V] fn0;èofu] pkSalBpej dgsa A
flagkuHkkeaMylqjd`r] nqnqfHkN=k; 'kksHkjgsa AA
;s izkfrgk;ZgSa vkBdgs] vkSn'kZu Kku lkS[; dhjtA
;spkjvuarpq'V; gSa] lcfeydjN~;kfyl xq.kdhjz AA6AA
{kq/r`"kk tUeej.kkfnrks'k] vEn'kfojfjgr finsZ'kgq,A
pn?kkfr?kkr uoyfC/ik;] lcZKizHkwlq[kiks'kgq,AA
}kn'kx.kdsHkfovla[;kr] rqe/qfulqugf'kZrgksrsgSaA
lE;DRolfyydsikdjdsHkoHkodsdfyey/krsgSa AA7AA
eSaHkhHkorq%[kls?kMkdj] vcvki 'kj.kesavk;kgw¡A
lE;DRojruufgayqV~tkos] cl ;gizkEkZikyk;kgw¡AA

la;edhgksiwrhZHkkour~! vkSej.k lek/hiwZdgksA
gksdsoy^^Kuehr* fl)h] tks lo Zxq.kksa dhiwjdgksAA8AA

&Hkkgk&

eksgvjh dks gu gq,] f=kHkqu iwtk ;ksX;A
ueks ueks vfjgar dks] ikÅ¡ lkS[; euksKAA9AA

¬Ìha .keksvfjgark.ka JhvgZRijesf"BH;% t;ekykiw.kkZ?;± fuZikehfrIokgkA

'kkar;s 'kkafr/kjkA fn0;iq"ikatfy%A

&ksjNUh&

tks HkfDr ls vfjgar nso ;tu djsaxsA
osHkO; ucks fuf/ ls HkaMkj Hkjsaxs AA
dSoY; Kkuefr ls ucyfC/ ojsaxsA
fiQjeks{kegyesavuarkS[; Hkjsaxs AA10AA

AAbR;k'khokZr%AA



सिद्ध परमेष्ठी पूजा

&LFkkiuk&xhrkNUn&

Jh fl¼ ijes"Bh vuUrkuUr =kSdkfyd dgsA
f=kHkqu f'k[kj ij jktrs] og lklrs fLFkj jgsa AA
osdeZ vkBksauk'k dj] xq.k vkB /j d`rd`R; gSaA
djEkkiukeSa iwtgw¡] mucsa uesa fur HkO; gSa AA1AA

¬Ìha .keks fl¼k.ka Jhfl¼ijesf"Blewg! v=k vorj vorj laks"kV~ vkàkuaA
¬Ìha .keks fl¼k.ka Jhfl¼ijesf"Blewg! v=k fr"Bfr"BB%B% IFkkiuaA
¬Ìha .keks fl¼k.ka Jhfl¼ijesf"Blewg! v=k ee lfUufgrks HkoHko o"kV~ lfUu/hdj.kaA

vFkk"Vda&iapkejNan

vukfn ls r`"kk yxh u uhj ls oq>h dHkhA
vr% çHkks f=k/kj ns; uhj ls ttw¡ vHkhAA
vuUr fl¼pØ dh lnk mikluk d:¡A
Lo tUe e`R;qeZy thr flf¼ vaxuk o:¡AA1AA

¬Ìha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf"BH;% tUetjke`R;q&fouk'kuk; tya fuZikehfrIokgkA

vuar dky jkx vkx nkg esa tyk fn;kA
mlh fd 'kkafr gsrq xa/ yk; p.kZ pfjpZ;kAA
vuUr fl¼pØ dh lnk mikluk d:¡A
Lo tUe e`R;qeZy thr flf¼ vaxuk o:¡AA2AA

¬Ìha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf"BH;% lalkjrki&fouk'kuk; pUua fuZikehfrIokgkA



{k.ksd lqP[k gsrq eSa uek lHkh dqnso dksA
v[kaMlkS[; gsrq 'kkfy ls ttw¡ lqnso dksAA
vuUr fl¼pØ dh lnk mikluk d: ¡A
Lo tUe e`R;q eÝy thr flf¼vaxuk o: ¡AA3AA

¬ßha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf'BH;% v{k;in& çkIr;s v{kra fuoZikehfr Lokgk A

lqxU/ iq'igkj ys ttw¡ leLr fl¼ dksA
jrh'k eÝy thr ds ygw¡ futkRe flf¼ dksAA
vuUr fl¼pØ dh lnk mikluk d: ¡A
Lo tUe e`R;q eÝy thr flf¼vaxuk o: ¡AA4AA

¬ßha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf'BH;% dkeck.k& foèoaluk; iq'ia fuoZikehfr Lokgk A

fi;w'k fiaM ds leku eksndkfn ys; dsA
futkRe lkS[; gsrq eSa ttw¡ izekn [kks; dsAA
vuUr fl¼pØ dh lnk mikluk d: ¡A
Lo tUe e`R;q eÝy thr flf¼vaxuk o: ¡AA5AA

¬ßha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf'BH;% {kq/kjksx& fouk'kuk; u Sos|a fuoZikehfr Lokgk A

lqp.kZ nhi ys; ukfEk ikn vpZuk d: ¡A
leLr eksgèoaru'kdkuT;ksfr dksHk: ¡AA
vuUr fl¼pØ dh lnk mikluk d: ¡A
Lo tUe e`R;q eÝy thr flf¼vaxuk o: ¡AA6AA

¬ßha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf'BH;% eksgka/ dkjfouk'kuk; rhia fuoZikehfr Lokgk A

lqxU/ /wi ys; vfXu ik=k esa iztkfy;sA
dyad iad 'Toky ds futkRe dks mtkfy;sAA
vuUr fl¼pØ dh lnk mikluk d: ¡A
Lo tUe e`R;q eÝy thr flf¼vaxuk o: ¡AA7AA

¬ßha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf'BH;% v'V& deZnguk; /wia fuoZikehfr Lokgk A

vukj lsc larjkfn lRiQyksa dks ykb;sA
Lo rhu jRu gsrq ukfEk ikn esa p<+kb;sAA
vuUr fl¼pØ dh] lnk mikluk d: ¡A
Lo tUe e`R;q eÝy thr] flf¼vaxuk o: ¡AA8AA

¬ ßha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf''BH;% eks{kiQyçkIr;s iQya fuoZikehfr Lokgk A

lqjRu dks feyk; v?kZ] ys; Ekky esa HkjsA
vuUr 'kfDr gsrq vki] p.kZ vpZuk djsAA
vuUr fl¼pØ dh] lnk mikluk d: ¡A
Lo tUe e`R;q eÝy thr] flf¼vaxuk o: ¡AA9AA

¬ßha .keksfl¼k.ak Jhfl¼ijesf'BH;% vu?;Zin& çkIr;s v?;± fuoZikehfr Lokgk A

&Sksyk&

çHkq in esa /kjk d: ¡] pkSl ¡?k 'kkarh gsrAA
'kkarh/kjk txr esa] vkR;afod lq[k gsrq AA10AA
'kkUr;s 'kkafr/kjk A
paid gj flaxkj cgq] iq'i lqxfU/r lkjA
iq'ikatfy ls iwtrs] gksos lkS[; vikjAA11AA
frO; iq'ikatfy% A

tkI;&¬ßha fl¼ijesf'BH;ks ue%A

t;ekyk

&Sksyk&

iqr~xy ds laca/ ls] ghu Lo;a Lok/huA
uew¡ uew¡ lc fl¼dks] fnu in HkfDr v/huAA1AA

pkS&gsrq———

t; t; vuar fl¼ ca`n eqfDr ds darkA
t; t; vuar HkO;o`an flf¼ djarkA
t; t; f=kyksd vxz Hkkx Åèoz jktrsA
t; ukfEk! vki esa fgr vki fuR; jktrsAA1AA

Kkukoj.k ds ik¡p Hksn dks foukf'k;kA
uo Hksn n'kZukoj.k dks loZ ukf'k;kAA
nks osnuh; vkB chl eksguh gusA
pm vk;q uk edeZ lc frjkucs gusAA2AA

nks xks=k varjk; ik¡p loZ ukf'k;kA
lcbd lkS vM+rkyhl deZ izd`fr ukf'k;kAA
;s vkB deZuk'k eq[; vkB xq.k fy;sA
fiQj Hkh vuarkuar lqq.kka`nHkj fy;sAA3AA

bu <kbZ }hi eè; ls gh eqfDr in feysA
vU;=k rhu yksd esa uk iw.kZ lq[k f[kysAA

lc gh eurq"; ecPr gksrs deZHkwfe lsA
vU;=k lsHkhecPr gksa mlh{k.k fufeÙk lsAA4AA
icZr urh leqnz xqiQk danzkdksa lsA
cu Hkkse Hkwfe deZHkw vkSj osfnkdksa lsAA
tks ecPr gq, gks jgs vkS gks;asxs vkosA
mu lcZ fl¼ dks ue¡ eSa 'kh'k>qdk dsAA5AA
uj yksd iSarkyhl yk[k ;kstuksa dgkA
mruk izek.k fl¼ yksd dk Hkh gS jgkAA
v.kqek=k Hkh txg u tgk¡ ecPr uk gq,A
vr,o fl¼ yksd fl¼ k.k ls Hkj jgsAA6AA
mRd`"V lok iakp lkS /uq dk izek.k gSA
t?kU; lk<+s rhu gkFk dk gh eku gSAA
eè;e vusd Hksn ls voxkguk dghA
mu lcZ fl¼ dks ue¡ wos lkS[; dh eghAA7AA
fut vkRetU; furjkdk/ lkS[; Hkksxrs A
fut Kku ls gh yksdkyksd dks foyksdrsAA

fut esa lnSo r`Ir lnkdky jgsaxsA
vkos dHkh Hkh os u iqutZUe ygsaxsAA8AA
mu loZ fl¼ dh eSa lnk canuk d:¡A
lokZFkZfl f¼ gsrq lnk vpZuk d:¡AA
rqe ukeek=k Hkh fufeÙk loZ fl f¼ esaA
vr,o ue¡ w ckj&ckj loZ fl¼ eSaAA9AA

&Skkgk&

Hkwr Hkfo";r laizrh] rhu dky ds fl¼A
much iwtk tks djsa ygsa ^Kkuefr* fi¼AA10AA

¬ßha .keks fl¼k.ka Jh loZfl¼ ijesf"BH;% t;ekyk iw.kkZ?;Fkfuo`Ùkehfr Idkgk A

'kkar;s 'kakfr/kjk A fnO; iq"ikatfy%A

&ksjNh&

tks HkfDr ls Jh fl¼ izHkq dk ;tu djsaxsA
os HkO; uDks fuf/ ls Hkjk Mkj Hkjsaxs AA
dSoY; ^Kkuefr* ls uoyfC/ ojsaxsA
fiQj eks{k eq[; esa vuar lq[k Hkjsaxs AA11AA

AAdR;k'khokZn%AA



आचार्य परमेष्ठी पूजा

&Fkkiuk&xhrkNan&

tks Lo;a iapkpkj ikysa] vU; ls iyokorsA
Nùkh xq.k /kjsa lnk] fut vkRek dks è;korsAA
,sls ije vkpk;Zoj] Hkofl a/q ls Hkfo rkjrsA
bl gsrq much vpZuk] fgr ge ân; esa /kjrsAA1AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"Bleog! v=k vorj vorj ladS"kV~ vkàkuaA
¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"Bleog! v=k fr"B fr"B B% B% LFkkiuaA
¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"Bleog! v=k ee lfUufgrks HkoHko o"kV~ lfUu/hdj.kaA

vFkk'VdL Hkqtaxiz;kr Nan

i;ksjkf'k dk uhj fueZy Hkjk Å¡A
xq: ds pj.k rhu /kjk djk Å¡AA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA1AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% tUetjke`R;qfouk'kuk; tya fuoZikehfr Idkgk A

lqxa/hr panu fy;s Hkj dVksjhA
txÙkkigj ppZgw¡ gkFk tksjhAA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA2AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% lalkjrkifouk'kuk; pUna fuoZikehfr Idkgk A

/qys 'osr v{kr fy;s Fkky Hkj dsA
/:¡ iqat rqe ikl cgq vk'k /j ds AA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA3AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% v{k;inizkIr;s v{kra fuoZikehfr Lokgk A

tqgh dsrdh iq"i dh eky ykÅ¡A
lHkh O;kf/ gj vki pj.kksa p<+kÅ¡AA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA4AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% ckeck.kfoèoaluk; iq"ia fuoZikehfr Lokgk A

ljl fe"V iDokUu ve`r ln`'k ysA
ije r`fIr gsrw p<+kÅ¡ rqEgsa eSaAA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA5AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% {kq/kjks&fouk'kuk; u Sos|a fuoZikehfr Lokgk A

f'k[kk nhi dh txexkrh Hkyh gSA
ttr gh rqEgsa Kku T;ksfr tyh gSAA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA6AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% eksgU/dkj&fouk'kuk; rhia fuoZikehfr Lokgk A

vxq# /wi [ksrs mM+s /wez uHk esaA
nqfjr deZ tyrs xq# HkfDr o'k rsaAA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA7AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% v'Vdeaguk; /wia fuoZikehfr Lokgk A

vuUukl uhacw fctkSjk fy;s gSaA
rqEgsa viZrs loZ ckafNr fy;s gSaAA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA8AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% eks{kiQyizkIr;s iQya fuoZikehfr Lokgk A

fy;s Fkky esa v?kZ gS HkfDr Hkkjh A
xq# vpZuk gS lnk lkS[;dkjh AA
ttw¡ fuR; vkpk;Z ds ikn dks eSaA
r:¡ 'kh?kz lalkj ckjkf'k dks eSaAA9AA

¬ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zijesf"BH;% vu?;Zinizkr;s v?;± fuoZikehfr Lokgk A

&Skgk&

xq# in esa /kjk d#¡] pmla?k 'kkarh gsrA
'kkarh/kjk tx esa] vkR;a fod lq[k gsrq AA10AA
'kkUr;s 'kkafr/kjk A
paid gjflaxkj cgq] iq'i lqxaf/r lkjA
iq'ikatfy lsiwtrs] gksos lkS[;vkjAA11AA
fn0; iq'ikatfy%A

tkI;&¬ßha vkpk;Zijesf"BH;ks ue%A

t;ekyk

&Skgk&

Hkookfjf/ esa HkO; ds] d.kZ/kj vkpk;ZA
xkÅ¡ rqe xq.kekfyd] gksos ee vkpk;ZAA12AA

&ïfX.khNan&

eSauw¡ eSauw¡ eSauw¡ lwfjdsA
iki larki esjk lcsa nwj gksAA
ukEkrsjs fouk dksbZ uk vkiukA
'kh?kz lalkj ckjkf'k ls rkjuk AA13AA

f'k"; dk vki lax zg djsa pko lsA
fiR; muis vuqxzg djsa Hkko lsAA
nks'k y[k vki fux zg djsa ;qfDr lsA
n.Mns 'kq¼djrs futh 'kfDr lsAA14AA

es#le /hj xEHkhj gks flU/q leA
lw;Z le rst/`r~ lkSE; gks pUæ leAA
ekr`or~ j{kks fir`or~ ikyrsA
/eZ mins'k ns HkO; v?k Vkyrs AA15AA

d`".k uhy kfn ys';k ugha vki esaA
ihr in ekfn ys';k jgsa ikl esaAA

ns'kdy tkfr ls 'kq¼ks Js'Bgks A
pkj fo/ la?kLdeh lnk b'Vgks AA4AA
tUe O;k/h gj.k vki gh oS| gks A
d'Vmi lxZ ls vki ufga Hks | gks AA
lcZ lk/wk.kksa ls lnk jkè; gks A
bUæ'kr oa| Hkfoo`an vkjkè; gks AA5AA
ewyxq.k vkSj mÙkjxq.kksa ds /jks A
lcZ ifj'kg lgks eks{kesa n`x/jks AA
uXu eqæk ;Ekktkr xq#o;Z thA
dL=k J`a xkj fojfgr /je/q;Z th AA6AA
jRu=k; ;qDr fiQj Hkh vfdkjh U; gks A
eksgrqUEkh jfgr vki fuxzUFk gks A
gks d`ik flU/q vkuUn HkaMkj gks AA
deZ cU/ nX/ djus ds vaxkj gks AA7AA
czãpkjh jgs fiQj Hkh rqe ikl esa A
lcZnk gS riL;k jsk lkFk esa AA
½f¼;k¡ flf¼;k¡ rqe pj.k pwe ha A
eqfDr ry{eh lnk ikl esa ?kwe h AA8AA

tks rqEgkjs pj.k ch djsa vpZuk A
isQj gksos dHkh Hkk mUgsa tue ukA
ukFk! eSa Hkh d:¡ HkfDr bl gsrq ls A
gs xq#s! vc Nqæk ds txr~Dys'k ls AA9AA

&Sk`k&

lwjhjxq.k.k]vf.kr xq.kef.k] tks Hkfotuf'kj ij/jrs A
osrqZfr ifjgj] lqfr jsk oj] dcy ^Kkuh* ojrs AA10AA
¬ ßha .keks vk;fj;k.ka Jh vkpk;Zi jesf''BH;% t;ekyk iw.kkZ?;± fuoZikeh fr lokgkA

'kkar;s 'kkafr/kjk fn O;iq'ikatfy%A

&sjNh&

tks Hkfdr ls vkpk;Z nso ;tu djsa xs A
os HkO; ucks fuf/ ls HkaMkj Hkjsa xs AA
dSoY; ^Kkuefr* ls uoyfC/ o jsa xs A
fiQj eks{k egy esa vuar lq[k Hkjsa xs AA11AA

AAbR;k'khkdZ%AA



श्री उपाध्याय परमेष्ठी पूजा

&Fkkiuk&khrkNan&

tks vax X;kjg iwoZ pkSng] /kjrs fut oqf¼ esa A
i<+rs i<+krs ;kn mUgsa] tks 'kkL=k gSa rRdky esa AA
os xq: ikBd eks{kiFk] n'kZd mUgha dh canuk A
vkàku fof/ djds ;gk¡ ij] eSa d:¡ fur vpZuk AA1AA

¬ ßha .keks mo lD>k;k.ka Jh mikè;k;k ijesf''Blewg! v=k vorj vorj lack S''kV~ vkàkuaA
¬ ßha .keks mo lD>k;k.ka Jh mikè;k;k ijesf''Blewg! v=k fr''B fr''B B% B% LFkkiuaA
¬ ßha .keks mo lD>k;k.ka Jh mikè;k;k ijesf''Blewg! v=k ee lfUufgrks Hko Hko o''kV~ lfUu/hdj.kaA

vFkk''Vda&vfMÙy Nan&

jsokufn dks uhj] duD>kjh Hk:¡A
eqfuin /kjk ns;] ldy O;k/h g:¡AA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;ds A
ijeHkksn fodkl ygw¡] xq.k xk;ds AA1AA

¬ ßha .keks mo lD>k;k.ka Jh mikè;k;k ijesf''BH;% tUetjke`R;qfouk'kuk; tya fuoZikeh fr lokgkA

v''Vxa/ lkSxa/] f?klkdj ys fy;kA
eqfupj.k kEkoqt iwtr] rki 'keu fd;kAA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;ds A
ijeHkksn fodkl ygw¡] xq.k xk;ds AA2AA

¬ ßha .keks mo lD>k;k.ka Jh mikè;k;k ijesf''BH;% lalkjrkifouk'kuk; panua fuoZikeh fr lokgkA

eqDrkiQy le v{kr] /ksdj ykb;kA
ikBdeqfu ds lEeq[k] iqat p<+kb;kAA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;dsA
ije#ksnfdKku ygw¡] xq.k xk;dsAA3AA

¬ßha .keks moI>k;k.ka Jh mikè;k;ijesf'BH;% v{k;inizkIr;s v{kra fuoZikehfrIokgkA

ekSyfljh epdpan] pesyh vkfn ysA
enut;h½f'kjkt] ttw¡ cqlqekfn ysAA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;dsA
ije#ksnfdKku ygw¡] xq.k xk;dsAA4AA

¬ßha .keks moI>k;k.ka Jh mikè;k;ijesf'BH;% dkeok.kfoèoaluk; iq'ia fuoZikehfrIokgkA

cjiQh isM+k iwj.kiksyh p# fy;sA
eqfu in iadt iwtk dj fut lq[k fy;sAA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;dsA
ije#ksnfdKku ygw¡] xq.k xk;dsAA5AA

¬ßha .keks moI>k;k.ka Jh mikè;k;ijesf'BH;% {kq/kjksxfouk'kuk;u8os|a fuoZikehfrIokgkA

ef.k nhid esa ?k`r Hkj] nhi tyk b;kA
eksg frfejdks uk'k] Kku izdV b;kAA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;dsA
ije#ksnfdKku ygw¡] xq.k xk;dsAA6AA

¬ßha .keks moI>k;k.ka Jh mikè;k;ijesf'BH;% eksgkU/dkjfouk'kuk;nhia fuoZikehfrIokgkA

o`Q'.kkx: oj/wi] vfXu esa [ksb;kA
deZ v'V dj nX/] futkre lsb;kAA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;dsA
ije#ksnfdKku ygw¡] xq.k xk;dsAA7AA

¬ßha .keks moI>k;k.ka Jh mikè;k;ijesf'BH;% v'VdeZnguk; /wia fuoZikehfrIokgkA

,yk dsyk dktw fdlfel Fkky esaA
rqe in vpwt fuR; uekdj Hkky eSaAA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;dsA
ije#ksnfdKku ygw¡] xq.k xk;dsAA8AA

¬ßha .keks moI>k;k.ka Jh mikè;k;ijesf'BH;% eks{kiQyizkIr;siQya fuoZikehfrIokgkA

v'VæO; ls v?kZ] cukdj ys fy;kA
{kkf;dlefdr gsrqg] pj.kviZ.k fd;kAA
mikè;k; xq#nso] ttw¡ eu yk;dsA
ije#ksnfdKku ygw¡] xq.k xk;dsAA9AA

¬ßha .keks moI>k;k.ka Jh mikè;k;ijesf'BH;% vu?;Zinizkir;sv?;± fuoZikehfrIokgkA

&Sksgk&

xq: in esa /kjk d:¡ pmla?k 'kkarh gsrA
'kkarh/kjk tx esa] vkR;afdlq[k gsrAA10AA

'kkU;s'kkafr/kjkA

paid gjflaxkj cgg] iq'i lqxfU/r lkjA
iq'ikatfy lsiwtrs] gksos lkS[;vikjAA11AA

fr0; iq'ikatfy%A

tkI;&¬ßha mikè;k;ijesf'BH;ks ue%A

t;ekyk

&Sksgk&

vkxe us=k r`rh; gS] ftl lk/w ds ikl A
osf'koiEkijdk'krs] uew¡ uew¡ lq[kjkf'kAA

&Sjksyk Nan&

t; t; Jh xq#nso] mikè;k; in/kjhA
t; t; rqe inlso] djrs Hkfo uj ukjhAA
t; t; eqfux.k oa|] /ekZe`r cjlkrsA
t; t; rqe eqfipæ] HkO; dqeqn fodlkrsAA1AA

baeiQ.khUæujsæ] rqe in HkfDr djs gSaA
lqj fdUuj xa/oZ] rqe xq.kxku djs gSaAA
rqe n'kZu ls HkO;] lE;Xn'kZ ygs gSaA
in iadt vkjkè;] lE;XKku ygs gSaAA2AA

eSa gw¡ fpPpSrU;] ijekuan Lo:ihA
'kq¼ cq¼ vfo#¼] vey vdy fpæwihAA
n'kZ Kku lq[k oh;Z] lgt vuar gekjsA
xq.k vuar fpfRiaMfpUe;T;ksfr laHkjsAA3AA

:i xa/ jl iQkl] iqr xy ds xq.k tkuksaA
iqr xy fufeZr nsg] mlesa gh ;s ekuksaAA

bafæe; eu vkS okd~] iqn~xy :i dgs gSaA
fut vkre lsfHkUu] lE;XKku ygs gSaAA4AA

iq.; iki }; deZ] iqn~xy dh jpuk gSA
buesa g'kZ fo'kn] dj Hko nq[k Hkjuk gSAA
fu'p; u; ls 'kq¼ KkuLo:ih vkREkkA
ijekRegkn v[kaM] lkS[; lfgr ijekRekAA5AA

fiQj Hkh ;g O;ogkj] u; ls deZ lfgr gSA
pdzo Zrh esa fiR;] Hkzerk Hkzkafr lfgr gSAA
vc fut dks fut tku] ij dks ij J¼kusA
rc pfj=k dks /kj] loZ deZ ey gkusAA6AA

xq# izlkn ls vkt] lE;d~ jRu feyk gSA
fut ij dks izfrHkk] lE;XKku f[kyk gSAA
lE;d~ pkfjf=k.kZ] /kj.k 'kfDr ugha gSA
ftuk dbZ Neq> ikl] mlesa nks 'k lgh gSAA7AA

djks Ñik xq#nso] 'kDrh ,slh ikÅ¡A
iw.kZ pfj=k fodkl] djds deZ u'kkÅ¡AA
fut dks fut ds gsrq] fut esa gh ik tkÅ¡A
¶Kkuh.kh djiw.kZ] isQj u Hkoesa vkÅ¡AA8AA

&Sksyk&

Kku è;ku ri esa exu] /kjsa xq.k iRphlA
mikè;k;xq#o;Z dks] uewu ew¡ur 'kh'kAA9AA

¬ßha .keks mo>k;k.ka Jhmikè;k;ijesf"BH;% t;ekyk v?;± fuoZikehfr lokgkA

'kkUr;s 'kkafr/kjk A frO;iq"ikatfy%A

&sjNh&

tks HkfDr ls Jh mikè;k; ;tu djsaxsA
os HkO;uoks fuf/ ls HkaMkj Hkjsaxs AA
dSoY; Kkuefr ls uoyfC/ ojsaxsA
fiQj eks{kegy esa vuar lkS[; Hkjsaxs AA1AA

AAbR;k'khodZr%AA



सर्वसाधु परमेष्ठी पूजा

&Fkkiuk&hrkNan&

tks fuR; ecpkjh ekxZ jRu=k;] Lo;a lk/sa lgh A
os lk/q lalkj kfC/ rj ikrs Lo;a gh f'koegh AA
oga is lnk lq[kdsr ijekuan lq[k dks Hkksxrs A
much djsa ge vpZuk] os HkDr eu ey /kssrs AA1AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka JhloZlk/qijesf"Blewg! v=k vorj vorj lackS"kV~ vkàkuaA
¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka JhloZlk/qijesf"Blewg! v=k fr"B fr"BB%B%LFkkiuaA
¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka JhloZlk/qijesf"Blewg! v=k ee lfUufgrks Hko Hko o"kV~ lfUu/hdj.kaA

vFkk'Vda&ukjkpNan

lk/q fpÙk ds leku LoPN uhj ykb;sA
lk/qp.kZ /kj ns; iki iad {kkfy;sAA
izkÑrhd fufoZdkj uXu:i dks /jsaA
eqfDr dh Ykkyl kEkkfi 'kh?kz vkidks ojsAA1AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka JhloZlk/qijesf"BH;% tUetjke`R;qfouk'kuk; tya fuoZikehfr lokgkA

lo.kZ dkafr ds leku ihr xa/ ykb;sA
lk/qp.kZ ppZrs leLr rki ukf'k;sAA
izkÑrhd fufoZdkj uXu:i dks /jsaA
eqfDr dh Ykkyl kEkkfi 'kh?kz vkidks ojsAA2AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka JhloZlk/qijesf"BH;% lalkjrkifouk'kuk; pUua fuoZikehfr lokgkA

pan jf'e ds leku /kSr 'kkfy ykb;sA
p.kZ ds lehi iaqt nsr lkS[; ikb;sAA
izkÑrhd fufoZdkj uÙku:i dks /jsaA
eqfDrdUÞHkkuEkkfi 'kh?kzvkicksojsAA3AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka Jhlo Zlk/qijesf'BH;% v{k;inizkIr;s v{kra fuoZikehfr Lokgk A

dÙio`{k ds lqxaf/ iq'i Ekky esa Hkjs A
dkenso ds t;h ftusaæ&ikn esa /jsaAA
izkÑrhd fufoZdkj uÙku:i dks /jsaA
eqfDrdUÞHkkuEkkfi 'kh?kzvkicksojsAA4AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka Jhlo Zlk/qijesf'BH;% dkeck.kfoèoalu; iq'ia fuoZikehfr Lokgk A

iwfjdk befrZ;k¡ lqp.kZ Ekky esa Hkjs A
Hkw[kO;kf/ uk'k gsrqvki vpZuk djsaAA
izkÑrhd fufoZdkj uÙku:i dks /jsaA
eqfDrdUÞHkkuEkkfi 'kh?kzvkicksojsAA5AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka Jhlo Zlk/qijesf'BH;% {kq/kjksxfouk'ku; u Sos|a fuoZikehfr Lokgk A

jRunhi esa diwj T;ksfr dks tykb;sA
lk/qp`an iwtrs lqjsUnz T;ksfr ikb;sAA
izkÑrhd fufoZdkj uÙku:i dks /jsaA
eqfDrdUÞHkkuEkkfi 'kh?kzvkicksojsAA6AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka Jhlo Zlk/qijesf'BH;% eksgkU/dkjfouk'ku; rhia fuoZikehfr Lokgk A

v'Vxa/ vfr lqxa/ /wi [ks; vfÙu esaA
v'VdeZ HkLe gksr vki Hkfdr jax esaAA
izkÑrhd fufoZdkj uÙku:i dks /jsaA
eqfDrdUÞHkkuEkkfi 'kh?kzvkicksojsAA7AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka Jhlo Zlk/qijesf'BH;% v'VdeZnguk; /wia fuoZikehfr Lokgk A

lsc vke larjk cnke Fkky esa Hkjs A
iwtrs fg vki p.kZ eqfDr vaxuk ojsAA
izkÑrhd fufoZdkj uÙku:i dks /jsaA
eqfDrdUÞHkkuEkkfi 'kh?kzvkicksojsAA8AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka Jhlo Zlk/qijesf'BH;% eks{kiQyizkIr;s iQya fuoZikehfr Lokgk A

uhj xa/ vkfn v'VvO; v?kZ ys fy;kA
lq[k vuar gsrq] vki p.kZ esa lefiZ;kAA
izkÑrhd fufoZdkj uÙku:i dks /jsaA
eqfDrdUÞHkkuEkkfi 'kh?kzvkicksojsAA9AA

¬ßha .keks yks, lOolkgw.ka Jhlo Zlk/qijesf'BH;% vu?;Zinizkir;s v?;± fuoZikehfr Lokgk A

&Sksgk&

xq# in esa /kjk d: ¡] pm la?k 'kkarh gsrA
'kkarh/kjk txr esa] vkR;afrd lq[k gsrAA
'kkUr;s 'kkafr/kjk ZA

paid gjflaxkj cgq] iq'i lqxfU/r lkjA
iq'ikatfy ls iwtrs] gksoss lkS[; vikjAA
frO; iq'ikatfy%AA

tkI;&¬ßha lo Zlk/qijesf'BH;ks ue%A

t;ekyk

&Sksgk&

fpPpSrU; lqdYir#] vkJ; ys lq[kdkjA
f'koiQy ch dYNk djsa] ue¡ w lk/q xq.k/kjAA
pk;&gsmra/q————————

tSoar lk/qp`an ldy }a} fudjsaA
tSoar lq[kkuUn lkRe rÙo fopkjsaAA
tStSeqHkLeuÙku:i /kj jgs gSaA
tStSvuar lkS[; ds vk/kj Hk;s gSaAA1AA

xq#nso vÙ;Hkko Zlewyxq.k dks ojsA
mÙkj xq.kksa dks HkfDr ds vuqlkj /kjsAA
Jqr dk vH;kl }kn'kkax rd Hkh dj jgsA
fut :i ls gh eks{kin lkdkj dj jgsAA2AA

xzh'e½xq esa ioZ ksa ls è;ku /jsgSaA
d'kZ½xwesa o`{kewyesa gh [kM+gSaAA
B.Mh½xwesa pkSgVs is ;k unh rVsA
fut vkRek ds è;kors f'koiFk ls ufga gVsAA3AA

cgqri ds Hksn flag fu'Øfnfl Mkfn gSaA
mudks lnk djsa u ru ls eer vkfn gSaAA
ri ½f¼ cqf¼ ½f¼ fØ;k fof Ø;k ½¼hA
jl½f¼ vkSj v{kh.k½f¼ vkS"k/h½¼hAA4AA

ukuk izdkj½f¼ksa ds ukEk gq, gSaA
fl½h jk ls Hkh osgh luk Ek gq, gSaAA
buds rj 'k ls HkO; tho iki dks gjsaA
vkgkj rs uofuf/ le`f¼iq. ; dks Hkjsa AA5AA
buds lnSo Hkfdr ls] tks canuk djsaA
os eksgdeZ dh Lo;a gh [kaMk djsaAA
fleF;kRo vkS fo'k; d'kk; nwj ls Vjsa A
Lo;eso Hkdr fut kuan iwj ls Hkjsa AA6AA
xq.kEkkuNBs lkrksa ls pkSgsa rd Hkh A
la;r eqfh½f'k lk/q dgkrs gSa lHkh Hkh AA
os rhu U;wu uo djk sM+ la[; dgs gSaA
cl <kbZ }hi esa vf/d brus gh jgs gSa AA7AA
bu loZ lk/q vkSa dh fuR; vpZuk d: ¡A
=k;dky ds Hkh lk/q vkSa dh canuk d#¡AA

xq#nso! dkj dkjesa ;s izkEkZuk d: ¡A
fut ds gh rhu jRu dh cl ;kpuk d: ¡AA8AA

&lksjB&

uke ysr gh v?k Vys] loZlk/q dk lR;A
dsoy ^Kkuerh* feys] tks vuaxq.k rF;AA9AA

¼fha .ksksyks, lOolkgw.ka Ah loZlk/qjsf'kH;% t;ekykiw.kkZ?;± fuoZikehfrIdgkA

'kkUr;s 'kakfr/kjkA fr0; iq'ikatfy%A

&lksjBh&

tks Hkfdr ls lc lk/q vkSa dk ;tu djsa xsA
os HkO; ucks fuf/ ls Hkk Mkj Hkjsa xsAA
dSoY; ^Kkuefr* ls uo yfC/ o jsa xsA
fQj eks{k egy esa vuar lq[k Hkjsa xsAA

AAhR;k'khkdZr%AA



सप्तपरमस्थान पूजा

गीता छंद– श्री वीतराग जिनेन्द्र को प्रणमूँ सदा वर भाव से।
श्री सप्तपरमस्थान पूजूँ प्राप्ति हेतू चाव से।।
आह्वान थापन सन्निधापन, भक्ति श्रद्धा से करूँ।
सज्जाति से निर्वाण तक, पद सप्त की अर्चा करूँ।।1।।

ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टक– (चाल-नंदीश्वर श्रीजिनधाम)

जल शीतल निर्मल शुद्ध, केशर मिश्र करूँ।
अंतर्मल क्षालन हेतु, शुभ त्रय धार करूँ।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।1।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरभित अलिचुंबित गंध, कुंकुम संग मिला।
भव दाह निकंदन हेतु, चर्चत सौख्य मिला।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।2।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ताफल सम वर शुभ्र, तंदुल धोय धरूँ।
वर पुंज चढ़ाऊँ आन, उत्तम सौख्य वरूँ।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।3।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मंदार वकुल मचकुंद, सुरभित पुष्प लिया।
मदनारि विनाशन हेतु, अर्चूं खोल हिया।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।4।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुविध उत्तम पकवान, घृत से पूर्ण भरे।
निज क्षुधा निवारण हेतु, अर्चूं भक्ति भरे।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।5।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृत दीपक ज्योति प्रकाश, जगमग ज्योति करे।
दीपक से पूजा सत्य, ज्ञान उद्योत करे।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।6।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध सुगंधित धूप, खेवत पाप जरें।
वर सप्त पदों को पूज, उत्तम सौख्य वरें।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।7।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम सुपारी दाख, एला थाल भरे।
फल से पूजत शिव सौख्य, अनुपम प्राप्त करें।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।8।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत पुष्प, नेवज दीप लिया।
वर धूप फलों से युक्त, उत्तम अर्घ्य किया।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलंक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।9।।

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

– सोरठा –

शांतीधारा देय, सप्तपरमपद को जजूँ।
परम शांति सुख हेतु, सब जग शांती हेतु मैं।।10।।

शांतये शांतिधारा।

चंपक हरसिंगार, पुष्प सुगंधित लायके।
सप्तपरमपद हेतु, पुष्पांजलि अर्पण करूँ।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

– नरेन्द्र छंद –

मात-पिता कुल उभय पक्ष की, शुद्धी सज्जाती है।
सम्यग्दर्शन सहित भव्य को, निश्चित मिल जाती है।।
जल गंधादिक अष्टद्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
सज्जाति स्थान परम को, पूजत सौख्य भजूँ मैं।।1।।

ॐ ह्रीं सज्जातिपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वजनों से मान्य जगत में सद्गृहस्थ पद माना।
धर्म अथ अरु काम मोक्ष का, आकर [1]श्रेष्ठ बखाना।।
जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
सद्गार्हस्थ परम पद पूजत, उत्तम सौख्य भजूँ मैं।।2।।

ॐ ह्रीं सद्गृहस्थत्वपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमहाव्रत पंचसमिति त्रय गुप्ति सहित जो माना।
वरचारितमय परीव्राज्य पद, जग में सर्व प्रधाना।।
जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
परिव्राज्य पद परम पूज कर, उत्तम सौख्य भजूँ मैं।।3।।

ॐ ह्रीं प्राव्राज्यपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कोटि कोटि सुर सहित महर्द्धी, गुण सम्पन्न कहाता।
सुरपति पद सब देवगणों में, आज्ञा नित्य चलाता।।
जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
वर सुरेन्द्र पद पूजन करके, उत्तम सौख्य भजूँ मैं।।4।।

ॐ ह्रीं सुरेन्द्रत्वपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खंडाधिप चक्रवर्ति पद, वैभव पूर्ण जगत में।
सम्यग्दर्शन शून्यजनों को, मिलना दुष्कर सच में।।
जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
शुभ साम्राज्य परम पद पूजत, उत्तम सौख्य भजूँ मैं।।5।।

ॐ ह्रीं साम्राज्यपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्निकाय देवगण पूजित, महामहोत्सवकारी।
तीर्थंकर पद सर्वोत्तम पद, त्रिभुवन जन सुखकारी।।
जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
तीर्थंकर स्थान परम पद, पूजत सौख्य भजूँ मैं।।6।।

ॐ ह्रीं आर्हंत्यपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घाति अघाती कर्म घातकर, हुए निकल परमात्मा।
शुद्ध सिद्ध कृतकृत्य निरंजन, लोक शिखर गत आत्मा।।
जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
परिनिर्वाण परमपद पूजत, निरुपम सौख्य भजूँ मैं।।7।।

ॐ ह्रीं निर्वाणपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–पूर्णार्घ्य–

सज्जाती सद्गृहस्थ पद अरु पारिव्राज्य सुरनाथा।
वर साम्राज्य परम अर्हत्पद परिनिर्वाण विधाता।।
सप्त परम स्थान भुवन में, सर्वोत्तम कहलाते।
पूर्ण अर्घ्य ले इन्हें जजूँ मैं, निज पद पूरण वास्ते।।8।।

ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाप्य–ॐ ह्रीं परमब्रह्मणे सप्तपरमस्थानाय नमः।

जयमाला

– दोहा –

गुणरत्नाकर वृषभजिन, भव्यकुमुद भास्वान।
सप्तपरमपद पाय के, भोगें सुख निर्वाण।।1।।

चाल-श्रीपति जिनवर.....

शुभजाति गोत्र वरवंश तिलक, जो सज्जाती के जन्मे हैं।
जो उभय पक्ष की शुद्धि सहित, औ उच्चगोत्र में जन्मे हैं।।
वे प्रथम परम पद सज्जाती, पाकर छहपद के अधिकारी।
वह सज्जाती स्थान सदा, भव भव में होवे गुणकारी।।2।।

धर्मार्थ काम त्रय वर्गों को, जो बाधा रहित सदा सेते।
पंचाणुव्रत औ सप्तशील, धारण कर सद्गृहस्थ होते।।
वे ही भव भोगों से विरक्त, जिनदीक्षा धर मुनि बनते हैं।
प्राव्राज्य तृतीय परम पद पा, निज आतम अनुभव करते हैं।।3।।

विधिवत् सन्यास मरण करके, देवेन्द्र परम पद पाते हैं।
स्वर्गों के अनुपम भोग भोग, फिर चक्रीश्वर बन जाते हैं।।
सोलह कारण भावन भाकर, तीर्थंकर पद को पाते हैं।
छठवें आर्हन्त्य परम पद को, पाकर शिवमार्ग चलाते हैं।।4।।

सब कर्म अघाती भी विनाश, निर्वाण रमापति हो जाते।
जो काल अनन्तानन्तों तक, सुखसागर में गोते खाते।।
इन सप्त परमस्थानों को, क्रम से भविजन पा लेते हैं।
जो सप्तपरमपद व्रत करते, वे अंतिमपद वर लेते हैं।।5।।

– घत्ता –

जय सप्तपरमपद, त्रिभुवन सुखप्रद, जय जिनवर पद नित्य नमूँ।
'सज्ज्ञानमतीवर', शिव लक्ष्मीकर, जिनगुण सम्पत्ती परणूँ।।6।।

ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जो सम्यक्विधि सप्तपरमस्थान सुव्रत करते हैं।
भक्ती से जिनराज चरण का नित अर्चन करते हैं।।
वे क्रम से इन परम पदों को, पाकर सुख भजते हैं।
स्वर्ग सौख्य भज कर्म विलय कर, परम सिद्ध बनते हैं।।

।।इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिः।।

विमलनाथ जिनपूजा (मंगल त्रयोदशी पूजा)

अथ स्थापना-नरेन्द्र छंद

अमल विमल पद पाकर स्वामी, विमलनाथ कहलाये।
भाव द्रव्य नो कर्म मलों से, रहित शुद्ध कहलाये।।
आत्मा के संपूर्ण मलों को, धोने हेतु जजूँ मैं।
आह्वानन स्थापन करके, पूजा करूँ भजूँ मैं।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथ अष्टक-दोहा –

पद्मसरोवर नीर शुचि, जिनपद धार करंत।
जन्म जरा मृति नाश हो, आतम सुख विलसंत।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चंदन सुरभि, जिनपद में चर्चंत।
मिले आत्मसुख संपदा, निजगुण कीर्ति लसंत।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोतीसम तंदुल धवल, पुंज चढ़ाऊँ नित्य।
नव निधि अक्षय संपदा, मिले आत्मसुख नित्य।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हरसिंगार प्रसून की, माल चढ़ाऊँ आज।
सर्वसौख्य आनंद हो, मिले स्वात्म साम्राज।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरणपोली इमरती, चरू चढ़ाऊँ भक्ति।
मिले आत्म पीयूष रस, मोक्ष प्राप्ति की शक्ति।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृत दीपक से आरती, करूँ तिमिर परिहार।
जगे ज्ञान की भारती, भरें सुगुण भंडार।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप खेवते हो सुरभि, आतम सुख विलसंत।
कर्म जलें शक्ती बढ़े, मिले निजात्म अनंत।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सेब आम अंगूर ले, फल से पूजूँ आज।
मिले मोक्षफल आश यह, सफल करो मम काज।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधादिक अर्घ्य ले, रजत पुष्प विलसंत।
अर्घ्य चढ़ाऊँ भक्ति से, मिले सुगुण सुखकंद।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतीधारा मैं करूँ, जिनवर पद अरविंद।
त्रिभुवन में भी शांति हो, मिले निजात्म अनिंद।।10।।

शांतये शांतिधारा।

मौलसिरी बेला जुही, पुष्पांजलि विकिरंत।
सुख संतति संपति बढ़े, निज निधि मिले अनंत।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

–रोला छंद –

पुरी कंपिला नाम, पितु कृतवर्मा गृह में।
जयश्यामा वर मात, गर्भ बसे शुभ तिथि में।।
ज्येष्ठ वदी दश श्रेष्ठ, सुरपति नरपति पूजें।
नमूँ आज शिर टेक, जजूँ कर्म अरि धूजें।।1।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णादशम्यां श्रीविमलनाथगर्भकल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्में त्रिभुवननाथ, चौथ माघ सुदि तिथि में।
सुरनर हुये सनाथ, शांति हुई तिहुँजग में।।
मेरु शिखर ले जाय, इन्द्र किया जन्मोत्सव।
पूजूँ शीश झुकाय, जन्मकल्याण महोत्सव।।2।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लाचतुर्थ्यां श्रीविमलनाथजन्मकल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बर्फ विनशती देख, चित वैराग्य समाया।
माघ चतुर्थी शुक्ल, सुरगण शीश नमाया।।
गये सहेतुक बाग, देवदत्त पालकि में।
नमूँ नमूँ नत माथ, तपकल्याणक प्रभु मैं।।3।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लाचतुर्थ्यां श्रीविमलनाथतपःकल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ शुक्ल छठ श्रेष्ठ, जामुनतरु के नीचे।
नशा घाति का क्लेश, केवलज्ञान उदय से।।

समवसरण प्रभु आप, गगनांगण में शोभे।
ज्ञानकल्याणक नाथ, जजत भावश्रुत दीपे।।4।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लाषष्ठ्यां श्रीविमलनाथकेवलज्ञान-कल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विमलनाथ जिनराज, श्रीसम्मेदशिखर से।
कर्म अघाति विनाश, मुक्तिधाम में पहुँचे।।
वदि अष्टमि आषाढ़, मोक्षकल्याणक तिथि है।
मोहारि को पछाड़, जजत लहूँ निज सुख है।।5।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाअष्टम्यां श्रीविमलनाथमोक्ष-कल्याणकाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य–ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय नमः।

जयमाला

–दोहा–

पूरब भव में आपने, सोलहकारण भाय।
तीर्थंकर पद पाय के, तीर्थ चलाया आय।।1।।

–रोला छंद–

दर्श विशुद्धि प्रधान, नित्यप्रती प्रभु ध्याके।
अष्ट अंग से शुद्ध, दोष पच्चीस हटाके।।
मन वच काय समेत, विनय भावना भायी।
मुक्ति महल का द्वार, भविजन को सुखदायी।।2।।

व्रतशीलों में आप, नहिं अतिचार लगाया।
संतत ज्ञानाभ्यास, करके कर्म खपाया।।
भवतन भोग विरक्त, मन संवेग बढ़ाया।
शक्ती के अनुसार, चउविध दान रचाया।।3।।

बारहविध तपधार, आतम शक्ति बढ़ाई।
धर्मशुक्ल से सिद्ध, साधु समाधि कराई।।
दशविध मुनि की नित्य, वैयावृत्य किया था।
सर्व शक्ति से पूर्ण, बहु उपकार किया था।।4।।

श्री अर्हंत जिनेन्द्र, भक्ति हृदय में धरके।
सूरि परम परमेश, गुण संस्तवन उचरके।।
उपाध्याय गुरु देव, शिवपथ के उपदेष्टा।
प्रवचन भक्ति समेत, गुणगण भजा हमेशा।।5।।

षट् आवश्यक नित्य, करके दोष नशाया।
हानिरहित परिपूर्ण, निज कर्तव्य निभाया।।
मार्ग प्रभावन पाय, धर्म महत्त्व बढ़ाया।
प्रवचन में वात्सल्य, कर निज गुण प्रगटाया।।6।।

सोलहकारण भाय, पंचकल्याणक पाया।
दिव्यध्वनी से नित्य, धर्म सुतीर्थ चलाया।।
भव्य अनंतानंत, जग से पार किया है।
सौ इन्द्रों से वंद्य, निज सुख सार लिया है।।7।।

मंदर आदि गणीश, पचपन समवसरण में।
अड़सठ सहस मुनीश, गुणमणियुत तुम प्रणमें।।
गणिनी पद्मा आदि, तीन सहस इक लक्षा।
श्रमणी महाव्रतादि, गुण मणिभूषित दक्षा।।8।।

श्रावक थे दो लाख, धर्मध्यान में तत्पर।
कहीं श्राविका चार, लाख भक्ति में तत्पर।।
साठ धनुष तनु तुंग, साठ लाख वर्षायू।
घृष्टी चिन्ह सुवर्ण, वर्ण देह गुण गाऊँ।।9।।

चिच्चैतन्य स्वरूप, चिन्मय ज्योति जलाऊँ।
पूर्ण ज्ञानमति रूप, परम ज्योति प्रगटाऊँ।।
तुम प्रसाद जिन विमल! पूरी हो मम आशा।
इसीलिए पदकमल, नमूँ नमूँ धर आशा।।10।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–सोरठा–

विमलनाथ जिनदेव! तुम पद पंकज जो जजें।
लहें स्वपद स्वयमेव, नर सुर के सुख भोग के।।1।।

।। इत्याशीर्वादः।।

जिनगुण संपत्ति पूजा

–स्थापना-गीता छंद –

जैनेन्द्र गुण की संपदा के नाम त्रेसठ मुख्य हैं।
सोलह सुकारण भावना वर प्रातिहार्य जु अष्ट हैं।।
चौंतीस अतिशय पंचकल्याणक सुत्रेसठ जानिये।
श्री जिनगुणों की स्थापना कर पूजते सुख मानिए।।1।।

ॐ ह्रीं जिनगुणसंपत्तिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं जिनगुणसंपत्तिसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं जिनगुणसंपत्तिसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

(चाल-पूजो पूजो श्री अरिहंत देवा)

नीर गंगानदी का लाऊँ, हेम झारी से धारा कराऊँ।
मैल आतम का शीघ्र हटाऊँ, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।1।।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्वेत चंदन सुकेशर लाऊँ, नाथ के गुण की पूजा रचाऊँ।
ताप संसार का सब मिटाऊँ, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।2।।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द रश्मि सदृश अक्षत हैं, पुंज धरते नशत सब अघ हैं।
मिले आतम की सब सपंद है, जिनेंद्र गुण संपद जजूँ मन लाके।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।3।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुंद मंदार चंपक मल्ली, पूजते ही कटे भव वल्ली।
फैले जग में भविक यश वल्ली, जिनेंद्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।4।।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

फेनी घेवर कलाकंद लाके, व्याधि विरहित प्रभू गुण गाके।
भूख बाधा को पूर्ण मिटाके, जिनेंद्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।5।।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप में शुद्ध गौघृत जलाऊँ, ज्योति से पूजते भ्रम भगाऊँ।
चित्त में ज्ञान ज्योति जगाऊँ, जिनेंद्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।6।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप कृष्णागरू चंदन है, खेवते पापराशि दहन है।
आत्म पीयूष वर्षा सघन है, जिनेंद्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।7।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम अंगूर अमरूद फल हैं, पूजते विघ्नराशि विफल है।
शीघ्र मिलता निजातम फल है, जिनेंद्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।8।।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गंधादि अर्घ्य बनाऊँ, आपकी नित्य पूजा रचाऊँ।
अनमोल रतन तीन पाऊँ, जिनेंद्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।
तीर्थंकर गुणों की सम्पत, पूजते क्षीण होती विपद सब।
शीघ्र मिलती निजातम संपत, जिनेन्द्र गुण संपद जजूँ मन लाके।।9।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

शांतिधारा करत ही, त्रिभुवन में हो शांति।
जिनगुण संपद अर्चना, करे निजातम शांति।।10।।

शांतये शांतिधारा।

–दोहा–

कमल केतकी मालती, पुष्प सुगंधित लाय।
पुष्पांजलि कर पूजते, सुख संपति अधिकाय।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य– ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः नमः।

(108 सुगंधित पुष्प अथवा लवंग से जाप्य करें)

जयमाला

–सोरठा–

मिले मुक्ति साम्राज्य, जिनगुण संपति पूजते।
तुम गुणमणि की माल, धारूँ कंठ विषै सदा।।1।।

(चाल-श्रीपति जिनवर करुणायतनं)

जय जय जिनगुण संपत जग में, मुक्ती पद कारण मानी है।
जय जय तीर्थंकर प्रकृतिबंध, की सोलह भावन भानी है।।
जय जय दर्शन सुविशुद्धि आदि, गुण निधि को जो जन पाते हैं।
सोलह कारण भावन भाके, तीर्थंकर पद पा जाते हैं।।1।।

गर्भावतार जिनगुण संपत, जन्माभिषेक कल्याण महा।
दीक्षा केवल निर्वाण रूप, कल्याणक होते पाँच अहा।।
जो भविजन इनको पा लेते, वे धर्मचक्र नेता होते।
भवपंच परावर्तन तजकर, तीर्थंकर जगवेत्ता होते।।2।।

वे आठ प्रातिहार्यों से नित, भूषित अगणित महिमा धारी।
तरुवर अशोक सुर पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि चामर सुखकारी।।
सिंहासन भामंडल शोभे, त्रय छत्र त्रिजग वैभव गाते।
प्रभु समवसरण लक्ष्मी भर्ता, त्रिभुवन के गुरु माने जाते।।3।।

वे जन्म समय के दश अतिशय, पाकर के अतिशय शाली हैं।
कैवल्यरमापति होते ही, दश अतिशय गुणमणिमाली हैं।।
देवों के द्वारा किये गये, चौदह अतिशय भी गाए हैं।
चौंतीसों अतिशय सहित हुए, अर्हंत प्रभू कहलाये हैं।।4।।

इस विध त्रेसठ जिनगुण संपत, व्रत का भवि पालन करते हैं।
सोलह प्रतिपद के सोलह अरु, पंचमि के पाँच उचरते हैं।।
अष्टमि तिथि के व्रत आठ गिने, दशमी के बीस कहाये हैं।
चौदश के चौदह व्रत करके, त्रेसठ जिनगुण व्रत पाये हैं।।5।।

इस विधि से जो नर-नारीगण, उपवास सहित व्रत करते हैं।
अथवा एकाशन से करके, जिनगुण संपत भी वरते हैं।।
धनधान्य समृद्धी सुख पाते, चक्री की पदवी पाते हैं।
देवेन्द्र सुखों को भोग-भोग, तीर्थंकर भी हो जाते हैं।।6।।

मैं भी श्रद्धा से जिनगुण में, नितप्रति ही भाव लगाता हूँ।
प्रत्येक भावना पुनः पुनः, अनुरागी होके भाता हूँ।।
निज आत्म गुणों की संपत्ती, पाने हेतू ही आया हूँ।
रागादिक दोष मिटा दीजे, यह आश हृदय में लाया हूँ।।7।।

हे देव! कृपा ऐसी करिये, मेरे दुःखों का क्षय होवे।
कर्मों का क्षय हो बोधि लाभ, होवे अरु सुगति गमन होवे।।
होवे समाधि से मरण नाथ! मुझ को जिनगुण संपति होवे।
"कैवल्य ज्ञानमति" हो करके, निज मुक्तिरमा में रति होवे।।8।।

–दोहा–

गुण अनंत सागर प्रभो! कोई न पावें पार।
किंचित् गुणमणि गूंथ के धरूँ कंठ में हार।।9।।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुणसंपद्भ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य परिपुष्पांजलिः।

–दोहा–

गणपति गुण गणना करें, निज आतम गुण हेतु।
जो नर नारी भी गिनें, शीघ्र लहें भव सेतु।।10।।

।। इत्याशीर्वादः।।

रोहिणी व्रत पूजा (वासुपूज्य जिनपूजा)

–गीताछंद –

वासवगणों से पूज्य भगवन्! वासुपूज्य महान हो।
तीर्थंकरों में बारहवें, वर तीर्थकर्ता मान्य हो।।
वर भक्ति श्रद्धाभाव से, प्रभु आप आह्वानन करें।
पूजा रचाकर आपकी, निज आत्म आराधन करें।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथाष्टक-(नाराच छंद) –

सिंधु नीर स्वच्छ शुद्ध स्वर्ण कुंभ में भरूँ।
आप पाद पूजते हि कर्मकालिका हरूँ।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टगंध गंधपूर्ण नाथपाद पूजिए।
राग आग दाह नाश पूर्ण शांत हूजिए।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्र चन्द्रिका समान श्वेत शालि लाइये।
नाथ पाद पूजते अखंड सौख्य पाइये।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजात मालती गुलाब पुष्प लाइये।
काम मल्ल जीतने जिनेश को चढ़ाइये।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मुद्ग लड्डुकादि पायसादि थाल में भरे।
भूख व्याधि नाशने जिनेन्द्र अर्चना करें।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नदीप में कपूर ज्वालते शिखा बढ़े।
आप पूजते सुज्ञान ज्योति चित्त में बढ़े।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

रक्त चंदनादि मिश्र धूप अग्नि में जलें।
आप पास में समस्त कर्म भस्म हो चलें।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम दाडिमादि खारिकादि थाल में भरे।
आप चर्ण पूजते अनन्त सिद्धि को वरें।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

तोय गंध शालि पुष्प अन्न दीप धूप हैं।
सत्फलों से युक्त अर्घ्य से जजूँ अनूप है।।
रोहिणी नक्षत्र में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्य देव पूज शोक दूर कीजिए।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

शांतिधारा मैं करूँ, जिनपदपंकज मांहि।
शांति करो सब लोक में, कर्मकीच धुल जांहि।।10।।

शांतये शांतिधारा।

कमल वकुल मल्ली कुसुम, सुरतरु के उनहार।
पुष्पांजलि करते प्रभू, मिले सकल सुखसार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

पंचकल्याणक अर्घ्य

–स्रग्विणी छंद–

मात विजयावती गर्भ में आवते,
मास आषाढ़ षष्ठी वदी थी जबे।
इन्द्र आ गर्भकल्याण पूजा करें,
अर्चते पाप सब एक क्षण में टरें।।1।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाषष्ठ्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुनी कृष्ण चौदश जनम आपका,
इन्द्र कीना न्हवन मेरु पे आपका।
जन्म कल्याण उत्सव शचीपति करें,
नित्य पूजें तुम्हें विघ्न बाधा टरें।।2।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्ण फाल्गुन सुचौदस दिगम्बर हुए,
बाह्य अंतर परिग्रह सभी तज दिये।
देव दीक्षा सुकल्याण पूजा करें,
आज हम पूजते सर्व पीड़ा हरें।।3।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ शुक्ला द्वितीया तिथी जो भली,
घात के घातिया तुम हुए केवली।
इन्द्र ने ज्ञान कल्याण पूजा करी,
पूजते ज्ञान ज्योती मेरे अंतरी।।4।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लाद्वितीयायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भाद्रपद शुक्ल चौदस प्रभू शिव गये,
देव निर्वाण कल्याण पूजत भये।
भक्ति से मोक्ष कल्याण पूजा करें,
पंचकल्याण लक्ष्मी तुरंते वरें।।5।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लाचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य - **ॐ ह्रीं अर्हं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय नमः।**
(108 लवंग या पुष्पों से)

जयमाला

–दोहा–

वासुपूज्य वसुपूज्यसुत, वासवगण से वंद्य।
तुम गुणमणिमाला धरूँ, कंठ मांहि सुखकंद।।1।।

चाल-हे दीनबंधु.....

जय वासुपूज्य देव तीन लोक वंद्य हो।
जय जय अनंत सुगुण रत्न के करंड हो।।
हे नाथ! भक्ति भाव से मैं वंदना करूँ।
अनंत सौख्य सिंधु नाथ अर्चना करूँ।।1।।

चंपापुरी को धन्य आप जन्म से किया।
माता जयावती की कुक्षि से जनम लिया।।
आयू है बाहत्तर सुलक्ष वर्ष की कही।
तन की ऊँचाई दो सौ असी हाथ प्रम कही।।2।।

तनकांति पद्मरागमणी के समान है।
है चिन्ह महिष का कहा जाने जहान है।।
कल्याणकों पाँचों की भू पवित्र कही है।
चंपापुरी निर्वाणभूमि सौख्य मही है।।3।।

जो वासुपूज्य देव की आराधना करें।
सम्यक्त्वशुद्ध तीन रत्न साधना करें।।
जो रोहिणी नक्षत्र दिवस व्रत विधी करें।
तुम नाम मंत्र जाप से भव जल निधी तरें।।4।।

वह हस्तिनापुरी नरेश जो कि अशोक था।
उसकी प्रिया थी रोहिणी जिसको न शोक था।।
इक बार वक्ष कूटती रोती थी भामिनी।
तव रोहिणी ने प्रश्न किया धाय सामनी।।5।।

हे मात! कहो कौन-सी ये नृत्य कला है।
तब धाय कहे तू हुई उन्मत्त भला है।।
यह देख के आश्चर्य नृपति पुत्र उठाया।
ऊँचे महल की छत से उसे भू पे गिराया।।6।।

तत्क्षण सुरों ने पुत्र को आसन पे बिठाया।
ढोरे चंवर यह आश्चर्य सबको दिखाया।।
राजा मुनी से एक बात पूछता सही।
क्यों नाथ! रोहिणी को रुदन ज्ञान भी नहीं।।7।।

मुनि ने कहा यह रोहिणी व्रत का माहात्म्य है।
रोना किसे कहते हैं जो इसको न ज्ञान है।।
यह फल तो है मनाक् क्रम से मोक्ष मिले है।
संसार के सुख भोग बोध कमल खिले हैं।।8।।

– घत्ता –

जय जय तीर्थंकर, भव संकट हर, विघ्न अद्रि को चूर्ण करें।
जो तुम पद ध्यावें, शिवसुख पावें, ''ज्ञानमती' को पूर्ण करें।।9।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

– दोहा –

धर्मचक्र को धारते, तीर्थंकर जिनदेव।
''ज्ञानमती' लक्ष्मी सहित, तुरत सिद्ध पद देव।।10।।

।। इत्याशीर्वादः ।।

चारित्रशुद्धिव्रत पूजा

(बारह सौ चौंतिस व्रत पूजा)

– स्थापना-शंभुछंद –

सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध, ये परमानंद प्रदाता हैं।
इनके बारह सौ चौंतिस व्रत, ये परमसिद्धि के दाता हैं।।
इनका वन्दन पूजन करके, विधिवत् आराधन करते हैं।
निज हृदय कमल में धारण कर, हम स्वात्म सुधारस भरते हैं।।1।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतुस्त्रिंशन्मंत्र-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतुस्त्रिंशन्मंत्र-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतुस्त्रिंशन्मंत्र-समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

– अथाष्टक – (चाल-नंदीश्वर पूजा)

गंगानदि को जल लाय, कंचन भृंग भरूँ।
त्रयधार करूँ सुखदाय, आतम शुद्ध करूँ।।
बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।1।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशत-चतुस्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चंदन गंध, घिस कर्पूर मिला।
जजते चारित्र अमंद, निज मन कमल खिला।।
बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।2।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशत-चतुस्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शशिकर समतंदुल श्वेत, खंड विवर्जित हैं।
शिवरमणी परिणय हेत, पुंज समर्पित हैं।।

बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।3।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशत-चतुस्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सित कुमुद नील अरविंद, लाल कमल प्यारे।
मदनारि विजय के हेतु, पूजूँ सुखकारे।।
बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।4।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतु-स्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरणपोली पयसार, पायस मालपुआ।
चारित्र रत्न को ध्याय, आतम सौख्य हुआ।।
बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।5।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतु-स्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणिदीप कपूर प्रजाल, ज्योति उद्योत करे।
अंतर में भेद विज्ञान, प्रगटे मोह हरे।।
बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।6।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतु-स्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध अग्नि में ज्वाल, सुरभित गंध करे।
निज आतम अनुभव सार, कर्म कलंक हरे।।
बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।7।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतु-स्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

एला केला फलसार, जंबू निंबु हरे।
शिवकांता संगम हेत, तुम ढिग भेंट करे।।
बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।8।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतु-स्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सलिलादिक द्रव्य मिलाय, कंचन पात्र भरे।
चारित को अर्घ्य चढ़ाय, शिव साम्राज्य वरें।।
बारह सौ चौंतिस मंत्र, पूजूँ मन लाके।
पाऊँ निज सौख्य स्वतंत्र, चारितनिधि पाके।।9।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एकसहस्रद्विशतचतु-स्त्रिंशन्मंत्रेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

– दोहा –

शांतीधारा मैं करूँ, चरित मंत्र हितकार।
चउसंघ में शांती करो, हरो सर्व दुख भार।।

शांतये शांतिधारा।

पुष्पांजलि से पूजहूँ, चारित्र मंत्र महान।
दुःख दरिद्र संकट टले, बनूँ आत्मनिधिमान।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य – **1. ॐ ह्रीं असिआउसा चारित्रशुद्धिव्रतेभ्यो नमः।**

अथवा

2. ॐ ह्रीं अर्हं द्वादशशतचतुस्त्रिंशद्व्रतेभ्यो नमः।

जयमाला

–शंभु छंद –

जय जय तीर्थंकर क्षेमंकर, प्रभु धर्मचक्र के कर्ता हो।
जय जय अनंत दर्शन सुज्ञान, सुख वीर्य चतुष्टय भर्ता हो।।
जय अंतरंग लक्ष्मी अनंत गुण, धृत् त्रैलोक्य शिखामणि हो।
जय समवसरण वैभव धारी, जय दिव्यध्वनी के स्वामी हो।।1।।

तीर्थंकर परम्परा शाश्वत, यह शाश्वत धर्म सौख्यकारी।
तीर्थंकर शासन सार्वभौम, यह जिनशासन भवदुखहारी।।
जो 'तीर्थ' चलाते तीर्थंकर, यह 'तीर्थ' धर्म ही माना है।
यह धर्म 'रत्नत्रयमय' माना, 'चारित्ररूप' भी माना है।।2।।

जो भवदधि से तारे सबको, सब जन को पूर्ण पवित्र करे।
सब कर्म मैल को धो करके, आत्मा को पावन शुद्ध करे।।
बस वही तीर्थ सच्चा जग में, इसके कर्ता तीर्थंकर हैं।
इनके आश्रय से सब भविजन, भववारिधि तिरते सुखकर हैं।।3।।

जय जय चारित्र त्रयोदश विध, जो भववारिधि में नौका है।
जय पाँच महाव्रत पाँच समिति, त्रयगुप्ति कर्मनग भेत्ता हैं।।
जय इनके भेद एक सौ सैंतिस, मोक्षमार्ग के नेता हैं।
इनको नव कोटी से गुणिये, बारह सौ चौंतीस भेद कहें।।4।।

जय जयतु अहिंसा प्रथम महाव्रत, चौदह भेद रूप मानो।
मन वच तन को कृत कारित अनुमति, से गुणिते विधिवत जानो।
तब इक सौ छब्बिस भेद मंत्र, जपने से चारित शुद्धी हो।
इनके व्रत करने से महाव्रत, पालन करने की शक्ती हो।।5।।
जय सत्य, अचौर्य महाव्रत को, अठ आठ भेद से सरधानो।
ब्रह्मचर्य महाव्रत बीस भेद, परिग्रह विरती चौबिस जानो।।
ये नव से गुणित बहत्तर पुनः, बहत्तर की संख्या करिये।
ब्रह्मचर्य के एक सौ अस्सी परिग्रह-त्याग द्विशत सोलह गिनिये।।6।।
छठा अणुव्रत रात्री भोजन, विरती दश भेद सहित वर्णित।
ईर्या समिती नवकोटि सहित, मुनिगण पालें आगम भाषित।।
भाषा समिती के दशों भेद, नवकोटि-गुणित नब्बे विध हैं।
एषण समिती छ्यालीस भेद, नवगुणित चार सौ चौदह हैं।।7।
आदान निक्षेप, उत्सर्ग समिति, नव नव भेदों से भाषित हैं।
मन वचन काय की त्रय गुप्ती, नव से गुणिते सत्ताइस हैं।
ये भेद-प्रभेद सभी मिलकर, बारह सौ चौंतिस व्रत मानें।
इनका जो विधिवत् व्रत करते, और मंत्र जपें श्रुत वच जानें।।8।।
वे भव्य नियम से महाव्रती, बनकर संसार जलधि तिरते।
निज परम अतीन्द्रिय सौख्य पाय, त्रिभुवन साम्राज्य तुरत लभेंगे।
मैं सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित, व्यवहार चरित्र पूर्ण पाऊँ।
फिर निश्चय रत्नत्रय परिणत, निज आत्म ध्यान में रम जाऊँ।।9।।
हे भगवन्! ऐसा दिन कब हो, जब परम अतीन्द्रिय सुख पाऊँ
भव पंच परावर्तन छूटें, कैवल्य ज्ञानमति प्रगटाऊँ।।
त्रैलोक्य शिखर पर जा करके, तिष्ठूँ शाश्वत विश्राम करूँ।
हे नाथ! मुझे ऐसी मति दो, तुम चरणों में ही वास करूँ।।10।।

–दोहा–

सम्यक्चारित रत्न यह, जिनगुणसंपति हेतु।
नमूँ-नमूँ नित भाव से, पाऊँ भवदधि सेतु।।11।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशचारित्रभेदस्वरूप-एक सहस्र-द्विशतचतुस्त्रिंशन्मंत्रेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

बारह सौ चौंतीस व्रत, मंत्र जपें जो भव्य।
सम्यग्ज्ञानमती सहित, वे पावें सुख नव्य।।

।।इत्याशीर्वादः।।

श्री कर्मदहन व्रत पूजा

–अथ स्थापना (शंभु छंद)–

हे सिद्ध प्रभो! तुम आठ कर्म, विरहित गुण आठ समन्वित हो।
अष्टमि पृथिवी पर तिष्ठ रहे, ज्ञानाम्बुधि सिद्धरमापति हो।।
समतारस आस्वादी मुनिगण, नित सिद्ध गुणों को ध्याते हैं।
हम पूजें तुम आह्वानन कर, जिससे सब कर्म नशाते हैं।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथ अष्टक-शंभु छंद–

श्री सिद्धसुयश सम उज्ज्वल जल, लेकर झारी भर लाये हैं।
निज समरस सुख पाने हेतू, प्रभु चरण चढ़ाने आये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचें।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।1।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्ध गुणों सम अति शीतल, चंदन घिसकर ले आये हैं।
निज की शीतलता पाने को, प्रभु चरण चढ़ाने आये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचें।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।2।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्ध सौख्य सम खंडरहित, उज्ज्वल तंदुल ले आये हैं।
निज आत्म सौख्य पाने हेतू, प्रभु पुंज चढ़ाने आये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचें।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।3।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्धगुणों सम अति सुगंध, पुष्पों को चुनकर लाये हैं।
निज गुण सुगंध पाने हेतू, प्रभु चरणों पुष्प चढ़ाये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचें।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।4।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्ध पुष्टि सम नानाविध, पकवान बनाकर लाये हैं।
निज आत्म तृप्ति पाने हेतू, प्रभु चरण चढ़ाने आये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचे।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।5।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्ध ज्ञान सम ज्योतिर्मय, कर्पूर जलाकर लाये हैं।
निज ज्ञानज्योति पाने हेतू, हम आरति करने आये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचें।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।6।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्ध गुणों की सुरभि सदृश, वर धूप सुगंधित लाये हैं।
निज आत्म सुरभि पाने हेतू, अग्नी में धूप जलाये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचें।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।7।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्ध सुखामृत सदृश मधुर, रस भरे बहुत फल लाये हैं।
निज मोक्ष सुफल हेतू भगवन्! फल आज चढ़ाने आये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचें।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।8।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्ध गुणों के सम अनर्घ्य, यह अर्घ्य सजाकर लाये हैं।
निज तीन रत्न पाने हेतू, प्रभू चरण चढ़ाने आये हैं।।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, त्रैलोक्य शिखर पर जा पहुँचे।
ऐसे सिद्धों की पूजा कर, हम भी श्रीसिद्ध निकट पहुँचें।।9।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्त-श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–सोरठा–

श्री सिद्ध चरणाब्ज, मन से जलधारा करूँ।
पूर्ण शांति साम्राज्य, मिले त्रिजग में शांति हो।।10।।

शांतये शांतिधारा।

श्री सिद्ध चरणाब्ज, पुष्पांजलि मन से करूँ।
मिले सिद्धि साम्राज्य, त्रिभुवन की सुख संपदा।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य - ॐ ह्रीं अर्हं श्री अनंतानंतप्रमसिद्धेभ्यो नमो नमः।

जयमाला

शंभुछंद (*तर्ज - यह नंदनवन.....)*

जय जय जिनमणि, जग चूड़ामणि, तुम कर्मरहित सिद्धीपति हो।
मन वच तन से, सब सिद्धों के, चरणों में मेरी प्रणती हो।।जय.।।

प्रभु चार अनंतानूबंधी, त्रय दर्शन मोह विनाश किया।
क्षायिक सम्यक्त्वी मुनी बने, फिर क्षपक श्रेणि को मांड लिया।।
गुणस्थान नवम में छत्तिस प्रकृती, नाश आप मुनिगणपति हो।।जय.।।1।।

दशवें में सूक्ष्म लोभ नाशा, नर आयु बिना त्रय आयू नहिं।
बारहवें में सोलह प्रकृती, कर नाश केवली हुये यहीं।।
इन त्रेसठ प्रकृती के क्षय से, परमात्मा नव लब्धीपति हो।।जय.।।2।।

ज्ञानावरणी दर्शनावरण मोहनीय व अंतराय घाती।
पण नव अट्ठाइस पाँच कहीं, त्रय आयु नाम की तेरह ही।।
इन कर्म रहित धनपति विरचित, प्रभु समवसरण लक्ष्मीपति हो।।जय.।।3।।

गुणस्थान चौदवें में द्विचरम, के समय बहत्तर प्रकृति हनी।
फिर अंतसमय तेरह प्रकृती, नाशा शिवतिय से प्रीति घनी।।
प्रभु गुणस्थान से रहित हुये, शिवधाम गये त्रिभुवनपति हो।।जय.।।4।।

इन इक सौ अड़तालिस प्रकृती, के भेद असंख्य अनंत कहे।
प्रभु द्रव्य भाव नोकर्म नाश, यमराज शत्रु का अंत किये।।
सुख ज्ञान दर्श वीरज आदिक, निज के अनंत गुण निधिपति हो।।जय.।।5।।

प्रभु मोह नाश क्षायिक समकित, ज्ञानावरणी हन पूर्णज्ञान।
दर्शनरज नाश पूर्ण दर्शन, हन अंतराय वीरज अमान।।
हन नामकर्म सूक्ष्मत्व लिया, हन गोत्र अगुरुलघु गुणयुत हो।।जय.।।6।।

हन आयू अवगाहन गुणधृत, हन वेदनीय अव्याबाधी।
सुख लिया अनंत अतीन्द्रिय प्रभु, नाशी सब जन्म मरण व्याधी।।
प्रभु आठकर्म से रहित आठगुण सहित मोक्षनगराधिप हो।।जय.।।7।।

जो भव्य आपकी भक्ति करें, द्वयविध रत्नत्रय युक्ति धरें।
निज शक्ति प्रगट कर मुक्ति वरें, गुणरत्नों का भंडार भरें।।
तुम भक्तों को निज सम करते, इससे अद्‌भुत पारसमणि हो।।जय.।।8।।

इस ढ़ाईद्वीप में कर्मभूमि, इक सौ सत्तर बतलाई हैं।
उनसे तीर्थंकर आदि नरों, ने मुक्तिवल्लभा पाई हैं।।
तीर्थंकर होकर शिव पाते, उन सबको मेरी शिरनति हो।।जय.।।9।।

बिन तीर्थंकर भी चक्रवर्ति, बलभद्र कामदेवादि पुरुष।
बिन पदवी के सामान्य मनुष, शिवपद पा लेते कर्मवियुत।।
उपसर्ग बिना उपसर्ग सहित, अगणित नरपुंगव शिवपति हों।।जय.।।10।।

जल से, थल से, नभ से भी तो, शिव गये अनंतानंत मनुज।
सुर या खेचर उपसर्ग किया, जल या नभ में छोड़ा दुखप्रद।।
धर शुक्लध्यान तत्क्षण कर्मों, को नाश अंतकृत केवलि हों।।जय.।।11।।

जो द्रव्यपुरुष वेदी भावों, से हुये नपुंसक वेदी भी।
या भावों से स्त्रीवेदी, मुक्ती पा जाते हैं ये भी।।
ये भाव भेद त्रयविध मुनिगण, शिव गये उन्हें नित शिरनति हो।।जय.।।12।।

जो सिद्ध हुये हैं, होते हैं, होवेंगे ये त्रय कालों के।
इनको शत शत वंदन मेरा, ये मेरे अघ को नाशेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमति' हेतु आज, सिद्धों को नमते शिवगति हो।।जय.।।13।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मविनिर्मुक्तअनंतानंतसिद्धपरमेष्ठिभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–शेरछंद–

जो भव्य कर्मदहन की पूजा को करेंगे।
वे भाव कर्म द्रव्यकर्म दहन करेंगे।।
निज का परम अतीन्द्रिय सुख प्राप्त करेंगे।
रवि 'ज्ञानमती' से यहाँ प्रकाश भरेंगे।।1।।

।। इत्याशीर्वादः।।

जिनसहस्रनाम पूजा

अथ स्थापना-शंभु छंद

जिनवर की प्रथम दिव्य देशना, नंतर सुरपति अति भक्ती से।
निज विकसित नेत्र हजार बना, प्रभु को अवलोकें विक्रिय से।।
प्रभु एक हजार आठ लक्षणधारी सब भाषा के स्वामी।
शुभ एक हजार आठ नामों, से स्तुति करता वह शिवगामी।।
दोहा – एक हजार सु आठ ये, श्री जिननाम महान्।
उनकी मैं पूजा करूँ, करते इत आह्वान।।1।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक-चाल नंदीश्वर पूजा

सरयू नदि का शुचिनीर, सुवरण भृंग भरूँ।
मिल जावे भवदधि तीर, जिनपद धार करूँ।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।1।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

काश्मीरी केशर शुद्ध, चंदन संग घिसूँ।
जिनपद चर्चत अविरुद्ध, भव संताप नशूँ।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।2।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती सम उज्जवल धौत, तंदुल पुंज धरूँ।
मिल जावे अक्षय सौख्य, प्रभु पद पूज करूँ।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।3।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जूही केवड़ा गुलाब, सुरभित सुमनों से।
पूजत छुट जाऊँ नाथ, भव भव भ्रमणों से।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।4।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरण पोली घृतपूर, हलुवा भर थाली।
पूजत हो अमृतपूर, मनरथ नहिं खाली।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।5।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की ज्योति प्रजाल, आरति करते ही।
भगता मन का तम जाल, ज्योती प्रगटे ही।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।6।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दस गंधी धूप सुगंध, खेऊँ अगनी में।
सब जलते कर्म प्रबंध, पाऊँ निजसुख मैं।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।7।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगूर आम फल सेब, अर्पण करते ही।
निज आतम सम्पत्ति लेव, फल से जजते ही।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।8।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत आदि, अर्घ्य बनाऊँ मैं।
अर्पण करते भव व्याधि, सर्व नशाऊँ मैं।।
शुभ एक हजार सु आठ, जिनवर नाम जजूँ।
कर कर नामावलि पाठ, सुखप्रद स्वात्म भजूँ।।9।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

सहस नाम को पूजहूँ, शांतीधारा देय।
सर्वसौख्य सम्पति मिले, आत्मसुधा बरसेय।।10।।

शांतये शांतिधारा।

पारिजात के पुष्प बहु, सुरभित दिक् महकंत।
पुष्पांजलि अर्पण किये, आतम सुख विलसंत।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य - **ॐ ह्रीं अष्टोत्तरसहस्रनामधारक चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमः।**

जयमाला

–दोहा–

महातेज के धाम प्रभु, नमूँ नमूँ त्रयकाल।
एक हजार सु आठ तुम, नाममंत्र जयमाल।।1।।

चाल-शेर हे दीनबंधु.....

जय जय जिनेन्द्र! तुम असंख्य नाम गुण भरें।
जय जय जिनेन्द्र! तुम अनंत सौख्य गुण भरें।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।2।।

हे नाथ! यद्यपि आप नाम वचन से कहें।
फिर भी वचन अगोचर मुनिगण तुम्हें कहें।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।3।।

तुम नाम संस्तवन सदा अभीष्ट को फले।
भगवन् तुम्हीं तो भक्तों के बंधु हो भले।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।4।।

स्वामिन्! जगत्प्रकाशी हो 'एक' ही तुम्हीं।
हो ज्ञान दर्श गुण से 'दोरूप' भी तुम्हीं।।

हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।5।।

रत्नत्रयी शिवमार्ग से प्रभु 'तीनरूप' हो।
आनन्त्य चतुष्टय से प्रभु 'चाररूप' हो।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।6।।

हो पंच परमेष्ठी स्वरूप 'पाँचरूप' भी।
प्रभु पंचकल्याणक से भी 'पाँचरूप' ही।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।7।।

जीवादि छहों द्रव्य जानते 'छहरूप' हो।
प्रभु सात नयों को निरूप 'सातरूप' हो।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।8।।

सम्यक्त्व आदि आठ गुण से 'आठरूप' हो।
नव केवली लब्धी से आप 'नवस्वरूप' हो।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।9।।

अवतार दश महाबलादि दशस्वरूप हो।
हे ईश! दया कीजिए त्रैलोक्य भूप हो।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।10।।

मैं आप विविध नाम पुष्प गूँथ-गूँथ के।
स्तोत्र की माला बनाई पूजहूँ उससे।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।11।।

भगवन् प्रसन्न होय अनुग्रह करो मुझपे।
स्तोत्र से वच हों पवित्र शीश नमें से।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।12।।

प्रभु नाम स्मृतिमात्र से भाक्तिक पवित्र हों।
जो भक्ति से पूजा करें कल्याण पात्र हों।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।13।।

इस विध समवसरण में इंद्र ने स्तुति किया।
फिर श्रीविहार हेतु प्रभु से प्रार्थना किया।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।14।।

हे नाथ! भव्य धान्य पाप अनावृष्टि से।
सूखें उन्हें सींचो सुधर्म सुधावृष्टि से।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।15।।

भगवंत! आप विजय की उद्योग सूचना।
ये धर्मचक्र है तैयार शोभता घना।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।16।।

हे देव! आप मोह शत्रु पे विजय किया।
शिवमार्ग के उपदेश का अवसर ये आ गया।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।17।।

जिनवर स्वयं तैयार श्रीविहार के लिए।
बस इंद्र के ये प्रार्थना नियोग के लिए।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।18।।

तत्क्षण समवसरण सभी विलीन हो गया।
इंद्रों ने प्रभु विहार का उत्सव महा किया।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।19।।

जय जय ध्वनी ऊँची उठी बाजे बजे घने।
संगीत गीत नृत्य करें देवगण घने।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।20।।

आकाश में अधर सुवर्ण कमल रच दिए।
सुरभित कमल पे नाथ चरण धरत चल दिए।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।21।।

गंधोद वृष्टि, पुष्पवृष्टि मंद पवन है।
अतिशय विभूति आप के विहार समय है।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।22।।

आरे हजार धर्मचक्र चमचमा रहा।
जिनराज आगे-आगे चले शोभता महा।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।23।।

हे देव! मेरी प्रार्थना को पूर्ण कीजिए।
'कैवल्यज्ञानमती' नाथ! तूर्ण दीजिए।।
हे नाथ! तुम सहस्रनाम नित्य जो पढ़ें।
वे हों पवित्र बुद्धि मोक्षमहल में चढ़ें।।24।।

–घत्ता –

जय जिन नामावलि, स्तुति हारावलि, जो भविजन कंठे धरहीं।
उन स्मृति शक्ती, क्षण क्षण बढ़ती, 'अतिशय ज्ञान करें सबहीं।।25।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणांअष्टोत्तरसहस्रनाममंत्रेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–गीताछंद –

जो भव्य श्रेष्ठ सहस्रनाम सुअर्चना विधि व्रत करें।
वे पापकर्म सहस्र नाशें सहस मंगल विस्तरें।।
'सज्ज्ञानमति' भास्कर उदित हो हृदय की कलिका खिले।
बस भक्त के मन की सहस्रों कामनाएं भी फलें।।

।। इत्याशीर्वादः।।

रत्नत्रय पूजा

–अथ स्थापना–गीताछंद –

वर धर्म तीर्थंकर कथित है, श्रेष्ठ तीनों लोक में।
यह जीव को ले जा के धरता, सर्व उत्तम सौख्य में।।
यह रत्नत्रयमय धर्म समकित, ज्ञान चरित समेत है।
आह्वान कर पूजूँ यहाँ, स्वात्मा बने परमेश है।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टक –नाराच छंद

श्री जिनेंद्र की ध्वनी समान स्वच्छ नीर है।
तीन धार देत ही मिले भवाब्धितीर है।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।1।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

नाथ के प्रताप सम सुगंध गंधसार हैं।
चर्ण में चढ़ावते मिले समस्त सार है।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।2।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

धौतशालि नाथकीर्ति के समान श्वेत है।
पूर्ण सौख्य हेतु पुंज शोभते विशेष हैं।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।3।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुंद केतकी गुलाब गंध से भरे खिले।
तीन रत्न पूजते सुज्ञान कौमुदी खिले।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।4।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः कामबाण-विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मिष्ट मालपूप आदि स्वर्णथाल में भरे।
स्वात्म सौख्य हेतु नाथ आप पासमें धरें।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।5।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नदीप लेय रत्नत्रय की आरती करूँ।
मोहध्वांत को निवार ज्ञान भारती भरूँ।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।6।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्वेत चंदनादि मिश्र धूप अग्नि में जले।
अष्ट कर्म नष्ट होय आत्मस्वच्छता मिले।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।7।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सेब आम दाडिमादि थाल में भराय के।
मुक्ति प्राप्त होय तीन रत्न को चढ़ाय के।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।8।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गंध अक्षतादि अर्घ्य को चढ़ावते।
तीनरत्न अर्थ तीन लोक राज्य पावते।।
तीर्थनाथ ने कहे महान तीन रत्न हैं।
पूजते ही प्राप्त हो अपूर्व स्वात्मरत्न है।।9।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयरत्नत्रयेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

शांतीधारा मैं करूँ, जो जिनवर पादाब्ज।
परम शांति को प्राप्तकर, पाऊँ निज साम्राज।।10।।

शांतये शांतिधारा।

बेला कमल गुलाब बहु, पुष्प सुगंधित सार।
जिनपद पुष्पांजलि करूँ, भरे सौख्य भंडार।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य–**ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः।**

जयमाला

–सोरठा–

मंगलरूप महान, जग में लोकोत्तम कहा।
श्री केवलि भगवान, कथित रत्नत्रय ही शरण।।1।।

–भुजंगप्रयात छंदः –

सुसम्यक्त्व अष्टांग है मुक्ति हेतू।
सभी दोष पच्चीस से शून्य सेतू।।
भवाब्धी तिरें भव्य सम्यक्त्व से ही।
नमूँ मैं नमूँ रत्न सम्यक्त्व को ही।।2।।

सुकालादि शुद्धी सहित ज्ञान सम्यक्।
यही अष्ट विध ज्ञान पाऊँ सुखात्मक।।
इसी से सभी मोक्षपथ देखते हैं।
नमूँ भक्ति से ज्ञान सम्यक् करूँ मैं।।3।।

अणुव्रतमयी धर्म श्रावक धरें है।
बनें मोक्षमार्गी सदा सुख भरें हैं।।
मुनी धर्म तेरहविधी भव्य धारें।
स्वयं भी तिरें भव्य को नित्य तारें।।4।।

महाव्रत अहिंसा प्रथम है जगत में।
सभी प्राणियों की दया है प्रगट में।।
दिगम्बर मुनी ही इसे पालते हैं।
नमें जो अहिंसा वो अघ टालते हैं।।5।।

असत्-अप्रशस्ते वचन जो न बोलें।
हितंकर मधुर मित सदा सत्य बोलें।।
यही सत्यव्रत दूसरा व्रत कहाता।
इसे मैं नमूँ ये वचनसिद्धि दाता।।6।।

पराया धनं शिष्य आदी न लेना।
महाव्रत अचौर्य निधी ये बखाना।।
इसे पूजते स्वात्म संपत्ति मिलती।
जिसे प्राप्त करते महासाधु गण ही।।7।।

सुता मात भगिनी सदृश सर्व महिला।
महाव्रत सुब्रह्मचर धरे कोई विरला।।
त्रिजग पूज्य इंद्रादिवंदीत व्रत है।
इसी में परम ब्रह्म होता प्रगट है।।8।

परिग्रह सभी मुक्ति जाने में बाधे।
दिगम्बर मुनी ही सभी वस्तु त्यागें।।
जगत् भार से छूटते ही विदेही।
जजूँ पाँचवां व्रत बनूँ मुक्तिगेही।।9।।

चतुर्युग प्रमाणे जगह देख चलना।
बिना कार्य के एक भी पग न धरना।।
सुगुरु देख तीर्थादि वंदन निमित्त से।
गमन ही समिति ईर्या को जजूँ मैं।।10।।

स्व पर हित मधुर मित वचन नित्य भाषे।
सुभाषा समिति को मुनीगण प्रकाशें।।
इसे धारते मुक्तिकन्या भि हो वश।
जजूँ भक्ति से प्राप्त निर्दोष हों वच।।11।।

कृतादी रहित अन्न प्रासुक स्वहितकर।
गृहस्थी के द्वारा दिया लेवें मुनिवर।।
स्वकर पात्र में ले खड़े एक बारे।
यही एषणा समिति क्षुध व्याधि टारे।।12।।

कमंडलु व शास्त्रादि जो वस्तु धरना।
उठाना यदी प्राणियों पे हो करूणा।।
प्रथम चक्षु से देख पिच्छी से शोधें।
ये आदाननिक्षेप समिती सुपूजें।।13।।

हरितकाय जंतू रहित भूमि पर जो।
स्वमलमूत्र आदी विकृति को तजें वो।।
विउत्सर्ग समिती धरें जैन साधू।
जजूँ मैं इसे फिर स्वशुद्धात्म साधूँ।।14।।

महादोष रागादि से चित्त दूरा।
मनोगुप्ति ये पालते साधु शूरा।।
पुनः शुभ अशुभ भाव दोनों निरोधें।
निजानंद रसलीन गुप्ती सुपूजें।।15।।

वचनगुप्ति आगम के अनुकूल बोलें।
पुनः मौनधर मुक्ति का द्वार खोलें।।
इसी से वचन सिद्धि दिव्यध्वनी भी।
मिलेगी अतः पूजहूँ धार भक्ती ।।16।।

स्वतनु की क्रिया सर्व शुभ ही करें जो।
पुनः काय से मोह तज सुस्थिरी हों।।
उभय काय गुप्ती शुकल ध्यान पूरे।
नमूँ मैं इसे नंतबल मुझ प्रपूरे।।17।।

–चौबोल छंद–

अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन, अठविध सम्यग्ज्ञान महान।
सम्यक् चारित मुक्ति प्रदायक, तेरहविध मुनि धरें प्रधान।।
पाँच महाव्रत पाँच समिति औ, तीन गुप्ति को नित्य नमन।
रत्नत्रय की पूजा कर के, 'ज्ञानमती' कैवल्य करण।।18।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

–दोहा–

रत्नत्रय को पूजते, प्रगटे केवलज्ञान।
पुनः भव्यगण नित करें, स्वात्मसुधारसपान।।1।।

।। इत्याशीर्वादः।।

तीर्थंकर पंचकल्याणक पूजा

अथ स्थापना-गीता छंद

वर पंचकल्याणक जगत् में सर्वजन से वंद्य हैं।
त्रैलोक्य में अति क्षोभ कर, सुर इन्द्रगण अभिनंद्य हैं।।
मैं पंचमी गति प्राप्त हेतु, पंचकल्याणक जजूँ।
आह्वाननादी विधि करूँ, संपूर्ण कल्याणक भजूँ।।1।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक-भुजंगप्रयात छंद

पयो सिंधु को नीर झारी भराऊँ।
प्रभो आपके पाद धारा कराऊँ।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।1।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सुगंधीत चंदन कपूरादि वासा।
चढ़ाते तुम्हें सर्व संताप नाशा।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।2।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पयोराशि के फेन सम तंदुलों को।
चढ़ाऊँ तुम्हें सौख्य अक्षय मिले जो।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।3।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जुही केवड़ा चंपकादी सुमन हैं।
तुम्हें पूजते काम व्याधी शमन है।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।4।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

कलाकंद लाडू भरा थाल लाऊँ।
क्षुधा डाकिनी नाश हेतू चढ़ाऊँ।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।5।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणी दीप ज्योती भुवन को प्रकाशे।
करूँ आरती ज्ञान ज्योती प्रकाशे।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।6।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगनिपात्र में धूप खेऊँ दशांगी।
करम धूम्र फैले चहूँ दिक् सुगंधी।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।7।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नरंगी मुसम्बी अनन्नास लाऊँ।
महा मोक्षफल हेतु आगे चढ़ाऊँ।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।8।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलादी वसू द्रव्य से थाल भर के।
चढ़ाऊँ तुम्हें अर्घ्य रत्नादि धर के।।
महा पंचकल्याणकों को जजूँ मैं।
महापंच संसार दुख से बचूँ मैं।।9।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

– दोहा –

सकल जगत में शांतिकर, शांतिधार सुखकार।
जिनपद में धारा करूँ, सकल संघ हितकार।।10।।

शांतये शांतिधारा।

सुरतरु के सुरभित सुमन, सुमनस चित्त हरंत।
पुष्पांजलि अर्पण करत, मिले सौख्य दुख अंत।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य-ॐ ह्रीं पंचकल्याणकसहितचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

जयमाला

– दोहा –

तीन लोक की सम्पदा, करे हस्तगत भव्य।
तुम जयमाला कंठधर, पूरे सब कर्तव्य।।1।।

चाल-हे दीनबंधु.....

जैवंत मुक्तिकन्त देवदेव हमारे।
जैवंत भक्त जन्तु भवोदधि से उबारे।।
हे नाथ! आप जन्म के छह मास ही पहले।
धनराज रत्नवृष्टि करें मातु के पहले।।1।।

माता की सेव करतीं श्री आदि देवियाँ।
अद्भुत अपूर्व भाव धरें सर्व देवियाँ।।
जब आप मात गर्भ में अवतार धारते।
तब इन्द्र सपरिवार आय भक्ति भार से।।2।।

प्रभु गर्भ कल्याणक महाउत्सव विधि करें।
माता-पिता की भक्ति से पूजन विधी करें।।
हे नाथ! आप जन्मते सुरलोक हिल उठे।
इन्द्रासनों के कम्प से आश्चर्य हो उठे।।3।।

इन्द्रों के मुकुट आप से ही आप झुके हैं।।
सुरकल्पवृक्ष हर्ष से ही फूल उठे हैं।।
वे सुरतरु स्वयमेव सुमन वृष्टि करे हैं।
तब इन्द्र आप जन्म जान हर्ष भरे हैं।।4।।

तत्काल इन्द्र सिंहपीठ से उतर पड़े।
प्रभु को प्रणाम करके बार-बार पग पड़ें।।
भेरी करा सब देव का आह्वान करे हैं।
जन्माभिषेक करने का उत्साह भरे हैं।।5।।

सुरराज आ जिनराज को सुरशैल ले जाते।
सुरगण असंख्य मिलके महोत्सव को मनाते।।
जब आप हो विरक्त देव सर्व आवते।
दीक्षा विधी उत्सव महामुद से मनावते।।6।।

जब घातिया को घात ज्ञान सम्पदा भरें।
तब इन्द्र आ अद्भुत समवसरण विभव करें।।
तुम दिव्य वच पियूष को पीते असंख्यजन।
क्रम से करें वे मुक्तिवल्लभा का आलिंगन।।7।।

जब आप मृत्यु जीत मुक्तिधाम में बसे।
सिद्धांगना के साथ परमानन्द सुख चखें।।
सब इन्द्र आ निर्वाण महोत्सव मनावते।
प्रभु पंचकल्याणकपती को शीश नावते।।8।।

हे नाथ! आप कीर्ति कोटि ग्रंथ गा रहे।
इस हेतु से ही भव्य आप शरण आ रहे।।
मैं आप शरण पायके सचमुच कृतार्थ हूँ।
बस 'ज्ञानमती' पूर्ण होने तक ही दास हूँ।।9।।

– दोहा –

पाँच कल्याणक पुण्यमह, हुये आपके नाथ।
बस एकहि कल्याण मुझ, कर दीजे हे नाथ।।10।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणकेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

– गीता छंद –

जो पंचकल्याणक महापूजा महोत्सव को करें।
वे पंचपरिवर्तन मिटाकर पंच लब्धी को धरें।।
फिर पंचकल्याणक अधिप हो मुक्तिकन्या वश करें।
सुज्ञानमति रविकिरण से भविजन कमल विकसित करें।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।



नवग्रह शांति पूजा

रचयित्री—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

(स्थापना)-कुसुमलता छंद

काल अनादी से कर्मों के, ग्रह ने मुझे सताया है।
उनका निग्रह करने का अब, भाव हृदय में आया है।।
इसीलिए ग्रह शान्ती हेतू, पूजा पाठ रचाया है।
तीर्थंकर प्रभु के अर्चन को, मैंने थाल सजाया है।।1।।

दोहा- **आह्वानन स्थापना, सन्निधिकरण महान।**
अष्टद्रव्य से पूर्व है, यह विधि हुई प्रधान।।2।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकाः श्रीनवतीर्थंकर जिनाः! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकाः श्रीनवतीर्थंकर जिनाः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकाः श्रीनवतीर्थंकर जिनाः! अत्र मम सन्निहिताः भव भव वषट् सन्निधीकरणं स्थापनं।

अष्टक-शंभु छंद

मुनिमनसम निर्मल जल लेकर, प्रभु पद में धारा करना है।
जर जन्म मरण को निर्बल कर, अब आत्मचिन्तवन करना है।।
नव तीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहार सिद्धि के साथ-साथ, परमार्थ सिद्धि भी वरना है।।1।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्रीनवतीर्थंकरेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर मिश्रकर केशर की, सुरभी को और बढ़ाना है।
श्रद्धा से उसको जिनवर के, चरणों में आज चढ़ाना है।।
नव तीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहार सिद्धि के साथ-साथ, परमार्थ सिद्धि भी वरना है।।2।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्री नवतीर्थंकरेभ्यो चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती सम श्वेत तंदुलों को, गजमोती समझ चढ़ाना है।
अपने आतम के छिपे गुणों के, मोती अब प्रगटाना है।।
नवतीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहार सिद्धि के साथ-साथ, परमार्थ सिद्धि भी वरना है।।3।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकश्रीनवतीर्थंकरेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरकल्पवृक्ष के पुष्प समझ, यह पुष्प अंजली भरना है।
जिनवर के सम्मुख श्रद्धा से, अब इन्हें समर्पित करना है।।
नवतीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहारसिद्धि के साथ-साथ, परमार्थसिद्धि भी वरना है।।4।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकश्रीनवतीर्थंकरेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अमृतमय इन पकवानों में, दिव्यामृत अनुभव करना है।
जिनवर चरणों में भेंट चढ़ा, क्षुधरोग निवारण करना है।।
नवतीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहारसिद्धि के साथ-साथ, परमार्थसिद्धि भी वरना है।।5।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकश्रीनवतीर्थंकरेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृत के लघु दीपक में रत्नों का, दीप प्रकल्पित करना है।
प्रभु की आरति करके अन्तर का, दीप प्रज्वलित करना है।।
नवतीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहारसिद्धि के साथ-साथ, परमार्थसिद्धि भी वरना है।।6।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकश्रीनवतीर्थंकरेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन अगरू की धूप में मलयागिरि का अनुभव करना है।
प्रभु सम्मुख अग्नी में खेकर, अब नष्ट कर्म सब करना है।।
नवतीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहारसिद्धि के साथ-साथ, परमार्थसिद्धि भी वरना है।।7।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकश्रीनवतीर्थंकरेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगूर सेव बादाम आदि फल से प्रभु अर्चन करना है।
इनमें ही कल्पतरू के सच्चे, फल का अनुभव करना है।।
नवतीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहारसिद्धि के साथ-साथ, परमार्थसिद्धि भी वरना है।।8।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकश्रीनवतीर्थंकरेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले अष्ट द्रव्य का थाल प्रभू को, अर्घ्य समर्पित करना है।
''चन्दनामती'' नवग्रह शांती के, लिए अर्चना करना है।।
नवतीर्थंकर की पूजन कर, नवग्रह का निग्रह करना है।
व्यवहारसिद्धि के साथ-साथ, परमार्थसिद्धि भी वरना है।।9।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकश्रीनवतीर्थंकरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

– दोहा–

नवग्रहों की तपन से, है संतप्त शरीर।
शांतीधारा करन से, बनूँ शीघ्र अशरीर।।

शांतये शांतिधारा।

आत्मसुरभि के हेतु ले, पुष्पांजलि का थाल।
पुष्प बिखेरूं प्रभु निकट, ग्रह हों मेरे शांत।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जयमाला

तर्ज-बाबुल की दुआएँ.....

हे नाथ! आपके चरणों में, जयमाल गूँथकर लाए हम।
ग्रह शांति हेतु पदकमलों में, इक थाल अर्घ्य का लाए हम।।टेक.।।

कभी तन में व्याधि हुई मेरे, सिर आँख कान में दर्द हुआ।
कभी उदर में शूल उठी मेरे, कभी हाथ पैर में दर्द हुआ।।
उस बेचैनी में भी प्रभुवर, तुमको नहिं कभी भुलाएँ हम।
ग्रह शांति हेतु पदकमलों में, इक थाल अर्घ्य का लाए हम।।1।।

व्यापार में हानी हुई कभी, कभि चोरों ने धन लूट लिया।
कभी छापा पड़ने के कारण, मन में संताप व शोक हुआ।।
इन हानि-लाभ के क्षण में भी, जिनधर्म में ध्यान लगाएँ हम।
ग्रह शांति हेतु पदकमलों में, इक थाल अर्घ्य का लाएँ हम।।2।।

कुल पाँच करोड़ व अड़सठ लाख, निन्यानवे सहसरु पाँच शतक।
इक्यासी रोगों की संख्या, हो सकती तन में सर्वाधिक।।
नरकों में प्रगट होते ये सब, उस नर्क में कभी न जाएँ हम।
ग्रह शांति हेतु पदकमलों में, इक थाल अर्घ्य का लाए हम।।3।।

नभ में रहने वाले नवग्रह, मानव के संग जब लग जाते।
तब कर्म असाता के कारण, वे मानव नाना दुःख पाते।।
तुम पूजन फल से उन सबको, शुभरूप सहज कर पाएँ हम।
ग्रहशांति हेतु पदकमलों में, इक थाल अर्घ्य का लाए हम।।4।।

रवि, शशि, मंगल, बुध, गुरु एवं, वे शुक्र, शनी कहलाते हैं।
राहू, केतू मिल नवग्रह ये, ज्योतिष का चक्र चलाते हैं।।
इनमें से अशुभ ग्रहों से प्रभु!, नहिं कभी सताए जाएँ हम।
ग्रहशांति हेतु पदकमलों में, इक थाल अर्घ्य का लाए हम।।5।।

''चन्दनामती'' बस इसीलिए, यह पूजा पाठ रचाया है।
पूजा के माध्यम से प्रभुवर, भावों को शुद्ध बनाया है।।
हो चरम लक्ष्य की सिद्धि नाथ! पूजन फल ऐसा पाएँ हम।
ग्रहशांति हेतु पदकमलों में, इक थाल अर्घ्य का लाएँ हम।।6।।

ॐ ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकश्रीनवतीर्थंकरेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, पुष्पांजलिः।

– दोहा–

नवग्रह पूजन से सभी, ग्रह हो जाते शांत।
करो अर्चना से सभी, भव की व्यथा समाप्त।।

।। इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिः ।।

तीस चौबीसी पूजा

–गीता छंद–

मंगलमयी सब लोक में, उत्तम शरण दाता तुम्हीं।
वर तीस चौबीसी जिनेश्वर, सात शत औ बीस ही।।
नर लोक में ये भूत संप्रति, भावि तीर्थंकर कहे।
पण भरत पण ऐरावतों में, पंच कल्याणक लहे।।1।।

–दोहा–

आवो आवो नाथ! अब, यहाँ विराजो आन।
आह्वानन विधि से सदा, मैं पूजूँ अघ हान।।2।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथाष्टकं-स्रग्विणी छंद–

सिंधु को नीर भृंगार में लायके।
धार देऊँ प्रभो पाद में आयके।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।1।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध सौगंध कर्पूर केशर मिली।
पाद चर्चंत सम्यक्त्व कलिका खिली।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।2।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

दुग्ध के फेन सम स्वच्छ अक्षत लिये।
पुंज को धारते स्वात्म संपत लिये।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।3।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

केवड़ा मोगरा पुष्प अरविंद हैं।
नाथ पद पूजते कामशर भंग है।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।4।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मुद्ग लाडू इमरती कनक थाल में।
पूजते भूख व्याधी हरूँ हाल में।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।5।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ण के पात्र में ज्योति कर्पूर की।
नाथ की आरती मोह को चूरती।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।6।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप दशगंध ले अग्नि में खेवते।
कर्म की भस्म हो नाथ पद सेवते।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।7।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम अंगूर केला अनंनास ले।
नाथ पद अर्चते मुक्तिकांता मिले।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।8।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गंधादि वसु द्रव्य ले थाल में।
अर्घ्य अर्पण करूँ नाय के भाल मैं।।
तीस चौबीस तीर्थंकरों को जजूँ।
जन्म व्याधी हरूँ सर्व दुख से बचूँ।।9।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–सोरठा –

तीर्थंकर परमेश, तिहुंजग, शांतीकर सदा।
चउसंघ शांति हेत, शांतीधारा मैं करूँ।।10।।

शांतये शांतिधारा।

हरसिंगार प्रसून, सुरभित करते दश दिशा।
तीर्थंकर पदपद्म, पुष्पांजलि अर्पण करूँ।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य - ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

जयमाला

– दोहा –

अनंत दर्शन ज्ञान औ, सुख औ वीर्य अनंत।
अनंत गुण के तुम धनी, नमूँ नमूँ भगवंत।।1।।

(चाल-हे दीनबंधु.....)

जैवंत तीर्थंकर अनंत सर्वकाल के।
जैवंत धर्मवंत न हों वश्य काल के।।
जै पाँच भरत पाँच ऐरावत में हो रहे।
जै भूत वर्तमान औ भविष्य के कहे।।1।।

इस जंबूद्वीप में हैं भरत और ऐरावत।
इन दो ही क्षेत्र में सदा हो काल परावृत।।
जो पूर्व धातकी औ अपर धातकी कहे।
इन दोनों में भी भरत ऐरावत सदा कहे।।2।।

वर पुष्करार्ध पूर्व अपर में भी दोय दो।
हैं क्षेत्र भरत और ऐरावत प्रसिद्ध जो।।
इस ढाई द्वीप में प्रधान क्षेत्र दश कहे।
षट्काल परावर्तनों से चक्रवत रहें।।3।।

इनके चतुर्थकाल में तीर्थेश जन्मते।
जो भूत वर्तमान भावि काल धरंते।।
इस विध से तीस बार हों चौबीस जिनेश्वर।
ये सात सौ हैं बीस कहे धर्म के ईश्वर।।4।।

इनकी त्रिकाल बार बार वंदना करूँ।
मैं भक्तिभाव से सदैव अर्चना करूँ।।
संपूर्ण कर्मपर्वतों की खण्डना करूँ।
निज 'ज्ञानमती' पाय फेर जन्म नाधरूँ।।5।।

– घत्ता –

जय जय तीर्थंकर, धर्मचक्रधर, भवसंकट हर तुमहिं भजूँ।
जय तीन रतनधर, निजसंपतिवर, अनुपम सुख को नित्य चखूँ।।6।।

ॐ ह्रीं त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–गीता छंद –

जो तीस चौबीसी महापूजा महोत्सव को करें।
वर पंचकल्याणक अधिप जिननाथ के गुण उच्चरें।।
वे पंचपरिवर्तन मिटाकर पंचकल्याणक भरें।
निर्वाणलक्ष्मी 'ज्ञानमति' युत पाय निजसंपति वरें।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

बीस तीर्थंकर पूजा

–स्थापना–गीताछंद –

सीमंधरादिक बीस तीर्थंकर विदेहों में रहें।
जिनकी सभा में आज भी भविवृंद निज कल्मष दहें।।
उन विद्यमान जिनेश की मैं नित करूँ आराधना।
पूजन करूँ अतिभक्ति से निजतत्त्व की ही साधना।।1।।

ॐ ह्रीं विदेहक्षेत्रस्थसीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं विदेहक्षेत्रस्थसीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं विदेहक्षेत्रस्थसीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं –स्रग्विणी छंद

पद्मद्रह का सलिल गंधवासित लिया।
नाथ चरणाब्ज में तीन धारा किया।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।1।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध कर्पूर चंदन घिसा के लिया।
आप पादाब्ज में चर्च के अर्चिया।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।2।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

कौमुदी धौत तंदुल लिये थाल में।
आप पादाग्र में पुंज को धार मैं।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।3।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मौलसिरि मालती पुष्प ताजे लिये।
कामशर के जयी आपको अर्पिये।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।4।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूड़ियाँ लड्डुकादी भरे थाल में।
पूजते भूख व्याधी नशे हाल में।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।5।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्योति कर्पूर की ध्वांतहर जगमगे।
दीप से अर्चते ज्ञान ज्योती जगे।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।6।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप दशगंध खेऊं सदा अग्नि में।
कर्म संपूर्ण हों भस्म तुम भक्ति में।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।7।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम अंगूर नींबू बिजौरा लिया।
मोक्षफलहेतु प्रभु आपको अर्पिया।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।8।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य में रत्न सुंदर मिले हैं भले।
पूजते आपको स्वात्म निधियाँ मिलें।।
बीस तीर्थंकरों की करूँ अर्चना।
हो प्रभू भक्ति से मोह की वंचना।।9।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतीधारा करूँ, नाथ पादाब्ज में।
शांति आत्यंतिकी शीघ्र हो नाथ में।।10।।

शांतये शांतिधारा।

कुंद कल्हार जूही चमेली खिले।
पुष्प अंजलि करूँ सौख्य संपत मिले।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

–पूर्णार्घ्य-कुसुमलता छंद–

ढाई द्वीप में पाँच मेरु संबंधित, पाँच विदेह महान।
प्रत्येक में चार चार तीर्थंकर विद्यमान सुखखान।।
पंचकल्याणक के सब स्वामी, पंचपरावर्तन से दूर।
मैं पंचांग नमूँ प्रभु करिये, पंचमगति के सुख भरपूर।।12।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभु-ऋषभानन-अनंतवीर्य-सूरिप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चंद्रानन-चंद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमीप्रभु-वीरसेन-महाभद्र-देवयश-अजितवीर्यपर्यंतविंशतितीर्थंकरेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य–**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्रीसीमंधरादिविद्यमान-विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।**

जयमाला

–पंच चामर छंद–

जयो जयो जयो जिनेंद्र इंद्रवृंद बोलते।
त्रिलोक में महागुरु सु आप नाम तोलते।।
सुधन्य धन्य धन्य आप साधुवृंद बोलते।
जिनेश आप भक्त ही तो निज किवाड़ खोलते।।1।।

समोसरण में आपके महाविभूतियाँ भरी।
अनेक ऋद्धि सिद्धियां सुआप पास में खड़ीं।।
अनंत अंतरंग गुण समूह आप में भरें।
गणीन्द्र औ सुरेंद्र चक्रि आप संस्तुती करें।।2।।

हरिन्मणी के पत्र पद्मराग के सुपुष्प हैं।
अशोक वृक्ष देखते समस्त शोक अस्त हैं।।
अनेक देववृंद पुष्पवृष्टि आप पे करें।
सुगंध वर्ण वर्ण के सुमन खिले खिले गिरें।।3।।

जिनेश आपकी ध्वनी अनक्षरी सुदिव्य है।
समस्त भव्य कर्ण में करे सुअर्थ व्यक्त है।।
न देशना कि चाह है न तालु ओंठ पुट हिलें।
असंख्य जीव के धुनी से चित्तपद्मिनी खिलें।।4।।

सुचामरों कि पंक्तियाँ ढुरें सुसूचना करें।
नमें तुम्हें सुभक्त वे हि ऊर्ध्व में गमन करें।।
सुसिंह पीठ आपका अनेक रत्न से जड़ा।
विराजते सुआप हैं अतः महत्त्व है बढ़ा।।5।।

प्रभासुचक्र कोटि सूर्य से अधिक प्रभा धरे।
समस्त भव्य के उसी में सात भव दिखा करें।।
सु देवदुंदुभी सदा गंभीर नाद को करे।
असंख्य जीव का सुचित्त खींच के वहाँ करे।।6।।

सफेद छत्र तीन जो जिनेश शीश पे फिरें।
प्रभो त्रिलोकनाथ आप सूचना यही करें।।
सुप्रातिहार्य आठ ये हि बाह्य की विभूतियाँ।
सुरेश ने रचे तथापि आप पुण्य राशियाँ।।7।।

प्रभो तुम्हीं महान मुक्ति बल्लभापती कहे।
प्रभो तुम्हीं प्रधान ईश सर्व विश्व के कहे।।
प्रभो तुम्हें सदा नमें सु भक्ति आप में धरें।
अनंतकाल तक वहीं अनंत सौख्य को भरें।।8।।

–दोहा–

तुम गुण सूत्र पिरोय स्रज, विविध वर्णमय फूल।
धरें कंठ उन 'ज्ञानमति', लक्ष्मी हो अनुकूल।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमंधरादिविंशतितीर्थंकरेभ्यो जलमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–गीता छंद–

जो विहरमाण जिनेन्द्र बीसों का सदा अर्चन करें।
वे भव्य निज के ही गुणों का नित्य संवर्द्धन करें।।
इस लोक के सुख भोग के फिर सर्वकल्याणक धरें।
स्वयमेव केवल ज्ञानमति हो मुक्तिलक्ष्मी वश करें।।1।।

।। इत्याशीर्वादः।।

त्रैलोक्य जिनालय पूजा

स्थापना-नरेन्द्र छंद

त्रिभुवन के जिनमंदिर शाश्वत, आठ कोटि सुखराशी।
छप्पन लाख हजार सत्यानवे, चार शतक इक्यासी।।
प्रति जिनगृह में मणिमय प्रतिमा, इक सौ आठ विराजें।
आह्वानन कर जजूँ यहाँ मैं जन्म मरण दुःख भाजें।।1।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक–स्रग्विणी छन्द

स्वर्ग गंगानदी नीर झारी भरूँ।
नाथ के पाद में तीन धारा करूँ।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।1।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध चंदन घिसाके कटोरी भरूं।
नाथ पादाब्ज अर्चूं सभी दुःख हरूँ।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।2।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

धौत तंदुल शशी रश्मि सम श्वेत हैं।
नाथ के अग्र में पुंज सुख हेतु हैं।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।3।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुंद बेला सुगंधित कुसुम ले लिये।
नाथ पादाब्ज में आज अर्पण किये।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।4।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

खीर बरफी अंदरसा पुआ लायके।
नाथ के सामने चरु चढ़ाऊँ अबे।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।5।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप ज्योती लिये आरती मैं करूँ।
मोह हर ज्ञान की भारती मैं भरूँ।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।6।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप खेऊँ अबे धूपघट में जले।
कर्म निर्मूल हो देहकांती मिले।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।7।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम्र अंगूर केला चढ़ाऊँ भले।
मोक्ष की आश सह सर्व वांछित फले।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।8।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ में स्वर्ण चाँदी कुसुम ले लिये।
नाथ को अर्पहूँ रत्नत्रय के तिये।।
सर्वशाश्वत जिनालय जजूँ भाव से।
स्वात्म पीयूष पीऊँ बड़े चाव से।।9।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

– सोरठा–

श्री जिनवर पादाब्ज, शांतीधारा मैं करूँ।
मिले स्वात्मसाम्राज, त्रिभुवन में सुख शांति हो।।10।।

शांतये शांतिधारा।

बेला हरसिंगार, कुसुमांजलि अर्पण करूँ।
मिले सर्वसुखसार, त्रिभुवन की सुख संपदा।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य–**ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यशाश्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।**

जयमाला

– दोहा–

जय त्रिभुवन के जिनभवन, जिनप्रतिमा जिनसूर्य।
नमूँ अनंतों बार मैं, भव्य कमलिनी सूर्य।।1।।

– शंभू छंद–

जय अधोलोक के जिनगृह सात करोड़ बहत्तर लाख नमूँ।
जय मध्यलोक के चार शतक अट्ठावन जिनगृह नित्य नमूँ।।
जय व्यंतरसुर ज्योतिष सुर के जिनगेह असंख्याते प्रणमूँ।
जय ऊरध के चौरासि लाख सत्यानवे सहस तेईस नमूँ।।1।।

कोट्यष्ट सुछप्पन लाख सत्यानवे सहस चार सौ इक्यासी।
जिनधाम अकृत्रिम नमूँ नमूँ ये कल्पवृक्षसम सुख राशी।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन्न लाख सत्ताइस सहस तथा।
नवसौ अड़तालिस जिनप्रतिमा मैं नमूँ हरो भवव्याधि व्यथा।।2।।

जिनमंदिर लंबे सौ योजन पचहत्तर तुंग विस्तृत पचास।
उत्कृष्ट प्रभाव कहा श्रुत में मध्यम लंबे योजन पचास।।
चौड़े पचीस ऊँचे साढ़े सैंतिस जघन्य लंबे पचीस।
चौड़े साढ़े बारह योजन ऊँचे योजन पौने उनीस।।3।।

मेरू में भद्रसाल नंदनवन के वर द्वीप नंदीश्वर के।
उत्कृष्ट जिनालय मुनि कहते मैं नमूँ नमूँ अंजलि करके।।
सौमनस रुचकगिरि कुंडलगिरि वक्षार कुलाचल के मंदिर।
मनुजोत्तर इष्वाकार अचल मध्यम प्रमाण के जिनमंदिर।।4॥

पांडुकवन के जिनगृह जघन्य मैं नमूँ नमूँ शिर नत करके।
रजताचल जंबू शाल्मलि तरु इनके मंदिर सबसे छोटे।।
ये एक कोस लंबे आधे चौड़े पौने कोस ऊँचे हैं।
सर्वत्र लघू जिनमंदिर का परिणाम यही मुनि गाते हैं।।5।।

जिनगृह को बेढ़े तीन कोटे चहुँदिश में गोपुर द्वार कहे।
प्रविवीथी मानस्तंभ बने प्रतिवीथी नव नव स्तूप कहें।।
मणिकोट प्रथम के अंतराल वनभूमि लतायें मनहरतीं।
परकोट द्वितिय के अंतराल दशविधी ध्वजायें फरहरतीं।।6।

परकोट तृतिय के बीच चैत्यभूमी अतिशायि शोभती है।
सिद्धार्थवृक्ष अरु चैत्यवृक्ष बिंबों से चित्त मोहती है।।
प्रतिमंदिर मध्य गर्भगृह इक सौ आठ-आठ अतिसुंदर हैं।
इन गर्भगृह में सिंहासन पर जिनवर बिंब मनोहर हैं।।7।।

ये बिंब पाँच सौ धनुष तुंग पद्मासन राजें मणिमय हैं।
बत्तीस युगल यक्ष दोनों बाजू में चंवर ढुराते हैं।।

जिनप्रतिमा निकट श्रीदेवी श्रुतदेवी की मूर्ती शोभें।
सानत्कुमार सर्वाण्हयक्ष की मूर्ति भव्य जन मन लोभें।।8।।

प्रत्येक बिंब के पास सुमंगल द्रव्य एक सौ आठ-आठ।
भृंगार कलश दर्पण चामर ध्वज छत्र व्यजन अरु सुप्रतिष्ठ।।
श्री मंडप आगे स्वर्ण कलश शोभें बहु धूप घड़े सोहें।
मणिमय सुवर्णमय मालायें चारण ऋषि का भी मन मोहें।।9।।

मुखमंडप प्रेक्षामंडप अरु वंदन अभिषेक मंडपादी।
क्रीड़ा नर्तन संगीत गुणनगृह चित्रभवन विस्तृत अनादि।।
बहुविध रचना इन मंदिर में गणधर भी नहिं कह सकते हैं।
माँ सरस्वती नित गुण गाते मुनिगण अतृप्त ही रहते हैं।।10।।

मैं नित्य जिनालय को वंदूँ नित शीश झुकाऊँ गुण गाऊँ।
जिनप्रतिमा के पद कमलों में बहु बार नमूँ नित शिर नाऊँ।
प्रत्यक्षदर्श मिल जाय प्रभो! इसलिये परोक्ष करूँ वंदन।
जिन ज्ञानमती ज्योती प्रगटे इस हेतु करूँ शत-शत वंदन।।11।।

– दोहा–

चिंतामणि जिनमूर्तियाँ चिंतित फलदातार।
चिच्चैतन्य जिनेन्द्र को, नमूँ नमूँ शत बार।।12।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्त-नवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिजिनालयजिनबिम्बेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–शंभु छंद–

जो भविजन श्रद्धा भक्ती से तीन लोक जिनयज्ञ रचावें।
सर्व अमंगल दूर भगाकर वे नित-नित नव मंगल पावें।।
तीन लोक का भ्रमण मिटाकर निज के तीन रत्न को पाके।
केवलज्ञानमती प्रकटित कर बसें त्रिलोक शिखर पर जाके।।1।

।। इत्याशीर्वादः।।

समवसरण पूजा

अथ स्थापना–गीता छंद

तीर्थंकरों की सभाभूमी, धनपती रचना करें।
है समवसरण सुनाम उसका, वह अतुल वैभव धरे।।
जो घातिया को घातते, कैवल्यज्ञान विकासते।
वे इस सभा के मध्य अधर, सुगंधकुटि पर राजते।।1।।

दोहा– अनंत चतुष्टय के धनी, तीर्थंकर चौबीस।
आह्वानन कर मैं जजूँ, नमूँ नमूँ नत शीश।।2।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवर्धमानान्तचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं वृषभादिवर्धमानान्तचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं वृषभादिवर्धमानान्तचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक–चाल-नंदीश्वर पूजा

जिनवचसम शीतल नीर, कंचन भृंग भरूँ।
मैं पाऊँ भवदधि तीर, जिन पद धार करूँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।1।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन तनु सम सुरभित गंध, कंचन पात्र भरूँ।
मैं चर्चूं जिनपद पद्म, भव संताप हरूँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।2।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन ध्वनि सम अमल अखंड, तंदुल थाल भरूँ।
मैं पुंज धरूँ जिन अग्र, सौख्य अखंड भरूँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।3।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन यश सम सुरभित पुष्प, चुन चुन कर लाऊँ।
जिन आगे पुष्प समर्प्य, निजके गुण पाऊँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।4।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन वच अमृत के पिंड, सदृश चरु लाऊँ।
जिनवर के निकट चढ़ाय, समरस सुख पाऊँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।5।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन तनु की कांति समान, दीपक ज्योति धरे।
मैं करूँ आरती नाथ, मम सब आर्त हरे।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।6।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन यश सम सुरभित धूप, खेऊँ अग्नी में।
हो अशुभ कर्म सब भस्म, पाऊँ निज सुख मैं।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।7।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवच सम मधुर रसाल, श्रीफल फल बहुते।
जिन निकट चढ़ाऊँ आज, अतिशय भक्तियुते।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।8।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन आदि मिलाय, अर्घ बनाय लिया।
निज पद अनर्घ के हेतु, आप चढ़ाय दिया।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।9।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

शांतीधारा मैं करूँ, जिनवर पद अरविंद।
आत्यंतिक शांती मिले, प्रगटे सौख्य अनिंद।।10।।

शांतये शांतिधारा।

लाल श्वेत पीतादि बहु, सुरभित पुष्प गुलाब।
पुष्पांजलि से पूजते, हो निजात्म सुख लाभ।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य–ॐ ह्रीं समवसरणस्थित चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः।

जयमाला

–दोहा–

चिन्मय चिंतामणि प्रभो, गुण अनंत की खान।
समवसरण वैभव सकल, वह लवमात्र समान।।1।।

–शंभुछंद–

जय जय तीर्थंकर क्षेमंकर, तुम धर्मचक्र के कर्ता हो।
जय जय अनंतदर्शन सुज्ञान, सुखवीर्य चतुष्टय भर्त्ता हो॥
जय जय अनंत गुण के धारी, प्रभु तुम उपदेश सभा न्यारी।
सुरपति की आज्ञा से धनपति, रचता है त्रिभुवन मनहारी।।2।।

प्रभु समवसरण गगनांगण में, बस अधर बना महिमाशाली।
यह इंद्र नीलमणि रचित गोल आकार बना गुणमणिमाली।।
सीढ़ी इक एक हाथ ऊँची, चौड़ी सब बीस हजार बनी।
नर बाल वृद्ध लूले लंगड़े, चढ़ जाते सब अतिशायि घनी।।3।

पहला परकोटा धूलिसाल, बहुवर्ण रत्न निर्मित सुंदर।
कहिं पद्मराग कहिं मरकतमणि, कहिं इन्द्रनीलमणि से मनहर।।
इसके अभ्यंतर चारों दिश, हैं मानस्तंभ बने ऊँचे।
ये बारह योजन से दिखते, जिनवर से द्विदश गुणे ऊँचे।।4।।

इनमें चारों दिश जिनप्रतिमा, उनको सुरपति नरपति यजते।
ये सार्थक नाम धरें दर्शन से मानो मान गलित करते।।

इस समवसरण में चार कोट अरु पाँच वेदिकाएँ ऊँची।
इनके अंतर में आठ भूमि फिर प्रभू की गंधकुटी ऊँची॥5।।

इस धूलिसाल अभ्यंतर में है भूमि चैत्य प्रासाद प्रथम।
एकेक जैन मंदिर अंतर से पाँच पाँच प्रासाद सुगम।।
चारों गलियों में उभय तरफ दो दोय नाट्यशालाएं हैं।
अभिनय करतीं जिनगुण गातीं सुर भवनवासि कन्याएं हैं।।6॥

फिर वेदी वेढ़ रही ऊँची गोपुर द्वारों से युक्त वहाँ।
द्वारों पर मंगलद्रव्य निधी ध्वज तोरण घंटा ध्वनी महा।।
फिर आगे खाई स्वच्छ नीर से भरी दूसरी भूमी है।
फूले कुवलय कमलों से युत हंसों के कलरव की ध्वनि है।।7॥

फिर दूजी वेदी के आगे तीजी है लताभूमि सुन्दर।
बहुरंग बिरंगे पुष्प खिले जो पुष्पवृष्टि करते मनहर।।
फिर दूजा कोट बना स्वर्णिम, गोपुर द्वारों से मन हरता।
नवनिधि मंगल घट धूप घटों युत में प्रवेश करती जनता।।8।।

आगे उद्यान भूमि चौथी चारों दिश बने बगीचे हैं।
क्रम से अशोक वन सप्तवर्ण चंपक अरु आम्र तरू के हैं।।
प्रत्येक दिशा में एक-एक तरु चैत्य वृक्ष अतिशय ऊँचे।
इनमें जिनप्रतिमा प्रातिहार्ययुत चार-चार मणिमय दीखें।।9॥

इसके आगे वेदी सुन्दर फिर ध्वजाभूमि ध्वज से शोभे।
फिर रजतवर्णमय परकोटा गोपुर द्वारों से युत शोभे।।
फिर कल्पवृक्ष भूमी छट्ठी दशविध के कल्पवृक्ष इसमें।
प्रतिदिश सिद्धार्थ वृक्ष चारों हैं सिद्धों की प्रतिमा उनमें।।10॥

चौथी वेदी के बाद भवन, भूमी सप्तमि के उभय तरफ।
नव नव स्तूप रत्न निर्मित, उनमें जिनवर प्रतिमा सुखप्रद।।
परकोटा स्फटिकमयी चौथा मरकत मणि गोपुर से सुन्दर।
उस आगे श्रीमंडप भूमी बारह कोठों से जनमनहर।।11।।

फिर पंचम वेदी के आगे त्रय कटनी सुन्दर दिखती हैं।
पहली कटनी पर यक्ष शीश पर धर्मचक्र चारों दिश हैं।।
दूजी कटनी पर आठ महाध्वज नवविधि मंगल द्रव्य धरे।
तीजी कटनी पर गंधकुटी पर जिनवर दर्शन पाप हरें।।12।।

जय जय जिनवर सिंहासन पर चतुरंगुल अधर विराज रहे।
जय जय जिनवर की दिव्यध्वनी सुनकर सब भविजन तृप्त भये।।
सब जातविरोधी प्राणीगण, आपस में मैत्री भाव धरें।
जो पूजें ध्यावें गुण गावें वे 'ज्ञानमती कैवल्य' करें।।13।।

–दोहा–

चतुर्मुखी ब्रह्मा तुम्हीं, ज्ञान व्याप्त जग विष्णु।
देवों के भी देव हो, महादेव अरि जिष्णु।।14।।

ॐ ह्रीं वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–गीता छंद–

जो समवसरण विधान करते, भव्य श्रद्धा भाव से।
तीर्थंकरों की बाह्य लक्ष्मी, पूजते अति चाव से।।
फिर अंतरंग अनन्त लक्ष्मी, को जजें गुण प्रीति से।
निज 'ज्ञानमती' कैवल्य कर, वे मोक्षलक्ष्मी सुख भजें।।

।। इत्याशीर्वादः।।



तीर्थंकर पंचकल्याणक तीर्थ पूजा

रचयित्री—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

–शंभु छंद–

श्री ऋषभदेव से महावीर तक चौबिस तीर्थंकर प्रभु हैं।
इन सबके पंचकल्याणक से पावन तेईस तीर्थ भू हैं।।
मेरा भी हो कल्याण प्रभो! मैं पंचकल्याणक तीर्थ नमूँ।
आह्वानन स्थापन एवं सन्निधीकरण विधि से प्रणमूँ।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणाम् पंचकल्याणक तीर्थसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणाम् पंचकल्याणक तीर्थसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणाम् पंचकल्याणक तीर्थसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अष्टक (शंभु छंद)–

इस जग में काल अनादी से, हर प्राणी तृषा समन्वित है।
तीरथ पद में जलधारा कर, हो सकती तृष्णा विस्मृत है।।
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।1।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तीरथ यात्रा से सचमुच ही, आत्मा में परमशांति मिलती।
चन्दन पूजा संसार ताप को, दूर हटा सब सुख भरती।।
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।2।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद पाकर जिनवर ने, आत्मा को तीर्थ बना डाला।
अक्षत ले शुभ्र धवल मुट्ठी में, मैंने पुंज चढ़ा डाला।।
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।3।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुछ तीर्थंकर ने ब्याह किया, कुछ ने नहिं ब्याह रचाया है।
विषयों की इच्छा तजकर ही, सबने तप को अपनाया है।।
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।4।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्गों का भोजन भी तजकर, तीर्थंकर प्रभु ने दीक्षा ली।
हर प्राणी को दीक्षा लेने के, हेतु प्रभू ने शिक्षा दी।।
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।5।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ज्ञान का दीप जलाकर प्रभु ने, जग को ज्ञान प्रकाश दिया।
हमने घृतदीप जला आरति, करके कुछ आत्मविकास किया॥
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।6।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज शुक्लध्यान की अग्नी में, कर्मों की धूप दहन करके।
जिनवर ने शिवपद पाया हम भी, धूप अग्नि में दहन करें।।
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।7।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस मोक्षमहाफल के निमित्त, प्रभु ने उग्रोग्र तपस्या की।
उसकी अभिलाषा करके ही, हमने फल थाली अर्पित की।।
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।8।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध सुअक्षत पुष्प चरु, दीपक वर धूप फलादि लिया।
''चन्दनामती'' तीर्थंकर बनने, हेतु तीर्थ पद चढ़ा दिया।।
जो तीर्थभूमियाँ तीर्थंकर के, पंचकल्याण से पावन हैं।
उनकी पूजा भक्ती करने से, आत्मा होती पावन है।।9।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–शेरछंद –

तीर्थंकरों के पंचकल्याणक की भूमियाँ।
पावन हैं सभी के लिए वे तीर्थभूमियाँ।।
तीर्थों की अर्चना में शांतिधारा करूँ मैं।
निज शांति के संग विश्वशांति भाव धरूँ मैं।।10।।

शांतये शांतिधारा।

जिन उपवनों में जिनवरों ने की थी तपस्या।
सब ऋतु के फूल-फल से फलित वृक्ष थे वहाँ।।
इन पुष्पों में भी उन्हीं पुष्प की है कल्पना।
पुष्पांजली के द्वारा करूँ तीर्थ अर्चना।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।।

पंचकल्याणक तीर्थों के अर्घ्य

प्रभु ऋषभदेव की गर्भ जन्मकल्याणक भूमि अयोध्या है।
अजितेश्वर अभिनंदन के गर्भ जन्म तप ज्ञान हुए यहाँ हैं।।
श्री सुमतिनाथ व अनंतनाथ के चार कल्याणक से पावन।
मैं अर्घ्य चढ़ाकर नमूँ अयोध्या तीर्थ सदा है मनभावन।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवस्यतीर्थंकर गर्भजन्मकल्याणकपवित्र अजितनाथ अभिनंदननाथ सुमतिनाथ अनंतनाथतीर्थंकरा गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञानचतुः चतुःकल्याणकपवित्रशाश्वत जन्मभूमि अयोध्यातीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री संभवजिन की गर्भजन्मतपज्ञानभूमि श्रावस्ती है।
जहाँ मात सुषेणा के आंगन में हुई रत्न की वृष्टी है।।
उस श्रावस्ती तीरथ को अर्घ्य चढ़ाकर पुण्य कमाना है।।
उसकी यात्रा अरु पूजा कर आत्मा को तीर्थ बनाना है।।2॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथतीर्थंकर गर्भजन्मतपज्ञानचतुः-कल्याणकपवित्र श्रावस्तीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जब जब प्रभु मैंने अष्टद्रव्य का स्वर्णिम थाल सजाया है।
तब तब मैंने ''चन्दनामती'' लोकोत्तर वैभव पाया है।।
कौशाम्बी नगरी पद्मप्रभू की, जन्मभूमि कहलाती है।
उन गर्भ जन्म तप और ज्ञान से, पावन मानी जाती है।।
चार कल्याणक से सहित, पावन तीर्थ महान।
कौशाम्बी व प्रभासगिरि, को दूँ अर्घ्य महान।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभतीर्थंकर गर्भजन्मतपज्ञानचतुः-कल्याणकपवित्र कौशाम्बी-प्रभासगिरितीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवर सुपार्श्व अरु पार्श्वनाथ के कल्याणक से पावन है।
उनके प्राचीन कथानक से, जो तीर्थ प्रसिद्ध बनारस है।।
उस तीरथ से प्रार्थना मेरी, आत्मा भी तीरथ बन जावे।
मैं अर्घ्य समर्पित करूँ प्रभो, मुझको अनर्घ्य पद मिल जावे।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथतीर्थंकर गर्भजन्मतपज्ञानचतुः-कल्याणकपवित्र पार्श्वनाथस्य च गर्भजन्मतपत्रिकल्याणक पवित्र वाराणसीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्रप्रभ जी के चार कल्याणक, से पवित्र जो नगरी है।
चिरकाल बीत जाने पर वह, वीरान हो गई नगरी है।।
लेकिन प्रभु की रज लेने, चन्द्रपुरी में भक्त पहुँचते हैं।
उस तीरथ के दर्शन कर भाव से अर्घ्य समर्पित करते हैं।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभतीर्थंकर गर्भजन्मतपज्ञानचतुःकल्याणक पवित्र चन्द्रपुरीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–शेरछंद –

श्री पुष्पदंत जिनवर के चार कल्याणक।
काकन्दि में हुए अतः वह तीर्थ नमूँ नित।।
देवों ने आकर के वहाँ उत्सव बहुत किया।
ले अर्घ्य थाल तीर्थ को मैंने चढ़ा दिया।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतनाथतीर्थंकर गर्भजन्मदीक्षाज्ञानचतुः-कल्याणक पवित्र काकन्दीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जहाँ पर श्री शीतलनाथ प्रभू के चार हुए कल्याणक हैं।
उस भद्दिलपुर का कण-कण भी, पावन व पूज्य अद्यावधि है॥
चारों कल्याणक से पवित्र, तीरथ को नमन हमारा है।
श्रद्धा भक्ति के साथ समर्पित, यह शुभ अर्घ्य हमारा है।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथतीर्थंकर गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-चतुःकल्याणक पवित्र भद्दिलपुरतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रेयांसनाथ के गर्भ जन्म तप, चार कल्याणक हुए जहाँ।
वह सिंहपुरी है सारनाथ जो, तीर्थ बनारस पास कहा।

चारों कल्याणक से पवित्र श्री सिंहपुरी को वंदन है।
यह अर्घ्य समर्पित कर चाहूँ, तीरथ पूजन का शुभ फल मैं।।8।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथतीर्थंकर गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञानचतुः-कल्याणक पवित्र सिंहपुरीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–शेरछंद –

चम्पापुरी इक मात्र ऐसा तीर्थ है पावन।
जहाँ वासुपूज्य प्रभु के हुए पाँचों कल्याणक।।
चम्पापुरी में ही कहा मंदारगिरि स्थल।
पूजूँ जहाँ प्रसिद्ध वासुपूज्य धर्मस्थल।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यनाथतीर्थंकर गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-मोक्ष-पंचकल्याणक पवित्र चम्पापुरी तीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री विमलनाथ तेरहवें तीर्थंकर का अर्चन करना है।
उनके चारों कल्याणक से, पावन तीरथ को भजना है।।
उस कम्पिल जी में अद्यावधि, प्राचीन कथानक मिलता है।
उसको शुभ अर्घ्य चढ़ाने से, निज मन का उपवन खिलता है।।10।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथतीर्थंकर गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञान-चतुःकल्याणक पवित्र कम्पिलपुरीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पन्द्रहवें जिनवर धर्मनाथ के, जहाँ चार कल्याण हुए।
जिनधर्मतीर्थ संचालित करके, वे तिहुं जग में मान्य हुए।।
मैं उन चारों कल्याणक से, पावन धरती को नमन करूँ।
ले अष्टद्रव्य का थाल, रत्नपुरि तीरथ का मैं यजन करूँ।।11॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथतीर्थंकर गर्भजन्मतपज्ञानचतुःकल्याणक पवित्र रत्नपुरीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जहाँ तीर्थंकरत्रय कामदेव, चक्री पद के धारी जन्मे।
छह खंड जीतकर हस्तिनागपुर नगरी के राजा वे बने।।
उस भू पर उनके चार-चार कल्याणक इन्द्र मनाते थे।
वह तीर्थ जजूँ मैं अर्घ्य चढ़ा, जिसकी महिमा सुर गाते थे।।12।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरश्रीशांतिनाथकुंथुनाथअरनाथजिनेन्द्राणां गर्भजन्मतपज्ञान चतुःचतुःकल्याणकपवित्र हस्तिनापुरतीर्थ-क्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथिलापुरि की जिस धरती पर, श्री मल्लि व नमिप्रभु जन्मे हैं
उन दोनों प्रभु के गर्भ जन्म, तप ज्ञान कल्याण वहीं पे हैं।।
उस नगरी को मैं अर्घ्य चढ़ाकर, एक यही प्रार्थना करूँ।
रत्नत्रय निधि हो पूर्ण मेरी, तब भव सन्तति खंडना करूँ।।13॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथनमिनाथतीर्थंकर गर्भजन्मदीक्षा-केवलज्ञान चतुःचतुःकल्याणकपवित्र मिथिलापुरीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–रोला छंद –

मुनिसुव्रत भगवान, के चारों कल्याणक।
हुए राजगृह माँहि, अतः धरा वह पावन।।
ले पूर्णार्घ्य सुथाल, श्रद्धा सहित चढ़ाऊँ।
मन का मैल उतार, तीरथ का फल पाऊँ।।14।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथतीर्थंकर गर्भजन्मदीक्षाकेवल-ज्ञानचतुःकल्याणक-पवित्र राजगृहीतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा –

गर्भ जन्म प्रभु नेमि के, हुए जहाँ सुपवित्र।
अर्घ्य चढ़ा अर्चन करूँ, शौरीपुर की नित्य।।15।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथतीर्थंकर गर्भजन्मकल्याणकपवित्र-शौरीपुरतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस नगरी की रज महावीर के, तीन कल्याण से पावन है।
जहाँ इन्द्र-इन्द्राणी की भक्ती का, सदा महकता सावन है।।
उस कुण्डलपुर में नंद्यावर्त, महल का सुन्दर परिसर है।
मैं अर्घ्य चढ़ाकर नमूँ वहाँ, प्रभु वीर की प्रतिमा मनहर है।।16॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्रगर्भजन्मदीक्षाकल्याणकपवित्र कुण्डलपुर-तीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(17)

प्रभु ऋषभदेव की दीक्षा एवं ज्ञानभूमि का अर्चन है।
तीरथ प्रयाग के प्रति मेरा श्रद्धायुत भाव समर्पण है।।टेक.।।

युग की आदी में सर्वप्रथम, जब केशलोंच की क्रिया हुई।
उत्कृष्ट महाव्रत धारण करने, की पहली प्रक्रिया हुई।।
वह भूमि प्रयाग बनी तब से, उसको मेरा शत वन्दन है।
तीरथ प्रयाग के प्रति मेरा, श्रद्धायुत भाव समर्पण है।।1।।

वहीं पुरिमतालपुर उपवन में, जिनवर को केवलज्ञान हुआ।
इक सहस वर्ष तप करने के, पश्चात् उन्हें यह लाभ हुआ।।
देवों ने समवसरण रचना में, बैठ किया प्रभु अर्चन है।
तीरथ प्रयाग के प्रति मेरा, श्रद्धायुत भाव समर्पण है।।2।।

त्याग प्रकृष्ट हुआ जहाँ, वह है तीर्थ प्रयाग।
उस तीरथ की अर्चना, भरे धर्म अनुराग।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवतीर्थंकर दीक्षाकल्याणककेवलज्ञान-कल्याणक पवित्र प्रयागतीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पार्श्वनाथ पर जहाँ कमठचर देव ने आ उपसर्ग किया॥
धरणेन्द्र व पद्मावती ने प्रभु को उठा शीश पर छत्र किया।।
उस केवलज्ञान कल्याणक तीरथ अहिच्छत्र को वन्दन है।
भूगर्भ से निकली पार्श्वनाथ प्रतिमा को अर्घ्य समर्पण है।।18।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथतीर्थंकर केवलज्ञानकल्याणकपवित्र अहिच्छत्र-तीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(19)

कुण्डलपुर निकट जृंभिका में, ऋजुकूला तट पर ज्ञान हुआ।
उसके ऊपर गगनांगण में, प्रभु समवसरण निर्माण हुआ।।
मैं केवलज्ञान कल्याणक की, भूमी का नित्य यजन कर लूँ।
सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हेतु, प्रभु वीर को मैं वंदन कर लूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरतीर्थंकर केवलज्ञानकल्याणकपवित्र जृंभिकातीर्थक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(20)

ऋषभदेव निर्वाणभूमि, कैलाशगिरी को नम लो।
पूजन के माध्यम से अपने, प्रभु को सुमिरन कर लो।।
प्रभू की जय जय जय, प्रभू की जय जय जय.।।टेक.।।
भरतचक्रवर्ती निर्मित जहाँ है त्रिकाल चौबीसी।
उस गिरिवर के अष्टापद से, पाई प्रभु ने सिद्धी।।
अर्घ्य थाल उस गिरि के सम्मुख, सब मिल अर्पण कर लो।
पूजन के माध्यम से अपने, प्रभु को सुमिरन कर लो।।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवतीर्थंकर निर्वाणभूमि कैलाशपर्वत-सिद्धक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(21)

सिद्धक्षेत्र गिरनारगिरी, गुजरात प्रान्त का तीरथ है।
प्रभु नेमिनाथ के मोक्षगमन से, पावन उसकी कीरत है।।
तप, ज्ञान और निर्वाण तीन, कल्याणक स्थल को वंदूं।
राजुलमति की भी तपोभूमि, सिरसा वन का अर्चन कर लूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथतीर्थंकर दीक्षाकेवलज्ञानमोक्ष-कल्याणकपवित्र गिरनारगिरि सिद्धक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(22)

जिस वसुधा से प्रभु महावीर ने, अष्टम वसुधा प्राप्त किया।
''चन्दनामती'' उस वसुधा को, दे अर्घ्य सहज सुख प्राप्त हुआ॥
निर्वाणभूमि पावापुर का, अर्चन सबको सुखकारी है।
सरवर विच निर्मित जलमंदिर का, दर्शन निज हितकारी है।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरतीर्थंकर निर्वाणकल्याणकपवित्र पावापुरी सिद्धक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(23)

तीर्थराज सम्मेदशिखर है, शाश्वत सिद्धक्षेत्र जग में।
एक बार जो करे वंदना, वह भी पुण्यवान सच में।।
ऊँचा पर्वत पार्श्वनाथ हिल, नाम से जाना जाता है।
जिनशासन का सबसे पावन, तीरथ माना जाता है।।1।।

बीस तीर्थंकर इस पर्वत से, कर्म नाशकर मोक्ष गये।
लेकिन इससे पूर्व अनंतानंत, जिनेश्वर मोक्ष गये।।
इसीलिए यह अनादि अनिधन, तीर्थ पूज्य कहलाता है।
इस गिरि के वंदन-अर्चन से ही, स्वर्ग-मोक्ष मिल जाता है।।2।।

ॐ ह्रीं वर्तमानकालीन विंशतितीर्थंकराणां निर्वाणकल्याणक-पवित्रशाश्वततीर्थसम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री मांगीतुंगी आदि सिद्धक्षेत्रों को नमन हमारा है।
श्री महावीर जी महावीर प्रभू के अतिशय से प्यारा है।।
ऐसे ही पदमपुरा आदिक अतिशय क्षेत्रों को वंदन है।
इन सबको अर्घ्य चढ़ाकरके कर्मों का कर लूँ खंडन मैं।।24॥

ॐ ह्रीं मांगीतुंगीआदि सिद्धक्षेत्रमहावीरजीपदमपुरा आदि अतिशयक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–पूर्णार्घ्यं –

सोलह जन्मभूमि त्रय दीक्षा केवलज्ञान के तीरथ हैं।
निर्वाणभूमि के चार पृथक् ही सिद्धक्षेत्र के तीरथ हैं।।
चौबीसों तीर्थंकर के पंचकल्याणक तीर्थों को वंदूँ।
कुछ सिद्धक्षेत्र अतिशय क्षेत्रों को नमन करूँ भवदुख खंडूं।।25॥

ॐ ह्रीं वर्तमानकालीन चतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणकतीर्थ अन्यसिद्धक्षेत्रअतिशयक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।।

जाप्य मंत्र - **ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरपंचकल्याणव-पवित्रअयोध्यादिपावापुरीपर्यंततीर्थक्षेत्रेभ्यो नमः।**

(108 बार पीले पुष्प या लवंग से)

जयमाला

जो भवसमुद्र से तिरवाता, वह तीर्थ कहा जाता जग में।
वह द्रव्य तीर्थ औ भावतीर्थ, दो रूप कहा जिन आगम में।।
तीर्थंकर के जन्मादिक से, पावन हैं द्रव्यतीर्थ सच में।
हर प्राणी की आत्मा परमात्मा भावतीर्थ मानी जग में।।1।।

जय जय तीर्थंकर तीर्थनाथ, तुम धर्मतीर्थ के कर्ता हो।
जय जय चौबीस जिनेश्वर तुम, त्रिभुवन गुणमणि के भर्ता हो।।
जय ऋषभदेव से वीर प्रभू तक, सबकी महिमा न्यारी है।
इन पंचकल्याणक के तीर्थों को, नितप्रति धोक हमारी है।।2।।

चौबीसों जिन की जन्मभूमि का, अतिशय ग्रंथों में आया।
जहाँ पन्द्रह-पन्द्रह मास रतन-वृष्टि सुरेन्द्र ने करवाया।।
वह तीर्थ अयोध्या प्रथम तथा, कुण्डलपुर जन्मभूमि अन्तिम।
जहाँ तीर्थंकर माताओं ने, देखे सोलह सपने स्वर्णिम।।3।।

यूँ तो सब तीर्थंकर की शाश्वत जन्मभूमि है अवधपुरी।
लेकिन हुण्डावसर्पिणी में हो गईं पृथक् ये जन्मथली।।
इस कारण तीजे काल में ही, हुई कर्मभूमि प्रारंभ यहाँ।
तब नगरि अयोध्या धन्य हुई, हुआ प्रथम प्रभू का जन्म जहाँ।।4।।

उस शाश्वत तीर्थ अयोध्या में, इस युग के पाँच प्रभू जन्में।
ऋषभेश अजित अभिनंदन एवं, सुमति अनंत उन्हें प्रणमें।।
गणधर मुनि एवं इन्द्र आदि से, वंद्य अयोध्या नगरी है।
वृषभेश्वर की ऊँची प्रतिमा, जहाँ तीर्थ की महिमा कहती है।।5।।

इन जन्मभूमियों की श्रेणी में, श्रावस्ती संभव प्रभु की।
कौशाम्बी पद्मप्रभ की वाराणसि सुपार्श्व पारस प्रभु की।।
चन्द्रप्रभ जन्में चन्द्रपुरी में, पुष्पदन्त काकन्दी में।
भद्रिकापुरी में शीतल जिन, जन्मे श्रेयाँस सिंहपुरि में।।6।।

चम्पापुर नगरी वासुपूज्य की, जन्मभूमि से पावन है।
पाँचों कल्याणक से केवल, चम्पापुर ही मनभावन है।।
कम्पिलापुरी में विमलनाथ, है धर्मनाथ की रत्नपुरी।
श्रीशांति कुंथु अरनाथ तीन की, जन्मभूमि हस्तिनापुरी।।7।।

मिथिलानगरी में मल्लिनाथ, नमिनाथ जिनेश्वर जन्मे हैं।
मुनिसुव्रत जिनवर राजगृही, नेमी प्रभु शौरीपुर में हैं।।
कुण्डलपुर में महावीर प्रभू का, नंद्यावर्त महल सुन्दर।
प्राचीन छवी के ही प्रतीक में, ऊँचा बना सात मंजिल।।8।।

ये सोलह तीर्थ सभी तीर्थंकर, के जन्मों से पावन हैं।
ये गर्भ जन्म तप ज्ञान चार, कल्याणक से भी पावन हैं।।
इनके वन्दन से निज घर में, लक्ष्मी का वास हुआ करता।
इनके वन्दन से आतम में, सुख शांती लाभ हुआ करता।।9।।

पूर्णार्घ्य महार्घ्य समर्पण कर, सब तीर्थ भाव से नमन करो।
पूजन का फल पाने हेतू, सब राग द्वेष को शमन करो।।
ज्यों राजहंस से मानसरोवर, की पहचान कही जाती।
त्यों ही जिनवर जन्मों से धरती, पावन पूज्य कही जाती।।10।।

तीरथ प्रयाग में ऋषभदेव के दीक्षाज्ञान कल्याणक हैं।
अहिछत्र तीर्थ पर पार्श्वनाथ का हुआ ज्ञानकल्याणक है।।
जृंभिका ग्राम में ऋजुकूला नदि के तट पर महावीर प्रभू।
कैवल्यधाम को प्राप्त हुए, कर घातिकर्म का नाश प्रभू।।11।।

कैलाशगिरी से ऋषभदेव ने, मुक्तिश्री का वरण किया।
चम्पापुर से प्रभु वासुपूज्य ने, मोक्षधाम में गमन किया।।
गिरनार तीर्थ से नेमिनाथ, पावापुरि से महावीर प्रभू।
सम्मेदशिखर पर तप करके, निर्वाण गये हैं बीस प्रभू।।12।।

यूँ तो जिनआगम में केवल, दो ही माने शाश्वत तीरथ।
शुभतीर्थ अयोध्या जन्मभूमि, निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर।
पहले के सब तीर्थंकर नगरि अयोध्या में ही जनमते थे।
फिर कर्मनाश सम्मेदशिखर से मुक्तिप्रिया को वरते थे।।13।।

निज जन्मभूमि से अलग ऋषभ प्रभु नेमिनाथ ने दीक्षा ली।
बाकी बाइस तीर्थंकर ने निज जन्मभूमि में दीक्षा ली।।
ऐसे ही तीन जिनेश्वर को अन्यत्र सु केवलज्ञान हुआ।
श्री ऋषभ-पार्श्व-महावीर प्रभू का समवसरण निर्माण हुआ।।14।।

इन पंचकल्याणक तीर्थों को है मेरा बारम्बार नमन।
कुछ सिद्धक्षेत्र अतिशयक्षेत्रों को भी मेरा शत-शत वन्दन।।
मेरी आत्मा भी तीर्थ बने, मैं तीर्थंकर पद को पाऊँ।
कर धर्मतीर्थ का वर्तन मैं शाश्वत सुख में बस रम जाऊँ।।15।।

इस युग की गणिनीप्रमुख ज्ञानमति माता की प्रेरणा मिली।
कल्याणक तीर्थों का विकास करने की नव चेतना मिली।।
उनकी शिष्या आर्यिका ''चन्दनामति'' की है याचना यही।
शिवपद पाने तक तीर्थों के प्रति भक्ति रहे भावना यही।।16।।

–दोहा –

शब्दों की जयमाल यह, अर्पूं जिनपद मांहि।
अष्टद्रव्य का थाल ले, अर्घ्य चढ़ाऊँ आय।।17।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणां पंचकल्याणक-तीर्थेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–शेर छंद–

तीर्थंकरों के पंचकल्याणक जो तीर्थ हैं।
उनकी यशोगाथा से जो जीवन्त तीर्थ हैं।।
निज आत्म के कल्याण हेतु उनको मैं जजूँ।
फिर ''चन्दनामती'' पुनः भव वन में ना फंसूँ।।

।। इत्याशीर्वादः।।

जम्बूद्वीप पूजा

दोहा– **स्वयंसिद्ध यह द्वीप है, जंबूद्वीप महान।**
सब द्वीपों में है प्रथम, अनुपम रत्न निधान।।1।।
इसमें शाश्वत जिनभवन, अट्ठत्तर अभिराम।
तीर्थंकर जिन केवली, साधु शील गुणखान।।2।।
इन सब की पूजा करूँ, आत्मशुद्धि के हेतु।
जिन पूजा चिंतामणी, मन चिंतित फल देत।।3।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालय-जिनबिम्ब-तीर्थंकर-केवलिसर्वसाधु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालय-जिनबिम्ब-तीर्थंकर-केवलिसर्वसाधु समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालय-जिनबिम्ब-तीर्थंकर-केवलिसर्वसाधु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टक– शंभु छंद

सुर सरिता का उज्ज्वल जल ले, कंचन झारी भर लाया हूँ।
भव भव की तृषा बुझाने को, त्रय धारा देने आया हूँ।।
इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।1।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

वर अष्ट गंध सुरभित लेकर, तुम चरण चढ़ाने आया हूँ।
भव भव संताप मिटाने औ, समता रस पीने आया हूँ।।
इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।2।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शशि किरणों सम उज्ज्वल तंदुल, धोकर थाली भर लाया हूँ।
निज आतम गुण के पुंज हेतु, यह पुंज चढ़ाने आया हूँ।।
इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।3।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुवलय बेला वर मौलसिरी, मचकुन्द कमल ले आया हूँ।
शृंगार हार कामारिजयी, जिनवर पद भजने आया हूँ।।
इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।4।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मोदक फेनी घेवर ताजे, पकवान बनाकर लाया हूँ।
निज आतम अनुभव चखने को, नैवेद्य चढ़ाने आया हूँ।।

इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।5।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक ज्योती के जलते ही, अज्ञान अंधेरा भगता है।
इस हेतू से दीपक पूजा , करते ही ज्ञान चमकता है।।
इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।6।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूपायन में वर धूप खेय, दशदिश में धूम उठे भारी।
बहु जनम जनम के संचित भी, दुःखकर सब कर्म जलें भारी।।
इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।7।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर आम्र बिजौरा नींबू औ, गन्ना मीठा ले आया हूँ।
शिवकांता सत्वर वरने की, बस आशा लेकर आया हूँ।।
इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।8।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत फूल चरू, वर दीप धूप फल लाया हूँ।
तुम चरणों अर्घ चढ़ा करके, भव संकट हरने आया हूँ।।
इस जंबूद्वीप में जिनमंदिर, कृत्रिम अकृत्रिम जितने हैं।
तीर्थंकर केवलि सर्वसाधु, उन सबको मेरा वंदन है।।9।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिन-बिम्बतीर्थंकरकेवलि-सर्वसाधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–सोरठा –

क्षीरोदधि समश्वेत, उज्ज्वल जल ले भृंग में।
श्री जिनचरण सरोज, धारा देते भव मिटे।।10।।

शांतये शांतिधारा।।

सुरतरु के सुम लाय, प्रभु पद में अर्पण करूँ।
काम देव मद नाश, पाऊँ आनन्द धाम मैं।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।।

जयमाला

परम ज्योति परमात्मा, सकल विमल चिद्रूप।
जिनवर गणधर साधुगण, नमूँ नमूँ निजरूप।।1।।

–शंभु छंद–

जय जय सुमेरुगिरि के जिनगृह, सोलह शाश्वत हैं रत्नमयी।
जय जय जिनमंदिर चारों ही, गजदंतगिरी के स्वर्णमयी।।
जय जय जंबूतरु शाल्मलि के, दो जिनमंदिर महिमाशाली।
जय जय वक्षारगिरि के भी सोलह, जिनगृह्मरिमाशाली।।2।।

जय जय चौंतिस विजयारध के, चौंतिस जिनमंदिर सुखकारी।
जय जय छह कुल पर्वत के भी छह, जिनगृह भव भव दुःखहारी।।
ये जंबूद्वीप के अठत्तर, जिनमंदिर अकृत्रिम सुन्दर।
प्रतिजिनगृह में जिनप्रतिमाएं हैं, इक सौ आठ कही मनहर।।3।।

मेरू के पांडुक वन में चउ, विदिशा में चार शिलाएं हैं।
तीर्थंकर के जन्माभिषेक से, पावन पूज्य शिलायें हैं।।
इस भरत और ऐरावत में, होते हैं चौबिस तीर्थंकर।
केवलि श्रुतकेवलि गणधर मुनि, साधूगण होते क्षेमंकर।।4।।

उनके कल्याणक से पवित्र, पृथिवी पर्वत भी तीर्थ बने।
जो उनकी पूजा करते हैं, उनके मनवांछित कार्य बनें।।
बत्तिस विदेह के तीर्थंकर, सीमंधर युगमंधर स्वामी।
बाहू सुबाहु जिन विहरमाण, केवलज्ञानी अन्तर्यामी।।5।।

उन सर्व विदेहों में संतत, तीर्थंकर होते रहते हैं।
केवलज्ञानी चारणऋद्धि, मुनिगण वहाँ विचरण करते हैं।।
आकाशगमन करने वाले, ऋषिगण मेरू पर जाते हैं।
निज आत्म सुधारस स्वादी भी, जिनवंदन कर हर्षाते हैं।।6॥

इस जंबूद्वीप के अठहत्तर, शाश्वत जिनमंदिर को वंदन।
जितने भी कृत्रिम जिनगृह हों, उन सबको भी शत शत वंदन।
जितने तीर्थंकर हुए यहाँ, हो रहे और भी होवेंगे।
उन सबको मेरा वंदन है, वे मेरा कलिमल धोवेंगे।।7।।

आचार्य उपाध्याय साधूगण, जो भी इन कर्मभूमियों में।
चिन्मय आत्मा को ध्याते हैं, सुस्थिर होकर निज आत्मा में।।
वे घाति चतुष्टय घात, पुनः अर्हंत अवस्था पाते हैं।
इस कर्मभूमि से ही फिर वे, भगवान सिद्ध बन जाते हैं।।8।।

– दोहा –

पंच परम गुरु जिनधरम, जिनवाणी जिन गेह।
जिन प्रतिमा को नित नमूँ, 'ज्ञानमती' धर नेह।।9।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनालयजिनबिम्ब-तीर्थंकर-केवलिसाधुभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

– दोहा –

जंबूद्वीप की अर्चना, करे विघ्न घन चूर।
सर्व अमंगल दूर कर, भरे सौख्य भरपूर।।10।।

।। इत्याशीर्वादः ।।

तेरहद्वीप जिनालय पूजा (मध्यलोक जिनालय पूजा)

अथ स्थापना (शंभु छंद)

श्री स्वयंसिद्ध जिनमंदिर यहाँ पर, चार शतक अट्ठावन हैं।
मणिमय अकृत्रिम जिनप्रतिमा, ऋषि मुनिगण के मनभावन हैं।।
सौ इंद्रों से वंदित जिनगृह, मैं इनकी पूजा नित्य करूँ।
आह्वानन संस्थापन करके, निज के सन्निध नित्य करूँ।।1।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिपचमेर्वादिचतुःशतअष्टपंचाशत्जिनालयजिनबिम्बसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिपचमेर्वादिचतुःशतअष्टपंचाशत्जिनालयजिनबिम्बसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिपचमेर्वादिचतुःशतअष्टपंचाशत्जिनालयजिनबिम्बसमूह! मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथ अष्टक-शंभु छंद –

ये जन्म-जरा-मृति तीन रोग, भव-भव से दुख देते आये।
त्रयधारा जल की दे करके, मैं पूजूँ ये त्रय नश जायें।।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।।1।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना विध व्याधी रोग शोक, तन में मन में संताप करें।
चंदन से तुम पद चर्चूं मैं, यह पूजा भव-भव ताप हरे।।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।2।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में इंद्रिय सुख खंड-खंड, नहिं इनसे तृप्ती हो सकती।
अक्षत के पुंज चढ़ाऊँ मैं, अक्षय सुख देगी तुम भक्ती।।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।।3।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

इस कामदेव ने भ्रांत किया, निज आत्मिक सुख से भुला दिया।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।4।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

उदराग्नी प्रशमन हेतु नाथ, त्रिभुवन के भक्ष्य सभी खाये।
नहिं मिली तृप्ति इसलिए प्रभो! चरु से पूजत हम हर्षाये।।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।5।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अज्ञान अंधेरा निज घट में, नहिं ज्ञान ज्योति खिल पाती है।
दीपक से आरति करते ही, अघ रात्रि शीघ्र भग जाती है।।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।6।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर धूप घटों में धूप खेय, चहुँदिश में सुरभि महकती है।
सब पाप कर्म जल जाते हैं, गुणरत्नन राशि चमकती है।।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।7।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना विध फल की आश लिये, बहुते कुदेव के चरण नमें।
अब सरस मधुर फल से पूजें, बस एक मोक्षफल आश हमें।।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।8।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध आदि में चांदी के, सोने के पुष्प मिला करके।
मैं अर्घ चढ़ाऊँ हे जिनवर! रत्नत्रयनिधि दीजे तुरते।।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर शाश्वत स्वर्णमयी।
इनकी पूजा से जग जाती, निज आतम ज्योती सौख्यमयी।।9।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

शीत सुगंधित नीर से, प्रभुपद धार करंत।
त्रिभुवन में भी शांति हो, आतम सुख विलसंत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

हरसिंगार प्रसून ले, पुष्पांजलि विकिरंत।
मिले सर्वसुख संपदा, परमानंद तुरंत।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य मंत्र–ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधिअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः।

जयमाला

–शंभु छंद–

जय जय जय मध्यलोक के सब, शाश्वत जिनमंदिर मुनि वंदें।
जय जय जिनप्रतिमा रत्नमयी, भविजन वंदत ही अघ खंडें।।
जय जय जिनमूर्ति अचेतन भी, चेतन को वांछित फल देतीं।
जो पूजें ध्यावें भक्ति करें, उनकी आतम निधि भर देतीं।।1।।

जय पाँच मेरु के अस्सी हैं, जंबू आदिक तरु के दश हैं।
कुल पर्वत के तीसों जिनगृह, गजदंतगिरी के बीसहिं हैं।।
वक्षार गिरी के अस्सी हैं, इक सौ सत्तर रजताचल के।
दो इष्वाकार जिनालय हैं, चारहिं मंदिर मनुजोत्तर के।।2।।

नंदीश्वर के बावन कुंडलगिरि, रुचकगिरी के चउ-चउ हैं।
ये चार शतक अट्ठावन इन, जिनगृह को मेरा वंदन है।।
प्रति जिनगृह में जिन प्रतिमाएँ, सब इकसौ आठ-आठ राजें।
उनचास हजार चार सौ चौंसठ, प्रतिमा वंदत अघ भाजें।।3।।

स्वात्मानंदैक परम अमृत, झरने से झरते समरस को।
जो पीते रहते ध्यानी मुनि, वे भी उत्कंठित दर्शन को।।
ये ध्यान धुरंधर ध्यान मूर्ति, यतियों को ध्यान सिखाती हैं।
भव्यों को अतिशय पुण्यमयी, अनवधि पीयूष पिलाती हैं।।4।।

ढाई द्वीपों के मंदिर तक मानव विद्याधर जाते हैं।
आकाशगमन ऋद्धीधारी, ऋषिगण भी दर्शन पाते हैं।।
आवो आवो हम भी पूजें, ध्यावें वंदें गुणगान करें।
भव-भव के संचित कर्मनाश, पूर्णैक ''ज्ञानमति'' उदित करें।।5।।

–घत्ता–

जय जय श्री जिनवर, धर्मकल्पतरु, जय जिनमंदिर सिद्धमही।
जय जय जिनप्रतिमा, सिद्धन उपमा, अनुपम महिमा सौख्यमही।।6।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशत अष्टपंचाशत्जिनालय-जिनबिम्बेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–चौबोल छंद–

जो भविजन यह मध्यलोक की, पूजा करते बहु रुचि से।
चतुर्मुखी कल्याण प्राप्तकर, चक्रवर्ति पद लें सुख से।।
पंचकल्याणक पूजा पाकर, लोक शिखामणि हो चमकें।
उनके 'ज्ञानमती' दर्पण में, लोकालोक सकल झलकें।।

।। इत्याशीर्वादः ।।

गणधरवलय पूजा

तर्ज–आवो बच्चों तुम्हें दिखायें.....

आवो हम सब करें अर्चना, गणधर देव प्रधान की।
जिनवर दिव्यध्वनी को झेलें, द्वादशांग श्रुतवान की।।वंदे गणधरम्-॥
अड़तालिस ऋद्धी को धारें, द्वादशगण के ईश्वर हैं।
यंत्ररूप हैं मंत्ररूप हैं, तंत्ररूप भी परिणत हैं।।
ऐसे गुरु को वंदन करते, मिले राह कल्याण की।।आवो.।।
श्री गणधर गुरु की पूजा से, सर्वविघ्न संहार करें।
ज्वर अतिसार आदि रोगों का, क्षण भर में परिहार करें।।
आह्वानन कर जजते इनको, मिले ज्योति निज ज्ञान की।।आवो.।।

ॐ ह्रीं श्रीगणधरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीगणधरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीगणधरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

तर्ज–मेरे देश की धरती....

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
अगणित नदियों का नीर पिया, नहिं अब तक प्यास बुझा पाये।
इस हेतु आपकी पूजा को, कंचन झारी में जल लाये।।
गुरुपद में धारा करते ही....सब मन की प्यास बुझायें।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
भव-भव में रोग शोक संकट, मानस देहज दुख पाये हैं।।
इसलिये आपकी पूजा को, चंदन केशर घिस लाये हैं।।
गुरु पद में चर्चन करते ही....तन मन शीतल हो जाये।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
नश्वर सुख पाने की इच्छा से, दुःख अनंत उठाये हैं।
सरसों सम सुख नहिं मिला किंतु, भवदधि में गोते खाये हैं।।
इसलिये धौत सित अक्षत ले..... हम पुंज चढ़ाने आये।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
मकरध्वज ने तीनों जग में, निज शर से जन को वश्य किया।
प्रभु के चरणाम्बुज में आकर, वह भी तो क्षण में वश्य हुआ।
इसलिए तुम्हारे चरणों में..... हम पुष्प चढ़ा सुख पायें।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
यह क्षुधा पिशाची पिंड लगी, हम कैसे छुटकारा पायें।
तुम परमानंदामृत पीते, इसलिये प्रभो! शरणे आये।।
नैवेद्य चढ़ाकर तुम सन्मुख.....हम परम तृप्ति को पायें।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
मिथ्यात्व अंधेरे में हमने, नहिं निज को किंचित् पहिचाना।
प्रभु तुम हो केवलज्ञान सूर्य, इसलिये उचित समझा आना।।
दीपक से तुम आरति करते .....मन का अंधेर मिटायें।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
शाश्वत जिनमंदिर में असंख्य भी, धूप घड़ों में अग्नि जले।
नित सुरगण सुरभि धूप खेते, तब धूम्र दशों दिश में फैले।।
हम धूपायन में धूप खेय....निज के सब कर्म जलायें।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
अंगूर अनार आम केला, फल अनंनास ले आये हैं।
वर मोक्ष महा फल पाने को, तुम निकट चढ़ाने आये हैं।।
फल से पूजा करके भगवन् ..... रत्नत्रय निधि पा जायें।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर की अर्चा, सकल विश्व में, शांति सुधा बरसाये।
गणधर की.....
जल गंधादिक वसु अर्घ्य लिये, उसमें नवरत्न मिलाये हैं।
निज भाव अपूर्व-अपूर्व मिले, यह आशा लेकर आये हैं।।
चरणों में अर्घ्य चढ़ा करके..... नवनिद्धि ऋद्धि पा जायें।।
गणधर की.....

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–स्रग्विणी छंद–

नाथ पदवंज में शांतिधारा करूँ।
विश्व में शांति होवे यही कामना।।
आधि सब दूर हों चित्त में शांति हो।
भक्ति से प्राप्त हो शांति आत्यंतिकी।।1।।

शांतये शांतिधारा।

नाथ के गुण सुमन आज चुन के लिये।
विश्व में यश सुरभि फैलती है प्रभो!।।
पुष्प अंजलि समर्पण करूँ प्रेम से।
पुण्य संपत्ति पाऊँ सुयश वृद्धि हो।।2।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जयमाला

धुन– नागिन-मेरा मन डोले.....

जय जय गणधर, गुण ऋद्धीश्वर, हम गायें तुम जयमाल को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।
नग्न दिगम्बर वेष धार के, पिच्छी कमंडलु धारा।
मूलोत्तर गुण अगणित उत्तम, धार के स्वात्म संवारा।।प्रभू जी.।।
पर्वत पर चढ़, निज में अति दृढ़, नित ध्याते आतमराम को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।1।।

ग्रीष्म ऋतू में पर्वत ऊपर, वर्षा में तरु नीचे।
शीतकाल में नदी किनारे, आत्मध्यान में तिष्ठे।।प्रभू जी.।।
पद्मासन से, खड्गासन से, ध्यावें पहने गुणमाल को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।2।।

तीर्थंकर की दिव्यध्वनी सुन, द्वादशांग में गूंथें।
भव्य असंख्यों को संबोधें, चतुर्गती से छूटें।।प्रभू जी.।।
निज रागद्वेष, हरकर अशेष, नित चखते साम्यरसाल को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।3।।

सूरी के छत्तीस मूलगुण, उपाध्याय के पच्चिस।
साधू के अट्ठाइस मानें, तीनों में ये निश्चित।।प्रभू जी.।।
गुरु गणधर के, सब गुण चमकें, इनसे हैं मालामाल वो,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।4।।

दर्शमोह का मूलनाश कर, क्षायिक सम्यग्दृष्टी।
छठे सातवें गुणस्थान में, करें धर्म की वृष्टी।।प्रभू जी.।।
श्रेणी पे चढ़े, चउ घाति हने, फिर पाते केवलज्ञान को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।5।।

मोक्षमार्ग में विघ्न असंख्ये, किस विध मार्ग सरल हो।
गणधर गुरु की पूजा करते, सर्व विघ्न निष्फल हों।।प्रभू जी.।।
गुरु भक्ती से, सब पाप नशें, सब कार्य सिद्धि तत्काल हो,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।6।।

बहुविध रोग शोक दुख दारिद, मानस ताप असंख्ये।
इष्टवियोग अनिष्ट योग के, आर्तध्यान दुखकंदे।।प्रभू जी.।।
गुरुवंदन से, अभिनंदन से, नश जाते दुख दुर्वार जो,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।7।।

गणधर गुरु के सर्व ऋद्धियाँ, प्रगट हुईं श्रुत गायें।,
अन्य तपस्वी ऋषियों के भी, कतिपय ऋद्धि कहायें।।प्रभू जी.।।
रस त्याग करें, रस ऋद्धि वरें, ये करें स्वपर कल्याण को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।8।।

उग्र उग्र तप करके साधू, दीप्ततपो ऋद्धीयुत।
नहिं आहार करें फिर भी ये, काय दीप्ति वृद्धीयुत।। प्रभू जी.।।
इन चरण नमें, भव में न भ्रमें, पा लेते निज गुणमाल को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।9।।

वीरप्रभू के समवसरण में, गौतम ब्राह्मण आये।
तत्क्षण मुनिदीक्षा ले करके, गणधर प्रथम कहाये।। प्रभू जी.।।
जिन भक्ती से, वर मंत्र रचे, अड़तालिस ऋद्धीमान को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।10।।

हे भगवन् हम शरण में आये, एक याचना पूरो।
केवल 'ज्ञानमती' बस एकहि, ऋद्धी दे यम चूरो।।प्रभू जी.।।
कर जोड़ खड़े, तुम चरण पड़े, दे दो रत्नत्रय माल को,
वसु द्रव्य सजाकर लाये हैं।।11।।

–दोहा–

अड़तालिस गणधर वलय, मंत्र नमूँ तिहुंकाल।
श्री गणेश गुरुदेव को, नमूँ नमूँ नतभाल।।12।।

ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय ह्रौं ह्रौं नमः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–गीताछंद–

जो भव्यजन गुरुभक्ति से, 'गणधरवलय' पूजा करें।
सब रोग शोक दरिद्र संकट, मानसिक पीड़ा हरें।।
दीर्घायु स्वास्थ्य सुकीर्ति वैभव, सौख्य संपति विस्तरें।
रवि 'ज्ञानमति' के उदय से जन, मन कमल विकसित करें।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।



षट्खण्डागम पूजा

रचयित्री–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

–स्थापना (शंभु छंद)–

जिनशासन का प्राचीन ग्रंथ, षट्खंडागम माना जाता।
प्रभु महावीर की दिव्यध्वनि से, है इसका सीधा नाता।।
जब द्वादशांग का ज्ञान धरा पर, विस्मृत होने वाला था।
तब पुष्पदंत अरु भूतबली ने, आगम यह रच डाला था।।1।।

दोहा– **षट्खंडागम ग्रंथ की, पूजन करूँ महान।**
मन में श्रुत को धार कर, पा जाऊँ श्रुतज्ञान।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

–अष्टक –

(तर्ज–मैं चंदन बनकर.....)

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
ज्ञानामृत पीने से, भव बाधा नशती है।
हम जल की झारी लाए, त्रयधारा करने को।।हम.।।1।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
चन्दन की शीतलता तो, कुछ क्षण ही रहती है।
शाश्वत शीतलता हेतु, श्रुतपूजन कर लूँ मैं।।हम.।।2।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
श्रुतवारिधि में रमने से, अक्षय पद मिलता है।
हम अक्षत लेकर आए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।3।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
स्वाध्याय परमतप द्वारा, विषयाशा नशती है।
हम पुष्पों को ले आए, पुष्पांजलि करने को।।हम.।।4।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
ज्ञानामृत का आस्वादन, ही सच्चा भोजन है।
नैवेद्य थाल ले आए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।5।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
सम्यग्दर्शन का दीपक, मन का मिथ्यात्व भगाता।
इक दीप जलाकर लाए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।6।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धांतिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
कर्मों की धूप जलाऊँ, निज ध्यान की अग्नि में।
हम धूप सुगंधित लाए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।7।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
फल के स्वादों में फँसकर, नहिं मुक्ति सुफल को पाया।
अब थाल फलों का लाए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।8।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
कोमल मृदु वस्त्रों द्वारा, निज तन को सदा ढका है।
अब वस्त्र बनाकर लाए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।9।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
जिनवाणी के अध्ययन से, इक दिन अनर्घ्य पद मिलता।
''चंदना'' अर्घ्य ले आए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।10।।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

षट्खंडागम ग्रंथ के, सम्मुख कर जलधार।
ज्ञान और चारित्र से, करूँ भवाम्बुधि पार।।10।।
शान्तये शांतिधारा।

विविध पुष्प की वाटिका, से पुष्पों को लाय।
पुष्पांजलि अर्पण करूँ, श्रुत समुद्र के मांहि।।11।।
दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

–शंभु छंद–

पहला है जीवस्थान खण्ड, छह पुस्तक की टीका इसमें।
दो सहस तीन सौ पिचहत्तर, सूत्रों का सार भरा इसमें।।
अनुयोग आठ नव चूलिकाओं, में सत्प्ररूपणा आदि कथन।
यह ज्ञान मुझे भी मिल जावे, इस हेतु करूँ श्रुत का अर्चन।।1।।
ॐ ह्रीं अष्टअनुयोगनवचूलिकासमन्वितजीवस्थाननाम-प्रथमखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम का दुतिय खण्ड, है क्षुद्रकबंध कहा जाता।
पन्द्रह सौ चौरानवे सूत्र से, सहित ग्रंथ यह कहलाता।।
सप्तम पुस्तक में है निबद्ध, यह बंध का प्रकरण बतलाता।
इस श्रुत का अर्चन करूँ कर्म, ज्ञानावरणी तब नश जाता।।2।।
ॐ ह्रीं कर्मबंधप्रकरणसमन्वितक्षुद्रकबंधनामद्वितीय-खण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है तृतियबंधस्वामित्वविचय, का खण्ड आठवीं पुस्तक में।
त्रय शतक व चौबिस सूत्रों के, द्वारा सिद्धान्त कथन इसमें।।
जो मन वच तन की शुद्धि सहित, इस आगम का अध्ययन करें।
वे कर्मबंध से छुट जाते, हम अर्घ्य चढ़ाकर नमन करें।।3।।
ॐ ह्रीं कर्मबंधादिसिद्धान्तकथनसमन्वितबंधस्वामित्व-विचयनामतृतीयखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वेदनाखण्ड नामक चतुर्थ है, खण्ड चार पुस्तक निबद्ध।
नौ से बारह तक चारों में, पन्द्रह सौ चौदह सूत्र बद्ध।।
इन शास्त्रों की पूजन से मन का, कर्म असाता नश जाता।
गौतमगणधर विरचित मंगल-सूत्रों की है इसमें गाथा।।4।।
ॐ ह्रीं ऋद्ध्यादिवर्णनसमन्वितवेदनाखण्डनामचतुर्थ-खण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम का पंचम है, वर्गणा खण्ड आचार्य ग्रथित।
हैं एक सहस तेईस सूत्र, तेरह से सोलह तक पुस्तक।।
धरसेनसूरि सम गिरि से गिरती, गंगा मानो प्रगट हुई।
श्री पुष्पदंत अरु भूतबली के, अन्तस्तल से उदित हुई।।5।।
ॐ ह्रीं गणितादिनानाविषयसमन्वितवर्गणाखण्डनाम-पंचमखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम के छठे खण्ड में, महाबंध का नाम सुना।
है महाधवल टीका उस पर, श्रीवीरसेनस्वामी ने रचा।।
इस तरह बना षट्खण्डागम, महावीर दिव्यध्वनि अंश कहा।
ये सूत्र ग्रंथ कहलाते हैं, इनकी पूजन से सौख्य महा।।6।।
ॐ ह्रीं महाधवल टीकासमन्वितमहाबंधनामषष्ठखण्ड-जिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पुष्पदंत अरु भूतबली, गुरु की कृति षट्खण्डागम है।
नौ हजार सूत्रों से युत, इस युग का यह श्रुत अनुपम है।।
बानवे सहस्र श्लोकों प्रमाण, टीका भी इसकी लिखी गई।
श्रीवीरसेन स्वामी कृत धवला, टीका को मैं जजूँ यहीं।।7।।
ॐ ह्रीं धवलामहाधवलाटीकासमन्वित षट्खंडागम जिनागमाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीगुणधर भट्टारक विरचित, है कषायप्राभृत ग्रंथ कहा।
जयधवला टीका संयुत सोलह, पुस्तक में उपलब्ध यहाँ।।
है द्वादशांग का पूर्ण सार, इन सब ग्रंथों में भरा हुआ।
इनके अतिरिक्त न सार कोई, अर्चन का मन इसलिए हुआ।।8।
ॐ ह्रीं जयधवला टीकासमन्वितकषायप्राभृत जिनागमाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम के सूत्रों पर, गणिनी श्री ज्ञानमती जी ने।
संस्कृत टीका सिद्धान्तसुचिन्तामणि रचकर दी इस युग में।।
श्रीवीरसेन आचार्य सदृश यह, टीका भी निधि इस युग की।
चिन्तामणि सम फल दात्री उस, टीकायुत ग्रंथ को करूँ नती।।9।।
ॐ ह्रीं सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वितषट्खण्डागम जिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य मंत्र –ॐ ह्रीं सिद्धान्तज्ञानप्राप्तये षट्खण्डागम जिनागमाय नमः।

जयमाला

–शेर छंद–

जैवन्त हो महावीर दिव्यध्वनि जगत में।
जैवन्त हो गौतम गणीश ज्ञान जगत में।।
जैवन्त हो उन रचित द्वादशांग जगत में।
जैवन्त हो उपलब्ध शास्त्र अंश जगत में।।1।।

गौतम ने अपना ज्ञान फिर लोहार्य को दिया।
लोहार्य स्वामी से वो जम्बूस्वामी ने लिया।।
क्रमबद्ध ये त्रय केवली निर्वाण को गये।
फिर पाँच मुनी चौदह पूर्व धारी हो गये।।2।।

नंतर विशाखाचार्य आदि ग्यारह मुनि हुए।
एकादशांग पूर्व दश के पूर्ण ज्ञानी थे।।
अरु शेष चार पूर्व का इक देश ज्ञान पा।
परिपाटी क्रम से उसको जगत में भी दिया था।।3।।

नक्षत्राचार्य आदि पाँच मुनियों ने क्रम से।
पाया था वही ज्ञान एक देश अंश में।।
नंतर सुभद्र आदि चार मुनियों ने पाया।
इक अंग ज्ञान देश अंश ज्ञान भी पाया।।4।।

यह ज्ञान पुनः क्रम से श्रीधरसेन को मिला।
अतएव वर्तमान में श्रुत का कमल खिला।।
इस श्रुत की कहानी सुन रोमांच होता है।
शिष्यों के समर्पण का परिज्ञान होता है।।5।।

निज आयु अल्प जान दो मुनियों को बुलाया।
निज ज्ञान उन्हें सौंप मन में हर्ष समाया।।
मुनिराज नर वाहन तथा सुबुद्धि ने सोचा।
गुरु ज्ञानवाटिका की मैं समृद्धि करूँगा।।6।।

तब संघ चतुर्विध ने श्रुत की अर्चना कर ली।
देवों ने भी आकर गुरु की वंदना कर ली।।
मुनिवर सुबुद्धि जी की दंतपंक्ति बनाई।
कह पुष्पदंत उनकी महापूजा रचाई।।7।।

गुजरात अंकलेश्वर में चौमासा रचाया।
फिर ज्ञान को लिपिबद्ध करना मन में था आया।
मुनिवर सुबुद्धि जी ने सत्प्ररूपणा रची।
मुनिराज नरवाहन के पास उसे भेज दी।।8।।

आगे उन्होंने द्रव्यप्रमाणानुगम आदी।
षट्खण्डों में छह सहस सूत्रों की भी रचना की।
फिर ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी की तिथि आ गई।
आगम की रचना पूर्ण कर संतुष्टि छा गई।।9।।

मुनिराज नरवाहन को पूजा भूत सुरों ने।
बलिविधि के साथ भूतबली कहा उन्होंने।।
वे इस प्रकार पुष्पदंत भूतबलि बने।
षट्खंड जिनागम को जीत चक्रपति बने।।10।।

सिद्धांतचक्रवर्ती थे धरसेन जी सचमुच।
श्री पुष्पदंत भूतबली में भी थे ये गुण।।
पश्चात्वर्ति मुनि भी उनके अंशरूप हैं।
जिनको मिला सिद्धान्त ज्ञान साररूप है।।11।।

त्रयखण्ड पे परिकर्म टीका कुन्दकुन्द की।
थी पद्धति द्वितीय टीका शामकुण्ड की।।
श्रीतुम्बुलूर सूरि ने टीका की पंचिका।
स्वामी समन्तभद्र ने चौथी रची टीका।।12।।

श्री बप्पदेव गुरु ने लिखी व्याख्याप्रज्ञप्ती।
धवलादि टीकाओं के कर्ता वीरसेन जी।।
इन छह में मात्र धवला उपलब्ध आज है।
पाँचों ही शेष टीका के नाम मात्र हैं।।13।।

सदि बीसवीं में भी मिले सिद्धान्त ग्रंथ ये।
चारित्रचक्रवर्ति शांतिसिंधु कृपा से।।
इन सबको ताम्रपत्र पे उत्कीर्ण कराया।
विद्वानों से टीकाओं का अनुवाद कराया।।14।।

संस्कृत तथा प्राकृत में मिश्र है धवल टीका।
अतएव मणिप्रवालन्याय युक्त है टीका।।
इसका ही ले आधार ज्ञानमती मात ने।
टीका रची सिद्धान्तचिन्तामणि नाम से।।15।।

इन सबकी टीकाओं को बार-बार मैं नमूँ।
षट्खण्ड जिनागम में मूलग्रंथ को प्रणमूँ।।
मुझको भी इन्हें पढ़ने की शक्ति प्राप्त हो।
माता सरस्वती मुझे तव भक्ति प्राप्त हो।।16।।

षट्खण्ड धरा जीत चक्रवर्ति ज्यों बनें।
षट्खंडजिनागम को भी त्यों ही जो पढ़ें।।
सिद्धान्तचक्रवर्ति वे हों 'चन्दनामती'।
पूर्णार्घ्य चढ़ाऊँ करूँ मैं वंदना-भक्ती।।17।।

–दोहा –

षट्खण्डागम ग्रंथ को, वंदन बारम्बार।
अर्घ्य समर्पण कर लहूँ, जिनवाणी का सार।।18।।

ॐ ह्रीं षट्खण्डागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

–सोरठा –

जो पूजें चितलाय, षट्खंडागम शास्त्र को।
निज अज्ञान नशाय, वे पावें श्रुतसार को।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः।।

पुण्यास्रव पूजा

–अथ स्थापना (शंभु छंद) –

अर्हंत जिनेश्वर सांप्रायिक, आस्रव से रहित पूर्ण ज्ञानी।
ये पुण्य के फल हैं पुण्यराशि, पुण्यास्रव के कारण ज्ञानी।।
हम इनका आह्वानन करके, भक्ती से अर्चा करते हैं।
इनकी पूजन से पापास्रव, नहिं हो यह वांछा करते हैं।।1।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वर! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वर! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वर! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथ अष्टक - शंभु छंद –

सरयू नदि का प्रासुक जल ले, कंचन झारी भर लाये हैं।
जिनवर पद में त्रयधारा कर, भव तृषा बुझाने आये हैं।।
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।1।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चंदन केशर संग, घिसकर कंचनद्रव सम लाये।
जिनवर पद चर्चत वात पित्त, कफ जनित रोग सब नश जायें।।
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।2।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती सम उज्ज्वल शालि धुले, जिन सन्मुख पुंज चढ़ाते हैं।
सब द्रव्य भाव मल धुल जावें, शुद्धात्म भावना भाते हैं।।
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।3।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चंपा बेला अरविंद वकुल, सुरभित पुष्पों को लाये हैं।
निज आत्म गुणों की सुरभि हेतु, जिनचरणों पुष्प चढ़ाये हैं।।
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।4।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरणपोली लाडू बरफी, सेमई खीर ले आये हैं।
सब उदर व्याधि प्रशमन हेतू, प्रभु सन्मुख चरू चढ़ाये हैं॥
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।5।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृत पूरित कंचन दीप लिये, जगमग ज्योती सब ध्वांत हरे
आरती करें जिनवर सन्मुख, अंतर में ज्ञान प्रकाश भरे।।
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।6।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध सुगंधित धूप यहाँ बस धूप घड़ों में खेते ही।
सब अशुभ कर्म जल जाते हैं, मन देह स्वस्थता प्रगटे ही॥
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।7।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

एला केला अंगूर आम, फल मधुर चढ़ाते हैं प्रभु को।
सब ईप्सित फल जाते तत्क्षण, रत्नत्रय फल भी दो मुझको।।
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।8।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत माला नेवज, वर दीप धूप फल अर्घ्य लिये।
प्रभु चरणों करें समर्पण हम, मिल जाय स्वात्मपद इसीलिए।।
पापास्रव पुण्यास्रव विरहित, ईर्यापथ आस्रव के स्वामी।
पुण्यास्रव सातिशयी होवे, तुम पूजत हों शिवपथगामी।।9।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहित-अर्हज्जिनेश्वराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

अर्हत्प्रभु के चरण में, धारा तीन करंत।
मुझमें त्रिभुवन में प्रभो! कीजे शांति तुरंत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

बेला हरसिंगार ले, पुष्पांजलि विकिरंत।
मेरा तन मन स्वस्थ हो, समकितनिधि विलसंत।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य - **ॐ ह्रीं कर्मास्रवरहितअनंतकेवलिभ्यो नमः।**

जयमाला

–दोहा–

तीर्थंकर जिनकेवली, आस्रव बंध विमुक्त।
गाऊँ तुम गुणमालिका, मोक्ष तत्त्व से युक्त।।1।।

–गीता छंद–

जय जय जिनेश्वरदेव तीर्थंकर प्रभू जिनकेवली।
जय सिद्ध परमेष्ठी सकल आस्रवरहित जिनकेवली।।
इसकी करूँ मैं वंदना कर जोड़ नाऊं शीश को।
इनकी करूँ मैं अर्चना शत-शत झुकाऊँ शीश को।।2।।

साता करम ही आस्रवे, ईर्यापथास्रव नाम ही।
हो केवली के इक समय, झड़ जाय नहिं हो बंध भी।।
आस्रव कहा जो सांपरायिक सर्व जीवों में यही।
ये कर्म आठों बांधता इससे भ्रमण जग में सही।।3।।

ये तीव्र मंद व ज्ञात अरु अज्ञात भावों से कहा।
निज शक्ति के कम या अधिक से भेद नाना ले रहा।।
मिथ्यात्व पण पण अविरती, पंद्रह प्रमाद त्रियोग हैं।
चारों कषायों से सहित भावास्रवों के भेद हैं।।4।।

आठों करम में दर्श मोहनि चरित मोहनि दो प्रमुख।
सम्यक्त्व औ चारित्र को नाशें अतः ये दुःखप्रद।।

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्ष के कारण कहे।
अतएव दर्शनमोहनी हेतू से हम बचना चहें।।5।।

जिनकेवली को रोग हो आहार भी लेकर जियें।
श्रुत में कहा है मांस भक्षण साधुगण निर्लज्ज हैं।।
जिनधर्म में कुछ गुण नहीं सुर देविगण बलि मांगते।
इस विधि कहें जो मूढ़ जन वे दर्शमोहनि बांधते।।6।।

जो केवली श्रुत संघ को जिनधर्म सुर को दोष दें।
वे मोहनी दर्शन अशुभ को बांध कर दुःख भोगते।।
ये सब असत अपवाद हैं हे नाथ! मैं इनसे बचूँ।
सम्यक्त्व निधि रक्षित करूँ हे नाथ! भव दुख से बचूँ।।7।।

क्रोधादि अशुभ कषाय का उद्रेक जब अति तीव्र हो।
चारित्र मोहनि बंध हो नहिं चरित धारण शक्ति हो।।
चारित्र मोह अनादि से हे नाथ! निर्बल कर रहा।
मेरी अनंती आत्म शक्ती छीनकर दुःख दे रहा।।8।।

करके कृपा हे नाथ! अब चारित्रमोह निवारिये।
चारित्र संयम पूर्ण हो भवसिंधु से अब तारिये।।
प्रभु आप ही पतवार हो मुझ नाव भवदधि में फंसी।
अब हाथ का अवलंब दें ना देर कीजे मैं दुखी।।9।।

इन आठ कर्मों में अधिक बलवान एकहि मोह है।
इसके अट्ठाइस भेद हैं बहु भेद सर्व असंख्य हैं।।
ये मोहनी ही स्थिति अनुभाग बंध करे सदा।
ये मोहनी संसार का है मूल कारण दुःखदा।।10।।

सब आस्रवों के भेद इक सौ आठ पापास्रव करें।
इस हेतु इक सौ आठ मणि की जपसरा से जप करें।।
तुम नाम मंत्रों को सदा जो भव्य जपते भाव से।
वे पाप आस्रव रोककर नित पुण्य संचें चाव से।।11।।

व्रत पाँच समिती पाँच गुप्ती तीन दशविध धर्म है।
बारह अनूप्रेक्षा परीषह जय कहे बाईस हैं।।
ये कर्म आस्रव रोकते संवर करें मुनिजन धरें।
हे नाथ! इनको दीजिए हम कर्म आस्रव परिहरें।।12।।

जिनभक्ति पूजा मंत्र से बहु पुण्य संपादन करें।
जिनभक्ति से बलभद्र चक्री तीर्थकर पद भी धरें।।
जिनभक्ति से सब ऋद्धि सिद्धी पाय शिवललना वरें।
जिनभक्ति से ही भक्त निज आनंद अमृत रस भरें।।13।।

हे नाथ! ऐसी शक्ति दो मैं सर्व ममता छोड़ दूँ।
निज देह से भी होउं निर्मम सब परिग्रह छोड़ दूँ।।
निज आत्म से ममता करूँ निज आत्म की चर्चा करूँ।
निज आत्म में तल्लीन हो परमात्म की अर्चा करूँ।।14।।

ऐसा समय तुरतहिं मिले, निजध्यान में सुस्थिर बनूँ।
उपसर्ग परिषह हों भले, निजतत्त्व में ही थिर बनूँ।।
निज आत्म अनुभव रस पियूँ, परमात्मपद की प्राप्ति हो।
निज 'ज्ञानमति' ज्योती दिपे, जो तीनलोक प्रकाशि हो।।15।।

–दोहा –

जब तक नहिं परमात्मपद, तुम पद में मन लीन।
एक घड़ी भी नहिं हटे, बनूं आत्म लवलीन।।16।।

ॐ ह्रीं सर्वास्रवविरहितअर्हज्जिनेश्वराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जो भव्य पुण्यास्रव की पूजा सतत करें।
वे पाप आस्रव का निरोध युक्ति से करें।।
संपूर्ण पुण्यास्रव मिले निज शक्ति को धरें।
कैवल्य 'ज्ञानमती' सहित मुक्ति को वरें।।

।।इत्याशीर्वादः।।

चौंसठ ऋद्धि पूजा

अथ स्थापना-गीता छंद

चौबीस तीर्थंकर जगत में सर्व का मंगल करें।
गुणरत्न गुरु गुण ऋद्धिधर नित सर्व मंगल विस्तरें।।
गुणरत्न चौंसठ ऋद्धियाँ मंगल करें निज सुख भरें।
मैं पूजहूँ आह्वान कर मेरे अमंगल दुख हरें।।1।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक-वसंततिलका छंद

रेवा नदी जल भराकर शुद्ध लाऊं।
संपूर्ण कर्ममल दूर करो चढ़ाऊँ।।
बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।1।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

काश्मीरि केशर घिसूँ भरवेऊ कटोरी।
चर्चूं मिटे हृदय ताप सुआश पूरी।।
बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।2।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती समान धवलाक्षत थाल में हैं।
धारूँ सुपुंज जिन सौख्य अखंड हो हैं।।
बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।3।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बेला जुही कमल फूल खिले खिले हैं।
पूजूँ सदा सुयश सौख्य मिले भले हैं।।
बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।4।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लड्डू पुआ घृत भरे पकवान लाऊँ।
क्षुद्र व्याधि नष्ट करने हित मैं चढ़ाऊँ।।

बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।5।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर ज्योति जलती करती उजाला।
ज्ञानैक ज्योति भरती भ्रमतम निकाला।।
बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।6।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

खेऊँ सुगंध वर धूप सुअग्नि संगी।
दुष्टाष्ट कर्म जलते करते सुगंधी।।
बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।7।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

केला अनार फल आम्र भराय थाली।
अर्पूं तुम्हें नहिं मनोरथ जाय खाली।।
बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।8।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीरादि अर्घ कर स्वर्णिम पुष्प लेऊँ।
अर्घावतार करके निज रत्न लेऊँ।।
बुद्ध्यादि चउसठ महागुण पूर्ण ऋद्धी।
पूजूँ मिले नवनिधी सब ऋद्धि सिद्धी।।9।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

– दोहा –

चौंसठ ऋद्धि समूह को, जलधारा से नित्य।
पूजत ही शांती मिले, चहुँसंघ में भी इत्य।।10।।

शांतये शांतिधारा।

वकुल कमल बेला कुसुम, सुरभित हरसिंगार।
पुष्पांजलि से पूजते, मिले सौख्य भंडार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य - ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धिभ्यो नमः।

जयमाला

– सोरठा –

ऋद्धि उन्हीं के होय, यथाजात मुद्रा धरें।
नमूँ नमूँ नत होय, जिनमुद्रा की शक्ति हो।।1।।

–स्रग्विणी छंद –

धन्य हैं धन्य हैं धन्य हैं ऋद्धियाँ।
वंदते ही फलें ये सभी सिद्धियाँ।।
मैं नमूँ मैं नमूँ सर्व ऋद्धीधरा।
ऋद्धियों को नमूँ मैं नमूँ गणधरा।।2।।

बुद्धि ऋद्धी कही हैं अठारा विधा।
विक्रिया ऋद्धियाँ हैं सुग्यारा विधा।।
है क्रियाचारणा ऋद्धि नौभेद में।
ऋद्धि तप सात विध दीप्त तप आदि में।।3।।

ऋद्धि बल तीन विध शक्ति वर्धन करे।
औषधी आठ विध स्वास्थ्य वर्धन करे।।
ऋद्धि रस षट्विधा क्षीर अमृत स्रवे।
ऋद्धि अक्षीण दो भेद अक्षय धरें।।4।।

आठ विध ये महा ऋद्धि चौंसठ विधा।
भेद संख्यात होते सु अंतर्गता।।
बुद्धि ऋद्धी जजें बुद्धि अतिशय धरें।
विक्रिया पूजते विक्रिया बहु करें।।5।।

चारणी ऋद्धि आकाशगामी करे।
पुष्प जल पर चलें जीव भी ना मरें।।
दीप्ततम आदि ऋद्धी धरें जो मुनी।
कांति आहार बिन भी रहे उन घनी।।6।।

तप्ततप से कभी भी न नीहार हो।
शक्ति ऐसी जगत् सौख्य करतार जो।।
क्षीरस्रावी मधुस्रावी अमृतस्रवी।
इन वचो भी बने क्षीर अमृतस्रवी।।7।।

औषधी ऋद्धि से रुग्ण नीरोग हों।
साधु तनवायु से विष रहित स्वस्थ हों।।
ऋद्धि अक्षीण से अन्न अक्षय करें।
पूजते साधु को पुण्य अक्षय भरें।।8।।

– घत्ता –

जय जय सब ऋद्धी, गुणमणिनिद्धी,
पूजत ही सुखसिद्धि करें।
जय ''ज्ञानमती'' धर, नमें मुनीश्वर,
निज शिवपद सुख शीघ्र भरें।।9।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिऋद्धीभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–चौबोल छंद–

जो भविजन श्रद्धा भक्ति से, चौंसठ ऋद्धी व्रत करते।
नवनिधि यश संपत्ति समृद्धी, अतुल सौख्य संपति भरते।।
पुनरपि मुनि बन तपश्चरण कर, सर्वऋद्धियाँ पूर्ण करें।
केवलज्ञानमती रवि किरणों, से अघतम निर्मूल करें।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

साधु परमेष्ठी पूजा (अट्ठाइस मूलगुण पूजा)

–गीता छंद–

जो नग्न मुद्रा धारते, दिग्वस्त्रधारी मान्य हैं।
निज मूलगुण उत्तरगुणों से युक्त पूज्य प्रधान हैं।।
सुर असुर मुकुटों को झुका कर अर्चते हैं भाव से।
मैं भी यहाँ आह्वान कर पूजूँ उन्हें अति चाव से।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टक-सोरठा

सिंधुनदी को नीर, बाहर का मल नाशता।
मिले भवोदधि तीर, जल से गुरुपद पूजिये।।1।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट गंध वर गंध, तन की ताप हरे सदा।
मनस्ताप क्षयहेतु, चंदन से गुरुपद जजों।।2।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ताफल सम धौत, अक्षत पुंज रचाइये।
आतम संपति हेतु, सर्वसाधु पद पूजिये।।3।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हरसिंगार सरोज, सुरभित ले अर्पण करूँ।
भवशर नाशन हेतु, गुरुपदपंकज पूजिये।।4।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लड्डू मोतीचूर, नानाविध पकवान से।
भूख व्याधिहर हेतु, चरु से गुरुपद पूजिए।।5।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृतभर दीपक ज्योति, बाह्य तिमिर नाशे सही।
अन्तर ज्योती हेतु, दीपक से पूजा करूँ।।6।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगुरु तगर वरधूप, अग्नि पात्र में खेइये।
अशुभ कर्मक्षय हेतु, साधु पदाम्बुज पूजिये।।7।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता द्राक्ष बदाम, एला केला फल भले।
सरस मोक्षफल हेतु, फल से गुरुपद पूजिये।।8।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन शाल्यादि, अष्ट द्रव्य ले थाल में।
फल सर्वोत्तम हेतु, अर्घ्य चढ़ा गुरु पद जजों।।9।।
ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर पदपंकेज, जग में शांतीकर सदा।
चउसंघ शांतीहेतु, शांतीधारा मैं करूँ।।10।।
शांतये शांतिधारा।

नानाविध के पुष्प, सुरभित करते दश दिशा।
सर्वसाधु पादाब्ज, पुष्पांजलि अर्पण करूँ।।11।।
दिव्य पुष्पांजलिः।

जयमाला

–नाराच छंद–

नमूँ नमूँ मुनीश! आप पाद पद्म भक्ति से।
भवीक वृंद आप ध्याय कर्म पंक धोवते।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिए।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिए।।1।।

अठाइसों हि मूलगुण धरें दयानिधान हैं।
अठारहों सहस्र शील धारतें महान हैं।।
चुरासि लाख उत्तरी गुणों कि आप खान हैं।
समस्त योग साधते अनेक रिद्धिमान हैं।।2।।

समस्त अंगपूर्व ज्ञान सिंधु में नहावते।
निजात्म सौख्य अमृतैक पूर स्वाद पावते।।
अनेक विध तपश्चरण करो न खेद है तुम्हें।
अनन्त ज्ञानदर्श वीर्य प्राप्ति कामना तुम्हें।।3।।

सुतीन रत्न से महान आप रत्न खान हैं।
अनेक रिद्धि सिद्धि से सनाथ पुण्यवान हैं।।
परीषहादि आप से टरें न पास आवते।
तुम्हीं समर्थ काम मोह मृत्युमल्ल मारते।।4।।

विहार हो जहाँ-जहाँ सु आप तिष्ठते जहाँ।
सुभिक्ष क्षेम हो सदैव ईति भीति ना वहाँ।।
सुधन्य धन्य पुण्य भूमि आपसे हि तीर्थ हो।
सुरेन्द्र चक्रवर्ति वंद्य भूमि भी पवित्र हो।।5।।

जयो-जयो मुनीश! आप भक्ति मोह को हरे।
जयो मुनीश! आप भक्त आत्मशक्ति को धरें।।
अपूर्व मोक्षमार्ग युक्ति पाय मुक्ति को वरें।
पुनर्भवों से छूटके सु पंचमी गती धरें।।6।।

दोहा – नग्न दिगम्बर साधुगण, सर्वजगत् में मान्य।
नमूँ नमूँ तुमको सदा, मिले 'ज्ञानमति' साम्य।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिने जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

सोरठा –द्विविध मोक्षपथ मूल, अट्ठाइस हैं मूलगुण।
जजत मिले भवकूल, इन गुणधारी साधु को।।1।।

।। इत्याशीर्वादः।।

नंदीश्वर द्वीप पूजा

–अथ स्थापना (गीता छंद)–

सिद्धांत सिद्ध अनादि अनिधन, द्वीप नंदीश्वर कहा।
मुनि वंद्य सुरनर पूज्य अष्टम द्वीप अतिशययुत महा।।
वहाँ पर चतुर्दिक शाश्वते बावन जिनालय शोभते।
प्रत्येक में जिनबिंब इक सौ आठ सुर मन मोहते।।1।।

– दोहा –

जिन प्रतिमा के जिनभवन, परमशांति के धाम।
आह्वानन कर पूजते, मिले आत्मविश्राम।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिंबसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिंबसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिंबसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथ अष्टक–

क्षीरोदधि का उज्ज्वल जल ले, कंचन झारी भर लाया हूँ।
जिनवर प्रतिमा के चरणों में, त्रयधारा देने आया हूँ।।
कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयज चंदन कर्पूर मिला, भर कनक कटोरी लाया हूँ।
जिनवर प्रतिमा के चरणों में, चर्चन करके हर्षाया हूँ।।
कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोतीसम उज्ज्वल शालि पुंज, ले पुंज चढ़ाने आया हूँ।
निज का अक्षय पद शीघ्र मिले, बस ये ही इच्छा लाया हूँ।।
कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मचकुंद कमल बेला गुलाब, बहु सुरभित पुष्पों को लाया।
निजगुण सुगंधि फैले जग में, चरणों में रखकर हर्षाया।।
कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरणपोली पेड़ा बरफी, पकवान बनाकर लाया हूँ।
सब उदर व्याधि के नाश हेतु, तव अर्पण कर सुख पाया हूँ।।
कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक ज्योती के जलते ही, सब अंधकार नश जाता है।
दीपक से तव पूजा करके, सज्ज्ञान उजेला आता है।।
कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध धूप धूपायन में, खेवूं मैं कर्म जला डालूँ।
यश सौरभ से दशदिश महके, निजआत्म गुणों को मैं पालूँ।।

कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लीची अंगूर अनार आम, बहु सरस फलों को लाया हूँ।
तव चरणों में अर्पण करके, शिवफल के हित ललचाया हूँ।।
कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत पुष्प चरू, वर दीप धूप फल लाया हूँ।
तव चरणों में यह अर्घ, समर्पण करके अति हर्षाया हूँ।।
कंचन थाली में चंदन से, बावन जिनमंदिर की रचना।
बावन पुंजों को धर कर मैं, पूजूँ प्रभु लेकर तव शरणा।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

– सोरठा –

अमल वापिका नीर, जिनपद धारा मैं करूँ।
शांति करो जिनराज, मेरे को सबको सदा।।10।।

शांतये शांतिधारा।

कमल केतकी फूल, हर्षित मन से लायके।
जिनवर चरण चढ़ाय, सर्वसौख्य संपति बढ़े।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य – **ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो नमः।**

जयमाला

–दोहा –

नंदीश्वरवरद्वीप में, अकृत्रिम जिन सद्म।
उनमें जिनप्रतिमा अमल, नमूँ नमूँ पदपद्म।।1।।

–शंभु छंद –

जय जय नंदीश्वर पर्व, जगत् में महापर्व कहलाता है।
जय जय बावन जिनमंदिर से, इंद्रों के मन को भाता है।।
जय जय जय रत्नमयी प्रतिमा, शाश्वत हैं आदि अंत विरहित।
जय जय प्रत्येक मंदिरों में, इक सौ अठ इकसौ आठ प्रमित।।2।।

चारों दिश में एकेक कहे, अंजनगिरि अतिशय ऊँचे हैं।
इनके चारों जिनमंदिर को, पूजत ही दुःख से छूटे हैं।।
अंजनगिरि के चारों दिश में, बावड़ियाँ एक एक सोहें।
इन सोलह बावड़ियों के मधि, दधिमुख पर्वत सुरमन मोहें।।3।।

इनके सोलह जिनमंदिर की, हम नित्य वंदना करते हैं।
जिनप्रतिमाओं की अर्चाकर, निज आत्म संपदा भरते हैं।।
सोलह बावड़ियों के बाहर, दो कोणों पर दो रतिकर हैं।
इन बत्तिस रतिकर पर्वत पर, शाश्वत जिनमंदिर रुचिकर हैं।।4।।

इन बत्तिस रतिकर मंदिर के, जिनबिंबों को मैं नित पूजूँ।
चउ सोलह बत्तिस के मिलकर, बावन जिनगृह सबको पूजूँ।।
अंजनगिरि नीलमणी सम हैं, दधिमुख नग दधिसम श्वेत कहे।
रतिकर नग स्वर्णिम वर्ण धरें, ये शाश्वत पर्वत शोभ रहे।।5।।

प्रत्येक वर्ष में तीन बार, आष्टान्हिक पर्व मनाते हैं।
सुरगण नंदीश्वर में जाकर, पूजा अतिशायि रचाते हैं।।
हम वहाँ नहीं जा सकते हैं, अतएव यहीं से नमते हैं।
अर्चन परोक्ष से ही करके, भव भव के पातक हरते हैं।।6।।

चारणऋद्धी धर ऋषिगण भी, इन प्रतिमाओं को ध्याते हैं।
जिनवर के गुणमणि नित गाते, फिर भी नहिं तृप्ती पाते हैं।।
यद्यपि इनका परोक्ष वंदन, पूजन है तो भी फल देता।
भावों से भक्ती की महिमा, परिणाम विशुद्धी कर देता।।7।।

मुनिराज भाव से शुक्लध्यान, ध्याते शिवपुरश्री पा जाते।
तब भला परोक्ष भक्ति करके, क्यों नहीं महान पुण्य पाते।।
जिनप्रतिमा चिंतामणि पारस, जिनप्रतिमा कल्पवृक्ष सम हैं।
ये केवल ''ज्ञानमती'' देने, में भी तो अतिशय सक्षम हैं।।8।।

–दोहा –

नंदीश्वरवर द्वीप की, महिमा अपरंपार।
जो श्रद्धा से नित जजें, पावें सौख्य अपार।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपसंबंधिद्वापंचाशत्-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–गीताछंद –

जो भव्य आष्टान्हिक परब में, आठ दिन पूजा करें।
वरद्वीप नंदीश्वर जिनालय बिम्ब के गुण उच्चरें।।
वे सर्वसुखसंपत्ति ऋद्धी सिद्धि को भी पाएंगे।
सज्ज्ञानमति की गुणसुरभि को विश्व में फैलाएंगे।।10।।

।।इत्याशीर्वादः।।

जैनधर्म एवं भगवान ऋषभदेव

–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

नमः श्रीपुरुदेवाय, धर्मतीर्थप्रवर्तिने।
सर्वा विद्या-कला, यस्मा-दाविर्भूता महीतले।।1।।

जहाँ यह जीव संसरण करता है, चतुर्गति में परिभ्रमण करता है, उसका नाम ''संसार'' है। यह संसार ''लोक'' नाम से भी कहा जाता है–

''लोक्यन्ते'' अवलोक्यन्ते जीवादिषड्द्रव्याणि अस्मिन्निति लोकः''

जहाँ पर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य देखे जाते हैं वह लोक है। वह लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन है एवं स्वभाव से बना हुआ है, अर्थात् इसे किसी ने बनाया नहीं है।

श्री नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं–

लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुडो, सव्वागासवयवो णिच्चो[1]।।4।।

यह लोक तीन भागों में विभक्त है– अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। तीन लोक की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र 7 राजू है। लोक के तलभाग में चौड़ाई 7 राजू है, मध्यलोक तक इसकी ऊँचाई 7 राजू है तथा मध्यलोक से ऊपर सिद्धशिला तक ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई भी 7 राजू है। अधोलोक के तल भाग से घटते-घटते चौड़ाई मध्यलोक के पास 1 राजू रह गई है, आगे मध्यलोक में चौड़ाई बढ़ते हुए ऊपर ब्रह्मस्वर्ग तक $3-^{1/2}$ तक पाँच राजू हो गई है पुनः ऊपर घटते हुए $3-^{1/2}$ राजू तक तथा सिद्धशिला तक 1 राजू रह गई है अतः यह लोक पैर फैलाकर कमल पर हाथ रखकर खड़े हुए पुरूष के सदृश ''पुरुषाकार'' हो जाता है। शंका यह हो सकती है कि 14 राजू ऊँचे लोक में 7 राजू में अधोलोक एवं 7 राजू में ऊर्ध्वलोक है तो पुनः मध्यलोक को कितना हिस्सा मिला?

इसका समाधान यह है कि असंख्यातों योजनों का 1 राजू होता है और 14 राजू ऊँचे लोक में 7 राजू में नीचे नरक एवं 7 राजू में ऊपर स्वर्ग हैं। इन दोनों के मध्य में 1 लाख 40 हजार योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है। बस इसी सुमेरु प्रमाण ऊँचाई वाला मध्यलोक है जो कि ऊर्ध्वलोक का कुछ भाग है और वह राजू में ना कुछ के समान है अतएव 14 राजू में ऊँचाई में उसका वर्णन नहीं आया है।

मध्यलोक–यह मध्यलोक 1 राजू चौड़ा है। इस तीन लोक के बीच में 14 राजू ऊँची, एक राजू चौड़ी और एक राजू मोटी एक त्रसनाली है। त्रस जीव इसी में रहते हैं मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं।

इसमें सर्वप्रथम द्वीप का नाम जंबूद्वीप है।यह थाली के समान गोल है, एक लाख योजन अर्थात् (400000000) मील व्यास वाला है। इसको घेरकर 2 लाख योजन व्यास वाला लवणसमुद्र है। इसको घेरकर चार लाख योजन व्यास वाला धातकी खंड है। इसे घेरकर कालोदधि समुद्र है। इसे घेरकर पुष्करद्वीप है। इसी के ठीक बीच में मानुषोत्तर पर्वत है जो चूड़ी के समान आकार वाला है। यहीं तक जम्बूद्वीप, धातकीखंड द्वीप और आधा पुष्कर ये ढाई द्वीप माने जाते हैं। ऐसे ही एक-एक द्वीप को घेरकर एक-एक समुद्र होने से जितने द्वीप हैं उतने ही समुद्र हैं। जो कि पूर्व-पूर्व के द्वीप समुद्र में दूने-दूने विस्तार वाले हैं।

जम्बूद्वीप–जम्बूद्वीप के ठीक बीच में सुमेरु पर्वत है यह एक लाख योजन ऊँचा है। इसकी नींव चित्रा पृथ्वी के नीचे एक हजार योजन है और भूमि से ऊपर 99 हजार योजन है इसकी चूलिका 40 योजन ऊँची है।

इस गोलाकार द्वीप में दक्षिण से लेकर उत्तर तक पूर्व-पश्चिम लंबे ऐसे छह कुलपर्वत हैं–जिनके नाम हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रूक्मी और शिखरी हैं। इन पर्वतों से विभाजित सात क्षेत्र हैं–भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। एक-एक क्षेत्र में 2-2 नदियाँ ऐसे गंगा-सिंधु, रोहित्-रोहितास्या आदि 14 महानदियाँ हैं।

विदेहक्षेत्र–विदेह के बीच में सुमेरू पर्वत होने से उसके दक्षिण और उत्तर में देवकुरु और उत्तरकुरु, भोगभूमि हैं तथा पूर्व और पश्चिम में पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह हैं, पूर्व विदेह के मध्य में सीता नदी से दक्षिण और उत्तर में ऐसे दो भाग हो गये पुनः दक्षिण में चार वक्षार और तीन विभंगा नदी से आठ देश हो गये ऐसे ही उत्तर में आठ क्षेत्र हुए एवं पश्चिम विदेह में भी चार-चार वक्षार तथा तीन-तीन विभंगा नदियों से 8-8 क्षेत्र होने से कुल 32 विदेह क्षेत्र हो जाते हैं।

''एक-एक विदेह देश में 96 करोड़ ग्राम, 26 हजार नगर, 16 हजार खेट, 24 हजार खर्वट, 4 हजार मडंब, 48 हजार पत्तन, 99 हजार द्रोण, 14 हजार संवाह और 28 हजार दुर्गावटी हैं। एक-एक विदेह में एक-एक उपसमुद्र हैं, उन पर एक-एक टापू हैं। वहाँ 56 अंतरद्वीप, 26 हजार रत्नाकर और 700 कुक्षिवास हैं ये रत्नें के क्रय-विक्रय के स्थान हैं।''

170 कर्मभूमियाँ–जम्बूद्वीप में एक भरत, एक ऐरावत एवं बत्तीस विदेह क्षेत्र हैं तथा धातकी खंडद्वीप में पूर्वधातकी खंड और पश्चिम धातकीखंड एवं पुष्करार्धद्वीप में पूर्व पुष्करार्धद्वीप और पश्चिम पुष्करार्धद्वीप ऐसे दो-दो भाग हो गये हैं। इसमें विजय, अचल, मंदर और विद्युन्माली ऐसे चार मेरु हैं तथा एक-एक भरत, एक-एक ऐरावत और 32-32 विदेह होने से 5 भरत, 5 ऐरावत और 32×5=160 विदेह हो जाते हैं। प्रत्येक में छह-छह खंड होने से मध्य में आर्यखंड में कर्मभूमि व्यवस्था है। इस प्रकार ये 170 कर्मभूमियाँ मानी हैं।

अधिकतम तीर्थंकर 170 एवं कम से कम 20 होते हैं–

इन्हीं 170 कर्मभूमियों के आर्यखंडों में यदि एक साथ अधिकतम तीर्थंकर या चक्रवर्ती या नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र होवें तो अधिकतम 170 हो सकते हैं और कम से कम एक-एक मेरु संबंधी विदेहों में 4-4 ऐसे 4×5=20 बीस तीर्थंकर तो रहते ही हैं।

कहा भी है–

तित्थद्धसयलचक्की सट्ठिसयं पुह वरेण अवरेण।
वीसं वीसं सयले खेत्ते सत्तरिसयं वरदो[2]।।681।।

तीर्थंकर, अर्धचक्री और सकलचक्री ये विदेहक्षेत्र की अपेक्षा अधिकतम 160 एवं कम से कम बीस होते हैं। इन्हीं में भरत-ऐरावत के भी मिला देने से अधिकतम 170 हो जाते हैं।

इस गाथा से स्पष्ट है कि श्रीऋषभदेव और महावीर स्वामी जैसे तीर्थंकर महापुरूष इन कर्मभूमियों में अनंतों हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे।'' चतुर्थकालो विदेहे चावस्थित एव[3]।'' इस नियम के अनुसार विदेह क्षेत्रों में हमेशा चतुर्थकाल ही रहता है, षट्काल परिवर्तन नहीं होता है।

षट्काल परिवर्तन कहाँ-कहाँ है?

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिणीभ्याम्।।27।।

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता[4]।।28।।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में छह कालों से युक्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के द्वाराजीवों की आयु, ऊँचाई, सुख आदि में वृद्धि और ह्रास होता रहता है। यहाँ भरत से पाँचों भरत और ऐरावत से पाँचों ऐरावत क्षेत्र लेना है।

पुनः इनसे अतिरिक्त क्षेत्रों में–विदेह क्षेत्रों में तथा हैमवत, हरि, रम्यक और हैरण्यवत क्षेत्रों में जैसी की तैसी व्यवस्था बनी रहती है। विदेहों में 160 विदेह क्षेत्र गिनाये हैं। हैमवत तथा हैरण्यवत में जघन्य भोगभूमि, हरि और रम्यक में मध्यम तथा देवकुरु-उत्तरकुरु में जो सुमेरु के दक्षिण-उत्तर में हैं, उनमें उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था स्थायी है।

प्रथम कर्मभूमि–जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मध्य में पूर्व-पश्चिम लंबा विजयार्ध पर्वत एवं हिमवन पर्वत से निकली हुई गंगा-सिंधु नदियों के निमित्त से छह खंड हो जाते हैं। इनमें मध्य में आर्यखंड में षट्काल परिवर्तन होता रहता है। अवसर्पिणी में सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमा दुःषमा, दुःषमा सुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा ये छह काल होते हैं और उत्सर्पिणी में अतिदुःषमा से लेकर सुषमा सुषमा पर्यन्त छह काल होते हैं। इनमें से सुषमा सुषमा आदि तीन कालों में

भोगभूमि एवं दुःषमा सुषमा आदि तीन में कर्मभूमि की व्यवस्था होती है।

इस व्यवस्था के अनुसार प्रथम जम्बूद्वीप के प्रथम भरतक्षेत्र के आर्यखंड में जो कर्मभूमि आती है वह प्रथम कहलाती है।

भोगभूमि–भोगभूमि में मद्यांग, वादित्रांग, भूषणांग, मालांग, दीपांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भोजनांग, भाजनांग और वस्त्रांग ये दश प्रकार के कल्पवृक्ष मनवांछित फल देते रहते हैं।

कुलकरों की उत्पत्ति–इस वर्तमान अवसर्पिणी में यहाँ भरतक्षेत्र के आर्यखंड में तृतीय काल में जब पल्य का आठवां भाग शेष रह गया तब कुलकरों की उत्पत्ति प्रारंभ हो गई। इनके नाम–प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचंद्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराज।

हरिवंशपुराण में लिखा है कि–बारहवें मरुदेव कुलकर ने अकेले पुत्र ''प्रसेनजित्'' को जन्म दिया अतः यहाँ से युगलिया परंपरा समाप्त हो गई। इनका विवाह किसी प्रधान कुल की कन्या के साथ संपन्न हुआ है।

कहा भी है–

प्रसेनजितमायोज्य प्रस्वेदलवभूषितम्।
विवाहविधिना वीरः प्रधानकुलकन्यया।।[5]

इन प्रसेनजित् से नाभिराज भी अकेले ही जन्मे। इन्द्र से इनका विवाह कन्या मरुदेवी के साथ संपन्न किया।

कहा भी है–

तस्यासीन्मरुदेवीति, देवी देवीव सा शची।
तस्याःकिल समुद्वाहे, सुरराजेन चोदिता।
सुरोत्तमाः महाभूत्या, चक्रुः कल्याणकौतुकम्[6]**।।56।।**

हरिवंशपुराण में भी कहा है–

अथ नाभेरभूद्देवी मरुदेवीति वल्लभा।
देवी शचीव शक्रस्य शुद्धसंतानसंभवा[7]**।।6।।**

शुद्ध कुल में उत्पन्न हुई मरुदेवी राजा नाभिराज की वल्लभा हुई।

अयोध्या नगरी की रचना–मरुदेवी और नाभिराज से अलंकृत पवित्र स्थान में जब कल्पवृक्षों का अभाव हो गया तब उनके पुण्य विशेष से इन्द्र ने एक नगरी की रचना करके उसका नाम 'अयोध्या' रखा।

'छठे काल के अंत में जब प्रलयकाल आता है तब उस प्रलय में यहाँ आर्यखंड में एक हजार योजन तक की भूमि नष्ट हो जाती है। उस काल में अयोध्या नगर स्थान के सूचक नीचे चौबीस कमल देवों द्वारा किये जाते हैं[8]।''

इन्हीं चिन्हों के आधार से देवगण पुनः उसी स्थान पर अयोध्या की रचना कर देते हैं।

इसीलिए ''अयोध्या नगरी'' शाश्वत मानी गई है।

वैदिक ग्रन्थों में भी अयोध्या को बहुत ही महत्व दिया है यथा–

'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या[9]**।''**

यह देवों की नगरी अयोध्या आठ चक्र और नवद्वारों से शोभित है।

रुद्रयामल ग्रंथ में तो अयोध्यापुरी को विष्णु भगवान का मस्तक कहा है। यथा–छत्रब्रह्मविदो वदन्ति मनुयोऽयोध्यापुरी-मस्तकम्।

बाल्मीकि रामायण में इसे मनु द्वारा निर्मित बारह योजन लंबी माना है।

हरिवंशपुराण में राजा नाभिराज के महल को 81 खन ऊँचा, रत्ननिर्मित ''सर्वतोभद्र' नाम से कहा है।

श्री ऋषभदेव का स्वर्गावतरण–छह माह बाद भगवान ऋषभदेव ''सर्वाथसिद्धि'' विमान से च्युत होकर यहाँ माता मरुदेवी के गर्भ में आने वाले हैं ऐसा जानकर सौधर्म इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी–हे धनपते! तुम अयोध्या में माता मरुदेवी के आंगन में रत्नों की वर्षा प्रारंभ कर दो। उसी दिन से कुबेर ने प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ प्रमाण उत्तम-उत्तम पंचवर्णी रत्न बरसाना शुरू कर दिया।

एक दिन मरुदेवी महारानी ने पिछली रात्रि में ऐरावत हाथी आदि उत्तम–उत्तम सोलह स्वप्न देखे, प्रातः पतिदेव के मुख से ''तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर पुत्र अवतरित होंगे'' ऐसा सुनकर महान हर्ष को प्राप्त हुईं।

जब इस अवसर्पिणी के तृतीय काल में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रह गये थे तब आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन भगवान का गर्भागम हुआ। उसी दिन अपने दिव्यज्ञान से जानकर इन्द्र ने असंख्य देवों के साथ आकर महाराजा नाभिराज और महारानी मरुदेवी का अभिषेक करके वस्त्राभरण आदि से उनका सम्मान कर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाया। इंद्र की आज्ञा से श्री, ह्री आदि देवियाँ माता की सेवा करने लगीं।

क्या भगवान पुनः अवतार लेते हैं?–जैनधर्म के अनुसार कोई भी भगवान पुनः-पुनः अवतार नहीं लेते हैं प्रत्युत् हम और आप जैसे कोई भी संसारी प्राणी क्रम-क्रम से उत्थान करते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर पांच कल्याणकों को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं वे पुनः इस संसार में कभी भी अवतार नहीं लेते हैं जैसा कि भगवान ऋषभदेव के 'दशावतार'' अर्थात् दशभवों का वर्णन पढ़ने से यह भगवान का गर्भावतार प्रकरण स्पष्ट हो जाता है।

इसी जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में गंधिला देश के विजयार्ध की श्रेणी में एक 'महाबल' नाम के विद्याधर राजा थे, एक बार उन्होंने अपने स्वयंबुद्ध मंत्री के द्वारा जैनधर्म को स्वीकार कर सल्लेखना से मरणकर स्वर्ग में 'ललितांग' नाम के देवपद को प्राप्त किया। वहाँ से च्युत हो विदेह क्षेत्र में राजा 'वज्रजंघ'' हो गये, इन्होंने अपनी रानी श्रीमती से साथ एक बार वन में युगल मुनियों को आहारदान दिया। इसके फलस्वरूप उत्तम भोगभूमि में 'आर्य' हो गये।वहाँ चारणऋद्धिधारी मुनियों के संबोधन से सम्यग्दर्शन ग्रहण कर आयु के अंत में मरकर दूसरे स्वर्ग में 'श्रीधर' देव हो गये वहाँ के च्युत हो विदेह क्षेत्र में सुसीमा नगरी के राजा 'सुविधि' हो गये। यहाँ भी श्रावक धर्म व क्षुल्लक दीक्षा के अनंतर मुनि बनकर समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर पुनः सोलहवें स्वर्ग में 'इन्द्र' हो गये, वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के विदेह में पुण्डरीकिणी नगरी में 'वज्रनाभि' चक्रवर्ती हो गये। इस भव में भी महामुनि बनकर पिता तीर्थंकर भगवान वज्रसेन के पादमूल में सोलहकारण भावनाओं को भाते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। फलस्वरूप अंत में समाधिध्यान से मरणकर 'सर्वार्थसिद्धि' में 'अहमिंद्र' हो गये।

इस प्रकार–1.महाबल, 2. ललितांगदेव, 3. राजा वज्रजंघ, 4. भोगभूमिज आर्य, 5. श्रीधरदेव, 6. राजा सुविधि, 7. अच्युतेन्द्र, 8. वज्रनाभि चक्रवर्ती, 9. अहमिन्द्र इन नव भवों में क्रम-क्रम से उत्थान करते हुए जिनधर्म के प्रसाद से सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर यही अहमिन्द्र का जीव माता मरुदेवी के गर्भ में आ गया। जब ये भगवान ऋषभदेव निर्वाण को प्राप्त कर लेंगे तो पुनः कभी भी इस संसार में अवतार नहीं लेंगे।

जन्मकल्याणक महोत्सव–पंद्रह माह तक कुबेर द्वारा रत्नवृष्टि के अनंतर चैत्र कृष्णा नवमी को सूर्योदय के समय माता मरुदेवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसी क्षण स्वर्ग में इंद्रों के आसन हिलने लगे, मुकुट झुक गये, कल्पवृक्षों से पुष्प बरसने लगे और चारों प्रकार के देवों के यहाँ बिना बजाये अपने आप बाजे बजने लगे। यथा–

कल्पेषु घंटा भवनेषु शंखो, ज्योतिर्विमानेषु च सिंहनादः।
दध्वान भेरी वनजालयेषु, यज्जन्मनि ख्यात जिनः स एषः[10]।।

कल्पवासी देवों के यहाँ घंटे बजने लगे, भवनवासी देवों के यहाँ शंखध्वनि होने लगी, ज्योतिष्क देवों के यहाँ सिंहनाद होने लगा और व्यंतर देवों के यहाँ भेरी बजने लगी। जिनके जन्म के समय ऐसा हुआ ये जिन भगवान वे ही हैं।

जैसे कि आज टेलीविजन या रेडियो का बटन दबाते ही हजारों किलोमीटर दूर के भी दृश्य और संगीत सामने आ जाते हैं किन्तु वहाँ तो बटन दबाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी प्रत्युत तीर्थंकर प्रकृति का पुण्यरूपी बटन अपने आप ही दब गया और 40 करोड़ मील से अधिक ऊँचाई पर स्थित स्वर्गलोक में अतिशय फैल गया। तत्क्षण ही सौधर्म इंद्र असंख्य देव परिवारों के साथ मध्यलोक में आये और जन्मजात शिशु को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर 1008 कलशों से उनका जन्माभिषेक संपन्न किया।

कुछ विद्वान सहज ही कह देते हैं कि वे तीर्थंकर हम आप जैसे साधारण मानव थे लेकिन ऐसा नहीं है वे तीर्थंकर

प्रकृति नाम कर्म के बंध करने तक तो साधारण कहे जा सकते हैं किन्तु तीर्थंकर प्रकृति को बाँध लेने के बाद उनमें कुछ विशेष ही अतिशय प्रगट हो जाते हैं इसीलिए तो श्री समन्तभद्रस्वामी ने कहा है–

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यतः।
तेनः नाथ! परमासि देवता, श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः[11]।।

हे नाथ! आपने मनुष्य योनि में जन्म तो लिया है किन्तु आप मानुषी प्रकृतिका उलंघन कर चुके हैं इसलिए आप देवताओं के भी देवता हैं यही कारण है कि आप परमदेवता हैं। हे जिनधर्म तीर्थंकर! आपहमारे कल्याण के लिए हम पर प्रसन्न होइये।

श्री ऋषभदेव के द्वारा कर्मभूमि व्यवस्था–श्री नाभिराजा ने भगवान का यशस्वती और सुनंदा कुमारिकाओं के साथ इंद्र की अनुमति से विवाह कर दिया। यशस्वती ने भरत आदि 100 पुत्र एवं ब्राह्मी पुत्री को तथा सुनंदा ने बाहुबली एवं सुंदरी कन्या को जन्म दिया।

भगवान ने पुत्रियों एवं पुत्रों को सर्वविद्याओं में तथा कलाओं में निष्णात कर दिया।

प्रजा की प्रार्थना से असि, मषि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य इन षट्क्रियाओं का उपदेश देकर उन्हें जीने की कला सिखायी। वर्ण व्यवस्था और विवाह व्यवस्था आदि प्रगट की, वह भी अवधिज्ञान से विदेह क्षेत्र की शाश्वत व्यवस्था को जानकर ही की थी अतएव वे प्रभु स्रष्टा, विधाता, ब्रह्मा आदि भी कहलाये थे।

श्री नेमिचंद्राचार्य ने कहा है–

पुरगामपट्टणादी, लोहियसत्थो य लोयववहारो।
धम्मो वि दयामूलो, विणिम्मियो आदिबह्मेण[12]।।

भगवान की आज्ञा से चूँकि इंद्र ने देश, नगर, ग्राम आदि की व्यवस्था बनाई थी अतः पुर, ग्राम, नगर आदि लौकिकशास्त्र-व्याकरण आदि लोकव्यवहार एवं दयामूल धर्म को आदिब्रह्मा भगवान ऋषभदेव ने निर्माण किया है।

एक समय इन्द्रों ने आकर महाराजा नाभिराज से आज्ञा लेकर प्रभु का राज्याभिषेक कर दिया। अनंतर भगवान ने अनेक राजा, महाराजा आदि बनाकर उन्हें सुंदर राजनीति का उपदेश दिया।

दीक्षाकल्याणक–पुनः एक दिन भगवान नीलांजना के नृत्य के समय उसकी आयु समाप्त हुई देखकर विरक्त हो गये। इन्द्रों द्वारा लाई गई पालकी में बैठकर सिद्धार्थ वन में पहुँचे और जहाँ केशलोंच करके दैगम्बरी दीक्षा ली उस स्थल का नाम ''प्रयाग'' यह प्रसिद्ध हो गया। एक वर्ष 39 दिन बाद हस्तिनापुर में राजकुमार श्रेयांस ने प्रभु को वैशाख शु. 3 के दिन इक्षुरस का आहार देकर दानतीर्थ प्रवर्तक पद को प्राप्त किया।

केवलज्ञानकल्याणक–एक हजार वर्ष तपश्चरण के बाद प्रभु को केवलज्ञान प्रगट हो गया। उसी क्षण भगवान पृथ्वी से 5000 धनुष–20000 हजार हाथ ऊपर आकाश में अधर पहुँच गये और अर्धनिमिष मात्र में ही कुबेर ने आकाश में भगवान का समवसरण बना दिया। यह 12 योजन–96 मील का गोल था। इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

समवसरण में आठ भूमियाँ और तीन कटनी होती हैं तथा चारों ओर चार वीथी–सड़कें होती हैं। इन सड़कों के मध्य प्रारंभ में ही चारों दिशाओं में एक-एक ऐसे चार मानस्तंभ होते हैं। ये भगवानके शरीर की ऊँचाई से बारह गुने ऊँचे होते हैं। यथा–भगवान ऋषभदेव के शरीर की ऊँचाई 500 धनुष–2000 हाथ थी अतः 2000×12=24000 हाथ ऊँचे थे। इनके दर्शन से मानी का मान गलित हो जाता था, वह भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि बनकर अनंत संसार को सीमित कर लेता था।

इस समवसरण में पृथिवी से एक हाथ ऊपर से 1-1 हाथ ऊँची ऐसी 20 हजार सीढ़ियाँ रहती थीं। इनसे चढ़कर मनुष्य, तिर्यंच आदि सभी भव्य जीव–बाल, वृद्ध, रोगी, अंधे, लंगड़े, लूले आदि 48 मिनट मात्र में ऊपर पहुँच जाते थे। यह अतिशय भगवान का ही था।

इसमें चार परकोटे और पाँच वेदियों के अंतराल में आठ भूमियाँ हैं। जिनमें क्रम से धूलिसाल परकोटा, चैत्यप्रासादभूमि, वेदी, खातिकाभूमि, वेदी, लताभूमि, परकोटा, उपवन भूमि, वेदी, ध्वजाभूमि, परकोटा, कल्पवृक्षभूमि,

वेदी, भवनभूमि, परकोटा, श्रीमण्डपभूमि और वेदी ऐसी व्यवस्था रहती है। आगे 16 सीढ़ी चढ़कर प्रथम कटनी, 8 सीढ़ी के बाद दूसरी कटनी, पुनः 8 सीढ़ी चढ़कर तीसरी कटनी पर गंधकुटी में भगवान विराजमान रहते हैं।

प्रत्येक परकोटे एवं वेदियों में चारों दिशाओं में 1-1 गोपुर द्वार बने थे, उनमें दोनों तरफ नाट्यशालायें, मंगलघट, धूपघट और नवनिधि भंडार रखे हुए थे, इन द्वारों के रक्षक देवगण थे।

प्रथमभूमि में 1-1 जिनमंदिर के अंतर से 5-5 प्रासाद थे।

द्वितीय भूमि में– निर्मल जल में हंस, बतख आदि एवं कमल आदि थे।

तृतीय भूमि में–छहों ऋतुओं के पुष्प खिले थे। चतुर्थभूमि में चार दिशा में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के वन थे, इनमें एक-एक चैत्यवृक्षों में चारों दिशाओं में जिनप्रतिमायें विराजमान रहती हैं। पाँचवी भूमि में दशविध चिन्हों से सहित ध्वजायें थीं। छठी भूमि में दशविध कल्पवृक्ष थे तथा चार दिशा में क्रम से नमेरू, मंदार, संतानक और पारिजात सिद्धार्थ वृक्षों से सिद्धों की प्रतिमायें विराजमान थीं। सातवीं भूमि में भवन बने थे इसमें उभय तरफ अर्हंत, सिद्ध प्रतिमाओं से सहित 9-9 स्तूप थे और आठवीं भूमि में बारह सभा बनी हुई थीं।

क्रम से इन बारह सभाओं में 1. मुनिगण 2. कल्पवासिनी देवियाँ 3. आर्यिका और श्राविका 4. ज्योतिषी देवी 5. व्यंतर देवी 6. भवनवासिनी देवी 7. भवनवासी देव 8. व्यंतर देव 9. ज्योतिषीदेव 10. कल्पवासी देव 11. मनुष्य और 12. तिर्यंचगण बैठते थे।

समवसरण का ऐसा प्रभाव रहता है कि जातविरोधी सिंह, हिरण, गाय, व्याघ्र, सर्प, नेवला, मोर आदि सभी पशु-पक्षी परस्पर के वैर छोड़कर मैत्रीभाव धारण कर भगवान का उपदेश सुनते हैं।

संसार में एक तीर्थंकर भगवान का समवसरण ही ऐसा है कि जहाँ देवों और मनुष्यों के समान तिर्यंचों के लिए भी एक कोठा निश्चित है उस कोठे में बैठकर संख्यातों पशु-पक्षी भगवान का उपदेश सुनकर अपना कल्याण कर लेते हैं। इनमें लाखों पशु तो अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रह परिमाणाणुव्रत धारण करके स्वर्ग को प्राप्त कर लेते हैं तथा दिक्कुमारियाँ हाथ में मंगल द्रव्य धारण करती हैं।

भगवान के विहार से सर्वत्र 800-800 मीलों तक मंगल क्षेम और सुभिक्ष हो जाता है। सभी आपस में मैत्रीभाव धारण कर लेते हैं। रोग, शोक, आधि, व्याधि आदि उपद्रव नहीं होते हैं। भूकंप, नदी, बाढ़, अग्निप्रकोप, अकालमृत्यु आदि दुर्घटनायें भी टल जाती हैं।

वास्तव में जो महापुरुष स्वयं प्राणीमात्र पर दया करते हुए पूर्ण अहिंसा धर्म का पालन करते हैं उन्हीं में ऐसी विशेषता आ जाती है कि क्रूर प्राणी भी उनके सानिध्य को प्राप्त कर क्रूरता छोड़ देते हैं, वैर-विरोध छोड़ देते हैं।

पुनरपि भगवान ने समवसरण में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण का उपदेश देकर असंख्य प्राणियों को धर्मामृत का पान कराया। जब भगवान केवलज्ञानी हो जाते हैं तब मोह, राग, द्वेष, इच्छा आदि का अभाव हो जाने से उनका उपदेश भी बिना इच्छा के मात्र भव्यों के पुण्योदय से ही होता है जैसे किमेघ बिना इच्छा के ही बरसते हैं।

मोक्षकल्याणक–लाखों वर्षों तक भगवान ऋषभदेव ने श्रीविहार करके भव्यों को संतर्पित किया, अनंतर कैलाशपर्वत पर योगनिरोध करके आयुकर्म के अंत में निर्वाणधाम प्राप्त कर लिया। जब तृतीयकाल में तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष थे तब भगवान मोक्ष गये हैं। हुंडावसर्पिणी काल के दोष से प्रथम तीर्थंकर तृतीयकाल के अंत में ही जन्म लेकर तृतीयकाल में ही मोक्ष चले गये हैं। वहाँ वे भगवान अनंतानंत काल तक अतीन्द्रिय सुख में निमग्न रहेंगे पुनः कभी इस पृथ्वी पर अवतार नहीं लेंगे।

कहा भी है–

काले कल्पशतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात्, त्रिलोकसंभ्रातिकरणपटुः[13]।।

सैकड़ों कल्पकाल के व्यतीत हो जाने पर भी मोक्ष को प्राप्त हुए जीवों में विकार–आवागमन संभव नहीं है। भले ही तीनों लोकों में क्षोभ करने वाला ऐसा उत्पात ही क्यों न हो जाये?

अनंत ईश्वरों का अस्तित्व–तीन लोक के अग्रभाग पर ऐसे अनंतानंत सिद्ध परमात्मा विराजमान हैं और ये भी संसार के चतुर्गति के भ्रमण से छूटकर ही मुक्त हुए हैं। इसलिए जैनधर्म में अनंत ईश्वरों का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। हम और आपमें से कोई भी महापुरूष दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता आदि सोलहकारण भावनाओं को भाकर तीर्थंकर बन सकते हैं अथवा कोई भी रत्नत्रय के बल से कर्मों को नाशकर सामान्य केवली होकर सिद्ध परमात्मा बन जाते हैं जैसे भरत-बाहुबली आदि।

क्या जैनधर्म नास्तिक है?–भारतीय दर्शन में लिखा है–"वेदों के प्रामाण्य को स्वीकार न करने तथा ईश्वर में आस्था न रखने वाले भारतीय दर्शनों में जैनदर्शन का स्थान चार्वाक दर्शन के बाद आता है"।

किन्तु यह बात उचित नहीं है जैनधर्म में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता नहीं माना है क्योंकि ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानने में अनेक दोष आते हैं। जैसे कि ईश्वर विश्व में प्राणियों के प्रति दयालु है, परमपिता है पुनः वह किसी को पाप का फल नरक, निगोद, तिर्यंच योनि अथवा दुःखी दरिद्री क्यों बनाता है? यदि कहो पाप का फल कटु है तो फिर परमपिता परमेश्वर ने हिंसा, झूठ, व्यभिचार आदि पापों की सृष्टि ही क्यों की?

कहा भी है–

विचित्रभुवनत्रयं यदि कदाचिदीशः सृजेत्।
जगद्धि सकलं शुभं निखिलदोषशून्यं न किं।।
निगोदनरकादि-दुर्गतिकृतिश्च दुष्टाय चेत्।
कथं पुनरधर्मिणां विहितसृष्टिरन्यायिनी[14]।।9।।

यदि ईश्वर ने तीनों लोकों को बनाया है तो उसने दोषों से रहित शुभरूप ही सारा जगत् क्यों नहीं बनाया? यदि कहो दुष्टों के लिये ये नरक, निगोद आदि दुर्गतियाँ बनाई गईं तो पुनः दुष्टों की सृष्टि ही क्यों की?

न युज्यत इयं कृतिः सकलजंतु-कारुण्यतः।
कुतूहलधियापि चेन्न महतां हि संभाव्यते।।
अदृष्टपरिकल्पनापि जिन! नो भवेत्त्वद्द्विषां।
अतश्च भवतो विना क्वचिदपीश्वरत्वं कथं[15]।।20।।

ईश्वर संपूर्ण प्राणीमात्र पर करूणा करने वाला है अतः उनके द्वारा यह शुभ-अशुभ संसार का निर्माण युक्त नहीं है। यदि कहो ईश्वर कुतूहल बुद्धि से यह सब करता है तो यह कुतूहल भी महापुरूषों के लिए नहीं शोभता है। यदि कहो उन प्राणियों के भाग्य से ही यह सब होता है तो यह अदृष्ट–भाग्य की कल्पना भी अन्य जनों के यहाँ संभव नहीं है इसलिए हे भगवन्! वीतराग जिनेन्द्र भगवान आपमें ही ईश्वरत्व घटित होता है।

जैनसिद्धांत के अनुसार तो प्रत्येक प्राणी ही अपनी-अपनी सृष्टि का कर्ता है और जब उसे समाप्त कर देता है तब स्वयं ही सिद्ध भगवान बन जाता है। जैसे कि कहा भी है–

शिखरिणी छंद–

शरीरी प्रत्येकं भवति भुवि वेधाः स्वकृतितः।
विधत्ते नानाभू-पवनजलवन्हिद्रुमतनुम्।।
त्रसो भूत्वा भूत्वा कथमपि विधायात्र कुशलम्।
स्वयं स्वस्मिन्नास्ते भवति कृतकृत्यः शिवमयः[16]।।18।।

प्रत्येक प्राणी अपने द्वारा किये गये पुण्य-पाप के अनुसार अनेक प्रकार के पृथ्वी, जल, अग्नि,वायु और वनस्पति–वृक्षादि में जन्म लेता रहता है। कभी यह प्राणी त्रस–दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय होकर कदाचित् पुण्य कार्य

को करके जब स्वयं अपनी आत्मा में स्थित हो जाता है तब कृतकृत्य हुआ भगवान बन जाता है।

इन सभी उद्धरणों से यह बात सिद्ध है कि जैन अर्हंत केवली की वाणी को ही 'वेद' मानते हैं उसे 'अपौरूषेय' नहीं मानते। ईश्वर को सृष्टि का कर्ता न मानकर भी अनंत ईश्वर मानते हैं। आत्मा के अस्तित्व को, परलोक को और पुण्य-पाप तथा उसके फल को भी स्वीकार करते हैं। इसलिए ''जैनधर्म'' चार्वाक के समान नास्तिक धर्म नहीं है।

जैनधर्म शाश्वत है–''कर्मारातीन् जयतीति जिनः'' व्याख्या के अनुसार कर्म शत्रुओं को जीतने वाले जिन हैं और ''जिनो देवता अस्येति जैनः' जिन भगवान जिनके देवता हैं–उपास्य हैं वे जैन हैं। अतः यह जैन धर्म शाश्वत है, प्राणीमात्र का हित करने वाला है, सभी को भगवान बनने के लिए अधिकार देने वाला ''सार्वभौम'' है और सर्वहितंकर है। जैनधर्म में वर्तमान में भगवान ऋषभदेव से महावीर तक चौबीस तीर्थंकर माने हैं।

वेदो में भी श्री ऋषभदेव–ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में भी ऋषभदेव के नाम आये हैं।

''ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये[17]।

''ॐ नमो अर्हतो ऋषभाय[18]।''

मनुस्मृति में भी कहा है–

दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः,
नीतित्रितयकर्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः[19]।।

भागवत में भी कहा है–

''भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमंथिनां शुक्लया तनुदावतार[20]।''

यज्ञ में महर्षियों द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जाने पर श्री भगवान महाराज नाभिराज का प्रिय करने के लिए उनके रनिवास में मरूदेवी के गर्भ से दिगम्बर सन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रगट करने के लिए शुद्ध सत्वमय विग्रह से प्रगट हुये।

नित्यानुभूतिनिजलाभनिवृत्ततृष्णः, श्रेयस्य तद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-माख्यान् नमो भगवते ऋषभाय तस्मै[21]।।

जैन ग्रंथों के अनुसार ये भगवान ऋषभदेव इस अवसर्पिणी में युग की आदि में प्रथम तीर्थंकर हुये हैं और वैदिक ग्रंथों के अनुसार ये अष्टम अवतार माने गये हैं।

यथा–

कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः। चक्षुष्मान् यशस्वी वा-भिचंद्रोऽथ प्रसेनजित्।
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुलसत्तमाः। अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जातः उरक्रमः[22]।।

भरत के नाम से भारतवर्ष–इन्हीं ऋभषदेव के प्रथम पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से हमारे देश का नाम ''भारतवर्ष'' पड़ा है। ऐसा ''आदिपुराण'' में कहा है। वैदिक ग्रंथों में भी कहा है जैसे कि–

'येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद् येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति[23]।।''

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः। सोऽभिषिच्याथ भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः[24]।।

हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्। तत्माद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः[25]।।

भगवान ऋषभदेव से भरत हुये जो कि सौ पुत्रों में अग्रणी वीर थे। ऋषभदेव ने भरत पुत्र का राज्याभिषेक करके दीक्षा ले ली। भरत ने हिमवान से लेकर दक्षिण क्षेत्रपर्यंत जो राज्य प्राप्त किया था, विद्वानों ने उस समस्त क्षेत्र को ''भारतवर्ष'' इस नाम से जाना है।

चौबीसों तीर्थंकरों के शासन की महिमा–इस भारत देश में भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक यह जैनशासन अहिंसा धर्म से प्राणी मात्र में शांति की स्थापना करता रहा है। आज भी इन तीर्थंकर भगवंतों के अहिंसामयी धर्म की आवश्यकता है। क्योंकि इस पावन शासन में ''तीन'' आपस में पूर्णरूपेण अविरोधी-विरोध रहित होकर रहते हैं।

इसी बात को श्रीसमंतभद्रस्वामी ने कहा है–

नयसत्त्वर्तवः सर्वे गव्यन्ये चाप्यसंगता[26]।

नय, सत्व-प्राणी और ऋतुयें ये तीनों जैन शासन में परस्पर विरोधी होते हुए विरोध को छोड़कर मैत्रीभाव को प्राप्त कर लेते हैं। जैन धर्म के अनुसार द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। आत्मा नित्य है, जन्म-मरण से रहित है, पर्यायार्थिक नय कहता है कि आत्मा अनित्य है, जन्म-मरण के निमित्त से देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी आदि पर्यायों को धारण करता है। कथंचित्-अपेक्षा से ये दोनों बातें सही हैं आत्मा नित्य भी है क्योंकि अनादिकाल से अनंत काल तक विद्यमान है। पर्यायों की अपेक्षा अनित्य भी है क्योंकि मनुष्य को छोड़कर देव में जन्म लेता है। इत्यादि। ऐसे ही परस्पर विरोधी प्राणी भी महामुनियों का और तीर्थंकर भगवन्तों का आश्रय लेकर परस्पर के वैर को छोड़कर प्रीति को प्राप्त हो जाते हैं।

सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतम्।
मार्जारी हंसवालं प्रणयपरवशा केकिकांता भुजंगीम्।।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति।
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम्[27]।।

हरिणी सिंह के बच्चे को पुत्र की बुद्धि से स्पर्श करती है, गाय व्याघ्र के बालक को, बिल्ली हंस के बच्चे को एवं मयूरनी प्रेम के वश में सर्प के बच्चे को प्यार करने लगती है। जन्म से ही वैर को धारण करने वाले ऐसे क्रूर पशु भी वैर, अभिमान आदि को छोड़ देते हैं। कब? जबकि परम साम्य को प्राप्त क्रोध, मान, माया, लोभ आदि से रहित ऐसे महायोगियों का आश्रय ले लेते हैं।

इसी प्रकार इन महापुरूषों की छत्रछाया में कितने ही कोसों तक छहों ऋतुओं के फल-फूल एक साथ आ जाते हैं।

वर्तमान में आवश्यकता–वर्तमान में भी ऐसे ही महापुरुष प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करने के लिए, परस्पर में सौहार्द भाव स्थापित करने के लिए और पर्यावरण की शुद्धि के लिए 'श्री ऋषभदेव समवसरण का श्रीविहार' सारे भारत में कराया जा रहा है।

भगवान के 'कृषि' क्रिया का सही रूप बतलाने के लिए तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि धर्म का मूल्यांकन कराने के लिए ही हस्तिनापुर में 4 अक्टूबर से 6 अक्टूबर 1998 तक एक ''भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन'' आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में पधारे सभी कुलपति महोदयों ने जैन धर्म के संस्थापक भगवान महावीर नहीं हैं प्रत्युत चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव और अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी हुये हैं ऐसा प्रतिपादन किया है। अतः जैनधर्म की अतीव प्राचीनता स्वतः सिद्ध है।

टिप्पणी

1. त्रिलोकसार गाथा 4, ।
2. त्रिलोकसार गाथा-674-675-677।
3. त्रिलोकसार गाथा 681।
4. त्रिलोकसार गाथा 882 की टीकांश।
5. तत्त्वार्थसूत्र अ. 3।
6. हरिवंशपुराण सर्ग 7।
7. महापुराण पर्व 12।
8. हरिवंशपुराण सर्ग...1
9. भक्त्यादिक्रियासंग्रह (टिप्पण) पृ. 162।
10. अथर्ववेद दशमस्कंध।
11. प्रतिष्ठातिलक अ. 9।
12. स्वयंभूस्तोत्र ।
13. त्रिलोकसार गाथा 802।
14. भारतीय दर्शन पू.।
15. चंद्रप्रभ स्तुति।
16. चंद्रप्रभ स्तुति।
17. चंद्रप्रभ स्तुति।
18. ऋग्वेद।
19. यजुर्वेद।
20. मनुस्मृति।
21. भागवत स्कंध 5, अ.6।
22. भागवत स्कंध 5, अ. 6।
23. मनुस्मृति।
24. भागवत, स्कंध अ. 4।
25. वायुपुराण।
26. स्तुतिविद्या।
27. ज्ञानार्णव।

अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर

—गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड है। इस आर्यखण्ड में ''विदेह'' नाम से एक प्रसिद्ध देश माना गया है। कभी यह देश खेट, खर्वट, मटंब, पुटभेदन, द्रोणामुख, आकर-सुवर्ण, चाँदी आदि की खान, खेत, ग्राम और घोषों से विभूषित था। जैसा कि वर्णन है-

सखेटखर्वटाटोपिमटंबपुटभेदनैः। द्रोणामुखाकरक्षेत्रग्रामघोषैर्विभूषितः[1]।।3।।

जो देश नगर, नदी और पर्वत से घिरा हो वह **''खेट''** है। जो केवल पर्वतों से घिरा हो वह **''खर्वट''** है। जो पाँच सौ गाँवों से घिरा हो वह **''मटम्ब''** है। जो समुद्र के किनारे हो तथा जहाँ पर लोग नाव से उतरते हों वह **''पत्तन''** या **''पुटभेदन''** कहलाता है। जो नदी के किनारे बसा हो उसे **''द्रोणामुख''** कहते हैं। जहाँ सोना, चाँदी आदि निकलते हैं उसे **''खान''** कहते हैं। अन्न उत्पन्न होने की भूमि क्षेत्र-**''खेत''** है। जिसमें बाढ़ से घिरे हुए घर हों, जिसमें अधिकतर किसान लोग निवास करते हों, जो बाग-बगीचा और मकानों से सहित हों उन्हें **''ग्राम''** कहते हैं और जहाँ अहीर लोग रहते हों उसे **''घोष''** कहते हैं। ये सब शास्त्रीय प्राचीन परिभाषाएँ हैं। इन सभी से सहित वह **''विदेह''** देश था।

इस देश की राजधानी कुण्डपुर या कुण्डलपुर प्रसिद्ध थी। यह परकोटा एवं खाई आदि से विभूषित बहुत ही वैभवपूर्ण नगरी थी। इसका वर्णन बहुत ही सुन्दर किया गया है। यहाँ आचार्य कहते हैं कि-

एतावतैव पर्याप्तं, पुरस्य गुणवर्णनम्। स्वर्गावतरणे तद्यद्वीरस्याधारतां गतम्[2]।।12।।

इस नगर के गुणों का वर्णन तो इतने से ही पर्याप्त हो जाता है कि वह नगर स्वर्ग से अवतार लेते समय भगवान महावीर का आधार हुआ था अर्थात् साक्षात् महावीर स्वामी जहाँ अवतीर्ण हुए थे।

यहाँ के राजा **''सर्वार्थ''** महाराज थे और उनकी महारानी का नाम **''श्रीमती''** था। इनके पुत्र का नाम **''सिद्धार्थ''** था। इनकी रानी महाराजा चेटक की पुत्री **''प्रियकारिणी''** थीं जिनका दूसरा नाम **''त्रिशला''** था। जो राजा सिद्धार्थ वर्तमान में भगवान वर्द्धमान के पिता के पद को प्राप्त हुए थे भला उनके उत्कृष्ट गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? तथा अपने पुण्य से तीर्थंकर महावीर को जन्म देने वाली उन त्रिशला के गुणों का वर्णन भी कोई मनुष्य नहीं कर सकता है।

राजा सिद्धार्थ के माता-पिता का नाम हरिवंशपुराण में वर्णित है-

सर्वार्थश्रीमतीजन्मा, तस्मिन् सर्वार्थदर्शनः।
सिद्धार्थोऽभवदर्काभो, भूपः सिद्धार्थपौरुषः[3]।।3।।
सिंध्वाख्ये विषये भूभृद्वैशाली नगरेऽभवत्।
चेटकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः[4]।।3।।

सिंधुदेश के वैशालीनगर में चेटक नाम के प्रसिद्ध राजा थे, इनकी रानी का नाम भद्रा-सुभद्रा था। इनके दश पुत्र थे जिनके नाम धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, शिवदत्त, हरिदत्त, कम्बोज, कम्पन, प्रयंग, प्रभंजन और प्रभास थे ये दशों पुत्र दशधर्मों के समान निर्मल गुणों से विभूषित थे। इन्हीं राजा चेटक की महारानी ने सात ऋद्धियों के समान ही सात पुत्रियों को जन्म दिया था जो क्रमशः प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना इन नाम को धारण करने वाली थीं।

विदेहदेश की कुण्डपुरीदृकुण्डलपुरी नगरी में **''नाथवंश''** के राजा सिद्धार्थ के साथ राजा चेटक ने अपनी बड़ी पुत्री प्रियकारिणी **''त्रिशला''** का विवाह किया था। वत्सदेश में कौशाम्बी नगरी के चंद्रवंशी राजा शतानीक के साथ दूसरी पुत्री मृगावती का विवाह हुआ था। दशार्ण देश के हेरकच्छनगर में सूर्यवंशी राजा दशरथ राज्य करते थे, राजा चेटक

1-2-3. हरिवंशपुराण, सर्ग 2। 4. उत्तरपुराण पर्व 75।

की तृतीय पुत्री सुप्रभा इन दशरथ की पट्टरानी हुई थीं। कच्छदेश के **''रोरुकनगर''** में राजा उदयन राज्य करते थे, चतुर्थ पुत्री प्रभावती उनकी महारानी हुई थीं। पांचवी पुत्री चेलिनी राजगृही के राजा श्रेणिक की पट्टरानी हुई थीं[1] तथा ज्येष्ठा और चन्दना कुमारिका ने आर्यिका दीक्षा से अपना जीवन विभूषित किया था।

यही प्रकरण **''वीरजिणिंदचरिउ''** ग्रंथ में भी आया है-

जम्बूद्वीप के विदेहप्रदेश में कुण्डपुर-कुण्डलपुर में राजा सिद्धार्थ की महारानी प्रियकारिणी से भगवान महावीर जन्में हैं[2]।

इसी ग्रन्थ में राजा चेटक की राजधानी वैशाली का वर्णन आया है इसे सिंधुदेश में माना है। इन राजा के दश पुत्र और प्रियकारिणी आदि सात पुत्रियाँ थीं। जिनमें से बड़ी पुत्री प्रियकारिणी को कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ की महारानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था[3]।

गर्भावतरण-भगवान महावीर होने वाले महापुरुष सोलहवें स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में थे। जब उनकी आयु मात्र छह महिने की शेष रही तब सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने विदेहदेश की राजधानी कुण्डलपुरी में राजा सिद्धार्थ के आँगन में रत्नों की वृष्टि करना शुरू कर दी। ये रत्न प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ बरसते थे।

यहाँ यह बात ध्यान में रखना है कि राजा सिद्धार्थ वैशाली के राजा नहीं थे और न ही वे वैशाली के अन्तर्गत छोटे से कुण्डग्राम के छोटे-मोटे राजा थे किन्तु वे तत्कालीन वैशाली के राजा चेटक जो कि उनके श्वसुर थे, ये सिद्धार्थ इनसे भी श्रेष्ठ तथा इन्द्रों से भी पूज्य महान राजा थे।

जैसा कि उत्तरपुराण में लिखा है-

तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति।
भरतेऽस्मिन् विदेहाख्ये, विषये भवनांगणे।।251।।
राज्ञः कुंडपुरेशस्य, वसुधाराप तत्पृथु।
सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः, सिद्धार्थस्य दिनं प्रति।।252।।

इन राजा के महल का नाम **''नंद्यावर्त''** था। यह सात खन का बहुत ही सुन्दर था। एक दिन महारानी त्रिशला अपने **''नंद्यावर्त''** महल में रत्ननिर्मित सुंदर पलंग पर सोई हुई थीं, रात्रि में रत्नों के दीपों का प्रकाश फैला हुआ था। आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन पिछली रात्रि में रानी ने सोलह स्वप्न देखे। प्रातः पतिदेव से उनका फल पूछने पर "आप तीर्थंकर पुत्र को जन्म देंगी" ऐसा सुनकर प्रसन्नता को प्राप्त हुईं। तभी इन्द्रादिदेवगण ने आकर **''गर्भकल्याणक''** उत्सव मनाया।

जन्मकल्याणक—चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को माता त्रिशला ने पुत्र रत्न को जन्म दिया तब इन्द्रों नेअसंख्य देवपरिवारों के साथ आकर बालक को ऐरावत हाथी पर बिठाकर सुमेरुपर्वत पर ले जाकर वहाँ स्वर्णमयी कुंभों से क्षीरसागर के जल से भरे ऐसे 1008 कलशों से प्रभु का जन्माभिषेक किया था। अनंतर आभूषण आदि से जिनबालक को विभूषित कर **''वीर''** और **''वर्द्धमान''** ऐसे दो नाम प्रसिद्ध किए थे।

एक बार **''संजय''** और **''विजय''** नाम के दो चारणऋद्धिधारी महामुनियों को किसी पदार्थ में संदेह उत्पन्न हो गया तब जन्म के बाद ही जिनशिशु के समीप आए। भगवान के दर्शनमात्र से उनका संदेश दूर हो गया। तब उन महासाधुओं ने **''सन्मति''** इस नाम से शिशु को संबोधित किया था। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर उन भगवान के आयु, समय और इच्छा के अनुसार स्वर्ग से सारभूत भोग-उपभोग की वस्तुएँ लाते थे।

किसी एक दिन स्वर्ग में प्रभु की शूरवीरता की चर्चा चल रही थी। उसे सुनकर **''संगम''** देव ने उनकी परीक्षा करने की भावना थी। उस समय वर्धमान कुमार उद्यान में अनेक राजुकमारों के साथ वृक्ष पर चढ़ने-उतरने का खेल खेल रहे थे। तभी संगम देव महासर्प का रूप धारणकर वृक्ष में नीचे से ऊपर तक लिपट गय। सभी बालक डर से वृक्ष से कूदकर भागने लगे किन्तु जिनवीर के सर्प के मस्तक पर पैर रखकर ऐसी क्रीड़ा की कि जैसे माता के पलंग पर खेल रहे हो।

1.उत्तरापुराण पर्व 75। 2. वीरजिणिंदचरिउ, पृ. 11। 3. वीरजिणिंदचरिउ पृ. 60।

तब संगमदेव ने अपना रूप प्रगटकर प्रभु की नाना स्तुति करके **''महावीर''** यह नाम रखा।

दीक्षाकल्याणक– जब भगवान तीस वर्ष के हो गये तब उन्हें एक दिन जातिस्मरण होने से आत्मज्ञान प्रगट हो गया। प्रभु के विरक्त होते ही लौकांतिक देव आ गए उन्होंने प्रभु के वैराग्य की प्रशंसा करते हुएखूब स्तुति की। अनंतर देवोंने चन्द्रप्रभा पालकी पर प्रभु को बिठाया। प्रभु ने षंड नाम के वन में रत्ननिर्मित शिला पर बैठकर उत्तरदिशा में मुख करके तेला का नियम लेकर सम्पूर्ण वस्त्राभरणों का त्याग कर दिया एवं केशलोंच करके जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। यह दिन मगसिर कृष्णा दशमी का था। जन्म से प्रभु मति, श्रुत एवं अवधि इन तीन ज्ञान के धारी थे अब चार ज्ञान के धारी हो गये। प्रभु ने ''साल' वृक्ष के नीचे दीक्षा ली है ऐसा वर्णन प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ मेंआया है। उसमें ऐसा बताया है कि चौबीसों तीर्थंकरों के दीक्षावृक्ष और केवलज्ञानवृक्ष वही वही हैं।

वट, सप्तच्छद आदि वृक्षों में अंतिम तीर्थंकर के दीक्षावृक्ष का ''साल'' यह नाम है। उसमें कहा है-

सालश्चैते जिनेन्द्राणां, दीक्षावृक्षां प्रकीर्तिताः।
एत एव बुधैर्ज्ञेयाः केवलोत्पत्तिशाखिनः[1]।।4।।

जब भगवान श्री महावीर महामुनि के वेष में आहार के लिए निकले तो प्रथम अहार का लाभ **''कुलग्राम''** के राजा **''कूल''** को प्राप्त हुआ। इनका नाम हरिवंशपुराण में **''वकुल''** आया है। इन्होंने प्रभु को खीर का आहार दिया और देवों ने उसी क्षण पंचाश्चर्यवृष्टि की। इन पंचाश्चर्यों में रत्नों का प्रमाण साढ़े बारह करोड़ बताया है[2]।

तिलोयपण्णत्ति में **''नाथवन''** में दीक्षा लेने का कथन है। यथा-

मग्गसिरवहुलदसमी-अवरण्हे उत्तरासु णाधवणे।
तदियखवणम्मि गहिदं महव्वदं वड्ढमाणेण[3]।।667।।

वर्द्धमान स्वामी ने मगसिर कृष्णा दशमी को अपरान्ह काल में उत्तरानक्षत्र के रहते "नाथवन'' में तृतीय भक्त के साथ अर्थात् बेला का नियम लेकर महाव्रतों को ग्रहण किया था।

उपसर्गविजय– तपश्चर्या करते हुए भगवान एक बार उज्जयिनी महानगर के बाहर **''अतिमुक्तक''** नाम के श्मसान में प्रतिमायोग से ध्यान में लीन हो गये। उन्हें देखकर **''स्थाणु''** नाम रुद्र ने उनके धैर्य की परीक्षा करनेके लिए उनके ऊपर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। विद्या से वहाँ अंधेरा करके अनेक वेतालों-भूतों को नचाना शुरू कर दिया। तदनंतर सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और वायु आदि के साथ भीलों की सेना बना दी। इत्यादि प्रकार से उस रुद्र ने अपनी विद्या के प्रभाव से ध्यानस्थ महावीर के ऊपर भयंकर उपसर्ग किया परन्तु भगवानअचल हुए ध्यान में लीन थे तब उनके ध्यान के प्रभाव से प्रभावित हो रुद्र ने प्रभु का नाम **''महति महावीर''** रखकर अपनी भार्या के साथ अनेक प्रकार से स्तुति करे भावविभोर हो नृत्य किया।[4]

चंदनबाला द्वारा आहारदार– कुछ समय बाद प्रभु महावीर आहार के लिए विचरण करते हुए कौशाम्बी नाम कीमहानगरी में आए। वहाँ **''वृषभदत्त''** सेठ के यहाँ चन्दनबाला को उसकी पत्नी सुभद्रा ने दुष्ट अभिप्राय से सांकालें सेबांधकर सिर मुंडाकर रखा था और खाने को मिट्टी के सकोरे में कांजी से मिला हुआ पुराने कोदोंका भात दिया करती थी।

महामुनि महावीर को आहार हेतु आते देख भक्ति से चन्दनबाला आगे बढ़ी उसी क्षण प्रभु की भक्ति एवं उसके शील के प्रभाव से चंदना की बेड़ियाँ टूट गईं, उसके शिर पर केश आ गए और शरीर के वस्त्राभरण सुंदर हो गये उसके पास रखा मिट्टी का सकोरा स्वर्णमयी हो गया और कोदों का भात सुंदर शालिधान्य की खीर बन गया। चन्दनबाला ने भक्ति से प्रभु का पड़गाहन करके नवधाभक्ति से खीर का आहार दिया। तत्क्षण ही देवों द्वारा पंचाश्चर्यवृष्टि होने लगी। दुंदुभि बाजों की ध्वनि सुनकर राजा शतानीक-रानी मृगावती जो कि चंदना की बहन थीं वे सब वहाँ आ गए। तब घबड़ाकर सेठ-सेठानी ने चंदनबाला से क्षमायाचना की। तभी से कौशाम्बी नगरी जो कि छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ की जन्मभूमि थी वह

1. प्रतिष्ठातिलक। 2. हरिवंशपुराण सर्ग 60, पृ. 724। 3. तिलोयपण्णत्ति । 4. उत्तरपुराण पर्व 47।

अत्यधिक महिमा को प्राप्त हो गई है।[1]

इस प्रकार प्रभु को तपश्चर्या करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

केवलज्ञान कल्याणक—एक बात यह विशेष ज्ञातव्य है कि तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते ही मौन ग्रहण कर लेते हैं और केवलज्ञान प्रगट होने तक उनकी वाणी नहीं खिरती है।

भगवान महावीर एक बार **''जृंभिकाग्राम''** के निकट **''ऋजुकूला''** नदी के किनारे **''मनोहर''** नामक वन में रत्ननिर्मित एक शिलापट्ट पर प्रतिमायोग से विराजमान हो गये। ध्यान में लीन प्रभु ने **''वैशाख शुक्ला दशमी''** के दिन घातिकर्म को नष्टकर केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। तत्क्षण ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने आकर आकाश में अधर समवसरण की रचना कर दी। समवसरण में बारह सभा बनी हुई थी किन्तु भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरी थी।

विपुलाचल पर प्रथम देशना—एक बार इंद्र ने विचार किया कि गणधर के अभाव में प्रभु की दिव्यध्वनि नहीं खिरी है। तब युक्ति से **''इन्द्रभूति''** नामक गौतम गोत्रीय ब्राह्मण को वहाँ उपस्थित किया। इन्द्रभूति ने आकर प्रभु से जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करके मनःपर्ययज्ञान के साथ-साथ अनेक ऋद्धियों को प्राप्तकर प्रथमगणधर का पद प्राप्त कर लिया। श्रावण कृ. एकम के दिन भगवान की दिव्यध्वनि खिरी, असंख्य भव्यों ने प्रभु का उपदेश श्रवण करके अपने जीवन को सफल किया। इन इन्द्रभूति का नाम गोत्र के नाम से **''गौतमस्वामी''** प्रसिद्ध हो गया। चन्दना ने भी आर्यिका दीक्षा लेकर आर्यिकाओं में प्रमुख **''गणिनी पद''** प्राप्त कर लिया। राजगृही में विपुलाचल पर्वत पर भगवान की प्रथम बार दिव्यध्वनि खिरी थी अतः वह पर्वत भी तीर्थ बन गया है। राजगृही के राजा श्रेणिक प्रभु के समवसरण में **''मुख्य श्रोता''** कहलाए हैं।

मोक्षकल्याणक—भगवान ने तीस वर्ष तक पूरे आर्यखंड में श्रीविहार करके समवसरण में स्थित हो दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश दिया पुनः पावापुरी में सरोवर के मध्य से आकाश में अधर ही सर्व अघातिया कर्मों को नष्ट करके कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रभात समय निर्वाण पद को प्राप्त हो गये। तभी इन्द्रों ने असंख्य देवों के साथ आकर प्रभु का निर्वाणकल्याणक महोत्सव करके दीपमालिका बनाई थी। तब से लेकर आज तक कार्तिक कृष्णा अमावस्या को दीपावली पर्व मनाया जा रहा है। यह बात हरिवंशपुराण में कही गई है।

ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया, सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया।
तदा स्म पावानगरी समंततः, प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते।
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात, प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक्।।21।।[2]

उस समय सुर और असुरों के द्वारा जलाई हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा। तदनंतर सभी मनुष्य एवं देवगण प्रभु की निर्वाणकल्यापक पूजा कर यथास्थान चले गये। उस समय से लेकर भगवान के निर्वाणकल्याणक की भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरतक्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् भगवान महावीर के निर्वाणकल्याणक की स्मृति में ही दीपावली पर्व मनाने लगे। ये अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर सभी हमारे और आप सबके लिए मंगलकारी होवें।

1. उत्तरपुराण पर्व 74। 2. हरिवंशपुराण सर्ग 66, पृ. 806।

CYCLIC ARRANGEMENT OF THE UNIVERSE

Written by—**Ganini Gyanmati Mataji**

There are two divisions of time in the form of Evolution (Utasarpiṇī) and Devolution (Avasarpiṇī) epochs in the Āryan section of Bharata region of Jambūdvīpa. The epoch, in which the life-span of human and sub-human beings, their body-height and prosperity etc. are gradually decreasing, is called Devolution (Avasarpiṇī) epoch. In contrast, there is gradually increasing order in the above properties in the Evolution (Utsarpiṇī) epoch. The duration of devolution period is 10 crore x crore (Koḍā-Koḍī) Sāgaras consisting of many Palya years (These units will be detailed in the Section 2 of this book). The duration of Evolution period is also the same. Both of these epochs combined make up a Kalpakāla (Aeon) with a total duration of 20 crore x crore (20×10^{14}) Sāgaras. Each of the epoch of the Devolution and Evolution has six spokes or divisions.

Six Divisions or Spokes of Devolution Epoch (of time)

The six spokes of the Devolution epoch are : (1) Extreme plentitude (Suṣamā - Suṣamā), (2) Plentitude (Suṣamā), (3) Plentitude-cum-Penury (Suṣamā - Dūṣamā), (4) Penury-cum-Plentitude (Duṣamā - Suṣamā) (5) Penury (Duṣamā) and (6) Extreme penury (Duṣamā - Duṣamā). The Evolution epoch also has six spokes which are in the reverse order of these six ones. The word, 'ṣamā' means division of time. The prefixes 'Su' and 'Du' mean good and bad respectively. Thus, etymologically, the terms 'Suṣamā' and 'Duṣamā' signify the 'good time' and 'bad-time'. Both these epochs run a revolving cycle of time like the dark & bright half of the months. They undergo a cycle starting from Devolution epoch followed by Evolution epoch and so on.

Out of these six, the first spoke of extreme plentitude (Suṣamā-Suṣamā) has a duration of four crore x crore Sāgaras (4×10^{14} Sāgaras). The second spoke has a duration of three crore x crore Sāgaras. The third spoke has a duration of two crore x crore Sāgaras. The fourth spoke has a duration of one crore x crore Sāgaras less by forty two thousand years (i.e. 1 crore x crore Sāgaras–42000 years). The fifth spoke has a duration of 21000 years and the sixth spoke also has a duration of 21000 years.

Changes of The Six Spokes of Time

(a) The First Spoke of Extreme Plentitude : In the first spoke of extreme plentitude, the land is devoid of sands, smoke, fire, ice and thorns etc. There are no deficient-sensed beings (Vikalatraya-having two, three or four senses) like conch, scorpion, ant, flies etc. during this epoch. There are divine sands and pleasantly smelling soil. There are five coloured grasses having a height of four Angulas (~ 5 cm.). There are many small water tanks (Vāpis), full of clean water with lotuses surrounded by groves of trees. There are high mountains, superb palaces and the earth with saphire gems (Indranīla maṇi). There are very charming rivers graced with gem-like sand. There are no non-instinctive (Asanjnī, without Mana) and mutually opponent beings. There is no difference of day and night there. There is no heat, cold or darkness during this spoke. There are also no bad habits (Vyasanas) of enjoying other's wives and wealth etc. During this spoke, the men are born in pairs (a male and a female). They have auspicious marks like Tila etc. and conch, wheel etc. on their bodies. They are devoid of the difference of master and servant. Their body height is 6000 Dhanuṣas (~three Kośas or ~ 6 miles or ~ 10 kms.). They have a life-span of three Palyas (uncountable years). The men and women living during this spoke have two hundred and fifty six bones in the backside of their body. Their bodies do neither excrete urine nor faeces. They have good smelling respirations. The colour of their body is like heated gold. Their body configuration is Samacaturasra

English Translation—**Dr. N.L. Jain, Rewa (M.P.)**

(symmetrical) and their bone joints are adamantinely nailed and wrapped i.e. Vajravṛṣabhanārāca Samhanana. The strength of everybody is equivalent to 9000 elephants. During this spoke, there is no other family member except the male and female born in pair. There are no villages and towns etc. during this spoke. There are only ten kinds of Kalpa-vṛkṣas (wish-fulfilling trees) which offer the mentally desired materials to these pairs.

The Names of The Wish-fulfilling Trees (Kalpa-vṛkṣas)

There are ten classes of wish-fulfilling trees during the first spoke which are as below :

(1)	Drinks - supplying Trees	(Pānānga)
(2)	Musical instruments supplying trees	(Tūryānga)
(3)	Ornament-supplying trees	(Bhūṣanānga)
(4)	Dress-supplying trees	(Vastrānga)
(5)	Food-supplying trees	(Bhojanānga)
(6)	Residence-supplying trees	(Ālayānga)
(7)	Light-supplying trees	(Dīpānga)
(8)	Vessels - supplying trees	(Bhājanānga)
(9)	Garland-supplying trees	(Mālānga)
(10)	Lustre-supplying trees	(Jyotiranga)

The class of **drinks-supplying trees** offer the thirty two kinds of sweet, tasty and nutritious six-taste drinks to the people of the lands of enjoyments (Bhoga-bhūmis). The **musical instrument-supplying trees** offer different kinds of musical instruments like - violin, drum, kettle-drum and timbal etc. The **Ornament supplying trees** offer various kinds of ornaments like - bracelet, necklace and waist-band etc. The **dress-supplying trees** supply the dresses made of China silk, general silk and other kinds of fibres. The **food supplying trees** supply sixteen kinds of foods, sixteen kinds of condimented foods, fourteen kinds of pulses, one hundred eight kinds of solid edibles, three hundred sixty three kinds of tasty materials and sixty three kinds of juices. The **residence supplying trees** provide sixteen kinds of residential buildings with different shapes like Svastika and Nandyāvarta etc. The **light-supplying trees** supply the lamp-like lights through the branches, sprouts, shoots, fruits and flowers etc. of the trees. The **vessels supplying trees** offer small pitcher with a neck and a spout (Jhārī), pitcher (Gāgara), sacred water pot (Kalaśa), fly whisk (Camara) and seats (Āsana) etc. made of gold etc. The **garland supplying trees** offer garlands made of sixteen thousand types of flowers grown in creepers, climbers, clusters and trees etc. The **lusture - supplying trees** supply shines equivalent to the rays of the crores of suns in the mid-day and subjugate the shines of constellations, suns and moons etc.

These wish-fulfilling trees are neither plants (vegetation) nor any peripatetic deities. However, their specificity is that they offer the fruits of the sacred karmas of the living beings despite their being of the nature of earth (Pṛthvīkāyika).

Pleasure etc. in The Lands of Enjoyment (Bhogabhūmis)

The paired couples, in the lands of enjoyment, receive the materials offered by the wish-fulfilling trees and proteate themselves in many kinds of body (i.e. Vikriyā—assuming different body forms) and enjoy the various types of sensuals. They have an intake of food equivalent to the size of plum on every fourth day. These pairs do not have accidental or sudden death (Kadalīghāta Maraṇa) and they enjoy pleasures infinite-times more than the Cakravartīs. The males of the lands of enjoyment are more beautiful than the Lords of deities (Indra) in the heavens. The women there, are beautiful like the angels or nymphs.

Ornaments in the Lands of Enjoyment

There are sixteen ornaments of males in the lands of enjoyment. They are given below :

(1) Ear-rings
(2) Necklace (Hāra)
(3) Bracelet (for arms)
(4) Specific bracelet (Kataka)
(5) Two rings
(6) Sword
(7) Knife
(8) Anklets (Nūpura)
(9) Plate on forehead (Bhālapatta)
(10) Bracelet for upper arm
(11) Neck ornament
(12) Pendant pearl ornament (Prālamba)
(13) Sacred thread (Brahmasūtra)
(14) Ear-ornament made from flowers
(15) Crown on the head (Mukuta)
(16) Waist-band (Mekhalā)

There are fourteen ornaments for females in the lands of enjoyment. They do not have sword and knife out of the above sixteen. Hence, they have only fourteen ornaments.

Causes of Birth in the Lands of Enjoyment

The human and sub-human beings (Tiryancas) are born in the lands of enjoyments. Despite the fact that they have wrongful volitions (Mithyātva), the human beings, who are weak passioned, renouncers of meat and honey etc., loyally devoted to the qualities of virtuous men or offering food to the possessionless (Nirgrantha) saints who weaken their body by fasting and approvers of such activities as animals etc. - are also born in the lands of enjoyment. Many such right-faithed beings (Samyagdṛṣtī) also take birth there who have bonded human life-span karma in their earlier birth but later who have acquired the destructional right faith (Kṣāyika samyaktva) near Tīrthankaras.

Some ignorant persons leave the Jina guise and offer various types of donations to the heretics (kulingīs) involving themselves in deceitful practices. Such people are born as subhuman beings in the lands of enjoyment.

When the life-span of the human and subhuman beings of the lands of enjoyment has to last only for nine months, the women conceive and there is birth of a pair of children-a male and a female at a time when the death of the parents is nearby. In other words, the parents die just after giving birth to a new pair. The males die with a sneeze and the females die with yawning. Their dead bodies immediately disappear totally like the autūmn clouds.

Where they are born after death

After death, the human and subhuman beings of the lands of enjoyment are reborn in the triad of mansional (Bhavanavāsī), peripatetic (Vyantara) or astral (Jyotiṣka) deities if they are wrong-faithed (Mithyādṛṣtī). However, if they are right-faithed, they take rebirth in the first two heavens (Saudharma & Aiśāna).

The Growth of The Newly-born Pair in the Lands of Enjoyment

On birth in the lands of enjoyment, the newly born pairs spend their first three days in sucking their thumbs on the birth- bed. Afterwards. they begin sitting, wavering movement, regular movement, learning of arts and crafts, acquiring youthhood and capacity of acquiring righteousness. Each of this development stage takes place in three days each. In other words, the pair becomes fully young and skilled in all kinds of arts by acquiring seven kinds of capacities as above in twenty-one days.

Causes of Righteousness (Samyaktva)

The living beings of the lands of enjoyment can acquire righteousness or right faith through many factors like (1) Memory of the past life (Jātismaraṇa), (2) Address by the deities (3) Listening to the sermons of the saints with supernatural powers (Ṛddhidhārī Munis) and the like. However, they can not have the vows and restraints related with the normal votaries (Śrāvakas).

Sub-human Beings Born in the Lands of Enjoyment

Many kinds of pairs of five- sensed subhuman beings are born in the lands of enjoyment. They are as below :

(1) Cow,	(2) Lion,	(3) Elephant,	(4) Crocodile,
(5) Pig,	(6) Deer,	(7) Buffalo,	(8) Monkey,
(9) Tiger,	(10) Leopard,	(11) Jackal,	(12) Bear,
(13) Cock,	(14) Parrot,	(15) Pigeon,	(16) Swan

and the like.

They are mutually amicable, compassionate and weak-passioned. The land-moving animals like tiger etc. and sky moving birds like pigeon etc. have their foods in the form of divine grasses devoid of non-vegetarian foods.

As the time passes, the height of the body, life-span, strength, prodigy and radiance etc. of the living beings of this first spoke of four crore x crore Sāgaras have a gradual decrement.

(b) The Second Spoke of Plentitude : With the above kinds of gradual decrements in various spheres, the second spoke named as Suṣamā (Plentitude) begins. In the beginning of this spoke of time, the body height of men is 4000 Dhanuṣas (2 koṡas or ~ 4 miles or ~ 6 kms.), their life-span is two Palya and the colour of their body is white like the moon. They have two hundred twenty eight bones in the back-side of their body. They have a beautiful symmetrical body. They have a food-intake equivalent to the weight and size of Belleric myrabolan (Bahedā) every third day.

The pair- born children in this spoke suck their thumbs for five days on their birth-bed. Afterwards, they spend five days each during the processes of sitting, wavering movement, steady movement, acquirement of learning of arts etc., youthhood and capacity for acquiring righteousness. Besides these specifics, the other descriptions of the living beings born in this spoke are similar to those described in case of the spoke of extreme plentitude. The duration of this second spoke is three crore x crore Sāgaras. As it moves, the height, strength, prodigy, life-span and radiance etc. of the living beings there gradually decrease.

(c) The Third Spoke of Plentitude-cum-Penury : After the passing away of three crore x crore Sāgara years, the third spoke of time - Suṣamā - Duṣamā commences. It has a duration of two crore x crore Sāgaras. In the beginning of this spoke, the height of men is 2000 Dhanuṣas (1 kosa or ~ 2 miles or ~ 3.2 kms.). Their life-span is one Palya and the body colour is white like the Priyangu fruit. The number of bones in the back-side of males and females of this spoke is sixty four. All the human have symmertical body. They have food - intake equivalent to the size and weight of a Myrabolan (Āmlā) every alternate day.

The pair of infants born during this spoke have a seven-days system. They suck their thumbs for seven days while on birth bed. Afterwards, they have each process of seven days duration like sitting, wavering movement, steady movement, acquirement of learnings, youthhood and capacity for being righteous. Every stage requires seven days for completion. Besides these specifics, the rest of the description about the pairs in this spoke is similar to that of the first spoke.

During all these three spokes of time, there are the lands of enjoyment and there are no thieves, enemies, six-occupations like weaponry and writing etc., cold, heat, hurricanes and rains etc. The period of three spokes are respectively known as the maximal (Uttama), medial (Madhyama) and minimal (Jaghanya) lands of enjoyment.

Birth of Kulakaras (Patriarchs, Family Founders)

The third spoke of devolution epoch was running in the Aryan section of this Bharata region. The Patriarchs or Kulakaras (Family founders, Ethical founders) begin to be born when there remains the time-span of only one-eighth part (1/8th) of Palyopama (uncountable years) in the completion of this third spoke with gradual decrease in age, body height, prodigy, strength and radiance etc.

The first patriarch was **'Pratiśruti'** and his wife was named as 'Svayamprabhā'. His body-height was 1800 Dhanuṣas,D (0.9 kośas or ~ 1.8 miles or ~ 2.988 kms) and his life span was one-tenth of a Palya. During his period, people of the lands of enjoyment saw the rising of moon in the eastern direction on the evening of the fifteenth day of the bright half of Āṣādha (June-July) and the setting of the Sun in the west. The residents of the lands of enjoyment thought, 'This is an accidental calamity on us', and they got terrified with fear. During that period, 'Pratiśruti' was the most impressive and benefactor patriarch. He was counted as the most intelligent due to being clairvoyant by the latency of the earlier births. The enjoyment-landers approached him and enquired him of this calamity.

He said to the people, "O gentlemen, whatever you are seeing in the sky, are the planets named as Sun and Moon. The beams of rays of the lustre-producing wish-fulfilling trees have gone feeble due to passage of time. Hence, these planets have become visible. They are always moving in the sky but they were not visible by now as their lustre was subdued by the lustre-producing wish-fulfilling trees. You do not be afraid of them".

The words of 'Pratiśruti' convinced the people and they offered their respects to him. They eulogised him and worshipped him.

After the patriarch Pratiśruti left for heavenly abode and after the lapse of a period of eightieth part of a Palya (1/80 P), the second partriarch **'Sanmati'** was born. He had a golden shine. His body was 1300 D high and he had a life-span of numerable years equivalent to 'Amama' unit of time. In his times, the lustre-producing wish-fulfilling trees became virtually extinct. When the people saw that the setting of sun leads to darkness and the star-world has appeared causing dim light, they thought, "The darkness and dim light seem to be the signs of an unprecedented and fierce calamity." They got worried and came to the patriarch Sanmati and requested him to safeguard them. Sanmati, then, assured them and said, "The darkness and the stars have become visible due to the extinction of lustre-producing wish-fulfilling trees. You need not be worried due to them. They were always there, but they were not visible due to the extreme radiance of these trees. These planets, stars, asterisms (Nakṣatras) and Sun-Moon etc. are always circumambulating the Sumeru Mountain in Jambūdvīpa. The people were convinced by the words of the patriarch. They became fearless and began offering him their respects and worship.

After the departure of the second patriarch for heaven and with a lapse of an interval of innumerable crores of years, the third patriarch, **Kṣemankara**, was born in this Bharata region. He was 800 D high, and he had a life span of 'Atata' (a larger time unit). He was golden in colour. His wife was 'Sunandā'. During his period, the five-sensed sub-human beings like tigers etc. got cruel. Being afraid of them, the people went to the patriarch and requested, 'O patriarch, these animals, whom we used to nurse in our laps, seem to kill us now with their horns without any cause. They are getting us afraid by opening and showing their cruel jaws to us. What should we do now ?'

The patriarch said, "O gentlemen, you should not rely on them, You should leave their company. They have become denatured due to the deflection in time." Thus, the people got away from the company of animals with horns and jaws. They began keeping the company of animals like cows and buffaloes etc. who were calm and quite.

After the the third patriarch departed to heaven and on the lapse of an interval of innumerable crores of years, the fourth patriarch-**Kṣemandhara** was born. He was the leader of gentlemen. He had a life-span of 'Tutika' years (a large time unit) and he was 775 D high. He was golden coloured. His wife was Vimalā. During his time, the cruel animals like tigers etc. began eating the flesh of human beings. The patriarch instructed the enjoyment landers to keep sticks and rods etc. to safeguard themselves from these cruel animals.

After his heavenly departure and after a lapse of an interval of innumerable crores of years, the fifth patriarch -**Sīmankara** was born due to the good fortunes of the people. He had a life-span of 'Kamala' years. He was 750 D high. He was golden in colour. His wife was Manoharī. During his period, the wish-fulfilling trees got scanty and they also began offering small amounts of fruits (desired objects) etc. This caused agitation in the minds of the

people. When the patriarch saw the peoples' plight this way, he fixed the limits of supplies from the wish-fulfilling trees and avoided the rivalry and friction among the people.

Penological System of the Lands of Enjoyment

The five patriarchs, as above, had a penological system of penalising the crimes of enjoyment landers through the words, 'Alas, Alas, (Hā) you have done a bad deed!' (Hā-Kāra). By listening to these words only, the people got careful not to do any criminal acts again.

After the the fifth patriarch departed to heaven, and after the lapse of an interval of innumerable crores of years, the sixth patriarch -**'Sīmandhara'** was born. He had a life-span of 'Nalina' years. He was 725 D high. His wife was Yaśodharā. During his period, the number of wish-fulfilling trees were reduced sufficiently and their power of supply also became scanty. This led to regular quarrels among the enjoyment landers. In response, the sixth kulakara marked the boundaries for the wish-fulfilling trees through many other trees and small bushes etc.

After his life ended and a lapse of an interval of innumerable crores of years, the seventh kulakara -**Vimala Vāhana** was born. He had a life-span of 'Padma' years. He was 700 D high. He was golden coloured. His wife was 'Sumati'. During his period, the people were facing the problem of moving to and fro. On approaching the patriarch, he advised them to tame the animals and use them as means of transport by riding over them. Thus people could control the elephants, horses and other animals by the use of iron hooks (Ankuśa) and saddles (Palāna) etc.

After the heavenly departure of the seventh patriarch and a lapse of an interval of innumerable crores of years, the eighth patriarch-**Cakṣuṣmān** was born. He was 675D high. He had a life span of 'Padmānga' years. His wife was 'Dhāriṇī'. The enjoyment landers before his times were not able to see the face of their newly born pair of children because the parents died as soon as the pairs were born. However, they began dying after seeing the face of their new-born pair for a moment. This was a new fact. They became afraid of this phenomena. They turned to their patriarch. He advised them that the newly-borns are their children. You see their full-moon-like beautiful faces and enjoy them. Thus, the enjoyment-landers began to die after seeing the faces of their children.

After the eighth patriarch departed to heaven and after a lapse of an interval of crores of years, the ninth patriarch - **Yaśasvāna'** was born. He had a life-span of 'Kumuda' years. He was 650 D high. His wife was named 'Kāntimālā'. During his times, he advised people to name their children and hold festivity on this occasion. The emjoyment-landers began naming their children, blessed them and died after some time.

After the heavenly departure of the ninth patriarch and a lapse of an interval of crores of yeas, the tenth patriarch-**Abhicandra** was born. He had a life-span of 'Kumudānga' years. He was 625 D high. His wife was 'Śrīdevī'. He instructed how to check and control the weeping or crying of the children. He advised people, "you show the children the moon in the sky in the night and cause them to play and teach them how to speak. You protect them carefully." On the basis of his advice, the enjoyment-landers began to behave with their children as advised by the patriarch. They began dying after such treatment with their children.

Penology During the Period of Sixth to Tenth Patriarchs

The above five patriarchs (6th -10th) advised the greedy people and prescribed the penal system of 'Alas-ness' and 'Don't do-ness' (Hā-kāra and Mā-kāra). They did use the following sadness - expressing and injunctory words in penalty, "Alas, you have done a bad deed. Do not do this next time'. The people did not repeat crimes on the basis of these words.

After the heavenly departure of the tenth patriarch and a lapse of an interval of crores of years, the eleventh patriarch - **Candrābha** was born. His life-span was 'Nayuta' years. He was 600 D high. His wife was 'Prabhāvatī'. During his period, extreme cold, frostfall and hurricanes began to appear in the horizon. The people felt pains due

to cold air and they could not see the astral world of moon etc. due to its obscuration by the frost. They approached the patriarch who advised them, "the land of action is appearing and the land of enjoyment is gradually disappearing. It is the effect of the change of time. The frost will disappear by the rays of the sun." On listening to this advice, the enjoyment-landers began to get away from cold by the rays of the sun and began to live with their children for some time before their death.

After the heavenly departure of the eleventh patriarch - Candrābha and after a lapse of suitable interval of time later, the twelfth Kulakara - **Marudeva** was born. He had a life-span of 'Nayutānga' years. He was 575 D high. His wife was 'Satyā'. During his period, the clouds began raining with lightening and thunders. The people got afraid of seeing the muddy water flowing in rivers, not seen before. They approached Marudeva. He told them that there are divisions of time and the period of land of action (Karmabhūmi) is fast approaching. He advised them, "You cross the rivers by boats, climb the mountains by constructing steps towards them and use umbrella etc. during rains to safeguard yourself." On the advise of the patriarch, people began to live with their children. They began crossing the rivers, climbing the mountains and safeguarding themselves with umbrella etc. during rains.

(**According to Harivanśa Purāṇa (p.144)**, firstly the pair of children was born in the lands of enjoyment, but Marudeva begot a son named Prasenajita just to alleviate the process of birth in pairs. Before this period, the enjoyment landers had no sweating on body. But the body of Prasenajita looked beautiful with the drops of sweat. The patriarch Marudeva also started the system of marriage and got Prasenjita married with a girl of a prominent family. After enjoying a life-span of $1/10^{7}$ Palya, Marudeva went to heaven after death. On his heavenly departure, his son Prasenjita became the thirteenth patriarch. He gave birth to a son named Nābhirāja with a life-span of one crore Pūrva. He was the fourteenth patriarch. He started the custom of cutting the navel - duct of newly born children after birth. Prasenajita died after enjoying a life-span of $1/10^{13}$ Palya).

After the heavenly departure of twelfth patriarch and a lapse of a suitable interval of time, the thirteenth patriarch - **Prasenajita** was born when the period of land of action was just approaching slowly. He had a life-span of one Pūrva. He was 550 D high. His wife was 'Abhimatī'. During his period, the children were born with placental covering.

"What is this ?" cried the people.

They got afraid of this phenomena and approached their patriarch. He advised them to remove away the placental-covering. On his advice, after the removal of placental-covering the people began to safeguard their children with efforts.

It is only after this period that the fourteenth patriarch **Nābhirāja** was born. He had a life-span of one crore Pūrva. He was 525 D high. His wife was 'Marudevī'. During his times, the navel-duct of children used to be longer. He, therefore, advised the people to cut away this navel-duct. The enjoyment landers followed his advise. During the period of this fourteenth patriarch, the wish-fulfilling trees got totally disappeared, the clouds began thundering and raining and many kinds of medicinal and grain plants began to be seen growing on the earth naturally. Slowly, the grains and plants grew without sowing all round the earth. The people did not understand their use and got worried due to pains of hunger on disappearance of the wish-fulfilling trees. They approached the patriarch Nābhirāja and said, "O patriarch, how could we sustain ourselves without the wish-fulfilling trees. We have become helpless and unfortunate. Please tell us what are the edibles and what are the non-edibles out of the trees, branches, sprouts, fruits and seeds etc. which have started growing on the earth?"

Nābhirāja listened to them calmly and then, said, "O, gentlemen, the trees are suitable for you but toxic trees are not suitable for you. You eat the grains, have milk from cows and drink it. There are trees of sugarcane. Peel them through your teeth or machine and drink their sweet juice."

Thus, Nābhirāja pointed out many methods of sustaining the life and livelihood of the people and made them happy. He also gave them some vessels made from clay on the temples of the elephants and also taught them how to do so. During the period of Nābhirāja, the wish-fulfilling trees got totally disappeared. It was only Nābhirāja who was the true benefactor of the people. He was, thus, serving the people like the wish-fulfilling trees. (Please see Table-1 for details of patriarchs in the end of this book and Table-Numerable Time Units for details about time units in section two of this book)[1].

Wherefrom Did the Fourteen Patriarchs Arrive

All the fourteen patriarchs from the first 'Pratiśruti' to the fourteenth 'Nābhirāja' were princes in the royal families of Videha region in their earlier birth. Even before acquiring right faith, they bonded the life-span of human destinity of the land of enjoyment through sacred-earning deeds like donation to the worthy persons and practicing various vows in that birth. Afterwards, they acquired destructional (kṣāyika) right faith and scriptural knowledge in the vicinity of the Lord Jinas in Videha region. It is because of all this, that they were born in Bharata region after completing their life-span there. While many of these patriarchs had the memory of their previous births, many others had the vision of clairvoyance. That is why, they instructed the beneficial duties to the people of their own times. They were called **'Manus'** as they knew the lives of the people. They were called **'Kulakaras' (Patriarchs)** because they instructed the people to live jointly like a family. They were called' **Kuladharas' (family founders)** because they established many families or lineages. They were also called **'Yugādi-puruṣa' (First Men of the Epoch)**.

Penology of Eleventh to Fourteenth Patriarchs

There was the three word penological system in the days of 11^{th}-14^{th} patriarchs. These words were—

(1) 'Hā' (Alas), (2) 'Mā' (Don't do) and (3) 'Dhik' (What a shame, Disdain).

The words mean 'It is regrettable', 'Don't reapeat the crime' and 'Shame on you that you did crime even after instructions'.

THE GREAT PERSONAGES (ṠALĀKĀ - PURUṢAS)

After the Kulakaras, sixty three great personages are born in Bharata region due to its good fortune. These men are the best of men and renowned world-wide. The sixty three great personages are known by the following groups :

(1) 24 Tīrthankaras (Jaina Lords).

(2) 12 Cakravartīs (Universal Monarchs, Emperors).

(3) 9 Balabhadras.

(4) 9 Nārāyaṇas.

(5) 9 Prati-Nārāyaṇas (Anti-Nārāyaṇas).

Twenty-four Tīrthankaras

Bowings to the twenty-four Tīrthankaras who were born in Bharata region of Jambūdvīpa. They are :

(1)	Ṛṣabhanātha	(2)	Ajitanātha	(3)	Sambhavanātha
(4)	Abhinandananātha	(5)	Sumatinātha	(6)	Padmaprabhanātha
(7)	Supārṣvanātha	(8)	Candraprabhanātha	(9)	Puṣpandantanātha
(10)	Ṡītalanātha	(11)	Ṡreyānsanātha	(12)	Vāsupūjyanātha
(13)	Vimālanātha	(14)	Anantanātha	(15)	Dharmanātha
(16)	Ṡāntinātha	(17)	Kunthūnātha	(18)	Ara/Arahanātha
(19)	Mallinātha	(20)	Munisuvratanātha	(21)	Naminātha
(22)	Neminātha	(23)	Pārṡvanātha	(24)	Vardhamāna

They chop off the tree of the world of the liberatable beings (Bhavyas) by the axe of their knowledge.

Twelve Cakravartīs (Universal Monarchs or Emperors)

In Bharata region the following twelve universal monarchs have been born who were the victors of the six-sections of this earth (Bharata Kshetra) and whose glory pervaded in the whole universe :

(1) Bharata	(2) Sagara	(3) Maghavā
(4) Sanatkumāra	(5) Śānti	(6) Kunthu
(7) Ara	(8) Subhauma	(9) Padma
(10) Hariṣeṇa	(11) Jayasena	(12) Brahmadatta

Nine Balabhadras or Baladevas

There have been the following nine Balabhadras in the Bharata region :

(1) Vijaya	(2) Acala	(3) Sudharma
(3) Suprabha	(5) Sudarśana	(6) Nandī
(7) Nandimitra	(8) Rāmcandra	(9) Padma (Baladeva)

Nine Nārāyaṇas

There have been nine Nārāyaṇas in Bharata region. They are said to be the Viṣṇus. They are as below :

(1) Tripṛṣṭha	(2) Dvi-pṛṣṭha	(3) Svayambhū
(4) Puruṣottama	(5) Puruṣa-simha	(6) Pundarīka
(7) Datta	(8) Nārāyaṇa (Laxmaṇa)	(9) Śrī Kṛṣṇa

Nine Prati-Nārāyaṇas

There have been nine Prati-nārāyaṇs in the Bharata region. They are as below :

(1) Aśvagrīva	(2) Tāraka	(3) Meraka
(4) Madhu-kaitabha	(5) Niśumbha	(6) Bali
(7) Praharaṇa	(8) Rāvaṇa	(9) Jarāsandha

All the above are known as 63 great personages.

Lord Ṛṣabhadeva was born to Marudevī, the chief queen of the last patriarch Nābhirāja. He was admitted as the first Tīrthankara as well as the 15th patriarch too. The queen Yaśasvatī of Ṛṣabhadeva gave birth to Bharata, who was Cakravarti as well as a patriarch too. Thus, there has been a tradition of sixteen patriarchs also (as against the tradition of the fourteen one).

Penology of Bharata Cakravarti

During the days of Bharata Cakravarti, people began to err and commit crimes in large numbers. The three-word penology could not serve the purpose to check them. He, therefore, began the system of awarding physical penalties like binding and killing etc.

First Tīrthankara in the Third Spoke of Time

When the duration of the third spoke had to last only for 84 lac Pūrvas, three years and eight and-a-half months, the chief queen of the last patriarch Maharaja Nābhirāja gave birth to Lord Ṛṣabha. When Vṛṣabhadeva became young, his father got him married with two beautiful girls named Yaśasvatī and Sunandā with the permission of the Lord of deities (Indra). Lord Ṛṣabhadeva had one hundred & one sons named Bharata and Bāhubalī etc. and two daughters named 'Brāhmī' and 'Sundarī'. The Lord taught the alphabetical scripts like 'A, Ā' etc. to Brāhmī and mathematics of units, tens etc. to Sundarī. Afterwards, he made all of his sons skilled in all kinds of learnings,

sacred texts and science of arms etc.

Lord Ṛṣabhadeva became known as **Lord Prajāpati (Protector of people)** because he instructed the people to earn livelihood by six-fold professions like warriorship, writing work and agriculture etc. The Lord established a similar system of work in his times as was there in Videha region. He established three groups of people named as (1) Kṣatriyas (Warriors), (2) Vaiśyas (Businessmen) and (3) Śūdras (Labourers, Menials) . He also started the system of marriage etc. He instructed about the royal or political system to four persons like Akampana and others and appointed them on the position of Mahārājā (Great king). It is due to all this that he was called by the name of **Ādi-Brahmā (The first Creator)**, **Yugādi-puruṣa (the first Creator of the era), Vidhātā (God)** and so on.

Later on, he became a Digambara Muni (naked i.e. possessionless ascetic) to manifest and attain salvation (from the world). When he got initiated, 4000 kings also got initiated along with him. But they got demoralized because they could not bear the troubles of hunger and thirst etc. They, then, started many heretic systems. After some time, Cakravarti Bharata created a new group in the society by the name of Brāhmaṇa. These four groups are called classes or castes (Varṇa or Jāti) which are prevalent even today.

Lord Ṛṣabhadeva has been followed by twenty three other Tīrthankaras from Lord Ajitanātha to Lord Mahāvīra making up a series of twenty-four Tīrthankaras.

Because of the defect of the epoch of extra-ordinary events (Hundāvasarpiṇī), Lord Ṛṣabhadeva was born in the third spoke. The rest of the Tīrthankaras were born in the fourth spoke.

(d) Commencement of the Fourth Spoke of Penury-cum-Plentitude

The fourth spoke of time named Duṣamā-Suṣamā (penury-cum-plentitude) commenced when three years and eight and-a-half months had elasped after the liberation of Lord Vṛṣabhadeva. In the beginning of this spoke, the life-span was one Pūrva-koti and the number of bones in the back-side of the body was forty-eight. The height of the body was 525 D. The duration of this spoke was one koḍā-koḍī Sāgara less by forty two thousand years.

After the salvation of Lord Ṛṣabhadeva and after a lapse of fifty-lac crore Sāgaras the **second Tīrthankara Lord Ajitanātha** attained liberation. After his salvation and with a gap of thirty lac crores of Sāgaras the **third Tīrthankara Lord Sambhavanātha** attained salvation. The **fourth Tīrthankara Lord Abhinandananātha** attained salvation with a gap of ten lac crores of Sāgaras after the salvation of Tīrthankara Lord Sambhavanātha. The **fifth Tīrthankara Lord Sumatinātha** attained salvation with a gap of nine lac crores of Sāgaras after the salvation of the fourth Tīrthankara . Afterwards, the **sixth Tīrthankara Lord Padmaprabhanātha** attained salvation with a gap of ninety thousand crores of Sāgaras. This was followed by the salvation of the **seventh Tīrthankara Lord Supārśvanātha** with a gap of nine thousand crores of Sāgaras. The **eigthth Tīrthankara Lord Candraprabhanātha** attained salvation after a gap of 900 crore Sāgaras.The **ninth Tīrthankara Lord Puṣpadantanātha** attained salvation after a gap of ninety crore Sāgaras. The **tenth Tīrthankara Lord Śītalanātha** attained salvation after a gap of nine crore Sāgaras. The **eleventh Tīrthankara Lord Śreyānsanātha** attained salvation after a gap of 3373900 Sāgaras (or after one crore Sāgaras less by sixty six lac twenty six thousand hundred Sāgaras). This followed the salvation of the **twelfth Tīrthankara Lord Vāsupūjyanātha** after a gap of 54 Sāgaras. The **thirteenth Tīrthankara Lord Vimalanātha** attained salvation after a gap of thirty Sāgaras. After a lapse of nine Sāgaras, the **fourteenth Tīrthankara Lord Anantanātha** attained salvation. The **fifteenth Tīrthankara Lord Dharmanātha** attained salvation with a gap of four Sāgaras after it. The **sixteenth Tīrthankara Lord Śāntinātha** attained salvation with a gap of three Sāgaras less by 3/4 Palya after the salvation of his predecessor. **Lord Kunthūnāthā** attained salvation with a gap of half-a-Palya on attaining the salvation by his predecessor. The **eighteenth Tīrthankara Lord Arahanātha** attained salvation with a gap of one-fourth of Palya less by one crore of years. **Lord Mallinātha** attained salvation after a lapse of one thousand crore years followed

by the salvation of **Lord Munisuvratanātha** after a lapse of 54 lac years. The **twenty-first Tīrthankara Lord Naminātha** attained salvation after a gap of six lac years of salvation of his predecessor. The **twenty-second Tīrthankara Lord Neminātha** attained salvation after a gap of five lac years on attaining salvation by his predecessor. The **twenty-third Tīrthankara Lord Pārśvanātha** attained salvation after a gap of 83750 years on salvation of his predecessor. This followed the salvation of **Lord Mahāvīra - the twenty-fourth Tīrthankara** after a gap of 250 years on attaining the salvation by his predecessor. At this time, a period of three years and eight-and-half months were there for the commencement of the fifth spoke.

The Period of Uprooting or Interception (Vyucchitti) of the Religious Order

There has been the absence of the religious order during the period of seven Tīrthankaras starting from the ninth Tīrthankara Lord Puṣpadantanātha and ending upto the fifteenth Tīrthankara Lord Dharmanātha. The tradition of religion has been continuously running during the periods of the remaining seventeen Tīrthankaras (i.e. from 1-8 and from 16-24).

During the religious order of Lord Puṣpadantanātha, there has been absence of religiosity for a period of quarter of a Palya. In other words, there were no people for initiation resulting in the setting of the sun of the religion. There has been uprooting of religion for a period of–

(i) Half-a-Palya during the religious order of Lord Śītalanātha.
(ii) Three-quarters of Palya during the religious order of Lord Śreyānsanātha.
(iii) One Palya during the religious order of Lord Vāsupūjyanātha.
(iv) Three quarters of a Palya during the religious order of Lord Vimalanātha.
(v) Half a-Palya during the religious order of Lord Anantanātha and
(vi) A quarter of a Palya during the religious order of Lord Dharmanātha.

There have been the above seven uprooting periods of the religious order due to the effect of the epoch of extraordinary events (Hundāvasarpiṇī).

(e) The Fifth Spoke of Penury

The fifth spoke of time-wheel commenced after three years and eight and-a-half months on attaining salvation by Lord Mahāvīra. It is named as the spoke of Penury (Duṣamā). In its beginning, the people have a life-span of one hundred and twenty years. Their body height is seven Hastas, H (1 H ~ 1.5 ft.; 10.5 ft ~ 320.50 cm). There are twenty four bones in the back side of the body.

RELIGIOUS ORDER

(1) Omniscients (Kevalī) : The day Lord Mahāvīra attained salvation, his chief-disciple (Gaṇadhara) Gautama acquired omniscience. The day Gautama attained salvation, Sudharmā Svāmī gained omniscience. On his salvation, Jambū Svāmī became omniscient. After the salvation of Jambū Svāmī, there was no adjunct omniscient(Anubaddha Kevalī). The period between attaining the omniscience by Gautama and salvation of Jambūsvāmī is sixty two years.

The last of the omniscients was Śrīdhara who attained salvation at Kundalagiri. The last sage with extraordinary power of sky movement was 'Supārśva Candra'. Vajrayaśa was the last of the Prajnāśramaṇa sages. The ascetic Śrī was the last of the clairvoyants. The last of the crowned king who got Jinistic initiation (Jina Dīkṣā) was Candragupta. Afterwards, no crowned king was initiated.

(2) Five Scriptural Omniscients (Śrutakevalis) : In the ford of Mahāvīra and after the salvation of Jambūsvamī, there have been five 'fourteen pre-canon-proficients' (Caudaha Pūrvī). They had full knowledge of

Dvādaśānga (twelve prime or primary scriptures) also and, thus, were scriptural omniscients. They are : (i) Nandi, (ii) Nandimitra, (iii) Aparājita, (iv) Govardhana and (v) Bhadrabāhu. Their total period is one hundred years.

(3) Eleven Ten-Pre-Canonists (Daśapūrvīs) : There have been eleven saints who were proficient in eleven primary canonical scriptures (Angas) and ten pre-canons. They are, thus, called 'ten-pre-canon-proficients.' They are : (i) Viśakhācārya, (ii) Proṣthila, (iii) Kṣatriya, (iv) Jaya, (v) Nāgasena, (vi) Siddhārtha, (vii) dhṛtisena, (viii) Vijaya, (ix) Buddhila, (x) Ganga deva and (xi) Dharmasena. Traditionally, their total period is one hundred eighty two years. There were no Ten-pre-canonists after them due to change of times.

(4) Five Eleven-Canonical Scripturists (Angadhārīs) : There have been five Ācāryas who were proficient in eleven primary canonical scriptures. They are : (i) Nakṣatra Muni, (ii) Jaipāla, (iii) Pāndu, (iv) Dhruvasena and (v) Kansārya. Their total period is 220 years. There has been no eleven-canonical scripturists after them.

(5) Four Ācārānga-proficients (Proficient in the Text on Monastic Conduct) : There have been four saint-scholars who were proficient in the first primary canonical scripture of Ācārānga. They are : (i) Subhadra, (ii) Yaśobhadra, (iii) Yaśobāhu and (iv) Lohārya. Their total period is 118 years. There has been no pre-canon-proficient or canonical scriptures-proficient after the samādhī of the last of these Ācāranga-proficients.

The total period from Gautama to the last Ācārānga - proficient is 683 years as below :

62 + 100 + 183 + 220 + 118 = 683.

After these saint scholars, the other saints were proficient only in part of the eleven primary canonical scriptures and fourteen pre-canons.

The Religious Order by the End of the Fifth Spoke of Time Wheel

The scriptural tradition, which is the root cause of maintaining religiosity, will continue upto 20,317 years in the fifth spoke. It will be uprooted afterwards due to the change of times. This means that the fifth spoke of time has a duration of 21000 years (20317 + 683). The Jaina religion will continue upto 20,317 years obtained by deducting 683 years from the total of 21000 years. During this remaining period, there will the continuity of the Caturvidha Sangha (a group of four types of Jaina ascetics-Muni, Āryikā, Śrāvaka, Śrāvikā). The people of these times will be mostly non-humble, ill-talented, jealous, full of seven fears and eight prides, quarrelsome, cruel, angry, passioned and associated with three stings (Śalyas—deceit, wrongness and future desires) and three prides (Gāravas) of prosperity, pleasure and calumny.

The Royal Tradition / Successions

When Lord Mahavira attained salvation, Pālaka - the son of Avantī was coronated. His rule lasted for sixty years. Afterwards, the kings of Vijaya lineage ruled for 155 years. They were followed by the rule of the kings of Marunda lineage for the next forty years. Puṣyamitra, then, ruled for thirty years. He was followed by the rule of Vasumitra and Agnimitra for sixty years. Then, Gandharva ruled for one hundred years, Narvāhana ruled for forty years and the Āndhras (Bhṛtyas) ruled for two hundred forty two years. Later, the kings of Gupta lineage ruled for two hundred and thirty one years.

Birth of Kalki and His Deeds

After the rule of the above lineages, the king Kalki was born. He was the son of the king Indra. Kalki was named as 'Caturmukha'. He had a life-span of seventy years and the period of his rule was forty-two years. Thus, the period between the salvation of Lord Mahāvīra and the rule of Kalki turns out to be one thousand years as below :

60 + 155 + 40 + 30 + 60 + 100 + 40 + 242 + 231 + 42 = 1000 years.

Kalki was coronated two hundred seventy five years after the period of Ācārānga proficients:

683 + 275 + 42 = 1000 years.

When six hundred five years and five months were elapsed after the salvation of Lord Mahāvīra, there has been a Śaka king named 'Vikrama' as per Trilokasāra verse 851. The first Kalki was born after the lapse of 394 years and seven months after Vikrama :

605 + 394 + 1 (5+7 months) = 1000 years.

The king Kalki mastered over his Janapadas (Districts) of the kingdom and became greedy and unjust - so much so that he began to demand the first morsel offered to the saints in their Āhāra (food) as a tax. Under this condition, the saints moved without food by offering the tax and taking the point that 'it is the time of obstructions (antrāyas).' At that time, one of the saints acquires clairvoyance. Afterwards, some Asurakumāra (Mansional) deity learns through his clairvoyance that the saints are being inflicted upon. He presumes that the king is anti-religious, so he kills Kalki. The son of Kalki, Ajitanjaya requests the deity to protect him and bows to him by falling on his feet. The deity protects him and asks him to rule religiously. Afterwards, there is right religious prosperity for a period of two years. It goes on decreasing gradually due to the effect of the change of times.

Thus, there is one Kalki after every one thousand years and an Upa-Kalki after each five hundred years. During the period of each Kalki, a saint of the fifth spoke acquires clairvoyance and there is gradual decrease in the strength of Caturvidha Sangha. During the period of Kalki, many kinds of people are seen who have bonded the sinful karmas in their prebirth. They are Candālas, Śabaras, Śvapcas, Kirātas etc. (aboriginals) and also poor, helpless, cruel, infested with many kinds of diseases, holding alms-bowls and worried by movement to other countries.

The Birth of the Last Kalki and His Deeds

There is a gradual decrease in religiosity, life-span and body height in the fifth spoke of time wheel. In the end, there is the birth of the twenty first Kalki of anti-religious nature. There will be a saint named 'Vīrāngaja', a Jaina female ascetic (Āryikā) named 'Sarvaśrī', and a votary (Śrāvaka) and votaress (Śrāvikā) named as Agnidatta and Pangusrī, respectively in his period. The Kalki will master over his sub-ordinate Janapadas and ask his ministers, "Is there any person in my kingdom who may not be under my subjugation ?"

The Ministers will, then, respond, "O Lord, there is one saint who is not subdued to you."

The Kalki will, then, ask the ministers," "Tell me who is that arrogant saint?"

The ministers will, then, say, " O Lord, the saint follows the vows of non-violence etc. totally, he does not have any possessions. He takes the particular purified (prāsuka) food in his hand bowl unobstructively in the mid-day time in the houses of others to sustain his body (and life)." On hearing this, the Kalki will ask, find out personally, where does that sinful saint avowed with non-violence go for taking food? You take his first morsel (mouthful, grāsa) of food as a tax for me.

Afterwards, the saint will immediately offer the first mouthful to the minister when demanded and will go away without taking food presuming this point as an interruption (antrāya) in food. He will also acquire clairvoyance. The saint will, then, call Āryikā 'Sarvaśrī', the votary 'Agnidatta' and the votaress, 'Pangusrī' and tell them with pleasure, "O great souls, the end of the fifth spoke of time-wheel is very near. The life-span of yours and mine is to last only for three more days and this is the last Kalki of this spoke." Then, all the four people will renounce the four-types of foods and other possessions for life-long and undertake the vow of holy death (samādhī). They will have their holy death on the fifteenth day of the dark half of the month of Kārtika (Oct.-Nov.), when the sun will rise in the constellation of Svāti.

After holy death, the saint Vīrāngaja will be born in the Saudharma heaven with a life-span of one Sāgara. The rest of the three will also be born there with a life-span of a little more than a Palya. The same day, an Asurakumāra (Mansional) deity of better class, getting angry over the incident, will kill the king Kalki in the

noon. The fire will also be destroyed at the sun-set.

Thus, the twenty one Kalkis and the same number of Upakalkis take rebirth in the first hell of Ghammā (Ratnaprabhā) with a life-span of one Sāgara due to their anti-religious minds and actions.

(f) The Sixth Spoke of Extreme Penury

The sixth spoke of time-wheel of extreme penury (Ati-duṣamā) begins after three years, 8.5 months of the above incident. This spoke is highly rough i.e. unfavourable. In the beginning of this spoke, the height of the body is 3-3.5 Hastas (5-6 ft.), the number of bones in the back side of the body is twelve and maximum life-span is twenty years. The foods of the people in this spoke are roots, fruits and fish etc. The people are unable to see clothes, trees and houses etc. Hence, all the people are naked and have no houses to live in. They move in forests. They have a smoky colour of their body. They behave like animals. They are cruel, deaf, blind, one-eyed, dumb, poor, full of anger, ugly, miserable and uncivilised. They have irregular (Hunadaka Sansthāna), hunch-backed and dwarf configurations of their body. They are always worried with many types of diseases and pains. They are highly passioned, deluded and most sinful by their agitating nature. They do not have family, friends, sons and wives etc. Their body is foul-smelling. Their hairs are infested with many kinds of small insects as lice etc. They are highly foolish.

In this spoke, only those beings take birth here who arrive from their pre-birth of infernal and sub-human destinity. Also, they are reborn in terrific hells and sub-humans after death. The life-span, body height & strength etc. gradually decrease with the passage of time here. Who is capable of describing their miserable life in words ?

The Time of Dissolution of the Universe (Pralaya Kāla)

When twenty one thousand years less by forty nine days are passed in this sixth spoke, the period of fierce and terrific destruction of the living beings commences. At that time, there blows a deep-sounding and terrific hurricane for a week which results in destroying and uprooting of trees, mountains and rocks. Their uprooting causes deep sadness among the human and sub-human beings and they begin pathetic weeping for clothes and residence.

During this period, numerable differently and total seventy two pairs enter the area between the platforms of the rivers of Gangā and Sindhu and Vijayārdha forests. Besides, the deities and Vidyādharas (proficient in various superpowers by birth) feel compassion for human and sub-human beings and carry numerable of them to the protected places like the above.

Seven Kinds of Rains

At the end of the sixth spoke of time-wheel, the clouds pour out the rains of vile things like (1) very cold water, (2) alkaline water, (3) toxic fluids, (4) smoke (5) dust, (6) thunderbolt and (7) fire-flames to be seen with difficulty each for a seven-day period. Thus, the rains of the mattergies transformed into the above seven forms continue for forty-nine days.

These rains destroy the remaining human beings etc. in the world. The earth infested with toxic fluids and burnt by the rains of fire-flames gets powdered up to one Yojana below the surface level as per Tiloya Paṇṇatti, Chap-4 verse 1551.

Thus, one Yojana of land located over the Citra earth in the Āryan section of the Bharata region gets burnt and destroyed due to the above kinds of rains. The upper part of the land of the Āryan section turns into non-aggregated form due to the rains of thunderbolt and fire and flies away up to the end of the universe.

When this happens, the Āryan section starts shining as mirror plane like the other lands and it gets devoid of dust and mud. The human beings present there (protected in the caves of Vijayārdha mountain etc.) have a height of one Hasta (~1.5 ft.), life-span of 15-16 years and a gradually decreasing potency etc.

Thus, the description of the six spokes of time-wheel of the devolution epoch concludes here.

Present Period

At this time, there is the fifth spoke of the devolution epoch of time wheel at this Bharata Kṣetra of Āryakhand. More than two thousand five hundred years have elapsed since the salvation of the last Tīrthankara Lord Mahāvīra. There are eighteen thousand and five hundred years still to go. Afterwards, there will be the beginning of the sixth spoke of time wheel.

Changes in the Six Spokes of Time Wheel in the Evolution Epoch (Utsarpiṇī Epoch)

After the completion of all the six spokes of devolution epoch, the pleasing epoch of Evolution will begin. It also has six spokes namely (1) Extreme Penury, (2) Penury, (3) Penury-cum-plentitude, (4) Plentitude-cum-penury, (5) Plentitude and (6) Extreme Plentitude. This epoch also has a duration of ten Koḍākoḍi Sāgaras like the devolution epoch. During this epoch, the height, life-span and potency of the living beings gradually increase every day.

The Spoke of Extreme Penury (Ati-duṣamā)

At the beginning of the Evolution epoch, the Puṣkara clouds shower down the comfort producing water on earth, parched with fire flames and thunderbolts, for seven days. This rain results in its cooling. The Kṣira meghas (Milky clouds), then, shower down the milky water for seven days resulting in the earth being full of it with good shine. Afterwards, the Amṛta-meghas (Nectar-clouds) shower down the sweet water or nectar on the earth for seven days resulting into the growth of plants like creepers and clusters. Later, the Rasa-meghas (clouds of juice) shower down the divine juices on earth for seven days resulting in plants etc. being tasty. At this time, the juicy earth becomes full of grainy and medicinal plants and varied kinds of taste and smell appear in them.

When the protected human and subhuman beings begin enjoying this good and cold smell, they come out of their caves. At that time, they are naked and behave like animals. When they become worried with hunger, they eat the fruits, roots and leaves etc. of the trees. The life-span in the first part of this spoke is 15-16 years, the height is one Hasta (~1.5 ft.). Afterwards, their age etc. begin gradually increasing with the change of times. The life-span, radiance, intelligence, arms-strength, body-height and qualities of patience and forbearance etc. gradually and naturally begin improving every time. Thus, when twenty one thousand years are passed, the spoke of extreme penury gets completed in this Bharata region.

The Spoke of Penury (Duṣamā)

On completion of the first evolution spoke, the second spoke of penury commences. During this spoke of time, upto the period of 20,000 years, the food intake of the human and subhuman beings is similar to the fifth spoke of devolution epoch. At the beginning of this spoke of time, the maximum life-span of the living beings is twenty years, their height is 3-3.5 Hastas (~5-6 ft.).

The Birth of Patriarchs (Kulakaras)

When one thousand years are to go for completion of this spoke there will be the beginning of the birth of fourteen Kulakaras at Bharata Kṣetra. Their names will be : (1) Kanaka, (2) Kanakaprabha, (3) Kanakarāja, (4) Kanakadhvaja, (5) Kanakapungava, (6) Nalina, (7) Nalinaprabha, (8) Nalina-rāja, (9) Nalinadhavaja, (10) Nalinapungava, (11) Padmaprabha, (12) Padmarāja, (13) Padmadhvaja and (14) Padma-pungava. Out of these, the first patriarch will have a height of 4 Hastas (~ 6 ft.) and the last patriarch will have a height of seven Hastas (~ 10.5 ft.).

In the period of these Patriarchs, there is no good fire despite many kinds of grains and medicinal plants. On being approached by the humble people, the patriarchs advise them, "You prepare fire by rubbing and cook the grains on the fire. Also, you get married and enjoy your family and friends at your will". The people, whom the patriarchs advise in the above way, are highly uncivilised. It has to be noted here that the custom of marriage starts in the days of the partiarch Padmapungava.

The Spoke of Penury-Cum-Plentitude (Duṣamā-Suṣamā)

After the end of the second spoke, the third spoke of penury-cum-plentitude appears. In the beginning, the height of the people is seven Hastas (~10.5 ft.) and the life-span is one hundred twenty years. At this time, bones of the back side are twenty four. The human beings have bodies of five colours. They observe humility, shame and propriety of conduct. They are fully satisfied and well-off people.

In this spoke only, there are twenty four Tīrthankaras. Out of them, the first Tīrthankara is the son of the fourteenth patriarch. From his times, there is a development of tendency like that existing in Videha region or the fourth spoke of the devolution epoch.

Names of Twenty four Tīrthankaras of the Future

There will be twenty four Tīrthankaras in the future epoch of time. There names are as below:

(1)	Mahāpadma	(2)	Suradeva	(3)	Supārśva
(4)	Svayamprabha	(5)	Sarvaprabha	(6)	Devasuta
(7)	Kulasuta	(8)	Udanka	(9)	Proṣthila
(10)	Jayakīrti	(11)	Munisuvrata	(12)	Ara
(13)	Apāpa	(14)	Niṣkaṣāya	(15)	Vipula
(16)	Nirmala	(17)	Citragupta	(18)	Samādhigupta
(19)	Svayambhū	(20)	Anivṛtti	(21)	Jaya
(22)	Vimala	(23)	Devapāla	(24)	Anantavīrya

Out of these, the first Tīrthankara will have a body height of 7 H (~ 10.5 ft.) and a life-span of 116 years, while the last Tīrthankara will have a body height of 500 D and the life-span of a Pūrva-koti years.

Names of the Future Tīrthankaras in their Third Earlier Rebirth

The venerables, binding the world-round praiseworthy karmic nature of Tīrthankara physique-making karma in the third earlier birth, had their names as below :

(1)	Śreṇika	(2)	Supārśva	(3)	Udanka
(4)	Proṣthila	(5)	Kṛtasūya	(6)	Kṣatriya
(7)	Pāvila	(8)	Śankha	(9)	Nanda
(10)	Sunanda	(11)	Śaśānka	(12)	Sevaka
(13)	Premaka	(14)	Atoraṇa	(15)	Raivata
(16)	Kṛṣṇa	(17)	Balarāma	(18)	Bhagali
(19)	Vigali	(20)	Dvīpāyana	(21)	Māṇavaka
(22)	Nārada	(23)	Surūpadatta	(24)	Satyakiputra(Rudra)

All of them were born in royal families.

Twelve Cakravartīs of the Future

The twelve Cakravartīs, who will take birth during the period of the future Tīrthankaras' period, will be named as below :

(1)	Bharata	(2)	Dīrghadanta	(3)	Muktadanta
(4)	Gūdhadanta	(5)	Śrīṣeṇa	(6)	Śrībhūti
(7)	Śrīkānta	(8)	Padma	(9)	Mahāpadma
(10)	Citravāhana	(11)	Vimala-vāhana	(13)	Ariṣtasena

Nine Balbhadras of the Future

There will be nine Balabhadras in the future named as below :

(1)	Candra	(2)	Mahācandra	(3)	Candradhara
(4)	Varacandra	(5)	Sinhacandra	(6)	Haricandra
(7)	Śrīcandra	(8)	Pūrṇacandra	(9)	Sucandra

The persons are born as Balabhadras due to the earning of sacred karmas (puṇya) without any future desires (Nidāna) in their earlier birth.

Nine Nārāyaṇas of the Future

There will be nine Nārāyaṇas in the future named as below :

(1)	Nandī	(2)	Nandimitra	(3)	Nandibhūti
(4)	Nandiṣeṇa	(5)	Bala	(6)	Mahābala
(7)	Atibala	(8)	Tripṛṣtha	(9)	Dvipṛṣtha

They will be younger brothers of Balabhadras.

The Nine Prati-Nārāyaṇas of the Future

There will be nine Prati-Nārāyanas in the future who are named as below :

(1)	Śrīkaṇṭha	(2)	Harikaṇṭha	(3)	Nīlakaṇṭha
(4)	Aśvakaṇṭha	(5)	Sukaṇṭha	(6)	Śikhikaṇṭha
(7)	Aśvagrīva	(8)	Hayagrīva	(9)	Mayūra-grīva

They will be the enemies of the Nārāyaṇas.

The above sixty-three Śalākā Puruṣas will be born in this third spoke of the evolution epoch which has a duration of one Koḍākoḍī Sāgaras less by 42000 years. In the end of this spoke, the life-span of the people will be one Pūrva-koti years. Their height will be 525 D. They will have sixty four bones in the back-side of the body. The males and females of this spoke of time will be as beautiful as male and female divinities.

Plentitude-cum-Penury Spoke of Time (Suṣamā-Duṣamā)

After the third spoke is over, the fourth spoke of plentitude-cum-penury begins. In the beginning of this spoke, the people have a life-span of one Pūrva-koti years. Their height is 500 D. Their life-span, height and strength gradually increase as the time passes. The wish-fulfilling tress (Kalpavṛkṣas) also start growing in this spoke.

At this time, the earth is known as 'minimal land of enjoyment' (Jaghanya Bhoga-bhūmi). In the end of this kind of land of enjoyment, the men have a life-span of one Palya, they have a body height of one Kosa (~2 miles) and the colour of their body is like the Priyangu fruit. The wish-fulfilling trees yield the materials for enjoyment. The lands of enjoyment have been described while giving the details of the devolution epoch. The duration of this fourth spoke is 2 Koḍākoḍi Sāgaras.

The Fifth Spoke of Plentitude (Suṣamā)

After the end of the fourth spoke, the fifth spoke of plentitude starts. At the beginning of this spoke, the life-span etc. of the human and sub-human beings is similar to that of the people of medial (Madhyama) lands of enjoyment. In other words, the life-span starts from one Palya and gradually increases upto two Palya. Similarly, the body-height also increases from one Kosa to two Kosas (~ 4 miles) in the end. These males and females have a face like full moon, they are extremely humble and well-in-conduct observance. They have one hundred twenty eight bones in the back side. The duration of this spoke is three Koḍākoḍī Sāgaras.

The Sixth Spoke of Extreme Plentitude (Suṣamā-Suṣamā)

The sixth spoke of extreme plentitude starts after the end of the fifth spoke of time. In the beginning of this spoke, the life-span etc. of the people are as per early descriptions. Because of the change of times, the life-span of the human and subhuman beings goes on increasing up to three Palyas & height becomes 3 Kosas, their body colour is like the rising sun and the bones of their back side increase up to two hundred and fifty six. At that time, the earth becomes known as supreme or maximal (Uttama) land of enjoyment. The enjoyment landers are enriched with the power of proteation (Vikriyā) to create large family and enjoy their lives. The duration of this spoke is four Koḍākoḍī Sāgaras.

Thus, the changes in the six spokes of the Evolution epoch get completed. This follows the epoch of devolution and so on in a regular cyclic way.

The Regions of Six-fold Time- Spoke Changes

There are infinite-times-infinite six-spoked epochs of Devolution and Evolution in the Āryan section of the Bharata and Airāvata regions of Jambūdvīpa like the maxim of Persian wheel of water pots for drawing water from the well. (Persian wheel, Araha-ghatikā Nyāya).

The Epoch of Extra-Ordinary Events (Hundāvasarpiṇī)

There appears an epoch of extraordinary events after the lapse of the tradition of innumerable devolution and evolution epochs or Aeons. The epoch of extraordinary event is marked by the following special events :

(1) There are rains etc. and birth of the deficient-sensed beings even when there is some more time to go for completion of the third spoke of devolution epoch.

(2) In the same third spoke, there is the loss of the wish-fulfilling trees and beginning of activities related with the lands of action (Karmabhūmis).

(3) In the same period, the first Tīrthankara and the first Cakravartī are also born.

(4) Due to the effect of this epoch, there is break in the victory mission of the Cakravartīs.

(5) The Cakravartī also creates a new caste of Brāhmanas in the society in this spoke.

(6) In this spoke of this epoch, there are only fifty-eight Śalākā Puruṣas (instead of 63 as in normal third spoke of devolution epoch).

(7) There is discontinuity of religiosity in the religious order of seven Tīrthankaras from ninth to sixteenth in this spoke.

(8) In this spoke, eleven Rudras and quarrel-loving nine Nāradas are also born.

(9) In this epoch, there are inflictions on the seventh, twenty-third and the last twenty-fourth Tīrthankaras.

(10) In the third, fourth and fifth spokes of this epoch, the varied kinds of people also become visible. They are cruel and sinner false gods (Ku-deva) and falsely guised beings (Ku-lingī). They are trouble-shooters for good religiosity.

(11) There are many low status aboriginal castes like Candālas, Śabaras, Kirātas and Śvapacas etc. taking birth in this epoch. There are 42 Kalkis and Upa-Kalkis.

(12) There are many varieties of calamity like overrains, no-rains, earthquakes, thunderbolt falls and the like in the epoch of extraordinary events.

Eleven Rudras

The eleven Rudras having proficiency in primary canonical scriptures have taken birth during the periods of different Tīrthankaras. Their names are given below :

(1)	Bhimāvalī	(2)	Jitaśatru	(3)	Rudra
(4)	Vaiśvānara	(5)	Supratiṣtha	(6)	Acala
(7)	Pundarīka	(8)	Ajitandhara	(9)	Ajitanābhi
(10)	Pītha	(11)	Sātyaki-putra.		

The first of these Rudras was born during the period of the first Tīrthankara Lord Vṛṣabhanātha. Jitaśatru-the second was born during the period of second Tīrthankara Lord Ajitanātha. The later seven Rudras were born serially during the periods of the seven Tīrthankaras from Lord Suvidhinātha onwards. The tenth Rudra was born during the period of Lord Śāntinātha and the last Sātyakiputra was born during the period of Lord Mahāvīra. All the Rudras got derailed from their austerities due to sensualism during their studies of the tenth pre-canon. They got devoid of the gem of righteousness and went to terrific hells. Please see the details about the Rudras in Table-9 in the end of the book.

Nine Nāradas

The nine Nāradas are :

(1)	Bhīma	(2)	Mahābhīma	(3)	Rudra
(4)	Mahārudra	(5)	Kāla	(6)	Mahākāla
(7)	Durmukha	(8)	Narakamukha	(9)	Adhomukha.

All these Nāradas are terrific and make troubles and cause weeping to others. They are the treasure house of sins. All the Nāradas are fond of quarrels and wars. That is why, they have gone to hells like the Vāsudevas.

Twenty four Kāma-devas (Cupid-like Men)

There have been twenty four Kāma-devas during the period of twenty four Tīrthankaras. They have an incomparable face and personality. Their names are as below :

(1)	Lord Bāhubalī	(2)	Amitateja	(3)	Śrīdhara
(4)	Yaśobhadra	(5)	Prasenajita	(6)	Candravarṇa
(7)	Agnimukti	(8)	Sanatkumāra	(9)	Vatsarāja
(10)	Kanakaprabha	(11)	Siddhavarṇa	(12)	Śantinātha
(13)	Kunthunātha	(14)	Arahanātha	(15)	Vijayarāja
(16)	Śrīcandra	(17)	Nala, the king	(18)	Hanumāna
(19)	Balagaja	(20)	Vasudeva	(21)	Pradyumna
(22)	Nāgakumāra	(23)	Śrīpāla	(24)	Jambūsvāmi

Out of them, Sanatkumāra was a Cakravartī, while Śāntinātha, Kuntunātha, Arahānatha were Tīrthankaras as well as Cakravartīs.

It is admitted that the Tīrthankaras (24), their parents (48), Cakravartīs (12), Balbhadras (9), Nārāyaṇas (9), Rudras (11), Nāradas (9), Kāmadevas (24) and Patriarchs (14) are liberatable personages and they attain salvation either in the same birth or in few rebirths. The Tīrthankaras attain salvation in the same birth as a rule. There is no such rule for other categories of the above personages.

सम्यग्दर्शन की महिमा

–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

यः सारः सर्वसारेषु, स सम्यग्दर्शनं मतम् ।
आ मुक्तेर्नहि मां मुञ्चेत्, वृत्तं च विमलीक्रियात्।।

सम्पूर्ण सारों में जो ''सार'' है वह सम्यग्दर्शन ही है। मोक्ष होने तक वह मुझे न छोड़े या मुझसे न छूटे और मेरे चारित्र को भी निर्मल करे।

(सम्यग्दर्शन, सद्दर्शन, सद्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि, सद्दृक्, सम्यग्दृक् और सम्यक्त्व ये सब पर्यायवाची नाम हैं। सत् या सम्यक् शब्द प्रशस्त और प्रशंसावाची हैं। दृशिर् धातु यद्यपि देखने अर्थ में है तो भी मोक्षमार्ग के प्रकरण में उसका 'श्रद्धान' अर्थ ग्राह्य है चूँकि धातुओं के अनेक अर्थ पाये जाते हैं। अतः समीचीन श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन हो जाता है। यह मोक्षमार्ग का मूल है। इसके औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक ऐसे तीन भेद होते हैं। ये भेद अंतरंग में दर्शनमोह और अनंतानुबंधी कषाय के उपशम, क्षयोपशम और क्षय की अपेक्षा से होते हैं। अतः इनके अंतरंगकार्य की अपेक्षा से सार्थक हैं।

सम्यक्त्व के निसर्गज और अधिगमज ये दो भेद भी माने गये हैं। इन दोनों में अंतरंग कारण उपर्युक्त उपशमादि तीन में से कोई भी हो सकता है किंतु बाह्य कारणों में अंतर होने से ही इनके नाम में अंतर पड़ गया है। ऐसे ही आज्ञासम्यक्त्व आदि दश भेदों में भी अंतरंग कारण समान होते हुए भी बाह्य कारणों की अपेक्षा से दश प्रकार हो जाते हैं। सराग और वीतराग अथवा व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा भी सम्यक्त्व के दो भेद होते हैं। इनमें अंतरंग कारण में कथंचित् अंतर है कथंचित् नहीं भी है। जब उपशम, क्षयोपशम को सराग कहकर क्षायिक को वीतराग कहा जाता है तब अंतरंग कारण में अंतर हो जाता है। और जब द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी में चढ़कर वीतरागता प्राप्त कर वीतराग सम्यग्दृष्टि कहलाता है तब मात्र बाह्य कारणों की अपेक्षा से ही अंतर माना जाता है। ऐसे व्यवहार और निश्चय में भी समझना चाहिए। चूँकि समयसार टीका में भेदरत्नत्रय कृत सरागसम्यग्दृष्टि और अभेदरत्नत्रय में वीतराग सम्यग्दृष्टि संज्ञा दी है।

इन सभी सम्यग्दर्शनों के लक्षण आगमानुसार आपको इस परिच्छेद में देखने को मिलेंगे। पुनः आपको स्वयं आगम की तुला से तोलना होगा कि मैं सराग सम्यग्दृष्टि हूँ या वीतराग सम्यग्दृष्टि। यदि आप अपने को सराग सम्यग्दृष्टि निश्चित कर लेंगे तो आपको अपने सम्यग्दर्शन को आठ अंग सहित बनाना होगा और भी उसके शंका, मद आदि दोषों को दूर कर अन्य-अन्य गुणों को वृद्धिंगत करते हुए वीतराग सम्यक्त्व को प्राप्त करने के लिये भावना भानी होगी।)

उपशम सम्यक्त्व–अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को सर्वप्रथम उपशम सम्यग्दर्शन ही होता है। अतः वह मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी चतुष्क इन पाँच के उपशम से होता है। सादि मिथ्यादृष्टि के सात प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। कदाचित् मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलना हो जाने पर पाँच प्रकृतियों के उपशम से भी होता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त ही है।

कषायपाहुड़सुत्त में दर्शनमोह की उपशमन विधि के अनंतर सम्यग्दृष्टि को जा लक्षण किया है सो देखिये–

सम्यक्त्व का लक्षण

सम्माइट्ठी जीवो पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा[1]।।107।।

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो नियम से श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् सद्भूत अर्थ

1. कषायपाहुड़सुत्त अधिकार 10, गाथा 107, पृ. 637।

को स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के नियोग से असद्भूत अर्थ का भी श्रद्धान करता है।

यह गाथा महान् ऋषिप्रवर श्री गुणधर आचार्य की है। ये आचार्य षट्खंडागम सूत्रके रचयिता ग्रन्थकार श्री पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य से भी प्रथम हुये हैं। इन्होंने 'कषाय पाहुड़' नाम का जो ग्रंथबनाया है उस पर श्री यतिवृषभ आचार्य ने चूर्णीसूत्रों की रचना की है तथा श्री वीरसेनाचार्य ने उस मूल गाथा और चूर्णीसूत्रों पर 'जयधवला' नाम से टीका रची है।

इस गाथा को यथास्थान बहुत से आचार्यों ने प्रयुक्त किया है। किन्हीं ने ज्यों की त्यों दे दिया है और किन्हीं ने उसी के अभिप्रायरूप किन्तु कुछ परिवर्तित रूप से दिया है।

यथा–धवला की छठी पुस्तक में यह 'गाथा[1]' ज्यों की त्यों है। धवला की प्रथम पुस्तक में यह गाथा निम्नरूप से है।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा[2]।।110।।

भगवती आराधना में यह गाथा ज्यों की त्यों है। पुनः आगे कहते हैं–

"सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी।।33।।

पुनः सूत्र से सम्यक् अर्थ को दिखाने पर भी जब कोई श्रद्धान नहीं करता है तो वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है–

शिवकोटि आचार्य की यह भी गाथा ध्यान देने योग्य है–

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो विहु मिच्छाइट्ठी मुणेयव्वो[3]।।39।।

जो जीव सूत्रनिर्दिष्ट समस्त वाङ्मय का श्रद्धान करता हुआ भी यदि एक पद का श्रद्धान नहीं करता है तो वह समस्त श्रुत की रूचि करता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है।

क्षयोपशम सम्यक्त्व–सम्यग्दर्शन गुण को विपरीत करने वाली प्रकृतियों में से देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति के उदय होने पर जो आत्मा के परिणाम होते हैं उनको वेदक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। वे परिणाम चल, मलिन या अगाढ़ होते हुये भी नित्य ही अर्थात् जघन्य अंतर्मुहूर्त से लेकर उत्कृष्ट छ्यासठ सागर पर्यंत कर्मों की निर्जरा के कारण हैं। इस सम्यक्त्व का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट छ्यासठ सागर प्रमाण है तथा मध्यम के अनेक भेद हैं।

जिस प्रकार एक ही जल अनेक कल्लोलरूप के परिणत होता है, उसी प्रकार से जो सम्यग्दर्शन सम्पूर्ण तीर्थंकर या अर्हंतों के समान अनंत शक्ति के होने पर भी शांतिनाथ जी शांति के लिए और श्री पार्श्वनाथ जी रक्षा करने के लिए समर्थ हैं, इस तरह नाना विषयों में चलायमान होता है उसको चल सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिस प्रकार शुद्ध सुवर्ण भी मल के निमित्त से मलिन कहा जाता है, उसी तरह सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से जिसमें पूर्ण निर्मलता नहीं है उसको मलिन सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिस तरह वृद्ध पुरूष के हाथ में ठहरी हुई भी लाठी कांपती है उसी तरह जिस सम्यग्दर्शन के होते हुये भी अपने बनवाये हुए मंदिर आदि में 'यह मेरा मंदिर है' और दूसरे के बनवाये मंदिर आदि में 'यह दूसरे का है' ऐसा भाव होवे, उसको अगाढ़ सम्यग्दर्शन कहते हैं।

लब्धिसार में भी कहते हैं–

सम्मुदये चलमलिणमगाढं सद्दहदि तच्चयं अत्थं।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।105।।
सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी।।106।।

1. धवला पुस्तक 6, पृ. 242। 2. धवला पु. 1, पृ. 174, गोम्मटसार जीवकांड गाथा 27। 3. भगवती आराधना प्रा.आ.।

सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर यह जीव चल, मलिन व अगाढ़रूप से तत्त्वों के अर्थ का श्रद्धान करता है अर्थात् सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से तत्त्वार्थश्रद्धान रूप सम्यक्त्व में चल, मलिन, अगाढ़ ये तीन दोष लगते रहते हैं। ऐसा यह सम्यग्दृष्टि जीव कदाचित् आप स्वयं विशेष अर्थ को नहीं जानता हुआ गुरु के नियोग से असत् अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है तो भी वह सम्यग्दृष्टि ही रहता है। पुनः कदाचित् किसी अन्य आचार्य के द्वारा गणधर आदि प्ररूपित सूत्र को दिखाकर सम्यक् स्वरूप बतलाये जाने पर भी यदि वह अपनी पूर्व मान्यता को हठ बुद्धि से नहीं छोड़ता है तो वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

यहाँ पर 'अजाणमाणो गुरुणियोगा' इस चरण का अर्थ विशेष महत्त्व रखता है। देखिये टीकाकार के शब्दों में–

'अयं वेदकसम्यग्दृष्टिः स्वयं विशेषमजानानो गुरोर्वचनाकौशलदुष्टाभिप्रायगृहीतविस्मरणादिनिबन्धनान्नियोगादन्यथा व्याख्यानासद्भावं तत्त्वार्थेष्वसद्रूपमपि श्रद्दधाति तथापि सर्वज्ञाज्ञाश्रद्धानात्सम्यग्दृष्टिरेवासौ। पुनः कदाचिदाचार्यांतरेण गणधरादिसूत्रं प्रदर्श्य व्याख्यायमानं सम्यग्रूपं यदा न श्रद्दधाति ततः प्रभृति स एव जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवति, आप्तसूत्रार्थाश्रद्धानात[1]।''

यह वेदक सम्यग्दृष्टि स्वयं विशेष को नहीं समझता हुआ गुरु के वचनों की अकुशलता से उनके दुष्ट अभिप्राय से अथवा उनके गृहीत अर्थ के विस्मरण आदि के निमित्त से विपरीत व्याख्यान किये गये असद्भाव का तत्त्वार्थों के असत् स्वरूप का भी श्रद्धान कर लेता है फिर भी सर्वज्ञ देव की आज्ञा का श्रद्धान करने से वह सम्यग्दृष्टि ही है। पुनः कदाचित् अन्य आचार्य के द्वारा गणधरादि के सूत्रों को दिखाकर सम्यक् स्वरूप का व्याख्यान किये जाने पर भी यदि वह उस समय उस पर श्रद्धान् नहीं करता है तो वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है क्योंकि आप्त कथित सूत्र के अर्थ का वह श्रद्धान नहीं कर रहा है।

इससे यह समझ लेना चाहिये कि वर्तमान के उपलब्ध जो पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रंथ हैं। जैसे धवल, जयधवल, महाधवल, समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, रयणसार, मूलाचार, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, आदिपुराण, पद्मपुराण, उत्तर पुराण, हरिवंशपुराण, भावसंग्रह, वराँगचरित, वसुनंदिश्रावकाचार आदि। इन ग्रंथों के रचयिता आचार्यों को गुरु मानकर उनके रचित ग्रंथों पर पूर्णतया श्रद्धान रखना चाहिये। यदि उन्होंने गुरुपदेश के विस्मरण से या अज्ञान से अथवा दुष्ट अभिप्राय से भी कुछ कहा होगा तो उस दोष के भागी वे होंगे न कि हम, हम तो गुरु वाक्यों पर दृढ़श्रद्धान रखने से सम्यग्दृष्टि ही बने रहेंगे। चूँकि यह गाथा हमें जो सम्यग्दृष्टि का लक्षण बता रही है उस पर हर एक विद्वानों को लक्ष्य देना उचित है। यह गाथा सामान्य आचार्य के मुख से नहीं निकली है किन्तु श्रीकुंदकुंददेव के भी पहले के एक विशेष महर्षि गुणधरदेव के मुख-कमल से निकली हुई है। वास्तव में इसमें गुरु का एक विशेष ही महत्त्व झलक रहा है। अतः अज्ञायमान गुरु के नियोग से यदि कुछ गलत भी विषय में हमारा श्रद्धान चल रहा है तो वह सही ही है। कब तक? जब तक कि उसके विरोध में कोई आचार्यप्रणीतसूत्र वाक्य नहीं मिल जाते हैं तभी तक। यदि पुनः उन सूत्र वाक्यों को देखकर भी हम अपनी धारणा नहीं बदलते हैं तो उसी समय से हम मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं। अतः आगम वाक्य देख लेने के बाद दुराग्रही बनकर अपने सम्यक्त्वरत्न को छोड़ना उचित नहीं है।

क्षायिकसम्यक्त्व–दर्शनमोह की मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व तथा अनंतानुबंधी चतुष्क इन सात प्रकृतियों के सर्वथा क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

'दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने पर यह जीव उसी भव में या तीसरे अथवा चौथे भव में सिद्ध पद को प्राप्त कर लेता है, किन्तु चौथे भव का उल्लंघन नहीं करता है तथा दूसरे सम्यक्त्वों की तरह यह सम्यक्त्व नष्ट भी नहीं होता।'

क्षायिक सम्यग्दृष्टि बहुतेक उसी भव से मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है अथवा यहाँ से देवपर्याय को प्राप्तकर वहाँ से आकर

1.लब्धिसार टीका, पृ. 155।

मोक्ष प्राप्त करने में तृतीय भव हो जाता है। कदाचित् किसी ने सम्यक्त्व होने से पहले नरकायु बाँध ली पुनः सम्यक्त्व हुआ तो भी वह नरक जाकर, वहाँ से आकर मनुष्य होकर मोक्ष चला जायेगा। यदि सम्यक्त्व के पहले तिर्यंच आयु या मनुष्य आयु बाँध ली है तो क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर भोगभूमिया मनुष्य होकर वहाँ से स्वर्ग जाकर पुनः यहाँ आकर मोक्ष प्राप्त करेगा, इसमें चौथे भव में मोक्ष प्राप्ति होती है, किन्तु इससे अधिक भव क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं ले सकता है।

'यह सम्यक्त्व इतना दृढ़ होता है कि तर्क तथा आगम से विरुद्ध श्रद्धान को भ्रष्ट करने वाले वचन या हेतु उसको भ्रष्ट नहीं कर सकते। अत्यंत भयोत्पादक या ग्लानिकारक पदार्थों को देखकर भ्रष्ट नहीं होता। यदि कदाचित् तीनलोक उपस्थित होकर भी अपने श्रद्धान से भ्रष्ट करना चाहें तो भी वह भ्रष्ट नहीं होता[1]।'

इस सम्यक्त्व का जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है उत्कृष्टकाल कुछ अधिक तेंतीस सागर प्रमाण है।

प्रश्न–स्त्रियों में कौन-कौन सम्यक्त्व होते हैं?

उत्तर–स्त्रियों में औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होते हैं, क्षायिक नहीं।

प्रश्न–पुनः स्त्रीवेद से क्षपक श्रेणी में आरोहण करना, मोक्ष जाना कैसे होगा?

उत्तर–वह भाववेद की अपेक्षा कथन है। अर्थात् कोई पुरूष द्रव्य से तो पुरूषवेदी है और यदि भाव से स्त्रीवेदी अथवा नपुंसकवेदी है तो वह मोक्ष जा सकता है। यथा–''क्षायिक सम्यक्त्व स्त्रीवेद में भाववेद की अपेक्षा से ही है।''[2]

शंका–तो फिर स्त्रियों में चौदह गुणस्थान होते हैं यह कथन कैसे बनेगा?

समाधान–''ऐसा नहीं कहना, क्योंकि भावस्त्रीवेद से युक्त मनुष्यगति में चौदह गुणस्थानों को सद्भाव मान लेने में कोई विरोध नहीं है।''[3] अतः द्रव्य स्त्रियों के क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है।

सम्यक्त्व के दो भेद भी होते हैं–निसर्गज और अधिगमज।

निसर्गज सम्यक्त्व–जो सम्यग्दर्शन गुरु के उपदेश की अपेक्षा न करके उत्पन्न होता है वह निसर्गज कहलाता है। अथवा 'गुरु के अल्प उपदेशमात्र से उत्पन्न हो जाता है' ऐसा पूर्व में कारण के प्रकरण में कहा गया है।

अधिगमज सम्यक्त्व–इस सम्यक्त्व में गुरु का उपदेश प्रमुख है अर्थात् गुरु के उपदेश का अवलंबन लेकर ही यह सम्यक्त्व प्रकट होता है अतः इसको अधिगमज सम्यक्त्व कहते हैं।

सम्यक्त्व के दश भेद

''वह सम्यग्दर्शन आज्ञासमुद्भव, मार्गसमुद्भव, उपदेशसमुद्भव, सूत्रसमुद्भव, बीजसमुद्भव, संक्षेपसमुद्भव, विस्तारसमुद्भव, अर्थसमुद्भव, अवगाढ़ और परमावगाढ़, इस प्रकार से दश प्रकार का है।''[4]

1. दर्शनमोह के उपशांत होने से ग्रंथश्रवण के बिना केवल वीतराग भगवान् की आज्ञा से ही जो तत्त्वश्रद्धान उत्पन्न होता है उसे 'आज्ञा सम्यक्त्व' कहा गया है।

2. दर्शनमोह का उपशम होने से जो निर्ग्रन्थलक्षण कल्याणकारी मोक्षमार्ग का श्रद्धान होता है उसे 'मार्ग सम्यग्दर्शन' कहते हैं अर्थात् निर्ग्रन्थ दिगम्बर मार्ग ही मोक्षमार्ग है ऐसा श्रद्धान मार्ग सम्यग्दर्शन है।

3. तिरेसठ शलाका पुरूषों के पुराण के उपदेश से जो सम्यग्दर्शन होता है उसे आगम में प्रवीण गणधरदेव ने 'उपदेश सम्यग्दर्शन' कहा है।

4. मुनि के सकलचारित्र को सूचित करने वाले आचारसूत्र को सुनकर जो तत्त्वश्रद्धान होता है उसे उत्तम 'सूत्र सम्यग्दर्शन' कहा गया है।

5. जिन जीवादि पदार्थों के समूह का तथा गणितादि विषयों का ज्ञान दुर्लभ है उनका किन्हीं बीजपदों के द्वारा ज्ञान

---

1. गोम्मटसार जीवकांड गा. 646, 647। 2. ''क्षायिकपुनर्भाववेदेनैव'' टिप्पणी, सर्वार्थसिद्धि (ज्ञानपीठ से प्र.)। 3. धवला पु. 1, पृ. 335। 4. आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्। विस्तारार्थाभ्यां भवमवपरमावादिगाढं च।।11।। (आत्मानुशासन)

प्राप्त करने वाले भव्य जीव के जो दर्शनमोहनीय के असाधारण उपशमवश तत्त्वश्रद्धान होता है उसे 'बीज सम्यग्दर्शन' कहते हैं।

6. जो भव्यजीव पदार्थों के स्वरूप को संक्षेप से ही जान करके तत्त्वश्रद्धान को प्राप्त हुआ है उसके उस सम्यग्दर्शन को 'संक्षेप सम्यग्दर्शन' कहा है।

7. जो भव्यजीव बारह अंगों को सुनकर तत्त्वश्रद्धानी हो जाता है उसे 'विस्तार सम्यग्दर्शन' से सहित जानो।

8. अंग बाह्य आगमों के पढ़े बिना भी उनमें प्रतिपादित किसी पदार्थ के निमित्त से जो श्रद्धान होता है वह 'अर्थ सम्यग्दर्शन' कहलाता है।

9. अंगों के साथ अंगबाह्य श्रुत का (सर्वश्रुत का) अवगाहन करके जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है उसे 'अवगाढ़ सम्यग्दर्शन' कहते हैं।

10. केवलज्ञान के द्वारा देखे गये पदार्थों के विषय में जो रुचि होती है सो यहाँ 'परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन' इस नाम से प्रसिद्ध है।

इन दशों प्रकार के सम्यक्त्व में से अंत के चार सम्यक्त्वों के अतिरिक्त आदि के छह सम्यग्दर्शन में पाँचों लब्धियों को प्राप्त करके दर्शन मोहनीय का उपशम आदि होना विवक्षित है। अंत के तीन में तो अंग-पूर्व रूप श्रुतज्ञान की अपेक्षा से जो विशेषता आती है वही उन-उन सम्यक्त्व के नाम से विवक्षित हैं क्योंकि वहाँ तो पहले से सम्यक्त्व विद्यमान ही है। कारण भाव मिथ्यादृष्टि मुनि को अधिक से अधिक ग्यारह अंग तक ज्ञान हो सकता है बारहवें अंग और पूर्वों का नहीं और अंतिम सम्यक्त्व तो केवली भगवान् के पूर्णज्ञान की विवक्षा से ही वर्णित है।

पूर्व के छह सम्यक्त्वों में भी यदि गुरु का उपदेश न मिले तो देशनालब्धि को पूर्वभव के संस्कारवश या गुरु के लाभ मात्र आदि रूप से समझ लेना चाहिए।

आज्ञा सम्यक्त्व आदि छह सम्यक्त्वों में बाह्य कारण प्रधान है चूँकि इनमें बाह्य कारणों की अपेक्षा से ही भेद हुआ है तथा विस्तार आदि तीन सम्यक्त्व में श्रुतज्ञानरूप अंतरंग कारण प्रधान है और अंतिम सम्यक्त्व में तो केवलज्ञान की अपेक्षा है।

इस तरह से सम्यक्त्व में औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक की अपेक्षा से तीन भेद कहे हैं। निसर्गज और अधिगमज की अपेक्षा से दो भेद हो गये हैं एवं आज्ञा सम्यक्त्व आदिरूप से दश भेद किये गये हैं।

सराग और वीतराग की अपेक्षा भी सम्यक्त्व के दो भेद होते हैं। अध्यात्म ग्रंथों में इन्हीं व्यवहार सम्यक्त्व और निश्चय सम्यक्त्व नाम कहा है।

पूर्वाचार्यों ने सराग अथवा व्यवहार सम्यक्त्व को कहाँ तक माना है और वीतराग अथवा निश्चयसम्यक्त्व कहाँ से शुरू होता है? अब इस विषय पर विशद प्रकाश डाला जाता है।

सराग सम्यक्त्व–कषाय प्राभृत ग्रंथ में श्री गुणधर आचार्य ने तो दर्शनमोह के उपशम आदि से होने वाले सम्यक्त्व का लक्षण व्यवहार प्रधान किया ही है। यथा–

सम्माइट्ठी जीवो पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा।।107।।

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञदेव के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो नियम से श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् अज्ञानवश सद्भूत अर्थ को स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के नियोग से असद्भूत अर्थ का भी श्रद्धान करता है।

क्षायिक सम्यक्त्व को वीतराग सम्यक्त्व[1] कहने की अपेक्षा यह लक्षण वीतराग सम्यग्दृष्टि का भी हो जाता है क्योंकि चतुर्थ, पंचम और छठे गुणस्थान में यह लक्षण संभव ही है और आचार्यों की तो बात ही क्या, अकलंकदेव आदि ने क्षायिक

1. लब्धिसार टीका पृ. 144।

सम्यक्त्व को वीतराग कहा है सो ही आगे दिया है। साक्षात् गौतमस्वामी जो कि विपुलमति मनःपर्ययज्ञान के धारी थे, सात ऋद्धियों से समन्वित थे, तद्भव मोक्षगामी थे और तीस वर्ष तक भगवान महावीर स्वामी के चरण सानिध्य में रहकर उनकी दिव्य अमृतमयी दिव्यध्वनि को श्रवण किया था और जिन्होंने द्वादशांगरूप में श्रुत की रचना की थी। ऐसे श्री गौतम गणधर मुनियों के पाक्षिक प्रतिक्रमण में दर्शनाचार का लक्षण करते हुए कहते हैं–

''दंसणायारो अट्ठविहो–

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा चेदि।।

अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए कंखाए विदिगिंछाए अण्णदिट्ठी पसंसणदाए परपाखंडपसंसणदाए, अणायदणसेवणदाए अवच्छल्लदाए अप्पपहावणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।''

दर्शनाचार आठ प्रकार का है–निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना। मैंने शंका से, कांक्षा से, विचिकित्सा से, अन्य दृष्टि की प्रशंसा से, परापाखण्ड की प्रशंसा से, अनायतन के सेवन से, अवात्सल्य से और अप्रभावना से जो इस आठ प्रकार के दर्शनाचार में विराधना की है वह मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

इस प्रकार से श्री गौतम स्वामी ने मुनियों तक के लिए यह व्यवहारप्रधान सम्यक्त्व बतलाया है। अब अध्यात्म योगी श्री कुंदकुंददेव के वचनों में देखिये–

श्री कुंदकुंददेव दर्शनपाहुड़ में सम्यक्त्व का लक्षण बताते हुए कहते हैं—

''छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो।।19।।

छह द्रव्य, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व ये जिनेन्द्रदेव द्वारा कहे गये हैं। इनके स्वरूप को जो श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि है।

पुनः व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा कहते हैं–

जीवादी सद्दहणं सम्मतं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मतं।।20।।

जिनेन्द्रदेव ने जीवादि पदार्थों के श्रद्धान को व्यवहार से सम्यक्त्व कहा है और अपनी आत्मा के ही श्रद्धान को निश्चय से सम्यक्त्व कहा है[1]।''

आगे चारित्रपाहुड़ में चारित्र के दो भेद करते हुए पहले सम्यक्त्वचरण चारित्र को कहते हैं—

''जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं[2]।''

प्रथम जो सम्यक्त्व का आचरणस्वरूप चारित्र है वह जिनेन्द्रदेव के ज्ञान से देखा हुआ शुद्ध है।

भावार्थ–चारित्र के दो भेद हैं–सम्यक्त्वचरण और संयमचरण।

आठ अंग आदिरूप आचरण सम्यक्त्वचरण है और श्रावक के बारह व्रत तथा मुनि के महाव्रत आदि रूप चारित्र को संयमचरण कहते हैं।

पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वचरण को जानकर शंकादि दोषों को छोड़ना चाहिए। क्योंकि वे सम्यक्त्व को मलिन करने वाले हैं।

निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ अंग हैं। इत्यादि रूप से यही सम्यक्त्वचरण है।

नियमसार ग्रंथ में श्री कुंदकुंददेव ने 'नियम' शब्द का अर्थ रत्नत्रय किया है। उसमें सम्यक्त्व का लक्षण करते हुए कहते हैं—

1. दर्शनपाहुड़। 2. चारित्रपाहुड़।

''अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।''[1]

आप्त, आगम और तत्त्वों के श्रद्धान में सम्यक्त्व होता है।

समयसार में सम्यक्त्व का लक्षण बताते हैं–

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवर णिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।13।।

भूतार्थनय से जाने हुए जीव-अजीव और पुण्य-पाप तथा आस्रव-संवर, निर्जरा-बंध और मोक्ष ये नवतत्त्व सम्यक्त्व हैं।

मूलाचार ग्रन्थ[2] में भी श्री कुंदकुंददेव ने यही गाथा दी है।

रयणसार में श्री कुंदकुंददेव कहते हैं–

सम्मत्तरयणसारं मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं।
तं जाणिज्जइ णिच्छयववहार सरूवदो भेयं।।4।।
भयविसणमल विवज्जिय संसारसरीरभोगणिव्विण्णो।
अट्ठगुणंगसमग्गो दंसणसुद्धी हु पंचगुरूभत्तो।।5।।
णियसुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावत्थवज्जिओ णाणी।
जिणमुणिधम्मं मण्णइ गयदुखो होइ सद्दिट्ठी।।6।।
मयमूढमणायदणं संकाइवसणभयमईयारं।
जेसिं चउदालेदे ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।
देवगुरुसमयभत्ता संसारसरीराभोगपरिचत्ता।
रयणत्तयसंजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता।।8।।

अर्थ–संसार में सम्यक्त्व रत्नों में श्रेष्ठ है। इसे मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल कहा गया है। निश्चय और व्यवहार नय से इसका भेद किया जाता है। सम्यग्दर्शन से शुद्ध व्यक्ति सात भय, सात व्यसन, पच्चीस मलदोष से रहित होता है। संसार, शरीर और भोगों से विरक्त आठ गुणों से परिपूर्ण तथा आठ अंगों से युक्त और पंचपरमेष्ठी का भक्त होता है। जो निज शुद्ध आत्मा में अनुरक्त, बहिरात्म अवस्था से रहित, वीतराग मुनिधर्म को मानता है वह दुःखों से मुक्त सम्यग्दृष्टि होता है। जिनके आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष, सात व्यसन, सात भय, पाँच अतिचार ये चवालीस दूषण नहीं होते हैं वे सम्यग्दृष्टि होते हैं। जो मनुष्य देव, गुरु और शास्त्र के भक्त, संसार, भोग के परित्यागी, रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं वे सुख को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार से श्री कुंदकुंददेव ने भी इन सभी सम्यक्त्व के लक्षणों में सर्वत्र व्यवहारपरक ही लक्षण कहा है। इससे मालूम होता है कि उनकी दृष्टि में भी व्यवहार सम्यग्दर्शन हेय नहीं था किन्तु उपादेय ही था अन्यथा आध्यात्मिक ग्रन्थों में भी इन व्यवहार प्रधान लक्षणों को क्यों रखते?

हाँ, पाहुड़ ग्रंथ में क्वचित् निश्चय सम्यग्दर्शन का लक्षण भी किया है। पंचास्तिकाय में व्यवहार मोक्षमार्ग में व्यवहाररत्नत्रय का लक्षण करके पुनः निश्चय मोक्षमार्गरूप निश्चय रत्नत्रय को कहा है।

इससे व्यवहार के बाद निश्चय होता है यह क्रम भी परिलक्षित हो जाता है।

श्री उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र में सम्यग्दर्शन का लक्षण किया है–

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्[3] **।।2।।**

वास्तविक पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

श्री अंकलंकदेव कहते हैं—

1. नियमसार गा. 5। 2. मूलाचार अ. 5। 3. तत्त्वार्थसूत्र।

तद्द्विविधं सरागवीतरागविकल्पात्।।29।।

सराग और वीतराग के भेद से वह सम्यक्त्व दो प्रकार का है।

प्रशमसंवेगानुकंपास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम्।।30।।

प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य इनके द्वारा जिसकी अभिव्यक्ति होती है वह प्रथम सराग सम्यग्दर्शन है

आत्मविशुद्धिमात्रमितरत्।।31।।

सप्तानां कर्मप्रकृतीनां आत्यंतिकेऽपगमे सत्यात्मविशुद्धिमात्रमितरद् वीतरागसम्यक्त्वमित्युच्यते। अत्र पूर्व साधनं भवति, उत्तरं साधनं साध्यं च[1]।

आत्मा की विशुद्धिमात्र वीतराग सम्यक्त्व है। अनंतानुबंधी आदि सात प्रकृतियों के अत्यंत क्षय हो जाने से जो आत्मा की विशुद्धि मात्र होती है वह वीतराग सम्यक्त्व है। इनमें से सराग सम्यक्त्व साधन है और वीतराग सम्यक्त्व साधन भी है और साध्य भी है।

श्री उमास्वामी आचार्य श्रावकाचार में कहते हैं—

देवे देवमतिर्धर्मे धर्मधीर्मलवर्जिता।
गुरौ च गुरुताबुद्धिः सम्यक्त्वं तन्निगद्यते।।5।।

तीर्थंकर परमदेव को देव मानना, दयामय धर्म को धर्म मानना और निर्ग्रंथ गुरु को गुरु मानना अर्थात् सच्चे देव, धर्म और गुरु का ही श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

पुनरपि आगे चलकर कहते हैं—

जीवाजीवादितत्त्वानां श्रद्धानं दर्शनं मतम्।
निश्चयात्वे स्वरूपे वावस्थानं मलवर्जितम्।।21।।

जीव-अजीव आदि तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है अथवा निश्चय से अपने आत्म स्वरूप में स्थिर होना सम्यग्दर्शन है। यह पच्चीस मलदोषों से रहित होता है।

औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व का वर्णन करते हुए पुनः कहते हैं—

वीतरागः पुनः सम्यक् क्षायिकं भववारणम्।
सम्यक्त्वं च द्वयं ज्ञेयं सरागं सुखकारणम्[2]।।32।।

क्षायिक सम्यक्त्व वीतराग है चूँकि वह संसार का नाश करने वाला है तथा औपशमिक और क्षायोपशमिक ये दोनों सम्यक्त्व सराग हैं। ये भी मुक्ति सुख के कारण हैं।

भावी तीर्थंकर श्री समंतभद्र स्वामी कहते हैं–

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम्[3]।।4।।

सत्यार्थ आप्त, आगम और गुरु का तीन मूढ़ता से रहित, आठ मद से रहित और आठ अंग से सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा में सम्यग्दृष्टि का लक्षण कहते हैं—

जो तच्चमणेयंतं णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं।
लोयाण पण्हवसदो ववहारपवत्तणट्ठं च।।10।।
जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादि णवविहं अत्थं।
सुदणाणेण णएहि य सो सद्दिट्ठी हवे सुद्धो।।11।।

1. तत्त्वार्थवार्तिक अ. 1, सूत्र 2। 2. उमास्वामीश्रावकाचार। 3. रत्नकरंडश्रावकाचार।

जो लोगों के प्रश्नों के वश से और व्यवहार को चलाने के लिए सप्तभंगी के द्वारा नियम से अनेकांतात्मक तत्त्व का श्रद्धान करता है, जो आदर से जीव-अजीव आदि नौ प्रकार के पदार्थों को श्रुतज्ञान से और नयों से अच्छी तरह जानता है, वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है।।10-11।।

जो पुत्र-स्त्री आदि सर्वपदार्थों में गर्व को नहीं करता है, उपशम भाव को भाता है और अपने को तृण समान समझता है, विषयों में आसक्त होता हुआ भी और सदा सर्व आरम्भों में प्रवृत्त होता हुआ भी जो यह मोहकर्म का विलास है, ऐसा समझकर सबको हेय मानता है। उत्तम गुणों के ग्रहण करने में तत्पर रहता है, उत्तम साधुओं की विनय करता है और साधर्मी जनों का अनुरागी है, वह परमसम्यग्दृष्टि है।

श्री अमृतचंद्रसूरि कहते हैं—

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यं।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्[1]।।22।।

जीव, अजीव आदि सात तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप का विपरीत अभिनिवेश से रहित सदा ही श्रद्धान करना चाहिए, क्योंकि वह आत्मा का स्वरूप है। पुनः आठों अंगों का स्पष्टीकरण किया गया है।

यशस्तिलक चंपू में कहते हैं—

आप्तागम पदार्थानां श्रद्धानं कारणद्वयात्।
मूढाद्यपोढमष्टांगं सम्यक्त्वं प्रशमादिभाक्[2]।।48।।

अंतरंग और बहिरंग कारणों के मिलने पर आप्त (देव), शास्त्र और पदार्थों का तीन मूढ़ता रहित आठ अंग सहित जो श्रद्धान होता है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, यह सम्यग्दर्शन प्रशम, संवेग आदि गुण वाला होता है।

वसुनंदि आचार्य कहते हैं—

अत्तागमतच्चाणं जं सद्दहणं सुणिम्मलं होइ।
संकाइदोसरहियं तं सम्मत्तं मुणेयव्वं[3]।।6।।

आप्त, आगम और तत्त्वों का शंकादि दोष रहित जो अतिनिर्मल श्रद्धान होता है, उसे सम्यक्त्व जानना चाहिए।

सावयधम्म दोहा नामक श्रावकाचार में सम्यक्त्व का लक्षण कहते हैं—

अत्तागमतच्चाइयहं जं णिम्मलु सद्धाणु।
संकाइयदोसहं रहिउ, तं सम्मत्तु वियाणु[4]।।19।।

आप्त, आगम और तत्त्वादिकों का जो शंकादि दोषों से रहित निर्मल श्रद्धान है उसे ही सम्यक्त्व जानना चाहिए।

चारित्रसार में भी चामुंडराय जी लिखते हैं–

जिनेन भगवताऽर्हता परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रंथलक्षणे मोक्षमार्गे श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।'[5]

जिनेन्द्र भगवान अर्हन्त परमेष्ठी के द्वारा उपदिष्ट निर्ग्रंथलक्षण मोक्षमार्ग में श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

श्रीमान् शुभचन्द्राचार्य कहते हैं—

यज्जीवादिपदार्थानां श्रद्धानं तद्धि दर्शनम्।
निसर्गेणाधिगत्या वा तद्भव्यस्यैव जायते[6]।।6।

जो जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना है वही नियम से सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन निसर्ग से अथवा अधिगम से भव्य जीवों के ही उत्पन्न होता है, अभव्य के नहीं होता।

श्री नेमिचन्द्राचार्य कहते हैं—

---

1. पुरुषार्थसिद्धयुपाय। 2. यशस्तिलक चंपू। 3. वसुनंदिश्रावकाचार। 4. सावयधम्मदोहा। 5. चारित्रसार। 6. ज्ञानार्णव पृ. 86।

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि[1]।।41।।

जीव आदि पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है, वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है तथा इस सम्यक्त्व के होने पर ज्ञान (संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय इन तीनों) दुरभिनिवेशों से रहित सम्यक् हो जाता है।

यही बात अमितगति आचार्य ने भी कही है–

पहले तो क्षायोपशमिक, क्षायिक और औपशमिक भेदों को कहते हैं—पुनः कहते हैं—

साध्यसाधनभेदेन, द्विधा सम्यक्त्वमिष्यते।
कथ्यते क्षायिकं साध्यं, द्वितीयं साधनं परम्।।58।।

साध्य और साधन के भेद से सम्यक्त्व दो प्रकार का कहा गया है। क्षायिक सम्यक्त्व साध्यरूप है और शेष दोनों साधनरूप हैं।

आगे कहते हैं—

वीतरागं सरागं च सम्यत्वं कथितं द्विधा।
विरागं क्षायिकं तत्र सरागमपरे द्वयम्।।65।।

ज्ञानियों ने सम्यक्त्व को दो प्रकार का कहा है–वीतराग सम्यक्त्व और सराग सम्यक्त्व। इनमें क्षायिक वीतराग सम्यक्त्व है और शेष दोनों सराग सम्यक्त्व हैं[2]।

इन सभी सम्यग्दर्शन के लक्षणों में व्यवहार प्रधान ही लक्षण दिख रहा है। जो कि सच्चे देव, धर्म, गुरु और तत्त्वों के श्रद्धान रूप ही है। वास्तव में यह सम्यग्दर्शन जिसके प्रकट हो जाता है वह आत्मतत्त्व को नहीं समझता है ऐसी बात नहीं है क्योंकि सभी सम्यक्त्व में स्वपर भेद विज्ञान होता ही है।

आध्यात्मिक भाषा में वीतराग सम्यक्त्व को वीतरागी मुनियों के ही माना गया है उसके पहले छठे गुणस्थान तक सराग सम्यक्त्व माना है फिर भी यहाँ पर उपर्युक्त लक्षणों में श्री अकलंक देव ने तत्त्वार्थराजवार्तिक में क्षायिक सम्यक्त्व को वीतराग कहा है। उमास्वामी श्रावकाचार में तथा अमितगति श्रावकाचार में भी औपशमिक, क्षायोपशमिक को सराग सम्यक्त्व एवं क्षायिक को वीतराग सम्यक्त्व कहा है।

इस दृष्टि से भी वर्तमान काल में वीतराग सम्यक्त्व का अभाव है। यद्यपि यह क्षायिक सम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थान में हो सकता है फिर भी केवली, श्रुतकेवली के पादमूल के बिना असम्भव होने से आज यह सम्भव नहीं है। अतः सराग सम्यग्दर्शन ही होता है।

वीतराग सम्यग्दर्शन

अब अध्यात्मभाषा में वीतराग सम्यक्त्व का लक्षण देखिये–

निश्चयसम्यक्त्व ही वीतराग सम्यक्त्व है–

''निश्चयनयेन निश्चयचारित्राविनाभावि निश्चयसम्यक्त्वं वीतराग सम्यक्त्वं भण्यते[3]।''

निश्चयनय से निश्चयचारित्र के साथ होने वाला निश्चयसम्यक्त्व ही वीतरागसम्यक्त्व कहलाता है। यह निश्चयचारित्र सातवें गुणस्थान से प्रारंभ होता है उसके पहले नहीं।

शुद्धात्मा की उपलब्धि ही निश्चय सम्यक्त्व है–

''तस्मिन् परमसमाधिकाले नवपदार्थमध्ये शुद्धनिश्चयनयेनैक एव शुद्धात्मा प्रद्योतते.....शुद्धात्मोपलब्धि

1. द्रव्यसंग्रह। 2. अमितगति श्रावकाचार। 3. समयसार गा. 13, तात्पर्यवृत्तिटीका पृ. 29।

सा चैव निश्चयसम्यक्त्वं .....अभेदविवक्षायां शुद्धात्मस्वरूपमिति तात्पर्यं[1]।''

'उस परमसमाधि के काल में नव तत्त्वों के मध्य शुद्धनिश्चयनय से एक शुद्धात्मा ही प्रद्योतित होता है, प्रकाशित होता है, प्रतीति में आता है व अनुभव में आता है। जो यह अनुभूति-प्रतीति-शुद्धात्मोपलब्धि है वही निश्चय सम्यक्त्व है और वह अनुभूति निश्चयनय से गुण-गुणी में अभेद विवक्षा करने से शुद्धात्मा का स्वरूप ही है ऐसा तात्पर्य समझना।' यह निश्चय सम्यक्त्व शुद्धोपयोग में ही होगा।

वीतरागसम्यग्दृष्टि कब होता है? –

''....निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा.....।''[2]

'जो पुनः सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा है वही ज्ञानी जीव है, वह मुख्यवृत्ति से निश्चयरत्नत्रय लक्षण शुद्धोपयोग के बल से निश्चय चारित्र के बिना नहीं होने वाला ऐसा वीतराग सम्यग्दृष्टि होकर निर्विकल्प समाधिरूप परिणाम परिणति को करता है। तब उस परिणाम के द्वारा द्रव्यभावरूप संवर, निर्जरा और मोक्ष पदार्थों का कर्ता होता है।' यह अवस्था भी शुद्धोपयोग में ही घटित होगी।

वीतराग सम्यक्त्व में बंध नहीं होता –

'.....ततश्च वीतराग सम्यक्त्वे जाते साक्षाद्बंधको भवति इति मत्वा वयं सम्यग्दृष्टयः सर्वथा बंधो नास्तीति न वक्तव्यं[3]।

सराग-वीतराग की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के होते हैं उसमें जो सराग-सम्यग्दृष्टि हैं। अर्थात्–

16-25-0-10-4-6-1-36-5-16-1- इस प्रकार के बंधव्युच्छित्ति के प्रकरण से चतुर्थ गुणस्थानवर्ती 43 प्रकृतियों का अबंधक होता है किन्तु 77 प्रकृतियों को अल्पस्थिति अनुभागरूप से बाँधता हुआ भी संसार स्थिति का छेदक होता है इसलिये वह अबंधक है। इसी प्रकार से अविरति सम्यग्दृष्टि के ऊपर के गुणस्थानों में यथासंभव सरागसम्यक्त्व पर्यंत, नीचे-नीचे के गुणस्थानों की अपेक्षा से तरतमता रूप से अबंधक है। किन्तु उपरिम गुणस्थानों की अपेक्षा से बंधक है। पुनः वीतरागसम्यक्त्व के हो जाने पर साक्षात् अबंधक होता है, ऐसा समझकर हम सम्यग्दृष्टि हैं हमें सर्वथा बंध नहीं है ऐसा नहीं कहना चाहिए।'' यहाँ पर भी वीतराग सम्यक्त्व को सातवें से ही समझना।

आत्मा की भावना ही निश्चयभक्ति है वही निश्चयसम्यक्त्व है-

''भक्तिः पुनः सम्यक्त्वं भण्यते व्यवहारेण सरागसम्यग्दृष्टीनां पंचपरमेठ्याराधनारूपा निश्चयेन वीतरागसम्यग्दृष्टीनां शुद्धात्मतत्त्वभावनारूपा चेति।[1]''

''भक्ति ही पुनः सम्यक्त्व कहलाती है। व्यवहार से सराग सम्यग्दृष्टियों की भक्ति पंचपरमेष्ठी के आराधन रूप है और निश्चय से वीतरागसम्यग्दृष्टियों की भक्ति शुद्धात्मतत्त्व की भावना रूप है।''

इस प्रकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शुद्धात्मतत्त्व की भावनारूप भक्ति छठे गुणस्थान के ऊपर वाले वीतरागियों के ही होती है।

इसी बात की पुष्टि के लिए और भी प्रमाण मौजूद हैं–

क्या गृहस्थ को वीतराग सम्यक्त्व हो सकता है?

''रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति भणितं भवद्भिः। तर्हि चतुर्थपंचम गुणस्थानवर्तिनः, तीर्थंकरकुमार-भरत-सगर-राम-पांडवादयः सम्यग्दृष्टयो न भवन्ति? इति। तन्न, मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बंधाभावात् सरागसम्यग्दृष्टयो भवंति। कथं! इति चेत्; चतुर्थगुणस्थानवर्तिनां....सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यं[2]।''

''रागी सम्यग्दृष्टि नहीं होता है ऐसा आपने बहुत बार कहा है, पुनः चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्ती तीर्थंकरकुमार,

1. स.गा.13, तात्पर्य वृ. टी.पृ. 32। 2. स.गा. 74, तात्पर्य वृ. टी.पृ. 122। 3. स.गा. 166, तात्पर्य वृ. टी., पृ. 233।

भरतसम्राट, सगरचक्री, रामचंद्र और पांडव आदि सम्यग्दृष्टि नहीं माने जायेंगे?''

''ऐसी बात नहीं है, मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से तेतालीस प्रकृतियों के बंध काअभाव होने से वे सराग सम्यग्दृष्टि थे।''

''सो कैसे?''

''चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवों के अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व के उदय से होने वाले पाषाणरेखा आदि के समान रागादि भावों का अभाव हो चुका है। पुनः पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों के अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ से होने वाले भूमिरेखा आदि के समान रागादि भावों का अभाव हो चुका है। ऐसा पहले भी कह चुके हैं। इस ग्रंथ में तो पंचम गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टियों का ही मुख्यरूप से ग्रहण है। सरागसम्यग्दृष्टियों का गौणरूप से ग्रहण है। ऐसा ही व्याख्यान सम्यग्दृष्टि के व्याख्यान के काल में सर्वत्र तात्पर्यरूप से समझ लेना चाहिए।''

शुद्धोपयोग कहाँ से शुरू होता है?

''सातवें से।'' सो ही देखिये–

''मिथ्यात्व-सासादन मिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः तदनंतरसंयतसम्यग्दृष्टि-देशविरत-प्रमत्तसंयतगुण-स्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनंतरप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तगुणस्थानषट्केतारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनंतरं सयोग्ययोगीजिनगुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति[1]।

मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में तरतमता से अशुभोपयोग है, इसके बाद असंयतसम्यग्दृष्टि, देशविरत और प्रमत्तविरत इन तीन गुणस्थानों में तरतमता से शुभोपयोग है, इसके अनंतर अप्रमत्तसंयत से लेकर क्षीणकषाय तक इन छह गुणस्थानों में तरतमता से शुद्धोपयोग है, इसके बाद सयोगकेवली व अयोगकेवली इन दो गुणस्थानों में शुद्धोपयोग का फल है।

''कोई विद्वान् चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग का प्रारम्भ मानते हैं?

''यदि इसमें 'तारतम्येन' शब्द न होता तब तो मान सकते थे किन्तु ''तारतम्य'' का अर्थ यही है कि 'सातवें से प्रारंभ होकर बारहवें गुणस्थान तक आगे-आगे विशुद्ध होते हुए अंत में शुद्धोपयोग की पराकाष्ठा हो जाती है। अतः चतुर्थगुणस्थान में शुद्धोपयोग का अंश भी सम्भव नहीं है प्रत्युत् छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के शुभोपयोग की समानता भी चतुर्थगुणस्थानवर्ती के नहीं हो सकती है।''

दूसरी बात यह है कि मुनियों के चारित्र में ही दो भेद हैं न कि श्रावकों के चारित्र में। जैसा कि प्रवचनसार में कहा है–

''चारित्तं खलु धम्मो'' इति वचनात्। तच्च चारित्रमपहृतसंयमोपेक्षासंयमभेदेन सरागवीतरागभेदेन वा शुभोपयोगशुद्धोपयोगभेदेन च द्विधा भवति।[2]''

''चारित्र ही निश्चय से धर्म है, ऐसा कथन है। वह चारित्र अपहृत और उपेक्षा संयम के भेद से, सराग और वीतराग के भेद से अथवा शुभोपयोग और शुद्धोपयोग के भेद से दो प्रकार का होता है।

किसी भी ग्रंथ में श्रावकों के विकलचारित्र में सराग-वीतराग अथवा निश्चय-व्यवहार ऐसे दो भेद देखने को नहीं मिलते हैं।

सरागसम्यग्दृष्टि अशुभ से ही बच सकता है शुभ से नहीं।

''योऽसौ वस्तुस्वरूपं जानाति स सरागसम्यग्दृष्टिः सन्नशुभकर्म कर्तृत्वं मुंचति। निश्चयचारित्राविनाभावि वीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा शुभाशुभसर्वकर्मकर्तृत्वं च मुंचति।।[3]

---

1. प्रवचनसार गाथा 9, तात्पर्यवृत्ति टीका, पृ. 20। 2. प्रवचनसार गाथा 11, तात्पर्यवृत्ति, पृ. 26। 3. समयसार गाथा 97, तात्पर्य पृ. 155।

इस तरह जो वस्तुस्वरूप को जानता है वह सरागसम्यग्दृष्टि होता हुआ अशुभकर्म के कर्तृत्व को छोड़ता है। पुनः निश्चयचारित्र से अविनाभावी ऐसा वीतरागसम्यग्दृष्टि होकर शुभ-अशुभ सर्वकर्म के कर्तृत्व को छोड़ता है।

वीतरागता के अभाव में कर्मों का आस्रव होता ही है–

''निश्चयेन वीतरागस्वसंवेदनज्ञानस्याभाव एव अज्ञानं भण्यते। तस्मादज्ञानादेव कर्म प्रभवतीति।[1]

'निश्चय से वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान का अभाव ही अज्ञान है। उस अज्ञान से ही कर्म आते हैं।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रेणी में बुद्धिपूर्वक राग का अभाव हो जाने से बहुत ही अल्प स्थिति-अनुभाग वाले कर्म आते हैं। आगे पूर्ण वीतरागता में कर्मों का आना पूर्णतया रुक जाता है।

आत्मा की उपलब्धि भी वीतरागी को ही होती है–

''रागादिभ्यो भिन्नः शुद्धजीवोऽस्तीति पक्षः परमसमाधिस्थपुरूषैः शरीररागादिभ्यो भिन्नस्य चिदानंदैकस्वभाव-शुद्धजीवस्योपलब्धेरिति हेतुः[2]**।**

'रागादि से भिन्न शुद्ध जीव है' यह पक्ष हुआ, 'क्योंकि परमसमाधि में स्थित महर्षियों को शरीर और रागादि से भिन्न चिदानंदैक स्वभाव शुद्ध जीव की उपलब्धि होती है' यह हेतु हुआ।

ज्ञानी का लक्षण–

''इति यो जानाति मिथ्यात्वविषयकषायपरित्यागं कृत्वा निर्विकल्प समाधौस्थितः सन् स ज्ञानी भवति। न च परिज्ञानमात्रेण[3]**।**

इस प्रकार से जो जानता है कैसे? मिथ्यात्व, विषय और कषायों का त्याग करके वही, ज्ञानी होता है न कि जानने मात्र से।

इस प्रकार से वीतराग सम्यग्दृष्टि, शुद्धोपयोगी और ज्ञानी संज्ञायें सातवें से ही शुरु होती हैं।

रयणसार में इसी बात को श्री कुंदकुंददेव कहते हैं–

णाणी खवेइ कम्मं णाणबलेणेदि सुबोलए अण्णाणी।
विज्जो भेषज्जमहं जाणे इदि णस्सदे वाहि।।72।।

ज्ञानी पुरूष अपने ज्ञान के बल से कर्मों का क्षय करता है ऐसा कथन करने वाला अज्ञानी है। कारण मैं वैद्य हूँ, मैं औषधि को जानता हूँ। क्या उस औषधि को सेवन न कर उसके ज्ञान मात्र से रोग दूर हो जायेगा? नहीं।

अभिप्राय यही है कि चारित्र को धारण करना ही औषधि सेवन करना है। वह चारित्र ही संसार रोग को नष्ट करने वाला है। अतः रत्नत्रयधारी ही सच्चे ज्ञानी होते हैं।

कौन सा कार्य कर्मों को क्षणमात्र में निर्जीर्ण करता है–

जं अण्णाणी कम्मं, खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ उस्सासमेत्तेण[4]**।।238।।**

अज्ञानी कोटिसहस्र भवों में जितने कर्मों की निर्जरा करता है, ज्ञानी तीन गुप्ति से गुप्त होकर एक श्वांस मात्र में उतने कर्मों की निर्जरा कर देता है। यहाँ पर 'तीन गुप्ति' सहित होना ही महत्त्व रखता है। जब आज के मुनियों के ये तीन गुप्तियाँ असंभव हैं तब श्रावक व असंयमी में तीन गुप्ति का होना व उतनी निर्जरा का होना तो सर्वथा आकाश पुष्प के समान ही है।

इस कथन से यही निष्कर्ष निकलता है कि वीतरागता त्रिगुप्ति से गुप्त महामुनियों के ही होती है उसके पहले छठे गुणस्थानवर्ती मुनि सरागचारित्र वाले होने से सरागी ही हैं। जैसा कि प्रवचनसार में कहा है–

1. समयसार गाथा 98, पृ. 147। 2. समयसार गाथा 44, ता. पृ. 81। 3. समयसार गाथा 108 ता. पृ. 161। 4. प्रवचनसार।

अर्हंत आदि के प्रति भक्ति और प्रवचनरत जीवों के प्रति वत्सलभाव करना सो यह शुभयुक्त चर्या है। यह अवस्था मुनि में पाई जाती है। वंदना, नमस्कार आदि करना, गुरुओं के आने पर उठकर खड़े होना, जाते समय उनके पीछे-पीछे जाना, उनके श्रम को दूर करना आदि जो मुनियों की क्रियायें हैं वे सराग अवस्था में वर्जित नहीं हैं[1]।''

निष्कर्ष यह है कि आजकल चतुर्थ गुणस्थान से लेकर छठे गुणस्थानवर्ती मुनियों तक सराग सम्यग्दर्शन ही है। उसी का नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनि के शुद्धोपयोग की अवस्था में वीतराग सम्यक्त्व होता है उसी का नाम निश्चय सम्यक्त्व है। व्यवहार सम्यक्त्व में देव, शास्त्र, गुरु और तत्त्वादि का श्रद्धान तो होता ही है, साथ ही आत्मा के स्वरूप का भी श्रद्धान होता है किन्तु निश्चय सम्यक्त्व में शुद्धात्मा के स्वरूप की प्रतीति अर्थात् अनुभूति होती है जैसा कि इस वीतराग सम्यक्त्व के लक्षण में सर्वत्र ही स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। अकलंकदेव ने क्षायिक सम्यक्त्व का लक्षण भी 'आत्मा की विशुद्धि मात्र ही कहा है और उसे वीतराग संज्ञा दी है।' सो यह सिद्धान्त का कथन भी मान्य ही है, किन्तु आज तो वह ही उपलब्ध नहीं है।

सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ-कहाँ जन्म लेते हैं?

प्रश्न–सम्यग्दृष्टि जीव मरण कर कहाँ-कहाँ जाते हैं?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि नारकी मरणकर गर्भज मनुष्य ही होते हैं। सम्यग्दृष्टि तिर्यंच आयु पूरी करके देवगति को ही प्राप्त करते हैं। देव और देवियाँ सम्यक्त्व सहित मरण करके मनुष्य ही होते हैं। भोगभूमिज और कर्मभूमिज मनुष्य भी सम्यक्त्व सहित मरण करके सौधर्म स्वर्ग आदि में ही जाते हैं अथवा कोई क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उसी भव में मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न–बद्धायुष्क मनुष्य यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है तो वह चारों गतियों में जा सकता है सो कैसे?

उत्तर–यदि किसी जीव ने नरक, तिर्यंच या मनुष्य की आयु बांध ली है पुनः उसे क्षयोपशम सम्यग्दर्शन हुआ है तो मरते समय वह सम्यग्दर्शन छूट जायेगा। उपशम सम्यक्त्व में तो मरण होता नहीं है कदाचित् द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि श्रेणी में मरण करे तो वह देवगति में ही जायेगा। हाँ, यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि है अथवा क्षायिकसम्यक्त्व पूर्ण होने में कुछ कार्य शेष रहा है उस समय वह कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है। वह भी मरणकर चारों गतियों में भी जा सकता है। इस तरह क्षायिक सम्यग्दृष्टि और कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि यदि नरक में जाते हैं तो वे प्रथम नरक में ही जायेंगे। यदि तिर्यंच या मनुष्य की आयु बाँध चुके थे तो वे भोगभूमि में तिर्यंच या मनुष्य होंगे।

वर्तमान में क्षायिक सम्यक्त्व के न होने से कोई भी सम्यग्दृष्टि मनुष्य या तिर्यंच, स्त्री हों या पुरूष, वे मरणकर देवगति को प्राप्त करेंगे, यह नियम है।

प्रश्न–सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ-कहाँ नहीं जाते हैं?

उत्तर–एकेंद्रिय स्थावरों में, विकलत्रय में, असंज्ञी, अपर्याप्तक और संमूर्च्छन जीवों में, अल्पायु में, दरिद्र और नीचकुलों में, नरकगति और तिर्यंचगति में, भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषीदेवों में, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद में, सर्वदेवियों में सम्यग्दृष्टि जीव जन्म नहीं लेते हैं।

निष्कर्ष यह निकला कि कोई भी सम्यग्दृष्टि मनुष्य यहाँ से मरण कर विदेहक्षेत्र का मनुष्य नहीं हो सकता है वह सौधर्म आदि स्वर्गों में देव ही होवेगा।



1. प्रवचनसार गाथा 246-247।

पंचमकाल में मुनियों का अस्तित्व

–गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

अहो ! दुःषमकालांतं, श्रमणाश्चार्यिका इह।
विहरन्ति निराबाधं, कुर्युस्ते ताश्च मंगलम्।।1।।

अहो! प्रसन्नता की बात है कि इस भरतक्षेत्र में दुःषमकाल के अंत तक मुनि और आर्यिकायें निराबाध विहार करते रहेंगे। वे मुनि और आर्यिकायें सदा मंगल करें।

निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनियों में जो जिनकल्पी और स्थविरकल्पी भेद हैं, उनका क्या स्वरूप है? वर्तमान में जिनकल्पी मुनि हो सकते हैं क्या? संघपरम्परा और श्रुतपरम्परा का क्या महत्त्व है? आचार्य कुंदकुंददेव आदि महामुनि संघ के अधिपति हुये थे या एकलविहारी थे? क्या वे सदा वन में रहते थे?

पुलाक आदि पाँच प्रकार के मुनि प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में होते चले आये हैं पुनः वे प्रामाणिक हैं या नहीं? द्रव्य लिंग और भाव लिंग की क्या व्यवस्था है? इस पंचमकाल में चातुर्वर्ण संघ का व्युच्छेद हो सकता है क्या? आज के मुनि ग्राम, नगर, मंदिर या धर्मशाला आदि में रह सकते हैं या नहीं? वे घास, पाटा, चटाई आदि को काम में ले सकते हैं या नहीं? एक स्थान पर अधिक दिन रह सकते हैं या नहीं?

आर्यिकाओं की क्या चर्या है? वे पूजा के योग्य हैं या नहीं? इत्यादि सामयिक शंकाओं का समाधान जब आगमरूपी दर्पण में दीख जायेगा, तब आप स्वयं निर्णय कर लेंगे कि आज भी सच्चे भावलिंगी मुनि होते हैं। उनकी चर्या आगम के अनुकूल है और पंचमकाल के अंत तक निर्दोष मुनि विचरण करते रहेंगे किन्तु ऐसा जो नहीं मानते हैं वे अज्ञानी हैं; आगम की अवहेलना करने वाले हैं।)

अब सबसे पहले आप जिनकल्पी और स्थविरकल्पी मुनियों की चर्या देखिये–

''जिनेन्द्रदेव ने मुनियों के जिनकल्प और स्थविरकल्प ऐसे दो भेद कहे हैं।''

जिनकल्पी मुनि–जो उत्तम संहननधारी हैं उनके जिनकल्प होता है। जो मुनि पैर में कांटा लग जाने पर या नेत्र में धूलि पड़ जाने पर स्वयं नहीं निकालते हैं। यदि कोई निकाल देता है तो मौन रहते हैं। जल वर्षा हो जाने पर गमन रुक जाने से छह मास तक निराहार रहते हुए कायोत्सर्ग में स्थित हो जाते हैं। जो ग्यारह अंगधारी हैं, धर्मध्यान अथवा शुक्लध्यान में तत्पर हैं, अशेषकषायों को छोड़ चुके हैं, मौनव्रती हैं और गिरि कंदराओं में निवास करने वाले हैं, जो बाह्याभ्यंतर परिग्रह से रहित, स्नेहरहित, निःस्पृही, यतिपति 'जिन' (तीर्थंकर) के समान विचरण करते हैं, वे ही श्रमण जिनकल्प में स्थित हैं अर्थात् जिनकल्पी होते हैं।[1]

स्थविरकल्पी मुनि–'जिनेन्द्रदेव ने अनगारों के लिए स्थविरकल्प भी बताया है। सो यह ऐसा है कि पाँच प्रकार के वस्त्रों का त्याग करना, अकिंचन वृत्ति धारण करना और प्रतिलेखन–पिच्छिका ग्रहण करना। पाँच महाव्रत धारण करना, स्थितिभोजन और एकभक्त करना, भक्ति सहित श्रावक के द्वारा दिया गया आहार करपात्र में ग्रहण करना, याचना करके भिक्षा नहीं लेना। बारह विध तपश्चरण में उद्युक्त रहना, छह आवश्यक क्रियाओं को सदा पालना, क्षितिशयन करना, शिर के केशों का लोच करना। जिनेन्द्रदेव की मुद्रा को धारण करना। **संहनन की अपेक्षा से इस दुःषमा काल में पुर, नगर और ग्राम में निवास करना।** ऐसी चर्या करने वाले साधु स्थविरकल्प में स्थित हैं। ये वही उपकरण रखते हैं कि जिससे चारित्र का भंग न होवे, अपने योग्य पुस्तक आदि को ग्रहण करते हैं। ये स्थविरकल्पी-साधु समुदाय में–संघ सहित विहार करते हैं। अपनी शक्ति के अनुसार धर्म की प्रभावना करते हुए भव्यों को धर्मोपदेश सुनाते हैं और शिष्यों का संग्रह करके उनका पालन भी करते हैं।

इस समय संहनन अतिहीन है, दुःषम काल है और मन चंचल है, फिर भी वे धीर-वीर पुरुष ही हैं जो कि महाव्रत

के भार को धारण करने में उत्साही हैं।

पूर्व में–चतुर्थ काल में जिस शरीर से एक हजार वर्ष में जितने कर्मों की निर्जरा की जाती थी, इस समय हीन संहनन वाले शरीर से एक वर्ष में उतने ही कर्मों की निर्जरा हो जाती है।[2]

अन्यत्र भी ऐसे ही कहा है। यथा–

जिनकल्पी–"जो जितेन्द्रिय साधु सम्यक्त्वरत्न से विभूषित हैं, एक अक्षर के समान एकादश अंग के ज्ञाता हैं।..... निरंतर मौन रहते हैं, वज्रवृषभनाराच संहनन के धारक हैं, पर्वत की गुफा, वन, पर्वतों पर तथा नदियों के किनारे रहते हैं, वर्षाकाल में षट्मास पर्यंत निराहार रहकर कायोत्सर्ग करते हैं। जो **'जिन भगवान'** के सदृश विहार करते हैं वे जिनकल्पी कहे गये हैं।

स्थविरकल्पी–जो जिन मुद्रा के धारक हैं,..... संघ के साथ-साथ विहार करते हैं, धर्म-प्रभावना तथा उत्तम-उत्तम शिष्यों के रक्षण में और वृद्ध साधुओं के रक्षण व पोषण में सावधान रहते हैं इसीलिए महर्षिगण इन्हें स्थविरकल्पी कहते हैं। इस भीषण कलिकाल में हीन संहनन होने से ये साधु स्थानीय नगर, ग्राम आदि के जिनालय में रहते हैं। यद्यपि यह काल दुस्सह है, संहननहीन है, मन अत्यंत चंचल है और मिथ्यामत सारे संसार में विस्तीर्ण हो गया है तो भी ये साधु संयम पालन में तत्पर रहते हैं।

जो कर्म, पूर्व काल में हजार वर्ष में नष्ट किये जाते थे, वे कलियुग में एक वर्ष में ही नष्ट किये जा सकते हैं।[3]"

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तम संहननधारी मुनि ही जिनकल्पी कहलाते हैं। इस पंचम काल में उत्तम संहनन का अभाव है, तीन हीन संहनन ही होते हैं अतः आज के युग में जिनकल्पी मुनि न होकर स्थविरकल्पी ही होते हैं। श्री कुंदकुंददेव आदि भी जिनकल्पी नहीं थे। चूँकि न इनके उत्तम संहनन ही था, न ये ग्यारह अंगों के ज्ञाता ही थे, न ये छह-छह माह तक कायोत्सर्ग में लीन हो सकते थे और न ये सदा गिरि, गुफा, पर्वतों पर ही रहते थे क्योंकि इस स्थिति में ग्रन्थों के लेखन आदि का कार्य संभव नहीं हो सकता था।

अब आचार ग्रंथों में सबसे प्रमुख मूलाचार का विधान देखिये–

पदविभागी समाचारी का निरूपण करते हुए आचार्य कहते हैं कि "कोई धैर्य, वीर्य, उत्साह आदि गुणों से सहित मुनि अपने गुरु के पास उपलब्ध शास्त्रों को पढ़कर पुनः और विशेष अध्ययन के लिए अन्य आचार्य के पास जाना चाहता है तो वह अपने गुरु के पास विनय से अन्यत्र जाने हेतु बार-बार प्रश्न करता है। अवसर देखकर तीन, पाँच या छह बार प्रश्न करता है, पुनः दीक्षागुरु और शिक्षागुरु की आज्ञा लेकर अपने साथ एक, दो या तीन मुनियों को साथ लेकर जाता है क्योंकि एकाकी गमन करने की शास्त्र में आज्ञा नहीं है।[4]"

एकलविहारी साधु कैसा होना चाहिए?–"जो साधु बारह प्रकार के तप करने वाले हैं, द्वादश अंग और चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता हैं अथवा क्षेत्र, काल आदि के अनुरूप आगम के ज्ञाता हैं या प्रायश्चित्त आदि ग्रंथों के वेत्ता हैं, देह की शक्ति और हड्डियों के बल से अथवा भाव के सत्त्व से सहित हैं, शरीरादि से भिन्नरूप ऐसी एकत्व भावना में तत्पर हैं **वज्रवृषभ नाराच आदि तीन संहनन में से किसी एक संहनन के धारक हैं,** मनोबल से सहित हैं–क्षुधादि बाधाओं को सहने में समर्थ हैं, बहुत दिनों के दीक्षित हैं, तपस्या से वृद्ध हैं और आचारशास्त्रों के पारंगत हैं ऐसे मुनि को ही एकलविहारी होने की जिनेन्द्रदेव ने आज्ञा दी है।"[5]

ग्रंथकार पुनः कहते हैं कि–

"गमनागमन में, सोने में, उठने-बैठने में, कुछ वस्तु के ग्रहण करने में, आहार लेने में, मलमूत्रादि विसर्जन करने में और बोलने आदि क्रियाओं में स्वच्छंद प्रवृत्ति करने वाला ऐसा कोई भी मुनि, चाहे वह मेरा शत्रु ही क्यों न हो, तो भी वह एकाकी विचरण न करे।"[6]

जो संघ के अधिपति आचार्य को और संघ में रहने वाले साधुओं को परिग्रही, मोही आदि संज्ञा देकर उन्हें आगम

के विरुद्ध समझते हैं, उन्हें इस आगम आधार से संघ की व्यवस्था को शास्त्रोक्त ही समझकर अपनी धारणा सुधार लेनी चाहिए क्योंकि श्री कुंदकुंददेव ने प्रवचनसार में भी आचार्य को संघ संचालन का आदेश दिया है। यथा–

''जो अरहंतादि की भक्ति, आचार्य आदि के प्रति वात्सल्य पाया जाता है तो वह शुभयुक्तचर्या शुभोपयोगी चारित्र है। वंदना-नमस्कार आदि करना, विनय प्रवृत्ति करना, उनकी थकान दूर करना सरागचर्या में निषिद्ध नहीं है।

अनुग्रह की इच्छा से दर्शन और ज्ञान का उपदेश देना, शिष्यों का ग्रहण करना, उनका पोषण करना और जिनेन्द्रदेव की पूजा का उपदेश देना, यह सरागी मुनियों की चर्या है। जो मुनि नित्य ही चातुर्वर्ण संघ का जीवों की विराधना से रहित उपकार करता है, वह राग की प्रधानता वाला है। रोगी, गुरु, बाल या वृद्ध श्रमणों की वैयावृत्य के लिए शुभोपयोगी मुनि को लौकिक जन से वार्तालाप करने का निषेध नहीं है।''[7]

यहाँ पर जो 'शिष्यों का ग्रहण करना और उनका पोषण करना' यह आदेश ही संघ के संचालन का द्योतक है। **मूलाचार में भी आचार्यों के लिए संघ बनाने का आदेश दिया है। यथा–**

''जो शिष्यों का संग्रह और उनके ऊपर अनुग्रह करने में कुशल हैं, सूत्र और उसके अर्थ में विशारद हैं, कीर्तिमान हैं, क्रिया और आचरण से युक्त हैं, जिनके वचन प्रमाणीभूत हैं और जिन्हें सब मानते हैं ऐसे आचार्य होते हैं।''[8]

ऐसे ही भगवती आराधना में भी संघ की व्यवस्था मानी गयी है। एक संघ के अचार्य अपनी सल्लेखना हेतु अपने शिष्य पर संघ का भार छोड़कर अर्थात् उन्हें आचार्य बनाकर द्वितीय संघ में प्रवेश करतेहैं कि जिससे शिष्यों के मोह आदि निमित्त से हमारी सल्लेखना में विघ्न न आ जावे तथा वहाँ पर भी वे आचार्य अड़तालीस मुनि के साथ सल्लेखना कराते हैं। कम से कम दो मुनि सल्लेखनारत मुनि की परिचर्या के लिए अवश्य होना चाहिए ऐसा ही वहाँ विधान किया गया है।

संघ परम्परा– भगवान महावीर स्वामी के समय से ही आचार्य परंपरा चली आ रही है। यथा– ''वर्धमान तीर्थंकर के निमित्त से गौतम गणधर श्रुतपर्याय से परिणत हुये, इसलिये द्रव्यश्रुत के कर्ता गौतम गणधर हैं। उन गौतमस्वामी ने दोनों प्रकार का श्रुतज्ञान लोहाचार्य को दिया। लोहाचार्य ने जंबू स्वामी को दिया। परिपाटी क्रम से ये तीनों ही सकलश्रुत के धारक कहे गये हैं। यदि परिपाटीक्रम की अपेक्षा न की जाये तो संख्यात हजार सकलश्रुत के धारी हुये हैं। गौतमस्वामी, लोहाचार्य और जंबूस्वामी ये तीनों केवलज्ञानी होकर निर्वाण को प्राप्त हुये हैं। इसके बाद विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी क्रम से चौदहपूर्व के पाठी हुये। तदनंतर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह ही साधु परिपाटीक्रम से ग्यारह अंग और दशपूर्व के धारी हुये। इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पांडुस्वामी, ध्रुवसेन एवं कंसाचार्य ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी क्रम से ग्यारह अंगों और चौदहपूर्वों के एकदेश के धारक हुए। तदनंतर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य ये चारों ही आचार्य सम्पूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंग तथा पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। इसके बाद सभी अंग और पूर्वों का एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परा से आता हुआ धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ।''[9]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि धरसेनाचार्य पर्यंत श्रुतपरम्परा और आचार्यपरम्परा का व्युच्छेद नहीं हुआ है। क्योंकि ''आइरियपरम्पराए आगच्छमाणो'' यह वाक्य स्पष्ट आचार्य परम्परा को घोषित कर रहा है।

पुनः अपना यह श्रुतज्ञान श्रीधरसेनाचार्य ने पुष्पदंत और भूतबलि महामुनियों को दिया है जिन्होंने 'षट्खंडागम' सूत्र-रूप में उसे लिपिबद्ध किया है।

आचार्य परम्परा– 'प्रथम शुभचन्द्र की गुर्वावली' में श्री गुप्तिगुप्त अर्थात् अर्हद्बलि आचार्य को लेकर उन-उन के पट्ट पर आसीन होने वाले आचार्यों की नामावली दी गयी है जिसमें 102 आचार्यों के नाम हैं। यथा–

श्रीमानशेषनरनायकवंदिताघ्रीः श्रीगुप्तिगुप्त (1) इति विश्रुतनामधेयः।
यो भद्रबाहु (2) मुनिपुंगवपट्टपद्मः, सूर्यः स वो दिशतु निर्मलसंघ वृद्धिम्।।1।।

श्रीमूलसंघेऽजनि नंदिसंघस्तस्मिन् बलात्कारगणोऽतिरम्यः।
तत्राभवत्पूर्वपदांशवेदी, श्रीमाघनन्दी (3) नरदेववंद्यः।।2।।
पट्टे तदीये मुनिमान्यवृत्तो, जिनादिचन्द्र (4) स्समभूदतन्त्रः–
ततोऽभवत्पंचसुनामधाम, श्रीपद्मनंदी मुनिचक्रवर्ती।।3।।
आचार्यः कुंदकुंदाख्यो, (5) वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छः, पद्मनंदीति तन्नुतिः।।4।।
पद्मनंदी गुरुर्जातो, बलात्कारगणाग्रणी।
पाषाणघटिता येन, वादिता श्रीसरस्वती।।
ऊर्ज्जयंतगिरौ तेन, गच्छः सारस्वतोऽभवत् ।
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय, नमः श्रीपद्मनंदिने[10]**।।63।।**

समस्त राजाओं से पूजित पादपद्म वाले मुनिवर 'भद्रबाहु' स्वामी के पट्टकमल के उद्योत करने में सूर्य के समान 'श्री गुप्तिगुप्त' मुनि आप लोगों को शुभसंगति दें। श्री मूलसंघ में नंदिसंघ उत्पन्न हुआ, इस संघ में अतिरमणीय बलात्कारगण हुआ और उस गण में पूर्व के जानने वाले, मनुष्य व देवों के वंद्य श्री 'माघनंदिस्वामी' हुए। उनके पट्ट पर मुनि श्रेष्ठ 'जिनचंद्र' हुये और उनके पट्ट पर पांच नामधारक मुनिचक्रवर्ती 'श्री पद्मनंदी स्वामी' हुए। कुंदकुंद, वक्रग्रीव, एलाचार्य, गृद्धपिच्छ और पद्मनंदी उनके ये पाँच नाम थे। (ये ही कुंदकुंदाचार्य समयसार आदि ग्रंथों के कर्ता हैं।)

पुनः उनके पट्ट पर दशाध्यायी तत्त्वार्थसूत्र के प्रसिद्धकर्ता मिथ्यात्व तिमिर के लिए सूर्य के समान 'उमास्वाति' (उमास्वामी) आचार्य हुये, इत्यादि।

इसी क्रम में 102 आचार्यों की परम्परा बताकर अंत में श्री कुंदकुंद स्वामी की विशेषताओं का स्मरण करते हुए उन्हें नमस्कार किया है।

''श्री पद्मनंदी (कुंदकुंद) गुरु ने बलात्कारगण में अग्रसर होकर पट्टारोहण किया और उन्होंने पाषाण घटित सरस्वती को ऊर्जयंत गिरि पर वादी के साथ वादित कराया (बुलवाया), तब से ही सारस्वतगच्छ चला। इसी उपकृति के स्मरणार्थ उन श्री पद्मनंदी मुनि को मैं नमस्कार करता हूँ।''

इस श्लोक में वृन्दावन कवि की पंक्तियाँ स्मरण में आये बिना नहीं रहती हैं जो कि उन्होंने गुरु के मंगलाष्टक में कही हैं–

संघ सहित श्री कुंदकुंद गुरु, वंदन हेतु गये गिरनार।
बाद पर्‌यो जहं संशय मति सों, साक्षी वदी अंबिकाकार।।
''सत्यपंथ निर्ग्रंथ दिगम्बर'', कही सुरी तहं प्रकट पुकार।
सो गुरुदेव बसो उर मेरे, विघ्नहरण मंगल करतार।।1।।

इस प्रकरण से श्री कुंदकुंद आचार्य द्वारा गिरनार पर्वत पर श्वेतांबर साधुओं से विवाद होकर निर्ग्रंथ दिगम्बर पंथ ही सत्य है, इस बात को सरस्वती की मूर्ति से कहला देने की कथा सत्य सिद्ध हो जाती है।

नंदिसंघ की पट्टावली में तो एक-एक आचार्य किस संवत् में पट्टासीन हुये, उनका समय भी दिया गया है। यथा– 1. भद्रबाहु द्वितीय (4), 2. गुप्तिगुप्त (26), 3. माघनंदी (6), 4. जिनचंद्र (40), 5. कुंदकुंदाचार्य (49), 6. उमास्वामी (101), ...।''[11] इत्यादि।

अर्थात् भद्रबाहु द्वितीय, विक्रम संवत् 4 में पट्ट पर बैठे, उनके पट्ट पर श्री गुप्तिगुप्त वि.सं. 26 में आसीन हुए इत्यादि।

इन पट्टावलियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री कुंदकुंदस्वामी अपने गुरु जिनचंद्र के पट्ट पर आचार्य हुए हैं पुनः

उन्होंने संघ सहित गिरनार पर्वत की यात्रा की है। अनंतर अपना पट्ट उन्होंने श्री उमास्वामी को सौंपा है। इस कथन से 'श्री कुंदकुंददेव एकलविहारी थे या वन में ही रहते थे' ऐसी मान्यता का निराकरण हो जाता है।

वर्तमान में संघ परम्परा—वर्तमान में आचार्य श्री शांतिसागर महामुनि आदि ने कुंदकुंदाचार्य की परम्परा को ही समुद्योतित किया है। उनके पट्टाचार्यों की परंपरा भी मूलसंघ के अंतर्गत नंदिसंघ, बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ का आश्रय करने वाली है। इस परम्परा के आचार्य और मुनिगण मूलाचार, भगवती आराधना, आचारसार, अनगार धर्मामृत आदि ग्रन्थों के आधार से ही अपनी चर्या का पालन कर रहे हैं।

किन-किन ग्रंथों को प्रमाण मानें?—श्री इंद्रनंदि आचार्य कहते हैं–

"श्री भद्रबाहु, श्रीचंद्र, जिनचंद्र, गृद्धपिच्छाचार्य, लोहाचार्य, एलाचार्य, पूज्यपाद, सिंहनन्दी, जिनसेन, वीरसेन, गुणनंदी, समंतभद्र, श्रीकुम्भ, शिवकोटि, शिवायन, विष्णुसेन, गुणभद्र, अकलंकदेव, सोमदेव, प्रभाचन्द्र और नेमिचंद्र इत्यादि मुनिपुंगवों के द्वारा रचित शास्त्र ही ग्रहण करने योग्य हैं। इनसे अतिरिक्त (सिंह, नंदि, सेन और देवसंघ इन चार संघ के आचार्यों से अतिरिक्त) विसंघ्य अर्थात् परम्पराविरुद्ध जनों के द्वारा रचित ग्रंथ अच्छे होकर भी प्रमाण नहीं हैं क्योंकि परम्परागत पूर्वाचार्यों के वचन सर्वज्ञ भगवान के वचनों के सदृश हैं। उन्हीं से ज्ञान प्राप्त करता हुआ अनगार–साधु अखिल जनों में पूज्य होता है।[12]"

इस कथन से षट्खंडागमसूत्र तथा कषायपाहुड़ ग्रन्थ और उनकी धवला, जयधवला टीका का, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक, रत्नकरंडश्रावकाचार, भगवती आराधना, महापुराण, उत्तरपुराण, यशस्तिलकचंपू, न्यायकुमुदचंद्र, गोम्मटसार, समयसार आदि ग्रंथ पूर्णतया प्रामाणिक सिद्ध हो जाते हैं।

प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में पुलाक, वकुश आदि पाँच प्रकार के मुनि होते आये हैं। उनका क्या लक्षण है? और आजकल कौन से मुनि होते हैं कौन से नहीं? सो ही देखिये–

पुलाक आदि मुनि—मुनियों के पाँच भेद हैं–पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रंथ और स्नातक।

पुलाक–जो उत्तर गुणों से हीन हैं और व्रतों में क्वचित् कदाचित् दोष लगा देते हैं। ये बिना धुले हुये (किंचित् लालिमा सहित) धान्य सदृश होने से पुलाक कहलाते हैं।

वकुश–जो मूलगुणों को तो पूर्णतया पालते हैं, किन्तु शरीर के संस्कार, ऋद्धि, सुख, यश और विभूति के इच्छुक हैं, वे वकुश हैं।

कुशील–कुशील मुनि के दो भेद होते हैं–प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील। जो परिग्रह की भावना सहित हैं, मूल और उत्तर गुणों में परिपूर्ण हैं, किन्तु कभी-कभी उत्तर गुणों की विराधना करने वाले हैं, वे प्रतिसेवना कुशील हैं। ग्रीष्मकाल में जो जंघा प्रक्षालन आदि का पालन करते हैं, संज्वलनमात्र कषाय के वशीभूत हैं, वे कषाय कुशील हैं।

निग्रंथ–जल में खींची हुई रेखा के समान जिनके कर्मों का उदय अनभिव्यक्त है और जिनके अंतर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान उत्पन्न होने वाला है, वे निर्ग्रंथ हैं। (ये बारहवें गुणस्थानवर्ती ही हैं।)

ये पाँचों ही निर्ग्रंथ हैं।

शंका–उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य की अपेक्षा चारित्र भेद होने से इन सबमें निर्ग्रंथता नहीं हो सकती?

समाधान–ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसे जाति से और चारित्र, अध्ययन आदि भेदों से भेद होने पर भी ब्राह्मण शब्द से सभी ब्राह्मणों में कोई भेद नहीं है उसी प्रकार से इन सबमें निर्ग्रंथ शब्द से कोई भेद नहीं है।

दूसरी बात यह है कि–

संग्रह और व्यवहारनय की अपेक्षा से भी सर्वविशेष का संग्रह हो जाता है तथा–

सम्यग्दर्शन सहित और वेश, भूषा, आयुध आदि से रहित निर्ग्रंथरूप सामान्यरूप से सभी पुलाक आदि में विद्यमान है अतः सभी में निर्ग्रंथ शब्द का प्रयोग युक्त है।

शंका–यदि खंडित व्रत वालों में भी निर्ग्रंथ शब्द का प्रयोग किया जावेगा तब तो श्रावक में भी करना चाहिए?

समाधान–नहीं, क्योंकि उसके निर्ग्रंथरूप नहीं है। यहाँ पर हमें निर्ग्रंथरूप प्रमाण है और वह श्रावक में नहीं है अतः यह दोष नहीं आता है।

शंका–यदि रूप ही प्रमाण है तो अन्य भी निर्ग्रंथ सदृश नग्न रूप वाले[13] में निर्ग्रंथ शब्द का प्रयोग करना चाहिए?

समाधान–ऐसा नहीं है क्योंकि उनमें सम्यग्दर्शन नहीं है। जहाँ सम्यग्दर्शन के साथ मुद्रा है, वहीं पर निर्ग्रंथ शब्द का प्रयोग होता है किन्तु नग्नरूप मात्र में नहीं।

शंका–पुनः ये पुलाक आदि नाम क्यों हैं?

समाधान–चारित्र गुण की उत्तर-उत्तर प्रकर्षता बतलाने के लिए ये संज्ञायें हैं[14]।''

अब इसमें समझना यह है कि पुलाक मुनियों के ही मूलगुणों में विराधना हो सकती है अथवा यों समझिये कि जिनके मूलगुणों में कदाचित् विराधना हो जाती है वे ''पुलाक' कहलाते हैं। बाकी के मुनियों में मूलगुण परिपूर्ण हैं किन्तु उत्तर गुणों में किन्हीं के दोष संभव हैं। फिर भी ये पुलाकसंज्ञक मुनि भावलिंगी हैं या नहीं? पूज्य हैं या नहीं? इसका समाधान स्वयं श्रीभट्टाकलंक देव के शब्दों में आगे देखिये–

इन पाँचों ही निर्ग्रंथों को संयम आदि आठ अनुयोगों द्वारा व्याख्यान करना चाहिए।

पुलाक, वकुश और प्रतिसेवनाकुशील इनके सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो ही संयम होते हैं। कषायकुशील के सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसाम्पराय ये चार संयम होते हैं तथा निर्ग्रंथ और स्नातक के एक यथाख्यात संयम ही है[15]।

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये पुलाक मुनि भावलिंगी हैं न कि द्रव्यलिंगी क्योंकि द्रव्यलिंगी में सामायिक और छेदोपस्थापना संयम का होना असंभव है। ये संयम तो छठे, सातवें आदि गुणस्थानों में ही होते हैं।

''पुलाक, वकुश और प्रतिसेवना को श्रुतज्ञान उत्कृष्ट से अभिन्नदशपूर्व तक हो सकता है।''

यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि द्रव्यलिंगी मुनि को पूर्व का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि अधिक से अधिक ग्यारह अंग का ज्ञान हो सकता है।

प्रतिसेवना में–पाँच मूलगुण और रात्रिभोजनत्याग इनमें किसी एक का पर की जबरदस्ती से सेवन कर लेने वाला पुलाक होता है।

इस प्रकरण में तत्त्वार्थवृत्तिकार का स्पष्टीकरण ऐसा है–

''रात्रिभोजन त्याग का विराधक मुनि कैसे होगा?''

'श्रावक आदिकों का इससे उपकार होगा' ऐसा सोचकर अपने छात्र आदि को जो रात्रि में भोजन करा देता है इसलिये विराधक हो जाते हैं[16]।

इस कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आचार्यादि मुनि संघ में अविरत छात्रादि को भी रखते हैं।

''वकुश में भी दो भेद हैं–उपकरण वकुश और शरीर वकुश। जो उपकरणों में आसक्ति रखते हैं, नाना प्रकार के विचित्र परिग्रहों से युक्त हैं, बहुत विशेषता सहित उपकरणों के इच्छुक हैं, उन उपकरणों से संस्कार और प्रतीकार को करते हैं वे साधु उपकरण वकुश हैं। शरीर के संस्कार को करने वाले शरीर वकुश हैं।''

वकुश मुनि के लक्षण में तत्त्वार्थवृत्तिकार ने कहा है कि जो निर्ग्रंथमुनि व्रतों में दोष न लगाते हुये भी शरीर, उपकरण-पिच्छी, कमंडलु, पुस्तक आदि की शोभा चाहते हैं, ऋद्धि, सुख, वैभव की आकांक्षा करते हैं और असंयत शिष्यों से सहित हैं, वे वकुश हैं।

तीर्थ की अपेक्षा से–''सभी तीर्थंकरों के तीर्थों में ये पाँचों प्रकार के मुनि होते हैं।''

''लिंग में–भावलिंग की अपेक्षा सभी पाँचों प्रकार के मुनि निर्ग्रंथलिंगी हैं। द्रव्यलिंग की अपेक्षा भाज्य हैं।''

इन सभी प्रकरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि मुनि के कदाचित् मूलगुणों में दोष लग जाता है या वे संघ में असंयत छात्रों को रखते हैं अथवा पिच्छी, कमण्डलु, शरीर आदि को संस्कारित करते रहते हैं, कदाचित् क्वचित् गर्मी के दिनों में जंघा प्रक्षालन आदि कर लेते हैं तो वे सब मुनि पुलाक, वकुश या कुशील भेदों में आते हैं वे भावलिंगी हैं। सामायिक तथा छेदोपस्थापना संयम के धारी हैं अतः पूज्य हैं।

आज के युग में निर्ग्रंथ और स्नातक मुनि नहीं हो सकते हैं।

सरागी और वीतरागी मुनि–सराग और वीतराग चारित्र की अपेक्षा मुनियों के सरागी और वीतरागी ऐसे दो भेद हो जाते हैं। सिद्धांत की भाषा में ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में वीतरागता मानी है किन्तु अध्यात्म की भाषा में अथवा बुद्धिपूर्वक राग के न होने से सातवें से भी वीतरागता शुरू हो जाती है चूँकि सातवें में शुद्धोपयोग माना गया है।

जब कोई भी पुरुष दीक्षा लेता है तब उस समय उसके पहले गुणस्थान से या चौथे गुणस्थान से अथवा पाँचवें गुणस्थान से सातवें गुणस्थानरूप परिणाम होते हैं चूँकि छठा गुणस्थान गिरने से ही होता है।

तात्पर्य यह है कि दीक्षा लेकर मुनि एकदम सातवें गुणस्थान में सामायिक संयमरूप अभेद रत्नत्रय को प्राप्त कर लेते हैं पुनः अंतर्मुहूर्त बाद वहाँ ठहरने में असमर्थ होने से मूलगुणों में अपने को स्थापित करते हुये भेदरूप छेदोपस्थापना संयम में आ जाते हैं, चूँकि ये अट्ठाईस मूलगुण निर्विकल्प सामायिकसंयम के ही भेद हैं। जैसे-सुवर्ण के इच्छुक को यदि सुवर्ण न मिले तो वह उससे बनी अंगूठी आदि को ही ले लेता है उसे छोड़कर दोनों तरफ से रिक्त हस्त नहीं होता है वैसे ही मुनि अभेदरूप सामायिक संयम में जब अधिक देर ठहर नहीं पाते हैं तो वे भेदरूप छेदोपस्थापना में आ जाते हैं[17]।''

इसमें जो सामायिक संयम में स्थित हैं वे वीतरागी कहलाते हैं क्योंकि बुद्धिपूर्वक उनके राग का अभाव है, वे शुद्धोपयोगरूप निर्विकल्पध्यान में स्थित हैं और छेदोपस्थापनारूप भेदचारित्र में प्रवृत्ति करते हैं वे सरागी मुनि माने जाते हैं चूँकि वे शुभोपयोगी हैं।

आगे इन्हीं के पर्यायवाची नाम को बतलाते हैं, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। यथा–

उत्सर्ग और अपवाद का लक्षण कहते हैं–

''शुद्धात्मा से अतिरिक्त अन्य सभी बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर देना उत्सर्ग है। उत्सर्ग, निश्चयनय, सर्वपरित्याग, परमोपेक्षासंयम, वीतरागचारित्र और शुद्धोपयोग, ये सब एक अर्थ वाले हैं। जो मुनि इसमें ठहरने में असमर्थ है, वह शुद्धात्मभावना के लिये सहकारीभूत कुछ भी प्रासुक आहार और ज्ञान के उपकरण-शास्त्र आदि को ग्रहण करता है, सो यह अपवाद है। अपवाद, व्यवहारनय, एकदेश परित्याग, अपहृतसंयम, सरागचारित्र और शुभोपयोग ये सब एकार्थवाची हैं।''

श्री कुंदकुंददेव ने प्रवचनसार में अपवादमार्ग के आश्रय का विधान किया है। यथा–

''बाल, वृद्ध, श्रांत या व्याधिग्रस्त श्रमण मूल का छेद जैसे न हो उस प्रकार से अपने योग्य आचरण आचरो। यदि श्रमण आहार या विहार में देश, काल, श्रम, क्षमता तथा उपाधि इनको जानकर प्रवृत्ति करता है तो वह अल्प ही कर्मों से बंधता है।[18]''

इन गाथाओं की टीका में श्री अमृतचंद्रसूरि ने उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री का अच्छा वर्णन किया है। वे कहते हैं कि यदि कोई साधु बाल, वृद्ध, श्रांत या रुग्ण अवस्था के निमित्त से आहार-विहार आदि में अल्पकर्मबंध के डर से प्रवृत्ति न करे अर्थात् अपवाद का आश्रय न लेवे, दृढ़पूर्वक उत्सर्गरूप कठोर आचरण में ही लगा रहे तो वह अक्रम से शरीर का घात करके संयमरूपी अमृत का वमन करके देवलोक को प्राप्त होगा। तो वहाँ तप का अवकाश न होने से महान कर्मबंध होगा, इसलिये अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग श्रेयस्कर नहीं है। तात्पर्य यही है कि उत्सर्गसापेक्ष अपवाद और अपवादसापेक्ष उत्सर्ग ही श्रेयस्कर है अथवा यों कहिये कि निश्चय सापेक्ष व्यवहार और व्यवहार सापेक्ष निश्चय ही कल्याणकारी है। परस्पर निरपेक्ष होने से ठीक नहीं है।

आज के युग में मुनियों के छठा और सातवाँ ये दोनों गुणस्थान होते हैं। उत्तम संहनन के अभाव में इसके ऊपर श्रेणी में आरोहण करना संभव नहीं है। संघ में रहते हुये भी आचार्यों को या सामान्य साधुओं को सातवें गुणस्थान के योग्य शुद्धोपयोग होता है। उसे ही सामायिक संयम वीतराग चारित्र आदि भी कहते हैं चूँकि इन दोनों गुणस्थानों का पृथक्-पृथक् काल अंतर्मुहूर्त ही है। प्राचीनकाल में भी आचार्यों के संघ थे। वे ग्रंथ लिखते थे, पढ़ते थे, विहार करते थे और धर्मोपदेश करते थे। इन सभी कार्यों में कई-कई घंटे भी लग जाते होंगे अतः यह निश्चित हो जाता है कि उस समय भी उनका गुणस्थान छठे से सातवाँ हो जाता था अन्यथा वे द्रव्यलिंगी माने जायेंगे।

आज भी भावलिंगी दिगम्बर मुनि होते हैं–

श्री कुंदकुंददेव कहते हैं–

''भरहे दुस्समकाले, धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे, ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।।76।।

इस भरतक्षेत्र में दुःषमकाल में मुनि को आत्मस्वभाव में स्थित होने पर धर्मध्यान होता है। जो ऐसा नहीं मानता है, वह अज्ञानी है।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा, अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं, तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति।।77।।

आज भी इस पंचमकाल में रत्नत्रय से शुद्ध आत्मा (मुनि) आत्मा का ध्यान करके इन्द्रत्व और लौकांतिक देव के पद को प्राप्त कर लेते हैं और वहाँ से चयकर निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं।[19]

श्री पद्मनंदि आचार्य कहते हैं–

''संप्रत्यस्ति न केवली किल कलौ त्रैलोक्यचूडामणिः।
तद्वाचः परमासतेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिकाः।।
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तासां समालंबनं।
तत्पूजा जिनवाचि पूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः।।68।।

इस समय भरत क्षेत्र में त्रैलोक्य चूड़ामणि केवली भगवान नहीं हैं। फिर भी लोक को प्रकाशित करने वाले उनके वचन तो यहाँ विद्यमान हैं और उनके वचनों का अवलंबन लेने वाले रत्नत्रयधारी श्रेष्ठयतिगण भी मौजूद हैं। इसलिये उन मुनियों की पूजा जिनवचनों की पूजा है और जिनवचन की पूजा से साक्षात् जिनदेवकी पूजा की गई है, ऐसा समझना।''[20]

श्री कुंदकुंददेव नियमसार में निश्चय प्रतिक्रमण आदि छह आवश्यकों का वर्णन करते हुए अंत में कहते हैं–

''जदि सक्कदि कादुं जे, पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।
सत्तिविहीणो जो जइ, सद्दहणं चेव कायव्वं।।154।।

यदि करना शक्य हो तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदि करना चाहिए और यदि वैसी शक्ति नहीं हो तो तब तक (वैसी शक्ति आने तक) श्रद्धान ही करना चाहिए।''[21] टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारी देव कहते हैं–

''हे मुनिपुंगव! यदि संहनन शक्ति का प्रादुर्भाव हो तो तुम ध्यानरूप निश्चय प्रतिक्रमण आदि करो और यदि शक्तिहीन हो तो अर्थात् इस **'दग्धकालेऽकाले'** दुःषमकालरूप अकाल में तुम्हें निजपरमात्मतत्त्व का केवल श्रद्धान ही करना चाहिये। पुनः टीकाकार कहते हैं–

''असारे संसारे कलिविलसिते पापबहुले, न मुक्तिर्मार्गेऽस्मिन्ननघजिननाथस्य भवति।
अतोऽध्यात्मध्यानं कथमिह भवेन्निर्मलधियाम्। निजात्मश्रद्धानं भवभयहरं स्वीकृतमिदम्।।264।।

इस असार संसार में पाप से बहुल कलिकाल का विलास होने पर निर्दोष जिननाथ के इस मार्ग-शासन में मुक्ति नहीं है अतः इस काल में अध्यात्म ध्यान कैसे हो सकता है? इसलिये निर्मल बुद्धि वालों के लिए भव भय का नाश करने वाला यह निजात्मा का श्रद्धान करना ही स्वीकृत किया गया है।''[22]

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि जब मुनियों का निजात्म तत्त्व का ध्यान आज हेम संहनन में नहीं है, उन्हें शक्ति के अभाव में श्रद्धान करने का आदेश श्री कुंदकुंददेव ने दिया है तथा टीकाकार ने तो बिल्कुल हीस्पष्ट कर दिया है पुनः श्रावक व असंयत को 'आत्मध्यान' होता है ऐसा मानने वालों को इन पंक्तियों पर ध्यान देना चाहिए। हाँ, धर्मध्यान अर्थात् आज्ञा विचय आदि तथा पिंडस्थ आदि ध्यानों में पाँच परमेष्ठियों का अवलंबनरूप ध्यान होता है उसका निषेध नहीं है।

तथा इसी कलशकाव्य से पंचमकाल में मुनियों का अस्तित्व भी स्पष्ट ही दिख रहा है।

श्री गुणभद्रस्वामी भी कहते हैं–

''जो स्वयं मोह को छोड़कर कुलपर्वत के समान पृथ्वी का उद्धार अथवा पोषण करने वाले हैं, जो समुद्रों के समान स्वयं धन की इच्छा से रहित होकर रत्नों की निधि–खान अर्थात् स्वामी हैं तथा जो आकाश के समान व्यापक होने से किन्हीं के द्वारा स्पर्शित न होकर विश्व की विश्रांति के लिए हैं, ऐसे अपूर्व गुणों के धारक चिरंतन-महामुनियों के शिष्य और सन्मार्ग में तत्पर कितने ही साधु आज भी विद्यमान हैं[23]।''

भगवान महावीर के तीर्थ में धर्मव्युच्छित्ति नहीं है–श्री यतिवृषभाचार्य कहते हैं–

''सुविधिनाथ को आदि लेकर सात तीर्थों में उस धर्म की व्युच्छित्ति हुई थी और शेष सोलह तीर्थंकरों के तीर्थों में धर्म की परंपरा निरंतर बनी रही है। उक्त सात तीर्थों में क्रम से पावपल्य, अर्द्धपल्य, पौन पल्य, पल्य, पौन पल्य, अर्द्धपल्य और पाव पल्य प्रमाण धर्मतीर्थ का व्युच्छेद रहा है। हुंडावसर्पिणी के दोष से यहाँ सात धर्म के विच्छेद हुये हैं। उस समय दीक्षा के अभिमुख होने वालों का अभाव होने पर धर्मरूपी सूर्यदेव अस्तमित हो गया था।[24]''

तात्पर्य यह है कि वृषभदेव से लेकर पुष्पदंतनाथ तक धर्म परम्परा अव्युच्छिन्नरूप से चली आई थी पुनः पुष्पदंत के तीर्थ में पाव पल्य तक धर्म का अभाव रहा है, अनंतर जब शीतलनाथ तीर्थंकर हुए तक धर्मतीर्थ चला, उनके तीर्थ में भी अर्द्धपल्य तक धर्म का अभाव रहा, ऐसे ही श्रेयांसनाथ के तीर्थ में पौन पल्य, वासुपूज्य के तीर्थ में एक पल्य विमलनाथ के तीर्थ में पौन पल्य, अनंतनाथ के तीर्थ में अर्द्धपल्य और धर्मनाथ के तीर्थ में पावपल्य तक धर्म का अभाव रहा है अर्थात् कोई भी मनुष्य जैनेश्वरी दीक्षा लेने वाले नहीं हुए अतः धर्म का अभाव हो गया।

यहाँ पर यह बात समझने की है कि मुनिसंघ के बिना धर्म की परम्परा नहीं चल सकती है। इस का स्पष्टीकरण और भी देखिये श्री यतिवृषभाचार्य के शब्दों में–

गौतम स्वामी से लेकर अंग-पूर्व के एकदेश के जानने वाले मुनियों की परम्परा के काल का प्रमाण छह सौ तेरासी (683) वर्ष होता है। उसके बाद–

''जो श्रुततीर्थ धर्म प्रवर्तन का कारण है, वह बीस हजार तीन सौ सत्रह वर्षों में काल दोष से व्युच्छेद को प्राप्त हो जायेगा।''[25] अर्थात् 683+20317=21000 इक्कीस हजार वर्ष का यह पंचमकाल है तब तक धर्म रहेगा, अंत में व्युच्छेद को प्राप्त हो जायेगा।

इतने पूरे समय तक चातुर्वर्ण्य संघ जन्म लेता रहेगा, किन्तु लोग प्रायः अविनीत, दुर्बुद्धि, असूयक, सात भय व आठ मदों से संयुक्त, शल्य एवं गारवों से सहित, कलहप्रिय, रागिष्ठ, क्रूर एवं क्रोधी होंगे[26]।''

इन पंक्तियों से बिल्कुल ही स्पष्ट है कि इक्कीस हजार वर्ष के इस काल में हमेशा चातुर्वर्ण्य संघ रहेगा ही रहेगा।

मुनि के अभाव में धर्म, राजा और अग्नि का भी अभाव हो जावेगा। यथा–

''इस पंचमकाल के अंत में इक्कीसवां कल्की होगा। उसके समय में वीरांगज नामक एक मुनि, सर्वश्री नामक आर्यिका तथा अग्निदत्त और पंगुश्री नामक श्रावक युगल होंगे। एक दिन कल्की की आज्ञा से मंत्री द्वारा मुनि के प्रथम ग्रास को शुल्करूप से माँगे जाने पर मुनि अंतराय करके वापस आ जायेंगे। उसी समय से अवधिज्ञान को प्राप्तकर, दुःषमकाल का अंत आ गया है, ऐसा जानकर प्रसन्नचित्त होते हुए आर्यिका और श्रावक युगल को बुलाकर वे चारों जन चतुराहार का त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लेंगे और तीन दिन बाद कार्तिक कृष्णा अमावस्या के स्वाति नक्षत्र में शरीर को छोड़कर देवपद प्राप्त करेंगे।

उसी दिन मध्याह्नकाल में क्रोध को प्राप्त हुआ कोई असुरकुमार देव राजा को मार डालेगा और सूर्यास्त के समय अग्नि नष्ट हो जावेगी।

इसके पश्चात् तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष के बीत जाने पर महाविषम छठा काल प्रवेश करेगा[27]।

इन वीरांगज मुनि के पहले-पहले हमेशा मुनियों का विहार इस पृथ्वी तल पर होता ही रहेगा।

शंका–अभी चा.च.आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के पहले निर्दोष मुनि कहाँ थे? अतः मुनि की अविच्छिन्न परम्परा कैसे मानी जा सकती है?

समाधान–उस समय भी दक्षिण में मुनि विचरते थे। हाँ, इतना अवश्य है कि वे अधिक परिचित नहीं थे।

आजकल के मुनियों के प्रति श्रावकों का क्या कर्त्तव्य है? देखिये–

श्रावकों के प्रति ग्रंथकर्त्ताओं के आदेश–

''कलौ काले चले चित्ते, देहे चान्नादिकीटके।
एतच्चित्रं यदद्यापि, जिनरूपधरा नराः।।796।।
यथा पूज्यं जिनेन्द्राणां, रूपं लेपादिनिर्मितम्।
तथा पूर्वमुनिच्छायाः, पूज्याः संप्रति संयताः।।797।।
भुक्तिमात्रप्रदाने तु, का परीक्षा तपस्विनाम्।
ते सन्तः सन्त्वसन्तो वा, गृही दानेन शुद्ध्यति''।।798।।

''इस कलिकाल में मनुष्यों का चित्त चंचल है, शरीर अन्न का कीड़ा बना हुआ है फिर भी बड़े आश्चर्य की बात है कि आज भी जिनरूप को धारण करने वाले मनुष्य विद्यमान हैं। जैसे-लेप, पाषाण आदि से निर्मित जिनेन्द्रप्रतिमायें पूज्य हैं वैसे ही आजकल के मुनियों को भी पूर्वकाल के मुनियों की प्रतिकृति मानकर पूजना चाहिए। 'आहार मात्र को देने के लिए तपस्वियों की परीक्षा क्या करना? वे सज्जन हों या दुर्जन? गृहस्थ तो दान से शुद्ध हो जाता है।' सब तरह से आरंभ में प्रवृत्त हुए गृहस्थों का धन व्यय बहुत प्रकार से हुआ करता है अतः बहुत सोच-विचार नहीं करना चाहिए। मुनिजन जैसे-जैसे तप, ज्ञान आदि गुणों से विशेष होवें, वैसे-वैसे गृहस्थों को उनकी अधिक-अधिक पूजा करना चाहिए। धन बड़े भाग्य से मिलता है अतः भाग्यशाली पुरुषों को आगमानुकूल कोई मुनि मिले या न मिले किन्तु उन्हें अपना धन जैन धर्माश्रितों में अवश्य खर्च करना चाहिये। जिनेन्द्रदेव का यह शासन प्रायः उच्च और हीन जनों से भरा हुआ है। जैसे एक खम्भे पर मकान नहीं ठहर सकता, वैसे ही यह शासन भी एक पुरुष के आश्रय से नहीं ठहर सकता है[28]।''

अन्यत्र भी कहा है–

''जैसे पाषाण आदि की प्रतिमाओं में जिनेन्द्रदेव की स्थापना करके पूजते हैं वैसे ही आजकल में मुनियों में पूर्व के मुनियों की स्थापना करके भक्ति से उनकी अर्चा करिये, क्योंकि अति क्षोद-क्षेम करने वालों का हित कैसे हो सकता है[29]''

द्रव्यलिंग और भावलिंग–श्री इंद्रनंदि आचार्य कहते हैं–

''द्रव्यलिंग को धारण करके ही यति भावलिंगी होता है इसके बिना अनेकों व्रतों को धारण करने पर भी मुनि नहीं हो सकता। यह द्रव्यलिंग ही भावलिंग का कारण है क्योंकि भावलिंग तो अंतरंगकृत है, वह नेत्र का विषय नहीं है। मुद्रा ही सर्वत्र मान्य होती है मुद्रारहित कोई भी मान्य नहीं होता जैसे कि राजमुद्रा को धारण करने वाला अत्यन्त हीन भी हो, तो भी वह राजपुरुष माना जाता है।''[30]

वारिषेण मुनि का मित्र पुष्पडाल बारहवर्ष तक द्रव्यलिंग धारण करके भी अंतरंग में मुनि नहीं बन पाया पुनः वारिषेण के द्वारा स्थितिकरण किये जाने पर प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुआ। उसके पहले संघ में सभी मुनि उसके साथ वन्दना करते थे या नहीं? श्रावक उसे नवधाभक्ति करके आहार देते थे या नहीं? कहना पड़ेगा कि साधुओं के संघ में बराबर वंदना-प्रतिवंदना चल रही थी और श्रावक भी भक्ति से आहार दान आदि दे रहे थे क्योंकि भावों की स्थिति केवलीगम्य ही हुआ

करती है। बाहर से तो द्रव्यलिंग ही दिखता है और बाह्यचर्या भी दिखती है उसीके अनुरूप पूज्य-पूजा की व्यवस्था चलती है।

मुनि द्रव्य से निर्ग्रंथवेष रखते हैं, केशलोंच करते हैं, पिच्छी-कमण्डलु रखते हैं और स्नान आदि नहीं करते हैं। यही उनका द्रव्यलिंग है तथा उस वेष में छठे-सातवें गुणस्थानरूप भावों का होना भावलिंग है। कदाचित् उन मुनि के पाँचवें, चौथे आदि गुणस्थानरूप भाव हो जावें तो भी वे द्रव्यलिंगी माने जायेंगे, भावलिंगी नहीं। ऐसे ही यदि पहले गुणस्थान के भाव हो जाते हैं तब तो वे द्रव्यलिंगी हैं ही हैं। अभव्य मुनि ऊपर से निर्दोष, निरतिचार चर्या पालते हुये भी और ग्यारह अंग के ज्ञानी होते हुये भी भावों से मिथ्यात्वगुणस्थान में ही रहते हैं, अतः ये द्रव्यलिंगी ही हैं।

तथा मूलगुणों में कदाचित् दोष लग भी जावे किंतु छठे-सातवें गुणस्थान में रहने वाले मुनि को पुलाक संज्ञा दी है, वे भावलिंगी हैं।

अतः यह स्पष्ट होता है कि भावलिंगी मुनि का निर्णय हम-आप जैसे अल्पज्ञजनों से परे है। हमें तो मुनि के द्रव्य वेष और बाह्य आचरण को देखकर ही मुनिमुद्रा को पूज्य मानकर उनका यथोचित सत्कार करना चाहिए।

मुनियों की ये चर्याएँ आगम के अनुकूल हैं या प्रतिकूल?

शंका–निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनि तो पूज्य होते हैं किन्तु वर्तमान के मुनियों में बहुत कुछ शिथिलाचार दिख रहा है इसलिए ये वर्तमान के मुनि पूज्य नहीं हैं?

प्रतिशंका-आपकी दृष्टि में वे शिथिलाचार क्या-क्या हैं?

(1) शंका–"अनेकों हैं। हाँ, देखिए–"

जहाँ पर वे पहुँचते हैं, लोग उनके निमित्त से ही आहार बनाते हैं और वे उसे ग्रहण करते हैं अतः आजकल के सभी मुनि उद्दिष्ट आहार करते हैं?

समाधान–इस विषय को आगम से समझने की आवश्यकता है। मूलाचार आदि ग्रंथों में क्या विधान है और पुराणों में महामुनियों की चर्या के कैसे-कैसे उदाहरण मिलते हैं उन्हें अवश्य समझना चाहिए। देखिए–

'श्री कुंदकुंददेव कहते हैं कि कृत, कारित, अनुमोदना से रहित प्रासुक और प्रशस्त आहार जो कि पर के द्वारा दिया गया है उसे समभावों से ग्रहण करना एषणा समिति है।'[31] श्री अमृतचन्द्रसूरि भी कहते हैं–

'दाता के सात गुणों से युक्त गृहस्थ को स्व और पर के अनुग्रह के हेतु जातरूपधारी अतिथि के लिए द्रव्यविशेष का विधिवत् अवश्य ही भाग करना चाहिए। इसी का नाम अतिथि संविभाग व्रत है अर्थात् "अतिथि के लिए सम्यक् प्रकार से विभाग करना अतिथि संविभाग है।[32]" पुराणों में देखिए–पूर्वविदेह के वत्सकावती देश की प्रभाकरी नगरी के राजा प्रीतिवर्धन किसी समय निकट के पर्वत पर ठहरे थे। पुरोहित ने कहा कि राजन्! आज आपको विशेष लाभ का निमित्त है।.....पुनः राजाज्ञा से पुरोहित ने नगर में घोषणा करा दी कि 'आज राजा के महान् उत्सव का दिन होने से सभी लोग घर के आँगन को, नगर की गलियों को सुगन्धित जल से सींचकर इस प्रकार फूल बिखेर दो कि बीच में कहीं कोई रंध्र खाली न रहे।'.... एक मासोपवासी पिहितास्रव नाम के मुनि चर्या के लिए नगर में जा रहे थे। सर्वत्र पुष्पमय गलियों को देखकर वापस उसी पर्वत पर राजा के शिविर की तरफ आ गये। राजा ने पड़गाहन कर आहार दिया, उस समय देवों ने पंचाश्चर्य वृष्टि की।"[33]

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि राजा ने मुनि के अपने यहाँ आहार हेतु ही उस दिन सारे नगर का मार्ग अप्रासुक करवाया और आहार दिया किन्तु इसमें मुनि की कृत, कारित, अनुमोदना आदि न होने से वे निर्दोष ही रहे।

अन्य उदाहरण और हैं–"नंदिषेण मुनिराज ग्यारह अंग के धारी थे और अनेक ऋद्धियों के स्वामी थे। एक दिन इन्द्र द्वारा सभा में उनके वैयावृत्य गुण की प्रशंसा होने पर एक देव परीक्षा हेतु रुग्ण मुनि का रूप बनाकर वहाँ आया। नंदिषेण ने यथोचित परिचर्या करके उससे पूछा कि हे मुनि! तुम्हारी किस भोजन में रुचि है? मुनि ने कहा–पूर्वदेश के धान का भात, पांचाल देश के मूँग की दाल, पश्चिम देश की गायों का घी और कलिंग देश की गाय का दूध इत्यादि मिल जाये

तो मैं स्वस्थ हो जाऊँ। मुनि नंदिषेण ने गोचरी बेला में जाकर अपनी ऋद्धियों के बल से उपर्युक्त चीजें उपलब्ध कराकर लाकर उन्हें आहार करा दिया।''[34]

इससे स्पष्ट है कि मुनि वैयावृत्य हेतु अपनी ऋद्धियों का भी प्रयोग करते थे और मुनि द्वारा बताई हुई वस्तुओं का आहार प्रयोग भी कराते थे, इत्यादि।

''एक समय श्रीकृष्ण ने मुनिराज से पूछा–''भगवन्! आपके इस रोग में कौन सी औषधि हितकर होगी? मुनिराज ने कहा-यदि कापिष्ट चूर्ण मिल जाये तो यह रोग शांत हो जायेगा।''....श्रीकृष्ण ने अपने घर में औषधि आदि की व्यवस्था कराकर नगर में सर्वत्र उन मुनि को पड़गाहन करने की मनाही कर दी।... मुनि चर्या हेतु भ्रमण कर अंत में वहीं आ गये। रुक्मिणी ने पड़गाहन कर विधिवत् आहार दिया।...कुछ दिन बाद वह रोग समाप्त हो गया।''[35]

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि श्रावक मुनि के उद्देश्य से भोजन, औषधि आदि बनाकर देते थे और साधु अनभिज्ञ रहकर आहार लेते थे अतः वे निर्दोष आहार के करने वाले ही रहते थे।

(2) शंका–आजकल के मुनि अधिकतर ग्राम या शहरों में ठहरते हैं?

समाधान–भावसंग्रह, भद्रबाहु चरित, पद्मनंदि पंचविंशतिका आदि ग्रंथों में मुनियों को इस पंचमकाल में ग्राम या नगर के मंदिर, धर्मशाला आदि में ठहरने का विधान है।[36] प्रथमानुयोग में भी अनेकों उदाहरण हैं।

''एक समय सात ऋषि अयोध्या में आहारार्थ आये। आहार करके मंदिर में गए। द्युति नामक भट्टारक ने उनकी वंदना की और रत्नत्रय कुशल पूछा।''[37]

ये 'द्युति' महान आचार्य थे, पद्मपुराण में कई जगह इनके संघ सहित अयोध्या के मंदिर में रहने का प्रकरण आया है। इससे चतुर्थ काल में भी मुनि शहरों में रहते थे, यह स्पष्ट है।

''देविल कुंभार ने धर्मशाला में मुनि को ठहरा दिया।''[38] ऐसा अभयदान के कथानक में आया है।

''मणिमाली मुनि के स्वस्थ हो जाने पर श्रावकों के आग्रह से उन्होंने उसी उज्जयिनी नगरी में उसी जिनदत्त सेठ के घर चौमासा किया।''[39]

(3) शंका–आजकल के मुनि एक स्थान पर महीनों रहते हैं जबकि पाँच दिन से अधिक नहीं रहना चाहिए?

समाधान–''अनगार धर्मामृत, मूलाचार आदि ग्रंथों में एक मास तक एक ग्राम में रहने का विधान है[40]।'' यह पाँच दिन रहने की चर्या तो विशेष मुनियों के लिए है।

(4) शंका– कुछ साधु डोली या नाव में बैठकर विहार करते हैं?

समाधान–''डोली में बैठकर गमन करने से आचार्य उन्हें मार्गशुद्धि (मार्ग गमन प्रायश्चित) से दूनी शुद्धि दें।''[41]

इस कथन से अस्वस्थ अवस्था में डोली में बैठने का विधान स्पष्ट है।

नाव का विधान भी मिलता है। यथा–''जल में प्रवेश करते समय मुनि धूलि को पिच्छी से साफ कर जल में प्रवेश करते हैं। कदाचित् बड़ी नदियों को पार करने में प्रत्याख्यान करके नौका पर चढ़ते हैं।''[42]

(5) शंका–आजकल के आचार्य बहुत बड़े संघ का परिकर रखते हैं?

समाधान–यशस्तिलक चंपू में श्री सुदत्त नामक आचार्य के संघ का वर्णन पढ़ते समय उसकी विशालता का परिचय हो जाता है।''[43]

(6) शंका–संघ के श्रावक लोग संघ में बहुत परिग्रह रखते हैं?

समाधान–संघ में श्रावक-श्राविका और ब्रह्मचारीगण रहने से वे अपने भोजन-वस्त्र आदि की व्यवस्था करेंगे। गुरुओं को भी आहारदान देंगे। मार्ग में गुरुओं के लिए समुचित व्यवस्था करेंगे अतः उनके पास सभी वस्तुएँ रह सकती हैं।

श्रावक पहले भी मुनिसंघ में रहते थे। यथा–सभा में स्थित श्रीरामचंद्र ने अर्हद्दास सेठ को देखते ही पूछा कि ''मुनिसंघ कुशलपूर्वक है?'' सेठ ने कहा कि ''हे महाराज! आपके इस कष्ट से पृथ्वीतल परमुनि भी परम व्यथा को प्राप्त हुए हैं[44]।''

यदि वे सेठ संघ में न होते तो उन्हें देखते ही रामचंद्र मुनिसंघ की कुशल क्यों पूछते?

(7) शंका–साधु वसतिका के किवाड़ स्वयं बन्द करते और खोलते हैं जबकि वसतिका बिना किवाड़ की होनी चाहिए?

समाधान–भगवती आराधना में मुनियों के लिए वसतिका किवाड़ सहित बताई है। यथा–"जिसकी दीवालें मजबूत हैं, जिसमें किवाड़ हैं, जिसमें बाल, वृद्ध आदि साधु आ-जा सकते हैं, ऐसी वसतिका ग्राम के बाहर होवे। उद्यानगृह, गुफा और शून्यगृह भी वसतिका के योग्य माने गए हैं[45]।"

अन्यत्र भी वर्णन है कि "यदि साधु वसतिका का दरवाजा भूल से खुला छोड़कर चले जाएँ और उसमें कदाचित् बिल्ली आदि प्रवेश कर जाये तो गुरु उन्हें प्रायश्चित देवें[46]।"

(8)शंका–ये बैठने-सोने में पाटा-घास, चटाई आदि का उपयोग करते हैं?

समाधान–मूलाचार में मुनियों के लिए क्षितिशयन मूलगुण के प्रकरण में चार प्रकार से संस्तर बताए गए हैं। "भूमिसंस्तर, शिलासंस्तर, फलकसंस्तर और तृणसंस्तर[47]।" औपचारिक विनय में 'शिष्य गुरु का संस्तर करे' ऐसा वर्णन हैं उसमें चटाई का भी विधान है। यथा–"संस्तकरणं–चट्टिकादिप्रस्तरणं[48]।" अनगारधर्मामृत[49] में भी चटाई का वर्णन है।

(9) शंका–संघ में आर्यिका, ब्रह्मचारिणी व असंयत शिष्यों को रखते हैं?

समाधान–यशस्तिलकचम्पू में जो सुदत्ताचार्य के संघ का वर्णन है उसमें 'क्षुल्लक अभयरुचि और क्षुल्लिका अभयमति को आहार हेतु गाँव में भेजा।' इससे आर्यिका, क्षुल्लिका आदि संघ में रहती थीं, यह स्पष्ट है।

मूलाचार में भी आर्यिका का आचार्यत्व कौन करे? ऐसा प्रश्न होने पर उनके गुणों का वर्णन किया है। इससे आचार शास्त्रों का विधान भी स्पष्ट हो जाता है। अनंतमती कन्या आर्यिका के पास रहती थी। जब उसके पिता अयोध्या पहुँचे तब उन्होंने उसे पहचान लिया। इत्यादि उदाहरणों से असंयतजन भी संघ में रहते थे, यह स्पष्ट हो जाता है। हाँ, एक मुनि के साथ एक आर्यिका या ब्रह्मचारिणी का रहना विरुद्ध है।

(10) शंका–श्रावकों को व्रत, अनुष्ठान व मन्त्र-तन्त्रादि बताते हैं?

समाधान–चतुर्थकाल में भी मुनियों ने श्रावक-श्राविकाओं के दुःखों को सुनकर उन्हें कुछ न कुछ व्रत-उपवास, विधि-विधान, मन्त्र आदि करके संकट दूर करने का मार्ग दिखाया था। जैसे कि मैनासुन्दरी को मुनिराज ने आष्टान्हिक व्रत करने का और सिद्धचक्र यन्त्र के अनुष्ठान करने का उपदेश दिया था। दशलक्षण आदि व्रतों की कथाओं में तो मुनियों द्वारा ही व्रतों के देने का विधान है। यदि मुनि मन्त्रादि का प्रयोग अपने लिए मिष्ट आहार आदि हेतु से करते हैं तो दोष है अन्यथा धर्मप्रभावना आदि के लिए करने में कोई दोष नहीं ऐसा कथन मूलाचार, मूलाराधना आदि में पाया जाता है। यथा–

"जिसके द्वारा मार्ग को प्रभावशील किया जाता है वह प्रभावना है। शास्त्रार्थ, पूजामहोत्सव, दान, व्याख्यान और मंत्र-तंत्रादि से तथा इनके समीचीन उपदेशों से मिथ्यादृष्टि के प्रभाव को रोककर अर्हंतदेवकेशासन का उद्योत करना प्रभावना है[50]।"

ऐसे ही मूलाराधना में भी कहा है[1] कि 'धर्म प्रभावना आदि के लिए मन्त्रादि का प्रयोग करने में कोई दोष नहीं है आज के युग में बहुत से लोग रोग आदि किसी संकट के समय अनेकों प्रकार केमिथ्यात्व का सेवन करने लगते हैं, बहुत सी महिलाओं ने मिथ्या देवी-देवताओं के व्रत करना शुरू कर दिया है ऐसी स्थिति में यदि साधुगण उन्हें रोगादि की शांति के लिए कोई शांतिमंत्र आदि बता देते हैं तो कोई महापाप नहीं है ऐसे पाप से छुड़ानेमें दोष नहीं प्रत्युत् गुण ही है। श्रावक यदि किसी धन आदि के लोभ से भी धर्म का नाम लेते हैं, जाप्य आदि करते हैं तो यह उनेव लिए अच्छा ही है, बुरा क्या है?

(11) शंका–वृत्तपरिसंख्यान लेकर आहारार्थ शहरों में घूमते हैं तथा उनके आहार देखने हेतु लोग एकत्रित हो जाते हैं?

समाधान–वृत्तपरिसंख्यान में तो भीम मुनिराज ने भाले के अग्रभाग से आहार लेने काअभिग्रह लिया था जो कि छह महीने बाद मिला था। श्री रामचंद्र जी जिस समय आहार हेतु निकले इतनी भीड़ एकत्रित हुई और इतना कोलाहल हुआ कि हाथियों ने आलानस्तंभ तोड़ दिये[2]।' राजा वज्रजंघ जब वन में आहार दे रहे थे तब देखने वाले मंत्री, पुरोहित व नकुल, वानर आदि ने भी दान की अनुमोदना से वैसा ही महान पुण्य संचित कर लिया था अतः आहार दान देखने वाले भी पुण्य का संचय कर लेते हैं।

(12) शंका–प्रभावना के लोभ में आसक्त रहते हैं?

समाधान–प्रभावना सम्यग्दर्शन का आठवां अंग है जो कि मुनि और श्रावक सभी के लिए ही उपादेय है।

श्री अमृतचंद्र सूरि कहते हैं–

आत्मा प्रभावनीयो, रत्नत्रयतेजसा सततमेव। दानतपोजिनपूजा, विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः।।[53]

रत्नत्रयरूप तेज के द्वारा हमेशा अपनी आत्मा को प्रभावित करना चाहिए और दान, तप, जिनपूजा, विद्या, अतिशय आदि के द्वारा जिनधर्म की प्रभावना करना चाहिए।

मुनियों के लिए भी प्रभावना अंग में यह सभी बातें मूलाचार आदि ग्रंथों में कही गई हैं।

वज्रकुमार मुनि ने भी उर्विला रानी के जैन रथ को निकलवाने के लिए विद्याधरों को आदेश दिया था। श्री अकलंकदेव ने वाद के द्वारा धर्म का उद्योत किया है। श्री कुंदकुंददेव ने भी गिरनार पर्वत पर धर्म के अतिशय के द्वारा अम्बिका की मूर्ति को बुलवाकर धर्म की प्रभावना की थी। इत्यादि अनेकों उदाहरण प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त सभी शंकाओं के समाधान आचार ग्रंथ और प्रथमानुयोग ग्रंथों में दिख रहे हैं। इनको देखकर भी जो आजकल के सभी मुनियों को सदोष कहते हैं वे वास्तव में श्री रविषेणाचार्य के शब्दों के अनुरूप ही हैं। यथा–सप्तर्षि मुनियों में से प्रधान मुनि शत्रुघ्न महाराज को उपदेश देते हुए कह रहे हैं–

''हे शत्रुघ्न! आगे आने वाले कलिकाल में तीव्र मिथ्यात्व से युक्त मनुष्य व्रत और गुणों से संयुक्त दिगम्बर मुद्रा के धारक मुनियों को देखकर ग्लानि करेंगे।

...हंसी करने में उद्यत कितने ही मनुष्य शांतचित्त मुनियों को तिरस्कृत कर मूढ़ मनुष्यों के लिए आहार देवेंगे। इस प्रकार अनिष्ट भावना के धारक गृहस्थ, उत्तम मुनियों का तिरस्कार करके तथा मोही मुनि को बुलाकर उसके लिए योग्य आहार आदि देंगे। जिस प्रकार शिला तल पर रखा हुआ बीज यद्यपि सींचा जाए तो भी उसमें फल नहीं लगता उसी प्रकार शील रहित मनुष्यों के लिए दिया हुआ दान भी निरर्थक ही है। जो गृहस्थ मुनियों की अवज्ञा कर गृहस्थ के लिए आहार आदि देता है वह मूर्ख चंदन को छोड़कर बहेड़ा ग्रहण करता है।....हे राजन्! आगे आने वाले काल में थके हुए मुनियों के लिए भिक्षा देना अपने गृहदान के समान एक बड़ा भारी आश्रय होगा।''[54]

इस प्रकरण को पढ़कर आचार्यों की आज्ञानुसार इस पंचमकाल के मुनियों की अवज्ञा न करके उनकी विनय, भक्ति आदि करते हुए अपने सम्यक्त्व धन को सुरक्षित रखना चाहिए।

आर्यिकाओं की चर्या–

प्रश्न–आर्यिकाओं की क्या चर्या है?

उत्तर–मूलाचार में अट्ठाईस मूलगुणों का वर्णन करके औघिक और पदविभागी समाचार विधि का वर्णन किया गया है। पुनः आचार्य कहते हैं कि ''जिस प्रकार से यह सर्व समाचार नीति मुनियों के लिए बतलाई गई है, उसी प्रकार से आर्यिकाओं को भी अहोरात्र इन क्रियाओं का यथायोग्य पालन करते रहना चाहिए।''[55]

इसमें जो 'यथायोग्य' पद है उससे आर्यिकाओं के लिए वृक्षमूल, आतापन, अभ्रावकाश ये तीन योग और प्रतिमायोग आदि धारण करने का निषेध है तथा उन्हें एक वस्त्र धारण करने का और बैठकर करपात्र में एक बार आहार लेने का विधान है एवं आगे बतलाया है कि ये परस्पर में एक-दूसरे की अनुकूलता रखते हुए तीन, पाँच, सात आदि आर्यिकायें मिलकर ही वसतिका में रहें व आहार आदि के लिए जाते समय भी मिलकर ही विचरण करें।

इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यिकाओं की सभी चर्या मुनियों के अनुसार होती है। मात्र दो साड़ी रखती हैं और बैठकर आहार लेती हैं इतना ही व्यवहार चर्या में अंतर है तथा इनके भावसंयम न हो सकने से संयमासंयम ही माना गया है अतः ये उपचार से महाव्रती कहलाती हैं फिर भी क्षुल्लक व ऐलक के द्वारा भी पूज्य हैं।[56]

पूर्वकाल की आर्यिकायें ग्यारह अंग तक ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं। यथा 'आर्यिका सुलोचना ग्यारह अंग के ज्ञान की धारक हो गई।'[57]

प्रायश्चित्त ग्रंथों में आर्यिकाओं की प्रायश्चित्त विधि भी मुनियों के बराबर बताई है और क्षुल्लक, ऐलक आदि की उससे आधी कही है। इनकी दीक्षाविधि भी मुनि दीक्षाविधि के आधार से ही की जाती है। इन सभी बातों से स्पष्ट है कि आर्यिकायें मुनि के तुल्य नवधाभक्ति की पात्र हैं।

शंका–क्या आर्यिकाओं की पूजा की जा सकती है?

समाधान–नवधाभक्ति में पूजा भी की जाती है तथा इसके लिए प्रमाण भी मौजूद हैं। यथा–'मंदिर में संघ के साथ जो 'वरधर्मा' नाम की गणिनी आर्यिका ठहरी हुई थीं, रामचंद्र ने सीता के साथ उनकी पूजा की।''[58]

आर्यिकाओं के लिए 'महाव्रतपवित्रांगा, श्रमणी, संयता, महाव्रतिनी, संयमिनी' आदि शब्दों के प्रयोग शास्त्रों में आये हुये हैं अतः आर्यिकायें भी पूज्य हैं।

शंका–आर्यिकायें एक स्थान पर अधिक दिन रह सकती हैं क्या?

समाधान–जैसे मुनिसंघ के लिए एक ग्राम में एक माह पर्यंत रहने का विधान है ऐसे ही आर्यिकाओं के लिये भी है।

विशेष प्रसंगवश मुनि व आर्यिका एक स्थान पर रहते थे ऐसे प्रमाण मिलते हैं। जैसे–द्युति नाम के आचार्य; जब रामचंद्र वन को चले गये हैं, उस समय वे वहाँ मंदिर में थे। भरत ने उनके पास प्रतिज्ञा की कि रामचंद्र के वापस आते ही मैं दीक्षा ले लूँगा। वे ही आचार्य रामचंद्र के वापस आने के बाद शत्रुघ्न के मथुरा में राज्य करने पर वहीं थे और सीता के निर्वासन के बाद भी वहीं थे।

ऐसे ही जीवंधरकुमार ने अपनी माता विजया और सुनंदा के दीक्षित हो जाने पर 'बार-बार उनके चरण छुए और यह याचना की कि इसी नगरी में आपको रहना चाहिए। अन्यत्र जाने का स्मरण भी नहीं करना चाहिए। उनके विनयबल से जब माताओं ने 'तथास्तु' कहकर वहीं रहना स्वीकृत कर लिया, तब जीवंधर स्वामी उनको प्रणाम करके अपने स्थान पर लौट आये।''[59]

इस प्रकार से अनेकों शंकाओं के समाधान प्रथमानुयोग और चरणानुयोग से प्राप्त कर यह निश्चय कर लेना चाहिए कि पंचमकाल के अंत तक मुनि, आर्यिका और श्रावक-श्राविका ऐसा चातुर्वर्ण संघ निर्दोष चर्या का पालन करते हुए विचरण करता रहेगा।

टिप्पणी

1. दुविहो जिणेहिं कहिओ जिणकप्पो तह य थविरकप्पो य। सो जिणकप्पो उत्तो उत्तमसंहणणधारिस्स।।119।।
   जिण इव विहरंति सया ते जिणकप्पे ठिया सवणा।।123।। (भावसंग्रह)
2. थविरकप्पो वि कहिओ अणयाराणं जिणेण सो एसो। पंचच्चेलच्चाओ अकिंचणत्तं च पडिलिहणं।।124।।
   वरिससहस्सेण पुरा जं कम्मं हणइ तेण काएण। तं संपइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीणसंहणणे।।131।। (भावसंग्रह)
3. .....जिनकल्पाख्यसंयमः। साँप्रतं कलिकालेऽस्मिन् हीनसंहननत्वत। स्थानीयनगरग्रामजिनसद्मनिवासिनः।।119।।
   कालोऽयं दुःसहो हीनं शरीरं तरलं मनः। मिथ्यामतमतिव्याप्तं तथापि संयमोद्यता।।120।। (भद्रबाहुचरित, परिच्छेद 4)
4. गाथा 145, 146, 147। (मूलाचार अ. 4)
5. तवसुत्तसत्तएगत्तभावसंघडणधिदिसमग्गो य। पविया आगमबलिओ एयविहारी अणुण्णादो।।140।। (मूलाचार अ. 4)
6. सच्छंदगदागदी सयणणिसयणादाणभिक्खवोसरणे। सच्छंदजपंरोचि य मा मे सत्तू वि एगागी।।150।। (मूलाचार अ. 4)
7. प्रवचनसार गाथा 246, 247, 248, 249, 253। ''दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।।247।।
8. मूलाचार गाथा 158, अ. 4।
9. ".....तदो सव्वेसिमंगपुव्वाणमेगदेसो आइरियपरम्पराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो।।'' धवला पु. 1, पृ. 66-68।
10. ''तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'' पु. 4, पृ. 393-399।
11. नंदिसंघ की पट्टावलि के आचार्यों की नामावली (इण्डियन एण्टीक्वेरी के आधार पर)। (तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पु. 4, पृ. 441)

12. श्रीभद्रबाहुः श्रीचंद्रो जिनचंद्रो महामुनिः। गृद्धपिच्छगुरुः श्रीमान् लोहाचार्यो जितेन्द्रियः।।67।।
एलाचार्यः पूज्यपादः सिंहनन्दी महाकविः। जिनसेनो वीरसेनो गुणनन्दी महातपाः।।68।।
समंतभद्रः श्रीकुम्भः शिवकोटिः शिवंकरः। शिवायनो विष्णुसेनो गुणभद्रो गुणाधिकः।।69।।
अकलंको महाप्राज्ञः सोमदेवो विदांवरः। प्रभाचन्द्रो नेमिचन्द्र इत्यादिमुनिसत्तमैः।।70।।
यच्छास्त्रं रचितं नूनं तदेवादेयमन्यकैः। विसंध्यं रचितं नैव प्रमाणं साध्वपि स्फुटम्।।71।।
पूर्वाचार्यवचः श्रीमत्सर्वज्ञवचनोपमम्। तज्जानन्ननागरोऽत्र पूज्यः स्यादखिलैर्जनैः।।72।। (नीतिसार)

13. जैसे कि अन्य संप्रदाय में परमहंस आदि साधु नग्न ही रहते हैं।

14. तत्त्वार्थराजवार्तिक अ. 9, सूत्र 46।

15. तत्त्वार्थराजवार्तिक अ. 9, सूत्र 47, वार्तिक 4।

16. "श्रावकादीनामुपकारोऽनेन भविष्यतीति छात्रादिकं रात्रौ भोजयतीति विराधकः स्यात्।" (तत्त्वार्थवृत्ति अ. 9, सूत्र 47)

17. "एते निर्विकल्पसामायिकसंयमविकल्पत्वात् श्रमणानां मूलगुणा एव। तेषु यदा निर्विकल्पसामायिकाधिरूढत्वेनानभ्यस्त विकल्पत्वात्प्रमाद्यति तदा.....विकल्पेनात्मानमुपस्थापयन् छेदोपस्थापको भवति।" (प्रवचनसार गा. 208, 209 अमृत पृ. 504)

18. प्रवचनसार गाथा 230-231।

19. मोक्षपाहुड़।

20. पद्मनंदिपंचविंशतिका पृ. 30।

21. नियमसार गाथा 154।

22. नियमसार गाथा 154, टीका।

23. सन्त्यद्यापि चिरंतनांतिकचराः सन्तः कियन्तोऽप्यमी।।33।। (आत्मानुशासन)।

24. ".....गाथा 1278-1279। हुंडावसप्पिणिस्स य दोसेणं सत्त होंति विच्छेदा। दिक्खाहिमुहाभावे अत्थमिदो धम्मरविदेओ।।1280। (तिलोयपण्णत्ति अ. 4, पृ. 313)

25. तिलोयपण्णत्ति अ. 4, गाथा 1493।

26. तेत्तियमेत्ते काले जम्मिस्सदि चाउवण्णसंघाओ। (तिलोयपण्णत्ति अ. 4, गाथा 1494-1495)।

27. तिलोयपण्णत्ति, अ. 4, पृ. 344-345।

28. उपासकाध्ययन गाथा 796 से 798, 818 से 822 तक।

29. विन्यस्यैदंयुगीनेषु प्रतिमासु जिनानिव। भक्त्या पूर्वमुनीनर्चेत् कुतः श्रेयोऽतिचर्चिनाम्।।64।। (सागारधर्मामृत)।

30. द्रव्यलिंगं समास्थाय भावलिंगी भवेन्मुनिः। मुद्रा सर्वत्रमान्या स्यान्निर्मुद्रो नैव मन्यते। राजमुद्राधरात्यंतहीनवच्छास्त्रनिर्णयः।। (नीतिसार, श्लोक 74 से 77)।

31. नियमसार अ. 4।

32. पुरुषार्थसिद्धयुपाय।

33. आदि पु. पर्व 8।

34. .....गत्वा गोचरवेलायामानीय सहसा ददौ।।164।। (हरिवंशपुराण सर्ग 18)।

35. श्रेणिक चरित सर्ग 11।

36. भावसंग्रह....। भद्रबाहु च.स. 4। "संप्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः।

37. पद्मपुराण पर्व 92। (पद्मनंदिपंचविंशतिका पृ. 128)।

38. आराधनाकथाकोश, कथा 112।

39. श्रेणिक चरित्र, सर्ग 11।

40. अनगार अ. 9, मूलाचार अ.....।

41. प्रायश्चितचूलिका।

42. मूलाराधना सटीक पृ. 344।

43. यशस्तिलकचंपू।

44. अर्हद्दासनामानं श्रेष्ठिनं दृष्टुमागतं। कुशलं सर्वसंघस्य पप्रच्छेह सदःस्थितः।।10।।

उवाच स महाराज व्यससेन तवामुना। व्यथनं परमं प्राप्ता यतयोऽपि महीतले।।11।। (पद्मपुराणपर्व 119)

45. घणकुड्डे सकवाडे गामबहिं बालबुड्ढगणजोग्गे। उज्जाणघरे गिरिकंदरे गुहाए व सुण्णघरे।।639।। भगवती आराधना

46. प्रायश्चित्त चू.।

47. संथारवासयाणं-संस्तारश्चतुर्विधा भूमिशिलाफलकतृणभेदात्। (मूला. सटीक पृ. 148)।

48. मूलाचारसटीक पृ. 298।

49. अनगार ध. अ. 4, श्लोक 54।

50. प्रभावणाय.....वादपूजादानव्याख्यानमंत्रतन्त्रादिभिः सम्यगुपदेशैर्मिथ्यादृष्टिरोधं कृत्वार्हत्प्रणीतशासनोद्योतनं (मूलाचार सटीक, पृ. 174)।

51. मूलाराधना, पृ. 400।

52. पद्मपुराण।

53. पुरुषार्थसिद्धिउपाय।

54. जातरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान्। सञ्जुगुप्सां करिष्यन्ति महामोहान्विताः जनाः।।62।।

प्रशांतहृदयान् साधून् निर्भर्त्स्य विहसोद्यता। मूढा मूढेषु दास्यंति केचिदन्नं प्रयत्नतः।।64।।

इत्यमेतं निराकृत्य प्राहूयान्यं समागतम्। यतिनो मोहिनो देयं दास्यन्त्यहितभावनाः।।65।।

बीजं शिलातले न्यस्तं सिच्यमानं सदापि हि। अनर्थकं यथा दानं तथा शीलेषु गेहिनाम्।।66।।

अवज्ञाय मुनीन् गेही गेहिने यः प्रयच्छति। त्यक्त्वा स चंदनं मूढो गृण्हात्येव विभीतकम्।।67।।

आगमिष्यति काले सा श्रान्तानां त्यक्तवेश्मनाम्। भविष्यत्याश्रयो राजन्! स्वगृहाशयसम्मिता।।70।।(पद्मपुराण पर्व 92)

55. एसो अज्जाणं पि य सामाचारो जहाक्खिओ पुव्वं। सव्वह्मि अहोरत्ते विभासिदव्वो जहाजोग्गं।।187।। (मूलाचार अ. 4)

56. सागारधर्मामृत पृ. 518।

57. एकादशांगभृज्जाता सार्यिकापि सुलोचना।।52।। (हरिवंशपुराण पु. पृ. 213)

58. "वरधर्मापि सर्वेण संघेन सहितापरम्। राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम्।।128।। (पद्मपुराण, पर्व 37)।

59. "पुनः पुनः प्रगृह्य पादं प्रसवित्र्योः 'अत्र नगर्यामासिका कर्तव्या। न च स्मर्तव्यान्यत्र यात्रा' इति ययाचे। ताभ्यां च तदीयप्रश्रयबलेन 'तथा' इति प्रतिश्रुते विश्रुतवीर्यः स विश्वंभरापतिः.....निजावसथमशिक्षित्।" (गद्यचिंतामणि लंब 11, पृ. 400)

ग्रंथों के अध्ययन-अध्यापन का क्रम

—गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

गुरूणां परिपाट्याहं, श्रुतं लब्ध्वा नयद्वयात्।
निर्देशयामि भव्येभ्यः, जिनशासनवृद्धये।।10।।

गुरुओं की परम्परा से श्रुतज्ञान को प्राप्त करके मैं दोनों नयों के आश्रय से जिनशासन की वृद्धि के लिये भव्यों को उपदेश देऊँगा।

अध्ययन अर्थात् ग्रंथों को पढ़ना और उसका मनन करना तथा अध्यापन अर्थात् शिष्यों को पढ़ाना, अभ्यास कराना। किसी भी शास्त्र को गुरुमुख से ही पढ़ना चाहिए, तभी उसका समीचीन-संगत-निर्दोष अर्थ ग्रहण किया जा सकता है अन्यथा गलत अर्थ धारणा में बैठ जाने से प्रायः उसका दुराग्रह भी हो जाया करता है अतः कुछ मौलिक ग्रंथ तो गुरुमुख से ही पढ़ने चाहिए।

पुनः यदि किसी ग्रंथ का स्वाध्याय किया जाता है तो उसे एक बार पढ़कर दूसरी बार अवश्य पढ़ना चाहिये जिससे उसका आद्योपांत संदर्भ समझ में आ जाता है। हो सके तो तीन-चार या कई बार भी उस ग्रंथ का स्वाध्याय करना चाहिए। तब उसको किसी को पढ़ाना चाहिये और तभी उस ग्रंथ का प्रवचन करना चाहिए।

समयसार आदि ग्रंथों की गाथायें सूत्ररूप हैं। उनका संबंध आगे पीछे के सूत्रों से रहता है। जैसे कि ''तत्त्वार्थसूत्र'' टीकाकार श्री पूज्यपाद स्वामी और अकलंकदेव आदि आचार्यों ने एक-एक सूत्र की टीका में कहीं पीछे के या कहीं आगे के सूत्रों के संबंध जोड़कर तथा पूर्वापर विरोध न हो जावे, इस बात को ध्यान में रखकर ही विशेष अर्थ स्फुट किया है। उदाहरण के लिये **'न देवाः**।।' इस सूत्र का अर्थ कोई भी यही करेगा कि 'देव नहीं हैं' किन्तु ऐसा अर्थ पूर्वापर-विरुद्ध होने से इसमें पूर्व के **'नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि'**।। इस सूत्र से 'नपुंसक' शब्द का अध्याहार लेकर 'देव नपुंसक नहीं होते' ऐसा अर्थ किया जाता है। ऐसे ही सर्वत्र ग्रंथों में समझना चाहिये।

इस अध्ययन-अध्यापन की शैली में हमें किन-किन बातों को समझना है? देखिये–

गुरु कैसे होने चाहिए? शिष्य कैसा होना चाहिए? गुरु परम्परा से पढ़ने का क्या महत्त्व है? ग्रंथों को पढ़ते या पढ़ाते समय 'पापभीरुता' कैसी होनी चाहिए? ग्रंथ को पढ़ाते समय पहले उसके रहस्य को कैसे समझाना चाहिए? श्रावक को क्या करना चाहिए? पूर्वाचार्यों ने किस क्रम से उपदेश दिया है? मुनियों के आशीर्वाद देने में क्रम क्यों है? पहले मुनिधर्म का उपदेश देना, वह किसको? मद्य, मांसादि के त्याग और दया, दान आदि का उपदेश क्या भगवान ने दिया है? गृहस्थ रत्नत्रय का उपदेश दे सकते हैं क्या? कैसी कथाओं का उपदेश देना चाहिए? इन सब बातों को समझकर ही अध्ययन-अध्यापन अथवा प्रवचन करने से अर्थ का अनर्थ नहीं होता है।

ग्रंथों को पढ़ाने वाले मुनि या विद्वान् श्रावक उपाध्याय, गुरु अथवा अध्यापक कहलाते हैं तथा उपदेश देने वाले भी उपाध्याय या गुरु होते हैं और विद्वान् पंडितगण वक्ता कहलाते हैं। गुरु में क्या गुण होना आवश्यक है? शिष्य या श्रोतागण कैसे होने चाहिए? गुरुपरम्परा से अध्ययन करने या उपदेश सुनने का क्या महत्त्व है? पहले इन सभी बातों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए पुनः गुरु या वक्ता बनना चाहिए।

गुरु कैसे हों?

'ग्रन्थार्थतो गुरुपरम्परया यथावत्, श्रुत्वावधार्य भवभीरुतया विनेयान्।
ये ग्राहयंत्युभयनीतिबलेन सूत्रं,रत्नत्रयप्रणयिनो गणिनः स्तुमस्तान्[1]।।4।।

जो गुरु परम्परा से ग्रंथ, अर्थ और उभयरूप से सूत्र को यथावत् सुनकर और उसे अवधारण करके स्वयं संसार से भयभीत होकर शिष्यों को उभय नीति–निश्चय-व्यवहारनय की पद्धति के बल से सूत्रों को पढ़ाते हैं उन रत्नत्रय के

धारक आचार्यों की हम स्तुति करते हैं।

श्री अमृतचंद्र सूरि भी कहते हैं–

मुख्योपचारविवरण-निरस्तदुस्तरविनेयदुर्बोधाः।
व्यवहारनिश्चयज्ञाः, प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम्।।4।।

जिन्होंने मुख्य–निश्चयनय और उपचार–व्यवहारनय अथवा मुख्य और गौण प्रतिपादन शैली से शिष्यों के दुस्तर अज्ञान को नष्ट कर दिया है ऐसे व्यवहार और निश्चय के ज्ञाता महामुनि ही जगत में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं अर्थात् मोक्षमार्ग को चलाते हैं[2]।

गुणभद्रसूरि ने और भी अनेकों लक्षण किये हैं कि 'जो बुद्धिमान् हो, समस्त शास्त्रों के रहस्य को जानने वाला हो, प्रश्नों को सहने में समर्थ हो, हर एक प्रश्नों के उत्तर में कुशल हो, इत्यादि गुणों से युक्त आचार्य ही वक्ता होते हैं[3]।'

श्री गुणभद्रसूरि पुनः कहते हैं कि–

लोकद्वयहितं वक्तुं, श्रोतुं च सुलभाः पुरा।
दुर्लभाः कर्तुमद्यत्वे, वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः[4]।।143।।

पूर्वकाल में उभय लोक में हितकर ऐसे व्याख्यान को करने के लिये तथा सुनने के लिए भी बहुत से जन सुलभ थे किन्तु तदनुकूल आचरण करने के लिए दुर्लभ ही थे परन्तु वर्तमान में ऐसे व्याख्यान को कहने के लिए व सुनने के लिए भी लोग दुर्लभ हैं पुनः वैसा आचरण करना तो बहुत ही दूर की बात हो गई है।

उभय लोक के लिए हितकर किन्तु कठोर भी गुरु के वचन कैसे होते हैं–

विकाशयंति भव्यस्य, मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविंदस्य, कठोराश्च गुरूक्तयः[5]।।142।।

कठोर भी गुरु के वचन भव्यों के मन को इस प्रकार से प्रफुल्लित करते हैं कि जिस प्रकार से सूर्य की कठोर किरणें भी कमल को खिला देती हैं।

शिष्य कैसे हों?

शिष्य भी दुराग्रह से रहित हों तथा श्रवण, धारण आदि बुद्धि के विभव से युक्त हों, इत्यादि गुणों से युक्त शिष्य ही 'शास्त्र'–उपदेश के लिए पात्र हैं।[6]

'जिनेन्द्र देव के वचनों को सुनने का पात्र कौन है?' उसका लक्षण श्री अमृतचंद्र सूरि बताते हैं–

'अष्टावनिष्टदुस्तर, दुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य।
जिनधर्मदेशनाया, भवन्ति पात्राणि शुद्धधियः।।74।।[7]

अनिष्ट और दुस्तर पाप के स्थानस्वरूप मद्य, मांस, मधु और पंच उदुंबर फल इन आठों का त्याग करके शुद्ध बुद्धि वाले जन ही जिनधर्म की देशना के पात्र होते हैं।

'यावज्जीवमिति त्यक्त्वा, महापापानि शुद्धधीः।
जिनधर्मश्रुतेर्योग्यः, स्यात्कृतोपनयो द्विजः।।19।।[8]

जीवनपर्यंत के लिए मद्य आदि आठ महापापों को छोड़कर जो शुद्ध बुद्धि हो गया है और जिसका उपनयन संस्कार हुआ है, ऐसा श्रावक जिनधर्म को सुनने के लिए योग्य होता है।

गुरु परम्परा का महत्त्व–इस प्रकार आगम कथित गुणों से युक्त शिष्य या श्रोता गुरु परम्परा से ही तत्त्वों को समझने का उपाय करें, अन्यथा अर्थ का अनर्थ हुए बिना नहीं रहता है। इस विषय में ज्ञानार्णव में कहा है कि–

नहि भवति निर्विगोपक्रममनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानम्।
प्रकटितपश्चिमभागं, पश्यत नृत्यं मयूरस्य।।34।।[9]

जिसने गुरु कुल की–गुरु समूह की उपासना नहीं की है उसका विज्ञान प्रशंसा करने योग्य नहीं है, किन्तु निंदा सहित ही होता है। देखो! मयूर नृत्य करते समय अपने पृष्ठ भाग (मलद्वार) को उघाड़ कर नृत्य करता है अर्थात् मयूर ने नृत्यकला किसी गुरु से नहीं सीखी है इसलिये वह नृत्य करते समय उपर्युक्त रीति से नृत्य करता है। वैसे ही जो गुरुओं से अध्ययन नहीं करते हैं उनका अध्ययन विपरीत बुद्धि को भी उत्पन्न कर देता है।

आप आचार्यों की परम्परा देखो तो स्पष्ट हो जाता है कि सभी आचार्य गुरुमुख से ही ग्रंथों का अध्ययन करते थे। धरसेनाचार्य तक गुरु परिपाटी से ही ज्ञान आया और जैसा कि पुष्पदंत, भूतबली आचार्यों ने भी आचार्य धरसेन से ज्ञान पाया तथा कुंदकुंददेव ने भी इन ग्रंथों का ज्ञान परम्परा से प्राप्त किया। यथा–

एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगतः समागच्छन्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धांतः कुण्डकुंदपुरे।।160।।
श्रीपद्मनंदिमुनिना, सोऽपि द्वादशसहस्रपरिमाणः।
ग्रंथपरिकर्मकर्त्रा, षट्खंडाद्यत्रिखंडस्य।।161।।[10]

कर्मप्राभृत (षट्खंडागम) और कषायप्राभृत इन दोनों सिद्धान्तों का ज्ञान गुर-परिपाटी से कुंदकुंदपुर के 'पद्मनंदि'[11] मुनि को प्राप्त हुआ और उन्होंने सबसे पहले षट्खंडागम के प्रथम तीन खंडों पर बारह हजार श्लोकप्रमाण 'परिकर्म' नाम की टीका रची।

जब महान अध्यात्म शिरोमणि श्री कुंदकुंददेव ने गुरु परम्परा से ज्ञान प्राप्त किया, तब ग्रंथ रचना की पुनः आज यदि उनके ग्रंथों का स्वाध्याय करने वाले लोग गुरुओं के परम्परागत अर्थ की उपेक्षा करके मनमाना अर्थ करेंगे तो अनर्थ होना स्वाभाविक ही है।

गुरुओं की परम्परा से ज्ञान प्राप्त करने का महत्त्व गुर्वावली में बहुत ही अच्छी तरह से बताया गया है। उन गुर्वावली, पट्टावली आदि का भी मनन करना चाहिए।

पूर्वाचार्यों की पापभीरुता–ग्रंथों को पढ़ाते समय विद्वान् के मुख से अथवा उपदेश करते समय वक्ता के मुख से पूर्वाचार्यों के प्रति श्रद्धा का निर्झर प्रवाहित हो जाना चाहिए। जैसे कि आचार्य विद्यानंद, आचार्य वीरसेन और आचार्य वसुनंदि आदि के शब्दों में दिखता है। यथा–

"अब पुष्पदंत भट्टारक अंतिम गुणस्थान के प्रतिपादन हेतु, अर्थरूप से अर्हंत परमेष्ठी के मुख से निकले हुये, गणधर देव के द्वारा गूंथे गये शब्द रचना वाले, प्रवाहरूप से कभी भी नाश को नहीं प्राप्त होने वाले और सम्पूर्ण दोषों से रहित होने से निर्दोष आगे के सूत्र कहते हैं–"[12]

यहाँ श्री वीरसेनस्वामी को श्री पुष्पदंत आचार्य के प्रति कितनी श्रद्धा है और उनके वचनों को वे साक्षात् भगवान की वाणीरूप ही मान रहे हैं, यह स्पष्ट दिख रहा है। आगे और देखिये–

"हमारे यहाँ आर्षपरंपरा का विच्छेद भी नहीं है, क्योंकि जिसको दोष-आवरण रहित अरहंत देव ने अर्थरूप से व्याख्यान किया है जिसको चारज्ञानधारी, निर्दोष गणधर देव ने धारण किया है, जो ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न गुरु परम्परा से चला आ रहा है, जिसका पहले का वाच्य-वाचक भाव अभी तक नष्ट नहीं हुआ है और जो दोषावरण से तथा निष्प्रतिपक्ष सत्यस्वभाव वाले पुरुष के द्वारा व्याख्यान होने से श्रद्धा के योग्य है ऐसे आगम की आज भी उपलब्धि हो रही है।"

शंका–आधुनिक आगम अप्रमाण है क्योंकि अर्वाचीन पुरुषों ने इसका अर्थ किया है।

समाधान–ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि ज्ञान-विज्ञान से सहित होने से प्रमाणता को प्राप्त इस युग के आचार्यों द्वारा इसके अर्थ का व्याख्यान किया गया है इसलिये आधुनिक आगम भी प्रमाण है।

शंका–छद्मस्थ सत्यवादी कैसे हो सकते हैं?

समाधान–ऐसा नहीं है, क्योंकि श्रुत के अनुसार व्याख्याता आचार्यों को प्रमाण मानने में कोई विरोध नहीं है।

शंका–आगम का यह अर्थ प्रामाणिक गुरु परंपरा के क्रम से आया है, यह कैसे निश्चय किया जाये?

समाधान–''नहीं, क्योंकि...ज्ञान-विज्ञान से युक्त इस युग के अनेक आचार्यों के उपदेश से उसकी प्रमाणता जाननी चाहिए।...''[13]

और भी देखिये–

कषाय प्राभृतकार पहले आठ कषाय का क्षय, पीछे सोलह प्रकृति का क्षय मानते हैं किन्तु सत्कर्मप्राभृतकार (षट्खंडागमकार) पहले सोलह का नाश मानकर आठ कषाय का नाश मानते हैं। इस पर चर्च चली कि दोनों में से कोई एक ही वाक्य सूत्ररूप प्रमाणीक होना चाहिए। इस पर आचार्य वीरसेन दोनों आगम को सूत्र कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि–

''जिनका अर्थरूप से तीर्थंकरों ने प्रतिपादन किया है और गणधरदेव ने जिनकी ग्रंथ रचना की, ऐसे द्वादशांग आचार्य परम्परा से निरन्तर चले आ रहे हैं परन्तु काल के प्रभाव से उत्तरोत्तर बुद्धि के क्षीण होने पर और उन अंगों के धारण करने वाले योग्यपात्र के अभाव में वे उत्तरोत्तर क्षीण होते हुए आ रहे हैं। इसलिये जिन आचार्यों ने आगे श्रेष्ठबुद्धि वाले पुरुषों का अभाव देखा, **जो अत्यन्त पापभीरु थे और जिन्होंने गुरु परम्परा से श्रुतार्थ ग्रहण किया था, उन आचार्यों ने तीर्थ विच्छेद के भय से उस समय अवशिष्ट रहे हुए अंगसंबंधी अर्थ को पोथियों में लिपिबद्ध किया, अतएव उनमें असूत्रपना नहीं आ सकता।**

शंका–यदि ऐसा है तो इन दोनों ही वचनों को द्वादशांग का अवयव होने से सूत्रपना प्राप्त हो जायेगा?

समाधान–दोनों में कोई एक ही सूत्र हो सकता है, दोनों नहीं, क्योंकि दोनों में परस्पर विरोध है।

शंका–पुनः उत्सूत्र लिखने वाले आचार्य **पापभीरु** कैसे हो सकते हैं?

समाधान–यह कोई दोष नहीं है क्योंकि दोनों प्रकार के वचनों में से किसी एक ही के वचन संग्रह करने पर पापभीरुता निकल जाती है किन्तु दोनों प्रकार के वचनों का संग्रह करने वाले आचार्यों के पापभीरुता नष्ट नहीं होती है, अर्थात् बनी रहती है।

पुनः प्रश्न होता है कि–

'' दोण्ह वयणाणं मज्झे कं वयणं सच्चमिदि चे? केवली सुदकेवली वा जाणादि ण अण्णो तहा णिण्णयाभावादो। वट्टमाण-कलाइरिएहि वज्जभीरुहि दोण्हं पि संगहो कायव्वो अण्णहा वज्जभीरुत्तविणासादो त्ति।''

शंका–दोनों प्रकार के वचनों में से किसी वचन को सत्य माना जाये?

समाधान–इस बात को केवली या श्रुतकेवली जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता क्योंकि, इस समय उसका निर्णय नहीं हो सकता है, इसलिये पापभीरु वर्तमान के आचार्यों को दोनों का ही संग्रह करना चाहिये, अन्यथा पापभीरुता का विनाश हो जायेगा।''[14]

ऐसे ही अन्यत्र भी दो मत आ जाने पर प्रश्नोत्तरमाला चलती है। पुनः शिष्य कहता है कि–

शंका–दोनों वचनों का संग्रह करने वाला संशय मिथ्यादृष्टि हो जायेगा?

समाधान–नहीं, क्योंकि संग्रह करने वाले के 'यह सूत्र कथित ही है' इस प्रकार का श्रद्धान पाया जाता है, अतएव उसके संदेह नहीं हो सकता है।''[15]

आगे शिष्य प्रश्न करता है कि–

प्रश्न–आर्ष को प्रमाण कैसे माना जाये?

उत्तर–जैसे प्रत्यक्ष स्वभावतः प्रमाण है वैसे ही आर्ष भी स्वभावतः प्रमाण है।''[16]

आचार्य वीरसेन स्वामी तो स्पष्ट कहते हैं कि–

''आगम केवलज्ञान पूर्वक उत्पन्न हुआ है, अतः आगम में अनुमान का प्रयोग नहीं हो सकता।''[17]

जहाँ कहीं भी दो मत के आने पर शंका उठी है वहीं पर धवलाकार ने ऐसा समाधान दिया है। यथा–

''यह सूत्र है, यह सूत्र नहीं है' ऐसा आगमनिपुणजन कह सकते हैं, किन्तु हम यहाँ कहने के लिये समर्थ नहीं हैं,

क्योंकि हमें वैसा उपदेश प्राप्त नहीं है।''[18]

इससे अधिक और पापभीरुता क्या होगी, कहिये? जब कि वीरसेन स्वामी धवला-जयधवला टीकाकर्ता भी अपने को 'आगमनिपुण' नहीं मानते हैं।

आगे और देखिये–

शंका–बादर निगोद जीवों के प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र से वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं दी?

समाधान–**'गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो।'** यहाँ गौतमस्वामी से पूछना चाहिए।''[19]

कषायप्राभृत में भी कहा है कि–

''प्रमाण के लिए प्रमाण नहीं चाहिए और आगम स्वयं प्रमाण है।[20]

मूलाचार में देवियों की आयु के बारे में दो गाथायें आई हैं। उन दोनों में अंतर है। यथा–

'सौधर्म स्वर्ग में देवियों की उत्कृष्ट आयु 5 पल्य, ईशान में 7, सनत्कुमार में 9, माहेन्द्र में 11, ब्रह्म में 13, ब्रह्मोत्तर में 15, लांतव में 17, कापिष्ठ में 19, शुक्र में 21, महाशुक्र में 23, शतार में 25, सहस्रार में 27, आनत में 34, प्राणत में 41, आरण में 48 और अच्युत में 55 पल्य है। दूसरी गाथा में कहते हैं–

सौधर्म-ईशान में 5 पल्य, सानतकुमार युगल में 17, ब्रह्मयुगल में 25, लांतवयुगल में 45, शुक्रयुगल में 40, शतारयुगल में 45, आनतयुगल में 50 और आरणअच्युत में 55 पल्य है।

इसकी टीका में श्री वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य कहते हैं–

''...द्वौ अपि उपदेशौ ग्राह्यौ सूत्रद्वयोपदेशात्, द्वयोर्मध्ये एकेन सत्येन भवितव्यं, मात्र संदेहमिथ्यात्वं, यदर्हत्प्रणीतं तत्सत्यमिति संदेहाभावात्। छद्मस्थैस्तु विवेकः कर्तुं न शक्यतेऽतो मिथ्यात्वभयादेव द्वयोर्ग्रहणमिति।''[21]

दोनों भी उपदेश ग्रहण करना चाहिये क्योंकि दोनों ही सूत्र के उपदेश हैं। यद्यपि यह निश्चित है कि दोनों में से कोई एक ही सत्य होना चाहिए। इस विषय में संशयमिथ्यात्व भी नहीं है क्योंकि 'जो अर्हंतदेव द्वारा प्रणीत है वही सत्य है' इस प्रकार से संशय का अभाव है क्योंकि छद्मस्थों को यह विवेक करना शक्य नहीं है, इसलिये मिथ्यात्व के भय से ही दोनों को ग्रहण करना चाहिये।

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में श्री विद्यानंद महोदय तत्त्वार्थसूत्र को आप्तमूलक सिद्ध कर रहे हैं–

''संप्रदायाव्यवच्छेदा-विरोधादधुना नृणाम्।
सद्गोत्राद्युपदेशोऽत्र, यद्वत्तद्वद्विचारतः।।6।।
प्रमाणमागमः सूत्र-माप्तमूलत्वसिद्धितः।''[22]

संप्रदाय–परम्परा के व्यवच्छेद का अविरोध होने से यह सूत्र आगमप्रमाण है क्योंकि यह आप्तमूलक सिद्ध है। जैसे आजकल मनुष्यों के सद्गोत्र (काश्यप आदि) आदि का उपदेश प्रवाहरूप से पाया जाता है उसी प्रकार से विचार करने से यह सूत्ररूप आगम पूर्णतया प्रमाणभूत ही है।

कषायप्राभृत ग्रंथ के प्रति श्रद्धा देखिये–

स्वयं जयधवलाकार प्रस्तुत ग्रंथ के गाथासूत्रों और चूर्णिसूत्रों को किस श्रद्धा और भक्ति से देखते हैं, यह उन्हीं के शब्दों में देखिये। एक स्थल पर शिष्य के द्वारा यह शंका किये जाने पर कि यह कैसे जाना? इसके उत्तर में श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं–

''एदम्हादो विउलगिरिमत्थयत्थवड्ढमाणदिवायरादो विणिग्गमिय गोदमलोहज्ज-जंबुसामियादि आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं पाविय गाहासरूवेण परिणमिय अज्जमंखुणागहत्थीहितो जयिवसहमुहणयिय चुण्णिसुत्तायारेण परिणददिव्वज्झुणिकिरणादो णव्वदे।

(जयध.आ.पत्र 313)

"विपुलाचल के शिखर पर विराजमान वर्धमान दिवाकर से प्रगट होकर गौतम, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी आदि की आचार्य परंपरा से आकर और गुणधराचार्य को प्राप्त होकर गाथास्वरूप से परिणत हो पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ती के द्वारा यतिवृषभ को प्राप्त होकर और उनके मुखकमल से चूर्णिसूत्र के आकार से परिणत दिव्यध्वनिरूप किरण से जानते हैं।"[23]

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कषायप्राभृत ग्रंथ साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि तुल्य है, ऐसा टीकाकार का कथन है। दूसरी बात यह है कि आचार्य परम्परा की महत्ता पर पूर्ण प्रकाश दिख रहा है। 'गुणधराचार्य' ने आचार्य परम्परा से ज्ञान पाया और गाथारूप में परिणत किया पुनः आचार्य परम्परा से ही आर्यमंक्षु नागहस्ती मुनि को उसका ज्ञान मिला। अनंतर उनके चरण सानिध्य में ज्ञान प्राप्तकर यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्रों की रचना की है।

जयधवलाकार ने तो इन 'कसायपाहुड़' की गाथाओं को "**अणंतत्थ गब्भाओ**" अनंत अर्थ गर्भित कहा है।

इन प्रकरणों को देखकर ग्रंथों का अर्थ प्रतिपादित करते समय अथवा प्रवचन करते समय इसी प्रकार से पूर्वाचार्यों के प्रति आस्था व्यक्त करते हुये अपने और सुनने वालों के सम्यक्त्व को दृढ़ करना चाहिये।

शास्त्र अध्यापन एवं विवेचन का क्रम—पहले तो विद्वान् या वक्ता को चारों अनुयोगों का ज्ञान होना आवश्यक है अन्यथा वह किसी न किसी एकांत को पकड़ लेंगे पुनः नयविवक्षा और परस्पर के समन्वय की शैली का होना आवश्यक है। अनंतर जिस ग्रंथ का प्रतिपादन करना है उसको आद्योपांत पूरा पढ़ लेना, मनन कर लेना आवश्यक है। इसके बाद यदि वे श्रोताओं को समझायेंगे तो अर्थ का अनर्थ नहीं होगा। जैसे–नियमसार को लीजिये, यह आध्यात्मिक ग्रंथ है। इसको समझने-समझाने के लिए पहले नयचक्र अथवा आलाप पद्धति के आधार से द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक तथा व्यवहार और निश्चय नयों के लक्षण समझकर अच्छी तरह श्रोताओं को समझा देना चाहिए। अनंतर पहले उस ग्रंथ के रहस्य को समझा देना चाहिए। जैसे–

नियमसार के अध्यापन का क्रम—"इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय क्या है?"

"मार्ग और मार्ग का फल।"

"मार्ग क्या है? और मार्ग का फल क्या है?"

"मोक्ष का उपाय और निर्वाण।"

"मोक्ष का उपाय क्या है?"

"णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं।"

नियम से जो करने योग्य है वह नियम, वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र है।

उसमें विपरीत–मिथ्यात्व का परिहार करने के लिए 'सार' शब्द लगाया है।"

"विपरीत का अर्थ आपने मिथ्यात्व कैसे किया? क्योंकि इसमें तो निर्विकल्परूप निश्चयरत्नत्रय का वर्णन है। अतः विपरीत का अर्थ विकल्प अर्थात् भेदरत्नत्रय करना चाहिये?"

"यहीं पर अर्थ का अनर्थ हो रहा है। यदि विपरीत से भगवान कुंदकुंददेव का भेदरत्नत्रय का परिहार करना इष्ट होता तो वे स्वयं चार अधिकार तक इस व्यवहार रत्नत्रय का प्रतिपादन क्यों करते? देखिये! चतुर्थ गाथा में वे ही कहते हैं कि "**एदेसि तिण्हं पिय पत्तेयपरूवणा होइ।**" इन तीनों की भी प्रत्येक की प्ररूपणा करते हैं।

पुनः सम्यक्त्व का लक्षण करते हुए कहते हैं–

"आप्त, आगम और तत्त्वों के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है पुनः आप्त, आगम और तत्त्वों का लक्षण स्वयं बताये हैं। पहले अधिकार में गाथा 19 तक जीव तत्त्व का वर्णन, द्वितीय अध्याय में गाथा 37 तक पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनका वर्णन करते हैं। यहाँ तक व्यवहार सम्यक्त्व के लिए श्रद्धान के विषयभूत 6 द्रव्यों का वर्णन हो चुका है। आगे शुद्ध जीव तत्त्व का वर्णन करके नय विवक्षा खोलते हैं। यथा–

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीवतारिसा होंति।
जरमरणजम्ममुक्का अट्ठगुणालंकिया जेण।।47।।
असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जय लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया।।40।।
एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा।।49।।

जैसे सिद्धात्मा हैं वैसे भव में रहने वाले संसारी जीव हैं और इसी कारण से वे जरा, मरण, जन्म से रहित हैं और आठ गुणों से अलंकृत हैं।

जिस प्रकार से अशरीरी, अविनाशी, अतींद्रिय, निर्मल, विशुद्धात्मा सिद्धलोक के अग्रभाग पर स्थित हैं वैसे ही जीव संसार में हैं, ऐसा जानना।

पुनः तत्क्षण ही नय विवक्षा को स्पष्ट कर देते हैं–

पूर्वोक्त सभी भाव (स्थिति, अनुभाग, बंध, स्थान आदि) व्यवहारनय का आश्रय करके कहे गये हैं किन्तु शुद्धनय से संसार में सभी जीव सिद्ध स्वभाव वाले हैं।

यहाँ पर आचार्यदेव का अभिप्राय व्यवहारनय से असत्य का नहीं है। अन्यथा वे व्यवहारनय-निश्चय, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के द्वारा आत्मा को शुद्ध सिद्ध बनाने का उपाय क्यों प्रदर्शित करते। वे कह सकते थे कि 'वास्तव में मार्ग का फल निर्वाण है और मार्ग जो मोक्ष का उपाय है, वह असत्य है।' क्योंकि मोक्ष का उपाय तो व्यवहारनय के आश्रित ही है किन्तु ऐसा न कहकर व्यवहार का उपदेश दिया है।

आगे पुनः चतुर्थ अधिकार में पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति का कथन किया है। आचार्य कुंदकुंददेव ने महाव्रत और समिति में निश्चयनय को न घटाकर गुप्ति में अवश्य घटाया है पुनः पंचपरमेष्ठी का लक्षण बताकर अंतिम गाथा में कहते हैं–

एरिसयभावणाए ववहारणयस्स होदि चारित्तं।
णिच्छयणयस्य चरणं एत्तो उड्ढं पवक्खामि।।76।।

इस पूर्वोक्त भावना में (गाथा 75 तक की भावना में) व्यवहारनय के अभिप्राय से चारित्र होता है; अब इसके आगे निश्चयनय के चारित्र को कहूँगा।

इसके आगे पाँचवें अधिकार से लेकर ग्यारहवें अधिकार तक निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रत्याख्यान, निश्चय आलोचना, शुद्ध निश्चय प्रायश्चित्त, परमसमाधि, परमभक्ति और निश्चय परम आवश्यक इन सातों का वर्णन किया है जो ध्यान के आश्रित ही हैं।

आगे ग्यारहवें अधिकार के अंत में कहते हैं–

सव्वे पुराणपुरिसा एवं आवासयं य काऊण।
अपमत्तपहुदिठाणं पडिवज्जय केवली जादा।।158।।[24]

सभी पुराण पुरुष इसी प्रकार से आवश्यक क्रियाओं को करके अप्रमत्त आदि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण आदि गुणस्थानों को प्राप्त करके केवली हो गये हैं।

इसके आगे अंतिम बारहवें अधिकार में केवली भगवान का वर्णन करके अंत में निर्वाण को प्राप्त सिद्धों का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार से आचार्य महोदय ने अपने कहे अनुसार ग्यारह अधिकार में मार्ग और बारहवें अधिकार में मार्ग के फल को कहा है। उस मार्ग के व्यवहार-निश्चय दो भेद करके चार अधिकार तक व्यवहार रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग को कहकर

पुनः आगे ग्यारहवें तक निश्चय मोक्षमार्ग को कहा है। इस तरह से स्पष्ट हो जाता है कि व्यवहाररत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय के लिए साधन है। निश्चयरत्नत्रय साध्य भी है और मोक्ष के लिए साधन भी है।

इस प्रकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रंथ मुनियों के चारित्र का ही वर्णन करता है। इसमें श्रावकों के चारित्र का कोई लेश नहीं है। इन्हीं कुंदकुंद आचार्य ने चारित्रपाहुड़ में तथा रयणसार में पृथक् से श्रावकों के सम्यक्त्व और चारित्र का वर्णन किया है। इस तरह से ग्रंथ के रहस्य को समझा देने के बाद ग्रंथ के किसी प्रकरण से अनर्थ की सम्भावना नहीं रहती है।

समयसार के अध्यापन की शैली—ऐसे ही समयसार में भी समझना चाहिए। देखिये–निर्जरा अधिकार में सबसे प्रथम गाथा में कहा है कि 'सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा के निमित्त हैं।' उसकी टीका में श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि–

शिष्य ने प्रश्न किया कि 'राग, द्वेष और मोह का अभाव हो जाने पर निर्जरा के निमित्त है, ऐसा आपने कहा किन्तु सम्यग्दृष्टि के तो रागादि हैं पुनः किसी वस्तु का उपयोग उनके निर्जरा का कारण कैसे होगा? आचार्य कहते हैं कि–

''अत्र ग्रंथे वस्तुवृत्या वीतरागसम्यग्दृष्टेर्ग्रहणं, यस्तु चतुर्थगुणस्थानवर्ती सरागसम्यग्दृष्टिस्तस्य गौणवृत्या ग्रहणं।''

इस ग्रंथ में वास्तव में वीतराग सम्यग्दृष्टि का ग्रहण है, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सराग सम्यग्दृष्टि का ग्रहण तो गौणरूप से है तथा मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा अविरतसम्यग्दृष्टि के भी अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क और मिथ्यात्व जनित रागादि नहीं है अतः उतने अंश में उसके भी निर्जरा है। आगे भी कहा है–

''अत्र तु ग्रंथे पंचमगुणस्थानादुपरितनगुणस्थानवर्तिनां वीतरागसम्यग्दृष्टीनां मुख्यवृत्या ग्रहणं, सरागसम्यग्दृष्टीनां गौणवृत्येति व्याख्यानं सम्यग्दृष्टिव्याख्यानकाले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यं।''

इस ग्रंथ में पंचमगुणस्थान के ऊपर के गुणस्थान वाले वीतराग सम्यग्दृष्टियों का ही मुख्य रूप से ग्रहण है। सरागसम्यग्दृष्टियों का तो गौण रूप से ग्रहण है, सम्यग्दृष्टि के व्याख्यान के समय सर्वत्र ऐसा ही तात्पर्य समझना चाहिए।

श्री अमृतचंद्र सूरि द्वारा भी इसी अर्थ की पुष्टि हो रही है। देखिये–

श्री कुंदकुंददेव ने गाथा 170 में कहा है कि ''अबंधो त्ति णाणी दु।'' ज्ञानी तो अबंधक ही है। पुनः आगे 171 वीं गाथा में कहते हैं कि–

'जिस कारण ज्ञानगुण पुनरपि जघन्य ज्ञानगुण से अन्यरूप परिणमन करता है इसी कारण वह ज्ञानगुण बंध करने वाला कहा गया है।'' इसकी टीका करते हुए श्री अमृतचंद्र सूरि कहते हैं कि–

''स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यंभाविरागसद्भावात् बंधहेतुरेव स्यात्।''[25]

वह (ज्ञानगुण) यथाख्यात चारित्र के नीचे अवश्यंभावी राग परिणाम का सद्भाव होने से बंध का कारण ही है।

श्री अमृतचंद्र सूरि की इस एक पंक्ति से ही सारे समयसार का अभिप्राय समझा जा सकता है कि ग्यारहवें गुणस्थान के पहले-पहले राग का सद्भाव रहने से अवश्यमेव बंध होता ही होता है अतः चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थ यदि अपने को वीतरागी और अबंधक मान रहे हैं सो कोरी असत् कल्पना ही है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि समयसार में वीतराग सम्यग्दृष्टि को लक्ष्य करके ही सब कथन है अतः इस ग्रंथ का विषय भी साधुवर्गों के लिए ही है न कि श्रावकों के लिये। यह इस समयसार का रहस्य हुआ।

श्रावकों के बारह व्रतरूप देशचारित्र में श्री कुंदकुंद देव ने निश्चयनय के आश्रय का प्रतिपादन नहीं किया है। किसी भी ग्रंथ में श्रावकों के व्रतों में निश्चयनय के आश्रय का विधान देखने में नहीं आया है।

शंका–बालकों की किन्हीं धार्मिक पाठ्य पुस्तकों में सात व्यसनों में भी निश्चयनय को घटित करने की प्रक्रिया देखी जाती है?

समाधान–कहीं, किसी भी आचार्यप्रणीत ग्रंथ में सप्त व्यसन, बारह व्रत तथा ग्यारह प्रतिमाओं में निश्चयनय का कथन देखने को नहीं मिला है क्योंकि जब मुनियों के चारित्र को भी व्यवहार कहा है तब श्रावकों का चारित्र तो व्यवहार चारित्र है ही है। यथा–

''असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं।।45।।

अशुभ से निवृत्ति होना और शुभ में प्रवृत्ति करना यह चारित्र है। यह व्रत, समिति और गुप्तिरूप है, ऐसा व्यवहार नय से जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

इसके बाद कहते हैं–

''बहिरब्भंतरकिरिया रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं।।46।।

ज्ञानी मुनि के भव के कारणों को नष्ट करने के लिये जो बाह्य और आभ्यंतर क्रियाओं का निरोध होता है, वह जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित परम (निश्चय) सम्यक् चारित्र है।''[26]

यही बात पुण्य को हेय बताने के विषय में भी है। श्रावक के लिए तो पुण्य उपादेय है। मुनियों के लिए कथंचित् शुद्धोपयोग में हेय है कथंचित् छठे गुणस्थान की सराग चर्या तक उपादेय है। श्रावक यदि पुण्य को हेय समझ लेगा तो पाप के सिवाय करेगा क्या? क्योंकि उसे शुद्धोपयोग तो हो नहीं सकता।

श्री कुंदकुंददेव द्वादश अनुप्रेक्षा में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि–

पुत्तकलत्तणिमित्तं अत्थं अज्जयदि पावबुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे।।31।।

जो जीव पाप बुद्धि द्वारा पुत्र, स्त्री के लिए धन कमाता है तथा दया और दान को नहीं करता है, वह संसार में ही परिभ्रमण करता रहता है।

श्रावक का कर्तव्य क्या है?– श्रावक यदि समयसार, नियमसार, मूलाचार, गोम्मटसार, लब्धिसार, धवला आदि ग्रंथों को पढ़ता है तो उसे उनमें से मूलाचार से तो 'मुनियों की चर्या कैसी होती है?' उसको समझना चाहिए। 'समयसार से' शुद्धात्मा की प्राप्ति कैसे होगी?' सो समझना चाहिए। पुनः उसे करना क्या चाहिए?

श्रावक को कुंदकुंददेव के चारित्रपाहुड, रयणसार, श्री समंतभद्रस्वामी के रत्नकरण्डश्रावकाचार के अनुकूल अपना आचरण बनाना चाहिये। प्रथमानुयोग के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र आदि के अनुरूप अपने जीवन को आदर्श बनाना चाहिए।

स्वामी समंतभद्राचार्य ने अपने श्रावकाचार में सम्यग्दर्शन का लक्षण बताया है पुनः उसके आठों अंगों का विवेचन किया है। अनंतर सम्यग्ज्ञान के अनुयोगों पर प्रकाश डालकर आगे कहा है कि–

मोहतिमिरापहरणे, दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्यै, चरणं प्रतिपद्यते साधुः।।

दर्शनमोहरूपी अंधकार के दूर हो जाने पर सम्यग्दर्शन का लाभ होने से ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है। तब साधु राग-द्वेष को दूर करने के लिये चारित्र को स्वीकार करता है। उसमें–

सकलं विकलं चरणं, तत्सकलं सर्वसंगविरतानां।
अनगाराणां विकलं, सागाराणां ससंगानां।।

चारित्र के सकल और विकल ऐसे दो भेद हैं। उसमें सकलचारित्र सर्वपरिग्रहत्यागी अनगारों को होता है और विकल चारित्र परिग्रहसहित गृहस्थों को होता है।

जब रत्नत्रय धर्म है और उसके अंतर्गत ही श्रावकों के सामायिक में 'पूजा, भक्ति' और अतिथिसंविभाग में 'दान', अहिंसाणुव्रत आदि में 'दया' इत्यादि पाये जाते हैं तो पुनः 'भक्ति, दान, दया' आदि को धर्म नहीं मानना यह कहाँ की बुद्धिमानी है?

अतएव श्रावकों के लिए मुख्यरूप से श्रावकाचार और आदर्श पुरुषों व महिलाओं की जीवन गाथायें सुनाना चाहिए क्योंकि ग्यारह अंगों में सातवां अंग उपासकाध्ययन नाम का है और मुनियों के लिए पहला अंग आचारांग नाम का है।

प्रवचन की शैली—मुनि-आर्यिका, श्रावक अथवा श्राविका जो आगम के आधार से उपदेश करते हैं उसे 'प्रवचन' भी कहते हैं। प्रवचन करने वालों को चारों अनुयोगों का सर्वांगीण अध्ययन होना आवश्यक है पुनः कैसे पात्रों को कैसा उपदेश देना यह भी समझ लेना चाहिए।

पूर्व के आचार्यों ने किस क्रम से उपदेश दिया है?—पूर्वविदेह में मधु नाम के वन में भील को श्री सागरसेन मुनिराज ने उपदेश दिया और मद्य, माँस, मधु इन तीनों का त्याग करा दिया। जिसको पालन करके वह भील मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हो गया।

सिंह को चारण मुनियों ने सम्यक्त्व का उपदेश देकर पाँच अणुव्रत ग्रहण कराये।

खदिरसार भील को मुनि ने नमस्कार करने पर आशीर्वाद दिया 'धर्म लाभ हो' भील ने पूछा–धर्म क्या है? मुनिराज ने कहा–''मद्य, मांसादि का सेवन करना पाप है और इनको छोड़ देना धर्म है।''[27] उस धर्म की प्राप्ति ही धर्म लाभ है। उस धर्म से पुण्य होता है और पुण्य से स्वर्ग में अनुपम सुख मिलता है। तब भील ने कहा–ऐसे धर्म का अधिकारी मैं नहीं हो सकता। मुनिराज ने उसका अभिप्राय समझ लिया और पूछा–'हे भव्य! क्या तूने कभी कौवे का मांस खाया है?' भील ने सोचकर कहा–'नहीं।' मुनि ने कहा–'तो उसे ही तू छोड़ दे।' तब उसने इस व्रत को ले लिया। कुछ दिन बाद असाध्य रोग हो जाने से वैद्य ने कौवे का मांस खाने को कहा। बहुतों के द्वारा अनेकों प्रकारों के किये जाने पर भी उसने नहीं खाया। अनंतर पाँचों व्रतों को ग्रहण कर मरण करके सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ से आकर वह राजा श्रेणिक हो गया।

यहाँ पर माँस, मधु आदि के त्याग को धर्म कहा है। वह भील उतने मात्र के ही योग्य था, अभी उसमें सम्यक्त्व के ग्रहण करने की क्षमता नहीं थी। आगे चलकर ये ही श्रेणिक क्षायिक सम्यक्त्वी हो गये और आगे महापद्म तीर्थंकर होने वाले हैं। उतने से धर्म ने उसकी आत्मा को उन्नति के पथ पर लगा दिया।

'मार्ग से थका धनदत्त सूर्यास्त हो जाने पर मुनियों के आश्रम में पहुँचा, वह प्यासा था। जल मांगा, तब एक मुनि ने समझाया कि रात्रि में अमृत पीना भी उचित नहीं, फिर पानी की तो बात ही क्या? मुनि के उपदेश से उसने रात्रिभोजन का त्याग कर दिया।[28] आयु पूर्ण होने पर मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हो गया। वहाँ से च्युत होकर पद्मरुचि नामक श्रावक हो गया। कालान्तर में ये ही रामचंद्र हुये हैं।

ऐसे ही अगणित उदाहरण प्रथमानुयोग में भरे पड़े हैं। इन प्रकरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुनिगण श्रोताओं की योग्यतानुसार ही उपदेश देते थे तथा गुरु का उपदेश व उनके पास से ग्रहण किया गया छोटा-सा भी व्रत परम्परा से मुक्ति का कारण हो जाता था।

आशीर्वाद में क्रम—इसी प्रकार से मुनियों को नमस्कार करने पर वे मुनि क्रम से ही उनकी योग्यता के अनुसार आशीर्वाद देते हैं। जैसे–मुनियों को उनसे लघु मुनि नमोस्तु करते हैं तो वे मुनि या आचार्य उन्हें 'नमोस्तु' कहकर प्रतिवंदना करते हैं। यदि आर्यिकायें, क्षुल्लिकायें, ऐलक, क्षुल्लक और व्रतिक श्रावक-श्राविकायें नमोस्तु करते हैं तो वे मुनि और आचार्य उन्हें 'समाधिरस्तु' आशीर्वाद देते हैं। साधारण श्रावक-श्राविकायें नमोस्तु करते हैं तो वे उन्हें 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' ऐसा कहते हैं। जैनधर्म से बाह्य अन्य लोग नमस्कार करते हैं तो वे उन्हें 'धर्मलाभोऽस्तु' कहकर आशीर्वाद देते हैं तथा चांडाल आदि लोग नमस्कार करते हैं तो वे उन्हें 'पापंक्षयोऽस्तु' ऐसा आशीर्वाद देते हैं। ऐसा आगम[29] का विधान है।

ऐसा भेदभाव मुनियों के मन में क्यों है?—यह भेदभाव नहीं है प्रत्युत् व्यवस्था है। देखिये! मुनिलिंग सर्वथा पूज्य है अतः वे लघु मुनियों के नमोस्तु करने पर 'नमोस्तु' द्वारा ही प्रतिवंदना करते हैं। आर्यिका, क्षुल्लक आदि व्रतिकगण रत्नत्रय को धारण किये हुए हैं उनका अंत में समाधिपूर्वक मरण हो, अंत तक वे अपने व्रतों को पालन करते रहें अथवा धर्मध्यान और शुक्लध्यान का नाम समाधि है वह उनको प्राप्त होवे, उनके लिए ऐसा आशीर्वाद उचित ही है। सामान्य

श्रावक धर्म को धारण कर रहे हैं, उनके उस सच्चे धर्म की वृद्धि हो अतः 'सद्धर्मवृद्धिः' आशीर्वाद है। धर्मबाह्य लोगों को 'धर्मलाभोऽस्तु' आशीर्वाद उनके धर्म के लाभ में निमित्त बनता है तथा हिंसा आदि पाप में प्रवृत्त हुए लोगों का जब तक पाप क्षीण नहीं होगा, तब तक वे धर्म को धारण करने के लिए पात्र नहीं हो पायेंगे अतः 'पापंक्षयोऽस्तु' आशीर्वाद उनके लिए ठीक ही है।

पहले मुनिधर्म का उपदेश देना चाहिए–

शंका–मुनियों के लिए उत्कृष्ट उपदेश देने का ही विधान आया है। जैसे–

यो यतिधर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्ममल्पमतिः।
तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्।18।।[30]

जो अल्पमति मुनि यति धर्म का उपदेश न देकर गृहस्थ धर्म का उपदेश देता है उसको भगवान के शासन में प्रायश्चित्त का भागी बतलाया है पुनः मुनि गृहस्थ धर्म का उपदेश कैसे दे सकते हैं?

समाधान–यह सर्वथा एकांत नहीं है क्योंकि मुनि के पास कोई उच्चवर्णी श्रावक या राजा आदि पहुँचते हैं तो वे उन्हें वैसा ही उपदेश देते हैं क्योंकि वे पात्र हैं, मुनिपद धारण कर सकते हैं। जैसे कि सोमदत्त ब्राह्मण गुरु के पास पहुँचकर उपदेश सुनने की इच्छा व्यक्त करता है तब मुनि उपदेश देते हैं जिससे वह विरक्त होकर मुनि बन जाता है और अपनी गर्भवती पत्नी की भी परवाह नहीं करता है किन्तु ऐसे पात्र सब नहीं हैं। अतः साधारण जन के लिए श्रावक धर्म का और जो श्रावक नहीं हैं उन्हें मद्य-मांस आदि के त्याग का ही उपदेश देना आगमसम्मत है।

श्री कुंदकुंदस्वामी भी मुनि को पूजा आदि का उपदेश देने के लिए कहते हैं–

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य।।248।।[31]

सम्यग्दर्शन, ज्ञान का उपदेश देना, शिष्यों का संग्रह करना और उनका पोषण करना तथा जिनेन्द्र देव की पूजा का उपदेश देना यह सरागी मुनियों की चर्या है। यहाँ जिनेन्द्रपूजा का उपदेश श्रावक धर्म से ही संबंध रखता है।

क्या मद्य-मांस आदि त्याग और दयादान का उपदेश भगवान ने दिया है?–श्री गौतमस्वामी ने स्पष्ट कहा है कि श्रावक के लिए मद्य, मांस, मधु का त्याग व बारह व्रतों का उपदेश भगवान महावीर ने दिया है। वे कहते हैं कि–

''श्रुतं मे आयुष्मन्तः इत्यादि'' हे आयुष्मन् भव्यों! मैंने सुना है कि भगवान महावीर ने मद्य, माँसादि का त्याग और पाँच अणुव्रत आदि गृहस्थ धर्म का ''उपदेसिदाणि'' उपदेश दिया है।''[32]

इसमें अहिंसाणुव्रत में दया और अतिथिसंविभाग में दान का उपदेश है ही है तथा श्री कुंदकुंददेव की गाथा से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आचार्यवर्ग संघ में शिष्यों का संग्रह भी करते हैं उनका ज्ञान आदि के द्वारा तथा व्याधि के होने पर वैयावृत्य आदि के द्वारा पोषण भी करते हैं।

गृहस्थ रत्नत्रय का उपदेश दे सकते हैं क्या?–इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि श्रावक या अविरत सम्यग्दृष्टि जन श्रावकों को रत्नत्रय का–मुनिधर्म का या शुद्धोपयोग का उपदेश देने के अधिकारी नहीं हैं। वे तो अपने सदृश श्रावकों को श्रावक धर्म का ही उपदेश दे सकते हैं। पहली बात तो यह है कि कोई भी विद्वान् पंडित यदि किसी को मुनिधर्म का उपदेश देता है तो वह हास्यास्पद ही प्रतीत होता है। दूसरी बात यह है कि आगम की भी उसे वैसी आज्ञा नहीं है–

यथा–**'दयाबुद्धीए साहूणं णाणदंसणचरित्तपरिच्चागो दाणं पासुअ– परिचागताणाम। ण चेदं कारणं घरत्थेसु संभवदि तत्थ चरित्ताभावादो। तिरयणुवदेसो वि ण घरत्थेसु अत्थि, तेसिं दिट्ठिवदादिउवरिमसुत्तोवदेसणे अहियाराभावादो। तदो एदे कारणं महेसिणं चेव होदि।**

''दया बुद्धि से साधुओं के द्वारा किये जाने वाले ज्ञान, दर्शन व चारित्र के दान का नाम प्रासुक परित्यागता है। यह कारण गृहस्थों में संभव नहीं है, क्योंकि उनमें चारित्र का अभाव है।**रत्नत्रय का उपदेश देना भी गृहस्थों में संभव नहीं है,** क्योंकि

दृष्टिवाद आदि उपरिमश्रुत के उपदेश देने में उनका अधिकार नहीं है। अतएव यह कारण महर्षियों के ही होता है।"[33]

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि विद्वान् लोग यदि उपदेष्टा बनते हैं, तो वे श्रावकाचार और प्रथमानुयोग का ही उपदेश देवें, मूलाचार तथा समयसार का नहीं, चूँकि मूलाचार में मुनियों के व्यवहार रत्नत्रय का और समयसार, नियमसार, प्रवचनसार में तो मुख्यतया निश्चयरत्नत्रय का व गौणतया व्यवहाररत्नत्रय का ही वर्णन है।

गुरु के गुण, शिष्य के लक्षण, पापभीरुता आदि जो भी बातें अध्ययन में बतलाई हैं वे सभी बातें प्रवचन करने वाले विद्वान में भी आवश्यक हैं। सर्वोत्तम उपदेशक तो मुनि ही होते हैं। यदि कोई विद्वान् पंडित हैं तो उन्हें भी देशचारित्रधारी होना चाहिए। कम से कम पाँच अणुव्रत तो उन्हें भी अवश्य होना चाहिये। पुनः पूर्वाचार्यों की परम्परा के अनुसार किसी न किसी शास्त्र के आधार से पूर्वापर से अविरुद्ध अर्थ करते हुए प्रवचन करना चाहिए। प्रवचन करते समय मध्य में प्रश्नोत्तर की परंपरा न रखकर अंत में प्रश्नों के लिये श्रोताओं को अवकाश देना चाहिए। उपदेश के मध्य में प्रश्नोत्तर होने से सभा में उपदेश का क्रम भंग हो जाने से सभा में अशांति हो जाती है। अनंतर भी प्रश्नों को सुनकर वक्ता को बहुत गंभीर मुद्रा में शांति से आगम के आधार से उत्तर देना चाहिए। उत्तर देते समय उत्तेजित नहीं होना चाहिए और न गलत शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

उपदेश में क्या-क्या विषय लेना चाहिए? इसके लिये धवलाकार ने भी चार प्रकार की कथाओं के कहने का आदेश दिया है।

चार प्रकार की कथायें–

धवला में चार प्रकार की कथाओं का वर्णन आया है–

प्रश्न व्याकरण नाम का दशवां अंग आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी इन चार प्रकार की कथाओं का वर्णन करता है।

1. आक्षेपणी–जो नाना प्रकार की एकांत दृष्टियों का और दूसरे समयों का निराकरणपूर्वक शुद्धि करके छह द्रव्य और नव पदार्थों का प्ररूपण करती है, उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं।

2. विक्षेपणी–जिसमें परसमय के द्वारा स्वसमय में दोष बतलाये जाते हैं, अनंतर परसमय की आधारभूत अनेक एकांत दृष्टियों का शोधन करके स्वसमय की स्थापना की जाती है, छह द्रव्य और नौ पदार्थों का निरूपण किया जाता है उसे विक्षेपणी कथा कहते हैं।

3. संवेदनी–पुण्य के फल का वर्णन करने वाली कथा को संवेदनी कथा कहते हैं।

शंका–पुण्य के फल कौन से हैं?

समाधान–'तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं।[34]

शंका–पाप के फल कौन से हैं?

समाधान–नरक, तिर्यंच और कुमानुष योनियों में जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दारिद्र्य आदि की प्राप्ति पाप के फल हैं अथवा संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य को उत्पन्न करने वाली कथा को निर्वेदनी कहते हैं।

इन कथाओं को कहते समय जो जिन वचन को नहीं जानता है ऐसे पुरुष को विक्षेपणी कथा का उपदेश नहीं करना चाहिए क्योंकि जिसने स्वसमय के रहस्य को नहीं जाना है, वह परम्परा को प्रतिपादन करने वाली कथाओं के सुनने से व्याकुलचित्त होकर मिथ्यात्व को स्वीकार न कर लेवे, अतः उसके लिये इस कथा का निषेध है। उक्त तीन कथाओं द्वारा जिसने स्वसमय को अच्छी तरह समझ लिया है जो पुण्य और पाप के स्वरूप को जानता है, जिस तरह मज्जा अर्थात् हड्डियों के मध्य में रहने वाला रस हड्डी से संसक्त होकर ही शरीर में रहता है, उसी तरह जो जिनशासन में अनुरक्त है, जिनशासन में जिसको किसी प्रकार की विचिकित्सा नहीं रही है, जो भोग और रति से विरक्त है और जो तप, शील और नियम से युक्त है ऐसे पुरुष को ही पश्चात् विक्षेपणी कथा का उपदेश देना चाहिए। प्ररूपण करके उत्तमरूप से ज्ञान

कराने वाले के लिए यह अकथा भी तब कथारूप हो जाती है। इसलिये योग्य पुरुष को प्राप्त करके ही साधु को कथा का उपदेश देना चाहिए।'[35]

इससे यह तात्पर्य हुआ कि द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, गोम्मटसार आदि ग्रंथ आक्षेपणी कथा में आ जायेंगे। न्याय कुमुदचंद्र, अष्टसहस्री आदि ग्रंथ विक्षेपणी कथा के अंतर्गत हो सकते हैं क्योंकि इनमें पर संप्रदाय के पूर्वपक्ष रखे जाते हैं पुनः उनका खंडन किया जाता है।

तिलोयपण्णत्ति, आदिपुराण, पद्मपुराण आदि ग्रंथों में पुण्य और पाप का फल तथा तीर्थंकर के महाकल्याणक व गणधरों की ऋद्धियाँ आदि के वर्णन होने से ये ग्रंथ संवेदनी और निर्वेदनी कथा के अंतर्गत आ जाते हैं।

उसी प्रकार से, वसुनंदि श्रावकाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि में तथा भगवती आराधना, मूलाचार आदि में सम्यक्त्व, व्रत आदि के लक्षण व उनसे होने वाले देव गति, मोक्षगति आदि का वर्णन तथा उनके न पालने से या उनको ग्रहण कर भंग कर देने से नरक, निगोद आदि दुर्गति में जाने का भय दिखाया गया है अतः ये आचारग्रंथ भी इन दो कथाओं में गर्भित किये जा सकते हैं।

इस प्रकार इन चार कथाओं और प्रथमानुयोग आदि चार अनुयोगों के ग्रंथों का अध्ययन-अध्यापन व प्रवचन करना चाहिए। ये सभी केवलज्ञान प्रकट होने में साधन हैं और रत्नत्रय की प्राप्ति कराने वाले हैं।

टिप्पणी

1. अनगार धर्मामृत अ. 1, श्लोक 4।
2. पुरुषार्थसिद्धिद्युपाय।
3. आत्मानुशासन श्लोक 5, 6।
4. आत्मानुशासन।
5. आत्मानुशासन।
6. आत्मानुशासन श्लोक 7।
7. पुरुषार्थसिद्धिद्युपाय।
8. सागार धर्मामृत अ. 2।
9. ज्ञानार्णव पृ. 160।
10. इंद्रनंदि श्रुतावतार।
11. कुंदकुंददेव के 5 नामों में एक नाम है।
12. धवला पु. 1, पृ. 193।
13. धवला पु. 1, पृ.197, 198।
14. धवला पु. 1, पृ. 222, 223।
15. धवला पु. 1, पृ. 264।
16. धवला पु. 1, पृ. 316।
17. धवला पु. 6, पृ. 151।
18. धवला पु. 7, पृ. 507।
19. धवला पु. 7, पृ. 541।
20. जयधवला पु. 1, पृ. 334।
21. मूलाचार, पर्याप्त्यधिकार गा. 79, 80।
22. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मूल, पृ. 8।
23. कसायपाहुड़ सुत्त प्रस्तावना से पृ. 11।
24. नियमसार।
25. समयसार गाथा 171, टीका आत्मख्याति।
26. द्रव्यसंग्रह।
27. निवृत्तिमधुमांसादिसेवायाः पापहेतुतः।।392।।
    स धर्मस्तस्य लाभो यो धर्मलाभः स उच्यते।।
    (उत्तर पु. पर्व 74)।
28. पद्मपुराण 106, पृ. 301।
29. आचारसार।
30. पुरुषार्थसिद्धिद्युपाय।
31. प्रवचनसार।
32. मुनि पाक्षिकप्रतिक्रमण।
33. धवला पु. 8, पृ. 87।
34. तित्थयर-गणहर-रिसिचक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहररिद्धीओ। (धवला. पु. 1, पृ. 106)।
35. धवला पु. 1, पृ. 106 से 108।

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का जीवन परिचय

प्रस्तुति-गणिनीप्रमुख ज्ञानमती माताजी

जन्मकाल और बाल्यावस्था–गौरवशाली प्रकाशपुंज आचार्य कुंदकुंद,स्वामी समंतभद्र, विद्यानंदी, जिनसेन इत्यादि आचार्यों की जन्मभूमि तथा उपदेश से पुनीत विहार भूमि-कर्नाटकप्रदेश में आचार्यश्री 108 शांतिसागर महाराज का जन्म हुआ।

बेलगांव जिले के चिकोड़ी तहसील में दूध-गंगा और वेद-गंगा के संगम केक्कारण तीर्थरूप ''भोज'' नामक ग्राम के पास ''येळगुळ'' गांव में विक्रम संवत् 1929 में (ई. सन् 1872) आषाढ़ मास के कृष्णपक्षमें षष्ठी तिथि को बुधवार की रात्रि में आचार्यश्री का जन्म हुआ। जन्म नाम ''सातगौंडा'' था। पिताश्री का नाम भीमगौंडा था। वे पाटील घराने के थे। ''पाटील'' याने नगर के राजा। ऐसा ही समाज में उनका मानसम्मानपूर्ण स्थान था, ऊँची पूरीशक्तिशाली देह थी, पराक्रमशीलतापूर्ण नैसर्गिक वृत्ति थी, धीर-वीर-गंभीर सहज मनोवृत्ति थी। माता का नाम देवी''सत्यवती'' था। वह भी श्रद्धालु, धार्मिक और सदाचार सम्पन्न थीं। भगवान की भक्तिपूजा करना, त्यागीगणों को आहारदान देना,उनकी वैयावृत्य करना, दीन-दुखियों को सहायता पहुँचाना आदि कार्यों में विशेष रुचिपूर्ण सावधान थीं। उस माता का वह सहज स्वभाव था। छोटे-बड़े व्यसनों से दूर पिताजी ने सोलह वर्ष तक दिन में एक ही बार भोजन करने का व्रत लिया था। आचार्यश्री का बाल-जीवन इस प्रकार से सदाचार सम्पन्न माता-पिता की छत्र-छाया में व्यतीत हुआ। एक प्रकार से निसर्गयोजना में यह मणिकांचन संयोग ही था।

सातगौंडा की विद्यालयीन शिक्षा बहुत कम हुई। वे पाठशाला में तीसरी कक्षा तक पढ़ पाये। शिक्षा के आदान-प्रदान की व्यवस्था भी आज की अपेक्षा देहातों में अपेक्षाकृत कम थी। संस्कारशील माता-पिता के द्वारा घर में जो कुछ धार्मिक संस्कार हुए, केवल वे ही जीवनाधार बन गये। सत्य-सत्य कहना हो तो जीवन में इस मूल अवस्था में सातगौंडा ने अच्छी वृद्धि ही की, जिससे माता-पिता का मुख उज्ज्वल हो गया। पाठशाला में भी सातगौंडा ने एक बुद्धिमान विद्यार्थी के रूप में ही प्रसिद्धि पाई थी।

जब चरित्रनायक सातगौंडा जी 9 साल के हुए, ज्येष्ठ भाई देवगौंडा और आदगौंडा का विवाह सम्पन्न हो रहा था। सातगौंडा का भी विवाह जबरदस्ती ही किया गया। ''संसार विषये सद्यः स्वतो हि मनसो गतिः''। संसार के विषयों में संसारी जीवों की निसर्ग से प्रवृत्ति होती ही है। बच्चों के खेल जैसी प्रक्रिया हो गई। दैव को वह भी स्वीकार नहीं था। विवाह के पश्चात् छः माह के भीतर ही विवाहिता की इहलोक यात्रा समाप्त हुई। सातगौंडा बाल्यावस्था में विवाहबद्ध होकर भी निसर्ग से बालब्रह्मचारी रहे। ''लाभात् अलाभं बहु मन्यमानः।'' लाभ से अलाभ को लाभप्रद मानने की बालक सातगौंडा की निसर्ग प्रवृत्ति रही है। अनंतर किये गये आग्रह के वे शिकार नहीं हुए अर्थात् पुनः विवाह नहीं किया।

अध्यात्म जीवन का नैसर्गिक आकर्षण–आत्मानुशासन, समयसार इन दो ग्रंथों का वाचन सातगौंडा प्रारंभ से ही करते थे। विशेष रूप से तत्त्वचिंतन मनन में काल व्यतीत होता था। आयु के 17वें, 18वें वर्ष में भरी युवावस्था में ही मन में दिगम्बरी दीक्षा लेने के सहज भाव होने लगे परन्तु माता-पिता के दबाववश उस समय वे अपने विचारों को अमल में न ला सके, व्यक्त भी न कर सके। कुछ काल तक उन्हें यथापूर्व घर में ही रहना पड़ा परन्तु प्रवृत्तिजल से भिन्न कमल की तरह बनी रही।

शास्त्र-स्वाध्याय की तरह तीर्थक्षेत्रों की भक्ति का भी आचार्यश्री के जीवन में विशेष स्थान रहा। मोक्षमार्ग के पथिक साधक के जीवन में तीर्थयात्रा-दर्शन का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होता ही है। असंगभाव या वीतराग भावों की धारा प्रवाहित करने के लिए दृष्टिसम्पन्न साधु यात्रा को अच्छा निमित्त बना सकता है। सातगौंडा यह कर पाये इसी में परिमार्जित तत्त्वदृष्टि स्पष्ट होती है। विहार का प्रत्येक कदम वीतरागता के लिए था, वीतरागता की ओर था।

सहज संवेगभाव और वैराग्य—इसी अवस्था में पाँच-छः साल और बीत गये। सातगौंडा के मन में निर्ग्रंथ दीक्षा लेने के विचार तीव्रता से आने लगे। इस बार साहस के साथ माता-पिता के समक्ष उन्होंने अपनी भावना व्यक्त भी की परन्तु पिता जी ने कहा, ''हमारे ये अंतिम दिन हैं, दीक्षा लेकर हमारी मानसिक यातनाएँ बढ़ेंगी सो ठीक नहीं होगा, अच्छा नहीं होगा।'' पिता की आज्ञा तथा पुत्र-कर्तव्य का विकल्प होने से सातगौंडा का दीक्षा लेने का विचार कुछ समय के लिए स्थगित हुआ।

शक संवत् 1833 ई. सन् 1912 में सातगौंडा की माताजी की इहलोक यात्रा समाप्त हुई। उसके कुछ साल पहले ही पिताजी का भी स्वर्गवास हुआ था। अब प्रकृतिसिद्ध त्यागमय जीवन और संयमशील बन गया। कोई लगाव भी न रहा। इसी काल में श्रवणबेलगोला-गोमटेश्वर इत्यादि पुण्यक्षेत्रों की दक्षिण यात्रा भी समाप्त कर सातगौंडा शक सं. 1836 में भोजग्राम में आये।

क्षुल्लक पद की दीक्षा-स्वीकार—सातगौंडा ने जीवन के इकतालीस साल पूर्ण होने के उपरांत दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय किया। उस समय कर्नाटक में दिगम्बर स्वामी श्री देवेंद्रकीर्ति विहार कर रहे थे। ''कापशी'' ग्राम के निकट ''उत्तूर'' नामक देहात है। वहाँ उनका आगमन होने पर सातगौंडा मुनिश्री के समीप पहुँचे और दिगम्बर दीक्षा देने की प्रार्थना की परन्तु श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामी ने प्रारंभ में क्षुल्लक पद की ही दीक्षा लेने को कहा। ठीक ही है ''क्रमारम्भो हि सिद्धिकृत्'' गुरु आज्ञा को प्रमाण माना। शक सम्वत् 1837 ई. सन् 1918 में ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी तिथि को ''सातगौंडा'' ने क्षुल्लक पद की दीक्षा धारण की। इस प्रकार स्वतंत्र संयमी जीवन का शुभ शुभारंभ हो गया।

उत्तूर ग्राम छोटा था। इसलिए गुरु की आज्ञा लेकर क्षुल्लकजी महाराज चातुर्मास के लिए कागल आये परन्तु इसी काल में कोगनोली से कुछ नैष्ठिक श्रावक कागल पहुँचे। उन्होंने क्षुल्लक जी से प्रार्थना की कि, ''हमारे कोगनोली ग्राम में आपका पहला चातुर्मास हो।'' उनकी प्रार्थना स्वीकार कर क्षुल्लकजी कोगनोली पहुँचे। इस प्रकार क्षुल्लकजी का प्रथम वर्षायोग धारण करने का प्रारंभ कोगनोली से हुआ। ध्यान धारण तथा शांति अनुभवन के लिए कोगनोली का चौमासा अत्यन्त अनुकूल रहा। आचार्यश्री के सहजोद्गार रहे कि ''कोगनोली आमचे आजोळ आहे'' याने ''कोगनोली हमारी मां का गांव है'', हमारा ननिहाल है। ऐसा ही परस्पर व्यवहार रहा।

क्षुल्लक जी महाराज का चातुर्मास कोगनोली में अपूर्व धर्मप्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ। दूसरा चातुर्मास कुम्भोज में और तीसरा चातुर्मास फिर से कोगनोली में हुआ। अनन्तर क्षुल्लकजी ने कर्नाटक प्रांत में विहार शुरू किया। कोगनोली से जैनवाड़ी और वहाँ से बाहुबली क्षेत्र (कुंभोज) में महाराज जी का आगमन हुआ। ''महाराज जी बाहुबली में आये हैं'' यह वार्ता सुनकर आस-पास के श्रावकगण भी बाहुबली आये। योगायोग से समडोली से कुछ श्रावक लोग इसी समय गिरनार जी की यात्रा के लिए जा रहे थे। उन्होंने महाराज जी से साथ में आने की प्रार्थना की। क्षुल्लक जी महाराज को वाहन में बैठने का त्याग नहीं था। यात्रियों के साथ-साथ गिरनारजी की यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई।

ऐलक पद-दीक्षा और पद-विहार करने की प्रतिज्ञा—श्री गिरनार क्षेत्र का दर्शन करते समय महाराजजी का हृदय उठी हुई वैराग्य भावनाओं से गद्गद हो उठा। भगवान नेमिनाथ के चरणों के पुनः-पुनः दर्शन कर क्षुल्लकजी के वीतराग भावों में सहज वृद्धि हुई। सावधानी तो पूरी थी ही। उसी समय श्री नेमिनाथ भगवान के चरण साक्षी में स्वयं ऐलक पद को स्वीकार किया। एक कौपीन मात्र परिग्रह के बिना सब वस्त्रादि परिग्रहों को त्याग दिया। नूतन प्रतिमा की प्रतिष्ठा पूर्वप्रतिष्ठित प्रतिमा की साक्षी में होती है और नया व्रत विधान पूर्व में व्रती के साक्षी से ही होना चाहिए, ऐसी एक अच्छी प्राचीन परम्परा है। महाराजजी इस परम्परा को तोड़ना नहीं चाहते थे जैसा कि निर्ग्रन्थ दीक्षा के समय देखा गया। इस समय उनसे रहा नहीं गया। वैराग्य भावों की वेगवान गति को वे रोक नहीं सके। पूज्य स्वर्गीय अनुभवसमृद्ध वीरसागर जी महाराज ठीक कहते थे। ''गुरु कहे सो करना गुरु करे सो नहीं करना।'' अस्तु! इस समय वीतरागता का वैराग्यभाव से अपूर्व मिलन होना था, हो गया। श्री गिरनारजी से लौटते समय ऐलकजी ने श्री दक्षिण कुंडलक्षेत्र की वंदना की। श्री

पार्श्वप्रभु भगवान की मूर्ति की साक्षी में ऐलकजी महाराज ने सब वाहनों का आजीवन के लिए परित्याग कर दिया। आगे के लिए विहार का रूप ''पद-विहार'' ही निश्चित हुआ। ''याजं याजमटन्नवे तीर्थ-स्थानान्यपूजयत्।'' शुद्ध निर्जंतुक रास्ते से चार हाथ आगे की जमीन को देखकर विहार करते हुए सूर्यप्रकाश में चलने की मुनि की प्रवृत्ति को ईर्यासमिति कहते हैं। गाड़ी, मोटर या रेल सवारी का त्याग त्यागी को इसीलिए होता है। श्री क्षेत्र कुण्डल से विहार करते-करते महाराज जिनमंदिर का दर्शन करते -करते नसलापुर, ऐनापुर, अथणी इस मार्ग से बीजापुर के पास अतिशय क्षेत्र ''बाबानगर'' को आये। पुण्यक्षेत्र के सहस्रफणी श्री पार्श्वनाथ भगवान का दर्शन करते हुए लौटकर पुनः ऐनापुर आये। वहाँ वे 15 दिन तक ठहरे। यहाँ योगायोग से निर्ग्रंथ मुनिराज श्री आदिसागर जी महाराज का सत्समागम मिला।

भगवती निर्वाणरूपा जिनदीक्षा– निपाणी संकेश्वर के समीप ''यरनाळ'' ग्राम में पंचकल्याणक महोत्सव के लिए मुनिराज श्री देवेन्द्रकीर्तिजी पधारे थे। ऐलक सातगौंडा महाराज भी वहाँ पहुँचे। उन्होंने गुरु श्रीदेवेन्द्रकीर्ति स्वामी को दिगम्बर दीक्षा देने के लिए पुनः प्रार्थना की। एकत्रित जैन समाज को महाराजजी की योग्यता का पूरा परिचय था। वे महाराजजी से प्रभावित भी थे। मुनि दीक्षा के लिए समाज भर ने एक स्वर से अनुमोदना की।

निर्ग्रंथ दीक्षा लेने का विचार निश्चित हुआ। दीक्षा कल्याणक के दिन तीर्थंकर भगवान् का वन विहार का जुलूस दीक्षा वन में आया। इसी पवित्र समय में ऐलकजी ने भी दीक्षागुरु श्री देवेन्द्रकीर्ति महाराज के पास दिगम्बरी जिनदीक्षा धारण की। 'नैर्ग्रंथ्य हि तपोऽन्यत्तु संसारस्थैव साधनम्।' यह दृढ़धारणा थी। भगवान् की दीक्षा विधि के साथ ऐलक महाराजजी की भी निर्ग्रंथ दीक्षा विधि सम्पन्न हुई, केशलोंच समारम्भ भी हुआ। ऐलक सातगौंडा मुनि हो गये, यथाजातरूपधारी हुए। मुनि पद का नाम श्री ''शांतिसागर'' रखा गया। शक् सम्वत् 1841, फाल्गुन शुक्ला 14 उनकी दीक्षामिति थी। इस पवित्र दिन से महाराज श्री का जीवनरथ अब संयम के राजमार्ग द्वारा मोक्षमहल की ओर अपनी विशिष्ट गति से सदा गतिशील ही रहा। अंतरंग में परिग्रहों से अलिप्तता का भाव सदा के लिए बना रहना और बाह्य में परिग्रह मात्र से स्वयं को दूर रखना यह मुनि की अलौकिक चर्या है। शुद्ध आत्मस्वरूपमग्नता यह उसका अन्तःस्वरूप होता है। देह के प्रति भी ममत्व का लेश नहीं होता, वे विदेही भावों के राजा होते हैं इसीलिए लोग उन्हें महाराज कहते हैं।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों के विषयों पर विजय, छह आवश्यक तथा सात शेष गुण इत्यादि 28 मूलगुणों के ये धारक होते हैं।

भारत-विहार– यरनाळ में दीक्षासमारंभ समाप्त होने के अनंतर महाराज नसलापुर आये। समाज ने बड़ा आदर किया। भक्तिभावपूर्ण वैयावृत्य किया। उसके बाद महाराज कोगनोली पहुँचे। वहाँ से लौटकर फिर नसलापुर आकर चातुर्मास किया। बाद में महाराज ऐनापुर पहुँचे। यहाँ जैन समाज बहुसंख्या में होने से धर्म प्रभावना अच्छी हुई। महाराजजी के विहार काल में कोण्णूर का चातुर्मास बड़ा महत्वपूर्ण रहा। यहाँ महाराज की जीवनी में अतिशय महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं। कोण्णूर ग्राम में प्राचीन गुफाएं बहुसंख्या में हैं। नित्य की तरह गुफा में आचार्य श्री ध्यानस्थ बैठ गये। उसी समय एक नागराज–बड़ा सर्प वहाँ आकर महाराज जी के शरीर पर चढ़कर घूमने लगा। महाराज जी अपने आत्मध्यान में निमग्न थे। 'नागराज आया है और वह अपने शरीर पर घूम रहा है' इसका तनिक विकल्प भी महाराज जी को नहीं था। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति की पालना किस प्रकार हो सकती है, इसका यह मूर्तिमान रूप दृष्टिगोचर हुआ। महाराज जी के दर्शनार्थ जो लोग वहाँ पहुँचे थे, उन्होंने यह घटना प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखी। वे साश्चर्य दिङ्मूढ़ हो बैठे रहे। वे सांप से डरते थे। सांप भी जनता से घबड़ाता था। महाराज का आश्रय इसीलिए उसने लिया था। महाराज जी का दिव्य आत्मबल देखकर वहाँ आये हुए यात्रियों में से प्रमुख श्रेष्ठी श्रीमान सेठ खुशालचंद जी पहाड़े और ब्र. हीरालाल जी बड़े प्रभावित हुए। दोनों सज्जन विचक्षण थे। दक्षिण यात्रा के लिए निकले हुए यात्री थे। मिरज पहुँचने के बाद पता चला कि निकट ही दिगम्बर साधु हैं। इसलिए परीक्षा के हेतु वे वहाँ पर पहुँचे थे। उनकी अपनी धारणा थी कि इस काल में साधक का होना असंभव है। भरी सभा में 'क्या आपको अवधिज्ञान है? या आपको

ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त है?'' आदि वैयक्तिक आचार विषयक प्रश्न भी पूछने लगे। कुछ उलाहना का अंश भी जरूर था। सम्मिलित भक्तगणों में कुछ ऐसे जरूर थे, जो इन सवालों का जवाब मुट्ठियों से देने के लिए तैयार हो गये। मुनि महाराज ने भक्तों को रोका। एक-एक सवाल का जवाब यथानाम ''शांतिसागर जी'' ने शांति से ही दिया। समागत दोनों परीक्षक अत्यधिक प्रभावित हुए, उसी समय दीक्षा के लिए तैयार भी हो गये। महाराज जी ने ही उन्हें रोककर यात्रा पूरी करने का और कुटुम्ब परिवार की सम्मति लेने को कहा। जब महाराज बाहुबली (कुम्भोज) आये, तब वहाँ आकर उक्त दोनों सज्जनों ने महाराज जी के पास क्षुल्लक पद की दीक्षा धारण की। दीक्षा के बाद श्री सेठ खुशालचंद जी क्षुल्लक 'चन्द्रसागर' तथा श्री ब्र. हीरालाल जी का क्षुल्लक ''वीरसागर'' नामांकन हुआ। समडोली के चातुर्मास में आचार्यश्री के पास क्षुल्लक वीरसागर जी ने निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की। यही महाराज के प्रथम निर्ग्रंथ शिष्य थे। आचार्यश्री ने आगे चलकर अपने समाधिकाल में श्री वीरसागर महाराज को ही उन्मुक्त भावों से आचार्यपद प्रदान किया। श्री वीरसागर जी की दीक्षा विधि हुई। कुछ ही समय बाद ऐलक नेमण्णा ने भी मुनिदीक्षा धारण की। नाम श्री 'नेमिसागर' रखा गया।

आचार्यपद की प्राप्ति व महत्वपूर्ण तीर्थरक्षा कार्य—समडोली ग्राम में ही सर्वप्रथम आचार्यश्री का चतुःसंघ स्थापन हुआ। अब तक केवल अकेले महाराज ही निर्ग्रंथ साधु स्वरूप में विहार करते थे। अब संघ सहित विहार होने लगा। संघ ने उनको 'आचार्य' घोषित किया। आचार्य महाराज का संघ पर वीतराग शासन बराबर चलता था। संघ सहित विहार करते-करते महाराज कुम्भोज से श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरी आये। क्षेत्र पर श्री देशभूषण और कुलभूषण मुनिद्वय की चरण पादुकाओं का पावन दर्शन किया। विहारकाल का उपयोग महाराज श्री जाप्य तथा मंत्र स्मरण के लिए विशेष रूप से कर लेते थे।

श्री सम्मेदशिखर जी की ऐतिहासिक पावन यात्रा—(चलता फिरता वीतरागता और विज्ञानता का विश्वविद्यालय)

ई. सन् 1927 के मार्गशीर्ष वदी प्रतिपदा के दिन श्री सम्मेदशिखर जी क्षेत्र की वंदना और धर्मप्रभावना के उद्देश्य से आचार्यश्री 108 शांतिसागर जी महाराज की विहार यात्रा संघ सहित बाहुबली (कुम्भोज) क्षेत्र से शुरू हुई।

बम्बई निवासी पुरुषोत्तम श्रीमान सेठ पूनमचंद जी घासीलाल जी और उनके सुपुत्रगण आचार्यश्री के पास पहुँचे। उन्होंने आचार्यश्री को ससंघ श्री सम्मेदाचल यात्रा को ले चलने का संकल्प प्रकट किया।

नागपुर में संघ का अपूर्व स्वागत हुआ। जुलूस तीन मील लम्बा निकला था। शहर के बाहर इतवारी में स्वतंत्र 'शांतिनगर' की रचना की गयी थी। कांग्रेस के पंडाल से शांतिनगर का पंडाल कुछ छोटा नहीं था। जनता आज भी उस समय की अपूर्व घटनाओं की स्मृति से आनंद का अनुभव करती है और स्वयं को धन्य मानती है।

संघ की विदाई हृदयद्रावक थी। साश्रुनयनों से श्रावक-श्राविकाओं को अनिवार्यरूप से विदाई देनी पड़ी। दिनाँक 9 जनवरी 1928 को संघ का नागपुर छोड़कर भंडारा मार्ग से विहार शुरू हुआ। छत्तीसगढ़ के भयंकर जंगलमय विकट मार्ग से निर्बाध होते हुए संघ हजारीबाग आया। बाद में फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी सिद्धक्षेत्र को पहुँचा।

यहाँ पर श्री संघपति जी के द्वारा व्यापकरूप में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव द्वारा महती धर्मप्रभावना हुई। भीड़ की सीमा न थी। भारत के कोने-कोने से श्रावक-श्राविकाएँ अत्यधिक प्रमाण में पहुँचे। इसी समय हजार से ज्यादा कपड़ों की झोपड़ियाँ बनवायी गई थीं। धर्मशालाएँ खचाखच भर गईं।

तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा महासभा आदि कई सभाओं के अधिवेशन भी हुए। तीर्थराज जयध्वनि से गूँज उठा था। धर्मशालाओं के बाहर भी यत्र-तत्र लोग अपना स्वतंत्र स्थान जमाए हुए नजर आते थे। नीचे धरती ऊपर आसमान, पूर्ण निर्विकल्प होकर जनता प्रतिष्ठा यात्रा के उन्मुक्त आनन्द रस का पान करती थी। लोग कहते हैं यात्री कहीं तीन लाख से ऊपर होंगे। अस्तु! पंडित आशाधरजी के शब्दों में कहना होगा, 'दलित कलिलीला-विलसितम्' यही पर्वतराज का सजीव मनोहारी दृश्य था। अनेक भाषा, अनेक वेशभूषा में व्यापक तत्त्व की एकता का होने वाला प्रत्यक्ष दर्शन अलौकिक

ही था। निर्विकल्प वस्तु के अनुभव के समय विशेष का तिरोभाव और सामान्य का आविर्भाव होता ही है ठीक इसी तरह सांस्कृतिक एकता का यह सजीव स्वरूप प्रभावशाली बन गया।

श्री सम्मेदशिखर की वंदना करके वहां से मंदारगिरी, चम्पापुरी, पावापुरी, कुण्डलपुर, राजगृही, गुणावां आदि अनेक पवित्र तीर्थ क्षेत्रों की संघ ने यात्रा की।

स्वर्गीय 108 पायसागर जी महाराज आचार्य श्री को पारसमणि की उपमा देते थे। अपनी जीवनी के आधार से ही समादर की भावनाओं से वे अपने प्रवचनों में आचार्यश्री के विषय में गौरवगाथा गाते थे। स्व. आचार्यश्री कुंथुसागर महाराज जी आचार्यश्री के शिष्यों में से उद्‌भट संस्कृतज्ञ प्रवक्ता रहे, जिनके द्वारा गुजरात में विशेष प्रभावना हुई। आचार्यश्री वीरसागर जी और शिष्य परम्परा से जो जागरण का कार्य हुआ, वह अविस्मरणीय एवं सातिशय ही है।

प्राणांतिक आक्रमण से संघ ऐसे बच पाया–दिनाँक 6 जनवरी 1930 में संघ धौलपुर स्टेट के राजाखेड़ा शहर में पहुँचा। तीन-चार दिन तक महती धर्मप्रभावना हुई। यह धर्मप्रभावना भी एक अजैन भाई को सहन नहीं हुई। एक संगठन बन गया। लाठी, काठी, तलवार आदि शस्त्रास्त्रों के साथ करीब 500 लोगों के आक्रमण की गुप्त योजना भी बन गई।

मृगमीनसज्जनानां, तृणजल-संतोष-विहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धक-धीवर-पिशुना, निष्कारण वैरिणो जगति।।

घासपत्ती पर अपना गुजारा करने वाले हिरन, जल में अपना निर्वाह करने वाली मछलियाँ और सन्तोषामृत का पान करने वाले साधु पुरुषों से भी शिकारी, मछलीमार और दुर्जन व्यर्थ ही शत्रुता करते हैं। यह सनातन दुष्टता की परंपरा संसार में चली ही आ रही है। इसका प्रत्युत्तर राजाखेड़ा में आया। छिद्दीलाल ब्राह्मण के नेतृत्व में आक्रमण की तैयारी हो गई थी। संघ का हत्याकाण्ड होने को ही था कि महाराज की अंतरंग स्वच्छता से अंतर्ज्ञान द्वारा जो कुछ भी संकेत मिला हो, उन्होंने संघस्थ त्यागियों से प्रतिदिन की अपेक्षा शीघ्र आहार करके लौटने को कहा। तदनुसार समस्त त्यागी चर्या करके 9 बजे के भीतर ही मंदिर जी में वापिस लौट आये। आक्रामक लोग नारे लगाते हुए मंदिर जी की ओर बढ़े। जैनियों ने इस प्राणांतिक आक्रमण का प्रतिकार भी किया। स्टेट की ओर से पुलिस सहायता भी दौड़ी हुई आयी। पुलिस दल ने आक्रामकों को गिरफ्तार कर लिया लेकिन महाराज जी ने करुणाभाव प्रदर्शित कर उनको छोड़ देने के लिए पुलिस अधिकारी मंडल को बाध्य किया।

जातिलिंगविकल्पेन, येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवंति, परम पदमात्मनः।।

अर्थात् जाति और वेष-परिवेष का विकल्प साधना में पूरा बाधक एवं हेय होता है। इसी प्रकार तेरहपंथ या बीसपंथ के विकल्पों से आत्म साधना अर्थात् परमार्थ-भूत धर्मसाधना अत्यन्त दूर होती है। धर्मदृष्टि के अभाव का ही परिणाम है। टंकोत्कीर्ण धर्म साधन लुप्त प्रायः होती जा रही है और तेरह-बीस पंथ के झगड़े दृढ़मूल बनाए जा रहे हैं और उन्हें धर्माचार का रूप दिया जा रहा है। समाज में आज भी जो भाई तेरह और बीस पंथ के नाम से समय-समय पर वितंडा उपस्थित करते हैं और समाज के स्वास्थ्य को ठेस पहुँचाते हैं, उनकी उस प्रवृत्ति को जो समाज के लिए महारोग के समान है, हम समझते हैं आचार्यश्री का सामंजस्यपूर्ण दूरदृष्टिता का व्यवहार एक अद्‌भुत कल्याणकारी अमृतोपम रसायन हो सकता है।

शास्त्रशुद्ध व्यापक दृष्टिकोण–ईसवी सन् 1933 का चातुर्मास आचार्य संघ का ब्यावर (राज.) में था।

महाराज जी का अपना दृष्टिकोण हर समस्या को सुलझाने के लिए मूल में व्यापक ही रहता था। योगायोग की घटना है इसी चौमासे में कारंजा गुरुकुल आदि संस्थाओं के संस्थापक और अधिकारी पूज्य ब्र. देवचंद जी दर्शनार्थ ब्यावर पहुँचे। पूज्य आचार्यश्री ने क्षुल्लक दीक्षा के लिए पुनः प्रेरणा की। ब्रह्मचारी जी का स्वयं विकल्प था ही। वे तो इसीलिए ब्यावर पहुँचे थे। साथ में और एक प्रशस्त विकल्प था कि "यदि संस्था-संचालन होते हुए क्षुल्लक प्रतिमा का

दान आचार्यश्री देने को तैयार हों, तो हमारी लेने की तैयारी है।'' इस प्रकार अपना हार्दिक आशय ब्रह्मचारी जी ने प्रगट किया। 5-6 दिन तक उपस्थित पंडितों में काफी बहस हुई। पंडितों का कहना था कि क्षुल्लक प्रतिमा के व्रतधारी संस्था संचालन नहीं कर सकते जबकि आचार्यश्री का कहना था कि पूर्व में मुनि संघ में ऐसे मुनि भी रहा करते थे जो जिम्मेवारी के साथ छात्रों का प्रबंध करते थे और ज्ञानदानादि देते थे। यह तो क्षुल्लक प्रतिमा के व्रत श्रावक के व्रत हैं। अंत में आचार्य महाराजजी ने शास्त्रों के आधार से अपना निर्णय सिद्ध किया। फलतः ब्र. श्री देवचंद जी ने क्षुल्लक पद के व्रतों को पूर्ण उत्साह के साथ स्वीकार किया। आचार्य श्री ने स्वयं अपनी आन्तरिक भावनाओं को प्रकट करते हुए दीक्षा के समय ''समंतभद्र'' इस भव्य नाम से क्षुल्लकजी को नामांकित किया और **पूर्व के समंतभद्र आचार्य की तरह आपके द्वारा धर्म की व्यापक प्रभावना हो,** इस प्रकार के शुभाशीर्वादों की वर्षा की। कहाँ तो बाल की खाल निकालकर छोटी-छोटी सी बातों को जटिल समस्या बनाने की प्रवृत्ति और कहाँ आचार्यश्री की प्रहरी के समान सजग दिव्य दूर-दृष्टिता?

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री—संघ विहार करता हुआ गजपंथा सिद्धक्षेत्र पर आया। यहाँ पर सम्मिलित सब जैन समाज ने आचार्यश्री को ''चारित्र-चक्रवर्ती'' पद से विभूषित किया। महाराजश्री की आत्मा निरंतर निरूपाधिक आत्मस्वरूप के अमृतोपम महास्वाद को सहज प्रवृत्ति से बराबर लेने में परमानंद का अनुभवन करती थी। उन्हें इस उपाधि से क्या? वे पूर्ववत् उपाधि-शून्य स्वभावमग्न ही थे। साधु परमेष्ठी या आचार्य परमेष्ठी के आंतरिक जीवन का यथार्थ दर्शन यह चक्षु का विषय नहीं होता। वह अपनी शान का अलौकिक ही होता है। जहाँ जीवनाधार श्वासोच्छ्वास की तरह इन परमेष्ठियों का श्वांस आत्मा को स्वात्मा में स्थिर बनाये रखने के लिए होता है, वहाँ उच्छ्वास विश्व में अपनी आदर्श प्रवृत्ति के द्वारा शांति स्थापना में और धर्मप्रभावना में उत्कृष्ट निमित्त के रूप में उपस्थित होने के लिए होता है। आचार्यश्री की लोकोत्तम, लोकोत्तर अलौकिकता और वैभवशाली विभूतिमत्ता इसी में थी। ''चारित्र-चक्रवर्ती'' उपाधि का महाराज को तो कोई हर्ष-विषाद ही नहीं था। ''चारित्र के चक्रवर्ती तो भगवान् ही हो सकते हैं। हम तो लास्ट नम्बर के मुनि हैं। हमें उपाधि से क्या? स्वभाव से निरूपाधिक आत्मा ही हमारी शरण है।'' समाज ने उनकी गुणग्राहकता और त्याग-संयम के प्रति निष्ठा का जो औचित्यपूर्ण दर्शन किया, वह योग्य ही हुआ।

एक प्रशस्त विकल्प—वर्षों से एक प्रशस्त संकल्प चित्त में था। जैसे माँ के पेट में बच्चा हो, वह करुणा कोमल चित्त की उद्भट चेतना थी। महाराष्ट्र की जैन जनता प्रायः किस्तकार (किसान) है। धर्म-विषयक अज्ञान की भी उनमें बहुलता है। आचार्यश्री का समाज के मानस का गहरा अध्ययन तो अनुभूति पर आधारित था ही। 'शास्त्रज्ञान' और 'तत्त्वविचार' की ओर इनका मुड़ना बहुत ही कठिन है। प्रथमानुयोगी जनमानस के लिए एक भगवान का दर्शन ही अच्छा निमित्त हो सकता है। इसी उद्देश्य को लेकर किसी अच्छे स्थान पर विशालकाय श्री बाहुबली भगवान की विशालमूर्ति कम से कम 25 फीट की खड़ी कराने का प्रशस्त विकल्प जहाँ कहीं भी आचार्यश्री पहुँचते थे, प्रकट करते थे परन्तु सिलसिला बैठा नहीं। 'भावावश्यं भवेदेव न हि केनापि रुध्यते'। होनहार होकर ही रहती है। योगायोग से इसी समय अतिशयक्षेत्र बाहुबली (कुंभोज) में वार्षिकोत्सव होने वाला था। 'संभव है सत्य संकल्प की पूर्ति हो जाये' इसी सदाशय से आचार्यश्री के चरण बाहुबली की ओर यकायक बढ़े। 18 मील का विहार वृद्धावस्था में पूरा करते हुए नांद्रे से महाराज श्री क्षेत्र पर संध्या में पहुँचे। पवित्र आनन्दोल्लास का वातावरण पैदा हुआ। संस्था के मंत्री श्री सेठ बालचंद देवचंद जी और मुनि श्री समंतभद्र जी से संबोधन करते हुए भरी सभा में आचार्यश्री का निम्न प्रकार समयोचित और समुचित वक्तव्य हुआ। जो आचार्यश्री की पारगामी दृष्टि-सम्पन्नता का पूरा सूचक था।

'तुमची इच्छा येथे हजारो विद्यार्थ्यांनी राहावे शिकावे अशी पवित्र आहे हे मी ओळखतो, हा कल्पवृक्ष उभा करून जाते। भगवंताचे दिव्य अधिष्ठान सर्व घडवून आणील। मिळेल तितका मोठा पाषाण मिळवा व लवकर हे पूर्ण करा।मुनिश्री समंतभद्राकडे वळून म्हणाले, 'तुझी प्रकृति ओळखतो, हे तीर्थक्षेत्र आहे। मुनींनी विहार करावयास पाहिजे असा सर्वसामान्य नियम असला तरी विहार करूनही जे करावयाचे ते येथेच एके ठिकाणी राहून करणे। क्षेत्र आहे। एके

ठिकाणी राहाण्यास काहीच हरकत नाही, विकल्प करू नको,काम लवकर पूर्ण करून घे। काम पूर्ण होईल! निश्चित होईल!! हा तुम्हा सर्वांना आशीर्वाद आहे।'

आपकी आंतरिक पवित्र इच्छा है कि यहाँ पर हजारों विद्यार्थी धर्माध्ययन करते रहें इसका मुझे परिचय है। यह कल्पवृक्ष खड़ा करके जा रहा हूँ। भगवान का दिव्य अधिष्ठान सब काम पूरा कराने में समर्थ है। यथासंभव बड़े पाषाण को प्राप्त कर इस कार्य को पूरा कर लीजिये।'' मुनि श्री समंतभद्र जी की ओर दृष्टि कर संकेत किया-''आपकी प्रकृति (स्वभाव) को बराबर जानता हूँ। यह तीर्थभूमि है। मुनियों को विहार करते रहना चाहिए, इस प्रकार सर्वसामान्य नियम है। फिर भी विहार करते हुए जिस प्रयोजन की पूर्ति करनी है, उसे एक स्थान में यहीं पर रहकर कर लो। यह तीर्थक्षेत्र है एक जगह पर रहने के लिए कोई बाधा नहीं है। विकल्प की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार से कार्य शीघ्र पूरा हो सके पूरा प्रयत्न करना। कार्य अवश्य ही पूरा होगा। सुनिश्चित पूरा होगा। आप सबको हमारा शुभाशीर्वाद है।''

पूर्णिमा का शुभ मंगल दिन था। शुभ संकेत के रूप में पच्चीस हजार रुपयों की स्वीकृति भी तत्काल हुई। काम लाखों का था। यथाकाल सब कामपूर्ण हुआ। ''पयसा कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः।'' पानी से कमल, कमल से पानी और दोनों से सरोवर की शोभा बढ़ती है। ठीक इस कहावत के अनुसार भगवान् की मूर्ति से संस्था का अध्यात्म वैभव बढ़ा ही है। अतिशय क्षेत्र की अतिशयता में अच्छी वृद्धि ही हुई। अब तो मूर्ति के प्रांगण में और सिद्धक्षेत्रों की प्रतिकृतियाँ बनने से यथार्थ में अतिशयता या विशेषता आयी है। महाराज का आशीर्वाद ऐसे फलित हुआ।

टंकोत्कीर्ण श्रुत की टंकोत्कीर्ण सुरक्षा—वि. सं. 2000 (ई. सन् 1944) की घटना है। आचार्यश्री का चौमासा कुंथलगिरि में था। पं. श्री सुमेरचंद जी दिवाकर से धर्म चर्चा के समय यह पता चला कि अतिशयक्षेत्र मूड़बिद्री में विद्यमान धवला, जयधवला और महाबंध इन सिद्धान्त ग्रंथों में से महाबंध ग्रंथ की ताड़पत्री प्रति के करीब 5000 सूत्रों का भागांश कीटकों का भक्ष्य बनने से नष्टप्राय हुआ। भगवान महावीर के उपदेशों से साक्षात् संबंधित इस जिनवाणी का केवल उपेक्षामात्र से हुआ विनाश सुनकर आचार्यश्री को अत्यन्त खेद हुआ। आगम का विनाश यह अपूरणीय क्षति है। इनकी भविष्य के लिए सुरक्षा हो तो कैसी हो? इस विषय में पर्याप्त विचार परामर्श हुआ। अंत में निर्णय यह हुआ कि इन ग्रंथराजों के ताम्रपत्र किये जायें और कुछ प्रतियाँ मुद्रित भी हों।

प्रातःकाल की शास्त्र सभा में आचार्यश्री का वक्तव्य हुआ। संघपति श्रीमान् सेठ दाडिमचंद जी, श्रीमान सेठ चंदूलाल जी बारामती, श्रीमान सेठ रामचन्द जी धनजी दावडा आदि सज्जन उपस्थित थे। संघपतिजी का कहना था कि जो भी खर्चा हो, वे स्वयं करने के लिए तैयार हैं। फिर भी आचार्यश्री के संकेतानुसार दानसंकलित हुआ, जो करीब डेढ़ लाख हुआ।

''श्री 108 चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्था'' नामक संस्था का जन्म हुआ। ग्रंथों के मूल ताड़पत्री प्रतियों के फोटो लेने का और देवनागरी प्रति से ताम्रपट्ट कराने का निर्णय हुआ। नियमावली बन गई। कार्य की पूर्ति के लिए ध्रुवनिधि की वृद्धि करने का भी निर्णय हुआ। कार्य की पूर्ति शीघ्र उचित रूप से किस प्रकार हो, इस विषय में पत्र द्वारा मुनि श्री समंतभद्र जी से परामर्श किया गया। ''आर्थिक व्यवहार चाहे जिस प्रकार हो, यदि कार्य पूरा करना है तो कार्यनिर्वाह की जिम्मेदारी किसी एक जिम्मेदार व्यक्ति के सुपुर्द करनी होगी। हमारी राय में श्रीमान बालचंद जी देवचंद जी शाह बी.ए.को यह कार्य सौंपा जाये'' इस सलाह के अनुसार कार्य की व्यवस्था बन गई। आचार्यश्री के संकेत को आज्ञा के रूप में श्री सेठ बालचंद जी ने शिरोधार्य कर कार्य संभाला। प्रतियों के मुद्रण तथा ताम्रपत्र के रूप में टंकोत्कीर्ण कराने का कार्य श्रीमान् विद्यावारिधि पं. खूबचंद जी शास्त्री, श्रीमान् पं. पन्नालाल जी सोनी, श्रीमान् पं. सुमेरचंद जी दिवाकर, श्रीमान् पं.हीरालाल जी शास्त्री, श्रीमान् पं. माणिकचंद जी भीसीकर आदि विद्वानों के यथासंभव सहयोग से पूरा हो पाया; जिसमें 9 वर्षों का समय लगा।

कुंथलगिरी क्षेत्र पर बृहज्जिनबिम्ब का विकल्प—कुंथलगिरी दक्षिण का सीमावर्ती सुन्दर सिद्धक्षेत्र है। ''यहाँ पर एक विशालकाय बाहुबली भगवान की मूर्ति हो तो अच्छा होगा।'' यह भव्य आशय कमेटी के सभी सदस्यों को एकदम

पसंद आया। पूज्य आचार्यश्री के समक्ष कार्य पूरा होना असंभव था। महाराज जी ने यम सल्लेखना का नियम कर ही लिया था। इसी अवसर पर एक समाचार विदित हुआ कि दक्षिण में म्हैसूर स्टेट के अंतर्गत ''बस्ती हल्ली'' देहात में एक 15 फुट ऊँची मनोज्ञ मूर्ति है और वह एक अजैन भाई के खेत में करीब अज्ञात अवस्था में पड़ी हुई है, उसी को लाकर खड़ी करने का विचार किया गया। स्व. श्रीमान् सेठ राव जी देवचंद शहा आदि सज्जन स्वयं वहाँ पहुँचे। काफी प्रयास किया गया परन्तु सफलता नहीं मिल पायी। केवल फोटो मात्र मिल गया। उसे ही सिर पर रखकर आचार्यश्री ने धन्यता के भाव प्रगट किये। वीतरागता की साधना में परम वीतराग मूर्ति के दर्शन से अद्‌भुत आनन्द की और धर्मोल्लास की लहर होना सहज था। आचार्यश्री की चर्या पर वह दृग्गोचर हुई। आचार्य महाराज के भव्य भावों की पूर्ति होनी ही चाहिए, इस प्रकार का भव्य भाव समीपवर्ती सेवाभावी सरल प्रकृति श्रेष्ठीवर्य श्रीमान् नेमचन्द जी मियाचंद जी गांधी, नातेपुते के चित्त में आया। ''यदि महाराज जी की आज्ञा हो, तो इसी क्षेत्र के ऊपर 18-20 फुट ऊँची बाहुबली भगवान् की मूर्ति विराजमान करने का मेरा भाव है'' इसके पश्चात् सन् 1970 में 18 फीट ऊँची बाहुबली भगवान् की मूर्ति पहाड़ी के ऊपर पूर्वाभिमुख विराजमान होकर प्रतिष्ठा भी सम्पन्न हो गई। इस प्रकार एक तरह से महाराज के सम्पूर्ण काम सिद्ध हुए।

हीरक जयंती महोत्सव—जैनियों की दक्षिणकाशी फलटण नगरी धर्मकार्यों को उत्साह तथा उल्लास के साथ करती ही आ रही है। सन् 1952 की घटना है। पूज्य श्री की जीवनी के 80 वर्ष पूरे हुए। इस प्रसंग से हीरक जयंती महोत्सव सम्पन्न करने का निर्णय एक स्वर से किया गया। आचार्यश्री को उत्सवों से कोई हर्ष-विषाद नहीं था। एक तरह से त्याग तपस्या का ही यह गौरव था। जून की दिनाँक 12, 13, 14 ये तीन दिन विशेष आनन्दोत्सव के रहे। सर्वत्र चहल-पहल रही। भारत के कोने-कोने से हजारों भाई फलटण पहुँचे। इंदौर से रावराजा सेठ राजकुमार सिंह जी, रावराजा सेठ हीरालाल जी पहुँचे। बम्बई से सेठ रतनचंद जी, सेठ लालचंद जी, अजमेर से सेठ भागचंद जी, कलकत्ता, देहली, कोल्हापुर, नांदगांव, नागपुर, सिवनी, जबलपुर, बेलगांव, बाहुबली, सांगली, शेडवाल, भोज आदि शहरों से सज्जन उत्सव में सम्मिलित हुए, सभा सम्मेलन हुए। योजनाबद्ध रूप से श्रद्धांजलियों का समर्पण हुआ, पूजा प्रभावना हुई। ताम्रपत्रों के ऊपर उत्कीर्ण धवलादि ग्रंथों का हाथियों के ऊपर जुलूस निकालकर वे ग्रंथ भक्ति-भावपूर्वक पूज्य आचार्यश्री को समारोह के साथ समर्पण किये गये। छोटे-मोटे सभी कार्यों में विशेष सातिशय सजीवता दिखलायी देती थी। स्वयं फलटण स्टेट के अधिपति श्रीमान् मालोजीवराव निंबालकर फलटण नगरी का यह अहोभाग्य समझते रहे। हीरक जयंती महोत्सव के निमित्त से एक सचित्र स्मरणिका प्रकाशित हुई, जिससे उत्सव का सचेतन स्वरूप सुस्पष्ट होता है। इस समय महाराजश्री के अनुभव रसपूर्ण हुए। 'रत्नत्रयधर्म की साधना जीवन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। धर्म से ही शेष पुरुषार्थों की प्राप्ति एवं सफलता होती है' ऐसे ही भावपूर्ण वक्तव्य हुए। आचार्यश्री जीवन के क्षणों का मूल्य बराबर जानते थे। उपचार और परमार्थ दोनों का परिज्ञान उन्हें बराबर था। सदा की भांति वे अपनी आत्म साधना में विशेष तन्मय हुए। रत्नत्रयों के श्रेष्ठ आराधक रत्नत्रयों के अकम्प प्रकाश में अविचलरूप से सुस्थित थे। निर्ग्रन्थ साधु की विशेषता के पुण्यदर्शन बराबर होते थे। आचार्य महाराज खूब जानते थे।

तिथिपर्वोत्सवा सर्वे, व्यक्ता येन महात्मना।
अतिथि ते 'वजानीयात् शेषमभ्यागतं विदुः।।

सब ही तिथियाँ, पर्व और उत्सव संबंधी विकल्पों से ये महर्षि सदा ही दूर होते हैं इसीलिए इनका यथार्थ नाम 'अतिथि' होता है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार करने पर आत्मा तो यही कहती है कि, महाराज वर्तमान युग के महान् सत्पात्र तो रहे ही हैं परन्तु उनके द्वारा जो ज्ञानदान और दृष्टिदान हुआ है, उससे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि महाराज श्रेष्ठ से श्रेष्ठ दानी भी रहे। पात्र समझकर जो चढ़ाया गया, वह थोड़ा था और दाता समझकर जो कुछ समाज के द्वारा लिया गया वह भी थोड़ा था, इस सत्य को स्वीकार करना होगा।

आदर्श सल्लेखना—विचार और भावनाओं का समान संयोग आचार्यश्री के जीवन की एक विशेषता थी। भावनाओं में आकर शक्ति को व्यर्थ खोना या व्यर्थ खोने का विकल्प करना यह असंभव था। भविष्य की आशा में वर्तमान को गंवाना वे प्रकाश के बदले में अंधकार को खरीदना जैसा मानते थे। वर्षों से अखण्ड रूप से की गयी हजारों मीलों की पदयात्रा, यथासंभव अनुकूल-प्रतिकूल आहार का संयोग, उपवासों की धाराप्रवाहिता, वृद्धावस्था, अल्पनिद्रा आदि कारणों से दृष्टि में पूर्व की अपेक्षा अधिकाधिक मंदता का अनुभव होने लगा। वैद्य और डाक्टरों से समय-समय पर बराबर परामर्श होता था। शुद्ध उपचारों का विशुद्ध भावनाओं से अमल भी होता था। दृष्टि विनाश होने के बाद समितियों का पालन और प्राणस्वरूप मुनिचर्या असंभव है, इसलिए साधनों की सुरक्षा सावधानीपूर्वक अप्रमाद भाव से आचार्यश्री प्रारंभ से ही करते रहे। आचार्यश्री विनोद में शरीर की सवारी को घोड़ा कहा करते थे। जब घोड़े से काम लेना है और घोड़ा बराबर काम देता है तो उसे मात्रा में चना देना ही होगा। शरीर की या इन्द्रियों की गुलामी यह कोई अलग चीज होती है। विदेही भावनाओं के धनी चारित्र-चक्रवर्ती इस जन्म से प्राप्त घोड़े से ठीक काम लेना बराबर जानते थे। राणा प्रताप के ईमानदार 'चेतक' की तरह महाराजश्री की देह ने महाराज की आत्मा को पूरा साथ दिया परन्तु देहधर्म की अपनी प्रकृति है उसे शिथिल और कमजोर पाकर महाराज श्री बिल्कुल सचेत हो गये। शुरू में कांचबिन्दु बतलाया गया और अंत में डा. आरोसकरजी के द्वारा मोतियाबिंदु के सुनिश्चित होने पर निर्विकल्परूप से सल्लेखना ही एकमात्र शरण है, ऐसी अन्तरंग में दृढ़ धारणा हो गई।

समाधि, सल्लेखना, समाधिमरण, वीरमरण, मृत्यु महोत्सव ये ऐसे सार्थक शब्द हैं जो यह बतलाते हैं कि साधक किन पवित्र भावनाओं से सावधानीपूर्वक मृत्यु का सहज स्वागत करता है। शरीर का गल जाना, विनश जाना यह अटल प्रकृति है। वास्तव में जन्म जितना सत्य होता है, उतनी ही मृत्यु सत्य होती है परन्तु भोगी बहिर्दृष्टि लौकिक पुरुष जन्म का सहर्ष स्वागत करता है, आनन्द मनाता है और मृत्यु से डरता है, मुत्यु के नाममात्र से रोता है, यही विकल्प-परायण अज्ञानी की अज्ञानता है। जन्म होना, छोटे से बड़ा होना, परिपुष्ट होना और अंत में गल जाना यही प्राणियों के प्राणों का स्वभाव होता है। जीवन का कोई विश्वास नहीं, यह सब कोई कहते हैं और नित्य नये विकल्पों को करते भी जाते हैं, यही अज्ञानियों का अज्ञान है। महाराजजी ने अपने जीवन से पूरा काम लिया था। रसपूर्ण गन्ने का पूरा रस निकाला हुआ था। सारहीन भाग यदि ठीक ढंग से जलता हो तो उसमें शोक वृथा होता है, विकल्प निरर्थक होते हैं। वस्तुतत्त्व के आधार से संकल्प-विकल्पों का परित्याग और आत्मस्वरूप स्थिरता यह समाधि या सल्लेखना की आत्मा होती है और आहार के क्रमशः विधिपुरस्सर परित्यागपूर्वक होने वाला देहविसर्जन यह समाधि का कलेवर होता है। शरीर की धारणा बनी रहना यह उपजीवन है और स्वरूप में अकंप स्थिरता यह आत्मा का जीवन है। यह दोनों का सुनिश्चित स्वरूप है वैसे ही जीवन के लिए उपजीवन होता है न कि उपजीवन के लिए जीवन यह पारस्परिक संबंध भी उतना ही निश्चित है। जीवन का यह सम्यग्दर्शन पूज्य महाराज जी की युवावस्था से ही यथार्थ रूप में था। इसलिए परलोक यात्रा की तैयारी सहर्ष भावना से पूरी हो गई थी। दिनाँक 18-8-1955 को महाराज जी का यम सल्लेखना का ज्यों ही निर्णय प्रगट हुआ, समाज भर को, देशभर को भूचाल जैसा धक्का लगा, जो स्वाभाविक ही था।

अंतिम आहार और परित्याग—अन्न आहार के रूप में अंतिम ग्रास दिनाँक 18-8-1955 को दिया गया। दिनाँक 26-8-1955 को मध्यान्ह में सल्लेखना विधि के अनुसार महाराजश्री के द्वारा क्षमायाचना का, क्षमा के आदान-प्रदान का भाव व्यक्त हुआ। यह सम्पूर्ण दृश्य अभिनव था। सभा में गंभीरता का वातावरण भर आया। उपचार विधि में पूरी परमार्थता किस प्रकार हो सकती है इसका वह मूर्तिमान रूप था। बस अब सदा के लिए अन्नाहार बंद हो गया। केवल पानी मात्र की छूट थी। आगे चलकर पानी का भी दिनाँक 28-8-1955 को परित्याग कर दिया। फिर भी मंदिरों के दर्शन, यथाशक्ति वंदना, अभिषेक, पूजा इत्यादि का अवलोकन, मंत्रस्मरण आदि में कोई खण्ड नहीं रहा। लोगों की बढ़ती हुई

भीड़ का क्या कहना? कुंथलगिरि की उस वीरान पहाड़ी का क्या कहना? कुंथलगिरि की उस वीरान पहाड़ी में जनसागर उमड़ पड़ा। जिसको भी समाचार मिला और अनुकूलता मिली, वह साधकोत्तम महापुरुष के अंतिम दर्शन के लिए वहाँ पर पहुँचा। महासाधक की वह महायात्रा थी। सम्मिश्र भावनाओं का सम्मिश्र रस रूप दृष्टिगोचर होता था। जहाँ महाराजश्री स्वाभाविक रूप से सहज-भावना से अपूर्व आनन्द रस में उन्मुक्त मन से अधिकाधिक मग्न होते हुए नजर आते थे। शांतिसागर स्वनामधन्य शांतिसागर अथाह शांति के सागर में निमग्न थे। उसी समय जनता सागर शोक में डूबता हुआ दृष्टिगोचर होता था। कुंथलगिरी का दृश्य कुछ अपूर्व था। बाहर की दुनिया में जैनाजैन समाचार पत्रों में अनुकूल-प्रतिकूल समाचार साभिप्राय प्रगट होते ही थे। अपने विकल्पों को सबके लिए छूट होती ही है। व्यक्तिस्वातंत्र्य का युग है। कोई ''जैन साधु की पवित्र महायात्रा'' लिखता था कोई ''जैन साधूची आत्महत्या'' लिखता था। युद्ध में मृत्यु हो तो ''वीरमरण'' कहना। देशभक्त को यदि फाँसी हो तो उसे हुतात्मता कहना यहाँ तक ही लौकिक दृष्टि की पहुँच हो सकती है। इससे भी बढ़कर साधक की समाधि हो सकती है, इसका इनको क्या पता? धर्म और अहिंसा जैसी पवित्र-पवित्रतम वस्तुओं की वर्षों से समय-असमय में बराबर खाल उतारी जाती है, वहाँ सल्लेखना और समाधि जैसी अत्यंत पवित्र लोकोत्तम ''व्रतशिरोरत्न'' की जो छानबीन की चेष्टा ज्ञानी कहे जाने वाले अज्ञानियों के द्वारा हुई, उसका क्या हिसाब? पवित्रता की विडंबना ही मानो इस युग की विशेषता रही हो। जिसके पास सच्चा मापतोल ही नहीं, सूखी लकड़ियों के साथ गीली को और कोयले को ही तौलने का तराजू हो, वह क्या उनसे रत्नों का और जवाहरात का माप तोल कर सकता है? धर्मकांटा कोई अलग वस्तु होती है। यही बात सच्ची है।

महाराजश्री की शांत स्वात्मनिर्भरता यथापूर्व हाथी की चाल से कदम-कदम पर आगे के लिए बढ़ती ही जा रही थी। दिनाँक 22-8-1955 को महाराजश्री के संकेत से ही श्रीमान् सेठ बालचंद देवचंद शहा का ताम्रपट्ट तथा ग्रंथमालाओं से की गई श्रुतसेवा के लिए सभासंयोजना पूर्वक सत्कार किया गया और मानपत्र समर्पण किया गया। स्वयं महाराजश्री आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित हुए।

अंतिम दर्शन—शास्त्रों में सामायिक और छेदोपस्थापना का जो भी सूक्ष्म वर्णन आता है, निर्विकल्प शुद्धात्म स्वरूप मग्नता और विकल्पों में से निर्विकल्प शुद्ध स्वरूप में मग्न होने का जो सावधान प्रयत्न, इन दोनों अंतरंग प्रक्रियाओं का जराजर्जर तपस्या क्षीण देही महाराज की विदेही सावधान प्रवृत्ति में जो प्रत्यक्ष दर्शन हो पाया, वह सुनिश्चित ही अद्‌भुत, अपूर्व, चैतन्यचमत्कारपूर्ण था। वैसे ही महाराज की निद्रा अत्यल्प थी। अब तो आत्म जागरण का सविशेष स्वरूप था। थकावट से निवृत्त होते ही ऊँकार के उच्चारण से जागृति होती थी। उनका संकेत था ''हमे औरों के द्वारा जगाने की आवश्यकता ही नहीं है।'' हम हमारे आत्मा में, हमारे घर में पूर्ण सावधान हैं। सातिशय आत्मबल का ही प्रभाव समझना होगा। महाराज अंत तक परमात्म-स्मरण कर पाये। णमोकार मंत्र का उच्चारण कर पाये। ऊँकार की वही अनुभव रस पूर्ण ध्वनि निकटवर्तियों को अन्त तक बराबर सुनने को मिली। भीतर ही सावधानता का और कौन सा बाहरी रूप हो सकता है? दिनाँक 18-9-1955 को भाद्रपद शुक्ल दूज रविवार, प्रातःकाल ठीक 6 बजकर 50 मिनट पर महाराज श्री की परमपवित्र निरामय तपस्या से पुनीत आत्मा ''ॐ सिद्धाय नमः'' के उच्चारण के साथ अंतिम श्वांस ले पायी। मोक्षमार्ग के साधक ने इस पर्याय की अपनी पवित्र जीवन यात्रा इस प्रकार पूरी कर परलोक यात्रा के लिए प्रस्थान कर लिया।

अब भक्तों के लिए आचार्य महाराज की केवल पुण्यस्मृति और तपस्या-पुनीत देहमात्र शेष थी। विमान बनाया गया। जयनाद से आकाश गूंज उठा। श्रीमान् सेठ गोविन्द जी रावजी दोशी तथा श्री सौ. कुमुदिनीबाई ने विमान यात्रा का बहुमान किया। विमानयात्रा के बाद दाहसंस्कार निर्धारित उसी स्थान पर हुआ, जहाँ आज भी इस युगपुरुष की चरणपादुकाएँ विद्यमान हैं। अब ऊपर से संगमरमर की सर्वांगसुन्दर छत्री भी बन गई है, प्रेरणा लेने वाले भक्तों के लिए चरण आज भी प्रेरणा दे रहे हैं।

आचार्यश्री की रत्नत्रय साधना अत्यन्त कठोर थी। वे शरीर को पूर्णरूपेण परद्रव्य समझकर उसे कभी-कभी ही आहार प्रदान करते थे। 35 वर्ष के दीक्षित जीवन में आचार्यश्री ने 25 वर्ष से भी अधिक दिन उपवास में निकाले हैं, जिनकी सूची निम्न प्रकार है–

उपवासों की संख्या	कितनी बार	उपवास के कुल दिन
1) 16 दिन का	3 बार	48
2) 10 दिन का	1 बार	10
3) 9 दिन का	6 बार	54
4) 8 दिन का	7 बार	56
5) 7 दिन का	6 बार	42
6) 6 दिन का	6 बार	36
7) 5 दिन का	6 बार	30
8) 4 दिन का	6 बार	24
9) अंतिम 36 दिन तक के उपवास में स्वर्गवास	1 बार	36
		योग-336 दिन

व्रत नाम	उपवासों की संख्या
1. चारित्रशुद्धि व्रत	1234
2. तीस चौबीसी व्रत	720
3. कर्मदहन व्रत (तीन बार)	468
4. सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत (तीन बार)	270
5. सोलहकारण व्रत (16/16)	256
6. श्रुतपंचमी व्रत	36
7. विहरमान व्रत (20 तीर्थंकर व्रत)	20
8. दशलक्षण पर्व	10
9. सिद्धों के व्रत (8)	8
10. अष्टाह्निका व्रत	8
11. गणधरों के व्रत गणधरों के 1452 उपवास होते हैं। आचार्य श्री 200 ही कर पाये थे।	200
12. अतिरिक्त व्रत	6372
	योग 9602

आचार्यश्री ने सन् 1920 में निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा ली। इस समय से लेकर 1955 तक के 35 वर्षों में महाराज ने 6338 दिन उपवास किया। इसका अर्थ यह है कि 36 वर्ष के मुनि जीवन के 25 वर्ष 7 मास अनशन में बीते। महाराज इतने दिन निराहार रहे। क्या इस कठोर उग्र तपस्या में आचार्यश्री की कोई बराबरी कर सकता है? नहीं। यह तो उनकी विशिष्ट आत्मशक्ति का प्रतीक है।

आचार्यश्री द्वारा किए गए चातुर्मासों की सूची –

	स्थान का नाम	सन्		स्थान का नाम	सन्
1.	कागनोली	1920	19.	बारामती	1938
2.	नसलापुर	1921	20.	पावागढ़	1939
3.	ऐनापुर	1922	21.	गोरल	1940
4.	कोन्नूर	1923	22.	अकलूज	1941
5.	समडोली	1924	23.	कौरची	1942
6.	कुम्भोज	1925	24.	डिग्गज	1943
7.	नांदडी	1926	25.	कुंथलगिरि	1944
8.	बाहुबली डोंगर	1927	26.	फलटन	1945
9.	कटनी	1928	27.	कवलाना	1946
10.	ललितपुर	1929	28.	सोलापुर	1947
11.	मथुरा	1930	29.	फलटन	1948
12.	दिल्ली	1931	30.	कवलाना	1949
13.	जयपुर	1932	31.	गजपंथा	1950
14.	ब्यावर	1933	32.	बारामती	1951
15.	उदयपुर	1934	33.	लोणद	1952
16.	गोरल	1935	34.	कुंथलगिरि	1953
17.	प्रतापगढ़	1936	35.	फलटन	1954
18.	गजपंथा	1937	36.	कुंथलगिरि	1955

(1955 भादों सुदी 2 को स्वर्गवासी हुए)

प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज का परिचय

(ग्रंथ की सम्प्रेरिका गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के दीक्षा गुरु)

प्रस्तुतकर्त्री–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

ओह! कितना सुन्दर स्वप्न! प्रातःकाल की मधुरिम बेला में स्वप्निल निद्रा से उठकर भाग्यवती ने प्रभु का स्मरण किया।

रात्रि के पिछले प्रहर में देखा हुआ स्वप्न तो शायद सत्य होता है, यही सोचती हुई भाग्यवती मन में उस स्वप्न के बारे में चिन्तन करती हैं कि **मैंने आज सफेद बैल देखा है। हो सकता है कोई होनहार बालक मेरे गर्भ में आने वाला हो।** हर्ष से पुलकित होकर भाग्यवती अपने दैनिक कार्यों में लग जाती हैं।

महाराष्ट्र प्रान्त के **औरंगाबाद** जिले में एक छोटे से कस्बे **ईर** नामक ग्राम में **रामसुख** नाम के एक योग्य चिकित्सक श्रेष्ठी रहा करते थे। उन्होंने **भाग्यवती** धर्मपत्नी को पाकर मानो सचमुच ही राम जैसे सुख को प्राप्त कर लिया था। गंगवाल गोत्रीय ये दम्पत्ति श्रावक कुल के शिरोमणि थे। प्रतिदिन मंदिर में जाकर देवदर्शन करना, भक्ति-पूजा आदि उनके जीवन के आवश्यक अंग थे। **माता-पिता के संस्कार बालक पर पड़ना अवश्यंभावी है।**पत्नी के सुखद स्वप्न को सुनकर रामसुख भी बड़े हषित हुए, उन्होंने स्नेह से पत्नी की ओर देखते हुए कहा–

भागू! ऐसा लगता है तुम एक होनहार महापुरुष बालक की माँ बनने वाली हो। हो सकता है संसार में तेरे मातृत्व की ख्याति फैलाकर यह बालक श्वेत वृषभ के सदृश कीर्ति वाला बन जावे।

भाग्यवती लज्जापूर्वक सिर झुकाकर पति के चरण स्पर्श करती है और अपने प्रथम पुत्र तीन वर्षीय बालक गुलाबचंद को साथ लेकर मंदिर में भगवान की पूजन करने चली जाती है। खुशियों के आवेग में भाग्यवती अपनी सारी सुध-बुध भूल गईं। देर दिन चढ़ने तक वह प्रभु की भक्ति में ही लीन रहीं, तब ध्यान तोड़ा गुलाब ने। **माँ! घर चलो, बहुत देर हो गई, मुझे भूख लगी है।** भक्ति का आनंद वहीं छोड़कर भागू बेटे के साथ घर आ गई।

दिवस और रात्रि के स्वर्णिम क्षण बीतने लगे। अब तो भाग्यवती प्रतिदिन पति से तीर्थयात्रा पर चलने को कहने लगीं क्योंकि इस द्वितीय पुत्र के गर्भ में आने से उसे तीर्थवंदना का दोहला जो हुआ था। रामसुख अपनी पत्नी को तीर्थों की वंदना हेतु लेकर चल दिए। हर्ष और आनंद के साथ दोनों ने सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र आदि कितने ही तीर्थों की वंदना की और वापस घर आ गए।

देखते ही देखते नवमास हर्षोल्लास में व्यतीत हो गए। वि. सं. 1933, ईसवी सन् 1876 में आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन भाग्यवती ने एक अपूर्व चाँद को जन्म दिया जिसके आगमन की अप्रतिम प्रसन्नता ने माता की प्रसव वेदना भी समाप्त कर दी।

सारे गाँव में बाजे-नगाड़े की ध्वनि होने लगी। चारों ओर खुशियाँ ही खुशियाँ छाई हुई थीं। सौभाग्यवती महिलाएँ मंगल गीत गा रही थीं। पुत्र जन्मोत्सव की खुशी में सेठ रामसुख जी फूले नहीं समा रहे थे। हर्षातिरेक में गरीबों को खूब दान बाँट रहे थे।

इस होनहार बालक का नाम घर वालों ने मिलकर हीरालाल रखा। सवा महीने के बाद जब माता और बालक को लेकर सभी नगर निवासी जिनमंदिर गए, तब वहाँ भगवान के समक्ष जैनसंस्कृति के अनुसार एक पण्डितजी ने बालक के कानों में णमोकार मंत्र सुनाकर सर्वसाक्षीपूर्वक अष्टमूलगुण धारण करवाया तथा 8 वर्ष तक इन मूलगुणों को पालन करवाने की जिम्मेदारी माता पर डाली। बार-बार आँखें खोलकर हीरा मानों कह रहा था कि मैं सब कुछ समझ रहा हूँ।

चंद्रमा की कलाओं के समान हीरालाल भी अपनी बालक्रीडाओं को करता हुआ वृद्धिंगत होने लगा। इस घर में मानो कोई साधारण पुत्र नहीं, अपितु किसी अद्वितीय पुरुष का अवतार ही हुआ है। माता-पिता इसके जन्म से अपने को धन्य समझने लगे और अपना अधिक से अधिक समय हीरा की चमक-दमक देखने में बिताने लगे।

लोक में कहा जाता है कि जीवन में दुख के किंचित् क्षण भी अत्यन्त लम्बे लम्हे जैसे लगते हैं और सुखमय लम्बा जीवन कब जल्दी ही निकल जाता है, ज्ञात नहीं हो पाता। इसी प्रकार से बालक हीरालाल सात वर्ष के पूरे होकर आठवें वर्ष में प्रवेश कर गए। माता-पिता ने अब शुभ मुहूर्त में उपनयन संस्कार का आयोजन कराया।

इस कृतयुग की आदि में भगवान ऋषभदेव ने जब मनुष्यों को जीने की कला सिखाई थी, उस समय उपनयन आदि मनुष्योचित क्रियाओं का वर्णन भी किया था। उसी विधि के अनुसार बालक हीरालाल को मंगलचौक के ऊपर बिठाकर मंत्रन्यासपूर्वक संस्कार किए गए और तीन सूत्र का धागा गले में डाल दिया गया जो कि रत्नत्रय का प्रतीक होता है। अब वह बालक से श्रावक बन गया। अपनी समस्त क्रियाओं का पालन करते हुए हीरालाल अब पाठशाला में पढ़ने भी जाने लगा। बुद्धि की तीक्ष्णता तो थी ही, स्कूल में सभी अध्यापकों के प्रेमपात्र बन गए और लड़कों के नायक चुन लिए गए। इनके शुभ लक्षण और ज्ञान की प्रखरता देखकर अनायास ही लोग कह उठते थे कि **यह तो जरूर कोई महापुरूष होने वाला है।** चंचलबुद्धि, मानकषाय की मंदता हीरालाल के जीवन की प्रमुख विशेषता थी।

हिन्दी, उर्दू इन दोनों भाषाओं में उन्होंने सातवीं कक्षा तक अध्ययन किया, उसके पश्चात् पिता की आज्ञानुसार व्यापार कार्य प्रारम्भ कर दिया।

हीरालाल अब तक 15 वर्ष के युवक हो गए थे। पिता के साथ व्यापार तो करते थे किन्तु इनका चित्त उदासीन रहने लगा और ये अपना अधिक समय भगवान की पूजन, भक्ति एवं शास्त्र स्वाध्याय में व्यतीत करते।

बेटे की यह उदासीनता पिता को सहन न हो पाई। यद्यपि उनको किंचित् अहसास था और लोगों के मुख से भी सुना करते थे कि हीरालाल मात्र एक घर में ही अपनी चमक को सीमित न रखकर सारे संसार को जगमगाएगा किन्तु वैराग्य के चंगुल में कहीं मेरा बेटा फंस न जाए इसलिए शीघ्र ही उसे विवाह-बंधन में बाँधने की युक्ति सोचने लगे।

सुन्दर, रूपवान और बुद्धिमान हीरालाल की शादी के रिश्ते जगह-जगह से आ रहे थे। एक दिन पिताजी ने उनसे शादी के विषय में कुछ राय लेनी चाहिए अतः हीरालाल से बोले -

बेटा! अब तुम एक होनहार नवयुवक के रूप में युवावस्था देहलीज पर खड़े हो अतः मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे घर में आने वाली बहू का चयन स्वयं करो। माँ ने भी कहा - **मुझे तो तेरे जैसी ही सुन्दर और सुघड़ बहू चाहिए। सुन हीरा! अच्छी कन्या पसंद करना जो कि मेरी कुछ सेवा भी कर सके।**

इसी प्रकार से सारे परिवार के लोग उससे रागात्मक वार्तालाप करने लगे किन्तुजैसे कमल कीचड़ में रहकर उससे सदैव अलग ही रहता है, वैसे ही हीरालाल इन सबकी बातों में संसार की असारता ढूँढतेरहते थे। आखिर एक दिन पुत्र हीरा ने संकोच छोड़कर माता-पिता के सामने अपने मन की बात कह ही डाली, पिताजी के चरण स्पर्श करते हुए हीरालाल बोले–

पिताजी! आप व्यर्थ ही मेरी शादी के लिए परेशान हो रहे हैं। शादी तो संसार की अनादिकालीन श्रुत और परिचित परम्परा है मुझे तो भगवान महावीर के पथ पर चलकर अपनी आत्मा का कल्याण करना है अतः मेरा दृढ़ निश्चय है कि मुझे शादी नहीं करना है।

माता-पिता पत्थर की प्रतिमा सदृश स्तब्ध खड़े रह गए। ओह! माँ ने मौन तोड़ा–

हीरा! मैंने अपनी छोटी बहू पाने के लिए न जाने कितने अरमान संजोए हैं। (प्यार से डाँटती हुई) एक शब्द कहकर तू हम लोगों को निराश करना चाहता है? शादी करने का कार्य तुम्हारा नहीं, यह तो माता-पिता का परम कर्तव्य होता है और आज्ञाकारी बेटा माँ-बाप की आज्ञा का सदैव पालन करना ही अपना कर्तव्य समझता है। मुझे अपने लाडले से ऐसा ही विश्वास है।

हीरालाल माँ की इतनी बड़ी चुनौती से भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा - **यह तो मोह की लीला है। माँ! वास्तव में तो न कोई किसी का पुत्र है न माता-पिता। प्रत्येक प्राणी का चैतन्य तो परम वीतरागी होता है और मुझे उसी चैतन्य की खोज करने में अपने कर्तव्य की सार्थकता प्रतीत होती है।** वे माँ से बोले–

मैं ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ अपने मन में। आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप मेरे द्वारा सांसारिक बहू लाने की आशा सर्वथा छोड़ दें। मैं तो मुक्तिकन्या को बहू बनाने का आह्वान कर चुका हूँ जो सदा अनंतकाल अखंड सुख को प्रदान करने वाली होती है।

मां! मुझे आशीर्वाद दो। मैं अपने पथ को निष्कंटक बना सकूँ।(झुकते हुए) पिता रामसुख दुख के असीम सागर में डूबे हुए हैं। उन्हें हीरालाल की शादी नहीं करने से अधिक दुख इस बात का है कि क्या बेटा हम सबको छोड़कर चला जाएगा?

नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। रोते हुए रामसुख जी हीरालाल को छाती से लगाते हुए कहते हैं–

मेरे चाँद! तू समझता नहीं है कि त्यागमार्ग में कितने कष्ट होते हैं। तलवार की धार पर तेरे जैसे सुकुमार का चलना श्रेयस्कर नहीं है। मेरी बात मानो बेटा! घर बसाओ और हमारे बुढ़ापे का सहारा बनो। मैं तेरा वियोग कभी नहीं सहन कर सकता हीरा।

हीरालाल अब कोई नादान नहीं थे। वे परिवार की सारी स्थिति को समझ रहे थे। अन्ततोगत्वा उन्होंने ब्रह्मचारी रूप में ही घर में रहते हुए माता-पिता की सेवा करना स्वीकार किया।

रामसुख भी अब कुछ आश्वस्त हुए कि बहू नहीं न सही, किन्तु कम से कम बेटा तो हमारे जीवन का अंग बना ही रहेगा।

घर में रहकर भी हीरा द्वारा अपनी चमक में निखार लाने हेतु रसपरित्यागपूर्वक भोजन करना एवं शास्त्रों का मनन-चिन्तन पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रारम्भ हो गया।

दिवस, मास और वर्ष व्यतीत होने लगे। कुछ दिनों के बाद ही रामसुख जी का स्वर्गवास हो गया। पितृवियोग के साथ-साथ कतिपय दिवसों के पश्चात् ही माता भी स्वर्ग सिधार गईं। अब हीरालाल के लिए मात्र भाई का ही संबल था।

ज्ञानी के लिए तो सबसे प्रबल संबल उसका तत्वज्ञान ही होता है, उसी का आधार लेकर हीरालाल ने अपनी मंजिल को अब निराबाध समझ लिया किन्तु योग्य गुरु के अभाव में अभी दीक्षा की भावना को बल नहीं प्रदान किया।

वि.सं. 1973, सन् 1916 में औरंगाबाद के निकट कचनेर नामक अतिशय क्षेत्र में धार्मिक पाठशाला खोलकर हीरालाल जी बालकों को निःशुल्क धार्मिक शिक्षण देने लगे पुनः औरंगाबाद में भी एक विद्यालय खोलकर उन्होंने धार्मिक अध्ययन कराया। दोनों जगह उन्होंने अवैतनिक अध्ययन कराया था और उस प्रान्त में सभी के द्वारा गुरूजी कहे जाने लगे थे। यह अध्ययनक्रम सात वर्ष तक चला जिसके मध्य निःस्वार्थ सेवाभाव से जनमानस के नस-नस में जैनधर्म का अंश भर दिया था।

वि.सं. 1978, सन् 1921 में नांदगांव में ऐलक श्री पन्नालाल जी का चातुर्मास होने वाला था। चातुर्मास के समाचार सुनकर हीरालाल गुरुदर्शन की लालसा से नांदगांव पहुंच गए। अब तो हीरालाल को अपनी स्वार्थसिद्धि का मानो स्वर्ण अवसर ही प्राप्त हुआ था अतः मौके का लाभ उठाते हुए आषाढ़ शुक्ला ग्यारस को ऐलक श्री पन्नालाल जी के पास सप्तमप्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए पुनः नांदगांव के ही एक प्रसिद्ध श्रावक खुशालचंद जी को हीरालाल ने अपना साथी बना लिया अर्थात् उनके हृदय के अंकुरित वैराग्य को बीजरूप दे दिया और उन्हें भी सप्तमप्रतिमा के व्रत दे दिए।

युगल ब्रह्मचारी की जोड़ी अब तो राम-लक्ष्मण की जोड़ी बन गई थी। दोनों ही अपने-अपने वैराग्य को वृद्धिंगत करने हेतु उपवास, रसपरित्याग आदि करने लगे जिससे प्रारम्भ से ही उनका शरीर तपस्या की बलिवेदी पर चढ़कर मजबूत बन गया था।

ब्र. हीरालाल और खुशालचंद अभी योग्य गुरु के अभाव में इससे आगे नहीं बढ़ सके थे। इसी अवस्था में उन्होंने घी, नमक, तेल और मीठे का जीवनपर्यंत के लिए त्याग कर दिया था।

सच्चे हृदय से भाई गई भावना अवश्य एक दिन भवनाशिनी सिद्ध होती है इसी प्रकार हीरालाल जी को ज्ञात हुआ कि दक्षिण के कोन्नूर ग्राम में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज नाम के दिगम्बर मुनि विराजमान

हैं। बस फिर क्या था, दोनों ब्रह्मचारी शीघ्र ही आचार्यश्री के पास पहुँच गए। दर्शन-वंदन करके आशीर्वाद प्राप्त किया। जिस प्रकार आचार्य धरसेन स्वामी के पास पुष्पदंत और भूतबलि दो शिष्य उनकी इच्छामूर्ति के लिए पहुँचे थे उसी प्रकार मानो आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के पास युगल ब्रह्मचारी उनकी अविच्छिन्न परम्पराचलाने का भावी स्वप्न संजोकर पहुँचे थे।

गुरुवर की कठोर तपश्चर्या और त्याग की चरम सीमा को देखकर दोनों बड़े प्रभावित हुए और उन्हीं से दीक्षा लेना निश्चित कर लिया। आचार्यश्री ने दोनों भव्यात्माओं को दूरदृष्टि से परखकर दीक्षा देना तो स्वीकार कर लिया किन्तु एक बार घर जाकर परिवारजनों को सन्तुष्ट करके क्षमायाचनापूर्वक आज्ञा लेकर आने का आदेश दिया।

संसारसिंधुतारक गुरुदेव का आदेश शिरोधार्य करते हुए युगल ब्रह्मचारी अपने घर आ गए। औपचारिकरूप से सबसे क्षमायाचना करके स्वीकृति माँगी, तब बड़े भाई गुलाबचंद और उनकी पत्नी का हृदय विह्वल हो गया। यद्यपि दोनों इस बात को समझ चुके थे कि ब्रह्मा की शक्ति भी अब हीरा को घर में बाँधकर नहीं रख सकती है किन्तु मोह का प्रबल आवेग आँसुओं के सहारे फूट पड़ा। हीरालाल को उन्होंने बहुत समझाया कि **भाई! अब तुमने सप्तमप्रतिमा तो ले ही ली है, घर में रहकर अभ्यास करो। मैं तुम्हारी किसी भी चर्या में बाधक नहीं बनूँगा। हीरा! तुम मुझे अकेला छोड़कर मत जाओ।**

भाभी बार-बार देवर के चरणों का स्पर्श करती हुई विलाप करने लगी। वह बोली - **भैया! मुझ अभागिन के भाग्य से सास-ससुर की सेवा का सुख विधाता ने छीन लिया, अब आपके जाने से तो हम बिल्कुल असहाय हो रहे हैं। मैं आपकी कुछ सेवा करके अपने को भाग्यशाली समझूँगी।**

वैरागी के विरक्त मन को संसार की कोई भी रागिनी लुभा नहीं सकती है। उसी प्रकार हीरालाल पत्थर के समान कठोर बने रहे, उन्होंने समझाते हुए भाई-भाभी को कहा–

भैया! आप और भाभी तो मेरे माता-पिता के समान हैं। आप मुझे मत रोकें। देखो! इस असार संसार में हम लोगों ने कितने भवों को धारण कर दुख उठाए हैं। आर्तरौद्र ध्यानों को करके सदा अपने संसार को बढ़ाया ही है। ओह! न जाने किस पुण्योदय से यह मनुष्य पर्याय प्राप्त करके त्याग के भाव बने हैं जो संसार की स्थिति का ह्रास करने वाले हैं। हे तात! अब मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान करें, मेरा एक-एक पल आत्मचिंतन के लिए इंतजार कर रहा है।

पत्थर की मूर्ति की भाँति जड़वत् खड़े-खड़े भाई-भाभी हीरालाल को आत्मपथ की ओर जाते देखते रहे और मौनपूर्वक लघु भ्राता के निराबाध जीवन के लिए आशीर्वाद प्रदान करते रहे।

सबके मोह को त्यागकर हीरालाल जी अब पूर्ण निश्चिंत होकर खुशालचंद को साथ लेकर वापस आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के पास पहुँच गए। उस समय आचार्यश्री कुम्भोज नगर में विराजमान थे। गुरुचरणों में पहुँचकर हीरालाल प्रसन्नता के अथाह सागर में गोते लगाने लगे। उनको नमन कर पुनः दीक्षा के लिए याचना की।

आचार्यश्री ने परीक्षा के तौर पर उन ब्रह्मचारियों को कहा–

हे भव्ययुगल! जैन दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व खूब विचार मंथन कर लो। जिसे लेना ही नहीं वरन् एक सबल योद्धा की भाँति पालन करना अति आवश्यक है क्योंकि तलवार की धार के समान यह जैनी दीक्षा लाखों कष्ट-उपसर्गों के आने पर भी छोड़ी नहीं जाती। सर्दी-गर्मी, नग्नता, केशलोंच, एक बार भोजन आदि समस्त परीषह समतापूर्वक सहन करने वाला ही अपने आत्मतत्त्व को सिद्ध कर सकता है।

यद्यपि आचार्यदेव की दूरदृष्टि उनके अन्तस्तल को पहचान चुकी थी किन्तु खूब ठोक-बजाकर एक बार दोनों की दृढ़ता तो देखनी ही थी इसीलिए उन्होंने पुनः प्रश्न किया–

शिष्यों! यदि तुम वास्तविक रूप में संसार से विरक्त होकर मेरे पास आए हो एवं इन कष्टों को सहन करने की पूर्ण क्षमता रखते हो तो मुझे दीक्षा देने में कोई एतराज नहीं है।

निराश मन में आशा की किरणें फूट पड़ीं, रश्मियाँ बिखरने लगीं और प्रकाश चारों ओर फैल गया। हृदय में ज्ञानसूर्य

उदित हो गया। सच्चे हृदय से दोनों ने स्वयं को गुरुचरणों में समर्पित कर दिया और कहने लगे–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

हे भगवन् ! आप सबके निष्कारण बंधु हैं, जैसे भी चाहें हम लोगों का कल्याण करें। हम तो मात्र आपकी शरण में आए हुए अबोध शरणागत हैं।

आचार्यश्री ने उभय ब्रह्मचारी को अपना शिष्य बना लिया एवं दीक्षा के लिए तत्पर उन दोनों को धार्मिक अध्ययन कराना प्रारम्भ कर दिया। श्रावक की चर्या, उनके कर्तव्य आदि बतलाते हुए ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप बताया।

ऊँचे महल की ऊँचाई तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों पर क्रम-क्रम से चढ़ना पड़ता है तभी मंजिल प्राप्त हो सकती है उसी प्रकार मोक्ष महल तीनलोक से भी ऊँचा है उसे प्राप्त करने के लिए क्रम-क्रम से श्रावक, क्षुल्लक, ऐलक, मुनि आदिरूपी सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है तभी वह मंजिल प्राप्त हो सकती है।

इसी क्रम के अनुसार आचार्यदेव ने ब्रह्मचारीयुगल को सर्वप्रथम श्रावकोत्तम क्षुल्लक दीक्षा देने का निर्णय किया और शुभमुहूर्त निकाला वि. सं. 1980, सन् 1923, फाल्गुन शुक्ला सप्तमी का पवित्र दिवस।

हीरालाल यद्यपि मुनिदीक्षा को ही सर्वप्रथम धारण करना चाहते थे किन्तु आचार्यश्री की आज्ञानुसार शारीरिक परीक्षण हेतु क्षुल्लक दीक्षा में ही सन्तोष प्राप्त किया।

दो नवयुवक ब्रह्मचारियों की दीक्षा का समाचार सुनकर सारी जनता उमड़ पड़ी। अश्रुपूरित नयनों से लोग इनके वैराग्य की प्रशंसा कर रहे थे और जय-जयकारों के अविरल स्वर से अपने पापों का क्षालन कर रहे थे।

आचार्यश्री अपने नवशिष्यों के मस्तक पर दीक्षा के संस्कार करने में मग्न थे। संस्कारों के साथ-साथ पारम्परिक और शास्त्रिक नियम भी नवदीक्षित शिष्यों को ग्रहण कराए।

दोनों ने विशाल जनसमूह के मध्य खड़े होकर आचार्यश्री के द्वारा प्रदत्त समस्त नियमों को सविनय स्वीकार किया एवं जीवन भर गुरु के अनुशासन में रहने का संकल्प लिया। तभी गुरुदेव ने सभा केमध्य **ब्र. हीरालाल को क्षुल्लक श्री वीरसागर और ब्र. खुशालचंद को क्षुल्लक चंद्रसागर** नाम से सम्बोधित किया, जिसका सभी ने जय-जयकारों के साथ स्वागत किय।

मस्तक पर प्रथम संस्कारों के कारण क्षुल्लक वीरसागर बड़े और चंद्रसागर छोटे क्षुल्लक जी बन गए।

मात्र चादर और लंगोटी को धारण करके दोनों शिष्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के दाएँ-बाएँ हाथ बन गए थे। गुरु के साथ ये भी पैदल ही विहार करने लगे।

कुछ ही दिनों में वि.सं. 1981, सन् 1924 में संघ समडोली ग्राम में पहुँचा और वहीं वर्षायोग स्थापना हुई। सतत ज्ञानाराधना एवं अपनी चर्या में सावधान क्षुल्लक वीरसागर को अभी पूर्ण संतुष्टि नहीं थी, वे तो दिगम्बरी दीक्षा धारण करके कठोर तपश्चरण करना चाहते थे।

गुरु आज्ञा में निरन्तर प्रयत्नशील शिष्य को एक न एक दिन गुरु का अनुग्रह अवश्य प्राप्त होता है।

एक दिवस क्षुल्लक वीरसागर ने आचार्यश्री के पास जाकर निवेदन किया–

गुरुदेव! मैं मुनिव्रत की दीक्षा लेना चाहता हूँ । आप विश्वास रखें, मैं आपके निर्देशानुसार प्रत्येक चर्या का निर्दोष रीति से पालन करूँगा।

शिष्य की तीव्र अभिलाषा एवं पूर्ण योग्यता देखकर आचार्यश्री ने समडोली में ही इन्हें मुनि दीक्षा प्रदान की। अब तो वीरसागर जी क्षुल्लक से मुनि वीरसागर बन गए और मानो आज तो त्रैलोक्यसम्पदा ही प्राप्त हो गई हो।ऐसी असीमित प्रसन्नता वीरसागर जी ने अपने जीवन में प्रथम बार प्राप्त की थी।

इसीलिए आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के प्रथम शिष्य होने का परम सौभाग्य मुनि वीरसागर जी को ही प्राप्त हुआ।

मुनि दीक्षा के पश्चात् आपने आचार्य संघ के साथ दक्षिण से उत्तर तक बहुत सी तीर्थवंदनाएँ करते हुए पदविहार

किया। गुरुदेव के चरण सानिध्य में अनमोल शिक्षाओं को जीवन में गाँठ बाँधकर आपने रखने का निर्णय किया था इसीलिए अन्त तक गुरुभक्ति का प्रवाह हृदय में प्रवाहित रहा।

आचार्यश्री के साथ आपने 12 चातुर्मास किए। उन गाँवों के नाम–

श्रवणबेलगोल, कुम्भोज, समडोली, बड़ी नांदनी, कटनी, मथुरा, ललितपुर, जयपुर, ब्यावर, प्रतापगढ़, उदयपुर तथा देहली।

उस समय तक आचार्यश्री के 12 शिष्य बन चुके थे–

मुनि वीरसागरजी, चन्द्रसागर, नेमिसागर, कुन्थुसागर, सुधर्मसागर, पायसागर, नमिसागर, श्रुतसागर, आदिसागर, अजितसागर, विमलसागर, पार्श्वकीर्ति ।

एक बार आचार्यश्री ने सभी शिष्यों को निकट बुलाकर धर्मप्रचारार्थ अलग-अलग विहार करने का आदेश दिया और संघ को 2-3 भागों में विभक्त कर दिया। यद्यपि सभी शिष्य बहुत दुःखी हुए क्योंकि वे पूज्यश्री की छत्रछाया से वंचित नहीं होना चाहते थे किन्तु -

सिंह लगन सत्पुरुष वचन, कदलीफल इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।।

इसी सूक्ति के अनुसार आचार्य महाराज एक बार आज्ञा के पश्चात् कभी उसमें परिवर्तन नहीं करते थे।

अन्त में गुरुवर्य का आशीर्वाद प्राप्तकर सभी ने यत्र-तत्र विहार किया एवं आचार्यश्री की समस्त शिक्षाओं के माध्यम से धर्मप्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। प्रमुख शिष्य मुनि वीरसागर जी ने अपने साथ में मुनि श्री आदिसागर और अजितसागर महाराज को लेकर विहार किया।

वि. सं. 1992, सन् 1935 में गुरुवियोग के दुःख को सहन करते हुए मुनि श्री वीरसागर जी के संघ का प्रथम चातुर्मास गुजरात के ईडर शहर में हुआ, जहाँ अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। इस शताब्दी में लुप्त साधु परम्परा को जीवन्तरूप प्रदान करने वाले आचार्यश्री को सभी नर-नारियों ने एक नरपुंगव के रूप में देवता मानकर मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

समस्त शिष्यों के विहार करने के पश्चात् आचार्यश्री के पास मात्र एक मुनि नेमिसागर जी आग्रहपूर्वक रह गए थे जिन्हें अहर्निश गुरुचरणों का सानिध्य प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आत्मकल्याण के साथ-साथ परकल्याण की भावना में तत्पर वीरसागर महाराज ने गाँव-गाँव में विहार करते हुए अनेक शिष्यों को क्षुल्लक, ऐलक, मुनि बनाया तथा अनेकों महिलाओं को आर्यिका, क्षुल्लिका के व्रत प्रदान कर मोक्षमार्ग में लगाया।

वि. सं. 1965 में इन्दौर चातुर्मास में आपने अपने गृहस्थावस्था के बड़े भाई गुलाबचंद को सप्तमप्रतिमा के व्रत दिए थे, जो आगे जाकर दसवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक प्रसिद्ध हुए हैं।

वि. सं. 2000 में आप खातेगांव चातुर्मास करके सिद्धवरकूट क्षेत्र पधारे। दो चक्री दश कामकुमारों की निर्वाणभूमि के पवित्र स्थल पर औरंगाबाद के अन्तर्गत अड़गाँव निवासी खंडेलवाल जाति में जन्म लेने वाले रॉवका गोत्रीय श्रावक हीरालाल को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की और उनका शिवसागर नाम रखा।

शिष्यपरम्परा की शृँखला में वीरसागर जी के मुनियों में प्रथम शिष्य शिवसागर ही बने, जो भविष्य में गुरु के पट्टाचार्य पद को सुशोभित कर संघ संचालन का श्रेय प्राप्त कर चुके हैं।

बीस वर्षों के लम्बे अन्तराल के पश्चात् सन् 1955 में कुंथलगिरि क्षेत्र पर आचार्यश्री शांतिसागर महाराज ने चातुर्मास किया था। इधर वीरसागर महाराज अपने चतुर्विध संघ सहित जयपर खानिया में चातुर्मास कर रहे थे। हजारों मील की दूरी भी गुरु-शिष्य के परिणामों का मिलन करा रही थी।

आचार्यश्री ने अपने जीवन का अंतिम लक्ष्य यम सल्लेखना ग्रहण कर ली थी। इस समाचार से उनके समस्त शिष्यों एवं सम्पूर्ण जैनसमाज के ऊपर एक वज्रप्रहार सा प्रतीत होने लगा था। कुंथलगिरि में प्रतिदिन हजारों व्यक्ति इस महान

आत्मा के दर्शन हेतु आ-जा रहे थे।

सल्लेखना की पूर्व बेला में ही आचार्यश्री ने अपना आचार्यपद त्याग कर दिया और तत्कालीन संघपति श्रावक श्री गेंदनमल जी जौहरी, बम्बई वालों से एक पत्र लिखवाया। अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर महाराज को सर्वथा आचार्यपद के योग्य समझकर एक आदेशपत्र जयपुर समाज के नाम लिखाकर भेजा।

आचार्यश्री शांतिसागर महाराज की समाधि के पश्चात् जयपुर (खानिया) में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में श्री वीरसागर जी महाराज ने अपने गुरुवियोग से व्यथित हृदय के उद्गार श्रद्धांजलि के माध्यम से व्यक्त किये थे। वे श्रद्धांजलि वचन यहाँ प्रस्तुत हैं–

गुरुचरणों की देन

पूज्यपाद गुरुदेव श्री 108 आचार्यवर्य शांतिसागर जी महाराज को जिन्होंने जीवनकाल में परखा और अपनाया, उन्होंने मानव जीवन को सफल कर लिया है। मेरे द्वारा गुरुदेव का शिष्यत्व स्वीकार करने में वैराग्य के अतिरिक्त उनका परमोच्च और महानतम व्यक्तित्व भी कारण था। मैंने गुरुदेव को बहुत ही निकट से देखा, उनके बराबर अन्य महापुरुष अपनी आयु में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। मुझ पर यह सारी देन गुरुदेव के चरणों की है।

मुझे सबसे बड़ी व्यथा यह है कि गुरुदेव की सल्लेखना एवं अन्त बेला में मैं निकट सम्पर्क में न रह सका और न दर्शन प्राप्त कर सका।

मैंने हजारों की संख्या में एकत्रित जनता की प्रार्थना पर भी जिस आचार्यपद को स्वीकार नहीं किया, उसे इस 81 वर्ष की अवस्था में गुरुदेव का प्रसाद समझकर ही अनिच्छा होते हुए भी स्वीकार करना पड़ा। गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन कैसे करता। इस स्वेच्छाचारी युग में मुझ जैसे अपुण्यशाली से इस पद का निर्वाह कैसे होगा, इसकी मुझे चिन्ता है। मैं चाहता हूँ कि समस्त धार्मिक विवेकी प्राणी गुरुदेव के पदानुसारी बनकर इस परम दुर्लभ मानव जीवन को सफल बनाएं। परमनिःश्रेयस गुरुदेव के प्रति मेरी मनसा-वाचा-कर्मणा श्रद्धांजलि है।

आचार्यपद प्रदान का समारोह दिवस भाद्रपद कृष्णा सप्तमी, गुरुवार निश्चित किया गया था। विशाल प्रांगण में सहस्रों नर-नारियों के बीच श्री वीरसागर मुनिराज को गुरुवर द्वारा दिया गया आचार्यपद प्रदान किया गया। उस समय पण्डित इंद्रलाल जी शास्त्री ने गुरुदेव द्वारा भिजवाए गए आचार्यपद प्रदान पत्र को सभा में पढ़कर सुनाया, जो कि निम्न प्रकार है–

कुंथलगिरि, ता.-24.8.1955

स्वस्ति श्री चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की आज्ञानुसार यह आचार्यपद प्रदान पत्र लिखा जाता है–

हमने प्रथम भाद्रपद कृष्णा 11, रविवार, ता. 24.8.1955 से सल्लेखना व्रत लिया है अतः दिगम्बर जैनधर्म और श्री कुन्दकुन्दाचार्य परम्परागत दिगम्बर जैन आम्नाय के निर्दोष एवं अखण्डरीत्या संरक्षण एवं संवर्धन के लिए हम आचार्यपद अपने प्रथम निर्ग्रन्थ शिष्य श्री वीरसागर जी मुनिराज को आशीर्वादपूर्वक आज प्रथम भाद्रपद शुक्ला सप्तमी, वि. सं. 2012, बुधवार के प्रभात के समय त्रियोगशुद्धिपूर्वक संतोष से प्रदान करते हैं।

आचार्य महाराज ने श्री पूज्य वीरसागर जी महाराज के लिए इस प्रकार आदेश दिया है।

इस पद को ग्रहण करके तुमको दिगम्बर जैनधर्म तथा चतुर्विध संघ का आगमानुसार संरक्षण तथा संवर्धन करना चाहिए, ऐसी आचार्य महाराज की आज्ञा है।

आचार्य महाराज ने आपको शुभाशीर्वाद कहा है।

इति वर्धताम् जिनशासनम्

लिखी - गेंदनमल, बम्बई - त्रिबार नमोस्तु।

लिखी - चंदूलाल ज्योतिचंद, बारामती- त्रिबार नमोस्तु।

उपर्युक्त आचार्यपद प्रदान पत्र पढ़ने के बाद श्री शिवसागर जी मुनिराज ने उठकर पूज्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा भेजे गए पिच्छी-कमण्डलु भी श्री वीरसागर जी मुनिराज के करकमलों में प्रदान किए। सर्वत्र सभा में आचार्य श्री वीरसागर महाराज की जय-जयकार गूँज उठी।

इसके पूर्व श्री वीरसागर जी महाराज ने कभी भी अपने को **आचार्य** शब्द से सम्बोधित नहीं करने दिया था, यह उनकी पदनिर्लोभता का ही प्रतीक था।

आचार्यश्री के जीवन की विशेषताएँ–

पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं इसी सूक्ति के अनुसार आचार्यश्री का प्रारम्भिक जीवन ही उनकी महानता का दिग्दर्शन करा रहा था पुनः पारसमणि के स्पर्श से जैसे लोहा भी सोना बन जाता है उसी प्रकार आपने चारित्रचक्रवर्तीरूपी पारस के चरणों का जब स्पर्श कर लिया था तो जीवन कुन्दन ही नहीं बना प्रत्युत् गुरु के समस्त गुणों को भी अपनाकर मानो सोने में सुगंधि ही डाल दी थी। यही कारण रहा कि आपके जीवन में पग-पग पर विशेषताएँ चरण चूमने लगीं।

वीरसागर नाम क्यों पड़ा?

व्याकरणशास्त्र के अनुसार वि-विशेषेण, ई-लक्ष्मी, रा-राति ददाति असौ वीरः। जो अपूर्व लक्ष्मी को देता है उसे वीर कहते हैं किन्तु ये वीरसागर तो स्वयं नग्न थे तो दूसरे को लक्ष्मी कहाँ से देते?

नहीं, नहीं, यह संसार की क्षणिक, विनाशीक लक्ष्मी नहीं वरन् गुरुदेव तो शिष्यों को रत्नत्रय की शाश्वत, अविनश्वर, अपूर्व लक्ष्मी प्रदान करते थे तथा जिनकी आत्मा रणक्षेत्र के बहादुर सैनिकों की भांति कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के दृढ़संकल्पपूर्वक दीक्षा के मैदान में प्रवृत्त हुई थी, वे तो काम और नाम दोनों से ही वीर नाम को सार्थक कर रहे थे।

वीर के साथ सागर शब्द भी जुड़ा है अतः आप सागर के समान गम्भीर, स्याद्वादवचनरूपी तरंगों से व्याप्त एवं मूलगुण एवं उत्तरगुणरूपी रत्नों से युक्त और अगाध ज्ञान के धारी होने से वीरसागर नाम से जाने जाते थे किन्तु क्या सागर जल के समान आपके वचनों में खारापन था?

ऐसा होता, तो सभी उन वचनों को सुनकर भाग जाते क्योंकि खारा जल कोई पीना नहीं चाहता। सागर तो मानों इन श्रीगुरु के चरणों में अपनी हार मानकर मस्तक झुकाकर कह रहा था–

मैं तो नकली सागर हूँ किन्तु असली सागर तो आप ही हैं क्योंकि आप संसार सागर से लोगों को पार लगाकर मोक्ष पहुँचाते हैं किन्तु मैं तो मात्र खड़ा हिलोरे ही भर रहा हूँ।

वह तो बार-बार अपनी बदनसीबी पर आँसू बहाते हुए कहता है–

भगवन्! सैकड़ों, हजारों टन मिश्री मेरे पेट में डाल दी जावे तो भी मेरा दुःस्वादु जल सुस्वादु अर्थात् मीठा नहीं बन पाता किन्तु आपके वचन तो स्वयमेव मिश्रीरूप ही हैं जो सारे संसार को मिष्टता प्रदान करते हैं अतः आप ही सच्चे सागर हैं, मैं तो नामधारी सागर ही रह गया।

ऐसे सागर की सार्थकता को पहचानने वाले वीरसागर महाराज थे। जिसने एक ही बार आपके धर्मामृत का पान किया हो तो उसकी बार-बार पीने की इच्छा होती थी। आपकी सहनशीलता अत्यन्त आश्चर्यकारी थी।

एक बार नागौर चातुर्मास में आपके पीठ में एक भयंकर फोड़ा हुआ जिसमें तीव्र वेदना होती थी, भयंकर ज्वर आता था परन्तु आपके मुख से कभी दुःखपूर्ण शब्द सुनने को नहीं मिला बल्कि फोड़ा **पू**रा पक जाने पर जब डॉक्टर को उसके आप्रेशन को बुलाया गया तब डॉक्टर तो भयभीत सा पीछे खड़ा था और महाराजश्री अपनी दैनिक क्रियाओं में संलग्न थे।

उस समय एक श्रावक ने महाराज का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा–**महाराज! डॉक्टर आ गए हैं, आपके फोड़े का आप्रेशन होगा।**

आचार्यश्री ने एक नजर से डॉक्टर को देखा और पूछा–

भाई! तुम मुझे यह बता दो कि इसके आप्रेशन में कितना समय लगेगा? डॉक्टर बोला–**गुरुदेव! आपके इतने बड़े फोड़े का आप्रेशन बिना बेहोशी के हो पाना असम्भव है, आप इस असह्य वेदना को सहन नहीं कर सकते।**

महाराज बोले–**भैया! जब हम अनादिकाल से जन्म-मरण के घोर कष्ट सहन करते आ रहे हैं तो यह कष्ट कौन सा असह्य है? तुम अपना काम शुरू करो, मुझे समय बता दो।**

डॉक्टर पूज्यश्री की दृढ़ता को भांप चुका था अतः काँपते हाथों से उसने औजार निकाले और मुनिश्री को कह दिया कि 1 घण्टा तो साधारण सी बात है। वह सोच रहा था कि मेरे तीखे पैने औजार इस भयंकर दर्दनाक फोड़े पर लगते ही ये बाबा तो चीत्कार कर उठेंगे किन्तु यह क्या! डॉक्टर 1 घण्टे तक उस पीठ पर अपना कार्य करते रहे, सारा कार्य सम्पन्न हो गया। वह तपस्वी अपने चिन्तन में मग्न। कुछ क्षण डॉक्टर उस आत्मसाधक को अपलक निहारता रहा पुनः ध्यान भंग किया–

मुनिवर! मैंने ऑप्रेशन कर दिया है। आचार्यश्री के चरणों में वह नतमस्तक हो गया।

हमारे पाठक बन्धुओं को भी आश्चर्य हो रहा होगा कि ऐसी कौन सी शक्ति आचार्यश्री के अन्दर समाविष्ट हो गई थी? आचार्यश्री ने शिष्यों के प्रश्न पर यही बताया कि **मैं अपने चित्त को गोम्मटसार कर्मकाण्ड में वर्णित कर्मप्रकृतियों के चिन्तन में लगाकर सोच रहा था कि यह जीव संसार में किस प्रकार से कौन-कौन से कर्मों का बंध करता है? किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय, अनुदय और उदयव्युच्छित्ति है? इस गणितीय विज्ञान में दर्द का अहसास नहीं हुआ।**

धन्य हैं ऐसे धीरवीर महामना योगिराज! वास्तव में ऐसे ही योगी के प्रति पं. दौलतराम जी ने ये शब्द लिखे हैं– **तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते।**

आपकी गुरुभक्ति विशिष्ट थी। प्रत्येक प्रतिक्रमण के दिन आप अपने गुरु का स्मरण अवश्य करते और शिष्यों से कहते थे कि **तुम लोग तो प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाते हो परन्तु मेरे गुरु मेरे समीप नहीं हैं मैं अपनी शुद्धि कैसे करूँ?**

इसी प्रकार से आचार्यश्री की प्रमुख शिष्याओं में से पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी कई बार अपने गुरुदेव के संस्मरण सुनाते हुए कहा करती हैं कि–

आचार्यश्री प्रायः सायंकाल के समय समस्त शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहते थे कि **देखो! तुम शिष्यगण मेरे अनुशासन में रहकर एकता के सूत्र में बंधे हो इसीलिए मेरे आचार्यपद की गरिमा है क्योंकि गुरु से शिष्यों की और शिष्यों से गुरु की शोभा रहती है।** उनकी शिक्षाओं में प्रमुख शिक्षा थी–

जीवन में सदैव सुई का काम करो, कैंची का नहीं अर्थात् समाज एवं परिवार में रहकर संगठन के कार्य करो, विघटन के नहीं क्योंकि कैंची कपड़े को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देती है लेकिन एक छोटी सी सुई उन टुकड़ों को भी सिलकर एक कर देती है। उसी प्रकार से कभी ऐसे कार्य मत करो जिससे संघ के टुकड़े हों, सब लोग सहनशील बनकर संगठन के धागे से बंधे रहो। यही कारण था कि आचार्यश्री के जीवनकाल तक कोई भी शिष्य उन्हें छोड़कर कभी संघ से अलग नहीं हुआ।

सम्यक्त्व की दृढ़ता हेतु वे कहा करते थे–

तृण मत बनो, पत्थर बनो। पाश्चात्य संस्कृतिरूपी हवा के झकोरे में जो तृणवत् हल्के हैं, अस्थिर बुद्धि के हैं, वे बह जाते हैं किन्तु जो पत्थर के समान अचल हैं, जिनवाणी के दृढ़ श्रद्धालु हैं, वे अपने स्थान पर एवं सम्यक्त्व में अचल रहते हैं। वे गुरुदेव सम्यक्त्व में सदैव स्वयं भी अचल रहे हैं और अपने शिष्यों को भी आगममार्ग में अचल रखा है।

कभी-कभी महाराज पुत्रवत् अपने शिष्यों के मुँह से अमुक रोगों की चर्चा सुनकर हँसकर कहते कि–

मुझे तो मात्र दो रोग हैं–एक तो भूख लगती है, दूसरे नींद आती है अर्थात् जिनके ये दो रोग समाप्त हो जावेंगे,

वे संसारी ही नहीं रहेंगे बल्कि मुक्त कहलाएँगे अतः इन्हीं दो रोगों के नष्ट करने का उपाय करना चाहिए।

शिष्य परिकर के मनोरंजन हेतु श्री वीरसागर महाराज सदैव कुछ न कुछ घूँटी पिलाने का प्रयास करते हुए कहते–

अपने दीक्षा दिवस को कभी मत भूलो अर्थात् दीक्षा के समय परिणामों में विशेष निर्मलता रहती है इसीलिए उस दिवस के उज्ज्वल भावों को हमेशा याद रखने वाला साधु कभी भी अपने पद से च्युत नहीं हो सकता है और उत्तरोत्तर चारित्र की वृद्धि ही होती है।

ऐसे अनेकों सूत्ररूप वाक्य हैं जिन्हें आचार्यश्री अपने जीवनकाल में प्रयोग करते थे।

वे धवला की भिन्न-भिन्न पुस्तकों का स्वाध्याय दिन भर किया करते थे। एक बार उन्होंने कहा कि **इन ग्रन्थों के बहुत से विषयों को मैं समझ नहीं पाता हूँ फिर भी धवला की प्रथम पुस्तक में यह बात लिखी है कि स्वाध्याय के समय असंख्यातगुणितरूप से कर्मों की निर्जरा होती है इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैं सतत इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करता रहता हूँ।**

शुद्धोपयोगरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित नहीं रह सकने वाले साधुओं के लिए श्रीकुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार में कहा है कि–

दंसणणाणुवदेसो, सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं, जिणिंद पूजोवदेसो य ।। 248।।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का उपदेश, शिष्यों का ग्रहण तथा उनका पोषण और जिनेन्द्रदेव की पूजा का उपदेश वास्तव में सरागियों की (आचार्यों की) चर्या है। आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के अन्दर आचार्य के समस्त गुण विद्यमान थे। आपके शिष्यों की प्रत्यक्षदर्शी एक घटना है–

एक बार वीरसागर महाराज का संघ सम्मेदशिखर की यात्रा करने जा रहा था। भागलपुर के रास्ते में एक जंगल में जा रहे थे, शाम हो जाने पर संघ आचार्यश्री की आज्ञानुसार एक पाठशाला में ठहर गया। भयानक जंगल था, वहाँ से गाँव दो मील दूर था। गाँव के लोग कहते थे कि यहाँ चोरों का भय है परन्तु दिगम्बर साधुओं को किस बात का भय? संघ के सभी लोग वहीं ठहर गए।

रात्रि में दस बजे एक सिपाही वेषधारी मानव आया। उसके हाथ में डंडा था अतः सभी ने सोचा कि पुलिस का कोई आदमी होगा। सभी लोग सो गए, प्रातः जब चार बजे सब लोग उठे, तब तक वह बैठा था। संघ में एक ब्र. चांदमल जी थे, उन्होंने कहा कि प्रातःकाल इसको कुछ पुरस्कार देंगे। सामायिक के बाद देखा तो वहाँ कोई नहीं था। आसपास में उसे खोजा गया लेकिन कहीं पता नहीं लगा। अनुमानतः वह वास्तविक मानव नहीं था, महाराज के तपप्रभाव से संघ की रक्षा करने के लिए कोई मानव वेषधारी देव आया था।

आचार्यश्री के समीप आते ही प्रत्येक प्राणी एक अलौकिक शाँति की अनुभूति करता था। पूज्य अचार्यश्री की मधुरवाणी, स्पष्ट भाषा, तात्त्विक विवेचन गहन तो थे ही, पर वे उनके लिए आजकल के तथाकथित तत्त्ववेत्ताओं के समान वाणीविलास की मात्र चर्चा नहीं थी। वे जो कुछ कहते थे, उसे पहले अपने जीवन में उतारते थे। भगवान महावीर के पथ पर चलने वाले वे नरसिंह थे। उन्होंने आज के इस दुःषमकाल में भी शरीर और आत्मा के भेदविज्ञान को अपनी कठोर साधना द्वारा साक्षात् करके दिखाया था। अनेकों बार कठिन परीषह आने पर भी वे हिमालय की तरह अडिग थे।

श्री वीरसागर महाराज की असीम शांतमुद्रा से न केवल मनुष्य बल्कि पशु भी अपनी क्रूरता को छोड़कर शाँतचित्त हो जाते थे।

सन् 1956 में वैशाख कृष्णा दूज के दिन माधोराजपुरा (राज.) में आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज एक विशाल पाण्डाल में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी को आर्यिका दीक्षा प्रदान करने के पश्चात् सिंहासन पर विराजमान होकर उपदेश दे रहे थे, उसी समय एक बहुत बड़ा साँड भरी सभा में घुस आया। उसे देखकर लोगों में खलबली मच गई, सब यत्र-

तत्र भागने लगे। साँड विशाल भीड़ को चीरता हुआ आचार्यश्री की ओर वेग से बढ़ता जा रहा था। अब तो लोग और भी घबराए और अनिष्ट की आशंका से काँप उठे लेकिन दूसरे ही क्षण मनुष्यों को महान आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि आचार्यश्री की तरफ वेग से बढ़ने वाला साँड दुष्ट नहीं, शिष्ट है। सांड आगे बढ़ता है और आचार्यश्री जिस तख्ते पर विराजमान थे, उस पर जाकर अपना सिर टेककर पाँच मिनट तक उसी अवस्था में खड़ा रहता है क्योंकि उस समय वृषभ के मन में आचार्यश्री के चरण-वंदन की महान भावना थी। आचार्यश्री ने उसे आशीर्वाद दिया और जनता ने उसे भक्ति का प्रसाद सुस्वादु मिष्टान्न दिया। यह दृश्य देखकर जैनाजैन जनता बहुत प्रभावित हुई। यह आचार्यश्री की महान वीतरागता का स्पष्ट प्रभाव था जिनके चरणों में तिर्यंच भी आकर सहर्ष नतमस्तक होकर अपने को धन्य समझते थे।

गुरु-शिष्य का रोमांचक मिलन–

वि. सं. 1996 में इन्दौर के चातुर्मास के अनन्तर श्री वीरसागर महाराज ने अपने संघ सहित सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी की ओर विहार किया। मांगीतुंगी में उस समय कन्नड़ निवासी सेठ गुलाबचंद जी पहाड़े एक बिम्ब प्रतिष्ठा करवा रहे थे। इसी शुभ अवसर पर चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज भी यहाँ पधारे और उनके शिष्य पूज्य वीरसागर महाराज भी संघ सहित पधारे। गुरु के दर्शन प्राप्तकर वीरसागर जी के हर्षातिरेक में अश्रु झरने लगे, यह गुरु-शिष्य के संगम का अपूर्व दृश्य था।

गुरुचरणों की सेवा का पुनः सौभाग्य प्राप्तकर वीरसागर महाराज ने इस अमूल्य समय का पूर्ण सदुपयोग किया। 4 वर्षों में ही अपने शिष्य के संघवृद्धि, अनुशासन आदि गुणों को देखकर आचार्यश्री को बड़ी प्रसन्नता हुई।

चंद दिवसों का वह मिलन गुरु-शिष्य के मन में एक अमिट छाप छोड़ गया पुनः दोनों का यत्र-तत्र विहार हो गया।

वि. सं. 1997 का चातुर्मास पूज्य वीरसागर महाराज ने अपनी कर्मभूमि अतिशयक्षेत्र कचनेर में किया। इस चातुर्मास में पूज्य महाराजश्री के सानिध्य में पचासों मण्डल विधान के आयोजन हुए तथा अनेकों व्रती बने। चातुर्मास समाप्ति पर वहाँ के श्रावकों ने एक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई, उस मौके पर पानी की कमी थी, मंदिर के कुँए का पानी बिल्कुल खारा था। लोग चिन्तित थे कि पानी की व्यवस्था यात्रियों के लिए किस प्रकार की जाएगी किन्तु गुरुदेव के शुभाशीर्वाद से खारा पानी एकदम मीठा हो गया। यात्रियों को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई और प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद सम्पन्न हो गया।

वि. सं. 1999 में आपका चातुर्मास कारंजा नगर में हुआ। वैसे तो यह कस्बा काफी बड़ा है तथा जैनियों के 300 घर भी हैं, विशाल तीन मंदिर तथा गाँव के बाहर विद्याध्ययनार्थ एक गुरुकुल है जिसमें विद्यार्थी पठन-पाठन करते हैं, यहाँ अध्यात्मवेत्ता बड़े-बड़े विद्वान भी रहते थे। पूज्य महाराजश्री से तरह-तरह के गूढ प्रश्न भी लोग करते थे किन्तु आचार्यश्री अपने प्रखर ज्ञान से सभी के प्रश्नों का शास्त्रोक्त रीति से उत्तर देते थे। चातुर्मास के पश्चात् विहार करके महाराज संघ सहित मुक्तागिरि आ गए, जहाँ 3 महीने संघ रुका।

मुक्तागिरि से जब संघ खातेगाँव को रवाना हुआ, तब 300 मील तक कोई श्रावकों के घर नहीं थे, श्रावकों के 6-7 चौके संघ के साथ थे।

उसी रास्ते में एक चौरपाठा नामक गाँव मिला। वहाँ मुसलमान जाति की सुलीमा नामक एक जागीरदारिणी रहती थी, जो योग्य रीति से राज्य संचालन और प्रजा का पालन करती थी, उसकी शिक्षा बी.ए. तक थी, उम्र मात्र 25 वर्ष की थी।

दुर्भाग्यवश विवाह के दूसरे वर्ष ही उसे वैधव्य का असीम दुःख सहन करना पड़ा था। गाँव के लोग एवं परिवार वालों के आग्रह पर भी उसने पुनः विवाह करने से इंकार कर दिया था।

गाँव में इस संघ के पहुँचने पर उसने बड़ी भक्ति से आकर आचार्यश्री के दर्शन किए, उनका अहिंसात्मक उपदेश सुना, जिससे प्रभावित होकर आचार्यश्री के पादमूल में हिंसा करने का, माँस खाने का एवं रात्रि में भोजन करने का

जीवनपर्यंत के लिए त्याग कर दिया। इतना ही नहीं, उसने अपने द्वारा शासित 300 गाँवों में हिंसा न करने की घोषणा करवा दी थी।

प्राणिमात्र को अभयदान देने वाले गुरुराज के चरणकमलों का ही प्रसाद इसे समझना चाहिए।

गाँव-गाँव, नगर-नगर में विहार करते हुए आचार्यश्री ने अनेकों स्थानों पर सदियों से चली आ रही हिंसक बलिपरम्परा को देखा, तब उन्होंने अनेक युक्तियों से पंच पापों के फल के दर्दनाक वर्णनपूर्वक अपने उपदेशों से बलिप्रथा बंद करवाई।

वर्तमान परम्परा के अनुसार उस समय दिगम्बर जैन साधुओं के अलग-अलग संघ नहीं थे और न उनकी कोई भिन्न-भिन्न परम्पराएँ थीं किन्तु सारे हिन्दुस्तान में आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की आदर्श परम्परा वाला आचार्य श्री वीरसागर महाराज का संघ ही कहा जाता था। सम्पूर्ण अनुशासन पट्टाधीश आचार्यश्री का ही चलता था जिसका पालन आज तक भी उस पट्ट परम्परा वाले संघ में हो रहा है। उन आगमिक परम्पराओं एवं अनुशासन से संचालित संघ का वर्तमान में परम पूज्य आचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज छठे पट्टाधीश के रूप में नेतृत्व कर रहे हैं।

आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज ने अपने चतुर्विध संघ सहित सन् 1957 का चातुर्मास जयपुर-खानिया में किया। उस चातुर्मास के मध्य आपका शारीरिक स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण होने लगा और आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन महामंत्र का स्मरण करते हुए पद्मासनपूर्वक ध्यानस्थ मुद्रा में नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। आज आचार्यश्री का भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है किन्तु उनकी अमूल्य शिक्षाएँ विद्यमान हैं। उन पर अमल करते हुए हमें अपने जीवन को समुन्नत बनाना चाहिए क्योंकि ऐसे महापुरुषों के जीवन पर ही निम्न सूक्ति साकार होती है–

मूरत से कीरत बड़ी, बिना पंख उड़ जाय।
मूरत तो जाती रही, कीरत कभी न जाय।।

इस ग्रंथ की प्रेरणास्रोत
राष्ट्रगौरव परम पूज्य गणिनीप्रमुख
श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

1. जन्म, वैराग्य और दीक्षा–22 अक्टूबर सन् 1934, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में 'मैना' का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र 18 वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् 1952 में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया।

जैनेश्वरी दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् 1956 में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके **''आर्यिका ज्ञानमती''** नाम प्राप्त किया।

2. अध्ययन और अध्यापन– ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधनारूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

3. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से–भगवान महावीर के पश्चात् 2500 वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् 1969-70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ

'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज 250 की संख्या को पार कर चुके हैं। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास चारों अनुयोगों रूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्धरहता है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

4. सिद्धांत चक्रेश्वरी—इसी प्रकार पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' के लेखन को पूर्ण किया है। 8 अक्टूबर सन् 1995 में उन्होंने इस टीका का मंगलाचरण लिखा और 4 अप्रैल 2007 को 3100 पृष्ठों में षट्खण्डागम की सोलहों पुस्तकों की टीका लिखकर पूर्ण करके एक नूतन कीर्तिमान स्थापित किया है, जिसमें से प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुस्तक हिन्दी टीका सहित प्रकाशित भी हो चुकी हैं और आगे हिन्दी अनुवाद का कार्य सतत जारी है। आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य-संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर सम्पूर्ण जैन समाज पर महान उपकार किया है। 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

5. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर—जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत्वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् 1969 में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् 1978 में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री आदि जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग 100 विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। आज तक भी यह श्रृंखला बराबर चल रही है।

6. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार—सन् 1985 में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ पुनः अनेक संगोष्ठियां सम्पन्न होती रहीं और सन् 1998 में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुंचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय

पर साहित्यिक कृतियाँ प्रस्तुत हो चुकी हैं।

7. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ—किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा 5 फरवरी 1995 को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्म साधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

8. इतिहास भी परिवर्तन के लिए बाध्य हुआ—सन् 1992 से पूज्य माताजी की दृष्टि आधुनिक शिक्षाजगत में पढ़ायी जाने वाली पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रान्त विषयवस्तु पर गयी, तो 'भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक हैं' इत्यादि भ्रांतियों को वहाँ देखकर उनका हृदय अत्यंत उद्वेलित हो उठा। फलस्वरूप प्रधानमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री, निदेशक-NCERT इत्यादि से उनकी प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा शिक्षाजगत तक यह संदेश पहुँचा और दस वर्षों के अथक प्रयास द्वारा पाठ्य पुस्तकों में संशोधन का क्रम प्रारंभ हो सका।

9. तीर्थ विकास की भावना—तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी महान संस्कृति की धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर' में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् 1993 से 1995 तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के सुफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि 'राजगृही' में 'मुनिसुव्रतनाथजिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली पावापुरी में जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की

खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली गुणावां जी में गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, श्री सम्मेदशिखर जी में भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

वर्तमान में तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की श्रृँखला में भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में 'पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' के निर्माण हेतु शिलान्यास सम्पन्न किया जा चुका है तथा शीघ्र ही निर्माणकार्य पूर्ण करके इस विस्मृत जन्मभूमि का परिचय भी विश्व को प्रदान किया जा सकेगा।

10. विश्व में अनोखी 108 फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा– विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से प्रारंभ हो चुका है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

11. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ–शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओं द्वारा वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' के निर्माण की योजना मूर्तरूप ले रही है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके विशेष निर्माण सम्पन्न किया जायेगा।

12. धर्मप्रभावना के विविध आयाम–जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में गठन किया गया। इसी संस्थान ने उपर्युक्त विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का निष्पादन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली में उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्ड रूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् 1998 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् दीक्षास्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'केवलज्ञान कल्याणक मंदिर' में स्थापित होकर युगों-युगों तक भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिलाता रहेगा। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् 2003 में 'भगवान महावीर ज्योति' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी श्रृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल जी द्वारा उद्घाटित) भी उनकी प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। आस्था टी.वी. चैनल द्वारा पूज्य माताजी के प्रभावक प्रवचन लम्बे समय से प्रसारित किये जा रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों इकाईयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित किये हुए है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य इन 51 वर्षों में पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

13. संघर्ष विजेत्री–पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना।

पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्षपरम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है। किसी भी संस्था, तीर्थ, चंदे आदि की दानराशि को अपनी संघ व्यवस्था में समाहित न करने का उनका नियम है। निरन्तर 55 वर्षों से इस नियम का पालन करते हुए अपने कर्तव्य पथ पर वे अडिग हैं। यही कारण है कि उन्हें लम्बी-लम्बी यात्राएं कराने में अपना कर्तव्यपालन करने वाले संघपति श्रावक भी अपना सौभाग्य समझते हैं।

14. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन—23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। पुनः वर्ष 2006 को ''सम्मेदशिखर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। इसके पश्चात् केवलज्ञानकल्याणक की भूमि ''अहिच्छत्र'' तीर्थ पर 7 दिसम्बर सन् 2007 से 4 जनवरी 2008 तक तिखाल वाले बाबा भगवान पार्श्वनाथ का सहस्राब्दि महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव करने की पुण्य प्रेरणा प्रदान कर तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव के त्रिवर्षीय आयोजन के समापन की घोषणा की जो उनके संघ सानिध्य में सम्पन्न हो रहा है।

भगवान नेमिनाथ की निर्वाणभूमि 'श्री गिरनार जी सिद्धक्षेत्र' की सुरक्षा हेतु भी पूज्य माताजी ने जनजागरण का शंखनाद किया है।

15. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती—वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. 2532 अर्थात् 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण करने वाली पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गई हैं। इस अवसर पर 14 से 16 अप्रैल 2006 तक **'गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'** का आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

इस महोत्सव के साथ ही दीक्षा स्वर्ण जयंती वर्ष भी धूमधाम से पूरे देश के विभिन्न दिगम्बर जैन संगठनों द्वारा मनाया गया।

16. अमृतमय हों वर्ष तुम्हारे-जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा आयु है, अर्थात् 18 वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर लिया तथा उस त्यागमयी जीवन के 55 वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये हैं।

महान चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन करते हुए भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें अमृत महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो तथा आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

जम्बूद्वीप तीर्थ दर्शन

India is the cradle of greatmen.

24 **16-17-18**

86500

The Discovery of India **107** Dilli or Delhi, not the modern city but ancient cities situated near the modern site, named Hastinapur and Indraprastha becomes the metropolis of India.

1965

105

1974

250

101

1985

1972

1974 24

1975 1990

1974

101 1979

136

1 40 40 60

101

1980

5

4 1982

1045

28 1985

28 2 1985 205

78 **122** **6**

250

35

1995

200 50

2

110 40

1948

2

200

24 16 9

1974

1975

1 1045 4 1982

2 1 1997 1998

3 1997

4 1998 2001

5 1998

6 4 2000 4 2001

7 **2000**

8 **2001**

9

13 **2001**

10

2003 2004

15

2001 **50**

14

72

0532 2567067

108

35

803111 **06112 281846**

पात्रकेसरी स्तोत्र

(श्री विद्यानंदि स्वामि-विरचित)

(पृथ्वी छंद)

जिनेन्द्र! गुण संस्तुतिस्तव मनागपि प्रस्तुता।
भवत्यखिलकर्मणां प्रहतये परं कारणं।।
इति व्यवसिता मतिर्मम ततोऽह-मत्यादरात्।
स्फुटार्थ-नयपेशलां सुगत! संविधास्ये स्तुतिम् ।।1।।

पद्यानुवाद (चौबोल छंद)

हे जिनवर! गुण संस्तव तेरा, किंचित भी गाया जाता।
अखिल कर्म के नाश हेतु है, कारण मुख्य ये विख्याता।।
इति निश्चित बुद्धी से मैं अति, आदरपूर्वक सुगत जिनेश!
प्रकट अर्थ नय से रोचक, संस्तुति रचना करता परमेश!।।1।।

मतिःश्रुत मथावधिश्च सहजं प्रमाणं हि ते।
ततः स्वय-मबोधि मोक्षपदवीं स्वयंभूर्भवान्।।
न चैतदिह दिव्यचक्षु-रधुनेक्ष्यतेऽस्मादृशां।
यथा सुकृतकर्मणां सकलराज्य-लक्ष्म्यादयः।।2।।

मति श्रुत अवधि प्रमाण ज्ञान, ये सहज जन्म से ही तुममें।
अतः स्वयं ही मोक्षमार्ग को, जाना आप स्वयंभू हैं।।
इस युग में हम जैसे मानव, नहिं त्रिज्ञान सहित दिखते।
यथा चक्रवर्त्यादिक लक्ष्मी, पुण्यवंत ही पा सकते।।2।।

व्रतेषु परिरज्यसे निरुपमे च सौख्ये स्पृहा।
बिभेष्यपि च संसृते-रसुभृतां वधं द्वेक्ष्यपि।।
कदाचि-ददयोदयो विगतचित्तको-ऽप्यंजसा।
तथापि गुरुरिष्यते त्रिभुवनैक-बंधुर्जिनः।।3।।

व्रतगुण में अनुराग आपके, निरूपम सुख में इच्छा थी।
संसृति से भय, द्वेष जीव वध,से भी तथा कदाचित भी।।
अदयोदय था नाथ! इस समय, मन से रहित आप फिर भी।
त्रिभुवनैक बान्धव जिन! तुमको, सब जनता गुरु मान रही।।3।।

तपः पर-मुपाश्रितस्य भवतोऽ-भवत्केवलं।
समस्तविषयं निरक्ष-मपुनश्च्युति स्वात्मजं।।
निरावरण-मक्रमं व्यतिकरा-दपेतात्मकं।
तदेव पुरुषार्थसार-मभिसम्मतं योगिनां।।4।।

परम ध्यान तप का आश्रय ले, केवल ज्ञान को पाया है।
समस्त विषयग्राही स्वात्मोत्पन्न अतीन्द्रिय अच्युत है।।
निरावरण अक्रम व्यतिकर, आदिक दोषों से शून्य महान्।
पुरुषार्थों में सारभूत है, वही सदा ऋषि गण को मान्य।।5।।

परस्परविरोधवद्-विविधभंगशाखाकुलम्।
पृथग्जनसुदुर्गमं तव निरर्थकं शासनम्। ।
तथापि जिन! सम्मतं सुविदुषां न चात्यद्भुतम्।
भवंति हि महात्मनां दुरुदितान्यपि ख्यातये।।5।।

अस्ति नास्ति इति मिथः विरोधी, विविध भेद शाखा संयुत।
अज्ञलोक को दुर्गम हे जिन! तव शासन है अर्थ रहित।।
फिर भी सद्विद्वज्जन सम्मत, है आश्चय हो क्या इसमें।
चूँकि महापुरुषों के दुर्वच, भी ख्याती पाते जग में।।5।।

सुरेन्द्र-परिकल्पितं बृह-दनर्घ्यसिंहासनम्।
तथातप-निवारणत्रय-मथोल्लस-च्चामरम्।।
वशं च भुवनत्रयं निरुपमा च निःसंगता।
न संगतमिदं द्वयं त्वयि तथापि संगच्छते।।6।।

सुरेन्द्र निर्मित अमूल्य सिंहासन, अनुपम तव हे जिनवर।
छत्रत्रय शोंभे शिर ऊपर, ढुलते चौंसठ सितचामर।।
तथैव त्रिभुवन वश में है तब, औ निःसंगपना निरुपम।
विरुद्ध दोनों बातें फिर भी, तुममें संगत हैं भगवन्।।6।।

त्वमिंद्रियविनिग्रह-प्रवणनिष्ठुरं भाषसे।
तपस्यपि च यातयस्य-नघदुष्करे संश्रितान्।।
अनन्य-परिदृष्टया षडसु-कायसंरक्षया।
स्वनुग्रहपरोऽ-प्यहो त्रिभुवनात्मनां नापरः।।7।

इन्द्रियनिग्रह हेतु कुशल, निष्ठुर वाणी भी तुम कहते।
आश्रित जन को पाप रहित, दुष्कर तप में प्रेरित करते।।
हरि हर अगम्य षट्कायिक, प्राणी रक्षा कर अहो जिनेश!।
स्वोपकार तत्पर फिर भी, त्रिभुवन केनाथ! आप नहिं शेष।।7।।

ददास्यनुपमं सुखं स्तुतिपरे-ष्वतुष्यन्नपि।
क्षिपस्य-कुपितोऽपि च ध्रुव-मसूयकान् दुर्गतौ।।
न चेश! परमेष्ठिता तव विरुध्यते यद्भवान्।
न कुप्यति न तुष्यति प्रकृति-माश्रितो मध्यमाम्।।8।।

स्तुति कर्ता पर तुष्ट न हो, फिर भी अनुपम सुख देते हो। निंदक पर भी क्रुद्ध न हो, निश्चित दुर्गति पहुँचाते हो।। तथापि ईश! तव परमेष्ठिपना, विरुद्ध नहीं क्यों की। मध्यम प्रकृती का आश्रय ले, क्रोध तोष नहिं करें कृती।।8।।

परिक्षपित-कर्मणस्तव न जातु रागादयो।
न चेन्द्रिय-विवृत्तयो न च मनस्कृता व्यापृतिः।।
तथापि सकलं जगद् युगपदंजसा वेत्सि च।
प्रपश्यसि च केवला-भ्युदितदिव्य-सच्चक्षुषा।।9।।

नष्ट घातिकर्मा जिन! तव राग द्वेषादिक कभी नहीं। इन्द्रिय कृत व्यापार तथा, मन की चेष्टा भी रही नहीं।। तथापि युगतप् सकल जगत, प्रत्यक्ष जानते हो भगवन्। केवल बोध सुदिव्य चक्षु से, प्रकट देखते हो प्रतिक्षण।।9।।

क्षयाच्च रतिराग-मोहभय-कारिणां कर्मणाम्।
कषायरिपु-निर्जयः सकल-तत्त्वविद्योदयः।।
अनन्य-सदृशं सुखं त्रिभुवना-धिपत्यं च ते।
सुनिश्चितमिदं विभो! सुमुनि-संप्रदायादिभिः।।10।।

राग मोह रति भयकारी, कर्मों के क्षय से जिनपुंगव। कषायरिपुजित! सकल तत्त्वविद् अनन्यसदृश सुख है तव।। तीनलोक मस्तक पर राजित, त्रिभुवन का साम्राज्य प्रभो। श्रेष्ठ मुनीगण परम्परा से, निश्चित है तव विभव विभो!।।10।।

न हींद्रियधिया विरोधि न च लिंगबुद्ध्या वचो।
न चाप्यनुमतेन ते सुनय-सप्तधा योजितम्।।
व्यपेत-परिशंकनं वितथकारणा-दर्शना-
दतोपि भगवंस्त्वमेव परमेष्ठितायाः पदम्।।11।।

इन्द्रियज्ञान अनुमान तथा, आगम प्रमाण से निर्बाधित। सुनय सप्त भंगी से योजित, वचन आपके व्यपशंकित।। असत्यकारण रागादिक जो, नहिं दिखते हैं जिन तुममें। अतः प्रभो! परमेष्ठिपने के, पद को प्राप्त आप ही हैं।।11।।

न लुब्ध इति गम्यसे सकलसंग-संन्यासतो।
न चापि तव मूढता विगतदोषवाग्यद्भवान्।।
अनेकविध-रक्षणा-दसुभृतां न च द्वेषिता।
निरायुधतयापि च व्यपगतं तथा ते भयम्।।12।।

सकलपरिग्रह त्यागी हो अतएव न लोभी हो सकते। वचनदोष से रहित आप हैं, अतः मूढ़ नहिं हो सकते।। गुप्त्यादिकविधि से जीवों की, रक्षा करते अतः न द्वेष। आयुधरहित प्राकृतिक रूप तव, अतः नहीं भय का लवलेश।।12।।

यदि त्वमपि भाषसे वितथमेवमाप्तोऽपि सन्।
परेषु जिन! का कथा प्रकृतिलुब्ध-मुग्धादिषु।।
न चाप्यकृत-कात्मिका वचनसंहति-र्दृश्यते।
पुनर्जनन-मप्यहो! नहि विरुध्यते युक्तिभिः।।13।।

यदि प्रभु आप आप्त होकर भी, असत्यभाषी हो जावें। पुनः नाथ! क्या कथा लुब्ध, मोही आदिक परकी पावें।। मीमांसकवत् अपौरुषेया वचन पद्धती नहिं दिखती। पुनर्जन्म वचनों का युक्त्या, नहिं विरुद्ध जिन! अहो कहीं।।13।।

सजन्म-मरणर्षि-गोत्र-चरणादिनाम-श्रुते-
रनेकपद-संहति-प्रतिनियामसंदर्शनात्।।
फलार्थि-पुरुषप्रवृत्ति-विनिवृत्ति-हेत्वात्मनां।
श्रुतेश्च मनुसूत्रदत्पुरुषकर्तृकैव श्रुतिः।।14।।

श्रुतकर्ता ऋषि का जन्मादिक, गोत्र आचरण सुनते हें। सुप् तिङन्त पद रचना के क्रम, नियमित देखे जाते हैं।। स्वर्गादिक फलार्थि जन की, प्रवृत्ति निवृत्ति के कारण भी। मनूसूत्रवत् वेद शास्त्र में, अतः शास्त्र पूरुष कृत ही।।14।।

स्मृतिश्च परजन्मनः स्फुट-मिहेक्ष्यते कस्यचित्।
तथाप्तवचनांतरात्-प्रसृतलोकवादादपि।।
न चाप्यसत् उद्भवो न च सतो निमूलात्क्षयः।
कथं हि परलोकिना-मसुभृता-मसत्तोह्यते।।15।।

पूर्व जन्म संस्मरण किसी के, सचमुच देखा जाता है। तथा आप्तवच से प्रसिद्ध, लोक रूढी वच से भी है।। असत वस्तु का उद्भव सत का, मूल नाश नहिं हो सकता। फिर क्या जीवों का परलोक, गमन भी असत ठहर सकता।।15।।

न चाप्यसदुदीयते न च सदेव वा व्यज्यते।
सुरांगमदवत्तथा शिखिकलापवैचित्र्यवत्।।
क्वचिन्मृतकरंधनार्थपिठरादिके नेक्ष्यते।
कथं क्षितिजलादिसंगगुण इष्यते चेतना।।16।।

महुआ प्रभृती वस्तु योग मदशक्तीवत्, नहिं असत उदय! अथवा चित्रित मोर पंखवत्, सत का व्यय भी होता नहिं।। शव में पाकपात्र में भूत, चतुष्टय चेतन जन्म नहीं। चार्वाक मत भूजलादि मिल, चेतन हो यह ठीक नहीं।।16।।

प्रशांतकरणं वपुर्विगतभूषणं चापि ते।
समस्तजनचित्तनेत्र-परमोत्सवत्वं गतं।।
विनायुधपरिग्रहाज्जिन! जितास्त्वया दुर्जयाः।
कषायरिपवोऽपरैर्न तु गृहीत-शस्त्रैरपि।।17।।

प्रशांत इन्द्रिय देह आपका, भूषण वसन रहित फिर भी।
सकल जनों के चित्त नेत्र को, परमोत्सव के लिए सही।।
आयुधबिन भी हे जिन! जीते कषाय शत्रूगण तुमने।
शस्त्र सहित हरि हर भी जिनको, नहीं जीतने में क्षम हैं।।17।।

धियां तरतमार्थवद् गतिसमन्वयान्वीक्षणाद्-।
भवेत्खपरिमाणवत्-क्वचिदिह प्रतिष्ठा परा।।
प्रहाणमपि दृश्यते क्षयवतो निमूलात्क्वचित्।
तथायमपि युज्यते ज्वलनवत्कषायक्षयः।।18।।

अधिक अधिक गति से भी नहिं, आकाश माप हो सकता ज्यों।
तर तमता को देख यहां बुद्धी की, कहीं अमितता त्यों।।
जल से अग्नि समूल नाशवत्, किसी जीव में कर्मों का।
सर्वनाश भी हो सकता है, अतः आप हैं कर्म-भिदा।।18।।

अशेषविदिहेक्ष्यते सदसदात्म-सामान्यवि-
ज्जिन! प्रकृतिमानुषोऽपि किमुताखिलज्ञानवान्।।
कदाचिदिह कस्यचित्क्वचि-दपेतरागादिता।
स्फुटं समुपलभ्यते किमुत ते व्यपेतैनसः।।19।।

अस्ति नास्ति प्रभृती वस्तूवित्, साधारण जन भी जग में।
अशेषवित् कहलाते फिर क्या, प्रभु सर्वज्ञ आप नहिं हैं?।।
कहीं कदाचित् किसी जीव में, भाव विराग झलकता है।
फिर क्या सच्ची वीतरागता, कर्म रहित प्रभु में नहिं है।।19।।

अशेषपुरुषादितत्त्व-गतदेशनाकौशलं।
त्वदन्यपुरुषांतरानुचित-माप्ततालाञ्छनम्।।
कणाद-कपिलाक्षपादमुनि-शाक्यपुत्रोक्तयः।
स्खलंति हि सुचक्षुरादि-परिनिश्चितार्थेष्वपि।।20।।

निज निज को सब आप्त मानकर, तत्त्व देशना कौशल को।
पाना चाहें नाथ! आप सम, नहिं पाते वे क्षमता को।।
कपिल कणाद अक्षपादादिक, मुनी शाक्यपुत्रादि वचन।
चक्षुज्ञान से निश्चितवस्तू, में भी होते सदा स्खलन।।।20।।

परैरपरिणामिकः पुरुष इष्यते सर्वथा।
प्रमाणविषयादित्तत्वपरिलोपनं स्यात्ततः।।
कषायविरहान्न चास्य विनिबंधनं कर्मभिः
कुतश्च परिनिर्वृतिः क्षणिकरूपतायां तथा।।21।।

वैशेषिक मत पुरुष तत्त्व को सदा अपरिणामी माने।
नित्य वस्तु नहिं प्रमाण विषयक तत्त्वलोप हो अनजाने।।
सदा नित्य में कषाय भी नहिं, कर्मबंध नहिं, मोक्ष नहीं।
द्रव्य सर्वथा क्षणिक कहो तो दोष सभी आते ये ही।।21।।

मनो विपरिणामकं यदिह संसृतिं चाश्नुते।
तदेव च विमुच्यते पुरुषकल्पना स्याद् वृथा।।
न चास्य मनसो विकार उपपद्यते सर्वथा।।
ध्रुवं तदिति हीष्यते द्वितयवादिता कोपिनी।।22।।

सांख्य कहे मन में क्रुधादि परिणाम तथा मन को संसार।
मन को ही हो मोक्ष अहो फिर पुरुष कल्पना ही बेकार।।
मन भी नित्य सर्वथा उसमें विकार नहिं है तव मत में।
नित्य अनित्य अगर मानों तो आपस में प्रतिरोध बने।।22।।

पृथक्गजनमनोनुकूल-मपरैः कृत शासनम्।
सुखेन सुखमाप्यते न तपसेत्यवश्येन्द्रियैः।।
प्रतिक्षणविभंगुरं सकलसंस्कृतं चेष्यते।
ननु स्वमतलोकलिंगपरिनिश्चयैर्व्याहतम्।।23।।

इन्द्रियलंपट अन्यजनों का शासन अज्ञों को मनहर।
सुख से ही सुख मिले न तप से इति बौद्धों के वाक्यप्रसर।।
प्रतिक्षण नश्वर सकलवस्तु यदि स्वमत घात होता निश्चित।
लोकविरोध तथा प्रमाण अनुमानादिक से भी बाधित।।23।।

न संततिरनश्वरी न हि च नश्वरी नो द्विधा।
वनादिवदभाव एव यत इष्यते तत्त्वतः।।
वृथैव कृषिदानशीलमुनिवंदनादिक्रियाः।
कथंचिदविनश्वरी यदि भवेत्प्रतिज्ञाक्षतिः।।24।।

वनादिवत् संतति बौद्धों की नहिं अविनश्वर नहिं नश्वर।
नहिं उभयात्मक वास्तव में है अभावरूपा कहें अगर।।
खेती दान शील मुनि वंदन प्रभृति क्रिया व्यर्थ जग में।
कथंचित् अविनश्वर यदि माने स्वमत घातकर जैन बने।।24।।

अनन्यपुरुषोत्तमो मनुजतामतीतोऽपि सन्।
मनुष्य इति शस्यते त्वमधुना नरैर्बालिशैः।।
क्व ते मनुजगर्भिता क्व च विरागसर्वज्ञता।
न जन्ममरणात्मता हि तव विद्यते तत्त्वतः।।25।।

अनन्यपुरुषोत्तम! मानवता से अतीत हो भी जिनदेव।
अज्ञानों से कहलाते हो "मनुष्य" इति संप्रति तुम एव।।
कहां तुम्हारी मनुज गर्भिता कहाँ विराग सर्वज्ञपना।
चूँकि देव! वास्तव में तुममें नहीं जन्म नहिं मरणपना।।25।।

स्वमातुरिह यद्यपि प्रभव इष्यते गर्भतो।
मलैरनुपसंप्लुतो वरसरोजपत्रेंऽबुवत्।।
हिताहितविवेक-शून्यहृदयो न गर्भेऽप्यभूः।
कथं तव मनुष्यमात्रसदृशत्वमाशंक्यते।।26।।

यद्यपि मातुगर्भ से भगवन्! जन्म आपका माना है।
फिर भी मल से अलिप्तगर्भ में जल से कमलवत् जाना है।।
हित अरु अहित विवेक शून्य प्रभु नहीं गर्भ में भी थे आप।
अतः कथं तव मनुजमात्र से सदृशता की शंका नाथ।।26।।

न मृत्युरपि विद्यते प्रकृति-मानुषस्येव ते।
मृतस्य परिनिवृतिर्न मरणं पुनर्जन्मवत्।।
जरा च नहि यद् वपुर्विमलकेवलोत्पत्तितः।
प्रभृत्यरुजमेकरूपमवतिष्ठते प्राङ्मृतेः।।27।।

साधारण जन इव हे भगवन्! मृत्यु आपकी नहीं कही।
मरकर परम मोक्षपुर पहुँचे, पुनर्जन्मकृत मरण नहीं।।
केवलज्ञान उदय से तन में, वृद्धावस्था रही नहीं।
सिद्धिवधू करने तक तनु तव, रोगादिक से रहित सही।।27।।

परैः कृपणदेवकैः स्वयमसत्सुखैः प्रार्थ्यते।
सुखं युवतिसेवनादिपरसन्निधिप्रत्ययम्।।
त्वया तु परमात्मना न परतो यतस्ते सुखं।
व्यपेतपरिणामकं निरुपमं ध्रुवं स्वात्मजम्।।28।।

सुखाभासरत कृपणदेव, इन्द्रियसुख को ही चाहे हैं।।
युवति भोग मिष्टान्न प्रभृति पर, वस्तू उद्भव ही जो हैं।।
किंतु आप हैं परमात्मा, नहिं पर से सुख की बात रही।
तव सुख निरुपम स्वात्मोत्पन्नं, ध्रुव शाश्वत आल्हादमयी।।28।।

पिशाचपरिवारितः पितृवने नरीनृत्यते।
क्षरद्रुधिरभीषणद्विरदकृत्तिहेलापटः।।
हरो हसति चायतं कहकहाट्टहासोल्वणं।
कथं परमदेवतेति परिपूज्यते पंडितैः।।29।।

रुधिर बिंदु से भीषण हाथी, चर्म लपेटे क्रीडामय।
श्मशान में पिशाचवेष्टित मनभर नाच करें महादेव।।
कहकहाट्टमय अट्टहास से, खूब हंसें नाचें कूदें।
"परमदेवता" महादेव इति कैसे पंडित जन पूजें।।29।।

मुखेन किल दक्षिणेन पृथुनाखिल-प्राणिनाम्।
समत्ति शवपूतिमज्जरुधिरांत्रमांसानि च।।
गणैः स्वसदृशैर्भृशं रतिमुपैति रात्रिंदिवं।
पिबत्यपि च यः सुरां स कथमाप्तताभाजनम्।।30।।

दक्षिण मुख से प्राणी के शव, रुधिर मांस मज्जाओं को।
अंत्री को भी जो नित खाता, कैसे आप्त कहें उसको?।।
अपन सदृश ही गण में जो, रात्रि दिवस प्रीती करता।
सुरापान अरु विषय भोग में, रमें देव क्या हो सकता?।।30।।

अनादिनिधनात्मकं सकलतत्त्वसंबोधनम्।
समस्तजगदाधिपत्यमथ तस्य संतृप्तता।।
तथाविगतदोषता च किल विद्यते यन्मृषा।
सुयुक्तिविरहान्न चास्ति परिशुद्धतत्त्वागमः।।31।।

ईश हमारा सकल तत्त्ववित्, अनादि अनिधन ज्ञानी हैं।
भुवनत्रय के आधिपत्य से, उसके तृप्ती मानी है।।
सभी दोष से विरहित स्वामी, कहते जो यह सब मिथ्या।
नहिं सुयुक्ति नहिं परमागम से, ऐसा ईश कहा सकता।।31।।

कमंडलुमृगाजिनाक्षवलयादिभिर्ब्रह्मणः।
शुचित्वविरहादिदोषकलुषत्वमभ्यूह्यते।।
भयं विघृणता च विष्णुहरयोः सशस्त्रत्वतः।
स्वतो न रमणीयता च परिमूढता भूषणात्।।32।।

ब्रह्मा के भी कमंडलू मृग छाला रुद्रमणी माला।
शुचिता नहीं अतः शुचिकारण विद्यमान यह दोष बड़ा।।
हरि हर में आयुध होने से, भय निर्दयता सूचक है।
भूषण अलंकार से हरि हर, स्वतः असुन्दर मूरख हैं।।32।।

स्वयं सृजति चेत्प्रजाः किमित दैत्यविध्वंसनं।
सुदुष्टजननिग्रहार्थमिति चेदसृष्टिर्वरम्।।
कृतात्मकरणीयकस्य जगतां कृतिर्निष्फला।
स्वभाव इति चेन्मृषा स हि सुदुष्ट एवाऽऽप्यते।।33।।

यदि सृष्टी को सजा स्वयं फिर, क्यों कर दैत्य विनाश किया।
दुष्ट विनिग्रह हेतु कहो दुष्टों, का क्यों कर सृजन किया।।
तथा सदा कृतकृत्य देव के, जग की रचना निष्फल है।
यदी कहो यह स्वभाव उसका, यही दोष तो बढ़कर है।।33।।

प्रसन्नकुपितात्मना नियमतो भवेद्दुःखिता।
तथैव परिमोहिता भयमुपद्रुतिश्चामयैः।।

तृषापि च बुभुक्षया च न च संसृतिश्छिद्यते।
जिनेन्द्र! भवतोऽपरेषु कथमाप्तता युज्यते।।34।।
जो प्रसन्न या क्रोधी हैं, निश्चित दुःख उनको है तद्वत्। गहन मोह, भय, आमय, उपसर्गादिक भी होते शाश्वत।। क्षुधा तृषादिक बाधा पीड़ित, नहिं उनके संसृति का नाश। हे जिनेन्द्र! आपसे पर में, कैसे आप्तपने की आश।।34।।

कथं स्वयमुपद्रुताः परसुखोदये कारणं।
स्वयं रिपुभयार्दिताश्च शरणं कथं बिभ्यताम्।।
गतानुगतिकैरहो त्वदपरत्र भक्तैर्जनै।
रनायतनसेवनं निरय हेतुरंगीकृतम्।।35।।
स्वयं उपद्रव से पीड़ित जो, पर को कैसे सुख देते। रिपुभय ग्रसित स्वयं वो कैसे, रक्षक हों भयभीतों के।। गतानुगतिका भाक्तिक जन हा! देखा-देखी कर करके। है आश्चर्य! नरक हेतू, सेवन अनायतन का करते।।35।।

सदा हननघातनाद्यनुमतिप्रवृत्तात्मनां।
प्रदुष्टचरितोदितेषु परिहृष्यतां देहिनाम्।।
अवश्यमनुषज्यते दुरितबंधनं तत्त्वतः।
शुभेपि परिनिश्चितस्त्रिविधबंधहेतुर्भवेत्।।36।।
सदा जीव वध में कृतकारित अनुमति तथा शस्त्र का दान। जीवों के दुश्चरितादिक के होने पर संतोष महान।। जिनके पास दोष ये निश्चित पाप बंध उनको होता। शुभ कार्यों में कृतकारित अनुमोदनादि से शुभ होता।।36।।

विमोक्षसुखचैत्यदानपरिपूजनाद्यात्मिकाः।
क्रिया बहुविधासुभृन्मरणपीडना हेतवः।।
त्वया ज्वलितकेवलेन न हि देशिताः किं तु ताः।
त्वयि प्रसृतभक्तिभिः स्वयमनुष्ठिताः श्रावकैः।।37।।
मोक्ष सौख्य के हेतू जिन-प्रतिमा पूजन दानादि क्रिया। बहु विध प्राणि मरण पीडन कृत, का प्रभु नहिं उपदेश किया।। किन्तु आपकी अति भक्ती से, श्रावकगण शुभ कार्यों का। अनुष्ठान करते रहते हैं,भव भयहारी धर्मों का।।37।।

त्वया त्वदुपदेशकारि-पुरुषेण वा केनचित्।
कथंचिदुपदिश्यते स्म जिन! चैत्यदानक्रिया।।
अनाशकविधिश्च केशपरिलुंचनं चाथवा।
श्रुतादनिधनात्मका-दधिगतं प्रमाणांतरात्।।38।।
हे जिन! तुमने या तव मत-उपदेशक गणधर देवों ने। चैत्य दान पूजन आदिक विधि, 'कथंचित्' से उपदेशी हैं।। केशलोंच औ उपवासों का, भी वर्णन तथैव भगवन्। अथवा अनादि अनिधन आगम, से इन सब विधि का वर्णन।।38।।

न चासुपरिपीडनं नियमतोऽशुभायेष्यते।
त्वया न च शुभाय वा नहि च सर्वथा सत्यवाक्।।
न चापि दमदानयोः कुशलहेतुतैकांततो।
विचित्र-नयभंगजाल-गहनं-त्वदीयं मतम्।।39।।
प्राणी पीड़ा अशुभबंध कृत, नहीं सर्वथा तव मत में। अथवा उसमें शुभ हो यह नहिं, तथा न निश्चित सतवच में।। पुण्य बंध एकांत दृष्टि से, दम अरु दान में नहिं जिनवर। बहुविचित्र नय भंग जाल से, गहन आपका मत सुन्दर।।39।।

त्वयापि सुखजीवनार्थ-मिह शासनं चेत्कृतं।
कथं सकलसंग्रह-त्यजनशासिता युज्यते।।
तथा निरशनार्द्ध-भुक्तिरसवर्जनाद्-युक्तिभि।
र्जितेन्द्रियतया त्वमेव जिन इत्यभिख्यां गतः।।40।।
यदि सुखपूर्वक जीवन हेतू, शासन यहाँ किया तुमने। फिर कैसे सर्वस्व परिग्रह, त्याग धर्म तेरा जग में।। तथैव अनशन अवमौदर्यं, रस परित्याग आदि विधि से। इन्द्रिय जीत आप ही "जिन" अन्वर्थ नाम पाया जग से।।40।।

जिनेश्वर! न ते मतं पटकवस्त्र-पात्रग्रहो।
विमृश्य सुखकारणं स्वय-मशक्तकैः कल्पितः।।
अथायमपि सत्पथस्तव भवेद्वृथा नग्नता।
न हस्तसुलभे फले सति तरुः समारुह्यते।।41।।
जिनेश! तव मत में रोमज, वस्त्रादि पात्र का नहीं ग्रहण। सुख के कारण जान स्वयं, असमर्थ जनों ने किया सृजन।। यदि यह भी शिवमार्ग बने, तव नग्न रूप दीक्षा हो व्यर्थ। हस्त सुलभ फल वाला यदि तरु, कौन चढ़ेगा फल के अर्थ।।41।।

परिग्रहवतां सतां भय-मवश्य-मापद्यते।
प्रकोपपरिहिंसने च परुषानृतव्याहती।।
ममत्वमथ चोरतो स्वमनसश्च विभ्रांतता।
कुतो हि कलुषात्मनां परमशुक्लसद्ध्यानता।।42।।
परिग्रही साधू को चोरादिक, से भय अवश्य होता। हिंसा, क्रोध, कठोर अनृत, भाषण भी तथा रहे ममता।। मन में भी आकुलता भ्रांती, होती रहती अतः प्रभो! कलुषित हृदयी जन को कैसे, परम शुक्ल सद्ध्यान अहो।।42।।

स्वभाजनगतेषु पेय-परिभोज्यवस्तुष्वमी।
यदा प्रतिनिरीक्षितास्-तनुभृतः सुसूक्ष्मात्मिकाः।।
तदा क्वचि-दपोज्झने मरणमेव तेषां भवे।
दथाप्यभि-निरोधनं बहुतरात्म-संमूर्च्छनं।।43।।

निज भाजन में रखी पेय, भोज्यादिक लाई वस्तू में। चिऊँटी आदिक सूक्ष्म जंतु, जीवित वा मृतक कभी दीखें।। तब उनको यदि बाहर करते, निश्चित ही मर जावेंगे। नहीं निकाले तदा बहुत, संमूर्छन जीव जनम लेंगे।।43।।

दिगम्बरतया स्थिताः स्वभुज-भोजिनो ये सदा।
प्रमाद-रहिताशयाः प्रचुरजीव-हत्यामपि।।
न बंधफलभागिनस्त इति गम्यते येन ते।
प्रवृत्त-मनुबिभ्रति स्वबलयोग्य-मद्याप्यमी।।44।।

वस्त्र रहित हैं पाणिपात्र में, भोजी सदा प्रमाद रहित। क्वचित् प्राणि वध भी हो उनसे, वो हैं ईर्यापथ में रत।। प्रमाद विरहित होने से नहिं, कर्म बंध के भागी हैं। चूँकि पूर्व मुनि सम संप्रति भी, श्रेष्ठ चरित के धारी हैं।।44।।

यथागमविहारिणा-मशनपानभक्ष्यादिषु।
प्रयत्नपरचेतसा-मविकलेन्द्रिया-लोकिनाम्।।
कथंचि-दसुपीडनाद्-यदि भवेदपुण्योदय-
स्तपोपि वध एव ते स्वपरजीवसंतापनात्।।45।।

आगम विहित विहार तथा, आहार विधी में नित जाग्रत। प्रयत्नपूर्वक सूक्ष्म जीव, रक्षा में तत्पर हैं संतत।। कथंचित् प्राणी पीड़ा से यदि, पापबंध मानें उनके। पुनः आपका तप भी वध है, स्वपर जीव पीड़ा उससे।।45।।

मरुज्ज्वलन-भूपयःसु नियमात्-क्वचिद् युज्यते।
परस्पर-विरोधितेषु विगतासुता सर्वदा।।
प्रमाद-जनितागसां क्वचि-दपोहनंस्वागमात्।
कथं स्थितिभुजां सतां गगनवाससां दोषिता।।46।।

पृथ्वी वायु जलाग्नि परस्पर, विरोध रखते हैं इनमें।। सदैव हिंसा किसी की सबसे, होती ही रहती जग में।। मुनिजन के यदि प्रमादपूर्वक, दोष लगे प्रायश्चित है। गगनवस्त्रधर सुस्थित भोजी, सन्मुनि कैसे दोषी हैं।।46।।

परैरनघ! निर्वृतिः स्वगुणतत्त्वविध्वंसनं।
व्यघोषि कपिलादिभिश्च पुरुषार्थविभ्रंशनं।।
त्वया सुमृदितैनसा ज्वलितकेवलौघश्रिया।
ध्रुवं निरुपमात्मकं सुख-मनंत-मव्याहतम्।।47।।

हे निष्पाप! अन्य को मुक्ती, स्वगुण तत्त्व विध्वंस स्वरूप। सांख्यों के पुरुषार्थ भ्रंशमय, पुरुष प्रकृति के भेद स्वरूप।। किन्तु विशद केवलज्योतिः प्रभु, मृदितपापजिन! मत में तव। अनंत अव्याहत ध्रुव निरुपम, सौख्य सुक सब जनको शिव।।47।।

निरन्वय-विनश्वरी जगति मुक्ति-रिष्टापरै-
र्न कश्चिदिह चेष्टते स्वव्यसनाय मूढेतरः।।
त्वयाऽनुगुणसंहते-रतिशयोप-लब्ध्यात्मिका।
स्थितिः शिवमयी विभो! प्रवचने तव ख्यापिता।।48।।

तथा बुद्ध ने मुक्ति निरन्वय, विनश्वरी जो कही अहो!। कौन बुद्धिमन् स्वनाश हेतु, प्रवृत्ति कैसे करें कहो।। सम्यक्त्वादि गुणों की अतिशय, उपलब्धी होती जिसमें। विभो! आपके मत में ऐसी, शिवमयि स्थिति मानी है।।48।।

इयत्यपि गुणस्तुतिः परमनिर्वृतेः साधनी।
भवत्यलमतो जनो व्यवसितश्च तत्कांक्षया।।
विरंस्यति च साधुना रुचिरलोभलाभे सतां।
मनोभि-लषिताप्ति-रेव ननु च प्रयासावधिः।।49।।

इतनी भी तव गुण संस्तुति जिन! परम मोक्ष की साधक है। शिवेच्छु उद्योगी जन को बस, ये ही संतुष्टीप्रद है।। पुनः लोभ बिन मुक्ति प्राप्ति हो, मुक्ती रुचि से वीरमते। चूँकि सत्पुरुष मन अभिलाषित, प्राप्ती तक प्रयत्न करते।।49।।

इति मम मतिवृत्या संहतिं त्वद्गुणाना-
मनिश-ममितशक्तिं संस्तुवानस्य भक्त्या।।
सुख-मनद्य-मनंतं-स्वात्मसंस्थं महात्मन्।
जिन! भवतु महत्या केवलं श्रीविभूत्या।।50।।

इति मम अल्पबुद्धि से, अनंत शक्तीयुत तव गुण गण के। भक्ति भाव से नितप्रति संस्तव, करते मुझ को सत्फल हो।। हे परमात्मन्! अघ विरहित अनंत स्वात्मोद्भव सुख होवे। केवल 'ज्ञानमती' महती, विभूति सह शाश्वतमय होवे।।50।।

।।इति पात्रकेसरि स्तोत्रम्।।

श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र (संस्कृत)

रचयित्री-गणिनीप्रमुख ज्ञानमती माताजी

स्रग्धरा छन्द (21 अक्षरी) –

श्रीमान् पार्श्वो जिनेन्द्रः, परमसुखरसानन्दकंदैकपिंडः।
चिच्चैतन्यस्वभावी, भुवि सकलकलेः, कुण्डदण्डप्रचण्डः।।
भ्राजिष्णुस्त्वं सहिष्णुः, कमठशठकृतेनोपसर्गस्य जिष्णुः।
त्वां भक्त्या नौमि नित्यं, समरसिकमना, मे क्षमारत्नसिद्ध्यै।।1।।

मत्तविलासिनी छंद (21 अक्षरी) –

[1]माधवमास्यसिते द्वितये दिवसे किल गर्भमितः प्रभुः।
पौषसुमास्यसितैकयुता दशमीदिवसे जनिमाप सः।।
जन्मतिथौ च दिशावसनो नवहस्ततनुः खलु तीर्थकृत्।
शालिनवांकुरसद्द्युतिमान् शतवर्षमितायुरवेत् स मां।।2।।

प्रभद्रक छंद (22 अक्षरी) –

ध्याननिमग्नपार्श्वमुनिपं, विलोक्य कमठासुरः कुपितवान्।
मूसलधारयोग्रपवनैर्भयंकरमहोपसर्गमिति सः ।।
वन्हिकणान् ववर्ष दृषदः, पिशाचपरिवेष्टितश्च कृतवान्।
मंदरशैलवद्दृढमनाः, चचाल नहि योगतो जिनवरः।।3।।

अश्वललित छन्द (23 अक्षरी) –

फणपतिरासनस्य चलनात् त्वरं, सह समाययौ वनितया।
असितमधौ[2] चतुर्दश [3]दिने, सुबोधरविरुद्ययौ च जिन! ते।।
गलितमदस्तदा स कमठासुरो जिनविभुं श्रितः सदसि वै।
जिनवचनौषधं किल पपौ, समस्तभवरोगशांतकरणं।।4।।

मत्ताक्रीड़ा छन्द (23 अक्षरी) –

संप्राप्नोत् शुक्लासप्तम्यां, नभसि[4] वसुगुणमणिखचितवसुधां।
सम्मेदः शैलेन्द्रो वंद्यः, सततमपि गणिमुनिसुरखगनरैः।।
वाराणस्यां ब्राह्मी सूते, स्म विकसितकृतमुनिहृदयकमलं।
सर्पश्चिन्हो भाति त्रेधा, जिनचरणकमलमहमपि च नुवे।।5।।

अनुष्टुप् छन्द –

विश्वसेनसुतः पार्श्वः, त्वत्प्रसादात् क्षमाखने!।
सर्वंसहा मतिर्मे स्यात्, तावद्यावत् शिवो न हि।।6।।

अथ मण्डलस्योपरि स्वर्ण-रजतपुष्पमिश्रित पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

1. वैशाखे। 2. चैत्रे। 3. चालू पूजाओं में चतुर्थी है। उत्तर पुराण में चौदश है। 4. श्रावण।

PRAYER OF TIRTHANKARAS' BIRTHPLACES

–Aryika Chandnamati

Tune-Tumhi Ho Mata, Pita Tumhi Ho.....

Holy **Ayodhya** is first birthplace, Where born Rishabh Ajit Abhinandannath.
Sumatinath Anantnath also born there, So I bow to Pilgrimage Ayodhya. **(1)**

Second birthplace is **Shravasti**, Where was born Sambhavnath Jinvar.
Crore of crores Jewels were rained there, So I bow to Pilgrimage Shravasti. **(2)**

Kaushambi is third holy Pilgrimage, Shri Padmaprabha Lord was born there.
Indra celebrated Festival then, So I bow to Pilgrimage Kaushambi. **(3)**

Two Tirthankaras' birthplace is **Banaras,** Who were Suparas and Lord Paras.
Both of mothers seen sixteen dreams there, So I bow to Pilgrimage **Banaras. (4)**

Shri **Chandrapuri** is near Banaras, Which is the birthplace of Chandraprabhu ji.
his place is waiting for us to progress, I bow to that Pilgrimage Chandrapuri. **(5)**

Kakandi is sixth birthplace Tiratha, There was born Pushpadanta Jinvar.
Saudharm Indra came from heaven, So I bow to Kakandi Pilgrimage. **(6)**

The birthplace of Tirthankara tenth, **Bhaddilpuri** is auspicious place.
Shitalnath was born at that place, So I bow to Bhaddilpur Pilgrimage. **(7)**

Mother-land of Shreyansa Jinvar, Shri **Singhapuri** is near Banaras.
That is today famous as Sarnath, I bow to that Singhapuri Pilgrimage. **(8)**

Champapuri is nineth pilgrimage, Which is the birthplace of Vasupujya Jin.
There became five Kalyanaks also, So I bow to Champapuri tirth. **(9)**

Holy Pilgrimage is **Campilaji,** The birthplace of Vimalnath ji.
His four Kalyanaks became too there, So I bow to Campila Pilgrimage. **(10)**

Fifteenth Tirthankar Dharmanath, Was born in **Ratnapuri** Pilgrimage.
Many heavenly deities came there , So I bow to Ratnapuri Tirath. **(11)**

Shri Shanti Kunthu Arah Tirthankars, Were born in **Hastinapuri** Tirth.
Jambudvip is famous of there, So I bow to Pilgrimage Hastinapur. **(12)**

Mithilapuri is holy Pilgrimage, Where born Mallinath Naminath Jinvar.
Kuber rained then many Jewels there, So I bow to Mithilapuri Tirath. **(13)**

Rajagrihi is historical place, Where born Munisuvrat Jineshwar.
Five Mountains are famous of there, So I bow to Rajgiri Pilgrimage. **(14)**

Twenty second Lord is Neminath, **Shauripur** is his holy birthplace.
He got there four Kalyanak also, So I bow to Shauripur Pilgrimage. **(15)**

Twenty fourth Tirthankar Mahavir, He was born at **Kundulpuri** Tirth.
Situated there Nandyavarta Palace, So I bow to Kundalpur Pilgrimage. **(16)**

These are sixteen holy Pilgrimages, Birthplaces of twenty four Tirthankars.
Many developed by Ganini Gyanmatiji, She says to you conserve also them. **(17)**

Twenty four Tirthankars' birthplaces All are holy places of our country.
All of you travel to these Pilgrimages, "Chandnamati" wants Ratnatraya Tirtha. **(18)**

BARAH BHAVNA (TWELVE ANUPREKSHAS)

(Tune- Chalat Musafir Moh liyo Re.....)

I'm praying to you Jinavar deva!
I'm praying to you
Praying to you, I'm saying to you-2
I'm praying to you Jinvar deva. I'm....
I did not know about my soul,
I could not think about myself.
So tell me that path deva.....
I'm praying to you.....

1. Anitya Bhavna

All things are momentary in world,
Everybody doing the birth and death.
It is also nature of Universe.....
I'm praying to you.....1

2. Asharan Bhavna

Unprotected are the souls of creatures
they are feeling fruitition of Karmas .
Any body doesn't help here.....
I'm praying to you.....2

3. Sansar Bhavna

Soul moves in Universe from eternal,
And could not attain true happiness.
Now I want ending sorrow,
I'm praying to you.....3

4. Ekatva Bhavna

I came alone and will go alone too,
There is neither any friend nor enemy.
None takes my Manifold sufferings.....
I'm praping to you.....4

5. Anyatva Bhavna

Soul is separate from my body,
All relatives are different from me,
I think, my soul is as God.....
I'm praying to you....5

6. Ashuchi Bhavna

Although my soul is so sacred,
But He became impure by Karmas.
Please bless me toget pure soul...
I'm praying to you.....6

7. Ashrav Bhavna

The inflow of Karmas grows my Universe,
And it also originates the Passions.
Sacred and sinful kinds of Ashravas...
I'm praying to you....7

8. Samvar Bhavna

The inflow of Karmas stopped where,
That condition is known by Samvar.
I want to attain this manner.....
I'm praying to you....8

9. Nirjara Bhavna

After the fruitition of those Karmas,
Dissociation of them then takes place.
Two kinds of this holy Nirjara.....
I'm praying to you....9

10. Lok Bhavna

Universe is situated from eternal,
Which is divided in three Lokas.
We are wondering without knowledge.....
I'm praying to you...10

11. Bodhidurlabha Bhavna

Human life is the best then all lives,
But difficult is, to attain Ratnatraya.
Give me that Right Path, deva.....
I'm praying to you....11

12. Dharma Bhavna

Religion is the nature of thing, say Granthas,
I want to receive nature of the soul.
Then, I will get Salvation.....
I'm praying to you...12
These are called as twelve Anupreksha,
Meditated by all great persons.
"Chandnamati" wants to get them.....
I'm praying to you..